विषय-सूची

रामायण-खण्ड

महाभारत-खण्ड

पुराण-खण्ड

धर्मशास्त्र-खण्ड

तन्त्र-खण्ड

दर्शन-खण्ड

सम्प्रदाय-खण्ड

धर्मशास्त्र-खण्ड

तन्त्र-खण्ड

दर्शन-खण्ड

सम्प्रदाय-खण्ड

रामायण-खण्ड

महाभारत-खण्ड

पुराण-खण्ड

धर्मशास्त्र-खण्ड

तन्त्र-खण्ड

दर्शन-खण्ड

सम्प्रदाय-खण्ड

प्राक्कथन ।

श्री शिवप्रसाद गुप्तके अनुरोधसे स्वर्गीय श्री रामदास गौड़ने हिन्दुत्व लिखना प्रारम्भ किया । गुप्त जीकी इच्छा थी और अब भी है कि प्रत्येक धर्मके सम्बन्ध मे एक ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित कराया जाय कि केवल उसीको देखनेसे उस धर्मकी भूमिका और क्रमविकाशका पूरा ज्ञान पाठकको हो तथा जो अधिक अध्ययन करना चाहते हो उन्हे भी मालूम हो जाय कि क्या पढ़ना चाहिये । केवल यही नहीं, एक उद्देश्य यह भी था कि उस धर्मको माननेवालोंकी संस्कृतिका भी अच्छा ज्ञान पाठकको हो । इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये श्री रामदास गौड़ने 'हिन्दुत्व' लिखना प्रारम्भ किया । वह लिखकर पूरा हो जानेपर भी बहुत दिन तक इस विचारसे पड़ा रहा कि अन्य विद्वानोको दिखाकर इसमे आवश्यक संशोधन करा लिये जायॅ । इस विचारसे ग्रन्थ एक दो विद्वानोके पास भेजा भी गया पर कतिपय कारणोसे वे कुछ कर न सके । इस प्रकार व्यर्थ समय जाता देख कर अन्तमें यही निश्चय किया गया कि ग्रन्थ ज्योका त्यो, अर्थात् जैसा गौड़जीने प्रस्तुत किया था, प्रकाशित कर दिया जाय । संशोधनका कार्य द्वितीय संस्करणके लिये, यदि वह अवसर प्राप्त हो, छोड़ दिया गया । तदनुसार छपाईका कार्य संवत् १९९२ विक्रमीयमे प्रारम्भ और सं० १९९४ वि० मे समाप्त हुआ पर इसके साथ ही, हमारे दुर्भाग्यसे, गौड़जीकी इहलीलाका अन्त हो गया । अतः कहा जा सकता है कि 'हिन्दुत्व' ही गौड़जीकी स्वदेशको अन्तिम देन है । पर हमारे दुर्भाग्यसे वह अपूर्ण ही रह गयी ।

'हिन्दुत्व' वस्तुतः विश्वकोष (एनसाइक्लोपीड़िया) है । हिन्दू धर्म के सम्बन्धमे कोई बात ऐसी नही है जिसका इसमे यथास्थान समावेश न हुआ हो । इतना कार्य तो गौड़जीने स्वयम् ही कर दिया है । पर ऐसे ग्रन्थके लिये एक भूमिकाकी आवश्यकता थी जिसमें हिन्दू धर्मका इतिहास बताया जाता और जो ग्रन्थ आज उपलब्ध है वे टीकाकी कसौटीपर कसे जाते । यह कार्य बहुत परिश्रमका तो था ही, साथ ही इसके लिए गम्भीर और विस्तृत अध्ययनकी भी आवश्यकता थी । गौड़जी ही इसके योग्य थे और आप इसकी तैयारी भी कर रहे थे । स्यात् कुछ लिखा भी था पर वह आपके कागज पत्रोमें नहीं मिला ।

इसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई है, क्योंकि जो विद्वान् हैं और जिनमें विवेचनकी शक्ति भी है उन्हें अवसर नहीं है। इसलिये महीनों यह ग्रन्थ अप्रकाशित रह गया। पर अब यही उचित समझा गया कि जो है उसे ही प्रकाशित कर दिया जाय तथा भूमिका लिखवानेका यत्न भी जारी रखा जाय। उपयुक्त भूमिका तैयार हो जानेपर वह स्वतन्त्र पुस्तकके रूपमे प्रकाशित कर दी जाय।

अतः जो है वही जनताके सामने उपस्थित किया जाता है। प्रकाशकका विश्वास है कि हिन्दुत्वके सम्बन्धमें जो सज्जन कुछ जाननेकी इच्छा रखते है उनके लिए यह ग्रन्थ परम उपयोगी सिद्ध होगा। वेद, वेदाङ्ग, दर्शन, स्मृति, इतिहास, पुराण, तन्त्र, सम्प्रदाय, पन्थ आदि क्या है और उनमें क्या है, इन सब प्रश्नोंका उत्तर देनेवाला केवल हिन्दीमे ही नहीं प्रत्युत समस्त भारतीय साहित्यमे स्यात् यही एकमात्र ग्रन्थ है। इसकी उपयोगिता तभी सफल होगी जब हमारे देशके विद्वान इस विषयके अधिकतर अध्ययनमें इस ग्रन्थको अपना चिरसहायक पायेंगे।

काशी
१५ कार्तिक, १९९५ वि०

बा० वि० पराड़कर

हिन्दुत्व

पहला अध्याय

हिन्दू कौन है ?

भरतखंडके रहनेवालोंके लिये हिन्दू शब्दका प्रयोग संस्कृतके जाने हुए प्राचीन ग्रंथोंमेंसे मेरुतंत्रके सिवा और कहीं देखनेमें नहीं आता। मेरुतंत्रमें जहाँ इस शब्दकी व्युत्पत्ति है वहीं अंग्रेज और "लंडूज" की चर्चा भी दीखती है। इसलिये अनुमान होता है कि कमसे कम मेरुतंत्रका इतना अंश तो अवश्य अप्राचीन है। श्लोक यह हैं—

पश्चिमाम्नाय मंत्रास्तुप्रोक्ता पारस्य भाषया,
अष्टोत्तर शताशीतिर्येषां संसाधनात्कलौ।
पंचखानाः सप्तमीरा नव साहा महाबलाः,
हिन्दूधर्म्म प्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्त्तिनः।
हीनञ्च दूषयत्येव हिन्दूरित्युच्यते प्रिये,
पूर्वाम्नाये नवशतां षडशीतिः प्रकीर्त्तिताः।
फिरिङ्ग भाषया मन्त्रास्तेषां संसाधनात्कलौ,
अधिपा मण्डलानाञ्च संग्रामेष्वपराजिताः,
इंरेजा नवषट्पंच लंडूजश्चापि भाविनः॥ (मेरुतंत्र २३ प्र०)

संस्कृतके कोषोंमें[१] तो हिन्दू शब्द नहीं मिलता। फारसीके कोषोंमें "हिन्द" और इससे निकले हुए अनेक शब्द हैं। जैसे, हिन्दसां, हिन्दसा, हिन्दुवानीय, हिन्दुवाना, हिन्दू, हिन्दूएचर्ख, हिन्दमन्द, हिन्दूकुश, हिन्दवार, हिन्दूबार, हिन्दी, हिन्दूवी, हिन्दीनझाद और सम्बन्धके शब्द भी जैसे मिरातुल् हिन्द, शमशीरे हिन्द, इत्यादि। इन सब उदाहरणोंमें हिन्द शब्दमें अधिकांश फारसी और कुछ अरबी प्रत्यय और शब्द लगे हैं। इस रचनासे यह तो स्पष्ट है कि "हिन्द" शब्दके फ़ारसी होनेमें, जैसा कि फ़ारसीके कोष दावा करते हैं, तनिक भी सन्देह नहीं है। इसका अर्थ एक ही है, अर्थात् भारतवर्ष, यद्यपि कोषोंमें उस समयकी इस देशकी विस्तार-कल्पना नहीं दी हुई है, जिस समयसे कि पहलेपहल इस शब्दका प्रयोग होने लगा है। इसका अधिक प्रयोग इस बातका प्रमाण अवश्य है कि ईरानका सम्बन्ध "हिन्द" से घनिष्ठ रहा होगा। बलख्-नगरका नाम "हिन्दवार", पासके पहाड़का नाम "हिन्दू-कुश" (हिन्दू-कूट), और "हिन्दिकी" नामसे प्राचीनकालसे आजतक अफ़ग़ानिस्तान, बलख़, बुखारा,

---

१ सिवा शब्दकल्पद्रुमके, जिसका आधार मेरुतंत्र ही है। हिन्दू शब्द नया होनेसे ही तंत्रकारको उसकी व्युत्पत्ति करनी पड़ी।

फ़ारसतकमें भारतीय संस्कृति और धर्म्मके अनुयायियोंका पाया जाना भी भारतके निकट सम्बन्धका परिचायक है। विविध स्थानोंमें पाये हुए सिक्कोंसे, अफ़गानिस्तान, बलख़, बुखारा आदिके प्राचीन इतिहाससे, और आर्य्यावर्त्तके प्राचीन विस्तारके अनुशीलनसे पता चलता है कि इन देशोंका अधिकांश आर्य्यावर्त्तके अन्तर्गत रहा होगा। भारतवर्षके प्रभावके अधीन इन देशोंके रहे होनेमें तो कोई सन्देह नहीं है। यदि पच्छिममें गांधार देशसे लेकर मुल्तानतक पूरब, और उत्तरमें हिन्दूकुशसे लेकर सिन्धु नदीका मुहाना और गुजरात दक्खिन, लें तो इस बड़े क्षेत्रको "पश्चिम भारत" कहनेमें, प्राचीन भूगोलकी दृष्टिसे, हमारे निकट कोई भूल न होगी। इस प्राचीन भौगोलिक स्थितिमें पुरातत्त्व-वेत्ताओंकी भी प्रायः सहमति ही है। हमारे निकट जो "पश्चिम" भारत होगा, वही ईरानवालोंके निकट उनकी पूरबी सीमामें स्थित भारतवर्ष या हिन्द होगा। पूरबी भागमें प्रधान महानद सिंधु पड़ता है। इसी महानदके पूरब पच्छिम दोनों ओरकी छः नदियाँ और जोड़कर वह सात नदियाँ गिनी जाती हैं जिन्हें पारसी छन्दा-वस्थामें "हप्त हेन्दु" या सप्तसिंधु कहा है। प्राचीन पारसी साहित्यमें "हिन्दू" शब्दका सबसे पुराना रूप यही मिलता है। इसी सात नदियोंवाले प्रदेशको भी "हप्तहेन्दु" कहा गया है। पारसी भाषामें सोमको होम, सप्तको हप्त, असुरको अहुर कहते हैं। भाषाविज्ञानके अनुसार "स" और "ह" परस्पर बदला करते हैं। सिंधुके निवासी जैसे सैंधव कहलावेंगे वैसे ही "हिंधु"के निवासी "हैंधव" या "हैन्दव" कहलाएँ तो आश्चर्य्य ही क्या है!

सिन्धु महानदकी बराबरीका एक भी नद या नदी ईरानसे लेकर पंजाबके पूरबी भाग तक नहीं है। सबसे अधिक प्रसिद्ध होनेके कारण पहले तो इनमें मिलनेवाली स्वात, गोमती, कुभा, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती इन छहोंको "सिन्धु" नाम दिया जाना भाषाविज्ञानकी स्वाभाविक रूढ़ि है। दूसरे इन नदियोंके आसपासके सारे प्रदेशका पारस देशवालोंसे लाघवसे "सिंधु" या "सिंध" नाम पा जाना भी स्वाभाविक है। भारतवर्षवाले चाहे इस समूचे प्रदेशको दक्षिणसे उत्तरतक क्रमशः सौवीर, सिन्धु, गांधार, आदि प्रान्तोंमें विभक्त करें परन्तु हमें तो पारसी शब्द "हिन्द" पर विचार करनेके लिये पारसी जनताकी दृष्टिसे ही यहाँ देखना होगा।

जान पड़ता है कि पारसी धर्म्मके प्रचारकालमें इस पूर्वी प्रदेशका नाम "हप्त हेन्दु" या लाघवसे "हेन्दु" मात्र था। धीरे धीरे "हेन्दु" का "हिंद" रह गया और यहाँके रहने वालोंका नाम "हैन्दव"से हेन्दू या "हिन्दू" हो गया।

भारतवर्षके सभी प्रान्तोंसे पश्चिमकी ओर जानेका एक मात्र मार्ग यही प्रदेश था। इसलिये इस प्रदेशसे होकर जितने भारतीय संस्कृतिके मनुष्य पश्चिम विदेशोंमें जाते थे सभी "हिन्दू" कहलाते थे। प्रान्तका विचार विदेशके लोग क्यों करने लगे क्योंकि साधारण जन-समुदायके लिये पूरबका प्रदेश,—समग्र भारत,—"हिन्द" ही था।

आज भी अंग्रेजी बोलनेवाला संसारमात्र जिस देशको "जर्म्मनी" और जिसके निवा-सियोंको "जर्म्मन" कहता है, उसी देशकी भाषामें उसी देशका नाम जर्म्मनी नहीं है, डोइट्शलंड है। वहाँकी भाषाका और लोगोंका नाम डोइट्श है। परन्तु दुनिया अपनी रूढ़िको स्थिर रखती ही है।

इसी तरह बाहरके पच्छांहीं पड़ोसी और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी भारतवर्षको "हिन्द" और यहाँके निवासियोंको "हिन्दू" कहने लगे। यूनानीमें हकारका लोप होनेके कारण "इंद" और "इन्दू" शब्द प्रचलित हुए। अंग्रेजोंने उसे ही "इंड" "इंडो" "इंडिया" आदि कर दिया।

व्यक्तिको अपना नाम लेनेकी आवश्यकता नहीं होती, और ही व्यक्ति उसका नाम लेते हैं। अपने परिवारमें हर कुटुम्बीके पुकारे जानेके सम्बन्धी नाम होते हैं, विशेष नामसे परिवारके बाहरके ही लोग पुकारते हैं। अपनी जातिका नाम लेनेकी तभी आवश्यकता पड़ती है जब जातिभेदकी सूचना आवश्यक होती है। फिर नाम भी तो पुकारनेवाले ही प्रायः रखते हैं। यदि कोई अपना नाम नया रखता है तो पुकारनेवालोंको उस नये नामका अभ्यास कराना पड़ता है। हमने अपने देशका नाम भारतवर्ष रखा था, अपनी जातिका नाम आर्य्य रखा था सही, परन्तु अभारतीयोंको और अनार्य्योंको जो हमसे दूरका सम्बन्ध रखते थे यह अधिकार था कि हमको अपने दिये हुए नामसे पुकारें। यह अधिकार वैसा ही है जैसा कि हमको इंगलैंडवालोंको "अंग्रेज" और युरोपीयनोंको "फिरंगी" कहनेका अधिकार आज भी है, यद्यपि वह स्वयं अपने देश और अपनी भाषामें इन नामोंका प्रयोग कभी नहीं करते।

हिन्दू शब्दका मूलरूप सैंधव है। "सिंधु" शब्दका निर्वचन (सिन्धुः स्यन्दनात्, निरुक्त अ० ९। खण्ड २६।) तेज चलनेसे है। सिन्धु नदीकी धाराकी तीव्रतासे ही उसका यह क्रियावाचक विशेष नाम पड़ा। यह विशेष नद वा नदीका नाम भारतवर्षमें अवश्य ही "हप्त हेन्दु" या "सप्तसिंधु"के प्रयोगके बहुत काल पहलेसे होगा। समुद्रका भी यही नाम जातिवाचक यौगिक ही समझना चाहिये। "सिंधु" शब्द नदी जातिके लिये योगरूढ़ि भी अत्यन्त प्राचीन है और "सप्तसिंधु" भी वैदिक प्रयोग है। इसीलिये पीछेसे हिन्दूशब्दके, फारसी भाषामें जो "डाकू", "सेवक", "दास", "नास्तिक" "पहरेदार", यह लक्ष्यार्थ हुए वह किसी प्रकारके राष्ट्रिय अपमानके उद्देश्यसे नहीं थे।

आर्य्यसंस्कृति पहले इतनी प्रबल थी कि विदेशी पड़ोसी भी उसका सिक्का मानते थे। जरथुस्रसे वेदव्याससे शास्त्रार्थ हुआ था। वेदव्यास स्वयं ईरान गये थे। यदि आर्य्यसंस्कृति भारतीयोंके प्रति आदर-भाव उत्पन्न करनेवाली न भी मानी जाय तो भी "सैंधव"से ही हिन्दू शब्दकी व्युत्पत्ति कमसे कम यह तो सिद्ध करती ही है कि प्राचीनतम कालमें "हिन्दू" नामवाले लोग "डाकू" "सेवक" "दास" "नास्तिक" और "पहरेदार" न थे, नहीं तो उसके बदले कोई ऐसा नाम होता जिसकी यौगिक व्युत्पत्ति इन व्यापारोंकी सूचक धातुओंसे होती। यह तो स्पष्ट ही है कि यह रूढ़ि लक्ष्यार्थ पीछेसे बन गये जब कि सीमापर, उभय राज्योंकी, और विशेषतः भारतीय राज्योंकी अव्यवस्थासे, अथवा ईरान और भारतके बीच पारस्परिक विरोधभावसे, पारसियों और भारतीयोंमें प्रेमभाव नहीं रह गया, जब सुर और असुरके उपासक परस्पर लड़ने लगे। शायद सीमापर परस्पर लूट और परस्परके विजितोंको दास बनानेकी दशा इतने कालतक रही कि पारसियोंके यहाँके बन्दी हिन्दू दास या सेवक हो गये। जो लूट ले गये वह लुटेरे कहलाये। जिन दासोंका बहुत कालतक श्रद्धासे सम्बन्ध बना रहा और विश्वास योग्य हो गये वह सीमापर उन्हीं लुटेरोंसे बचानेके लिये "पहरेदार" रखे गये।

था, भारतीयोंकी ईमान्दारी जगत्प्रसिद्ध थी। इसीलिये उनका "पहरेदार" होना स्वाभाविक ही था। "लुटेरा" "सेवक" "दास" और "पहरेदार" यह चारों लक्ष्यार्थ सापेक्ष हैं, और उसी तरह सापेक्ष्य हैं जिस तरह संस्कृतका "दस्यु" [डाकू] और "दास" [गुलाम] अर्थमें सापेक्ष हैं, और परोक्तका मूल पूर्वोक्त है ही।

"नास्तिक" या "म्लेच्छ" शब्दका प्रयोग अपनेसे भिन्न राष्ट्रके लिये सभी करते आये हैं। "हिन्दू" शब्दके यौगिकार्थका तो "नास्तिकता" से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। पारसियों और पीछेसे मुसल्मानोंके द्वारा विधर्म्मियोंको जो नास्तिक कहा जाता था उसीसे पहले "हिन्दू" नामधारी भी नास्तिक कहाये, फिर दोनों शब्द एक दूसरेका पर्य्याय हो गया।

कोषकारोंने यह पाँच अर्थ जो पर्य्यायकी भांति दिये हैं, वस्तुतः भारतीय विशेषणके साथ देते, तो हिन्दूशब्द अवश्य ही गर्हित अर्थ व्यक्त करता। यह इसलिये नहीं किया कि "हिन्दू" शब्दका प्रयोग अभारतीय लुटेरों, गुलामों, पहरेवालों या नास्तिकोंके लिये फारसी साहित्यमें कहीं नहीं आया है। ईरानकी पूरबी सीमापर रहनेवालोंके ही लिये प्रयुक्त हुआ है। अतः इन अर्थोंके प्रयोगका क्षेत्र अत्यन्त संकुचित रहा है।

उधरके लोग भारतके भीतर जब कभी खैबरके मार्गसे घुसे उन्होंने यहाँकी भूमिको हिंद, रहनेवालोंको हिन्दू और भाषाको हिन्दी या हिन्दूई या हिन्दवी कहा,—वह घुसनेवाले चाहे किसी जातिके रहे हों। इतिहासमें यूनानी और मुसलमान चढ़ाई करनेवालोंकी विशेष चर्चा है और उन्हींके द्वारा हिन्दू शब्द अवसरानुकूल रूढ़ि अर्थोंमें भी प्रयुक्त हुआ है। परन्तु यह याद रखनेकी बात है कि हिन्दवीका अर्थ "दुज़्दी" या "क़ज़्ज़ाक़ी" या "गुलामी" या "पहरेदारी" या "काफिरी" कहीं नहीं लिया गया है। "हिन्दवी" में ईकारसे हिन्दू शब्दके "भारतीय" ही अर्थका सम्बन्ध व्यक्त होता है।

जब मुसलमानोंका प्रभाव देशभरमें फैल गया, उनकी भाषाका प्रभाव भी उनकी संस्कृतिके साथ फैला। विजित और विजेतामें परस्पर हेलमेल हो गया। स्वभावतः विजितने विजेताकी अनेक बातें मानीं। जब कभी लिखने-पढ़नेमें, बाजार-हाटमें, सेना-पड़ावमें, कचहरी-दरबारमें, जीवनके सभी अंगोंमें जहाँ-कहीं मुसलमान और भारतीय इकट्ठे होते थे, दोनोंके विभेदका काम पड़ता था। उस समय "हिन्दू" और मुसलमान शब्द ही काममें आता था, हिन्दू चाहे किसी प्रान्तका किसी सम्प्रदायका, किसी मतका आस्तिक या नास्तिक हो, और मुसलमान चाहे किसी फिरकेका, किसी मुल्कका, किसी कौमका हो,—तुर्क, मुगल, पठान, अरब, शेख, सैयद कोई हो—इस विभेदमें हिन्दू शब्दके लिये लुटेरे, दास, सेवक या पहरेदारका भाव बिल्कुल न था, और न आज भी है।

एक भाव मौजूद था। वह था "नास्तिक" या काफिरका,—और वह भाव आज भी अनेक मुल्लाओंमें किसी न किसी रूपमें स्थिर है। संभवतः इसके उत्तरमें ही मेरुतंत्रकी वह व्युत्पत्ति है जो शब्दकल्पद्रुममें दी हुई है। "हीनं दूषयतीति हिन्दु." जो "हीन"को दूषित करे वह हिन्दू है। हीन किसे कहते हैं? व्यवहार-तत्वमें

अन्यवादी क्रियाद्वेषी नोपस्थायी निरुत्तरः
आहूत-प्रपलायी च हीनः पञ्चविधःस्मृतः

मुकदमोंमें पाँच प्रकारके हीन बताये हैं, परन्तु मुकदमोंके हीनोंसे अवश्य ही मेरुतंत्रका प्रसंग भिन्न है। यहाँ हिन्दूधर्म्मका लोप करनेवालोंकी चर्चा करके हिन्दू शब्दकी व्युत्पत्ति दी है, किसी मुकदमेकी चर्चा नहीं है। "हीन"के और अर्थ है, "अधम" "नीच" "गर्ह्य"। और "दूष्" निन्दा और नष्ट करनेके अर्थमें भी आता है। जान पड़ता है कि "जो कुछ निन्दाके योग्य है उसे नष्ट करनेवाला, अथवा उसकी निन्दा करनेवाला हिन्दू है" यही तंत्रकारका अभिप्राय जान पड़ता है, जो काफिर या नास्तिक कहनेवालोंका एक प्रकारका उत्तर है।

हिन्दू शब्दका पहलेका वाच्यार्थ चाहे आर्य्य ही रहा हो, परन्तु इतिहास इस बातका साक्षी है कि वह अनार्य्य भी हिन्दू समझे और माने जाते हैं जो आर्य्योंके अनुकूल धर्म्म मानते हैं। आदिद्रविड़ अब्राह्मणोंमें अधिकांश अपनेको अनार्य्य समझते हैं परन्तु हिन्दू कहलानेमें उन्हें कोई संकोच नहीं है। आजकलके इतिहासकार भी उन्हें अनार्य्य कहते हैं। इसीके विपरीत अनेक आर्य्यसमाजी और ब्रह्मसमाजी और सिख अपनेको हिन्दू कहनेमें संकोच करते हैं,—फिर चाहे वह उस शब्दको रूढ़िके कारण गर्हित कहते हों और चाहे मूर्त्तिपूजा आदि प्रथाओंसे विरोध उसका हेतु हो। कोई कोई घोर नास्तिक भी, जो संसारके किसी आस्तिक मतके अनुयायी नहीं हैं, अपनेको हिन्दू कहते हैं क्योंकि वह हिन्दू शब्द राष्ट्रविशेषका वाचक मानते हैं। धर्म्मसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं समझते। गोआमें ऐसे ईसाई मौजूद हैं, जो हिन्दू शब्दका व्यवहार तो अपने लिये नहीं करते परन्तु हिन्दुओंके ऐसे कोई देवी-देवता नहीं, जिनकी पूजा वह प्रभु यीशुख्रीष्टके साथ न करते हों। ऐसे मुसलमान भी हैं, जो गोमांससे बचते हैं और हिन्दू त्योहार मनाते हैं और देवी देवताके स्थानमें जाकर मुंडन संस्कार करते हैं। साथ ही ऐसे हिन्दू भी खोजे मिल ही जायँगे जिन्हें गोमांस तो क्या नरमांससे भी कोई घृणा नहीं है। मुर्दे खानेवाले अघोरपंथी औघड़से लेकर श्रीसम्प्रदायवाले ब्राह्मण आचारीतक हिन्दू हैं, जिनके यहाँ बिल्ली देख ले तो रसोई अशुद्ध हो जाय। सूअरकी हड्डीसे गोंठकर मुसल्मानोंकी पकायी रोटीको लेकर "अमृत छकनेवाले" गुरु गोविन्दसिंह भी हिन्दू क्या, हिन्दुओंके सिरताज हैं, और अपने हाथोंसे ही पकाया हुआ भोजन करनेवाले स्वयंपाकी हिन्दुओंकी संख्या भी थोड़ी नहीं है। जिन अछूतोंकी हवासे ब्राह्मणको बचना पड़ता है, क्योंकि वह "हिन्दू" है, उन्हीं अछूतोंको ठीक उतने ही अच्छे "हिन्दू" होनेका गर्व है। सुधारक और पतितोद्धारक ब्राह्मणोंके साथ बैठकर खानेवाले भंगीको, हिन्दू कहलानेवालोंकी जूठनसे पला हुआ उस जातिका चौधरी, "कुजातियों" के साथ भोजन करनेके अपराधमें जाति-बाहर कर देता है, क्योंकि उसे अपनी हिन्दू जातिका ब्राह्मणोंसे कम गर्व नहीं है। वर्णाश्रमधर्म्मी भी हिन्दू हैं और वर्णाश्रमके न माननेवाले भी हिन्दू हैं। कंधार और बुखारेसे आकर त्रिवेणीमें नहाकर और अक्षयवटकी पूजा करके कृतार्थ होनेवाले भी हिन्दू हैं और प्रयाग और काशीजीमें रहकर अपनेको हिन्दू मानते हुए भी इन कृतियोंके विरोधी कम हिन्दू नहीं हैं। अनेक विद्वानोंका मत है कि भारतवर्षसे निकले सभी धर्म्म, मत सम्प्रदाय हिन्दू कहलाने चाहियें। इस तरह ईसाई, मुसल्मान, यहूदी, अहिन्दू ठहरते हैं और ब्रह्मसमाजी, बौद्ध, जैन, सिख, एवं और अनेक आधुनिक सम्प्रदाय हिन्दू गिने जाते हैं। यह परिभाषा अतिव्यापक ठहरती है। इसमें संसारमें फैले कमसे कम चालीस करोड़ बौद्ध-

मतके लोग भी आ जाते हैं, जिनमें तिब्बती, चीनी, जापानी, मोगल, तातारी और सिंहली तथा बर्म्मी भी सन्निविष्ट हो जाते हैं। धार्म्मिक दृष्टिसे चाहे हिन्दूको यह गर्व भले ही हो कि संसारमें आज भी हिन्दूधर्म्मानुयायी साठ करोड़से अधिक हैं जो पुनर्जन्म, अहिंसा, सत्य, कर्म्म आदि मौलिक हिन्दू सिद्धान्तोंको मानते हैं,—और उचित भी है, क्योंकि भारतीय हिन्दू तो भगवान् बुद्धको परमात्माका या विष्णुका नवाँ अवतार मानता ही है,–परन्तु तिब्बती, चीनी, तातारी और जापानीको तो समाजशास्त्री हिन्दू-संस्कृति-वाले राष्ट्र नहीं मान सकता।

हिन्दू शब्द कितनी अभिधा शक्ति रखता है, इसपर बहुत कुछ विवाद हो चुका है और एक भी परिभाषा सर्ववादि-सम्मत नहीं ठहरायी गयी है।

इतनी बातपर तो सभी वादी सहमत हैं कि हिन्दू शब्दसे एक विशेष धर्म्म, एक विशेष सम्प्रदाय, एक विशेष जाति या एक विशेष राष्ट्रका, कमसे कम भारतके भीतर जहाँ इस शब्दका आज अति-प्रयोग हो रहा है, बोध नहीं होता। भारतके बाहर तो खास मक्के मदीनेमें भारतीय मुसल्मान "हिन्दू" या "हिन्दी" कहलाता है। वहाँ इस शब्दसे अ-मुस्लिम वा नास्तिक वा काफिरका उस प्रसंगमें अभिधान नहीं होता। इसी प्रकार भारतीय ईसाईको भी अमेरिकाके ईसाई "हिन्दू" कहते हैं। इस तरह भारतके बाहर आज अनेक देशोंमें "हिन्दू" शब्द भारतवासीका ही पर्याय है। अमेरिकामें हरएक भारतीय हिन्दू कहलाता है चाहे वह आर्य्य हो या मुसलमान, ईसाई हो या सिख।

भारतवर्ष संसारभरमें कई बातोंमें विलक्षण है। उन सबमें यह विलक्षणता विशेष है कि यहाँकी संस्कृति एक है। हिमालयसे कन्याकुमारी तक, कच्छसे आसामतक, हिन्दू नामधारी किसी सम्प्रदाय वा मतका हो, उसका स्वभाव और विचार, प्रायः मिलता जुलता है। सभी राम कृष्णादिको मानते हैं। सबकी संस्कृतिका मूल यही भारत है। वर्णमाला सबकी एक है। प्रान्त प्रान्तमें आचारमें भेद हैं, भाषामें भेद है, पहिरावेमें भेद है, परन्तु कर्म्म और जन्मान्तर सब मानते हैं। गोरक्षा सभी चाहते हैं। इस तरहकी एकतामें अनेकता और अनेकतामें एकता संसारके किसी इतने विशाल भूभागमें शायद नहीं है। इससे तिब्बत या चीन निवासी बौद्धोंका मेल उसी तरह नहीं है, जैसे अपनेको "आर्य्य" कहनेवाले फिरंगियोंसे भारतीय आर्य्योंका मेल नहीं है। भारतसे बाहरके बौद्धोंका धर्म्म हिन्दू-धर्म्म अवश्य है, परन्तु हिन्दू-संस्कृति तिब्बत, चीन, तातार, जापान आदिकी नहीं है।

भारतमें धर्म्म और संस्कार अलग वस्तुएं नहीं समझी जातीं, क्योंकि भारतीय जीवनमें दोनोंका ऐसा विचित्र मेल है, कि हमको दोनोंकी विभाजक रेखा स्पष्ट नहीं दीखती। जात-कर्म्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास आदि संस्कार धर्म्मके ही अंग माने जाते हैं, परन्तु यह समाजके संस्कारमात्र हैं। तौ भी यह धार्म्मिक जीवनके पड़ाव हैं, इसलिये इनका धर्म्मसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। फिर भारतकी परम्परा अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक श्रृंखला है जो भूतसे वर्त्तमानको बाँधे हुए है। यह वह कड़ा बन्धन है जिससे विधर्म्मी और संस्कार-च्युत होनेपर भी कोई भारतीय छूट नहीं सकता। मुसल्मान होकर भी भारतीय तीज त्योहार रीतिरवाज मानना पड़ता है, ईसाई होकर भी नामके साथ पांड़ेका पुछल्ला पूर्व पुरुषोंके परिचयके लिये पकड़े रहना पड़ता है। यह परम्परा भी हिन्दुओंकी पहचान है।

हिन्दू कौन है ?

हमने अबतक जो विचार किया है उससे हम यह कह सकते हैं कि भारतकी प्राचीनतम आर्य्यपरम्पराको अपनी परम्परा स्वीकार करता हुआ जो भारतकी संस्कृति और भारतके धर्म्मको पूर्णरूपसे वा अंशरूपसे अपनावे, वही भारतीयोंके लिये "हिन्दू" है।[१]

---

१ निम्नलिखित श्लोकसे हिन्दू शब्दकी प्राय ऐसी उपयुक्त परिभाषा होती है जिसे सभी स्वीकार करेंगे—

आसिंधो सिन्धुपर्य्यन्ता यस्य भारतभूमिका ।
पितृभू. पुण्यभूश्चैव सवै हिन्दुरितिस्मृत ॥

कहते हैं कि यह श्लोक लोकमान्य तिलकने रचा था। पूरब पच्छिम समुद्र, दक्षिणमें समुद्र और उत्तरमें सिंधु नदीके उद्गमतक इन चारों सीमाओंके भीतर जो देश है वही भारत भूमि है। यह भूमि जिसकी पितृभूमि तथा पुण्य भूमि है, वही हिन्दू है। यदि मुसल्मान और ईसाई भी इसे अपनी पुण्यभूमि समझने लगें तो उन्हें भी हिन्दू कहनेमें हमें सकोच न होगा। परन्तु अमेरिकावाले "हिन्दू" शब्द भारतीयके पर्य्यायकी तरह ही प्रयोग करते हैं। उसका अंग्रेजी पर्य्याय "इंडियन" शब्द अमेरिकामें और ही अर्थ रखता है। अमेरिकामें "इंडियन" का अर्थ है वहाका पहलेका निवासी। अतः अमेरिकाके शब्दकोषवाले हिन्दू शब्दका अन्तर्भाव ऊपर उद्धृत किये हुए श्लोकमें नहीं होता।

दूसरा अध्याय

धर्म और संस्कार

धर्म्मशब्दका प्रयोग ऋग्वेदमें पहले-पहल पहले मंडलके २२ वें सूक्तके १८ वें मन्त्रमें इस प्रकार पाया जाता है—

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
अतो धर्म्माणि धारयन् ॥ १८॥

(त्रीणि) त्रिविधानि । (पदा) पदानि वेद्यानि प्राप्तव्यानिवा । (वि) विविधार्थे । (चक्रमे) विहितवान् । (विष्णुः) विश्वान्तर्य्यामी । (गोपः) रक्षकः । (अदाभ्यः) अविनाशित्वान्नैव केनापि हिंसितुम् शक्यः । (अतः) कारणादुत्पद्य । (धर्म्माणि) स्वस्वभाव जन्यान् धर्म्मान् । (धारयन्) धारणं कुर्वन् । यतोऽयमदाभ्यो गोपा विष्णुरीश्वरः सर्वं जगद्धार यन् संस्त्रीणि पदानि विचक्रमे । अतःकारणादुत्पद्य सर्वेपदार्थाः स्वानि स्वानि धर्म्माणि धरन्ति ॥ १८ ॥

"धारणाद्धर्म्ममित्याहुः" "धरति लोकान् ध्रियते पुण्यात्मभिर्वा" आदि भी वेदार्थके ही पोषक हैं। किसी वस्तु वा अवस्तुकी, आत्म या अनात्मकी, विधायक वृत्तिको उसका धर्म्म कहते हैं। प्रत्येक पदार्थका व्यक्तित्व जिस वृत्तिपर निर्भर है वही उस पदार्थका धर्म्म है। धर्म्मकी कमीसे उस पदार्थमें कमी है, उसका क्षय है। धर्म्मकी वृद्धिसे उस पदार्थमें वृद्धि है, विशेषता है। बेलेके फूलका एक धर्म्म सुवास है। उसकी वृद्धि उसकी कलीका विकास है। उसकी कमीसे फूलका ह्रास है। भारत-सावित्रीमें कहा है—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्म्मम् त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः
धर्म्मो नित्यः सुख दुःखेत्वनित्ये
जीवो नित्यः हेतुरस्याप्यनित्यः

[महाभारतके अन्तिम श्लोकोंमेंसे]

यहाँ शरीरके धर्म्मकी चर्चा नहीं है, जीवके धर्म्मकी चर्चा है। जो लोग मरणके पीछे व्यक्तित्वकी सत्ता मानते हैं, उन्हींकी दृष्टिसे यहाँ जीवके नित्यत्वके साथ धर्म्मका नित्यत्व भी माना है। ऊपर जो परिभाषा धर्म्मकी कही गयी है वह उसके यौगिकार्थसे अभिधेय है और व्यापक है। रूढ़िसे और जितने अर्थ प्रचलित हैं सबका आधार यही यौगिकार्थ है। प्रकृति और स्वभाव यद्यपि इसके पर्य्याय हो सकते हैं, तथापि इन पर्य्यायोंमें उतनी व्यापकता नहीं है। इसी परिभाषाके अनुसार धर्म्म शब्दका प्रयोग सभी वस्तु अवस्तुआत्म और अनात्मके साथ हो सकता है। आकाशका धर्म्म, अग्निका धर्म्म, पृथ्वीका धर्म्म, कालका धर्म्म, देशका धर्म्म, जीवका धर्म्म, देहका धर्म्म, देवताका धर्म्म, राक्षसका धर्म्म, मनुष्यका धर्म्म, सैनिकका

धर्म्म, साधारण धर्म्म, किसानका धर्म्म, ईसाईका धर्म्म, पशुका धर्म्म, इत्यादि रूपमें धर्म्म शब्दका विस्तृत प्रयोग उसके यौगिकार्थका ही द्योतक है, यौगिकार्थका ही विकास है।

यह शब्द शुद्ध भारतीय है, भारतकी ही विशेषता है। वैशेषिक दर्शनने धर्म्मकी बड़ी सुन्दर वैज्ञानिक परिभाषा "यतोऽभ्युदय-निःश्रेयस-सिद्धिः स धर्म्मः" इस सूत्रसे की है। धर्म्म वह है जिससे अभ्युदय और निःश्रेयसकी सिद्धि हो। परन्तु यह परिभाषा परिणामात्मिका है। इसी शब्दपर पूरा पूरा विचार करनेके लिये यहाँ एक प्रधान दर्शनका प्रादुर्भाव हुआ। कर्म्ममीमांसा शास्त्रका पहला सूत्र है "अथातो धर्म्म-जिज्ञासा"। अर्थात् "अब हम धर्म्मके अनुकूल कर्म्मको जाननेकी इच्छासे उसपर विचार करेंगे।" फिर उसके सभी पक्षोंपर विचार करके निश्चय किया कि "(वेद ऋषि आदि द्वारा) जिस कर्म्मको करनेकी प्रेरणा हो वही धर्म्म है।" इस प्रसंगमें धर्म्मका लक्ष्यार्थ "धर्म्मानुकूल आचरण" है। वह कर्त्तव्य है जो करनेवालेके धर्म्मके अनुकूल हो। धर्म्मके प्रतिकूल होनेसे ह्रास और धर्म्मके अनुकूल होनेसे उन्नति होती है। इसी दृष्टिसे धर्म्मानुकूल-कर्त्तव्योंपर-विचार-जैसी महत्वकी बातपर यह दर्शन बना।

किसके लिये क्या धर्म्मके अनुकूल है और क्या प्रतिकूल है, यह कौन बतावे और बतानेवाला ठीक बता रहा है, इसकी क्या कसौटी है ? कसौटी भी मालूम हो तो उस कसौटीपर कसकर खरे-खोटेकी पहचान करनेकी किस-किसमें क्षमता है ? सबमें जब एक सी क्षमता नहीं है तो कमोबेश ही क्षमतासे काम लेना पड़ेगा। हर एकको अपने अपने कर्त्तव्य-पथका अलग अलग पता लगाना पड़ेगा। अपने धर्म्मके अनुकूल चलनेमें ही भलाई है। सबके कर्त्तव्य भी एकसे नहीं हो सकते। हृदय, मस्तिष्क आदि ऊँचे अंगोंसे काम लेनेवाला, बाहुबलसे रक्षा करनेवालेसे भिन्न मार्गपर है। पढ़नेवाले विद्यार्थीके जो कर्त्तव्य हैं वह घर-गृहस्थी चलानेवालेके नहीं हैं। इनके कर्त्तव्य अलग अलग कौन निर्णय करे और किसकी बात मानी जाय ? क्या ऐसे भी कर्म्म हैं जो सबके लिये समान हैं ? फिर जैसे सब व्यक्तियोंके कर्म्म अलग अलग हैं, उसी तरह सब देशों और सब कालोंमें भी एक ही व्यक्तिके कर्त्तव्य समान नहीं होते। वह भी अलग अलग होते हैं। साधारण अच्छी अवस्थाके कर्त्तव्य और होते हैं, विपत्तिकी दशाके कर्त्तव्य और। रातके कर्त्तव्य और हैं, दिनके और। ऋतु ऋतु और अवस्था अवस्थाके कर्त्तव्योंमें भेद है। इनकी जानकारी यथार्थ रीतिसे कैसे की जाय ? कर्त्तव्यपथ किसका कौन है, कैसे देखा जाय ? मीमांसाने इसका उत्तर यही दिया है कि वेद ऋषि आदि ही इसके निर्णायक हैं। वेद ईश्वरप्रणीत, धर्म्मशास्त्र ऋषिप्रणीत, इन्हीं दोनों नेत्रोंसे धर्म्मानुकूल कर्त्तव्यपथ देखना चाहिये।

कर्म्ममीमांसा धर्म्मानुकूल कर्म्मकी जांच किसी जाति-विशेषके लिये वा देश-विशेषके लिये नहीं करती। उसका लक्ष्य तो हमारे समस्त शास्त्रोंकी तरह प्राणिमात्रका हितसाधन है। तो भी हमारे वेद-शास्त्रका प्रमाण मानकर भारतसे बाहर न किसीने ज्ञात इतिहासमें आचरण किया है और न हमारे शास्त्र ही भारतके बाहरके लोगोंको, संस्कार-भ्रष्ट होनेके कारण, शास्त्रानुकूल धर्म्माचरणके अधिकारी मानते हैं। यह तो विशेषतः वेद-विहित यज्ञानुष्ठान आदि कर्म्मोंकी बात हुई। यदि साधारण धर्म्मकी बात कही जाय तो सत्य, अहिंसा आदिका पालन भारतेतर देशके लोगोंने भी किया है, और करते हैं। परन्तु उनके इस सदाचरणके प्रेरक

हमारे वेदशास्त्र नहीं हैं। उनके लिये धर्म्मानुकूल वह सभी काम हैं जिनका करना उनके शास्त्र या किसी सम्बन्ध स्थिति या गुण-विशेषके विचारसे उचित और आवश्यक समझा जाता है। कर्त्तव्याकर्त्तव्य या धर्म्माधर्म्मके निर्णयमें भगवान् मनुकी यह कसौटी अधिक व्यापक है—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्म्मस्य लक्षणम्॥ (मनु २।१२)

श्रुति, स्मृति, सदाचार, और अपने आत्माको सन्तोष यही साक्षात् धर्म्मके चार लक्षण [पहचान, कसौटी] कहे गये हैं। भारतके भीतर तो इन चारोंको धर्म्मानुकूल मार्गका निदर्शक मानते आये हैं। भारतके बाहर भी प्रायः यही चार धर्म्माचरणके प्रमाण रहे हैं, यद्यपि मुसल्मानोंके लिये श्रुतिस्मृतिकी जगह "कुरानो-हदीस" और ईसाइयोंके लिये "तौरेतो-इंजील" प्रमाण रहे हैं। शेष दोको, सदाचार और आत्मतुष्टिको, तो सारा सभ्य संसार प्रमाण मानता है, परन्तु तत्तद्देशोंके अनुकूल। भारतीय वायुमण्डलमें भी जहां श्रुति-स्मृतिसे विरोध रहा है जैसे चार्वाक सरीखे नास्तिक आचार्य्योंकी प्रवृत्तिसे प्रकट है, वहां जैनोंकी तरह या तो अपनी अपनी श्रुति और स्मृतिका प्रमाण ग्रहण होता रहा, तत्तत्सम्प्रदा-योंके ग्रंथोंका आदेश माना जाता रहा, अथवा केवल सदाचार और आत्मतुष्टि ही प्रमाण रहे। कुछ हो भारतके श्रुतिस्मृति-विरोधी भी केवल दार्शनिक रीतिसे विरोध करते आये। परन्तु जहाँ समाजके आचरण और संगठनका सम्बन्ध है, वहाँ तो भारतीय प्रसिद्ध श्रुतिस्मृतिका ही प्रमाण आजतक माना गया है। वर्णाश्रमधर्म्म समाजको संगठित रखनेवाली संस्था है, जिसका प्रतिपादन बहुत स्पष्ट और विशिष्ट रूपसे स्मृतियोंमें हुआ है। नास्तिक मतोंका या तो कभी इतना प्रचार न हुआ कि समाजपर उसका कोई गंभीर प्रभाव पड़े या बौद्धमतके प्रचारके समय "कर्म्मणावर्णः"के आधारपर जो सुधार हुए उनसे समाजका जो उथलपुथल हुआ वह पीछेसे फिर स्मृतियोंके आधारपर काल पाकर एवं सुधारकोंके प्रयत्नसे यथास्थित हो गया। जान पड़ता है कि स्मृतियोंका वर्णाश्रमधर्म्म सारे संसारके लिये आदर्श है जिसका पूर्ण पालन रामराज्य सरीखे आदर्श युगोंमें ही संभव पाया गया है, क्योंकि नहुषके प्रश्नके उत्तरमें युधिष्ठिरका यह कहना कि—

जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते
सङ्करात्सर्व वर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः

(वनपर्व्व, अ० १८०)

"हे महासर्प! मुख्य जाति तो आजकल मनुष्यत्व है क्योंकि सब वर्णोंका संकर हो जानेसे भिन्न भिन्न जातियोंकी परीक्षा अत्यन्त कठिन है" प्रकट करता है कि महाभारतकालमें चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके होते भी आदर्श अवस्था न थी। इसीलिये धर्म्मराजने शीलको ही कसौटी ठहरायी। इतनेपर भी वर्णाश्रमधर्म्मकी वैज्ञानिक पद्धतिका आदर्श आज भी जितना जिस रूपसे भारतवर्षमें है उतना उस रूपसे संसारमें कहीं नहीं है। समाजका ऐसा कठिन, दुर्निवार और जमा हुआ रूप है कि अनेक आधुनिक सुधारकों और सुधारक समाजोंके सतत प्रयत्नसे भी उसपर बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ा हुआ दीखता है। वर्णाश्रमधर्म्म भारतकी विशेषता है और इसलिये हिन्दू-धर्म्मका यह चाहे जैसे रूपमें हो, एक विशेष अंग है।

धर्म्म और संस्कार

स्मृतियोंमें धर्मोपदेशका साधारण क्रम यह है कि पहले मनुष्यका साधारण धर्म वर्णन किया गया है जिसे जगत्के सब मनुष्योंको निर्विवाद रूपसे मानना उचित है और जिसके पालनमें ही मनुष्यसमाजकी रक्षा है। यह तो वह धर्म है जो आस्तिक और नास्तिक दोनों पक्षोंको मान्य हैं। फिर समाजकी स्थितिके लिये जीवनके विविध व्यापारों और अवस्थाओंके अनुसार वर्णों और आश्रमोंके कर्त्तव्योंके विभाग किए। यह विभाग ही भारत और हिन्दू धर्मकी विशेषता है। फिर इस विभागमें भी प्रत्येक वर्णके भिन्न भिन्न आश्रमोंमें प्रवेश करने और वने रहनेके विधि-और-निषेधवाले नियम हैं। इन नियमोंका आरंभ गर्भाधान संस्कारसे होता है और अन्त अन्त्येष्टि तथा श्राद्धादिसे माना जाता है। थोड़े बहुत फेरफारके साथ सारे भारतमें इन संस्कारोंके नियम निबाहे जाते हैं। इन सबमें जन्म, विवाह और अन्त्येष्टि आदि कई तो ऐसे संस्कार हैं जिनके नियम संसार भरमें किसी न किसी भिन्न, शास्त्रीय वा अशास्त्रीय, रूपमें माने ही जाते हैं। परन्तु भारतमें इन संस्कारोंके आधार, आस्तिक नास्तिक सबके लिये, कल्पसूत्र और स्मृतियाँ ही हैं। साथ ही हमने जो परिभाषा पहले अध्यायमें हिन्दू शब्दकी दी है, उसके अन्तर्गत सभी मनुष्य इन संस्कारोंको किसी न किसी रूपमें मानते ही आये हैं। परलोक और जन्मान्तरके न-माननेवाले हिन्दुओंने स्वास्थ्य और सौन्दर्य आदिकी दृष्टिसे संस्कारोंको माना। परलोक और जन्मान्तर माननेवालोंने यह समझा कि गर्भाधानसे उत्तम उपयुक्त जीवात्माका गर्भमें प्रवेश होता है, फिर काल पाकर शेष चौदहों संस्कारोंसे सुन्दर सुडौल स्वस्थ शरीर और पवित्र आत्माके जन्म, और वृद्धि और समय-समयपरकी शुद्धि और योग-क्षेमके साथ उचित दीर्घ स्वस्थ-सुखी जीवन बिताकर अन्तमें जीर्ण शरीरका समयोचित त्याग होता है। त्यागके अनन्तर भी अन्त्येष्टि और श्राद्धादि कर्मसे जीवात्मा अच्छी दशाओंमें रहकर और संस्कारजनित विकास-के सुफलके साथ साथ समय पाकर फिर अच्छी परिस्थितिमें जन्म लेता है। संयमी जीवन संस्कारोंको सम्पन्न करता है, और संस्कारका फल होता है शरीर और जीवात्माका उत्तरोत्तर विकास। धर्म पहले सन्मार्गका उपदेश है, उन्नतिके लिये नियम है, संयम उस उपदेश वा नियमका पालन है, संस्कार उन संयमोंका सामूहिक फल है और किसी विशेष देश काल और निमित्तमें विशेष प्रकारकी उन्नत अवस्थामें प्रवेश करनेका द्वार है, और सब संस्कारोंका अन्तिम कार्य विकास है। "संयम–संस्कार–विकास" वा "संयम-संस्कार-अभ्युदय·निश्रेयस" यह धर्मानुकूल कर्त्तव्यका क्रियात्मक रूप है। यह सभी मिलकर "संस्कृति"का इतिहास बनाते हैं। धर्म यदि आत्म और अनात्मकी विधायक वृत्ति है, तो संस्कृति उसका क्रियात्मक रूप है, धर्मानुकूल आचरणका फल है, धर्मजनित विकास है—

"धर्म्मेण गमनमूर्ध्वम्, गमनमधस्तात् भवत्यधर्म्मेण।"

धर्म्म आत्म और अनात्मका, जीवात्मा और शरीरका विधायक है, संस्कार हर जीवात्मा और हर शरीरका विकास करनेवाला है। धर्म्म व्यक्तिकी तरह समाजका भी विधायक है,—धर्म्मो धारयति प्रजाः—, और संस्कार समाजका विकास करनेवाला है, उसे ऊँचे उठानेवाला है। दोष, पाप, दुष्कृत अधर्म्म हैं, इन्हें दूर करनेका साधन संस्कार है। अज्ञान अधर्म्म है, इसे दूर करनेवाले शिक्षादि संस्कार हैं। भारतमें धर्म्म और संस्कृतिका

अटूट संबन्ध है। इस रूपमें धर्म्म और संस्कृतिका संबन्ध चीन, बर्म्मा आदिके बौद्धोंमें नहीं है। मुसलमान ईसाई आदिमें नहीं है। सिक्खोंमें, जैनोंमें, भारतीय बौद्धोंमें, उन ब्रह्म समाजियोंमें जो विदेशी नहीं हो गये हैं, उन आगाखानियोंमें जो हिन्दू समाजसे बहिष्कृत नहीं हुए हैं, उन कबीर पंथियों, नानकशाहियों और राधास्वामियोंमें जो श्रुतिस्मृति नहीं मानते, यह संस्कृति विद्यमान है। यही धर्म्म हिन्दूधर्म्म है, जो हिन्दू व्यक्ति और हिन्दू समाजका विधायक है और यही संस्कृति हिन्दू संस्कृति है, जो हिन्दू व्यक्ति और हिन्दू समाजका उन्नायक है। यह हिन्दू धर्म्म, यह हिन्दू संस्कृति उस अत्यन्त अतीत कालमें उत्पन्न हुई थी जब अन्य धर्म्मों और संस्कृतियोंका गर्भाधान नहीं हुआ था, जब कल्पनाने उनका सुदूर स्वप्न भी नहीं देखा था। इनका जिस समय पूर्ण विकास हो चुका था, उस समय उन अन्य धर्म्मों और संस्कृतियोंका, जो आज संसारमें प्राचीन होकर अतीत हो गयी हैं, अरुणोदय हो रहा था। जब उनका नाश हो गया तब इसका ह्रास प्रायः आरंभ हुआ और इसके ह्रासके आरंभके बहुत पीछे आजकलके वर्त्तमान विदेशी धर्म्मों और संस्कृतियोंका उदय हुआ है। आज ह्रासोन्मुख होते हुए भी हमारा धर्म्म और हमारी संस्कृति सर्वथा नष्ट नहीं हुई है। उसकी थोड़ी बहुत रक्षा हुई है। यही बात है कि हिन्दू जाति अभीतक इतने परिवर्त्तन होते हुए भी अपनी सत्ता बनाये हुए है। हिन्दूधर्म्म अभी बना हुआ है।

"धर्म्मो रक्षति रक्षितः"

तीसरा अध्याय

परम्परा और साहित्य

सब राष्ट्रोंका जन्म और पालन-पोषण अपनी-अपनी परम्परामें होता है। सभी प्राचीन राष्ट्रोंमें सृष्टिकी कथा अपनी-अपनी परम्पराके अनुकूल है। प्रत्युत यों कहना चाहिये कि प्रत्येक प्राचीन राष्ट्रकी परम्पराका आरंभ ही सृष्टिकी कथासे होता है। धर्म्मानुकूल आचरणके लिये, सदाचारके लिये, प्रसिद्ध पूर्वजोंका जीवनचरित सभी राष्ट्रोंमें प्रमाण माना जाता है। अंग्रेज जातिकी यह विशेषता नहीं हो सकती, क्योंकि उनकी प्राचीन परंपरा नष्ट हो चुकी है। उन्होंने ईसाई धर्म्म पीछेसे ग्रहण किया है। उनके संस्कार भी अपने प्राचीन नहीं हैं। मुसलमान कहलानेवाली भिन्न भिन्न जातियां हैं जिनकी अपनी प्राचीन परम्परा प्रायः धर्म्म-परिवर्तनके कारण नष्ट हो गयी है। बौद्ध चीन और बौद्ध जापानके धर्म्म-परिवर्तनसे भी उनकी प्राचीन परंपरा नष्ट नहीं हुई। जिनकी परम्परा हालकी है, (जैसे अमेरिका, युरोप, आस्ट्रेलिया आदि,) उनके पास इतिहासको छोड़ और कुछ नहीं है, जिसमें सत्यकी मात्रा कम हो या अधिक, परन्तु आदिसे अन्ततक सत्य होना भी आवश्यक नहीं है। प्राचीन राष्ट्रोंको जैसे अपनी प्राचीन परम्परा और तत्परिचायक पुराणेतिहासोंका गर्व है उसी तरह नये राष्ट्रोंको अपने कलके इतिहासका उससे भी अधिक अभिमान है। वह अपने इतिहासको सच्चा और हमारे पुराणेतिहासोंको तिरस्करणीय मानते हैं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि परम्परा बननेके लिये उनकी पर्याप्त आयु अभी नहीं बीती है।

भारतकी परम्परा इतनी प्राचीन बतायी जाती है कि यदि उस कालसे लेकर आज तकका इतिहास वर्त्तमान होता और अत्यन्त संक्षेपसे लिखा जाता और सौ सौ बरसके लिये केवल एक एक पृष्ठ लिखा जाता तो एक करोड़ ९६ लाख ८६ हजार ४३१ पृष्ठ होते और यदि एक एक हजार पृष्ठोंकी एक एक जिल्द होती तो १९ हजार ६०८ मोटी मोटी जिल्दें होतीं। यह तो संक्षिप्त इतिहास होता। बहुत जल्दी दृष्टिमात्रसे २५ पंक्तियोंके पढ़ डालनेमें १ मिनिट का लगना और ५ घंटे रोज लगातार पढ़ना मान लें और यह मान लें कि प्रत्येक पृष्ठमें २५ ही पंक्तियां हैं, और यह भी मान लें कि महीनेमें २५ दिन बराबर पुस्तकें पढ़ी जायँगी तो दो सौ सत्रह बरस लगेंगे। और अगर हम यह भी मान लें कि सौ सौ बरसका इतिहास एक एक पृष्ठमें नहीं बल्कि एक एक पंक्तिमें लिखा जाय, अर्थात् एक एक पृष्ठमें ढाई ढाई हजार बरसोंका इतिहास संक्षिप्त कर दिया जाय, तो एक एक हजार पृष्ठोंकी ७८४ जिल्दें होती हैं, जिनको उतनी ही उतावलीसे लगातार पढ़नेमें आठ बरससे ऊपर लगेंगे। इतनी लम्बी परम्पराका उस तरहका इतिहास होना ही असंभव है जिस तरहका इतिहास इन परम्परा-हीन राष्ट्रोंकी कल्पना है, और हो भी तो इस युग और संसारके लिये नितान्त निरर्थक है।

जिस इतिहाससे राष्ट्रको लाभ न हो, वह राष्ट्रके लिये निरर्थक है। घटनाएं तो प्रकृतिमें एक ही प्रकारकी बारंबार घटती हैं, इतिहास अपनेको बारंबार दोहराता है, अतः

जो परिणाम एक प्रकारकी एक घटनासे निकलता है वही दूसरीसे भी निकलेगा। जो परिणाम अनेक घटनाओंसे निकलता है और अनुभव-सिद्ध हो जाता है, वही नीति और आचारव्यवहारका सूत्र या नियम ठहर जाता है। सब घटनाओंको वारंवार दोहरानेके बदले एक भारी महत्वकी घटनाको देकर एक सूत्र निर्धारित कर देना पर्याप्त है। श्रुति स्मृतिमें इस प्रकारके असंख्य सूत्र हैं। पुराणों इतिहासों और तंत्रोंमें वही सूत्र कथाके साथ समझाये गए हैं। उदाहरणका प्राचुर्य्य है। साथ ही सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, और वंशानुचरितोंके द्वारा प्राचीन परम्पराका संकलन है। यह किसी देश या किसी राज्यका इतिहास नहीं है। सारी सृष्टिका इतिहास है और इतने दीर्घ कालके इतिहासका निचोड़ है जिसमें असंख्य राष्ट्रोंका जन्म, यौवन, प्रौढ़ता, ह्रास और नाश होता रहा है, इतने विस्तृत देशके इतिहासका सार है कि सैकड़ों वार जलकी जगह स्थल, स्थलकी जगह जल बस्तीकी जगह जंगल, जंगलकी जगह बस्ती, और सामयिक सृष्टि और सामयिक प्रलय होते रहे। देशके देश जलमें विलीन हो गए और समुद्र सूखकर महाद्वीप हो गये। इतने दीर्घ कालमें, इतने विस्तृत देशमें इस सृष्टिके भीतर कितने प्रकारके प्राणी, कितनी तरहकी वस्तुएँ हुईं और नष्ट हुईं, उनका संक्षिप्त वर्णन है। जितने प्रकारकी कलाओंका आरंभ और विकास हुआ, परम्परामें वह भी सम्मिलित हैं। ज्ञान-विज्ञानके अथाह समुद्रको इस दीर्घ कालके भीतर कितने ही देवासुरोंने मथा, कितने ही रत्न निकाले, वह सब परम्पराके अन्तर्गत हैं। वर्त्तमान साहित्य कितना ही बृहत् दीखे, परन्तु इतने दीर्घ कालका अनुमान करनेसे तो साहित्यकी इतनी भारी मात्रा भी नगण्य जँचती है। असंख्य प्राणियोंका, अगणित वस्तुओंका, अपरिमित कलाओंका, अगाध ज्ञान-विज्ञानका, अनन्त रत्नोंका, लोप हो गया है। काल पाकर मनुष्यकी असमर्थतासे ही वह अधिक लुप्त हो गये, विस्मृतिके अथाह सागरमें विलीन हो गये, असमर्थताके तमोमय गर्त्तमें पट गये। इस छापेके भयंकर युगमें भी जिसने जंगलके जंगल काटकर पुस्तकालयोंमें भर दिये हैं और बराबर भरता जाता है, क्या यह संभव है कि कई कई लाख और कई कई करोड़ श्लोकोंके ग्रन्थोंको छापकर प्रकाशित किया जाय? वेदोंके, महाभारतके, पुराणोंके कितने संस्करण निकल निकलकर पुस्तकालयोंको शोभित कर रहे हैं? जो आज छपे ही विद्यमान हैं उन शास्त्रोंके अवलोकनके लिये किसको कितना अवकाश है? यदि उनके मूल वा अनुवाद रूपमें पढ़नेवालोंकी गिनती की जाय तो जहाँ भारतमें पढ़े लिखे हज़ारमें उनहत्तर हैं, शायद यह हज़ारमें पूरे एक भी न निकलें।

हिन्दू परम्परामें कई विशेषताएँ हैं जो अन्य प्राचीन परम्पराओंसे विलकुल भिन्न हैं।

हिन्दू परम्पराकी सृष्टिका वर्णन सबसे निराला है। फिर मन्वन्तर और राजवंशोंका वर्णन जो कुछ है वह भारतवर्ष या आर्य्यावर्त्तके भीतरका है। चर्चा विविध द्वीपों और देशोंकी है, सही, परन्तु राजवंशोंका जहाँ कहीं वर्णन है उसकी भारतीय सीमा निश्चित है। महाभारतके महासमरमें चीन, तुर्किस्तान आदि सभी पासके देशोंसे कुमक आयी दीखती है, पाण्डवों और कौरवोंकी दिग्विजयमें वर्त्तमान भारतके बाहरके देश भी सम्मिलित हैं, परन्तु लीलाक्षेत्र भारतकी पुण्य-भूमि ही है। परम्परा भारतकी ही है और भरतखण्डमें ही मर्य्यादित है। श्रुतिमें भी ऐतिहासिक अंश आर्य्यावर्त्तमें ही मर्य्यादित है। भरतखण्डकी सर्वतो-

भद्र पवित्रता परम्परा है। पहाड़, जंगल, नदी-नाले, पेड़, पल्लव, ग्राम, नगर, मैदान यहाँ-तक कि टीले और भिटे भी पवित्र तीर्थ हैं। द्वारकासे लेकर कामरूप-कामाक्षा तक, बदरी-केदारसे लेकर कन्या-कुमारी या धनुष्कोटितक, वल्कि सागरतक,—आदि सीमा और अन्त सीमा,—तीर्थ और देवस्थान हैं। यहांके जलचर, स्थलचर, गगन-चर सबमें पूज्य और पवित्र मौजूद हैं। और लोग अपने देशसे प्रेम करते हैं, हिन्दू अपनी मातृ-भूमिको पूजता है, चाहे वह मूर्खतासे ऐसा करता हो, अथवा समझ बूझकर, परन्तु वह भक्तिभावसे अपने देशके एक एक अङ्गकी वास्तविक अर्चा करता है। विष्णुपुराणमें सचही कहा है—

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने
यतोहि कर्म्मभूरेषा ततोऽन्या भोगभूमयः
कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं* पुण्यसञ्चयात्।
गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ये भारतभूमि भागे
स्वर्गापवर्गस्य च हेतुभूते
भवन्तिभूयः पुरुषाः सुरत्वात्।

निदान, देशके तीर्थ भी परम्परागत हैं।

इसी प्रकार भारतमें सात बार नव त्योहारकी सच्ची कहावत प्रसिद्ध है। यहाँकी तिथि, दिन, मुहूर्त्त भी पवित्र हैं। विशेष अवसरोंपर सनातनसे विशेष पवित्र काम होते आये हैं। यह भी प्राचीन परम्परा है। इनके लिये ज्योतिर्विज्ञानका बड़ा अच्छा परिशीलन हमारे देशमें होता आया है। दृग्गणनासे पड़नेवाले अन्तरोंके लिये वीज-संस्कार भी हिन्दुओंकी प्राचीन परम्परा है।

अनेक कलाओं और विद्याओंका लोप भी हो जानेपर उनकी यत्र तत्र चर्चा है जिससे परम्परा नष्ट होनेपर भी उनके अस्तित्वका पता लगता है। धनुर्वेद इसका अच्छा उदाहरण है। कभी कभी परम्परा नष्ट होनेपर उसका पुनरारंभ भी हो जाता है।

एवं परम्परा प्राप्तं इमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥

भगवान् कृष्णने राजयोगका अर्जुनको उपदेश करके भागवत-धर्मद्वारा पुनरारंभ किया। इसका तात्पर्य यह समझमें आता है कि गीता-धर्म सृष्टिकी आदिसे चला आ रहा था। बीचमें उसका लोप हो जानेपर श्रीकृष्ण द्वारा उसका पुनरारंभ हुआ। कौन जाने किस प्रकार आज भी किसी प्राचीन परम्पराकी लुप्त विद्याका पुनरारंभ हो रहा हो।

परम्परासे प्राप्त सम्पूर्ण धन हिन्दू राष्ट्रके साहित्यमें निहित है। ज्ञान, विज्ञान, सदाचार, कलाएं, जो कुछ साहित्यके विविध रूपोंमें विद्यमान हैं उनके लिये प्राचीन विद्वान्

---

* गोरी जातिके लोग अपनेको ही आदमी कहते हैं। रगीन मनुष्यको प्राय पशु समझते हैं। हिन्दू सस्कृतिके लोग भी, ऐसा प्रतीत होता है कि, "मनुष्य" भारतमें ही उत्पन्न होनेवालेको कहते थे। वाहरके लोगोंको प्राय. किन्नर, गन्धर्व, नाग, असुर, राक्षस, देवता आदि कहते थे।

तथा ऋषि-मुनि हमारी कृतज्ञताके पात्र हैं। श्रुति वह पवित्र ज्ञान है जो ब्रह्मा और महर्षि-गण प्राचीन परम्परासे सुनते आए। सस्वर शुद्ध उच्चारण सुननेका ही विषय है। सस्वर लेखनसे भी वही पढ़ सकता है जिसने ठीक ठीक उच्चारण सुना और सीखा है। श्रुतिका उच्चारण प्रधान है, उच्चारणकी भूलसे भयानक उलटा फल हुआ है,* इसी प्रधानताके कारण वैदिक साहित्य श्रुत-परम्परा वा श्रुति है। नीति आचार और व्यवहारकी परम्परा लोग स्मरण द्वारा सुरक्षित रखते आये,—क्योंकि यहाँ स्वरका उच्चारण स्मरण नहीं करना है,—उन्हींका संग्रह स्मृति है। वस्तु-अवस्तु, आत्म-अनात्म, प्रकृति-सृष्टि आदिके सम्बन्धमें परम्परासे अनेक भाँतिके विवेचन चले आये हैं। अन्तर्दृष्टिद्वारा इनके बोधका नाम दर्शन है। इनका भी सूत्रोंके रूपमें ऋषियोंने संकलन किया है। वेदों और उपवेदोंके अध्ययनके लिये अंग और उपांग आवश्यक हैं। यह भी परम्परागत हैं। विना इनके वेदोंका अनुशीलन असंभव है। इनका भी संकलन हुआ। इसी प्रकार चौंसठ महाविद्याओं वा कलाओंकी परम्पराकी रक्षाके लिये अनेक ग्रंथोंकी रचना करके ऋषियों और विद्वानोंने भरसक उन्हें भी सुलभ कर दिया है। यह प्राचीन परम्पराकी विद्याएं हैं। इन सबका व्यक्तीकरण देववाणी (अ-मनुष्य वाणी) वा संस्कृतमें हुआ है। परन्तु परम्परा किसी विशेष भाषा वा उसके विशेष रूपमें आबद्ध नहीं है। भगवान् बुद्धने और जैन आचार्योंने पाली मागधी आदि प्राकृतोंका आश्रय लिया और प्राकृत भाषाओंकी परम्परा आजतक टूटी भी नहीं है। हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती, उड़िया, तैलंगी, द्रविड, कन्नड़, मलयालम, पंजाबी, सिंधी, पश्तो, आसामी आदि आज भी प्रचलित प्राकृत भाषाएं हैं, जिनमें साधु संत महात्मा सुधारकोंने अपनी परम्परा स्थिर रखी है। सभी परम्परागत शिक्षाएं अधिकांश लेखबद्ध हैं। वह सबकी सब हिन्दू, परम्परामें हैं और हिन्दू धर्म और संस्कृतिके पोषक हैं।

आधुनिक इतिहास ग्रंथोंमें यहांके आर्य लोगोंके सम्बन्धमें कहा गया है कि यह लोग कहीं किसी विदेशसे आकर भारतमें बस गये और यहाँके आदि निवासियोंको जंगलमें खदेड़ दिया। इस तथाकथित आर्य-आक्रमणका काल खीष्टाब्दसे तीन हजारसे लेकर छः सात हजार वर्ष पहलेतक बतलाया जाता है और हिन्दू परम्पराका आरंभ दस हजार वरससे अधिक प्राचीन नहीं समझा जाता। परन्तु जिस पारंपरिक साहित्यकी हम ऊपर चर्चा कर आये हैं,—और वह थोड़ा नहीं है,—उसमें कहीं किसी आख्यानसे, किसी चर्चासे, किसी वाक्यसे यह नहीं सिद्ध होता कि आर्य्यजाति कहीं बाहरसे भारतवर्षके भीतर आयी और न कहींसे यह माननेकी आवश्यकता पड़ती है कि इस भूखंडमें आर्य्यजाति कभी नहीं थी और अनार्य्य जातियोंका राज्य था। हिन्दू-परम्परा अपना आरंभ सृष्टिकालसे ही मानती है। उस कालके आगे दस हजार बरसोंकी कोई गिनती नहीं है। किसी युगकी ऐसी कोई कथा देखने या सुननेमें नहीं आती जिससे यह सिद्ध हो कि किसी कालमें आर्य्यजाति किसी भारतेतर देशमें रहती थी। आर्य्योंकी प्राचीन देश और

---

* एक शब्द स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

कालकी परम्पराके सम्बन्धमें पच्छाहीं ऐतिहासिकोंका जैसा विचार है उसके पोषणके लिये हमारे देखनेमें कोई आधार नहीं मिलता। इतनी हानि होती अवश्य दीखती है कि दूसरोंके विचारोंपर अवलम्ब रखनेवाले आजकालके शिक्षित लोग, जो अपनी परम्परासे नितान्त अनभिज्ञ हैं, उसी परम्पराके विरुद्ध विचार अपने मस्तिष्कमें पाल लेते हैं और उसकी यथार्थतापर विवेचना करनेका प्रयत्न कभी नहीं करते।

आगेके अध्यायोंमें हम हिन्दू साहित्यके सब अङ्गोंका क्रमशः संक्षेपसे दिग्दर्शन करनेका उद्योग करेंगे। वेद, उपवेद, वेदाङ्ग, स्मृति, दर्शन, इतिहास, पुराण, उपपुराण, तन्त्र, कलाग्रन्थ, नास्तिक साहित्य, प्राचीन और मध्यकालीन तथा आधुनिक सम्प्रदायके ग्रन्थ, मतमतान्तर की परम्परा, सबकी केवल इतनी चर्चा की जायगी कि इस ग्रन्थके पढ़नेवालेको हिन्दू-परम्परा और साहित्यका थोड़ा थोड़ा ज्ञान हो जाय और जिस आचार वा सदाचारको हमारे आचार्य्योंने प्रथम या मुख्य धर्म्म कहा है, जो समस्त साहित्यका एकमात्र ध्येय है, वह प्रत्येक पाठकका ध्येय हो जाय। इस पुस्तकको पूरा-पूरा पढ़ लेनेवाला वशिष्ठस्मृतिकी इस चेतावनीपर ध्यान रखकर चरित्रवान् बने—

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः
यद्यप्यधीताः सहषड्भिरङ्गैः
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति
नीडम् शकुन्ता इव जातपक्षाः

वेद-खण्ड
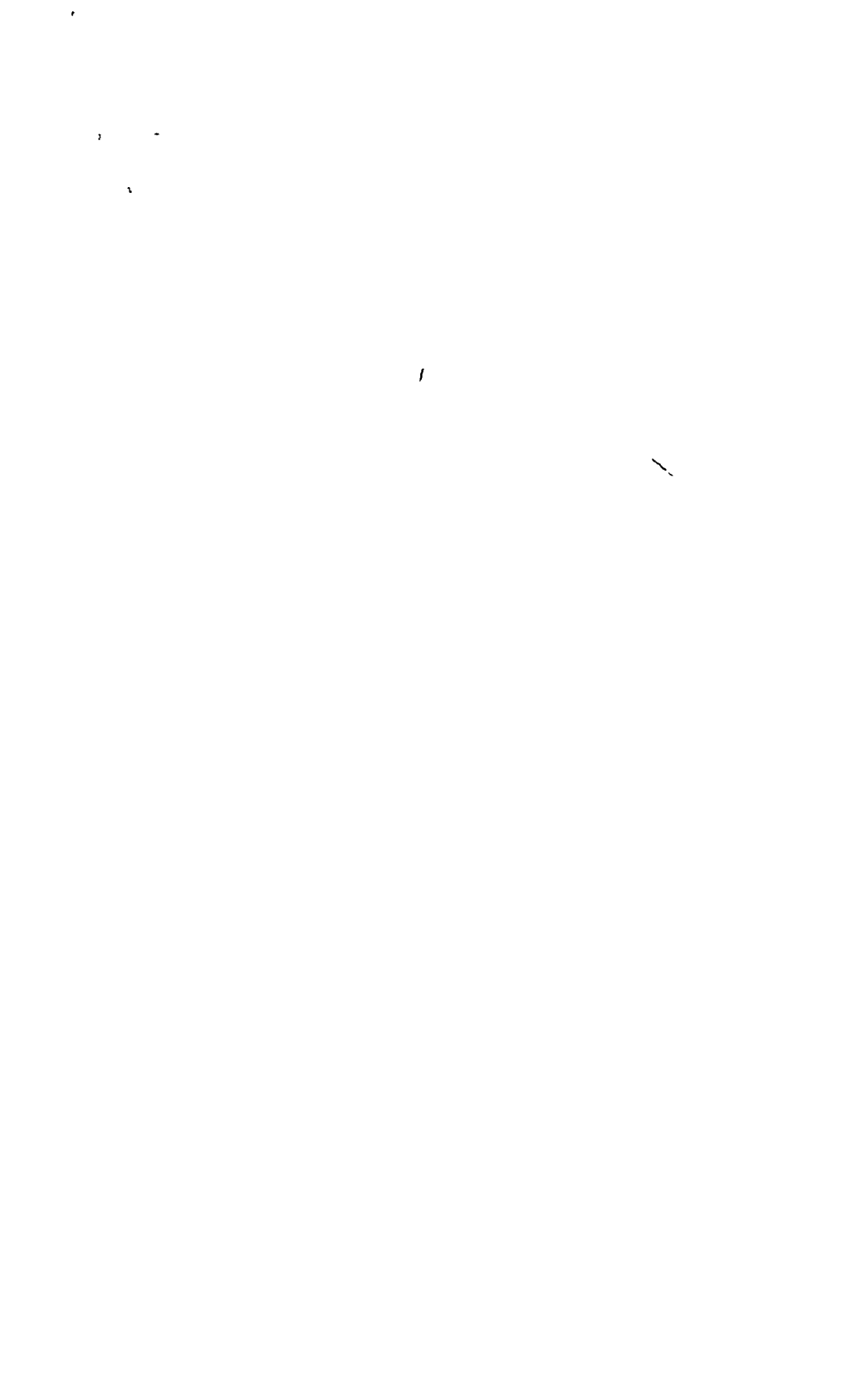
चौथा अध्याय

श्रुति

साधारण बोलचालमें श्रुति शब्दसे समस्त वैदिक साहित्यका ग्रहण होता है। इसके साथ विभेदवाचक स्मृति शब्दका प्रयोग होता है जिससे धर्म्मशास्त्रका बोध होता है। जहां लोक और वेद शब्द साथ आते हैं वहां प्रायः वेद शब्द सभी शास्त्रोंका बोधक होता है। श्रुति शब्द अपने यौगिकार्थसे वेद कहलानेवाले उन सब अंशोंका बोधक है जिनके उच्चारणमें उदात्त अनुदात्त और स्वरितके परम्परागत प्रयोग ऐसे निश्चित हैं कि विना गुरुमुखसे सुनकर सीखे उनका यथार्थ उच्चारण नहीं हो सकता। इस यौगिकार्थको ही प्रमाण माननेसे समस्त संहिताएं और तत्तत्सम्बन्धी ब्राह्मण और अनेक आरण्यक तथा उपनिषदें सभी श्रुति नामसे अभिधेय हो जाते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वतीने संहिताभाग वा मन्त्रभागको ही वेद माना है जिसे ही वह ईश्वरकृत ठहराते हैं। उनसे पहलेके सायणादि भाष्यकार संहिता और ब्राह्मण दोनोंको अपौरुषेय और ईश्वरकृत मानते हैं। वेद शब्दके पर्य्याय श्रुति, आम्नाय, छन्दस्, ब्रह्म, निगम, और प्रवचन हैं। पच्छाहीं विद्वान् मन्त्र, ब्राह्मण और आरण्यक तीनोंको भिन्न भिन्न ऋषियोंकी रचनाओंके संग्रह मानते हैं।

वेदोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें ऋग्वेदके दसवें मण्डलके ९०वें सूक्तमें (वा यजु० अ० ३१में) सातवां मन्त्र (तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तमादजायत।) और अथर्ववेदके दसवें कांडमें २३वें प्रपाठकके चौथे अनुवाक्का दूसरा मन्त्र (यस्मादृचो अपात क्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमानि अथर्वांगिरसोमुखम्। स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेवसः ॥२॥),—इस प्रकार ऋक्, यजुः और अथर्वन् यह तीन वेद,—तो स्पष्ट कहते हैं कि ऋक्, यजुः और साम तथा अथर्वन् यह चारों वेद परम पुरुष यज्ञ-भगवान्से उत्पन्न हुए हैं। चारों वेदोंकी उत्पत्ति इस तरह सृष्टिकी उत्पत्तिके साथ हुई क्योंकि पूर्वोक्त पुरुषसूक्तका मन्त्र सृष्टिकी उत्पत्तिके प्रकरणका है। हमारे ज्यौतिषियोंकी परम्परासे सर्गारम्भसे लेकर विक्रमी संवत्के सौर वर्ष १९९२की समाप्तिके दिनतक एक अरब ९५ करोड़ ५८ लाख ८५ हज़ार १७ सौर वर्ष और ५६ दिन हुए। यह अठारहवां वर्ष विक्रमी १९९२के बादसे चल रहा है।

पच्छाँहके विद्वान् सृष्टिके आरम्भसे वेदोंकी उत्पत्ति नहीं मानते। उनकी अटकल प्रभु ईसासे कई हज़ार बरसों पहलेसे आगे जानेमें अशक्य रहती है। पच्छाँहके विज्ञानी तो अब सृष्टिको अरबों बरस पुरानी माननेके कारणोंका अनुसंधान कर चुके हैं, परन्तु मानव सृष्टि कुछ लाख बरसोंसे अधिक पूर्वकी नहीं मानते। भारतके प्राच्य शैलीके विद्वान् तो एक मतसे इसे सतयुगके आरम्भसे ही मानते हैं। जो हो, वेदोंके अत्यन्त प्राचीन होनेमें कोई पक्ष लेशमात्र सन्देह नहीं रखता, समयका अनुमान चाहे कुछ भी करे।

अरबों बरसकी परम्परासे लेकर सात आठ हज़ार बरसकी परम्परातक वेदोंके मन्त्रोंके सुने या देखे जाने अथवा रचे जानेका बहुतोंका अनुमान है। यह परम्परा कितनी विस्तीर्ण

है, इसका अनुमान करना कठिन है। जिन लिखी पोथियोंकी नक़ल होती आयी है अथवा छापेमें जिनके संस्करण एक एककी जगह कई कई हैं, उनमें दो चार सौ बरसमें ही लेख-प्रमादसे, छापेखानेके प्रेत-प्रमादसे, पाठकों और पठकोंके मतभेदसे, कितने-कितने परिवर्त्तन हो गये हैं। अभी कलकी सी चीज़ तुलसीदासजीके रामचरितमानसके ही असंख्य पाठान्तर और विविध प्रामाणिक बननेवाले संस्करण देखे जाते हैं, तो वेदोंके पाठान्तरों और संस्करणोंकी क्या गिनती की जा सकती है जो गुरुमुखसे सुनकर स्मरण कर लेनेपर निर्भर थे, जिनके लिये कई लाख नहीं तो निर्विवाद ही कई हजार बरसोंके अन्तर अवश्य पड़ते गये, जिनकी भाषाका समझना काल पाकर इतना कठिन हो गया कि मन्त्रोंके साथ उनके पदपाठके अक्षर अक्षर सीधे उलटे सब तरहसे रटकर सुरक्षित रखनेकी परम्परा बन गयी, मन्त्रोंकी टिप्पणी रूप ब्राह्मण भाग और आरण्यकोंतककी भाषा दुरूह हो गयी, निरुक्तोंकी रचनाएं हुईं, व्याकरणने बालकी खाल खींचनेवाले सामर्थ्यके होते भी अपनेको लाचार पाया। उनकी व्याख्या करनेको स्मृतिकी परम्पराकी सहायता ली जाने लगी। मीमांसकोंने बड़े जोर लगाये। जैमिनिने कर्मकाण्डका, जो बहुत काल बीतनेसे लुप्त सा हो रहा था, पुनरुद्धार करना चाहा। ज्ञान, विज्ञान, उपासना, सृष्टिकी कथा, वंश, मन्वन्तरादिके साथ पुराणोंने भी वेदोंकी ही व्याख्याकी चेष्टा की। मत्स्यपुराणमें सृष्टिके आरम्भमें वेदोत्पत्ति यों बतायी गयी है--

* तपश्चचार प्रथमं अमराणां पितामहः।
आविर्भूतास्ततो वेदाः साङ्गोपाङ्गपदक्रमाः॥
.... ।
अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तत्र विनिःसृताः॥

(मात्स्ये, अ० ३ श्लो० २-४)

अर्थात् ब्रह्माके (चारों) मुखोंसे (चारों) वेद निकले। परन्तु उसी पुराणमें १४४वें अध्यायमें द्वापरके अन्तका भविष्यवाद करते हुए यों लिखा है—

एकोवेदः चतुष्पादः संहृत्यतु पुनः पुनः।
संक्षेपादायुषश्चैक व्यस्यते द्वापरेष्विह ॥१०॥
वेदश्चैकश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु।
ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः ॥११॥
मन्त्रब्राह्मण विन्यासैः स्वरक्रमविपर्ययैः।
संहृत्यऋग्यजुस्साम्नां संहितास्तैर्महर्षिभिः ॥१२॥

---

* मनुस्मृतिमें यों कहा है—

कर्मात्मना च देवाना सोऽसृजत्प्राणिना प्रभु ।
साध्याना च गण सूक्ष्म यज्ञ चैव सनातनम् ॥
अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रय ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थ ऋग्यजु सामलक्षणम् ॥

इस प्रकार जो मतभेद दीखते हैं, उनका कारण कल्पभद हो सकता है। वेदोंका आविर्भाव भिन्न कल्पोंमें भिन्न रीतिसे हुआ।

सामान्याद्वैकृताश्चैवद्दष्टिभिन्नैःक्वचित्क्वचित् ।
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि भाष्यविद्यास्तथैव च ॥१३॥
अन्येतु प्रस्थितास्तान्वै केचित्तान्प्रत्यवस्थिताः ।
द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते भिन्नार्थैस्तैः स्वदर्शनैः ॥१४॥
एकमाध्वर्य्यवं पूर्व्वं आसीद्द्वैधन्तु तत्पुनः ।
सामान्य विपरीतार्थैः कृतं शास्त्राकुलन्त्विदम् ॥१५॥
तथैवाथर्वऋक्साम्नां विकल्पैश्चाप्य संक्षयैः ।
व्याकुलोद्वापरेष्वर्थः क्रियते भिन्नदर्शनैः ॥१६॥
द्वापरे संनिवृत्तेते वेदानश्यन्ति वै कलौ ।

मत्स्य भगवान्‌ने भविष्यकी कथा कही है, परन्तु उससे पता लगता है कि सतयुग और द्वापरके दीर्घकाल और अत्यन्त लम्बी परम्परामें, सभी चतुर्य्युगियोंमें, पहले तो भाँति भांतिकी भूलोंसे चारों वेद मिलकर एक आध्वर्य्यव अर्थात् यज्ञ-धर्म्म-विशिष्ट त्रेताके अनुकूल यजुर्वेद रह जाता है। [अ० १४२]। फिर वह भी बारम्बार परिवर्त्तित होता रहता है, जिसका कारण लोगोंकी अपात्रता तथा अस्वस्थ और अल्पायु जीवन है। द्वापरमें आकर उसके अनेक खण्ड और विविध शाखाएँ बन जाती हैं। ऋषियोंके वंशज दृष्टि, स्मृति आदिमें भूलें करते हैं। मन्त्रोंको अस्तव्यस्त करते हैं, ब्राह्मणों और कल्पसूत्रोंका भी क्रमभङ्ग हो जाता है, स्वर और क्रममें भेद पड़ जाता है। वेदोंके ऋषियोंको इसीलिये ऋक्, यजुस् और सामन् तीनोंको बारम्बार फिर फिरसे सङ्कलित करना पड़ता है। यजुर्वेद पहले एक ही रहता है। उसके दो पाठ (शुक्ल और कृष्ण) हो जाते हैं। इसी तरह द्वापरमें ही ऋक् यजुस् सामन्‌के अर्थोंका विपर्य्यय हो जाता है। कलियुगमें तो उनका नाश ही हो जाता है।

मत्स्यपुराणके अनुशीलनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदव्यासद्वारा वेदोंका पुनः सङ्कलन और विभाग, द्वापरके अन्तकी क्रिया है। और पहली क्रिया नहीं है। जान पड़ता है कि सतयुगके दीर्घ कालमें ही कई कई बार वेदोंका उद्धार हुआ है। पुराणोंके मत्स्यावतार-के अतिरिक्त महाभारतके शल्यपर्वमें कथा है कि एक बार जब अवर्षणके कारण ऋषि लोग देशसे बाहर बारह बरसतक रहकर वेदोंको भूल गये थे तो दधीचि और सरस्वतीके पुत्र सारस्वत ऋषिने भी अपनेसे कहीं अधिक बूढ़े ऋषियोंको फिरसे वेद पढ़ाया था। फिर दत्तात्रेयने भी वेदोंका उद्धरण किया था। दूर क्यों जाएँ, आजसे पाँच छः सौ बरस पहले सायणा-चार्य्य आदिका उद्योग भी वेदोद्धारका ही एक प्रकार था। और सायणके पीछे भी सब लोग वेदका नाममात्र जानते थे। दक्षिणमें घोखनेकी थोड़ी विधिके सिवा वास्तविक वेदाध्ययन प्रायः कहीं नहीं होता था। अतः आर्य्यसमाजके प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वतीने भी प्राय. वही काम किया जो द्वापरान्तमें वेदव्यासने किया था। वेदव्यासने जैसे वेदोंका अर्थ लगाया उनके सङ्कलित इतिहास-पुराणसे प्रकट है। स्वामीजीके काममें जैसे उनके सहायक विद्वानों-के हाथ थे उसी तरह वेदव्यासके काममें भी उनके शिष्योंने हाथ बटाया था।

पुरुषसूक्तमें सृष्टिका वर्णन है और सृष्टि हमारे साहित्यमें इस तरह कहीं भी हुई नहीं मानी गयी, कि ईश्वरने कहा और संसार अपने हज़ारों बरसका इतिहास लिये दिये इस

तरह प्रकट हो गया जैसे परदा उठनेपर नाटकमें कोई दृश्य प्रकट हो जाता है। हमारे यहांकी वैदिक या पौराणिक दोनोंही सृष्टि-कथाओंसे प्रकट है कि बहुत काल, लाखों बरस, लगे होंगे और सच पूछिये तो वह काम आज भी समाप्त नहीं हुआ है। इसी तरह कालानुसार ऋषियोंद्वारा वेदमन्त्रोंके प्रकट होनेमें सम्भवतः हजारों बरस लगे होंगे। अतः पच्छाहीं विद्वानोंके इतने अनुमानका तो अपने साहित्यसे समर्थन होता है।

ऊपर जिन मन्त्रोंका हम अवतरण दे आये हैं, उन सबमें ऋक्, यजुः, साम और अथर्वन् इसी क्रमसे चारों वेदोंका उल्लेख हुआ है। पच्छाहीं विद्वानोंके मतसे पहले ऋग्वेद का सङ्कलन हुआ, फिर यजुर्वेदका, फिर साम और अन्तमें अथर्ववेदका। परन्तु हमें ऐसी कोई बात देखनेमें नहीं आती जिससे एकके पीछे दूसरेकी उत्पत्ति प्रकट हो। प्रसङ्गसे चारों की उत्पत्ति साथ ही हुई जान पड़ती है। यदि एक हजार बरस विद्यमान संहिताओंमें पाये जानेवाले वेदमन्त्रोंके अवतरित या दृष्ट या श्रुत होनेमें लगे, तो वह चारोंकी सामग्री थी, जो प्राप्त होनेपर तत्तद् वेदोंमें सम्मिलित हो जाती थी। यह इस बातसे भी स्पष्ट होता है कि ऋग्वेदकी आधी ऋचाएं यजुर्वेदमें भी हैं। सामवेदमें ७५ ऋचाओंके सिवा सभी वही ऋचाएं हैं जो ऋग्वेदमें आयी हैं। अथर्ववेदमें पञ्चमांश ऋचायें वही हैं जो ऋग्वेदमें आ चुकी है। सम्भव है कि महर्षि वेदव्यासने ऐसा सङ्कलन कर दिया हो, अथवा सनातनसे इस तरहके परस्पर मिले-जुले मन्त्र चले आये हों। यजुर्वेदी कहते हैं कि एक यजुर्वेदसे ही तोड़-कर तीनों और वेद बने हैं, परन्तु सायणने ऋग्वेदभाष्यकी प्रस्तावनामें प्रमाणपूर्वक इस कथनकी निःसारता दिखा दी है। उसके सिवा मत्स्यपुराणके १४२, १४३ और १४४ अध्यायों-के पढ़नेसे इस भ्रमका मूल भी समझमें आ जाता है।

चौथे अध्यायका परिशिष्ट

वेदोंके सभी भाष्यकार इस एक बातमें सहमत हैं कि चारों वेदोंमें समुच्चय-रूपसे प्रधानतः तीन विषयोंका प्रतिपादन है।

१. कर्मकाण्ड—अर्थात् यज्ञ-कर्म जिससे कि याज्ञिकको या यजमानको इस लोकमें अभीष्ट फलकी प्राप्ति हो और मरनेपर यथेष्ट सुख मिले।

२. ज्ञानकाण्ड—अर्थात् ज्ञातृत्व जिससे कि इहलोक तथा परलोक तथा परमात्माके सम्बन्धमें वास्तविक तत्व तथा रहस्यकी बातें जानी जाती हैं, जिससे कि मनुष्यके स्वार्थ, परार्थ तथा परमार्थकी सिद्धि हो सकती है।

३. उपासनाकाण्ड—अर्थात् ईश्वर भजन जिससे कि मनुष्य ऐहिक तथा पारलौकिक और पारमार्थिक अभीष्टोंका साधन कर सकता है।

प्रत्येक वेद इन्हीं तीन काण्डोंमें विभक्त समझा जा सकता है, और चाहे जिस विषयके मन्त्र हों प्रायः सभी इन्हीं तीन प्रकारोंमेंसे किसी एक या दो, या तीनोंके अन्तर्गत समझे जा सकते हैं।

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। वेद-पाठकी एक पुरानी परम्परा चली आयी है कि ऋषि, छन्द, देवता और विनियोगके विना जाने वेदमन्त्रोंका पढ़ना या पढ़ाना पाप है।

किस मन्त्रको किस ऋषिने प्रगट किया, वह मन्त्र किस छन्दमें है, अर्थात् वह कैसे पढा जायगा, उस छन्दमें किस देवता विषयक वर्णन है और उस मन्त्रका प्रयोग किस काममें होता है, इन बातोंको बिना जाने जो मन्त्रोंको काममें लाते हैं वह "मन्त्र कण्टकी" कहलाते हैं। इस परम्पराके कारण प्रत्येक मन्त्रके यह ज्ञातव्य विषय लुप्त नहीं होने पाये और आजतक सुरक्षित हैं।

पांचवां अध्याय

ऋग्वेद

वेदोंके साधारण मान्य क्रममें भी ऋग्वेदका नाम सबसे पहिले आता है। इसके प्रधानतः दस विभाग हैं जो मण्डलके नामसे प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक मण्डलमें सूक्तोंका सङ्ग्रह है। पहलेमें १९१ सूक्त हैं। दूसरेमें ४३ सूक्त हैं। तीसरेमें ६२, चौथेमें ५८, पांचवेंमें ८७, छठेमें ७५, सातवेंमें १०४, आठवेंमें १०३, नवेंमें ११४, और दसवेंमें १९१।

इस प्रकार कुल संख्या १०२८ है। इनमेंसे ११ सूक्तोंपर जिन्हें 'बालखिल्य' कहते हैं, न सायणाचार्यका भाष्य है न शौनक ऋषिकी आर्षानुक्रमणीमें इनका उल्लेख पाया जाता है। प्रत्येक सूक्तमें किसी दिव्य ईश्वरीय विभूतिकी स्तुति है और उस स्तुतिके साथ साथ व्याजरूपसे सृष्टिके अनेक रहस्यों तथा तत्वोंका उद्घाटन है। यह मन्त्र पद्यमें हैं। छन्द सभी वैदिक हैं। संस्कृत तथा प्रचलित भाषाओंके छन्दोंसे बहुत कम मिलते हैं। अनुष्टुप् छन्द जैसे संस्कृतमें लिखे जाते हैं इन मन्त्रोंमें मिल जाते हैं। परन्तु इनके उदाहरण भी बहुत नहीं हैं। आधुनिक पिङ्गलमें चार चरणोंके छन्दोंका नियम व्यापक सा हो रहा है। परन्तु इन मन्त्रोंमें तीन तीन चरणोंके छन्दोंकी बहुतायत है। ऋग्वेदमें जिन छन्दोंका प्रयोग हुआ है उनके नाम भी प्रचलित पिङ्गलसे भिन्न हैं। ऋग्वेदमें जो छन्द आये हैं उनके नाम यह हैं—

अभिसारिणी, अनुष्टुप्के अनेक रूपान्तर, अष्टि, अस्तर-पंक्ति, अतिधृति, अतिजगति, अतिनिच्रृत, अत्यष्टि बृहति, चतुर्विंशतिक द्विपदी, धृति, द्विपदि विराज, एक पद त्रिष्टुभ्, एक पद विराज, गायत्री, जगति, ककुभ्, ककुभ्के अनेक प्रकार, कृति, मध्ये ज्योतिष्, महाबृहति महापद पंक्ति, महापंक्ति, शतोबृहति, महाशतोबृहति, नष्टरूपी, न्याङ्कुसारिणी, पदनिच्रृत, पद-पंक्ति, पंक्ति, पंक्त्युत्तर, पिपीलिका, मध्या, प्रगाथा, प्रस्तर-पंक्ति, प्रतिष्ठा, पुरस्ताद् बृहति, पुरौष्णी शतोबृहति, स्कन्धोग्रीवा, तनुशिरा, त्रिष्टुप् उपरिष्टद्बृहति, उपरिष्टद् ज्योतिः, ऊर्ध्व-बृहति, उरोबृहति, उषणिग्गर्भा, उषणिक्, वर्धमान, विपरीत, विराड् रूप, विराज, विराट्-पूर्व, विराट्स्थान, विष्टर बृहति, विष्टरपंक्ति और यवमध्या।

प्रत्येक सूक्त किसी विशेष देवता, या देवताओंकी स्तुतिमें लिखा गया है, और उसके द्रष्टा वा जिनके द्वारा वह सूक्त प्रगट हुआ, अथवा आधुनिक विचारोंके अनुसार उसका रचयिता, कोई न कोई ऋषि है। जिन ऋषियोंकी रचनाएँ, या उनके द्वारा प्रगट किये हुए सूक्त ऋग्वेदमें आये हैं उनके नाम यह हैं—

मधुच्छन्द, जेत, मेधातिथि, शुनःशेप, हिरण्यस्तूप, कण्व, प्रकण्व, सव्य, नोध, पराशर, गोतम, कुत्स, कश्यप, ऋज्रस्व, तृताप्त्य, कक्षिवन्, भावयव्य, रोमश, परुच्छेप, दीर्घतमस, अगस्त्य, इन्द्र, मरुत, लोपामुद्रा, गृत्समद, सोमहूति, कूर्म, विश्वामित्र, ऋषभ, उत्कल, कट, देवश्रवा, देवव्रत, प्रजापति, वामदेव, अदिति, त्रसदस्यु, पुरुमिळ्ह, बुध, गविष्ठिः, कुमार,

ईश, सुतम्भरा, धरुण, पुरु, वव्र, द्वित, प्रयस्वत, शश, विश्वसाम, द्युम्न, विश्वचर्षणि, गोपपण, वसुयु, त्र्यारुण, अश्वमेध, अत्रि, विश्ववर, गौरीरिति, वभ्र, अवस्यु, गतु, समवरण, पृथु, वसु, अत्रिभूय, अवत्सरादि, प्रतिक्षत्र, प्रतिरथ, प्रतिभानु, पुरुहनमन, सुदीति, पुरुमीढ, हर्यट, गोपवन, सप्तवध्र, विरूप, कुरुसुति, कृत्नु, एकद्यु, कुसीदी, उषणाकाव्य, कृष्ण, विश्वक, द्युम्निक, नृमेध, अपाला, श्रुतकक्ष, सुकक्ष, विन्दु, पूतदक्ष, तिरश्चि, धुतान, रेह जमदग्नि, नेम, प्रयोगयविष्ट, प्रस्कण्व, पुष्टिगु, श्रुष्टिगु, आयु, मातरिश्वा, कृश, पृषद्र, सुपर्ण, असित, देवल, दृढच्युत, इधमवाह, श्यावश्व, प्रभुवसु, रहूगण, बृहन्मति, अपास्य, कवि, उचथ्य, अवत्सार, अमहीयु, निध्रुवि, भृगु, वैखानस, अत्रि, पवित्र, रेणु, हरिमन्त, वेन, अकृष्टभाष्याः अजाः, गृत्समद, प्रतर्दन, व्याघ्रपाद, कर्णश्रुत, अम्वरीष, रिजस्वा, रेससूनु, ययाति, नहुष, शिखण्डिनी, चक्षुः, सप्तर्षि, गौरी, रीति, ऊर्ध्वसद्म, कृतयक्ष ऋणञ्चय, शिशु, त्रिशिरा, यम, यमी, शङ्ख, दमन, देवश्रवा, सङ्कुसुक, मथित, च्यवन, वसुक्र, लुपा, अमितया, घोषा, सुहस्त्य, सप्तगु, वैकुण्ठ, बृहदुक्थ, माता सहित गोपायन, नाभानेदिष्ट, सुमित्र, जरत्कारु, स्यूमरश्मि, विश्वकर्मा, मूर्धन्व, शरपात, तान्व, अर्बुद, पुरुरवा, उर्वशि, सर्वहरि, भिषज, देवापि, वभ्र, दुवस्यु, मुद्गल, अप्रतिरथ, भूतांश, सरमा, पणिः जुहु, राम, उध्र्दंष्ट्र, नभप्रभेदन, शतप्रभेदन, साधि, घर्म, उपस्तुत, अग्निपूय, भिक्षु, उरुक्षय, लव, बृहद्दिव, हिरण्यगर्भ, चित्रमहा, कुलमल, बर्हिष, विहव्य, यज्ञ, सुदास, मान्धाता, ऋष्यश्रृङ्ग, वृषाणक, विप्रजूति, व्यङ्ग, विश्वावसु, अग्निपावक, अग्नितापस, द्रोण, साम्वमित्र, पृथुवन्व, सुवेद, मृढिका, श्रद्धा, इन्द्रमाता, शिरिम्बिया, केतु, भुवन, यक्ष्मानशन्, रक्षोहा, विवृहा, प्रचेता, कपोत, अनिला, शवर, विभ्राज, इत, सम्वर्त, ध्रव, अभिवर्त, ऊर्ध्वग्रीवा, पतङ्ग, अरिष्टनेमि, शिवि, सप्तधृति, श्येन, सार्पराज्ञि, अघमर्षण, सवबन, प्रतिप्रभ, स्वस्ति, स्ववस्व, श्रुतविद्, रातहव्य, यजट, उरुचक्रि, बहुवृक्त, पौर, अवस्यु, सप्तवध्र, थवापमरुत, भरद्वाज, वीतहव्य, सुहोत्र, शुनहोत्र, नर, सम्पु, गर्ग, ऋजिस्वा, पायु, वासिष्ट, मैत्रावरुणी, वशिष्ठ, शक्ति, वाशिष्टा, प्रगाथकण्व, मेधातिथि, आसङ्ग, शश्वति, देवातिथि, ब्रह्मातिथि, वत्स, पुनर्वत्स, साध्वंश, शशकर्ण, नारद, गोपूक्ति, अश्वसूक्ति, इरिम्विथि, सौभरि, विश्वमना, वैवस्वत मनु, कश्यप, निपतिथि, सहस्रवसु, रोचिशा, श्यावाश्व, नाभाग, त्रिशोक, भर्ग, कलि, मत्स्य, मान्य।

इन ऋषियोंने जिन देवताओंकी स्तुति इन सूक्तोंमें की है उनके नाम यह हैं—

अग्नि, वायु, इन्द्र, वरुण, मित्रावरुण, अश्विनीकुमार, विश्वेदेव, सरस्वति, अपृह, ऋतु, मरुत, त्वष्टा, ब्रह्मणस्पति, सोम, दक्षिणा, ऋभु, इन्द्राणी, वरुणाणी, अन्नपेयि, द्यौः, पृथ्वी, विष्णु, पूषण, आयुः, सविता, उषा, अर्यमा, आदित्य, रुद्र, सूर्य, वैश्वानर, सिंधु, स्वनय, रोमशा, बृहस्पति, वाक्, काल, साध्य, रति, अश्व, वनस्पति, राका, सिनिवाली, आचलपत्, कपिञ्जल, यूप, पर्वत, सोमक, वामदेव, उच्चैःश्रवस, दधिक्रा, क्षेत्रपति, सीता, घृत, उषणा, अत्रि, देवि, पर्जन्य, धेनु, प्रस्तोक, पृश्णि, वास्तोष्पति, सरस्वा, चित्र, सोमयनमान, पितृ, सरमापुत्राः, मृत्यु, धाता, वैकुण्ठ, आत्मा, निर्ऋति, ज्ञान, ओषधयः, अरण्यानि, श्रद्धा, शचि, मायाभेद और तार्क्ष्य।

ऋग्वेदके सूक्तोंमें विशेष रूपसे स्तुतियोंकी अधिकता है। स्तुतियोंके देवताओंके नाम

ऊपर दिये गये हैं। जो लोग देवताओंकी अनेकता नहीं मानते वह इन सब नामोंका अर्थ, परब्रह्म परमात्मावाचक लगाते हैं।

जो लोग अनेक देवता मानते हैं वह भी इन सब स्तुतियोंको परमात्मापरक मानते हैं और कहते हैं कि यह सभी देवता और समस्त सृष्टि परमात्माकी विभूति है। इसलिये वह वरुणको जलके देवता, अग्निको तेजस्के देवता, द्यौः को आकाशके देवता, इत्यादि रूपसे परमात्माकी शक्तियोंके अधिपति परमात्माकी विभूतिरूप ही मानते हैं। जहाँ पृथिवीकी स्तुति है, वहाँ पृथिवीके ही गुणोंका वर्णन है। पृथिवी परमात्माकी सृष्टि और उसीकी विभूति है। परमात्माकी विभूतिकी स्तुति व्याजसे परमात्माकी ही स्तुति है। जो पृथिवीकी स्तुति नहीं मानते, वह सूक्तके गूढ़ व्यङ्गको खोलकर परमात्माकी स्तुति ही ठहराते हैं। यह स्तुतियाँ तथा उसके सम्बन्धकी प्रार्थनाएँ उपासनाकाण्डके अन्तर्गत हैं।

साथ ही बहुतसे इस प्रकारके मन्त्र भी यत्र-तत्र दिये हुए हैं जिनसे दुर्दैव मिट सकता है, गर्भकी रक्षा हो सकती है, गर्भपातसे गर्भिणी बच सकती है, गो आदि पशुधनकी रक्षा हो सकती है, राजयक्ष्मा रोग मिट सकता है, दु स्वप्नकी बाधा दूर हो सकती है, सपत्नीके अत्याचारसे रक्षा हो सकती है, प्रतिस्पर्धीसे छुटकारा मिल सकता है, एकताकी स्थापना हो सकती है। इनसे भी अधिक अनेक प्रकारकी इहलौकिक तथा पारलौकिक कामनाओंकी पूर्ति तथा इनके सम्बन्धके मन्त्र तन्त्र तथा साधन अथर्ववेदमें आये हैं।

अनेक सूक्त ऋग्वेदमें ऐसे भी हैं जिनमें स्तुतिके साथ साथ सृष्टिक्रमका विशद और रहस्यमय वर्णन है। सृष्टि और देवता सम्बन्धी इतिहास, पुराण, और सभ्यताके विकासकी कथाओंकी चर्चा भी यत्र-तत्र आयी है जिससे जान पड़ता है कि सृष्टिके आदिमें भी आर्य लोग जङ्गली नहीं थे।

ऋग्वेदमें जो दस मण्डलोंमें विभाग हुआ है वह ऐतरेय आरण्यकमें और आश्वलायन और शांख्यायन इन दो गृह्य सूत्रोंमें सबसे पहले देखनेमें आता है। कात्यायनकी अनुक्रमणिका में मण्डलके विभागका उल्लेख नहीं है। कात्यायनने पीछेके विभागका अनुसरण करके अष्टकों और अध्यायोंमें ऋग्वेदको विभक्त माना है। शुक्ल यजुर्वेदके ब्राह्मणकाण्डके दूसरे भागमें सूक्त शब्दका प्रयोग आया है। ऐतरेय ब्राह्मण और ऐतरेय आरण्यक आदिमें भी सूक्त शब्द का प्रयोग है। वर्तमान समयमें ऋग्वेदकी शाकल शाखाके अन्तर्गत शैशिरीय उपशाखा ही प्रचलित है। जगह-जगह वाष्कल शाखाका भी उल्लेख है। यह कोई भारी भेद नहीं है। एक प्रधान भेद यह देखा जाता है कि वाष्कल शाखाके आठवें मण्डलमें आठ मन्त्र अधिक हैं। अनेक लोग इन्हें बालखिल्य मन्त्र कहते हैं। शाकल्य एक ऋषि थे जो ऋग्वेद संहिताके पाठके प्रवर्त्तक कहे जाते हैं, अर्थात् उन्होंने सन्धियां तोड़ तोड़कर अलग अलग पदोंको स्मरण रखनेकी रीति चलायी है। पदपाठसे शब्दोंकी ठीक विवेचनाकी रक्षा और क्रमपाठसे मन्त्रोंके ठीक क्रमकी रक्षा अभिप्रेत है। शतपथ ब्राह्मणमें शाकल्य ऋषिका दूसरा नाम विदग्ध मिलता है। यह विदेहराज जनकके सभापण्डित और याज्ञवल्क्यके प्रतिद्वंद्वी मशहूर थे। ऋक्संहिताके क्रमपाठके प्रवर्त्तक पञ्चाल बाभ्रव्य थे। ऋक् प्रातिशाख्यमें * यह केवल

---

* ऋक प्रातिशाख्य ११।३३

वाभ्रव्य कहे गये हैं। प्रातिशाख्यसे यह मालूम होता है कि कुरु-पञ्चाल लोग जैसे क्रमपाठके चलानेवाले हुए उसी तरह कोशल विदेह लोग अर्थात् शाकल समुदायवाले पदपाठके प्रवर्त्तक थे।

ऋग्वेद संहितामें जितने विषय आये हैं उनकी एक बड़ी अच्छी सूची बंगला विश्वकोष-में दी हुई है। हमने ऊपर जो विषयसार दिया है वह ग्रिफिथकी विषयानुक्रमणिकासे सङ्कलित है। विश्वकोषकारकी सूची हमें अच्छी लगी और वह बहुत बड़ी नहीं है इसलिए उसे यहां अविकल उद्धृत करनेके लोभको हम संवरण नहीं कर सकते।

"इस संहितामें सबसे अधिक अग्निके स्तोत्र हैं। अग्नि पृथ्वीके देवताओं और मनुष्योंके मध्यवर्ती देवता हैं। उन्हींके सहारे और देवता बुलाये जाते हैं। इनके बाद इन्द्रके स्तोत्र अधिक हैं। वह अति शक्तिशाली, मेघचालक और वज्री हैं। वर्षासे ही धरती अन्न धनसे समृद्ध होती है और वर्षा वही कराते हैं। वृत्रासुरसे युद्ध, मेघवृष्टि, वज्रपात आदिके वर्णनमें अनेक ऋचाएँ हैं। ऊषाकी स्निग्ध मधुर कनक किरणोंको देखकर ऋषियोंके हृदयमें जिस कोमल कविताके भावका सञ्चार हुआ और उसमें डूबकर उसके तरुण सौन्दर्यपर मोहित होकर जो ललित पद्य उन्होंने लिखे ऋग्वेदसे उनका यथेष्ट परिचय होता है और काव्य सुधा-रसमयी अनेक ऋचाएँ पायी जाती हैं। अन्धकार मिटाने, प्रकाश देने, हिम नष्ट करने, जीवन शक्ति देने, शस्य अङ्कुरित कराने और बुद्धिवृत्तिके प्रेरणा करनेवाले भगवान् भास्करकी अग्रगामिनी ऊषा ही है। वही सूर्य प्राणशक्तिके मूल निदान हैं। इसीलिये ऋषियोंने सूर्यका भी बहुत स्तवन किया है। इनके सिवा मित्र, वरुण, अश्विनीकुमार, विश्वे-देव, सरस्वती, सूनृता, मरुद्गण, अदिति, आदित्य, ऋभु, ब्रह्मणस्पति, सोम, त्वष्टा, इन्द्राणी, होता, पृथ्वी" आदि देवगणका स्तोत्र है। कृषिकार्य, मेषपालन, देशभ्रमण, वाणिज्य, समुद्रगमन, नद्यादिका भौगोलिक विवरण, ऋक्ष, सौर वत्सर, चांद्र वत्सर, देवताओंकी गाएँ और घोड़े, पञ्चकृष्टि, प्राचीन कालके मनुष्यकी परमायु, अविवाहिता कन्या, तन्तुवाय और वस्त्र-निर्माण, नापित, वर्म, शिरस्त्राण, तनुत्राण, वाद्ययन्त्र, अनार्योंके साथ युद्ध, सर्पका उत्पात और सर्पमन्त्र, पक्षीके अमङ्गल-ध्वनिके मन्त्र, सूर्यकी दैनिक गति, शस्या-दिका विवरण, खदिर और शिशुकाष्ठकी गाड़ी–रथ–निर्माता शिल्पी, सुवर्ण–सज्जाविशिष्ट अश्व, युद्धका अश्व, अमात्य, वेष्टित गजस्कन्धपर आरूढ़ राजा, प्रस्तर-निर्मित नगर, सरयूके पूर्वमें आर्य राज्यका विस्तार और आर्योंका युद्ध, दृषद्वती, आपया, यमुना, रसा, कुभा, सरस्वती, परुष्णी, अनितभा, सिन्धु, गोमती, हरियूपिया, वायव्यावती, पिपाशा और शतद्रु नदी, शर्यणावती, जह्नु-कन्या वा जाह्नवी, आर्जीकिया नदी, अनार्य बर्बर जाति, कीकट देशके बर्बर, सूर्यग्रहण, ईश्वरी बलकी एकता, एक ईश्वरका अनुभव, सर्प नागकी कथा, दिति और अदिति, स्वर्ग और पृथ्वीकी एक बारगी सृष्टि, ऋषियोंकी प्रतिद्वंद्विता, संसार और युद्धमें ऋषियोंकी प्रवृत्ति, ऋषियोंके वंशानुक्रममें मन्त्ररक्षा, मुद्राका प्रचलन, लोहेका कलश, स्वामी सहित स्त्रीका यज्ञ करना, विवाह-कालमें वरका वेष, धातु गलाना, लोहारकी भाथी, त्रिधातु गृह, दशयन्त्र उत्स, दधि सुरा आदि रखनेको चर्माधार, हिरण्मय कवच, विविध आभरण, भाषारहित और नकटे अनार्योंका वर्णन, युद्धमें अश्वका व्यवहार, गोचर्मावृत युद्धरथ, युद्ध

दुन्दुभि, नदी कूल और उर्वरा भूमिपर झगड़ा, मरुभूमि, मेघस्तुति, सारमेय स्तुति, पर्वत नदी वृक्ष गौ और घोड़े आदिकी स्तुति, सर्पके विषका मन्त्र, सुदास राजाका विवरण, युद्धास्त्र और आयोजन, स्वर्ग और अमृतत्त्व लाभ, कृष्ण नामक अनार्य योद्धा, सोमरस बनानेकी रीति, विविध वैदिक उपाख्यान, समुद्र मथनसे अमृत-लाभ, गरुडद्वारा अमृत-हरण, अमृतपानसे देवगणका अमरत्व, नवम मण्डलके शेष भागमें ऋतुका वर्णन, यम और यमीका जन्म, यम और यमीका संवाद, अंत्येष्टि-क्रियाके मन्त्र, पुण्यात्मा पुरुषोंका स्वर्गवास और यज्ञभाग-ग्रहण, सत्यका सम्मान, पञ्चजनवासकी कथा, स्तोता वैद्य लोहार आदिके भिन्न भिन्न व्यवसाय, कन्या-विवाहमें अलङ्कार-दान, अग्निदाह प्रथा, मृतदेहका मृत्तिकामें स्थापन, कुँआ खोदना, पशु चराना, भेडके रोएँसे वस्त्र बनाना, सिंह हरिण वराह श्रृगाल शशक हाथी गोधा और सर्प आदिका उल्लेख, संसारी ऋषियोंकी सम्पत्ति, सृष्टिकी कथा, प्राचीन कालमें आर्योंका निवासस्थान, शोक प्रकाश करनेकी चाल, भाषाकी आलोचना, छन्दः शास्त्र और ज्योतिषकी चर्चा, सपत्नियोंपर अपना अधिकार जमानेके मन्त्र, गर्भसञ्चारके मन्त्र, गर्भरक्षाके मन्त्र, रोगारोगके मन्त्र, अमंगलनाशके मन्त्र, राज्याभिषेकके मन्त्र इत्यादि, सामाजिक वैज्ञानिक गृह्य और धार्म्मिक बहुतसे विषय, कोई थोड़े और कोई अधिक परिमाणमें, ऋग्वेदमें पाये जाते हैं"।

ऋग्वेदके अर्थको खोलनेके सम्बन्धमें दो ग्रन्थ अत्यंत प्राचीन समझे जाते हैं। एक तो निघण्टु है और दूसरे यास्कका निरुक्त। देवराज यज्वा निघण्टुके टीकाकार हैं। दुर्गाचार्यने निरुक्तपर अपनी सुप्रसिद्ध वृत्ति लिखी है। और निघण्टुकी टीका वेदभाष्य करनेवाले स्कन्ध-स्वामीके नामसे पायी जाती है। सायणाचार्य वेदके हालके भाष्यकार हैं। यास्कके समयसे लेकर सायणके समयतक विशेष रूपसे कोई भाष्यकार प्रसिद्ध नहीं हुआ। भगवान् श्री शङ्कराचार्य्य और उनके शिष्योंने उपनिषदोंपर भाष्य लिखे हैं और व्याख्यायें की हैं। वेदान्तवादी संहिताकी व्याख्याकी ओर विशेष रुचि नहीं रखते थे। तब भी उनके, एक शिष्य आनन्दतीर्थ स्वामीने ऋग्वेद संहिताके कुछ अंशोंका श्लोकमय भाष्य किया था। फिर रामचन्द्र तीर्थने उस भाष्यकी टीका कर डाली। सायणने अपने विस्तृत ऋक्भाष्यमें भट्ट भास्कर मिश्र और भरत-स्वामी वेदके दो भाष्यकारोंका उल्लेख किया है। कुछ कुछ अंश चण्डू पण्डित, चतुर्वेदस्वामी, युव-राज, रावण और वरदराजके भाष्योंके पाये जाते हैं। इनके सिवा मुद्गल, कपर्दी, आत्मानन्द और कौशिक आदि कुछ भाष्यकारोंके नाम भी सुननेमें आये हैं। किसी किसीका कहना है कि भट्ट-भास्कर कृष्ण-यजुर्वेदके भाष्यकार हैं। उन्होंने ऋक्संहितापर कोई भाष्य नहीं लिखा है। उनके भाष्यमें ही कार्श-कृत्स्न, शाकपूणी और यास्कके नाम पाये जाते हैं। इसलिये भट्ट भास्कर मिश्र यास्कके बाद हुए हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। निघण्टुके टीकाकर देवराज और उनकी टीकामें भट्ट भास्कर मिश्रने माधवदेव, भवस्वामी, गुहदेव, श्रीनिवास और उव्वटआदि भाष्यकारोंके नाम दिये हैं। यह पता नहीं है कि उव्वटने ऋक् संहिताका कोई भाष्य किया है या नहीं। परन्तु उव्वटका शुक्ल-यजुर्वेद-संहितापर एक भाष्य पाया जाता है। इसके सिवा इन्होंने ऋक् प्रातिशाख्य और शुक्ल यजुर्वेद प्रातिशाख्यपर भी भाष्य लिखे हैं। वेदकी व्याख्या करनेवालोंमें अनेक लोगोंका यह मत है कि वेदोंमें इतिहास पुराण सम्बन्धी कोई बात नहीं आयी है। वह इस सम्बन्धके मन्त्रोंका ईश्वर-परक ही अर्थ लगाते हैं। वेदोंकी भाषा इतनी

लचीली है कि एक एक मंत्रके, अनेक अर्थ होनेकी गुञ्जाइश है। इसीलिए भाष्यकारोंमें गहरा मतभेद है। "नैकोमुनिर्यस्यवचः प्रमाणम्" जो पण्डित जैसा विचार रखता है उसीके अनुकूल यह शब्द-कल्पद्रुम फल देता है।

ज्ञानकाण्ड सम्बन्धी सृष्टि-विज्ञान-विषयक दो सूक्तोंको व्याख्या सहित यहाँ उद्धृत किया जाता है। नासदीय सूक्त जो अपने पहिले शब्दसे सूचित किया जाता है बड़ा ही विचित्र और रहस्यमय है। इसमें अनेक वैज्ञानिक रहस्योंकी ओर इङ्गित है। पुरुषसूक्त भी वैसा ही रहस्यमय है। नासदीय सूक्तमें प्रकृतिके विकासकी दृष्टिसे सृष्टि-रचनाका उल्लेख है और पुरुष-सूक्तमें विराट्से सृष्टिका वर्णन है। यों तो भाष्यकारोंमें इनकी व्याख्याके सम्बन्धमें थोड़ा बहुत मतभेद है तो भी इन सूक्तोंपर महर्षि दयानन्द सरस्वतीकी व्याख्या सबसे सुगम है और हिन्दीमें उपलब्ध है। इसीलिए मूलके साथ हम उन्हींकी व्याख्या देते हैं।

सृष्टिविषयः

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजोनोव्योमाऽपरोयत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्म्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम् ॥ १ ॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न राज्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्नपरः किञ्चनास ॥ २ ॥
तम आसीत् तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येे नाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥ ३ ॥
कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतोवन्धुमसतिनिरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥ ४ ॥
तिरश्चीनो विततोरश्मि रेषामधःस्विदासी ३ दुपरि स्विदासी३त्।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥ ५ ॥
को अद्धावेद क इह प्रवोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आवभूव ॥ ६ ॥
इयं विसृष्टिर्यत आवभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमेव्योमन्त्सो अङ्गवेद यदि वा न वेद ॥ ७ ॥

ऋ० अ० ८। अ० ७। व० १७।

भावार्थ—

(नासदासीत्) जब यह कार्य सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी, तब एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर और दूसरा जगत्का कारण अर्थात् जगत् बनानेकी सामग्री विराजमान् थी। उस समय (असत्) शून्य नाम आकाश—अर्थात् जो नेत्रोंसे देखनेमें नहीं आता—सो भी नहीं था, क्योंकि उस समय उसका व्यवहार नहीं था। (नोसदासीत्त-दानीम्०) उसकालमें (सत्) अर्थात् सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण मिलाकर जो प्रधान कहाता है, वह भी नहीं था। (नासीद्रज०) उस समय परमाणु भी नहीं थे, तथा (नो व्योम०) विराट् अर्थात् जो सब स्थूल जगत्के निवासका स्थान है सो भी नहीं था। (किमा०) जो यह वर्तमान् जगत् है वह भी अनन्त शुद्ध ब्रह्मको नहीं ढांक सकता और

उससे अधिक वा अथाह भी नहीं हो सकता। जैसे कोहराका जल पृथिवीको नहीं ढांक सकता है, उस जलसे नदीमें प्रवाह भी नहीं चल सकता और न वह कभी गहरा वा उथला हो सकता है। इससे क्या जाना जाता है, कि परमेश्वर अनन्त है और जो यह उसका बनाया हुआ जगत् है सो ईश्वरकी अपेक्षा कुछ भी नहीं है ॥ १ ॥

(न मृत्युः) जब जगत् नहीं था तब मृत्यु भी नहीं था, क्योंकि जब स्थूल जगत् संयोगसे उत्पन्न होके वर्तमान हो, पुनः उसका और शरीरादिका वियोग हो तब मृत्यु हो। सो शरीरादि पदार्थ उत्पन्न ही नहीं हुए थे अतः मृत्यु कहाँ। न अमृतत्व था, क्योंकि अमृतत्वका भाव यह एकही हो सकता है कि शरीरादि धर्मी उत्पन्न हों और सदा बने रहें, परन्तु यहां तो सृष्टि हुई ही नहीं है इसलिये अमृतत्वका भी कोई प्रश्न नहीं था, रातदिनका विभाग भी नहीं था, एक ही सत्ता थी जहाँ वायुकी गति नही थी, सत्ता स्वयं अपने प्राणसे प्राणित थी, उस सत्ताके अतिरिक्त और कुछ था ही नहीं ॥ २ ॥

अन्धकारकी सत्ता थी (क्योंकि अंधकार प्रकाशके अभावका ही नाम है।) प्रकाशकी उत्पति हुई नहीं थी। इसलिये प्रकाशकी असत्ताकी ही सत्ता थी। इसी महाअन्धकारसे ढका हुआ यह सब कुछ (भावी विश्वसत्ता) चिह्न और विभाग-रहित (अज्ञेय तथा अविभक्त) यह अदेश और अकालमें सर्वत्र सम और विषम भावसे बिलकुल एकमें मिला हुआ फैला था। (तो भी) जो कुछ सत्ता थी वह शून्यतासे ढकी हुई थी। (क्योंकि) आकाशादिकी उत्पत्ति नहीं हुई थी, और किसी प्रकारका आकार न था (क्योंकि) आकारसे ही सृष्टिका आरम्भ होता है। तपस्‌की महान् शक्तिसे (उपर्युक्त असृष्टिकी दशामें) 'एक'-की उत्पत्ति हुई ॥ ३ ॥

(उस एकमें) पहिले-पहल (लीला-विस्तारकी) कामना उत्पन्न हुई। (उस एकके) मनन वा विचारसे यह कामना बीजके रूपमें हुई। पीछे ऋषियोंने जब विचार किया और अपने हृदयमें खोजा तो पता पाया कि यही कामना सत और असतको बाँधनेका कारण हुई है ॥४॥

इनकी विभाजक रेखा (सदसत्‌में विवेक करनेकी रेखा) तिर्यक् रूपसे फैल गयी। फिर उसके ऊपर क्या था और नीचे क्या था, उत्पन्न करनेवाला रेत अर्थात् बीज था महा बलवान शक्तियाँ थीं। इधर जहाँ स्वच्छन्द क्रिया थी उधर परे (क्रिया प्रणोद भी) महाशक्ति थी ॥ ५ ॥

सचमुच कौन जानता है और यहाँ कौन कह सकता है कि (यह सब) कहाँसे उपजा और इस विश्वकी सृष्टि कहाँसे आयी। देवताओंकी उत्पत्ति पीछे की है और यह सृष्टि पहिले आरम्भ हुई। फिर कौन जान सकता है कि यह सब कैसे आरम्भ हुई। (वेदने जो उपर्युक्त वर्णन किया है वह वेदोंको ही कैसे ज्ञात हुई, यहाँ व्याजसे वेदोंका अनादि होना व्यंजित किया है) जिससे इस विश्वकी सृष्टि आरम्भ हुई, उसने यह सब रचा है। (अपनी इच्छा शक्तिसे सृष्टिकी प्रेरणा की है) या नहीं रचा है अर्थात् उसकी प्रेरणाके विना ही आप ही आप हो गयी है। परम व्योममें जिसकी आँखें इस विश्वका निरीक्षण कर रही हैं वस्तुतः (इन दोनों बातोंके रहस्यको) वही जानता है। या शायद वह भी नहीं जानता (क्योंकि उस निर्गुण और निराकारमें सृष्टिसे पहिले ज्ञान, इच्छा और क्रिया इन तीनोंका भाव नहीं था) ॥७॥

पुरुष-सूक्त

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
सभूमिं सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

इस मन्त्रमें पुरुष शब्द विशेष्य है और अन्य सब पद उसके विशेषण हैं। पुरुष उसको कहते हैं जो इस सब जगतमें पूर्ण हो रहा है। अर्थात् जिसने अपनी व्यापकतासे इस जगत्को पूर्ण कर रक्खा है । पुर कहते हैं ब्रह्माण्ड और शरीरको, उसमें जो सर्वत्र व्याप्त और जो जीवके भीतर भी व्यापक अर्थात् अन्तर्यामी है वही पुरुष है । सहस्र नाम है सम्पूर्ण जगत्का और असंख्यातका भी नाम है । सो जिसके बीचमें सब जगत्के असंख्यात शिर आँख और पग ठहर रहे हैं उसको सहस्रशीर्षा, सहस्राक्ष और सहस्रपात् भी कहते हैं, क्योंकि वह अनन्त है। जैसे आकाशके बीचमें सब पदार्थ रहते हैं और आकाश सबसे अलग रहता है अर्थात् किसीके साथ बँधता नहीं है, इसी प्रकार परमेश्वरको भी जानो (सभूमिं सर्वतः वृत्वा) सो पुरुष सब जगत्से पूर्ण होके पृथिवीको तथा सब लोगोंको धारण कर रहा है । (अत्यतिष्ठत्०) दशाङ्गुलं शब्द ब्रह्माण्ड और हृदयका वाची है। अङ्गुलि शब्द अङ्गका अवयववाची है। पाँच स्थूल भूत और पाँच सूक्ष्म भूत ये दोनों मिलके जगत्के दश अवयव होते हैं तथा पाँच प्राण, मन बुद्धि चित्त और अहङ्कार ये चार और दशवाँ जीव और शरीरमें जो हृदय देश है सो भी दश अङ्गुलके प्रमाणसे लिया जाता है। जो इन तीनोंमें व्यापक होके इनके चारों ओर भी परिपूर्ण हो रहा है वह पुरुष कहाता है। क्योंकि जो उस दशाङ्गुल स्थानका भी उल्लंघन करके सर्वत्र स्थिर है, वही सब जगत्का बनानेवाला है।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

(पुरुषएवे०) जो पूर्वोक्त विशेषण सहित पुरुष अर्थात् परमेश्वर है, सो जो जगत् उत्पन्न हुआ था जो होगा और जो इस समयमें है, इस तीन प्रकारके जगतको वही रचता है। उससे भिन्न दूसरा कोई जगत्का रचनेवाला नहीं है। क्योकि वह (ईशान) अर्थात् सर्वशक्तिमान है। (अमृत०) जो मोक्ष है उसका देनेवाला एक वही है दूसरा कोई नहीं। सो परमेश्वर (अन्न) अर्थात् पृथिव्यादि जगत्के साथ व्यापक होके स्थित है और इससे अलग भी है, क्योंकि उसमें जन्मादि व्यवहार नहीं है। और अपनी सामर्थ्यसे सब जगत्को उत्पन्न भी करता है और आप कभी जन्म भी नहीं लेता ॥२॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

(एतावानस्य०) तीनों कालमें जितना संसार है सो सब इस पुरुषकी ही महिमा है। प्र० जब उसकी महिमाका परिणाम है तो अन्त भी होगा? उ०—(अतो ज्यायांश्च पूरुष.) उस पुरुषकी अनन्त महिमा है क्योंकि (पादोऽस्य विश्वाभूतानि) जो यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हो रहा है, सो इस पुरुषके एक देशमें वसता है। (त्रिपादस्यामृतं दिवि) और जो प्रकाश गुणवाला जगत् है सो उससे तिगुना है, तथा मोक्षसुख भी उसी ज्ञानस्वरूप प्रकाशमें है। और वह पुरुष सब प्रकाशोंका भी प्रकाशक है ॥३॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ४ ॥

(त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः) पुरुष जो परमेश्वर है सो पूर्वोक्त त्रिपाद जगत्से ऊपर भी व्यापक हो रहा है, तथा सदा प्रकाशस्वरूप सबके भीतर व्यापक और सबसे अलग भी है। (पादोऽस्येहाभवत्पुनः) इस पुरुषकी अपेक्षासे यह सब जगत् किञ्चित्मात्र देशमें है। और जो इस संसारके चार पाद होते हैं वे सब परमेश्वरके बीचमें ही रहते हैं। इस स्थूल जगत्का जन्म और विनाश सदा होता रहता है। और पुरुष तो जन्म विनाश आदि धर्मसे अलग और सदा प्रकाशमान है। (ततो विश्वङ्व्यक्रामत्) अर्थात् यह नाना प्रकारका जगत् उसी पुरुषके सामर्थ्यसे उत्पन्न हुआ है। (साशनान०) सो दो प्रकार है एक चेतन जो कि भोजनादिके लिये चेष्टा करता है, और जीव-संयुक्त है। और दूसरा अनशन अर्थात् जो जड़ और भोजनके लिये बना है, क्योंकि उसमें ज्ञान नहीं है, और अपने आप चेष्टा भी नहीं कर सकता। परन्तु उस पुरुषका अनन्त सामर्थ्य ही इस जगत्के बनानेकी सामग्री है जिससे सब जगत् उत्पन्न होता है। सो पुरुष सर्वहितकारक होके उस दो प्रकारके जगत्को अनेक प्रकारसे आनन्दित करता है। वह पुरुष इसका बनानेवाला संसारमें सर्वत्र व्यापक होके धारण करके देख रहा और वही सब जगत्का सब प्रकारसे आकर्षण कर रहा है ॥ ४ ॥

ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथोपुरः ॥ ५ ॥

(ततो विराडजायत) विराट् जिसका ब्रह्माण्डके अलङ्कारसे वर्णन किया है जो उसी पुरुषके सामर्थ्यसे उत्पन्न हुआ है, जिसको मूलप्रकृति कहते हैं, जिसका शरीर ब्रह्माण्डके समतुल्य, जिसके सूर्य चन्द्रमा नेत्रस्थानी हैं, वायु जिसका प्राण और पृथिवी जिसका पग है, इत्यादि लक्षणवाला जो यह आकाश है सो विराट् कहाता है। वह प्रथम कालरूप परमेश्वरके सामर्थ्यसे उत्पन्न होके प्रकाशमान हो रहा है। (विराजो अधि०) उस विराट्के तत्वोंके पूर्व भागोंसे सब अप्राणी और प्राणियोंका देह पृथक् पृथक् उत्पन्न हुआ है जिसमें सब जीव वास करते हैं और जो देह उसी पृथिवी आदिके अवयव अन्न आदि ओषधियोंसे वृद्धिको प्राप्त होता है। (स जातो अत्यरिच्यत) सो विराट् परमेश्वरसे अलग और परमेश्वर भी इस संसाररूप देहसे सदा अलग रहता है। (पश्चाद्भूमिमथोपुरः) फिर भूमि आदि जगत्को प्रथम उत्पन्न करके पश्चात् जो धारणा कर रहा है।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ॥६॥

(तस्माद्यज्ञात्स०) उस सत्-चिदादि-लक्षण-सम्पन्न यज्ञस्वरूप परम पुरुष सर्व पूज्य पुरुषसे (संभृतं पृषदाज्यम्) सब भोजन वस्त्र जलादि पदार्थोंको सब मनुष्यने धारण अर्थात् प्राप्त किया है, क्योंकि उसीके सामर्थ्यसे ये सब पदार्थ उत्पन्न हुए हैं और उन्हींसे सबका जीवन भी होता है। इससे सब मनुष्योंको उचित है कि उसको छोड़के किसी दूसरेकी उपासना न करें। (पशूँस्तांश्चक्रे०) ग्राम तथा बनके सब पशुओंको भी उसीने उत्पन्न

किया है तथा सब पक्षियोंको भी बनाया है, और भी सूक्ष्म देहधारी कीट पतङ्ग आदि सब जीवोंके देह भी उसीने उत्पन्न किये हैं।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥

(तस्माद्यज्ञात् स०) सत् जिसका कभी नाश नहीं होता, चित् जो सदा ज्ञानस्वरूप है, जिसके ज्ञानका लोप भी कभी नहीं होता, आनन्द जो सदा सुखस्वरूप और सबको सुख देनेवाला है, इत्यादि लक्षणोंसे युक्त पुरुष जो सब जगत्‌में परिपूर्ण हो रहा है, जो मनुष्योंके उपासनाके योग्य इष्टदेव और सब सामर्थ्यसे युक्त है उसी परब्रह्मसे (ऋचः) ऋग्वेद (यजुः) यजुर्वेद (सामानि) सामवेद और (छन्दांसि) इस शब्दसे अथर्ववेद भी, ये चारोंवेद उत्पन्न हुए हैं, इसलिये सब मनुष्योंको उचित है कि वेदोंका ग्रहण करें। और वेदोक्त रीतिसे ही चलें। (जज्ञिरे) और (अजायत) इन दोनों पदोंके अधिक होनेसे यह निश्चय जानना चाहिये कि ईश्वरसे ही वेद उत्पन्न हुए हैं, किसी मनुष्यसे नहीं।

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ ८ ॥

(तस्मादश्वा अजायन्त) उसी पुरुषके सामर्थ्यसे अश्व अर्थात् घोड़े उत्पन्न हुए हैं। (ये के चोभयादतः।) जिनके मुखमें दोनो ओर दाँत होते हैं उन पशुओंको उभयादत कहते हैं, ऊंट गधा आदि उसीसे उत्पन्न हुए हैं। (गावोह ज०) उसीसे गोजाति अर्थात् गाय, उत्पन्न हुई। (तस्मज्जाता अ०) उसी प्रकार बकरी और भेड़ें भी उसी कारणसे उत्पन्न हुईं ॥ ८ ॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ९ ॥

(त यज्ञं बर्हि०) जो सबसे प्रथम प्रकट था जो सब जगत्‌का बनानेवाला है, और सब जगत्‌में पूर्ण हो रहा है, उस यज्ञ अर्थात् पूजने योग्य परमेश्वरको जो मनुष्य हृदयरूप आकाशमें अच्छे प्रकारसे प्रेमभक्ति सत्य आचरण करके पूजन करता है वही उत्तम मनुष्य है। ईश्वरका यह उपदेश सबके लिये है। (तेन देवा अयजन्त सा०) उसी परमेश्वरके वेदोक्त उपदेशसे (देवाः) जो विद्वान् (साध्याः) जो ज्ञानी लोग (ऋषयश्च ये) ऋषि लोग जो वेद मन्त्रोंके अर्थ जाननेवाले और अन्य भी मनुष्य जो परमेश्वरके सत्कारपूर्वक सब उत्तम ही काम करते हैं वेही सुखी होते हैं, क्योंकि सब श्रेष्ठ कर्मोंके करनेके पूर्व ही उसीका स्मरण और प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये और दुष्ट कर्म करना तो किसीको उचित नहीं है।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत् किम्बाहू किमूरू पादाउच्येते ॥१०॥

(यत्पुरुषं०) पुरुष उसको कहते हैं कि जो सर्वशक्तिमान ईश्वर कहाता है। (कतिधाव्य०) जिसके सामर्थ्यका अनेक प्रकारसे प्रतिपादन करते हैं, क्योंकि उसमें चित्र विचित्र बहुत प्रकारका सामर्थ्य है, अनेक कल्पनाओंसे जिसका कथन करते है। (मुखं-किम्०) इस पुरुषके मुख अर्थात् मुख्य गुणोंसे क्या उत्पन्न हुआ है। (किम्बाहू) बल

वीर्य शूरता और युद्ध विद्या आदि गुणोंसे इस संसारमें कौन पदार्थ उत्पन्न हुआ है। (किमूरू) व्यापारादि मध्यम गुणोंसे किसकी उत्पत्ति हुई है। (पादाउच्येते) मूर्खपन आदि नीच गुणोंसे किसकी उत्पत्ति होती है। इन चारों प्रश्नोंके उत्तर ये हैं—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥११॥

(ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्) इस पुरुषकी आज्ञानुसार जो विद्या सत्यभाषणादि गुणों और श्रेष्ठ कर्मोंसे ब्राह्मण वर्ण उत्पन्न होता है वह मुख्य कर्म तथा गुणोंके सहित होनेसे मनुष्योंमें उत्तम कहाता है। (बाहू राजन्यः कृतः) और ईश्वरने बल पराक्रम आदि पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त क्षत्रिय वर्णोंको उत्पन्न किया। (ऊरूतदस्य०) खेती व्यापार और सब देशोंकी भाषाओंको जानना तथा पशुपालन आदि मध्यम गुणोंसे वैश्य वर्ण सिद्ध होता है। (पद्भ्यांशूद्रो०) जैसे पद सबसे नीच अंग है, वैसे मूर्खता आदि नीच गुणोंसे शूद्र वर्ण सिद्ध होता है।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥

(चन्द्रमा०) उस पुरुषके मनन अर्थात् ज्ञानस्वरूप सामर्थ्यसे चन्द्रमा और तेजस्वरूपसे सूर्य उत्पन्न हुआ। (श्रोत्राद्वायु०) श्रोत्र अर्थात् अवकाश सामर्थ्यसे आकाश और वायुरूप सामर्थ्यसे वायु उत्पन्न हुई। तथा सब इन्द्रियां भी अपने अपने कारणसे उत्पन्न हुई हैं। मुख्य ज्योतिस्वरूप सामर्थ्यसे अग्नि उत्पन्न हुई।

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यांभूमिर्दिशःश्रोत्रात्तथालोकानकल्पयन् ॥१३॥

(नाभ्या आसीदन्त०) इस पुरुषके अत्यन्त सूक्ष्म सामर्थ्यसे अन्तरिक्ष अर्थात् जो भूमि और सूर्य्यादि लोकोंके बीचमें पोल है सो भी नियत किया हुआ है। (शीर्ष्णोद्यौः०) और जिसके सर्वोत्तम सामर्थ्यसे सब लोकोंके प्रकाश करनेवाले सूर्य्यादि लोक उत्पन्न हुए है। (पद्भ्यां भूमिः) पृथिवीके परमाणु-कारण-स्वरूप सामर्थ्यसे परमेश्वरने पृथिवी उत्पन्न की हैं। तथा जलको भी उसी कारणसे उत्पन्न किया है। (दिशः श्रोत्रात्०) उसने श्रोत्ररूप सामर्थ्यसे दिशोंको उत्पन्न किया (तथा लोकां०) इसी प्रकार सब लोकोंके कारणस्वरूप सामर्थ्यसे परमेश्वरने सब लोकों तथा उनमें बसनेवाले सब पदार्थोंको उत्पन्न किया।

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१४॥

(यत्पुरुषेण०) देव अर्थात् जो विद्वान् लोग होते हैं उनको भी ईश्वरने अपने अपने कर्मोंके अनुसार उत्पन्न किया है। और वे ईश्वरके दिये पदार्थोंका ग्रहण करके पूर्वोक्त यज्ञका विस्तारपूर्वक अनुष्ठान करते हैं और जो ब्रह्माण्डका रचन पालन और प्रलय करना रूप यज्ञ है, उसीको जगत् बनानेकी सामग्री कहते हैं। (वसन्तो०) पुरुषका उत्पन्न किया जो यह ब्रह्माण्ड रूप यज्ञ है, इसमें वसन्त ऋतु अर्थात् चैत्र और वैशाख घृतके समान हैं। (ग्रीष्म इध्मः) ग्रीष्मऋतु ज्येष्ठ और आषाढ़ इन्धन हैं। (श्रावण और भाद्रपद वर्षा ऋतु,) आश्विन और

कार्तिक शरद ऋतु, (मार्गशीर्ष और पौष हिम ऋतु, माघ और फाल्गुन शिशिर ऋतु कहाती है।) यह इस यज्ञमें आहुति हैं, सो यहाँ रूपकालङ्कारसे सब ब्रह्माण्डका व्याख्यान जानना चाहिये ॥ १४ ॥

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥

(सप्तास्या०) ईश्वरने एक एक लोकके चारों ओर सात सात परिधि ऊपर ऊपर रची हैं। (गोल चीज़के चारोंओर एक सूतसे नापके जितना परिमाण होता है उसको परिधि कहते हैं।) ब्रह्माण्डमें जितने लोक हैं ईश्वरने उन एक एकके ऊपर सात सात आवरण बनाये हैं। एक समुद्र, दूसरा त्रसरेणु, तीसरा मेघमण्डलका वायु, चौथा वृष्टि-जल, पाँचवा वृष्टिजलके ऊपरका वायु, छठा अत्यन्त सूक्ष्म वायु जिसको धनञ्जय कहते हैं, सातवां सूत्रात्मा वायु जो कि धनञ्जयसे भी सूक्ष्म है, ये सात परिधि कहाती हैं। (त्रिःसप्त समिधः०) और इस ब्रह्माण्डकी सामग्री २१ इक्कीस प्रकारकी कहाती है, जिसमें एक प्रकृति, बुद्धि और जीव ये तीनों मिलके हैं, क्योंकि यह अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ हैं। दूसरा श्रोत्र। तीसरी त्वचा। चौथा नेत्र। पांचवीं जिह्वा। छठी नासिका। सातवीं वाक्। आठवां पग। नवाँ हाथ। दशवीं गुदा। ग्यारहवीं उपस्थ जिसको लिङ्ग इन्द्रिय कहते हैं। बारहवाँ शब्द। तेरहवाँ स्पर्श। चौदहवाँ रूप। पन्द्रहवाँ रस। सोलहवाँ गन्ध। सत्रहवीं पृथिवी। अठारहवाँ जल। उन्नीसवाँ अग्नि। बीसवाँ वायु। इक्कीसवाँ आकाश। ये इक्कीस समिधा कहाती हैं। (देवाय०) जो परमेश्वर पुरुष इस सब जगत्का रचनेवाला सबका देखनेवाला और पूज्य है उसको विद्वान् लोग सुनके और उसीके उपदेशसे उसीके कर्म और गुणोंका कथन, प्रकाश और ध्यान करते हैं, उसको छोड़के दूसरेको ईश्वर किसीने नहीं माना और उसीके ध्यानमें अपने आत्माओंको दृढ़ बांधनेसे कल्याण जानते हैं ॥ १५ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

(यज्ञेन यज्ञं) विद्वानोंको देव कहते हैं और वे सबको पूज्य होते हैं क्योंकि वे सब दिन परमेश्वरहीकी स्तुति प्रार्थना उपासना और आज्ञा पालन आदि विधानसे पूजा करते हैं। इससे सब मनुष्योंको उचित है कि वेदमन्त्रोंसे प्रथम ईश्वरकी स्तुति प्रार्थना करके शुभ कर्म्मोंका आरम्भ करें। (ते ह नाकं०) जो ईश्वरकी उपासना करनेवाले लोग हैं वे सब दुःखोंसे छूटके सब मनुष्योंमें अत्यन्त पूज्य होते हैं। (यत्रपूर्वेसा०) जहाँ विद्वान् लोग परम पुरुषार्थ पदको प्राप्त होके नित्य आनन्दमें रहते हैं। उसीको मोक्ष कहते हैं, क्योंकि उससे निवृत्त होके संसारके दुःखोंमें कभी नहीं गिरते ॥ १६ ॥

अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ १७ ॥

(अद्भ्यः संभृतः०) उस परमेश्वर पुरुषने पृथिवीकी उत्पत्तिके लिये जलसे सारांश ग्रहण करके पृथिवी और अग्निके परमाणुओंको मिलाके पृथिवी रची है। इसी प्रकार अग्निके परमाणुके साथ जलके परमाणुओंको मिलाके जलको, वायुके परमाणुओंके साथ अग्निके

परमाणुओंको मिलाके अग्निको रचा और वायुके परमाणुओंसे वायुको रचा, वैसे ही अपने सामर्थ्यसे आकाशको रचा जो कि सब तत्वोंके ठहरनेका स्थान है। ईश्वरने प्रकृतिसे लेके घास पर्यन्त जगत्को रचा है इससे वह सब पदार्थ ईश्वरके रचे होनेसे उसका नाम विश्वकर्मा है। जब जगत् उत्पन्न नहीं हुआ था तब ईश्वरके सामर्थ्यमें कारण रूपसे वर्तमान था। (तस्य०) जब जब ईश्वर अपने सामर्थ्यसे इस कार्यरूप जगत्को रचता है तब तब कार्य जगत् रूप गुणवाला होके स्थूल बनके देखनेमें आता है। (तन्मर्त्यस्य देवत्वं०) जब परमेश्वरने मनुष्य शरीर आदिको रचा है तब मनुष्य भी दिव्य कर्म करके देव कहाते हैं। और जब ईश्वरकी उपासनासे विद्या, विज्ञान आदि अत्युत्तम गुणोंको प्राप्त होते हैं तब भी उन मनुष्योंका नाम देव होता है क्योंकि कर्मसे उपासना और ज्ञान उत्तम है। इसमें ईश्वरकी यह आज्ञा है कि जो मनुष्य उत्तम कर्ममें शरीर आदि पदार्थोंको चलाता है, वह संसारमें उत्तम सुख पाता है और जो परमेश्वरकी प्राप्ति रूप मोक्षकी इच्छा करके उत्तम कर्म उपासना और ज्ञानमें पुरुषार्थ करता है, वह उत्तम देव होता है ॥ १७ ॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥१८॥

(वेदाहमेतं०) प्र०—किस पदार्थको जानकर मनुष्य ज्ञानी होता है। उ०—उस पूर्वोक्त लक्षणसहित परमेश्वरहीको यथावत् जानके ठीक ठीक ज्ञानी होता है, अन्यथा नहीं। जो सबसे बड़ा सबका प्रकाश करनेवाला और अविद्यान्धकार अर्थात् अज्ञान आदि दोषोंसे अलग है, उसी पुरुषको मैं परमेश्वर और इष्टदेव जानता हूँ। उसको जाने विना कोई मनुष्य यथावत् ज्ञानवान् नहीं हो सकता, क्योंकि (तमेव विदित्वा०) उसी परमात्माको जानके और प्राप्त होके जन्म मरण आदि क्लेशोंके समुद्र समान दु.खसे छूटके परमानन्द स्वरूप मोक्षको प्राप्त होता है। अन्यथा किसी प्रकारसे मोक्ष सुख नहीं होता। इससे सिद्ध हुआ कि उसीकी उपासना सब मनुष्य लोगोंको करनी उचित है। उससे भिन्नकी उपासना करनी किसी मनुष्यको नहीं चाहिये, क्योंकि मोक्षका देनेवाला एक परमेश्वरके बिना दूसरा कोई भी नहीं है। इसमें यह प्रमाण है कि (नान्यः पन्था०) व्यवहार और परमार्थ दोनोंके सुखका मार्ग एक परमेश्वरकी उपासना और उसका जानना ही है, क्योंकि इसके बिना मनुष्यको किसी प्रकारसे सुख नहीं हो सकता ॥ १८ ॥

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१९॥

(प्रजापति०) जो प्रजाका पति अर्थात् सब जगत्का स्वामी है, वही जड़ और चेतनके बाहर और भीतर अन्तर्यामी रूपसे सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। जो सब जगत्को उत्पन्न करके आप अजन्मा रहता है। (तस्ययोनिं०) जो उस परब्रह्मकी प्राप्तिका कारण सत्यका आचरण और सत्यविद्या है, उसको विद्वान् लोग ध्यानसे देखके परमेश्वरको प्राप्त होते हैं। (तस्मिन्ह०) जिसमें ये सब भुवन अर्थात् लोक ठहर रहे हैं उसी परमेश्वरमें ज्ञानी लोग भी सत्य निश्चयसे मोक्ष सुखको प्राप्त होके जन्म मरण आदि आनेजानेसे छूटके आनन्दमें सदा रहते हैं।

योदेवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वोयोदेवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥२०॥

(यो देवेभ्य०) जो परमात्मा विद्वानोंके लिये सदा प्रकाशस्वरूप है, अर्थात् उनके आत्माओंको प्रकाश कर देता है। और जो उनका पुरोहित है, अर्थात् अत्यन्त सुखोंसे धारण और पोषण करनेवाला है, इससे वे फिर दुःखसागरमें कभी नहीं गिरते। (पूर्वोयोदेवेभ्यः) जो सब विद्वानोंसे आदि विद्वान् और जो विद्वानोंके ही ज्ञानसे प्रसिद्ध अर्थात् प्रत्यक्ष होता है। (नमो रुचाय०) उस अत्यन्त आनन्दस्वरूप और सत्यमें रुचि करानेवाले ब्रह्मको हमारा नमस्कार हो। और जो विद्वानोंसे वेद विद्यादिको यथावत पढ़के धर्मात्मा अर्थात् ब्रह्मको पिता-के समान मानके सत्यभावसे प्रीति करके सेवा करनेवाला विद्वान् मनुष्य है, उसको भी हम लोग नमस्कार करते है।

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे ॥२१॥

(रुचं ब्राह्मं०) जो ब्रह्मज्ञान है वही अत्यन्त आनन्द करनेवाला और उस मनुष्य-की उसमें रुचिका वढ़ानेवाला है, जिस ज्ञानको विद्वान् लोग अन्य मनुष्योंके आगे उपदेश करके उनको आनन्दित कर देते हैं। (यस्त्वैवं ब्राह्मणो०) जो मनुष्य इस प्रकारसे ब्रह्मको जानता है, उसी विद्वान्‌के सब मन आदि इन्द्रिय वशमें हो जाते है, अन्यके नहीं।

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ॥२२॥ *

य० अ० ३१।

(श्रीश्चते) हे परमेश्वर जो आपकी अनन्त शोभा स्वरूप श्री जो अनन्त शुभ लक्षण-युक्त लक्ष्मी है, वे दोनों स्त्रीके समान हैं। अर्थात् जैसे स्त्री पतिकी सेवा करती है, इसी प्रकार आपकी सेवा आप ही को प्राप्त होती है, क्योंकि आपने ही सब जगत्‌को शोभा और शुभ लक्षणोंसे युक्त कर रक्खा है। परन्तु ये सब शोभा और सत्य-भाषण आदि धर्म लक्षणों-से लाभ ये दोनों आपकी ही सेवाके लिये हैं। सब पदार्थ ईश्वरके अधीन होनेसे उसके विषयमें यह पत्नी शब्दके रूपकालङ्कारसे वर्णन किया है। वैसे ही जो दिन और रात्रि ये दोनों बगलके समान हैं तथा सूर्य और चन्द्र ये दोनों आपके बगलके समान वा नेत्रस्थानी हैं, और जितने ये नक्षत्र है वे आपके रूपस्थानी है, और द्यौः जो सूर्य्य आदिका प्रकाश और विद्युत् अर्थात् बिजुली ये दोनों मुख स्थानी हैं। तथा ओठके तुल्य और जैसा खुला होता है इसी प्रकार पृथिवी और सूर्यलोकके वीचमें जो पोला है सो मुखके सदृश है। (इष्णान्) हे परमेश्वर आपकी दयासे (अमु०) परलोक जो मोक्षसुख है उसको हमलोग प्राप्त होते हैं। इस प्रकारकी कृपादृष्टिसे हमारे लिये इच्छा करो तथा मैं सब संसारमें सब गुणोंसे युक्त होके सब लोकोंके सुखोंका अधिकारी जैसे होऊँ वैसी कृपा और उस जगत्‌में मुझको सर्वोत्तम शोभा और लक्ष्मीसे युक्त सदा कीजिये। यह आपसे हमारी प्रार्थना है। सो आप कृपाकर पूरी कीजिये ॥२२॥

---

* ऋग्वेदमें पुरुषसूक्तमें १६ ही मन्त्र है। यजुर्वेदमें २२ हैं। यहा यजुर्वेदके ६ मन्त्र और दे दिये गये हैं।

छठा अध्याय

यजुर्वेद

हम पहले देख आये हैं कि मत्स्यपुराणके अनुसार त्रेतायुगमें एक ही वेद था, वह था—यजुर्वेद। इसी एक यजुर्वेदके अन्तर्गत सभीका समावेश था। परन्तु इसी एक यजुर्वेदके शासनके कारण त्रेतायुगमें यज्ञकर्मकी ही प्रधानता थी। हरिश्चन्द्रको पुत्र चाहिये यज्ञ करते हैं, त्रिशङ्कुको स्वर्ग चाहिये यज्ञसे अभीष्ट साधते हैं दशरथ पुत्रेष्टि यज्ञ करते हैं। विश्वामित्र यज्ञकी ही रक्षाके लिये राघव-बन्धुओंको ले जाते हैं। धनुषयज्ञसे ही विवाह होता है। ऋषियोंके यज्ञोंमें बाधा डालनेवाले राक्षस भी विजय कामनासे यज्ञ करते हैं। राज्याभिषेक यज्ञसे ही होता है और प्रत्येक प्रतापशाली राजा अश्वमेध यज्ञ करनेका अभिलाषी होता है। यजुर्वेद यजन करनेका ही वेद है। ऋग्वेदके मन्त्र यज्ञमें काम आते हैं। साम मन्त्रोंका गान होता है। व्यक्तिगत इष्टि यज्ञोंमें अथर्ववेद-विहित प्रयोग होते हैं। इस प्रकार यजुर्वेदकी सर्वग्राहिता सुसङ्गत है।

कूर्म पुराणमें ४९वें अध्यायमें लिखा है—

ऋग्वेदः श्रावकं पैलं जग्राह स महामुनिः।
यजुर्वेद प्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च॥
जैमिनं सामवेदस्य श्रावकं सोऽन्वपद्यतः।
तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुं ऋषिसत्तमं॥
एक आसीत् यजुर्वेदस्तच्चतुर्धाव्यकल्पयत्।
चातुर्होत्रमभूत् यस्मिंस्तेन यज्ञमथाकरोत्॥
आध्वर्यवं यजुर्भिःस्यात् ऋग्भिर्होत्रं द्विजोत्तमाः।
उद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः॥
ततः सऋच उधृत्य ऋग्वेदं कृतवान् प्रभुः।
यजुर्भिश्च यजुर्वेदं सामवेदं च सामभिः॥
एकविंशति भेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा।
शाखायास्तु शतेनाथ यजुर्वेदमथाकरोत्॥

इस प्रकार कूर्मपुराण भी मत्स्यपुराणका समर्थन करता है।

यजुर्वेदके दो संस्करण या दो प्रकारके पाठ हैं। एकका नाम शुक्ल यजुर्वेद है दूसरेका नाम कृष्ण यजुर्वेद। शुक्ल यजुर्वेदमें १५ शाखाएँ हैं। काण्व, माध्यंदिन, जाबाल, बुधेय, शाकेय, तापनीय, कापील, पौंड्रवहा, आवर्त्तिक, परमावर्त्तिक, पाराशरीय, वैनेय, बौधेय, औधेय और गालव। इन समस्त शाखाओंको एकत्र वाजसनेयी शाखा भी कहते हैं। चरणव्यूहमें लिखा है। "द्वेसहस्रे शतन्यूनं मंत्रा वाजसनेयके। तावत्त्वन्येन संख्यातं बालखिल्यं सशुक्रियम्। ब्राह्मणस्य समाख्यातं प्रोक्तमानाच्चतुर्गुणम्"।

वाजसनेय अर्थात् शुक्ल यजुर्वेद संहितामें १९९० मन्त्र हैं। बालखिल्य शाखाका भी यही परिमाण है। इन दोनोंसे चार गुणा अधिक इनके ब्राह्मणोंका परिमाण है। कृष्ण यजुर्वेदका दूसरा नाम तैत्तिरीय संहिता है—काठक, कपिस्थल-कठ, मैत्रायणी और तैत्तिरीय ये चार शाखायें मिलाकर कृष्ण यजुर्वेद कहा जाता है। दोनोंमें कहीं कहीं पाठ और अधिकांश उच्चारणके भेद हैं। वेदके मन्त्रोंमें उच्चारणकी ही प्रधानता होनेसे गुरुमुखसे श्रवण करना अनिवार्य था। अत्यन्त दीर्घ कालकी परम्परामें उच्चारणोंका प्रभेद पड़ जाना कोई आश्चर्यकी बात न थी, और विषयके क्रमका भिन्न-भिन्न परम्पराओंमें विपर्य्यय हो जाना भी स्वाभाविक ही था। ऋचायें वही हैं, गद्य और पद्य दोनों अंश दोनों वेदोंमें वहीं हैं, परन्तु विषय-क्रम और उच्चारण शाखाओंके प्रभेदके अनुसार भिन्न हो गये हैं। इस परम्परा-भेदके साथ-साथ देश-भेद होना भी अनिवार्य ही था। भारवर्षकी विस्तीर्ण भूमिमें देश-विशेपमें वेद-विशेषकी प्रधानता हो गयी। आज यह बात प्रसिद्ध हैं कि बङ्गाल सामवेदी, मध्यदेश यजुर्वेदी और महाराष्ट्र आदि दक्षिण देश ऋग्वेदी हैं। अर्थात् इन देशोंमें इन वेदोंकी प्रधानता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि और वेदोंकी परम्परावाले लोग इन देशोंमें नहीं रहते। प्रत्येक देशमें शाखा और परम्पराके हिसाबसे एक एक वेद बँटा हुआ है। जैसे उत्तर देशमें यजुर्वेदकी श्यायायन शाखा, मध्यदेशमें आरुणी शाखा और पूर्व देशमें आलम्बी शाखा प्रधान मानी जाती है। परन्तु यह सब बातें प्रायः शास्त्रीयहैं, सार्वजनीन नहीं।

यजुर्वेदकी माध्यंदिन शाखा अथवा वाजसनेय संहिताके ही क्रमसे हम यहाँ शुक्ल-यजुर्वेदका विषयसार देते हैं। इसमें चालीस अध्याय हैं। उन्तालीस अध्यायोंतक तो यज्ञोंका ही वर्णन है। चालीसवें अध्यायमें सारी संहिताका उपसंहार हैं। इस प्रकरणके अन्तमें हम चालीसवाँ अध्याय उद्धृत करेंगे जो लोकमें ईशावास्योपनिषद्‌के नामसे प्रसिद्ध है।

पहिले अध्यायमें यह विषय दिये हुए हैं—

अमावस और पूर्णिमाके यज्ञोंका विधान, वत्सोंका लगाना, दूध दोहना, दूधकी शुद्धि, त्यागव्रत, चावलोंका पिण्ड अग्निको अग्निष्टोमको, हविष्यान्न, यज्ञके जलका आनयन तथा पवित्रीकरण, कृष्ण मृगकी छालाका प्रस्तरण, अन्न कूटकर पाक करना, पाषाणका मृग-छालापर रखना, हविष्यान्न विभाग, असुर अररुका निवारण, वेदीके तीनों ओर रेखायें खींचना, 'प्रेतों पिशाचोंका निवारण, यजमान-पत्नीका ग्रन्थिबन्धन।

दूसरे अध्यायका विषयसार यह है—

समिधा, वेदी और कुशोंका मार्जन, कुशोंपर प्रस्तर संनिधान, समिधाका वेदीपर रखकर अग्निका आरम्भ, असुरोंका निवारण, प्रस्तर और स्रुवाओंका रखना, अग्निको होता नियुक्त करना, यज्ञरक्षार्थ प्रार्थना, समिधाका अभिषेक और अग्निनिक्षेप, यजमान-पत्नीकी ग्रन्थि खोलना, वेदीका जल-सिञ्चन, राक्षसोंका भाग, विष्णु त्रिविक्रम, व्रत-समाप्ति, पिण्ड, पितृयज्ञ, प्रेत-निवारणार्थ रेखा खींचना, पितरोंके लिये सूत्र ऊर्ण या केशका वस्त्रार्थ प्रदान, यजमान-पत्नीका पुत्रार्थ मंत्रोच्चारण, हविष्यान्नपर जलधारा।

तीसरे अध्यायका विषयसार यह है—

अग्न्याधान, आहवनीय, दक्षिणाग्नि, अग्निहोत्र। प्रातःतथा सायंका गोदोहन, गार्हपत्य

अग्निपूजन, गोगुण-गान, सावित्री, गार्हपत्य तथा आहवनीय अग्नियोंका पूजन, अग्नि पुरिष्य-का पूजन, पाक्षिक यज्ञ, यजमान तथा उसकी दीक्षा, पत्नीकी दीक्षा, शाकमेध दान, रुद्र-त्र्यम्बकका आहुति-सहित पूजन, यजमानका यज्ञार्थ मुण्डन ।

चौथे अध्यायका विषयसार यह है—

सोमयाग, अपसुदीक्षा औदग्रभण, कटिबन्धन, कृष्ण मृगशिर-बन्धन, घृतान्नपाक हिरण्यवस्थाहुति, गोक्रय, सोमस्तुति, सोमक्रय, सोमप्रवेश ।

पाँचवें अध्यायका सार यह है—

सोमातिथ्य, तनूनपातत्यग्निक आह्वान, सोमाप्यायन, सोमवेदीकी तय्यारी और कुण्डके चतुष्कोणका अभिषेचन, हविर्धानका निर्माण, होत्र्याधानका निर्माण, धिष्ण्याधिका निर्माण उपरबकरण, होत्र्याधानमें उदुम्बस्तम्भ स्थापन, होत्र्याधानका आवरण, धिष्णियोंका संस्कार, अग्नीध्रपर अग्न्याधान, सोमकुण्ड, सोम पात्रादिका रखना, कृष्णसार चर्मपर सोमकी स्थापना, पशु-यज्ञ, पूर्वनिर्माण ।

छठे अध्यायका सार यह है—

यूपको खड़ा करना, बलिपशुका बन्धन तथा बध, मांसबलि, विभक्तांशका पुनः संयोग । पुनरुज्जीवित पशुका स्वर्गगमन, सोमयाग, सोमनिष्कर्षमें वसातीवरी जलका प्रयोग, सोमका प्रेषणार्थ आनयन, प्रातःपेषण, उपांशु निग्राभ्याजल, सोम-निष्कर्षण ।

सातवें अध्यायका विषय यह है—

ग्रह, ग्रहण, उपांशुग्रह, अन्तर्याम ग्रह, ऐन्द्रवायव ग्रह, मैत्रावरुण ग्रह, अश्रितम ग्रह शुद्धग्रह, मन्थन ग्रह, आग्रहायण ग्रह, उकथ्य ग्रह, विप्रुद, होम, अवकाश मन्त्र, ऋतु ग्रह, ऐन्द्राग्नि, ग्रहवैश्वदेव, ग्रह माध्याह्न निष्कर्ष, मरुतीय ग्रह, माहेन्द्र ग्रह, दाक्षिण होम ।

आठवें अध्यायका विषयसार यह है—

सायं ग्रहण, आदित्यग्रह, सावित्री ग्रह, महा वैश्वदेव ग्रह, पातीवत ग्रह सोमाय, पातीवत ग्रह अग्नये, हारियोजन ग्रह इन्द्राय, समिष्ट यजुः अवभृथ, वसाकी आहुति, गर्भ वत्सकी आहुति, अतिरिक्त सोमयाग, षोडशी, द्वादशी, अतिग्राह्यास, गवामयन, गर्ग-त्रिरात्रा, महाव्रत्या ग्रह, अदाध्या ग्रह, रात्रोत्थाना, शोधन और प्रायश्चित्तके मन्त्र ।

नवें अध्यायका विषयसार यह है—

वाजपेय, सोमग्रह, सुराग्रह, घोड़ोंका मार्जन और जोतना, दुन्दुभिवाद, मासिक और ऋत्विक तर्पण, यजमानका राज्याभिषेक, वाजप्रसवनीय, युजितिस, राजसूय, प्रारम्भिक तर्पण, अपामार्ग वा प्रेतनिवारण तर्पण, अष्ट देवसुरोंका तर्पण, राजाभिवादन ।

दसवें अध्यायका विषयसार—

अभिषेक-जलसङ्ग्रह, व्याघ्रचर्म प्रसारण, संस्कार वस्त्राभिधान, तीनों वाणोंका प्रदान, राजागमन यजु, अभिषेचन, गोग्रहण, रथविमोचनीय, दशपेय, संस्रिय, सौत्रामणि ।

ग्यारहवें अध्यायका विषयसार यह है—

अग्निचयन, मृत्तिका-ग्रहण, खनन, कमल-पत्र, ऊर्ध्व सन्धान, आवहनीयपर ऊर्ध्व अग्नि, पुरिष्य-स्तवन ।

बारहवें अध्यायका विषयसार यह है—

ऊर्ध्वग्न्याधान, विष्णु त्रिविक्रम, वातसत्र, वनिवाहनं, गार्ह्यपत्यनिर्माण, भूशोधन, इष्टिकानयन, ऊर्ध्वग्नि-मोचन, निर्ऋति वेदि, सीताकरण, जलसिञ्चन, अग्निस्तवन ।

तेरहवें, चौदहवें और पन्द्रहवें अध्यायका विषयसार यह है—

कमलपत्र, हिरण्यखण्ड, हिरण्यपुरुष, इष्टिका, दूर्वा, द्वियजुः, रेतसिञ्च तथा ऋतव्या इष्टिकायें, आषाढा इष्टिका, कूर्म, मुसल-ऊखल, ऊर्ध्य, बलिशिरस, हिरण्य-समिधा, अपूर्ण कुण्ड यजन, अयस्या छन्दस्या और प्राणभृत इष्टिकायें, द्वितीय स्तर, अश्विनी ऋतव्या, वैश्वदेवी प्राणभृता और वयस्या इष्टिकायें, तीसरा स्तर, दिश्या, विश्वज्योति, रितव्या, नभस, नभस्या, ईष ऊर्ज, प्राणभृता छन्दस्या और बालखिल्या इष्टिकायें, चौथा स्तर, स्तोमस्पृत ऋतव्या और सृष्टि इष्टिकायें, पाचवां स्तर असपत्ना, विराजः, स्तोमयाज्ञा, पञ्चचूड़ा, छन्दस्या, गार्हपत्यग्नि, पुनश्चिति, ऋतव्या, विश्वज्योतिः, लोकप्रीणा, विकर्णी, हिरण्य विकर्णी ।

सोलहवें अध्यायमें आदिसे अन्ततक शत-रुद्रीय है ।

सतरहवें अध्यायका विषयसार यह है—

वेदीपर अधिकार, अवका, वेदीका आरोहन, अग्निका आवाहन, मधुपर्क, अग्नि स्तवन, इन्द्रस्तवन, श्वेत वत्सवाली श्यामा गौके दुग्धसे तर्पण, त्रिकाष्ठ, मरुतको सप्तहवि-ष्यान्न, घृत-प्रशंसा ।

अठारहवें अध्यायका विषयसार यह है—

अग्नि राजा, वसोर्धारा, अर्धेन्द्र, जिग्राह, यज्ञक्रतुः, स्तोम, नाम कल्प, वाज-प्रसवीय, राष्ट्रभृत, युद्धरथ, वायु, अर्काश्व, मेघ-सन्तति, अग्नियोजन, समिष्ट यजुः, अग्न्याधान ।

उन्नीसवें अध्यायका विषयसार यह है—

सौत्रामणि, अश्विनीकुमार, इन्द्र और सरस्वतीको दूध, यजमानकी शुद्धि, सौत्रामणि और सोमयाग एक है । सुराका परिवर्तन, दक्षिणाग्निमें सुराका हवन, पितरोंका स्तवन, शतछिद्र सुराघर, यजमानका प्रसादपान, सोमपाः पितरोंके लिये यजु, बर्हिषद पितरोंके यजु, अग्निश्वात्ताः पितरोंके यजु, सब प्रकारके पितरोंका स्तवन, इन्द्र और अग्निका आह्वान, वसाकी ३२ आहुति, इन्द्रकी पुनरुत्पत्ति ।

बीसवें अध्यायका विषयसार यह है—

आसन्दी, यजमानका स्वमार्जन, स्वकल्याण मन्त्र, अवभृथ, अघमर्षण, आहवनीय अग्निपर अभिधा, इन्द्रार्थ हविष्यान्न, तैंतीसवीं आहुति, अवशिष्ट हवनीयका आघ्राण, आप्रसूक्त, यज्ञमें इन्द्रका आवाहन, अश्विनीकुमारों तथा सरस्वतिका स्तवन, अग्नि-स्तवन, इन्द्र और अश्विनियोंका निमन्त्रण ।

इक्कीसवें अध्यायका विषयसार यह है—

वरुण-स्तवन, हविष्यान्न-प्रदान, अग्नि-स्तुति, अदिति-पूजा, मित्रावरुणका हवन, इंद्रसूक्त, त्रिविध देवताओंकी पूजाके लिये होताको आदेश, सौत्रामणिका उपसंहार ।

बाईसवें अध्यायका विषयसार यह है—

अश्वमेध, यजमानको हिरण्याभूषित करना, अश्वका मार्जन, दस देवताओंको हविष्य,

सवित्री यज्ञ, अग्न्यावाहन, अश्वरक्षार्थ मन्त्र, प्रजापति आदि देवताओंकी स्तुति, राज्यके कल्याणके लिये राजाकी प्रार्थना, देवस्तुति ।

तेईसवेंसे पचीसवें अध्यायतकका विषयसार यह है—

अश्वके लौटानेपर रीतियां, बलि पशुओंकी सूचि, अश्वमेध यज्ञमें अश्वके भुने मांसको प्रजापति आदि समस्त देवताओंको आमन्त्रणपूर्वक आभक्ष, अश्वप्रशंसा, अश्वमेध यज्ञका उपसंहार ।

छब्बीसवेंसे उन्तीसवें अध्यायतकका विषयसार यह है—

विविध यज्ञोंके अधिक विधान और मन्त्र, सौत्रामणिके विशेष यज्ञ, आप्रसूक्त, अश्वमेधके पूरक यज्ञ, सूर्य और अश्वको एक मानकर स्तुति, आप्रसूक्त, युद्धके साधनों और शस्त्रास्त्रोंकी प्रशंसा, २४ वें अध्यायकी बलिपशु नामावलिका परिशिष्ट ।

तीसवें और इकतीसवें अध्यायमें पहिले पुरुषमेधका वर्णन है—फिर उसके लिये उपयुक्त उन स्त्रियों और पुरुषोंका वर्णन है जो विविध देवताओंके लिये मारे जा सकते हैं । फिर पुरुषमेधके सम्बन्धमें ही पुरुषसूक्त दिया गया है और अन्तमें सबसे पहिले पुरुषमेध करनेवालेका स्तवन है ।

बत्तीसवें और तैंतीसवें अध्यायमें सर्वमेध यज्ञके विधान और मन्त्र हैं । यजमानकी प्रशंसा, विद्या बुद्धि ऐश्वर्य और कल्याणकी प्रार्थना है । सर्वमेधके विशेष मन्त्र और यजु हैं । अग्नि, इन्द्र, सूर्य और विविध देवताओंकी स्तुतिके मन्त्र हैं ।

चौंतीसवें अध्यायमें शिवसङ्कल्प उपनिषद है, साधारण यज्ञके विविध विधान हैं । भग, पूषण और ब्रह्मणस्पतिकी स्तुति और प्रार्थना है ।

पैंतीसवें अध्यायमें अन्त्येष्टि संस्कार और प्रेतकर्मके समयमें होनेवाले पितृयज्ञके मन्त्र हैं, शुद्धि और कल्याण-प्रार्थनाके मन्त्र हैं ।

छत्तीसवेंसे उन्तालीसवें अध्यायतकका विषयसार—

प्रवर्ग्य सिद्धिके आरम्भिक क्रियाके समयके मन्त्र, धूपकी क्रिया, महावीरकी यात्रा, रौहिण्य तर्पण, धेन्वावाहन, दोहन, महावीराभिषेक, महावीरके रूपमें अग्निस्तवन, प्रवर्ग्यकी रीतिमें दोषनिवारणके लिये प्रायश्चित्त-मन्त्र, विधि, देवताओंका महावीरद्वारा प्रतिनिधित्व, सातों मरुतोंके नाम, विविध देवताओंकी पूजा और प्रवर्ग्यका उद्देश्य ।

चालीसवें अध्यायमें ईशोपनिषद् है । इसमें कुल १८ मन्त्र हैं । इसे इस वेदका उपसंहार समझना चाहिये । उन्तालीस अध्यायोंमें जिस कर्मकाण्डका विस्तारसे वर्णन है । उसे केवल कर्तव्यनिष्ठासे असङ्ग हो करते रहनेसे मनुष्य १०० वर्षतक भी कर्ममें लगा हुआ कर्मसे निर्लिप्त रहता है । इन कर्मोंके करते हुए भी उसे जिस प्रकारके अध्यात्मज्ञानकी आवश्यकता है, उसी अध्यात्मज्ञानको सूक्ष्मरूपसे दर्शाया है । अन्तमें परमसत्यकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना है ।

जैसा हम अन्यत्र कह आये हैं, यजुर्वेदमें ऋग्वेदके दसों मण्डलोंके १००० सूत्र और अथर्ववेदके सातवें काण्डतकके और ९, १०, १२ और १९ वें काण्डके अनेक मन्त्र इस वेदमें स्थल-स्थलपर आये हैं । पाश्चात्य विद्वानोंका यह कहना है कि ऋग्वेद और अथर्व वेदसे यह मन्त्र यजुर्वेदमें लिये गये हैं । मत्स्यपुराणसे यह पता चलता है कि त्रेता युगमें केवल

एक यजुर्वेद रह गया था, जिसमें शेष वेदत्रयका समावेश था। यह दोनों कथन सुसङ्गत जान पड़ते हैं, । हाँ, इतना अवश्य भेद है कि पाश्चात्य विद्वान् इस कारणसे यजुर्वेदको पीछेका सङ्ग्रह ठहराते हैं। परन्तु भारतीय संस्कृति जो वेदोंको अनादि और अपौरुषेय मानती है इस युक्तिमें कोई सार नहीं देखती। इतिहासवादियोंसे इस सम्बन्धमें मतभेद भी है।

ईशोपनिषद्—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्य स्विद्धनम्॥ १॥
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे॥ २॥
असुर्य्यानाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनोजनाः॥ ३॥
अनेजदेकम्मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥ ४॥
तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वदन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य वाह्यतः॥ ५॥
यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेपु चात्मानं ततोन विजुगुप्सते॥ ६॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ ७॥
सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥८॥
अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥ ९॥
अन्यदेवाहुर्विद्यया अन्यदाहुरविद्यया।
इति शुश्रुम धीराणां येनस्तद्विचचक्षिरे॥ १०॥
विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥ ११॥
अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः॥ १२॥
अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे॥ १३॥
सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते॥ १४॥
हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वम्पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये॥ १५॥

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्यव्यूह रश्मीन् समूहः।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमन्तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ १६ ॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्।
ओं क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतोस्मर कृतं स्मर ॥ १७ ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्, विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ १८ ॥

भावार्थ—

यह सारा संसार ईश्वरसे भरपूर है। ईश्वर इसके अन्दर बाहर विद्यमान् है। वही इसका मालिक है। अतः कर्मसे जो तुझे दे उसमें आनन्द मना, लोगोंके पदार्थोंकी अभिलाषा न कर।

मनुष्यको उचित है कि सत्कर्म करता हुआ सौ बरस जीनेकी इच्छा करे। सत्कर्ममें प्रवृत्त हुए बिना असत् कर्मोंसे छूटना असम्भव है। जो कोई आत्मघाती अधर्मी हैं वह मरकर उस गतिको प्राप्त होते हैं जो प्राणपोषक असुरोंकी कहाती हैं। जहाँ केवल अज्ञान ही भरा है और कुछ नहीं।

जो ईश्वर एक सर्वत्र परिपूर्ण अचल एकरस है, मनसे भी वेगवान्, उसको इन्द्रिय नहीं पहुँचती, वह सबसे पूर्व वहाँ है जहाँ इन्द्रियाँ चलके जावेंगी, विषयोंमें गिरनेवाली इन्द्रियोंका उल्लङ्घन करके जीवात्मा उसीमें कर्म करता फल भोगता है, वही सर्वाधार है। ईश्वर मूर्ख अज्ञानियोंकी समझसे बाहर है। वह उसको मनुष्यवत् चलायमान समझते हैं परन्तु वह अचल एक रस है। अज्ञानी उसको दूर समझते हैं परन्तु वह सबके अन्दर बाहर परिपूर्ण है। योगी जब समाधि लगाता है केवल ईश्वरहीके स्वरूपमें मग्न होता है। अपने आपको भी भूल जाता है, तब शोक मोहादि छन्दसे छूटकर जीवन्मुक्त सुख पाता है।

सर्वव्यापक ईश्वर बलस्वरूप, निर्विकार, निराकार, सर्वज्ञ, शक्तिमान् परमात्मा सम्पूर्ण प्राणियोंको वेदविद्याद्वारा सम्पूर्ण कर्मफलका विधान करता है और स्वयं निर्लेप है। केवल ज्ञानशून्य कर्मोंमें लगे रहनेसे मनुष्यका कल्याण नहीं होता। इस जन्ममरणके चक्रसे नहीं छूटता और जो ईश्वर, जीव, प्रकृति, कर्म, पुनर्जन्मादिके ज्ञानमें रत रहता हुआ भी ब्रह्मचर्य्य योगाभ्यासादि कर्म नहीं करता, वह उससे भी अधिक दुःख पाता है। अर्थात् उसको उत्तम देहादिकी भी प्राप्ति नहीं होती।

ज्ञान और कर्मानुष्ठानका फल पृथक् पृथक् है, गुरुजनोंको चाहिये कि, शिष्य वर्गको ऐसा उपदेश दें जिसमें साधक लोग भ्रममें न पड़ें।

विद्वानोंको उचित है कि कर्म और ज्ञानका स्वरूप जानके दोनोंका साथ साथ अनुष्ठान करें, ऐसा करनेसे कर्मद्वारा अन्तःकरण शुद्ध होकर जन्मोद्भव कर्मका संस्कार दूर होगा और ज्ञानद्वारा मुक्त होके ईश्वरके आनन्द भोगका भागी बनेगा।

जो ईश्वरको छोड़कर कारण प्रकृतिको ही सर्वाधिष्ठान समझ रहे हैं वे इस ज्ञानसे दुःख भोगते हैं और जो कार्यरूप जगत्के भोग विलासमें वा मृत पाषाण आदिकी पूजामें लगे रहते हैं वे उससे भी अधिक दुःखको भोगते हैं। ज्ञानी जनोंको उचित है कि कार्य-

कारण जगत्‌की उपासनासे क्या क्या फल होता है यह पृथक् पृथक् व्याख्यादि द्वारा जिज्ञासुओंको दर्शावें।

जबतक कार्यकारण तथा उसके गुणकर्मको न जान ले तबतक उससे छूटना असम्भव है ? अतः इस श्रुतिमें कार्यकारणके यथार्थ ज्ञानसे जो ज्ञानीको लाभ होता है वह बताया है। अर्थात् कार्य जगत्‌के तत्वज्ञान और कारणरूप प्रकृति और उसके गुण कर्मादिके साथ साथ तत्वज्ञानसे फल यह है कि कारण ज्ञानसे दुःखोंको तरकर कार्यस्वरूप संसारमें जीते ही अमृतस्वरूप सुखको प्राप्त करता है ? अतः उभय ज्ञानकी आवश्यकता है।

मोक्षका द्वार धन ऐश्वर्य भोग विलाससे वन्द रहता है। यदि मोक्ष पाना चाहो तो भोगोंको हटाकर मोक्षके साधन करो तो सत्यरूप देखोगे।

प्रभुसे जीवकी अन्तिम प्रार्थना है कि हे पूपन् और हे एकर्षे, हे यमसूर्य प्राजापत्य परमात्मन् ! आप अपने न्यायसे हमको प्राप्त नहीं, अतः ससूह तेज इकट्ठाकर तेजको, और व्यूह रश्मियोंको फैला, आपके दया रूपी ज्ञान-किरणको जो आपका आनन्द-प्रद मोक्ष-स्वरूप है उसको देखूँ। यह जो आप हैं जो आदित्यमें हैं जो सर्वत्र हैं वह मेरेमें भी हैं मैं भी उसीका हूँ वह भी मेरा है।

मोक्षार्थी जीव सदा और अन्तकालमें विशेषतः यह समझे कि मेरा (प्राण) आत्मा विकाररहित जो मोक्ष है उसको प्राप्त हो और शरीरका अन्त तो भस्मतक है। ईश्वर उपदेश देता है कि जीव मोक्षार्थ ओंकार उपासना कर अपने पूर्वार्जित पुण्य सत्कर्मादिको याद कर जैसा कर्म करेगा वैसा ही फल पावेगा।

यह सूत्रात्मा विकाररहित मोक्षका उपाय करे और शरीरका अन्त भस्मतक है। यहाँतक ही प्राणियोंके साथ सम्बन्ध है। मन जो सङ्कल्प-विकल्प करनेवाला है वह ईश्वरके निज नाम ओंकारका वारम्बार ध्यान चिन्तन करे और ज्ञानवानको अपने किये कर्मोंका ही ध्यान करना चाहिये अर्थात् जैसा उसने किया है वैसा ही फल मिलेगा ऐसा समझे, और आत्मा ईश्वरके प्रेममें मग्न हो किसी अन्य वस्तुका कुछ भी ध्यान न करे और अन्तमें यह प्रार्थना करे कि अपना मोक्षका मार्ग आप वतावें और हमारे कर्मोंको जानते हुए जो हमारे लिये योग्य हो सो करें, अपने मार्गमें सरलतासे ले चलें, हम कुछ नहीं देख सकते, केवल नमस्कार ही आपकी भेट करते हैं।❀

❀ ईशोपनिषत्‌की यह व्याख्या स्वामी दयानन्द सरस्वतीकी की हुई है। औरोंने और तरहपर व्याख्या की है।

सातवां अध्याय

सामवेद

पुरुष सूक्तमें—

ऋचः सामानि जज्ञिरे छन्दांसि जज्ञिरे
तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।

इस मन्त्रके अनुसार ऋचाओंके बाद सामोंकी उत्पत्तिका ही नाम लिया गया है। यद्यपि साधारणतया वेदत्रयीमें सामवेदका नाम तीसरा ही आता है। पुरुषसूक्तमें जहाँ ऋचाओं सामों छन्दों और पशुओंकी उत्पत्तिका वर्णन है, वहाँ संहिता नामक सङ्ग्रहकी चर्चा नहीं है। सङ्ग्रह तो अवश्य ही पीछेकी बात है। और यह जैसा कि हम पिछले अध्यायोंमें दिखा आये हैं समय-समयपर सङ्ग्रहकारोंके अनुसार भिन्न भिन्न प्रकारोंसे होते आये हैं। इस संहितामें सभी मन्त्र गाये जानेवाले हैं। इनका नाम साम है। जिन यज्ञोंमें सोमरस काममें लाया जाता था, अर्थात् सोम-यागोंमें उद्गाताओंका यह कर्तव्य था कि सामगान करें। इस संहिताके तीन संस्करण पाये जाते हैं, कौथुमी शाखाका प्रचार गुजरातमें है, जैमिनीयका कर्नाटकमें, राणायणीयका महाराष्ट्रमें है।

कलकत्तेके प्रसिद्ध पण्डित सत्यव्रत सामश्रमीने राणायनीय शाखाके अनुसार बङ्गालकी ऐशयाटिक-सोसायटीद्वारा बहुत उत्तम संस्करण प्रकाशित कराया था।

इस राणायनीय शाखाके भी किसी किसीके मतसे नौ प्रकार बताये जाते हैं, राणायनीय, शाक्षयणीय, सत्य-मुद्गल, मुद्गल, मरास्वन्व, याङ्कन, कौथुम गौतम और जैमिनीय।

सामवेदकी शाखा-परम्पराके सम्बन्धमें प्राच्यविद्या महार्णव श्री नगेन्द्रनाथ वसु 'वेद' शब्द प्रसङ्गमें कहते हैं—

"जैमिनिने अपने पुत्र सुमन्तुको, सुमन्तुने अपने पुत्र सूत्वाको और सूत्वानेअपने पुत्र सुकर्माको, संहिताका अध्ययन कराया था। सुकर्माने सहस्र संहिता शीघ्र अध्ययन करके, सूर्य-वर्चासहस्रको अध्ययन कराया—इसलिये कि अनध्यायके दिन अध्ययन दिया था, देवराज इन्द्रने उनको नष्ट कर दिया। उस समय सुदर्शनने शिष्योंके निमित्त प्रायोपवेशन व्रतका अवलम्बन किया। इन्द्रने देखा कि सुकर्मा ऋषि हमसे क्रुद्ध हो गये हैं इसलिये उनकी सान्त्वना की और वर दिया कि आपके ये दोनों महाभाग, महावीर्य शिष्य, सहस्रसंहिताका अध्ययन करके महाप्राज्ञ और अग्निके तुल्य तेजस्वी होंगे। अतएव हे द्विजसत्तम, आप क्रोध न करें! यशस्वी सुकर्मासे यह कहकर और क्रोध शान्त कराकर देवराज अन्तर्हित हो गये। सुकर्माके शिष्य धीमान पौष्यञ्जी हुए, पौष्यञ्जीके एक हिरण्यनाभ और दूसरे राजपुत्र कौशिक्य नामके दो शिष्य हुए। पौष्यञ्जीने उन दोनोंको पांच पांच सौ संहिता पढ़ायी। हिरण्यनाभके शिष्य प्राच्यसामगके नामसे विख्यात हुए। लोकाक्षि, कुथुमी, कुशीती, और लांगली, पौष्यञ्जीके येही

चार शिष्य संहिताकर्ता हुए। तण्ड्य पुत्र राणायनीय, सुविद्वान् मूलचारी, सकेति-पुत्र और सहसात्यं-पुत्र, ये लोकाक्षिके शिष्य हुए। कुथुमीके तीन पुत्र हुए जिनको कौथुम कहते हैं, शौरिद्र्य और श्रृङ्ग्य-पुत्र, इन दोनोंने भी व्रतका आचरण किया था। राणायनीय और सौमित्री ये दोनों विशेष रूपसे सामवेदमें पारङ्गत हुए।

इसके आगे वसु महोदयने शिष्य-परम्पराकी एक लम्बी तालिका दी है जिनसे संहिताकी अनेक शाखाएँ प्रशाखाएँ बन गयी हैं। इस प्रकार पाठमें उच्चारणमें गानेमें शाखाओंके अनुसार अनेक भेद-प्रभेद हो गये हैं जिनपर विस्तार करना असम्भव है और अनावश्यक भी है।

राणायनीय संहितामें पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक दो विभाग हैं। पूर्वार्चिकमें ग्रामगेय-गान और अरण्य-गान दो विभाग हैं। उत्तरार्चिकमें ऊहगान और ऊह्यगान, ये दो गान हैं। इस संहितामें जितने मन्त्र हैं पाठभेदके साथ ऋग्वेदमें आ चुके हैं। ऋग्वेदका क्रम और है, सामवेदका और। केवल ७५ मन्त्र ऐसे हैं जो ऋग्वेदमें नहीं पाये जाते यह नहीं कहा जा सकता कि जो मन्त्र ऋग्वेदमें भी पाये जाते हैं वह ऋग्वेदसे सामवेदमें आये हैं अथवा सामवेदसे ऋग्वेदमें गये हैं। यह तो प्रसिद्ध बात है कि एक ही संहिताके चार विभाग हुए हैं। यह कैसे कहा जा सकता है कि अमुक मन्त्र अमुक वेदसे लिये गये हैं?

उच्चारणकी दृष्टिसे जैसे उदात्त अनुदात्त स्वरितके लिये अन्य वेदोंमें चिह्न लगाये गये हैं उसी प्रकार सामगायकोंके निर्देशके लिये उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित चिह्नोंके बदले समय-मात्रा निर्देशक, १, २, ३, यह अङ्क दिये गये हैं। इनका विषय स्तुति और प्रार्थनामात्र है। इनके देवता, अग्नि, इन्द्र, मरुत, विश्वेदेवाः, ब्रह्मस्पति, सविता, सोम, पूषण, उषा, वात, वरुण, मित्र, अर्यमा, सरस्वति, विष्णु, त्वष्टा, अदिति, आदित्य, अश्विनीकुमार, तार्क्ष्य पर्वत, सोम, पवमान, सूर्य, सरस्वान्, विश्वकर्मा, द्यौः, पृथ्वी, आपः, बृहस्पति आदि सभी देवता हैं।

उदाहरण रूपसे उत्तरार्चिकके १८वें अध्यायसे ५वां साम हम उद्धृत करते हैं।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पाँ्सुले॥
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
अतो धर्माणि धारयन्॥
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा॥
तद्विष्णोः परमं पदँ् सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्॥
तद्विप्रासो विपन्युवो जागृवाँ्सः समिन्धते।
विष्णोर्यत्परमं पदम्॥
अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णु र्विचक्रमे।
पृथिव्या अधि सानवि॥

इस (सारी सृष्टि) के चारों ओर विष्णुने चक्कर लगा लिया। तीनबार ही अपना चरण रक्खा और उनके चरणरेणुसे समस्त भर गया ॥ १ ॥

तीन ही चरण किये विष्णुने जो पृथिवीके रक्षक हैं जिन्हें कोई छल नहीं सकता। इस प्रकार उन्होंने धर्मोंकी रक्षा की ॥ २ ॥

विष्णुके कर्मोंको देखो जिनसे कि इन्द्रके परम मित्र उन्होंने अपने व्रतोंको दिखाया है ॥ ३ ॥

जिस प्रकार सारे व्योम-मण्डलमें सूर्य चक्कर मार जाता है। उसी प्रकार अपनी दृष्टि फैलाकर सूरिलोग सदा उसी विष्णुके परम पदको देखते रहते हैं ॥ ४ ॥

विष्णुका जो यह परम पद है उसे सदा जागरूक रहनेवाले विप्र लोग पवित्र प्रिय स्तुतियोंद्वारा प्रकाशित करते हैं ॥ ५ ॥

पृथिवीके ऊपर और ऊँचाई परसे जहाँसे विष्णुने चक्कर लगाया उस स्थानसे (स्तुतिके लिये एकत्र हुए) देवतागण हमारी रक्षा करें ॥ ६ ॥

आठवाँ अध्याय

अथर्ववेद

अथर्ववेद नौ भागोंमें विभक्त है। पैपलाद, शौणकीय, दामोद, तोत्तायन, जामल, ब्रह्मपालास, कुनरवा, देवदर्शी, चरणविद्या। अन्य मतसे उन शाखाओंके नाम ये हैं। पैप्पलाद, आन्ध्र, प्रदात्त, स्नात, श्नौत, ब्रह्मदावन, शौनक, देवदर्शती, और चारणविद्या। इनके सिवाय तैत्तिरीयक नामके दो प्रकारके भेद देख पड़ते है। यथा औरव्य और काण्डिकेय। फिर काण्डिकेय भी और पांच भागोंमें विभक्त है। आपस्तम्भ-बौधायन, सत्यावाची, हिरण्य-केशी और औधेय।

मन्त्रभाग अर्थात् अथर्ववेदकी संहितामें बीस काण्ड हैं। फिर इन बीस काण्डोंको अड़तीस प्रपाठकोंमें विभक्त किया है। इनमें सातसौ साठ सूक्त हैं और छः हज़ार मन्त्र हैं। किसी किसी शाखाके ग्रन्थमें अनुवाक विभाग भी पाये जाते हैं। अनुवाकोंकी संख्या अस्सी है। शतपथ ब्राह्मणमें अथर्व वेदके पर्व-विभागका उल्लेख है। पर अब जो अथर्व वेदकी पोथियाँ पायी जाती हैं उनमें कहीं पर्व-विभाग नहीं दीखता। शौनक शाखाकी संहिता और पिप्पलाद शाखाकी सहिता अब भी प्रचलित है। यद्यपि अथर्व वेदका नाम सब वेदोंके पीछे आता है तथापि यह समझना भूल होगी कि यह वेद सबसे पीछे बना है। वैदिक साहित्यमें अन्यत्र भी अथर्वण शब्द आया है, और पुरुषसूक्तमें छन्दोंसे अथर्ववेद ही अभिप्रेत जान पड़ता है। किसी किसीका कहना है कि ऋक्, यजु और साम यही तीन त्रयी कहलाते हैं। अथर्व वेद त्रयीसे बाहर है। पच्छाहीं विद्वान कहते हैं कि अथर्व वेद पीछे बना है। हम यह अन्यत्र कह चुके हैं कि ऋक्, यजु और साम यह तीनों शब्द मन्त्र-रचनाकी प्रणालीमात्र हैं। इनसे वेदके संहिता विभागकी सूचना नहीं होती। यज्ञ-कार्यको अच्छी तरहसे चलानेके लिए ही चार संहिताओंमें विभाग किया गया है। ऋग्वेद होताके लिए है यजुर्वेद अध्वर्युके लिए है। सामवेद उद्गाताके लिए, अथर्ववेद ब्रह्माके लिए। सायणने इसपर विस्तारसे विचार किया है।

इस वेदको अथर्व नामक ऋषिने देखा इसलिए इसका नाम अथर्ववेद पड़ा। ब्रह्माके लिए यह वेद काममें आता है इसलिए जैसे यजुर्वेदको आध्वर्य्यव कहते हैं, वैसे ही इसे ब्रह्मवेद भी कहते हैं। अथर्व ऋषिके सम्बन्धमें एक पौराणिक किम्वदन्ती भी है कि पूर्व कालमें स्वयम्भू ब्रह्माने सृष्टिके लिए दारुण तपस्या की। अन्तमें उनके रोमकूपोंसे पसीनेकी धारा बह चली। इसमें उनका रेतस् भी था। यह जल दो धाराओंमें विभक्त हो गया। उसकी एक दिशासे रेतस् एकत्र हो कर भृगु नामा महर्षि उत्पन्न हुए। अपने उत्पन्न करनेवाले ऋषि-प्रवरको देखनेके लिए जब भृगु उत्सुक हुए, तब यह देववाणी हुई जो गोपथ ब्राह्मणमें (१।४) दी हुई है। "अथर्ववाग्, एवंएतग् स्वेदाप् स्वन्विच्छ" इस तरह उनका नाम अथर्वन् पड़ा। दूसरी धारासे अङ्गिरा नामक महर्षिकी उत्पत्ति हुई। उन्हींसे अथर्वांगिरसोंकी उत्पत्ति हुई।

कहते हैं कि इस वेदमें सब वेदोंका सार-तत्त्व निहित है। इसीलिए यह सबमें श्रेष्ठ है। गोपथ ब्राह्मणमें लिखा है—

"श्रेष्ठोहि वेदस्तपसोऽधिजातो,
ब्रह्मज्ञानं हृदये संबभूव।" (१।९)
"एतद्वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वंगिरसः।
येऽगिरसः सरसः। येऽथर्वाणस्तद् भेषजम्।
यद् भेषजम् तदमृतम्। यदमृतम् तद् ब्रह्म।" (३।४)

श्री ग्रिफ़िथने अपने अंग्रेजी पद्यानुवादकी भूमिकामें लिखा है कि अथर्वन् ऋषि एक अत्यन्त पुराने ऋषिका नाम है जिसके सम्बन्धमें ऋग्वेदमें लिखा है कि इसी ऋषिने सङ्घर्षण-द्वारा अग्निको प्रगट किया। और पहले-पहल यज्ञोंके द्वारा वह मार्ग तैयार किये जिनसे कि मनुष्यों और देवताओंमें सम्बन्ध स्थापित हो गया, और इसी ऋषिने पारलौकिक और अलौकिक शक्तियोंके द्वारा विरोधी असुरोंको वशमें कर लिया। इसी अथर्वन ऋषिके और अङ्गिरा और भृगुके वशवालोंको जो मन्त्र मिले उन्हींकी संहिताका नाम अथर्ववेद, भृग्वांगिरस वेद या अथर्वांगिरस वेद पड़ा। इसका नाम ब्रह्मवेद भी है। श्री ग्रिफ़िथने इस नामकरणके तीन कारण बताये हैं। एकका उल्लेख ऊपर हो चुका है। दूसरा कारण यह है कि इस वेदमें मन्त्र हैं, टोटके हैं, आशीर्वाद हैं और प्रार्थनाएँ हैं जिनसे देवताओंको प्रसन्न किया जा सकता है, उनकी रक्षा प्राप्त की जा सकती है, हितैषियोंका उपकार किया जा सकता है, मनुष्य, भूत, प्रेत, पिशाच आदि आसुरी शत्रुओंको शाप दिया जा सकता है और नष्ट किया जा सकता है। इन प्रार्थनात्मिका स्तुतियोंको "ब्रह्माणि" कहा है। इन्हींका ज्ञान-समुच्चय होनेके कारण इसका नाम ब्रह्मवेद है। ब्रह्मवेद कहलानेकी तीसरी युक्ति यह है कि जहाँ तीनों वेद इस लोक और परलोकमें सुख प्राप्तिके उपाय बताते हैं और धर्म पालनकी शिक्षा देते हैं, वहाँ ब्रह्मवेद ब्रह्म-ज्ञान सिखाता है और मोक्षके उपाय बताता है।

अथर्ववेदके कम प्राचीन होनेकी युक्तियाँ देते हुए श्री ग्रिफ़िथ यह प्रगट करते हैं कि जहाँ ऋग्वेदमें जीवनके स्वाभाविक भाव हैं और प्रकृतिके लिए गाढ़ प्रेम है वहाँ अथर्ववेदमें प्रकृतिके पिशाचोंको और उनकी अलौकिक शक्तियोंका भय दिखाई पड़ता है। जहाँ ऋक्‌में स्वतन्त्र कर्मण्यता और स्वतन्त्रताकी दशा है वहाँ अथर्ववेदमें अन्धविश्वास दिखाई पड़ता है। उनकी यह युक्ति पच्छहियोंकी ही दृष्टिसे उलटी जँचती है, क्योंकि अन्धविश्वासका युग पहले आता है। बुद्धि, विवेकका पीछे।

अथर्ववेदमें सातसौसाठके लगभग सूक्त हैं जिनमें छः हज़ार मन्त्र हैं। पहले काण्डसे लेकर सातवेंतक किसी विषयके क्रमसे मन्त्र नहीं दिये गये हैं। केवल मन्त्रोंकी संख्याके अनुसार सूक्तोंका क्रम बांधा गया है। पहले काण्डमें चार-चार मन्त्रोंका औसत है। दूसरेमें पांच-पांचका, तीसरेमें छः-छ.का, चौथेमें सात-सातका, परन्तु पांचवेंमें आठसे अट्ठारह मन्त्रोंका क्रम है। छठेमें तीन-तीनका क्रम है। सातवेंमें बहुतसे अकेले मन्त्र हैं और ग्यारह-ग्यारह मन्त्रोंतक का भी समावेश है। आठवें काण्डसे लेकर बीसवेंतक लम्बे-लम्बे सूक्त हैं, जो संख्यामें पचास साठ सत्तर और अस्सी मन्त्रोंतक चले गये हैं। तेरहवें काण्डतक विषयोंका कोई क्रम नहीं

बांधा गया है। विविध विषय मिले-जुले हैं। उनमें विशेष रूपसे प्रार्थना है मन्त्र है और प्रयोग और विधियाँ हैं, जिनसे कि सब तरहके भूत, प्रेत और पिशाच, असुर और राक्षस, डाकिनी, शाकिनी, वेताल आदिसे मनुष्य बच सके। जादू टोने करनेवालों और करनेवालियों से, सर्पोंसे, नागोंसे और अनेक प्रकारके हिंसक जन्तुओंसे और रोगोंसे बचाव रहे। उनमें सन्तानके लिए, सर्व साधारणकी रक्षाके लिए, व्यक्तिकी रक्षाके लिए, विशेष प्रकारकी ओषधियोंमें विशेष गुणोंके आवाहनके लिए, मारण मोहन उच्चाटन वशीकरण आदि प्रयोगों-के लिए, सौख्य सम्पत्ति व्यापार और जुए आदिकी सफलताके लिए प्रार्थनाएँ भी हैं और मन्त्र भी हैं। निदान घरेलू कामोंमें और घटनाओंमें सब तरहकी सफलता और आवश्यकता-की पूर्तिके उपाय हैं। चौदहवेंसे लेकर अठारहवें काण्डतक पांच काण्डोंमें विषयोंका क्रम निश्चित है। चौदहवें काण्डमें विवाहकी रीतियोंका वर्णन है। पन्द्रहवें सोलहवें और सतरहवें काण्डमें कुछ विशेष प्रकारके मन्त्र हैं। अठारहवेंमें अंत्येष्टि क्रियाकी विधियां हैं और पितरोंके श्राद्धकी रीतियां हैं। उन्नीसवेंमें विविध मन्त्रोंका सङ्ग्रह है। बीसवें काण्डमें इन्द्र सम्बन्धी सूक्त हैं जो ऋग्वेदमें भी प्रायः आये हैं। अथर्ववेदके बहुतसे सूक्त, लगभग सप्तमांशके, ऋग्वेदमें भी मिलते हैं। कहीं कहीं तो ज्योंके त्यों मिलते हैं और कहीं कहीं महत्वके पाठान्तर भी हैं। सृष्टि और ब्रह्मविद्याके भी अनेक रहस्य इस वेदमें जहाँ-तहाँ आये हैं जिनका विस्तार और विकास ब्राह्मणों और उपनिषदोंमें आगे चलकर हुआ है।

इस संहितामें अनेक स्थल अत्यन्त दुरूह हैं। शब्द-समूह हैं जिनके अर्थका पता नहीं लगता। बीसवें काण्डमें, एकसौसत्ताईसवें सूक्तसे लेकर एकसौछत्तीसवें सूक्ततक कुन्ताप नामक विभागमें विचित्र तरहके सूक्त और मन्त्र हैं जो "वृषाकपि" नामक इसके पहलेवाले सूक्तके बाद ब्राह्मणाच्छंसिके द्वारा गाये जाते हैं। इसमें कौरम्, रुशम्, राजि, रौहिण, ऐतश, प्रातिसुत्वन्, मण्डूरिका आदि ऐसे नाम आये हैं जिनका ठीक-ठीक पता नहीं लगता।

ऊपर जो अथर्ववेदका प्रतिपाद्य विषय दिया गया है प्राच्यविद्या-महार्णव श्रीनगेंद्र नाथ वसुके अनुसार अथर्ववेदका प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है। वह लिखते हैं—

"इस ग्रन्थमें नाना ऐहिक फल, शान्ति और पुष्टकर्म, राजकर्म और तुलापुरुष महा-दानादि, और पौरोहित्य और राज्याभिषेक आदि विषयका वर्णन है। यथा—

'पौरोहित्य शांतिक पौष्टिकानि राज्ञाम (?) अथर्ववेदेन कारयेत् ब्रह्मत्वं च।'
(विष्णुपुराण)

'शांति पुष्टयभिचारार्था एकब्रह्मार्त्विगाश्रयाः।
क्रियंतेऽथर्ववेदेन एष्ये वात्मीय गोचराः॥' (भट्टाचार्य्य)
'अभिषिक्तोऽथर्व मंत्रैर्महींभुंक्ते ससागराम्।' (मारकाण्डेयपुराणे)
'पुरोहितं तथाऽऽथर्व मंत्र ब्राह्मण पारगम्।' (मत्स्यपुराण)
'यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शांति पारगाः
निवसत्यपितद्राष्ट्रम् वर्धते निरुपद्रवम्
तस्माद् राजा विशेषेण अथर्वाणम् जितेन्द्रियम्
दानसम्मान सत्कारैर्नित्यं समभिपूजयेत् (अथर्व. परिशिष्ट ४।६)

'त्रयीयांच (?) दंडनीत्यांच कुशलःस्यात् पुरोहितः
अथर्वविहितं कर्म कुर्यात् शांतिक पौष्टिकम् ।' (नीतिशास्त्र)

....

इसके बाद राजकर्म-समुदाय कहा गया है। यथा——शत्रु-हस्तित्रासन, संग्राम-विजय-साधन, इषु-निवारणार्थ खड्गादि सर्वशस्त्र निवारण, शत्रु पक्षीयसेना सम्मोहन, उद्भेदन, स्तम्भन और उच्चाटन, अपनी सेनाका उत्साह-वर्धन और अभय रक्षा, संग्राममें जय और पराजयकी परीक्षा, सेनापति प्रभृति प्रधान नायकोंका जयकरण, शत्रुसेनाके सञ्चरण प्रदेशमें अभिमन्त्रित पाश, असि कश आदिका प्रहरण और प्रक्षेपण, जयकामी राजाका रथमें आरोहण और रणक्षेत्रमें अभिमन्त्रित भेरी, पटहादि सर्वप्रकार वादित्रताड़न, सपत्नक्षय कर्म, शत्रुद्वारा उत्सादित राजाका स्वराष्ट्र प्रवेशोपाय और राज्याभिषेक। पापक्षय, निर्ऋतिकर्म, चित्राकर्मादि, पौष्टिक कर्म, गोसमृद्धि कर्म, लक्ष्मीकर कार्य, पुष्टिनिमित्तमणिवन्धनादि, कृषिपुष्टिकर, समृद्धि-करकार्य, गृह-सम्पत्तिकर कार्य, नवशालानिर्माण विषय, वृषोत्सर्ग, अग्रहायणीयकर्म, जन्मान्तर कृत पाप-जन्य विविध दु.स्साध्यरोगोंकी चिकित्सा (उनमें ज्वर अतिसार बहुमूत्र और सब तरहकी व्याधिया विशेष भावसे वर्णित हैं), शस्त्रादि अभिघात द्वारा प्रवाहित रुधिरका निरोध कर्म, भूतप्रेतपिशाच अपस्मार ब्रह्मराक्षस बालग्रहादि निवारण, वात पित्त श्लेष्माकी औषध व्यवस्था, हृद्रोग और कामिलाश्वित्र निवारण, सन्तत ज्वर, एकाह्निकादि विषमज्वर, राजयक्ष्मा और जलोदरका निवारण, गाय घोड़े आदिका कृमिहरण, कन्दमूल सर्प वृश्चिक प्रभृति स्थावर और जङ्गम विषनिवारण, सिर आँख नाक जीभ कान और ग्रीवादि रोगकी औषध व्यवस्था, ब्राह्मणादिका आक्रोश-निवारण, गण्डमालादि विविध रोगोंकी चिकित्सा, पुत्रादिकाम, स्त्रीकर्म, सुखप्रसवकर्म, गर्भाधान, गर्भबृंहण और पुंसवनादि कर्म, सौभाग्य करण, राजादिमन्युनिवारण, अभीष्ट सिद्ध्यसिद्धि विज्ञान, दुर्दिन अशनि अतिवृष्टि निवारण, सभाजय विवादजय और कलह शमन, स्वेच्छानुसार नदी प्रवाहकरण, वृष्टिकर्म, अर्थोत्थापन कर्म, द्यूतजय कर्म, गोवंश-विरोध निवारण, अश्वशान्ति, वाणिज्य लाभकर्म, स्त्रीगण पाप लक्षण निवारण, वास्तु संस्कार कर्म, गृह प्रवेश कर्म, कपोत, वायसादि द्वारा उपहत गृहमें शान्तिकी विधि, दुष्प्रतिग्रह और आज्य याजनादि दोष निवारण, दुःस्वप्न निवारण, पुत्रके पाप नक्षत्रमें जन्म होनेकी शान्ति, ऋणोपनोदन, दुःशकुन शान्ति, आभिचारिकादि कर्म, प्रकृताभि-चारनिवारण, स्वस्त्ययनादि, आयुष्यकर्म, जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकरण, उपनयन आदि, एकाग्निसाध्य काम्य याग समूह। ब्रह्मौदन, स्वर्गौदनादि, द्वाविंशति सत्र यज्ञ, क्रव्याच्छमन, आवसथ्याधान, विवाह, पितृमेधिक कर्म, पिण्ड, पितृयज्ञ, मधुपर्क, पांशुरुधिरवर्षण, यक्ष-राक्षसादि दर्शन, भूकम्प, धूमकेतु और चन्द्रार्कोपप्लवादि बहुविध उत्पातशान्ति, आज्यतन्त्रविधि, अष्टका कर्म, इन्द्रमद और अध्ययन विधि। यह कौशिक सूत्रके अनुसार हुआ। वैतान सूत्रमें अयनान्त निष्पाद्य त्रयी विहित दर्श, पूर्णमासादि कर्मके ब्रह्मा ब्राह्मणाच्छंसि, आग्नीध्र और होता इन्हीं चार ऋत्विकोंके कर्मकी कर्तव्यता प्रतिपादित हुई है। इस विषयमें अनुज्ञान मन्त्र आदि ब्रह्मके शस्त्रादि, ब्राह्मणाच्छंसिके अन्वाहार्य श्रपन प्रस्थित आज्यादि आग्नीध्रके और प्रस्थित आज्यादि पोताके, यही विभाग देख पड़ता है। इस विषयमें क्रमक्रमसे यज्ञ किस प्रकारका होगा

उसीके बाद यथाक्रम वर्णित है। यथा—प्रथम दर्श पूर्णमास, तदनन्तर अग्न्याधान, अग्निहोत्र, आग्रयणेष्टि, चातुर्मास्य, विश्वेदेव, वरुणप्रघास, शाकमेध, शुनासीरी, पशुयाग, अग्निष्टोमोक्था, षोडश अतिरात्रात्मक, प्रकृतिभूत और चतु.संस्थ सोमयाग, वाजपेय, अप्तोर्याम अग्निचयन, सौत्रामणि, मैत्रावरुणसम्बन्धीय ईक्षेष्टि, गवामयन, राजसूय, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध, बृहस्पतिसव, गोसवादि एकाद, सोमयाग, व्युष्टि, द्विरात्र, प्रकृति और अहीन यज्ञ, रात्रिसत्र समूह, सांवत्सरिकअयन, दर्श-पूर्णमास अयन।

नक्षत्र-कल्पमें पहिले कृत्तिकादि नक्षत्रकी पूजा और होम है। उसके बाद अद्भुत महा शान्ति, निर्ऋति कर्म, अमृतसे लेकर अभय पर्य्यन्त महाशान्तिके निमित्त-भेदसे तीस तरहके कर्म हैं। यथा—दिव्य, अन्तरिक्ष और भूमिलोकके उत्पातोंकी अमृत नामकी महा शान्ति। गतायुके पुनर्जीवन प्राप्तिके लिए वैश्वदेवी शान्ति। अग्निभय निवृत्ति हेतु और सब तरहकी कामना-प्राप्तिके लिए आग्नेयी महा शान्ति। नक्षत्र और ग्रहसे भयार्त्त रोगीके रोगमुक्त होनेके लिए भार्गवी महा शान्ति। ब्रह्मवर्चस चाहनेवालेके वस्त्र ग्यन और अग्नि ज्वलनके लिए ब्राह्मी महा शान्ति। राज्यश्री और ब्रह्मवर्चस चाहनेवालेके लिए बार्हस्पत्य महा शान्ति। प्रजा पशु और अन्नलाभ और प्रजाक्षय निवारणके लिए प्राजापत्य महा शान्ति, शुद्धि चाहनेवालेके लिए सावित्री महा शान्ति। छन्द और ब्रह्मवर्चस चाहनेवालेके लिए गायत्री महा शान्ति। सम्पत्ति चाहनेवाले और अभिचारकसे अभिचर्य्यमाण व्यक्तिके लिए आंगिरसी महा शान्ति। विजय, वल, पुष्टि कामी और परचक्रोच्छेदन कामीके लिए ऐन्द्रि महा शान्ति। अद्भुत विकार निवारण चाहनेवाले और राज्य कामनावालेके लिए माहेन्द्रि महा शान्ति। धन कामी और धन क्षय निवारण कामीके लिए कौवेरी महा शान्ति। विद्या, तेज और धनायुप कामीके लिए आदित्या महा शान्ति। अन्नकामीके लिए वैष्णवी महा शान्ति। भूतिकाम और वास्तुसंस्कार कर्मके लिए वास्तोष्पत्या महा शान्ति। रोगार्त्त और आपद्ग्रस्तके लिए रौद्री महा शान्ति। विजय कामनावालेके लिए अपराजिता महा शान्ति। यम भयके लिए याम्या महा शान्ति। जलभयके लिए वारुणी महा शान्ति। वातभयके लिए वायवी महा शान्ति। कुल-क्षय-निवारण के लिए सन्तति महा शान्ति। वस्त्रक्षय निवारणके लिए त्वाष्ट्री महा शान्ति। बालककी व्याधि निवारणके लिए कौमारी महा शान्ति। निर्ऋति ग्रस्तके लिए नैर्ऋति महा शान्ति। बल चाहने वालेके लिए मारुद्गणी महा शान्ति। अश्व, क्षय, निवारणके लिए गांधर्वी महा शान्ति। गजक्षय-निवारणके लिए ऐरावती महा शान्ति। भूमि चाहनेवालेके लिए पार्थिवी महा शान्ति और भयार्त्तके लिए भया नामक महा शान्ति।

आंगिरस-कल्पमें अभिचार कर्मकालमें कर्त्ता और कारयिता सदस्योंकी आत्मरक्षा करने की विधि बतायी है। उसके बाद अभिचारके उपयुक्त देश काल मण्डपकर्ता और कारयिताके दीक्षादि धर्म समिधा और आज्यादिके सम्हालनेका निरूपण है। फिर अभिचार कर्म समूह और प्रकृताभिचार निवारण और अन्यान्य कर्मादि हैं।

शांति-कल्पमें पहिले वैनायकोंद्वारा ग्रस्तके लक्षण हैं। उनकी शान्तिके लिए द्रव्यके सम्हालने और इकट्ठा करनेकी व्यवस्था है। अभिषेक और वैनायक होमादि हैं। उनकी पूजाका विधान है। और आदित्यादि नवग्रहके यज्ञादि भी इसीमें सन्निविष्ट हैं।"

अथर्ववेदमें उपर्युक्त विषयोके प्राचुर्यके साथ साथ बीचमें सूत्रकी तरहपर ब्रह्मविद्याके गूढ़ विषय निहित हैं जिनका पूरा विकास उपनिषदोंमें पूर्ण रीतिसे हुआ है। यही बात है कि अथर्ववेदकी उपनिषदोंकी संख्या और वेदोंकी उपनिषदोंकी संख्यासे कहीं बड़ी है। अब हम यहाँ उदाहरणकी भांति अथर्ववेदके पहले काण्डके पहले अनुवाकके पहले सूक्तको भाष्य सहित देते हैं। यह अंश पण्डित क्षेमकरणदास त्रिवेदीके अथर्ववेद-भाष्यसे लिया गया है।

मंत्राः १-४। वाचस्पतिर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः, ८×४ अक्षराणि॥

बुद्धि वृद्ध्युपदेशः—बुद्धिकी वृद्धिके लिए उपदेश।

येत्रिषप्ताः परियन्ति विश्वारूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे॥१॥

ये। त्रि-सप्ताः। परि-यन्ति। विश्वा। रूपाणि। बिभ्रतः।
वाचः। पतिः। बला। तेषाम्। तन्वः। अद्य। दधातु। मे॥१॥

सान्वय भावार्थ—

(ये) जो पदार्थ (त्रि-सप्त.) १—सबके सन्तारक, रक्षक परमेश्वरके सम्बन्धमें, यद्वा।

१—शब्दार्थ व्याकरणादि प्रक्रिया—ये। पदार्था। त्रि-सप्ता। तरतेर्ड्रि। उ० ५।६६। इति तृ तरणे—ड्रि। तरति तारयति तार्यते वा त्रि। परमेश्वरो जगद्वा। सख्यावाचीवा। सप्यशूभ्यातुट्च। उ० १।१५७। इति षप समवाये—कनिन्, तुट्च। सपति समवैतीति सप्तन् सख्याभेदो वा। यद्वा, षप समवाये-क्त। त्रिणा तारकेण परमेश्वरेण तारणीयेण जगता वा सह सम्बद्धा पदार्था। यद्वा। त्रयश्च सप्तचेति त्रिषप्ता दश देवा॰। यद्वा। त्रिगुणिता सप्त एक विंशति-सख्याका पदार्था। डच्प्रकरणे सख्यायास्तत्पुरुषस्योपसख्यान कर्तव्यम्। वार्तिकम्, पा० ५।४।७३ इति समासे डच्। विशेष व्याख्या भाषाया क्रियते। परि-यन्ति। इण् गतौ—लट्। परित सर्वतो गच्छन्ति व्याप्नुवन्ति। विश्वा। अशू प्रुषिलटिकणिखटिविशिभ्य क्वन्। उ० १।१५१। इति विश प्रवेशे—क्वन्। शेश्छन्दसि बहुलम्। पा० ६।१।७० इति शेर्लोप। विश्वानि। सर्वाणि। रूपाणि। खष्पाशिल्पशष्प वाष्परूपपर्पतल्पा। उ० ३।२८। इति रु ध्वनौ—प प्रत्ययो दीर्घश्च। रूयते कीर्त्यते तद् रूपम्। यद्वा, रूप रूपकरणे—अच्। सौंदर्याणि, चेतनाचेतनात्मकानि वस्तूनि। बिभ्रत। डु भृञ् धार-णपोषणयो—लट शतृ। जुहोत्यादित्वात् शप श्लु। नाभ्यस्ताच्छतु। पा० ७।१।७८। इति नुम प्रतिषेध। धारयन्त पोषयन्त। वाच। क्विब् वचिप्रच्छिश्रि०। उ० २।५७। इति वच् वाचि—क्विप्। दीर्घश्च। वाण्या। वेदात्मिकाया। पति। पातेर्डति उ० ४।५७। इति पा रक्षणे—डति। रक्षक। सर्वगुरु परमेश्वर। वाचस्पति—षष्ठ्या पतिपुत्र०। पा० ८।३।५३। इति विसर्गस्य सत्वम्। बला। बल हिंसे जीवने च—पचाद्यच्। पूर्ववत् शेर्लोप। बलानि। तेषाम्। त्रिसप्ताना पदार्थानाम् तन्व। भृमृशीङ्०। उ० १।७। इति तनु विस्तृतौ—उ प्रत्यय। तत स्त्रियाम् ऊङ्। उदात्तस्वरितयोर्यण॰ स्वरि-तोऽनुदात्तस्य। पा० ८।२।४। इति विभक्ते॰ स्वरित, उदात्तस्य ऊकारस्य यणि परिवर्त्तिते। तन्वा शरीरस्य। अद्य। सद्य परुत्परार्यैषम ०। पा० ५।३।२२। इति इदम् शब्दस्य अश्भाव, द्यस् प्रत्ययो दिनेऽर्थेच निपात्यते। अस्मिन् दिने, अध्ययनकाले। दधातु। डुधाञ् धारणपोषणयो., दानेच—लोट्। जुहोत्यादि॰। शप श्लु। धारयतु, स्थापयतु, ददातु। मे। मह्यम्, मदर्थम्।

२–रक्षणीय जगत् [यद्वा,–तीनसे सम्बन्धी ३–तीनोंकाल, भूत, वर्त्तमान, और भविष्यत। ४–तीनों लोक, स्वर्ग, मध्य, और भूलोक, ५–तीनों गुण, सत्व, रज और तम। ६–ईश्वर, जीव, और प्रकृति। यद्वा, तीन और सात=दस। ७–चार दिशा, चार विदिशा, एक ऊपरकी और एक नीचेकी दिशा। ८–पाँच ज्ञान इन्द्रिय, अर्थात् कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, और पाँच कर्म इन्द्रिय, अर्थात् वाक, हाथ, पॉव, पायु, उपस्थ। यद्वा, तीन गुणित सात= इक्कीस। ९—महाभूत ५+प्राण ५+ज्ञान इन्द्रिय ५+कर्म इन्द्रिय ५+अन्तःकरण १ [इत्यादि] के सम्बन्धमें [वर्त्तमान] होकर, (विश्वा=विश्वानि) सब (रूपाणि) वस्तुओंको (विभ्रतः) धारण करते हुये (परि) सब ओर (यन्ति) व्याप्त हैं। (वाचस्पति.) वेदरूप वाणीका स्वामी परमेश्वर (तेषाम्) उनके (तन्वः) शरीरके (बलाः=बलानि) बलोंको (अद्य) आज (मे) मेरे लिए (दधातु) दान करे ॥१॥

भावार्थ—आशय यह है कि तृणसे लेकर परमेश्वर पर्यन्त जो पदार्थ संसारकी स्थितिके कारण हैं, उन सबका तत्त्वज्ञान (वाचस्पतिः) वेदवाणीके स्वामी सर्वगुरु जगदीश्वरकी कृपासे सब मनुष्य वेदद्वारा प्राप्त करें और उस अन्तर्यामीपर पूर्ण विश्वास करके पराक्रमी और परोपकारी होकर सदा आनन्द भोगें ॥१॥

भगवान् पतञ्जलिने कहा है—योगदर्शन, पाद १ सूत्र २६।

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

वह ईश्वर सब पूर्वजोंका भी गुरु है क्योंकि वह कालसे विभक्त नहीं होता।

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।
वसोष्पते निरमय मय्ये वास्तुमयिश्रुतम् ॥२॥

पुनः आ। इहि। वाचः। पते। देवेन। मनसा। सह। वसोः। पते। नि। रमय। मयि। एव। अस्तु। मयि। श्रुतम् ॥२॥

२—पुन। पनाय्यते स्तूयत इति। पन स्तुतौ—अर् अकारस्य उत्व पृषोदरादित्वात। अवधारणेन। वारवारम्। आ+इहि। आ+इण् गतौ लोट्। आगच्छ। वाच +पते। म० १। हे वाण्या स्वामिन्, हेब्रह्मन्। वाचस्पतिर्वाच पाता वा पालयिता वा–नि० १०।१७। देवेन। नन्दिग्रहिपचादिभ्योल्युणिन्यच पा० ३।१।१३४। इति दिवु क्रीडाविजिगीषा व्यवहारद्युतिस्तुतिमोदिमदस्वप्न कान्तिगतिषु—पचाद्यच्। दिव्येन, द्योतकेन, प्रकाशमयेन। मनसा। सर्वधातुभ्योऽसुन्। उ० ४।१८९। इति मन ज्ञाने असुन्। चित्तेन, अत करणेन। वसो। शृस्वृ स्निहीति। उ० १।१०। इति वस निवासे आच्छादने–उ प्रत्यय। श्वसो वसीयश्श्रेयसः। पा० ५।४।८०। अत्र वसु शब्दः प्रशस्तवाची। श्रेष्ठ गुणस्य। अथवा छन्दसि वसुनः धनस्य। पते। म० १। पालयित, स्वामिन्। वसोष्पते। षष्ठयाः पतिपुत्र०। पा० ८।३।५३। इति विसर्गस्य सत्वम्। आदेशप्रत्ययो। पा० ८।३।५९। इति षत्वम्। नि। नियमेन, नितराम्। रमय। हेतुमतिच। पा ३।१।२६। इति रमु क्रीडायाम्–णिच्–लोट्। णिचि वृद्धि प्राप्तौ। मिता ह्रस्वः। पा० ६।४।९२। इति मित्त्वात् उपधाह्रस्व। क्रीडय, आनन्दय माम्। मयि। ममात्मनि वर्त्तमानम्। श्रुत श्रूयतेस्म यदिति श्रु श्रुतौ—क्त। अधीतम्, वेदशास्त्रम् ॥

भाषार्थ (वाचस्पते) हे वाणीके स्वामी परमेश्वर ! तू (पुनः) वारम्वार (एहि) आ ! (वसोःपते) हे श्रेष्ठ गुणके रक्षक ! (देवेन) प्रकाशमय (मनसा सह) मनके साथ (नि) निरन्तर (रमय) [मुझे] रमण करा, (मयि) मुझमें वर्त्तमान (श्रुतम्) वेद-विज्ञान (मयि) मुझमें (एव) ही (अस्तु) रहे ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रयत्नपूर्वक (वाचस्पति) परम गुरु परमेश्वरका ध्यान निरन्तर करता रहे और पूरे स्मरणके साथ वेदविज्ञानसे अपने हृदयको शुद्ध करके सदा सुख भोगे ॥

टिप्पणी—भगवान् यास्कमुनिने वाचस्पतिका अर्थ "वाचःपाता वा पालयिता वा"—अर्थात् वाणीकी रक्षा करनेवाला वा करानेवाला किया है—निरु० १०।१७। और निरु० १०।१८।में उदाहरण-रूपसे इस मन्त्रका पाठ इस प्रकार है।

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।
वसोष्पते निरामय मय्येव तन्वं१ मम ॥ १ ॥

हे वाणीके स्वामी तू वारम्वार आ। हे धन वा अन्नके रक्षक ! प्रकाशमय मनके साथ मुझमें ही मेरे शरीरको नियमपूर्वक रमण करा।

मनकी उत्तम शक्तियोंको बढ़ानेके लिये (यजाग्रतो दूरमुदेति दैवम्) इत्यादि यजुर्वेद अ० ३४ म० १–६ भी हृदयस्थ करने चाहिएं।

इहैवाभि वितनूभे आर्त्नी इव ज्यया।
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥३॥

इह। एव। अभि। वि। तनु। उभे इति। आर्त्नी इवेत्यार्त्नी इव। ज्यया वाचः। पतिः। नि। यच्छतु। मयि। एव। अस्तु। मयि। श्रुतम् ॥३॥

भाषार्थ— (इह) इसके ऊपर (एव) ही (अभि) चारों ओरसे (वितनु) तू अच्छे प्रकार फैल, (इव) जैसे (उभे) दोनों (आर्त्नी) धनुष कोटियें (ज्यया) जयके साधन, चिल्लाके साथ [तन जाती हैं]। (वाचस्पतिः) वाणीका स्वामी (नियच्छतु) नियममें रक्खे, (मयि) मुझमें वर्त्तमान (श्रुतम्) वेदविज्ञान (मयि) मुझमें (एव) ही (अस्तु) रहे ॥३॥

भावार्थ—जैसे संग्राममें शूरवीर धनुषकी दोनों कोटियोंको डोरीमें चढ़ाकर वाणसे

३—इह। अत्र, अस्योपरि, अस्मिन् ब्रह्मचारिणि, ममोपरि। अभि। अभित सर्वत। वितनु। तनुविस्तारे—लोट्, अकर्मक.। वितनुहि, वितन्यस्व विस्तृतोभव। उभे। ईदूदेद् द्विवचन प्रगृह्यम्। पा० १।१।११ इति प्रगृह्यम्। द्वये। आर्त्नी। आङ्+ऋगतौ–क्तिन् नकारोपसर्जनम्। पूर्ववत प्रगृह्यम् आर्त्नी, धनुष्कोटी, अटन्यौधनु प्रान्ते। आर्त्नी अर्तन्यौ वारण्यौ वारिषण्यौ वा निरु० ९।३९। ज्यया। ज्या जयतेर्वा जिनातेर्वा प्रजावयतीषूनिति वा निरु० ९।१७। अघ्न्यादयश्च। उ० ४।११२। इति जि जये, वा, ज्या वयोहानौ णिच्—वा, जु रहसि गतौ, णिच्—यक्। निपातनात साधु। यद्वा। अन्येष्वपि दृश्यते। पा० ३।२।१०१। इति ज्यु गत्याम् यद्वा, ज्या वयोहानौ, णिच् ड। टाप्। धनुर्गुणेन, मौर्व्या। वाच +पति म० १॥ वाण्या स्वामी। नि+यच्छतु। नियमतु, नियमे रक्षतु। अन्यत सुगम व्याख्यात च।

रक्षा करता है उसी प्रकार आदि गुरु परमेश्वर अपने कृपायुक्त दोनों हाथोंको [अर्थात् अज्ञानकी हानि और विज्ञानकी वृद्धिको] इस मुझ ब्रह्मचारी पर फैलाकर रक्षा करे और नियम पालनमें दृढ़ करके परम सुखदायक ब्रह्मविद्याका दान करे और विज्ञानका पूरा स्मरण मुझमें रहे ॥३॥ भगवान् यास्कके अनुसार निरुक्त ९।१७ (ज्या) शब्दका अर्थ जीतने वाली यद्वा आयु घटानेवाली अथवा बाणोंको छोड़नेवाली वस्तु है ।

उपहूतो वाचस्पति रुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् ।
सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि ॥४॥

उप-हूतः । वाचः । पतिः । उप । अस्मान् । वाचः । पतिः । ह्वयताम् । सम् । श्रुतेन । गमेमहि । मा । श्रुतेन । वि । राधिषि ॥४॥

भाषार्थ—(वाचस्पतिः) वाणीका स्वामी, परमेश्वर (उपहूतः) समीप बुलाया गया है, (वाचस्पतिः) वाणीका स्वामी (अस्मान्) हमको (उपह्वयताम्) समीप बुलावे । (श्रुतेन) वेदविज्ञानसे (सङ्गमेमहि) हम मिले रहें । (श्रुतेन) वेदविज्ञानसे (मा विराधिषि) मैं अलग न हो जाऊँ ॥४॥

भावार्थ—ब्रह्मचारी लोग परमेश्वरका आवाहन करके निरन्तर अभ्यास और सत्कारसे वेदाध्ययन करें जिससे प्रीतिपूर्वक आचार्यकी पढ़ायी ब्रह्मविद्या उनके हृदयमें स्थिर होकर यथावत् उपयोगी होवे ।

इस सूक्तका यह भी तात्पर्य है कि जिज्ञासु ब्रह्मचारी अपने शिक्षक आचार्योंका सदा आदर सत्कार करके यत्नपूर्वक विद्याभ्यास करें जिससे वह शास्त्र उनके हृदयमें दृढ़भूमि होवे ।

४—उप+हूत । उप+ह्वेञ् आह्वाने—क्त । समीप कृतावाहन, कृतस्मरण. । वाच. + पति. । म० १॥ वाण्या पालयिता, परमेश्वर । उप । समीपे । आदरेण । ह्वयताम् । ह्वेञ्—लोट् आह्वयतु, स्मरतु । श्रुतेन । म० २ । अधीतेन, शास्त्रविज्ञानेन । सम् + गमेमहि । सम् पूर्वकात् गम्लृ सगतौ—आशीर्लिङ् । समो गम्यृच्छि प्रच्छि० । पा० १।३।२९ । इति आत्मनेपदम् व्यवहिताश्च । पा० १।४।८२ इति सम. क्रियापदेन सबन्ध । सगच्छेमहि, सगता भूयास्म । मा + वि + राधिषि । राधससिद्धौ । विराध वियोगे—लुङि । आत्मनेपदमेकवचनम् इडागमश्च । माङि लुङ् । पा० ३।३।१७५ । इति लुङ् । न माङ् योगे । पा० ६।४।७४ । इति माङि अटोऽभाव. । अह वियुक्तोमा भूवम् ।

नवाँ अध्याय

ऋग्वेदका पूरक साहित्य

हम अन्यत्र कह आये हैं कि बहुतोंके मतसे ऋग्वेद शब्दसे केवल संहिता-भागकी सूचना होती है। उसके ब्राह्मण और आरण्यक आदि एक प्रकारके अत्यन्त प्राचीन भाष्य समझे जाने चाहिये। परन्तु यह बात भी नहीं है कि यह पक्ष ब्राह्मणों और आरण्यकोंको प्रामाणिक न मानता हो। इसलिये हम इस अंशको वेदका पूरक साहित्य कहेंगे और प्रत्येक संहिताके लिए एक-एक अध्याय और देंगे।

ऋक् साहित्यमें दो ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। पहिले एक संग्रहका नाम ऐतरेय ब्राह्मण है और दूसरेका नाम शाङ्खायन ' शाङ्खायनका एक दूसरा नाम कौशीतकी ब्राह्मण भी है। इन दोनों ग्रन्थोंका सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट है। दोनों ग्रन्थोंमें जगह-जगह एक ही विषयकी आलोचना की गयी है। किन्तु एक ब्राह्मणमें दूसरे ब्राह्मणके विपरीत अर्थ प्रगट किया गया है। कौशीतकी ब्राह्मणमें जिस तरह अच्छे ढङ्गसे विषयकी आलोचना की गयी है उस तरह ऐतरेय ब्राह्मणमें नहीं है। ऐतरेय ब्राह्मणके पिछले दस अध्यायोंमें जिन सब विषयोंपर विचार किया गया है, शाङ्खायन ब्राह्मणमें उसका उल्लेख नहीं है। किन्तु इस अभावको शाङ्खायन सूत्रोंमें पूरा किया गया है। आजकल जो ऐतरेय ब्राह्मण उपलब्ध है उसमें चालीस अध्याय हैं। इन चालीसों अध्यायोंका आठ पञ्चिकाओंमें और विभाग हुआ है। शाङ्खायन ब्राह्मणमें तीस ही अध्याय हैं। इनसे ऐतिहासिक घटनाओंका विशेष रूपसे पता नहीं लगता। किन्तु ऐतरेय ब्राह्मणके पढ़नेसे ऐतिहासिक बातें मालूम हो जाती हैं। उसमें बहुतसे भौगोलिक विवरण हैं। भारतवर्षके उत्तर प्रदेशमें किसी समयमें भाषा शिक्षाका कहीं केन्द्र था इसका भी पता इन ब्राह्मणोंसे लगता है। इन दोनों ब्राह्मणोंके संग्रहके पहले जो रचना प्रणाली हर तरहपर उत्कृष्ट हो चुकी थी उसका भी कुछ कुछ वर्णन इन दोनों ग्रन्थोंमें मिलता है। इसमें "आख्यान" हैं, "गाथा" हैं, "अभियज्ञ गाथा" भी हैं और "कारिका" आदि आख्यान भी हैं। शाङ्खायनमें पैंगि और कौशीतकीके मतका फिर-फिर अवतरण आया है। और कौशीतकीके अभिमतको ही चरम-सिद्धान्त करके ग्रहण किया गया है। किन्तु ऐतरेय ब्राह्मणमें एक स्थानमें एक बारके सिवाय दूसरी बार कहीं कौशीतक या पैंगका नाम नहीं लिया गया है। कुछ लोग कहते हैं कि यह अंश प्रक्षिप्त है। शुक्र यजुर्वेदमें पैंगि ऋषिका नाम आया है। अन्यान्य ग्रन्थोंमें भी यह नाम पाया जाता है। निरुक्तमें और महाभाष्यमें पैंग कल्प-ग्रन्थकी चर्चा है। सायणके समयमें भी पैंगि-ब्राह्मण प्रचलित था। सायण भाष्यमें इस नामका कई जगह उल्लेख है। कौशीतकका नाम शाङ्खायन ब्राह्मणमें अनेक बार लिखा है। इसी लिये शाङ्खायन ब्राह्मणके भाष्यकारने उसे कौशीतकी ब्राह्मण कहा है और इसी भाष्यकारके भाष्यमें अनेक जगहोंपर महाकौशीतकी ब्राह्मणका नाम भी आया है। इस नामके एक ग्रन्थका भी पता मिलता है।

शाङ्खायन और ऐतरेय ब्राह्मणमें बहुत तरहके आख्यान लिखे गये हैं। उन आख्यानोंमें यह बताया गया है कि किस मन्त्रका, किस अवसरपर, किस प्रकार, आविर्भाव हुआ है।

गोविन्दस्वामी और सायणाचार्यने ऐतरेय ब्राह्मणका भाष्य किया है। माधवपुत्र विनायक नामके एक पण्डितने कौशीतकी ब्राह्मणका एक भाष्य लिखा है।

इन दोनों ब्राह्मण ग्रन्थोंके आरण्यक ग्रन्थ भी हैं। संसारके सब विषयोंका त्याग करके और कर्म-बन्धनोंसे छुटकारा पाकर प्राचीन आर्य ऋषि-लोग निर्जन शान्त अरण्यमें जब रहने लगते थे और ब्रह्मविद्याका अध्ययन करके गम्भीर भावसे परमात्माकी चर्चामें लग जाते थे तो अनेक गम्भीर अनुभूत विचार लोक-कल्याणके लिये प्रगट करते थे। इसी विचार-समूहका नाम आरण्यक है। आरण्यक ग्रन्थोंमें अधिकतर उपनिषद्के ही अंश हैं।

ऐतरेय आरण्यकके पाँच ग्रन्थ आजकल पाये जाते हैं। इनमेंसे हर एकका नाम आरण्यक है। दूसरे और तीसरे आरण्यक तो स्वतन्त्र उपनिषद हैं। दूसरेके उत्तरार्द्धके शेष चार परिच्छेद वेदान्त-ग्रन्थमें गिने जाते हैं। इस लिये उनका नाम ऐतरेय उपनिषद है। दूसरे और तीसरे भागका महीदास ऐतरेयने सङ्कलन किया है। विशालके औरससे और ईतराके गर्भसे महीदासका जन्म हुआ। माताके नामके अनुसार इन्होंने ऐतरेयकी उपाधि पायी। प्रथम आरण्यकका किसने सङ्कलन किया इसका पता नहीं है। चौथे आरण्यकका सङ्कलन शौनकके शिष्य आश्वलायनने किया है।

ब्राह्मण ग्रन्थोंमें कहीं ऐतरेय शब्द नहीं मिलता। छान्दोग्योपनिषद्में ही पहिले-पहिल यह शब्द पाया जाता है। साम सूत्रमें भी ऐतरेय सम्प्रदावका नाम मिलता है। इसके सिवाय मण्डूक या मण्डूकीयकी कथा भी ब्राह्मण ग्रन्थमें है। मण्डूकियोंकी कथा ऋक्-प्रातिशाख्यमें भी है।

कौशीतकी आरण्यकके तीन खण्ड हैं। इसमें दो खण्ड प्रधान हैं जो कर्मकाण्डसे भरे हुए हैं। तीसरा खण्ड कौशीतकी-उपनिषद कहलाता है। यह एक सारगर्भ उपादेय ग्रन्थ है। आनन्दमयके धाममें कैसे प्रवेश किया जाय और उस आनन्दका उपभोग किस प्रकार किया जाय, इस बातपर पहले अध्यायमें विचार हुआ है। गृह्यकृत्य पारिवारिक बन्धन आदि निमित्त बँधे हुए लोगोंके हृदयके भीतर उस समयमें अत्यन्त कोमल हृदयकी वृत्तियोंने किस प्रकार विकास किया है, इसका बहुत ही सुन्दर चित्र दूसरे अध्यायमें मिलता है। तीसरे अध्यायमें ऐतिहासिक वृत्तान्त और इन्द्रके युद्धादिके उपाख्यान लिखे गये हैं। चौथा अध्याय भी आख्यानोंसे भरा है। काशिराज वीरेन्द्रकेशरीने एक ज्ञानी ब्राह्मणको जो उपदेश दिया था वह भी इस अध्यायमें वर्णित है। इसमें भौगोलिक बातें भी दी हुई हैं। हिमवान और विन्ध्यादि पर्वतोंके नाम और पहाड़ियोंके नाम भी पाये जाते हैं। सायणाचार्यने ऐतरेय और कौशीतकी दोनों आरण्यकोंके भाष्य किये हैं। इन दोनों पर भी शङ्कराचार्य्यके भाष्य हैं। आनन्दज्ञान, आनन्दगिरि, आनन्दतीर्थ, अभिनव नारायण, नारायणेन्द्र सरस्वती, नृसिंहाचार्य और बाल-कृष्णदासने शाङ्कर भाष्यकी टीका की है।

इन आरण्यकोंके सिवाय बाष्कल और मैत्रायणी उपनिषदें भी ऋग्वेदकी उपनिषदें कही जाती हैं। बाष्कल श्रुतिकी कथाका सायणाचार्यने भी उल्लेख किया है। ऋग्वेदकी

बाष्कल शाखाका तो लोप हो गया है। उसी लुप्त शाखाकी स्मृति इस बाष्कल उपनिषदमें बची हुई है। बाष्कल उपनिषदका एक उपाख्यान है कि मेषका रूप धरकर कण्वके पुत्र मेधातिथिको इन्द्र स्वर्ग ले गये। मेधातिथिने मेषरूपी इन्द्रसे पूछा कि तुम कौन हो? उन्होंने उत्तर दिया मैं विश्वेश्वर हूँ। तुमको सत्यके समुज्ज्वल मार्गपर ले जानेके लिए मैंने यह काम किया है, तुम कोई आशङ्का मत करो। यह सुनकर मेधातिथि निश्चिन्त हो गये। बहुतसे लोगोंका यह विश्वास है कि बाष्कल उपनिषद प्राचीन उपनिषदोंमेंसे है।

ऋक् साहित्यमें तीसरी चीज सूत्र है। श्रौतसूत्र कर्मकाण्ड-विषयक सूत्र हैं। इन्हें कल्पसूत्र भी कहते हैं। ऋग्वेदके श्रौतसूत्रोंमें सबसे पहले आश्वलायनसूत्र समझे जाते हैं। आश्वलायनसूत्र बारह अध्यायोंमें हैं। शाङ्खायन श्रौतसूत्र अढ़तालीस अध्यायोंमें हैं। ऐतरेय ब्राह्मणके साथ आश्वलायनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। और दूसरे पक्षमें शाङ्खायन ब्राह्मणका शाङ्खायन श्रौतसूत्रोंसे सम्बन्ध है। अश्वल ऋषि विदेह राजा जनकके यहाँ होता थे। किसी-किसीका कहना है कि वही उन सूत्रोंके प्रवर्तक थे, इसीलिए आश्वालायन नाम पड़ा और कुछ लोग कहते हैं कि आश्वलायन पाणिनिके समकालीन थे। हमारे देशके पण्डित इस दूसरी कल्पनाको नहीं मानते। ऐतरेय आरण्यकके चौथे काण्डके प्रणेताका नाम भी आश्वलायन है।

शाङ्खायन श्रौतसूत्रके पन्द्रहवें और सोलहवें अध्यायकी रचना ब्राह्मण ग्रन्थोंकी भाषामें हुई है। उसका ढङ्ग प्राचीन अनुमान किया जाता है। उसका सत्रहवाँ और अठारहवाँ अध्याय स्वतन्त्र है। उनकी भाषा भी स्वतन्त्र है। कौशीतकी आरण्यकके पहले दो अध्यायों-के साथ इन दो अध्यायोंका बहुत घना सम्बन्ध है। आश्वलायन श्रौतसूत्रमें शाख्यायन ब्राह्मण की चर्चा है। आश्वलायन श्रौतसूत्रके ग्यारह भाष्योंका पता लगा है। नारायणगर्ग, देवत्रात, विद्यारण्य-मुनि, कल्याणश्री, दयाशङ्कर, मण्डनभट्ट, मथुरानाथ शुक्ल, महादेव, फुल्लभट्ट सुत, षड्गुरु शिष्य और सिद्धान्ती इन्हीं ग्यारहोंके भाष्य हैं। वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध, पुरुष-मेध और सर्वमेध यज्ञ, शाङ्खायन और आश्वलायन दोनों ही सूत्रोंमें लिखे हुए हैं। किन्तु इन यज्ञ विषयोंका विस्तारसे शाङ्खायनमें ही वर्णन है। नारायण नामके एक और विद्वान्ने शाङ्खा यन श्रौतसूत्रका भाष्य किया है। यह नारायण, और आश्वलायनका भाष्यकार नारायण, दो भिन्न व्यक्तियाँ हैं। नारायण गर्ग, कृष्णजीके पुत्र श्रीपतिके पौत्र, और हैं। शाङ्खायनके भाष्य-कार नारायणके पिताका नाम पशुपति शर्मा है। इन नारायणके ग्रन्थ शाङ्खायनके भाष्य नहीं हैं, पद्धतिमात्र हैं, और ब्रह्मदत्तके अनुकरणपर लिखे गये हैं। श्रीपतिके पुत्र विष्णुने भी क्रतुरत्नमाला नामसे इसी श्रौतसूत्रका एक भाष्य रचा है। मलय-देशवासी वरदपुत्र पण्डित आनर्त्तीयने शाङ्खायन सूत्रका एक भाष्य किया है। इसमेंसे नवें, दसवें और ग्यारहवें अध्याय-का भाष्य नष्ट हो गया है। दास-शर्माने मञ्जूषा लिखकर इन तीन अध्यायोंका भाष्य पूरा किया है। सतरहवें और अठारहवें अध्यायका भाष्य गोविन्दने किया है।

ऋग्वेदके गृह्यसूत्रोंमें भी आश्वलायन और शाङ्खायनके ही गृह्यसूत्र उल्लेख्य हैं। शौनक गृह्यसूत्रका नाम भी सुना जाता है पर देखनेमें नहीं आया है। आश्वलायन गृह्यसूत्रमें चार अध्याय हैं और शाङ्खायनमें छः। इन सब गृह्यसूत्रोंमें विवाह, गर्भाधान, जातकर्म, चूड़ा, उपनयन, वर्णाश्रम धर्म और श्राद्ध आदि दस कर्मोंके विधान सूत्रोंके रूपमें लिखे हुए हैं।

मनुष्यके आश्रम-धर्मके विषयकी सभी बातों और सभी विधियोंपर गृह्यसूत्रोंमें विचार हुआ है। शाङ्खायन गृह्यसूत्रोंके अनेक भाष्य हैं। सुमन्तुसूत्र भाष्य, जैमिनीयसूत्र भाष्य, वैशम्पायनसूत्र भाष्य, और पैलसूत्र भाष्य इत्यादि अनेक गृह्यसूत्र सम्बन्धी वैदिक ग्रन्थ हैं। रामचन्द्र नामक एक विद्वान्ने नैमिषारण्यमें रहकर शाङ्खायन गृह्यसूत्रका एक भाष्य रचा है। किसी-किसीका विचार है इन सब सूत्रोंका सङ्ग्रह नैमिषारण्यमें ही हुआ है। इनके सिवाय दयाशङ्कर गृह्यसूत्र प्रयोगदीप, रघुनाथ अर्थदर्पण, रामचन्द्र गृह्यसूत्र पद्धति, वासुदेव गृह्यसङ्ग्रह और कृष्णजी पुत्र नारायण कृत शाङ्खायन गृह्यसूत्र भाष्य बताये जाते हैं।

ऋक संहिताका एक प्रातिशाख्य सूत्र भी है। प्रातिशाख्य सूत्र शौनकके बनाये हुए कहे जाते हैं। यह शौनक आश्वलायनके गुरुके नामसे प्रसिद्ध हैं। ऋक् प्रातिशाख्य-सूत्र एक भारी ग्रन्थ है। इसमें तीन काण्ड हैं। और प्रत्येक काण्डमें छ' पटल हैं। इसमें सब मिलाकर एक सौ तीन कण्डिकाएँ हैं। इस ग्रन्थके पहले भाष्यकार विष्णुपुत्र हैं। उनके बाद उव्वटने इसका संस्कार किया और एक नया भाष्य तैयार किया। प्रातिशाख्य-सूत्रके आधारपर उपलेख नामका एक संक्षिप्त ग्रन्थ बना है। इस ग्रन्थको प्रातिशाख्य-सूत्रका परिशिष्ट भी कहते हैं।

अनुक्रमणी नामक एक तरहका ग्रन्थ वैदिक साहित्यके अन्तर्गत है। इससे छन्द-देवता और मन्त्र-द्रष्टा ऋषिका पर्याय-क्रमसे पता लगता है। ऋक्सहिताकी अनुक्रमणिकाएँ अनेक हैं। शौनककी रची अनुवाकानुक्रमणी और कात्यायनकी रची सर्वानुक्रमणी यह दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इन्हीं दोपर बहुत विस्तृत और सुलिखित टीकाएँ हैं। टीकाकारका नाम षड्गुरु-शिष्य है। यह पता नहीं कि इनका असली नाम क्या था और उन्होंने कब यह ग्रन्थ लिखा था। परन्तु ग्रन्थकारने अपने छओं गुरुओंके नाम ग्रन्थमें लिखे हैं। वह नाम यह हैं—विनायक, त्रिशूलान्तक, गोविन्द, सूर्य, व्यास और शिवयोगी। इनके सिवा ऋग्वेदका एक ग्रन्थ बृहद्देवता है जिसमें वैदिक आख्यानादि विस्तारसे लिखे हैं। यह ग्रन्थ शौनकका रचा बताया जाता है। इसकी प्राचीनता भी सर्वमान्य है। इसकी रचना श्लोकोंमें हुई है। इस ग्रन्थका उद्देश्य यह है कि प्रत्येक ऋचाके देवताका निर्देश हो। किन्तु ग्रन्थकारने अपना ग्रन्थ पूर्ण करते हुए देवता सम्बन्धी एक विचित्र आख्यान दिया है। बहुतोंका विश्वास है कि यह ग्रन्थ निरुक्तके पीछे बना है। कुछ लोग कहते हैं कि इसे शौनक सम्प्रदायके किसी व्यक्तिने रचा है। इसमें भागुरी और आश्वलायनका नाम है। वलभी ब्राह्मण और निदान-सूत्रका नाम मिलता है। बृहद्देवता ग्रन्थ शाकल शाखाके आधारपर नहीं बना है। उसमें शाकल-शाखाका नाम कई बार आया है। बृहद्देवताके सिवाय शौनक सङ्कलित ऋग्विधान आदि कई ग्रन्थ हैं। इनके सिवा वह वृद्ध परिशिष्ट, शाङ्खायन परिशिष्ट और आश्वलायन गृह्य परिशिष्ट नामके भी ग्रन्थ हैं।

दसवाँ अध्याय

यजुर्वेदका पूरक साहित्य

वैदिक साहित्यमें यजुर्वेदकी ८६ शाखाएँ कही जाती हैं। वैशम्पायन प्रवर्तित तैत्तिरीय संहिताकी २७ शाखाएँ हैं। महीधरने अपने भाष्यमें लिखा है कि वैशम्पायनने याज्ञवल्क्य आदि शिष्योंको वेदाध्ययन कराया। पीछे किसी कारणसे क्रुद्ध होकर याज्ञवल्क्यसे बोले "जो कुछ वेदाध्ययन तुमने किया है वापस करो"। योगी याज्ञवल्क्यने विद्याको मूर्तिमती करके वमन कर दिया। उस समय वैशम्पायन और दूसरे शिष्य उपस्थित थे। वैशम्पायनने उन्हें आज्ञा दी कि इन वान्त यजुओंको ग्रहण कर लो। उन्होंने तीतर बनकर चुन लिये। इसी लिये तैत्तिरीय संहिता नाम पड़ा। बुद्धिकी मलिनताके कारण यजुओंका रङ्ग काला हो गया। इसीसे कृष्ण यजुर्वेद नाम पड़ा। परन्तु योगी याज्ञवल्क्य वेदोंको खोकर बैठनेवाले असामी न थे। उन्होंने सूर्यकी घोर तपस्या आरम्भ की। भगवान् भास्करसे उन्हें शुक्ल यजुः मिले। याज्ञवल्क्यके पिताका नाम वाजसनी था। इसलिए शुक्ल यजुर्वेदका नाम वाजसनेय संहिता पड़ा। जाबाल आदि पन्द्रह शिष्योंने उनसे पढ़ा। उनमें मध्यन्दिन मुख्य थे। वाजसनेय संहिताकी माध्यन्दिन शाखा ही आजकल प्रचलित है। छठे अध्यायमें हमने विस्तार पूर्वक उसीकी सूची दी है।

तैत्तिरीय और वाजसनेय दोनों संहिताएँ एक ही विषयपर हैं और दोनोंमें मन्त्र वही हैं। कुछ थोड़ा सा भेद है। कृष्ण यजुर्वेदमें मन्त्रोंके सङ्ग सङ्ग क्रिया-प्रणाली भी खोलकर बताते गये हैं, और जिन उद्देश्योंसे मन्त्रोंका व्यवहार होता था वह भी बताये हैं। उसके ब्राह्मणग्रन्थ परिशिष्टकी तरहपर हैं। पूरी संहिता ब्राह्मण-भागके ढङ्ग-पर चलती है। वाजसनेय संहितामें मन्त्रभाग स्वतन्त्र है। वही सहिता है। इसमें क्रिया-प्रणाली नहीं दी हुई है। जैसे ऋग्वेद-संहितामें मन्त्र-भाग अलग और ब्राह्मण-भाग अलग है, वैसे ही वाजसनेय संहिताकी भी बात है। इसी लिये छठे अध्यायमें हमने कृष्ण यजुर्वेदका विशेष वर्णन नहीं किया। कृष्ण यजुर्वेदमें होता और उसके कर्तव्य-कार्यके सम्बन्धमें विचार किया गया है। शुक्ल यजुर्वेदमें केवल कहीं कहीं ऐसा है। कृष्ण यजुर्वेदके चरक शाखावालोंको शुक्ल यजुर्वेद वालोंने अध्वर्यु नहीं माना है, प्रत्युत उनकी निन्दा की है।

तैत्तिरीय शब्द कृष्ण यजुर्वेदके प्रातिशाख्य सूत्रमें और सामसूत्रमें भी मिलता है। पाणिनिके अनुसार तित्तिर भी एक ऋषिका नाम था जिससे तैत्तिरीय बना है। आत्रेय शाखाकी संहितानुक्रमणिकामें भी यही व्युत्पत्ति मिलती है। कृष्ण यजुर्वेदकी शाखाओंमें अकेले चरक सम्प्रदायकी ही बारह शाखाएँ थीं—चरक, आह्वरक, कठ, प्राच्यकठ, कपिष्ठलकठ, आष्ठल कठ, चारायणीय, वारायणीय, वार्त्तांतरेय, श्वेताश्वतर, औपमन्यु और मैत्रायण। इन मैत्रायणसे भी सात शाखाएँ हुईं, मानव, दुन्दुभ, आत्रेय, वाराह, हारिद्रवेय, श्याम और शामानयीय। कृष्ण यजुर्वेदका एक सम्प्रदाय खाण्डकीय नामका भी है। कृष्ण यजुर्वेदमें सात

काण्ड हैं, शौर हर काण्डमें कई प्रपाठक हैं। सब काण्डके बराबर विभाग नहीं हैं। किसीमें सात प्रपाठक हैं किसीमें आठ। ऋग्वेदके दशकर्मके मन्त्र और विधिपर इसमें विचार हुआ है। कृष्ण यजुर्वेदके एक सम्प्रदाय ग्रन्थका नाम आपस्तम्ब यजुःसंहिता है। इसमें सात अष्टक हैं। इन अष्टकोंमें चौआलीस प्रश्न हैं। इन चौआलीस प्रश्नोंमें ६५१ अनुवाक हैं। और इन अनुवाकोंमें दो-हज़ार-एक-सौ-अट्ठानवे कण्डिकाएँ हैं। और साधारणतः एक एक कण्डिकामें पचास पचास शब्द हैं। आत्रेय शाखाके यजुर्वेदमें काण्ड, प्रश्न, और अनुवाक यह तीन परिच्छेद हैं। काठकादि संहिताका विभाग और तरहपर है। उनमें पाँच भाग हैं, जिनमेंसे पहले तीनमें चालीस स्थानक हैं। पांचवें भागमें अश्वमेध यज्ञका विवरण है। चरक-शाखाके पहले तीन भागोंका नाम ईथिमिका, मध्यमिका और अरिमिका है। आत्रेय ऋषि पादकर्ता थे। कुण्डिन वृत्तिकार मशहूर हैं और ऊख आत्रेयके गुरु बताये जाते हैं।

यजुर्वेदकी एक मैत्रायणी शाखा भी मिलती है। इसमें पाँच काण्ड हैं। बहुत सम्भव है कि यजुर्वेदके और भी भिन्न भिन्न शाखाओंके संहिताग्रन्थ हों। सायणाचार्यने तैत्तिरीय संहिताका भाष्य किया है। इसके सिवाय बालकृष्ण दीक्षित और भास्कर मिश्रके रचे छोटे छोटे भाष्य भी मिलते हैं।

अनुक्रमणिकामें संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थोंमें किसी प्रकारका भेद नहीं किया गया है। किसी-किसी शाखामें जिन बातोंका उल्लेख संहितामें नहीं है, ब्राह्मण ग्रन्थोंमें उनका उल्लेख हुआ है। जैसे नरमेध यज्ञका उल्लेख संहितामें नहीं है परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थोंमें है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण आपस्तम्ब और आत्रेय शाखाके ब्राह्मण हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मणका भी भाष्य है। इस भाष्यकी भूमिकामें संहिता और ब्राह्मणकी विलगताका विचार किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थमें स्पष्ट रूपसे मन्त्रका उद्देश्य और व्याख्या है। तैत्तिरीय ब्राह्मणके भाष्यकार सायणाचार्य और भास्कर मिश्र हैं। इस ब्राह्मणका शेषांश तैत्तिरीय आरण्यक है। इस आरण्यकमें दस काण्ड हैं। आरण्यक शब्दकी व्याख्या हम पहले कर आये हैं। काठकमें बतायी हुई आरणीय विधिका भी इस ग्रन्थमें विचार हुआ है। इसके पहले और तीसरे प्रपाठकमें यज्ञाग्नि प्रस्थापनके नियम लिखे हैं। दूसरे प्रपाठकमें अध्यायके नियम हैं। चौथे, पाँचवें और छठेमें दर्श-पूर्णमासादि और पितृमेधादि विषयोंपर विचार है। उन्हीं सायण, भास्कर मिश्र और वरदराजने तैत्तिरीय आरण्यकके भाष्यकी रचना की है।

तैत्तिरीय आरण्यकका सातवाँ, आठवाँ और नवाँ प्रपाठक ब्रह्मविद्या-सम्बन्धी होनेसे "उपनिषद" कहलाता है। दसवाँ प्रपाठक याज्ञिकी वा नारायणीयोपनिषदके नामसे विख्यात है। तैत्तिरीयोपनिषदके बहुतसे भाष्य और वृत्तियाँ हैं। इनमें शङ्कराचार्यका भाष्य ही प्रधान है। आनन्दतीर्थ और रङ्गरामानुजने उस भाष्यपर टीका की है। सायणाचार्य और आनन्दतीर्थने भी इस उपनिषदके भाष्य लिखे हैं। अप्पण्णाचार्य, ज्ञानामृत, व्यासतीर्थ और श्रीनिवासाचार्यने इस आनन्द-भाष्यकी टीका की है। इनके सिवाय कृष्णानन्द, गोविन्दराज, दामोदराचार्य, नारायण, बालकृष्ण, भट्ट-भास्कर, राघवेन्द्र यति, विज्ञान-भिक्षु और शङ्करानन्द आदिने वृत्ति लिखी है। सायणाचार्यने याज्ञिकी उपनिषदपर भाष्य लिखा है और विज्ञानात्माने इसपर एक स्वतन्त्र वृत्ति लिखी है और वेद शिरोभूषण नामकी

एक अलग व्याख्या लिखी है। तैत्तिरीयोपनिषद्के तीन भाग हैं। पहिला सहितोपनिषद या शिक्षावल्ली है। इसमें व्याकरण सम्बन्धी कुछ आलोचनाके बाद अद्वैतवादकी श्रुति आदिपर विचार है। दूसरे भागको आनन्दवल्ली कहते हैं और तीसरेको भृगुवल्ली। इन दोनों वल्लियों-का इकट्ठा नाम वारुणी-उपनिषद है। इस उपनिषदमें औपनिषद ही ब्रह्मविद्याकी पराकाष्ठा दिखायी है।

याज्ञिकीया नारायणीय उपनिषदमें मूर्त्तिमान ब्रह्म तत्त्वका विवरण है। शङ्कराचार्यने इसका भाष्य किया है।

इस प्रकार अकेले तैत्तिरीय आरण्यकमें ही बहुतसे विषयोंका विचित्र समावेश हुआ है। श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण और ब्रह्मविद्याका बहुत सा तत्त्व इस ग्रन्थमें आ गया है, नारायणीय उपनिषदके भिन्न भिन्न पाठ भिन्न देशोंमें प्रचलित हैं। द्रविड़, आन्ध्रदेश, कर्नाटक आदि अनेक स्थानोंमें इसे अथर्वोपनिषद भी कहते हैं।

कहते हैं कि वल्लभी और सत्यम्यनी नामके दो ग्रन्थ और भी हैं। पाणिनीय सूत्रोंमें और बृहद्देवता ग्रन्थमें वल्लभी श्रुतिका नाम आया है। सुरेश्वराचार्य और सायणाचार्यने भी उल्लेख किया है। श्वेताश्वतर और मैत्रायणीयोपनिषद यजुर्वेदकी ही उपनिषदें कही जाती हैं। शङ्कराचार्यने दोनोंके भाष्य लिखे हैं। विज्ञान भिक्षुने उपनिषदालोक नामकी विस्तृत टीका की है। नारायण, प्रकाशात्मा, और रामतीर्थने वृत्तियाँ लिखी हैं। इसके सिवा केवल श्वेताश्वतरपर रामानुज, वरदाचार्य, सायणाचार्य और शङ्करानन्दके भाष्य हैं। और नृसिंहाचार्य, बालकृष्ण दास और रङ्गरामानुजकी शङ्कर-भाष्यपर टीका है। श्वेताश्वतर, छागली और मैत्रायणी आदि भिन्न भिन्न यजुर्वेदी शाखाओंके नाम वैदिक साहित्यके इतिहासमें किसी समय मुख्य नाम थे।

सूत्र-ग्रन्थोंकी भी संख्या यथेष्ट है। कठसूत्र मानवसूत्र लौगाक्षसूत्र और कात्यसूत्र आदि यजुर्वेदके श्रौतसूत्र कहे जाते हैं। किन्तु कल्पसूत्रके भाष्यकार महादेवने अपने भाष्यमें इनमेंसे कई सूत्रोंके नाम नहीं लिखे हैं। उनके भाष्यमें यजुर्वेदीय, बौधायन, भारद्वाज, आप स्तम्ब, हिरण्यकेशी, वाधुल और वैखानस सूत्रोंके नाम लिखे हैं। आपस्तम्बसूत्रके बहुतसे भाष्यकारोंके नाम मिलते हैं। धूर्त्तस्वामी, कपर्दिस्वामी, रुद्रदत्त, गुरुदेवस्वामी, करविन्द-स्वामी, अहोबलसूर्य, गोपाल, रामांग्निज, कौशिकाराम, ब्रह्मानन्द आदि। तालवृन्तवासी नामके एक और भाष्यकारका नाम मिलता है। व्यक्तिके नामका पता नहीं है।

आपस्तम्ब श्रौतसूत्रमें यह विषय हैं। तीसरे अध्यायतक दर्श-पूर्णमासका वर्णन है। चौथेमें याजमान, पाचवेंमें अग्न्याधान कर्म, छठेमें अग्निहोत्र कर्म, सातवेंमें पशुबध याग, आठवेंमें चातुर्मास्य, नवेंमें विध्यपराध निमित्त प्रायश्चित, दसवेंसे लेकर सतरहवेंतक सोम-याग, अठारहवेंमें वाजपेय और राजसूय, उन्नीसवेंमें सौत्रामणी, काठकचिति और काम्येष्टि, बीसवेंमें अश्वमेध और पुरुषमेध, इक्कीसवेंमें द्वादशाह और महाव्रत, बाईसवेंमें उत्सर्गियोंका अयन, तेईसवेंमें सत्रायण, चौवीसवेंमें परिभाषा-सूत्र प्रवरखण्ड और हौत्रक, पच्चीसवें और छब्बीसवेंमें गृह्यमन्त्र, सत्ताईसवेंमें गृह्यतन्त्र, अट्ठाईसवें और उन्तीसवेंमें सामयाचारिक धर्म-सूत्र और तीसवेंमें शुल्वसूत्र।

मनुरचित मानव श्रौतसूत्र भी विशेष प्रसिद्ध है। इसमें पहिले अध्यायमें प्राक्सोम

दूसरेमें अग्निष्टोम, तीसरेमें प्रायश्चित्त, चौथेमें प्रवर्ग्य, पाँचवेंमें इष्टि, छठेमें चयन, सातवेंमें वाजपेय, आठवेंमें अनुग्रह, नवेंमें राजसूय, दसवेंमें शुल्व-सूत्र और ग्यारहवें अध्यायमें परिशिष्ट है। अग्निस्वामी, बालकृष्ण मिश्र और कुमारिल भट्ट इसके भाष्यकार हैं।

बौधायन श्रौतसूत्रकी पूरी पोथी तो मिलती नहीं, जहाँतक उपलब्ध है वहाँतककी विशेष सूची विश्वकोषकारने यों दी है। पहलेमें दर्श पूर्णमास, दूसरेमें आधान, तीसरेमें पुनराधान, चौथेमे पशु, पाँचवेंमें चातुर्मास्य, छठेमें सोम-प्रवर्ग, सातवेंमें एकादशिनी पशु, आठवेंमें चयन, नवेंमें वाजपेय, दसवेंमें शुल्वसूत्र, ग्यारहवेंमें कर्मान्तसूत्र, बारहवेंमें द्वैधसूत्र, तेरहवेंमें प्रायश्चित्तसूत्र, चौदहवेंमें काठकसूत्र, पन्द्रहवेंमें सौत्रामणि सूत्र, सोलहवेंमें अग्निष्टोम और सत्रहवेंमें धर्मसूत्र है। केशव कपर्दिस्वामी, केशवस्वामी गोपाल, देवस्वामी, धूर्त्तस्वामी, भवस्वामी, महादेव वाजपेयी और सायणके लिखे बौधायन श्रौतसूत्रपर भाष्य हैं।

जिन लोगोंने कृष्ण यजुर्वेदके श्रौतसूत्र बनाये है उन्हींके रचे गृह्यसूत्र भी हैं। और उन गृह्यसूत्रोंपर भी बहुतसे भाष्य और वृत्तियाँ हैं। आपस्तम्ब गृह्यसूत्रपर कर्काचार्य, सुदर्शनाचार्य, तालवृन्तवासी, हरिदत्त, कृष्णभट्ट, रुद्रदेव, धूर्त्तस्वामी आदिके भाष्य हैं। कपर्दिस्वामी, रङ्गभट्ट आदिने भारद्वाज गृह्यसूत्रपर और मातृदत्तने हिरण्यकेशी गृह्यसूत्रपर भाष्य लिखा है। इनके सिवाय मानव गृह्यसूत्र और उसपर अष्टावक्रकी वृत्ति, लौगाक्षिका काठक गृह्यसूत्र और देवपालकी उसपर वृत्ति और मैत्रायणीय गृह्यसूत्र मिलते हैं। कृष्ण यजुर्वेदीय शुल्वसूत्र और धर्मसूत्र बहुत हैं। बौधायन आदि श्रौत सूत्रकारोंने ही इन सबकी रचना की है। ज्यामितिशास्त्रका मूल शुल्वसूत्रोंमें और स्मृतियोंका मूल धर्मसूत्रोंमें मिलता है।

शुल्वसूत्रोंमें, शङ्कर और शिवदास मानव शुल्वसूत्रके, कपर्दिस्वामी, करविन्द स्वामी, सुन्दरराज आदि आपस्तम्ब शुल्वसूत्रके, द्वारकानाथ और वेङ्कटेश्वर दीक्षित बौधायनीय शुल्वसूत्रके भाष्यकार हैं।

आपस्तम्ब धर्मसूत्रोंको साम्याचारिक सूत्र भी कहते हैं। हरदत्त, अड़वील, धूर्त्तस्वामी और नृसिंहने इन धर्मसूत्रोंकी वृत्तियां रची हैं। गोविन्दस्वामी-रचित बौधायन सूत्रपर और महादेव-रचित हिरण्यकेशी सूत्रपर वृत्तियां हैं।

मैत्रायणीय यजुर्वेद पद्धति नामका भी एक ग्रन्थ मिला है। इसके सिवा कृष्ण यजुर्वेद प्रातिशाख्य सूत्र और अनुक्रमणिका ग्रन्थका नाम भी उल्लेख्य है। अनुक्रमणीयोंमें आत्रेय और काठक शाखाके चारायणीय सम्प्रदायके कृष्ण यजुर्वेदकी अनुक्रमणीका प्रचार अधिक है।

छठे अध्यायमें शुक्ल यजुर्वेदका विषयक्रम विस्तारसे दिया गया है। इसमें चालीस अध्याय हैं। तीन सौ तीन अनुवाक हैं और कुल १९७५ कण्डिकाएँ हैं। अध्याय अनुवाकोंमे और अनुवाक कण्डिकाओंमें विभक्त हैं। पहले पचीस अध्यायोंमें मन्त्र है, फिर आगेके पन्द्रह अध्याय खिल नामसे प्रसिद्ध है। सोलहवें अध्यायमें शतरुद्री, इकतीसवें अध्यायमें पुरुषसूक्त, और चालीसवें अध्यायमें ईशोपनिषद, अध्यात्म-विषयक हैं।

वाजसनेय संहिताके भाष्यकार उव्वट, माधव, आनन्दभट्ट, अनन्तदेव और महीधर हैं।

आजकल महीधरका ही भाष्य पूरा देखनेमें आता है। इस संहिताके ब्राह्मणोंमें शतपथ ब्राह्मण प्रसिद्ध है। बल्कि यों कहना भी ठीक ही होगा कि समग्र ब्राह्मणग्रन्थ-समूहमें शतपथ ब्राह्मण सबसे अधिक आदर और प्रसिद्धिका पात्र है। माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओंके लिये शतपथ ही ब्राह्मण हैं। माध्यन्दिन शाखाके शतपथ ब्राह्मणमें चौदह काण्ड हैं। फिर यह भी सौ अध्यायोंमें वा अड़सठ प्रपाठकोंमें विभक्त हैं। इनमें कुल मिलाकर चार-सौ-अड़तीस ब्राह्मणोंपर विचार हुआ है। यह ब्राह्मण फिर सात-हज़ार-छः-सौ-चौबीस कण्डिकाओंमें विभक्त हैं। किन्तु काण्व शाखाके शतपथ ब्राह्मणमें सतरह काण्ड हैं। उसके पहले पांचवें और चौदहवें काण्डके दो दो भाग हैं। विश्वकोषकारने लिखा है "कि अबतक उसके साढ़े-तेरह काण्ड मिले हैं। इसमें पचासी अध्याय हैं। तीन-सौ-साठ ब्राह्मण हैं और चार-हज़ार-नौ-सौ-पैंसठ कण्डिकाएँ हैं। एक और खर्रेसे मालूम होता है कि इस ग्रन्थके सर्व-साकल्यमें एक-सौ-चार अध्याय, चार-सौ-छियालीस ब्राह्मण और ५८६६ कण्डिकाएँ विद्यमान हैं? शतपथ ब्राह्मणके पहले नव काण्डोंमें संहिताके अठारह काण्डके यजु उद्धृत किये गये हैं। और जिन-जिन क्रिया-कर्मोंमें उनका विनियोग होता है उनकी पूरी व्याख्या कर दी गयी है। दसवें काण्डमें अग्निरहस्य समझाया गया है। इनमें अनेक छोटी छोटी कथाओंद्वारा अग्निस्थापन-कर्मप्रणालीपर विचार हुआ है। ग्यारहवें काण्डमें आठ अध्याय हैं। इनमें पहिले जो-जो कर्म बताये गये हैं छोटी छोटी यागयज्ञकी कथाओंके द्वारा संक्षेपसे उन्हें समझा दिया गया है। बारहवें काण्डमें सौत्रामणी और प्रायश्चित्तकी क्रियाएँ हैं। तेरहवें काण्डमें अश्वमेध, सर्वमेध, पुरुषमेध और पितृमेधकी चर्चा है। चौदहवां काण्ड आरण्यकके नामसे मशहूर है। इसके पहिले तीन अध्यायोंमें प्रवर्गकी क्रियाका उल्लेख है। इसके सिवा संहिताके इकतीससे लेकर उनतालीस अध्यायोंतककी सभी कथाएँ उद्धृत की गयी हैं। इस स्थलमें यह भी लिखा है कि विष्णु ही सब देवताओंमें श्रेष्ठ हैं। इसके बाकी छः अध्याय बृहदारण्यक उपनिषद्के नामसे मशहूर हैं। इस ब्राह्मणमें बारह-हज़ार ऋचाएँ, आठ-हज़ार यजु और चार-हज़ार सामोंका संग्रह है। महाभारतकी अनेक कथाओंका सार, उसमेंके बहुतसे नाम और सीतारामके नाम भी शतपथ ब्राह्मणमें मिलते हैं। कद्रू और सुपर्णाका युद्ध, पुरुरवा और उर्वशीका प्रेम और विरह, अश्विनीकुमारोंके द्वारा च्यवन-ऋषिका यौवन पाना, आदि कथाएँ भी शतपथ ब्राह्मणमें संक्षेपसे दी गयी हैं। उग्रसेन और श्रुतसेन और कुरुपाञ्चाल आदि ऐतिहासिक नाम भी आये हैं।

शतपथ ब्राह्मणके तीन भाष्य मिलते हैं। हरिस्वामीका, सायणका और कवीन्द्राचार्य सरस्वतीका। बृहदारण्यक उपनिषद्के भाष्यकार द्विवेदगङ्ग गुजराती हैं। शङ्कराचार्यने जिस बृहदारण्यक उपनिषद्का भाष्य किया है वह काण्वशाखाके अन्तर्गत है। उनके शिष्योंने उसपर कई टीकाएँ लिखी हैं जिनमें आनन्दतीर्थ, रघूत्तम और व्यासतीर्थकी मुख्य हैं। इनके सिवा गङ्गाधरकी दीपिका, नित्यानन्दाश्रमकी मिताक्षरा मथुरानाथकी, लघु और राघवेन्द्रकी खण्डाग्र वृत्तियां हैं। रङ्ग, रामानुज और सायणके भाष्य भी हैं।

शुक्ल यजुर्वेदके श्रौतसूत्रोंमें कात्यायनके श्रौतसूत्र सबसे प्रसिद्ध हैं। इसके छब्बीस अध्याय हैं। शतपथ ब्राह्मणके पहले नौ काण्डोंमें जिन सब क्रियाओंपर विचार है इसके

पहले अठारह अध्यायोंमें उन्हीं सब क्रियाओंपर विचार है। उन्नीसवें अध्यायमें सौत्रामणी, बीसवेंमें अश्वमेध, इक्कीसवेंमें पुरुषमेध, पितृमेध और सर्वमेध, बाईसवें, तेईसवें और चौबीसवें अध्यायमें एकाह, अहीन और सत्र आदि याज्ञिक क्रियायें हैं। पचीसवें अध्यायमें प्रायश्चित्तपर और छब्बीसवेंमें प्रवर्गपर विचार हैं।

कात्यायनसूत्रके अनेक भाष्यकार और वृत्तिकार हैं। उनमेंसे यशोगोपी, पितृभूति, कर्क, भर्तृयज्ञ, श्री अनन्त, गङ्गाधर, गदाधर, गर्ग, पद्मनाभ, मिश्र अग्निहोत्री, याज्ञिक देव, श्रीधर, हरिहर और महादेवका नाम विशेष उल्लेख्य है। यजुर्वेदीय श्रौतसूत्रके बहुतसे पद्धति-और परिशिष्ट ग्रन्थ हैं। यह सब अधिकांश कात्यायनके नामसे हैं। इस स्थलपर निगम-परिशिष्ट और चरणव्यूह ग्रन्थोंके नाम भी उल्लेख्य हैं।

वैजवापका श्रौतसूत्र नामका भी एक सूत्रग्रन्थ है। वैजवापका गृह्यसूत्र भी प्राप्य है।

कातीय गृह्यग्रन्थमें तीन काण्ड हैं, यह पारस्करका रचा है। इसकी पद्धति वासुदेवकी लिखी है। उसपर जयरामकी एक टीका है। पर शङ्कर गणपतिकी टीका (जिनका प्रसिद्ध नाम रामकृष्ण था) बहुत पाण्डित्यपूर्ण है। इसकी भूमिका बडी खोजसे लिखी गयी है। इन्होंने काण्व-शाखाको ही श्रेष्ठ ठहराया है। इनके सिवा कर्क, गदाधर, जयराम, मुरारिमिश्र, रेणुकाचार्य, वागीश्वरीदत्त और वेदमिश्र आदिके भाष्यका भी प्रचार है। पारस्कर गृह्यसूत्रके अनुयायी अह्य हैं। याज्ञवल्क्य-स्मृति आदि अनेक स्मृतिग्रन्थ यजुर्वेदके गृह्यसूत्रोंके आधार-पर बने हैं।

शुक्ल यजुर्वेदके प्रातिशाख्य सूत्र और उसकी अनुक्रमणी भी कात्यायनके नामसे प्रसिद्ध है। इस प्रातिशाख्य-सूत्रमें शाकटायन, शाकल्य, गार्ग्य, काश्यप, दाल्भ्य, जातुकर्ण, शौनक और औपशिवीके नाम भी पाये जाते हैं। इसमें आठ अध्याय हैं। पहिले अध्यायमें संज्ञा और परिभाषा, दूसरेमें स्वर और उच्चारण, तीसरे चौथे और पाँचवेंमें संस्कार, छठेमें क्रियापदका क्रम-विनिर्णय और शेषमें स्वाध्यायके क्रम और नियम दिये हैं। उपसंहारमें कुछ श्लोकोंमें वर्ण और शब्दके देवताओंका उल्लेख है। उव्वटने इस ग्रन्थकी एक सुन्दर टीका लिखी है। कात्यायनकी अनुक्रमणीमें पाँच अध्याय हैं। इस अनुक्रमणीकी एक उपाय-पद्धति श्रीहलकी बनायी हुई है। जान पड़ता है कि यह प्रातिशाख्य ही व्याकरण नामके वेदाङ्गका सबसे पुराना प्राप्य ग्रन्थ है।

ग्यारहवाँ अध्याय

सामवेदका पूरक साहित्य

वेदोंमें तीन प्रकारके मन्त्र आये हैं। ऋचाएं, यजुस्, और सामगीति। ऋचाओंमें दो प्रकार हैं। ऐक ज्ञेय और दुसरा अज्ञेय। ऋग्वेदमें ज्ञेय और अज्ञेय दोनों प्रकारकी ऋचाएं हैं। यजुर्वेदमें पद्यभाग ऋचाएं और गद्यभाग यजुस् दोनों हैं। इनमें कोई भी ज्ञेय नहीं है। सामवेदमें ज्ञेय ऋचायें और ज्ञेय यजुस् दोनों हैं। इन्हींके समूहको साम कहते हैं। सामवेदमें जो ऋचाएं आयी हैं उन्हें "आर्चिक" कहा गया है और जो यजुस् आये हैं उन्हें "स्तोम"। पूर्वमीमांसाके अधिकरणमाला नामके नवें अध्यायके दूसरे पादके ग्यारहवें अधिकरणमें स्तोमकी एक परिभाषा लिखी हुई है। उसका मर्म यह है कि सामवेदमें ऋचाओंके सिवाय गीतिसाधक जितने शब्द समूह हैं सबका नाम स्तोम है। स्तोम तीन प्रकारके होते हैं। वर्णस्तोम, पदस्तोम और वाक्यस्तोम। सामवेदके स्तोमोंका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। न्यायमाला-विस्तरके ग्रन्थकारका कहना है कि ऋक्का वर्ण विकृत हो जाय, और रूप न बदले, तो भी वर्णोंको वृद्धि प्राप्त हो सकती है। इन वृद्धिप्राप्त वर्णोंको स्तोम कहते हैं। यह वर्णस्तोमका लक्षण है। पदस्तोम दो तरहका होता है, अनिरुक्त और निरुक्त। सब लेकर पदस्तोमके पन्द्रह प्रकार हैं। वाक्यस्तोम नौ प्रकारके हैं।"*

साम आर्चिक ग्रन्थ भी अध्यापक-भेद, देश भेद, कालक्रम-भेद, पाठक्रम-भेद और उच्चारण आदि भेदसे अनेक शाखाओंमें विभक्त हैं। सब शाखाओंमें मन्त्र एक ही है। मन्त्रकी संख्यामें व्यतिक्रम है। प्रत्येक शाखाके श्रौत-और गृह्यसूत्र और प्रातिशाख्य भिन्न भिन्न हैं। सामवेदकी शाखाएं कही तो जाती हैं एक सहस्र, पर प्रचलित हैं केवल तेरह। कुछ लोगोंकी रायमें असलमें तेरहही शाखाएं हैं क्योंकि जो "सहस्रतमः गीत्युपायाः" के प्रमाणसे सहस्र शाखाएं बतायी जाती हैं उसका अर्थ "हज़ारों तरहसे गानेके उपाय हैं" यह न करके हज़ार शाखाएं समझ ली गयी हैं। इसीसे यह भ्रम फैला है। उन तेरहों शाखाओंमेंसे भी आजकल दो ही प्रचलित हैं। काशी, कन्नौज, गुजरात और बङ्ग अर्थात उत्तर भारतमें कौथुमी शाखा प्रचलित है और दक्षिण देशमें राणायनी शाखा प्रचलित है। आर्चिक ग्रन्थ तीन हैं। छन्द, आरण्यक और उत्तरा। उत्तरार्चिकमें एक छन्दकी, एक स्वरकी और एक तात्पर्यकी, तीन-तीन ऋचाओंको लेकर एक-एक सूक्त कर दिया है। इन सूक्तोंका तृच् नाम रखा है। इसी तरहके समान भावापन्न दो दो ऋचाओंकी समष्टिका नाम प्रगाथ रखा है। चाहे तृच् हो चाहे प्रगाथ, इनमेंसे प्रत्येक पहली ऋचाका छन्द आर्चिकमेंसे लिया गया है। इसी छन्द आर्चिकसे एक ऋक् और सब तरहसे उसीके अनुरूप दो और ऋचाओंको मिलाकर तृच् बनता है, इसी प्रकार प्रगाथ भी। इन्ही कारणोंसे इनमें जो पहिली ऋचाएं हैं वह सब योनिऋक् कहलाती हैं। और आर्चिक योनिग्रन्थके नामसे प्रसिद्ध भी है।

---

* वेद, साम-साहित्य (बँगला विश्वकोष)

योनिऋक्के बादही उसीके बराबरके दो या एक ऋक् जिसके उत्तर दलमें मिले उसीका नाम उत्तरार्चिक है। इसी कारण तीसरेका नाम उत्तरा है। एक ही अध्यायका बना हुआ ग्रन्थ जो अरण्यमें ही अध्ययन करनेके योग्य हो आरण्यक कहलाता है। सब वेदोंमें एक एक आरण्यक है। योनि, उत्तरा और आरण्यक इन्हीं तीन ग्रन्थोंका साधारण नाम आर्चिक अर्थात ऋक्समूह है। छन्दोग्रन्थोंमें जितने साम हैं उनके गानेवाले छन्दोग कहलाते हैं। इन्हीं छन्दोगोंके कर्मकाण्डके लिए जो आठ ब्राह्मण ग्रन्थ व्यवहारमें आते हैं वह छान्दोग्य कहे जाते हैं। यह सब आरण्यक ग्रन्थ और छान्दोग्यारण्यक नामसे मशहूर हैं।

गानेकी दृष्टिसे सामवेदके चार भाग हैं। गेय, आरण्य, ऊह और ऊह्य। ज्ञेयगीतिकाका दूसरा नाम ग्राम्यज्ञेय गान है। ज्ञेयगान ग्रन्थमें योनिऋचाएं व्यवहारमें आयी हैं। ब्राह्मणग्रन्थ में इसी ग्राम्यगेय गानको गेनिगान भी कहा है। किन्तु सायनने वेदसाम नाम दिया है। छन्द आर्चिकमें जिस ऋक्के बाद जो ऋक् आयी है गेयगानमें भी उसी-उसी ऋक्मूल गानके बाद वही ऋक्मूल गान है।

सामवेदका आरण्यक सामसंहिताके अन्तर्गत है। आरण्यक, आर्चिक और आनुषङ्गिक अन्यान्य ऋचाओंके आधारपर जो समस्त सामगीत बना है वह सब प्रपाठक षट्क और द्वादश प्रपाठकार्द्धमें विभक्त है। आरण्यक आरण्यगान भी कहलाता है। सामवेदी ब्राह्मण छन्दोमय मन्त्रोंका गान करते हैं। इसीलिए इस आरण्यक ग्रन्थका नाम छान्दोग आरण्यक हुआ। यह आरण्यक ग्रन्थ छः प्रपाठकोंमें विभक्त है।

छन्द आर्चिकके साथ गेयगानका जो सम्बन्ध है वैसा ही आरण्यगानका है और उत्तरार्चिकके साथ ऊह और ऊह्य गानका भी वैसाही सम्बन्ध है। इसके सिवाय अरण्यगानमें इस तरहके अनेक गाने दिखाई पड़ते हैं जिनका मूल ऋक् आरण्यकमें नहीं मिलता किन्तु छन्द आर्चिकमें मिलता है। और इस तरहके अनेक गान हैं जो आदिमें ऋक्से तो नहीं निकले हैं किन्तु स्तोमग्रन्थमें उनकी उत्पत्तिका बीज मिलता है। ऊह गानमें और ऊह्यगानमें जो सब गीत हैं उन सबकी मूलस्थिति यद्यपि आरण्यगानकी तरह विकीर्ण नहीं है और यद्यपि वह एक ही उत्तरार्चिकमें सीमाबद्ध है तथापि उत्तरार्चिकके ऋक् सन्निवेश क्रमानुसार इन सब गानोंका साम सन्निवेशक्रम नहीं है। किसी किसीकी रायमें वह बिल्कुल विपरीत हैं। गेय गानकी तरह तीन तीन साम एकत्र करके एक-एक स्तोम बनता है। प्रायः समस्त ऊह्यगान इसी तरहके स्तोत्र हैं। ऊहगानमें तेईस प्रपाठक हैं, ऊह्यगानमें छः प्रपाठक हैं। ऊह्यका दूसरा नाम रहस्यगान है। यह दोनों गान मिलाकर गाये जाते हैं और आरण्यगानके ग्रन्थसे परिमाणमें दूने हैं। सायणाचार्य, भरतस्वामी, महास्वामी, नारायणपुत्र और माधव सामसंहिताके भाष्यकार हैं।

सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थोंमें ताण्ड्य महाब्राह्मण सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसमें पचीस अध्याय हैं इसलिए यह पञ्चविंश ब्राह्मण भी कहलाता है। इसके प्रथम अध्यायमें यजुरात्मक श्रुतिमन्त्र समूह हैं, दूसरे और तीसरे अध्यायमें बहुस्तोम विषय है। चौथे और पाँचवें अध्यायमें गवामयन, संवत्सर-सत्र प्रकरण है। छठे अध्यायमें अग्निष्टोमकी प्रशंसा लिखी है। इस तरहसे अनेक प्रकारके याग-यज्ञका वर्णन है। पूर्णन्याय, प्रकृति-विकृति-लक्षण,

मूल-प्रकृति-विचार, भावनाका कारणादि ज्ञान, षोडशर्त्विक-परिचय, सोम-प्रकाश-परिचय, सहस्रसंवत्सरसाध्य तथा विश्व-सृष्ट-साध्य, सत्रोंके सम्पादनकी विधि, ताण्ड्य महाब्राह्मणमें पायी जाती हैं। इनके सिवा तरह तरहके उपाख्यान और इतिहासज्ञोंके जाननेकी बातें इसमें लिखी हैं। इस ग्रन्थमें सोमयागकी कथा और उस सम्बन्धके सामगान विशेष रूपसे लिखे हैं। इस ग्रन्थमें समयव्यापी सत्र-समूहकी व्यवस्था भी है। कौन सत्र एक दिन रहेगा, कौन सौ दिन रहेगा और कौन सालभर रहेगा, और कौन सौ बरस रहेगा और कौन एक हजार बरस रहेगा, इस बातकी विविध व्यवस्थाएँ दी हैं। इस तरह सामगानके साथके उत्सव ताण्ड्य ब्राह्मणमें दिये हुए हैं। सायणाचार्य इसके भाष्यकार और हरिस्वामी इसके वृत्तकार हैं।

दूसरे ब्राह्मण ग्रन्थका नाम षड्विंश ब्राह्मण है। सायणने इस ग्रन्थका भाष्य किया है। पञ्चविंश ब्राह्मणमें जिन सब क्रियाओंका उल्लेख नहीं हुआ है उन सब कर्मोंका भी उल्लेख इस ब्राह्मणमें है। और जिन कर्मोंका ताण्ड्य ब्राह्मणमें उल्लेख हुआ है उनसे इनमें क्या क्या भेद है, यह बात भी अच्छी तरह इसमें दिखायी गयी है। सुब्रह्मण्य, सवनत्रय, ब्रह्मकर्तव्य, व्याहृति होमादि, नैमित्तिक प्रायश्चित्त, सौम्य चरुविधि, बहिष्पवमान कर्म, होत्रादि ऊपहव, ऋत्विगादि विधान नैमित्तिक होम, अध्वर्यु-प्रशंसा, देव-यजनमें विज्ञेय कर्म, अवभृथ, अभिचार सम्बन्धी निवृत्ति, द्वादशाह स्तुति, स्येनादि विधि, वैश्वदेव सत्र, और अद्‌भुत समूहकी शान्ति।

तीसरे ब्राह्मणका नाम साम-विधान है। इसमें अधिकार-भुक्त और अशक्त लोगोंकी शुद्धिके लिए कृच्छ्रादि प्रायश्चित्त और अग्न्याधान, अग्निहोत्रादि साम-विधानका सङ्ग्रह है।

आर्षेय ब्राह्मण सामवेदका चौथा ब्राह्मण है। सायणाचार्यने इसका भी भाष्य किया है। इस ग्रन्थमें ऋषिसम्बन्धो उपदेश दिये हैं। अर्थात् सामोंके ऋषि, गोत्र, छन्द, देवता इत्यादिपर व्याख्या और विचार है।

पांचवां ब्राह्मण देवताध्याय कहलाता है। सायणने इसका भी भाष्य किया है। इसमें देवता सम्बन्धी अध्ययन है। पहिले अध्यायमें सामवेदीय देवताओंकी बहुत तरहसे प्रीति कीर्तन है, दूसरे अध्यायमें वर्ण और वर्णदेवताका विवरण है, तीसरे अध्यायमें इन सबकी निरुक्तिपर विचार है।

छठे ब्राह्मणका नाम मन्त्र-ब्राह्मण है। इसमें दस ही प्रपाठक हैं। गृह्य यज्ञकर्मके प्राय. सभी मन्त्र इस ग्रन्थमें सङ्गृहीत हैं। इसे उपनिषद्, संहितोपनिषद् ब्राह्मण वा छान्दोग्य ब्राह्मण भी कहते हैं। इसमें सामवेद पढ़नेवालोंकी प्रकृति उत्पादनके लिए सम्प्रदाय-प्रवर्तक ऋषियोंकी कथा लिखी है। इस ब्राह्मणके आठवेंसे लेकर दसवें प्रपाठकतकके अंशका नाम "छान्दोग्योपनिषत्" प्रसिद्ध है।

सामवेदके ब्राह्मण ग्रन्थ आठ भागमें प्रकाशित हुए हैं परन्तु प्रत्येक शाखाका एक ही एक ग्रन्थ देख पड़ता है। शाकल-गणका ऐतरेय ब्राह्मण, वाजसनेयियोंका शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीयवालोंका तैत्तिरीय ब्राह्मण, इसी तरह कौथुमवालोंका ताण्ड्य ब्राह्मण। महर्षि ताण्ड्यद्वारा सङ्कलित होनेसे ताण्ड्यनाम पड़ा। छन्दोग गणोंका

ब्राह्मण होनेसे छान्दोग्य नाम पडा । पचीस अध्यायके कारण पञ्चविंश ब्राह्मण तो कहा जाता है पर असलमें इसमें चालीस अध्याय देखनेमें आते हैं। षड्विंश ब्राह्मणके पाँच अध्याय और पञ्चविंश ब्राह्मणके पचीस मिलकर कौथुम शाखीय ब्राह्मणके श्रौत कर्म विषयक जो इक्कीस अध्यायवाला भाग बना वही ताण्ड्य ब्राह्मणका पहला भाग वा श्रौत भाग है, यद्यपि षड्विंश ब्राह्मणमें छठे अध्यायके नामसे एक और अध्याय है किन्तु अन्यत्र कहीं इस अध्यायका उल्लेख नहीं पाया जाता। यह अध्याय अद्भुत ब्राह्मणके नामसे मशहूर है। सायणाचार्यने सामवेदके सब ब्राह्मणोंका भाष्य किया है। उन्होंने ब्राह्मण-भाष्य-भूमिकामें जिन अन्यान्य ब्राह्मणोंका नाम लिखा है वह सब मन्त्र और उपनिषद मिश्रित ग्रन्थ हैं और समष्टिभावसे ताण्ड्य ब्राह्मणके दूसरे भागमें समझे जा सकते हैं। श्रौत और गृह्य दोनों प्रकारके विषयोंके द्वारा ही ब्राह्मण ग्रन्थ जो पूरे समझे जाते हैं, यह बात प्रमाण-शून्य नहीं है। ऐतरेय ब्राह्मणके पूर्व भागमें श्रौत विधि है दूसरे भागमें और विधियां हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें भी ऐसी ही व्यवस्था देखी जाती है। उसके पहले भागमें श्रौत विधि है। दूसरेमें गृह्यमन्त्र और उपनिषद-भाग है। इस श्रेणी-विभागके कल्पनाकारी साम-विधिको अनुब्राह्मण संज्ञामें अन्तर्निविष्ट समझते हैं। वह लोग कहते हैं कि पाणिनि-सूत्रमें अनुब्राह्मणका उल्लेख है (अनुब्राह्मणादिभ्यो ४।२।६२)। किन्तु सायणकी विभाग-कल्पनामें अनुब्राह्मणका उल्लेख नहीं है। साथ ही अनुब्राह्मण नामके और किसी ग्रन्थकी कहीं चर्चा नहीं है। और "विधान" ग्रन्थोंको अनुब्राह्मण ग्रन्थ कहना सुसङ्गत जान पड़ता है।

सामवेदीय उपनिषद ग्रन्थोंमें छान्दोग्योपनिषद और केनोपनिषद प्रसिद्ध हैं। छान्दोग्यमें आठ अध्याय हैं। छान्दोग्य ब्राह्मणका यह एक विशेषांश है। उसमें दस अध्याय हैं परन्तु पहले दो अध्यायोंमें ब्राह्मणोपयुक्त विषयोंपर विचार है। बाकी आठ अध्याय उपनिषदके हैं। छान्दोग्य ब्राह्मणके पहले अध्यायमें आठ सूक्त आये हैं। यह सब सूक्त जन्म और विवाहकी मङ्गल-प्रार्थनाके लिए हैं। यह उपनिषद ब्रह्मतत्वके सम्बन्धमें सर्वप्रधान समझी जाती है।

दूसरी उपनिषद केनोपनिषद है। इसका दूसरा नाम तलवकार भी है। यह तलवकार ब्राह्मणके अन्तर्गत है और तलवकार-शाखा-सम्मत है। विश्वकोषकार कहते हैं कि डाक्टर बारनेलने तञ्जाओरमें यह तलवकार ब्राह्मण नामक ग्रन्थ पाया है। इसमेंके १३५ से लेकर १४५ वें खण्डतक उन्होंने तलवकार उपनिषद या केनोपनिषद बताया है। और और लिखे ग्रन्थोंमें परिच्छेद और अध्यायमें मतभेद है।

इन दोनों उपनिषदोंपर शङ्कराचार्यके भाष्य हैं। आनन्दतीर्थ, ज्ञानानन्द, नित्यानन्दाश्रम, बालकृष्णानन्द, भगवद्भावक शङ्करानन्द, सायन, सुदर्शनाचार्य, हरिभानु शुक्ल, वेदेश, व्यासतीर्थ, दामोदराचार्य, भूसुरानन्द, मुकुन्द, और नारायण आदिकोंने वृत्तियां और टीकाएं लिखी हैं।

सामवेदके जितने सूत्र-ग्रन्थ हैं उतने किसी वेदके देखनेमें नहीं आते। पञ्चविंश ब्राह्मणका एक श्रौत सूत्र है और एक गृह्यसूत्र। पहले श्रौत सूत्रका नाम माशक है। लाट्यायनने इसको मशक-सूत्र लिखा है। कुछ लोगोंकी रायमें इन ग्रन्थोंका नाम कल्पसूत्र है। सोमयागके स्तोत्र-मन्त्र धारावाहिकरूपसे सूत्रमें सङ्गृहीत है। पञ्चविंश ब्राह्मणके ढङ्गपर

प्रार्थना स्तोत्रोंका इसमें श्रेणी-विभाग हुआ है। अन्यान्य ब्राह्मणकी और क्रियाकाण्डकी कुछ कुछ कथायें इस सूत्रग्रन्थमें मिलती हैं। इस ग्रन्थमें "जनक-सप्तरात्र-यज्ञकी चर्चा है। ग्यारहवें प्रपाठकमें पहले पांच अध्यायमें एकाध्यायका विवरण है, और छठेसे लेकर नवें अध्यायतक चार अध्यायोंमें कतिपय दिवस-व्यापी यागका वर्णन है। बारह दिनसे अधिक कालतक चलनेवाले यागोंको सत्र कहते हैं। शेष दो अध्यायोंमें सत्र समूहोंका वर्णन है। वरदराजने इसपर भाष्य किया है।

लाट्यायन सूत्र दूसरा श्रौत सूत्र है। यह श्रौत सूत्र कौथुम शाखाके अन्तर्गत है। यह ग्रन्थ भी पञ्चविंश ब्राह्मणका ही है। उसमें के बहुतसे वाक्य इसमें आये हैं। इसके पहले प्रपाठकमें सोमयागके साधारण नियम दिये हैं। आठवें और नवें अध्यायके कुछ अंश एकाह-यागकी प्रणालीपर हैं। नवें अध्यायके शेषांशमें कुछ दिवसोंतक चलनेवाली श्रेणीके यज्ञोंका विवरण है। दसवें अध्यायमें सत्रोंका वर्णन है। इस ग्रन्थपर रामकृष्ण दीक्षित, सायन और अग्निस्वामीके अच्छे-अच्छे भाष्य हैं।

तीसरे श्रौत सूत्रका नाम द्राह्यायण है। लाट्यायन श्रौत सूत्रसे इसका भेद बहुत थोड़ा है। यह सूत्र-ग्रन्थ सामवेदकी राणायनी शाखासे सम्बन्ध रखता है। इसका दूसरा नाम वसिष्ठ सूत्र है। माध्वस्वामीने इसका भाष्य किया है। रुद्रस्कन्दस्वामीने "औद्गात्र-सार-संग्रह" नामके निबन्धमें उस भाष्यका और संस्कार किया है। धन्विनने इसपर छान्दोग्य-सूत्र-दीप नामकी वृत्ति लिखी।

चौथे साम-सूत्रका नाम अनुपद सूत्र है। इस ग्रन्थमें दस प्रपाठक हैं। पता नहीं कि इन सूत्रोंका सङ्ग्रह किसने किया है। पञ्चविंश ब्राह्मणके बहुतसे दुर्बोध वाक्योंकी इसमें व्याख्या की गयी है। इसमें षड्विंश ब्राह्मणकी भी चर्चा है। इस ग्रन्थसे बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री और बहुतसे प्राचीन ग्रन्थोंके नाम भी मिल सकते हैं। मालूम होता है कि इनके सिवा स्वतत्र भावसे सामवेदके श्रौतसूत्रोंके कई सङ्ग्रह हुए थे। उनमेंसे एक निदान-सूत्र भी है। इसमें दस प्रपाठक हैं। इसमें भिन्न-भिन्न सामवेदीय उक्थ, स्तोत्र और गान-सम्बन्धकी पर्यालोचना है। इस ग्रन्थमें नाना वेद-शाखाओंके और वेदोपदेष्टाओंके अनेक सिद्धान्त सङ्ग्रह किये गये हैं। इस सम्बन्धमें अनुपद सूत्रसे इसका बहुत कुछ सादृश्य है। इस ग्रन्थमें फिर-फिर लाट्यायन और द्राह्यायणोक्त, धनञ्जय, शाण्डिल्य और शौचिवृक्षी आदि धर्मशास्त्र वक्ताओंका नाम आता है। किन्तु अनुपद सूत्रमें नहीं आता।

इसी तरह एक श्रौत सूत्र है पुष्प सूत्र। यह गोभिलकी रचना कही जाती है। इस ग्रन्थके पहले चार प्रपाठकमें नाना प्रकारके पारिभाषिक और व्याकरणद्वारा गढ़े हुए ऐसे शब्द आये हैं कि उनका मर्म समझना कठिन है। इन चार प्रपाठकोंकी टीका भी नहीं मिलती किन्तु शेष अंशपर एक विशद भाष्य अजातशत्रुका लिखा हुआ है। ऋक्मन्त्र रूपी कलिका किस प्रकार सामरूप पुष्पमें परिणत हुई, इस ग्रन्थमें यह बात बतायी गयी है। दाक्षिणात्योंमें यह फुल्ल-सूत्रके नामसे मशहूर है और कहते हैं कि यह वररुचिकी रचना है। पर इस कथनका कोई प्रमाण नहीं है। इसके शेषांशमें श्लोक दिये हुए हैं। दामोदरपुत्र रामकृष्णकी लिखी इसपर एक वृत्ति भी है।

इसी तरह एक ग्रन्थका नाम है साम-तन्त्र। इसमें तेरह प्रपाठक हैं, इसमें सामगान करनेकी विधि, उसके सङ्केत और उसकी प्रणाली है। ग्रन्थके अन्तमें जो उसका परिचय दिया है उससे पता लगता है कि यह सामवेदका व्याकरण विशेष है। कई एकने इस ग्रन्थका नाम "साम लक्षणम् प्रातिशाख्य शास्त्रम्" लिखा है। ऋक्‌मन्त्रको साममें परिणत करनेकी विधिके सम्बन्धमें सामवेदके बहुतसे सूत्र-ग्रन्थ हैं। इनमेंसे एकका नाम "पञ्चविधि सूत्र" है और दूसरेका प्रतिहार सूत्र है। यह ग्रन्थ कात्यायनके लिखे कहलाते हैं। मशक-सूत्रके वृत्तिकार वरधराजने इसपर एक वृत्ति लिखी है। इनके सिवा ताण्डय-लक्षण-सूत्र, उपग्रन्थ सूत्र, कल्पानुपद सूत्र, अनुस्तोत्र सूत्र और क्षुद्र सूत्र आदि सामवेदीय सूत्रग्रन्थ हैं। ऋग्वेदके अनुक्रमणिकावाले षडगुरु शिष्यने लिखा है कि उपग्रन्थ सूत्र कात्यायनके हैं। पञ्चविधि-सूत्रमें दो प्रपाठक हैं और कल्पनानुपद सूत्रमें भी दो ही प्रपाठक हैं। क्षुद्र सूत्रमें तीन प्रपाठक हैं। उपग्रन्थ सूत्रमें प्रायश्चित्तकी व्यवस्था है। दयाशङ्करने और पूर्वोक्त रामकृष्ण दीक्षितने इस साममन्त्रकी वृत्ति लिखी है।

गृह्यसूत्र भी अनेक हैं। गोभिलके गृह्यसूत्रमें चार प्रपाठक हैं। कात्यायनने इसपर एक परिशिष्ट लिखा है। यद्यपि यह कर्म-प्रदीप नामका परिशिष्ट गोभिल गृह्यसूत्रके पूरक-रूपमें लिखा गया है, तो भी इसका आदर एक स्वतन्त्र गृह्यसूत्र और स्मृतिशास्त्रकी तरह होता आया है। आशादित्य शिवरामने इस कर्मप्रदीप नामके ग्रन्थकी टीका की है। उन्होंने लिखा है कि गोभिल गृह्यसूत्रोंको सामवेदकी कौथुम शाखावाले और राणायन शाखावाले भी अपनाते हैं और दोनों ब्राह्मणोंद्वारा वह अनुमोदित भी है। भद्रनारायण, सायन और विश्रामसुत शिविने इसपर वृत्तियाँ लिखी हैं। इनके सिवा खादिर गृह्यसूत्र नामका एक और गृह्यसूत्र पाया जाता है। किसी किसीका कहना है कि खादिर ही द्राह्यायण गृह्यसूत्रके कर्त्ता हैं। रुद्रस्कन्द स्वामीने इसपर वृत्ति लिखी है।

खादिर गृह्यसूत्रपर वामनकी लिखी कारिकाएँ भी मिलती हैं। एक और गृह्यसूत्र है जिसका नाम पितृमेध-सूत्र है जो गौतमका लिखा बताया जाता है। इसके टीकाकार अनन्तज्ञान कहते हैं कि यह गौतम न्यायसूत्रके रचनेवाले महर्षि गौतम ही हैं। इसके सिवा गौतमका एक और धर्मसूत्र है, उसका नाम ही गौतम-धर्म-सूत्र है।

सामवेदके पद्धति-ग्रन्थ कई तरहके हैं। इनका सूत्रग्रन्थोंके साथ घना सम्बन्ध है। क्रियाओंके प्रमाणके सम्बन्धमें इनमें शिक्षा और व्यवस्था है। इनके सिवा सामवेदीय परिशिष्ट ग्रन्थोंकी संख्या भी कम नहीं है। पद्धतिकार लोग सूत्र-ग्रन्थोंका अनुसरण करते हैं, किन्तु परिशिष्टमें वार्तिक ग्रन्थोंकी तरह अनेक नयी बातें जोड़ी हुई हैं। यों तो सामवेदके सम्बन्धमें और बहुत से ग्रन्थ हैं जो परिशिष्ट कहलाते हैं, परन्तु उनमें ताण्ड्य परिशिष्ट ही यहां उल्लेख्य है।

बारहवाँ अध्याय

अथर्ववेदका पूरक साहित्य

अथर्ववेदके ब्राह्मण ग्रन्थोंमें गोपथ ब्राह्मण ही प्रसिद्ध है। इसमें पूर्व और उत्तर दो खण्ड हैं और सारा ग्रन्थ ग्यारह प्रपाठकोंमें विभक्त है। पूर्वार्द्धमें छः और उत्तरार्द्धमें पाँच प्रपाठक हैं। पूर्वार्द्धमें अनेक तरहके आख्यान हैं और अन्यान्य बहुत से विषयोंपर विचार है। उत्तरार्द्धमें कर्मकाण्डपर आलोचना है। अथर्ववेदमें जिन सब विषयोंके ऊपर सूक्त दिये हुए हैं उनकी सूची विस्तारसे आठवें अध्यायमें दी गयी है।

ऐहिक और पारलौकिक दोनों तरहके पुरुषार्थोंके परिज्ञानके उपायस्वरूप अथर्ववेदकी ९ शाखाएँ हैं। पैप्पलादाः, स्तौदाः, मौदाः, शौनकीयाः जाजलाः, जलदाः, ब्रह्मवदाः, देवदर्शाः और चारणवैद्याः। इन सब शाखाओंमें शौनकादि चार शाखाओं द्वारा अनुमोदित अथर्ववेद, संहिताके अनुवाकों, सूक्त और ऋगादि कर्मकाण्डीय विनियोगके लिए गोपथ ब्राह्मणके आधारपर पाँच सूत्रग्रन्थ बने हैं। कौशिक सूत्र, वैतान सूत्र, नक्षत्र कल्पसूत्र, आङ्गिरस कल्पसूत्र और शान्ति कल्पसूत्र। कौशिक सूत्रको ही संहिता-विधि-सूत्र भी कहते हैं। बहुत से सूत्रग्रन्थोंमें अथर्ववेदके प्रतिपाद्य कर्मोंका विधान अत्यन्त सूक्ष्म रूपसे दिया हुआ है। इसीलिए यह प्रायः बहुत दुर्बोध्य हो गये हैं। इन्हें ही सुबोध कर देनेके लिए इस कौशिक सूत्र-ग्रन्थका सङ्ग्रह हुआ है।

वैतान सूत्रमें अयनान्त निष्पाद्य त्रयी विहित दर्शपूर्णमासादि कर्मके ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंसी, आग्नीध्र और होता इन चार ऋत्विजोंके कर्तव्य बताये गये हैं।

कौशिक सूत्रमें (१) स्थाली-पाक-विधानमें दर्श-पूर्णमास विधि (२) मेधा-जनन (३) ब्रह्मचारी-सम्पद् (४) ग्राम-दुर्ग-राष्ट्रादि लाभ-विषय (५) पुत्र-पशु-धन धान्य-प्रजा-स्त्री-करि-तुरग-रथ-दोलकादि सर्व-सम्पत्साधक समूह (६) मानवगणमें ऐकमत्य सम्पादक सौमनस्यादि।

नक्षत्र-कल्पमें नक्षत्र-पूजा तथा महाशान्ति, नैर्ऋत कर्म और अमृतसे अभयतक ३० महाशान्तिके निमित्त-भेदके कर्तव्य दिये हैं।

आङ्गिरस कल्पमें अभिचार कर्मके समयमें कर्ता और कारयिता सदस्यगणोंके लिये आत्मरक्षा-विधि लिखी है।

शान्तिकल्पमें वैनायक आदि ग्रहोंके उपद्रवकी शान्तिके उपाय हैं।

अथर्ववेद संहिताके सूक्तोंमें किन-किन विषयोंका प्रतिपादन है, इन्हीं पाँचों सूत्र-ग्रन्थोंके द्वारा मालूम होता है। इसीलिये आठवें अध्यायमें अथर्ववेदके प्रतिपाद्य विषयकी विस्तृत सूचीकी जगह हमने बंगला विश्वकोषसे इन्हीं पाँच सूत्रग्रन्थोंकी विस्तृत विषयसूची दे दी है।

इन सब कल्पोंमें राज्याभिषेककी जो विधि वर्णन की गयी है वह समुदाय-कार्य ही

जान पड़ती है। राजा, राज्य, और राष्ट्रके सभी कार्य समुदाय-कर्म हैं। शेष यजमान, कर्ता और कारयिताकी व्यक्तिसे सम्बन्ध रखते हैं।

और सब वेदोंकी अपेक्षा अथर्ववेदीय उपनिषदोंकी संख्या अधिक है। ब्रह्मतत्व-प्रकाश ही इनका उद्देश्य है। इसीलिए तो अथर्ववेदको ब्रह्मवेद भी कहते हैं। विद्यारण्य स्वामीने 'सर्वोपनिषदर्थानुभूति-प्रकाश' नामक ग्रन्थमें मुण्डक प्रश्न और नृसिंहोत्तर तापनीय इन तीन उपनिषदोंको ही अथर्ववेदीय आदि उपनिषद माना है। किन्तु शङ्कराचार्यने मुण्डक, माण्डूक्य, प्रश्न और नृसिंहतापिनी इन चारोंको प्रधान आथर्वण उपनिषद माना है, क्योंकि बादरायणने अपने वेदान्तसूत्रमें इन्हीं चारों उपनिषदोंके प्रमाण अनेक बार दिये हैं। एक तरहके संन्यासी सिर मुंडाए रहा करते हैं। उन्हें मुण्डक कहते हैं। इसीसे मुण्डकोपनिषद नाम पड़ा। ब्रह्म क्या है, उसे किस प्रकार समझा जाता है, किस प्रकार प्राप्त किया जाता है, इस उपनिषदमें इन्हीं बातोंका वर्णन है। शङ्कराचार्य, आनन्दतीर्थ, दामोदराचार्य, नरहरि, भट्ट-भास्कर, रङ्ग-रामानुज, नारायण, व्यासतीर्थ, शङ्करानन्द, विज्ञान-भिक्षु और नरसिंह यतिके इस उपनिषदपर भाष्य या टीकाएँ हैं। इन उपनिषदोंपर शाङ्कर भाष्यकी अनेक टीकाएँ मौजूद हैं, जिनमेंसे आनन्दतीर्थ और अभिनव नारायणचन्द्र सरस्वतीके भाष्य और टीकाएँ प्रधान हैं।

प्रश्नोपनिषद् गद्यमें है। ऋषि पिप्पलाद्के छः ब्रह्मजिज्ञासु शिष्योंने वेदान्तके छः मूल तत्वोंपर प्रश्न किये हैं। उन्हीं छ. प्रश्नोत्तरोंपर यह प्रश्नोपनिषद् बनी है। प्रजापतिसे असत् और प्राणकी उत्पत्ति, अपर चिच्छ क्तयोंसे प्राणकी श्रेष्ठता, चिच्छक्तियोंके लक्षण और विभाग, सुषुप्ति और तुरीयावस्था, ओंकार-ध्यान-निर्णय और षोडशेन्द्रिय, प्रश्नोपनिषदके यही छः विषय हैं। इस उपनिषदके भाष्यकार और टीकाकार भी प्रायः वही हैं।

माण्डूक्योपनिषद एक बहुत छोटा गद्य ग्रन्थ है, परन्तु सबसे प्रधान समझा जाता है। मैत्रायणोपनिषदसे कुछ मेल होनेसे अक्सर लोग इसे उसके बादका समझते हैं। गौड़पादाचार्यने इस उपनिषदकी कारिका लिखी है, शङ्कराचार्यने भाष्य लिखा है, और विज्ञान भिक्षुने आलोक नामकी व्याख्या की है। आनन्दतीर्थ, मथुरानाथ शुक्ल और रङ्ग-रामानुजने भाष्य-टीका, आनन्दतीर्थने क्षुद्र भाष्य, राघवेन्द्र, व्यासतीर्थ और श्रीनिवासतीर्थने उस आनन्द भाष्यकी टीका, इसके सिवाय नारायण, शङ्करानन्द, ब्रह्मानन्द सरस्वती राघवेन्द्र, आदिने वृत्तियां भी लिखी हैं।

नृसिंहतापिनी पूर्वोत्तर दो भागोंमें बँटी है। पूर्व तापिनीपर शङ्कर-भाष्य ही मिलता है। किन्तु गौड़पाद उत्तर तापिनीकी कारिका, शङ्काराचार्य और पुरुषोत्तम यह दोनों भाष्य और नारायण और शङ्करानन्दकी दीपिका नामकी वृत्ति, इसी उत्तर तापिनीपर कर गये हैं।

इन चारोंके सिवाय मुक्तिकोपनिषदमें और ९३ आथर्वण उपनिषदोंके नाम मिलते हैं। वह नाम यह हैं—(५) अक्ष (६) अक्षमालिका (७) अव्यय (८) अध्यात्म (९) अन्नपूर्णा (१०) अथर्वशिखा (११) अथर्वशिरा (१२) अमृतनाद (१३) अमृतबिन्दु (१४) अवधूत (१५) अव्यक्त (१६) आत्मा (१७) आत्मबोध (१८) आरुणी (१९) एकाक्षर (२०)

कठरुद्र (२१) कलिसन्तरण (२२) कालाग्निरुद्र (२३) कुण्डिका (२४) कृष्ण (२५) कैवल्य (२६) क्षुरिक (२७) गणपति (२८) गर्भ (२९) गारुड़ (३०) गोपाल-तापिनी (३१) चूड़ा (३२) जालदर्शन (३३) जाबाल (३४) जाबालि (३५) तापिनी (३६) तारस्सार (३७) तुरीयातीत (३८) तेजोविन्दु (३९) त्रिपुरा (४०) त्रिपुरा-तापन (४१) त्रिशिखा (४२) दत्तात्रेय (४३) दक्षिणामूर्ति (४४) देवी (४५) ध्यानविन्दु (४६) नादविन्दु (४७) नारायण (४८) निरालम्ब (४९) निर्वाण (५०) पञ्चब्रह्म (५१) परमहंस (५२) परब्रह्म (५३) परमहंस परिव्राजक (५४) परिव्राजक (५५) पाशुपत (५६) पैङ्गल (५७) प्राणाग्निहोत्र (५८) बृहद्जाबाल (५९) ब्रह्म (६०) भस्म-जाबाल (६१) भावना (६२) भिक्षु (६३) मण्डल (६४) मन्त्रिक (६५) महत्व (६६) महानारायण (६७) महावाक्य (६८) मुक्तिका (६९) मुद्गल (७०) मैत्रेयी (७१) याज्ञवल्क्य (७२) योगकुण्डली (७३) योगतत्व-(७४) योगशिक्षा (७५) रहस्य (७६) रामतापिनी (७७) रामरहस्य (७८) रुद्राक्ष (७९) वज्रसूचि (८०) वराह (८१) वासुदेव (८२) विद्या (८३) शरभ (८४) शाट्यायनी (८५) शाण्डिल्य (८६) शारीर (८७) संन्यास (८८) सरस्वती-रहस्य (८९) सर्वसार (९०) सावित्री (९१) सीता (९२) सुवाल (९३) सूर्य (९४) सौभाग्य (९५) स्कन्द (९६) हयग्रीव और (९७) हृदय ।

इनको छोड़कर अथर्ववेद सम्बन्धी और भी उपनिषदोंके नाम सुने जाते हैं जो सब मिलाकर दो-सौसे भी अधिक होंगे । वह सब प्राचीन मालूम नहीं होते । इसलिए उनका नाम देना हम यहाँ निरर्थक समझते हैं ।

उपवेद-खण्ड

1704

तेरहवाँ अध्याय

उपवेद और वेदके अङ्गोपाङ्ग

चरणव्यूहमें लिखा है—

"तत्र वेदानामुपवेदाश्चत्वारो भवन्ति।
ऋग्वेदस्यायुर्वेद उपवेदो, यजुर्वेदस्य
धनुर्वेद उपवेदः, सामवेदस्य गान्धर्व वेदः
अथर्ववेदास्यार्थ शास्त्रं चेत्याह भगवान् व्यासः स्कन्धोवा।"

अर्थात्—वेदोंके चार उपवेद हैं। ऋग्वेदका आयुर्वेद है, यजुर्वेदका धनुर्वेद है, सामवेदका गान्धर्ववेद है और अथर्ववेदका अर्थशास्त्र उपवेद है। परन्तु सुश्रुत और भावप्रकाशमें तथा चरकमें भी जो कुछ लिखा है उससे यह अवगत होता है कि आयुर्वेद अथर्ववेदका उपवेद है। ❀

चरणव्यूहने भगवान् व्यासका प्रमाण देकर आयुर्वेदको ऋग्वेदका उपवेद बताया है। अश्विनीकुमार संहिता अप्रकाशित ग्रन्थ है जो चरक सुश्रुतादिका आधार है, परन्तु हमें नहीं मालूम कि उसके मतमें आयुर्वेद किस वेदका उपवेद है। परन्तु चरक, सुश्रुतादि आयुर्वेदके ही प्रचलित ग्रन्थ जब आयुर्वेदको अथर्ववेदका उपवेद बताते हैं तो हमें ऋग्वेदका उपवेद अर्थशास्त्र वा नीति शास्त्रको ही ठहराना पड़ेगा।

सामवेदका उपवेद गान्धर्ववेद है। इसमें तो किसीको तनिक भी सन्देह नहीं हो सकता। क्योंकि यह सङ्गीतशास्त्र है और चारो वेदोंमें सङ्गीतशास्त्रका सम्बन्ध केवल सामवेदसे है। शेष उपवेदोंके लिए कोई युक्ति काम नहीं कर सकती। धनुर्वेदके लिए भी प्रायः मतैक्य है कि यह यजुर्वेदका उपवेद है। अब केवल अर्थशास्त्रके सम्बन्धकी बात रही जाती है। इसलिए चरणव्यूहका विरोध रहते हुए भी लाचार होकर अर्थशास्त्रको ही ऋग्वेदका उपवेद मानना पड़ता है। इन चार उपवेदोंके सिवाय वेदके छः अङ्ग माने जाते हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द। जैसे मनुष्यके आँख, कान, नाक, मुँह, हाथ

❀ चतुर्णां ऋक्साम यजुरथर्ववेदाना आत्मनोऽथर्व वेदेभक्तिरादिश्यावेदोहि अथर्वण.। दान स्वस्त्ययन-बलि-मङ्गल-होम-नियम-प्रायश्चित्तोपवास-मन्त्राणि परिग्रहात् चिकित्सा प्राह।

(चरक सूत्रस्थान, ३० अध्याय)

इह खलु आयुर्वेदोनाम यदुपाङ्गमथर्व वेदस्य

(सुश्रुत सूत्रस्थान, १ अध्याय)

विधाताथर्व सर्वस्वमायुर्वेदम् प्रकाशयन्।
स्वनाम्ना संहिता चक्रे लक्ष श्लोकमयीमृजुम्॥

(भावप्रकाश)

और पाँव होते हैं वैसे ही वेदोंके लिए आँख ज्योतिष है, कान निरुक्त है, नाक शिक्षा है, मुख व्याकरण है, हाथ कल्प है और पाँव छन्द हैं। उच्चारणके सम्बन्धमें उपदेश शिक्षा है, यज्ञयागादि कर्म सम्बन्धी उपदेश कल्प है, शब्दोंके सम्बन्धमें विचार व्याकरण है और उनकी व्युत्पत्ति और अर्थके सम्बन्धमें विचार निरुक्त है। यज्ञयागादिके करनेके ठीक मुहूर्त्तका विचार और तत्सम्बन्धी ज्ञान ज्योतिष है और छन्दोंके सम्बन्धका ज्ञान छन्द है। संहिताओंमें, ब्राह्मणोंमें, और सूत्रोंमें जिनका वर्णन हम पिछले अध्यायोंमें कर आये हैं इन छहों अङ्गोंका जहाँ-तहाँ प्रयोग हुआ है। इसलिए वेदके ज्ञानकी पूर्ति बिना इन विषयोंको स्वतन्त्ररूपसे अलग-अलग अध्ययन किये हुए नहीं हो सकती।

शिक्षा और छन्दसे ठीक-ठीक रीतिपर उच्चारण और पठनका ज्ञान होता है। व्याकरणसे शब्दों और धातुओंके ठीक-ठीक रूप समझमें आते हैं और पदपाठकी सुसङ्गति बैठ जाती है। निरुक्तसे शब्दोंकी व्युत्पत्ति समझमें आती है और प्रसङ्गानुसार अर्थ लगानेमें सुभीता होता है। परन्तु इतनेसे केवल मन्त्रोंके पढ़ने और समझनेकी क्षमता हुई। अब कौन सा यज्ञ किस लिए, किस विधि विधानसे, करना चाहिए यह कल्पसूत्रोंके अनुशीलनसे मालूम हो सकता है। परन्तु यज्ञादि वेद-विहित कार्य ठीक और निश्चित मुहूर्त्तपर ही होने चाहिए इसलिए ज्योतिषशास्त्रका ज्ञान अनिवार्य है। इस प्रकार इन छहों अङ्गोंके साथ वेदोंका अध्ययन यथावत अध्ययन कहला सकता है।

उपवेदोंका अध्ययन भी प्रत्येक वेदके साथ-साथ वेदके ज्ञानकी परिपूर्णताके लिए आवश्यक है। सामवेदका विधिपूर्वक अध्ययन करनेवाला छहों अङ्गोंके अतिरिक्त लौकिक और वैदिक दोनों तरहके सङ्गीतशास्त्रका ज्ञान जबतक प्राप्त न करे तबतक वह वास्तवमें सामवेदका पूर्ण पण्डित नहीं कहला सकता। इसपर यह आशङ्का हो सकती है कि वेदके ज्ञानकी पूर्णताके लिए लौकिक सङ्गीतशास्त्रकी क्या आवश्यकता है? परन्तु यह आशङ्का उसे न होनी चाहिए जो वेदको सम्पूर्ण ज्ञानका मूल मानता है। और जो सम्पूर्ण ज्ञानका मूल न मानता हो और उसे केवल पारलौकिक विद्याओंका हेतु समझता हो, उसका समाधान इस तरह किया जा सकता है कि जिसे वेदसम्बन्धी विषयका व्यावहारिक ज्ञान नहीं हुआ वह सुशिक्षित कैसे कहला सकता है। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि अथर्ववेदमें राजयक्ष्मा रोगके निवारणके लिए ओषधियाँ भी बतायी हैं और मन्त्रोपचार भी बताये हैं। इसका प्रयोग लोकमें आता है। अथर्ववेदका पूर्ण ज्ञान रखनेवाला राजयक्ष्माकी चिकित्सा यदि करना चाहे तो पहले तो उसे रोगीका पूरा इतिहास जानना पड़ेगा और फिर उसके वर्तमान लक्षणोंपर विचार करके रोगका निदान करना पड़ेगा। जिस विज्ञानका मूल अथर्ववेदमें इस प्रकार मौजूद है उस विज्ञानका यथार्थ रीतिसे अध्ययन किये बिना वह अपने अथर्ववेदके ज्ञानसे सांसारिक जीवनमें कोई लाभ नहीं उठा सकता और न उससे किसी दूसरेको लाभ पहुँचा सकता है। इसीलिए अथर्ववेदके परमार्थ-तत्वमात्रका अनुशीलन करनेवाला भी संसारसे बाहरका मनुष्य न होनेके कारण अथर्ववेदका कोई उपयोग बिना आयुर्वेदकी वैज्ञानिक शिक्षाके चिकित्सा कार्यमें न कर सकेगा।

चारों उपवेद चार विज्ञान हैं। अर्थशास्त्रमें वार्ता अर्थात् रोजी रोजगारका सारा

विज्ञान है और समाजशास्त्रके सङ्गठन और राष्ट्रनीतिका मूल है। धनुर्वेदमें अस्त्रशस्त्र द्वारा व्यक्ति और समष्टि सबकी रक्षाके साधन और उनके प्रयोगकी विधियाँ वैज्ञानिक रीतिसे दी हुई हैं। गान्धर्व वेदमें सङ्गीतका विज्ञान है जो मनके उत्तमसे उत्तम भावोंको उद्दीप्त करने-वाला और उसकी चञ्चलताको मिटाकर स्थिररूपसे उसे परमात्माके ध्यानमें लगा देनेवाला है। लोकमें यह कला कामशास्त्रके अन्तर्गत है, परन्तु वेदमें मोक्षके साधनोंमेंसे एक प्रधान साधन है। आयुर्वेद प्राणीके रोगी शरीर और मनको स्वस्थ करनेके साधनोंपर साङ्गोपाङ्ग विचार किया गया है। इस प्रकार यह चारों विज्ञान चारों वेदोंके आनुषङ्गिक हैं। आगेके अध्यायोंमें हम चारों उपवेदोंका अलग अलग संक्षेपसे वर्णन करेंगे। धनुर्वेद और गन्धर्व वेदके बाद आयुर्वेद और आयुर्वेदके बाद अर्थशास्त्रका वर्णन किया जायगा।

चौदहवाँ अध्याय

धनुर्वेद

मधुसूदन सरस्वतीने अपने ग्रन्थ प्रस्थान-भेदमें लिखा है कि यजुर्वेदका उपवेद धनुर्वेद है, इसमें चार पाद हैं यह विश्वामित्रका बनाया हुआ है। पहला दीक्षा-पाद है। दूसरा सङ्ग्रह-पाद है, तीसरा सिद्ध-पाद है और चौथा प्रयोग-पाद है। पहले पादमें धनुषका लक्षण और अधिकारीका निरूपण है। जान पड़ता है कि यहाँ धनुष शब्द रूढ़ि है। अभिप्राय चारों प्रकारके आयुधोंसे है। (क्योंकि आगे चलकर प्रस्थान-भेदकार कहते हैं कि) आयुध चार प्रकारके होते हैं (१) मुक्त (२) अमुक्त, (३) मुक्तामुक्त (४) यन्त्र-मुक्त। मुक्त आयुध चक्रादि हैं। अमुक्त खड्गादि हैं। मुक्तामुक्त शल्य और उस तरहके और हथियार हैं। यन्त्र-मुक्त शरादि हैं। मुक्तको अस्त्र कहते हैं और अमुक्तको शस्त्र। ब्राह्म, वैष्णव, पाशुपत, प्राजापत्य और आग्नेयादि भेदसे नाना प्रकारके आयुध हैं। साधिदैवत और समन्त्र चतुर्विध आयुधोंपर जिनका अधिकार है वह क्षत्रिय कुमार होते हैं और उनके अनुवर्ती जो चार प्रकारके होते हैं, पदाति, रथी गजारोही और अश्वारोही। इन सब बातोंके सिवाय दीक्षा, अभिषेक, शाकुन, और मङ्गलकरणादि सभी प्रथम पादमें वर्णन किया गया है। आचार्यका लक्षण और सब तरहके अस्त्र-शस्त्रादिके विषयका सङ्ग्रह द्वितीय पादमें दिखाया गया है। तीसरे पादमें गुरु और विशेष विशेष साम्प्रदायिक शस्त्र, उनका अभ्यास, मन्त्र, देवता और सिद्धिकरणादि वर्णित हैं। चौथे पादमें देवार्चना, अभ्यासादि और सिद्ध अस्त्र-शस्त्रादिके प्रयोगका निरूपण है।

वैशम्पायनका एक धनुर्वेद है जिससे जान पड़ता है कि सबसे पहले तलवारकी चाल चली थी, फिर राजा पृथुके समयमें धनुषका प्रचार हुआ।

इस ग्रन्थको मैंने नहीं देखा है परन्तु बङ्गला विश्वकोषमें इससे अवतरण दिये हुए हैं।

पुराणोंमें राजा पृथुके पहले देवासुर-सङ्ग्राममें धनुषकी चर्चा आयी है। इसलिए वैशम्पायनके धनुर्वेदमें जो राजा पृथुका पहले-पहल धनुर्धर होना दिखाया है वह मनुष्योंमें पहले-पहल प्रचारकी कथा हो सकती है।

विश्वकोषकारने धनुर्वेद शब्दपर बहुत कुछ विस्तार किया है। इसमें अधिकांश दो पुस्तकोंके अवतरण दिये हैं। एक तो वैशम्पायनका धनुर्वेद और दूसरे वृद्ध शार्ङ्गधर। यों तो प्रायः सभी पुराणोंमें महाभारतमें और रामायणमें भी शस्त्र-अस्त्रोंका बहुत कुछ वर्णन पाया जाता है, परन्तु अग्निपुराणमें कुछ विशेष वर्णन है। विश्वामित्रका लिखा हुआ ग्रन्थ मधुसूदन सरस्वतीको प्राप्य था। परन्तु अब वह अप्राप्य है।

प्राचीन कालमें हिन्दूराजा और क्षत्रिय विधिपूर्वक धनुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण करते थे और राजसमाजमें उनका इस विद्याके लिए बड़ा आदर होता था। उस समय धनुर्वेदके अनेक ग्रन्थोंका प्रचार था। अब तो धनुर्वेदकी चर्चा कुछ विशेषरूपसे शुक्रनीति, वीरचिन्ता-

मणि आदि ग्रन्थोंमें पायी जाती है। और वैशम्पायनोक्त धनुर्वेद, वृद्ध शार्ङ्गधर, युद्ध-जयार्णव और युक्ति-कल्पतरु आदि धनुर्वेद सम्बन्धी ग्रन्थ बचे बचाये रह गये हैं* । वैज्ञानिक ग्रन्थ होनेके कारण प्रयोगाभावसे इसका लोप होगया। गान्धर्ववेद, आयुर्वेद, और अर्थशास्त्र जिस प्रकार व्यवहारमें लाये विना जीवित नहीं रह सकते उसी तरह धनुर्वेद भी व्यवहाराभावसे लुप्त हो गया। जिस तरह ताल-स्वर-लयका अभ्यास किए विना गान्धर्ववेदके पाठमात्रका कोई माहात्म्य नहीं है, जिस तरह चिकित्साको व्यवहारमें लाये विना चरकसुश्रुतका पाठमात्र निरर्थक है उसी तरह वहुत कालसे धनुर्वेदका व्यवहार न होनेके कारण धनुर्वेदका भी लोप हो गया।

वस्तीके प्रज्ञाचक्षु विद्वान् पं० धनराज शास्त्रीको धनुर्वेदका एक ग्रन्थ स्मरण है जिसकी श्लोक-संख्या वह ६०,००० वतलाते हैं†। यही यजुर्वेदका असली उपवेद है। "इस सृष्टिके स्वायम्भुव मन्वन्तरके आदि कृतयुगमें शिवजीने इसका निर्माण किया। यह वेदका समकालीन है। इसमें चारों तत्वके परमाणु वननेका प्रकार दिखाया है। और जिस प्रकारसे परमाणुका सम्मिश्रण और उनका वियोजन कार्य दिखाया है उसी तरह उनके इकट्ठे करनेका प्रकार और मन्त्र भी वताये हैं। परमाणुसे शस्त्र और अस्त्र निर्माणकी विधि वतलायी है। जो शब्द-शक्तिसे अथवा मन्त्रसे चलते हैं उनका नाम अस्त्र है और जो हाथसे चलाये जाते हैं उनका नाम शस्त्र है। इसमें अनेक प्रकारके धनुष और वाण और शक्ति, पट्टिश, पटा, भुशुण्डि, शताघ्नि, भिण्डिपाल, कुलिश, खड्ग, पशुपति अस्त्र, ब्रह्मास्त्र, शिवास्त्र, शक्तिका अस्त्र, इत्यादि नाना भाँतिके शस्त्र अस्त्रोंकी व्याख्या है। इनकी आवश्यकता, प्रकृति-निरोध, प्रकृति-रक्षण, राज्य-सम्भार, शत्रु-संहार, दण्डनीति, राजकीय युद्ध आदि अनेक विषयोंमें है। इसमें १०८ प्रकरण हैं जिनमें प्रत्येक विषयकी क्रमशः व्याख्या की गयी है।

(१) चारों तत्वकी सम्पत्ति (पृथ्वी, तेज, अप, वायु)
(२) आकाशकी प्रधानता।
(३) परमाणु वननेकी आवश्यकता
(४) उत्पत्ति प्रकार
(५) सम्मिश्रणकी आवश्यकता
(६) मिश्रण प्रकार
(७) उसका विकास
(८) अस्त्र शस्त्रादिकी आवश्यकता
(९) उसका प्रचार
(१०) परमाणुकी एकत्रता
(११) उनके वियोजनकी आवश्यकता
(१२) वियोजन प्रकार
(१३) संयोजन विधि
(१४) एक एककी, दोकी, तीनकी, चारकी
(१५) सूक्ष्म व्यवहार
(१६) स्थूल प्रकार
(१७) शस्त्र वनानेकी विधि
(१८) शस्त्र-मन्त्र
(१९) अस्त्र वनानेका प्रकार

---

* वँगला विश्वकोष।

† वस्तीके मुन्सिफ श्रीमान् वावू कृष्णचन्द्रजी श्रीवास्तव्यकी कृपासे शास्त्रीजीका लिखवाया हुआ एक नोट और उसके साथ उस धनुर्वेदकी विशेष सूची और इसी तरह कई ग्रन्थोंके ऊपर नोट और सूची मुझे उपलब्ध हैं। यहाँ मैं उसी नोटसे उद्धरण कर रहा हूं।

चौदहवाँ अध्याय

धनुर्वेद

मधुसूदन सरस्वतीने अपने ग्रन्थ प्रस्थान-भेदमें लिखा है कि यजुर्वेदका उपवेद धनुर्वेद है, इसमें चार पाद हैं यह विश्वामित्रका बनाया हुआ है। पहला दीक्षा-पाद है। दूसरा सङ्ग्रह-पाद है, तीसरा सिद्ध-पाद है और चौथा प्रयोग-पाद है। पहले पादमें धनुषका लक्षण और अधिकारीका निरूपण है। जान पड़ता है कि यहाँ धनुष शब्द रूढ़ि है। अभिप्राय चारों प्रकारके आयुधोंसे है। (क्योंकि आगे चलकर प्रस्थान-भेदकार कहते हैं कि) आयुध चार प्रकारके होते हैं (१) मुक्त (२) अमुक्त, (३) मुक्तामुक्त (४) यन्त्र-मुक्त। मुक्त आयुध चक्रादि हैं। अमुक्त खड्गादि हैं। मुक्तामुक्त शल्य और उस तरहके और हथियार हैं। यन्त्र-मुक्त शरादि हैं। मुक्तको अस्त्र कहते हैं और अमुक्तको शस्त्र। ब्राह्म, वैष्णव, पाशुपत, प्राजापत्य और आग्नेयादि भेदसे नाना प्रकारके आयुध हैं। साधिदैवत और समग्र चतुर्विध आयुधोंपर जिनका अधिकार है वह क्षत्रिय कुमार होते हैं और उनके अनुवर्ती जो चार प्रकारके होते हैं, पदाति, रथी गजारोही और अश्वारोही। इन सब बातोंके सिवाय दीक्षा, अभिषेक, शाकुन, और मङ्गलकरणादि सभी प्रथम पादमें वर्णन किया गया है। आचार्यका लक्षण और सब तरहके अस्त्र-शस्त्रादिके विषयका सङ्ग्रह द्वितीय पादमें दिखाया गया है। तीसरे पादमें गुरु और विशेष विशेष साम्प्रदायिक शस्त्र, उनका अभ्यास, मन्त्र, देवता और सिद्धिकरणादि वर्णित हैं। चौथे पादमें देवार्चना, अभ्यासादि और सिद्ध अस्त्र-शस्त्रादिके प्रयोगका निरूपण है।

वैशम्पायनका एक धनुर्वेद है जिससे जान पड़ता है कि सबसे पहले तलवारकी चाल चली थी, फिर राजा पृथुके समयमें धनुषका प्रचार हुआ।

इस ग्रन्थको मैंने नहीं देखा है परन्तु बङ्गला विश्वकोषमें इससे अवतरण दिये हुए हैं।

पुराणोंमें राजा पृथुके पहले देवासुर-सङ्ग्राममें धनुषकी चर्चा आयी है। इसलिए वैशम्पायनके धनुर्वेदमें जो राजा पृथुका पहले-पहल धनुर्धर होना दिखाया है वह मनुष्योंमें पहले-पहल प्रचारकी कथा हो सकती है।

विश्वकोषकारने धनुर्वेद शब्दपर बहुत कुछ विस्तार किया है। इसमें अधिकांश दो पुस्तकोंके अवतरण दिये हैं। एक तो वैशम्पायनका धनुर्वेद और दूसरे वृद्ध शार्ङ्गधर। यों तो प्रायः सभी पुराणोंमें महाभारतमें और रामायणमें भी शस्त्र-अस्त्रोंका बहुत कुछ वर्णन पाया जाता है, परन्तु अग्निपुराणमें कुछ विशेष वर्णन है। विश्वामित्रका लिखा हुआ ग्रन्थ मधुसूदन सरस्वतीको प्राप्य था। परन्तु अब वह अप्राप्य है।

प्राचीन कालमें हिन्दूराजा और क्षत्रिय विधिपूर्वक धनुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण करते थे और राजसमाजमें उनका इस विद्याके लिए बड़ा आदर होता था। उस समय धनुर्वेदके अनेक ग्रन्थोंका प्रचार था। अब तो धनुर्वेदकी चर्चा कुछ विशेषरूपसे शुक्रनीति, वीरचिन्ता-

मणि आदि ग्रन्थोंमें पायी जाती है। और वैशम्पायनोक्त धनुर्वेद, वृद्ध शार्ङ्गधर, युद्ध-जयार्णव और युक्ति-कल्पतरु आदि धनुर्वेद सम्बन्धी ग्रन्थ बचे बचाये रह गये हैं*। वैज्ञानिक ग्रन्थ होनेके कारण प्रयोगाभावसे इसका लोप होगया। गान्धर्ववेद, आयुर्वेद, और अर्थशास्त्र जिस प्रकार व्यवहारमें लाये बिना जीवित नहीं रह सकते उसी तरह धनुर्वेद भी व्यवहाराभावसे लुप्त हो गया। जिस तरह ताल-स्वर-लयका अभ्यास किए बिना गान्धर्ववेदके पाठमात्रका कोई माहात्म्य नहीं है, जिस तरह चिकित्साको व्यवहारमें लाये बिना चरकसुश्रुतका पाठमात्र निरर्थक है उसी तरह बहुत कालसे धनुर्वेदका व्यवहार न होनेके कारण धनुर्वेदका भी लोप हो गया।

बस्तीके प्रज्ञाचक्षु विद्वान् पं० धनराज शास्त्रीको धनुर्वेदका एक ग्रन्थ स्मरण है जिसकी श्लोक-संख्या वह ६०,००० बतलाते हैं†। यही यजुर्वेदका असली उपवेद है। "इस सृष्टिके स्वायम्भुव मन्वन्तरके आदि कृतयुगमें शिवजीने इसका निर्माण किया। यह वेदका समकालीन है। इसमें चारों तत्वके परमाणु बननेका प्रकार दिखाया है। और जिस प्रकारसे परमाणुका सम्मिश्रण और उनका वियोजन कार्य दिखाया है उसी तरह उनके इकट्ठे करनेका प्रकार और मन्त्र भी बताये हैं। परमाणुसे शस्त्र और अस्त्र निर्माणकी विधि बतलायी है। जो शब्द-शक्तिसे अथवा मन्त्रसे चलते हैं उनका नाम अस्त्र है और जो हाथसे चलाये जाते हैं उनका नाम शस्त्र है। इसमें अनेक प्रकारके धनुष और बाण और शक्ति, पट्टिश, पटा, भुशुण्डि, शताग्नि, भिण्डिपाल, कुलिश, खड्ग, पशुपति अस्त्र, ब्रह्मास्त्र, शिवास्त्र, शक्तिका अस्त्र, इत्यादि नाना भाँतिके शस्त्र अस्त्रोंकी व्याख्या है। इनकी आवश्यकता, प्रकृति-निरोध, प्रकृति-रक्षण, राज्य-सम्भार, शत्रु-संहार, दण्डनीति, राजकीय युद्ध आदि अनेक विषयोंमें है। इसमें १०८ प्रकरण हैं जिनमें प्रत्येक विषयकी क्रमशः व्याख्या की गयी है।

(१) चारों तत्वकी सम्पत्ति (पृथ्वी, तेज, अप, वायु)
(२) आकाशकी प्रधानता।
(३) परमाणु बननेकी आवश्यकता
(४) उत्पत्ति प्रकार
(५) सम्मिश्रणकी आवश्यकता
(६) मिश्रण प्रकार
(७) उसका विकास
(८) अस्त्र शस्त्रादिकी आवश्यकता
(९) उसका प्रचार
(१०) परमाणुकी एकत्रता
(११) उनके वियोजनकी आवश्यकता
(१२) वियोजन प्रकार
(१३) संयोजन विधि
(१४) एक एककी, दोकी, तीनकी, चारकी
(१५) सूक्ष्म व्यवहार
(१६) स्थूल प्रकार
(१७) शस्त्र बनानेकी विधि
(१८) शस्त्र-मन्त्र
(१९) अस्त्र बनानेका प्रकार

---

* बँगला विश्वकोष।

† बस्तीके मुन्सिफ श्रीमान् बाबू कृष्णचन्द्रजी श्रीवास्तव्यकी कृपासे शास्त्रीजीका लिखवाया हुआ एक नोट और उसके साथ उस धनुर्वेदकी विशेष सूची और इसी तरह कई ग्रन्थोंके ऊपर नोट और सूची मुझे उपलब्ध है। यहाँ मैं उसी नोटसे उद्धरण कर रहा हू।

(२०) अस्त्रयन्त्र
(२१) अस्त्र-रक्षण
(२२) राज्य सम्भार
(२३) राज्यकी आवश्यकता
(२४) शत्रु-उत्पत्ति-हेतु
(२५) संहरण-प्रकार
(२६) युद्ध-विधि
(२७) युद्ध-प्रकार
(२८) सैनिक व्यवस्था
(२९) सन्धान-नियम
(३०) अस्त्र-शस्त्रादिकी उपचार-विधि
(३१) उनका भेद और प्रकार
(३२) उनका चलाना, काटना, लौटाना
(३३) मन्त्र-प्रकार
(३४) शाब्दिक यन्त्र
(३५) शाब्दिक तन्त्र
(३६) ओषधि-प्रयोग
(३७) प्रत्येक शस्त्रकी पृथक्-पृथक् शिक्षा
(३८) सैनिक समानयन
(३९) शस्त्र-धर्म
(४०) अस्त्र-धर्म
(४१) शत्रुजित यज्ञ
(४२) छिपनेका प्रकार
(४३) शस्त्र-क्रिया निर्माण
(४४) अस्त्र-क्रिया निर्माण
(४५) शस्त्रका पृथक्-पृथक काल
(४६) अस्त्रका पृथक पृथक काल
(४७) शक्ति-सम्पादन
(४८) शस्त्र-विसर्जन
(४९) अस्त्र विसर्जन
(५०) विसर्जन
(५१) युद्ध-त्याग प्रकार
(५२) उचित-अनुचित विचार
(५३) क्रोधस्तम्भन-प्रकार
(५४) दण्ड आवश्यकता
(५५) दण्ड-प्रकार
(५६) अर्थ-अनर्थ-परिज्ञान
(५७) देश-ग्रहण-प्रकार
(५८) देश-विसर्जन-प्रकार
(५९) राज्य-संवरण-प्रकार
(६०) प्रजा-पालन-नियम
(६१) शस्त्रास्त्र-प्रयोजन (कब अस्त्र और कब शस्त्रका प्रयोग करना चाहिये)
(६२) क्रिया-निवृत्ति
(६३) शस्त्रके रखनेका प्रकार
(६४) अस्त्रके रखनेका प्रकार
(६५) उनकी सफाई
(६६) वेष्ठन प्रकार
(६७) साधन-व्यवहार
(६८) गोपन मन्त्र
(६९) चित्रसे शस्त्र सीखना
(७०) चित्रसे अस्त्र-शिक्षा
(७१) चित्र-वेधन
(७२) भूवल
(७३) जय-पद (यन्त्र बनता है जो सिर पर बांधा जाता है)
(७४) विजय-पद
(७५) कवच निर्माण
(७६) कवच-प्रकार
(७७) राज्य-भेदन
(७८) शब्दवेध
(७९) अग्निवेध
(८०) जलवेध
(८१) भूमिखण्डन
(८२) पाश-निर्माण
(८३) पाश-प्रकार
(८४) कितनी दूरका मनुष्य किस प्रकारके पाशसे बाँधा जा सकता है
(८५) शक्ति-प्रहार
(८६) शक्ति-उद्धार

(८७) कुलिश-प्रहार
(८८) कुलिश-उद्धार
(८९) स्तम्भन
(९०) विचार-भञ्जन
(९१) विस्मृति-अस्त्र
(९२) चकित-सन्ताप
(९३) माया-निदर्शन
(९४) परमाणु-मण्डल
(९५) मार्गावरोध
(९६) स्थलमें जल और जलमें स्थलकी प्रतीति, विभ्रांति
(९७) स्वप्न-विजय
(९८) ज्वर-बाण
(९९) विषम-बाण
(१००) भूबन्धन
(१०१) अग्निबन्धन
(१०२) उड्डान
(१०३) चित्रच्छल
(१०४) व्यामोह
(१०५) शब्दच्छल
(१०६) अन्तर्धान
(१०७) अपस्मृति
(१०८) ज्ञान-विपर्यय

धनुष-प्रदीप नामका ग्रन्थ द्रोणाचार्यका बनाया हुआ ७००० श्लोकोंका है। इसकी रचना महाभारतके कुछ पहिले हुई और धनुष-चन्द्रोदय नामका एक दूसरा ग्रन्थ है जिसमें ६०,००० श्लोक हैं और जिस परशुरामने वैवस्वत मन्तरके त्रेतामें रचा था। यह दोनों ग्रन्थ भी प्रकाशित नहीं हुए हैं। पण्डित धनराज शास्त्रीको स्मरण हैं।

धनुष-प्रदीपमें धनुष और बाण बनानेके स्थूल विधान हैं, किन-किन धातुओंसे धनुष बन सकते हैं और किन धातुओंसे बाण बनते हैं और तर्कश बनानेका विधान और किन किन ओषधियोंका रस-प्रयोग होता है, यह वर्णन है। तथा थोड़े से स्थूल मन्त्र प्रयोग दिखाये गये हैं। इसमें केवल शस्त्र-विधान हैं। भुशुण्डि, शतघ्नी, भिण्डिपाल, पट्टिश, चामर, कवच, छत्र, विजनका भी बनाना लिखा है। इसमें दो प्रकरण हैं। एकमें धनुर्वाण निर्माण तथा प्रयोग दूसरेमें भुशुण्डि आदिका निर्माण और प्रयोग है।

धनुषचन्द्रोदयमें परमाणुसे धनुष और बाणका निर्माण और परमाणुसे ही समस्त शस्त्रका निर्माण और प्रयोग लिखा है। इसमें १२ प्रकरण हैं। पहलेमें परमाणुपरिचय और एकत्र करनेके यन्त्र तथा धनुष-बाणका निर्माण, मन्त्र-प्रयोग (२) छिपने और छिपानेकी विधि (३) कुलिश, पट्टिश, चामर, निर्माण विधि, उनका प्रयोग, व्याहार। (४) परमाणु-प्रकार, शक्ति निर्माण (५) शक्ति प्रयोग—खड्ग विधि (५) ब्रह्मास्त्र, रुद्रास्त्र, वैष्णवी शक्ति पट्टिशका विधान और प्रयोग (७) पाश-निर्माण, पाश-प्रयोग (८) पाश-मोचन-विधि (९) शस्त्र-अस्त्रकी स्तम्भन-विधि (१०) काटनेका प्रयोग (११) अग्नि-वर्षण, जल-वर्षण (१२) ज्वर-प्रयोग, ओषधि-प्रयोग।

पन्द्रहवाँ अध्याय

गान्धर्व वेद

गान्धर्व वेद सामका उपवेद है। हम पिछले ग्यारहवें अध्यायमें देख चुके हैं कि सामवेदकी १००० शाखाएं कही जाती हैं। परन्तु केवल तेरह शाखाएं पायी जाती हैं। वार्ष्णेय शाखाका उपवेद गान्धर्व उपवेदके नामसे कहा जाता है। पण्डित धनराज शास्त्रीको इसकी एक लाख ऋचाएं याद हैं। उसमें चौदह प्रकरण हैं जो काण्ड कहलाते हैं। इसकी विषयसूची इस प्रकार है—

(१) ध्वन्यात्मक शब्दोंका वर्णन, ध्वनिकी उत्पत्ति, ध्वनि श्रवणफल, प्रतिध्वनिकी उत्पत्ति, प्रतिध्वनिफल और उसका प्रकार।

(२) वर्णात्मक शब्दकी उत्पत्ति, वर्णकी उत्पत्ति, स्पन्दन-प्रकार, स्पन्दन-विधि, स्वरकी उत्पत्ति, स्वरभेद, व्यञ्जनकी उत्पत्ति, व्यञ्जन-भेद।

(३) स्वर-व्यञ्जनका संयोग, स्वर और कालका संयोग, स्वरकी आकृति, स्वरोंके सात भेद—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद। हरएकमें दो-दो कोमल और तीव्र ग्राम, हरएकमें तीन तीन मूर्छना, २१, इन्हींसे राग-निर्माण, रागिणी-निर्माण, साङ्कर्य्य, संयोग, रागात्मक, द्वेषात्मक भाव, नवरस निरूपण, साहित्य निरूपण, इनके संवादी, विवादी, अनुवादी, विरोधी, प्रतिरोधी, अनुरोधी, काल-साङ्गीत क्रिया-साङ्गीत, देश-साङ्गीत, इच्छा-साङ्गीत, वस्तुमाला।

(४) भाव-उत्पत्तिका प्रकार, भावका प्रयोग, भाव-समर्थन, भावभेद ३६ प्रकारके, इसीके अन्तर्गत काम, शास्त्र भी है। कामका प्रवेश, अपदेश, आवाहन, विसर्जन, प्रसारण, आकुञ्चन, शब्द और कालका नित्य संयोग, प्रकृति-सम्बन्ध, काल-विरोधसे विकृति-उत्पत्ति, विकृति-शान्ति, रोग शान्ति, मन्त्र-निर्माण, तन्त्र-निर्माण यन्त्र-निर्माण, तत्व-विपर्य्य, ज्ञान-विपर्य्यय, वस्तु-सञ्चालन।

(५) शब्दके रङ्ग और रूपकी व्याख्या, उनके देवता, हरएक रागकी शक्ति, उनके अधिष्ठातृ देवता, पारमात्मिक सम्बन्ध, भक्ति-उत्पत्ति-प्रकार, चेतावनी, षट-ऋतुवर्णन, ऋतु विपर्यय, क्रिया-विपर्यय।

(६) शब्द-सङ्केत, प्रकृति-वर्णन, नायक वर्णन, नायिका-वर्णन, धर्म-संस्थापन।

(७) आकाश-सङ्कर्षण, तत्व-आकर्षण, तत्व-विकर्षण।

(८) तत्व समावेश, क्लेश-हरण, देवता-आवाहन, विसर्जन, जगद्-व्यापार।

(९) स्वर और कालका संयोग, उनका वियोग, वस्तुका संयोग-वियोग।

(१०) भगवद्विभूति, करणज्ञान, कर्ताज्ञान।

(११) स्वस्त्ययन, मङ्गलाचरण, यज्ञकी आवश्यकता, यज्ञ-गान।

(१२) अरण्यगान, ऊह्यगान, वैण्यगान।

(१३) नर्तन प्रकार, नर्तनावश्यकता, नाट्यशाला-निर्माण, नाट्य-प्रकार, ताल-उत्पत्ति-प्रकार, ताल-भेद, तालनृत्य-सम्बन्ध, वाद्य-निरूपण, वाद्य-आवश्यकता, राग और वाद्य सम्बन्ध, उनके भेद, आकाशिक गान, मन्त्रद्वारा दिव्य गान, गन्धर्व गान, चारण साहित्य, आप्सरस नृत्य, उरग नृत्य, मयूर नृत्य, ताण्डव नृत्य, वन्शी प्रकार, आकर्षिणी सम्मोहिनी, स्तम्भनी, ताल-निबन्ध, कङ्कणमाला, जयमाला, पुष्पशय्या, प्रकार और आवश्यकता, सौर गान, चान्द्र गान, तारक नृत्य, वैभवताल ।

(१४) उपासना काण्ड ।

सङ्गीत रत्नाकरमें २७००० श्लोक हैं। इसके निर्माणकर्त्ता वामदेव महर्षि हैं। इसका समय स्वारोचिष मन्वन्तरका नवम त्रेता है। इसमें तीन प्रकरण हैं। पहले प्रकरणमें गानकी आवश्यकता, स्वस्तिवाचन, अरण्य गान, प्रकृति भिन्न होनेका प्रकार, दूसरे प्रकरणमें स्वरभेद, तालभेद, मयूर नृत्य, ताण्डव-नृत्य, नाग-नृत्य, सम्मिलन-प्रकार, संसार-नर्तन, शरीर-नाट्य, राग रागिनियोंके भेद ।

तीसरे प्रकरणमें सङ्कर राग रागिनियोंका वर्णन, सङ्कर प्रकार और उसकी आवश्यकता, शाब्दिक औषधि, शावर-मन्त्र-निर्माण, आवश्यकता, वीणाकी आवश्यकता, वाद्य-शिक्षा, तन्त्री (सितार), उसका प्रकार, फल, उपासना विधि, नाट्य-क्रीड़ा, रास-विधान, सारस-नृत्य, हंस-नृत्य, शारदागान, धर्मकीर्तन ।

सङ्गीत दर्पणमें ३२००० श्लोक हैं। इसके निर्माणकर्त्ता शृङ्गी ऋषि हैं। इसका समय वैवस्वत मन्वन्तरका सोलहवाँ त्रेता है। इसके छः प्रकरण हैं।

पहले प्रकरणमें सङ्गीतकी आवश्यकता और उसका प्रकार तथा प्रयोजन ।

दूसरे प्रकरणमें रागनिर्माण विधि, आवश्यकता, काल, सम्बन्ध, रागशक्ति, भैरवरागका निरुपण और उसकी रागिनी और सङ्कर राग ६ रागिनी १२ ।

तीसरे प्रकरणमें मालव कौशिकका निरूपण उसकी ६ रागिनी, सङ्कर राग ९, सङ्कर रागिनी १८ ।

चौथे प्रकरणमें श्री-राग-निरूपण, श्रीकी रागिनी ६, सङ्कर राग १२, सङ्कर रागिनी २४ ।

पाँचवे प्रकरणमें दीपक वर्णन उसकी ६ रागिनी, सङ्कर राग २४ सङ्कर रागिनी २४ ।

छठे प्रकरणमें मेघ-राग-निरूपण उसकी ६ रागिनी, सङ्कर राग १२, सङ्कर रागिनी १६, हिण्डोल निरूपण और उसकी रागिनी ६, सङ्कर राग १० सङ्कर रागिनी २५, ताल निरूपण, नृत्यकर्म, भाव-प्रकाशन, उपासनाविधि ।

सङ्गीत प्रदीपमें ७००० श्लोक हैं। इसके निर्माणकर्ता शौनक महर्षि हैं। यह वैवस्वत मन्वन्तरके बीसवें त्रेतामें रचा गया। इसमें दो खण्ड हैं।

पहले खण्डमें रागरागिनियोंका शृङ्गार, उनका स्वरूप, काल सम्बन्ध, शक्ति इत्यादि है।

दूसरेमें गायकोंकी स्थिति प्रकार, स्वरभेद, तालभेद, देव आवाहन, गन्धर्व आवाहन, विद्याधर आवाहन और विसर्जन, धर्मकीर्तन, भक्तिविलास आदि है।

सङ्गीतप्रभामें १६००० श्लोक हैं। इसके निर्माणकर्ता सनत्कुमार हैं। यह स्वायम्भुव मन्वन्तरके तीसवें कृतयुगमें रचा गया। इसमें दो खण्ड हैं।

पहलेमें वैकुण्ठ गान, लक्ष्मीताल, प्रवाहिनी-शक्ति-निरूपण, कैलासगान, पार्वती ताल, शक्तिनिरूपण, ब्रह्मगान, सरस्वती ताल, शक्तिनिरूपण।

दूसरेमें प्रकृति-गान, स्त्री-ताल, शक्तिनिरूपण वचनशृङ्गार स्वरशृङ्गार, स्वरकी जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति, और तुरीय अवस्थाका वर्णन, स्वरपरिचय, ईश्वरोपासना, स्वर-विरोध-अनुरोध, प्रतिरोध, भगवत्कीर्तन, पाक्षिकगान, पक्षियोंका शब्द-शृङ्गार, प्रवचन आवश्यकता, पक्षिभाषा परिचय, वर्षाकाल निरूपण, दुर्दुर (दादुर) शब्दोंका शृङ्गार, प्रावृट (वर्षा) साहित्य निरूपण।

जान पड़ता है कि गन्धर्व विद्याका अनुशीलन और व्यवहार प्रारम्भसे आजतक कभी सर्वथा नष्ट नहीं हुआ। उसका सिलसिला बराबर जारी रहा है। ऊपर लिखे ग्रन्थोंके सिवाय बङ्गला विश्वकोषकारने संस्कृतके ५६ ग्रन्थोंकी एक लम्बी तालिका दी है, इसमें गीत, वाद्य, नृत्य, नाट्य आदि गन्धर्व-वेदके समस्त विषयोंपर ग्रन्थ दिये हुए हैं।

गन्धर्व-वेदके चार आचार्य मशहूर हैं। सोमेश्वर, भरत, हनूमत् और कल्लिनाथ। आजकल हनूमत्का मत प्रचलित है। हनूमत्के सङ्गीत शास्त्रमें सात अध्याय हैं— स्वराध्याय, रागाध्याय, तालाध्याय, नृत्याध्याय, भावाध्याय, कोकाध्याय और हस्ताध्याय।

गान्धर्व वेद और उपवेदोंकी तरह सर्वथा व्यवहारात्मक है। इसलिए आधुनिक कालमें इसके जो जो अंश प्रचलित हैं, लोप होनेसे बचे हुए वही समझे जाने चाहिएं। सामवेदोंका आरण्यगान और ग्राम गेयगान आजकल प्रचारसे उठ गया है, इसलिए सामगानकी वास्तविक विधिका लोप हो गया है। साथ ही प्राचीन विधियोंका स्थान बडे वेगके साथ आधुनिक गानकी विधियाँ लेती जा रही हैं। सङ्गीत शास्त्र ऐसे लोगोंके हाथमें पड़ता जा रहा है जो वैदिक संस्कार और आचारकी दृष्टिसे उसके अधिकारी नहीं हैं।

स्तुतिरूप वा गीतरूप वाक्यों वा रश्मियोंका धारण करनेवाला गन्धर्व है। और उसकी विद्या गान्धर्व विद्या वा गान्धर्व उपवेद है। गन्धर्व उन देव जातियोंका नाम है जो नाचते, गाते और बजाते हैं। गाना बजाना और नाचना तीनोंका आनुषङ्गिक सम्बन्ध है। गानेका अनुसरण बाजा करता है और बाजेका नाच। साधारणत. लौकिक सङ्गीतशास्त्रके प्रवर्तक भरत समझे जाते हैं। और पारलौकिकके भगवान शङ्कर। परलोकमें किन्नर, गन्धर्व आदि सङ्गीतशास्त्रका व्यवसाय करनेवाले समझे जाते हैं। मनुष्य जातियोंमें मागध नान्दी वाद्य, बन्दी, गायन, सौख्य, शायिक, वैतालिक, कथक, ग्रन्थिक, गाथी, कुशीलव, नट, सूत आदि सङ्गीत-व्यवसायी समझे जाते हैं।

पुराणोंमें नारदजीका नाम वारम्वार सङ्गीत विद्याके आचार्यकी तरह आता है। नारद ऋषिके सिवाय अन्य ऋषिगण ही प्राचीन कालमें सङ्गीतशास्त्रके आचार्य समझे जाते थे। ऋषियोंके हाथमें जो विद्या गान्धर्व वेद कहलाती थी वही सर्वसाधारणके व्यवहारमें आनेपर सङ्गीत विद्या कहलाने लगी। ऋषि लोगोंकी परिभाषामें तीनों ग्रामोंको, मन्द्र, मध्य और तारस्वरोंको, "त्रिः साम" कहते थे, और सप्तस्वर, षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम,

धैवत, निषाद, जो आज "सरिगमपधनी" के नामसे मशहूर हैं, इन्हीं सातों नामोंसे साम गायकोंमें भी पुकारे जाते थे। इन्हीं स्वरोंके कोमल और तीव्र, द्रुत, अनुद्रुत और ग्रामादि भेदोंसे असंख्य राग रागिनियोंकी कल्पना होती है। तालोंके अनेक विभागोंसे गीतोंकी गति और नृत्य करनेवालोंकी गति निर्णीत होती है। वाजे भी ताल और स्वरके आधारपर चलते हैं। ऋषियोंकी विद्या पुस्तकोंमें मर्यादित होनेके कारण अब आधुनिक कालमें सर्वसाधारणको उपलब्ध नहीं है।

सोलहवाँ अध्याय

आयुर्वेद

चरणव्यूहके अनुसार यह ऋग्वेदका उपवेद है। परन्तु सुश्रुतादि आयुर्वेद ग्रन्थोंके अनुसार यह अथर्ववेदका उपवेद है। महर्षि सुश्रुतके मतसे जिसमें या जिसके द्वारा आयु मिले या आयु जानी जाय उसको आयुर्वेद कहते हैं। भावमिश्रने भी ऐसा ही लिखा है। चरकमें लिखा है यदि कोई पूछनेवाला प्रश्न करे कि ऋक्, साम, यजुः, अथर्व इन चारों वेदोंमें कौनसे वेदका अवलम्ब लेकर आयुर्वेदके विद्वान उपदेश करते हैं तो उनसे चिकित्सक चारोंमें अथर्ववेदके प्रति अधिक भक्ति प्रगट करेगा। क्योंकि स्वस्त्ययन, बलि, मङ्गल, होम, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास और मन्त्रादि इसी अथर्ववेदसे लेकर ही चिकित्साका उपदेश करते हैं।*

सुश्रुतमें† लिखा है कि ब्रह्माजीने पहलेपहल एक लाख श्लोकका आयुर्वेद प्रकाशित किया था, जिसमें एक सहस्र अध्याय थे। उनसे प्रजापतिने पढ़ा। प्रजापतिसे अश्विनी-कुमारोंने पढ़ा और अश्विनीकुमारोंसे इन्द्रने पढ़ा और इन्द्रदेवसे धन्वन्तरिने पढ़ा और धन्वन्तरिसे सुनकर सुश्रुत मुनिने आयुर्वेदकी रचना की। ब्रह्माने आयुर्वेदको आठ भागोंमें बाँटा। प्रत्येक भागका नाम तन्त्र रखा।

(१) शल्य तन्त्र (२) शालाक्य तन्त्र (३) कायचिकित्सा तन्त्र (४) भूत-विद्या तन्त्र, (५) कौमारभृत्य तन्त्र (६) अगद तन्त्र (७) रसायन तन्त्र और (८) वाजीकरण तन्त्र।

(१) शल्य-तन्त्रमें नाना प्रकारके तृण, काष्ठ, पाषाण, पांशु, स्वर्णादि धातु, छोटे छोटे इष्टकादि अस्थि, केश, नखादि शरीरमें घुसकर और पीव, प्रस्राव आदि बद्ध होकर पीड़ादायक हो जाते हैं। इनसे मुक्त होनेके लिए यन्त्र; क्षार और अग्नि प्रस्तुत करने और प्रयोग करनेके उपदेश हैं। और अनेक तरहके रोगोंके निर्णय करनेके उपाय हैं।

(२) शालाक्य तन्त्रमें कन्धेके ऊपरके सभी रोग अर्थात् आँख, कान, मुँह, नाक, जीभ, दाँत, ओठ, अधर, गाल, तालु और कण्ठ आदि स्थानमें जितने रोग होते हैं उनके निवारणके उपाय लिखे हैं।

(३) कायचिकित्सा तन्त्रमें ज्वर, अतिसार, रक्तपित्त, शोष, उन्माद, अपस्मार, कुष्ठ, मेह आदि सर्वाङ्गव्यापी रोगकी शान्तिका उपाय है।

---

* चतुर्णा ऋक्सामयजुरथर्ववेदाना आत्मनोऽथर्वे वेदेभक्तिरादिश्या। वेदोहि अथर्वण । दान स्वस्त्ययन वलि मगल होम नियम प्रायश्चित्तोपवास मन्त्राणि परिग्रहात् चिकित्सा प्राह। (चरके सूत्रस्थान ३० अध्याय) इहखलु आयुर्वेदोनाम यदुपागमथर्ववेदस्य (सुश्रुत सूत्रस्थान १ अध्याय)।

† विधाताथर्वसर्वस्वमायुर्वेद प्रकाशयन्। स्वनाम्ना सहिता चक्रे लक्ष श्लोकमयीमृजुम्॥

(भाव-प्रकाश)

(४) भूतविद्या तन्त्रमें देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितर, पिशाच, नाग और ग्रहादि द्वारा जो प्राणी सताये जाते हों उनके आरोग्यके उपायस्वरूप शान्तिकर्म और बलिदानादिका विषय है।

(५) कौमार भृत्यमें बालकका प्रतिपालन, दाईके दूधके दोषका संशोधन, स्तन्य दोष और ग्रह दोषसे उपजे रोगोंकी चिकित्सा लिखी है।

(६) अगद तन्त्रमें सर्प, कीट, लूता, वृश्चिक, मूपिकादि दन्शनजनित विष तथा अन्य विषोंके लक्षण और साथ ही इन सब विषोंके प्रभावसे पीड़ित शरीरके उपकारके उपाय लिखे हैं।

(७) रसायन तन्त्रमें जवानकी तरहसे बलवान होनेके उपाय परमायु, मेधा, बल इत्यादिकी वृद्धि तथा देहको रोगमुक्त करनेके उपाय लिखे हैं।

(८) वाजीकरण तन्त्रमें अल्प और शुष्क शुक्रकी वृद्धि करनेके नियम हैं। विकृत शुक्रको प्रकृत अवस्थामें लानेके उपाय हैं। क्षयप्राप्त शुक्रकी उत्पत्ति, क्षीण शरीरमें बल-वृद्धि, और मनको सदैव प्रसन्न रखनेके उपाय भी लिखे हैं।

इस अष्टाङ्ग आयुर्वेदके अन्तर्गत देहतत्व है, शरीर-विज्ञान है, शस्त्र-विद्या है, भैषज्य और द्रव्य-गुण-तत्व है, चिकित्सा-तत्व है, और धात्री विद्या भी है। इसके सिवाय उसमें सदृश चिकित्सा (होम्योपेथी) विरोधी चिकित्सा (एलोपेथी) और जल-चिकित्सा (हैड्रो-पेथी) आदि आजकलकेसे अभिनव चिकित्सा प्रणालियोंके विधान भी पाये जाते हैं।

शरीर-विज्ञान और अस्त्रचिकित्सा तो आयुर्वेदके पहले अङ्ग हैं क्योंकि यदि इनकी जानकारी न होती तो यजुर्वेदमें "हृदयास्याग्रेऽवद्यत्यथः जिह्वाया अथ वक्षसः" इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा यज्ञार्थ निहत पशुके हृदय, जिह्वा, वक्षः, यकृत, वृक्क, वामहस्त, द्विपार्श्व, श्रोणि, गुद-नालका मध्य भाग, और वसादि अस्त्र-विशेष द्वारा निकालकर अग्निमें आहुति देनेकी विधि कैसे सम्पन्न होती ? अगर यह मान लिया जाय कि बलिदान नहीं होता था तो भी इन भीतरी अवयवोंके नाम अस्त्रविद्याके प्रयोग और शरीरविज्ञानकी सूक्ष्म जानकारी अवश्य प्रगट करते हैं।

उपर्युक्त वर्णन सुश्रुत संहिताका है। अश्विनीकुमार संहिता उससे अधिक पुरानी है। इसमें १ लाख २० हज़ार श्लोक हैं। इसके निर्माणकर्ता अश्विनीकुमार जी हैं। इसका समय स्वायम्भुव मन्वन्तरका प्रथम सतयुग है। इसमें यह विपय हैं—सृष्टिवर्णन, प्रकृति-वर्णन, विकृति-वर्णन।

उसके पाँच प्रकार हैं—

(१) आध्यात्मिक तन्त्र (२) स्थूल तन्त्र, (३) निदान तन्त्र, (४) पथ्य तन्त्र, (५) भेषज तन्त्र।

यह पाँच प्रकरण हर रोगोंके निरूपणमें हैं।

(१) आध्यात्मिक तन्त्रमें यह दिखाया गया है कि विना आत्मिक-विकार कोई रोग उत्पन्न नहीं हो सकता। यानी अन्त.करणके किस विकारसे कौन रोग होता है और वह स्थूलमें किस तरह परिणत होता है।

(२) स्थूल तन्त्रमें हर रोगोंके सम्बन्धमें यह दिखाया गया है कि प्रत्येक रोग किस प्रकारसे सञ्चरित होता है और किन-किन अङ्गोंको किस प्रकार बिगाड़ता है ।

(३) निदान तन्त्रमें प्रत्येक रोगके लक्षण और पूर्वरूप और उनका पहिचाननेका प्रकार ।

(४) पथ्य तन्त्रमें रहन-सहन इत्यादि और भोजन, श्रृंगार, स्थिति इत्यादिका वर्णन ।

(५) भेषज-तन्त्रमें हर एक रोगके लिये ४ प्रकारके भेषज कहे हैं—पर्वतौकस, वनौकस, जलौकस और शाब्दिक (मन्त्रद्वारा) ।

परीक्षा—हस्ताक्षर परीक्षा, चित्र परीक्षा, छाया परीक्षा, इत्यादि, इसमें यह बताया गया है कि हस्ताक्षर, चित्र, छाया, इत्यादिको देखकर रोगका पहिचानना और उसके उपाय ।

पुष्कल संहिता एक पुस्तक है । इसमें ३२,००० श्लोक हैं। इसको पुष्कल महर्षिने स्वारोचिष मन्वन्तरके नवम सतयुगमें निर्माण किया। इसमें चार प्रकरण हैं।

प्रथम प्रकरणमें रोगोत्पत्ति कारण, संसर्गसे कितने रोग उत्पन्न होते हैं। और कुलज रोगसे रोगकी उत्पत्ति । निज कृत ।

दूसरे प्रकरणमें कर्ममीमान्सा, कौनसे कर्मसे किस प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं, शुभाशुभ-कर्म विवेचन, वैद्य-परीक्षा, रोगी-दूत-परीक्षा, शकुन ।

तीसरे प्रकरणमें निदान, रोगलक्षण, पूर्वरूप, विकृतरूप, रोगका जय-विजय ।

चौथा ओषधि-प्रकरण—शाब्दिक, रहनसहन, भोजन और भेषज, अनुपान, औषध-समास, ग्रहशान्ति ।

ब्रह्मसंहिता ग्रन्थमें २४ हज़ार श्लोक हैं। इसका समय तामस मन्वन्तरका तृतीय त्रेता है। इसमें ब्रह्मा नारदका संवाद है। इसमें तीन प्रकरण हैं।

प्रथम प्रकरणमें रोगोत्पत्ति कारण, परमाणुका विकार, उनकी कमी और बेशी ।

दूसरे प्रकरणमें निदान पूर्वरूप, रूप, परमाणुका सम्बन्ध ।

तृतीय प्रकरणमें ओषधि और रोगका सम्बन्ध, परमाणुपुष्टि, विकार दूरीकरण, रसायन प्रक्रिया, रस और रोगका सम्बन्ध, शाब्दिक औषधि ।

भेड़सहिता नामका एक ग्रन्थ है जिसमें १६००० श्लोक हैं। इसका समय रैवत मन्वन्तरका प्रथम सतयुग है। इसमें दो प्रकरण हैं।

पहले प्रकरणमें शेषनारायणका भेड़ बनकर ओषधिका परिचय करना ओषधियोंका स्थान निरूपण। पर्वतौकस, वनौकस, जलौकसके चिन्ह ।

दूसरे प्रकरणमें निघण्टु, उनका नाम और रूप, रोगके साथ सम्बन्ध उनकी क्रिया और मात्रा। समय (किस समय पर कौन ओषधि देनी चाहिए) वाल, युवा, वृद्ध अवस्था, शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष, दिन और तिथिके अनुसार ओषधिका प्रयोग ।

आग्नीध्र सूत्रराज नामक एक ग्रन्थ है। ५६००० हजार श्लोक हैं। इसका समय स्वायम्भुव मन्वन्तरका प्रथम सतयुग है। इसको महाराज आग्नीध्रने वनाया है । इसमें पाँच प्रकरण हैं।

प्रथम प्रकरणमें पारेकी उत्पत्ति, परानिर्माण-प्रकार, पारा संशोधन, पाराको धात्वन्तर करना (यानी उसको चाँदी सोना इत्यादिमें परिणत करना) विद्युत् शक्ति, हरएक परमाणुका विद्युत्-शक्ति-ज्ञान।

दूसरे प्रकरणमें गन्धककी उत्पत्ति, गन्धक प्रकार, गन्धक निर्माण, गन्धकका कार्य, गन्धककी कान किस तरह बनती है। गन्धकीय जल, और उसकी आवश्यकता, प्रयोगविधि गन्धक-शोधन, धातुओंका गन्धक द्वारा तबदील करना, उनकी विद्युत् शक्ति।

तीसरे प्रकरणमें गन्धक और पारेका समास, परमाणुओंके साथ सम्बन्ध, शारीरिक प्रयोजन।

चौथे प्रकरणमें इनसे रोगका सम्बन्ध, रोगनिवारण हेतु, अनुपान, इनका योग।

पाँचवें प्रकरणमें इनको हरएक परमाणुओंसे अलग करना, अस्त्र शस्त्रादिमें इनका प्रयोग, पर्वत आदिमें इनका जीवन। इनका साधन-प्रकार, आत्म-संयोग, शारीरिक प्रकरण, पञ्च प्राणका सम्बन्ध।

कुर्णक-प्रभा ग्रन्थमें १२००० श्लोक हैं। इसका समय रैवत मन्वन्तरका प्रथम द्वापर है। इसको क्रौंचमुनिने बनाया है। इसमें दो प्रकरण हैं।

पहले प्रकणमें शब्दकी उत्पत्ति, शब्द और शरीरका सम्बन्ध, शब्द समयसे रोगाभान, शब्द विकृतिसे विकार।

दूसरे प्रकरणमें शब्द-संयम-प्रकार, जल-स्थानसे ओषधि, चन्द्र और सूर्यकी किरणोंसे जलका सम्बन्ध, उनका रोगके साथ सम्बन्ध, शारीरिक ध्रुव वर्णन (शरीरकी धुरी अथवा कील क्या चीज़ है) जलसे ध्रुव-विकार शोधन, सूर्य अथवा चन्द्रकिरण द्वारा रङ्गीन पात्रोंपर जलमें उनका वितरण, इस जलके सेवनसे रोग-शान्ति, सेवन-प्रकार, सेवन-विधि।

धातुवाद ग्रन्थमें ६०,००० श्लोक हैं। इसका समय स्वायम्भुव मन्वन्तरका दूसरा सतयुग है। इसको सैनिक ऋषिने निर्माण किया। इसमें तीन प्रकरण हैं।

पहलेमें अष्टधातुकी उत्पत्ति, उनका क्रम, उनका समास उनका स्थान, एक दूसरेमें परिणयन, फूल, काँसा आदिका निर्माण, उनका शोधन-प्रकार, शारीरिक सम्बन्ध।

दूसरेमें इनकी निर्माण विधि, तारागण किरणोंके साथ सम्बन्ध, विकार-नाशन हेतु, धातु-सृष्टि-निरूपण, अस्त्र-शस्त्रादिमें प्रयोग।

तीसरेमें ओषधिद्वारा इनका परिणयन, धातु वनस्पति-सम्बन्ध, वनस्पति और धातु संयोग, हेतु और आवश्यकता, सांसारिक प्रयोजन, कार्यकारण भाव।

धन्वन्तरि सूत्रमें १०,००० श्लोक हैं। इसका समय स्वायम्भुव मन्वन्तरका प्रथम सतयुग है। इसमें दो प्रकरण हैं।

पहलेमें निद्रा, तन्द्रा, आलस्य, जृम्भा आदिका वर्णन, इनकी आवश्यकता और प्रयोजन, हास, परिहास, विहास और उपहास वर्णन।

दूसरेमें रोगोत्पत्ति प्रकार, निदान, ओषधि।

मानसूत्र ग्रन्थमें १२,००० श्लोक हैं। इसका समय स्वायम्भुव मन्वन्तरका प्रथम सतयुग है। इसको शिवजीने निर्माण किया। इसमें दो प्रकरण हैं।

पहले प्रकरणमें स्त्री-पुरुष-विभाग, गर्भाधान, मानस सृष्टि, सङ्घर्षण सृष्टि, वीर्य निर्माण, रजनिर्माण, दोनोंका समास, कन्या-पुत्र-उत्पत्तिका हेतु।

दूसरे प्रकरणमें नपुन्सक उत्पत्ति, दुष्ट उत्पत्ति, राक्षस उत्पत्ति, धर्म-धुरीणता, आत्मिक सम्बन्ध, ग्रन्थ-विद्या, मनुष्य-विद्या, कृषिका प्रकार, पाक-निर्माण।

सूपशास्त्र ग्रन्थमें ६२,००० श्लोक हैं। इसका समय स्वायम्भुव मन्वन्तरका प्रथम सतयुग है। इसको कश्यप ऋषिने निर्माण किया। इसमें तीन प्रकरण हैं।

पहले प्रकरणमें पाक निर्माण और उनका प्रकार, उनकी आवश्यकता, ५६ प्रकारकी भोगविधि, बाल-भोग-विधि, पञ्चामृत प्रकरण, कवलनविधि (किस किस चीजका कैसा कवल बनना चाहिए) ग्रास-निर्माण, भोजन-विधि, भोजन-आसन, परोसनेका प्रकार, १०८ प्रकारकी भोजन विधि, खानेका प्रकार, अन्नकूट विधि, आवश्यकता, किस समयमें किन सम्बन्धियोंके यहां भोजन खाद्य है। बल, वीर्य, पराक्रम, शक्ति, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति, क्षान्ति (क्षमा) को देनेवाले कौन कौनसे भोजन किन किन समयोंमें क्या क्या गुण उत्पन्न करते हैं।

दूसरे प्रकरणमें बाल-भोग, युवा-भोग, वृद्ध-भोजन, मङ्गल-आरती, श्रृङ्गार-आरती, सत्कार-विधि, सज्जन-आगम, समीक्षण, उनके विदाका प्रकार, मार्ग-भोजन, पाक-निर्माण, तथा विधि।

तीसरे प्रकरणमें यज्ञान्न विधि, दैव, पितृ, आर्ष भोजन पाक निर्माण।

नवान्नविधि—नवान्न भोजन प्रकार, नवान्न यज्ञ, प्रत्येक ऋतुके खाद्य पदार्थ, उनके बनानेकी विधि, एवम् मास, पक्ष, तिथि, वार आदिके ध्यानसे पाक निर्माण विधि, यती, संन्यासी, राजा, साधारण सामान्य आतिथ्य सत्कारका भोगनिर्माण, प्रसादनिर्माण, इष्ट-देवके अनुसार भोगनिर्माण।

सौभरि सूत्रमें १२००० श्लोक हैं। इसका समय रैवत मन्वन्तरका तृतीय द्वापर है। इसको सौभरि मुनिने निर्माण किया है। इसमें दो प्रकरण हैं।

पहले प्रकरणमें रस-विभाग—दूसरेमें रसोंका परिणयन, रस निर्माण, ओषधि पाक विधि।

दूसरे प्रकरणमें अचार और मिष्ठान्न बनानेकी विधि, खाद्याखाद्य-काल-निर्णय, अन्तः-करण, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कारके रहनेका स्थान, इनका समास, इनका क्रम और योग, इन्द्रियोंपर प्रेरणा-विधि।

दाल्भ्य सूत्रमें १०००० श्लोक हैं। इसका समय रैवत मन्वन्तरका २८ वां सतयुग है। इसको दाल्भ्य मुनिने निर्माण किया। इसमें दो प्रकरण हैं।

पहले प्रकरणमें वीर्य-रज-संयोग, अस्थि-मांस-निर्माण, कञ्जि-कुञ्ज निकुञ्ज-कुक्कुत, यकृत, स्रञ्ज, नाड़ी आदिका क्रम, इनका वर्द्धन-प्रकार, काम क्रोध आदिका अङ्कुर, निद्रा, आलस्य आदि की आवश्यकता, भयका अङ्कुर और आवश्यकता।

दूसरेमें जीवन, आशा, प्रेम, सम्बन्ध, आशा, उसका कलाप, महिमा, विभूति, समर्पण विधि।

जाबालि सूत्रमें १४,००० श्लोक हैं। इसका समय श्राद्धदेव मन्वन्तरका बारहवाँ सतयुग है। जाबालि मुनिने इसका निर्माण किया। इसमें तीन प्रकरण हैं।

पहलेमें इच्छानुसार पुत्र और कन्याकी उत्पत्तिका प्रकार, मनुष्य-विद्या, मनुष्य-व्यवहार प्रकार, आरोग्यतापूर्वक अर्थसंग्रह विधि, अर्थसे रोगोत्पत्ति कारण। शिरस परीक्षा (किस प्रकारका बाल होनेसे किस प्रकारकी विद्याध्ययनमें सफलता अथवा प्रवृत्ति होगी) विधि, निषेध और प्रायश्चित्त।

दूसरेमें—किस प्रकारके रसमें किन मनुष्योंकी प्रवृत्ति, मानस परीक्षा, बुद्धि-व्यवहार परीक्षा, किस प्रकारके मनुष्यका किन किन प्रकारवालोंसे सम्बन्ध और सम्मेलन होना चाहिए, स्थान और मनुष्यकी साम्यता, अर्थसाधन प्रकारकी साम्यता।

तीसरेमें—रस और शारीरिक साम्यता, नित्य आरोग्य रहनेकी विधि, आयु बढ़ानेका प्रकार, क्षय-विधि, किस प्रकारकी छायामें सुख, अपनी छायासे सुख पहुँचानेकी विधि, विचार साम्यता, अनुराग साम्यता।

इन्द्र-सूत्रमें ८,००० श्लोक हैं। इसको इन्द्र मुनिने तामस मन्वन्तरके छठे द्वापरमें निर्माण किया। इसमें दो प्रकरण हैं।

पहलेमें चन्द्र-किरण-फल, चन्द्रज ओषधि उत्पत्ति, रातमें विकसित दिवामुद्रित ओषधि, रातमें लभ्यमान दिनमें अलभ्य, दिवालभ्य रात्रिमें अलभ्य, कृष्णपक्षमें लभ्य शुक्ल-पक्षमें अलभ्य, शुक्लपक्षमें लभ्य कृष्णपक्षमें अलभ्य, शुक्र, शनि, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, राहु, अश्विन्यादि नक्षत्र, ध्रुव, सप्तर्षि, अभिजित, शतभिषक आदिकी किरणोंसे उत्पन्न ओषधि, उनके किरणाभावसे उनका अभाव और गुण लक्षण, रोग-सम्बन्ध।

दूसरे प्रकरणमें शारीरिक यन्त्रोंके नाम, शल्य, शालाक्य, जर्राहीके काम।

शब्द कौतूहल नामके ग्रन्थमें २४,००० श्लोक हैं। मैन्द ऋषिने तामस मन्वन्तरके सोलहवें द्वापरमें इसका निर्माण किया। इसमें तीन प्रकरण हैं।

पहले प्रकरणमें रोगीके शब्दसे रोग-निदान, हस्ताक्षरसे रोग-निदान, चित्त-निदान, दूत-निदान, अदृश्य रोग परीक्षा, शाब्दिक यन्त्र, शाब्दिक ओषधि, वीणा, तन्त्री, पणव, शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग, मञ्जीर, वंशी आदि बाजे भेषजसे ही बनाना और उनको सुनाकर रोगापहरण, हरएक रोगके पृथक् पृथक् बाजोंके शब्द, कौन किसके लिए प्रधान हैं।

दूसरे प्रकरणमें ओषधिका शरीरान्तर प्रवेश प्रकार, ओषधि मार्ग, चलनेकी विधि, उनका समय, उनमें विद्युत शक्तिका प्रवेश. देश-द्वारा ओषधि-प्रकार अमुक रोगीको अमुक दिशामें। प्रातः अमुक दिशामें शयन, अमुक दिशामें मध्याह्न भोजन, शयन भ्रमण करनेसे रोगका हरण।

तीसरे प्रकरणमें रोगज्ञान, सम्बन्ध, सम्मिलन सत्सङ्ग, अमुक देशका रहने आदिका प्रकार, अमुक धातुके आभूषण, अमुक रङ्गके वस्त्रादि विधि, उससे रोगशान्ति अमुक प्रकारके गन्ध, चन्दन, उबटन, तेल, शृङ्गारविधिसे रोगहरण, अमुक प्रकारके श्रवण, मनन, कीर्तनसे रोग-हरण।

देवल सूत्रमें १५,००० श्लोक हैं। इसको देवल ऋषिने तामस मन्वन्तरके द्वितीय द्वापरमें निर्माण किया। इसमें तीन प्रकरण हैं।

पहलेमें जगतकी परस्पर आश्रयता, अभिप्रायकी उत्पत्ति, उसका क्रम, पूर्तिकी आश। जहाँ जिसकी हो सकती है। योग्यता, विरह, सन्ताप, शान्ति।

दूसरे प्रकरणमें भाषाकी आवश्यकता, विज्ञापनक्रम, भाषाका परिवर्तन और क्रम स्थान प्रयत्नकी पुष्टता और उसका परिवर्तन, जलवायुके परिवर्तनसे शब्दक्रममें भिन्नता, पर्य्यायवाचक शब्दोंके भेद, उनकी विकृति, शान्ति।

तीसरे प्रकरणमें देशान्तरमें ओषधिके भिन्न नाम, उसका कारण; जल, वायु, देश प्रतिभासे गुणमें परिवर्तन, रङ्ग, तथा पुष्प एवम् फलमें परिवर्तन, देशान्तरोंमें प्रयोग अनुपानका पृथक् पृथक् निरूपण, वात, पित्त, कफके अनुसार ओषधि प्रयोग प्रकार भिन्न भिन्न। तथा अनुपानकी भिन्नता।

शब्द-द्वारा ओषधि प्रवेशविधि, मन्त्रद्वारा शारीरिक ओषधिसम्बन्ध प्रवेशन विधि।"

गवायुर्वेद, अश्वायुर्वेद, गजायुर्वेद, वृक्षायुर्वेद आदि आयुर्वेदके और भी कई विभाग कहे जाते हैं। गाय, घोड़े, हाथी इत्यादि सभी प्राणियोंके सम्बन्धके आयुर्वेद ग्रन्थ अवश्य होंगे क्योंकि अग्निपुराणमें (२८१–२९१ अध्यायतक) इन विविध आयुर्वेदोंकी चर्चा की गयी है। मधूसूदन सरस्वतीने अपने प्रस्थान-भेद नामक ग्रन्थमें काम शास्त्रका भी आयुर्वेदकी चिकित्सा प्रणालीमें समावेश किया है। हठ योग और राजयोगके वह सभी अंश जो रोग निवारण करते हैं, स्वास्थ्यकी रक्षा करते हैं और साधककी आयुको बढ़ानेमें सहायक होते हैं वह इसी आयुर्वेदके अन्तर्गत सन्निवेश्य हैं। इसी आयुर्वेदके अन्तर्गत वनस्पति विद्या भी है, क्योंकि वनस्पति विद्या वृक्ष आयुर्वेदका एक अङ्ग है। खनिजोंका विज्ञान भी इसी आयुर्वेदका अङ्ग है, क्योंकि रसोंका निर्माण औषधोंमें एक प्रधान विषय है। यद्यपि चरकादि ग्रन्थोंमें रसायनशास्त्रका विशेष विवरण नहीं है तथापि पीछेके रस ग्रन्थोंसे आयुर्वेद साहित्य भरा पड़ा है। इस अध्यायमें हम प्राचीन ग्रन्थोंकी ही विषयावली देते हैं। इसी सिद्धान्तपर हम यहाँ वनस्पति-चन्द्रोदय, वनस्पति-वर्णन, दाल्भ्य-निघण्टु इन तीन प्राचीन वानस्पतिक ग्रन्थोंका विवरण देते हैं। और रसप्रभाकर और रसार्णव इन दो रस ग्रन्थोंका विवरण देते हैं। इन पांचोंकी विषयावली भी प्रज्ञाचक्षु पं० धनराज शास्त्रीकी लिखायी हुई है।

"वनस्पति चन्द्रोदयमें १,२०,००० श्लोक हैं। इसको शेष नारायणने तामस मन्वन्तरके नवम सतयुगमें निर्माण किया। इसमें चार प्रकरण हैं—

पहले प्रकरणमें जङ्गमसे वनस्पति सम्भव, वनस्पतियोंके चार भेद वृक्ष, लता, बनस्पति, पुष्प; वृक्ष-भेद, मूल, वल्कल, पुष्प, पत्र, फल, पञ्चाङ्ग, ओषधिमें प्रयोग, उत्पत्ति स्थान, निर्माण प्रकार, आरोहण प्रकार, वाटिका विधान, वाटिका महावाटिका, वन उपवनकी संज्ञा और विधान, पर्वतौकस, वनौकस, जलौकस निर्णय, पहचान।

दूसरे प्रकरणमें लता-भेद, लता, प्रतिलता, उपलता, अभिलता, लताकी उत्पत्ति, बीजकारण, आवश्यकता, प्रयोजन, लता निर्माण-विधि, भेषज वादिता, पर्वत-लता, जल-लता, वनज-लता, वाटिका-लता, इनके पञ्चाङ्गकी प्रयोग विधि, उत्पत्ति स्थान, सोमलता, सूर्यलता निरूपण, बृहस्पति लता, शुक्र लता, शनि लता, भौम लता निरू-

पण, तारोंका वनस्पति-सम्बन्ध, कृष्ण-शुक्ल पक्ष भेदसे, एवम् ऋतु, मास भेदसे एवम् शीतोष्ण भेदसे तथा तारा-किरणोंके प्रमुख वनस्पति सम्बन्ध, इनका उत्पत्ति विनाशन-हेतु, अग्निहोत्रादिमें प्रयोग विधि, गृहाश्रमका सम्बन्ध, इनके स्त्री पुरुषका निर्णय, इनका रज-वीर्य सम्प्राप्ति समय और प्रकार कार्य ।

तीसरे प्रकरणमें वनस्पतियोंके चारों भेदोंका ऋतुकाल, लेनेकी विधि, और रसात्मक वटी, द्राव, अर्ककी विधि, जातिभेद निरूपण, तैजस, वायुज, पार्थिव, शब्दज, प्रकाशज, तमोज निरूपण ।

चौथे प्रकरणमें प्रयोग विधि, परमाणुओंके कमी-बेशीसे रोगकी उत्पत्ति, उनकी कमी-बेशीका निवारण, वनस्पतिद्वारा समाहार विधि, ज्ञानात्मक लता और वनस्पति तीनों प्रकारके, इनसे भक्ति साधन, मोक्ष साधन, कीमियागिरी, पशु-चिकित्सा-में प्रयोग, जङ्गम, स्थावर चिकित्सामें प्रयोग, क्रियासाधन प्रकार, स्थूल, सूक्ष्म लिङ्ग, कारण शरीरका उपयोग, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, रीयका उपयोग, सरस्वती चूर्ण, महा-लक्ष्मी चूर्ण, देव चूर्ण, देवी चूर्ण विधान, मानस-शोधन, अन्त.करण शोधन, क्रिया सङ्घर्षण, सिद्ध बूटी आदिका प्रयोग, उत्पत्ति, स्थिति, विधान ।

वनस्पति विवरणमें ६०,००० श्लोक हैं । इसको अङ्गिरा मुनिने रैवत मन्वन्तर-के बारहवें सतयुगमें निर्माण किया । इसमें तीन प्रकरण हैं ।

पहलेमें स्थावर संज्ञा, वृक्ष संज्ञा, धातु-वनस्पति-सम्बन्ध, पशु-सम्बन्ध, मनुष्य-सम्बन्ध, लता विभाग, सूर्य-चन्द्र-सम्बन्ध, नक्षत्र-सम्बन्ध, उत्पत्तिमें रात्रि दिवा-भेद, मास, ऋतु, शीत, उष्ण भेद ।

दूसरेमें वन, पर्वत, जल वनस्पतियोंका भेद, इनकी संज्ञा, काल-विभाग, निर्माण-विधि, किस ऋतुमें कौन पांचों प्राणके पोषक और विघातक कब किसके होते हैं । अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, ज्ञानमय कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोषके उपयोगी कब कौन हैं । ज़हरीली, नशीली, रसीली, विषयिणी, पारमार्थिकी, परार्थिकी, स्वार्थिकी, लता वनस्पतियोंसे बाजोंका बनाना; वंशी, वीणा, तंत्री, मृदङ्ग, नगाड़ा, सहनाई आदिका निर्माण, उनसे रोग-शमन, रोग-उत्पत्ति, जाति, समाज, निजत्व, अहङ्कार आदिका बढ़ाव घटाव ।

तीसरेमें धर्म ओषधि, कर्म ओषधि, याज्ञिक ओषधि, कामिक ओषधि, निष्कामिक ओषधि, षट् रस सिद्ध, नवरस सिद्ध, सिद्ध बूटिका, कल्पतरु, चिन्तामणि सिद्ध, दिव्य-दृष्टि-अञ्जन, शयनी, नागिनी, कुम्भकी, रेचकी, पूरिकी, आरोधिनी, आकर्षिणी, स्तम्भिनी, ऋतु-विपर्यया, काल-विपर्यया, देश-विपर्यया, एक देहमें बेहोशी देहान्तरमें होश, मोक्ष सिद्धि ।

दाल्भ्य निघण्टुमें ४५,००० श्लोक हैं । इसका समय रैवत मन्वंतरका १६ वां सतयुग है । इसमें दो प्रकरण हैं ।

पहले प्रकरणमें हर एक ओषधिके अनेक नाम, देशान्तर कालान्तर अवस्थाभेदसे, गुणके अनुसार, प्रयोग विधिसे, रङ्गके अनुसार, शब्द-सम्पत्तिके अनुसार, उत्पत्तिस्थान ।

दूसरे प्रकरणमें उनके पत्र, पुष्प, फलका रङ्ग लक्षण, पहिचान, वनज, पर्वत, जलजभेद, उनके मिलनेका पता, सचिन्ह, किरणोंसे उत्पत्ति, कौन ऋतुमें किसकी उत्पत्ति, किस ऋतुमें किसका विनाश, कौन ऋतुमें कौन कहाँ मिल सकती है। उनके ढूंढनेवालोंकी रहनसहन, खोजी जिधर जायगा उधर किन-किन ओषधियोंसे जीवन-रक्षा करेगा। सामग्रीकी कठिनाइयां, आहार-व्यवहारका विचार, उनकी दुर्गमता, सुलभता, साधन प्रकार।

रूपार्णवके कर्ता च्यवन ऋषि हैं जिन्होंने इसको रैवत मन्वन्तरके २४ वें त्रेतामें निर्माण किया। इसमें २१,००० श्लोक और २ प्रकरण हैं।

पहले प्रकरणमें कौन ओषधि किन परमाणुओंसे उत्पन्न है। उनका बढ़ाव-घटाव किस प्रकारकी ऋतुपर निर्भर है। किन-किन परमाणुओंके संयोगसे किस-किस प्रकारके रस उनमें होते हैं, उनका हर एकका रूप, लक्षण, चिह्न, परिचय, परिचय-काल, प्राप्तिकाल, सुलभता, दुर्लभता।

दूसरे प्रकरणमें उनके जाननेकी विधि, उनका आनयन-काल, कब, कैसे, किस पक्ष, मास ऋतुमें हर एकका पांचों अङ्ग ग्रहण करना चाहिए। उनके प्रयोगसे क्या रूप रस, शब्द, स्पर्श उत्पन्न होते हैं। रंगकी चमत्कारी, चित्र बनानेकी विधि, उनके रससे सांसारिक लाभ निर्णीत किया गया है।

रस-प्रभाकरमें ४०,००० श्लोक हैं। इसके कर्ता गणेश हैं, जिन्होंने इसको स्वायम्भुव मन्वन्तरके १६ वें सतयुगमें बनाया। इसमें दो प्रकरण हैं।

पहलेमें षट्रस वर्णन, उनकी उत्पत्ति और सम्बन्ध, कारण, प्रयोजन, आवश्यकता, धातुसे रस-सम्पादन, वनस्पति-संयोग, मणि रस, भस्म-करण-प्रकार, प्रवाल-भस्म, लौहभस्म, जस्ता-भस्म, चांदी सोनेका भस्म, सङ्खिया-बच्छनाग, सङ्खिया संशोधन, प्रयोग-विधि, रससे अवस्थान्तर कारण, कौन भस्म किस कार्यके लिए, पारा गन्धक संशोधन धातु उत्पादन।

खानि भस्म करनेकी विधि, खानि-लवण, सिद्ध पुरुषोंका निर्वाचन, उनके परमाणुका ज्ञान, चिन्तामणि निर्वाचन, सिद्ध बूटीका निर्वाचन, कल्पवृक्ष, कथा निर्वाचन, उत्पत्तिस्थान, निर्माण विधि, कामधेनु निर्वाचन, सापी सीपी सुन्दरी करी दरी मणि निर्वाचन, पन्ना, पुखराज, पिरोजा, मर्कत मणि आदिकी प्राप्ति, विधि, भस्म निर्माण रूपान्तर प्रयोग, मोक्ष प्रयोग, अमृत-सञ्जीवनी-सम्पादन।

रसार्णवमें १ लाख २५ हजार श्लोक हैं। इसको मरीचि ऋषिने रैवत मन्वन्तरके तृतीय सतयुगमें बनाया। इसमें चार प्रकरण हैं।

पहलेमें कौन रस किस रसका सहायक है और कौन किसका विघातक है। आकर्ष्य धातु, मणि, रजत, स्वर्ण, ताम्र संशोधन विधि, भस्मकरण, अभ्रक, पारा, सीसा, लोहा, जस्ता, राँगा, भस्मकरण विधि, इन रसोंके नाम, कौनसे ऋतुमें किस अवस्थामें कौन रस किसके लिए सेवनीय, उसका उपयोग, अन्त.करण पर क्या हो सकता है। अन्तःकरणके विभाग और संयोगका कारण, रस, जङ्गम, स्थावर, एकता,

वनस्पति द्वारा रूपान्तर-करण भस्मकरण विधि, कौनसे रसका कौन अनुपान, ऋतु, मास, पक्ष, दिवस, रोगके अनुसार उनकी प्रयोग-विधि।

दूसरे प्रकरणमें रस-चित्र, रससे चित्र निर्माण विधि, रसस्तम्भ, रसद्वारा बुद्धि वैभव, विपर्यय, वर्धन, सम्पादन, व्यापार, निर्यापार, आत्महितैषिता, आत्मिक मानसिक, कायिकपर रसोंका व्यवहार, उनकी विवेचना, रससे स्मृति, विस्मृति, अनुस्मृति, प्रतिस्मृतिपर प्रभाव, विषय भोग उपयोगिता, दिव्यदृष्टि-सम्पादन रसद्वारा, दूत परीक्षा, रोग परीक्षा, नाड़ी परीक्षा, तागा तथा चित्र एवम् कार्य, वस्त्र, भोजन, रुचिके द्वारा समस्त व्यवस्थाका ज्ञान, शाब्दिक रस, शब्द द्वारा परमाणु-विभिन्नता, परमाणु-भेदी शब्द, भस्मकारक शब्द।

तीसरे प्रकरणमें शब्दद्वारा मणि, स्वर्ण आदि निर्माण विधि, मन्त्र द्वारा रस, रस प्रयोग विधि, रसद्वारा यन्त्र-निर्माण, तन्त्र-निर्माण, रससे रूपान्तरका देखना, रसद्वारा गमन-शक्ति, काम-लोकादिककी विवेचना।

चौथे प्रकरणमें रसद्वारा चन्द्र सूर्य किरणका ज्ञान, भूगोल-खगोलमें रसका प्रयोजन, रसद्वारा दोषात्मक् तारा-शमन, भक्तिज्ञान प्रापक रस, स्मृतिवर्धक रस, बुद्धिवर्धक रस, मनस-चाञ्चल्य रस, स्थैर्यकरण रस, मोक्ष-साधनका उपयोगी, अनुरागात्मक रस, विहारात्मक रस, किन रसोंसे किस प्रकारका आहार हो सकता है; वीरता, शूरता, उदारता, विचार, द्रवण शक्ति, सुयश भजन रस द्वारा जय, विजय पट्ट, भू-बल रस द्वारा शत्रु-शमन, इन्द्रिय-दमन, आत्मतर्पण रस।
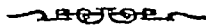
सतरहवाँ अध्याय

अर्थवेद

अर्थशास्त्रपर आजकल वैदिक कालका अथवा शुद्ध वैदिक साहित्यसे सम्बन्ध रखनेवाला कोई ग्रन्थ देखनेमें नहीं आता। पण्डित धनराज शास्त्रीको जो ग्रन्थ स्मरण हैं उनमेंसे इस विषयपर चार बहुत बड़े बड़े ग्रन्थ उनकी सूचीमें दिये हुए हैं। पहिला तो अर्थोपवेदही है जिसमें एक लाख श्लोक हैं। अर्थवाद दूसरा ग्रन्थ है। इसमें ३०,००० श्लोक हैं। तीसरे ग्रन्थ अर्थ-चन्द्रोदयमें बीस हज़ार श्लोक हैं। चौथे सम्पत्ति-शास्त्रमें एक लाख बीस हज़ार श्लोक हैं। उसी सूचीमें अन्यत्र दो ग्रन्थ और भी दिये हुए हैं। उनका भी समावेश अर्थोपवेदमें ही होता है। एक है नीतिप्रभा जिसमें २७ हज़ार श्लोक हैं और दूसरा काश्यपेय दण्डनीति है जिसमें २४ हज़ार श्लोक हैं। इनमेंसे कोई भी ग्रन्थ अभीतक छपे नहीं हैं। और न सिवा परोक्त दो ग्रन्थोंके विषयसूची हमको अभीतक उपलब्ध हुई है।

अर्थवेदके सम्बन्धके आजकलके प्रचलित अट्ठाईसों स्मृतिग्रन्थ समझे जाने चाहिए। क्योंकि अर्थशास्त्रके विषयोंपर थोड़ा बहुत सबने लिखा ही है। तो भी शुक्रनीति और कामन्दकीय नीतिसारमें वार्त्ताके सम्बन्धमें अधिक विस्तार किया गया है।

अर्थशास्त्र एक बहुत व्यापक नाम है। इसमें समाजशास्त्र, दण्डनीति और सम्पत्तिशास्त्र तीनोंका समावेश है। वार्ता अर्थात् रोजगार सम्बन्धी सभी बातें सम्पत्तिशास्त्रके इष्ट विषय हैं। राजनीति और शासन सम्बन्धी सभी बातें दण्डनीतिके विषय हैं। वर्णाश्रम विभाग और उनके सम्बन्धमें कर्तव्याकर्तव्यपर विचार समाजशास्त्रका विषय है। स्मृतियों वा धर्मशास्त्रोंमें इन्हीं सब विषयोंका समावेश होता है। परन्तु स्मृतियोंके विषयपर हम अलग अध्याय देंगे। इस लिये यहाँ हम अर्थशास्त्रके अन्तर्गत प्राचीन ग्रन्थोंका वर्णन करके चन्द्रगुप्तके समयके चाणक्यके लिखे हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्र ग्रन्थकी विषय सूची देंगे।

नीतिप्रभा ग्रन्थमें २७ हज़ार श्लोक हैं। इसको कश्यप ऋषिने स्वायम्भुव मन्वन्तरके प्रथम सतयुगमें बनाया। इसमें चार प्रकरण हैं। (१) सृष्टि उत्पत्ति, (२) वर्ण व्यवस्था, (वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, जाति निर्णय, क्रिया विभाग) (४) व्यवहारकल्प (समाजमें परस्पर कैसे वर्तना चाहिए) भक्ष्याभक्ष्य, दानधर्म, प्रतिग्रहधर्म, यज्ञक्रिया, याजन-प्रकार, उपासना, दीक्षा, नित्याचार, स्त्री-पुरुष-व्यवहार, स्त्री-अधिकार, पुरुषाधिकार।

(४) क्रय, विक्रय, विवाह विधि, निर्णय-प्रकार, कलह-शमन, तपः चर्या।

काश्यपीय दण्डनीति ग्रन्थमें २४ हज़ार श्लोक हैं। इसको काश्यप ऋषिने स्वायम्भुव मन्वन्तरके तेरहवें त्रेतामें बनाया। इसमें तीन प्रकरण हैं।

पहिले प्रकरणमें शुभाशुभ विभाग और इन दोनोंका प्रतिफल, ईश्वरीय दण्ड।

दूसरेमें राजकीय मन्त्र, राज्य आवश्यकता, भूगोल (संसारका) साम्राज्य, चक्रवर्तित्व निरूपण, राजकीय दण्ड।

तीसरेमें प्रजा-पालन-प्रकार, प्रजाका राजाके साथ अनुवर्तन, प्रेम-परिचय, भूमि-संग्रह-प्रकार, इस कल्पलता भूमिसे राजा-प्रजाका निर्वाह, व्यवहार, पशुपालन प्रकार व्यापार-रीति, दस्तकारी, कृषिकर्म, कालविभाग, देशविभाग, शासनप्रणाली, आवश्यकता पूर्वक अधिकार, उपासना-तत्व।

कौटिल्य अर्थशास्त्रमें १५ अधिकरण हैं। उसकी विषय-सूची इस प्रकार है —

पहिला अधिकरण, विनयाधिकार

विद्या विषयक विचार, वृद्ध संयोग, इन्द्रिय जय, अमात्योत्पत्ति, मन्त्री तथा पुरोहित की नियुक्ति, भिन्न-भिन्न उपायोंसे अमात्योंके हृदयकी सफ़ाई तथा खोहकी परीक्षा, खुफिया पुलिसकी नियुक्ति, खुफ़िया पुलिसका प्रयोग तथा प्रबन्ध, अपने देशमें शत्रुओंके वशमें आने-वाले तथा न आनेवाले लोगोंके द्वारा स्वपक्षका रक्षण, परदेशमें कृत्य तथा अकृत्य पक्षके लोगोंको वशमें करना, गुप्त विचार तथा मन्त्रणा, दौत्यका प्रयोग तथा प्रबन्ध, राजकुमारकी रक्षा, बन्धनमें पड़े राजकुमारका कर्तव्य, राजाका प्रबन्ध तथा कर्तव्य, अन्तःपुरका प्रबन्ध, आत्मरक्षा।

दूसरा अधिकरण, अध्यक्ष-प्रचार

जन-पद-निवेश, भूमिका विभाग, दुर्ग-विधान, दुर्ग-निवेश, सन्निधाताके कर्तव्य, समाहर्ताद्वारा राज्यस्व एकत्रित करना, गाणनिक्यका अक्षपटलमें काम, ग़बन किये गये धनका प्राप्त करना, उपयुक्त परीक्षा, शासनाधिकार, कोशमें ग्रहण करनेयोग्य रत्नोंकी परीक्षा, खनिज पदार्थोंके व्यवसायका सञ्चालन, सुवर्णाध्यक्षका कार्य, विशिखामें सुनारोंका काम, कोष्ठागाराध्यक्ष, पण्याध्यक्ष, कुप्याध्यक्ष, आयुधागाराध्यक्ष, तोलमाप, देश तथा कालका मापना, शुल्काध्यक्ष, शुल्कव्यवहार, सूत्राध्यक्ष, सीताध्यक्ष, सुराध्यक्ष, सूनाध्यक्ष, गणिका-ध्यक्ष, नावाध्यक्ष, गोअध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष, हस्त्यध्यक्ष, हस्तिप्रचार, रथाध्यक्ष, पत्यध्यक्ष, तथा सेनापतिका काम, मुद्राध्यक्ष तथा विवीताध्यक्ष, समाहर्ताका प्रबन्ध तथा खुफिया पुलिसका प्रयोग, नागरिकका कार्य।

तीसरा अधिकरण, धर्मस्थीय

व्यवहारका स्थापन तथा विवादका निर्णय, विवाह, विवाहितोंके सम्बन्धमें नियम, विवाहविषयक नियम, दायविभाग, हिस्सोंका बाँटना, पुत्रविभाग, गृहवास्तुक, वास्तु-विक्रय, चरागाह, खेत तथा कामका नुक़सान, ऋणदान, औपनिधिक, दासकल्प, श्रम तथा पूँजीका विनियोग, विक्रय, क्रय तथा जाकड़का प्रबन्ध, दिये हुए धनका ग्रहण, अस्वामिक धनका विक्रय तथा पदार्थोंपर स्वत्व, साहस, वाकपारुष्य, दण्डपारुष्य, धूत समाह्वय तथा प्रकीर्णक।

चौथा अधिकरण, कण्टक-शोधन

कारीगरोंकी रक्षा, व्यापारियोंकी रक्षा, दैवी विपत्तियोंका उपाय, गूढ़ाजीवियोंकी रक्षा, सिद्धके भेषमें बदमाशोंका पकड़ना, शङ्का, रूप तथा कर्मके अनुसार, आशु मृतक-

परीक्षा, वाक्य-कर्मानुयोग, राजकीय विभागोंका संरक्षण, एक अङ्ग काटनेका निष्क्रय, शुद्ध तथा चित्र दण्ड, कन्या-प्रकर्म, अतिचार-दण्ड ।

पाँचवाँ अधिकरण, योगवृत्त

दण्ड-विधान, कोशसंग्रह, भृत्य, भरणीय, राज्यसेवकोंका कर्तव्य, समयका ख़्याल रखना, राज्यका प्रबन्ध तथा एकैश्वर्य ।

छठा अधिकरण, मण्डलयोनि

प्रकृतिके गुण, शान्ति तथा उद्योग ।

सातवाँ अधिकरण, षाड्गुण्य

षाडगुण्यका उद्देश तथा क्षय, स्थान तथा वृद्धि, संश्रयवृत्ति, समहीन तथा ज्यायके गुण और हीनकी सन्धि, आसन तथा प्रयान, युद्धविषयक विचार, साथ मिलकर चढ़ाई तथा सन्धियाँ, द्वैधी भावसे सम्बन्ध, सन्धि तथा विक्रम, यातव्य तथा अनुग्राह्य मित्रका कर्तव्य, मित्रसन्धि तथा हिरण्यसन्धि, भूमिसन्धि, औपनिवेशक सन्धि, कर्मसन्धि, पार्ष्णिग्राह चिन्ता, हीन-शक्ति पूरण, प्रबल शत्रुके साथ व्यवहार तथा विजित शत्रुका चरित्र, पराजित राजाका व्यवहार, सन्धिका करना तथा तोड़ना, मध्यम तथा उदासीन मण्डलके कार्य ।

आठवाँ अधिकरण, व्यसनाधिकारिक

प्रकृति-व्यसन-वर्ग, राजा तथा राज्य विषयक व्यसनोंकी चिन्ता, पुरुष-व्यसन-वर्ग, पीडन-वर्ग, स्तम्भ-वर्ग तथा कोशसङ्गवर्ग, बलव्यसन-वर्ग तथा मित्र-व्यसन-वर्ग ।

नवाँ अधिकरण, अभियास्यत्कर्म

शक्ति देश-काल तथा यात्राकाल, सेनाका इकट्ठा तथा तैयार करना और दूसरे सेनाके काम, पश्चात्कोप चिन्ता और बाह्याभ्यन्तर प्रकृति, कोपका प्रतिकार, क्षय, व्यय तथा लाभका विमर्श, बाह्य तथा आभ्यन्तर आपत्तियाँ, राज्यद्रोहियों तथा शत्रुओंके साथी, अर्थानर्थ संशय, विवेचन तथा उनकी उपाय विकल्पज सिद्धि ।

दसवाँ अधिकरण, सांग्रामिक

स्कन्धावार निवेश, स्कन्धावारका प्रयाण, बल, व्यसन, अवस्कन्द काल तथा सैनिक संरक्षण, कूट युद्ध, स्वसैन्योत्साहन, तथा स्वबल तथा अन्य बलका प्रयोग, युद्धभूमि, पदाति अश्व रथ हस्ति आदिके काम, व्यूह-विभाग, बल-विभाग तथा चतुरङ्ग-सेना-द्वारा युद्ध, दण्ड-भाग मण्डल तथा असंहत सम्बन्धी व्यूह और प्रतिव्यूहका स्थापन ।

ग्यारहवाँ अधिकरण, सङ्घ-वृत्त

भेदोपादान तथा उपांशु दण्ड ।

बारहवाँ अधिकरण, आबलीयस

दूतके काम, मन्त्रयुद्ध, सेनापतियोंका घात तथा राष्ट्रमण्डलका प्रोत्साहन, शस्त्र अग्नि तथा रसका प्रयोग, विविध आसार तथा प्रसारका वध, योगातिसन्धान दण्डातिसन्धान तथा एक विजय।

तेरहवाँ अधिकरण, दुर्गलम्भोपाय

उपजाय, योगवामन, खुफिया पुलिसका प्रयोग, क्लिेका घेरना तथा शत्रुका नाश, विजित प्रदेशमें शान्ति स्थापित करना।

चौदहवाँ अधिकरण, औपनिषदिक

परघात-प्रयोग, अद्भुतोत्पादन, दवाई तथा मन्त्रका प्रयोग, शत्रुघातक योगोंसे स्वपक्षका रक्षण।

पन्द्रहवाँ अधिकरण, तन्त्र-युक्ति

शास्त्रसे प्रतिपादनकी युक्ति, चाणक्यके सूत्र।

वेदाङ्ग-खण्ड

अठारहवाँ अध्याय

शिक्षा

वेदके पूरक साहित्यवाले चारों अध्यायोंमें हम प्रातिशाख्योंकी चर्चा कर आये हैं। भिन्न भिन्न वेदोंके तथा एक ही वेदके अनेक तरहसे स्वरोंके उच्चारण, पदोंके क्रम और विच्छेद आदिका निर्णय शाखाके जिन विशेष-विशेष ग्रन्थोंद्वारा होता है उन्हें ही प्राति-शाख्य कहते हैं। वेदाध्ययनके अत्यन्त पूर्वकालमें ऋषियोंने पढ़नेके स्वरादि विशेषतासे निश्चय करके अपनी अपनी शाखाकी परम्परा चला दी। जिस किसीने जिस शाखासे वेद-पाठ सीखा वह उसी शाखाकी वंशपरम्पराका कहलाया। ब्राह्मणोंकी गोत्र प्रवर शाखा आदि की परम्परा इसी तरह चल पड़ी है। जब बहुत कालकी हो गयी तब इस विभेदको स्मरण रखनेके लिए और अपनी अपनी रीतिकी रक्षाके लिए प्रातिशाख्य-ग्रन्थ बने। इन्हीं प्राति-शाख्योंमें शिक्षा और व्याकरण दोनों पाये जाते हैं।

एक समय था जब कि वेदकी सभी शाखाओंके प्रातिशाख्योंका चलन था और सभी उपलब्ध भी थे। परन्तु अब तो केवल ऋग्वेदकी शाकल शाखाका शौनक रचित ऋक् प्राति-शाख्य, यजुर्वेदकी तैत्तिरीय शाखाका तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, वाजसनेय शाखाका कात्यायन रचित वाजसनेय प्रातिशाख्य, सामवेदकी माध्यन्दिन शाखाका पुष्प मुनि रचित साम प्रातिशाख्य और अथर्व प्रातिशाख्य वा शौनकीय चतुराध्यायी उपलब्ध है।

शौनकके ऋक् प्रातिशाख्यमें तीन काण्ड, छः पटल और १०३ कण्डिकायें हैं। इस प्रातिशाख्यका परिशिष्ट रूप उपलेख सूत्र नामका एक ग्रन्थ भी मिलता है। पहले-पहल विष्णुपुत्रने इसका भाष्य रचा था। उसको देखकर उव्वटाचार्यने एक विस्तृत भाष्य लिखा है।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्यमें आत्रेय स्थविर कौण्डिन्य, भारद्वाज, वाल्मीकि, अग्निवेश्य अग्निवेश्यायन, पौष्करस आदि आचार्योंकी चर्चा है। परन्तु इसमें किसी प्रसङ्गमें भी तैत्तिरीय आरण्यक वा तैत्तिरीय ब्राह्मणकी चर्चा नहीं है। आत्रेय, मारिषेय और वररुचिके लिखे इसपर भाष्य थे, परन्तु अब नहीं मिलते। इन पुराने भाष्योंको देखकर कार्तिकेयने त्रिभाष्य नामका एक विस्तृत भाष्य रचा है।

कात्यायनके वाजसनेय प्रातिशाख्यमें आठ अध्याय हैं। पहले अध्यायमें संज्ञा और परिभाषा है। दूसरेमें स्वर प्रक्रिया है। तीसरेसे पाँचवें अध्यायतक संस्कार हैं। छठे और सातवें अध्यायमें क्रियाके उच्चारण-भेद हैं और आठवें अध्यायमें स्वाध्याय अर्थात् वेदपाठके नियम दिये गये हैं। इस प्रातिशाख्यमें शाकटायन, शाकार्य, गार्ग्य, काश्यप, दाल्भ्य, जातुकर्ण, शौनक, उपाशिवि, काण्व और माध्यन्दिन आदि पूर्वाचार्योंकी चर्चा है। इसके पहले अध्यायमें वेद और भाष्य इन दो भाषाओंका उल्लेख है।

साम प्रातिशाख्यके रचयिता पुष्प मुनि हैं। इसमें १० प्रपाठक हैं। पहले दो प्रपाठकोंमें दशरात्र, संवत्सर, एकाह, अहीन, सत्र, प्रायश्चित्त, और क्षुद्र पर्वानुसार स्तोत्रीय

सामसमूहकी संज्ञायें संक्षेपसे बतायी गयी हैं। तीसरे और चौथे प्रपाठकमें साममें श्रुत आई भाव और प्रकृति भावके सम्बन्धमें विध्यात्मक उपदेश हैं। पाँचवें प्रपाठकमें वृद्ध और अवृद्ध भावकी व्यवस्था है। छठे प्रपाठकमें वह व्यवस्था है कि साम भक्तिसमूह कहाँ गाया जाय और कहाँ न गाया जाय। सातवें और आठवें प्रपाठकमें लोप आगम और वर्ण विकारके स्थान आदिके सम्बन्धमें उपदेश हैं। नवें प्रपाठकमें भावकथन है और दसवें और आगेके प्रपाठकोंमें कुष्टाकुष्ट निर्णय और उसके और प्रस्ताव लक्षणादि बताये हैं।

अथर्व प्रातिशाख्य दो मिले हैं। एक तो शौनकीय चतुराध्यायिका है जिसमें (१) ग्रन्थका उद्देश्य, परिचय और वृत्ति है, (२) स्वर और व्यञ्जन संयोग, उदात्तादि लक्षण, प्रगृह्य, अक्षर, विन्यास, युक्तवर्ण, यम, अभिनिधान, नासिक्य, स्वरभक्ति, स्फोटन, कर्षण और वर्णक्रम (३) संहिता-प्रकरण (४) क्रम-निर्णय (५) पद-निर्णय और (६) स्वाध्यायकी आवश्यकताके सम्बन्धमें उपदेश, यह छः विषय बताये हैं।

प्रातिशाख्योंमेंसे कुछ बहुत प्राचीन हैं तो कोई कोई पाणिनीय सूत्रोंके बादके भी हैं। पण्डित सत्यव्रत सामश्रमीका मत है कि "पुष्प-प्रणीत सामप्रातिशाख्य पाणिनि सूत्रसे भी अधिक पुराना है। यहाँतक कि सब दर्शनोंमें पुराने मीमांसा-दर्शनसे भी पुराना है। कारण यह है कि मीमांसा दर्शनकी अधिकरण मालामें 'तथा च सामगाआन्धूः' 'वृद्धम् तालव्यमाह भवति' यह साम प्रातिशाख्यके वचन उद्धृत किये गये हैं।

कई पाश्चात्य विद्वानोंका मत है कि वाजसनेय प्रातिशाख्यके रचनेवाले कात्यायन, और पाणिनिसूत्रोंके वार्तिककार कात्यायन, दोनों एकही व्यक्ति हैं। अपने वार्तिकमें जिस तरह उन्होंने पाणिनिकी तीव्र समालोचना की है उसी तरह प्रातिशाख्यमें भी की है। इसीसे निश्चय होता है कि वाजसनेय प्रातिशाख्य पाणिनिके सूत्रोंके बादका है।

प्रातिशाख्योंमें शिक्षाका विषय अधिक है और व्याकरणका विषय अत्यन्त कम है। वास्तविक प्रातिशाख्यमें व्याकरणके सम्पूर्ण लक्षणोंका अभाव है। परन्तु शिक्षाका विषय प्रातिशाख्योंकी विशेषता है, यद्यपि वैज्ञानिक रीतिसे इस विषयके ऊपर शौनकीय शिक्षामें ही प्रतिपादन हुआ है।

शिक्षा वेदका एक अङ्ग है, जिसमें वर्ण, स्वर, मात्रा और उच्चारणादिपर विचार किया गया है। वेदोंके उच्चारणपर ऋषियोंने सबसे अधिक ध्यान दिया है। 'श्रुति' के लिये उच्चारण तो पहली चीज़ है ही, परन्तु मन्त्रोंके उच्चारणका महत्व ही कुछ और है।

"दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह
सवाग् वज्रो यजमानम् हिनस्ति
यथेंद्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्"

स्वरकी विषमतासे या वर्णकी विषमतासे शब्दके दूषित हो जानेसे या मिथ्या प्रयोग-से जब वह अर्थ नहीं निकलता जिस अर्थका प्रकाश इष्ट है, तो वही दुष्ट शब्दोंसे विरचित वाक्य वज्रकी तरह यजमानको ही नष्ट कर देता है। जैसे कि स्वरके दोषसे "इन्द्रशत्रु" शब्द यजमान वृत्रकी ही हत्याका कारण हुआ।

सामसमूहकी संज्ञायें संक्षेपसे बतायी गयी हैं। तीसरे और चौथे प्रपाठकमें साममें श्रुत आई भाव और प्रकृति भावके सम्बन्धमें विध्यात्मक उपदेश हैं। पाँचवें प्रपाठकमें वृद्ध और अवृद्ध भावकी व्यवस्था है। छठे प्रपाठकमें वह व्यवस्था है कि साम भक्तिसमूह कहाँ गाया जाय और कहाँ न गाया जाय। सातवें और आठवें प्रपाठकमें लोप आगम और वर्ण विकारके स्थान आदिके सम्बन्धमें उपदेश हैं। नवें प्रपाठकमें भावकथन है और दसवें और आगेके प्रपाठकोंमें कृष्टाकृष्ट निर्णय और उसके और प्रस्ताव लक्षणादि बताये हैं।

अथर्व प्रातिशाख्य दो मिले हैं। एक तो शौनकीय चतुराध्यायिका है जिसमें (१) ग्रन्थका उद्देश्य, परिचय और वृत्ति है, (२) स्वर और व्यञ्जन संयोग, उदात्तादि लक्षण, प्रगृह्य, अक्षर, विन्यास, युक्तवर्ण, यम, अभिनिधान, नासिक्य, स्वरभक्ति, स्फोटन, कर्षण और वर्णक्रम (३) संहिता-प्रकरण (४) क्रम-निर्णय (५) पद-निर्णय और (६) स्वाध्यायकी आवश्यकताके सम्बन्धमें उपदेश, यह छः विषय बताये हैं।

प्रातिशाख्योंमेंसे कुछ बहुत प्राचीन हैं तो कोई कोई पाणिनीय सूत्रोंके बादके भी हैं। पण्डित सत्यव्रत सामश्रमीका मत है कि "पुष्प-प्रणीत सामप्रातिशाख्य पाणिनि सूत्रसे भी अधिक पुराना है। यहाँतक कि सब दर्शनोंमें पुराने मीमांसा-दर्शनसे भी पुराना है। कारण यह है कि मीमांसा दर्शनकी अधिकरण मालामें 'तथा च सामगाआंधूः' 'वृद्धम् तालव्यमाह भवति' यह साम प्रातिशाख्यके वचन उद्धृत किये गये हैं।

कई पाश्चात्य विद्वानोंका मत है कि वाजसनेय प्रातिशाख्यके रचनेवाले कात्यायन, और पाणिनिसूत्रोंके वार्तिककार कात्यायन, दोनों एकही व्यक्ति हैं। अपने वार्तिकमें जिस तरह उन्होंने पाणिनिकी तीव्र समालोचना की है उसी तरह प्रातिशाख्यमें भी की है। इसीसे निश्चय होता है कि वाजसनेय प्रातिशाख्य पाणिनिके सूत्रोंके बादका है।

प्रातिशाख्योंमें शिक्षाका विषय अधिक है और व्याकरणका विषय अत्यन्त कम है। वास्तविक प्रातिशाख्यमें व्याकरणके सम्पूर्ण लक्षणोंका अभाव है। परन्तु शिक्षाका विषय प्रातिशाख्योंकी विशेषता है, यद्यपि वैज्ञानिक रीतिसे इस विषयके ऊपर शौनकीय शिक्षामें ही प्रतिपादन हुआ है।

शिक्षा वेदका एक अङ्ग है, जिसमें वर्ण, स्वर, मात्रा और उच्चारणादिपर विचार किया गया है। वेदोंके उच्चारणपर ऋषियोंने सबसे अधिक ध्यान दिया है। 'श्रुति' के लिये उच्चारण तो पहली चीज़ है ही, परन्तु मन्त्रोंके उच्चारणका महत्व ही कुछ और है।

"दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह
सवाग् वज्रो यजमानम् हिनस्ति
यथेंद्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्"

स्वरकी विषमतासे या वर्णकी विषमतासे शब्दके दूषित हो जानेसे या मिथ्या प्रयोगसे जब वह अर्थ नहीं निकलता जिस अर्थका प्रकाश इष्ट है, तो वही दुष्ट शब्दोंसे विरचित वाक्य वज्रकी तरह यजमानको ही नष्ट कर देता है। जैसे कि स्वरके दोषसे "इन्द्रशत्रु" शब्द यजमान वृत्रकी ही हत्याका कारण हुआ।

किसी समय इन्द्रको नाश करनेके लिये वृत्रासुरने अभिचार आरम्भ किया इस अभिचारमें "इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व" इस मन्त्रका जाप करना था। इस स्थलमें "इन्द्रस्य शमयिता शातयितावा भव" यही क्रिया शब्द है। यहाँ बहुव्रीहि और तत्पुरुष समासोंके अर्थमें भेद है। "इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व" यह वाक्य जब इन्द्रके शातनके लिये व्यवहारमें आता है तब अन्त्य पद उदात्त स्वरमें उच्चारित होना चाहिए। किन्तु भूलसे या अज्ञानतासे वृत्रने आद्य पदका उदात्त स्वरमें उच्चारण किया था। इससे अर्थ यह निकला कि मानों इन्द्रके शत्रु, यजमान वृत्रासुरके नाश करनेकी प्रार्थना है। फल यह हुआ कि वह अभिचार कर्ताके ही नाशका कारण हुआ।

शौनकीय शिक्षा प्राचीन समयमें वेदोंका सा सम्मान पाती थी उसे वेद ही समझते थे। पाणिनिने तो कमसे कम "शब्देन्दुशेखरकारके मतसे शौनकीय शिक्षाको वेद ही सरीखा माना है। क्योंकि "शौनकादिभ्यश्छन्दसि" (४।३।१०६) पाणिनीय सूत्रपर शब्देन्दु शेखरमें लिखा है "छन्दसिकिम्? शौनकीया शिक्षा इति"

प्राचीन समयमें शिक्षाका विचार्य विषय संहिताका पाठ ही था। उसके बाद क्रम पाठ चला। फिर पदपाठमें पदच्छेद समास और सन्धिच्छेद करके पढ़नेका नियम चला। जिन स्थलोंमें इस प्रकार पदच्छेद किये विना ही वेदका अर्थ सहज ही समझमें आ जाता है वहाँ यास्क और पाणिनि और पतञ्जलिके अनुसार पदपाठ, पदच्छेदादिकी कोई आवश्यकता नहीं है।

ऋग्वेदके प्रतिशाख्यके रचयिता जो शौनक हैं, वही शौनक शिक्षाके भी रचयिता हैं। यह आश्वलायनके गुरु थे। अतः ऋक प्रतिशाख्य और शिक्षा दोनों ही ग्रन्थ बहुत प्राचीन हैं।

शिक्षाके चार ग्रन्थ पण्डित धनराजजीकी सूचीमें दिये गये हैं। याज्ञवल्क्य शिक्षामें २५,०००, गणेशसूत्रमें १ लाख २५ हज़ार, भारद्वाज-शिक्षामें ३६,००० और काश्यप शिक्षा में ५६,००० श्लोक या सूत्र बताये गये हैं।

उन्नीसवाँ अध्याय

व्याकरण

शिक्षाके बाद महत्वकी और आवश्यकताकी दृष्टिसे दूसरा वेदाङ्ग व्याकरण है। इसमें साध्य-साधन, कर्ता-कर्म, क्रिया-समासादिका निरूपण होता है। इसकी व्युत्पत्तिका अर्थ वह शास्त्र है जिसके द्वारा सब साधु शब्दोंका व्युत्पादन हो। व्याकरणके कुछ थोड़े बहुत अंश प्रातिशाख्योंमें आ गये हैं परन्तु उतनी थोड़ी चर्चासे प्रातिशाख्योंको व्याकरण नहीं कहा जा सकता। साथ ही प्रातिशाख्य तो विशेषकर शिक्षा-सम्बन्धी ग्रन्थ हैं, यह बात हम पिछले अध्यायमें दिखा आये हैं।

व्याकरणका काम है भाषाके नियमोंका प्रदर्शन। इसीलिए इसका दूसरा नाम शब्दानुशासन भी है। शब्दोंकी संख्या अनन्त है, इसलिए व्याकरण शास्त्रका भी कोई अन्त नहीं है। ऐसी एक जनश्रुति भगवान् पतञ्जलिने लिखी है कि बृहस्पतिने इन्द्रको एक सहस्र दिव्य बरसोंतक प्रतिपदोक्त शब्द पारायण कराया। फिर भी शब्दसमूहका अन्त नहीं हुआ।

छहों अङ्गोंमें व्याकरण वेदका प्रधान अङ्ग समझा जाता है। जो लोग वेदमन्त्रोंको अनादि मानते हैं उनके अनुसार तो बीजरूपसे व्याकरण भी अनादि है। परन्तु जिनके मतसे वेदमन्त्र ऋषियोंके बनाये हैं उनके अनुसार व्याकरणकी रचनाका काल मन्त्रोंकी रचनाके पीछे आना ही चाहिए। पतञ्जलिवाली उपर्युक्त जनश्रुतिसे यह प्रगट होता है कि सबसे पुराने वैयाकरण देवताओंके गुरु बृहस्पति होंगे और इन्द्रका नम्बर उनके बाद पड़ेगा। किन्तु पाणिनिके आरम्भके पहले चौदह सूत्र माहेश्वर सूत्राणि कहे गये हैं। इससे सहज ही यह अनुमान होता है कि माहेश्वर सूत्र भी किसी व्याकरणके ही सूत्र होंगे। पण्डित धनराजकी ग्रन्थसूचीमें माहेश्वरीय व्याकरणमें एक लाख सूत्र बनाये गये हैं। शिवसूत्र इनसे अलग हैं और उनकी संख्या २५,००० है। बृहस्पतिका कोई व्याकरण उनकी सूचीमें नहीं है। परन्तु इन्द्र-व्याकरण नामका एक ग्रन्थ है जिसमें केवल ५,००० सूत्र हैं। अनुमान यह होता है कि जिस व्याकरणकी अनन्तताकी सूचना पतञ्जलिकी कही जनश्रुतिमें मिलती है वह अनन्त शब्द भाण्डारवाला व्याकरण यही माहेश्वर व्याकरण होगा जिसमें सबसे अधिक अर्थात् १ लाख सूत्र बताये हैं। इसके बाद संख्याके नाते शिवसूत्रका ही नम्बर आता है। यदि माहेश्वर और शिवमें कोई अन्तर नहीं है तो कुल मिलाकर सवा लाख माहेश्वर सूत्र होते हैं। बंगला विश्वकोषकारने लिखा है किसी-किसीका कहना है कि माहेश व्याकरण नामका एक अति विस्तृत व्याकरण था जिसके सामने पाणिनीय व्याकरणकी वही हैसियत थी जो समुद्रके आगे गोपद जलबिन्दुकी होती है। किन्तु इस उक्तिकी कोई मूल भित्ति नहीं है। इसके प्रतिवादी कहते हैं कि पाणिनीय व्याकरणमें जो प्रत्याहार सूत्र दिये हैं उनके सिवा कोई माहेश्वर व्याकरण नहीं हैं। शायद यही माहेश्वरीय व्याकरण विश्वकोषोक्त माहेश व्याकरण है।

व्याकरण चाहे अब उतने न मिलें परन्तु पाणिनिके सूत्रोंमें जिनके हवाले दिये गये हैं वह तो पाणिनिसे पहले जरूर रहे होंगे। अष्टाध्यायीके सूत्रोंमें यह नाम आये हैं। अत्रि, आङ्गिरस, आपिशलि, कठ, कलापी, काश्य, कुत्स, कौडिन्य, कौरव्य, कौशिक, गालव, गौतम, चरक, चक्रवर्मा, छागलि, जाबाल, तित्तिरि, पाराशर्य, पील, बभ्रु, भारद्वाज, भृगु, मण्डूक, मधूक, यास्क, वडवा, वडतन्तु, वशिष्ट, वैशम्पायन, शाकटायन, शाकल्य शिपालि, शौनक, और स्फोटायन।

शाकटायनके थोड़ेसे सूत्र छपे देखे गये हैं। और ओनामासीधम आदि वेढङ्गे रूपसे बुन्देलखण्डकी तरफ गाँवके अधपढे गुरु लोग परम्परासे बालकोंको रटाते आये हैं। जो छपा हुआ शाकटायन सूत्र देखा गया है उसमें ॐ नमः सिद्धम् पहला सूत्र है। इस घोर कलिकालमें ओनामासीधम उसीका रूपान्तर हो गया है। पण्डित धनराज शास्त्रीकी सूचीमें उपर्युक्त तीन व्याकरणोंके सिवाय और भी व्याकरण ग्रन्थोंकी सूची दी है। नवेंदुसार संहितामें ३,०००, सिद्धान्त सिन्धुमें १६,०००, चन्द्र-व्याकरणमें ७,०००, कार्त्सकृष्णमें १०,०००, आपशलि सूत्रमें ९,०००, शाकटायन सूत्रमें १०,०००, शाकल्य सूत्रमें ५,०००, मालव सूत्रमें ७,०००, चाक्रवर्त्ममें ३,०००, गार्ग्य व्याकरणमें १२,००० और क्रन्दार्क व्याकरणमें ९,०००, सूत्र हैं।

इस समय प्रकाशित ग्रन्थोंमें सबसे पुराना व्याकरण पाणिनिका है। पाणिनिके बाद व्याडिका नम्बर आता है जिनके विषयमें नागेश भट्टने लिखा है कि व्याडिका ग्रन्थ १ लाख श्लोकोंका है। व्याढिके बाद किसी किसीका कहना है कि निरुक्तकार यास्क वैयाकरण हुए हैं। यास्कके बाद कात्यायन और कात्यायनके बाद पतञ्जलिका नाम आता है। पतञ्जलिके महाभाष्यके बाद वामन और जयादित्यकी काशिका वृत्ति मशहूर है। कात्यायनने वार्तिक तथा पतञ्जलिने महाभाष्य बनाया। कैयटने उसपर प्रदीप नामकी टीका लिखी। नागोजी भट्टने प्रदीपकी टीका की। हरिदत्तने पदमञ्जरी नामकी काशिका वृत्तिकी टीका की। इसीपर जिनेन्द्रने भी टीका की। नागोजी भट्टने पाणिनि सूत्रोंकी संक्षिप्त टीका 'वृत्त सङ्ग्रह' नामकी की। पुरुषोत्तमने भाषा वृत्ति लिखी और सृष्टिधरने उसकी विवृत्ति लिखी। भट्टोजी दीक्षितने शब्दकौस्तुभ लिखा और वालम भट्टने प्रभा लिखी। भट्टोजी दीक्षितने सिद्धान्त कौमुदी लिखी जिसके प्रचारसे अष्टाध्यायीकी चाल उठ सी गयी। सिद्धान्त कौमुदीपर भट्टोजी दीक्षितने प्रौढ़ मनोरमा नामकी टीका लिखी। शब्देन्दुशेखर बालमभट्टीपर संक्षिप्त टीका है। लघु शब्देन्दुशेखर उससे भी संक्षिप्त है। मध्य कौमुदी और लघु कौमुदी वरदराजने लिखी। इनके बाद तो पाणिनिपर ही अवलम्बित और अनेक ग्रन्थ हैं। परिभाषा, परिभाषा वृत्ति, लघु परिभाषा वृत्ति, चन्द्रिका, परिभाषेन्दु शेखर, उसकी काशिका, कारिका वाक्य प्रदीप, व्याकरण भूषण, भूषण सार दर्पण, व्याकरण भूषणसार, व्याकरण सिद्धान्त मञ्जूषा। पिछले चार ग्रन्थ वाक्य प्रदीपसे सम्बन्ध रखनेवाले टीका आदि हैं। वाक्पदीय व्याकरणका दार्शनिक ग्रन्थ है। लघु भूषण कान्ति, लघु व्याकरण सिद्धान्त मञ्जूषा, कला, गण पाट, गणरत्न महोदधि सटीक, धातु प्रदीप, पाणिनि धातु पाठ, माधवीय वृत्ति और पद चन्द्रिका यह सब ग्रन्थ पाणिनीय सूत्रोंपर अवलम्बित हैं। इनके सिवाय भी पाणिनि सूत्रोंके आधारपर अनेक ग्रन्थ रचे गये हैं जिनकी नामावली देना यहाँ बाहुल्य मात्र है।

सरस्वती प्रक्रिया नामक व्याकरण अनुभूति स्वरूपाचार्यका लिखा है। संयुक्तप्रान्तमें

उन्नीसवाँ अध्याय

व्याकरण

शिक्षाके बाद महत्वकी और आवश्यकताकी दृष्टिसे दूसरा वेदाङ्ग व्याकरण है। इसमें साध्य-साधन, कर्ता-कर्म, क्रिया-समासादिका निरूपण होता है। इसकी व्युत्पत्तिका अर्थ वह शास्त्र है जिसके द्वारा सब साधु शब्दोंका व्युत्पादन हो। व्याकरणके कुछ थोड़े बहुत अंश प्रातिशाख्योंमें आ गये हैं परन्तु उतनी थोड़ी चर्चासे प्रातिशाख्योंको व्याकरण नहीं कहा जा सकता। साथ ही प्रातिशाख्य तो विशेषकर शिक्षा-सम्बन्धी ग्रन्थ हैं, यह बात हम पिछले अध्यायमें दिखा आये हैं।

व्याकरणका काम है भाषाके नियमोंका प्रदर्शन। इसीलिए इसका दूसरा नाम शब्दानुशासन भी है। शब्दोंकी संख्या अनन्त है, इसलिए व्याकरण शास्त्रका भी कोई अन्त नहीं है। ऐसी एक जनश्रुति भगवान् पतञ्जलिने लिखी है कि बृहस्पतिने इन्द्रको एक सहस्र दिव्य बरसोंतक प्रतिपदोक्त शब्द पारायण कराया। फिर भी शब्दसमूहका अन्त नहीं हुआ।

छहों अङ्गोंमें व्याकरण वेदका प्रधान अङ्ग समझा जाता है। जो लोग वेदमन्त्रोंको अनादि मानते हैं उनके अनुसार तो बीजरूपसे व्याकरण भी अनादि है। परन्तु जिनके मतसे वेदमन्त्र ऋषियोंके बनाये हैं उनके अनुसार व्याकरणकी रचनाका काल मन्त्रोंकी रचनाके पीछे आना ही चाहिए। पतञ्जलिवाली उपर्युक्त जनश्रुतिसे यह प्रगट होता है कि सबसे पुराने वैयाकरण देवताओंके गुरु बृहस्पति होंगे और इन्द्रका नम्बर उनके बाद पड़ेगा। किन्तु पाणिनिके आरम्भके पहले चौदह सूत्र माहेश्वर सूत्राणि कहे गये हैं। इससे सहज ही यह अनुमान होता है कि माहेश्वर सूत्र भी किसी व्याकरणके ही सूत्र होंगे। पण्डित धनराजकी ग्रन्थसूचीमें माहेश्वरीय व्याकरणमें एक लाख सूत्र बनाये गये हैं। शिवसूत्र इनसे अलग हैं और उनकी संख्या २५,००० है। बृहस्पतिका कोई व्याकरण उनकी सूचीमें नहीं है। परन्तु इन्द्र-व्याकरण नामका एक ग्रन्थ है जिसमें केवल ५,००० सूत्र हैं। अनुमान यह होता है कि जिस व्याकरणकी अनन्तताकी सूचना पतञ्जलिकी कही जनश्रुतिमें मिलती है वह अनन्त शब्द भाण्डारवाला व्याकरण यही माहेश्वर व्याकरण होगा जिसमें सबसे अधिक अर्थात् १ लाख सूत्र बताये हैं। इसके बाद संख्याके नाते शिवसूत्रका ही नम्बर आता है। यदि माहेश्वर और शिवमें कोई अन्तर नहीं है तो कुल मिलाकर सवा लाख माहेश्वर सूत्र होते हैं। बंगला विश्वकोषकारने लिखा है किसी-किसीका कहना है कि माहेश व्याकरण नामका एक अति विस्तृत व्याकरण था जिसके सामने पाणिनीय व्याकरणकी वही हैसियत थी जो समुद्रके आगे गोपद जलबिन्दुकी होती है। किन्तु इस उक्तिकी कोई मूल भित्ति नहीं है। इसके प्रतिवादी कहते हैं कि पाणिनीय व्याकरणमें जो प्रत्याहार सूत्र दिये हैं उनके सिवा कोई माहेश्वर व्याकरण नहीं हैं। शायद यही माहेश्वरीय व्याकरण विश्वकोषोक्त माहेश व्याकरण है।

व्याकरण चाहे अब उतने न मिलें परन्तु पाणिनिके सूत्रोंमें जिनके हवाले दिये गये हैं वह तो पाणिनिसे पहले जरूर रहे होंगे। अष्टाध्यायीके सूत्रोंमें यह नाम आये हैं। अत्रि, आङ्गिरस, आपिशलि, कठ, कलापी, काश्य, कुत्स, कौडिन्य, कौरव्य, कौशिक, गालव, गौतम, चरक, चक्रवर्मा, छागलि, जावाल, तित्तिरि, पाराशर्य, पील, बभ्रु, भारद्वाज, भृगु, मण्डूक, मधूक, यास्क, वडवा, वडतन्तु, वशिष्ट, वैशम्पायन, शाकटायन, शाकल्य शिपालि, शौनक, और स्फोटायन।

शाकटायनके थोड़ेसे सूत्र छपे देखे गये हैं। और ओनामासीधम आदि बेढङ्गे रूपसे बुन्देलखण्डकी तरफ गाँवके अधपढ़े गुरु लोग परम्परासे बालकोंको रटाते आये हैं। जो छपा हुआ शाकटायन सूत्र देखा गया है उसमें ॐ नमः सिद्धम् पहला सूत्र है। इस घोर कलिकालमें ओंनामासीधम उसीका रूपान्तर हो गया है। पण्डित धनराज शास्त्रीकी सूचीमें उपर्युक्त तीन व्याकरणोंके सिवाय और भी व्याकरण ग्रन्थोंकी सूची दी है। नवेंदुसार संहितामें ३,०००, सिद्धान्त सिन्धुमें १६,०००, चन्द्र-व्याकरणमें ७,०००, कार्त्सकृष्णमें १०,०००, आपशलि सूत्रमें ९,०००, शाकटायन सूत्रमें १०,०००, शाकल्य सूत्रमें ५,०००, मालव सूत्रमें ७,०००, चाक्रवर्त्ममें ३,०००, गार्ग्य व्याकरणमें १२,००० और क्रन्दार्क व्याकरणमें ९,०००, सूत्र हैं।

इस समय प्रकाशित ग्रन्थोंमें सबसे पुराना व्याकरण पाणिनिका है। पाणिनिके बाद व्याडिका नम्बर आता है जिनके विषयमें नागेश भट्टने लिखा है कि व्याडिका ग्रन्थ १ लाख श्लोकोंका है। व्याडिके बाद किसी किसीका कहना है कि निरुक्तकार यास्क वैयाकरण हुए हैं। यास्कके बाद कात्यायन और कात्यायनके बाद पतञ्जलिका नाम आता है। पतञ्जलिके महाभाष्यके बाद वामन और जयादित्यकी काशिका वृत्ति मशहूर है। कात्यायनने वार्तिक तथा पतञ्जलिने महाभाष्य बनाया। कैयटने उसपर प्रदीप नामकी टीका लिखी। नागोजी भट्टने प्रदीपकी टीका की। हरिदत्तने पदमञ्जरी नामकी काशिका वृत्तिकी टीका की। इसीपर जिनेन्द्रने भी टीका की। नागोजी भट्टने पाणिनि सूत्रोंकी संक्षिप्त टीका 'वृत्त सङ्ग्रह' नामकी की। पुरुषोत्तमने भाषा वृत्ति लिखी और सृष्टिधरने उसकी विवृत्ति लिखी। भट्टोजी दीक्षितने शब्दकौस्तुभ लिखा और वालम भट्टने प्रभा लिखी। भट्टोजी दीक्षितने सिद्धान्त कौमुदी लिखी जिसके प्रचारसे अष्टाध्यायीकी चाल उठ सी गयी। सिद्धान्त कौमुदीपर भट्टोजी दीक्षितने प्रौढ़ मनोरमा नामकी टीका लिखी। शब्देन्दुशेखर वालमभट्टीपर संक्षिप्त टीका है। लघु शब्देन्दुशेखर उससे भी संक्षिप्त है। मध्य कौमुदी और लघु कौमुदी वरदराजने लिखी। इनके बाद तो पाणिनिपर ही अवलम्बित और अनेक ग्रन्थ हैं। परिभाषा, परिभाषा वृत्ति, लघु परिभाषा वृत्ति, चन्द्रिका, परिभाषेन्दु शेखर, उसकी काशिका, कारिका वाक्य प्रदीप, व्याकरण भूषण, भूषण सार दर्पण, व्याकरण भूषणसार, व्याकरण सिद्धान्त मञ्जूषा। पिछले चार ग्रन्थ वाक्य प्रदीपसे सम्बन्ध रखनेवाले टीका आदि हैं। वाक्पदीय व्याकरणका दार्शनिक ग्रन्थ है। लघु भूषण कान्ति, लघु व्याकरण सिद्धान्त मञ्जूषा, कला, गण पाट, गणरत्न महोदधि सटीक, धातु प्रदीप, पाणिनि धातु पाठ, माधवीय वृत्ति और पद चन्द्रिका यह सब ग्रन्थ पाणिनीय सूत्रोंपर अवलम्बित हैं। इनके सिवाय भी पाणिनि सूत्रोंके आधारपर अनेक ग्रन्थ रचे गये हैं जिनकी नामावली देना यहाँ बाहुल्य मात्र है।

सरस्वती प्रक्रिया नामक व्याकरण अनुभूति स्वरूपाचार्यका लिखा है। संयुक्तप्रान्तमें

उन्नीसवाँ अध्याय

व्याकरण

शिक्षाके बाद महत्वकी और आवश्यकताकी दृष्टिसे दूसरा वेदाङ्ग व्याकरण है। इसमें साध्य-साधन, कर्ता-कर्म, क्रिया-समासादिका निरूपण होता है। इसकी व्युत्पत्तिका अर्थ वह शास्त्र है जिसके द्वारा सब साधु शब्दोंका व्युत्पादन हो। व्याकरणके कुछ थोड़े बहुत अंश प्रातिशाख्योंमें आ गये हैं परन्तु उतनी थोड़ी चर्चासे प्रातिशाख्योंको व्याकरण नहीं कहा जा सकता। साथ ही प्रातिशाख्य तो विशेषकर शिक्षा-सम्बन्धी ग्रन्थ हैं, यह बात हम पिछले अध्यायमें दिखा आये हैं।

व्याकरणका काम है भाषाके नियमोंका प्रदर्शन। इसीलिए इसका दूसरा नाम शब्दानुशासन भी है। शब्दोंकी संख्या अनन्त है, इसलिए व्याकरण शास्त्रका भी कोई अन्त नहीं है। ऐसी एक जनश्रुति भगवान् पतञ्जलिने लिखी है कि बृहस्पतिने इन्द्रको एक सहस्र दिव्य बरसोंतक प्रतिपदोक्त शब्द पारायण कराया। फिर भी शब्दसमूहका अन्त नहीं हुआ।

छहों अङ्गोंमें व्याकरण वेदका प्रधान अङ्ग समझा जाता है। जो लोग वेदमन्त्रोंको अनादि मानते हैं उनके अनुसार तो बीजरूपसे व्याकरण भी अनादि है। परन्तु जिनके मतसे वेदमन्त्र ऋषियोंके बनाये हैं उनके अनुसार व्याकरणकी रचनाका काल मन्त्रोंकी रचनाके पीछे आना ही चाहिए। पतञ्जलिवाली उपर्युक्त जनश्रुतिसे यह प्रगट होता है कि सबसे पुराने वैयाकरण देवताओंके गुरु बृहस्पति होंगे और इन्द्रका नम्बर उनके बाद पड़ेगा। किन्तु पाणिनिके आरम्भके पहले चौदह सूत्र माहेश्वर सूत्राणि कहे गये हैं। इससे सहज ही यह अनुमान होता है कि माहेश्वर सूत्र भी किसी व्याकरणके ही सूत्र होंगे। पण्डित धनराजकी ग्रन्थसूचीमें माहेश्वरीय व्याकरणमें एक लाख सूत्र बनाये गये हैं। शिवसूत्र इनसे अलग हैं और उनकी संख्या २५,००० है। बृहस्पतिका कोई व्याकरण उनकी सूचीमें नहीं है। परन्तु इन्द्र-व्याकरण नामका एक ग्रन्थ है जिसमें केवल ५,००० सूत्र हैं। अनुमान यह होता है कि जिस व्याकरणकी अनन्तताकी सूचना पतञ्जलिकी कही जनश्रुतिमें मिलती है वह अनन्त शब्द भाण्डारवाला व्याकरण यही माहेश्वर व्याकरण होगा जिसमें सबसे अधिक अर्थात् १ लाख सूत्र बताये हैं। इसके बाद संख्याके नाते शिवसूत्रका ही नम्बर आता है। यदि माहेश्वर और शिवमें कोई अन्तर नहीं है तो कुल मिलाकर सवा लाख माहेश्वर सूत्र होते हैं। बंगला विश्वकोषकारने लिखा है किसी-किसीका कहना है कि माहेश व्याकरण नामका एक अति विस्तृत व्याकरण था जिसके सामने पाणिनीय व्याकरणकी वही हैसियत थी जो समुद्रके आगे गोपद जलविन्दुकी होती है। किन्तु इस उक्तिकी कोई मूल भित्ति नहीं है। इसके प्रतिवादी कहते हैं कि पाणिनीय व्याकरणमें जो प्रत्याहार सूत्र दिये हैं उनके सिवा कोई माहेश्वर व्याकरण नहीं हैं। शायद यही माहेश्वरीय व्याकरण विश्वकोषोक्त माहेश व्याकरण है।

व्याकरण चाहे अब उतने न मिलें परन्तु पाणिनिके सूत्रोंमें जिनके हवाले दिये गये हैं वह तो पाणिनिसे पहले जरूर रहे होंगे। अष्टाध्यायीके सूत्रोंमें यह नाम आये हैं। अत्रि, आङ्गिरस, आपिशलि, कठ, कलापी, काश्य, कुत्स, कौंडिन्य, कौरव्य, कौशिक, गालव, गौतम, चरक, चक्रवर्मा, छागलि, जाबाल, तित्तिरि, पाराशर्य, पील, बभ्रु, भारद्वाज, भृगु, मण्डूक, मधूक, यास्क, वडवा, वडतन्तु, वशिष्ट, वैशम्पायन, शाकटायन, शाकल्य शिपाळि, शौनक, और स्फोटायन।

शाकटायनके थोड़ेसे सूत्र छपे देखे गये हैं। और ओनामासीधम आदि वेढङ्गे रूपसे बुन्देलखण्डकी तरफ गाँवके अधपढ़े गुरु लोग परम्परासे बालकोंको रटाते आये हैं। जो छपा हुआ शाकटायन सूत्र देखा गया है उसमें ॐ नमः सिद्धम् पहला सूत्र है। इस घोर कलिकालमें ओनामासीधम उसीका रूपान्तर हो गया है। पण्डित धनराज शास्त्रीकी सूचीमें उपर्युक्त तीन व्याकरणोंके सिवाय और भी व्याकरण ग्रन्थोंकी सूची दी है। नर्वेदुसार संहितामें ३,०००, सिद्धान्त सिन्धुमें १६,०००, चन्द्र-व्याकरणमें ७,०००, कार्त्सकृष्णमें १०,०००, आपशलि सूत्रमें ९,०००, शाकटायन सूत्रमें १०,०००, शाकल्य सूत्रमें ५,०००, मालव सूत्रमें ७,०००, चाक्रवर्त्समें ३,०००, गार्ग्य व्याकरणमें १२,००० और क्रन्दार्क व्याकरणमें ९,०००, सूत्र हैं।

इस समय प्रकाशित ग्रन्थोंमें सबसे पुराना व्याकरण पाणिनिका है। पाणिनिके बाद व्याडिका नम्बर आता है जिनके विषयमें नागेश भट्टने लिखा है कि व्याडिका ग्रन्थ १ लाख श्लोकोंका है। व्याडिके बाद किसी किसीका कहना है कि निरुक्तकार यास्क वैयाकरण हुए हैं। यास्कके बाद कात्यायन और कात्यायनके बाद पतञ्जलिका नाम आता है। पतञ्जलिके महाभाष्यके बाद वामन और जयादित्यकी काशिका वृत्ति मशहूर है। कात्यायनने वार्तिक तथा पतञ्जलिने महाभाष्य बनाया। कैयटने उसपर प्रदीप नामकी टीका लिखी। नागोजी भट्टने प्रदीपकी टीका की। हरिदत्तने पदमञ्जरी नामकी काशिका वृत्तिकी टीका की। इसीपर जिनेन्द्रने भी टीका की। नागोजी भट्टने पाणिनि सूत्रोंकी संक्षिप्त टीका 'वृत्त सङ्ग्रह' नामकी की। पुरुषोत्तमने भाषा वृत्ति लिखी और सृष्टिधरने उसकी विवृत्ति लिखी। भट्टोजी दीक्षितने शब्दकौस्तुभ लिखा और बालम भट्टने प्रभा लिखी। भट्टोजी दीक्षितने सिद्धान्त कौमुदी लिखी जिसके प्रचारसे अष्टाध्यायीकी चाल उठ सी गयी। सिद्धान्त कौमुदीपर भट्टोजी दीक्षितने प्रौढ़ मनोरमा नामकी टीका लिखी। शब्देन्दुशेखर बालमभट्टीपर संक्षिप्त टीका है। लघु शब्देन्दुशेखर उससे भी संक्षिप्त है। मध्य कौमुदी और लघु कौमुदी वरदराजने लिखी। इनके बाद तो पाणिनिपर ही अवलम्बित और अनेक ग्रन्थ हैं। परिभाषा, परिभाषा वृत्ति, लघु परिभाषा वृत्ति, चन्द्रिका, परिभाषेन्दु शेखर, उसकी काशिका, कारिका वाक्य प्रदीप, व्याकरण भूषण, भूषण सार दर्पण, व्याकरण भूषणसार, व्याकरण सिद्धान्त मञ्जूषा। पिछले चार ग्रन्थ वाक्य प्रदीपसे सम्बन्ध रखनेवाले टीका आदि हैं। वाक्पदीय व्याकरणका दार्शनिक ग्रन्थ है। लघु भूषण कान्ति, लघु व्याकरण सिद्धान्त मञ्जूषा, कला, गण पाट, गणरत्न महोदधि सटीक, धातु प्रदीप, पाणिनि धातु पाठ, माधवीय वृत्ति और पद चन्द्रिका यह सब ग्रन्थ पाणिनीय सूत्रोंपर अवलम्बित हैं। इनके सिवाय भी पाणिनि सूत्रोंके आधारपर अनेक ग्रन्थ रचे गये हैं जिनकी नामावली देना यहाँ बाहुल्य मात्र है।

सरस्वती प्रक्रिया नामक व्याकरण अनुभूति स्वरूपाचार्यका लिखा है। संयुक्तप्रान्तमें

इसका प्रचार बहुत है। सिद्धान्तचन्द्रिका इसकी टीका है। इसमें सात सौ सूत्र हैं। कहते हैं कि सरस्वतीके प्रसादसे यह ग्रन्थ ग्रन्थकारको मिला था। किसी नये शाकटायनने कामधेनु नामक व्याकरण भी लिखा है। जैनियोंमें हेमचन्द्रका व्याकरण प्रचलित है। वररुचिने प्राकृतप्रकाश लिखा था। उसकी टीका प्राकृत मनोरमाके नामसे प्रसिद्ध है। आदि कवि वाल्मीकि रचित प्राकृत व्याकरणके सूत्र हैं, जिनपर लक्ष्मीधरने संस्कृतमें टीका लिखी है और उसका नाम षड्भाषाचन्द्रिका रखा है। इसमें १०८५ सूत्र हैं।

बङ्गालकी ओर कलाप व्याकरण प्रचलित है। इसको कातन्त्र व्याकरण भी कहते हैं। कलाप व्याकरणके आधारपर अनेक व्याकरण ग्रन्थ बने हैं जो बङ्गालमें प्रचलित हैं। विश्वकोषकारने २५ के नाम दिये हैं।

मुग्धबोध नामका एक व्याकरण वोपदेवका बनाया है। बङ्गालमें इसका भी प्रचार है। इसकी भी बहुत सी टीकायें हैं, जिनमेंसे चौदहके नाम विश्वकोषमें दिये हैं। काशीश्वर और नन्दिकीश्वरने इसपर अपने अपने परिशिष्ट लिखे हैं। वोपदेवने कविकल्पद्रुम नामका गणपाठ और काव्यकामधेनु नामका धातुपाठ भी लिखा है। इन दोनोंके सम्बन्धके चार पाँच ग्रन्थ और भी विश्वकोषमें दिये हैं। इधर कई स्वतन्त्र वैयाकरण हो गये हैं। परन्तु वह शुद्ध संस्कृतके वैयाकरण हैं और उनका आधारभूत प्राचीन पाणिनीय सूत्र नहीं हैं। इसलिए उन सबका विवरण यहाँ देना आवश्यक नहीं जंचता। ※

यहाँ हम प्राकृत व्याकरणपर ही विशेष विस्तार नहीं करते। इस सम्बन्धमें जैन साहित्यवाले अध्यायमें व्याकरण प्रसङ्गमें हम विशेष चर्चा करेंगे।

सबसे प्राचीन व्याकरणका क्या क्रम रहा होगा, उसकी विषयावली क्या होगी यह सब बातें ठीक ठीक इस समय मालूम नहीं हो सकतीं। परन्तु गोपथ ब्राह्मणमें एक जगह लिखा है†—

> "ओङ्कारः पृच्छामः को धातुः, किम् प्रातिपदिकम्, किम् नामाख्यातम्, किम् लिङ्गम्, किम् वचनम्, काविभक्तिः, कः प्रत्ययः, कः स्वरः उपसर्गोनिपातः किम् वै व्याकरणम्, को विकारः, को विकारी, कति मात्राः, कति वर्णाः, कत्यक्षराः, कति पदाः, कः संयोगः, किम् स्थानानुप्रदानकरणम्, शिक्षिकाः किम् उच्चारयन्ति, किम् छन्दः, को वर्णः, इति पूर्वप्रश्नाः," ।

इस ऊपरके अवतरणमें धातु, प्रातिपादिक, नाम, लिङ्ग, वचन, विभक्ति, प्रत्यय, स्वर आदि व्याकरणके पारिभाषिक शब्द आये हैं और साफ़ यह कहा गया है कि ओङ्कारके विषयमें पूर्वपक्षके व्याकरण सम्बन्धी यह सब प्रश्न हैं। जहां शिक्षिका. शब्द पारिभाषिक है और शुद्ध उच्चारणकी शिक्षा देनेवालेके अर्थमें आया है वहां व्याकरण शब्द भी साफ़ यह कहता है कि गोपथ ब्राह्मणकी रचनाके बहुत पहले वेदका व्याकरण पूर्ण विकसित रूपमें मौजूद था। ब्राह्मण ग्रन्थ वेदोंका अर्थ स्पष्ट करनेके लिए ही ऋषियोंने सङ्ग्रह किये। इसलिए

※ जो लोग विस्तृत विवरण चाहें, बगला विश्वकोषमें 'व्याकरण' शब्द देखें।

† गोपथ ब्राह्मण १।२४

इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं है कि कमसे कम वेदोंका व्याकरण पूर्ण विकसित रूपमें ब्राह्मण ग्रन्थोंकी रचनाके पहले ही मौजूद रहा होगा।

व्याकरणका प्रयोजन ही इस बातको सिद्ध करता है कि व्याकरण वेदों जैसा ही प्राचीन है। (१) वेदकी रक्षाके लिये (२) उसका अर्थ समझनेके लिये, (३) शब्दोंके ज्ञानमात्रके लिये, (४) सन्देहनिवारणके लिये, (५) अशुद्ध शब्दके परित्यागके लिये, (६) यज्ञादि कर्ममें शुद्ध शब्दोंके व्यवहारके लिये (७) ठीक ऋत्विज होनेके लिये, (८) सन्तानके ठीक नामकरणके लिये, और (९) सत्यासत्यके निर्णयके लिये, व्याकरणका यथार्थ ज्ञान अत्यन्त प्रयोजनीय है। इन सब हेतुओंपर विचार करनेसे शिक्षा और व्याकरणकी वह महत्ता समझमें आती है जिसको दृष्टिमें रखकर प्राचीन कालमें उपनयनके बाद ही ब्राह्मण बालकको इन दो वेदाङ्गोंकी शिक्षामें लगा दिया जाता था।

पाणिनि मुनिका व्याकरण अष्टाध्यायी या पाणिनीय अष्टकके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें आठ अध्याय हैं और हर एक अध्यायमें चार चार पाद हैं। सूत्रोंकी सम्पूर्ण सख्या ३९९६ है। इसमें सन्धि, सुवन्त, कृन्दत, उणादि, आख्यात, निपात, उपसंख्यान, स्वरविधि, शिक्षा, और तद्धित आदि विषयोंपर विचार है। अष्टाध्यायीमें पारिभाषिक शब्दोंमें ऐसे अनेक शब्द हैं जो पाणिनिके अपने बनाये हुए हैं। और बहुतसे ऐसे हैं जो पूर्वकालसे प्रचलित हैं। पाणिनिने अपने रचे शब्दोंकी व्याख्याकी है और पहलेके अनेक पारिभाषिक शब्दोंकी भी नयी व्याख्या करके उनके अर्थ और प्रयोगका विकास किया है। अनुनासिक, आत्मनेपद, परस्मैपद, आमन्त्रित उपधा, गुण, दीर्घ, विभक्ति, वृद्धि, संयोग, सवर्ण, ह्रस्व आदिकी नयी व्याख्याकी है। प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी सप्तमी, अनुस्वार, अन्त, एक वचन, द्विवचन बहुवचन, उपसर्ग, निपात, धातु, प्रत्यय, प्रदान, भविष्यत् काल, वर्तमान काल आदि कई शब्दोंकी व्याख्या नहीं की है। आरम्भमें इन्होंने चौदहों माहेश्वर सूत्र दिये हैं। इन्हीं सूत्रोंके आधारके ऊपर प्रत्याहार बनाये हैं जिनका प्रयोग आदिसे अंततक अपने सूत्रोंमें किया है। इन प्रत्याहारोंसे सूत्रोंकी रचनामें अत्यन्त लाघव हुआ है। इसका अनुबन्ध भी पाणिनिका निजी है। गण समूह भी इनका अपना ही है। सूत्रोंसे ही यह भी पता चलता है कि पाणिनिके समयमें पूर्व अञ्चल और उत्तर अञ्चल वासी दो श्रेणी वैयाकरणोंकी थी जो पाणिनिकी मण्डलीसे अतिरिक्त रही होगी।

पाणिनिके बाद एक वैयाकरण व्याडि नामके हुए हैं जिनके बारेमें नागेश भट्टने लिखा है कि "सङ्ग्रहमें व्याडिके लिखे १ लाख श्लोकोंका एक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। महाभाष्य-कारने भी इन्हें पाणिनिका परवर्ती माना है।

निरुक्तकार यास्कको कोई कोई पाणिनिके बादका वैयाकरण बताते हैं। इनकी चर्चा हम अगले अध्यायमें करेंगे।

महाभाष्यके पहले पाणिनीय सूत्रोंपर कात्यायन मुनिने वार्तिक लिखे हैं। इन्होंने अपने वार्तिकमें पाणिनिके अनेक सूत्रोंपर स्वतन्त्र समालोचना की है। इस वार्तिकका विशेष उद्देश्य यही है कि सूत्रोंका अर्थ और तात्पर्य खुल जाय। परन्तु यह वृत्तियां भी सूत्रोंकी तरह ही हैं। किन्तु भ्राजा नामके श्लोक अनुष्टुप् छन्दमें बनाये गये हैं।

इसका प्रचार बहुत है । सिद्धान्तचन्द्रिका इसकी टीका है । इसमें सात सौ सूत्र हैं । कहते हैं कि सरस्वतीके प्रसादसे यह ग्रन्थ ग्रन्थकारको मिला था। किसी नये शाकटायनने कामधेनु नामक व्याकरण भी लिखा है। जैनियोंमें हेमचन्द्रका व्याकरण प्रचलित है। वररुचिने प्राकृतप्रकाश लिखा था। उसकी टीका प्राकृत मनोरमाके नामसे प्रसिद्ध है। आदि कवि वाल्मीकि रचित प्राकृत व्याकरणके सूत्र हैं, जिनपर लक्ष्मीधरने संस्कृतमें टीका लिखी है और उसका नाम षडभाषाचन्द्रिका रखा है। इसमें १०८५ सूत्र हैं।

बङ्गालकी ओर कलाप व्याकरण प्रचलित है। इसको कातन्त्र व्याकरण भी कहते हैं। कलाप व्याकरणके आधारपर अनेक व्याकरण ग्रन्थ बने हैं जो बङ्गालमें प्रचलित हैं। विश्व-कोषकारने २५ के नाम दिये हैं।

मुग्धबोध नामका एक व्याकरण वोपदेवका बनाया है। बङ्गालमें इसका भी प्रचार है। इसकी भी बहुत सी टीकायें हैं, जिनमेंसे चौदहके नाम विश्वकोषमें दिये हैं। काशीश्वर और नन्दिकीश्वरने इसपर अपने अपने परिशिष्ट लिखे हैं। वोपदेवने कविकल्पद्रुम नामका गणपाठ और काव्यकामधेनु नामका धातुपाठ भी लिखा है। इन दोनोंके सम्बन्धके चार पाँच ग्रन्थ और भी विश्वकोषमें दिये हैं। इधर कई स्वतन्त्र वैयाकरण हो गये हैं। परन्तु वह शुद्ध संस्कृतके वैयाकरण हैं और उनका आधारभूत प्राचीन पाणिनीय सूत्र नहीं हैं। इसलिए उन सबका विवरण यहाँ देना आवश्यक नहीं जंचता। *

यहाँ हम प्राकृत व्याकरणपर ही विशेष विस्तार नहीं करते। इस सम्बन्धमें जैन साहित्यवाले अध्यायमें व्याकरण प्रसङ्गमें हम विशेष चर्चा करेंगे।

सबसे प्राचीन व्याकरणका क्या क्रम रहा होगा, उसकी विषयावली क्या होगी वह सब बातें ठीक ठीक इस समय मालूम नहीं हो सकतीं। परन्तु गोपथ ब्राह्मणमें एक जगह लिखा है†—

> "ओङ्कारः पृच्छामः को धातुः, किम् प्रातिपदिकम्, किम् नामाख्यातम्, किम् लिङ्गम्, किम् वचनम्, काविभक्तिः, कः प्रत्ययः, कः स्वरः उपसर्गोनिपातः किम् वै व्याकरणम्, को विकारः, को विकारी, कति मात्राः, कति वर्णाः, कत्यक्षराः, कति पदाः, कः संयोगः, किम् स्थानानुप्रदानकरणम्, शिक्षिकाः किम् उच्चारयन्ति, किम् छन्दः, को वर्णः, इति पूर्वप्रश्नाः," ।

इस ऊपरके अवतरणमें धातु, प्रातिपादिक, नाम, लिङ्ग, वचन, विभक्ति, प्रत्यय, स्वर आदि व्याकरणके पारिभाषिक शब्द आये हैं और साफ़ यह कहा गया है कि ओङ्कारके विषयमें पूर्वपक्षके व्याकरण सम्बन्धी यह सब प्रश्न हैं। जहां शिक्षिकाः शब्द पारिभाषिक है और शुद्ध उच्चारणकी शिक्षा देनेवालेके अर्थमें आया है वहां व्याकरण शब्द भी साफ़ यह कहता है कि गोपथ ब्राह्मणकी रचनाके बहुत पहले वेदका व्याकरण पूर्ण विकसित रूपमें मौजूद था। ब्राह्मण ग्रन्थ वेदोंका अर्थ स्पष्ट करनेके लिए ही ऋषियोंने सङ्ग्रह किये। इसलिए

---

* जो लोग विस्तृत विवरण चाहें, बगला विश्वकोषमें 'व्याकरण' शब्द देखें।

† गोपथ ब्राह्मण १।२४

इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं है कि कमसे कम वेदोंका व्याकरण पूण विकसित रूपमें ब्राह्मण ग्रन्थोंकी रचनाके पहले ही मौजूद रहा होगा।

व्याकरणका प्रयोजन ही इस बातको सिद्ध करता है कि व्याकरण वेदों जैसा ही प्राचीन है। (१) वेदकी रक्षाके लिये (२) उसका अर्थ समझनेके लिये, (३) शब्दोंके ज्ञानमात्रके लिये, (४) सन्देहनिवारणके लिये, (५) अशुद्ध शब्दके परित्यागके लिये, (६) यज्ञादि कर्ममें शुद्ध शब्दोंके व्यवहारके लिये (७) ठीक ऋत्विज होनेके लिये, (८) सन्तानके ठीक नामकरणके लिये, और (९) सत्यासत्यके निर्णयके लिये, व्याकरणका यथार्थ ज्ञान अत्यन्त प्रयोजनीय है। इन सब हेतुओंपर विचार करनेसे शिक्षा और व्याकरणकी वह महत्ता समझमें आती है जिसको दृष्टिमें रखकर प्राचीन कालमें उपनयनके बाद ही ब्राह्मण बालकको इन दो वेदाङ्गोंकी शिक्षामें लगा दिया जाता था।

पाणिनि मुनिका व्याकरण अष्टाध्यायी या पाणिनीय अष्टकके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें आठ अध्याय हैं और हर एक अध्यायमें चार चार पाद हैं। सूत्रोंकी सम्पूर्ण सख्या ३९९६ है। इसमें सन्धि, सुबन्त, कृन्दत, उणादि, आख्यात, निपात, उपसंख्यान, स्वरविधि, शिक्षा, और तद्धित आदि विषयोंपर विचार है। अष्टाध्यायीमें पारिभाषिक शब्दोंमें ऐसे अनेक शब्द हैं जो पाणिनिके अपने बनाये हुए हैं। और बहुतसे ऐसे हैं जो पूर्वकालसे प्रचलित हैं। पाणिनिने अपने रचे शब्दोंकी व्याख्याकी है और पहलेके अनेक पारिभाषिक शब्दोंकी भी नयी व्याख्या करके उनके अर्थ और प्रयोगका विकास किया है। अनुनासिक, आत्मनेपद, परस्मैपद, आमन्त्रित उपधा, गुण, दीर्घ, विभक्ति, वृद्धि, संयोग, सवर्ण, ह्रस्व आदिकी नयी व्याख्याकी है। प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी सप्तमी, अनुस्वार, अन्त, एक वचन, द्विवचन बहुवचन, उपसर्ग, निपात, धातु, प्रत्यय, प्रदान, भविष्यत् काल, वर्तमान काल आदि कई शब्दोंकी व्याख्या नहीं की है। आरम्भमें इन्होंने चौदहों माहेश्वर सूत्र दिये हैं। इन्हीं सूत्रोंके आधारके ऊपर प्रत्याहार बनाये हैं जिनका प्रयोग आदिसे अंततक अपने सूत्रोंमें किया है। इन प्रत्याहारोंसे सूत्रोंकी रचनामें अत्यन्त लाघव हुआ है। इसका अनुबन्ध भी पाणिनिका निजी है। गण समूह भी इनका अपना ही है। सूत्रोंसे ही यह भी पता चलता है कि पाणिनिके समयमें पूर्व अञ्चल और उत्तर अञ्चल वासी दो श्रेणी वैयाकरणोंकी थी जो पाणिनिकी मण्डलीसे अतिरिक्त रही होगी।

पाणिनिके बाद एक वैयाकरण व्याडि नामके हुए हैं जिनके बारेमें नागेश भट्टने लिखा है कि "सङ्ग्रहमें व्याडिके लिखे १ लाख श्लोकोंका एक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। महाभाष्य-कारने भी इन्हें पाणिनिका परवर्ती माना है।

निरुक्तकार यास्कको कोई कोई पाणिनिके बादका वैयाकरण बताते हैं। इनकी चर्चा हम अगले अध्यायमें करेंगे।

महाभाष्यके पहले पाणिनीय सूत्रोंपर कात्यायन मुनिने वार्तिक लिखे हैं। इन्होंने अपने वार्तिकमें पाणिनिके अनेक सूत्रोंपर स्वतन्त्र समालोचना की है। इस वार्तिकका विशेष उद्देश्य यही है कि सूत्रोंका अर्थ और तात्पर्य खुल जाय। परन्तु यह वृत्तियां भी सूत्रोंकी तरह ही हैं। किन्तु भ्राजा नामके श्लोक अनुष्टुप् छन्दमें बनाये गये हैं।

इसका प्रचार बहुत है। सिद्धान्तचन्द्रिका इसकी टीका है। इसमें सात सौ सूत्र हैं। कहते हैं कि सरस्वतीके प्रसादसे यह ग्रन्थ ग्रन्थकारको मिला था। किसी नये शाकटायनने कामधेनु नामक व्याकरण भी लिखा है। जैनियोंमें हेमचन्द्रका व्याकरण प्रचलित है। वररुचिने प्राकृतप्रकाश लिखा था। उसकी टीका प्राकृत मनोरमाके नामसे प्रसिद्ध है। आदि कवि वाल्मीकि रचित प्राकृत व्याकरणके सूत्र हैं, जिनपर लक्ष्मीधरने संस्कृतमें टीका लिखी है और उसका नाम षड्भाषाचन्द्रिका रखा है। इसमें १०८५ सूत्र हैं।

बङ्गालकी ओर कलाप व्याकरण प्रचलित है। इसको कातन्त्र व्याकरण भी कहते हैं। कलाप व्याकरणके आधारपर अनेक व्याकरण ग्रन्थ बने हैं जो बङ्गालमें प्रचलित हैं। विश्वकोषकारने २५ के नाम दिये हैं।

मुग्धबोध नामका एक व्याकरण बोपदेवका बनाया है। बङ्गालमें इसका भी प्रचार है। इसकी भी बहुत सी टीकायें हैं, जिनमेंसे चौदहके नाम विश्वकोषमें दिये हैं। काशीश्वर और नन्दिकीश्वरने इसपर अपने अपने परिशिष्ट लिखे हैं। बोपदेवने कविकल्पद्रुम नामका गणपाठ और काव्यकामधेनु नामका धातुपाठ भी लिखा है। इन दोनोंके सम्बन्धके चार पाँच ग्रन्थ और भी विश्वकोषमें दिये हैं। इधर कई स्वतन्त्र वैयाकरण हो गये हैं। परन्तु वह शुद्ध संस्कृतके वैयाकरण हैं और उनका आधारभूत प्राचीन पाणिनीय सूत्र नहीं हैं। इसलिए उन सबका विवरण यहाँ देना आवश्यक नहीं जंचता। ❀

यहाँ हम प्राकृत व्याकरणपर ही विशेष विस्तार नहीं करते। इस सम्बन्धमें जैन साहित्यवाले अध्यायमें व्याकरण प्रसङ्गमें हम विशेष चर्चा करेंगे।

सबसे प्राचीन व्याकरणका क्या क्रम रहा होगा, उसकी विषयावली क्या होगी वह सब बातें ठीक ठीक इस समय मालूम नहीं हो सकतीं। परन्तु गोपथ ब्राह्मणमें एक जगह लिखा है†—

> "ओङ्कारः पृच्छामः को धातुः, किम् प्रातिपदिकम्, किम् नामाख्यातम्, किम् लिङ्गम्, किम् वचनम्, काविभक्तिः, कः प्रत्यय., क. स्वरः उपसर्गोनिपातः किम् वै व्याकरणम्, को विकार', को विकारी, कति मात्राः, कति वर्णाः, कत्यक्षराः, कति पदाः, कः संयोगः, किम् स्थानानुप्रदानकरणम्, शिक्षिकाः किम् उच्चारयन्ति, किम् छन्दः, को वर्णः, इति पूर्वप्रश्नाः," ।

इस ऊपरके अवतरणमें धातु, प्रातिपादिक, नाम, लिङ्ग, वचन, विभक्ति, प्रत्यय, स्वर आदि व्याकरणके पारिभाषिक शब्द आये हैं और साफ़ यह कहा गया है कि ओङ्कारके विषयमें पूर्वपक्षके व्याकरण सम्बन्धी यह सब प्रश्न हैं। जहां शिक्षिकाः शब्द पारिभाषिक है और शुद्ध उच्चारणकी शिक्षा देनेवालेके अर्थमें आया है वहां व्याकरण शब्द भी साफ़ यह कहता है कि गोपथ ब्राह्मणकी रचनाके बहुत पहले वेदका व्याकरण पूर्ण विकसित रूपमें मौजूद था। ब्राह्मण ग्रन्थ वेदोंका अर्थ स्पष्ट करनेके लिए ही ऋषियोंने सङ्ग्रह किये। इसलिए

❀ जो लोग विस्तृत विवरण चाहें, बगला विश्वकोषमें 'व्याकरण' शब्द देखें।

† गोपथ ब्राह्मण १।२४

इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं है कि कमसे कम वेदोंका व्याकरण पूर्ण विकसित रूपमें ब्राह्मण ग्रन्थोंकी रचनाके पहले ही मौजूद रहा होगा।

व्याकरणका प्रयोजन ही इस बातको सिद्ध करता है कि व्याकरण वेदों जैसा ही प्राचीन है। (१) वेदकी रक्षाके लिये (२) उसका अर्थ समझनेके लिये, (३) शब्दोंके ज्ञानमात्रके लिये, (४) सन्देहनिवारणके लिये, (५) अशुद्ध शब्दके परित्यागके लिये, (६) यज्ञादि कर्ममें शुद्ध शब्दोंके व्यवहारके लिये (७) ठीक ऋत्विज होनेके लिये, (८) सन्तानके ठीक नामकरणके लिये, और (९) सत्यासत्यके निर्णयके लिये, व्याकरणका यथार्थ ज्ञान अत्यन्त प्रयोजनीय है। इन सब हेतुओंपर विचार करनेसे शिक्षा और व्याकरणकी वह महत्ता समझमें आती है जिसको दृष्टिमें रखकर प्राचीन कालमें उपनयनके बाद ही ब्राह्मण बालकको इन दो वेदाङ्गोंकी शिक्षामें लगा दिया जाता था।

पाणिनि मुनिका व्याकरण अष्टाध्यायी या पाणिनीय अष्टकके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें आठ अध्याय हैं और हर एक अध्यायमें चार चार पाद हैं। सूत्रोंकी सम्पूर्ण सख्या ३९९६ है। इसमें सन्धि, सुवन्त, कृन्दत, उणादि, आख्यात, निपात, उपसंख्यान, स्वरविधि, शिक्षा, और तद्धित आदि विषयोंपर विचार है। अष्टाध्यायीमें पारिभाषिक शब्दोंमें ऐसे अनेक शब्द हैं जो पाणिनिके अपने बनाये हुए हैं। और बहुतसे ऐसे हैं जो पूर्वकालसे प्रचलित हैं। पाणिनिने अपने रचे शब्दोंकी व्याख्याकी है और पहलेके अनेक पारिभाषिक शब्दोंकी भी नयी व्याख्या करके उनके अर्थ और प्रयोगका विकास किया है। अनुनासिक, आत्मनेपद, परस्मैपद, आमन्त्रित उपधा, गुण, दीर्घ, विभक्ति, वृद्धि, संयोग, सवर्ण, ह्रस्व आदिकी नयी व्याख्याकी है। प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी सप्तमी, अनुस्वार, अन्त, एक वचन, द्विवचन बहुवचन, उपसर्ग, निपात, धातु, प्रत्यय, प्रदान, भविष्यत् काल, वर्तमान काल आदि कई शब्दोंकी व्याख्या नहीं की है। आरम्भमें इन्होंने चौदहों माहेश्वर सूत्र दिये हैं। इन्हीं सूत्रोंके आधारके ऊपर प्रत्याहार बनाये हैं जिनका प्रयोग आदिसे अंततक अपने सूत्रोंमें किया है। इन प्रत्याहारोंसे सूत्रोंकी रचनामें अत्यन्त लाघव हुआ है। इसका अनुबन्ध भी पाणिनिका निजी है। गण समूह भी इनका अपना ही है। सूत्रोंसे ही यह भी पता चलता है कि पाणिनिके समयमें पूर्व अञ्चल और उत्तर अञ्चल वासी दो श्रेणी वैयाकरणोंकी थी जो पाणिनिकी मण्डलीसे अतिरिक्त रही होगी।

पाणिनिके बाद एक वैयाकरण व्याडि नामके हुए हैं जिनके बारेमें नागेश भट्टने लिखा है कि "सङ्ग्रहमें व्याडिके लिखे १ लाख श्लोकोंका एक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। महाभाष्य-कारने भी इन्हें पाणिनिका परवर्ती माना है।

निरुक्तकार यास्कको कोई कोई पाणिनिके बादका वैयाकरण बताते हैं। इनकी चर्चा हम अगले अध्यायमें करेंगे।

महाभाष्यके पहले पाणिनीय सूत्रोंपर कात्यायन मुनिने वार्तिक लिखे हैं। इन्होंने अपने वार्तिकमें पाणिनिके अनेक सूत्रोंपर स्वतन्त्र समालोचना की है। इस वार्तिकका विशेष उद्देश्य यही है कि सूत्रोंका अर्थ और तात्पर्य खुल जाय। परन्तु यह वृत्तियां भी सूत्रोंकी तरह ही हैं। किन्तु भ्राजा नामके श्लोक अनुष्टुप् छन्दमें बनाये गये हैं।

इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं है कि कमसे कम वेदोंका व्याकरण पूर्ण विकसित रूपमें ब्राह्मण ग्रन्थोंकी रचनाके पहले ही मौजूद रहा होगा।

का प्रयोजन ही इस बातको सिद्ध करता है कि व्याकरण वेदों जैसा ही) वेदकी रक्षाके लिये (२) उसका अर्थ समझनेके लिये, (३) शब्दोंके , (४) सन्देहनिवारणके लिये, (५) अशुद्ध शब्दके परित्यागके लिये, र्ममें शुद्ध शब्दोंके व्यवहारके लिये (७) ठीक ऋत्विज होनेके लिये, (८) ामकरणके लिये, और (९) सत्यासत्यके निर्णयके लिये, व्याकरणका यथार्थ ोजनीय है। इन सब हेतुओंपर विचार करनेसे शिक्षा और व्याकरणकी वह आती है जिसको दृष्टिमें रखकर प्राचीन कालमें उपनयनके बाद ही ब्राह्मण वेदाङ्गोंकी शिक्षामें लगा दिया जाता था।

मुनिका व्याकरण अष्टाध्यायी या पाणिनीय अष्टकके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें और हर एक अध्यायमें चार चार पाद हैं। सूत्रोंकी सम्पूर्ण सख्या ३९९६ त्र, सुवन्त, कृन्दत, उणादि, आख्यात, निपात, उपसंख्यान, स्वरविधि, शिक्षा, दि विषयोंपर विचार है। अष्टाध्यायीमें पारिभाषिक शब्दोंमें ऐसे अनेक शब्द के अपने बनाये हुए हैं। और बहुतसे ऐसे हैं जो पूर्वकालसे प्रचलित हैं। ने रचे शब्दोंकी व्याख्याकी है और पहलेके अनेक पारिभाषिक शब्दोंकी भी करके उनके अर्थ और प्रयोगका विकास किया है। अनुनासिक, आत्मनेपद, ामन्त्रित उपधा, गुण, दीर्घ, विभक्ति, वृद्धि, संयोग, सवर्ण, ह्रस्व आदिकी नयी है। प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी सप्तमी, अनुस्वार, अन्त, एक चन बहुवचन, उपसर्ग, निपात, धातु, प्रत्यय, प्रदान, भविष्यत् काल, वर्तमान कई शब्दोंकी व्याख्या नहीं की है। आरम्भमें इन्होंने चौदहों माहेश्वर सूत्र दिये सूत्रोंके आधारके ऊपर प्रत्याहार बनाये हैं जिनका प्रयोग आदिसे अंततक अपने किया है। इन प्रत्याहारोंसे सूत्रोंकी रचनामें अत्यन्त लाघव हुआ है। इसका अनुबन्ध ानिका निजी है। गण समूह भी इनका अपना ही है। सूत्रोंसे ही यह भी पता है कि पाणिनिके समयमें पूर्व अञ्चल और उत्तर अञ्चल वासी दो श्रेणी वैयाकरणोंकी पाणिनिकी मण्डलीसे अतिरिक्त रही होगी।

पाणिनिके बाद एक वैयाकरण व्याडि नामके हुए हैं जिनके बारेमें नागेश भट्टने है कि "सङ्ग्रहमें व्याडिके लिखे १ लाख श्लोकोंका एक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। महाभाष्य-ने भी इन्हें पाणिनिका परवर्ती माना है।

निरुक्तकार यास्कको कोई कोई पाणिनिके बादका वैयाकरण बताते हैं। इनकी चर्चा अगले अध्यायमें करेंगे।

महाभाष्यके पहले पाणिनीय सूत्रोंपर कात्यायन मुनिने वार्तिक लिखे हैं। इन्होंने पने वार्तिकमें पाणिनिके अनेक सूत्रोंपर स्वतन्त्र समालोचना की है। इस वार्तिकका विशेष उद्देश्य यही है कि सूत्रोंका अर्थ और तात्पर्य खुल जाय। परन्तु यह वृत्तियां भी सूत्रोंकी तरह ही हैं। किन्तु भ्राजा नामके श्लोक अनुष्टुप् छन्दमें बनाये गये हैं।

कथा-सरित्सागरमें लिखा है कि पार्वतीके शापसे वत्सराजकी राजधानी कौशाम्बी नगरमें कात्यायन वररुचिका जन्म हुआ था। बाल्यावस्थामें ही ये प्रतिभासम्पन्न थे। शैशवावस्थामें इन्हें सब प्रातिशाख्य उपस्थित थे। इन्होंने व्याकरणमें पाणिनिको परास्त किया था। परन्तु पीछेसे भगवान् शङ्करके आदेशसे यह पाणिनिके शिष्य हो गये, और अष्टाध्यायीपर वार्तिक लिखा। परन्तु कथा-सरित्सागर कोई ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है।

पाणिनीय सूत्रोंपर पतञ्जलिने महाभाष्य लिखा है। इस ग्रन्थकी विचारपद्धति और रचनाप्रणाली अत्यन्त सुन्दर है। इसमें व्याकरणके अत्यन्त कठिन-कठिन विषयोंपर भी साधारण लौकिक उदाहरणोंकी सहायतासे व्याख्या की गयी है। व्याकरणकी वैज्ञानिक व्याख्यामें काव्यकी सी सुन्दरता और सरलता महाभाष्यमें ही पायी जाती है। इसमें शब्द शास्त्रपर शुद्ध वैज्ञानिक ढङ्गसे विचार किया गया है। इसीलिए शब्दविज्ञानपर यह सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसके भीतर अनेक ऐसी बातें भी हैं जिनसे उस समयके आचार व्यवहारका भी पता लगता है। इस ग्रन्थकी भाषा बहुत प्राञ्जल है। कहा जाता है कि यह पाणिनीय सूत्रोंपर छात्रगणको प्रति दिन उपदेश दिया करते थे और छात्रोंके प्रश्नोंका उत्तर देते थे और शङ्काओंका समाधान भी करते थे। इस प्रकार इसकी भाषा संवादके रूपमें है। यह सब होते हुए भी विचारपद्धति बहुत कठिन है। एक एक दिन जितना उपदेश होता था, उसका नाम आह्निक रखा गया है। इस तरह पाणिनीय व्याकरणके पहले अध्यायके पहले पादमें ९ आह्निक हैं। महाभाष्य बिना पढ़े कोई पाणिनीय सूत्रका सम्पूर्ण अध्येता नहीं कहला सकता।

यों तो कलाप व्याकरणकारके मतसे व्याकरणमात्र वेदाङ्ग है, तथापि आजकल पाणिनिका व्याकरणही सर्वसम्मतिसे सबसे प्राचीन वेदाङ्ग ग्रन्थ समझा जाता है।

बीसवाँ अध्याय

निरुक्त

निरुक्त तीसरा वेदाङ्ग है। इसका प्रयोग शुद्ध वैदिक है। निरुक्तमें वैदिक शब्दोंपर ही विचार किया गया है। इससे वैदिक शब्दोंका अर्थ निकलता है। निरुक्तके ग्रन्थ प्राचीन वैदिक कालमें अनेक होंगे, इसमें तनिक सन्देह नहीं है। परन्तु जैसे पाणिनीय व्याकरणके प्रचार होनेपर अन्य प्राचीन व्याकरणोंका लोप हो गया, उसी तरह निर्वचन ग्रन्थोंका भी लोप होगया। आजकल यास्कका ही निरुक्त मिलता है।

निरुक्त पञ्चाध्यायात्मक है। (१) अध्ययनविधि (२) छन्दः प्रविभाग (३) छन्द विनियोग (४) उपलक्षित कर्मानुकूल भूतकाल और (५) उपदर्शित लक्षण। इन सब अङ्गोंसे वेदका अर्थ मालूम होता है। इसमें शब्दोंके अर्थ लिखे हुए हैं और इसीलिए यह प्रधान अङ्ग समझा जाता है। अर्थ ही सर्वापेक्षा प्रधान है, क्योंकि अर्थ न मालूम होनेसे पाठ निष्फल होता है। वेदोंके शब्दार्थके लिये निरुक्त ही प्रमाण है। अनिरुक्त व्याख्या उचित नहीं समझी जाती।

निरुक्तमें नीचे लिखे विषयोंका प्रतिपादन है—

"नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात लक्षण, भावविकार लक्षण, नाम आख्यातज सकल नाम यथाक्रम उपन्यस्त करके पक्ष और प्रतिपक्ष रूपसे विचार करके स्थिर करना, पदविभाग परिज्ञान, प्रतिज्ञानुबोधपर अवलम्बित प्रदर्शनके लिए आदि, मध्य अन्त और अनेक दैवत लिङ्ग सङ्कर मन्त्रमें याज्ञिक प्रज्ञानद्वारा देवता-परिज्ञान-प्रतिज्ञा, अर्थज्ञ प्रशंसा, अनर्थाज्ञावधारण, वेद-वेदाङ्गव्यूह, सप्रयोजनिघण्टु, समाम्नाय विरचन, प्रकरणत्रयविभाग द्वारा नैघण्टुक प्रधान देवताभिधान, प्रविभाग लक्षण, निर्वचन-लक्षणद्वारा शब्द, वृत्ति विपयोपदेश, अर्थ प्राधान्यानुसार लोप, उपधा, विकार, वर्णलोप और वर्णविपर्यय, इन सब उपदेशोंके द्वारा सामर्थ्य-प्रदर्शनके लिये आदि, मध्य और अन्तका लोप और उपधा, विकार, वर्णलोप विपर्याय, आद्यन्त वर्ण व्यापत्ति और वर्णोपजनन, उदाहरण-चिन्ता, अन्त.स्थ और अन्तः धातु निमित्त सम्प्रसार्य और असम्प्रसार्य उभय-प्रकृति धातु, निर्वचनोपदेश, भाषिक प्रवृत्तिमें नैगम शब्दार्थ, प्रसिद्ध देश व्यवस्थाद्वारा शब्द रूप व्यपदेश, शिष्य लक्षण, विशेष व्याख्याद्वारा तत्व-पर्याय-भेद, संख्या, सन्दिग्ध और उदाहरणद्वारा नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपातके विभागके अनुसार नैघण्टु प्रकरणका अनुक्रम, अनेकार्थ शब्दोंके अन-वगत संस्कारोंका अनुक्रमण, परोक्षकृत आध्यात्मिक मन्त्र लक्षण, स्तुति, आशीर्वाद, शपथ, अभिशाप, अभिख्या, परिदेवना, निन्दा और प्रशंसा आदि द्वारा मन्त्राभिव्यक्ति हेतु उपदेश। निदान, परिज्ञान, व्याख्यापनके निमित्त अनादिष्ट, देवतोपपरीक्षणके लिये अध्यात्मोपदेशमें प्रकृतिका मूलत्व। इतरेतर जन्मत्व। स्थानत्रय-भेदमें तीनोंकी एक अवस्था। महाभाग्य कृत्यका अनेक नामधेय प्रतिलम्भ। उत्पत्ति सम्बन्धी पृथक अविधान। देवताओंका आकार

चिन्तन। भक्ति साहचर्य, संस्तवकर्म, सक्तभाक्, हविर्भाक् और व्यञ्जनभाक सम्बद्ध। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युस्थान और देवताओंके अभिधेयाभिधान और व्युत्पत्ति प्राधान्यके श्रुत्युदाहरण। इन सब निर्वचन विचारों और उपपत्तिकी अवधारणके अनुसार दैवत् प्रकरणका निर्णय। विद्यापार प्राप्तिके उपायोंके उपदेश और मन्त्रके अर्थ निर्वचन द्वारा देवताभिधान निर्वचन फल॥।"

ऋग् अनुक्रमणिकामें लिखा है कि वेदोंकी व्याख्या करनेके लिये निरुक्त प्रधान उपकरण है। वेदका यह एक कोष-विशेष है। यास्कने स्वयं शाकपूणि, ऊर्णनाभ और स्थौलष्ठिवी इन तीन प्राचीन निरुक्तकारोंके हवाले दिये हैं। यास्क तो इनके बहुत पीछे हुए हैं। यास्कने अपने ग्रन्थमें नाम, संख्या, आख्यात, उपसर्ग और निपातकी विशेषरूपसे आलोचना की है। इनके निरुक्तपर उग्र, दुर्ग, स्कन्दस्वामी, देवराज, यद्वन आदि टीका कर गये हैं।

पण्डित धनराज शास्त्रीकी सूचीमें ५ निरुक्त ग्रन्थ दिये हुए हैं। गणेश निरुक्तमें ३६,००० सूत्र हैं, निरुक्त सूत्रमें ५२,०००, गार्ग्य निरुक्तमें १०,०००, अथर्णिवमें ६२,००० और शब्दप्रभामें १ लाख ३२ हज़ार सूत्र हैं।

॥ देखो वंगला विश्वकोष 'निरुक्त' शब्द।

इक्कीसवाँ अध्याय

छन्द

वैदिक साहित्यका चौथा अङ्ग छन्द है। ऋग्वेद सम्पूर्ण पद्य है सामवेद और अथर्ववेद भी पद्य ही हैं। केवल यजुर्वेदमें गद्य और पद्य दोनों हैं। छन्दोंकी संख्या और प्रकार अनगिनत हैं। यह तो वैदिक छन्दोंकी बात हुई। लौकिक छन्दोंकी भी संख्या अनन्त है।

छन्दका प्रधान प्रयोजन भाषाका लालित्य है। गद्यको सुनकर कान और मनको वह तृप्ति नहीं होती जो पद्यको सुनकर होती है। पद्य याद भी जल्दी होते हैं और बहुत कालतक स्मरण रहते हैं। साथ ही गम्भीरसे गम्भीर भाव संक्षेपमें व्यक्त कर देते हैं। यह तो छन्दोंके साधारण गुण हुए, परन्तु वेदाध्ययनमें छन्दोंका ज्ञान अनिवार्य है। छन्दोंके बिना जाने वेदाध्ययन पाप है। ऋक् सायण भाष्यकी भूमिकामें यह श्रुति दी हुई है—

"यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दो दैवत ब्राह्मणेन मंत्रेण याजयति वाध्यापयति वा स्थाणुं वार्च्छेति गर्त्तं वा पद्यति प्रवासीयते पापीयान् भवति।"

छन्दोंको वेदका चरण बताया गया है। जिन छन्दोंका प्रयोग संहिताओंमें हुआ है वह और किसी ग्रन्थमें नहीं पाये जाते। वेदके ब्राह्मण और आरण्यक खण्डमें वैदिक छन्दोंके विषयमें बहुत सी कथाएँ आयी हैं, पर उनसे छन्दके विषयका विशेष ज्ञान नहीं होता। कात्यायनकी सर्वानुक्रमणिकामें सात छन्दोंका उल्लेख है। (१) गायत्री (२) उष्णिक (३) अनुष्टुप् (४) बृहति (५) पंक्ति (६) त्रिष्टुप (७) जगती।

गायत्री छन्दमें सब मिलाकर सस्वर २४ अक्षर होते हैं। वैदिक गायत्री छन्द त्रिपदी अर्थात् तीन चरणोंका होता है। इसी प्रकार २८ अक्षरोंका उष्णिक छन्द होता है। अनुष्टुपमें ३२ अक्षर होते हैं। बृहतिमें ३६, पंक्तिमें ४०, त्रिष्टुप्में ४४ और जगतीमें ४८ अक्षर होते हैं। जान पड़ता है कि जगतीसे बड़े छन्द वैदिककालमें नहीं बनते थे। वेदका बहुत भारी मन्त्र भाग इन्हीं सात छन्दोंमें बना है। और इनमेंसे सबसे अधिक गायत्री छन्दका व्यवहार हुआ है। कात्यायनने इन सात छन्दोंके और भी अनेक भेद स्थिर किए हैं। उन सब भेदोंको जो जानना चाहे उसे कात्यायनकी रची सर्वानुक्रमणिका देखनी चाहिए।

इन्हीं सात छन्दोंको मूल मानकर व्यवहारिक भाषामें अनन्त छन्दोंका निर्माण हुआ है। उत्तररामचरितमें लिखा है कि पहले-पहल आदि कवि वाल्मीकिके मुखसे लौकिक अनुष्टुप् छन्दकी रचना हुई थी। इसके कुछ ही दिन बाद आत्रेयीने वनदेवतासे बातों-बातोंमें इसकी चर्चा की। इसपर वनदेवता बोले, "क्या आश्चर्यकी बात है, यह तो वेदसे अतिरिक्त किसी नये छन्दका आविष्कार हो गया है।" इस कथासे जान पड़ता है कि भवभूतिके अनुसार पहला लौकिक छन्द अनुष्टुप् है और पहले लौकिक कवि वाल्मीकि हैं। वाल्मीकि रामायणमें भी इस तरहकी कथा दी हुई है। रामायणके प्राचीन टीकाकार भवभूतिके ही मतका समर्थन करते हैं। परन्तु वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड, दूसरे सर्गके १५ वें श्लोक-

की टीका करते हुए रामानुज स्वामी यह प्रगट करते हैं कि लौकिक छन्दोंकी चाल वाल्मीकिसे पहिले चल चुकी थी।

कात्यायन प्रणीत सर्वानुक्रमणिकाके बाद छन्दः शास्त्रके सबसे प्राचीन निर्माता महर्षि पिङ्गल हैं। इन्होंने १ करोड़ ६१ लाख ७७ हज़ार दो सौ सोलह प्रकारके वर्ण वृत्तोंका उल्लेख किया है। संस्कृत साहित्यमें इस भारी संख्यामेंसे लगभग ५० प्रकारके छन्द व्यवहार में आते हैं। अन्य लौकिक भाषाओंमें संस्कृतकी अपेक्षा बहुत प्रकारके छन्दोंका व्यवहार हुआ है। परन्तु उनकी गिनती वेदाङ्गमें नहीं है। इसलिये उनकी चर्चा यहाँ बाहुल्य मात्र है।

पण्डित धनराज शास्त्रीकी सूचीमें छः छन्दोग्रन्थोंके नाम दिये गये हैं जो सबके सब प्राचीन हैं। छन्दोर्णवमें १ लाख ३२ हजार श्लोक हैं। विष्णुसूत्रमें २५,००० हैं। छन्दो रहस्यमें १६,०००, छन्दःप्रभाकरमें १२,०००, छन्दः प्रदेशमें ३२,००० और छन्दरत्नाकरमें ७,००० श्लोक बताये हैं।

बाईसवाँ अध्याय

कल्प और ज्यौतिष

कल्पसूत्रोंका वर्णन वेदोंके पूरक-साहित्यवाले अध्यायोंमें हम कर चुके हैं। कल्पसूत्रोंमें यज्ञ-याग संस्कारादि करनेकी विधियोंका विस्तार है। वेदाङ्गकी दृष्टिसे कल्पसूत्रोंमें अधिक महत्वकी विधियां वह हैं जिनका प्रयोग सार्वजनिक यज्ञयागादिमें होता है। साथ ही वर्णाश्रम-धर्ममें उपयोज्य संस्कारकी विधियां भी शामिल हैं। इनके नियमोंका विस्तार गृह्यसूत्रोंमें हुआ है।

संस्कारों और यज्ञोंकी क्रियायें निश्चित मुहूर्तोंपर निश्चित समयोंमें और निश्चित अवधियोंके भीतर होनी चाहिएँ। मुहूर्त्त समय और अवधिका निर्णय करनेके लिए ज्यौतिष शास्त्रका ही एक अवलम्ब है। इसीलिए प्रत्येक वेदके सम्बन्धका ज्यौतिषाङ्ग भी अध्ययनका विषय होता चला आया है और जिस तरहसे धनुर्वेद, आयुर्वेद आदि उपवेदोंका विकास विज्ञानकी भांति होकर वेदकी पूर्त्ति करते हुए अलग ही शास्त्र बन गये हैं, उसी तरह ज्यौतिषका भी अलग ही एक शास्त्र बन गया है। इसका इतना विस्तारमय विकास है कि आजतकका साहित्य यहाँ दिया जाना असम्भव है। ज्योतिर्विज्ञानपर अच्छे प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे जानेकी परम्परा टूटी नहीं है और यह वर्धमान शास्त्र वैज्ञानिक संसारमें आज भी बराबर अनुशीलनका विषय बना हुआ है और इसका उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा है। इसलिए लौकिक ज्यौतिषका वर्णन न करके सम्प्रति हम वैदिक ज्यौतिपका विषय ही यहाँ देते हैं।

बंगला विश्वकोष शब्द-कल्पद्रुम आदि इस विषयपर प्रायः मौन हैं। सन् १९०६ ई० के हिन्दुस्तान रिव्यूमें मार्चसे लेकर नवम्बरके अन्ततक ज्यौतिष वेदाङ्गपर एक विद्वत्तापूर्ण लेखमाला छपी है जिसमें कई हज़ार वर्षोंके बाद इस वेदाङ्गके बड़े दुरूह श्लोकोंके भाष्य और टिप्पणी सहित अर्थ अंग्रेज़ी भाषामें हमारे देशके एक बहुत बड़े गुप्त रहनेवाले विद्वान् बार्हस्पत्यः* ने किये हैं। यह अध्याय प्राय. उन्हींकी लेखमालाके आधारपर लिखा गया है। ज्योतिर्वेदाङ्गपर तीन पुस्तकें बहुत प्राचीन कालकी मिलती हैं। पहली ऋक् ज्यौतिष, दूसरी यजु. ज्यौतिष और तीसरी अथर्व ज्यौतिष। ऋक् ज्यौतिषके लेखक लगध हैं। यजु.के शेष और अथर्वके पितामह। वराह-मिहिरकी लिखी पाञ्चसिद्धान्तिकामें जिसे पं० सुधाकर द्विवेदी और डाक्टर टीबोने मिलकर सम्पादित करके प्रकाशित कराया था, एक सिद्धान्त पैतामहके नामसे भी दिया हुआ है। इसके सिवा बार्हस्पत्यने भी पितामहके ज्यौतिर्वेदाङ्गका कोई पता नहीं दिया है। परन्तु हिन्दुस्तान रिव्यूके सन् १९०६ ई० के नवम्बरके अङ्कमें पृ० ४१८ पर किसी अज्ञातनामा "सिविस" उपनामके लेखकने पितामह ज्यौतिषके १६२ श्लोक बताये हैं। ऋक्के ३६ और यजु.के ४३ श्लोकोंका कुछ क्रम-विपर्ययके साथ बार्हस्पत्यजीने भाष्य किया है। हम उसका सार यहाँ देते हैं।

---

* बाबू छोटेलाल बी० ए० रिटायर्ड एंजिनियर, मेरठ।

पांच वर्षोंका एक युग माना जाता है जिसमें चन्द्रमाके ६२ युति चक्कर होते हैं और १८३० दिनरात होते हैं। इतने दिनोंके भीतर सूर्यके लगभग ५ और चन्द्रमाके ६७ चक्कर क्रान्ति-वृत्तमें हो चुकते हैं, इसी कालके भीतर नक्षत्र भी पृथ्वीके चारों ओर १८३५ वार चक्कर लगा लेते हैं। चन्द्रार्क युति या षडभान्तरकी परिभाषा पर्वन् है। इस पञ्चवार्षिक युगमें १२४ पर्वन् होते हैं। प्रत्येक पर्वन्‌में १५ तिथियां होती हैं। युगके पञ्चमांशका नाम वर्ष है। इस एक वर्षमें दिनरातकी संख्या ३६६ होती है। यह वर्ष आजकलके अर्थमें न तो नाक्षत्र होता है और न अयनवर्ती। हर वर्षके दो सम-भाग होते हैं। हर एकमें १६३ दिन रात होते हैं जिसे अयन कहते हैं। प्रत्येक अयनके मध्यका दिन विषुवत् कहलाता है। वर्षके षष्ठांशको ऋतु कहते हैं जो ६१ दिनोंका होता है। हिसाबको सीधा और सहज करनेके लिए यह सब समय-विभाग मान लिये गये हैं और यह अङ्क स्वाभाविक काल-विभागसे अत्यधिक मिलते जुलते हैं। क्रान्ति वृत्त २७ बराबर बराबर विभागोंमें बँटा हुआ है। प्रत्येकको नक्षत्र कहते हैं। यह ऐसे अन्दाज़से है कि एक एक नक्षत्रमें चन्द्रमा एक एक दिन रहता है। यद्यपि प्रत्येक युति और षडभान्तर वस्तुतः 'देखी हुई' घटना है तथापि सूर्य चन्द्रमा और तारोंकी दैनिक स्थिति गणनासे निश्चय की जाती थी। हर पर्वमें सूर्य $१\frac{११}{१२४}$ नक्षत्रमें पार करता हुआ समझा जाता था। भिन्नाङ्कोंसे वचनेके लिए प्रत्येक नक्षत्रमें १२४ भांश होते थे। इस प्रकार सूर्य प्रत्येक तिथिमें ९ भांश चलता था। इसी प्रकार चन्द्रमा $१४\frac{७३}{१२४}$ नक्षत्र एक पर्वमें या $\frac{१८०९}{१८६०}$ नक्षत्र हर तिथिमें चलता था। टेढ़े-मेढ़े भिन्नोंसे बचनेके लिए अद्भुत् युक्तियोंसे काम लिया जाता था। फिर इसकी उलटी समस्या थी कि नक्षत्र और उसके भांशको पार करनेमें सूर्य और चन्द्रमा जो समय लेते हैं उस समयको मालूम करना। $१३\frac{५}{९}$ दिनरातोंमें सूर्य और $१\frac{७}{६०३}$ दिनरातमें चन्द्रमा एक नक्षत्रको पार करता है, यह वात मालूम की गयी। आधे या कम नक्षत्रके लिए $१३\frac{५}{९}$ की जगहपर $१०\frac{३}{४}$ बहुत ही सहज और आसानीसे कटनेवाली संख्या ले ली गयी। चन्द्रमाकी तीव्र गतिके कारण आसन्न क्रियाके द्वारा यह कठिनाई दूर नहीं हो सकती थी। इसीलिए दिनरातको ६०३ कलाओंमें विभाजित किया गया। इस प्रकार चन्द्रमाको एक नक्षत्र पार करनेमें ६१० कलाएं लगने लगीं। फिर बहुधा यह जाननेकी आवश्यकता पड़ती थी कि पर्व या तिथि कब दिनमें या रातमें समाप्त हुई। पर्वमें औसत $१४\frac{९४}{१२४}$ दिन रात होते हैं और तिथि इसका $\frac{६१}{६२}$वां भाग होती है। दिनरातको १२४ भागोंमें इस तरह विभक्त करना आवश्यक हो गया। प्रत्येक भागका नाम 'अंश' हुआ। इसी तरह दिनांशों, नक्षत्रांशों और सूर्य चन्द्रमाकी गतियोंमें सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए कलाको १२४ काष्ठाओंमें विभक्त किया गया और प्रत्येक काष्ठाको ५ अक्षरोंमें। यह केवल भिन्न हुए जो हिसावमें आते हैं। परन्तु इनसे पञ्चाङ्ग वनानेवालेका काम कुछ हलका नहीं हुआ। भिन्नोंसे तो छुट्टी मिली, परन्तु मानसिक-गणनामें सहजमें न आनेवाले अङ्क अभी मौजूद थे। इन्हींके लिए लगध और शेषकी ज्यौतिषमें ऐसी सुन्दर युक्तियां निकाली गयीं जिनको देखकर गणितज्ञ आज भी मोहित हो जाते हैं। यह युक्तियां मूल और उसके अनुवादमें ही अध्ययन की जानी चाहिएँ।

साधारण रीति प्राचीन कालमें भी यही थी कि दिन रातको तीस मुहुर्तों या ६०

नाड़ियोंमें बांटा जाता था। इसके लिए जल-घड़ी बनी होती थी। इस प्राचीन ज्यौतिषीने जल-घड़ीका आकार-प्रकार इस युक्तिसे रचा था कि दिनकी लम्बाईमें नित्यकी कमी बेशी नाड़िकाका एकांश हुआ करता था। १ मासमें तीस दिन होते थे, परन्तु बिना चन्द्रमाकी कलाओंके इन दिनोंका याद रखना कठिन था। इसीलिए प्रतिपदासे अमावास्या तक १ महीना ठहराया गया। चन्द्रमाका युति-चक्र २९½ दिनका होता है। इसलिए महीने बारी बारीसे ३० और २९ दिनके रखे गये। १२वें चन्द्रार्क युतिपर हर दो महीनेके १ दिनकी कमी वर्षान्तमें ६ दिन और बढ़ाकर पूरी कर दी जाती थी और चान्द्र और सौर वर्षोंको बराबर करनेके लिए चान्द्र वर्षमें १२ दिन जोड़ दिये जाते थे, इसे "द्वादशाह" कहा जाता था। ३५४ दिनोंके चान्द्र वर्ष और ३६० दिनोंके सावन वर्षमें जो अन्तर पड़ता था, पांच बरसोंमें ठीक एक महीनेके बराबर हो जाता था। द्वादशाहके हिसाबसे २ महीने हो जाते थे। लोग ३ ऋतु मानते थे, जाड़ा, गर्मी और बरसात। यह काल-विभाग चार चार महीनेके होते थे। बरसातके चार महीनोंमें तो कोई अन्तर मालूम नहीं होता, पर शेष आठमें दो दो महीनेमें तो ज़रूर अन्तर मालूम होता है। इस तरह व्यवहारतः दो दो महीनोंकी चार ऋतुयें और चार मासकी एक ऋतु अर्थात् कुल ५ ऋतुएं हुईं। परन्तु साल कभी १२ मासका होता था और कभी १३ का। इसलिए वह चार ऋतुएं कभी एक मासके लिये बढ़ जाती थीं। वर्तमान चान्द्र मास, तिथि आदि पञ्चाङ्गकी विधि अत्यन्त प्राचीन है, वैदिक कालसे चली आयी है। बीच बीचमें कालानुसार बड़े बड़े ज्यौतिषियोंने करण ग्रन्थ लिखकर और संस्कारद्वारा संशोधन करके ठीक कर रखा है। बराबर संशोधन होते चले आये हैं। छः ऋतुओंका भाग उसी तरह सुभीतेके लिये हुआ, जिस तरह चान्द्र मास ३० तिथियोंमें बांट दिया गया। ज्यौतिष वेदाङ्गमें उसी काल-विभागका अनुसरण किया गया है जो उस समय प्रचलित था और जो आज भी प्रचलित है। परन्तु ज्योतिर्विदने उस समयकी पञ्चाङ्ग रचनाके लिए ठीक-ठीक युक्तियों और विधियोंका नियमोंमें समावेश कर दिया।

ज्यौतिष-वेदाङ्गका उद्देश्य पञ्चाङ्ग-रचनामात्र है। पञ्चाङ्गकी रचनाविधि बार्हस्पत्यके भाष्यसे बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। बार्हस्पत्यजीके लेखसे यह जान पड़ता है कि लगधको वह बर्बरदेशीय समझते हैं। परन्तु वेदाङ्ग ज्यौतिषके किसी श्लोकसे, भावसे, या किसी अन्त. साक्षीसे लगधका विदेशी होना सिद्ध नहीं होता। पितामह और शेषके लिए तो ऐसी बात कही भी नहीं जा सकती।

सूर्य-सिद्धान्त, पौलिश-सिद्धान्त, रोमक सिद्धान्त और वासिष्ठ-सिद्धान्तके साथ साथ पितामह सिद्धान्तकी चर्चा भी पाञ्चसिद्धान्तिकामें वराह-मिहिरने की है। पराशर और गर्ग भी वराहमिहिरके पहिले भारी ज्योतिर्विद हो गये हैं। इनसे पीछेके ज्यौतिर्विदोंमें आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, कमलाकर आदि प्रसिद्ध ग्रन्थकार हुए हैं। यह सभी गणित और फलित दोनों ही प्रकारके ज्यौतिषके आचार्य माने जाते हैं। ज्यौतिषके ग्रन्थ अनेक हैं और प्रचलित भी हैं। सबके विषय एकसे ही हैं और गणितात्मक हैं जो साधारण पाठकोंको रुचिकर नहीं हो सकते। इसलिए उनका विस्तृत वर्णन यहाँ नहीं देते।

तेईसवाँ अध्याय

वेदके उपाङ्ग

उपाङ्गोंके सम्बन्धमें प्रस्थान भेदकार श्री मधुसूदन सरस्वतीने लिखा है कि "पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र यह चार उपाङ्ग हैं।" प्रायश्चित्त तत्वमें चौदह वा अठारह विद्याओंकी गिनतीमें चारों वेद छःहों अङ्ग यह दस, मीमाँसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण यह चार मिलाकर चौदह गिनाये हैं। चारों उपवेदोंको मिलानेसे अठारहकी गिनती पूरी होती है। इन अठारह विद्याओंमें चार वेद, चार उपवेद, छः अङ्ग मिलाकर हम चौदह विद्याओंका वर्णन कर चुके हैं। मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण बाक़ी हैं। मीमांसा और न्याय यह दोनों शास्त्र शिक्षा, व्याकरण और निरुक्तके आनुषङ्गिक हैं। धर्मशास्त्र श्रौतसूत्रोंका आनुषङ्गिक है। और पुराण ब्राह्मण भागके ऐतिहासिक अंशोंका पूरक है। इस प्रकार यह चारों वेदके उपाङ्ग समझे जाते हैं।

छान्दोग्योपनिषद्में एक जगह लिखा है कि इतिहास पुराण पांचवाँ वेद है। इससे भी यही सूचित होता है कि इतिहास और पुराणकी भी महत्ता है। अधिकांश विद्वान् इतिहास शब्दसे रामायण और महाभारत समझते हैं और पुराणसे अठारह वा उससे अधिक पुराण ग्रन्थ और उपपुराण समझे जाते हैं जिनकी दूसरी संज्ञा पञ्चलक्षण है। हमारे देशके अनेक विद्वान् इससे सहमत नहीं हैं। प्रधानत. महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीका कहना है कि इस स्थलपर इतिहास-पुराणसे तात्पर्य ब्राह्मण भागमें उल्लिखित कथाओंसे है।

अठारह विद्याओंकी गिनतीमें इतिहास शब्द कहीं नहीं आया है। पुराणके सिवाय इन अठारह विद्याओंकी सूचीमें और कोई विद्या ऐसी नहीं है जिसमें इतिहासका अन्तर्भाव हो सके। इसलिए हमारी समझमें प्रायश्चित्त तत्वकारने इतिहासको पुराणके अन्तर्भूत समझ कर उसका नाम अलग नहीं गिनाया है। इसी तरह मीमांसामें पूर्व और उत्तर दोनोंका समावेश है, कर्म मीमांसा और वेदान्त दोनों आ गये हैं। और न्यायमें कणादके वैशेषिक शास्त्रका भी अन्तर्भाव हो जाता है। छःहों शास्त्रोंमें सांख्य और योगकी भी अठारहों विद्याओंमें चर्चा नहीं है। परन्तु आयुर्वेदकी चर्चा है जिसमें सांख्य और योग दोनोंका पूरा अन्तर्भाव है। हमने आयुर्वेदके वर्णनमें जान-बूझकर सांख्य और योगकी चर्चा नहीं की। क्योंकि छःहों दर्शनोंके साथ-साथ इन्हें अलग-अलग अध्याय देते हैं।

हम जिस क्रमसे धार्मिक साहित्यका वर्णन कर रहे हैं वह इन विद्याओंके क्रमसे अवश्य ही भिन्न है। छः अङ्गोंका वर्णन करनेके उपरान्त हम चार उपाङ्गोंका वर्णन इस क्रमसे करेंगे। (१) इतिहास-पुराण (२) दर्शन-जिसमें न्यायादि छःहों शास्त्र शामिल हैं। (३) धर्मशास्त्र और (४) तन्त्र। हमने चारों उपरिकथित उपाङ्गोंका तीनमें ही समावेश कर दिया और चौथे रिक्त स्थानमें तन्त्र रखा है।

तन्त्र शिवोक्त शास्त्र है। प्रधानत. इसके तीन प्रकार हैं। आगम, यामल, और तन्त्र।

तन्त्रोंमें प्रायः उन्हीं विषयोंका विस्तार है जिनपर पुराण लिखे गये हैं। साथ-ही-साथ इसके अन्तर्गत गुह्य शास्त्रभी है जो दीक्षित और अभिषिक्तके सिवाय और किसीको वताया नहीं जाता।

यद्यपि इसे वेदका उपाङ्ग नहीं कहते तथापि आस्तिक शास्त्र होनेसे और संस्कृतमें होनेसे और हिन्दुओंमें मान्य होनेसे हम इसका भी वर्णन उपाङ्गोंके अन्तमें करेंगे।

इतिहासों और पुराणोंका वर्णन हम पहले करेंगे। इतिहाससे हमारा तात्पर्य रामायण और महाभारतसे है। रामायण अनेक हैं। परन्तु महाभारतका ग्रन्थ एक ही है।

पुराण अठारह कहे जाते हैं। विष्णु पुराणमें वह अठारह नाम इस तरह दिये हुए हैं—(१) ब्रह्म (२) पद्म (३) विष्णु (४) शिव (५) भागवत (६) नारदीय (७) मार्कण्डेय (८) अग्नि (९) भविष्य (१०) ब्रह्मवैवर्त्त (११) लिङ्ग (१२) वाराह (१३) स्कन्द (१४) वामन (१५) कूर्म्म (१६) मत्स्य (१७) गरुड़ और (१८) ब्रह्माण्ड। इनमेंसे प्रत्येकमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर यह पांच बातें कही गयी हैं। इसीलिए पुराणोंको पञ्चलक्षण भी कहते हैं। कई पुराणोंमें इससे भिन्न क्रम भी दिये हुए हैं। कई पुराणोंके नाम उपपुराणोंमें आये हैं, और उपपुराणोंके नाम पुराणोंमें आ गये हैं। इसलिए हम किसी क्रमको महत्त्व न देकर जो-जो ग्रन्थ हमें जिस क्रमसे ठीक जँचते हैं क्रमशः उनका संक्षिप्त वर्णन उसी क्रमसे हम दे रहे हैं। इससे कोई यह न समझे कि हम कालक्रमसे, या महापुराण और उपपुराणके क्रमसे दे रहे हैं।

रामायण-खण्ड

चौबीसवाँ अध्याय

रामायण

वनपर्वमें रामोपाख्यानका वर्णन करनेके पहले कहा गया है कि "राजन् पुराने इति-हासमें जो कुछ घटना हुई है वह सुनो*"। इस स्थानपर पुरातन शब्दसे विदित होता है कि महाभारतकालमें रामायणी कथा पुरातनी कथा हो चुकी थी। इसी तरह द्रोणपर्वमें लिखा है—

अपिचायं पुरागीतः श्लोको वाल्मीकिनाभुवि"

इन बातोंसे स्पष्ट है कि महाभारतकी घटनाओंसे सैकड़ों या हज़ारों बरस पहले वाल्मीकीय रामायणकी रचना हो चुकी होगी।

ऐसा प्रवाद प्रचलित है कि वाल्मीकिने सौ करोड श्लोकोंका रामायणनामक ग्रन्थ रचा था।

"चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्"

परन्तु स्वयं वाल्मीकीय रामायणमें बालकाण्डके चौथे सर्गमें लिखा है—

"प्राप्त राज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवान ऋषिः।
चकारचरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत् ॥
चतुर्विंशसहस्राणि श्लोकानामुक्तवान् ऋषिः।
तथा सर्ग शतान् पञ्च षट्काण्डानि तथोत्तरम् ॥

इन श्लोकोंसे प्रकट होता है कि वाल्मीकिने २४,००० श्लोक रचे जो ५०० सर्गोंमें बँटे थे। जो पाठ आजकल प्रचलित हैं वह तीन प्रकारके हैं। उदीच्य, दाक्षिणात्य और गौड़ीय। उन तीनोंमें परस्पर पाठभेद तो है ही, पर किसीमें न तो ठीक २४,००० श्लोक हैं और न ५०० सर्ग। यह भी निश्चय है कि उपर्युक्त दोनों श्लोक वाल्मीकिके रचे नहीं हैं, क्योंकि वाल्मीकि अपनेको स्वयं "भगवान् ऋषि" न लिखते।

इसलिए यह तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वाल्मीकिने कितनी रचना की और प्रचलित रामायणमें कितना अंश उनका ही रचा हुआ है। आरम्भके कई सर्गोंका रचयिता विदित न होनेकी दशामें हम यह मान लेंगे कि लवकुशने अथवा उनके और किसी शिष्यने रच दिया होगा।

पद्मपुराण पातालखण्डमें अयोध्यामाहात्म्यके वर्णनमें, रामायणके टीकाकार नागेश-भट्टके अनुसार यह लिखा है—

"शापोक्त्या हृदि संतप्तं प्राचेतसमकल्मषम्।
प्रोवाच वचनम् ब्रह्मा तत्रागत्य सुसत्कृतः ॥

---

* महाभारत, वनपर्व, अध्याय २७३ श्लोक ६।

न निषादः स वै रामो मृगयाम् चर्त्तुमागतः ।
तस्य संवर्णनेनैव सुश्लोक्यस्त्वम् भविष्यसि ॥
इत्युक्त्वा तम् जगामाशु ब्रह्मलोके सनातनः ।
ततः संवर्णयामास राघवं ग्रन्थ कोटिभिः" ॥

कोटिभिःका अर्थ शतकोटिभिः करते हुए नागेशभट्टजी कहते हैं कि वाल्मीकिने १०० करोड़ श्लोकोंकी रचना की थी। ऐसा सुना जाता है कि वह सबका सब ब्रह्मलोकको चला गया। कुशलवके उपदेश किये हुए २४,००० मात्र यहाँ रह गये।

वाल्मीकि-रामायणके सिवाय एक अध्यात्म-रामायण भी प्रसिद्ध है जो शिवजीकी रचना कही जाती है। पण्डित धनराज शास्त्रीकी सूचीमें ५ रामायणोंके नाम दिये गये हैं। महारामायणमें साढ़े-तीन लाख श्लोक हैं। संवृत-रामायणमें २४,०००, अगस्त्य-रामायणमें १६,०००, लोमस-रामायणमें ३२,०००, रामरहस्यमें २२,०००, मञ्जुल-रामायणमें १ लाख २० हज़ार, सौपद्य रामायणमें ६२,०००, रामायण-महामालामें ५६,०००, सौहार्द-रामायणमें ४०,०००, रामायण-मणिरत्नमें ३६,०००, सौर्य रामायणमें ६२,०००, चान्द्र रामायणमें ७५,०००, मैन्द-रामायणमें ५२,०००, स्वायम्भुव-रामायणमें १८,०००, सुब्रह्म-रामायणमें ३२,०००, सुवर्चस-रामायणमें १५,०००, देवरामायणमें १ लाख, श्रवण-रामायणमें सवा लाख, दुरन्त-रामायणमें ६१,००० और रामायण-चम्पूमें १५,००० श्लोक हैं।

वाल्मीकि रामायण

बालकाण्डको आदिकाण्ड भी कहते हैं। दाक्षिणात्य और उदीच्य, इन दोनों पाठोंमें ७७ सर्ग हैं। गौड़ीय रामायणमें ८०, अर्थात् तीन सर्ग अधिक हैं। बालकाण्डकी विषया-वलीका सार यह है—

वाल्मीकिजीने नारदसे पूछा और नारदजीने रामचरितका संक्षेपसे वर्णन किया। तमसाके तीरपर व्याधने क्रौञ्च पक्षीको मारा। वाल्मीकिजीने करुणार्द्र हो शाप दिया। शापका वाक्य अनुष्टुप् छन्दमें बन गया था। इसी अनुष्टुप्में मुनिने रामायणकी रचना कर डाली। लवकुशको पढ़ाया, लवकुशने उसे गाया। अयोध्यापुरी और राजा दशरथकी राज शासनप्रणालीका वर्णन। पुत्रार्थ राजा दशरथकी अश्वमेध यज्ञकी कल्पना। ऋष्य-श्रृङ्गका विवरण कीर्तन। ऋष्य-श्रृङ्गको लानेके लिए दशरथके प्रति सुमन्त्रका उपदेश। दशरथका ऋष्य श्रृङ्गको लाना। सरयू नदी तीर अश्वमेधयज्ञ-भूमिके निर्माणके लिए दशरथका आयो-जन। निमन्त्रित राजाओंका अयोध्यामें आना और यज्ञारम्भ। अश्वमेध यज्ञ और दशरथके दानादिकी कथा। रावणवधके लिए देवताओंकी सलाह और दशरथकी यज्ञभूमिमें विष्णुसे परामर्श। नारायणका दशरथका पुत्र होना स्वीकार कर लेना। दशरथका यज्ञ और रानियोंका गर्भाधान। वालि, सुग्रीव और हनुमान आदि वानरोंकी उत्पत्ति। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नका जन्म। राक्षसोंके मरवानेके लिए विश्वामित्रका अयोध्यामें आना। राजाका पहले राजी न होना और अन्तमें समझाये जानेपर स्वीकार कर लेना। विश्वामित्रके साथ राम और लक्ष्मणका जाना और बला और अतिबला मन्त्र पाना। विश्वामित्रके साथ

रात बिताना। ताड़काके मारनेके लिए विश्वामित्रका आदेश। ताड़का और मारीचके जन्म-की कथा, ताड़काका मारा जाना। विश्वामित्रका रामजीको संहार अस्त्र देना, उन अस्त्रोंका आमन्त्रण प्रकारादि। सिद्धाश्रम और वामन अवतार वर्णन। सुबाहुका वध। विश्वामित्रके यज्ञका पूरा होना। विश्वामित्रसे राम लक्ष्मणकी कर्तव्य-जिज्ञासा। कुश वंश विवरण। कुश नाम द्वारा कन्या सम्प्रदान। कुश नामका पुत्र लाभ। विश्वामित्रका गङ्गाकी उत्पत्तिका वर्णन करना। गङ्गाके त्रिपथगामिनी होनेका कारण। कार्तिकेय जन्मादि विवरण। राजा सगरके ६०,००० पुत्रोंका होना। सगरपुत्रोंका पृथ्वी खोदना और कपिल-मुनिके हुंकारसे नष्ट हो जाना। यज्ञसमाधानपर सगरका स्वर्ग जाना। भगीरथका ब्रह्म-वर-लाभ। गङ्गाका पातालगमन और सगरपुत्रोंका उद्धार। भगीरथ-द्वारा पितामह गणोंका तर्पण। सागर मथनका वर्णन। इन्द्रद्वारा दितिका गर्भच्छेद। विश्वामित्रका सुमतिपुर-प्रवेश। अहल्या और इन्द्रके शापकी कथा। अहल्याका शाप-विमोचन। राम लक्ष्मणका जनककी यज्ञ-भूमिमें जाना। विश्वामित्रके पृथ्वीके परिभ्रमणका और वसिष्ठाश्रममें आगमनका विवरण। वसिष्ठा-श्रममें विश्वामित्रके निमन्त्रणका स्वीकार होना। विश्वामित्र और वसिष्ठकी बातचीत। विश्वा-मित्रद्वारा शबलाहरण। विश्वामित्रके सौ पुत्रोंका जलना। वसिष्ठके साथ युद्धमें विश्वा-मित्रकी हार। विश्वामित्रकी तपस्या। त्रिशङ्कुकी चाण्डालत्व प्राप्ति। विश्वामित्रके पास त्रिशङ्कुका आना। विश्वामित्रका दूसरी सृष्टि रचनेका सङ्कल्प। अम्बरीष राजाका यज्ञीय पशु हरण। अम्बरीषका यज्ञफल पाना। विश्वामित्रका ऋषित्व लाभ। रम्भाकी शैली भाव प्राप्ति। विश्वामित्रका ब्राह्मण्य लाभ। जनकके शिवधनु पानेकी कथा। रामजीके द्वारा शिवधनुका भङ्ग। दशरथके पास दूतोंका आना। दशरथकी मिथिला यात्रा। जनकके निकट कुशध्वजका आना। जनकका अपनी वंशावली कहना। कुशध्वजका भरत और शत्रुघ्नको अपनी कन्यायें देना स्वीकार करना। रामचन्द्र आदिका विवाह। दशरथकी अयोध्या यात्रा और राहमें परशुरामका दर्शन। राम और परशुरामका संवाद। परशुराम-का दर्प चूर्ण होना। पुत्रवधुओंके सहित दशरथका अयोध्यामें प्रवेश करना और भरत शत्रुघ्नका मामाके घर जाना।

अयोध्याकाण्डमें उदीच्य पाठके अनुसार ११९, दाक्षिणात्यके अनुसार ११३ और गौडीयके अनुसार १२७ सर्ग हैं। उसकी विषयावलीका सार यह है—

रामके यौवराज्याभिषेकार्थ दशरथका सङ्कल्प, निमन्त्रित राजाओंके साथ दशरथकी बातचीत। दशरथके पास रामचन्द्रजीका आना। रामका अन्तःपुरमें जाना। राम और दशरथके पास वसिष्ठका जाना। रामके द्वारा विष्णुकी उपासना। अयोध्यामें सजावटका कारण दाईके मुखसे सुनकर मन्थराका कैकेयीके पास जाना और उससे बातचीत। कैकेयी-का कोपभवनमें जाना। कोपभवनमें दशरथका प्रवेश। राम वनवास और भरताभिषेकके लिए कैकेयीका वर मांगना। दशरथका विलाप। दशरथ और कैकेयीकी कथा। रामको लानेके लिए कैकेयीका आदेश। सुमन्त्रका रामके पास जाना। सुमन्त्रको दशरथका आदेश। रामका पिताके समीप जाना। रामके सामने कैकेयीका वरवाली बात प्रगट करना। लक्ष्मणके साथ रामका माताके समीप जाना। वनवासकी बात सुनकर कौशल्याका विलाप,

लक्ष्मणका क्रोध और कौशल्याका रामजीको रोकना। कौशल्या और लक्ष्मणको रामजीका धर्मोपदेश करना। भरतके लिए लक्ष्मणजीका क्रोध। राम और कौशल्याकी बातचीत। कौशल्याका मङ्गलाचरण और रामका अपने महलमें जाना। सीताका साथ बन जानेकी आज्ञा पाना। लक्ष्मणजीको साथ जानेकी आज्ञा मिलनी। ब्राह्मणोंको धन वितरण। पिताके दर्शनके लिए रामका जाना। रामको देखकर दशरथका विलाप। सुमन्त्रका कैकेयीकी भर्त्सना करना। कैकेयी और दशरथकी बातचीत। राम लक्ष्मण और सीताका वल्कल पहन लेना और दशरथका विलापवाक्य। रामका मुनिवेष देखकर दशरथका रोना। वनयात्रापर पुरवासियोंका विलाप। अन्तःपुरकी स्त्रियोंका विलाप। कैकेयीकी भर्त्सना करके दशरथका विलाप। कौशल्याका विलाप। सुमित्राका उन्हें आश्वासन देना। पुरवासियोंको घर भेजनेके लिए रामका अनुरोध। तमसा तीरपर रामजीका रात बिताना। पुरवासियोंका लौट आना। उनका विलाप। रामका कोशलप्रदेशके प्रान्तमें जाना। गुहसे भेंट। गुह और लक्ष्मणकी बातचीत। रामजीका गङ्गापार जाना। रामजीका खेद और लक्ष्मणजीका समझाना। रामजीका भरद्वाजके पास जाना। रामजीका चित्रकूट और वाल्मीकिके पास जाना। सुमन्त्रसे रामका संवाद सुनकर दशरथका रोना। कौशल्याका विलाप। दशरथको कौशल्याका कठोर वचन कहना। दशरथका कौशल्याको प्रसन्न करनेकी कोशिश करना और ऋषिकुमारके वधकी कथा कहना। दशरथकी मृत्यु और रानियोंका विलाप। तेलकी द्रोणीमें शव-स्थापन। राज्य-विषयमें ब्राह्मणोंकी चिन्ता। भरतको लानेके लिए दूतोंका जाना। भरतका सपना देखना और उसका वृत्तान्त कहना। भरतकी अयोध्या-यात्रा और अपनी पुरीमें प्रवेश। पिताका मरना सुनकर विलाप। भरतद्वारा कैकेयीकी भर्त्सना। कौशल्यासे भरत शत्रुघ्नकी बातचीत। पिताका प्रेत-कर्म। मन्थराकी ताड़ना और कैकेयीकी भर्त्सना। भरतका राजपद लेनेसे इन्कार। रामको लौटानेका आदेश। राम दर्शनार्थ भरतकी सेना सहित वनयात्रा। भरत और निषादकी बातचीत। सेना सहित नदी पार उतरना। भरद्वाजसे भेंट। चित्रकूटमें सीता और रामजीकी बातचीत। भरतकी सेनाका शब्द सुनकर राम लक्ष्मणकी आपसमें बातचीत। रामजीके दर्शनके लिए भरतका प्रवेश। रामजीको देखकर भरतका खेद। भरतसे रामजीकी कुशल-जिज्ञासा। रामजीकी भरतसे बातचीत। पिताके मृत्यु-संवादपर रामजीका विलाप। कौशल्यादिसे रामजीकी भेंट। राम और भरतमें राज्य-सम्बन्धी बातचीत। जाबालिका रामजीसे धर्म-कथा कहना। जाबालिसे रामजीकी उक्ति। वसिष्ठजीका लोकोत्पत्ति कथा कहना। रामजीका भरतको पादुका दान। भरतका लौटना। भरतका गुरुको राज्यका भार देना और नन्दिग्राम चले जाना। चित्रकूटमें राम और कुलपतिकी कथा। राम लक्ष्मण सीताका अत्रिके आश्रममें जाना।

आरण्यकाण्डमें उदीच्य पाठके अनुसार ७९, दाक्षिणात्य पाठके अनुसार ८० और गौड़ीय पाठके अनुसार ७९ सर्ग हैं। संक्षिप्त-विषयावली इस प्रकार है—

रामजीका दण्डकारण्य-प्रवेश। विराध-राक्षसकी गोदमें सीताको देखकर लक्ष्मणका विक्रम-प्रकाशोद्योग। राम लक्ष्मणके साथ विराधका घोरतर युद्ध और विराधका मारा जाना। शरभङ्गका अग्निमें प्रवेश। राक्षस-वधार्थ ऋषियोंकी प्रार्थना। सुतीक्ष्णके आश्रममें

जाना। सुतीक्ष्णसे दण्डक-प्रवेशकी आज्ञा माँगना। राम लक्ष्मण और सीताका दण्डकवनमें प्रवेश। रामका राक्षसवधहेतु कथन। रामके निकट सुतीक्ष्णमुनिका सरोवर विवरण कथन। इल्वल वातापि कथा और अगस्त्यके माहात्म्यका वर्णन। अगस्त्यसे रामचन्द्रजीकी भेंट और उनसे अस्त्र पाना, दोनोंकी बातचीत। जटायुसे भेंट। पञ्चवटीमें निवास। लक्ष्मणद्वारा हेमन्त-वर्णन। राक्षसी शूर्पणखासे बातचीत। लक्ष्मणद्वारा शूर्पणखाका अङ्ग-भङ्ग होना। राम लक्ष्मणके वधके लिए खरका चौदह राक्षसोंको भेजना। चौदहोंकी मृत्यु। खरके प्रति शूर्पणखाका तिरस्कार। युद्ध-यात्राके लिए खरका उद्योग। रामके पास खरका जाना। युद्धके लिए रामजीका जाना। दूषण और राक्षस सेनाका वध। त्रिशिराका वध। खरका संहार। खरदूषणके वधपर रावणका महाक्रोध। रावणका मारीच-आश्रममें जाना, सीता-हरणकी कल्पना, मारीचद्वारा उसका निवारण और रावणका लौट आना। शूर्पणखा द्वारा रावणकी भर्त्सना। रावणका क्रोध। मारीचके आश्रममें रावणका फिर आना। मारीच द्वारा रामचन्द्रजीका विक्रम-प्रकाश। सीताहरणके लिए रावणकी बातचीत। रावणकी बात-पर मृगरूप धरकर मारीचका दण्डक-भ्रमण। मृगरूपी मारीचके वधके लिए रामकी यात्रा। सीताकी कटूक्तिपर रामके लिए लक्ष्मणकी यात्रा। सीताके पास छद्मवेषी रावणका अतिथि बनकर आना। रावणका सीताजीको प्रलोभन दिखाना। सीताहरण। रावण और जटायुका युद्ध। रावणके रथपरसे सीताका गहने फेंकना। रावणसे सीताकी क्रोधोक्ति। अशोक-वनमें सीताको रखकर रावणका अपने महलको जाना। सीताद्वारा रावणकी भर्त्सना। मारीचको मारकर रामजीका कुटीकी ओर लौटना। कुटीपर सीताजीका न पाया जाना। राहमें सीताजीके द्वारा फेंके हुए चिह्नोंको देखकर रामजीका विलाप। रामजीको लक्ष्मणजी-का समझाना। मरते हुए जटायुके मुखसे रामजीका सीताहरण-वृत्तान्त सुनना। राम-लक्ष्मण द्वारा कबन्धकी दोनों बांहोंका काटा जाना। राम-लक्ष्मणका पम्पा सरोवरपर जाना और शबरीसे भेंट। ऋष्यमूक-पर्वतपर जानेके लिए राम-लक्ष्मणकी सलाह।

किष्किन्धाकाण्डमें उदीच्य पाठके अनुसार ६७, दाक्षिणात्य पाठके अनुसार ६४ और गौड़ीय पाठके अनुसार ६७ सर्ग हैं। इस काण्डके विषयका सार यह है—

रामजीके द्वारा वसन्तवर्णन और प्रियाविच्छेदपर विलाप। राम-लक्ष्मणको देखकर मन्त्रियोंसे सुग्रीवकी सलाह। भिक्षु वेष बनाकर हनुमानजीका रामजीसे मिलना। राम लक्ष्मणको पीठपर बिठाकर हनुमानजीका सुग्रीवके पास जाना। सुग्रीवसे हनुमानद्वारा रामजीका परिचय। सीता उद्धारके लिए सुग्रीवकी प्रतिज्ञा और वालिवधके लिए रामकी प्रतिज्ञा। रामजीके द्वारा दुन्दुभी नामक दैत्यकी हड्डियोंका निक्षेप और सप्ततालका भेद। वालीसे सुग्रीवका युद्ध, हारना और भागना। सुग्रीवका फिर युद्धके लिए जाना। ताराका वालिको फिर युद्धार्थ जाते हुए रोकना। वालिके प्रति रामका उपदेश। सुग्रीवके हाथ अङ्गदको सौंपकर वालिका तन-त्याग। ताराका विलाप। राम-लक्ष्मण और सुग्रीवका खेद। वालिको प्रेत-क्रिया। सुग्रीवका राज्याभिषेक। रामके विलापको सुनकर लक्ष्मणका समझाना। सीताके विरहमें रामका विलाप। शारदीय निशाको देखकर सीताके विरहमें रामका विलाप और शरद वर्णन। सुग्रीवके निकट लक्ष्मणजीके आनेका संवाद पहुँचना। लक्ष्मणको क्रुद्ध

देखकर सुग्रीवकी चिन्ता। लक्ष्मणजीके पास ताराको भेजना। लक्ष्मणजीके शान्त होनेपर सुग्रीवके साथ बातचीत। सेना-सङ्ग्रहके लिए सुग्रीवका दूतोंको भेजना। लक्ष्मणजीके सहित सुग्रीवका रामजीके पास जाना। रामजीके निकट वानरी सेनाका समागम। सीताजीकी खोजमें चारों तरफ बानरोंका भेजा जाना। हनुमानको बुलाकर रामजीका उन्हें अपनी अंगूठी देना। सब वानरोंसे सुग्रीवका आदेश। रामजीसे सुग्रीवका पृथ्वीका वृत्तान्त कहना। सीताकी खबर न पाना और वानरोंका लौट आना। हनुमान आदिका मयदानव-की मायासे विमोहित होकर विवरमें प्रवेश करना और तपस्विनीसे भेंट। हनुमान आदिका विवरसे निकलना। सीताका पता लगानेसे अङ्गद आदिका प्रायोपवेशन। वानरोंके साथ सम्पातिकी भेंट। सम्पातिसे सीताजीका पता लगना। समुद्रके तीरपर वानरोंका जाना। वानरोंद्वारा अपने अपने बलका बखान। जाम्बवान्‌का हनुमानके जन्मकी कथा सुनाना। हनुमानजीके शरीरका बढ़ना।

सुन्दरकाण्डमें उदीच्य पाठके अनुसार ६८, दाक्षिणात्य पाठके अनुसार भी ६८, परन्तु गौडीय पाठके अनुसार ९५ सर्ग हैं। सुन्दरकाण्डकी विषयावलीका सार यह है—

हनुमानजीका महेन्द्राचलसे उछलना। सिंहिकाका पेट फाड़ना और उसका चित्र-कूट तटपर जाकर गिरना। राक्षसी रूप-धारिणी लङ्कापुरीके साथ हनुमानजीका युद्ध। रावणके अन्तःपुरमें हनुमानजीका प्रवेश। अशोकवनमें हनुमानजीका सीताजीको खोजना। रामजीके बताये चिह्नके अनुसार हनुमानजीका सीताके निकट जाना। सीताजीकी दुरवस्था देखकर हनुमानजीका खेद। सीताजीके यहाँ रावणका आना। सीताजीसे रावणकी उक्ति। सीताजीका प्रत्युत्तर। रावण और सीताजीकी बातचीत। राक्षसियोंका सीताजीसे कड़वी बातें कहना और उपदेश देना। राक्षसियोंकी बातपर सीताजी-का दु.खी होना। त्रिजटा राक्षसीका अपना सपना सुनाना। सीताजीकी वेणीकी सहायतासे उद्बन्धनका उद्योग। सीताजीकी ऐसी अवस्था देखकर हनुमानजीकी चिन्ता। सीताजीका हनुमानजीको देखना। सीतासे पहिचानकी मणि लेकर हनुमानजीका जानेको तैयार हो जाना। हनुमानजीकी सीताजीसे फिर बातचीत। हनुमानजीका वाटिका विध्वंस करना। हनुमानजीके साथ राक्षसोंका घोरतर संग्राम। हनुमानजीके द्वारा चैत्यप्रासादका ध्वंस। जाम्ववानका युद्ध और मृत्यु। मन्त्रीके लड़कोंके साथ युद्ध और उनकी मृत्यु। अक्षयकुमारके साथ युद्ध और उसकी मृत्यु। इन्द्रजितके साथ हनुमानजीका युद्ध और उसके द्वारा बँध-कर रावणके राजसभामें उपस्थित किया जाना। हनुमानजीके वधार्थ रावणकी आज्ञा। रावणके प्रति विभीषणकी उक्ति। हनुमानजीकी पूँछ जलानेके लिए रावणका आदेश। हनुमानजीका लङ्काको जला देना। हनुमानजीका सीताजीके पास फिर जाना। हनुमानजी-का महेन्द्र पर्वतपर पहुँचना। हनुमानजीका वानरोंसे सारा वृत्तान्त कहना। वानरोंका मधुवनको उजाड़ना। रामचन्द्रजीको हनुमानजीका सीताजीकी पहिचानकी मणि देना।

लङ्काकाण्डमें उदीच्य पाठके अनुसार और दाक्षिणात्य पाठके अनुसार भी, १३० सर्ग हैं। परन्तु गौडीय पाठमें ११३ ही सर्ग हैं। सभी पाठोंमें इसे युद्धकाण्ड कहा गया है। परन्तु इसे साधारणतया लङ्काकाण्ड कहते हैं। युद्धकाण्डकी विषयावलीका सार यह है—

हनुमानजीसे सीताजीका हाल सुनकर रामचन्द्रजीका विलाप करना। सेतुबन्धनके लिए रामजीसे सुग्रीवका उपदेश। हनुमानजी द्वारा लङ्काके दुर्ग आदिका वर्णन। राम-लक्ष्मण और वानरोंका समुद्र दर्शन। रामका विलाप। वानरोंकी उक्ति। बुरे मन्त्रियोंकी अनेक तरहकी दुर्मन्त्रणा, विभीषणकी मन्त्रणा और रावणकी गर्वोक्ति। रावणकी प्रहस्तादिसे उक्ति-प्रत्युक्ति। विभीषणकी उक्ति। इन्द्रजित और विभीषणकी बातचीत। विभीषणद्वारा रावणका त्याग। विभीषणका रामके पास जाना। विभीषणके सम्बन्धमें सुग्रीव और रामजीकी बातचीत। राम और विभीषणका मिलना। रावणका बानर सेनामें शुक नामक गुप्त चर भेजना। रामजी द्वारा सेतु-बन्धनादि। रामजीका सुनिमित्तदर्शन। शुककी मुक्ति और रावणकी सभामें उसका जाना। शुक और सारणका छिपकर वानर-संख्याके निर्णय करनेके लिए तत्परता। रामकी सेनाको जाननेके लिए रावणका फिर और गुप्तचरोंको भेजना। रावणके द्वारा सीताको मायासे रामजीका सिर और धनुषादि दिखाया जाना। रामके माया मुण्डादिको देखकर सीताजीका विलाप। सरमासे सीताजीकी बातचीत। रावणसे माल्य-वानका हितोपदेश। लङ्काकी रक्षाके लिए प्रहस्तादिसे रावणकी उक्ति। रामचन्द्रजीद्वारा सेना-समावेश। रामजीका सुवेल पर्वतपर जाना और लङ्काको देखना। सुग्रीव और रावण-का युद्ध। ससैन्य रामजीका लङ्काको घेर लेना। युद्धारम्भ। वानरी और राक्षसी सेनाकी लड़ाई। अङ्गदकी इन्द्रजितपर विजय। इन्द्रजितद्वारा राम-लक्ष्मणका बांधा जाना। वानरी सेनाका विषाद। त्रिजटा सहित विमानपर चढ़ाकर सीताजीको रामजीकी दशाका दिखलाया जाना। लक्ष्मणजीकी दशा देखकर रामजीका विलाप। गरुड़के स्पर्शसे राम-लक्ष्मणका नागपाशसे मुक्त होना। धूम्राक्षकी युद्ध-यात्रा। धूम्राक्ष-वध। वज्रदंष्ट्रकी युद्ध-यात्रा और वध। अकम्पनकी युद्ध-यात्रा और वध। प्रहस्तकी युद्ध-यात्रा और वध। रावणकी युद्ध-यात्रा और पराजय। उसका अन्तःपुरमें प्रवेश। कुम्भकरणका निद्राभङ्ग। विभीषणका श्रीरामजीको कुम्भकरणका परिचय देना। रावण और कुम्भ-करणकी बातचीत। कुम्भकरणद्वारा रावणकी भर्त्सना। कुम्भकरणकी युद्ध-यात्रा। कुम्भकरणका सुग्रीवको पकड़कर लङ्कामें प्रवेश करना। सुग्रीवका उसकी नाक काट लेनी। कुम्भकरणका फिरसे युद्ध करना और रामजीके द्वारा उसका वध। कुम्भकरणके वधपर रावणका विलाप। नरान्तक वध। देवान्तक महोदर और त्रिशिरादि वध। अतिकाय वध। लङ्कापुरीकी रक्षाके लिए रावणकी विशेष तैयारी। इन्द्रजितकी युद्ध-यात्रा और जय। हनुमानजीका ओषधिपर्वतको ही उठा लाना। वानरोंद्वारा लङ्कादाह। अकम्पनादिका विनाश। मकराक्षकी युद्ध-यात्रा और वध। इन्द्रजितद्वारा माया-सीताका वध। निकुम्भिला यज्ञार्थ इन्द्रजितका लङ्कापुरी प्रवेश। हनुमानजीके मुखसे सीताजीके बधकी बात सुनकर रामका विलाप। लक्ष्मणजी द्वारा इन्द्रजितका बध। रामजीके पास लक्ष्मण आदिका आगमन। इन्द्रजितका बध सुनकर रावणका विलाप। लङ्काके महलोंमें स्त्रियोंका विलाप। लक्ष्मणजीकी शक्ति। हनुमानजीका ओषधिपर्वतका लाना और लक्ष्मणजीका होशमें आना। राम-रावणका महायुद्ध। रामजीके लिये जयकी सूचना देनेवाले शकुन। राम-रावणका द्वैरथ युद्ध। ब्रह्मास्त्रसे रामजीका रावणको मार डालना। विभीषणका विलाप।

मन्दोदरीका विलाप। विभीषणका राज्याभिषेक। हनुमानजीके मुखसे सीताजीका रामजीके जयका समाचार पाना। रामचन्द्रजीके निकट शुभ-संवाद पहुँचना। सीताजीसे रामचन्द्रजीका कठोर वचन कहना। सीताजीकी अग्निपरीक्षा। ब्रह्मादि द्वारा सीताजीकी विशुद्धताका कहा जाना। रामजीका सीतादेवीको फिरसे ग्रहण करना। महादेवजीके द्वारा दिखाये हुए राजा दशरथके साथ रामजीकी बातचीत। इन्द्रजीके सुधासिंचनद्वारा वानरी सेनाका फिरसे जी उठना। पुष्पकद्वारा रामजीकी अयोध्या-यात्रा। भरद्वाज और गुहादिसे फिर भेंट।

उत्तरकाण्डमें उदीच्य पाठके अनुसार १२४, दाक्षिणात्य पाठके अनुसार १११ और गौड़ीय पाठके अनुसार ११५ सर्ग हैं। उत्तरकाण्डकी विषयावलीका सार यह है—

रामजीका राज्याभिषेक। ऋषियोंके साथ बातचीत। कुबेरका जन्म, तपस्या, ब्रह्मगौरव लाभ और लङ्कामें वास। अगस्त्यद्वारा राक्षसोंकी उत्पत्तिका वर्णन। देवगणोंका महादेवजीके पास जाना। महादेवजीके आदेशसे देवताओंका विष्णुजीके पास जाना। सुरलोकमें राक्षसोंका युद्धके लिये जाना। सुमालीद्वारा मल्यवान्‌का पराजित होकर पातालमें भागना। सुमालीकी कन्याका विश्रवाके पास जाना। उसके गर्भसे रावण आदिका जन्म। रावणादिकी तपस्या। वर पाकर रावणका लङ्कापर अधिकार कर लेना। रावणका राज्याभिषेक और इन्द्रजितका जन्म। कुबेरके साथ युद्ध करनेको रावणका निकलना। कुबेरकी पराजय। रावणको वेदवतीका शाप। रावणका संवर्त्तके निकट जाना। रावणको अनरण्यका शाप देना। नारदके उपदेशसे यमके साथ रावणका युद्ध। रसातल प्रवेश करके रावणका युद्ध। रावणका बलिके सामने जाना। सूर्यलोकमें रावणकी विजय। युद्धमें मान्धाताके साथ रावणका सख्य लाभ। रावणसे पितामहका वचन और वरदान। पातालमें रावणका कपिल-दर्शन। रावणका लङ्काप्रवेश और पति-शोक-सन्तप्ता शूर्पणखाको दण्डकारण्यमें जाकर रहनेका आदेश। इन्द्रजितका रावणको पहले-पहल देखना। रावणका मधुवन-गमन और मधुके साथ मैत्री। रावणद्वारा रम्भाधर्षण। इन्द्रको लेकर इन्द्रजितका लङ्कामें प्रवेश। इन्द्रकी मुक्ति और अहल्याका वृत्तान्त। अर्जुनके साथ रावणके युद्धादिकी कथा। बालिके साथ रावणकी मैत्री। हनुमानजीका जन्म वृत्तान्त। वालि और सुग्रीवका जन्म-वृत्तान्त। रावण और सनत्कुमारके संवादका वृत्तान्त। रावणके श्वेतद्वीपमें जानेकी कथा। ऋषियों द्वारा कथित रामजीके राजसभाकी कथामाला सम्पूर्ण।

रामजीकी राजचर्या। राजाओंका अपने-अपने राज्यको लौट जाना। वानरों और राक्षसोंका अपने-अपने घर जाना। पुष्कलरथका आना। सीतारामका अशोकवन-विहार। सीताजीका अपवाद सुनकर लक्ष्मणजीसे सीताजीको लेजानेका रामजीका आदेश। वाल्मीकिके तपोवनमें लक्ष्मणद्वारा सीताजीका छोड़ा जाना। वाल्मीकिके आश्रममें सीताजीका जाना। सुमन्त्र और लक्ष्मणकी बातचीत। रामजीके पास लक्ष्मणजीका आना। कार्यार्थी प्रजाको बुलानेके लिये लक्ष्मणजीसे रामजीका आदेश। लक्ष्मणजीसे रामजीका निमि और वसिष्ठजीका वृत्तान्त कहना। ययातिका उपाख्यान सुनाना। रामजीके समीप सारमेयका जाना। गीध और उल्लूका मुकदमा। लवणासुरको मारनेके लिये शत्रुघ्नजीको रामजीकी आज्ञा।

शत्रुघ्नजीका अभिषेक। वाल्मीकिके आश्रममें सीताजीके पुत्र होना। वाल्मीकिद्वारा कुश और लवका नामकरण। मान्धाताका उपाख्यान। शत्रुघ्नद्वारा लवणासुरका बध। मथुरा-राज्य-स्थापन और शासन। वाल्मीकिके आश्रममें शत्रुघ्नजीका रामचरित सुनना। पुत्रशव लेकर किसी ब्राह्मणका रामजीके पास आना। रामजीके द्वारा तपोरत शूद्रशम्बूकका शिर-च्छेदन। दण्डोपाख्यान वर्णन। अश्वमेधयज्ञका प्रस्ताव। वृत्रवध, इन्द्राश्वमेध वर्णन। ईलोपाख्यान। रामजीका नैमिषारण्यमें प्रवेश। रामजीके यज्ञमें वाल्मीकिका शिष्योंके साथ आना। कुशीलवके द्वारा रामायण-गान। कुशीलवको सीताका पुत्र जानकर सीताको लानेके लिये दूतोंका भेजा जाना। रामसभामें सीताजीका आगमन और फिर पाताल-प्रवेश। पृथ्वीसे रामचन्द्रजीकी सक्रोधोक्ति। कौशल्यादिका देह-त्याग। रामजीके पास युधाजितके पुरोहित गर्गका आना। अङ्गद और चन्द्रकेतुका राज्याभिषेक। रामजीके पास तपसीके रूपमें कालका आना। दुर्वासाका आगमन। लक्ष्मणजीका निकाला जाना। कुशीलवका अभिषेक। वानर, राक्षस और पौरादि-सहित रामजीका सरयू-प्रवेश। रामायण माहात्म्य।

आगे चलकर वाल्मीकीय रामायणके अतिरिक्त और रामायणोंकी विशेष सूची हम उतनी ही देंगे जितनी कि वाल्मीकीय रामायणसे भिन्न है और वर्णनीय रामायणकी विशेषता है। ऐसा प्रवाद है कि वाल्मीकीय रामायण आदि रामायण नहीं है। आदि रामायण भगवान् शङ्करकी रची हुई बहुत बृहत् पोथी है जो अब उपलब्ध नहीं है। इसका नाम महारामायण बतलाया जाता है। यह स्वायम्भुव मन्वन्तरके पहले सतयुगमें भगवान् शङ्करने पार्वतीजीको सुनाया था। इसमें ३ लाख ५० हज़ार श्लोक हैं और ७ काण्डोंमें विभक्त है। पण्डित धनराजशास्त्रीने उसकी संक्षिप्त विषय-सूची इस प्रकार दी है—

"इसमें विलक्षणता इतनी है कि साथही साथ वेदान्तवर्णन है और नवरसोंमें उसका विकास दिखाया है। विशेष बात यह है कि ९९ रास कनक-भवन-विहारीके वर्णन किये हैं। कनकभवनकी शोभा, उनकी अन्तरङ्गिणी, बहिरङ्गिणी सखी, अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग सखा अष्टयाम विहार, सहचर, अनुचर, किङ्कर, दास, अनुदास, एवम् सहचरी, अनुचरी, किङ्करी, दासी, अनुदासी, सेवक, सेविकिनि अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग-भेदसे लिखा है और अवध-राजश्री-वर्णन विशेष है। अयोध्याका विस्तार, आयाम, सरयू आगमन हेतु, दारुका-वन, नागेश्वर-स्थापन, चन्द्रहरि-स्थापन, अयोध्याके आठ प्राकार, बसनेका विस्तार, कहाँ कौन थे, बाज़ार एवम् जनकपुर प्राकार, बसनेका प्रकार, मिथिलापुर-महिमा, महाराजका पहुनाई जाना, आना, प्रत्येक ऋतुका पृथक् पृथक् चन्द्रोदयमें रास-वर्णन (जिसको अब चनवख कहते हैं), मिथिलाकी आयी हुई सखी, सहचरी, अनुचरी, दासी, अनुदासी, सेवक-सेवकिनीके साथ फाल्गुन-विनोद, श्रावण-विनोद, समय-समयके उत्सव, कौशल्यादि माताओंकी दत्ता सखी सहचरी, दासी अनुदासी, सेवक-सेवकिनीका अन्तरङ्ग बहिरङ्गभेद और इन सबको वेदान्तिक व्यवस्थामें संसृति-मूलक दिखलाते हुए नाना प्रकारकी स्तुति विलास-वर्णन किया है। यौवराज्यकारण, देव-प्रेरणा, शारदामत-विपर्यय, मन्थरा-कैकेयी-संवाद, राजमहल-निरूपण, कोपागार-वर्णन, प्रवेश, हेतु, शृङ्गारभवन, चन्द्रभवन, सूर्यभवन, ताराभवन, साम्राज्यभवन, सभाभवन, गुरुजनभवन, गुरुभवन, भोजन-प्रकार, स्थैर्य्य-नियम, राज्य-नियम, शापकारण, दशरथ-मरण, भरतयात्रा,

भरतविलाप, निषाद-समागम, नावपर संवादादि अनेक रहस्य विचित्र स्थितिसे सविस्तर वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ अत्यन्त बृहद् होनेके कारण इसके प्रकरण यथाक्रम नहीं लिखे जाते हैं, किन्तु यह देखने, सुनने और अनुभव करने ही पर निर्भर करना उचित समझकर छोड़ा जाता है। दण्डकारण्य उत्पत्ति, उनमें महाराजका निवासहेतु, प्रवर्षण-निवास, शिलाभाग्य, वानरी-सेना-सङ्गठन, सीता-अन्वेषण, समुद्रमहिमा, हनुमानयात्रा, लङ्कावर्णन, मुद्रिकाप्रदान, सीता सन्देश-प्राप्ति, महाराजका शोक-हर्ष, सेतुबन्धनक्रिया, रामेश्वर-स्थापन, स्थापनामें रावण आगमन, सस्त्रीक महाराजका स्थापन, रावण-पाण्डित्य, महाराजकी सौम्यता, विभीषण-शरणागति, महाराजका औदार्य, लङ्काविजय, पुनः अयोध्यागमन, भरतमिलाप, राज्याभिषेक, सत्सङ्ग, प्रश्नोत्तर, भक्तिरहस्य-वर्णन, भक्ति-रामसंवाद, कालवार्त्ता, चतुर्व्यूह-सहित अयोध्या निजधाम-गमन, रामाश्वमेध, लवकुश-युद्धादि, समस्त विचित्र भावसे ऐतिहासिक, वेदान्तिक, यौगिक तत्त्वके साथ सविस्तर वर्णन है, जो सूची लिखनेके बाहर है"।

संवृत-रामायण

इसमें २४ हज़ार श्लोक हैं। इसके कर्त्ता नारद हैं, इसका समय रैवत-मन्वन्तरका पाचवां सतयुग है। इस रामायणका समस्त-स्वरूप पूर्ववत् है। परन्तु विलक्षणता यह है कि स्वायम्भुव और शतरूपाने, जिनसे नर-सृष्टि कही जाती है, तपस्या करके भगवान्के सदृश पुत्रकी याचना की है। उनके वरदानके अनुसार वे रैवत-कल्पमें दशरथ कौशल्या हुए जो राम-जन्मका कारण बताया जाता है, उसी राम-चरित्रका वर्णन विस्तार रूपसे इस रामायणमें सप्त-सोपानमें लिखा है।"

अगस्त्य-रामायण

"इसमें १६,००० श्लोक हैं। इसको अगस्त्यमुनिने स्वारोचिष मन्वन्तरके दूसरे सतयुगमें बनाया है। इसकी छाया शिवजीके अगस्त्याश्रमपर जानेवाली कथामें गोसाईं तुलसीदासजीकी रामायणमें मिलती है। इसमें भानुप्रताप अरिमर्दन कल्पका रामजन्महेतु जो दिखाया गया है उसका पूर्ण चरित्र सप्तसोपानमें विशेष रूपसे लिखा है। इसमें राजा कुन्तल और सिन्धुमतीका दशरथ और कौशल्या होना बताया गया है। यहाँ जानकी जन्म वार्ण्णेय यज्ञभूमि-शोधनमें दिखलाया गया है। और भी समुद्र उत्पत्ति, मुद्रिकाप्रदान-कारण, रामेश्वर-स्थापनकारण, ऋष्यमूक पर्वतकी स्थिति, मय दुन्दुभीकी उत्पत्ति, काल-विग्रह कारण, विशेष रूपसे दिखलाया गया है।"

लोमस-रामायण

"इसमें ३२,००० श्लोक हैं। इसको लोमस ऋषिने स्वायम्भुव मन्वन्तरके १ हज़ार बासठवें त्रेतामें बनाया। इसमें जलन्धरके कारण रामावतार जो हुआ है उस रामचरितको उसी सप्तसोपानमें लिखा है। यहां राजा कुमुद वीरमतीका दशरथ कौशल्या होना बताया है। यहाँ जानकी-जन्मका हेतु, मिथिलेशके शिकारमें वनमें सम्प्राप्त योगमाया-दर्शन है। इसमें सती-व्यामोह और उनका त्याग, शम्भु-प्रतिज्ञा, काम-प्रेरणा, काम-यात्रा, कामदहन, रति-वरदान, पार्वती-विवाह विशेष रूपमें लिखा है।"

मञ्जुल-रामायण

"इसमें १ लाख २० हज़ार श्लोक हैं। इसको सुतीक्ष्ण ऋषिने स्वारोचिष मन्वन्तरके १४वें त्रेतामें बनाया। यह भी सप्तसोपानबद्ध भानुप्रताप अरिमर्दनकी कथा विशेष, उनकी यज्ञव्यवस्था, विभ्रम-कारण, शापहेतु विशेष है। महारानी और पवनसुतका अशोकवाटिका-संवाद, मुद्रिकाकी कथा-कारण, सीताका चकित होना आदि अद्भुत् है। एवम् सन्देश-प्राप्तिके समय महाराजका हनुमान्‌के प्रति भक्ति-व्याख्या विशेष है तथा शवरीके प्रति नवधा-भक्ति-वर्णन, भक्तिलक्षण, भक्तलक्षण, रागानुगा वैधी-भक्ति-निरूपण विशेष है।"

सौपद्य-रामायण

"इसमें ६२,००० श्लोक हैं। इसको अत्रि-ऋषिने रैवत मन्वन्तरके १६वें त्रेतामें बनाया। यह भी सप्तसोपानबद्ध है। इसमें जनक वाटिका-निरूपण, माली-राम-संवाद, अद्भुत् नीति-प्रीति, भक्ति-रस-सानी वाणी-विलास लिखा है तथा नगरदर्शन, व्यापारियोंके प्रेम-कथन, मैथिल नारियोंके स्नेह-कथन, वालक-प्रेम, स्नेह-विभावना, विवाहतरङ्ग, हासविलास विशेष रूपसे वर्णित है तथा जनकनन्दिनी विदा-वर्णन, विवाह-कौशल। नारियोंके स्नेह-कथन, हास-विलास एवम् वनयात्रा-कालमें ग्रामवधूटी नेहकथन, ग्रामवधूटी विलाप-वर्णन तथा हरण-कालमें जनकनन्दिनी-विलाप, रघुनन्दन-विलाप, विशेष रूपमें ऐक्य, शवरी-चरित्र, नारद-मिलन, सुग्रीव-मैत्री, सकारण प्रयोजन सबीज दर्शाया गया है। सीताका अग्नि अर्थात् पर-पुरुषके यहाँ सुपुर्दगी, अग्निका भगवत्-विश्वास, अग्निको क्यों सौंपा? यह बहुत स्पष्ट रूपमें दर्शाया गया है।"

रामायण-महामाला

"इसमें ५६,००० श्लोक हैं। इसका समय तामस मन्वन्तरका दशम त्रेता है। इसमें शिव पार्वतीका संवाद है। यह भी सप्तसोपानबद्ध है और शङ्करजीका नीलगिरिपर मराल वेषसे निवास, मराल होनेका कारण, काकसे कथा-श्रवण, गरुड़-उपदेश, गरुड़-व्यामोह, भक्तके ज्ञान होनेपर भी मोहवद्ध होनेका कारण और शङ्करसे मुलाकात होनेपर भी उनके न समझानेका हेतु और तत्त्व, भुशुण्डिके प्रति भेजना, वहाँ मोह-निवृत्तिका कारण आदि विशेष रूपसे दर्शाया गया है। इसमें विभीषण शरणागति, सुग्रीव शरणागति, कौशल्या विश्वरूप-दर्शन, सती-विश्वरूप-दर्शनका विशेष प्रकार और हेतु दर्शाया गया है। महाराजके रामेश्वर आलम्बका विशेष कारण और प्रयोजन दिखलाया गया है।"

सौहार्द-रामायण

"इसमें ४०,००० श्लोक हैं। इसको शरभङ्ग-ऋषिने वैवस्वत मन्वन्तरके नवम त्रेतामें बनाया। इसमें दण्डकारण्यकी उत्पत्ति, दण्डकारण्यको शाप, दण्डकारण्यमें महाराजके जानेका हेतु, नारद व्यामोहका कारण, काम-विजयकी अहमिति, शीलनिधिका चरित्र, उनका स्वयम्वर, कन्या-सौन्दर्य, नारद-विभ्रम, सौन्यर्य याचना, महाराजके न देनेका हेतु, रुद्रगणका

परिहास, छलका हेतु, नारद-क्रोध-वर्णन, शाप-वर्णन, शापग्रहण-कारण, अनुग्रह-उद्धार, विशेष वर्णनपूर्वक सोपानबद्ध लिखा गया है। शूर्पणखा-आगमन, कामवशित्व, छलनविधि, नासिकाकर्ण-निपात, खरदूषण युद्ध, विशेष दिखाया गया है। रावण मारीच-संवाद, कपट कुरङ्ग-व्यवहार, हेम-कुरङ्गमें जानकी महाराणीका आलोभ, महाराजको उसमें प्रवृत्तिका कारण, लक्ष्मणका आह्वान करना, लक्ष्मण और महाराणीका मर्म-वचन, धनुषरेखाकरण, उसकी शक्तिवर्णन कि जिसके भीतर त्रैलोक्यके वीर नहीं जा सकते थे। यहाँ धनुष-विद्याका महत्त्व पूर्णरूपसे दिखाया गया है। रावणका ब्राह्मण रूपान्तर, भिक्षा मांगनेका कारण, महाराणीका उसके छलमें आ जानेका हेतु, रेखाके बाहर निकलनेका हेतु, रावणद्वारा हरण और विलाप, जटायु-युद्ध-निरूपण, उसका आहत होना, उसकी गति और मोक्ष, महाराजका आश्वासन, फिर महाराजका वैकल्य, पशुपक्षी, जङ्गम, स्थावरका सम्भाषण, विरहसे अथवा आनन्दसे एक ऐसे स्वरूपमें मनुष्य स्थिर हो सकता है कि जिसमें इन सबसे भी सम्भाषण कर सकता है और सुन सकता है। वही अवस्था इसमें विशेष रूपसे वर्णित है। महाराज और लक्ष्मणजीको वानरी भाषा समझना और बोलना पड़ा है, एवम् इसी प्रकार राक्षसोंकी भाषा, पशु-भाषा आदिकी विशेष शृङ्खला बनायी गयी है।

रामायण-मणिरत्न

"इसमें ३६,००० श्लोक हैं। इसका समय तामस मन्वन्तरका १४वां त्रेता है। यह वसिष्ठ अरुन्धतीका संवाद है। सप्तसोपानबद्ध रामायण-मात्र हुआ करते हैं। इसकी सहेतु व्याख्या, पञ्चवटीकी उत्पत्ति, पञ्चवटीकी संज्ञा, गोदावरी-तट-निवास-कारण, गोदावरीकी उत्पत्ति, चित्रकूट-निवास-कारण। चित्रकूट-महत्त्व, कामद-शिखर-वर्णन, कामद-महत्त्व, चित्र-कूट रासस्थान, वाल्मीकि-सम्मिलन, निवासस्थान, प्रश्नोत्तर-समीक्षा, देवाश्रम, अत्रिमिलन, अनसूया नारीधर्म-शिक्षा विशेष रूपसे दिखलाया गया है। एवम् अयोध्या रासस्थान, चन्द्रोदय उर्फ़ चनवखवर्णन, प्रमोद-वन-विहार, श्रावण-उत्साह, वसन्तोत्सव, फाल्गुन-उत्सव, (मिथिलोत्सव और अयोध्या-उत्सव) चित्रादि सखियोंके साथ रङ्गस्पर्धा, सखाओंको व्यामोह, महाराजका निवारण, रङ्गपञ्चमी, (चैत्रवदी पञ्चमी) शीतला-अष्टमी इत्यादि विशेष रूपसे वर्णित है। एवम् सीताराम-मिलन लङ्कामें विशेष दिखाया है। वेद-स्तुति, शम्भु-स्तुति, इन्द्र-स्तुति, ब्रह्मा-स्तुति एवम् गङ्गा-स्तुति आदि अनेकानेक स्तोत्र इस रामायणके अन्तर्गत हैं। अन्तिम राज्यसिंहासनासीन महाराजका सत्सङ्ग, उसमें गुरुगीता, देवगीता, भक्तिगीता, ज्ञानगीता, कर्मगीता, शिवगीता, वेदगीता (सात गीता) इस रामायणमें निबद्ध हैं।"

सौर्य्य-रामायण

"इसमें ६२,००० श्लोक हैं और यह हनुमान् सूर्य्यका संवाद है। इसका समय वैवस्वत मन्वन्तरका २०वां त्रेता है। इसमें हनुमत्-जन्म, शुक-चरित्र, शुकके रजक होनेका कारण और उसके द्वारा जानकी निस्सारण दण्ड-विशेष बताया है। लौटती समय इन्द्रावल-पुरका उतरना, महाराणी अञ्जनी और हनुमान्‌जीका संवाद, अञ्जनीका हनुमान्‌जीके प्रति

मातृ धिक्कार, पश्चात् प्रसन्नता एवम् सीता-मिलन और उनपर भी बौछार, प्रसन्नता, महाराज-का सम्मिलन, उनपर छींटे, पुनः लक्ष्मण-मिलन, उनकी यथार्थ सराहना, ऋक्षराज जाम्बवान्‌के बल-पराक्रमका वर्णन, उनका आतिथ्य-सत्कार, प्रयाग आगमनादि विशेष वर्णन है।"

चान्द्र-रामायण

इसमें ७५,००० श्लोक हैं। यह हनुमत्-चन्द्रमा-संवाद है। इसका समय रैवत मन्वन्तरका ३२वां त्रेता है। इसमें नारदतप, इन्द्रकामप्रेरणा, नारद-व्यामोह, भरत-चित्रकूट-यात्रा, केवट-संवादका विशेष रूपसे वर्णन है। केवटका पूर्व-जन्म-संस्कार, भरद्वाज समागम विशेष दिखाया गया है। इसमें जनकनन्दिनीके शोधमें विवर-प्रवेश और एक स्त्रीका सम्मिलन, सम्पाति-चरित्र विशेष वर्णन है। चन्द्रमा-ऋषिका आगमन-कारण, सम्पातिपर दया, वानरी सेना मिलन-प्रकार, पक्ष अनुकरण, जटायुपर विलाप, गृध्रकी दूर-दर्शिता और दूर दृष्टि विचित्र रूपसे वर्णित हैं।"

मैन्द-रामायण

"इसमें ५२,००० श्लोक हैं। यह मैन्द-कौरव-संवाद है, इसका समय रैवत मन्वन्तरका २१वां त्रेता है। इसमें जनकनगर वाटिकाप्रसङ्ग, गुरुसेवा, माली-संवाद, अहिल्या-उद्धार, गङ्गावर्णन, गङ्गाकी आत्मीयता विशेष दिखाया है। रामेश्वरमाहात्म्य, रावण-मन्त्र, विभीषण-मन्त्र, हनुमान्‌जीका वाटिकाप्रवेश और बन्धन, लङ्कादहन विशेष रूपमें लिखा है।"

स्वायम्भुव-रामायण

"इसमें १८,००० श्लोक हैं। यह ब्रह्मा-नारद-संवाद है, इसका समय स्वायम्भुव मन्वन्तरका ३२वां त्रेता है। इसमें गिरिजापूजन, विवाहभङ्ग, वनअटन, सुमन्तु-विलाप, गङ्गापूजन, सीताहरण विशेष है। अद्भुतता यह है कि रावणको मुनिदण्ड, मन्दोदरि-गर्भसे सीतोत्पत्ति, कौशल्याहरण, दीर्घबाहु, दिलीप, रघु, अज, दशरथकी परीक्षा विशेष कही गयी है।"

सुब्रह्म-रामायण

इसमें ३२,००० श्लोक हैं। इसका समय वैवस्वत मन्वन्तरका १३वां त्रेता है। इसमें प्रयागमाहात्म्य, भारद्वाजदर्शन, भरद्वाजकी भरत पहुनाई, देवतामन्त्र, तामस-मिलन, चित्रकूट-निवास, अनुसूया-रहस्य विशेष कहा है।"

सुवर्चस-रामायण

"इसमें १५,००० श्लोक हैं। यह सुग्रीव तारा-संवाद है। इसका समय वैवस्वत मन्वन्तरका १८वां त्रेता है। इसमें किष्किन्धाके प्रति लक्ष्मणका कोप, सुग्रीव-मिलन, सीतादर्शनकी ताराको उत्कण्ठा और लौटानीमें दर्शन, वालि-तारा-संवाद, वालि-राम-संवाद, रावण-दरबार, सभाप्रसङ्ग, मन्दोदरीका समझाना, सुलोचना-विलाप, समुद्र-गाम्भीर्य,

लक्ष्मणशक्ति, सञ्जीवनी आनन्द, पर्वत-वर्णन, सपर्वत हनुमानजीका अयोध्या-आगमन, भरत-हनुमान-संवाद, धोबी-धोबिनका-संवाद, रावण चित्रोल्लेखनपर शान्ताकी चुगली, शान्ताके प्रति सीताका शाप, उनकी पक्षी योनिकी प्राप्ति, सीता-निस्सारण, लवकुशकी उत्पत्ति, अश्व बाँधना, लवकुश-युद्ध, अयोध्यावासियोंका पराजय, महारावण-युद्ध, बध, लवणासुर युद्ध, बध, राज्य-विभाग, वैकुण्ठगमन विशेष रूपसे लिखा गया है।"

देव-रामायण

"इसमें १ लाख श्लोक हैं। यह इन्द्र-जयन्त-संवाद है, इसका समय तामस मन्वन्तरका छठा त्रेता है। इसमें जयन्तका काक-परिवर्तन, रामपरीक्षा, कोप, अशरण्यता, नारद-मिलन, उपदेश, रामशरणागति, एवम् राम-विजय, भरत-विजय, शत्रुघ्न-विजय, हनुमान्-विजय, बन्दर-बिदाई, अङ्गद-व्यामोह, विभीषण-पुत्रकी अयोध्याकी कोतवाली, जानकी-विनय, जानकी-नाटक, नाम, रूप, लीला, धाम चतुर्व्यूह-भक्ति, धाम-महिमा, सरयू-महिमा, हनुमत्-राज्याभिषेक, हनुमत्-कार्य, उपासनाविधि, सत्सङ्ग-महिमा, माधुर्य, तीर्थोंका परस्पर-सत्सङ्ग, धाम और पुरी निरूपण, नगर-निरूपण, ग्राम-निरूपण, भाषा-परिवर्तनविधि, शब्द परिशिष्ट-वर्णन।"

श्रवण-रामायण

"इसमें १ लाख २५,००० श्लोक हैं। इसमें इन्द्र-जनकका संवाद है। इसका समय स्वायम्भुव मन्वन्तरका ४०वां सतयुग है। इसमें दशरथका अहेर-वर्णन, श्रवणकुमारकी मातृ-पितृभक्ति-वर्णन, श्रवण-विवाह, पातिव्रत-निरूपण, श्रवणवध, उनके पिताका दशरथके प्रति शाप, मन्थराकी उत्पत्ति, मृगी-शाप, भरतकी मातामहीका सख्य, दशरथ प्राणघात-कारण, सुमन्त-स्मरण, अष्टसामन्त, अष्टसूर, सोलह-सामन्त, राज्याङ्ग, विशेष रूपसे वर्णन किया गया है। चित्रकूटमें भरत-राम संवाद, वसिष्ठ मध्यस्थका भाषण, जनक-आगमन, मिथिला-समाज, अवध-समाज, एकत्र-स्थितिसभा, पादुकायाचना, पादुका राज्यप्रसङ्ग, नन्दि-ग्राम-निवास, राजभारानुवर्तन पादुका द्वारा विशेष कहा है।"

दुरन्त-रामायण

"इसमें ६१,००० श्लोक हैं। इसमें वसिष्ठ जनकका संवाद है। इसका समय वैवस्वत मन्वन्तरका २५वां त्रेता है। इसमें भरत-महिमा, भरत-शपथ, भरत-विलाप, कैकेयीक्षोभ, भरतजीकी श्रीरामजीके लौटालनेपर तत्परता, लक्ष्मणरोप, निषाद-भरत-संवाद, निषादरोप, विभ्रम, चूड़ामणिकी कथा, चूड़ामणि चिह्न, मुद्रिका चूड़ामणिका परिवर्तनहेतु, सीता-सन्देश-प्राप्ति, सीता-दौर्बल्य, प्रवर्षण-शैलनिवास, किष्किन्धावर्णन, संसार भरके वानरोंपर वालिसुग्रीवका अधिकार, देवताओंके वानर होनेका कारण, प्रयोजन, दुन्दुभी अस्थि-कालवर्णन, श्रीरामचन्द्रजीकी वालिवध-प्रतिज्ञा, मधुवनप्रशंसा, मधुवन-रक्षाविधि, समुद्रतीर अङ्गद-प्रलाप-कलाप, वानरोंका बल-भाषण, हनुमत्-मौनकारण, स्मरणसे अनन्त बल-प्राप्ति, रामप्रसादकी अधिकारिता, लङ्कादहन, विभीषण गृह बचनेका कारण, हनुमान्‌जीके न जलनेका

हेतु, विभीषण राज्याभिषेक कारण, समुद्रके प्रति विनय, समुद्रभर्त्सना, समुद्रको डर, कम्पन, समुद्र शरणागति, समुद्रद्वारा कटक उतारनेका प्रकार निर्वाचन नलनील-सामर्थ्य, उपल-सन्तरण प्रकार आदि कथा विशेष दिखायी है।"

रामायण-चम्पू

"इसमें १५,००० श्लोक हैं और शिव-नारद-संवाद है। इसका समय श्राद्धदेव मन्वन्तरका प्रथम त्रेता है। इसमें सप्तसोपान संक्षेपतः है। रामायण चित्र-वर्णन चम्पूका कार्य है। इसमें शीलनिधि राजाके वहाँ दोनों रुद्रगणोंका आगमनकारण, नारदका परिहास, नारद-क्रोध, रुद्रगणके प्रति शाप, वीरभद्रकी उत्पत्ति, सती-देह-त्याग, दक्षयज्ञ-विनाश, शिव-अखण्ड-समाधि, त्रिपुर उत्पत्ति, पार्वती रूपसे हिमाचलके वहाँ उत्पत्ति और तप, काम-प्रेरणा, काम-कलाप, शम्भुनयन, ज्वालवर्णन-कामदहन, पार्वती-विवाह, मुण्डमाल-धारण-कारण, गणेश-उत्पत्ति, स्वामि कार्त्तिकेय उत्पत्ति, वैषम्यभाव, कैलाश-स्थिति, रामभक्ति प्रकार, रामध्यान, राम-वन्य-स्वरूप, वीरस्वरूप, इन्द्ररथ-प्रेषण, पाताल-आगमन, अरुण-व्यवहार, अरुणगरुड़-संवाद, कालनेमि छल, सञ्जीवनी-महिमा, शक्ति लगनेसे सूर्य उदयमें मृत्युका हेतु, सुषेण वैद्यके आनयनकी कथा विशेष वर्णित है।"

और रामायणें

यहाँतक हम उन रामायणोंकी चर्चा कर चुके जो स्वतन्त्र रूपसे रामकी कथाके सम्बन्धमें लिखी गयी हैं। परन्तु उनकी संख्या इतनेसे ही पूरी नहीं होती। महाभारतमें भी वनपर्वमें रामायणकी पुरानी कथा गायी गयी है। १८हों पुराणोंमेंसे रामायणकी कथा हर एकमें आयी है। ब्रह्माण्डपुराणमें जो रामायणी कथा है वही अलग करके अध्यात्म-रामायणके नामसे प्रकाशित हुई है। उसकी चर्चा हम पहले कर आये हैं, परन्तु आगेके अध्यायोंमें हम पुराणोंका विषय अलग-अलग देनेवाले हैं, इसलिए यहाँ इसी जगह समाप्त करते हैं।

महाभारत-खण्ड

पचीसवाँ अध्याय

महाभारत

महाभारतकी रचना वेदव्यासकी बतायी जाती है, जिसका दूसरा संस्करण वादरायण व्यासने किया और तीसरा व्यासकी शिष्य परम्परामें सौतिने किया। हरिवंशपर्व मिलाकर महाभारतकी पोथी जो प्रचलित है एक लाख श्लोकोंकी है। यह १८ पर्वोंमें बँटी है। इन पर्वोंके अवान्तर भी एक सौ छोटे पर्व हैं, जिनको पर्वाध्याय कहते हैं। पर्वाध्यायोंके नाम यह हैं—

(१) अनुक्रमणिका पर्व
(२) पर्वसङ्ग्रह पर्व
(३) पौष्य पर्व
(४) पौलोम पर्व
(५) आस्तिक पर्व
(६) आदिवंशावतरण पर्व
(७) विचित्रसम्भव पर्व
(८) जतुगृहदाह पर्व
(९) हिडिम्ब पर्व
(१०) बकवध पर्व
(११) चैत्ररथ पर्व
(१२) पञ्चालीका स्वयंवर पर्व
(१३) क्षत्रिययुद्धमें जयपूर्वक पाण्डवोंका विवाहपर्व
(१४) विदुरागमन पर्व
(१५) राज्यलाभ पर्व
(१६) अर्जुन वनवास पर्व
(१७) सुभद्राहरण पर्व
(१८) सुभद्राहरणपर जौतुकाहरण पर्व
(१९) खाण्डवदाह पर्व
(२०) सभा-क्रिया पर्व
(२१) मन्त्रणा पर्व
(२२) जरासन्धवध पर्व
(२३) दिग्विजय पर्व
(२४) राजसूय पर्व
(२५) अर्घ्याभिहरण पर्व
(२६) शिशुपालवध पर्व
(२७) द्यूत पर्व
(२८) अनुद्यूत पर्व
(२९) अरण्ययात्रा पर्व
(३०) किर्मीरबध पर्व
(३१) अर्जुनाभिगमन पर्व
(३२) कैरात वा ईश्वरार्जुनयुद्ध पर्व
(३३) इन्द्रलोकाभिगमन पर्व
(३४) धर्म और करुणारसयुक्त नलोपाख्यान पर्व
(३५) कुरुराज युधिष्ठिर तीर्थयात्रा पर्व
(३६) यक्षयुद्ध पर्व
(३७) निवात-कवच-युद्ध पर्व
(३८) अजगर पर्व
(३९) मार्कण्डेय समस्या पर्व
(४०) द्रौपदी-सत्यभामा-संवाद पर्व
(४१) घोषयात्रा पर्व
(४२) द्रौपदीहरण पर्व
(४२क) जयद्रथ-विमोक्षण पर्व
(४२ख) सावित्री-माहात्म्य पर्व
(४२ग) रामोपाख्यान पर्व
(४३) कुण्डलाहरण पर्व
(४४) आरणेय पर्व
(४५) पाण्डवगणका विराट्-प्रवेश और समय-पालन पर्व
(४६) कीचकवध पर्व
(४७) गोहरण पर्व
(४८) अभिमन्यु और उत्तराका विवाह पर्व

(४९) सैन्योद्योग पर्व
(५०) सञ्जययान पर्व
(५१) धृतराष्ट्र प्रजागर पर्व
(५२) सनत्सुजात पर्व
(५३) यानसन्धि पर्व
(५४) भगवद्यान पर्व
(५४क) मातलि-उपाख्यान पर्व
(५४ख) गालवचरित पर्व
(५४ग) कृष्णका-सभाप्रवेश पर्व
(५४घ) विदुलापुत्र शासन पर्व
(५५) कृष्ण-कर्ण वादानुवाद पर्व
(५६) कुरुपाण्डव सैन्य-निर्याण पर्व
(५७) रथातिरथ संख्या पर्व
(५८) कोपवर्धन उलूकदूताभिगमन पर्व
(५९) अम्बोपाख्यान पर्व
(६०) भीष्माभिषेक पर्व
(६१) जम्बूद्वीप-सन्निवेश पर्व
(६२) द्वीप-विस्तार-भूमि पर्व
(६३) भगवद्गीता पर्व
(६४) भीष्मबध पर्व
(६५) द्रोणाभिषेक पर्व
(६६) ससप्तकबध पर्व
(६७) अभिमन्युवध पर्व
(६८) प्रतिज्ञा पर्व
(६९) जयद्रथबध पर्व
(७०) घटोत्कचवध पर्व
(७१) लोमहर्षण द्रोणवध पर्व
(७२) नारायणास्त्र-त्याग पर्व
(७३) कर्णवध पर्व
(७४) शल्यवध पर्व
(७५) ह्रदप्रवेश पर्व
(७६) गदायुद्ध पर्व
(७७) सारस्वत तीर्थ वंशानुकीर्तन पर्व
(७८) सौप्तिक पर्व
(७९) ऐशीक पर्व
(८०) जल-प्रदान पर्व
(८१) स्त्री-विलाप पर्व
(८२) ऊर्ध्व दैनिक श्राद्ध पर्व
(८३) चार्वाक-राक्षस-बध पर्व
(८४) धर्मराजाभिषेक पर्व
(८५) गृह्य-प्रविभाग पर्व
(८६) शान्ति पर्व
(८७) राजधर्मानुशासन पर्व
(८८) आपद्धर्म पर्व
(८९) मोक्षधर्म पर्व
(८९क) शुभ प्रश्नाभिगमन पर्व
(८९ख) ब्रह्म प्रश्नानुशासन पर्व
(८९ग) दुर्वासा प्रादुर्भाव पर्व
(८९घ) मायासे कथनोपकथन पर्व
(९०) आनुशासनिक पर्व
(९०क) भीष्म स्वर्गारोहण पर्व
(९१) आश्वमेधिक पर्व
(९२) अनुगीता पर्व
(९३) आश्रमवास पर्व
(९४) पुत्रदर्शन पर्व
(९५) नारदागमन पर्व
(९६) महाप्रस्थानिक पर्व
(९७) स्वर्गारोहण पर्व
(९८) खिल पर्व
(९८क) हरिवंश पर्व
(९९) विष्णु पर्व
(९९क) शिवचर्या पर्व
(९९ख) कंसवध पर्व
(१००) भविष्य पर्व

पौष्य, पौलोम, आस्तीक, आदि, वंशावतरण, सम्भव, जतुगृहदाह, हिडिम्बवध, चैत्ररथ, द्रौपदी स्वयम्वर, वैवाहिक, विदुरागमन, राज्यलाभ, अर्जुन वनवास, सुभद्राहरण, यौतुका-हरण, खाण्डवदाह और मयदर्शन यह सब आदि पर्वके अन्तर्गत हैं।

आदिपर्व

पौष्यपर्वमें उतङ्कका माहात्म्य वर्णित है। पौलोमपर्वमें भृगुवंशकी कीर्ति विस्तार-सहित कही गयी है। आस्तीकपर्वमें गरुड और समस्त सर्पोंकी उत्पत्तिका वर्णन है। समुद्र-मन्थन, उच्चैःश्रवाकी उत्पत्ति और महाराज परीक्षितके बेटेका सर्प-सत्रानुष्ठान बताया गया है। भरतवंशीय महात्माओंके पराक्रमका हाल वर्णन किया गया है।

सम्भवपर्वमें,—राजगण और अन्यान्य शूरों तथा महर्षि-द्वैपायनकी उत्पत्ति, देवताओंका अंशावतार, दैत्यदानव, नाग, यक्ष, सर्प, गान्धर्व, पक्षी आदि विविध प्राणियोंकी उत्पत्ति और भारत वंशख्याति, शकुन्तलाका वृत्तान्त, शान्तनुके घर गङ्गाके गर्भसे वसुओंकी उत्पत्ति और उनका स्वर्गारोहण, भीष्मका जन्म और राज्यत्याग, ब्रह्मचर्यावलम्बन और प्रतिज्ञापालन, भीष्मद्वारा चित्राङ्गदकी रक्षा और चित्राङ्गदके मारे जानेपर छोटे भाई विचित्रवीर्यकी रक्षा और राज्यस्थापन, अणीमाण्डव्यके शापसे धर्मराजकी मनुष्ययोनिमें उत्पत्ति, वरदानबलसे कृष्ण-द्वैपायनसे धृतराष्ट्र और पाण्डुका जन्म और पाण्डवोंकी उत्पत्ति, पाण्डवोंकी वारणावत-यात्रा-विषयमें दुर्योधनकी मन्त्रणा और पाण्डवोंके पास पुरोचनका भेजा जाना, राहमें हितके लिये विदुरद्वारा युधिष्ठिरसे म्लेच्छ-भाषामें उपदेश, विदुरके वाक्यानुसार सुरङ्गका बनना, पांचों बेटों सहित निद्रिता निषादीका प्रवेश और पुरोचनका जतुगृहमें जल जाना, घोर अरण्यमें पाण्डवोंसे हिडिम्बा राक्षसीकी भेंट, भीमद्वारा हिडिम्बवध और घटोत्कचकी उत्पत्ति, पाण्डवोंको व्यासदर्शन और उनकी आज्ञासे एक-चक्रानगरीमें ब्राह्मणके घर अज्ञातवास। वकराक्षस वध और उसको देखकर नगर-वासियोंका विस्मय, द्रौपदी और धृष्टद्युम्नका जन्म, ब्राह्मणके मुखसे द्रौपदीके स्वयंवरका वृत्तान्त सुनकर कुतूहलवश व्यासके आदेशानुसार पाण्डवोंका द्रौपदी-स्वयंवर देखनेको पाञ्चाल देशको जाना, गङ्गा तीरपर अङ्गारपर्ण-नामक गन्धर्वकी हार और अर्जुनके साथ उसका सख्य तथा उसके मुखसे तपती वसिष्ठ और और्वकी कथा, पाण्डवोंका पाञ्चाल-नगरमें प्रवेश, प्रतिस्पर्धामें राजाओंके बीच लक्ष्यभेद करके अर्जुनका द्रौपदी लाभ और युद्धमें उपस्थित होकर भीमसेन और अर्जुनद्वारा शल्य, कर्ण और दूसरे क्रोधान्ध राजाओंकी पराजय, उनका अलौकिक पराक्रम देखकर उन्हें पाण्डव समझकर उनसे मिलनेके लिये बलराम और कृष्णका भार्गवके घर जाना द्रौपदीके पांच पति होंगे, यह जानकर द्रुपद राजाका विमर्श, पञ्चेन्द्रका उपाख्यान, द्रौपदीका अमानुष-विवाह, धृतराष्ट्रका पाण्डवोंके पास विदुरको भेजना, विदुरकी उपस्थिति और कृष्ण-दर्शन, पाण्डवोंका खाण्डव-प्रस्थमें वास और अर्द्ध राज्यशासन, नारदके आज्ञानुसार द्रौपदीके निकट जाना, पाचों भाइयोंका नियम करना, सुन्दोपसुन्दकी कथा, द्रौपदीके साथ युधिष्ठिरके निर्जन गृहमें होने ब्राह्मणके उपकारके लिये अर्जुनका प्रवेश और शस्त्रास्त्र लेकर ब्राह्मणके गोधनको लौटालना, फिर नारदके नियम रक्षार्थ वीरवर अर्जुनका वन-गमन, पार्थके वनवास-कालमें नाग-कन्या उलूपीसे राहमें समागम और पुण्य तीर्थगमन, बभ्रुवाहनका जन्म, तपस्वी ब्राह्मणके शापसे ग्राहयोनिको प्राप्त, पञ्चस्वरूपा अप्सराका अर्जुनद्वारा शाप-विमोचन, प्रभास तीर्थमें कृष्णके साथ अर्जुनका समागम, कृष्णकी अनुमतिसे द्वारकासे अर्जुनद्वारा कामयानसे

सुभद्राहरण, कृष्णका जौतुक लेकर खाण्डवप्रस्थ जाना, अभिमन्युका जन्म, द्रौपदीके पुत्रोत्पत्ति, कृष्ण और अर्जुनका जल-विहारके लिये जमुना जाना और वहीं चक्र और धनुष पाना, खाण्डवदाह, मयदानव और भुजङ्गकी अग्निसे रक्षा, शार्ङ्गीके गर्भसे मन्दपालनामक महर्षिके तनयोत्पत्ति। पौष्य और सम्भवपर्व मिलाकर यह समस्त आदि पर्व हुआ। इसमें २२७ अध्याय हैं और ८८८४ श्लोक हैं।

सभापर्व

इस पर्वका विषयसार यह है—

पाण्डवोंके द्वारा सभाका निर्माण। किङ्करदर्शन। नारदके द्वारा लोकपालोंकी सभाका वर्णन। राजसूय यज्ञका आरम्भ। जरासन्धबध। श्रीकृष्णद्वारा गिरिदुर्गमें निरुद्ध राजाओंका मोचन। पाण्डवोंका दिग्विजय। राजसूय यज्ञमें भेंट लेकर राजाओंका आना। अर्घ्यदानपर वादानुवादमें शिशुपालका मारा जाना। यज्ञके ऐश्वर्यको देखकर दुःख और असूयायुक्त दुर्योधनसे भीमका उपहास करना। उससे दुर्योधनका क्रोधोदय। इस कारण द्यूतक्रीड़ाका अनुष्ठान। धूर्त शकुनिद्वारा पासेके खेलमें युधिष्ठिरका हारना। द्यूतसमुद्रमें डूबी हुई बहू द्रौपदीका धृतराष्ट्रद्वारा उद्धार। जुवा खेलनेके लिये पाण्डवोंको दुर्योधनका फिर ललकारना। फिर जीते हुए दुर्योधनके द्वारा पाण्डवोंका वनवासमें भेजा जाना। सभापर्वमें इन्हीं सब विषयोंका वर्णन है। इस पर्वमें ७८ अध्याय हैं और २५११ श्लोक हैं।

वनपर्व

यह पर्व बहुत बड़ा है। इसका विषयसार इस प्रकार है—

महामति पाण्डवोंके वनयात्रा करनेपर धर्मपुत्रके पीछे-पीछे पुरवासियोंका भी जाना। धौम्यमुनिके उपदेशके अनुसार अनुगत ब्राह्मणोंके भरणार्थ अन्न और ओषधिके निमित्त युधिष्ठिरद्वारा सूर्यकी आराधना। सूर्यके प्रसादसे अन्नकी प्राप्ति। धृतराष्ट्रद्वारा हितवादी विदुरका परित्याग। विदुरका पाण्डवोंके पास जाना और धृतराष्ट्रकी आज्ञासे फिर लौट आना। कर्णका उपहासवाक्य। वनवासी पाण्डवोंका वध करनेके लिये दुर्योधनकी सलाह। यह जानकर व्यासदेवका आना और दुर्योधनको वन जानेसे रोकना। सुरभीका उपाख्यान। मैत्रेयका हस्तिनापुरमें आना और धृतराष्ट्रको शाप देना। भीमसेनके साथ सङ्ग्राममें किर्मीरका मारा जाना। शकुनिने शठता करके पाण्डवोंको जीत लिया है, यह सुनकर वृष्णियों और पाञ्चालोंका युधिष्ठिरके पास आना। अर्जुनके द्वारा क्रोधान्वित कृष्णकी क्रोध-शान्ति। कृष्णके पास द्रौपदीका विलाप। कृष्णद्वारा पाञ्चालीको आश्वासन। सौभवधाख्यान। कृष्णद्वारा पुत्र-सहित सुभद्राका द्वारका पहुँचाया जाना। धृष्टद्युम्नका द्रौपदीके लड़कोंको पाञ्चालदेश ले जाना। पाण्डवोंका रमणीय द्वैत वनमें प्रवेश। वेदव्यासका आना और युधिष्ठिरको प्रतिस्मृति-नामक विद्या सिखाना। व्यासके जानेपर पाण्डवोंका काम्यक् वनमें प्रवेश। दिव्यास्त्र लाभके लिये अर्जुनका प्रवास। किरातरूपी महादेवके साथ अर्जुनका युद्ध। अर्जुनका लोकपालदर्शन और अस्त्र-प्राप्ति। अस्त्र-शिक्षार्थ महेन्द्र-लोक-गमन। यह सुनकर धृतराष्ट्रको अतिशय चिन्ता। युधिष्ठिरको परम तत्त्वज्ञ

बृहदश्वनामक महर्षिका दर्शन। अतिकातर हो उनसे युधिष्ठिरका परिताप और विलाप। नलोपाख्यान जिसमें नलका चरित और दमयन्तीका विपद्‌कालमें मर्यादा-पालन वर्णन किया गया है। महर्षि बृहदश्वसे युधिष्ठिरका अक्षहृदय-नामक विद्या पाना। स्वर्गसे पाण्डवोंके पास लोमस-ऋषिका आना और उनसे स्वर्ग गये हुए अर्जुनका वृत्तान्त कहना। अर्जुनका समाचार पाकर पाण्डवोंकी तीर्थ-यात्रा। तीर्थ-यात्राका फल और पुण्य कीर्तन। महर्षि नारदद्वारा पुलस्त्य तीर्थ-यात्राका वर्णन। पाण्डवोंका पुलस्त्य तीर्थमें जाना। इन्द्रकी प्रार्थना-पर कर्णका अपना कुण्डल दे डालना। गयासुरका यज्ञ। अगस्त्यका आख्यान और वातापि भक्षण। सन्तानके लिये अगस्त्य-ऋषिका लोपामुद्रासे विवाह करना। कुमार ब्रह्मचारी ऋष्य-शृङ्गका चरित्र। जमदग्नि पुत्र परशुरामका चरित्र। कार्तवीर्य बध। हैहय बध। प्रभासतीर्थमें वृष्णियोंके साथ पाण्डवोंका समागम। सुकन्याका उपाख्यान। शर्यातिके यज्ञमें च्यवनमुनिद्वारा दोनों अश्विनी-कुमारोंको यज्ञीय सोमरसका मिलना। अश्विनी-कुमारोंका च्यवनमुनिको जवान कर देना। मान्धाताका उपाख्यान। जन्तु नामक राजपुत्रका उपाख्यान। सोमक राजद्वारा बहुपुत्र लाभार्थ पुत्रविनाशद्वारा याग और शतपुत्र प्राप्ति। अत्युत्कृष्ट श्येनक पोताख्यान। इन्द्र, अग्नि और धर्मके द्वारा राजा शिविकी परीक्षा। अष्टावक्रीय उपाख्यान। जनक राजाके यज्ञमें नैयायिक श्रेष्ठ वरुणात्मज वन्दीके साथ विप्रर्षि अष्टावक्रका वादानुवाद। विवादमें वन्दीकी पराजय। पराजयके बाद अष्टावक्रद्वारा समुद्रमें डूबे हुए अपने पिता कहोड़का उद्धार। यवक्रीतका उपाख्यान। महानुभाव रैभ्यका आख्यान। पाण्डवोंकी गन्ध-मादन-यात्रा और नारायणाश्रमवास। उस समय सौगन्धिका लानेको द्रौपदीद्वारा नियुक्त भीमको रास्तेमें कदलीवनके बीच बैठे हुए हनुमान्‌जीका दर्शन। भीमद्वारा पद्म-वनभङ्ग और राक्षसगण और मणिमतादि यक्षोंके साथ तुमुल युद्ध। भीमका जटासुर राक्षसको मारना। वृषपर्वा राजर्षिके पास पाण्डवोंका जाना। पाण्डवोंका आर्ष्टिसेनके आश्रममें जाना और रहना। पाञ्चालीका भीमको उत्साहित करना। भीमका कैलाशपर चढ़ जाना और मणिमतादि यक्षोंके साथ घोरतर युद्ध। पाण्डवोंके साथ कुबेरका समागम। भाइयोंके साथ अर्जुनका समागम। सव्यसाचि अर्जुनकी दिव्यास्त्र प्राप्ति। इन्द्रके कामसे हिरण्यपुरवासी निवातकवच नामके दानवों और पुलोमपुत्र कालकेयोंके साथ पार्थका महायुद्ध और उनका पार्थके हाथों मारा जाना। महाराज युधिष्ठिरके सामने अर्जुनका अस्त्र-प्रदर्शन करनेकी इच्छा करना और देवर्षि नारदका मना कर देना। पाण्डवोंका गन्धमादनसे उतरना। इस महा-रण्यमें पर्वताकार शरीर विशिष्ट प्रबल भुजङ्गसे भीमका पकड़ा जाना। युधिष्ठिरका उसके प्रश्नोंका उत्तर देकर भीमको छुड़ा लेना। पाण्डवोंका काम्यक् वनमें लौट आना। पाण्डवोंका फिर दर्शन करनेके लिये वसुदेवका काम्यक् वनमें आना। मार्कण्डेय समस्याघटित नाना उपाख्यान। वेणपुत्र पृथुराजाका उपाख्यान। महानुभाव तार्क्ष्य-ऋषिका और सरस्वतीका संवाद। मत्स्योपाख्यान। मार्कण्डेय समस्या और पुरावृत्तकीर्तन। इन्द्रद्युम्नोपाख्यान। धुन्धुमारका उपाख्यान। पतिव्रतोपाख्यान। अङ्गिराका उपाख्यान। द्रौपदी और सत्यभामाका संवाद-वर्णन। पाण्डवोंका द्वैतवनमें फिर प्रवेश। घोष-यात्रा। गन्धर्वोंके द्वारा दुर्योधनका वन्दी होना। अर्जुनद्वारा गन्धर्वोंके हाथसे लज्जाभिभूत मन्दबुद्धि दुर्योधनका छुड़ाया जाना।

युधिष्ठिरका मृगस्वप्नदर्शन और काम्यक् वनमें लौट आना। बृहद्द्वणिक उपाख्यान। दुर्वासा-का उपाख्यान। आश्रमके बीचसे जयद्रथद्वारा द्रौपदीहरण और भीमसेनका वायुवेगसे उसके पीछे जाना। भीमद्वारा जयद्रथका पञ्चशिखीकरण। रामोपाख्यान। सावित्रीका उपाख्यान। इन्द्रके कहनेसे कर्णका दोनों कुण्डल त्याग देना और इतनेसे सन्तुष्ट होकर इन्द्रका कर्णको एक पुरुषघातिनी शक्ति देना। आरण्यका उपाख्यान। धर्मका अपने पुत्रको अनुशासन। वर पाकर पाण्डवोंका पश्चिमकी ओर जाना। यह सारी बातें वनपर्वमें वर्णन की गयी हैं। इस पर्वमें २६९ अध्याय हैं और ११८६४ श्लोक हैं।

विराट् पर्व

विराट्के नगरमें जानेपर श्मशानके बीचमें बहुत भारी शमीवृक्ष देखकर उसपर पाण्डवोंका अपने हथियार रख देना। पुरप्रवेश करके उनका छद्मवेषमें निवास। कामाभिभूत दुर्वृत कीचकका पाञ्चालीसे सम्भोग-प्रार्थना और वृकोदरद्वारा उसका वध। पाण्डवोंकी खोजके लिये दुर्योधनद्वारा चारोंओर दूतोंका भेजा जाना। दूतोंकी असफलता। पहले त्रिगर्तकी सेनाद्वारा विराट् राजाका गोधनहरण और उनके साथ विराट्का महासङ्ग्राम। विराट्का फँस जाना और भीमका त्रिगर्तोंसे उन्हें छुड़ा लेना। पाण्डवोंके द्वारा गोधनका फिर लौटाया जाना। कौरवोंके द्वारा गोधनहरण। युद्धमें अर्जुनके प्रकट होनेसे कौरवोंकी पराजय। अर्जुनका अपने विक्रमसे गोधनको लौटा लाना। सुभद्राके पुत्र अभिमन्युके साथ अपनी बेटी उत्तराको ब्याह देनेकी विराट्द्वारा प्रतिज्ञा। यह सब बातें विराट्पर्वमें वर्णित हैं। इस पर्वमें ६७ अध्याय हैं और २०५० श्लोक हैं।

उद्योगपर्व

पाण्डवोंका उपालव्यनामक स्थानमें ठहरना। दुर्योधन और अर्जुनका भगवान् वासुदेवके पास जाना और आनेवाले युद्धमें सहायता मांगना। कृष्णजीका निहत्थे सलाह देनेके पक्षमें अपनेको और अपनी एक अक्षौहिणी सेना युद्धके पक्षमें, दोनों उपस्थित करना और मन्दबुद्धि दुर्योधनका सेनाको पसन्द कर लेना और अर्जुनका निहत्थे भगवान् वासुदेवको पसन्द कर लेना। मद्रराज पाण्डवोंके पास जिस समय आ रहे थे, उसी समय पता लगाकर दुर्योधनका उपस्थित हो जाना और छलपूर्वक उपहार देकर सन्तुष्ट करके उनसे अपने पक्षमें सहायताका वचन ले लेना। मद्रराज शल्यका पाण्डवोंके पास आना और युधिष्ठिरको दिलासा देना। इन्द्रविजय-वर्णन। पाण्डवोंका कौरवोंके पास पुरोहितको भेजना। पाण्डवों-के भेजे पुरोहितके मुखसे इन्द्रविजयकी बात सुनकर विदुरकी सलाहके अनुसार शान्ति-स्थापनकी इच्छासे धृतराष्ट्रद्वारा सञ्जयनामक दूतका भेजा जाना। वासुदेव और पाण्डवोंका वृत्तान्त सुनकर चिन्ताके मारे धृतराष्ट्रको नींदका न आना। विदुरके मुखसे धृतराष्ट्रका विचित्र और हित वाक्य सुनना। सनत्सुजात ऋषिके मुखसे शोकाकुल धृतराष्ट्रका अत्युत्तम अध्यात्मवाद सुनना। प्रातःकाल राजसभामें सञ्जयद्वारा अर्जुन और वासुदेवका एकात्मभाव-कथन। महामति कृष्णका सन्धिस्थापनके लिये कौरवकी सभामें आना। दोनों पक्षोंकी

हिताकाङ्क्षाके लिये कृष्णके सन्धिस्थापनके प्रस्तावपर दुर्योधनका उत्तर। दम्भोद्भवका आख्यान। मातलिद्वारा अपनी बेटीके लिये वरान्वेषण। महर्षि गालवका चरित्र वर्णन। विदुलापुत्रका अनुशासन। कर्ण और दुर्योधन आदिकी दुष्ट-मन्त्रणा जानकर राजाओंके सामने कृष्णका अपना योगेश्वरत्वप्रदर्शन। कृष्णका कर्णको अपने रथपर चढ़ाना और सत्-परामर्श देना। मदगर्वित कर्णका चालाकीसे कृष्णका उत्तर देना। हस्तिनापुरसे उपप्लव्यका आकर पाण्डवोंके पास कृष्णका दौत्यवृत्तान्तवर्णन। कृष्णवाक्य सुनकर हित कार्यकी मन्त्रणा स्थिर करके पाण्डवोंकी सङ्ग्राम-सज्जा। हस्तिनापुरसे युद्धके लिये हाथी, घोड़ा, रथ और पैदलका चलना। सेनाकी संख्या। महायुद्धके एक दिन पहले दुर्योधनद्वारा उलूक नामके व्यक्तिका दौत्य कार्यपर नियुक्त करके पाण्डवोंके पास भेजा जाना। रथातिरथ संख्या। अन्वोपाख्यान। उद्योगपर्वमें यह सब वृत्तान्त वर्णित है। इसमें ८६ अध्याय हैं और ६६९८ श्लोक हैं।

भीष्मपर्व

सञ्जयद्वारा जम्बूखण्डका निर्वाण-वर्णन। युधिष्ठिरकी सेनाका अतिशय विषाद। दशाहव्यापी घोरतर सुदारुण युद्धकाल सम्बन्धी योग-विषयक नाना हेतुवादद्वारा महामति वासुदेवका अर्जुनके मोहजनित विषादको निवारण करना। कृष्णका रथसे उतरकर निर्भय-चित्त प्रतोदहस्त भीष्म-वधार्थ गमन। वाक्यरूप दण्डद्वारा कृष्णजीका अर्जुनके प्रति अभिघात। अर्जुनद्वारा शिखण्डीके सन्मुख स्थापनपूर्वक निशित शराघातसे भीष्मका भूमिपर गिराया जाना। भीष्मका शरशय्या-शयन। इन सब विषयोंका वर्णन भीष्मपर्वमें हुआ है। इस पर्वमें ११७ अध्याय हैं और ५८८४ श्लोक हैं।

द्रोणपर्व

प्रतापशाली द्रोणाचार्यका सेना पदपर अभिषेक। दुर्योधनको प्रसन्न करनेके लिये द्रोणाचार्यकी युधिष्ठिरको पकड़ लानेकी प्रतिज्ञा। संसप्तकके द्वारा युद्ध-स्थलसे अर्जुनका हटाया जाना। महाराज भगदत्तका सुप्रतीक नामी अपने हाथीपर इन्द्रकी तरह अदृश्य विक्रम-प्रकाश। अर्जुनद्वारा भगदत्तका वध। जयद्रथ आदि महारथोंके द्वारा अकेले बालक अभिमन्युका वध। अभिमन्युके वधसे क्रोधाभिभूत हो अर्जुनद्वारा रणभूमिमें सात अक्षौहिणी सेनाका वध और फिर जयद्रथका वध। महाराज युधिष्ठिरके आज्ञानुसार महाबाहु भीम और सात्यकीद्वारा देवगणोंसे अलङ्घनीय कुरुसैन्यके बीच प्रवेश। हतावशिष्ट संसप्तकोंका युद्धमें विनाश। अलम्बूष, श्रुतायु, जलसन्ध, विराट्, द्रुपद, भूरिश्रवा और घटोत्कच आदि अनेक वीर पुरुषोंका निपात। द्रोणाचार्यका वध। द्रोणाचार्यके युद्धमें गिर जानेपर क्रुद्ध अश्वत्थामाद्वारा आग्नेय नारायणास्त्रका प्रयोग। रुद्रमाहात्म्य कीर्तन। व्यासदेवका आना और कृष्ण और अर्जुनके माहात्म्यका वर्णन। यह सब विशेष भावसे द्रोणपर्वमें वर्णित है। इस पर्वमें १७० अध्याय हैं और ८९०० श्लोक हैं।

कर्णपर्व

मद्रराजकी सारथि कार्यपर नियुक्ति। पौराणिक त्रिपुरनिपातकीर्तन। युद्धयात्रा-कालमें कर्ण और मद्रराजका परस्पर वाक्-कलह। कर्णके तिरस्कारके लिये शल्यद्वारा

हंसकाकीय आख्यान कहा जाना। अश्वत्थामाद्वारा पाण्ड्यराजका विनाश। दण्डसैन्य और दण्ड बध। सब धनुर्धारियोंके समक्ष द्वैरथ-युद्धमें कर्णद्वारा धर्मराज युधिष्ठिरका जीवन-संशय। युधिष्ठिर और अर्जुनका परस्पर कोप। कृष्णद्वारा अर्जुनका अनुनय। वृकोदरद्वारा पूर्व प्रतिज्ञानुसार रणस्थलमें दुःशासनकी छाती फाड़कर शोणितपान। द्वैरथ-युद्धमें अर्जुनद्वारा महारथी कर्णका निपात। यह सब विषय कर्णपर्वमें वर्णित हैं। इसमें ६९ अध्याय और ४९६४ श्लोक हैं।

शल्यपर्व

कर्णबधके बाद मद्रेश्वर शल्यका सेनापति चुना जाना। नाना रथियोंका पृथक् पृथक् रूपमें रथयुद्ध-वर्णन। कौरव पक्षके प्रधान योद्धाओंका विनाश। धर्मराजद्वारा शल्य बध। बहुसंख्यक सेनाके मारे जानेपर और थोड़ी सेना बची रहनेपर दुर्योधनका ह्रद-प्रवेश और जलस्तम्भ करके रहना। व्याधाओंका भीमके पास आकर दुर्योधनका हाल कहना। धर्मराजके तिरस्कार वाक्यपर दुर्योधनका ह्रदके बीचसे निकलना। जिस स्थानपर भीमके साथ गदायुद्ध होता था, वहाँ सबके इकट्ठे होनेपर बलरामका आना और सरस्वती तीर्थ और अन्यान्य तीर्थोंका पुण्यत्व-वर्णन। दुर्योधन और भीमका तुमुल गदायुद्ध। भीमकी गदासे दुर्योधनका ऊरुद्वयभङ्ग। इस पर्वमें यह सब विषय वर्णन किये गये हैं। इसमें ५९ अध्याय हैं और ३२२० श्लोक हैं।

सौप्तिकपर्व

पाण्डवोंके रणक्षेत्रसे चले जानेपर जहाँ भग्नोरु दुर्योधन पड़ा था, वहीं सायङ्कालमें कृतवर्मा, कृप और अश्वत्थामा इन तीनों महारथियोंने उपस्थित होकर देखा कि राजा दुर्योधन भग्नोरु होकर रणभूमिमें पड़े हैं। इसपर क्रोधाभिभूत हो महारथी अश्वत्थामाने प्रतिज्ञा की कि धृष्टद्युम्नादि पाञ्चालों और अन्यान्य अमात्योंके साथ पाण्डवोंका विनाश जबतक न करूँगा तबतक कवच न उतारूगा। तीनों महारथी उस स्थानसे चले और सूर्यास्तके बाद एक महा-वनमें पहुँचे जहाँ एक बड़े वटवृक्षके मूलमें देखा कि एक बड़ा व्याल रातको बहुतसे कौओंका विनाश कर रहा है। अश्वत्थामाको बापके मारे जानेका स्मरण हुआ और क्रोधसे मन-ही-मन सोचा कि पाञ्चालोंका इसी प्रकार सुपुप्तावस्थामें मैं संहार करूँगा। फिर पाण्डवोंके शिविर द्वारपर उपस्थित होकर उन्होंने देखा कि एक गगनस्पर्शी प्रकाण्ड दुर्दर्शनीय घोर रूप राक्षस द्वारपर मौजूद है। इसने अस्त्रसञ्चालनद्वारा रुकावट डाली। अश्वत्थामाने विरूपाक्ष रुद्रकी उसी समय आराधना की और कृप और कृतवर्म्मा-सहित शिविरमें प्रवेश करके निद्रित धृष्टद्युम्न आदि सपरिवार पाञ्चालोंका और द्रौपदीके पाचों पुत्रोंका संहार किया। कृष्णजीके कौशलसे सात्यकी और पाचों-पाण्डव बच गये। शेष सभी नष्ट हो गये। अश्वत्थामाने अपने हाथसे पाञ्चालोंका वध किया था। धृष्टद्युम्नके सारथीने यह सब भयङ्कर व्यापार पाण्डवोंके पास आकर निवेदन किया। द्रौपदीने पुत्र शोकार्त्ता और भ्रातृवध कातरा होकर अनशनद्वारा प्राणत्यागका सङ्कल्प किया। पाण्डवोंने समझाया और रोका। भीम क्रोधपूर्वक गदा लेकर अश्वत्थामाके पीछे दौड़े। भीमके भयसे और देवप्रेरित हो अश्वत्थामाने "पृथ्वी अपाण्डव

हो जाय" इस शापोक्तिके साथ अस्त्र छोड़ा। कृष्णजीने निवारण किया। अश्वत्थामाके विद्रोहाचरणको देखकर अर्जुनने उसी अस्त्रसे उसको रोका। अश्वत्थामा और द्वैपायन आदिने परस्पर शाप प्रदान किया। जयश्री प्राप्त पाण्डवगणने अश्वत्थामासे मणि लेकर द्रौपदीको दिया। इस पर्वमें यह सब विषय वर्णित है। इसमें १८ अध्याय हैं और ८७० श्लोक हैं।

स्त्रीपर्व

प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्रने पुत्र शोकसे सन्तप्त होकर भीमकी विनाश-कामनासे कृष्णकी दी हुई लोहमयी भीममूर्त्तिको तोड़ डाला। फिर राजा धृतराष्ट्रको अतिशय शोक-सन्तप्त देखकर विदुरने मोक्ष-विषयक नाना हेतुवादद्वारा उनकी संसारकी मायाको दूर करके दिलासा दिया। शोकाकुल परिवारके सहित रणभूमि देखनेको धृतराष्ट्र गये। वहाँ जाकर वीर-वधुएँ अति करुण-स्वरसे विलाप करने लगीं। गान्धारी और धृतराष्ट्रको अतिशय क्रोध और मोह उत्पन्न हुआ। क्षत्राणियोंने स्वजनोंको हत और पतित देखा। पुत्रों और पौत्रोंके शोकसे गान्धारीके व्याकुल होनेपर कृष्णजीने उनके क्रोधकी शान्ति की। राजा युधिष्ठिरने शास्त्रानुसार राजन्योंकी प्रेत-क्रिया करायी फिर तर्पण आरम्भ हुआ। उस समय कुन्तीने प्रकट किया कि कर्ण मेरा गूढ़ोत्पन्न पुत्र था। इस पर्वमें यह सब विषय वर्णित है। इसमें २७ अध्याय हैं और ७७० श्लोक हैं।

शान्तिपर्व

यह पर्व ज्ञान गर्भ, नानाविध उपदेश और उपाख्यानोंसे परिपूर्ण है। इसमें धर्म-राज युधिष्ठिरको पिता, भ्राता, पुत्र, सम्बन्धी, मामा आदिके संहारसे वैराग्य हो गया। शर-शय्यापर पड़े भीष्मने युधिष्ठिरसे राजधर्मकी सम्पूर्ण व्याख्या की और आपद्धर्म भी समझाया है।

इस पर्वमें विशेष रूपसे इन विषयोंका वर्णन है। कर्णका जन्म-वृत्तान्त-कथन। कर्णको अत्रि शाप। कर्णकी अस्त्र-प्राप्ति। स्वयंवरमें दुर्योधनद्वारा कन्याहरण। कर्णका पराक्रम-प्रकाश। स्त्री-जातिके प्रति युधिष्ठिरका अभि-शाप। युधिष्ठिरका विलाप। ऋषि शकुनि-संवाद। नकुल-वाक्य। सहदेव-वाक्य। द्रौपदी-वाक्य। अर्जुन-वाक्य। भीमसेन-वाक्य। युधिष्ठिरके प्रति देवस्थानका उपदेश। युधिष्ठिरके प्रति व्यासका उपदेश। श्येन-जित उपाख्यान। षोडश-राजिक उपाख्यान। नारदपर्वोपाख्यान। सुवर्णष्ठीवीका उपाख्यान। प्रायश्चित्त-वर्णन। युधिष्ठिरके प्रति व्यासका उपदेश। युधिष्ठिरका पुर-प्रवेश। चार्वाककी धर्मनिन्दा। चार्वाकवधोपाय-कीर्तन। युधिष्ठिरका राज्याभिषेक। भीमका यौवराज्याभिषेक। श्राद्धकार्य-कथन। कृष्णके प्रति युधिष्ठिरका स्तव। गृह-विभाग। युधिष्ठिर-प्रश्न। युधिष्ठिर-कृत महापुरुष-स्तव। परशुरामोपाख्यान। कृष्ण युधिष्ठिर आदिका भीष्मके पास जाना। युधिष्ठिर आदिका विद्या-ग्रहण। सूत्राध्याय। वर्णाश्रमधर्म-कथन। ऐलकश्यप-संवाद। मुचकुन्द उपाख्यान। कैकेय उपाख्यान। वासुदेव-नारद संवाद। कालकवृक्षीय उपाख्यान। युधिष्ठिरके प्रति भीष्मका मन्त्रणा-स्थान-कीर्तन। दुर्गपरीक्षा। राष्ट्रगुप्ति-कीर्तन। उतथ्य-गीता-कीर्तन। वामदेव-गीता। इन्द्राम्बरीष-संवाद। शत्रुसमाक्रान्त-व्यक्तिका कर्त्तव्य-कीर्तन। सेनापति-कीर्तन। इन्द्र-बृहस्पति-संवाद। सत्यानृत-कीर्तन। व्याघ्रगोमायु-संवाद। उष्ट्र-ग्रीवोपाख्यान। सरित्सागर-संवाद। ऋषिकुक्कुर-संवाद। दण्डकीर्तन। दण्डोत्पत्ति-कीर्तन। प्रह्लादविप्रवृत्तान्त-कीर्तन। ऋषभ-गीता-कथन।

आपद्धर्म पर्वाध्याय

राजर्षिवृत्तान्त-कीर्तन। कायव्य-दस्यु-संवाद। शकुलोपाख्यान। मार्जार-मूषिक-संवाद। ब्रह्मदत्त-पूजनी-संवाद। कणिक उपदेश। विश्वामित्र निषाद-संवाद। कपोत-लुब्धक-संवाद। भार्याप्रशंसा-कीर्तन। इन्द्रोत-पारिक्षित-संवाद। गृध्रगोमायु-सम्वाद। पवन-शाल्मलि-संवाद। आत्मज्ञान-कीर्तन। दमगुणवर्णन। तपःकीर्तन। सत्यकथन। लोभोपाख्यान। नृशंस प्रायश्चित-कथन। खड्गोत्पत्ति-कीर्तन। षड्ज-गीता। कृतघ्नोपाख्यान।

मोक्षधर्म पर्वाध्याय

पिङ्गलागीता। पिता पुत्र-सवाद। सम्यक्गीता। मङ्किगीता। बोध्यगीता। प्रह्लाद अजगर-संवाद। श्रृगाल-काश्यप-संवाद। भृगु-भारद्वाज-संवाद। आचारविधि। जापकोपाख्यान। मनुवृहस्पति-संवाद। सर्वभूतोत्पत्ति। गुरु-शिष्य-संवाद। कृष्णका माहात्म्य-कीर्तन। पञ्चशिख-जनक-संवाद। इन्द्र-प्रह्लाद-संवाद। बलिवासव-संवाद। इन्द्रनमुचि-संवाद। बलिदान-संवाद। लक्ष्मीवासव-संवाद। देवलजैगीषव्य-संवाद। वासुदेव उग्रसेन-संवाद। शुकानुप्रश्न। मृत्यु-प्रजापति-संवाद। धर्मलक्षण। तुलाधार-जाजलि-संवाद। चिरकालिक उपाख्यान। द्युमत्सेन सत्यव्रत-संवाद। स्युमरश्मि कपिल-संवाद। कुण्डधार उपाख्यान। यज्ञनिन्दा। प्रश्न चतुष्टयकीर्तन। योगाचार-कथन। नारद-देवल-संवाद। माण्डव्य-जनक-संवाद। पिता-पुत्र-संवाद। हारीतगीता। वृत्रगीता। वृत्रवध। ज्वरोत्पत्ति। दक्षयज्ञ-विनाश। दक्षद्वारा महादेवजीका सहस्रनाम-कीर्तन। पञ्चभूत-कीर्तन। समङ्ग-नारद-संवाद। सगर-अरिष्टनेमि-संवाद। भवभार्गव-संवाद। पराशरगीता। हंसगीता। योगविधि-कीर्तन। सांख्ययोगकथन। वसिष्ठकराल-जनक-संवाद। याज्ञवल्क्य-जनक-संवाद। जनक-पञ्चशिख-संवाद। सुलभा-जनक-संवाद। वेदव्यास-शुक-संवाद। धर्ममूल-कथन। शुकोत्पत्ति। शुक-जनक-संवाद। शुक-नारद-संवाद। शुकाभिपतन। नारायणमाहात्म्य-कीर्तन। व्यासोत्पत्ति-कथन। उञ्छवृत्ति-उपाख्यान। यह सब विषय अति विस्तृत भावसे शान्तिपर्वमें बताये गये हैं। इस पर्वमें ३३९ अध्याय हैं और १४,७०७ श्लोक हैं।

अनुशासनपर्व

कुरुराज-युधिष्ठिर भीष्मसे धर्मविनिर्णय सुनकर प्रकृतिस्थ हुए। इस पर्वमें धर्म और अर्थ सम्बन्धी सम्पूर्ण व्यवहार। विविध दानोंका अलग अलग फल। पात्र-विशेषमें दानकी उत्कर्षविधि। आचार-व्यवहार-निरूपण। सत्यकी पराकाष्ठा। गोब्राह्मणका माहात्म्य। देश-काल-भेदसे धर्मका रहस्य और अन्तमें भीष्मकी स्वर्गप्राप्ति आदि विषयोंका विस्तारसे वर्णन हुआ है। इस पर्वमें १४६ अध्याय हैं और ८,००० श्लोक हैं।

आश्वमेधिकपर्व

सम्वर्त्त और मरुत्तका उत्तम उपाख्यान। सुवर्णकोष सम्प्राप्ति। पहले अश्वत्थामाद्वारा दग्ध और फिर कृष्णद्वारा पुनः सञ्जीवित परीक्षितका जन्म। यज्ञमें अश्वमोचन करके तदनु-

गामी अर्जुनके सहित स्थान-स्थानपर रोकनेवाले राजगणोंसे युद्ध। चित्रवाहन राजाकी बेटी चित्राङ्गदाके गर्भसे उत्पन्न अपने पुत्र बभ्रुवाहनके द्वारा अर्जुनका जीवन-संशय। अश्वमेध महायज्ञके समयमें नकुलाख्यान। इन सब विषयोंका वर्णन आश्वमेधिकपर्वमें है। इस पर्वमें १०३ अध्याय हैं और ३,३२० श्लोक हैं।

आश्रमवासिकपर्व

इस पर्वमें गान्धारीके साथ राजा धृतराष्ट्र और विदुरका राज छोड़कर आश्रमवासके लिये अरण्यगमन, यह देखकर कुन्तीका पुत्र-राज छोड़ धृतराष्ट्रका अनुगामिनी होना, राजा धृतराष्ट्रका युद्धमें मरे और परलोकवासी पुत्र-पौत्र और अन्य राजाओंको कृष्ण-द्वैपायनके प्रसादसे पुनरागत देखना, फिर शोक-परित्याग करके परमा सिद्धिको प्राप्त होना। जितेन्द्रिय-सञ्जय और विदुरका धर्माश्रित होनेके कारण सद्गति पाना और धर्मराज युधिष्ठिरका नारदके मुखसे वृष्णियोंके कुलक्षयका संवाद सुनना, यह सब विषय विस्तारसे वर्णन किया गया है। इस पर्वमें ४२ अध्याय हैं और १,५०६ श्लोक हैं।

मौशलपर्व

जिन लोगोंने रणस्थलमें अनायास अस्त्राघात सहे थे, उन्हीं यादवोंका ब्रह्मशापरूप दण्डमें पड़कर सागर तटपर सुरापानसे उन्मत्त होकर सरपतके तृणरूपी शराघातसे आहत होना। इस प्रकार रामकृष्ण दोनोंका समस्त यदुवंशका उच्छेद करके स्वयं सर्व संहारकारी कालके हाथोंमें सौंपा जाना। नरश्रेष्ठ अर्जुनका आकर यादवशून्य द्वारकाको देख दुखी होना और अपने मामा वसुदेवका सत्कार करके सुरापान सभामें यदुवंशी वीरोंका आत्यन्तिक विनाश देखना। अर्जुन राम और कृष्णादि प्रधान प्रधान यदुवंशियोंका शरीर सत्कार करके द्वारकाजीसे आबालवृद्ध-वनिता सबको लेकर आते समय राहमें घोर विपत्तिमें पड़ जाना। गाण्डीव धनुषका उस समय पराभव और सब दिव्यास्त्रोंकी विफलता। यादवकुलाङ्गनाओंका अपहरण, पराक्रमकी अनित्यता देखकर अत्यन्त दुखी हो युधिष्ठिरके निकट लौटना। व्यासके वाक्यानुसार संन्यास लेनेकी अभिलाषा करना। इस मौशलपर्वमें यही सब विषय कहे गये हैं। इसमें ८ अध्याय और ३२० श्लोक हैं।

महाप्रस्थानिकपर्व

पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंका द्रौपदीके साथ राज-परित्याग करके महाप्रस्थानको चलना। लालसागरके तटपर जाकर अग्निका दर्शन करना। वहीं अग्निके आदेशानुसार अग्निकी पूजा करके अग्निको गाण्डीव-धनुष दे डालना। युधिष्ठिरका पहले द्रौपदी और फिर एक एक करके सब भाइयोंका निपात देखकर माया ममता छोड़ अकेले चलने लग जाना। यह सब विषय इस पर्वमें कहे गये हैं। इसमें तीन अध्याय हैं और ३२३ श्लोक हैं।

स्वर्गारोहणपर्व

महाप्राज्ञ धर्मराजका स्वर्गसे देवयान उपस्थित होनेपर विना कुत्तेके जानेसे इन्कार करना। महात्मा युधिष्ठिरकी धर्मनिष्ठा देख कुक्कुरका रूप छोड़ धर्मराजका प्रगट हो जाना।

युधिष्ठिरके धर्मराजके सहित स्वर्गारोहण करते समय देवदूतोंका छलसे उन्हें नरकदर्शन कराना। इस समय उन्हें उत्कट यन्त्रणाका होना। यमवशवर्त्ती अपने भाइयोंका वहाँ करुण-क्रन्दन सुनना। इन्द्र और धर्म दोनोंका युधिष्ठिरके प्रति यह दिखाना कि संसारमें ऐश्वर्य-भोगका फल यही होता है। आकाशगङ्गामें नहाकर नरदेह छोड़कर देवलोकमें युधिष्ठिरका स्वधर्मोपार्जित स्थान पाना और आनन्दका उपभोग करने लग जाना। यह सब विषय स्वर्गारोहणपर्वमें वर्णित हुए हैं। इस पर्वमें पांच अध्याय हैं और २०९ श्लोक हैं।

उपसंहार

प्रत्येक पर्वके अन्तमें जो अध्यायों और श्लोकोंके अङ्क हमने दिये हैं वह अनुक्रमणिका पर्वके अनुसार हैं। परन्तु आजकल महाभारतकी जो पोथियाँ छपी हैं उनसे कुछ अन्तर पड़ता है। बम्बईकी छपी पोथीमें अश्वमेधपर्वमें १०८८ श्लोक हैं और बङ्गालकी एशियाटिक सोसायटीकी छपी पोथीमें २९०० श्लोक हैं। परन्तु अनुक्रमणिकाके अनुसार ३३२० श्लोक होने चाहिएँ। इस तरह छपी पोथियोंमें इस पर्वमें बतायी हुई श्लोक-संख्यामें बहुत कमी पायी जाती है और पर्वोंमें छपी पोथियोंमें अपेक्षाकृत श्लोकोंकी संख्या अधिक है। खिल हरिवंश पर्वमें जहाँ अनुक्रमणिकाके अनुसार केवल १२,००० श्लोक होने चाहिएँ वहाँ बम्बईकी पोथीमें १६,३५३ हैं और सोसायटीवाली पोथीमें १६,३७४। इसी तरह थोड़ा-थोड़ा बढ़नेसे बम्बईवाले सम्पूर्ण महाभारतमें १ लाख ३ हज़ार पांचसौ पचास श्लोक होते हैं और सोसा-यटीवाले महाभारतमें १ लाख ७ हज़ार ४८० श्लोक होते हैं। परन्तु पर्वसङ्ग्रहकी दी हुई श्लोक-संख्याको जोड़नेसे कुल ९४,००० श्लोक होते हैं। इस तरह जहाँ साढ़े तीन हज़ार और साढ़े सात हज़ारकी बढ़ती छपी पोथियोंमें पायी जाती है वहाँ पर्वसङ्ग्रहमें १ लाखसे छः हज़ारकी कमी है। यह कहा जाता है कि महाभारतमें १ लाख श्लोक हैं। परन्तु यह कहना अधिक ठीक होगा कि श्लोक-संख्या १ लाखके लगभग है।

महाभारतके खिल या परिशिष्टपर्वमें* भगवान् कृष्णके वंशका वर्णन है। इसीमें विष्णुपर्व भी है और शिवचर्या भी है और साथही साथ अत्यन्त अद्भुत् भविष्यपर्व भी है जो पर्वाध्यायमें १०० वाँ पर्व गिना जाता है। विष्णुपर्वमें अवतारोंका भी वर्णन है और कृष्ण-द्वारा कंसके मारे जानेकी कथा भी दी है। इसमें जैनोंके तीर्थङ्कर नेमिनाथ वा अरिष्टनेमिको कृष्णकी ज्ञाति करके गिनाया है। इसके भविष्य वर्णनसे और जैनियोंकी चर्चासे बहुतोंका अनुमान होता है कि महाभारतकी १ लाखकी संख्या पूरी करनेके लिये यह परिशिष्ट बहुत पीछेसे मिलाया गया है। जैनियोंका भी हरिवंशपर्व पुराण है जो इस हरिवंशसे बिल्कुल भिन्न है। जिसमें नेमिनाथकी कथा मुख्य है और उसीके प्रसङ्गमें श्रीकृष्ण और उनके वंशका भी विवरण दिया गया है। दोनों हरिवंश बिल्कुल अलग अलग ग्रन्थ हैं।

---

* खिलपर्वकी गिनती उपपुराणोंमें हरिवंशपुराणके नामसे हुई है। उसकी विषयसूची आगे उस नामके उपपुराणमें दी जायगी।

पुराण-खण्ड

छब्बीसवाँ अध्याय

पुराण

अथर्वसंहिताके मतसे यज्ञके उच्छिष्टमेंसे यजुर्वेदके साथ साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुए*। शतपथ ब्राह्मणमें लिखा है कि पुराण वेद है। वही है ही। यह कहकर अध्वर्यु पुराण-कीर्त्तन करते रहते हैं†। बृहदारण्यकमें और शतपथ ब्राह्मणमें और एक जगह लिखा है "गीली लकड़ीमेंसे निकलती हुई आगसे जैसे अलग अलग धुवाँ निकलता रहता है, उसी तरह इस महाभूतके निःश्वाससे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान और अनुव्याख्यान होता है—यह सभी इसका निःश्वास है‡। इसी स्थलपर बृहदारण्यक भाष्यमें शङ्कराचार्यने लिखा है "निःश्वासकी तरह निकला हुआ अर्थात् पुरुषसे जो बिना यत्नके अपने आप पैदा हो जाय"§। छान्दोग्योपनिषद्के मतसे इतिहास और पुराण वेदसमूहमें पाचवें वेद हैं‖। वैदिक-साहित्यमें पुराणोंके इस उल्लेखसे इस भ्रममें न पड़ना चाहिए कि इनका अभिप्राय आजकलके १८ हों पुराणोंसे है। जिन पुराणोंका उल्लेख वैदिक-साहित्यमें है वह पुराण आजकल उपलब्ध नहीं हैं। उन पुराणोंका उस समयके आर्यसमाजमें वेदोंके बराबर ही आदर था। बृहदारण्यक और उसपर शाङ्करभाष्यपर विचार करनेसे जान पड़ता है कि जिस तरह बिना यत्नके ही भगवान्से अपने आप चारों वेद प्रगट हुए ठीक उसी तरह पुराण भी प्रगट हुआ। ऐतरेय ब्राह्मणोपक्रममें सायणाचार्यने अपने भाष्यमें लिखा है कि "वेदके अन्तर्गत देवासुर युद्धादिका वर्णन इतिहास कहलाता है और आगे यह असत् था और कुछ न था इत्यादि जगत्की प्रथमावस्थासे लेकर सृष्टि-क्रियाका वर्णन पुराण कहलाता है"। बृहदारण्यकके भाष्यमें शङ्कराचार्यने भी लिखा है कि "उर्वशी पुरुरवा आदि संवाद-स्वरूप ब्राह्मण भागको इतिहास कहते

---

* "ऋच सामानि छन्दासि पुराण यजुपासह" (अथर्व ७१।७।२४)

† "अध्वर्युस्ताक्ष्ये वै पश्यतो राजयेत्याह पुराण वेदः सोऽयमिति किञ्चित् पुराणमाचक्षीत"। (शतपथ ब्राह्मण १३।४।३।१३)

‡ "स यथा आर्द्रेन्धाग्नेरभ्याहितात् पृथग्धूमाविनिश्चरन्ति एवम् वा अरेहस्य महतोभूतस्य निश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेद· सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहास पुराण विद्या उपनिपदः श्लोका. सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि अस्यैव एतानि सर्वाणि निश्वसितानि"। (बृहदारण्यक २।४।१० शतपथ १४।६।१०।६)

§ "नि श्वसितमिव नि श्वासिनम् यथा अप्रयत्नेनैव पुरुप नि श्वासो भवत्येवम् वा पुराण असद् वा इदमग्रे आसीत् इत्यादि"। उपर्युक्त अवतरणपर शाङ्कर भाष्य।

‖ "सहोवाच ऋग्वेद भगवोऽध्येमि यजुर्वेद सामवेदमथर्वण चतुर्थमितिहास-पुराण पञ्चमं-वदाना वेदम्" (छान्दोग्य उपनिषद् ७।१।१)

हैं और 'पहले असत् ही था इत्यादि सृष्टि-प्रकरणको पुराण कहते हैं" ।* इन बातोंसे स्पष्ट होता है कि सर्गादिका वर्णन पुराण कहलाता था और ऐतिहासिक कथाएँ इतिहास। विष्णु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य आदि महापुराणोंमें पुराणोंके पांच लक्षण कहे गये हैं—

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥"

(१) सर्ग वा सृष्टिका विज्ञान, (२) प्रतिसर्ग अर्थात् सृष्टिका विस्तार लय और फिरसे सृष्टि, (३) सृष्टिकी आदि वंशावली, (४) मन्वन्तर अर्थात् किस किस मनुका अधिकार कबतक रहा और उस कालमें कौनसी महत्वकी घटना हुई और (५) वंशानुचरित अर्थात् सूर्य और चन्द्रवंशी राजाओंका संक्षिप्त वंश-वर्णन यही पांच विषय पुराणोंमें वर्णन हुए हैं। यह प्रचलित १८ पुराणोंके लिये परिभाषा दी गयी है। परन्तु प्राचीन पुराणमें अकेले सृष्टिकी ही बात दी रही हो, ऐसा भी नहीं प्रतीत होता। महाभारतके आदि पर्वमें शौनक कहते हैं कि "पुराणमें दिव्य कथाएँ हैं और बुद्धिमान् व्यक्तियोंके आदि वंशके वृत्तान्त हैं। पहले हमने तुम्हारे पितासे यह सब कथा सुनी है"। भारतके कहनेवाले उग्रश्रवाजीने कहा है कि "पुराणोंका आश्रय लेकर यथायुक्त, हे महामुनि, पहले मैं इस भार्गव-वंशका वर्णन करता हूँ"। तात्पर्य यह कि महाभारतसे पहले जो कुछ प्राचीन-पुराण प्रचलित था उसमें सर्गके वर्णनके सिवाय "दिव्या-कथा और वंशके वर्णन" भी विस्तारसे दिये हुए थे। सम्भवतः प्राचीन-पुराण उसी प्रकार ऋषि-प्रोक्त रहे होंगे जिस प्रकार ब्राह्मण और आरण्यक हैं। आज यह पता नहीं है कि प्राचीन-पुराणका रचयिता कौन था। मनुसंहिता, आश्वलायन, गृह्यसूत्र और महाभारतके वाक्योंसे इतना ज़रूर निष्कर्ष निकलता है कि पुराणका कोई एक ग्रन्थ न रहा होगा, कई रहे होंगे। सबके सङ्ग्रह वा सबकी संहिताका नाम पुराण रहा होगा†। वेदव्यासजीने जब वेदोंके चार विभाग किये तो इस पांचवें वेद अर्थात् पुराणका भी सङ्ग्रह कर डाला। विष्णुपुराणमें लिखा है—

"इसके बाद पुराणार्थ विशारद भगवान् वेदव्यासने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धिके साथ पुराण-संहिताकी रचना की। व्यासका सूत जातीय लोमहर्षण नामका एक विख्यात शिष्य था। महामुनिव्यासने उसको पुराण-सहिता दी। रोमहर्षणके छ. शिष्य हुए, उनके नाम सुमति, अग्निवर्चा, मित्रयु, शासपायन, अकृतव्रण और सावर्णि थे। इनमेंसे कश्यपवंशीय अकृतव्रण, सावर्णि और शांसपायन इन तीनोंने रोमहर्षणसे पढ़कर मूल-संहिताके आधारपर एक एक पुराण-संहिताकी रचना की। उन्हीं चार सहिताओंका सार सङ्ग्रह करके यह पुराण-संहिता रची गयी है। सब पुराणोंमें सबसे पुराना ब्रह्मपुराण कहलाता है। पुराणविदोंने पुराणोंकी १८ संख्या निर्दिष्ट की है"।

---

* "इतिहास इत्युर्वशी पुरुरवसो सवादादिरुर्वशीह्यप्सरा इत्यादि ब्राह्मणमेव, पुराणमसद्वा इदमग्र आसीदित्यादि (बृहदारण्यक भाष्य २।४।१०)।

† इस प्रसङ्गमें शिवपुराणका रेवामाहात्म्य १।२३।३० ब्रह्मपुराणका सृष्टिखण्ड पहला अध्याय और मत्स्यपुराणका ५३।४।७ और विष्णुपुराणका ३।६।१६।२१ द्रष्टव्य है।

इससे यह स्पष्ट है कि व्यासजीने स्वयं १८ हों पुराणका प्रचार नहीं किया। यह वहुत सम्भव है कि संहिताके नामका जो सङ्ग्रह उन्होंने किया था उसमें इस तरहके १८ विभाग रहे हों, जिनके आधारपर उनकी शिष्य-परम्पराने १८ पुराणोंकी रचना कर डाली हो और इन १८ महापुराणोंके परिशिष्टकी तरहपर वहुतसे उपपुराण भी सङ्कलित हो गये दीखते हैं। हमारी इस कल्पनाका समर्थन पुराणोंको मनोयोगपूर्वक पढ़नेसे हो जाता है। विष्णु, मत्स्य और ब्रह्माण्ड आदि पुराणोंकी सृष्टि-प्रक्रिया पढ़ जानेसे प्रगट होगा कि सव पुराणोंमें एकही वात है, एकही विषय है। यहांतक कि एक-एक श्लोक मिल जाता है। किसी पुराणमें दो चार श्लोक अधिक हैं और किसीमें कम। वस इतना ही अन्तर है। इन सव पुराणोंका मूल एकही है, इसी कारण भेद भी बहुत कम है। जान पड़ता है कि मूल कथाके भिन्न भिन्न सङ्ग्रहकारोंने प्रसङ्गानुसार अपने-अपने क्रम वांधे हैं और कमीको पूरा करनेके लिये अपने रचे श्लोक बढ़ा दिये हैं और वह भी शुद्ध विचारसे, नेक नीयतीसे, कथा-प्रसङ्गकी पूर्त्तिके लिये और सङ्ग्रहको रोचक वनानेके लिये। पिछले २३ वें अध्यायमें हमने जो १८ हों पुराणोंके नाम गिनाये हैं वह विष्णुपुराणके दिये हुए क्रमके अनुसार था। परन्तु और पुराणोंमें दी हुई तालिकाओं और क्रमोंसे जान पड़ता है कि १८ होंके आगे पीछेके क्रमपर सवका मतैक्य नहीं है।

एक पुराण-सहिताके अठारह भागोंमें विभक्त हो जानेका कारण शिष्य परम्परा-विभागके अतिरिक्त और भी हो सकता है। प्रत्येक पुराणके अलग-अलग अनुशीलनसे पता चलता है कि हरएकका उद्देश्य-साधन-विशेष है। मूल-विषय एक होते हुए भी हरएक पुराण-में किसी विशेष प्रसङ्गका विस्तारसे वर्णन है। पुराणका उद्देश्य इसी विशेष-प्रसङ्गमें निहित होता है। यदि ऐसी वात न होती तो पञ्चलक्षणयुक्त एक ही महापुराण पर्याप्त होता। सम्भव है कि मूल-संहितामें इन विशेष उद्देश्योंका मूल विद्यमान रहा हो। परन्तु इस समय पुराणों-पर तो भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंका प्रभाव पड़ा हुआ दिखाई पड़ता है। ब्राह्म, शैव, वैष्णव, भागवत आदि पुराणोंके नामसे ही यह प्रतीत होता है कि यह सम्प्रदायोंके ग्रन्थ-विशेष हैं। यह वात अभी इतिहाससे निश्चित नहीं हुई है कि इन पुराणोंसे ही यह सम्प्रदाय चल पड़े हैं, अथवा सम्प्रदाय पहलेसे थे और उन्होंने अपने-अपने अनुगत-पुराणोंका व्यासजीकी शिष्य परम्परासे निर्माण कराया। अथवा पीछेसे सम्प्रदायके अनुयायी पण्डितोंने अपने सम्प्रदायके अनुकूल कुछ परिवर्तन और परिवर्धन किये हैं। इसमें तो सन्देह नहीं है कि पौराणिक-साहित्य जैन और वौद्धधर्मके फैलनेसे वहुत पहले मौजूद था, क्योंकि वौद्ध और जैन-ग्रन्थोंमें पौराणिक-कथाओं और नामोंके और शिव, ब्रह्मा आदि देवताओंके उल्लेख हुए हैं। जो हो पुराणोंमें पांचों लक्षणोंके सिवाय अनेक प्रसङ्ग इस तरहके हैं जो वर्तमान सम्प्रदायोंके परि-पोषक कहे जा सकते हैं। यद्यपि उनकी कथाओंके मूल-आधार वैदिक-साहित्यमें मिलते हैं।

अवतारवाद, पुराणका एक प्रधान अङ्ग है। प्रायः सभी पुराणोंमें अवतारका प्रसङ्ग दिया हुआ है। शैव मत परिपोषक पुराणोंमें भगवान् शङ्करके नाना अवतारोंकी चर्चा है। इसी तरह वैष्णव-पुराणोंमें भी विष्णुके अगणित अवतार वताये गये हैं। इसी तरह अन्य पुराणोंमें अन्य देवोंके अवतारोंकी भी चर्चा है। परन्तु यह उल्लेख निराधार नहीं कहे जा

सकते। शतपथ-ब्राह्मणमें (१।८।१।२-१०) मत्स्यावतारका, तैत्तिरीय आरण्यक (१।२३।१) और शतपथ-ब्राह्मणमें (१।४।३।५) कूर्मावतारका, तैत्तिरीय-संहितामें (७।१।५।१) तैत्तिरीय-ब्राह्मणमें (१।१।३।५) और शतपथ-ब्राह्मणमें (१४।१।२।११) वाराह-अवतारका, ऋक्-संहितामें (१।१७) और शतपथ-ब्राह्मणमें (१।२।५।१-७) वामन-अवतारका, ऐतरेय ब्राह्मणमें राम भार्गवावतारका, छान्दोग्योपनिषद्में (३।१७) देवकी-पुत्र कृष्णका और तैत्तिरीय आरण्यकमें (१०।१।६) वासुदेव श्रीकृष्णका वर्णन है। अधिकांश वैदिक ग्रन्थोंके मतसे कूर्म्म वाराह आदि अवतारोंकी कथा जो कही गयी है ब्रह्माके अवतारकी कथा है। वैष्णवपुराण इन्हीं अवतारोंको विष्णुका अवतार बताते हैं। भविष्यादि कई पुराण सौरपुराण हैं। उनमें सूर्यके अवतार गिनाये हैं। मार्कण्डेय आदि शाक्तपुराणोंमें देवीके अवतारोंका वर्णन है।

शिव, विष्णु, सूर्य, शक्ति, गणेश आदिके प्रसङ्ग पुराणोंमें बहुत आये हैं। इनकी कथाओं और माहात्म्योंसे पुराण भरे पड़े हैं, ऋक्-संहितामें पहिले मण्डलमें सूक्त २२, ८५, ९०, १५४-१५६, १६४ और १८६ वें सूक्तमें, दूसरे मण्डलमें पहले और २२ वें सूक्तमें, तीसरे मण्डलमें छठे और ५४ वें ५५ वें सूक्तमें, चौथे मण्डलमें दूसरे, तीसरे और अट्ठारहवें सूक्तोंमें और ८ वें मण्डलमें ८९ वें सूक्तमें और इसी प्रकार सैकड़ों मन्त्र विष्णुके सम्बन्धमें हैं। सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेदमें भी विष्णुके माहात्म्यसूचक मन्त्रोंका अभाव नहीं है।

ऋक्-संहितामें शिवजीका रुद्रनाम प्रसिद्ध है। रुद्राध्यायमें सम्पूर्ण रुद्रकी स्तुति है। यह यजुर्वेदमें शतरुद्रीके नामसे भी प्रसिद्ध है। चारों वेदोंमें रुद्रकी स्तुतियाँ हैं। वाजसनेय-संहिताकी शतरुद्रीमें शिव, गिरीश, पशुपति, नीलग्रीव, शितिकण्ठ, भव, शर्व, महादेव इत्यादि नाम मौजूद हैं। अथर्व संहितामें "महादेव" (९।७।७), 'भव' (६।९।३।१) 'पशुपति' (९।२।५) आदि नाम आये हैं। मार्कण्डेय-पुराणमें और विष्णुपुराणमें जिस प्रकार रुद्रदेवकी उत्पत्ति वर्णित है उसी प्रकार शतपथ-ब्राह्मणमें (६।१।३।७-१९) और शांख्यायन-ब्राह्मणमें (६।१।१ ९) भी वर्णित है।

सूर्यकी उपासना भी जो पुराणोंमें वर्णन हुई है बहुत प्राचीन जान पड़ती है। चारों संहिताओंमें नाना स्थानोंमें सूर्यकी स्तुति और मन्त्र हैं। सुप्रसिद्ध गायत्री मन्त्र स्वयं सूर्यकी स्तुतिके प्रसङ्गमें है। शिव-दुर्गाका नाम लेते ही लोग साधारणतया अप्राचीन देवी-देवताकी कल्पना करने लगते हैं, परन्तु शक्तिकी उपासना भी नयी नहीं है। वाजसनेय-सहितामें "अम्बिका" (३।५७) और "शिवा" (१६।१), तलवकार उपनिषद्में (३।११-१२, ४।१-२) ब्रह्मविद्यास्वरूपणी उमा हैमवती और तैत्तिरीय आरण्यकके दसवें प्रपाठकमें "कन्या-कुमारी", "कात्यायनी" "दुर्गा" इत्यादिकी चर्चा है। पुराण वेदोंके उपाङ्ग कहे जाते हैं। तात्पर्य यह है कि वेदके मन्त्रोंमें देवताओंकी स्तुतियाँ मात्र हैं। ब्राह्मण-भागमें कहीं-कहीं यज्ञादिके प्रसङ्गमें कथा-पुराणका भी संक्षेपसे ही उल्लेख है। परन्तु विस्तारके साथ कथाओं और उपाख्यानोंका कहीं होना ज़रूरी था, इसी आवश्यकताकी पूर्त्तिके लिये पुराणोंकी रचना हुई जान पड़ती है।

हमारे देशमें एक बड़ा दल ऐसे लोगोंका है जो कहता है कि "वैदिक-ग्रन्थोंमें देव-तत्वका जिस प्रकार आभास है वही पुराणोंमें विकृत रूप होकर बड़े पैमानेमें दिखाई पड़ता है। पहलेके देवता-विशेष अनेकानेक उपाख्यानोंमें रूपान्तरित और परिवर्धित हो गये हैं। जैसे, विष्णु शब्द सूर्यके अर्थमें वेदोंमें आया है, परन्तु पुराणोंमें सूर्यसे बिल्कुल भिन्न एक अलग देवताका नाम है जिसका माहात्म्य-पुराणोंमें भर दिया गया है और जिसके अवतारोंकी कथा-का विकास कर दिया गया है। भक्तजनोंने दूसरोंके सुशोभन अलङ्कारोंका अपहरण करके अपने-अपने इष्टदेवका मनमाना शृङ्गार किया है। इस तरह ऊधोकी पगड़ी माधोके सर पहिराकर हिन्दूधर्मका एक नया रूप गढ़ लिया है। इस प्रकार हिन्दूशास्त्र क्रमशः परि-वर्त्तित और विपर्यस्त हो गया है"।

यहाँ पुराणोंके आधारकी सत्यता प्रमाणित करना हमारा उद्देश्य नहीं है। परन्तु यदि पुराणोंमें ऊधोकी पगड़ी माधोके सिर पहिनायी गयी है और यदि पौराणिक कथाएँ परिवर्त्तित और विपर्यस्त हैं तो इस ग्रन्थमें यह दिखाना ही व्यर्थ प्रयास है कि पुराणोंमें जो कुछ दिया हुआ है वह हिन्दू धार्मिक-साहित्यका अङ्ग है। जो पक्ष पुराणोंको साधार मानता है वह ऊपर दिये हुए पूर्व-पक्षका पोषण नहीं करता, क्योंकि वैदिक-साहित्यमें पुराणोंकी कथाओंके पोषक अंश अनेक हैं। उदाहरणकी भांति उन्हीं मन्त्रोंको लीजिए जो पिछले सामवेदवाले अध्यायके अन्तमें* जो हमने उदाहरणके सामगान दिये हैं वह ऋग्वेदके पहले मण्डलके २२ वें सूक्तमें भी आये हैं। शब्दार्थसे उनका यह अर्थ निकलता है—"विष्णुने इस जगत्में तीन पदोंका विक्षेप किया। उनके धूलियुक्त पदसे सारा जगत् व्याप्त हो गया। दुर्धर्ष और सकल जगत्की रक्षा करनेवाले विष्णुने धर्मरक्षार्थ पृथ्वी आदि स्थानमें तीन पदोंका विक्षेप किया"।

निरुक्तकार यास्कने इन दोनों ऋचाओंकी व्याख्या सूर्यकी कीर्त्तिके रूपकपर की है। परन्तु "धूलकी व्याप्तिसे" जिस रूपकको वह खोलना चाहते थे, वह खुल न सका, स्पष्ट न हो सका। परन्तु निरुक्तकारका प्रयास बेकार था। इन दोनों ऋचाओंको स्पष्ट करनेके लिये शतपथ-ब्राह्मणमें† जो यास्कके बहुत पहलेका है, एक उपाख्यान दिया हुआ है। उससे इन ऋचाओंका अर्थ खुल जाता है और चरण-रजवाली बातपर प्रकाश पड़ता है। उस उपाख्यान-का भाषान्तर यह है—

"देवता और असुर दोनों प्रजापतिकी सन्तान हैं। उन लोगोंने आपसमें झगड़ा किया था। देवता लोग ही हार गये थे। असुरोंने सोचा कि निश्चय ही यह पृथ्वी हमारी है। उन सब लोगोंने सलाह की कि आओ हम लोग पृथ्वीको बाट लें और उसके द्वारा जीविका निर्वाह करें। उन लोगोंने वृषचर्म लेकर पूरब पच्छिम नापकर बांटना शुरू किया। देवताओंने जब सुना तो उन्होंने सलाह की और बोले कि असुर लोग पृथ्वी बांट रहे हैं हम भी चलकर उसी जगह पहुँचें। यदि हम लोग पृथ्वीका भाग नहीं पाते हैं तो हमारी क्या दशा होगी? देवताओंने यज्ञरूपी विष्णुको आगे किया और चले और बोले कि हम लोगोंको पृथ्वीका

---

* देखो इस ग्रन्थका पिछला ७ वाँ अध्याय।

† शतपथ (१।२।५।७)

अधिकारी करो। हम लोगोंको भी उसका भाग दो। असूयावश असुरोंने उत्तर दिया कि जितने प्रमाण स्थानमें विष्णु व्याप सकें उतना ही हम देंगे। विष्णु वामन थे। देवताओंने इस बातको अस्वीकार नहीं किया। आपसमें हुज्जत करने लगे कि असुरोंने हम लोगोंको यज्ञ भरके लिये ही स्थान दिया है। फिर देवताओंने विष्णुको पूर्वकी ओर रखकर छन्दसे परिवृत्त किया। बोले, तुमको दक्षिण-दिशामें गायत्री छन्दसे, पश्चिम-दिशामें त्रिष्टुप् छन्दसे और उत्तर-दिशामें जगती-छन्दसे परिवेष्टित करते हैं। इस तरह उनको चारों ओर छन्दसे परिवेष्टित करके उन्होंने अग्निको सामने पूर्व दिशामें लेकर इस प्रकार पूजा और श्रम करते करते चलने लगे। इस तरह उन्होंने समस्त पृथ्वी प्राप्त कर ली।"

सभी पौराणिक इस बातको स्वीकार करते हैं कि पुराणोक्त अधिकांश उपाख्यान रूपक हैं। ऊपर जो वैदिक प्रसङ्ग उद्धृत हुआ है वामनपुराणमें वही उपाख्यान त्रिविक्रम-नामा वामनावतारके प्रसङ्गमें विस्तृत रूपसे वर्णित हुआ है। वामनपुराणसे मालूम होता है कि भगवान् विष्णुने कई बार वामनरूप धारण किया था। त्रिविक्रम-नामक वामनावतारमें उन्होंने धुन्धु-नामक असुरको छलकर तीन ही क़दममें सारे भुवनको वशमें कर लिया। विस्तृत भावसे किसी आख्यायिकाका वर्णन करना वेदका उद्देश्य नहीं है। वेदमें जो बात बहुत संक्षेपसे किसी विशेष उद्देश्यसे वर्णन की गयी है, पुराणमें वही विस्तृत आख्यायिकाके रूपमें वर्णित हुई है। पौराणिक कवियोंके हाथमें साधारण जनोंके कौतूहलको उद्दीपन करनेके लिये छोटा सा विषय अगर बहुत बड़ी आख्यायिकामें परिणत हो जाय।तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। इस बृहत् आख्यायिकामें अनेक अवान्तर-कथाओंका आ जाना भी असम्भव नहीं है। यह भी सम्भव है कि वेदव्यासद्वारा सङ्गृहीत-साहित्यके पहले भी परम्परासे बहुत सी ज़बानी कथाएँ चली आती हों। यह सब उपाख्यानके इशारोंकी तरह वेदमें देख पड़ती हैं। क्योंकि वेद उपाख्यानमूलक ग्रन्थ नहीं हैं। वेदमें स्थल-विशेषपर उदाहरण-स्वरूप उपाख्यान भी खुल पड़े हैं। किन्तु पुराणमें उन सब उपाख्यानोंको एकत्र करनेकी चेष्टा हुई थी। इसीसे वेदकी अपेक्षा पुराणमें आख्यायिकोंका बाहुल्य और विस्तार देख पड़ता है। विशेषत. एक ऐसा बहुकालीन रूपक या उपाख्यान जिसे कभी कोई लिपिबद्ध करे तो उसमें अनेक काल्पनिक कथाओंका आश्रय पा जाना स्वत सिद्ध है। वेदका एक क्षुद्र प्रसङ्ग पुराणमें जब विपुल काय धारण करने लगता है तो एक स्वतन्त्र रूप पकड़ लेता है। इसीसे हम वेद और पुराणमें समान वैलक्षण्य देखते हैं। यही समझकर हम शेषोक्त आख्यायिकाको अद्भुत् उपाख्यान या नितान्त आधुनिक वस्तु कहकर परित्याग नहीं करते।

हम पहले कह चुके हैं कि पुराणोंपर सम्प्रदायोंका प्रभाव जान पड़ता है। बालीद्वीपमें सभी हिन्दू धर्मावलम्बी, जो वहाँके ब्राह्मण पण्डित कहलाते हैं, शैव हैं। शिवमाहात्म्य प्रकाशक ब्रह्माण्डपुराणको वह अत्यन्त गुह्यशास्त्र समझकर सुरक्षित रखते हैं और ब्राह्मणको छोड़कर और किसी जातिवालेको ग्रन्थ नहीं दिखाते। उनका यह विश्वास है कि ब्रह्माण्ड-पुराण ही पुराण है और किसी पुराणका संसारमें अस्तित्व ही नहीं है। उनको उसके सिवा और १७ पुराणोंमेंसे एककी भी ख़बर नहीं है। उन्होंने नामतक नहीं सुना है। बात यह है कि पूर्वकालमें यदि सब सम्प्रदायवाले सभी पुराण पढ़ते होते तो यवद्वीपमें बसनेवाले शैव

ब्राह्मणोंको निश्चय ही और पुराणोंका पता होता। पूर्व कालमें प्रत्येक शाखा वा सम्प्रदाय अपनी ही शाखा या सम्प्रदायके शास्त्रको जीवनभर पढ़ता था और उसके अनुसार आचरण भी करता था। और शाखाओं या सम्प्रदायोके ग्रन्थोंके पढ़नेका कभी ख्याल भी नहीं करता था। इसीसे यवद्वीपमें और पुराण नहीं जा पाये। जिस तरहसे विष्णुपुराण आदिमें और पुराणोंके नाम दिये हुए हैं, उस तरह ब्रह्माण्डपुराणमें नहीं देखे गये। इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं है कि एक-एक पुराणमें शेष १७ की नामावली सब पुराणोंकी रचनाके बहुत बादको बढ़ायी गयी है। स्कन्दपुराणके केदारखण्डमें* स्पष्ट लिखा है कि १८ हों पुराणोंमें १० पुराण शैव हैं, ४ ब्राह्म, दो शाक्त और दो वैष्णव। इस सम्बन्धमें शिवरहस्य-खण्डान्तर्गत सम्भव-काण्डमें स्कन्दपुराणमें ही लिखा है† कि शैव, भविष्य, मार्कण्डेय, लैङ्ग, वाराह, स्कन्द, मात्स्य, कौर्म्म, वामन और ब्रह्माण्ड यह दस पुराण शैव हैं। इनकी समग्र श्लोक-संख्या ३ लाख है। वैष्णव, भागवत, नारदीय और गरुड़ यह चार वैष्णव पुराण हैं। यह विष्णुकी महिमा गाते हैं। ब्राह्म और पाद्म यह दो ब्रह्माके पुराण हैं। अकेला अग्निपुराण अग्निका है और ब्रह्मवैवर्तपुराण सूर्यकी महिमा गाता है। चारों वैष्णव पुराणोंमें महादेव और विष्णुका साम्य प्रतिपादित है। तब भी ब्रह्मादिकी अपेक्षा विष्णुको ही अधिक ठहराया है। ब्रह्म-पुराणमें त्रिमूर्त्तिका साम्य बताते हुए भी ब्रह्माको श्रेष्ठ और सूर्यको त्रिदेवात्मक बताया है। शिवपुराणकार शिवको ब्रह्मा और विष्णुका स्रष्टा, वैष्णव पुराणकार विष्णुको शिव और ब्रह्मा-का स्रष्टा, शाक्त पुराणकार भगवतीको ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनोंकी जनयित्री, मानते हैं और सौर सम्प्रदायवाले सूर्यको ही सबके प्रसविता मानते हैं।

अठारहों पुराणोंका प्रधान उद्देश्य यह मालूम होता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश और शक्तिकी उपासना अथवा ब्रह्माको छोड़कर शेष पांच देवताओंकी उपासनाका प्रचार हो और इन पांच देवताओंमेंसे एकको उपासक प्रधान माने और शेष चारको गौण। पुराणोंके प्रतिपादनका समीकरण करनेसे यह पता चलता है कि परमात्माके यह पांचों भिन्न भिन्न सगुण रूप माने गये हैं। सृष्टिमें इनका कार्य-विभाग अलग-अलग है। ब्रह्माकी पूजा और उपासना आजकल देखी नहीं जाती है परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि ब्रह्माकी उपासनाका गणेशजीकी उपासनामें विलयन हो गया है।

पुराणोंकी कथाओंमें अनेक स्थलोंपर भेद दिखाई पड़ते हैं। ऐसे भेदोंको साधारण-तया कल्पभेदके हेतुसे पुराणवेत्ता लोग समझा दिया करते हैं। परन्तु जहाँ-जहाँ पुराणोंके कथनोंमें पारस्परिक विरोध हैं वहाँ तो कल्पभेदसे अधिक उचित और प्रवर्त्तक कारण सम्प्र-दायभेद जान पड़ता है।

अब हम अलग-अलग अध्यायोंमें एक-एक पुराणका विषयसार देकर यथावश्यकता उनकी विशेषतापर अन्तमें विचार करेंगे।

---

* पहला अध्याय, केदारखण्ड।

† सम्भवकाण्ड २।३०।३९।

सत्ताईसवाँ अध्याय

ब्रह्मपुराण

(१) मङ्गलाचरण, नैमिषारण्यवर्णन, लोमहर्षणका पुराण कथनोपक्रम, सृष्टिकथनारम्भ।

(२) स्वायम्भुव-मनुके सहित शतरूपाका विवाह, प्रियव्रत उत्तानपादकी उत्पत्ति, कामाख्य-कन्याका जन्म, उत्तानपाद वंश, पृथुजन्म प्रचेतागणकी उत्पत्ति, दक्षका जन्म और दक्ष-सृष्टि-कथन।

(३) देवादिकी उत्पत्ति, हर्यश्व और शवलाश्वका जन्म, दक्षद्वारा षष्ठि कन्या-सृष्टि, षष्ठि कन्याकी सन्तति और मरुद्गणकी उत्पत्ति।

(४) ब्रह्मद्वारा देवगणका अपने-अपने प्रदेशमें अभिषेक और पृथु-चरित।

(५) मन्वन्तर कथारम्भ, महाप्रलय और अल्पप्रलय-कथन।

(६) सूर्यवंश-कथन, छाया और संज्ञाका चरित और यमुनादि सूर्य-कन्याओंका वर्णन।

(७) वैवस्वत-मनुका वंश, कुवलयाश्वचरित, धुन्धुमार और तद्वंशीय राजगणका संक्षिप्त विवरण, सत्यव्रत और गालव चरित कथन।

(८) सत्यव्रतके त्रिशङ्कु नाम पानेका कारण, हरिश्चन्द्र, सगर और भगीरथका विवरण, गङ्गाका भागीरथी-नाम-करण।

(९) सोम और बुध-चरित।

(१०) पुरुरवाचरित, पुरुरवावंश, गाधिचरित, जमदग्नि, परशुराम और विश्वामित्रोत्पत्ति कथन।

(११) आयुके पञ्चपुत्रोत्पत्ति और रजेश्वरित्र-वर्णन, अनेनाका वंश, धन्वन्तरिका जन्म और आयुर्वेद-विभाग।

(१२) ययाति-वंश।

(१३) पुरुवंश, कार्तवीर्य अर्जुनका विवरण और उत्पत्ति, आपवमुनिका शाप।

(१४) वसुदेव-जन्म और उनकी पत्नियोंका नाम-कीर्तन।

(१५) ज्यामघचरित्र, वभ्रु और देवावृद्धकी महिमा, देवकका सप्तकुमारी लाभ, कंस जन्म।

(१६) सत्राजितका चरित्र, स्यमन्तकोपाख्यान, कृष्णके साथ जाम्बवती और सत्यभामाका विवाह।

(१७) शतधन्वाका सत्राजित वध निरूपण करना और अक्रूरके निकट स्यमन्तकमणि रखनेकी कथा।

(१८) भूगोलमें सप्तद्वीप-वर्णन।

(१९) भारतवर्ष-वर्णन।

(२०) प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक, पुष्करद्वीप और लोकालोक पर्वत-कथन।

(२१) पातालादि सप्तलोक वर्णन।

(२२) रौरवादि नरक, स्वर्ग नरक व्याख्या।

(२३) आकाश और पृथ्वीका प्रमाण, सौरादिमण्डल और भूरादि सप्तलोकका प्रमाण, महद्-दादिकी उत्पत्तिका वर्णन ।
(२४) शिशुमारचक्र और ध्रुवसंस्थान-निरूपण ।
(२५) शरीर-तीर्थ-कथन ।
(२६) कृष्ण-द्वैपायन-संवाद ।
(२७) भरतखण्ड और उसके गिरि नदी देश आदि वर्णन ।
(२८) उत्कलदेशस्थ ब्राह्मण-प्रशंसा, कोणादित्य और रामेश्वर लिङ्ग-वर्णन ।
(२९) सूर्यपूजा माहात्म्य ।
(३०) सूर्यसे सर्व जगत्की उत्पत्ति, द्वादशादि मूर्तिकथन और मित्रनामा सूर्य और नारद-संवाद ।
(३१) चैत्र आदि क्रमसे द्वादश आदित्य नाम कथन ।
(३२) अदितिकी सूर्य आराधना, अदितिका सूर्य दर्शन, अदितिके गर्भसे सूर्यका जन्म इत्यादि सूर्य-चरित-वर्णन ।
(३३) ब्रह्म आदि देवगणको सूर्यका वरदान और सूर्यके १०८ नाम ।
(३४) रुद्रमहिमा, दाक्षायिणी-संवाद, पार्वतीका आख्यान ।
(३५) उमा-त्रिदश-संवाद, शिव-पार्वती-संवाद ।
(३६) पार्वती-स्वयंवर-कथन, स्वयंवरमें देवादिका आगमन, शिव-पार्वती-विवाह ।
(३७) देवकृत महेश्वरस्तव, महेश्वरका स्वस्थानमें वास ।
(३८) हरनेत्राग्निसे मदन दाह, रतिका शिववरसे इष्टदेशमें जाना, पार्वतीकी कोप-शान्तिके लिये महेश्वरका नर्म सम्भाषण ।
(३९) दक्षयज्ञारम्भ, दधीचि-दक्ष-संवाद, उमामहेश्वर-संवाद, वीरभद्रोत्पत्ति और उनके द्वारा दक्षयज्ञ भङ्ग, क्रुद्ध गणेशके ललाट-स्वेद-बिन्दुसे अग्निकी उत्पत्ति, उससे यज्ञका विध्वंस, शिवको यज्ञभाग, दान, शिवसे दक्षका वर-लाभ और दक्षकृत शिव-अष्टसहस्र-नाम ।
(४०) शिवकृत ज्वर-विभाग ।
(४१) एकाम्रक्षेत्र-वर्णन ।
(४२) विरजाक्षेत्र और अन्य तीर्थों और पुरुषोत्तमादि तीर्थका वर्णन ।
(४३) अवन्ति-माहात्म्य ।
(४४) इन्द्रद्युम्न आख्यान ।
(४५) विष्णुकृत सृष्टिवर्णन, पुरुषोत्तमक्षेत्रस्थ न्यग्रोध और उसके दक्षिण पार्श्वस्थ विष्णु मूर्त्तिका वर्णन ।
(४६) पुरुषोत्तमक्षेत्र, चित्रोत्पला नदी और नदीके उभय तीरस्थ ग्राम और ग्रामवासियोंका वर्णन ।
(४७) इन्द्रद्युम्नकृत प्रासाद आरम्भ, यज्ञकार्य, प्रासाद-निर्माण ।
(४८) प्रतिमा प्राप्तिकी आशासे इन्द्रद्युम्नका सर्वभोग-त्याग ।
(४९) विष्णु-स्तव ।
(५०) चिन्तातुर राजाको स्वप्नमें भगवद् दर्शन और प्रतिमा-प्राप्ति-उपाय-कथन, विश्वकर्माद्वारा मूर्तित्रय-निर्माण ।

(५१) इन्द्रद्युम्नको विष्णुका वरदान, पुरुषोत्तम क्षेत्रमें मूर्त्तित्रयका लाया जाना।
(५२) राजाका विष्णुपद-लाभ, ब्रह्मद्वारा पुरुषोत्तम अन्तर्गत पञ्चतीर्थ-वर्णन।
(५३) मार्कण्डेयोपाख्यान और कल्पवटदर्शन, मार्कण्डेयका भगवद्दर्शन और भगवानसे आश्वासन पाना।
(५४) भगवानके उदरमें मार्कण्डेयका प्रवेश और उदरस्थ पृथ्वी-दर्शन।
(५५) मार्कण्डेयका बाहर आना और उनके द्वारा बालमुकुन्दकी स्तुति।
(५६) भगवानका अन्तर्धान होना।
(५७) मार्कण्डेय-ह्रद-प्रशंसा और पञ्चतीर्थ-वर्णन।
(५८) नरसिंह-पूजा-विधि।
(५९) कपाल गौतम ऋषिके मृत पुत्रको बचानेके लिये श्वेत-नृपकी प्रतिज्ञा और श्वेत-माधव-स्थापन-प्रसङ्ग और श्वेतके प्रति विष्णुका वरदान।
(६०) नारायण-कवच और समुद्र स्नान-विधि।
(६१) कायशुद्धि और पूजाविधि-कथन।
(६२) समुद्र-स्नान-माहात्म्य।
(६३) पञ्चतीर्थ-माहात्म्य।
(६४) महाज्येष्ठी-प्रशंसा।
(६५) कृष्णकी स्नानविधि और स्नान-माहात्म्य।
(६६) गुण्डीचा यात्रा-माहात्म्य।
(६७) प्रतियात्रा और द्वादशयात्रा फल-निरूपण।
(६८) विष्णुलोक-वर्णन।
(६९) पुरुषोत्तम-माहात्म्य।
(७०) चतुर्विंशति तीर्थ लक्षण और गौतमी-माहात्म्य।
(७१) गङ्गोत्पत्ति कथोपक्रम, तारकासुरका प्रसङ्ग, मदन-दहन।
(७२) हिमवधवर्णन, शम्भु-विवाह, गौरीके रूप-दर्शनसे ब्रह्माका वीर्यपात, उसी वीर्यसे बाल-खिल्योंकी उत्पत्ति, शिवके पाससे ब्रह्माका कमण्डल पाना।
(७३) बलि और वामनावतारका प्रसङ्ग और गङ्गाजीका महेश्वरकी जटामें गमन।
(७४) गङ्गाका द्वैरूप्यवर्णन, गौतमका गोवध पाप और उसी पापसे मुक्ति लाभ, गौतमका कैलास-गमन।
(७५) उमा महेश्वर-स्तव, गङ्गा-प्रार्थना।
(७६) पञ्चदशाकृतिमें गङ्गाका निर्गमन और गोदावरी स्नानविधि-कथन।
(७७) गौतमीकी श्रेष्ठता-कथन।
(७८) वसिष्ठके वरसे पुत्र प्राप्ति और सगरका अश्वमेध, कपिलके कोपसे सगर पुत्र नाश, असमञ्जसका देश-त्याग, भगीरथका जन्म और गङ्गा-आनयन।
(७९) वाराह-तीर्थ-वर्णन।
(८०) लुब्धक चरित्र।

(८१) स्कन्दकी विषयासक्ति और भोगार्थ-आहूत स्त्रीगणके मातृरूपिता दर्शनसे विषयकी निवृत्ति, कुमार-तीर्थ कथन ।
(८२) कृत्तिका तीर्थ-वर्णन ।
(८३) दशाश्वमेध-तीर्थ-कथन ।
(८४) केशरी वानरका दक्षिणार्णवमें गमन, अञ्जना और अद्रिकाका पुत्र जन्म-कथन और पैशाच-तीर्थ-कथन ।
(८५) क्षुधातीर्थ उत्पत्ति-कथन ।
(८६) विश्वधर वैश्य-कथा और चक्रवीर्योत्पत्ति-कीर्तन ।
(८७) अहल्या-प्राप्तिके लिये गौतमकी पृथ्वी-प्रदक्षिणा, अहल्या और इन्द्र-संवाद, गौतमका अभिशाप, अहल्याकी पूर्व रूप प्राप्ति, इन्द्र-तीर्थाख्यायिका ।
(८८) वरुण-याज्ञवल्क्य-संवाद और जनस्थान-तीर्थ-कीर्तन, उषा-सूर्य-समागम और दोनोंके वीर्यसे गङ्गामें अश्विनी-कुमारोंकी उत्पत्ति, त्वष्टा और सूर्यका सम्भाषण ।
(८९) शेषपुत्र मणिनागद्वारा शिव-स्तुति ।
(९०) विष्णुद्वारा गरुड़का दर्प चूर्ण, गरुड़की विष्णु-स्तुति, गङ्गास्नानसे गरुड़को वज्रदेह-प्राप्ति और विष्णु-प्राप्ति ।
(९१) गोवर्धनतीर्थ आख्यायिका ।
(९२) धौत पाप तीर्थोत्पत्ति ।
(९३) विश्वामित्रका कौशिक तीर्थ स्वरूप-कथन ।
(९४) श्वेताख्यान और यमका पुनर्जीवन प्राप्ति कथन ।
(९५) शुक्रद्वारा शिव-स्तुति और शिवके पास उनका मृत-सञ्जीवनी विद्या प्राप्त करना ।
(९६) मालवदेशाभिधान हेतु-कथन ।
(९७) रावणद्वारा कुवेर-पराभव और कुवेरद्वारा शिव-स्तुति ।
(९८) अग्नितीर्थोत्पत्ति ।
(९९) कक्षीवानका पुत्रोंके प्रति रणत्रयमोचनार्थ दारसङ्ग्रहका उपदेश, उनकी उपेक्षा, उनके प्रति पितृगणोंका गौतमी स्नानके लिये आदेश ।
(१००) वालखिल्योंका काश्यप प्रति पुत्रोत्पादन-कथा, सुपर्णका जन्म, ऋषिसत्रमें सुपर्ण और कद्रुका जाना और ऋषियोंका अभिशाप कि तुम नदी हो जाओ ।
(१०१) पुरुरवा-उर्वशी-संवाद, सरस्वतीको ब्रह्माका शाप और स्त्री-स्वभाव-वर्णन ।
(१०२) मृगरूपधारी ब्रह्मासे मृगव्याधरूपी शिवकी उक्ति, सावित्री आदि पांच नदियोंका ब्रह्माके पास जाना ।
(१०३) शमी आदि तीर्थ-वर्णन ।
(१०४) हरिश्चन्द्र-आख्यान, वरुणके प्रसादसे हरिश्चन्द्रका पुत्र पाना, पुत्र रोहितको लेनेके लिये वरुणकी प्रार्थना, रोहितका वन-गमन, अजीगर्तका पुत्र-विक्रय, अजीगर्तको विश्वामित्रके अनुग्रहसे शुण.शेपनामक पुत्र होना और विश्वामित्रद्वारा ज्येष्ठ पुत्रत्व-कथन ।

(१०५) गङ्गासङ्गत नद नदी-वर्णन ।

(१०६) देव-दानवोंकी सलाह, समुद्रमन्थन, अमृतोत्पत्ति विष्णुके द्वारा राहुका शिरच्छेद । राहुका अभिषेक ।

(१०७) वृद्धा-गौतम-संवाद, गङ्गाके वरसे वृद्धाकी यौवन-प्राप्ति और वृद्धा-गौतम-संवाद ।

(१०८) इला-तीर्थ-वर्णन, इलाचरित-कीर्तन ।

(१०९) चक्रतीर्थ-वर्णन और दक्षयज्ञ-कथन ।

(११०) दधीचि, लोपामुद्रा और दधीचि पुत्र पिप्पलाद चरित और पिप्पलेश्वर तीर्थ-वर्णन ।

(१११) नागतीर्थ-कथन और सोमवंशीय शूरसेन राजाका आख्यान ।

(११२) मातृतीर्थ-वर्णन ।

(११३) ब्रह्मतीर्थ-वर्णन, ब्रह्माका पञ्चमुख-विदारण और शिवका ब्रह्मशिरोधारण वृत्तान्त ।

(११४) अविघ्नतीर्थ-वर्णन ।

(११५) शेषतीर्थ-वर्णन ।

(११६) वडवादि तीर्थ-वर्णन ।

(११७) आत्मतीर्थ-वर्णन और उसके उपलक्षमें दत्ताख्यान ।

(११८) अश्वत्थादि तीर्थ-कीर्तन और उसके साथ ही अश्वत्थ और पिप्पलनामक राक्षसाख्यान ।

(११९) सोमतीर्थ वर्णन और उसके उपलक्षमें गङ्गाद्वारा सोम और ओषधियोंका विवाह-वृत्तान्त ।

(१२०) धान्यतीर्थ वर्णन ।

(१२१) भरद्वाजकृत खेतीके सहित कठका विवाह ।

(१२२) पूर्णतीर्थ वर्णन और उसके विषयमें धन्वन्तरि-संवाद और बृहस्पतिकृत इन्द्राभिषेक ।

(१२३) रामतीर्थ वर्णन और उसके उपलक्षमें रामचरित प्रसङ्ग ।

(१२४) पुत्रतीर्थ वर्णन और उसके उपलक्षमें परमेष्ठि पुत्राख्यान ।

(१२५) यमतीर्थ और अग्निकृत तीर्थ वर्णन ।

(१२६) तपस्तीर्थ वर्णन ।

(१२७) देवतीर्थ वर्णन और उसके अनुसार आरष्टिषेण नृपाख्यान ।

(१२८) तपोवनादितीर्थ वर्णन और संक्षेपसे कार्तिकेयाख्यान ।

(१२९) गङ्गाफेणा-सङ्गमवर्णन और उसके उपलक्षमें इन्द्रमाहात्म्य-प्रसङ्गमे फेननामा नमुचि वध, हिरण्यदैत्य पुत्र महाशनि वध और इन्द्रवर्णित वृषाकपि आदिका माहात्म्य ।

(१३०) आपस्तम्ब तीर्थ और आपस्तम्बचरित कीर्तन ।

(१३१) यमतीर्थ वर्णन और सरमाख्यान ।

(१३२) यक्षिणीसङ्गम-माहात्म्य और विश्वावसु भार्याख्यान और दुर्गा तीर्थ वणन ।

(१३३) शुक्रतीर्थाख्यायिका और भरद्वाज-यज्ञवर्णन ।

(१३४) चक्रतीर्थाख्यान और वसिष्ठादि मुनिकृत यज्ञ-विवरण ।

(१३५) वाणीसङ्गमाख्यान और ज्योतिर्लिङ्ग प्रसङ्ग ।

(१३६) विष्णुतीर्थ वर्णन और मौद्गल्याख्यान ।

(१३७) लक्ष्मीतीर्थादि षट् सहस्रतीर्थाख्यान, लक्ष्मी और दरिद्राख्यान।
(१३८) भानुतीर्थ वर्णन और शर्यातिराज चरित।
(१३९) खड्गतीर्थ वर्णन और कवससुत रोलूष मुनि चरित।
(१४०) आत्रेय तीर्थ वर्णन और आत्रेय ऋषिका आख्यान।
(१४१) कपिलासङ्गम तीर्थ वर्णन और कपिलमुनि और पृथुराजका संक्षेप चरित्र-कथन।
(१४२) देवस्थाननामक तीर्थ और सैंहिकेय राहुपुत्र मेघहास दैत्यका चरित वर्णन।
(१४३) सिद्धतीर्थ और रावणके तपका प्रभाव वर्णन।
(१४४) परुष्णी सङ्गमतीर्थ और अत्रि और आत्रेयी चरित वर्णन।
(१४५) मार्कण्डेय तीर्थ और मार्कण्डेय प्रभाव वर्णन।
(१४६) कालञ्जरतीर्थ और ययाति-चरित।
(१४७) अप्सरोयुग सङ्गमतीर्थ और अप्सरोयुगद्वारा विश्वामित्रका तपोभङ्ग और विश्वामित्रके शापसे नदी रूप प्राप्ति।
(१४८) कोटी तीर्थ और कण्वसुत बालीक चरित।
(१४९) नारसिंह तीर्थ और नारसिंहद्वारा हिरण्यकशिपु-वधाख्यान।
(१५०) पैशाच तीर्थ और शुनःशेपके जन्मदाता अजीगर्तका आख्यान।
(१५१) उर्वशीत्यक्त पुरुरवाके प्रति वसिष्ठका उपदेश।
(१५२) चन्द्रद्वारा ताराहरण और तारा उद्धार।
(१५३) भावतीर्थादि सप्ततीर्थ वर्णन।
(१५४) सहस्रकुण्डादि तीर्थप्रसङ्गमें रावण वध करके सपरिवार रामका अयोध्यागमन, सीता-का वनवास, रामअश्वमेध और लवकुश-वृत्तान्त।
(१५५) कपिला सङ्गमादि दस तीर्थ और आदित्यका अङ्गिराको भूमि दान करनेकी कथा।
(१५६) शङ्खतीर्थादि अयुततीर्थ और ब्रह्मभक्षणके लिये आये हुए राक्षसोंका विष्णुचक्रसे मारा जाना वर्णन।
(१५७) किष्किन्धा तीर्थ-महिमा और रावण वधोत्तर सीतादिके साथ रामका गौतमीके पास लौट आना वर्णन।
(१५८) व्यासतीर्थ और आङ्गिरस आख्यायिका।
(१५९) वञ्जरासङ्गम और गरुड़का आख्यान वर्णन।
(१६०) देवागमतीर्थ और देवासुर युद्ध वर्णन।
(१६१) कुश तर्पण तीर्थ और ब्रह्मा और विराट् उत्पत्ति आदि वर्णन।
(१६२) मन्युपुरुप आख्यान।
(१६३) ब्रह्मरूपधारी परशुनामक राक्षस और शाकल्यमुनि-प्रसङ्ग।
(१६४) पवमाननृप और चिच्चिक पक्षी-संवाद।
(१६५) भद्रतीर्थ और कन्या-विवाह-विपयक-सूर्यविचार और हर्पणका यमालय जाना इत्यादि वर्णन।
(१६६) पतत्रितीर्थ वर्णन।

(१६७) भानु आदि शततीर्थ और अभिष्टुत राज्यका हयमेधाख्यान ।

(१६८-९) वेदनामक द्विज और शिवपूजक व्याध-प्रसङ्ग ।

(१७०) चक्षुतीर्थ और गौतम और कुण्डलकनामक वैश्याख्यान ।

(१७१) उर्वशी तीर्थ और इन्द्र प्रमतिका वृत्तान्त ।

(१७२) सामुद्रतीर्थ-प्रसङ्गमें गङ्गासागर-संवाद ।

(१७३) भीमेश्वर तीर्थ और तत्तत्-प्रसङ्गमें सप्तधा प्रवाहिता-गङ्गा और ऋषियज्ञमें देवरिपु विश्वरूपका वृत्तान्त ।

(१७४) गङ्गासागर-सङ्गम, सोमतीर्थ और वार्हस्पत्यादि तीर्थ वर्णन ।

(१७५) गौतमी-माहात्म्य समाप्ति प्रसङ्गमें गङ्गावतार वर्णन ।

(१७६) अनन्तवासुदेव-माहात्म्य और उस प्रसङ्गमें देवगणोंके सहित रावणका सङ्ग्राम और राम-रावण युद्ध-वर्णन ।

(१७७) पुरुषोत्तम माहात्म्य कीर्तन ।

(१७८) कण्डूमुनिका चरित ।

(१७९) वादरायण प्रति श्रीकृष्णावतार प्रश्न ।

(१८०) कृष्ण-चरितारम्भ ।

(१८१) अवतार-प्रयोजन और कन्सद्वारा देवकीका क़ैद किया जाना ।

(१८२) भगवानके आदेशसे देवकीके गर्भके आकर्षणपूर्वक रोहिणीके उदरमें मायाका गर्भ-स्थापन, देवकीके उदरमें हरिप्रवेश, देवकीके प्रति भगवद्-उक्ति, वसुदेवका गोकुलमें आकर पुत्र-स्थापन, मायाका स्वरूपधारणपूर्वक स्वर्गगमन और कन्सकी भर्त्सना, देवगणद्वारा माया-स्तुति ।

(१८३) कन्सका बाल-विनाशके लिये दैत्योंके प्रति आदेश और वसुदेव-देवकीका कारामोचन ।

(१८४) वसुदेव और नन्दका आलाप, पूतना वध, शकटपातन, गर्गद्वारा बालकका नामकरण, यमलार्जुनभङ्ग, कृष्णकी बाललीलाका वर्णन ।

(१८५) कालिय-दमन ।

(१८६) धेनुक वध ।

(१८७) रामकृष्णकी वहुलीलाका कीर्तन, प्रलम्बासुर वध, गोवर्धनाख्यायिका आरम्भ ।

(१८८) इन्द्रका गोकुलनाशार्थ मेघप्रेरण, भक्तदुःखनाशार्थ कृष्णका गोवर्धन धारण, इन्द्र-द्वारा कृष्ण-स्तुति, इन्द्रके प्रति कृष्णका भूभारहरण कहना, गोवर्धन यागसमाप्ति ।

(१८९) रासक्रीड़ा वर्णन और कृष्णकृत अरिष्टासुर वध ।

(१९०) [illegible]स-नारद-संवाद, अक्रूरप्रेरण, केशि वध वर्णन ।

(१९१-२) नन्द गोकुलमें अक्रूरका आना, कृष्ण-अक्रूर-संवाद और मथुरामें रामकृष्णका गमन ।

(१९३) कुब्जाके साथ कृष्णका आलाप, चाणूर मुष्टिक वध, कन्स वध, वसुदेवकृत भगवत् स्तुति ।

(१९४) देवकी वसुदेवके निकट कृष्णका आगमन, उग्रसेनका राज्याभिषेक, रामकृष्णकी सान्दीपनिसे अस्त्र-प्राप्ति, सान्दीपनिकी पुत्र-प्राप्ति ।

(१९५) रामकृष्णके साथ जरासन्धकी लड़ाई और जरासन्धकी पराजय।
(१९६) कालयवनोत्पत्ति, मुचकुन्दद्वारा कालयवन बध, मुचकुन्दकृत भगवत् वर्णन।
(१९७) मुचकुन्दको भगवानका वरदान, गोकुलमें बलदेवका आगमन।
(१९८) वरुण-वारुणी और यमुना-बलदेव-संवाद, बलदेवका मथुरा जाना।
(१९९) कृष्णद्वारा रुक्मिणीहरण, प्रद्युम्नोत्पत्ति।
(२००) शम्बरासुरद्वारा प्रद्युम्नहरण, शम्बरासुर बध, प्रद्युम्नका द्वारका आना, श्रीकृष्ण-नारद-संवाद।
✓(२०१) रुक्मिणीके पुत्रोंका नाम और कृष्णकी भार्याओंका नाम, बलदेवद्वारा रुक्मिणीका वध।
(२०२) कृष्णका प्राग्ज्योतिषपुर जाना और नरकासुर बध।
(२०३) कृष्ण-अदिति-संवाद, पारिजात हरण।
(२०४) इन्द्र-कृष्ण-संवाद, उषा अनिरुद्ध विवाह कथन, चित्रलेखाका आलेख्य निर्माण-कौशल।
(२०५) बाणके पुरमें अनिरुद्धका लाया जाना।
(२०६) कृष्ण बलदेवका युद्धार्थ आना, कृष्णके साथ शङ्करका युद्ध, कृष्णका अनिरुद्धके साथ द्वारका आना।
(२०७) पौंड्रक वासुदेव वृत्तान्त, पौंड्रक और काशिराजका बध, कृष्णके चक्रसे वाराणसीका जल जाना, पुनः कृष्णके हाथमें चक्रका लौट आना।
(२०८) साम्बद्वारा दुर्योधन-कन्याहरण, दुर्योधनादिद्वारा साम्बनिग्रह, बलदेवके साथ कौरवोंका युद्ध, बलदेवका हस्तिनापुरपर अधिकार, कौरवोंकी प्रार्थना।
(२०९) बलदेवद्वारा द्विविद वानर बध।
(२१०) कृष्णका द्वारका त्याग, प्रभासमें यदुवंश ध्वंस।
(२११) कृष्णके प्रसादसे लुब्धकका स्वर्ग-गमन।
(२१२) रुक्मिणी आदिका अवसान, आभीरोंके साथ अर्जुनका युद्ध, म्लेच्छोंकेद्वारा यादव स्त्री-हरण, अर्जुनका विषाद और व्यासार्जुन-संवाद, अष्टावक्रचरित-कीर्तन, अर्जुनके मुखसे सब वृत्तान्त सुनकर युधिष्ठिरका बान्धवोंके सहित महाप्रस्थान करना, परीक्षितको राज देकर युधिष्ठिरादिका वन-गमन, कृष्णचरित समाप्ति।
(२१३) वाराहावतार, नृसिंहावतार, वामनावतार, दत्तात्रेयावतार, जामदग्नेयावतार, दाशरथिरामावतार, श्रीकृष्णावतार और कल्कि-अवतार वर्णन।
(२१४) नरक और यमलोक वर्णन।
(२१५) दक्षिण मार्गसे जानेवाले प्राणियोंका क्लेश वर्णन, चित्रगुप्तद्वारा पाप वर्णन, पातकके अनुसार नरक-प्राप्ति-कथन।
(२१६) व्यास-कथित धर्माचरण और सुगति प्राप्ति वर्णन।
(२१७) नाना योनिमें जन्म लेनेका प्रसङ्ग।
(२१८) अन्नदानसे शुभ प्राप्तिकी कथा।
(२१९) श्राद्धविधि निरूपण।
(२२०) प्रतिपदादि श्राद्ध-कल्प और पिण्डदान-कथन।

(२२१) सदाचार और विप्रवस्ती-योग्य देशसमूह-कथन, सूतक-विचार ।
(२२२) वर्णधर्म-कथन ।
(२२३) ब्राह्मणोंकी शूद्रत्व-प्राप्ति और शूद्रादिकी उत्तम-गति-प्राप्ति कथन, सङ्करजाति-लक्षण ।
(२२४) मानव धर्मफल और कर्मफल कथन ।
(२२५) देवलोक-प्राप्ति और निरय-प्राप्ति कारण ।
(२२६) वासुदेव-महिमा, मनुवंश और वासुदेव-पूजा कथन ।
(२२७) विष्णुपूजा कथन प्रसङ्गमें उर्वशी मूर्ख ब्राह्मण संवाद और शकटदान कथन ।
(२२८) कपालमोचन तीर्थ और उस प्रसङ्गमें सूर्यादिकी आराधना, कामद-समाख्यान और माया-प्रादुर्भाव ।
(२२९) महाप्रलय वर्णन और कलिगत भविष्य-कथन ।
(२३०) द्वापर युगान्त और भविष्य-कथन ।
(२३१) प्राकृतसर्ग, कल्पमान और नैमित्तिक लयस्वरूप-कथन ।
(२३२) प्राकृत लयस्वरूप-कथन ।
(२३३) आत्यन्तिक लय, आध्यात्मिक तापत्रय, आधिभौतिक और आधिदैविक ताप वर्णन, मुक्तिज्ञान-महिमा ।
(२३४) योगाभ्यास फल ।
(२३५) योग और सांख्य-निरूपण ।
(२३६) मोक्षप्राप्ति और पञ्चमहाभूत-कथन ।
(२३७) सब धर्मोंके विशिष्ट धर्मका निरूपण ।
(२३८) योगविधि निरूपण ।
(२३९) सांख्यविधि निरूपण ।
(२४०) क्षराक्षर-विचार-निरूपण और २४ तत्वोंका प्रतिपादन ।
(२४१) अभिमानियोंका बहुविध-साधन-कथन ।
(२४२) सांख्यज्ञान और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ लक्षण-कथन ।
(२४३) अभेदमें सांख्ययोग-कथन ।
(२४४) जनकके प्रति वसिष्ठकी ब्रह्मासे महा ज्ञान-प्राप्ति और ज्ञान-प्राप्ति-परम्परा-कथन ।
(२४५) व्यासप्रशंसा, ब्रह्मपुराण-श्रवणफल और धर्मप्रशंसा ।

ऊपर इस प्रकार ब्रह्मपुराणके २४५ अध्यायोंकी विषयसूची बँगला विश्वकोषके अनुसार दी गयी है । विष्णुपुराण, शिवपुराणका रेवामाहात्म्य, श्रीमद्भागवत, नारदीय महापुराण और ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण इन छः पुराणोंके अनुसार ब्रह्मपुराणमें १०,००० श्लोक हैं। लिङ्ग, वाराह, कौर्म्म, मात्स्य, पाद्म, इन पांचोंके मतसे ब्रह्मपुराणमें १३,००० श्लोक हैं और देवी भागवतके मतसे तो ब्रह्मपुराण पाचवां पुराण है, परन्तु श्लोक-संख्या देवी भागवतमें १०,००० ही दी हुई है । यहां जो विषयसूची हमने दी है उससे बम्बईकी छपी ब्रह्मपुाणकी पोथीमें दी हुई विषयसूचीसे बहुत कुछ अन्तर पड़ता है, शिवजीकी कथा, रामायणी कथा और कृष्णचरित इन तीनोंका क्रमशः बम्बईवाली पोथीमें अधिक विस्तार है। विश्वकोषकी

सूचीसे मिलान करनेपर जान पड़ता है कि विश्वकोषकारको जो ब्रह्मपुराण प्राप्त था, वह या तो बीच-बीचसे खण्डित था अथवा विषयसूची देनेमें ही कुछ कोताही की गयी। हम इसी लिए आगे चलकर ब्रह्मपुराणकी संस्कृत सूची भी देते हैं।

पहिले यह पुराण ब्रह्ममाहात्म्य-सूचक बताया गया। स्कन्दपुराणमें इसका प्रमाण भी दिया गया है। परन्तु अन्तमें २४५ वें अध्यायके २० वें श्लोकमें इसी पुराणमें लिखा है कि यह वैष्णव पुराण है और इस पुराणमें वैष्णव अवतारोंकी कथाकी विशेषता और उत्कलमें विशेष रूपसे जगन्नाथजीके माहात्म्यका कथन इस बातको परिपुष्ट करता है। यही इस पुराणकी विशेषतायें हैं।

बम्बईके छपे ब्रह्मपुराणकी विषयसूची

मङ्गलाचरण श्लोका., नैमिषारण्य वर्णनम्, तत्र मुनीनामागमः, नैमिषेसूतगमनम्, मुनीनां सूतं प्रति पुराणश्रवणविषयकः प्रश्न, लोमहर्षणस्य पुराणकथनोपक्रम, सृष्टिकथनारम्भः, अपामुत्पत्तिः, ब्रह्मण. समुद्भव., ब्रह्मणाऽण्डद्वैधीकरणम्, ब्रह्मणो मरीच्यादीनामुत्पत्तिः, रुद्रादीनां समुद्भवः, वैवस्वतमनोरुत्पत्तिः, आदि सर्गश्रवणफलम् ..

स्वायम्भुवमनुनाशतरूपाया. परिणय, तस्या. प्रियव्रतोत्तानपादयोः काम्याख्यकन्यायाश्च जन्मकथनम्, उत्तानपादवंशकथनम्, तत्र प्रसङ्गतः पृथुजन्म, प्रचेतसामुत्पत्तिः, प्रचेतोमुखविनिर्गताग्निना वृक्षसंदाहः, प्रचेतोभिर्वृक्षकन्यापरिणयः, तस्यां दक्षसमुद्भवः, दक्षकन्यांसन्ततिवर्णनम्, दक्षसृष्टिकथाश्रवणफलम्

देवादीनामुत्पत्तिकथनम्, तत्राऽऽदौ दक्षनिर्मितमानस्या सन्ततेर्वर्णनम्, अनन्तरं मैथुनधर्मेणासिक्नीनामकपत्न्याम् हर्यश्वानामुत्पत्तिः, प्रजा विवर्धयिषूणां हर्यश्वानां नारदोपदेशेनारण्यं प्रतिगमनम्, पुनः शबलाश्वनाम्नामुत्पत्ति., तेषामपि पूर्ववन्नारदोपदेशेन गमनकथनम्, तदाप्रभृति भ्रातृभिर्भ्रातुरन्वेषणं लोके प्रसिद्धमिति कथनम्, शबलाश्वानपि नष्टाञ्ज्ञात्वा दक्षकृतं षष्ठिकन्यानिर्माणम्, षष्ठिकन्यानां विवाह., षष्ठिकन्यानां सन्ततिवर्णनम्, मरुतामुत्पत्तिः, भूतसर्गश्रवणफलम् ..

पितामहकृतो देवानां तत्तत्स्थलेषु राज्याभिषेक., पृथुचरितारम्भः, वेणराज्ञश्चरित्रम् वेणदुश्चरितावलोकनादृषिकृतं वेणाय शापदानम्, ऋषिशापान्मृतस्य वेणस्य बाहुमन्थनात्पृथोर्जन्म, पृथोराज्याभिषेकः, पृथुराज्यस्थितिवर्णनम्, वन्दिमागधकृता पृथुस्तुतिः, पृथुकृतं पृथिवीशासनम्, पृथुना वसुधायादोहनम्, अन्यैर्देवादिभिर्वसुधादोहन, पृथुना दोहने वत्सपात्रक्षीरदोग्घृवर्णनम् .. ..

सूर्यवंशकथनारम्भ., आदित्यपुत्रकन्यानिरूपणम्, छायासंज्ञयो. संवादः, छायासंज्ञयोश्चरितवर्णनम्, विवस्वद्यमसंवादः, छायाया वडवारूपधारणम्, विवस्वतोऽप्यश्वरूपेणच्छायया सह सङ्गम, देवभिषजोरश्विनीकुमारयोरुत्पत्तिः, भर्तृदर्शनाच्छायायाः परितोषवर्णनम्, सङ्क्षेपेण यमुनाशनैश्चरसावर्णीनां सूर्यतनयानां वर्णनम्, देवसृष्टिश्रवणफलम्

वैवस्वतमनुवंश इलाया. समुद्भव, इलामैत्रावरुणयो. सवाद, इलाया बुधेन सह समागम., सुद्युम्नादीनां जननम्, तेषां वंशकथनम्, इक्ष्वाकुमुखाना वैवस्वतमनुपुत्राणां वंश-

सवितृनिवासः, कृच्छ्रचान्द्रायणादिना गर्भम् धृतवतीमदितिम् 'गर्भाण्डं मारयसि किम्' इति कश्यपोक्तिः पतिवचन कोपितादिति कृतगर्भत्याग', गर्भाण्डात्प्रकटीभूतस्य सवितुः कलापकृता स्तुति, 'मार्तण्डनामाऽयं तव सुतो भविष्यति' इत्याकाशवाग्वचनम्, वाण्युक्तं श्रुत्वा तत्र देवागमनम्, मार्तण्डसहायेन देवानां दैत्यैः सहयुद्धारम्भः, युद्धेऽसुरपराभवः, आह्लादितदेवकृता सूर्यस्तुतिः, सूर्यसंज्ञयोर्विवाह., सूर्यसन्ततिवर्णनम्, संज्ञाछाययोः सवादः, संज्ञायाः पितृमन्दिरं प्रतिगमनम्, त्वष्टृसंज्ञयोः संवादे सूर्यचरित्रवर्णनम्, देवकृता सूर्यस्तुतिः, सूर्यतेज. शातनवर्णनम् ... ..

अन्धकारविमूढैर्ब्रह्मादिभिः कृतः सूर्यस्तवः, देवान्प्रति सूर्यवरप्रदानम्, रव्यष्टोत्तरशतनामकथनम्, अष्टोत्तरशतनाम्नां फलकथनम् .. ..

रुद्रमहिमवर्णनम्, संक्षेपतो दक्षाख्यानम्, सतीज्येष्ठानां दाक्षायणीनां पितृगृहे यज्ञार्थमागमनम्, दक्षसत्योः संवादः, कोपाविष्टायाः सत्याः स्वदेहजेनाग्निनादाहः, शङ्करदक्षयोर्मिथः शापदानम्, ब्रह्ममुन्योः संवाद', पार्वत्याख्यानारम्भ., हिमवतउमासम्भवः, कश्यप हिमवतोः संवाद', तपस्यन्तं हिमवन्तम् प्रति ब्रह्मवरप्रदानम्, हिमवतो मेनायाम् कन्या त्रितयोत्पत्ति., तपोनुरोधेन तासां नामकरणम्, तपस्यन्तीं गिरिजां प्रति ब्रह्मवरदानम् .

उमात्रिदशसंवादः, विकृतरूपधारिशिवस्य पार्वतीसमीप आगमनम्, शिवपार्वतीसंवादः, विकृतरूपिशिवहिमवतो. सम्भाषणम्, अयं शिव इति ज्ञानानन्तरम् पार्वतीकृतशिववरणम्, अशोकवृक्षम् प्रति शिववरप्रदानम्, शिवान्तर्धानकथनम्, ग्राहग्रस्तबालकाक्रन्दितवर्णनम्, पार्वतीग्राहयोः संवादः, स्वतपः क्षयो जात इति मत्वा पुनस्तपस्यन्तीं पार्वतीं प्रति शिववरप्रदानम् . ...

पार्वतीस्वयंवरवर्णनम्, स्वयंवरार्थम् सर्वदेवागमनवर्णनम्, देवकृता पार्वतीप्रशंसा, शिशुरूपेण पार्वत्या अङ्के शिवशयनम्, पार्वतीकृतम् शिवपादयोर्मालार्पणम्, ब्रह्मकृता हिमवत्प्रशंसा, शिवविवाहार्थम् ब्रह्मनिर्मितनगरवर्णनम्, शिवपार्वतीविवाहसमापनम् ...

देवकृतामहेश्वरस्तुतिः, रतिभर्तुर्महेश्वरनेत्रवह्निनादाहः, शक्रप्रभृतिदेवानां दक्षं प्रत्युपस्थानम्, उमामहेश्वरसंवादः, दधीचिदक्षसंवादः, दक्षायशिववरप्रदानम्, एकाम्रकक्षेत्रवर्णनम्, विरजतीर्थस्थविरजादेवीवैतरणीनदीकापिलाद्यष्टतीर्थवर्णनम्, ब्रह्माणं प्रति मुनिप्रश्नः, अवन्तिनगरवर्णनम्, महाकालाभिधशिवमहिम्ना, क्षिप्रानदीवर्णनम्, ब्रह्मविष्णुसंवादः, पुरुषोत्तमक्षेत्रवर्णनम्, राजकृतो भगवत्स्तवः, स्तुतिपठनादिफलकथनम्, मार्कण्डेयाख्यानम्, कल्पक्षयेऽनेकविधक्लेशव्याकुलचित्तस्य मार्कण्डेयस्य वटदर्शनम्, महाप्रलयमेघैः प्लावितायां पृथिव्यामेकार्णवे जले निमज्जतो मार्कण्डेयस्य भगवद्दर्शनम्, भगवदुदरे मार्कण्डेयप्रवेश., उदरस्थकृत्स्नपृथिवीदर्शनम्, पुनरुदराद्बहिरागमनम्, मार्कण्डेयकृता बालमुकुन्दस्तुति., विस्तरेण विष्णुमार्कण्डेयसंवादः, भगवदन्तर्धानवर्णनम्, पञ्चतीर्थविधिवर्णनम्, वटवृक्षपूजाविधिकथनम्, स्वयम्भुऋषिसंवादे नरसिंहपूजाविधानम्, नरसिंहमाहात्म्यवर्णनम्, कपालगौतमऋषेर्मृतपुत्रस्य सञ्जीवनार्थम् श्वेतनृपस्य प्रतिज्ञा, नारायणाष्टाक्षरमन्त्रप्रशंसा, नारायणकवच, समुद्रस्नानविधिनिरूपणम्, आवाहनादिमन्त्रोपेतं पूजाविधिकथनम्, महाज्यैष्ठीप्रशंसावर्णनम्, विष्णुलोकवर्णनम्, विष्णुमन्दिर-

वर्णनम्, विष्णुस्वरूपवर्णनम्, विष्णुलोकमहत्त्ववर्णनम्, पुरुषोत्तममाहात्म्यनिरूपणम्, गौतमीमाहात्म्यारम्भः, गङ्गोत्पत्तिकथोपक्रमः, तारकभीत्यादेवकृता विष्णुस्तुतिः, हिमवद्वर्णनम्, शम्भुविवाहविधिवर्णनम्, गौर्यारूपदर्शनेन ब्रह्मणो वीर्यपातः, बलिप्रशंसा, आदित्यां वामनोत्पत्तिः, बलियज्ञेवामनस्यगमनम्, बलिशुक्रयोर्मिथः संवादः, गङ्गाया-महेश्वरजटागमननिरूपणम्, गङ्गाया द्वैरूप्यकथनम्, शिवगङ्गयोर्मिथस्त्यागसिद्धये विनायकम् प्रति पार्वत्याः सम्भाषणम्, गौतमप्रशंसा, वृषभध्वजप्रीणनाथगौतमस्य कैलासं प्रतिगमनम्, गौतमकृतसुमामहेश्वरस्तवनम्, गौतमस्योमामहेश्वरदर्शनम्, उमा-महेश्वर प्रति गङ्गाप्राप्त्यैःगौतमप्रार्थना, गङ्गाप्रशंसा, गौतम्यानयनम्, गोदावरीतीर्थ-स्नानविधिकथनम्, पुत्रहीनस्य सगरस्य वसिष्ठं प्रतिसन्ततिविषयकः प्रश्नः, वसिष्ठ-वरदानात्तस्य पुत्रप्राप्तिः, वाराहतीर्थवर्णनम्, लुब्धकचरितवर्णनम्, कान्ताविरहेण दुःखितकपोतस्याऽऽक्रन्दनम्, कपोतीकृतापातिव्रत्यधर्मप्रशंसा, दम्पत्योः स्वर्गगमन-कथनम्, कृत्तिकातीर्थवर्णनोपक्रमः, नारदवचनात्कृत्तिकानां षण्मुखम् प्रतिगमनम्, कण्वकृतागङ्गाक्षुधयोः स्तुतिः, विश्वधरवैश्यस्य पुत्रमरणनिमित्तकः शोकः, यमस्य स्वपुराद्गौतमीं प्रतिगमनम्, वसुन्धराया इन्द्रं प्रतिगमनम्, पृथ्वीन्द्रयोः प्रश्नोत्तराणि, यौवनप्राप्तिपर्यन्तमस्या अहिल्यायारक्षणम् कृत्वा पश्चान्मयान्तिकमानयेति गौतमम् प्रति ब्रह्मण उक्तिः, नन्दिकृतगोहरणम्, शङ्करम् प्रति गवानयनार्थम् देवानां गमनम्, देवेभ्यो गोप्राप्तिः, गोवर्धनतीर्थाख्यायिका, विश्वामित्रतीर्थस्वरूपकथनम्, मातृवचना-द्रावणादिबन्धुत्रयस्य तपसेऽरण्यं प्रतिगमनम्, कद्रुसुपर्णे प्रतिप्रजापतिकथनम्, ब्रह्म-सदसिपुरुरवोगमनम्, मृगरूपधारिब्रह्माणं प्रति मृगव्याधरूपधारिशिववचननम्, सावित्र्यादिपञ्चनदीनां ब्रह्मणोऽन्तिकम् गमनम्, प्रियव्रतयज्ञं प्रति हिरण्यकदानव-गमनम्, इन्द्रप्रभृतिदेवानां पृथक् पृथक् स्थलेषु पलायनम्, हरिश्चन्द्रगृहं प्रति नारद-पर्वतयोर्गमनम्, वरुणप्रसादाद्धरिश्चन्द्रस्य पुत्रप्राप्तिः, वरुणपशुना विष्णुयजनार्थम् वरुणस्य शृण्वतः पितरं प्रति रोहितप्रार्थना, रोहितस्य वनगमनम्, देवागन्धर्वेभ्यः सोमं प्राप्तवन्तो गन्धर्वाश्च सरस्वतीमाप्नुवन्निति निरूपणम्, गङ्गायां सङ्गतानां नदानां नदीनां च वर्णनम्, देवदानवानां मेरुपर्वतम् प्राप्यमन्त्रकरणम्, देवदैत्यानां सागरमन्थनम्, इलातीर्थवर्णनम्, चक्रतीर्थवर्णनम्, दक्षयज्ञारम्भः, पार्वत्यादक्षयज्ञं प्रतिगमनम्, शिवनिन्दाश्रवणम्, पार्वत्याकृतो देहत्यागः, महेश्वरस्य दक्षयज्ञं प्रत्या-गमनम्, यज्ञवर्णनम्, वीरभद्रकृतं दक्षयज्ञविध्वंसनम्, देवैः कृता शिवस्तुतिः, दक्ष-कृतशिवस्तवः, देवैः कृतो विष्णुस्तवः, दधीचेर्वर्णनम्, दधीचेराश्रमे सर्वदेवानामा-गमनम्, मातापित्रोर्दर्शनार्थम् देवान्प्रति पिप्पलादोक्तिः, पिप्पलादस्य स्वर्गलोकं प्रतिगमनम्, मातापित्रोर्दर्शनम्, नागतीर्थवर्णनम्, मातृतीर्थवर्णनम्, देवदानवयुद्धम्, ब्रह्मणाकृतः शिवस्तवः, राक्षसानां रसातलगमनम्, ब्रह्मतीर्थवर्णनम्, अविघ्नतीर्थ-वर्णनम्, देवैः सह विनायकसंवादः, शेषतीर्थवर्णनम्, शेषेण सह ब्रह्मसंवादः, शेषकृतः शिवस्तवः, आत्मतीर्थवर्णनम्, दत्तेन महात्रिसंवादः, वडवादितीर्थवर्णनम्, सुरा-सुराणां वैरकारणम्, अश्वत्थादितीर्थानां वर्णनम्, सोमतीर्थवर्णनम्, ओषधिभिः सह

ब्रह्मसंवादः, गङ्गयाकृतः सोमौषधीनां विवाहः, धान्यतीर्थवर्णनम्, गङ्गासमीपे दानस्य माहात्म्यवर्णनम्, विदर्भारेवत्योर्गङ्गया सङ्गमनम्, भरद्वाजकृतोरेवत्या सह कठविवाहः, पूर्णतीर्थवर्णनम्, ब्रह्मणा सह धन्वन्तरिसंवादः, धन्वन्तरेस्तपोनाशः, धन्वन्तरिकृता विष्णुस्तुतिः, विष्णोः सकाशात्सुरराज्यप्राप्तिः, ब्रह्मबृहस्पतीन्द्राणां संवादः, बृहस्पतिना कृत इन्द्राभिषेकः, रामतीर्थवर्णनम्, दशरथवर्णनम्, देवदानवसङ्गरः, देवदानवानां दशरथसमीप आगमनम्, दशरथकृतं देवसाहाय्यम्, युद्धे कैकेय्या-वर्णनम्, दशरथान्मुनिपुत्रमृतिः, पुत्रमरणान्मातापित्रोर्विलापो मरणं च, रामादीनां जन्मकथनम्, दशरथकृतं विश्वामित्राय पुत्रसमर्पणम्, अहल्योद्धारो राक्षसवधश्च, सीताप्राप्तिः, दशरथस्य मृतिर्नरकप्राप्तिर्नरकान्मुक्तता च, दशरथेन सह यमकिङ्कर-संवादः, रामलक्ष्मणदशरथानां संवादो, दशरथोक्तदुःखकथनं च, शोकाकरणार्थम् दशरथादिभिः सह सीतावचनम्, देवैः सह रामसंवादो, रामकृत. शिवस्तवः, पुत्रतीर्थवर्णनम्, दितिकश्यपसंवादः, मयकृततपस. कथनम्, मयेन सहेन्द्रसंवादः, मरुतामुत्पत्तिः, दितेरिन्द्राय शापप्रदानमगस्तेश्च, इन्द्रेण सह कश्यपसंवादः, कश्यपकृतं शिवस्तोत्रम्, इन्द्रेण सह सर्वेषु देवेषु शिवप्रसाद', दित्या सह शङ्करसंवादः, रामतीर्थवर्णनम्, कपोतोलूकयोर्युद्धम्, हेतिनाम्न्या कपोतक्या कृतमग्निस्तोत्रम्, उलूक्या कृतं यमस्तोत्रम्, उलूक्या सह यमसंवादः, यमरयोक्तौ तीर्थमहिमवर्णनम्, अग्निकृतं तीर्थवर्णनम् तपस्तीर्थवर्णनम्, अग्निवर्णनम्, देवब्रह्ममुनीनां परस्परं संवादः ऋषिकृतं विष्णुस्तोत्रम्, अशरीरिण्या वाचा सह ऋष्युक्तिः, देवतीर्थवर्णनम्, तपोवनादितीर्थवर्णनम्, गङ्गाफेनयो. सङ्गमवर्णनम्, आपस्तम्बतीर्थवर्णनम्, यमतीर्थवर्णनम्, यक्षिणीसङ्गममाहात्म्यकथनम्, दुर्गातीर्थवर्णनम्, विष्णुतीर्थवर्णनम्, शुक्लतीर्थाख्यायिकारम्भः, शुक्लतीर्थे भरद्वाजकृतयज्ञवर्णनम्, चक्रतीर्थाख्यानारम्भः, यज्ञविघ्नभयोद्विग्नमुनिकृता विष्णुप्रार्थना, लक्ष्मीतीर्थाख्यानम्, दरिद्रासमीपे गौतम्या लक्ष्मीमाहात्म्यवर्णनम्, ब्रह्मकृता गङ्गाप्रशंसा, स्नानादीनां माहात्म्यकथनम्, लक्ष्मीतीर्थादिषट्सहस्रतीर्थवर्णनम्, भानुतीर्थवर्णनम्, खड्गतीर्थवर्णनम्, कपिलासङ्गमाख्यतीर्थवर्णनम्, देवस्थानाख्यतीर्थवर्णनम्, सिंहिकासुतराहुपुत्रस्य मेघहासाख्यदैत्यस्य चरितवर्णनम्, तत्कृततपोवर्णनम्, देवस्थाननिकटस्थाष्टादशतीर्थवर्णनम्, सिद्धतीर्थवर्णनम्, रावणकृततपोवर्णनम्, रावणकृतम् कैलासान्दोलनम्, परुष्णी तीर्थ वर्णनम्, मार्कण्डेय तीर्थ वर्णनम्, कालञ्जरतीर्थ वर्णनम्, ययातिचरितम्, कालञ्जर निकटस्थाष्टोत्तरशत तीर्थ वर्णनम्, अप्सरोयुग सङ्गमतीर्थ वर्णनम्, अप्सरोयुगकृत विश्वामित्र तपोभङ्ग वर्णनम्, विश्वामित्र शापादप्सरसोर्नदीत्व सम्प्राप्तिः, कोटितीर्थ वर्णनम्, कण्वतीर्थ निकटस्थपञ्चाशत्तीर्थवर्णनम्, नारसिंहतीर्थवर्णनम्, हिरण्यकशिपुप्रशंसा नारसिंहकृतो हिरण्यकशिपुवध., एवं त्रैलोक्यस्थितसकलदैत्यवधवर्णनम्, नारसिंहस्य गौतमीं प्रत्यागमनम्, उर्वशीगमनेन दुःखिनं पुरूरवसं प्रति वसिष्ठोपदेशः, निम्नभेदादिसप्तशततीर्थवर्णनम्, चन्द्रकृततारापहरणम्, शुक्रं प्रति गुरुयमनम्, शुक्रायभार्याहरणकथनम्, तारानयने शुक्रप्रतिज्ञा, रावणादीन्हत्वाऽयोध्यां प्रति सपरिवारं रामस्य गमनम्, लोकापवादा-

द्वाल्मीक्याश्रमसन्निधौ रामाज्ञया लक्ष्मणकृतसीतात्यागः, रामाश्वमेधं प्रति लवकुशयोर्गमनम्, अङ्गदादीनां द्वारपालान्प्रति सीतात्यागकारणज्ञानविषयकः प्रश्नः, सहस्रकुण्डादिदशतीर्थवर्णनम्, किष्किन्धातीर्थमहिमवर्णनम्, रावणवधोत्तरं सीतादिभिः सह रामस्य गौतमीं प्रत्यागमनम्, तत्र क्लान्त्यपनोदनाय कतिपयदिनपर्यन्तं रामस्यावस्थानम्, रामकृता गौतमीप्रशंसा, रामवानरकृतगौतमीस्नानशिवलिङ्गपूजादिवर्णनम्, रामं प्रति विभीषणोक्तिः, गमनवेलायां लिङ्गविसर्जनाय वायुसुतं प्रति रामनिदेशः, लिङ्गविसर्जनासमर्थे वायुसुते रामकृतलिङ्गनमस्कारादिकथनम्, किष्किन्धातीर्थस्मरणादिफलकथनम्, व्यासतीर्थाख्यायिकारम्भः, व्यासतीर्थमहिमवर्णनम्, वञ्जरासङ्गमतीर्थाख्यानम्, देवागमतीर्थवर्णनम्, कुशतर्पणतीर्थप्रस्तावोपक्रमः, ब्रह्मोत्पत्तिक्रमः, यज्ञद्वारा चराचरात्मकजगदुत्पत्त्यर्थम् ब्रह्माणं प्रत्याकाशवागुक्तिः, ब्रह्माकाशवाण्यो. सृष्टिविषयको मिथो विस्तरेण संवादः, यज्ञोपकरणवर्णनम्, देव्याज्ञया यज्ञपश्वर्थम् ब्रह्मकृतविष्णुस्तवनम्, पवमाननृपस्य प्रति चिच्चिकपक्षिणः पूर्ववृत्तकथनम्, कन्याविवाहविषयकः सूर्यविचारः, कन्याप्रशंसा, कन्यादीनां विक्रयनिषेध., विवाहकालातिक्रमे दोषकथनम्, भद्रतीर्थवर्णनम्, पतत्रितीर्थवर्णनम्, विप्रनारायणतीर्थवर्णनम्, चक्षुतीर्थवर्णनम्, पुत्रधर्मवर्णनम्, धर्मप्रशंसा, उर्वशीतीर्थवर्णनम्, इन्द्रप्रमितिसंवादः, सामुद्रतीर्थवर्णनम्, गङ्गासागरसंवादः, गङ्गायाः सप्तधाभवनम्, गङ्गासागरसङ्गमवर्णनम्, कण्डुचरितारम्भः, कृष्णचरितारम्भः, अवतारप्रयोजनवर्णनम्, भूरिभारावपीडितमह्या ब्रह्मान्तिके गमनम्, ब्रह्माणं प्रतिस्वदुःखनिवेदनम्, भवत्प्रशंसागर्भितो देवान्प्रतिब्रह्मणः संवादः, ब्रह्मकृता विष्णुस्तुति , स्तुतिश्रवणोत्तरं ब्रह्माणं प्रतिविष्णुकृतसितकृष्णकेशद्वयदानकथनम्, देवान्प्रतिविष्णुप्रतिपादित केशद्वयदानाभिप्रायकथनम्, विष्णुसाहाय्यार्थमिन्द्रादिदेवावतरणम्, देवक्यष्टमगर्भात्त्वद्वध इति कंसम् प्रति नारदवचनम्, कुपितकंसकृतम् वसुदेवदेवक्योः कारागृहे स्थापनम्, देवक्या जातमात्रषट्पुत्राणां कंसकृतवधनिरूपणम्, विष्णुमायासंवादे मायां प्रति भगवदाज्ञानिरूपणम्, कृष्णचरितारम्भः, कालीयदमनाख्यानम्, धेनुकवधाख्यानम्, रामकृष्णकृत बहुविधि लीलावर्णनम्, वराहावतारवर्णनम्, व्यासर्षिसंवादेभूमिभारावतरणकथनम्, द्वारकात्यागवर्णनम्, भगवतोनिजधामगमनम्, नरकदु.खनिवारणाय मुनिकृतो व्यासं प्रति प्रश्न., धर्मश्रेष्ठ्यवर्णनम्, शरीरोत्पत्तिकथनम्, पुण्यपापानुरोधेन नानायोनिषु जननवर्णनम् पाप पुण्यवर्णनम् च, श्राद्धविधिनिरूपणम्, श्राद्धकल्पवर्णनम्, सदाचारकथनम्, व्यासमुनिसंवादे वर्णधर्मकथनम्, उमामहादेवसंवादे ब्राह्मणानां शूद्रत्वप्राप्तिकथनम्, व्यासमुनिसंवादेवर्णधर्मकथनम्, उमामहेश्वरसंवादे मानवानामुत्तमगतिप्राप्तिवर्णनम्, स्वर्गप्राप्ति हेतुभूतधर्मकथनम्, व्यासमुनिसंवादे विष्णुपूजाकथनम्, योगाभ्यासनिरूपणम्, विस्तरेणयोगनिरूपणम्, ज्ञानिनां मोक्षप्राप्तिनिरूपणम्, योगविधिनिरूपणम्, सांख्यविधिनिरूपणम्, क्षराक्षरविचारनिरूपणम्, वसिष्ठंप्रति मोक्षधर्मविषयकोजनकप्रश्न., विद्याविद्ययोःस्वरूपकथनम्, अजस्यापिविक्रियया नानाभवनम् पुराणश्रवणसुप्रतिमुनिकृता व्यासप्रशंसा, सर्वमुनीनां स्वाश्रमप्रतिगमनम्, अस्य श्रवणपठनकर्तॄणां फलप्राप्तिकथनम्, धर्मप्रशंसा।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

पद्मपुराण

आजकल जो पद्मपुराण प्रचलित है उसमें पाँच खण्ड हैं। (१) सृष्टिखण्ड, (२) भूमिखण्ड, (३) स्वर्गखण्ड, (४) पातालखण्ड और (५) उत्तरखण्ड। इस पुराणकी संक्षिप्त विषयावली इस प्रकार है—

सृष्टिखण्ड

१—सूतके प्रति ऋषियोंकी पुराण कथनाज्ञा, नैमिषारण्यका आख्यान, सूत-शौनक-संवाद, पुराण प्रसङ्गसे सूत व्यासादि उत्पत्ति-कथन, व्यासका पुराण करण-कारण वर्णन।

२—सृष्टिखण्डमें बताये हुए विषयोंकी परिगणना, पुलस्त्य भीष्म-संवादद्वारा सृष्टि-कथन, अहङ्कारादि यावतीय पदार्थोंकी उत्पत्तिका वर्णन।

३—मन्वन्तरादि परिमाण-कथन, प्रलय वर्णन, जलमें डूबी हुई पृथ्वीके द्वारा विष्णुकी स्तुति, भगवान्‌का वाराह रूप धरकर उसका उद्धार करना, प्रजापति द्वारा नवधा सृष्टि-कथन, देवगणोंका दिवा भागमें और असुरादिका रात्रि-कालमें बल बढ़ जानेका कारण बताना, ब्राह्मणादिकी उत्पत्तिकी कथा, ब्रह्म-क्रोधसे रुद्रकी उत्पत्तिकी कथा, स्वायम्भुव आदिकी उत्पत्तिकी कथा।

४—इन्द्रके प्रति दुर्वासाका अभिशाप, समुद्रमन्थन, भृगुका शाप पाये हुए विष्णुके साथ ब्रह्माकी बातचीत, नारदका कहा ब्रह्मस्तोत्र और वर-प्राप्ति।

५—दक्षयज्ञ-विनाश कथन, दक्षका शिवजीकी स्तुति करना और वर पाना।

६—देव, दानव, गन्धर्व, उरग, राक्षसादिकी सृष्टिकी कथा, प्रचेता-दक्ष-संवादमें पूर्व-सृष्टिकी हेतुत्व-जिज्ञासा, देवता, वसु, रुद्र, द्वादश आदित्य और हिरण्य-कशिपुका प्रभुत्व, दैत्येन्द्र आदिकी उत्पत्तिकी कथा। बाणासुर-चरिताख्यान, विनताके गर्भसे गरुड़की उत्पत्तिका वर्णन, सम्पाति और जटायुकी उत्पत्तिका वृत्तान्त, मुनि अप्सरा किन्नर और गन्धर्वादिकी उत्पत्तिका वृत्तान्त।

७—ज्येष्ठ पूर्णिमा व्रत-कथा, दितिके गर्भमें इन्द्रद्वारा भ्रूणच्छेद मरुतकी उत्पत्तिका वृत्तान्त, प्रतिसर्ग-कथन, मन्वन्तर वर्णन।

८—पृथूपाख्यान, आदित्यवंश-कथन, सावर्णि-मनुकी उत्पत्तिका वृत्तान्त, छाया उपाख्यान और रवि तेजहरण-वृत्तान्त, अश्विनीकुमारकी उत्पत्तिकी कथा, शनि-की ग्रहत्व सम्पत्ति कथा, इलोपाख्यान और इलाको स्त्रीत्व-प्राप्ति और बुधाश्रममें वास, ऐलकी उत्पत्तिकी कथा, इक्ष्वाकु आदिके वंशका वर्णन, भगीरथ वंश-कथन और दिलीप वंश-कथन।

९—पितृवंश-कथा, अग्निकरण वर्णन, श्राद्ध-प्रशंसा, निषिद्ध वस्तु वर्णन, श्राद्धकाल निर्णय, विषुवायन दिनमें साधारण श्राद्ध-विधान।

१०—एकोद्दिष्टविधि, सपिण्ड-विधान, अशौचादि-निर्णय, कृत-श्राद्धका फलाफल कथन।

११—श्राद्ध-प्रशस्त देशकाल-कथा, नैमिष, गया और तीर्थक्षेत्र आदिमें श्राद्ध-प्राशस्त्य, विष्णु देहमेंसे कुश तिलादि उद्भवकी कथा।

१२—सोमोपाख्यान, बुधकी जन्मकथा, इलाके गर्भसे पुरुरवाका जन्म और चरिताख्यान, तद्वंश-कथन, कार्तवीर्योपाख्यान और तद्वंश कीर्तन।

१३—क्रोष्टुवंश-कथा, स्यमन्तोपाख्यान, कुन्त्याख्यान, त्रिपुरुषसे अर्जुनकी उत्पत्ति, माद्रवतीके गर्भसे नकुल-सहदेवकी उत्पत्ति, रामकृष्णका उपाख्यान, कृष्णकी जन्मकथा, वसुदेव, देवकी, नन्द और यशोदाका पूर्वजन्म-वृत्तान्त, कृष्णवंश-चरित, दशावतार धारण करनेका कारण-निर्देश, शुक्रकी तपश्चर्या, देवपराजित दैत्यगणोंका काव्यमाताके निकट गमन, शुक्रमाताके द्वारा देव प्रद्रावण, विष्णुद्वारा शुक्रमाता बध, भृगुदत्त विष्णु शाप वर्णन, भृगुकृत मातृसञ्जीवन वर्णन, शुक्रकी तपश्चर्याको भङ्ग करनेके लिये इन्द्रद्वारा जयन्ती कन्याका भेजा जाना, शुक्रका शिवजीसे वर पाना, जयन्तीके साथ शुक्रका शतवर्ष-रति वर्णन, शुक्रवेषमें बृहस्पतिका दानवोंके पास जाना, नास्तिक मतका प्रचार और दीक्षादान, दानवगणके प्रति शुक्रका अभिशाप।

१४—शिवद्वारा शिरच्छेदसे रुष्ट ब्रह्माके स्वेदसे पुरुषकी उत्पत्ति, स्वेदके भयसे भीत-शङ्करका विष्णुके पास जाना और विष्णुकी दक्षिण भुजा त्रिशूलद्वारा काटना, भुजोत्पन्न रक्तसे पुरुषकी उत्पत्ति, दोनोंका युद्ध, स्वेदजका पराभव, दोनोंका अनुक्रमसे सुग्रीव और बलि रूपमें जन्म, उक्त पुरुषद्वयका कर्णार्जुन रूपसे पुनर्जन्म वृत्तान्त, शिवकृत ब्रह्म शिरच्छेद कारण वर्णन, शङ्करकृत ब्रह्मस्तेज, ब्रह्महत्या क्षालनार्थ शङ्कर प्रति विष्णुका उपदेश, रुद्रकृत सकल तीर्थ गमन, पुष्करमें रुद्रकृत कापालिक व्रत-कथा और ब्रह्म वर-प्राप्ति, कपालमोचन तीर्थकी उत्पत्ति, वाराणसी-माहात्म्य और ब्रह्माकी आज्ञासे शिवका काशीधाम जाना।

१५—मेरु शिखरस्थ कान्तिमती सभामें ब्रह्माकी चिन्ताका वर्णन, ब्रह्माका वनगमन, पुष्करोत्पत्ति-कथन, देवता-सम्मेलन, पुष्कर तीर्थ-वासियोंका धर्माचार, चान्द्रायण और मृत्युफल-कथन, ब्राह्मण लक्षण और भिक्षु-धर्म-कथन।

१६—ब्रह्मकृत यज्ञानुष्ठान और गोप-कन्याका पाणिग्रहण।

१७—ब्रह्मयज्ञमें रुद्रका भिक्षार्थ-गमन, ब्रह्म-रुद्र-संवाद, गोपकन्याके साथ यज्ञमें लगे हुए ब्रह्माको सावित्रीका शाप देना, विष्णुद्वारा सावित्री स्तोत्र, विष्णुका सावित्रीसे वर पाना, कार्त्तिकी पूर्णिमाको गायत्रीके उपदेशसे ब्रह्माजीका व्रत करना, रुद्रकृत गायत्री-स्तव और वर लाभ।

१८—ब्रह्मयज्ञकथा, दानवोंके साथ विष्णुका झगड़ा, पुष्करस्नानसे मुख-विरूप ऋषिकी सुरूपता प्राप्ति, प्राचीन सरस्वती चरित्र, मङ्कणक ब्राह्मणकी कथा,

सरस्वती-माहात्म्य, प्रसङ्गक्रमसे उत्तङ्काश्रममें जाना, गङ्गा-संवाद, समुद्रगमन, वड़वानल ग्रह वर्णन, सरस्वतीका नन्दा नाम पाना, प्रभञ्जन राजाकी कथा और नन्दाका प्रसङ्ग ।

१९—तीर्थ-विभाग, वृत्रासुरोपाख्यान, दधीचिकी कथा, वृत्रासुर वध, कालकेयोंकी समुद्रमें स्थिति, अगस्त्याख्यान, विंध्यपर्वतकी मस्तक-नति, अगस्त्यकृत समुद्र-प्राशन, कालेय-वध-वृत्तान्त, पुष्कर-माहात्म्य-ज्ञापक आख्यायिकाका अन्त, अन्नदानादि प्रशंसा, मध्यम पुष्कर-प्रशंसा ।

२०—दानप्रशंसाके प्रसङ्गमें पुष्पवाहन राजाकी कथा ।

२१—राजा धर्ममूर्त्तिकी कथा, सौर धर्म-कथन, विशोकादि सप्तमी व्रत-कथा ।

२२—अगस्त्य-चरित गौरी-व्रत और सारस्वत व्रत विधि ।

२३—भीम-द्वादशी-व्रत-कथामें कृष्ण पत्नियोंके साथ दाल्भ्यकी बातचीत, दाल्भ्य-द्वारा वेश्या धर्म वर्णन ।

२४—अशून्य-शयन व्रत विधि, वीरभद्रोत्पत्ति कथा, आदित्य, रोहिणी, ललिता और सौभाग्य शयन व्रत विधि ।

२५—वामनावतार कथा ।

२६—नागतीर्थोत्पत्ति, शिव-दूतकी कथा ।

२७—प्रेतपञ्चक-आख्यान, सुधावट तीर्थ वर्णन ।

२८—मार्कण्डेयकी उत्पत्ति, रामका रेवा-गमन ।

२९—ब्रह्मद्वारा यज्ञकाल वर्णन, ऋत्विक् परिमाण-कथन, पुष्कर-माहात्म्य ।

३०—क्षेमङ्करीका उपाख्यान, क्षेमङ्करी स्तोत्र, ब्रह्म, विष्णु, रुद्रशक्तिके समूहका बहुभेद-कथन ।

३१—वैष्णवी और चामुण्डारूपी शक्तिका दैत्य वध करना, महिषासुर बध, नवग्रह व्रत और ब्रह्माण्ड दान विधि ।

३२—रामकृत शूद्रक वधाख्यान ।

३३—राम अगस्त्य-संवादमें क्षत्रियोंको प्रतिग्रहका अधिकार और श्वेत-नामक राजा-की कथा ।

३४—गृध्र-उलूककी कथा ।

३५—कान्यकुब्जमें रामद्वारा वामन प्रतिष्ठादि कथा ।

३६—विष्णुकी नाभिसे हिरण्मय पद्मकी उत्पत्ति ।

३७—मधुकैटभ बध, प्राजापत्य सृष्टि, तारकामय सङ्ग्राम ।

३८—विष्णुद्वारा इन्द्रादिको अधिकार मिलना ।

३९—तारकासुर कथा ।

४०—हिमालयमें पार्वतीकी उत्पत्तिकी कथा, पार्वतीका विवाह वर्णन ।

४१—कार्त्तिकेयकी उत्पत्ति और तारकासुर बध कथा ।

४२—हिरण्यकशिपु वध ।

९—पितृवंश-कथा, अग्निकरण वर्णन, श्राद्ध-प्रशंसा, निषिद्ध वस्तु वर्णन, श्राद्धकाल निर्णय, विषुवायन दिनमें साधारण श्राद्ध-विधान।

१०—एकोद्दिष्टविधि, सपिण्ड-विधान, अशौचादि-निर्णय, कृत-श्राद्धका फलाफल कथन।

११—श्राद्ध-प्रशस्त देशकाल-कथा, नैमिष, गया और तीर्थक्षेत्र आदिमें श्राद्ध-प्राशस्त्य, विष्णु देहमेंसे कुश तिलादि उद्भवकी कथा।

१२—सोमोपाख्यान, बुधकी जन्मकथा, इलाके गर्भसे पुरुरवाका जन्म और चरिताख्यान, तद्वंश-कथन, कार्तवीर्योपाख्यान और तद्वंश कीर्तन।

१३—क्रोष्टुवंश-कथा, स्यमन्तोपाख्यान, कुन्त्याख्यान, त्रिपुरुषसे अर्जुनकी उत्पत्ति, माद्रवतीके गर्भसे नकुल-सहदेवकी उत्पत्ति, रामकृष्णका उपाख्यान, कृष्णकी जन्मकथा, वसुदेव, देवकी, नन्द और यशोदाका पूर्वजन्म-वृत्तान्त, कृष्णवंश-चरित, दशावतार धारण करनेका कारण-निर्देश, शुक्रकी तपश्चर्या, देवपराजित दैत्यगणोंका काव्यमाताके निकट गमन, शुक्रमाताके द्वारा देव प्रद्रावण, विष्णुद्वारा शुक्रमाता वध, भृगुदत्त विष्णु शाप वर्णन, भृगुकृत मातृसञ्जीवन वर्णन, शुक्रकी तपश्चर्याको भङ्ग करनेके लिये इन्द्रद्वारा जयन्ती कन्याका भेजा जाना, शुक्रका शिवजीसे वर पाना, जयन्तीके साथ शुक्रका शतवर्ष-रति वर्णन, शुक्रवेषमें बृहस्पतिका दानवोंके पास जाना, नास्तिक मतका प्रचार और दीक्षादान, दानवगणके प्रति शुक्रका अभिशाप।

१४—शिवद्वारा शिरच्छेदसे रुष्ट ब्रह्माके स्वेदसे पुरुषकी उत्पत्ति, स्वेदके भयसे भीतशङ्करका विष्णुके पास जाना और विष्णुकी दक्षिण भुजा त्रिशूलद्वारा काटना, भुजोत्पन्न रक्तसे पुरुषकी उत्पत्ति, दोनोंका युद्ध, स्वेदजका पराभव, दोनोंका अनुक्रमसे सुग्रीव और बलि रूपमें जन्म, उक्त पुरुषद्वयका कर्णार्जुन रूपसे पुनर्जन्म वृत्तान्त, शिवकृत ब्रह्म शिरच्छेद कारण वर्णन, शङ्करकृत ब्रह्मस्तेज, ब्रह्महत्या क्षालनार्थ शङ्कर प्रति विष्णुका उपदेश, रुद्रकृत सकल तीर्थ गमन, पुष्करमें रुद्रकृत कापालिक व्रत-कथा और ब्रह्म वर-प्राप्ति, कपालमोचन तीर्थकी उत्पत्ति, वाराणसी-माहात्म्य और ब्रह्माकी आज्ञासे शिवका काशीधाम जाना।

१५—मेरु शिखरस्थ कान्तिमती सभामें ब्रह्माकी चिन्ताका वर्णन, ब्रह्माका वनगमन, पुष्करोत्पत्ति-कथन, देवता-सम्मेलन, पुष्कर तीर्थ-वासियोंका धर्माचार, चान्द्रायण और मृत्युफल-कथन, ब्राह्मण लक्षण और भिक्षु-धर्म-कथन।

१६—ब्रह्मकृत यज्ञानुष्ठान और गोप-कन्याका पाणिग्रहण।

१७—ब्रह्मयज्ञमें रुद्रका भिक्षार्थ-गमन, ब्रह्म-रुद्र-संवाद, गोपकन्याके साथ यज्ञमें लगे हुए ब्रह्माको सावित्रीका शाप देना, विष्णुद्वारा सावित्री स्तोत्र, विष्णुका सावित्रीसे वर पाना, कार्त्तिकी पूर्णिमाको गायत्रीके उपदेशसे ब्रह्माजीका व्रत करना, रुद्रकृत गायत्री-स्तव और वर लाभ।

१८—ब्रह्मयज्ञकथा, दानवोंके साथ विष्णुका झगड़ा, पुष्करस्नानसे मुख-विरूप ऋषिकी सुरूपता प्राप्ति, प्राचीन सरस्वती चरित्र, मङ्कणक ब्राह्मणकी कथा,

सरस्वती-माहात्म्य, प्रसङ्गक्रमसे उत्तङ्काश्रममें जाना, गङ्गा-संवाद, समुद्रगमन, वडवानल ग्रह वर्णन, सरस्वतीका नन्दा नाम पाना, प्रभञ्जन राजाकी कथा और नन्दाका प्रसङ्ग।

१९—तीर्थ-विभाग, वृत्रासुरोपाख्यान, दधीचिकी कथा, वृत्रासुर वध, कालकेयोंकी समुद्रमें स्थिति, अगस्त्याख्यान, विंध्यपर्वतकी मस्तक-नति, अगस्त्यकृत समुद्र-प्राशन, कालेय-वध-वृत्तान्त, पुष्कर-माहात्म्य-ज्ञापक आख्यायिकाका अन्त, अन्नदानादि प्रशंसा, मध्यम पुष्कर-प्रशंसा।

२०—दानप्रशंसाके प्रसङ्गमें पुष्पवाहन राजाकी कथा।

२१—राजा धर्ममूर्त्तिकी कथा, सौर धर्म-कथन, विशोकादि सप्तमी व्रत-कथा।

२२—अगस्त्य-चरित गौरी-व्रत और सारस्वत व्रत विधि।

२३—भीम-द्वादशी-व्रत-कथामें कृष्ण पत्नियोंके साथ दाल्भ्यकी बातचीत, दाल्भ्य-द्वारा वेश्या धर्म वर्णन।

२४—अशून्य-शयन व्रत विधि, वीरभद्रोत्पत्ति कथा, आदित्य, रोहिणी, ललिता और सौभाग्य शयन व्रत विधि।

२५—वामनावतार कथा।

२६—नागतीर्थोत्पत्ति, शिव-दूतकी कथा।

२७—प्रेतपञ्चक-आख्यान, सुधावट तीर्थ वर्णन।

२८—मार्कण्डेयकी उत्पत्ति, रामका रेवा-गमन।

२९—ब्रह्मद्वारा यज्ञकाल वर्णन, ऋत्विक् परिमाण-कथन, पुष्कर-माहात्म्य।

३०—क्षेमङ्करीका उपाख्यान, क्षेमङ्करी स्तोत्र, ब्रह्म, विष्णु, रुद्रशक्तिके समूहका बहुभेद-कथन।

३१—वैष्णवी और चामुण्डारूपी शक्तिका दैत्य वध करना, महिषासुर वध, नवग्रह व्रत और ब्रह्माण्ड दान विधि।

३२—रामकृत शूद्रक वधाख्यान।

३३—राम अगस्त्य-संवादमें क्षत्रियोंको प्रतिग्रहका अधिकार और श्वेत-नामक राजाकी कथा।

३४—गृध्र-उलूककी कथा।

३५—कान्यकुब्जमें रामद्वारा वामन प्रतिष्ठादि कथा।

३६—विष्णुकी नाभिसे हिरण्मय पद्मकी उत्पत्ति।

३७—मधुकैटभ वध, प्राजापत्य सृष्टि, तारकामय सङ्ग्राम।

३८—विष्णुद्वारा इन्द्रादिको अधिकार मिलना।

३९—तारकासुर कथा।

४०—हिमालयमें पार्वतीकी उत्पत्तिकी कथा, पार्वतीका विवाह वर्णन।

४१—कार्त्तिकेयकी उत्पत्ति और तारकासुर वध कथा।

४२—हिरण्यकशिपु वध।

४३—अन्धकासुरकी कथा, गायत्री जप विधि ।

४४—अधम ब्राह्मण लक्षण, गरुडोत्पत्ति ।

४५—अग्निद, गरदादि ब्राह्मण बधमें पाप भाव-कथन, सत्य और गोमाहात्म्य ।

४६—सदाचार कथा ।

४७—पितृसेवा-प्रशंसा कथनमें पतिव्रता तुलाधार और मद्रोहककी कथा, श्राद्ध-प्रशंसा ।

४८—पातिव्रत कथनमें माण्डव्य चरित ।

४९—सहगमनविधि और स्त्रीधर्म ।

५०—तुलाधार-चरित, अलोमकी प्रशंसामें शूद्राख्यान ।

५१—अहल्या-धर्षण ।

५२—परमहंस-आख्यान और लौहित्य-माहात्म्य ।

५३—पद्माख्यान ।

५४—जलदान प्रशंसा ।

५५—अश्वत्थादि दान विधि ।

५६—सेतुबन्ध कथा, श्रोत्रिय गृहकरण फल ।

५७—रुद्राक्ष-माहात्म्य और आख्यायिका ।

५८—धात्री-फल और तुलसी-माहात्म्य ।

५९—तुलसी-स्तव ।

६०—गङ्गा-माहात्म्य ।

६१—गणेशकी अग्रपूजा-कथा ।

६२—गणेशका स्तोत्र ।

६३—नान्दीमुखादि गणेशपूजा करनेका फल और देवासुर सङ्ग्राममें चित्ररथद्वारा कालकेय वध वृत्तान्त ।

६४—कालेय वध कथा ।

६५—वल नमुचि वध ।

६६—नमुचि वध ।

६७—कार्त्तिकेयके हाथसे तारेय वध ।

६८—दुर्मुख वध ।

६९—द्वितीय नमुचि वध ।

७०—मधुदैत्य वध ।

७१—वृत्रासुर वध ।

७२—गणेशद्वारा त्रैपुरीय वध ।

७३—वराह-रूप-धारी विष्णुके द्वारा हिरण्याक्ष वध ।

७४—दैत्य स्वभाव वर्णन, प्रह्लादादिकी सुरत्व प्राप्ति, भीष्म, कर्ण द्रोणादिका देवत्व कथन ।

७५—सूर्यचरित ।
७६—बहुविध सूर्य-व्रत-कथा ।
७७—सूर्य माहात्म्यमें भद्राश्वका राजाख्यान ।
७८—सोमपूजा और दान विधि ।
७९—भौमकी उत्पत्ति और पूजा ।
√८०—चण्डिका-माहात्म्य ।
√८१—दुर्गापूजा विधि ।
८२—बुध गुरु शुक्रादि पूजा-विधि, नवग्रह-मन्त्र, पद्मपुराण, पठन-फल, सृष्टिखण्डके श्रवण, श्रावण और पठनका फल ।

भूमिखण्ड

१—प्रह्लादका जन्मान्तर, शिवशर्माके पुत्र विष्णुशर्मा आदिकी कथा ।
२—धर्म और धर्मशर्माका संवाद ।
३—मेनका और विष्णु शर्माका संवाद ।
४—सोमशर्मा आदिकी पितृ-भक्ति और शिवशर्मा आदिकी गोलोक-प्राप्ति ।
५—इन्द्रका इन्द्रत्व लाभ प्रसङ्ग ।
६—कश्यप भार्या अदिति और दनुकी कथा ।
७-९-दितिके प्रति कश्यपका आत्मज्ञान कहना ।
१०—कश्यप और हिरण्य-कशिपु-संवाद ।
११—सुव्रतोपाख्यान ।
१२—ऋण-सम्बन्धी पुत्र और पुण्य धर्मादि कथन ।
१३—ब्रह्मचर्य-लक्षण ।
१४—धर्माख्यान ।
१५—पापियोंका मरण-वृत्तान्त ।
१६—वसिष्ठके पास सोमशर्माका विभिन्न पुत्र लक्षण श्रवण ।
१७—विप्रत्व प्राप्तिका कारण ।
१८—सोमशर्माका विष्णुदर्शन ।
१९—सोमशर्मा और सुमना-संवाद, सोमशर्माका सुपुत्र लाभ ।
२०—सुव्रत-चरित ।
२१—सुव्रतका पूर्व जन्म, रुक्म-भूषणाख्यान ।
२२—सृष्टि-तत्त्व-कथन ।
२३—वृत्राख्यान ।
२४—वृत्रका इन्द्रत्व लाभ, सुरापानसे वृत्रका पतन और उस अवसरपर वज्रप्रहारसे इन्द्रद्वारा वृत्र-संहार ।
२५—दितिका शोक और मरुतकी उत्पत्ति ।

२६—पृथुचरितका आरम्भ ।

२७—पृथुका जन्मादि-कथन ।

२८—पृथु-धरितृ-संवाद ।

२९—वेण-चरित ।

३०—अत्रि-पुत्र-अङ्ग-संवाद ।

३१—अङ्गद्वारा वासुदेव दर्शन ।

३२—सुशंख्य गन्धर्व और सुनीथा-चरित ।

३३—सुशंख्यका प्रतिशाप वर्णन ।

३४—इन्द्र-सम्पदा देखकर उनके समान पुत्र लाभके लिये अङ्गकी तपस्या ।

३५—अङ्गद्वारा सुनीथाका पाणिग्रहण ।

३६—वेणके पाप-प्रसङ्ग और उनके साथ जैनधर्म-कथन ।

३७—ऋषियोंद्वारा वेणका दक्षिण-पाणि-मन्थन और पृथुका जन्म ।

३८—वेणकी स्वर्गप्राप्ति ।

३९—दानकाल-कथन ।

४०—नैमित्तिक दान-कथन ।

४१—पुत्र भार्यादि रूप तीर्थ-प्रसङ्गमें कृकल-नामक वैश्यकी कथा ।

४२—सदाचार-प्रसङ्गमें इक्ष्वाकु और सुदेवाकी कथा ।

४३ से ४५—शूकरोपाख्यान ।

४६—शूकरको जीवन लाभ प्रसङ्गमें गीत विद्याधरकी कथा ।

४७—श्रीपुरस्थ वसुदत्त द्विज कथा ।

४८,४९—उग्रसेनकी कथा ।

५०—पद्मावती गोभिल-संवाद ।

५१—पद्मावतीका गर्भ और कंस जन्म-कथन ।

५२—शिवशर्मा-द्विज-संवाद ।

५३ से ५६—सुकला-विष्णु-संवाद ।

५७—सुकला काम-संवाद ।

५८—सुकलाका अपने घर आना और पतिलाभ ।

५९—धर्मद्वारा पतिके कर्त्तव्याकर्त्तव्यका निर्णय ।

६०—धर्मादेशमें कृकल-नामक वैश्यका अपने घर आना और भार्या-तीर्थ-लाभ ।

६१—पितृ-तीर्थ-प्रसङ्गमें कुण्डलपुत्र सुकर्मा और कश्यप कुलोद्भव पिप्पलकी कथा ।

६२—सुकर्माके बालकके निकट पिप्पलका ज्ञान लाभ ।

६३—पितामाताकी सेवासे अशेष पुण्य सुकर्माद्वारा वर्णित ।

६४—नहुष और ययातिका आख्यान ।

६५,६६—ययाति और मातलिका संवाद, मातलिद्वारा गर्भवासादि काय-दुःख-कथन ।

६७—मातलिद्वारा कर्म-विपाक वर्णन ।

६८—दान फल ।

६९—शिव-धर्म-कथन ।

७०—यमपीड़ा कथन ।

७१—शिव विष्णु और ब्रह्मा इन तीनोंका अभेद ।

७२—ययातिका शरीर त्याग करके इन्द्रपुरमें जानेसे इन्कार ।

७३—नामामृत-कथन ।

७४—हरिनाम प्रचार ।

७५—विष्णु-नाम-कथन ।

√७६—ययाति चरितमें ययातिका वैष्णव धर्म प्रचार ।

७७—विशाला ययाति-संवाद ।

७८—पुत्रोंसे ययातिका जराग्रहणादेश, पुरुका पितृजरा-ग्रहण ।

७९—काम-कन्यासे ययाति-विवाह और विहार ।

८०—ययातिका यदुको मातृ-शिरच्छेदनका आदेश ।

√८१—ययातिकी कृष्ण-भक्ति ।

८२—ययातिका पुरुसे जरा लौटा लेना और पुरुका राज्याभिषेक ।

८३—ययातिका स्वर्गारोहण ।

८४—कुरुतीर्थके प्रसङ्गमें च्यवन-चरित, कुञ्जल-नामक शुकाख्यान और प्लक्षद्वीप-की राजकन्या दिव्या देवीकी कथा ।

८५—दिव्या देवीका पूर्व जन्माख्यान ।

८६—जयादि व्रत भेद ।

८७ से ८९—उज्ज्वल पक्षी और दिव्या देवीका संवाद, दिव्या देवीका विष्णुदर्शन, समुज्ज्वल पक्षीके द्वारा हिमालयके हंसकी कथा ।

९०—इन्द्र-नारद-संवाद, तीर्थ-प्रशंसा ।

९१—पाञ्चाल देशवासी विदुरनामक क्षत्रियकी कथा ।

९२—वाराणसी आदि तीर्थ-स्नान-माहात्म्य ।

९३—विज्ज्वल पक्षी द्वारा आनन्दकाननस्थ दम्पति-वर्णन ।

९४—कुञ्जल पक्षीद्वारा कर्मफल कथन और जैमिनीद्वारा अन्नदान फल कथन ।

९५—स्वर्ग वर्णन ।

९६—कर्मफलसे सुगति और दुर्गति कथन ।

९७—धर्माधर्म गति वर्णन ।

९८—वासुदेव-स्तोत्र ।

९९—स्तोत्र-पाठ-फल ।

१००—कुञ्जलाख्यान समाप्ति ।

१०१—कपिञ्जलपक्षीद्वारा रत्नेश्वर-प्रसङ्ग ।

१०२—शिव-पार्वती-संवादमें अशोक-सुन्दरीकी कथा ।

१०३—अशोक-सुन्दरीका उपाख्यान ।
१०४—इन्दुमती-दत्तात्रेय-संवाद ।
१०५—इन्दुमतीके गर्भसे नहुषका जन्म और अस्त्र-शिक्षादि ।
१०६—इन्दुमती और आयुका शोक-संवाद ।
१०७—आयुको नारदका आश्वासन देना ।
१०८—वसिष्ठ नहुष-संवाद ।
१०९—नहुषकी मृगया ।
११०—हुण्डदानव निधनार्थ नहुषकी यात्रा ।
१११—नहुषका नन्दन-गमन ।
११२—नहुषके लिए अशोक सुन्दरीका विरह ।
११३—अशोक-सुन्दरीका नहुषके पास जाना ।
११४—दानवोंके साथ नहुषका युद्ध ।
११५—नहुषद्वारा हुण्ड दानव बध ।
११६—इन्दुमतीका नहुष पुत्र लाभ ।
११७—अशोक-सुन्दरीसे नहुषका विवाह ।
११८—हुण्ड पुत्र विहुण्डकी कथा ।
११९—कामोदकी उत्पत्ति ।
१२०—कामोदाख्यपुर वर्णन ।
१२१—विहुण्ड बध ।
१२२—कुञ्जलपक्षी-च्यवन-सवाद ।
१२३—वेणाख्यानमें वेणकी ज्ञान-प्राप्ति ।
१२४—पृथुसे वेणका आदेश ।
१२५—वेणका स्वर्ग-लाभ और भूमिखण्ड-पाठ-फल ।

स्वर्गखण्ड

१—स्वर्गखण्ड विपयानुक्रम, शेप वात्स्यायन-संवादमें दुष्यन्त-चरित, शकुन्तलाकी कथा ।

२,३—कण्व-शकुन्तला-संवाद, शकुन्तलाका दुष्यन्तके घर आना और दुष्यन्तका शकुन्तलाको अस्वीकार करना, शकुन्तलाका दुष्यन्तपुर-त्याग, मेनका शकुन्तला-संवाद ।

४—मेनकाके साथ शकुन्तलाका स्वर्ग जाना ।

५—धीवरसे दुष्मन्तका अंगूठी पाना तथा पूर्व-कथा-स्मरण और शकुन्तलाके लिए दारुण मनस्ताप, भरत-दुष्यन्त-संवाद, शकुन्तला-समागम ।

६—सपरिवार दुष्यन्तका अपने घर जाना, भरतका अभिपेक, भरताख्यान, चन्द्र सूर्यादिका मण्डल-परिमाण और दूरत्वादि-कथन, भूलोकादि परिमाण ।

७—भूत, पिशाच, गन्धर्वादि लोक-वर्णन, अप्सरा लोक वर्णन, उर्वशी पुरुरवाकी कथा ।

पातालखण्ड

२—श्रीराम भरत समागम और भरतके साथ रामका अयोध्या आना।

३—रामका मातृ-दर्शन और पौराङ्गणा-संवाद।

४,५—रामका राज्याभिषेक, रामद्वारा सीता-निर्वासन और रामके पास अगस्त्यका आना।

६—अगस्त्यद्वारा विभीषण, रावण, कुम्भकरण आदिका जन्म-कथन, रावणकी माताके सामने प्रतिज्ञा।

७—रावणादिका उग्र तप, ब्रह्माका वरदान, रावणके सताये देवताओंका ब्रह्मलोक जाना। देवताओंके साथ ब्रह्मा और शिवका वैकुण्ठ जाना, विष्णु-स्तुति, विष्णुका रामरूपमें अवतार।

८—रावण-बध-जनित ब्रह्महत्यासे छूटनेके लिये रामका अश्वमेध यज्ञ करना।

९—अश्वमेध याग, अश्व-लक्षण, रामसे ऋषियोंका वर्णाश्रम-धर्म-कथन।

१०—रामकी यज्ञदीक्षा, स्वर्णसीताके साथ रामका कुण्डमण्डप-आदिकरण, अश्व-रक्षार्थ शत्रुघ्नका गमन।

११—पुष्कलागमन और अश्व-निर्गम।

१२—अहिच्छत्रमें अश्वका आना, कामाक्षा-चरित और सुमद राज-चरित।

१३—सुमदका कामाक्षादर्शन, सुमद शत्रुघ्न समागम, शत्रुघ्नका अहिच्छत्रापुरी प्रवेश।

१४—अश्वके सहित शत्रुघ्नका च्यवन आश्रम जाना, च्यवन-सुकन्या-चरित।

१५—च्यवन सुकन्याके साथ च्यवनका विषयभोग वर्णन।

१६—शर्याति-सुकन्या-चरित, च्यवनका रामयज्ञ दर्शनके लिए जाना।

१७—अश्वका बाजीपुर जाना, बाजीपुराधिप विमलराजका शत्रुघ्नको सर्वस्व दे डालना, नीलगिरि माहात्म्य और रत्नग्रीव राज-चरित।

१८—नीलगिरि वास पुण्यमें चतुर्भुजत्व प्राप्ति कथन।

१९—नीलगिरि यात्रा विधि।

२०—गण्डकी-माहात्म्य, शालग्राम शिला माहात्म्य और पुलकस-नामक शबर-चरित्र।

२१—रत्नग्रीवकृत पुरुषोत्तम स्तोत्र।

२२—रत्नग्रीवकी चतुर्भुज प्राप्ति, नील पर्वतके पास अश्वका आना।

२३,२४—सुबाहुराजका चक्राङ्क नगर गमन, सुबाहु-पुत्र-दमनद्वारा प्रतापाग्र्य वध, पुष्कल विजय।

२५—सुबाहु सेनापतिका क्रौंच व्यूह निर्माण।

२६—लक्ष्मीनिधिके साथ सुकेतुका युद्ध, सुकेतु वध।

२७—पुष्कलके साथ चित्राङ्गका युद्ध और चित्राङ्ग वध।

२८—सुबाहुके साथ हनुमानका युद्ध, सुबाहुकी मूर्छा और स्वप्नमें रामदर्शन।

२९—शत्रुघ्न-विजय।

३०,३१—अश्वके साथ शत्रुघ्नका तेजपुर आना, ऋतम्भर नामके राजाकी कथा, जनककी कथा, जनकका नरकदर्शन कारण, ऋतम्भर-ऋतुपर्ण समागम।

३२—सत्यवान्‌की कथा, शत्रुघ्न-सत्यवान्-संवाद।

६२—शत्रुघ्नके साथ लवका तुमुल युद्ध, लवकी मूर्छा।

६३—लवके पतनपर शोक, कुशका आना, कुशसे युद्ध, शत्रुघ्नकी मूर्छा।

६४—हनुमान् और सुग्रीवके साथ लवका युद्ध, दोनोंका बांधा जाना, कुश लवका सीताके पास युद्ध-वृत्तान्त कहना और बांधे हुए बन्दरोंको दिखाना, सीता-द्वारा रामकी सेनाका जिलाया जाना, कुश-लवका शत्रुघ्नके निकट घोड़ेको छोड़ देना।

६५—शत्रुघ्नादिका घोड़ेके साथ अयोध्या जाना और सुमतिका रामजीके सामने आदिसे अन्ततक सब कथा कहना।

६६—राम-वाल्मीकि-संवाद, सीताको लानेके लिए लक्ष्मणका जाना, सीताके आदेशसे लक्ष्मणके साथ लव-कुशका अयोध्या जाना, वाल्मीकिकी आज्ञासे कुश-लवका रामचरित गान, रामका दोनों पुत्रोंको अङ्कमें बिठा लेना, रामायण रचना-कारण और वाल्मीकिका पूर्व-चरित वर्णन।

६७—सीताको लानेको वनमें लक्ष्मणका फिर जाना, राम-सीता-समागम, यज्ञारम्भ, रामाश्वमेध यज्ञ।

६८—रामाश्वमेध-समाप्ति, रामाश्वमेध-श्रवण-पठन-फल।

६९—श्रीकृष्णचरितारम्भ, वृन्दावनादि श्रीकृष्ण क्रीडास्थल वर्णन, वृन्दावन-माहात्म्य।

७०—श्रीकृष्ण-पार्षदगण-निरूपण, राधा-माहात्म्य, गोपिकागण मध्यस्थ, परब्रह्म श्रीकृष्ण स्वरूप वर्णन।

७१—वृन्दावन मथुरादि क्षेत्र-महिमा, गोपोंकी उत्पत्ति।

७२—प्रधान कृष्ण-वल्लभोंका वर्णन।

७३—मथुरा-वृन्दावन-महिमा।

७४,७५—अर्जुनका राधालोक-दर्शन, स्त्रीत्व-प्राप्ति, नारदका राधालोक-दर्शन, स्त्रीत्व-प्राप्ति।

७६—संक्षेपसे कृष्णचरित कीर्तन।

७७—कृष्णतीर्थ और कृष्णरूप गुण वर्णन।

७८—शालग्राम-निर्णय।

७९—शालग्राम-महिमा, वैष्णवोंकी तिलककी विधि और उनके विविध नियमोंका निरूपण।

८०—कलिसन्तारक हरिनाम-महिमा और हरि पूजाविधि।

८१—कृष्ण-मन्त्रदीक्षा-विधान और मन्त्र-शब्दार्थ-निरूपण।

८२—मन्त्रदीक्षा विधि।

८३—कृष्णजीकी वृन्दावनमें दिनचर्या-निरूपण, उस प्रसङ्गमें राधा-विलासादि वर्णन, वृन्दावन माहात्म्य-समाप्ति।

८४—वैशाख-माहात्म्य आरम्भ, वैष्णव-धर्म-कथन।

८५—अम्बरीष-नारद-संवाद, भक्ति-लक्षण और माधव-मास-महिमा।

८६,८७—माधव-मास-व्रत-विधि, वैशाख-स्नान-माहात्म्य।

उत्तरखण्ड

५—इन्द्रके पास जालन्धरका दूत भेजना ।

६—जालन्धरके पक्षके दैत्योंके साथ देवताओंका युद्ध ।

७,८—बलसे हीरकादि नाना धातुओंकी उत्पत्ति, जालन्धरसे इन्द्रका हार जाना, विष्णुकी मूर्छा, जालन्धरके घर विष्णुका वास वर्णन ।

९—जालन्धरका राज्य वर्णन ।

१०—शङ्करद्वारा सब देवताओंके तेजसे बने हुए चक्रका शङ्करद्वारा निर्माण ।

११—कीर्ति-मुखोत्पत्ति वर्णन ।

१२—जालन्धर-सैन्य-पराभव ।

१३—शङ्करद्वारा युद्धमें दैत्योंका पराभव ।

१४—माया शङ्कर और पार्वती संवाद ।

१५—जालन्धर-पत्नि वृन्दाका स्वप्न, वृन्दाका राक्षसके हाथमें पड़ना ।

१६—तापस वेषधारी विष्णुद्वारा वृन्दाका मोचन, माया-जालन्धर-रूपसे विष्णुका वृन्दासे सङ्गम, वृन्दाका देहत्याग और वृन्दावन-नाम-कथन ।

१७—भार्याका पातिव्रत्य भङ्ग श्रवण करके जालन्धरका लड़नेको जाना ।

१८—जालन्धरके साथ शङ्करका युद्ध । शुक्रद्वारा मृत दैत्यगणकी पुनर्जीवन प्राप्ति ।

१९—जालन्धरकी शिव सायुज्य प्राप्ति और तुलसी-माहात्म्य वर्णन ।

२०—श्रीशैल-माहात्म्य ।

२१,२२—हरिद्वार-माहात्म्य ।

२३—गङ्गा-माहात्म्य और गया-माहात्म्य ।

२४—तुलसी-माहात्म्य ।

२५—प्रयाग-माहात्म्य ।

२६—तुलसी-त्रिरात्र-व्रत ।

२७—अन्नदान-माहात्म्य ।

२८—इतिहास-पुराणादि पठन-विधि ।

२९—इतिहास और पुराणके पठनसे महा-फल-प्राप्ति ।

३०—गोपीचन्दन माहात्म्य ।

३१—दीपव्रत-विधान ।

३२—जन्माष्टमी व्रत ।

३३—दान-प्रशंसा ।

३४—दशरथकृत शनिस्तोत्र ।

३५—त्रिस्पर्श एकादशी व्रत ।

३६—ग्राह्य एकादशी और त्याज्य एकादशी ।

३७—उन्मीलनी एकादशी व्रत ।

३८—पञ्चवर्धिनी एकादशी व्रत ।

३९—एकादशी माहात्म्य ।

७४—पार्वती-महेश्वर-संवाद, रामरक्षा-स्तोत्र ।

७५—धर्म-प्रशंसा और अधर्म हेतु अधोगति वर्णन ।

७६—गलिका नदी माहात्म्य और वसु स्नान प्रशंसा ।

७७—आभ्युदयिक स्तोत्र पाठ विधि और फल कथन ।

७८—ऋषि-पञ्चमी व्रत फल और आख्यायिका ।

७९—अपामार्जन स्तोत्र ।

८०—अपामार्जन स्तोत्र पठन फल और आख्यायिका और धारण-प्रणाली और बालकोंके जीवन-रक्षा हेतु स्तोत्र पाठका विधान ।

८१—विष्णु माहात्म्य, विष्णु महामन्त्र प्रशंसा, विष्णु माहात्म्य ज्ञापक पुण्डरीकाख्यान, नारदद्वारा पुण्डरीकके प्रति शास्त्ररहस्य उपदेश ।

८२—संक्षेपमें गङ्गामाहात्म्य ।

८३—वैष्णव लक्षण, विष्णुमूर्ति शालग्राम पूजा फल कथन ।

८४—दास, वैष्णव और भक्तका लक्षण, शूद्रादिका दासत्व, नारदादिका वैष्णवत्व और प्रह्लादादिकी भक्तिका वर्णन ।

८५—चैत्र शुक्ला एकादशीकी दोलोत्सव विधि ।

८६—चैत्र शुक्ला द्वादशीकी दमनोत्सव विधि ।

८७—देवशयनी उत्सव ।

८८—श्रावणमें पवित्रारोपण विधि, पवित्र करनेका प्रकार वर्णन ।

८९—चैत्रादि मासमें चम्पकादि पुष्पद्वारा विष्णुपूजा विधि और फल ।

९०—कार्तिकका माहात्म्य आरम्भ, नारदके लाये कल्पवृक्ष-पुष्पके न पानेसे क्रुद्ध सत्यभामाके लिए कृष्णका स्वर्गसे कल्पवृक्ष लाना, सत्यभामाका तुलापुरुप दान करना, कार्तिक-प्रशंसा-बोधक सत्यभामाका पूर्वजन्म वर्णन ।

९१—सत्यभामाका पूर्ववृत्तान्त कथन ।

९२—शङ्खासुराख्यान, उसके द्वारा वेदहरण और देवगणोंसे विष्णुका कार्तिक-प्रशंसा वर्णन करना ।

९३—मत्स्यरूपधारी विष्णुका शङ्खासुरको मारना, प्रयागोत्पत्ति ।

९४—कार्तिक व्रतियोंका शौच-प्रत्याचार कथन ।

९५—कार्तिक स्नान विधि कथन ।

९६—कार्तिक व्रतियोंका नियम कथन और प्रशंसा वर्णन ।

९७—कार्तिक व्रतका उद्यापन ।

९८—तुलसी माहात्म्य, जलन्धर आख्यायिका, शङ्करकी नीलकण्ठत्व प्राप्ति, जलन्धरोत्पत्ति वर्णन ।

९९—जलन्धरद्वारा देवगणोंकी पराजय ।

१००—देवकृत विष्णुस्तोत्र, विष्णु-जलन्धर-युद्ध, स्त्रीके साथ जलन्धरके घरमें विष्णुका वास अङ्गीकार करना ।

१२१—माघस्नान और शूकरक्षेत्र माहात्म्य एवम् १ मासतक उपवास व्रतका विधान ।
√१२२—शालग्राम शिलार्चन विधि और शालग्राममें वासुदेव आदि मूर्तिके लक्षण ।
१२३—धात्रीकी छायामें पिण्डदान प्रशंसा, कार्तिकमें केतक्यादि द्वारा पूजा विधि, दीपावली दान विधि और कथा ।
१२४—त्रयोदशी आदि द्वितीया पर्यन्त दीपावली दान विधि, राज-कर्तव्य और यम-द्वितीया कथन ।
१२५—प्रबोधिनी माहात्म्य और व्रतकी विधि, भीष्मपञ्चक व्रत विधि और कातक माहात्म्य श्रवण फल ।
१२६—विष्णुभक्तिका माहात्म्य और लक्षण और विष्णुभक्तिहीनकी निन्दा ।
१२७—शालग्राम शिला पूजाका फल ।
१२८—अनन्त वासुदेवका माहात्म्य और विष्णुस्मरणका प्रकार ।
१२९—जम्बूद्वीपस्थ यावतीय तीर्थ और उनका माहात्म्य ।
१३०—वेत्रवती माहात्म्य ।
१३१—साभ्रमती और तत्तीरस्थ तरुगणका माहात्म्य ।
१३२—नन्दी और कपाललोचन तीर्थका माहात्म्य ।
१३३—विकीर्ण तीर्थ श्वेत तीर्थादिका माहात्म्य ।
१३४—अग्नितीर्थ माहात्म्य और कुकर्दम राजाकी कथा ।
१३५—हिरण्य सङ्गम तीर्थ और धर्मावती साभ्रमती सङ्गम माण्डव्याख्यान ।
१३६—कम्बु प्रभृति तीर्थ माहात्म्य, मङ्की तीर्थ माहात्म्य, मङ्कि ऋषिकी कथा ।
१३७—ब्रह्मवल्ली और खण्ड तीर्थ माहात्म्य ।
१३८—सङ्गमेश्वर तीर्थ माहात्म्य ।
१३९—रुद्रमहालय तीर्थ ।
१४०—खड्गतीर्थ माहात्म्य ।
१४१—चित्राङ्ग वदन तीर्थ माहात्म्य ।
१४२—चन्दनेश्वर माहात्म्य ।
१४३—जम्बूतीर्थ माहात्म्य ।
१४४—इन्द्रग्राम तीर्थ और धौलेश्वर तीर्थ माहात्म्य, किरातकी कथा ।
१४५—कण्व-मुनि-कन्या और वृद्ध महिमाख्यान ।
१४६—दुर्धर्षेश्वर माहात्म्य, पाशुपत अस्त्रद्वारा इन्द्रका वृत्रको मार डालना ।
१४७—खड्गधार तीर्थ माहात्म्य, चण्डकिरातकी कथा ।
१४८—दुग्धेश्वर तीर्थ माहात्म्य ।
१४९—चन्द्रभागा माहात्म्य ।
१५०—पिप्पलाद तीर्थ माहात्म्य ।
१५१—पिचुमर्दार्क तीर्थ माहात्म्य ।
१५२—सिद्धक्षेत्र माहात्म्य, कोटराक्षी स्तोत्र ।

१५३—तीर्थराज तीर्थ माहात्म्य ।

१५४—सोमतीर्थ ।

१५५—कपोततीर्थ ।

१५६—गोतीर्थ माहात्म्य ।

१५७—काश्यप तीर्थ माहात्म्य ।

१५८—भूतालय तीर्थ माहात्म्य ।

१५९—घटेश्वर माहात्म्य ।

१६०—वैद्यनाथ माहात्म्य ।

१६१—देवतीर्थ माहात्म्य ।

१६२—चण्डेशतीर्थ माहात्म्य ।

१६३—गाणपत्य तीर्थ ।

१६४—साभरमती तीर्थ माहात्म्य ।

१६५—वराह तीर्थ ।

१६६—सङ्गम तीर्थ ।

१६७—आदित्य तीर्थ ।

१६८—नीलकण्ठ तीर्थ ।

१६९—साभ्रमती सागर सङ्गम माहात्म्य ।

१७०—नृसिंहतीर्थ माहात्म्य ।

१७१—गीता माहात्म्य ।

१७२—गीताके दूसरे अध्यायके माहात्म्यमें देवशर्माकी कथा ।

१७३—तीसरे अध्यायके माहात्म्यमें जड़ाख्यान ।

१७४—चौथे अध्यायके माहात्म्यमें वदरीमोचन ।

१७५—पांचवें अध्यायके माहात्म्यमें कन्याख्यान ।

१७६—छठे अध्यायके माहात्म्यमें वदरीमोचन ।

१७७—सातवें अध्यायके माहात्म्यमें तन्त्राख्यान ।

१७८—अष्टमाध्याय माहात्म्यमें भावशर्माकी कथा ।

१७९—नवम अध्याय माहात्म्य ।

१८०—दशम अध्याय माहात्म्य ।

१८१—ग्यारहवें अध्यायका माहात्म्य और विश्वरूपकी आख्यायिका ।

१८२—बारहवें अध्यायका माहात्म्य ।

१८३—तेरहवें अध्यायका माहात्म्य, दुराचारकी कथा, हरिदीक्षित पुत्रिका व्यभिचार-प्रसङ्ग ।

१८४ से १८८—चौदहवेंसे अठारहवें अध्याय तकका माहात्म्य ।

१८९—भागवत माहात्म्य और भविष्य कथन ।

१९०—नारदद्वारा भक्ति माहात्म्य वर्णन ।

१९१—भक्तिकी हरिदासके चित्तमें स्थिति ।

१९२—गोकरणाख्यान ।

१९३—भागवतके सप्ताहसे धुन्धकारीकी मुक्तिका वर्णन ।

१९४—भागवत-प्रशंसा ।

१९५—कालिन्दी-माहात्म्य ।

१९६—विष्णुशर्माकी पूर्व जन्म स्मृति, भिल्लसिंहका मुक्ति कथन ।

१९७—निगमोद मोघ तीर्थ प्रसङ्गमें शरम नामक वैश्यकी कथा ।

१९८—देवलकृत दिलीपाख्यान ।

१९९—दूसरे रघुके प्रसिद्ध दिलीपको गोप्रसाद वर्णन ।

२००—शरभका इन्द्रप्रस्थ माहात्म्य और वैकुण्ठ प्राप्ति ।

२०१—इन्द्रप्रस्थ माहात्म्य और शिव शर्मा विष्णु शर्माकी वैकुण्ठ प्राप्ति ।

२०२—द्वारका माहात्म्य और पुष्पेयु द्विजकी कथा ।

२०३—विमलाख्यान और मित्र लक्षण ।

२०४—मरुदेशस्थ राक्षसियोंका प्रसङ्गसे उत्तम लोक प्राप्ति वर्णन ।

२०६—इन्द्रप्रस्थ गत कोशला माहात्म्य मुकुन्दाख्यान ।

२०७—चण्डक नामक नाईकी ब्राह्मण बध हेतु सर्पयोनि प्राप्ति और कोशलाके प्रभावसे मुक्ति ।

२०८—कोशला प्राप्त दाक्षिणात्य ब्राह्मण कृत विष्णु स्तोत्र और दाक्षिणात्योंका वैकुण्ठ-गमन ।

२०९—कालिन्दी तीरस्थ मधुवन गत मिश्रान्ति तीर्थ माहात्म्य और उस प्रसङ्गमें व्य-भिचारिणी कुशल पत्नीकी कथा और उसकी गोधायोनि प्राप्ति ।

२१०—उस गोधाको देखकर किसी मुनिपुत्रका मातृत्व ज्ञान और गोधाकी उत्तम गति प्राप्ति ।

२११—स्वैरिणी होनेके कारण कथन-प्रसङ्गमें चन्द्रमाद्वारा गुरु भार्याहरण प्रसङ्ग ।

२१२—इन्द्रप्रस्थ गत वदरी-माहात्म्य, देवदास ब्राह्मणकी कथा ।

२१३—हरिद्वार माहात्म्यमें कालिङ्ग चाण्डालकी कथा ।

२१४—पुष्कर-माहात्म्यमें पुण्डरीककी कथा ।

२१५—भरतकृत पूर्व पुण्य कथा और पुण्डरीककी सायुज्य प्राप्ति ।

२१६—प्रयाग-माहात्म्यमें मोहिनी वेश्याकी कथा ।

२१७—वीर वर्माकी महिषीकी कथा ।

२१८—काशी, गोकरण, शिवकाञ्ची, द्वारका और भीमकुण्डादिका माहात्म्य, चैत्र कृष्ण चतुर्दशीको इन्द्रप्रस्थ प्रदक्षिणाका फल ।

२१९—माघ-माहात्म्य, देवलादि मुनियोंके साथ सूतका संवाद ।

२२०—माघ माहात्म्यमें दिलीप-मृगया और माघ-स्नान-माहात्म्य ।

२२१—माघस्नानसे विद्याधरकी सुमुखत्व प्राप्ति ।

२२२—कुत्स मुनिके पुत्र वत्सकी कथा ।

✓२२३—उद्वाह योग्य कन्या लक्षण और अयोग्या कन्याके विवाहसे महापातक ।

२२४—उतथ्य मुनि कन्याका सखियोंके साथ माघस्नान, मृगश्रृङ्ग-संवाद, मृगश्रृङ्गका मृत्यु-स्तोत्र, गजमुक्ति ।

२२५—मृगश्रृङ्गका यमस्तोत्र और उतथ्य कन्याकी पुनर्जन्म प्राप्ति ।

२२६—यमपुरी वृत्तान्त ।

२२७—पापियोंका नरक भोग और कीटयोनि प्राप्ति ।

२२८—शालग्राम पूजाका एकादशी आदि व्रतकरण रूप साधन कथन ।

२२९—कृतादि चतुर्युग वर्णन, यमलोकसे मृत्युलोकको लौटे हुए पुष्कर ब्राह्मणकी कथा ।

२३०,३१—बलरामद्वारा वृद्ध ब्राह्मण सान्दीपनीके पुत्रोंका पुनरुज्जीवन और कृष्ण-समागम ।

२३२—उतथ्य कन्या सुव्रता और उसकी तीन सखियोंके साथ मृगश्रृङ्गका विवाह ब्राह्मादि अष्टविध-विवाह लक्षण और सौभरिद्वारा एक राजकन्यासे पचास वरोंका पाणिग्रहण करनेकी कथा वर्णन ।

२३३—गृहस्थाश्रम धर्म ।

२३४—पतिव्रता धर्म ।

२३५—मृगश्रृङ्गका पुत्र चतुष्टयोत्पत्ति, श्वेतवाराह कल्पमें ऋभुका अवतार, मृगश्रृङ्ग पुत्र मृकण्डुका अपनी माताओंके साथ काशी जाना और काशी-प्रशंसा ।

२३६—मृकण्डुकी कथा, मार्कण्डेयकी उत्पत्ति, मार्कण्डेयद्वारा मृत्युञ्जय-स्तोत्र, माघ स्नानादि पुण्य-कथन ।

२३७—प्रधान-प्रधान तीर्थमें माघस्नान विधि, माघमें विष्णु पूजा-विधि ।

२३८—उत्तम गति प्राप्तिके उपाय और पाप-कर्म-निरूपण ।

२३९—भीमा एकादशी व्रत कथा ।

२४०—शिवरात्रि माहात्म्य और निषादकी कथा ।

२४१—शिवरात्रि व्रत विधि ।

२४२—तिलोत्तमाख्यान, सुन्द और उपसुन्दकी कथा ।

२४३—कुण्डल और विकुण्डलकी कथा ।

२४४—विकुण्डल यम-संवाद, यमलोक गमनाभाव कारण, तुलसी-प्रशंसा और नरक प्राप्तिका धर्म-निरूपण ।

२४५—विकुन्तल यम-संवादमें गङ्गा-प्रशसा, स्वर्ग प्राप्तिका कारण, शालग्राम शिलाका दाम देकर मोल लेना महापातक, एकादशी व्रत निबन्धन, दुर्गति नाश, विकुन्तलद्वारा नरक पतित बन्धुओंका उद्धार और श्रीकुन्तल और विकुन्तलका स्वर्ग-गमन ।

२४६—माघस्नान-माहात्म्य प्रसङ्गमें काञ्चन मालिनीद्वारा माघस्नानके पुण्यसे राक्षसकी मुक्तिकी कथा ।

२४७—माघस्नान प्रशंसा और गन्धर्व-कन्याकी कथा ।

२४८—गन्धर्व-कन्याद्वारा कामुख ऋषिपुत्रका पिशाच-योनिगमन-रूप शाप, लोमश-का माघस्नान उपाय कहना और ऋषि पुत्रकी शापमुक्ति ।

२४९—प्रयाग स्नान-माहात्म्यमें भद्रक-नामक ब्राह्मणकी कथा, देवद्युतिकृत योगसार-स्तोत्र ।

२५०—वेदनिधि-लोमश-संवाद, वेदनिधिका गन्धर्व-कन्यासे विवाह । माघ-माहात्म्य समाप्त ।

२५१—विष्णुमन्त्रकी प्रशंसा, प्रतप्त शङ्ख चक्राङ्कन विधि, ब्रह्मशरीरमें विष्णुद्वारा चक्राङ्कन कथन, द्वैत और उसके अधिकारियोंका परम धर्म कथन ।

२५२—विष्णु-भक्त-निरूपण, शङ्ख चक्राङ्क विहीनकी निन्दा ।

२५३—ऊर्ध्व-पुण्ड्र धारण विधि ।

२५४—उपदिष्ट अवैष्णवका पुनर्वैष्णव मन्त्र ग्रहण विधि, द्वैताभ्यासका महत्व कथन, अष्टाक्षर मन्त्र ।

२५५—विष्णु स्वरूप कथन, त्रिपाद्विभूति स्वरूप कथन ।

२५६—महामायाकी प्रार्थनासे विष्णुद्वारा सृष्टि-वचन ।

२५७—सविस्तर सृष्टि-कथन, योगनिद्राभिभूत विष्णुके नाभि पङ्कजसे ब्रह्मा, ब्रह्माके कपालके स्वेदसे रुद्र, नेत्रसे चन्द्र, सूर्य आदि मुखादिसे ब्राह्मणादिकी उत्पत्ति, दशावतार, वैकुण्ठ लोक और अष्टाक्षरके जपसे वैकुण्ठ प्राप्ति कथन ।

२५८—मत्स्यावतार चरित ।

२५९—कूर्मावतार चरित ।

२६०—समुद्र मन्थनाख्यान ।

२६१—विष्णुद्वारा एकादशी और द्वादशीकी प्रशंसा, देवताओंद्वारा कूर्म्मावतार स्तुति ।

२६२—एकादशी व्रत विधि ।

२६३—पापण्डि लक्षण और तामस दर्शन, स्मृति और पुराणादिका त्याज्यत्व कथन ।

२६४—वराहावतार चरित ।

२६५—नृसिंहावतार वर्णन ।

२६६—वामनावतार चरित, कश्यपके पुत्रके रूपसे विष्णुके प्रादुर्भावका सङ्कल्प ।

२६७—अदितिके गर्भसे वामन रूपमें विष्णुका प्रादुर्भाव और बलि छलना ।

२६८—परशुराम-चरित ।

२६९—रामचरित ।

२७०,७१—लङ्का प्रत्यागत, रामका राज्याभिपेक, शिवकृत राम सीता स्तुति, रामका पर-लोक-गमन ।

२७२—श्रीकृष्ण-चरित ।

२७३—रामकृष्णका उपनयन संस्कार, रामकृष्णके उपनयन संस्कारसे मुचकुन्द-कृष्ण-संवाद पर्यन्त ।

२७४—रामकृष्णके साथ जरासन्धका युद्ध और रुक्मिणीहरण प्रसङ्ग ।

२७५—स्यमन्तक और पारिजात हरण उपाख्यान।

२७६—उषा अनिरुद्ध आख्यान।

२७७—कृष्णका पौण्ड्रक वासुदेव और उसके पुत्रको मारना।

२७८,७९—जरासन्ध बध, शिशुपाल वध, दन्तवक्त्रवध, सुदामा-चरित, मुसलोत्पत्ति, यदुवंशध्वंस, कृष्णका देहत्याग, अर्जुनका द्वारका आना, अर्जुनके साथ आने-वाली कृष्ण पत्नियोंका हरण, कृष्ण-मन्त्र-महिमा इत्यादि कथन।

२८०—वैष्णवाचार कथन।

२८१—पार्वती कृत विष्णुकी पूजा, रामचन्द्रका अष्टोत्तर-शत-नाम।

२८२—विष्णुका सर्वोत्तमत्व कथन, विष्णुपूजाके अन्तमें दिलीपका हरिपद-गमन।

ऊपरकी सूची बङ्गला विश्वकोषमें दी हुई पद्मपुराणकी सूचीके आधारपर तैयार हुई है। इसमें उत्तरखण्डमें तीसरे अध्यायसे उन्नीसवें अध्यायतक जालन्धरका उपाख्यान है। फिर इसी उत्तरखण्डमें ९८ वें अध्यायसे लेकर १०६ अध्यायतक फिर जालन्धरकी कथाको प्रायः दुहराया है। हमारा विश्वास है कि इस पुराणमें यह कथा पुनरुक्ति है।

विष्णुपुराणकी सूचीके अनुसार पद्मपुराण दूसरा पुराण है। सिवाय देवी भागवतके जिसके मतसे मार्कण्डेय दूसरा पुराण है, शेष सभी इसीको दूसरा स्थान देते हैं और सबके सब इस बातमें एकमत हैं कि पद्मपुराणमें ५५,००० श्लोक हैं। केवल ब्रह्मवैवर्त्त पुराणके मतसे इसमें ५९,००० श्लोक होने चाहिएँ। मत्स्यपुराण (५३।१४) में लिखा है—

"एतदेव यदा पद्ममभूद्धैरणमयं जगत्
तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः
पाद्मं तत्पञ्च पञ्चाशत् सहस्राणीह पठ्यते"

अर्थात् इस पद्मपुराणमे ५५,००० श्लोक हैं। इसमें हिरणमय पद्मसे संसारकी उत्पत्तिका वृत्तान्त वर्णन किया गया है। इसीलिए इस पुराणको बुधजन पाद्म कहते हैं। सृष्टिखण्डमें३६ वें अध्यायमें इस हिरण्यमय पद्मकी कथा है, जिसमें संसारकी उत्पत्तिका सविस्तार वर्णन है, जिससे कि मत्स्यपुराणकी उक्तिका समर्थन होता है। इस पुराणमें सर्वभूताश्रय पद्मसम्बन्धी कथाको ब्रह्माने प्रगट किया है, परन्तु सृष्टिखण्डमें पहले अध्यायके ५४ से लेकर ६० वें श्लोकतक जो पद्मपुराणका वर्णन है उससे तो यह अवगत होता है कि व्यासने इन ५५,००० श्लोकोंके पुराणको पांच पर्वोंमें विभक्त किया था।

(१) पौष्कर पर्व जिसमें विराट् पुरुषकी उत्पत्ति वर्णन की गयी, (२) तीर्थ पर्व जिसमें सब ग्रहगणोंकी कथा वर्णन हुई है। (३) प्रभूत दानकारी राजगण विवरण, (४) वंशानुचरित, (५) मोक्षतत्व और सर्वज्ञका निरूपण। पहले पर्वमें नौ तरहसे सृष्टिका वर्णन है तथा देवता मुनि और पितृगणकी कथा है। दूसरे पर्वमें पर्वत समूह, सप्तद्वीप और सप्तसागरोंका विवरण है। तीसरे पर्वमें रुद्रसर्ग और दक्षशाप, चौथे पर्वमें राजगणकी उत्पत्ति और सर्व वंशानुकीर्तन है और पांचवें पर्वमें अपवर्ग-साधन मोक्षशास्त्रका परिचय है। इस तरहका पांच पर्वोंका विभाग जो स्वयं पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें दिया हुआ है किसी भी खण्डमें नहीं मिलता। उत्तरखण्डमें सृष्टि-खण्डादि पांचों खण्डका विवरण गौड़ीय संस्करणमें

दिया हुआ है। इन पांचों खण्डोंका समर्थन नारदपुराणसे भी होता है। नारदपुराणमें पांचों खण्डोंकी संक्षिप्त विषयसूची भी दी हुई है। हम जिस पुनरुक्तिकी ऊपर चर्चा कर आये हैं वह नारदपुराणकी संक्षिप्त विषयसूचीमें नहीं है। पाखण्डी लक्षण, मायावाद निन्दा, तामस-पुराण वर्णन, ऊर्ध्व-पुण्ड्रादि वैष्णव चिन्ह धारण यह वैष्णव सम्प्रदायकी विशेष बातें भी पद्मपुराणमें दी हुई हैं। साथही तामस शास्त्रोंके पढ़नेसे महापातक होता है यह प्रतिपादन करते हुए शैव, पाशुपत, बौद्ध, जैन और प्रच्छन्न बौद्ध शास्त्रोंको तामस ठहराते हुए चार्वाकादि नास्तिकोंकी निन्दा करते हुए छः पुराण भी तामस बताये हैं। मात्स्य, कौर्म्म, लैङ्ग, शैव, स्कान्द और आग्नेय। वैष्णव, नारदीय, भागवत, गरुड़, पाद्म और बाराह यह छः सात्विक बताये हैं। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्राह्म इन छः को राजस बताया है। स्मृतियोंमें भी इसी प्रकार सात्विक, राजस और तामस विभाग किया है। यह सब बातें स्पष्ट ही साम्प्रदायिक जान पड़ती हैं। पांचों खण्डोंके गौड़ीय और दाक्षिणात्यकी अध्याय-संख्यामें भी अन्तर है। गौड़ीयके सृष्टिखण्डमें ४६ अध्याय हैं, दाक्षिणात्यवालेमें ८२ अध्याय हैं। गौड़ीयके भूमिखण्डमें १०३ अध्याय हैं। दाक्षिणात्यवालेमें २१५। गौड़ीयके पातालखण्डमें ११२ अध्याय हैं, दाक्षिणात्यवालेमें ११३। गौड़ीयके उत्तरखण्डमें १७४ अध्याय हैं। दाक्षिणात्यके उत्तरखण्डमें १८२ हैं। गौड़ीयके स्वर्गखण्डमें ४० ही अध्याय हैं, इसके बदले दाक्षिणात्यमें २ खण्ड हैं। आदिखण्डमें ६२ अध्याय और ब्रह्मखण्डमें २६।

नारदपुराणमें पद्मपुराणकी जो विषयसूची दी हुई है उसमें साम्प्रदायिकतावाले अंश नहीं पाये जाते। आजकल किसी पद्मपुराणमें ५५,००० श्लोक नहीं मिलते। बम्बईकी ओरके संस्करणमें ४८,४५२ श्लोक मौजूद हैं। पर इसमें स्वर्गखण्ड और क्रिया-योगसारके श्लोकोंको जोड़ लें तो ५५,००० हो सकते हैं। इतने पर यह मानना पड़ता है कि पद्मपुराणसे अधिकांश श्लोक लुप्त हो गये हैं और अनेक नये श्लोक जोड़ दिये गये हैं।

नीचे लिखी छोटी-छोटी पोथियां पद्मपुराणके अन्तर्गत कहलाती हैं—

(१) अष्टमूर्ति पर्व, (२) अयोध्या-माहात्म्य, (३) उत्पलारण्य-माहात्म्य, (४) कदलीपुर-माहात्म्य, (५) कमलालय माहात्म्य, (६) कपिल-गीता, (७) करवीर-माहात्म्य, (८) कर्म-गीता, (९) कल्याणकाण्ड, (१०) कायस्थोत्पत्ति और कायस्थ-स्थिति-निरूपण, (११) कालिञ्जर-माहात्म्य, (१२) कालिन्दी-माहात्म्य, (१३) काशी-माहात्म्य, (१४) कृष्ण नक्षत्र-माहात्म्य, (१५) केदार-कल्प, (१६) गणपति सहस्रनाम, (१७) गौतमी-माहात्म्य, (१८) चित्रगुप्त कथा, (१९) जगन्नाथ-माहात्म्य, (२०) तप्तमुद्रा-धारण-माहात्म्य, (२१) तीर्थ-माहात्म्य, (२२) त्र्यम्बक-माहात्म्य, (२३) देविका-माहात्म्य, (२४) धर्मारण्य-माहात्म्य, (२५) ध्यान-योगसार, (२६) पञ्चवटी-माहात्म्य, (२७) पायिनी-माहात्म्य, (२८) प्रयाग-माहात्म्य, (२९) फाल्गुनी कृष्ण विजया-माहात्म्य, (३०) भक्त-वत्सल-माहात्म्य, (३१) भस्म-माहात्म्य, (३२) भागवत-माहात्म्य, (३३) भीमा-माहात्म्य, (३४) भूतेश्वर तीर्थ-माहात्म्य, (३५) मलमास-माहात्म्य, (३६) मल्लादि-सहस्र-नाम स्तोत्र, (३७) यमुना-माहात्म्य, (३८) राजराजेश्वर योग-कथा, (३९) राम-सहस्र-नाम स्तोत्र, (४०) रुक्माङ्गद कथा, (४१) रुद्र-हृदय, (४२) रेणुका-सहस्र-नाम, (४३) विकृत-जनन-शान्ति-विधान, (४४) विष्णु-सहस्र नाम, (४५) वृन्दावन-माहात्म्य,

(४६) वेङ्कट स्तोत्र, (४७) वेदान्तसार शिव-सहस्र-नाम, (४८) वैण्योपाख्यान, (४९) वैतरणी व्रतोद्यापन विधि, (५०) वैद्यनाथ-माहात्म्य, (५१) वैशाख-माहात्म्य, (५२) शिवगीता, (५३) शताश्व-विजय, (५४) शिवालय-माहात्म्य, (५५) शिव-सहस्र-नाम-स्तोत्र, (५६) शीतला-स्तोत्र, (५७) शोणीपुर-माहात्म्य, (५८) श्वेतगिरि-माहात्म्य, (५९) सङ्कटा नामाष्टक, (६०) सत्योपाख्यान, (६१) सरस्वत्यष्टक, (६२) सिन्धुरागिरि-माहात्म्य, (६३) सुदर्शन-माहात्म्य, (६४) हनुमत्-कवच, (६५) हरिश्चन्द्रोपाख्यान, (६६) हरितालिका व्रत कथा, (६७) हर्षेश्वर-माहात्म्य, (६८) होलिका-माहात्म्य इत्यादि इत्यादि ।

उन्तीसवाँ अध्याय

विष्णुपुराण

प्रचलित विष्णुपुराणकी विषयसूची यह है—

प्रथमांश

(१) मङ्गलाचरण, पराशरके प्रति मैत्रेयकी जिज्ञासा, पराशरका उत्तर—
(२) विष्णु-स्तुति, सृष्टि-प्रक्रिया ।
(३) ब्रह्माका सर्गादि कर्तृत्व वर्णन, ब्रह्माकी आयु, कल्पान्तरमें सर्ग ।
(५) देव दानवादि सृष्टि-कथन, स्थावरादि सृष्टि कथा ।
(६) ब्राह्मणादि सृष्टि-कथा, क्रियावान् ब्राह्मणादिके वर्णका स्थान-निरूपण ।
(७) मानस प्रजा-सृष्टि वर्णन, रुद्र-सृष्टि-कथन, मनु-सृष्टि-कथन, चतुर्विध प्रलय ।
(८) लक्ष्मीसे भृगुकी उत्पत्तिका वर्णन ।
(९) इन्द्रको दुर्वासाका शाप, त्रैलोक्यके श्रीहीन होनेके हेतु यज्ञादि विघ्न देखकर देवताओंका ब्रह्माके समीप जाना, विष्णु-स्तुति, समुद्रमन्थन, श्रीसमुत्थान, इन्द्रकृत लक्ष्मी-स्तुति ।
(१०) भृगु वंशसे अपरापर वंश उत्पत्ति-कथन ।
(११) ध्रुवकी कथा ।
(१२) ध्रुवका मधु नामक यमुना तट जाना, ध्रुवकी उत्कट तपस्या, त्रस्त देवताओंका भगवान्‌के पास जाना, भगवान्‌से वर पाना ।
(१३) ध्रुववंश, राजा वेणकी कथा, पृथुकी कथा ।
(१४) प्रचेताका समुद्र जलमें तप करना ।
(१५) प्रचेताकी तपस्यासे प्रजाक्षय, कण्डुमुनि-चरित, दक्षकी मैथुनी सृष्टि ।
(१६) मैत्रेयका प्रह्लाद-विषयक प्रश्न ।
(१७) प्रह्लाद-चरित्र कथा ।
(१८) प्रह्लादके वधके लिए हिरण्य-कशिपुका सूदादिको आज्ञा देना ।
(१९) प्रह्लादसे हिरण्य-कशिपुका वाक्य, प्रह्लादद्वारा विष्णु-स्तुति ।
(२०) प्रह्लादको भगवान्‌का दर्शन, हिरण्य-कशिपु वध ।
(२१) प्रह्लादके वंशकी कथा ।
(२२) विष्णुकी विभूति, परमात्माका चतुर्व्यूहत्व कथन ।

दूसरा अंश

(१) प्रियव्रतके १० पुत्रोंमें ३ का योगपरत्व-कीर्तन, औरोंका सातों द्वीपोंका राजा होना, जम्बूद्वीप पति अग्नीध्रका शालग्राम क्षेत्र जाना, भरत वंश-विस्तार ।
(२) भूमण्डल वर्णन ।

(३) भारतवर्ष-निरूपण ।

(४) प्लक्षद्वीप वर्णन, शाल्मली द्वीप वर्णन, कुशद्वीप वर्णन, क्रौञ्च द्वीप कथन, शाकद्वीप वर्णन, पुष्कर द्वीप वर्णन, लोकालोक पर्वत वृत्तान्त ।

(५) सप्तपाताल-कथन, अनन्त गुण वर्णन ।

(६) लोक वर्णन, हरिनाम वर्णन और सर्व पाप प्रायश्चित और क्षय कथा ।

(७) सूर्यादि ग्रहका संस्थान, भूलोक और भुवर्लोकादि संस्थान ।

(८) सूर्यरथ-संस्थान, सूर्यका उदयास्त, भानुका राशि-भेद, काल-गणना और गङ्गा-की उत्पत्ति ।

(९) वृष्टिका कारण-निर्देश ।

(१०) सूर्यरथके अधिष्ठाता ।

(११) सूर्यरथमें त्रयीमयी विष्णु शक्तिका अवस्थान ।

(१२) चन्द्ररथ वर्णन, चन्द्रका ह्रास और वृद्धि, बुधादि ग्रहका रथ वर्णन, प्रवह वायु कथन, विष्णु-महिमा ।

(१३) जड़ भरतकी कथा, सौवीरका भरतसे तत्त्वज्ञान उपदेश आरम्भ ।

(१४) भरतके प्रति सौवीरकी आत्म-विषयक प्रश्न-जिज्ञासा, भरतका उत्तर ।

(१५) ऋभु-निदाघ-संवाद ।

(१६) ऋभुके पास निदाघका फिर जाना, आत्म-विषयक उपदेश ।

तीसरा अंश

१—मन्वन्तर-कथा-श्रवणके लिए मैत्रेयका प्रश्न, बीते छहों मनुओंके नाम, स्वारोचिषादि मन्वन्तर ।

२—भविष्य मन्वन्तर विषयक जिज्ञासा, सूर्यपत्नी छायाकी कथा, सावर्णि मन्वन्तर, कल्प-परिमाण ।

३—वेदव्यासके २८ नाम, कृष्ण-द्वैपायन-माहात्म्य, निरुक्त-कथन ।

५—यजुर्वेद-शाखा-विभाग, याज्ञवल्क्यकृत सूर्यस्तोत्र ।

६—सामवेदका शाखा-विभाग, अथर्ववेदका शाखा-विभाग, अष्टादश पुराण कथन, पुराण-लक्षण, चतुर्दश विद्या, अष्टादश विद्या, ऋषित्रय कथन ।

७—यमगीता ।

८—विष्णु आराधन प्रश्न, विष्णु-पूजा-फल-श्रुति, ब्राह्मणादि वर्ण-धर्म-कथन ।

९—ब्रह्मचर्य कथन, गार्हस्थ्य धर्म, वान-प्रस्थ, संन्यास ।

१०—जातकर्मादि-कथन, विवाहयोग्य कन्याका लक्षण ।

११—गृहस्थका सदाचार, मूत्र पुरीषोत्सर्ग विधि, धनोपार्जन विधि, स्नान विधि ।

१२—गृहस्थका विविधाचार कथन ।

१३—जातकर्मादि कथन, प्रेतदाहविधि, अशौच-प्रकरण, एकोद्दिष्ट-विधि, सपिण्डीकरण-विधि ।

चौथा अंश

(३) भारतवर्ष-निरूपण ।
(४) प्लक्षद्वीप वर्णन, शाल्मली द्वीप वर्णन, कुशद्वीप वर्णन, क्रौञ्च द्वीप कथन, शाकद्वीप वर्णन, पुष्कर द्वीप वर्णन, लोकालोक पर्वत वृत्तान्त ।
(५) सप्तपाताल-कथन, अनन्त गुण वर्णन ।
(६) लोक वर्णन, हरिनाम वर्णन और सर्व पाप प्रायश्चित और क्षय कथा ।
(७) सूर्यादि ग्रहका संस्थान, भूर्लोक और भुवर्लोकादि संस्थान ।
(८) सूर्यरथ-संस्थान, सूर्यका उदयास्त, भानुका राशि-भेद, काल-गणना और गङ्गा-की उत्पत्ति ।
(९) वृष्टिका कारण-निर्देश ।
(१०) सूर्यरथके अधिष्ठाता;।
(११) सूर्यरथमें त्रयीमयी विष्णु शक्तिका अवस्थान ।
(१२) चन्द्ररथ वर्णन, चन्द्रका ह्रास और वृद्धि, बुधादि ग्रहका रथ वर्णन, प्रवह वायु कथन, विष्णु-महिमा ।
(१३) जड़ भरतकी कथा, सौवीरका भरतसे तत्त्वज्ञान उपदेश आरम्भ ।
(१४) भरतके प्रति सौवीरकी आत्म-विषयक प्रश्न-जिज्ञासा, भरतका उत्तर ।
(१५) ऋभु-निदाघ-संवाद ।
(१६) ऋभुके पास निदाघका फिर जाना, आत्म-विषयक उपदेश ।

तीसरा अंश

१—मन्वन्तर-कथा-श्रवणके लिए मैत्रेयका प्रश्न, बीते छहों मनुओंके नाम, स्वारोचिषादि मन्वन्तर ।
२—भविष्य मन्वन्तर विषयक जिज्ञासा, सूर्यपत्नी छायाकी कथा, सावर्णि मन्वन्तर, कल्प-परिमाण ।
३—वेदव्यासके २८ नाम, कृष्ण-द्वैपायन-माहात्म्य, निरुक्त-कथन ।
५—यजुर्वेद-शाखा-विभाग, याज्ञवल्क्यकृत सूर्यस्तोत्र ।
६—सामवेदका शाखा-विभाग, अथर्ववेदका शाखा-विभाग, अष्टादश पुराण कथन, पुराण-लक्षण, चतुर्दश विद्या, अष्टादश विद्या, ऋषित्रय कथन ।
७—यमगीता ।
८—विष्णु आराधन प्रश्न, विष्णु-पूजा-फल-श्रुति, ब्राह्मणादि वर्ण-धर्म-कथन ।
९—ब्रह्मचर्य कथन, गार्हस्थ्य धर्म, वान-प्रस्थ, संन्यास ।
१०—जातकर्मादि-कथन, विवाहयोग्य कन्याका लक्षण ।
११—गृहस्थका सदाचार, मूत्र पुरीषोत्सर्ग विधि, धनोपार्जन विधि, स्नान विधि ।
१२—गृहस्थका विविधाचार कथन ।
१३—जातकर्मादि कथन, प्रेतदाहविधि, अशौच-प्रकरण, एकोद्दिष्ट-विधि, सपिण्डीकरण-विधि ।

१४—श्राद्ध-फल-श्रुति, विशेष श्राद्ध-काल, पितृगीता।
१५—श्राद्धभोजी ब्राह्मणोंका लक्षण, श्राद्धान्त निषिद्ध कर्म, मातामह-श्राद्ध-विधि,
१६—श्राद्धमें मधुमांसादि दान फल, वृषादिका श्राद्ध दर्शनमें दोष।
१७—नग्न लक्षण, भीष्म-वसिष्ठ-संवाद, देवगणकी विष्णु स्तुति, माया-मोहोत्पत्ति।
१८—असुरोंसे माया-मोहका उपदेश वर्णन, अर्हत् दर्शनोत्पत्ति, नग्न-सम्पर्क-दोष, शतधनु नामक राजाकी कथा।

चौथा अंश

१—वंश-विस्तार, प्रश्न-जिज्ञासा, मनुवंश स्मरण और श्रवण फल, ब्रह्माकी उत्पत्ति, दक्षादिकी उत्पत्ति, बुधके औरससे इलाके गर्भसे पुरूरवाका जन्म, रैवतका वंश, रेवतीकी उत्पत्ति, रेवतीके साथ बलदेवका विवाह।
२—इक्ष्वाकुका जन्म, ककुत्स्थ-वंश-विस्तार, युवनाश्वकी कथा, सौभरिकी कथा।
३—सौभरिका वन गमन, सौभरि-चरित्र, श्रवणका फल कथन, सर्पविनाश मन्त्र, अनरण्यका वंश-विस्तार, त्रिशङ्कुके वंशमें सगरका होना।
४—सगर वंशधरोंका जन्म-विवरण, सगरकृत अश्वमेध यज्ञ, सगर-पुत्रोंका मरण, भगीरथका गङ्गानयन, रामादिका जन्म।
५—निमिका यज्ञानुष्ठान, निमि और वसिष्ठका परस्पर शापसे देह-त्याग, मित्रावरुणके प्रभावसे वसिष्ठका पुनर्जन्म, सीताकी उत्पत्ति, कुशध्वज वंशकी कथा।
६—चन्द्रवंश कथा, चन्द्रका गुरुपत्नी-हरण, उसके गर्भसे बुधकी उत्पत्ति, यज्ञमें अग्नि-त्रयकी उत्पत्ति।
७—पुरुरवा वंश, जह्नुका गङ्गापान, जह्नुका वंश, जमदग्नि विश्वामित्रादिका जन्म।
८—आयु-वंश, धन्वन्तरिका जन्म और वंश-विस्तार।
९—इन्द्रकी सहायताके लिए रजका दैत्योंके साथ युद्ध, क्षत्रवृद्धकी वंशावली।
१०—नहुष वंशानुचरित, ययातिकी कथा।
११—यदुवंश, पार्थवीर्य अर्जुनका जन्म।
१२—क्रष्टुका वंश।
१३—स्यमन्तोपाख्यान, कृष्ण-जाम्बवती-विवाह, कृष्ण-सत्यभामा-विवाह, गांदनीकी कथा।
१४—शिविकी वंशावली, अन्धक वंश-विस्तार, श्रुतश्रवाका वंश, शिशुपालोत्पत्ति।
१५—शिशुपालकी मुक्तिका कारण, वसुदेव-पत्नियोंके नाम, श्रीकृष्ण-जन्म, यदुवंशियोंकी संख्या।
१६—तुर्वसु वंश।
१७—द्रुह्यु वंश।
१८—अणु वंश, कर्णोत्पत्ति।
१९—जन्मेजय वंश, भरत जन्म, बृहदश्व जन्म, कृपीकृपकी उत्पत्ति, जरासन्धकी उत्पत्ति।

२०—जह्नुवंश, पाण्डुवंश ।

२१—भविष्य राजाओंकी कथा, परीक्षिद्वंश ।

२२—इक्ष्वाकुवंशी होनेवाले राजाओंकी कथा ।

२३—बृहद्रथ वंशके भविष्य राजा ।

२४—प्रद्योत वंशीय भविष्य राजा, नन्दवंश, भविष्य कालके विविध राजवंशोंकी कथा, काल-प्रभावसे राजाओंका चरित्रान्तर हेतु-निर्णय, कृतयुगारम्भ समय, कलिका प्रादुर्भाव, काल-निर्णय ।

पांचवाँ अंश

१—वसुदेव देवकीका विवाह, कंस-भारसे दुखी पृथ्वीका देवताओंके पास जाना, ब्रह्माकृत विष्णु-स्तोत्र विष्णुका कंसबध अङ्गीकार ।

२—यशोदाके गर्भसे योग-निद्राका जन्म, देवकीके गर्भमें भगवान्‌का प्रवेश, देवताओं-का देवकीकी स्तुति करना ।

३—श्रीकृष्णकी जन्म-कथा, वसुदेवका गोकुल-गमन, कंसके प्रति शून्य मार्गमें जाने-वाली महामायाका उपदेश वाक्य ।

४—आत्म-रक्षार्थ कंसका उपाय-चिन्तन, देवकी वसुदेवका बन्धन-मोचन ।

५—पूतना बध ।

६—बालकृष्णके द्वारा शकटका उलटा जाना, रामकृष्णका नाम-करण ।

७—कालीय-दमन ।

८—धेनुक बध ।

९—प्रलम्बासुर बध ।

१०—शक्रोत्सव, कृष्णके कहनेसे गिरिपूजा ।

११—इन्द्रका कोप, महा वृष्टि, गोवर्धन-धारण ।

१२—कृष्णजीके पास देवराजका आना, अर्जुन-रक्षार्थ देवराजका उपदेश ।

१३—रासवर्णन, गोपीगणका सङ्गीतादि ।

१४—अरिष्ट बध ।

१५—कंसके पास नारदका कृष्ण-गुण-कीर्तन ।

१६—केशी बध ।

१७—अक्रूरका वृन्दावन जाना ।

१८—श्रीकृष्ण-अक्रूर-संवाद, श्रीकृष्णकी मथुरा-यात्रा, जमुनाजीमें अक्रूरको रामकृष्णका दर्शन, श्रीकृष्ण-स्तोत्र ।

१९—रामकृष्णका मथुरा-प्रवेश, रजक बध, कुब्जाके घर जाना ।

२०—कुब्जासे चन्दनादि अनुलेप लेना, धनुःशाला-प्रवेश, रङ्गभूमि-प्रवेश और कंसबध ।

२१—कंस-पत्नियोंका विलाप, उग्रसेनका अभिषेक, इन्द्रके यहांसे सुधर्म प्रार्थना ।

२२—जरासन्ध पराभव ।

२३—कालयवनकी उत्पत्ति, कालयवनका मथुरा-गमन, कालयवन वध ।

२४—बलदेवका वृन्दावन आना ।

२५—बलदेवकी वारुणी प्राप्ति, यमुनाकर्षण, रेवती-परिणय ।

२६—रुक्मिणी हरण, प्रद्युम्नकी उत्पत्ति ।

२७—प्रद्युम्न-हरण, मत्स्यके पेटसे मायावतीका प्रद्युम्नको पाना, शम्बर वध ।

२८—रुक्मि वध ।

२९—देवराजका द्वारका आना, श्रीकृष्णको षोडश-सहस्र-कन्या प्राप्ति ।

३०—कृष्णका स्वर्ग-गमन, पारिजात-हरण, इन्द्रादिके साथ युद्ध, देवगणकी पराजय ।

३१—देवराजकी क्षमा-प्रार्थना, श्रीकृष्णका द्वारका लौटना ।

३२—कृष्ण महिषी गणोंसे सन्तानोत्पत्ति, बाणयुद्ध, उषाका स्वप्न ।

३३—अनिरुद्ध-हरण, बाणपुरी अवरोध, शिव-कृष्ण-युद्ध, बाणका बाहुच्छेद ।

३४—पौंड्रक काशिराज वध, वाराणसी दाह ।

३५—साम्ब-बन्धन, बलदेवका हस्तिनापुर गमन, बलदेवकी कोप-शान्ति ।

३६—द्विविदका दौरात्म्य, द्विविद वध ।

३७—मुषलोत्पत्ति, यदुवंशियोंका प्रभास तीर्थमें जाना, यदुकुल क्षय, श्रीकृष्ण कलेवर त्याग ।

३८—अर्जुनका यादवोंका सत्कार करना, कलिका आगमन, आभीर आक्रमण, अर्जुनको व्यासका उपदेश, परीक्षितका अभिषेक ।

छठा अंश

१—कलिका स्वरूप वर्णन, कलिधर्म कथन ।

२—अल्प धर्मसे अधिक फल लाभ ।

३—कल्प-कथन, ब्रह्माका दिन निर्णय ।

४,५—प्रलयमें ब्रह्माका अवस्थान, प्राकृत प्रलय, त्रिविध दु:ख कथन, गर्भ जन्मादि दु:ख, नरक-यन्त्रणा, दु:खध्वंसकरी मुक्ति, ब्रह्मद्वय-निरूपण ।

६—स्वाध्याय-योग-कथन, योग-निरूपण, केशिध्वजकी कथा, धर्मधेनु-विनाश, प्रायश्चित्त परिज्ञानार्थ खाण्डिक्याभिगमन, मन्त्रियोंके साथ खाण्डिक्यकी मन्त्रणा ।

७—केशिध्वजका आत्मज्ञान कथनारम्भ, देहात्मवादियोंकी निन्दा, योग-विषयक प्रश्न, त्रिविध-भावना, ब्रह्मज्ञान, निराकार धारणा, साकार धारणा, केशिध्वजका घर आना, खाण्डिक्य और केशिध्वजका मुक्ति पाना ।

८—विष्णुपुराणका श्रेष्ठत्व, पराशरसे मैत्रेयका प्रश्न, पुराणमें कहे हुए विषयका सार, विष्णुनाम-स्मरण-माहात्म्य, विष्णुपुराण विषयक फलश्रुति, विष्णु-माहात्म्य-कीर्तन ।

पांचवाँ अंश

२३—कालयवनकी उत्पत्ति, कालयवनका मथुरा-गमन, कालयवन वध ।

२४—बलदेवका वृन्दावन आना ।

२५—बलदेवकी वारुणी प्राप्ति, यमुनाकर्षण, रेवती-परिणय ।

२६—रुक्मिणी-हरण, प्रद्युम्नकी उत्पत्ति ।

२७—प्रद्युम्न-हरण, मत्स्यके पेटसे मायावतीका प्रद्युम्नको पाना, शम्बर वध ।

२८—रुक्मि वध ।

२९—देवराजका द्वारका आना, श्रीकृष्णको षोडश-सहस्र-कन्या प्राप्ति ।

३०—कृष्णका स्वर्ग-गमन, पारिजात-हरण, इन्द्रादिके साथ युद्ध, देवगणकी पराजय ।

३१—देवराजकी क्षमा-प्रार्थना, श्रीकृष्णका द्वारका लौटना ।

३२—कृष्ण महिषी गर्णोंसे सन्तानोत्पत्ति, बाणयुद्ध, उषाका स्वप्न ।

३३—अनिरुद्ध-हरण, बाणपुरी अवरोध, शिव-कृष्ण-युद्ध, बाणका बाहुच्छेद ।

३४—पौंड्रक काशिराज वध, वाराणसी दाह ।

३५—साम्ब-बन्धन, बलदेवका हस्तिनापुर गमन, बलदेवकी कोप-शान्ति ।

३६—द्विविदका दौरात्म्य, द्विविद वध ।

३७—मुषलोत्पत्ति, यदुवंशियोंका प्रभास तीर्थमें जाना, यदुकुल क्षय, श्रीकृष्ण कलेवर त्याग ।

३८—अर्जुनका यादवोंका सत्कार करना, कलिका आगमन, आभीर आक्रमण, अर्जुनको व्यासका उपदेश, परीक्षितका अभिषेक ।

छठा अंश

१—कलिका स्वरूप वर्णन, कलिधर्म कथन ।

२—अल्प धर्मसे अधिक फल लाभ ।

३—कल्प-कथन, ब्रह्माका दिन निर्णय ।

४,५—प्रलयमें ब्रह्माका अवस्थान, प्राकृत प्रलय, त्रिविध दुःख कथन, गर्भ जन्मादि दुःख, नरक-यन्त्रणा, दुःखध्वंसकरी मुक्ति, ब्रह्मद्वय-निरूपण ।

६—स्वाध्याय-योग-कथन, योग-निरूपण, केशिध्वजकी कथा, धर्मधेनु-विनाश, प्रायश्चित्त परिज्ञानार्थ खाण्डिक्याभिगमन, मन्त्रियोंके साथ खाण्डिक्यकी मन्त्रणा ।

७—केशिध्वजका आत्मज्ञान कथनारम्भ, देहात्मवादियोंकी निन्दा, योग-विषयक प्रश्न, त्रिविध-भावना, ब्रह्मज्ञान, निराकार धारणा, साकार धारणा, केशिध्वजका वर आना, खाण्डिक्य और केशिध्वजका मुक्ति पाना ।

८—विष्णुपुराणका श्रेष्ठत्व, पराशरसे मैत्रेयका प्रश्न, पुराणमें कहे हुए विषयका सार, विष्णुनाम-स्मरण-माहात्म्य, विष्णुपुराण विषयक फलश्रुति, विष्णु-माहात्म्य-कीर्तन ।

बँगला विश्वकोषमें छठे अंशके अन्ततककी सूची देकर फिर आगे विष्णुधर्मोत्तर खण्डकी सूची दी है। यह ग्रन्थ हमको उपलब्ध नहीं है और बम्बईके छपे विष्णुपुराणमें भी छठे अंशके आठवें अध्यायपर पुराणको सम्पूर्ण कर दिया है। परन्तु नारदपुराणमें जहाँ विष्णुपुराणकी सूची दी है वहाँ उत्तर भाग भी छठे अंशके बाद बताया है। इसीको विष्णु धर्मोत्तर भाग कहा है। नारदपुराणके अनुसार इस सातवें अंशकी विषयसूची यह है—

"इसके बाद सूत शौनकादि द्वारा यत्नपूर्वक जिज्ञासित होकर विष्णु धर्मोत्तर नामका परम पवित्र नानाविध धर्मकथा, व्रत, नियम, यम, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, वेदान्त, ज्योतिष, वंशाख्यान, स्तोत्र, मन्त्र एवम् सर्वलोकोपकारक नानाविध विद्या बतायी गयी है। इस विष्णुपुराणमें सब शास्त्रोंका सङ्ग्रह है"।

बँगला विश्वकोषमें जो वृहद् सूची दी हुई है वह इस संक्षिप्त सूचीके अनुकूल ही है। इस विभागमें जो वर्णन दिये गये हैं वह प्रायः ब्रह्मपुराण और पद्मपुराणमें भी आ चुके हैं।

देवी भागवतके सिवाय सभी पुराण इस बातमें एक मत हैं कि तीसरा पुराण विष्णु-पुराण है और उसमें २३,००० श्लोक हैं। देवी भागवत इसे दसवाँ स्थान देता है, परन्तु श्लोक-संख्या २३,००० ही बतलाता है। ब्रह्मोत्तर खण्डके मिला देनेपर आजकलकी छपी पोथियोंमें १६,००० श्लोकोंकी संख्या पूरी होती है। बँगला विश्वकोषकारके मतसे विष्णु धर्मोत्तर भाग पूरा नहीं है। नारदपुराणकी जो सूची दी हुई है उसके भी कई विषय नहीं पाये जाते। ब्रह्मगुप्तने ब्रह्मसिद्धान्तकी रचनामें विष्णु धर्मोत्तर भागसे ज्योतिषका अंश लिया है। परन्तु आजकलकी छपी पोथियोंमें उस अंशका अभाव है।

अनेक छोटी-छोटी पोथियाँ पायी जाती हैं जो विष्णुपुराणसे ली हुई कही जाती हैं, परन्तु उनका पता छपी हुई पोथियोंमें नहीं लगता। शायद विष्णुपुराणके खोये हुए ७,००० श्लोकों-मेंसे हों या आधुनिक हों, इस बातका निश्चय नहीं किया जा सकता। कुछ पुस्तकोंके नाम यह हैं—

"कन्या-कृष्ण-माहात्म्य, कलिस्वरूपाख्यान, कृष्ण-जन्माष्टमी-व्रत कथा, जड़-भरता-ख्यान, देवी स्तुति, महादेव-स्तोत्र, लक्ष्मी-स्तोत्र, विष्णु-पूजन, विष्णु शतनाम-स्तोत्र, सिद्ध लक्ष्मी-स्तोत्र, सुमनः-शोधन, सूर्य-स्तोत्र।

तीसवाँ अध्याय

शिवपुराण

पण्डित रामनाथद्वारा सम्पादित, वेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेसकी छपी पोथीमें शिव महापुराणकी जो विषयानुक्रमणिका दी हुई है वह हम ज्योंकीत्यों देते हैं। इसमें कुल सात खण्ड हैं। (१) विद्येश्वर-संहिता, (२) रुद्र-संहिता, जिसमें सृष्टि-खण्ड, सती-खण्ड, पार्वती-खण्ड, कुमार-खण्ड, युद्ध-खण्ड, यह पांच खण्ड हैं, (३) शतरुद्र-संहिता, (४) कोटिरुद्र-संहिता, (५) उमा-संहिता, (६) कैलास-संहिता और (७) वायवीय-संहिता जिसमें पूर्व और उत्तर दो खण्ड हैं। विषयसार इस प्रकार है—

(१) विद्येश्वर-संहिता

१—तीर्थराजे मुनि यज्ञावलोकनार्थमागताय सूताय कलिदोषक्षीयमाणे वर्णाश्रमधर्मे नृणां श्रेयस्साधनमधिजिगमिषु मुनिप्रश्नस्य वर्णनम्।

२—शिवपुराणस्य कलिकल्मष विध्वंसित्ववर्णनम् तत्संहिताभेदप्रदर्शनञ्च।

३—षट्कुलीनमुनीन्प्रति ब्रह्मकृत साध्यसाधन साधक वर्णनम्।

४—सनत्कुमारेण व्यासाय शम्भोः श्रवणकीर्तनमननानि मुक्तिसाधनान्याभिहितानि।

५—साधनत्रयाशक्तस्य शिवलिङ्गेबटपूजनादेव मुक्त्युक्ति लिङ्गपूजने नन्दिकेश्वराभिहित हेतुनिरूपणञ्च।

६—परस्परमीश्वरत्वाभिमानिनोर्विष्णुब्रह्मणोराहवे क्षिप्तमाहेश्वरपाशुपतास्त्रभीतामराणां कैलासगमनम्।

७—विदितामराभिप्रायशम्भोस्समरमागत्यानलस्तम्भाविष्कारेण विमान विष्णु ब्रह्मणोस्तम्भप्रमाण ज्ञाने प्रवृत्तिः, तदनुपलब्धौ केतकीपुष्पकूटसाक्षित्वं विधाय दृष्ट्यारोहमिति ब्रह्मोक्त्वा विष्णुना ब्रह्मगौरवस्वीकारस्ततः प्रसन्नशम्भोर्विष्णवे स्वसाम्यप्रदानम्।

८—शिवाज्ञया विधिवधे प्रवृत्तमवलोक्य भैरवमच्युतेन प्रार्थितस्य शम्भोर्यज्ञेतरस्यापूज्यत्वं विधायविधावनुग्रहः केतकीपुष्पे च स्वान्यत्र स्वीकारः।

९—विष्णुविधिभ्यामर्चितोऽर्चनदिवसम् शिवरात्रि संज्ञित महाफलप्रदमभिधाय स्वस्यैवेश्वरत्वमभिदधे महेश्वरः।

१०—विष्णुब्रह्मभ्याम् पञ्चकृत्यमभिधायोंकारमन्त्रञ्चोपदिश्यान्तर्दधे शिवः।

११—शिवलिङ्ग स्थापनपूजनदान-प्रकारवर्णनम्, प्रणवजपप्रकारश्चादर्शि।

१२—शिवक्षेत्र वर्णनम्।

१३—सदाचार वर्णम्।

१४—अग्नियज्ञादि वर्णम्।

१५—देवयज्ञादिषु देशकालपात्रनिरूपणम् ।

१६—पार्थिव पूजाप्रकारम् प्रदर्श्यामुकामुकसमयेमुकामुकदेवपूजनेनामुकामुक फल प्राप्तिः प्रादर्शि ।

१७—प्रणवपञ्चाक्षरमन्त्र माहात्म्य वर्णनम् ।

१८—बन्धमोक्षस्वरूपम् निरूप्य शिवलिङ्ग माहात्म्य वर्णनम् ।

१९—पार्थिवशिवलिङ्गपूजनमाहात्म्य प्रदर्शनम् भस्मप्रकाराऽभिधानञ्च ।

२०—वैदिकविधिना पार्थिवपूजा प्रकारमभिधाय प्रकारान्तरेणापि तदर्चाभिधानम् ।

२१—कामनाऽनुरोधेन पूजने शिवलिङ्गसंख्याभिधानम् ।

२२—शिवनैवेद्य भक्षणम् निर्णीय बिल्वमाहात्म्य वर्णनम् ।

२३—शिवनाम-माहात्म्य-निरूपणम् ।

२४—भस्ममाहात्म्याभिधानम् ।

२५—रुद्राक्षमहिमकथनम् ।

(२) रुद्र-संहिता

प्रथम सृष्टि-खण्ड

१—निर्गुणशिवस्य शक्तिसम्बन्धेन प्रपञ्चनिर्माणादिलाभविषयकानेक प्रश्नकर्तृशौनकादृषीन्प्रति सूतस्यानन्दपूर्वकम् ब्रह्मनारदसंवादमुखेन कथने प्रतिज्ञा ।

२—तपोऽर्थम्हिमाद्रिगतनारदतपोनाशार्थेन्द्रप्रेषितस्मरस्य शिवप्रभावात्पराभवः तदज्ञान्यहं कामजयीति सगर्वनारदः शिवेन बोधितोपि तमनाहत्य ब्रह्मणोऽन्तिकम् गतस्तेनापि शिवमहिमेत्युक्तौ वैकुण्ठेविष्णुनापि तथयिते विहस्य "किं प्रभावः स्मर" इत्युक्त्वा यदृच्छयान्यत्रगतः ।

३—नारदेगते विष्णुः किंकृतवान् नारदश्च कुत्रगत इति ऋषीणाम् प्रश्नः । नारदस्य मार्गमध्ये विष्णोर्मायिकनगररचना, तस्मिन्नारदस्य स्वयम्वरोत्सवलाभः, अत्रत्या श्रीमती कन्या कामजित्पतिमिच्छतीति ज्ञात्वा कामविवशस्य मुनेर्विष्णुलोकगमनम् तत्स्वरूपयाचनञ्च, नारदस्य हरि (वानर) रूपेण स्वयम्वरे गमनम् तत्र तस्य पराभवः विष्णोः श्रीमती प्राप्तिश्च शिवगणयोरुपहासात्क्रुद्धस्य च मुनेः शापः ।

४—ततो नारदस्य वैकुण्ठगमनम् "त्वं मनुष्यो भूत्वाचिरहिदुखम् वानरैः सहानुभव" इति विष्णवे शापदानम्, विष्णुनाशापम् गृहीत्वा शिवेच्छेत्युक्त्वा सांत्वितस्य मुनेर्मोहापसरणम्, पश्चात्तापयुक्तम् मुनिम् सर्वमिदम् शिवकृतमित्युपदिश्य हरेरन्तर्धानम् ।

५—शिवक्षेत्रदर्शनाय नारदे भूमिं पर्यटति पूर्वं सदाशिवगणयोः समागमः, तयोः स्वशापमुक्तौ प्रार्थना, तावाश्वास्य नारदस्य काशीक्षेत्रगमनम्, काशीपुरीं दृष्ट्वा विश्वेश्वरम् नत्वा नारदस्य ब्रह्मलोकगमनम् । विधिं प्रति नारदकृतानेकप्रश्नोक्तिः ।

६—नारदस्य लोकोपकारकानेक प्रश्नश्रवणोत्तरमहाप्रलयस्वरूपवर्णनम्, शिवनिर्गुणलक्षणवर्णनम्, ईशेच्छारूपशक्तेरुत्पत्तिस्वरूपकथनञ्च । तयोः सगुणमूर्त्युत्पत्ति-

निरुक्तिः, शिवलोकस्य काशीक्षेत्रस्य च सहैव निर्माणकथनम्, तत्र क्रीडासक्तयोः शिवशक्त्योरिच्छयैव विष्णोरुत्पत्ति. विष्णोर्नामकर्मप्राप्तौ प्रार्थनाकथनम्, शिवाज्ञया तपः करणाज्जातश्रमस्य विष्णोरङ्गेभ्यो निःसृतजलैर्निरुक्त्या नारायणनामप्राप्तेश्च निरूपणम्, एतस्मिन् काले जडप्रकृतितः पञ्चविंशतितत्त्वोत्पत्तिः। तत्त्वैः सहहरेस्तत्र शयनोक्तिः।

७—नारायणनाभेः कमलोत्पत्तिः, शिवदक्षिणाङ्गाद्ब्रह्मोत्पत्तिप्रकारः पुनर्लीलया तस्य कमलादाविर्भावः, मम कुतो जन्मेति तस्य भ्रमः, पुनर्मोहात्पितृगवेषणाय विधेर्नालदण्डादध. प्रवेशः, तदाधाराज्ञानात्पुनरुपर्यागमः, एवं ब्रह्मणो बहुकाल भ्रमणवर्णनम्, तपसा ब्रह्मणो विष्णुदर्शनकथनम्, ब्रह्मविष्णवोः स्वस्वश्रेष्ठत्वे विवादवर्णनम्, तयोर्मध्येलिङ्गाविर्भावः, तदवलोकनेन ब्रह्मविष्णवोः स्वस्वजयाय वराह हंसरूपे धृत्वा लिङ्गोर्ध्वाधोभागगमनम्, लिङ्गादानधिगमाल्लिङ्गनिकटागमनवर्णनम्।

८—शिवदर्शनार्थम् स्थितयोर्ब्रह्मविष्णवोरोङ्कारनादश्रवणम्। ओङ्कारगत वर्णानाम् लिङ्गे स्थितिप्रकारः, ओङ्कारादेव ब्रह्माण्डोत्पत्ति.। हरिर्ब्रह्मणोर्ज्ञानप्राप्त्युक्तिश्च। एतस्मादेव पञ्चवक्त्र शिव सगुणमूर्तिप्रादुर्भाव इति तयोर्ज्ञानाधिगमः, ततः शब्द ब्रह्मस्वरूपवर्णनम्। शब्द ब्रह्मज्ञानेन विष्णुविधिगर्वपरिहारस्य वर्णनम्।

९—पञ्चवक्त्रशिवाद्विधि विष्णवोर्वेदाधिगमः, लिङ्गपूजैव शिवतुष्टौ परम् कारणमिति ब्रह्मविष्णवोरुपदेशः, सृष्टिकर्मणि सहाये याचिते शिवे सृष्टिकर्ताहमेव रुद्ररूपेण कर्तृपालने सहकारी त्रिगुणयाशक्त्याभवामीति तयोर्वरप्रदानेन कलहनिवारणोक्तिः।

१०—विधिसृष्टप्रजादुखमोचनेऽनेकरूपधारणे विष्णोराज्ञाकरणम्, रुद्ररूपेणाहमपि त्वदशक्यम् कार्यम् करिष्यामीति रुद्रोक्तौ हरिहररूपभेदवताम् निरयगामित्वोक्तिर्विष्णोरधिकारप्रदानम् च, ब्रह्मविष्णुरुद्राणामायुष्यबलप्रमाणवर्णनम्, विष्णुप्रार्थनयानिर्गुणताप्रदानोत्तरम् लिङ्गस्वरूपकथनम्।

११—सपरिकरम् संक्षिप्य शिवार्चनविधिनिरूपणम् तत्फलकथनञ्च।

१२—लिङ्गार्चनज्ञानेच्छया देवैः सह ब्रह्मणः क्षीरनिधितीरगमनम्, लिङ्गार्चनमेव सर्वेषां सर्वार्थदमित्येवं रूपाम् विष्णूक्तिम् श्रुत्वा सर्वेषाम् यथाधिकारम् लिङ्गानिदेयानीति ब्रह्मोक्तिं श्रुत्वा विश्वकर्माणम् प्रति सर्वेषाम् लिङ्गप्रदाने विष्णोराज्ञादानम्, तत्सकाशाद्देवानाम् लिङ्गप्राप्तिः, लिङ्गार्चनादेव सर्वेषाम् स्वार्थलाभकथनम्, कर्म यज्ञादीनाम् स्वरूपवर्णम्, बाह्याभ्यन्तरभेदेन लिङ्गस्य द्वैविध्योक्तिः भक्तिज्ञानस्वरूपकथनम् तद्द्वारा च द्विविध लिङ्गपूजादिकारवर्णनम्।

१३—विस्तृतलिङ्गपूजाविधि वर्णनप्रसङ्गेन स्नानासनादिविधि कथनम्, मृन्मयादिलिङ्गप्रतिष्ठाभूतशुद्धिपाद्यार्घ्याद्युपचारार्पणविधिनिरूपणम्, पूजान्ते जपस्तोत्रपठनपूर्वकलिङ्गविसर्जनप्रकारकथनम्।

१४—पुष्पविशेषैर्लिङ्गपूजने फलविशेष वर्णनम्, लक्षद्विलक्षपुष्पपूजनेपि फलविशेषकथनम्, तथा कामनाभेदेन पुष्पविशेषैर्लिङ्गपूजने विचित्रफलप्राप्तिवर्णनम्, चम्पक-

केतकेहित्वा सर्वपत्रपुष्पविहितत्वोक्तिः धान्यलक्षपूजायाम् मानलक्षणफलादि-कथनम् जलादिधारापूजनफलादिवर्णनञ्च ।

१५—सृष्टिरक्षणाय हरिविधिभ्याम् वराहहंसरूपधारणेकारणोक्ति., भुवनात्मकाऽनिर्माणप्रकार', तस्मिन्वराट्प्रवेशः, कैलासवैकुण्ठयोरुत्पत्तिः, नवधा ब्रह्मसृष्टिवर्णनम्, ततो रुद्रादिरुद्रगण शिवसृष्टि ब्रह्मसृष्टिवर्णनम् ।

१६—सूक्ष्मभूतेभ्यः स्थूलाकाशादि पञ्चभूतसृष्टिवर्णनम् पर्वतसमुद्रोत्पत्तिवर्णनम् च, ब्रह्मणः स्वाङ्गेभ्यो मरीच्यादीनामुद्भवकथनम्, मानवरूपेण ब्रह्मणः सुरासुरनिर्माणप्रकारस्तेषाम् तेषान्तत्तच्छरीरदानम् च मैथुनप्रजानिर्माणप्रकारः । प्रियव्रतोत्तानपादोत्पत्तिस्तथामनुकन्यात्रयप्रसवैः सर्वजगत्पूर्त्तिवर्णनम् । दक्षकन्यावंशवर्णम्, सतीनामकशिवशक्तेर्दक्षात्प्रादुर्भावस्तस्यास्त्रिगुणात्वप्रकारकथनम् शिवसतीविवाहवर्णनञ्च । दक्षयज्ञे स्वतनुत्यागेन विपुलकीर्त्यानेकनामलाभवर्णनम् शिवशक्तिरुद्रस्वरूपवर्णनञ्च ।

१७—शिवस्य कैलासगमनकुबेरमित्रताकथनप्रसङ्गेनगुणनिधिचरित्रवर्णनम् ।

१८—तद्दुराचारेण तन्नयनार्थम् समागतैर्यमदूतैः सहशिवगणानाम् संवादः, शिवगणै' सार्कं गुणनिधेः कैलासगमनवर्णनम्, पुनर्भूमौ राजपुत्री भूतस्य शिवोपास्त्यैव तस्यालकापुरप्राप्त्युक्तिद्वारा शिवस्यालपतोषित्ववर्णनम् ।

१९—पाद्मकल्पे पौलस्त्यो वैश्रवणोऽलकापति., पश्चान्मेघवाहनकल्पे याज्ञदत्तेस्तस्याधिपत्यप्राप्तिः, तत्रापि तस्य शिवभक्त्युद्रेकाच्छिवसख्यसम्पादने भवानी वचनेनैकाक्षत्वप्राप्तिपूर्वकयक्षपतित्वाद्यैश्वर्यप्राप्तिवर्णनम् ।

२०—कुबेरतपोबलाद्रुद्ररूपेण कैलासे शिवस्यगमनम्, तत्र ढक्कावादनेनाह्वानसूचनादेवादीनामागमः, तत्रैव कुबेरशिवसख्यवर्णनम् च ।

(२) रुद्रसंहिता

द्वितीय सतीखण्ड

१—रुद्रेब्रह्माणं सन्ध्याख्यस्वसुतारूपदर्शनेन मोहितम् दृष्ट्वा दक्षाद्यैस्तत्पुत्रैः सह तम् निर्भर्त्स्य स्वस्थानम् गतेऽमर्पित ब्रह्मणो रुद्रमोहार्थप्रलयकरणम् । हठाच्छत्तुपासनाया रुद्रमोहाय स्वसुताद्दक्षात्सतीनामककन्योत्पादनम्, तया सह रुद्रस्य विवाह । तया रममाणस्य रुद्रस्य दक्षेण विरोधस्तत्सम्बन्धेन रुद्ररहितदक्षयज्ञारम्भ., तस्मिन्रुद्रभागानवलोकात्सतीकोपेन यज्ञविध्वंस., पुन सन्धानम् ज्वालामुख्युत्पत्यादिवर्णनम् ।

२—निर्गुणशिवस्य द्विरूपभवनम् । ततस्तस्य रुद्रादित्रिधाभवनम्, स्रष्टुर्ब्रह्मणः सकाशात् सुरासुरनरादिप्रजाना प्रजापतीनाम् चाविर्भाव., प्रसन्नमनस्कविधे. सकाशात्समोहिनीसन्ध्योत्पत्युक्ति , मदनोत्पत्तितत्स्वरूपैश्वर्यदानादिवर्णनम् ।

३—ब्रह्मण. सकाशात्कामस्य नामकर्माद्यैश्वर्यप्राप्तौ तेन विधि तत्पुत्रोपरिसाक्षात्प्रयोगकरणात्पितृसर्गोत्पत्तिमवलोक्य क्रुद्धस्य ब्रह्मण शापप्राप्तितन्मोचनादिवर्णनम् ।

४—दक्षकन्ययारत्या सह मदनस्य विवाह वर्णनम् । रतिरूपवर्णनम् । शिवमायामोहेन कामशापविस्मरणात्स्वकन्याया योग्यवरप्राप्तिजन्यानन्दादिवर्णनञ्च ।

५—सन्ध्यायास्तपस्तुष्टशिवादनेकवरलाभः पूर्वरूपत्यागश्च, अन्यदपि तच्चरित्र वर्णनम् ।

६—सन्ध्याकृततपस्तुष्टशिवस्य सन्ध्याकृतस्तोत्रवर्णनम् शिवप्रसादात्तस्या अनेक वर प्राप्तिः ।

७—सन्ध्याया मेधातिथिगमनम् तत्रालक्षितत्वेन शरीरत्यागात्सूर्यलोकगमनम् ततस्तस्या अरुन्धतीनामप्राप्तिवर्णनम्, वशिष्ठेन तस्या विवाहः, तयो. शक्त्यादिपुत्रोत्पत्तिः ।

८—रुद्रोपहासरुष्टनारदसन्तोषार्थम् रुद्रसंमोहनाय प्रेषितयोः कामरत्योर्वसन्तादि सहचर साधनेन कामस्य रुद्रलोकप्रयाणवर्णनम् ।

९—वसन्तादि सामग्रीयुक्तस्यापि मदनस्य रुद्रमोहनाशक्तत्वेन विमनस्कत्ववर्णनम् पुनश्च विधेराज्ञयामारनामकगणैः सह यत्रयत्र शिवगमनम् तत्रतत्र गच्छतो मदनस्य श्रमवैफल्यात्स्वलोकगतिः ।

१०—अमोहित शिवकामस्वधामगतौ खिन्नविधेर्विष्णुस्तुतिः शिवमहिमस्मृतिदानेन विष्णुकृतविधेर्बोधः, शक्तेरवतारग्रहणे तपश्चर्यायाम् दक्षस्य प्रवर्तनेन शक्ति प्राकट्याच्छिवविवाहादिसम्भवोपायसूचनवर्णनम् ।

११—हर्य्युपदिष्टविधिस्तुत्याऽविर्भूय शिवा दक्षादुत्पद्य रुद्रंमोहयिष्यामीति विधये वरम् ददौ ।

१२—ब्रह्मप्रेरितशक्त्याराधनप्रवृत्तदक्षस्य वहुकालेन शक्तिदर्शनम्, मत्कन्यात्वेन रुद्रम् मोहयेति दक्षयाच्मोक्तिः ।

१३—ब्रह्मनिर्देशेन प्रजासर्गे प्रवृत्तस्य दक्षस्य ब्रह्मोक्त्या असिक्नीनामकपञ्चजनकन्यया विवाहः । मैथुनधर्मेणोत्पादितानां दक्षपुत्राणां नारदस्य निवृत्तिमार्गोपदेशेन वैराग्यप्राप्तिः, तन्नारदकर्मासहिष्णोर्दक्षान्नारदस्य शापप्राप्त्यादिवर्णनम् ।

१४—दक्षस्य पष्टिकन्या सर्गाणाम् वर्णनम् तासाम् विवाहादिवर्णनम् च, ततो दक्षगृहे साक्षाच्छिवशक्तिप्रादुर्भावमहोत्सववर्णनम् शक्तिवाललालनाद्युक्तिश्च ।

१५—ब्रह्मनारदाभ्याम् सदृशवरप्राप्तिरूपवरोपलब्ध्यनन्तरम् मात्रनुज्ञया सत्याद्वादशमासात्मक शिवार्चनव्रताचरणम् विष्णवादिसर्वदेवानाम् च तदवलोकनेनानन्दवर्णनम् । सस्त्रीकयोर्विधिविष्णवो. शिवलोकगमनम् तत्स्तोत्रकरणम् च ।

१६—स्वागमनप्रयोजनकथनानन्तरम् युक्तस्त्रीस्वीकरणम् विनासृष्ट्यसम्भव इति ब्रह्महरिभ्यामुक्तेऽसङ्गस्यापि शिवस्य तयोराग्रहाद्विवाहस्वीकारस्य वर्णनम् ।

१७—दक्षकन्याया नन्दाव्रतपूर्त्युत्तरम् शिवस्य दर्शनम् तन्मनोभिलपित प्राप्तिवर्णनम् ब्रह्मणा सह दक्षगृहे रथेन शिवस्यागमनादिवर्णनम् च ।

१८—विष्णवादि देवैर्मरीच्यादि ऋषिगणैः सह शिवस्य सतीवरणार्थम् दक्षगृहगमनम्, शिवसती-विवाह-वर्णनञ्च ।

१९—सतीशिवविवाहोत्सवे सतीरूपावलोकनेन ब्रह्मणस्तद्विपयक कामुकत्ववर्णनम्, रोषाच्छिवस्य विधिहनने प्रवृत्ति., विष्णुप्रार्थनया च ब्रह्मवध निवृत्तिः ।

केतकेहित्वा सर्वपत्रपुष्पविहितत्वोक्तिः धान्यलक्षपूजायाम् मानलक्षणफलादि-
कथनम् जलादिधारापूजनफलादिवर्णनञ्च ।

१५—सृष्टिरक्षणाय हरिविधिभ्याम् वराहहंसरूपधारणेकारणोक्तिः, भुवनात्मकाऽनिर्मा-
णप्रकारः, तस्मिन्वराट्प्रवेशः, कैलासवैकुण्ठयोरुत्पत्तिः, नवधा ब्रह्मसृष्टिवर्णनम्,
ततो रुद्रादिरुद्रगण शिवसृष्टि ब्रह्मसृष्टिवर्णनम् ।

१६—सूक्ष्मभूतेभ्यः स्थूलाकाशादि पञ्चभूतसृष्टिवर्णनम् पर्वतसमुद्रोत्पत्तिवर्णनम् च,
ब्रह्मणः स्वाङ्गेभ्यो मरीच्यादीनामुद्भवकथनम्, मानवरूपेण ब्रह्मणः सुरासुरनिर्माण-
प्रकारस्तेषाम् तेषान्तत्तच्छरीरदानम् च मैथुनप्रजानिर्माणप्रकारः । प्रियव्रतो-
त्तानपादोत्पत्तिस्तथामनुकन्यात्रयप्रसवैः सर्वजगत्पूर्त्तिवर्णनम् । दक्षकन्यावंश-
वर्णम्, सतीनामकशिवशक्तेर्दक्षात्प्रादुर्भावस्तस्यास्त्रिगुणात्वप्रकारकथनम् शिव-
सतीविवाहवर्णनञ्च । दक्षयज्ञे स्वतनुत्यागेन विपुलकीर्त्यानेकनामलाभवर्णनम्
शिवशक्तिरुद्रस्वरूपवर्णनञ्च ।

१७—शिवस्य कैलासगमनकुबेरमित्रताकथनप्रसङ्गेनगुणनिधिचरित्रवर्णनम् ।

१८—तद्दुराचारेण तन्नयनार्थम् समागतैर्यमदूतैः सहशिवगणानाम् संवादः, शिवगणैः
साकं गुणनिधेः कैलासगमनवर्णनम्, पुनर्भूमौ राजपुत्री भूतस्य शिवोपास्त्यैव
तस्यालकापुरप्राप्त्युक्तिद्वारा शिवस्यालपतोषित्ववर्णनम् ।

१९—पाद्मकल्पे पौलस्त्यो वैश्रवणोऽलकापतिः, पश्चान्मेघवाहनकल्पे याज्ञदत्तेस्तस्या-
धिपत्यप्राप्तिः, तत्रापि तस्य शिवभक्त्युद्रेकाच्छिवसख्यसम्पादने भवानी वचने-
नैकाक्षत्वप्राप्तिपूर्वकयक्षपतित्वाद्यैश्वर्यप्राप्तिवर्णनम् ।

२०—कुबेरतपोबलाद्रुद्ररूपेण कैलासे शिवस्यगमनम्, तत्र ढक्कावादनेनाह्वानसूचना-
द्देवादीनामागमः, तत्रैव कुबेरशिवसख्यवर्णनम् च ।

(२) रुद्रसंहिता

द्वितीय सतीखण्ड

१—रुद्रेब्रह्माणं सन्ध्याख्यस्वसुतारूपदर्शनेन मोहितम् दृष्ट्वा दक्षाद्यैस्तत्पुत्रैः सह तम्
निर्भर्त्स्य स्वस्थानम् गतेऽमर्पित ब्रह्मणो रुद्रमोहार्थप्रलयकरणम् । हठाच्छत्तु-
पासनाया रुद्रमोहाय स्वसुताद्दक्षात्सतीनामककन्योत्पादनम्, तया सह रुद्रस्य
विवाह । तया रममाणस्य रुद्रस्य दक्षेण विरोधस्तत्सम्बन्धेन रुद्ररहितदक्ष-
यज्ञारम्भः, तस्मिन्रुद्रभागानवलोकात्सतीकोपेन यज्ञविध्वंसः, पुन' सन्धानम्
ज्वालामुख्युत्पत्त्यादिवर्णनम् ।

२—निर्गुणशिवस्य द्विरूपभवनम् । ततस्तस्य रुद्रादित्रिधाभवनम्, स्रष्टुर्ब्रह्मणः सका-
शात् सुरासुरनरादिप्रजाना प्रजापतीनाम् चाविर्भावः, प्रसन्नमनस्कविधेः सका-
शात्समोहिनीसन्ध्योत्पत्त्युक्तिः, मदनोत्पत्तितत्स्वरूपैश्वर्यदानादिवर्णनम् ।

३—ब्रह्मणः सकाशात्कामस्य नामकर्माद्यैश्वर्यप्राप्तौ तेन विधि तत्पुत्रोपरिसाक्षात्प्रयोग-
करणात्पितृसर्गोत्पत्तिमवलोक्य क्रुद्धस्य ब्रह्मण शापप्राप्तितन्मोचनादिवर्णनम् ।

४—दक्षकन्ययारत्या सह मदनस्य विवाह वर्णनम् । रतिरूपवर्णनम् । शिवमाया-मोहेन कामशापविस्मरणात्स्वकन्याया योग्यवरप्राप्तिजन्यानन्दादिवर्णनञ्च ।

५—सन्ध्यायास्तपस्तुष्टशिवादनेकवरलाभः पूर्वरूपत्यागश्च, अन्यदपि तच्चरित्र वर्णनम् ।

६—सन्ध्याकृततपस्तुष्टशिवस्य सन्ध्याकृतस्तोत्रवर्णनम् शिवप्रसादात्तस्या अनेक वर प्राप्तिः ।

७—सन्ध्याया मेधातिथिगमनम् तत्रालक्षितत्वेन शरीरत्यागात्सूर्यलोकगमनम् ततस्तस्या अरुन्धतीनामप्राप्तिवर्णनम्, वशिष्ठेन तस्या विवाहः, तयोः शक्त्यादिपुत्रोत्पत्तिः ।

८—रुद्रोपहासरुष्टनारदसन्तोषार्थम् रुद्रसंमोहनाय प्रेषितयोः कामरत्योर्वसन्तादि सहचर साधनेन कामस्य रुद्रलोकप्रयाणवर्णनम् ।

९—वसन्तादि सामग्रीयुक्तस्यापि मदनस्य रुद्रमोहनाशक्तत्वेन विमनस्कत्ववर्णनम् पुनश्च विधेराज्ञयामारनामकगणैः सह यत्रयत्र शिवगमनम् तत्रतत्र गच्छतो मदनस्य श्रमवैफल्यात्स्वलोकगतिः ।

१०—अमोहित शिवकामस्वधामगतौ खिन्नविधेर्विष्णुस्तुतिः शिवमहिमस्मृतिदानेन विष्णुकृतविधेर्बोधः, शक्तेरवतारग्रहणे तपश्चर्यायाम् दक्षस्य प्रवर्तनेन शक्ति प्राकट्याच्छिवविवाहादिसम्भवोपायसूचनवर्णनम् ।

११—हर्य्युपदिष्टविधिस्तुत्याऽविर्भूय शिवा दक्षादुत्पद्य रुद्रंमोहयिष्यामीति विधये वरम् ददौ ।

१२—ब्रह्मप्रेरितशक्त्याराधनप्रवृत्तदक्षस्य बहुकालेन शक्तिदर्शनम्, मत्कन्यात्वेन रुद्रम् मोहयेति दक्षयाच्ञोक्तिः ।

१३—ब्रह्मनिर्देशेन प्रजासर्गे प्रवृत्तस्य दक्षस्य ब्रह्मोक्त्या असिक्नीनामकपञ्चजनकन्यया विवाहः । मैथुनधर्मेणोत्पादितानां दक्षपुत्राणां नारदस्य निवृत्तिमार्गोपदेशेन वैराग्यप्राप्तिः, तन्नारदकर्मासहिष्णोर्दक्षान्नारदस्य शापप्राप्त्यादिवर्णनम् ।

१४—दक्षस्य षष्ठिकन्या सर्गाणाम् वर्णनम् तासाम् विवाहादिवर्णनम् च, ततो दक्षगृहे साक्षाच्छिवशक्तिप्रादुर्भावमहोत्सववर्णनम् शक्तिबाललालनाद्युक्तिश्च ।

१५—ब्रह्मनारदाभ्याम् सद्दशवरप्राप्तिरूपवरोपलब्ध्यनन्तरम् मात्रनुज्ञया सत्याद्द्वादश-मासात्मक शिवार्चनव्रताचरणम् विष्णवादिसर्वदेवानाम् च तदवलोकनेनानन्द-वर्णनम् । सस्त्रीकयोर्विधिविष्ण्वोः शिवलोकगमनम् तत्स्तोत्रकरणम् च ।

१६—स्वागमनप्रयोजनकथनानन्तरम् युक्तस्त्रीस्वीकरणम् विनासृष्ट्यसम्भव इति ब्रह्म-हरिभ्यामुक्तेऽसङ्गस्यापि शिवस्य तयोराग्रहाद्विवाहस्वीकारस्य वर्णनम् ।

१७—दक्षकन्याया नन्दाव्रतपूर्त्युत्तरम् शिवस्य दर्शनम् तन्मनोभिलषित प्राप्तिवर्णनम् ब्रह्मणा सह दक्षगृहे रथेन शिवस्यागमनादिवर्णनम् च ।

१८—विष्ण्वादि देवैर्मरीच्यादि ऋषिगणै. सह शिवस्य सतीवरणार्थम् दक्षगृहगमनम्, शिवसती-विवाह-वर्णनञ्च ।

१९—सतीशिवविवाहोत्सवे सतीरूपावलोकनेन ब्रह्मणस्तद्विषयक कामुकत्ववर्णनम्, रोषाच्छिवस्य विधिहनने प्रवृत्ति., विष्णुप्रार्थनया च ब्रह्मवध निवृत्तिः ।

२०—सतीशिवविवाहोत्सवे ब्रह्मणो विरूपतावर्णनम्, पुनश्चमर्त्यलोके चैतद्रूपेणैव ब्रह्मणः पूज्यताख्याति प्राप्तिरूपवरलाभवर्णनम्।

२१—सतीशिवकैलासगमनम् तत्र च लौकिकचेष्टयातयोर्विहरणम्।

२२—प्रजन्यकाले निलयनिर्माण सत्या प्रेरितस्य शिवस्य मत्स्थाने मेघानाम् गत्यभाव इत्युक्तिः। सतीच्छया हिमालये शिवयोः क्रीडायावर्णनम्।

२३—विषयोपभोगाज्जातविरागायाः शिवायाः लोकशिक्षणार्थम् सभेदस्वरूपभक्तिभाव-कथनम् तथा मोक्षाद्यनेक शास्त्रोद्देशकथनम् च।

२४—लीलया पृथिव्यामटतोः सतीशिवयोर्वने विरहिणम् रामम् प्रणमन्तम् शिवमव-लोक्य शङ्किताया: सत्याराम परीक्षाया वर्णनम्।

२५—शिवसतीवियोगकारण वर्णनम्।

२६—रामपरीक्षार्थम् सीतारूपेण गतायाः सत्याः रामसोहायोगात्पश्चात्तापः, विष्णवे शिवस्वाधिकारार्पणम्, सत्रे दक्षशिवयोर्विरोधकारणवर्णनम् च।

२७—दक्षप्रजापते रुद्रभागरहितयज्ञे देवादीनामागतिः तत्र रुद्रमदृष्ट्वा दधोचेर्यज्ञवाटा-न्निर्गमनम्। तत्पक्षपाति ब्राह्मणामपि निर्गमे शिवविरोधिनो दक्षस्य यज्ञप्रवृत्ति-रेवेति वर्णनम्।

२८—गन्धमादने सखीजनसहिताया सत्यारोहिण्या सह चन्द्रस्य दक्षयज्ञगमनमवलोक्य स्वगमनेच्छा प्रकटनम् बोधनेऽपि साग्रहायै शिवाज्ञाप्रदानम्।

२९—दक्षयज्ञे गतायाः सत्या दक्षादवमानः, सर्वदेवानाम् तत्कृततिरस्कारवर्णनम् दक्षाय सत्या शिवमाहात्म्यकथनम् च।

३०—सत्यायोगात्स्वेच्छया तत्र देहत्यागे कृते भृगुणा शिवगणेषु पराभूतेष्वपि विघ्नदर्श-नाद्देवादीनाम् साध्वसोत्पत्तिवर्णनम्।

३१—दक्षयज्ञे देववाणीद्वारा दक्षकृतौ तिरस्कारदर्शनम् भविष्यत्कथनम् च।

३२—भृगुपराजित स्वगणद्वारा सतीदेहत्यागादिवृत्तश्रवणात्क्रुद्धस्य शिवस्य जटाया वीर-भद्रमहाकालीज्वरादीनाम् प्रादुर्भावः, तेभ्यो दक्षतत्पक्षीयाणाम् सहाराय शिवाज्ञेति वर्णनम्।

३३—शिवाज्ञया दक्षयज्ञसंहारार्थ चलितयोः कालिवीरभद्रयोः सेनासमारोहस्य वर्णनम्।

३४—कैलासाच्छिवगणैः सह दक्षनाशाय निर्गते वीरभद्रे यज्ञवाटस्थानाम् देवादीना-मुत्पातदर्शनाद्भयोत्पत्तिः, देववाण्या शिवनिन्दकस्य दक्षस्य महाभयसूचने विष्णु-प्रार्थनेत्युक्तिः।

३५—विष्णुप्रति दक्षस्य तद्विज्ञप्तिः, शिवनिन्दकस्य रक्षणे केषामपि सामर्थ्यम् नेति तात्पर्यगर्भिता हरेरुक्तिः, एतत्कर्मणा तव वीरभद्रान्मृत्युरस्मदादीनाम् च मृत्यु-समशासनम् भविष्यतीति च तदुक्तिः शिवसामर्थ्यमप्यवर्णितेन।

३६—शिवमायामोहितैर्लोकपालैर्वीरभद्रस्य सङ्ग्रामः, तस्मिंश्च तेषाम् सर्वेषाम् पराभव., ततो विष्णुवीरभद्रयोः संवादोत्तरम् सङ्ग्रामोन्मुखत्वादिकथनम्।

३७—विष्ण्वादिदेवैर्वीरभद्रादिशिवगणानाम् दारुणसङ्ग्रामस्य वर्णनम्, तथा चेदम् सर्वम्

सतीकृतम् मत्वापराभूतानाम् देवानाम् स्वस्वस्थानगमनम्, जयशालिवीरभद्र-कृतदेवर्षिगणानाम् दन्तत्रोटनसश्मश्रुलुञ्चनाद्युपद्रवो यक्षविध्वंसनम् च, ततो दक्षस्य दीक्षितस्यापि वीरभद्रकृतशिरश्छेदादि वर्णनम् ।

३८—शिवप्रभावविष्णोः शिवम् विना देवैः सह दक्षयज्ञगमने कारणकथनप्रसङ्गेन दधीच-पिंक्षुवथुराज्ञोः स्वस्वश्रेष्ठ्यविपयकविवादकथनम्, क्षुवथोः सकाशाद्दधीचेः परा-भवः, मृत्युञ्जयप्रभावाद्दधीचेरमरत्वप्राप्तिः, तस्मात्पराभूतस्य क्षुवथो हरेराराधना-दिवर्णनम् ।

३९—दधीचम् प्रति द्विजरूपेण क्षुवथुक्षत्रियकार्यार्थम् विष्णोर्गमनम्, दधीच विष्ण्वोः क्षुवथुनिमित्तको महान्कलहः, दधीचस्य शैवाद्विष्णोः पराभवः । दधीच सकाशा-द्देवैः सह विष्णोः शापप्राप्ति वर्णनम् ।

४०—दक्षप्रजापतिनिधनजदुःखेन खिन्नस्य ब्रह्मणः देवै. सह वैकुण्ठगमनम्, दक्षसञ्जी-वन यज्ञसन्धानाय देवैः सह कैलासे विष्णोर्गमनम् कैलासवर्णनम् च ।

४१—सतीविरहिणोपि शिवस्य विष्णुकृतस्त्वांवराधाख्यापन प्रदर्शिकास्तुतिः ।

४२—स्तुत्या प्रसन्नस्य शिवस्य यज्ञसन्धानोपायकथनम् ।

४३—वीरभद्रदग्धशिरस. प्रजापतेर्वस्तशिरः सन्धानाज्जीवनोपायकथनम्, यज्ञानुसन्धा-नप्रकारः, सतीखण्डश्रवणपठनफलावाप्ति कथनम् च ।

(२) रुद्रसंहिता

तृतीय पार्वतीखण्ड

१—सत्याद्दिमालयोदरे जन्मधारणनिमित्तकथनम्, नारदोपदेशतश्च पार्वत्याः पुनः शिवप्राप्तिकथनम्, हिमगिरेर्दैवरूप्यनिरूपणम्, तेन च पितृकन्याया मेनाया विवाहादिकथनम् ।

२—मेनोत्पत्तिप्रसङ्गात्तिसृणाम् मेनकादिपितृकन्यानाम् सनकादिमुनिभ्यः शापप्राप्तिः, प्रसन्नेभ्यस्तेभ्यश्च पुन. शापनिर्मुक्तिप्रकारस्य वर्णनम् ।

३—पार्वत्युत्पत्ति शिवप्राप्ति कथा प्रश्नप्रसङ्गे हिमवद्गृहे विष्ण्वादीनाम् गमनम् तत्कृतशिवस्तुतिवर्णनम् च ।

४—सतीविरहजरुद्ररोदनश्रवणजातदु.खानाम् देवानाम् देव्याः स्वरूपदर्शनम्, हिम-वन्मेना प्रार्थनाच्च त्वद्गृहे मदाविर्भाव इति तदुक्तिः, देवकार्यसम्पादनप्रकार-वर्णनम् च ।

५—मेनारुद्रतपोवर्णनम्, मेनायाः शिवायाः जन्मकथनम्, मेनायाः शक्तिप्रसादा-च्छत पुत्रप्राप्तिरूपवरप्राप्तिः ।

६—पार्वत्यामेनायाः जन्मप्रकारकथनम् ।

७—पार्वत्याजन्मनिमित्तस्य हिमवत्कृतमहोत्सवस्य वर्णनम्, नामकरणसंस्कारोत्तरम् तस्या वालक्रीडा वर्णनम् च ।

८—स्वकन्यायाः प्रारब्धादिकम् नारदाच्छ्रुत्वा दिगंबर विरक्तपतिप्राप्तिरूपम् स्वकन्या-दुर्दैवम् च विचिन्त्य दुःखितस्य हिमवतोनारदेन सह सम्भाषणम् ।

९—योग्यवरोपलब्ध्यै पित्रोः पार्वत्यै शिवाराधनोपदेशः, शिवस्य स्वप्ने आविर्भावः, श्रीरुद्रस्य पार्वतीप्राप्त्यै हिमगिरिगमनम्। पार्वत्याश्च तत्सेवाय नियोगादिरवर्णि।

१०—पार्वती प्राप्त्यै तपश्चरतो रुद्रस्य भालोत्पन्नघर्मविन्दोर्भौमोत्पत्ति. स्त्रीरूपिण्या भूम्या स्वस्तनदानादिनावर्धितस्य तस्य शिवकृपया ग्रहत्वप्राप्तिश्चवर्णिता।

११—गणैः सह शिवाम् मनसि निधाय हिमगिरौ रुद्रस्य तपः स्थितिः, तत्र हिमाचलस्य शिवदर्शनसम्भाषणादिवर्णनम् च।

१२—एकदा पार्वत्या साकम् शिवदर्शनायागतस्य हिमगिरेः कन्यया सह त्वया कदापि नागन्तव्यमिति शिवोक्तौगिरिकृतविनय प्रकाशः।

१३—सांख्यवेदान्ताभिप्रायेण शिवशक्त्योर्विवादोत्तरम् गिरिजायाः स्वसेवायाम् शिवाज्ञा चिरमेकत्र स्थितयोः शिवशक्त्योर्विकारोत्पादनायदेवैः प्रेषितस्य कामस्य शिवकृतदाहवर्णनम्।

१४—तारकासुरोत्पत्तिप्रसङ्गाद्वज्राङ्गोत्पत्तिः, पुत्रार्थम् तस्य तपश्चरणेन प्रसन्नाद्विधेर्वरप्राप्तिश्च।

१५—तारकोत्पत्ति समये प्रसङ्गादरिष्टस्वरूपविवरणम्। तस्य चोग्रतपसा देवादीनाम् भयप्राप्तिः, ब्रह्मणः सकाशात्तारकासुरस्य वरद्वयप्राप्तिः, भयात्सर्वदेवैस्तस्य स्वस्वैश्वर्यप्रदानम् च।

१६—तारकात्तुदेवानाम् ब्रह्मणे स्वदुःखकथनम्, शिवपुत्रम् विना तद्धनने सर्वेषामशक्यत्वकथनोत्तरम् हैमवत्या शिवस्य विवाहरुच्युत्पादनयत्नादखिलम् देवकार्यम् सम्पत्स्यत इत्यादिप्रकारेण देवानाम् ब्रह्मकृतसान्त्वनवर्णनम्।

१७—शक्रस्य काममाहूय तच्छक्तिवर्णनपूर्वकम् तस्मै शिवशक्त्योर्विवाहे पुत्रोत्पत्त्या तारकवधादिस्वकार्यनिरूपणम्, कामस्य च हरजये प्रतिज्ञाय शिवनिकटगमनम्।

१८—कामकृत पार्वतीविषयक शिवमोहवर्णनम्।

१९—क्रुद्धस्य हरस्य तृतीयनेत्रोत्पन्नाग्निना कामदाहवर्णनम्। देवप्रार्थनया पुनः सञ्जीवनोक्तिश्च।

२०—कामदहनोत्तरम् वाडवरूपेण शिवनेत्रोत्पन्न वह्निज्वालायाः सागरगमनम्, ब्रह्मानुज्ञया च सा सागरेण स्वीकृता।

२१—कामदाहोत्तरमन्तर्हिते शिवे हैमवत्याः शिवविरहाद्दुःखवर्णनम्, नारदात्पञ्चाक्षरमन्त्रोपदेशप्राप्तेर्वर्णनम्।

२२—पुनश्च शिव प्राप्तयेपित्रोरनुज्ञया पार्वत्यामुनिदुष्करतपोऽकारि।

२३—पार्वतीतपोऽग्निना त्रैलोक्यदाहप्रसङ्गाद्भीतानाम् देवानाम् ब्रह्मलोकगमनम्, विष्णुना सार्धम् च पार्वती तपस्थानावलोकनोत्तरम् शिवसन्निधिप्राप्ति वर्णनम् च।

२४—ब्रह्मविष्ण्वाद्याग्रहात्पार्वतीपाणिग्रहस्य शिवकृतस्वीकारवर्णनम्।

२५—शिवस्मरणात्सप्तर्ष्यागमने पार्वतीच्छलाय तेषाम् नियोग। नारदवाक्यविश्वासोनर्थकर इति तैरागत्योक्तोऽपि न चचाल स्वमतात्पार्वतीति।

२६—पार्वतीनिश्चयपरीक्षार्थम् जटिलस्वरूपेणागतस्य शिवस्य शिवया संवादः।

२७—पार्वत्या निश्चयम् दृष्ट्वा पूर्वजन्मन्यनुभूतेपि निरिच्छशिवसम्बन्धात्स्वदेहपातप्रसङ्गे तत्प्राप्त्यर्थम् यतमानाम् त्वाम् धिगित्येवम् प्रतारणप्रवृत्तो जटिलः ।

२८—पार्वत्या दृढ़ निश्चयेन तुष्टः शिवस्ताम् निजरूपम् प्रदर्श्य त्वाम् स्वीकरिष्ये इत्यूचे ।

२९—मयापूर्वम् दक्षेण कन्यादानसमये ग्रहाः सम्यङ् न पूजिता इति हेतोर्वियोग प्रसङ्गोऽनुभूतः तथा इत उत्तरम् माभूदतस्त्वया विधिना हिमालयान्मत्प्राप्तिः सम्पादनीयेत्यादिपार्वत्युक्तिः ।

३०—शिवान्तर्धानानन्तरम् महोत्सवपूर्वकम् शिवायाः स्वपितृगृहागमनवर्णनम् ।

३१—शिवयोर्विवाहनिश्चयम् श्रुत्वा हिमाचलस्यानेन मोक्षप्राप्त्या पृथिव्या महती हानिरिति मत्वा तदघटनाय देवानाम् प्रयत्नवर्णनम् ।

३२—जटिलरूपशिववाक्याद्भिन्नहृदयायामेनायाः शिवायस्वकन्याऽप्रदाने दुराग्रहः शिवाज्ञया च सप्तर्षीणाम् हिमालयसदनागमनञ्च ।

३३—पुनश्चारुन्धती सहित सप्तर्षीणामनेकेतिहासकथनेन हिमन्वमेनयोः सान्त्वनम् ।

३४—शिवयोर्विवाहप्रसङ्गेन वशिष्ठेनागण्येतिहासकथनम् ।

३५—एतत्प्रसङ्गेनैव पद्मापिप्पलादचरितवर्णनम् ।

३६—वशिष्ठ वचनानन्तरम् सर्वेषाम् शैलानामपि सम्मत्या शिवाय कालीप्रदाने हिमालयस्य निश्चयवर्णनम् सप्तर्षीणाम् शिवविवाहघटनाम् साधयित्वा स्वलोकगमन वर्णनम् च ।

३७,३८—स्वबन्धुसम्मत्या शिवम् प्रति हिमगिरेः प्रतीकालेखनम् । शिवकृत तत्स्वीकारः विवाहार्थम् सर्वपर्वतागमनम्, विवाहसामग्री वर्णनञ्च ।

३९—विश्वकर्मणः विवाहमण्डपरचनाकौशल्यवर्णनम् तथा देवादिकानाम् निवासार्थम् स्थलादिनिर्माणवर्णनम् ।

४०—नारदद्वारा ब्रह्मादीनाम् शिवनिमन्त्रितानाम् कैलासागमनवर्णनम् तैश्च सह हिमगिरिगृहे शिवस्यागमनवर्णनञ्च ।

४१—विवाहमण्डपे विश्वकर्मणश्चातुर्य्येण मोहितानाम् देवानाम् भयोत्पत्तितन्निवारणप्रकारवर्णनम् ।

४२—शिवस्य गिरीणाम् चोपविवाहस्थलम् समागमोत्सववर्णनम् ।

४३—स्वकन्यावरम् शिवम् द्रष्टुमागतायाम् मेनायाम् मोहनाय शिवकृतलीलावर्णनम् ।

४४—शिवलीला मोहिताया मेनाया मोहनिवारणकथनम् ।

४५—दिव्यस्वरूपेण शिवाविर्भावस्थितिवर्णनम् ।

४६—सर्वस्त्रीगणैः सह मेनया मण्डपद्वारप्राप्तवरस्य नीराजनावर्णनम् ।

४७—हिमालयमण्डपे वररूपशिवस्य सुरादिभिः सह प्रवेशप्रकारकथनम् ।

४८—शिवाशिवयोर्विवाहविधिकथनम् कन्यादानादिप्रकारवर्णनञ्च ।

४९—विवाह होमादिसकलसंस्कारादिवर्णनम् ।

५०—विवाहमहोत्सवे लौकिकरीत्या स्त्रीविनोदवर्णनम् ।

५१—शिवम् शक्तियुतम् विलोक्यकामसञ्जीवनाय रतिप्रार्थना, कामस्य विष्णुसमीपगमने शिवाज्ञा, कामसञ्जीवनप्रकारकथनम् च ।

५२—हिमालयगृहे वरपक्षीयजनभोजनसमारम्भवर्णनम् ।

५३—शिवयोर्विवाह महोत्साहे द्वित्रदिनोत्साहवर्णनम् ।

५४—वधूवरयोर्यात्राप्रसङ्गे मेनायाः पार्वत्यै शिक्षणमिषेण पतिव्रता धर्मवर्णनम् ।

५५—लौकिकरीत्या विवाहकृत्यम् सर्वम् निर्वर्त्यशिवयोः कैलासगमनवर्णनम् ।

(२) रुद्रसंहिता

चतुर्थ कुमारखण्ड

१—शम्भोर्दिव्यवर्षसहस्रम् गिरिजया सह लीला, तारकार्दितसुराणाम् विष्णुपुरोगमानाम् शङ्करसन्निधौ दुःखनिवेदनम् ।

२—देवस्तुत्यासमाप्तरतिनाशिवच्युतरेतसोऽग्निसप्तर्षिपत्नीक्रमेण गङ्गायाम् प्राप्त्या कार्तिकेयोत्पत्तिः ।

३—षट्कृत्तिकाभिः स्तन्यदानादिना कुमारस्य पोषणम् । सुरलोकम् गत्वा कुमारेण नानालीलाभिर्विष्ण्वादीनाम् विस्मापनम् ।

४—सूर्याचन्द्रादिभ्यो वृत्तेऽवगते शिवाज्ञया ससैन्यस्य सगणस्य नन्दिनः षट्कृत्तिकासविधम् गमनम् । सविनयञ्च स्कन्दस्य शिवसन्निधौ प्रापणम् ।

५—हरिब्रह्मादिदेवानाम् स्वस्वायुधप्रदानपूर्वकम् कार्तिकेयाभिषेककरणम् ।

६—कस्यचिद्द्विजस्य यज्ञियेऽजे नष्टे तत्प्रार्थनया सुरलोकात्कार्तिकेयस्य तदानयनम् । तदुपरि क्षणमात्रेण विश्वभ्रमणात्तस्यालौकिकशक्तिदर्शनाच्च तस्य स्वायत्तीकरणम् ।

७—तारकेण सहेन्द्रादिदेवानाम् युद्धवर्णनम् ।

८,९—तारकेण वीरभद्रविष्णोर्घोरयुद्धवर्णनम् ।

१०—स्वामिकार्तिकेयद्वारा तारकवधः ।

११—कुमारेण वाणप्रलम्बवधः, श्रीशिवतुष्ट्यै प्रतिज्ञेश्वरकपालेश्वर कुमारेश्वरलिङ्गस्थापनञ्च ।

१२—तारकवधप्रीतदेवैः कार्तिकेयपार्वतीमहादेवानाम् स्तुतिः ।

१३—अन्तर्यथासुखम् स्नातुम् द्वारपालत्वेन शिवया स्वगात्रमलतो गणेशो निर्मितः, कदाचित्स्नातुम् प्रवृत्तायाम् तस्याम् शिवस्यान्तः प्रवेशम् समयष्टिप्रहारमरुणत् ।

१४—चतुः शिवगणानाम् पार्वत्यन्तःपुरप्रवेशे निवारिते शिवाज्ञया गणेशेन सह शिवगणानाम् युद्धनिश्चयः ।

१५—शिवगणैः सह गणेशयुद्धवर्णनम् । युद्धम् निवार्यतामिति महेशाय नारदप्रार्थनम् ।

१६—गणेशेन सह विष्ण्वादीनाम् युद्धे प्रवृत्तेऽव्याहतबलस्य रण दुर्जयस्य तस्य शिरो महेश्वरस्त्रिशूलेनाच्छिनत् ।

१७—क्रुद्धमातृगणेन युद्धे विष्णुशङ्करादिदेवानाम् पराजयस्ततो गिरिजास्तुतिस्तया च गणेशे जीविते युद्ध शान्ति करिष्यामीत्युक्ते गणेशदेहे करिमुखयोजनपूर्वकम् रणनिवृत्तिः ।

१८—गणेशकाये गजमुखयोजनेन तस्योज्जीवनम् ।

१९—सर्वदेवपूजाप्रसङ्गे प्रथमम् गणेशः पूज्य इति वरप्रदानपूर्वम् गणाधिपत्वप्रदानम् ।

२०—गणेशविवाहवर्णनम् । स्वपाणिग्रहणेऽन्तरायमवलोक्य कार्तिकेयस्य तपसे क्रौञ्च-गिरिगमनम् ।

(२) रुद्रसंहिता

पञ्चम युद्धखण्ड

१—त्रिपुरात्मजतारकविद्युन्मालिककमलाक्षतपःप्रीतब्रह्मणायाचध्वमित्युक्ते तैः सर्वामरप्रधानत्वमयाचि । नायम् वरः समुचितोऽन्यम् प्रार्थयतेति तेनोक्ते हैमवज्रायसराजतानि पुरत्रयाणि नो देहीत्युक्ते ब्रह्मणा तन्निर्माणाय विश्वकर्मणेनिदेशः ।

२—तारकाद्यर्दितम् देवानाम् तद्वधाय शिवस्तुतिः ।

३—शिवोपदेशाद्देवानाम् विष्णुप्रार्थनम् । तेन यज्ञेभ्य आदेशस्तेभ्यो भूतसृष्टिस्ततश्च शिवार्चकत्रिपुरस्य नाशोऽशक्यः । प्रयत्नतस्तेषाम् शिवपूजा विघ्न सम्पादन-विचारः ।

४—त्रिपुरमोहनार्थम् विष्णुना जिनस्योत्पादनन्तद्द्वाराऽर्हत्यादीक्षया त्रिपुरस्यार्हद्धर्मानुगीकरणम् ।

५—जिनधर्मकथनप्रसङ्गेन देवानां ग्राम्यधर्माद्यनियमवर्णनम् ।

६—विष्णुब्रह्मप्रभृतिसुरैस्त्यक्त शिवधर्म. तारकः सुवध्यं इति शिवाय सस्तुतिनिवेदनम् ।

७,८—त्रिपुरघाताय शिवाज्ञया विश्वकर्मणा सर्वदेवमयरथनिर्माणम् ।

९—श्रीशिवस्य युद्धयात्रा वर्णनम् ।

१०—त्रिपुरदाह वर्णनम् ।

११—त्रिपुरासुरे दग्धे शिवस्य रौद्रीं मूर्तिम् विलोक्य विष्ण्वादिदेवैः शम्भुस्तुतः ।

१२—त्रिपुरदाहावशिष्टमयस्य शम्भुशरणगमनम् । तस्मैशम्भुना वितललोकवासदानपूर्वकम् स्वभक्तिर्दत्ता । जैनाचार्य्येभ्यः कलौत्वन्मतम् प्रसरिष्यतीति निदेशपूर्वकम् विष्ण्वादिदेवविसर्जनम् ।

१३—तपस्विरूपेण गच्छति शिवे शक्रेणतदवमानाच्छम्भुना तद्भस्मीकरणम् बृहस्पति-प्रार्थनया पुनरुज्जीवनम् ।

१४—रुद्रनेत्रोत्थवह्निना समुद्राज्जलन्धरोत्पत्तिः । कालनेमिदुहित्रावृन्दया तत्परिणयनम् ।

१५—स्वसदसिच्छिन्नशिरसम् राहुमवलोक्य सुधामन्थनसामयिकदेववैरम् स्मृत्वा जलन्धरस्य शक्रेण युद्धम् । देवानाम् तत्कर्तृकपराजयश्च । ।

१६—स्वर्गम् विहाय विद्रुतेषु सुरेषु जलन्धरेण तदनुसरणम् । देवसहायार्थम् विष्णोः सङ्ग्रामकरणञ्च ।

१७—विष्णुजलन्धरयुद्धे जलन्धरपराक्रमतुष्टविष्णोर्वरदानेन तन्नगरे सलक्ष्मीकहरेनिर्वास. ।

१८—शक्रादिदेवैस्सम्प्रेषितो नारदो जलन्धरमागत्यपार्वतीरूपलावण्यलक्ष्मीं प्रशशंस । तस्याम् जातानुरागः सदैत्यो मारशराहतोबभूव ।

१९—शिवसन्निधौ पार्वतीम् मह्यम् देहीति दूतप्रेपणन्तदाकर्ण्य रुषातिभीमस्य पुरुषस्योत्पत्तिः शम्भुदेहात्।

२०,२१—शिवगणजलन्धरसैन्ययुद्धवर्णनम्।

२२—श्रीशिवजलन्धरयोर्युद्धे नानामायाः संविधाय तत्र प्रवृत्ते हरे पार्वतीरिरन्सया जलन्धरस्य शिवरूपेण पार्वत्यन्तिकम् गमनम् तन्मायामालोक्य भवान्या विष्णोः स्मरणम् दुष्टजलन्धरदैत्यस्य पत्न्या वृन्दायाः सतीत्वमपाकुर्वित्यामन्त्रणम्।

२३—विष्णुना जलन्धरपत्न्या दुःस्वप्नान्दर्शयित्वा भयोत्पादनम्। स्वयम् मायाजलन्धरवपुषा तया सह विहरणम्। विदितविष्णुच्छलाया वृन्दाया जन्मान्तरे तव पत्नीहरणम् भवत्विति विष्णुशापदानपूर्वकम् चिताप्रवेशः।

२४—श्रीशिवद्वारा जलन्धरवधः।

२५—तत्तद्भक्तभुक्तिमुक्त्यादिप्रदानात्मकशम्भुयशःस्तवनम्।

२६—वृन्दाचिताभूमौ समाधिस्थस्य हरेः प्रवृत्तिम् सूचयितुम् शम्भवे देवानाम् निवेदनम्। यूयम् सर्वे पार्वतीसविधम् गत्वा स्वप्रार्थितम् प्राप्स्यथेति शम्भुवचसा देवानाम् शिवास्तुतिपूर्वकम् तत्प्रार्थनम्। तया च वृन्दाचिताभूमौ वपनार्थम् बीजदानन्ततश्च तेभ्यो धात्री मालती तुलसीनामुत्पत्तिस्ताः प्राप्यविष्णुमोहापगमः।

२७—दम्भासुरस्य पुत्रार्थम् तपश्चरणम्। तत्तपस्तुष्टविष्णुप्रसादात्तस्य शङ्खचूडाख्यपुत्रोत्पत्तिः।

२८—शङ्खचूडस्य तपश्चरणम् ब्रह्मनिदेशात्तुलस्या सह विवाहश्च।

२९—शङ्खचूडवधोपक्रमे तद्राज्यकरणवर्णनपूर्वकम् तत्पूर्वभववृत्ताभिधानम्।

३०—त्वदृते दक्षशङ्खचूडस्य वधोऽसम्भाव्य इति हरिब्रह्मप्रमुखदेवैः शिवस्तुतिकरणम्।

३१—शङ्खचूडवधार्थम् याचमानेभ्यो देवेभ्यः शिवोपदेशः।

३२—देवेभ्यो राज्यम् देहिनो चेद्युध्यस्वेति शङ्खचूडसविधम् शिवेन पुष्पदन्तदूतप्रेषणम्।

३३—वीरभद्रनन्दिकाल्यष्टभैरवाद्यनेक शिवगणानाम् तत्सैन्य संख्याभिधानपुरस्सरम् युद्धयात्रावर्णनम्।

३४—भार्याम् तुलसीम् समाश्वास्य पुत्रे राज्यम् समर्प्य शङ्खचूडस्य युद्धयात्रोपक्रमः।

३५—मरीचि पुत्र कश्यपाद्दानवोत्पत्तिः। पूर्वदेवास्त इत्यादिकुलीनताप्रकटनपुरस्सरम् जातिभिर्युद्धमनर्थहेतुरित्यादिशिवोपदेशो दूतम्प्रति देवाः सदैव स्वकार्यसाधकास्तैर्योद्धव्यमेवेति शङ्खचूडाशय कथनपूर्वकम् दूतवचनम्।

३६—देवदानवानाम् रोमहर्षणयुद्धवर्णनम्।

३७—शङ्खचूडेन कार्तिकेयादिमहावीराणां निरुपम युद्धवर्णनम्।

३८—ब्रह्मपाशुपतास्त्रप्रयोगपूर्वकम् श्रीकालीचन्द्रचूडयोर्युद्धवर्णनम्।

३९—अशरीरण्या वाचा श्रीशङ्करादृतेऽसम्भावी शङ्खचूडवध इत्युक्ते शिवशङ्खचूडयोरत्युत्कटयुद्धवर्णनम्। कालीभैरवनन्द्यादिद्वारा शङ्खचूडसैनिकानामसंख्यानाम् वधः।

४०—श्रीशिवशङ्खचूडयोस्तुमुले युद्धे धृतनारायणकवचस्य शङ्खचूडस्य वधो नारायणप्रार्थनाम् विना दुर्घट इत्याकाशवाण्याभिहिते शिवेन नारायणप्रार्थनम्। नारा-

यणस्य वृद्धब्राह्मणरूपेण शङ्खचूडाद्वर्मयाच्ञा। शिवद्वारा शङ्खचूडवधश्च।

४१—त्वम् शिला भवेति विष्णवे तुलसी शाप.। तस्याश्च गण्डकी नदीरूपता तयोश्चिर-कालिकः सङ्गमः।

४२—श्रीपार्वतीप्रस्वेदतोऽन्धकस्य जन्मपुत्रार्थम् तपस्य ते हिरण्याक्षाय शिवद्वारा तस्य दानम्। हिरण्याक्षे भूमिमपहृत्य पातालङ्गते वराहरूपिविष्णुना तद्वधपुरस्सरम् भूम्यानयनम्।

४३—हिरण्याक्षे निहते सकोपम् हिरण्यकशिपोर्घोरतपश्चरणम्, तत्तपोभीतदेवानाम् क्षीरसागरशायिविष्णुशरणगमनम्। तेन च तन्दुष्टदैत्यम् हनिष्यामीत्यभयदानम्। कालान्तरे नृसिंहरूपेण तद्वधः।

४४—प्राप्तस्वपितृराज्यस्यान्धकस्य त्रिलोकीविद्रावणम्। पार्वतीलावण्यश्रवणसञ्जात-तृष्णस्य तस्य योगिरूपधारिशिवसमीपे पार्वतीयाच्नार्थम् दूतप्रेषणम्। शम्भोश्च तद्विपरीतोत्तरदानेनान्धकस्य युद्धोद्योगः।

४५,४६—अन्धकासुरशिवसैन्यघोरयुद्धवर्णनम् वीरभद्रादीनाम् युद्धे पराजयः। शिवस्या-धिकबलसम्पादनार्थन्तपश्चरणम्।

४७—अन्धकप्रार्थनया युद्धहतवीराणाम् शुक्रेण सञ्जीविन्योज्जीवनम्।

४८—पिनाकिनिदेशान्नन्दिना दैत्यगुरोर्ग्रहणम् शिवद्वारातन्निगीर्णनमन्धकवधसमये कोलाहलेन शिवशुक्रद्वारा शुक्रनिस्सरणम् तस्मै शिवानुग्रहश्च।

४९—शिवशूलाग्रप्रोतान्धकस्य त्रिसहस्रवर्षपर्यन्तम् तपश्चरणन्तत्कर्मणा प्रीतेन शिवेन तत्सैन्यजीवितप्रदानपूर्वकन्तस्मै गाणपत्यप्रदानम्।

५०—तपस्तुष्टशिवाच्छुक्रस्य सञ्जीवनीविद्यालाभः।

५१—ऊषाचरितवर्णनम्। शिवशिवाविहारवर्णनञ्च।

५२—बाणासुरस्य गर्वोक्त्याचिरात्त्वद्भुजकण्डूनिवृत्तिर्भविन्नीति शिवोक्तिः तत. श्रीगौरी-प्रेषितसख्यानीताऽनिरुद्धेन सहोषारतिश्चित्रलेखासाहाय्येनानिरुद्धस्य पुनस्तदन्तः पुरे ऊषाविहारः।

५३—कन्यान्त.पुरदूषकस्यानिरुद्धस्य निग्रहार्थम् ससैन्यबाणासुरस्य वोरयुद्धवर्णनम्। तस्या मानुषम् कर्म्मविलोक्यतद्वधाय स्वमन्त्रिणे निर्देशो नभोवाण्या तन्निवारणम्। नागपा-शैस्तद्बन्धनम् निरुद्धस्तवेन काल्यानागपाशच्छेदोऽनिरुद्धस्य चोपयासुखेन विहारः।

५४,५५—अनिरुद्धेऽदर्शनम् याते तन्मात्रादीनाम् चिन्तानारदानुग्रहादवगतवृत्तस्य श्री-कृष्णस्य तदानयनाय पातालगमनन्तत्रबाणेनातिभयङ्करयुद्धम् शम्भुसनाथस्य तस्य पराजयेऽमोघवीर्यत्वम् शिवानुग्रहात्पुनस्तस्य भुजराजिकृन्तनपूर्वकम् परा-जयकरणम्। ऊषानिरुद्धयोर्विवाहो द्वारकागमनञ्च।

५६—रणे स्वमानभङ्गसञ्जातनिर्वेदस्य बाणासुरस्य शम्भुप्रेषितनन्दिना सान्त्वनम् बाणस्येशप्रीतये नृत्यकरणन्ततो हृष्टशिवेन तस्मैगाणपत्यप्रदानम्।

५७—महिषासुर पुत्रगजासुरस्य महेश्वरद्वारा वधस्तदाख्यया कृत्तिवासेश्वरलिङ्गस्थापनम्। तत्कृत्तिवसनधारणञ्च।

५८—दुन्दुभिनिर्ह्राददैत्यवधाय धृतव्याघ्ररूपिणः स्मरहरस्य मुनिप्रार्थनया व्याघ्रेशाख्य लिङ्गे तत्रैवावस्थानम् ।

५९—गौरीद्वारा विदलोत्पलदैत्यवधवर्णनम् ।

(३) शतरुद्रसंहिता

१—शौनकस्य शिवावतारजिज्ञासायाम् सद्योजातवामदेवतत्पुरुषा घोरेशभेदेन क्षेत्र-सर्वज्ञत्वादिव्यवहारप्रदर्शनार्थम् सूतस्य तद्वर्णनम् ।

२—शर्वभवरुद्रादिभेदेन शम्भोरष्टमूर्तीनामभिधानम् तत्तत्कार्य्यप्रदर्शनञ्च ।

३—द्वन्द्वज प्रजासिसृक्षुब्रह्मतपश्चरणप्रीतशिवस्य शरीरादर्द्धनारीश्वरप्रादुर्भावः । शिवाज्ञया प्रजापतिसङ्कल्पसिद्धये ब्रह्मणेभवान्या नारीसृष्टिशक्तिप्रदानपूर्वकम् दक्षगृहेऽवतरणम् ।

४—प्रथमे द्वापरे श्वेतमुनिरूपेण शम्भोरवतारग्रहण श्वेतश्वेतशिखादिमुनीन्प्रति ध्यान-प्रशंसा, एवम् द्वितीयादिनवमद्वापरपर्यन्तन्तत्तद्रूपेण शम्भोरवतारवर्णनतत्तच्छि-ष्योपदेशपूर्वकमन्ते संक्षेपेण भद्रायुश्चरितम् ।

५—दशमाद्यष्टाविंशति द्वापरपर्यन्तन्तत्तन्मुनिरूपेण श्रीशिवावतारतच्छिष्यनामादि-कथनम् ।

६—पुत्रकामस्य शिलादमुनेर्दुष्करतपश्चरणपूर्वकम् श्रीशिवात्मकायोनिजनन्दीश्वर पुत्र प्राप्तिस्तस्याल्पायुर्योगज्ञानात्परितापो नन्दीश्वरस्य तपश्चर्यार्थम् वनगमनञ्च ।

७—तपः प्रतीतान्महेश्वराद्नन्दीश्वरस्य गणाधिपत्वप्राप्तिर्विवाहवर्णनम् शिवभक्तिवर-प्राप्तिश्च ।

८—अहमेव सर्वेश्वरो न कश्चिन्मत्तोऽधिक इति ब्रह्मगर्वनाशाय कालभैरवापरनामक-रुद्रावतारवर्णनम् ।

९—भैरवस्य त्रिलोकी तीर्थभ्रमणेऽप्यनपगतविधिशिरच्छेदजब्रह्महत्या काश्याम् कपाल-मोचनतीर्थे सद्योविलयगतेति कपालमोचनतीर्थस्य सर्वश्रेष्ठत्वोक्तिः ।

१०—नृसिंहस्य चरितवर्णने तदुग्ररुड्ज्वाला सन्तप्तजगत्त्रयी रक्षणोपाय प्रश्नार्थम् समा-गतदेवानुद्दिश्य तद् खोपशमाय श्रीमहादेवस्य प्रतिवचनम् ।

११—श्रीमहादेवाज्ञया द्दसनृसिंहोपशमाय गणाग्रथवीरभद्रस्य तदुपकण्ठ आगत्य ससाम निवेदनेऽपि नृसिंहगर्वानपगमात्कोपप्रकाशनम् ।

१२—शम्भोश्शरभावतार प्रसङ्गे द्दसनृसिंहशिरच्छेदस्तत्कृत्तिवसनेन च तस्य कृत्तिवासा इति सोपपत्तिकनामकथनम् ।

१३—अत्युग्रतपोनिरतविश्वानराख्यमुनिम् प्रतिशुचिष्मत्याम् स्वपत्न्याम् गृहपतिनाम्ना पुत्रतामेष्यमिति शम्भोः प्रतिज्ञा ।

१४—गृहपत्यवतारसमये विष्ण्वादिदेवानामागमनम् । विहितोपनयनादिसंस्कारस्य तस्य नारदेनाल्पायुष्याभिधानम् ।

१५—अकालमृत्युच्छिदे गृहपतेस्तपश्चरणम् । शक्ररूपेण शम्भुना तत्परीक्षणम् । स्वात्मनि तद्दृढप्रेमावलोकनात्सपरितोषम् तस्मा अग्निपदवीप्रदानम् ।

१६—समुद्रमथनोद्भूतसुधासन्तृप्तदृप्तदेवमदापहाराय शम्भोर्यक्षेश्वरावतारवर्णनम् ।

१७—शम्भोः सशक्तिकमहाकालतारादिदशावतारवर्णनम् ।

१८—दैत्योपद्रुतदेवरक्षाकामकश्यपतप.परितुष्टशिवस्य सर्वतस्सुररक्षायैकपाल्याद्यैकादशरुद्रावतारधारणम् ।

१९—पुत्रकामस्यात्रेः सर्वश्रेष्ठदेवतपश्चरणम् । ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाया देवत्रय्यावरम् याचस्वेति तदन्तिकमागमनम् । तदंशेभ्यश्चन्द्रदत्तात्रेयदुर्वाससामुद्भवो । दुर्वाससोऽम्बरीपादीनान्धर्मपरीक्षावर्णनञ्च ।

२०—मोहिनीरूपमुग्धस्य हरस्य मन. क्षोभाद्वीर्यच्युतिः । सप्तर्षिद्वारा गौतमसुतायामञ्जन्याम् श्रवणद्वारातस्याऽऽधानम् । ततश्च यथावसरम् हनूमज्जनिः । हनूमतः सूर्यादध्ययनम् । तन्निदेशेन च तस्य सुग्रीवोपकण्ठम् गमनम् । सीतान्वेष्णादि श्रीरामकार्यकरणादि च ।

२१—भैरवाय मनुजो भवेति गिरिजाया. शापदानम् ।

२२—समुद्रसञ्जातदिव्यनारीभिः पातालेविष्णोर्विहरणम् । चिरायैवम् विष्ण्वासक्तिमालोक्य महेशस्य तद्बोधनाय वृषरूपधारणञ्च ।

२३—अतुलबलवृषरूपेण शिवेन विष्णुपुत्राणाम् युद्धेनाशे विष्णुशम्भुयुद्धे विष्णोः पराजये शिवाज्ञया तस्य स्वलोकगमनम् ।

२४—दधीचमुनिपत्न्याम् शम्भोः पिप्पलादावतारवर्णनम् ।

२५—पिप्पलादस्यानरण्यसुतया सह विवाह. । तत्प्रसङ्गे पिप्पलादीनांस्मरणे शनिकृतपीडाविनाशवर्णनम् ।

२६—महानन्दावेश्याभक्तिसमाकृष्टचित्तस्य शम्भोर्वैश्यानाथाह्वावतारवर्णनम् ।

२७—द्विजेशाह्वशिवावतारप्रसङ्गे भद्रायुर्नृपभक्तिपरीक्षा तस्मा आयुपोन्ते स्वलोकप्राप्तिवरदानञ्च ।

२८—सभार्याहुकभिल्लस्य भक्त्या तुष्टेन शिवेन यतिरूपेण परीक्षणम् । परीक्षितायाआहुकायै जन्मान्तरे त्वम् विदर्भराजतनया आहुकश्च नलोऽहञ्च भवत्प्रीतिकरो हंसो भविष्यामीतिवरदानम् ।

२९—इक्ष्वाकुवंश्यनभगचरित्रवर्णनप्रसङ्गे कृष्णदर्शनशिवावतारवर्णनम् ।

३०—स्वावज्ञया शक्रं जिघांसोः शिवस्य प्रणिपातपुरस्सरङ्गुरो. प्रार्थना प्रतीताद्य तस्मात्तद्दर्शनपूर्वकमिष्टलाभ., इन्द्रञ्जीवयेति गुरुनिर्बन्धेनेश्वरेणेन्द्रजीवनम् गुरवे च जीव इति संज्ञा च प्रददे ।

३१—विदर्भेशसत्यरथराज्ञः सङ्ग्रामे शत्रुभि. पराभवे जाते अन्तर्वत्न्याः तत्पत्न्याः गृहान्निर्गताया मार्गे सुतजननोत्तरकाले निधनम् । जातमात्रस्यापत्यस्य रक्षार्थम् भिक्षुरूपशम्भुप्रेरणया कस्याश्चिद्विधवा ब्राह्मण्या आगमनम् । तद्बालरक्षा चेत्यादिप्रसङ्गेन शिवस्य भिक्षुवर्यावतारवर्णनम् ।

३२—क्षीरार्थम् तपस्यत उपमन्योः शक्ररूपिशम्भुकृतपरीक्षणम् । कृतपरीक्षाय तस्मैदधिदुग्धादिसमुद्रदानाद्यनेकवरप्रदानपूर्वकम् स्वगणपपदवितरणञ्च ।

३३—श्रीशिववरप्राप्तये तपस्यन्त्याः शिवाया ब्रह्मचारिरूपेण तस्या भावपरीक्षणम् ।

३४—पार्वतीप्राप्तीच्छया हिमवद्गृहे शम्भोः सुनर्तकरूपेणात्यद्भुतलीला प्रदर्शनपुरस्सरम् तस्यायाच्ना ।

३५—अज्ञातकुलशीलाय शिवाय पार्वतीप्रदानन्नसाम्प्रतमिति मतिन्दातुम् हिमवत्पार्श्वे साधुद्विजरूपिशिवगमनम् ।

३६—पुत्रार्थमत्युग्रतपश्चरतो द्रोणस्य पत्न्यामश्वत्थामरूपेण शम्भोरवतारवर्णनम्पाण्डवैः सहयुद्धविवरणञ्च ।

३७—द्वैतवनस्थपाण्डवानामन्तिके तदनिष्टाय दुर्योधनेन दुर्वाससः प्रेषणम् । कृष्णकृपया तदुद्धारे जाते व्यासस्य तदन्तिके गमनम् । शैवास्त्रप्राप्तये चेन्द्रकीलपर्वतेऽर्जुन-प्रेषणम् ।

३८—व्यासेनार्जुन विरहव्यातर पाण्डवाश्वासनमर्जुनतपस्तेजसोऽसहनेनेन्द्रकीलरक्षका-णामिन्द्रसमीपे तद्वृत्तवर्णनमिन्द्रस्यार्जुनपरीक्षापूर्वकम् भगवतः शिवस्याराधने तन्नियोजनम् ।

३९—तपस्यदर्जुनवधाय दुर्योधनेन शूकररूपिमूकाख्यदैत्यप्रेषणम् । श्रीशिवेनार्जुनरक्षायै धृतभिल्लपतिवेषेणार्जुनबाणपातसमकालमेव मूकवधः कृतः ।

४०—युगपन्मुक्तशरयोर्हतशूकरयोः शिवार्जुनयोरहमेव विजय्यहमेवविजयीति विवादः ।

४१—भिल्लराजरूपिशिवस्यार्जुनेन युद्धमर्जुनाय शिववरदानन्तस्य च गृहे प्रत्यागमनम् कृष्णदर्शनञ्च ।

४२—श्रीशम्भोर्द्वादशज्योतिर्लिङ्गावतारवर्णनम् ।

(४) कोटिरुद्रसंहिता

१—शिवलिङ्गमाहात्म्यवर्णने द्वादशज्योतिर्लिङ्गवर्णनम् ।

२—काशीस्थलिङ्गानाम् नामाऽनुकीर्त्तन पूर्वकतन्माहात्म्यकथनम् ।

३—अत्रीश्वरकथाऽनुवर्णनेऽनावृष्टौ सपत्नीकात्रितपोवर्णनम् ।

४—अनसूयातपस्तुष्टा गङ्गा तदाश्रमे न्युवास । वरदित्सयोपस्थितम् शिवम् प्रति भवताऽचैव स्थातव्यमिति सपत्नीकात्रिवरयाचनम् ।

५—नन्दिकेशमाहात्म्यवर्णने कश्चिद्द्विजोऽर्भकाम्याम् प्रियाम् समर्प्य काशीम् गतो मृतश्च । ततो ज्येष्ठपुत्रोमृतमात्रस्थि काशीम् निनीपन्प्रस्थितो रात्रिमुखे कस्य चिद्द्विजस्य भवनेन्युवासेति वर्णनम् ।

६—गृहेशपुत्रवधेन कृष्णत्वमाप्तया गवा सहोपनन्दिकेशम् नर्मदातटम् प्राप्य तत्र स्नानेन पुनः शुक्लाम् गामवलोक्य विस्मयमानो व्रजन्गाङ्गया वोधित. स्वमात्रस्थि-नर्मदायाम् प्रक्षिप्य दिव्यरूपामम्बाम् स्वर्यान्तीमवलोक्यगृहम् निवृत्तः पुत्रः ।

७—वालविधवाम्टपिकन्यकाम् तप. प्रवृत्ताम् स्मराकृष्टमनसा मूढनाम्नाऽसुरेण पीड्य-मानाम् रिरक्षिपु· शिव आविर्भूय दैत्यम् जघाना सर्वे देवा गङ्गा च तदा तत्र समागता. पश्चात्प्रतिवर्पम् वैशाखसितसप्तम्याम् गङ्गा तत्र प्रयातीति वर्णनम् ।

८—गोकर्णक्षेत्रस्थमहाबलाख्यशिवलिङ्गमाहात्म्यवर्णनम् ।

९—सौमिनी द्विजकन्या व्यभिचारत्यक्ता शूद्रपत्नी भूत्वा गोवत्सम् हत्वा जन्मान्तरे जन्मान्धा चाण्डालकन्या भूत्वा गोकर्णे गत्वा केनापिदत्तम् बिल्वपत्रमसारतया प्रचिक्षेप दैवाच्छिवलिङ्गे तत्पातात्परमपदमवाप ।

१०—गुरुशापाद्राक्षसत्वमाप्तो मित्रसहो राजा मुनिकिशोरदम्पतितः किशोरमभक्षयत् । हत्याविकलमना गौतमोपदिष्टः गोकर्णे स्नात्वा महाबलमभ्यर्च्य तत्पदमवाप ।

११—उत्तरदिक्स्थशिवलिङ्गवर्णने चन्द्रभालपशुपतीशादिवर्णनम् ।

१२—ऋषिशापभूमिपतितशिवलिङ्गदह्यमान भुवनरक्षणाय ऋषिप्रार्थनया पार्वत्या स्वयोनौ लिङ्गधारणे भुवनशान्तिः हाटकेशनाम्ना तल्लिङ्गप्रसिद्धिश्च ।

१३—अन्धक दमनाऽन्धकेश्वरमाहात्म्यवर्णनोत्तरम् वटुकोत्पत्तिकथनम् ।

१४—सप्तविंशति भार्यासु रोहिण्यामेवाधिकस्नेहाद्दक्षेण 'क्षयी भव' इति चन्द्रः शप्तः विध्युपदेशतः षण्मासम् प्रभासे शिवार्चनात्पक्षम् क्षयित्वम् पक्षम् वर्धमानत्वञ्च लेभे सोमेश्वर नाम्ना तज्ज्योतिर्लिङ्गप्रसिद्धिश्च ।

१५—मल्लिकार्जुन द्वितीयज्योतिर्लिङ्गवर्णनम् ।

१६—दूषणदैत्यत्रस्तदैव द्विजार्चनगर्तादुत्पद्य दैत्यम् हत्वा द्विजप्रार्थनया तत्रैव शिवस्तथाविति महाकाल तृतीय ज्योतिर्लिङ्गवर्णनम् ।

१७—चन्द्रसेनराज-श्रीकरगोपबालक-सुखप्रदानादिमहाकालमाहात्म्य वर्णनम् ।

१८—विन्ध्यकथोक्ति पूर्वक ओङ्कारेश्वर-चतुर्थज्योतिर्लिङ्ग वर्णनम् ।

१९—केदारेश्वर-पञ्चमज्योतिर्लिङ्गमाहात्म्य वर्णनम् ।

२०—भीमेश्वर षष्ठज्योतिर्लिङ्गमाहात्म्य निरूपणे कुम्भकर्णपुत्र भीमाऽसुरकृतोपद्रववर्णनम् ।

२१—स्वभक्तम् कामरूपेश्वरमनुगृह्णन् सपरिवारम् भीमाऽसुरम् भस्मसाच्चकारेति भीमेश्वरनाम्ना प्रसिद्धः ।

२२—विश्वेश्वर-सप्तम-ज्योतिर्लिङ्गमाहात्म्यवर्णने काश्यांरुद्रागमनवर्णनम् ।

२३—श्रीकाशी माहात्म्यवर्णनम् ।

२४—त्र्यम्बकेश्वराष्टमज्योतिर्लिङ्गमाहात्म्य वर्णने गौतमऋषि प्रभावनिरूपणम् ।

२५—अनावृष्टौ तपस्तुष्टवरुणवरलब्धगौतमतोयपूर्णगर्तलिप्सयाऽन्यर्षयो गणेशवरतो गोहत्यादोषव्याजतस्सपत्नीकम् गौतमन्निस्सारयामासु । ततो ऋषीणामाज्ञया गौतमस्य पार्थिवेश्वरार्चनप्रवृत्ति. ।

२६—शिवानुग्रहतो गौतमस्य निष्पापत्वम् । गङ्गा त्र्यम्बकेश्वरयोस्सदैव तत्र स्थितिश्च वर्णी ।

२७—गङ्गाकृतगौतमद्वेष्टृष्यनादरः कलरभेदेन गौतमकृत ऋषिषु शापश्च ।

२८—वैद्यनाथेश्वर नवम ज्योतिर्लिङ्गमाहात्म्य वर्णनम् ।

२९—नागेश्वर दशम ज्योतिर्लिङ्गमाहात्म्य वर्णने दारुकावनराक्षसोपद्रव वर्णनम् ।

३०—शिवार्चक सुप्रियाह्ववैश्यम् हन्तुमुद्यतान्राक्षसान्शिवः प्रत्यक्षीभूय पाशुपतास्त्रेण जघान । वीरसेन राज्ञो दारुकावनगमनम् ।

३१—रामेश्वरैकादश ज्योतिर्लिङ्ग वर्णनम् ।

३२—घुश्मेश्वर द्वादश ज्योतिर्लिङ्गमाहात्म्यवर्णने सुदेहासुधर्मचरित निरूपणम् ।

३३—सुदेहानाशितघुश्मापुत्रस्य शिवानुग्रहात्पुनर्जीवनम् । घुश्मेश्वर नाम्ना शिवलिङ्ग-प्रसिद्धिश्च ।

३४—दैत्यपीडित सुराणाम् दुःखनिवृत्यै शिवमाराध्य ततस्सुदर्शनचक्रम् लब्ध्वा दैत्याञ्जघान विष्णुः ।

३५—शिवसहस्रनाम वर्णनम् ।

३६—शिवसहस्रनाम स्तोत्रफल निरूपणम् ।

३७—देवर्षिनृपशैवत्व वर्णनम् ।

३८—शिवरात्रिव्रतमहिमा निरूपणम् ।

३९—शिवरात्रिव्रतोद्यापन निरूपणम् ।

४०—व्याधकथा प्रसङ्गेन शिवरात्रि माहात्म्य वर्णनम् ।

४१—मुक्तिनिरूपणम् ।

४२—शिवसगुण-निर्गुणभेद वर्णनम् ।

४३—ज्ञाननिरूपणम् शिवविज्ञानफल निरूपणञ्च ।

(५) उमा-संहिता

१—पुत्रार्थम् कैलासम् गतस्य कृष्णस्य उपमन्युनामर्षिणा संवादः ।

२—उपमन्योः कृष्णम् प्रति शिवभक्ति निरूपणम् ।

३—तपस्तुष्टयोः शिवयोः कृष्णायाभीष्टवरप्रदानम् । दाशरथये च वरप्रदानम् । तेन रावणम् जित्वा जानक्युपलब्धिः ।

४—शिवमाया प्रभाव वर्णनम् ।

५—सनत्कुमारेण व्यासम् प्रति महापातकान्यवर्णिषत ।

६—पापभेदनिरूपणम् ।

७—यमलोकमार्ग यमदूत स्वरूपवर्णनम् ।

८—नरकभेद निरूपणम् ।

९—नरकयातना वर्णनम् ।

१०—नरकविशेष दु ख वर्णनम् ।

११—दानप्रभावाद्यमपुर दु.खाभावस्य निरूपणमन्नदान विशेष माहात्म्य वर्णनञ्च ।

१२—जीवतर्पण माहात्म्यवर्णन पुरस्सरम् तपोमाहात्म्य वर्णनम् ।

१३—पुराणमाहात्म्य निरूपणम् ।

१४—दानमाहात्म्य दानभेद वर्णनम् ।

१५—ब्रह्माण्डवर्णने पाताललोक निरूपणम् ।

१६—केनकेन कर्मणा कस्मिन्कस्मिन्नरकवास इत्युत्तरस्य पाप-प्रायश्चित्त वर्णनम् ।

१७—ब्रह्माण्ड वर्णने जम्बूद्वीपवर्ष निरूपणम् ।

१८—भारतवर्षम् संवर्ण्य प्लक्षादिषड्द्वीप वर्णनम् ।

१९—सूर्यादिग्रह स्थितिं निरूप्य जनादि लोक वर्णनम् ।

२०—कृततपसामेव शिवलोक प्राप्तिम् निरूप्य सात्त्विकादि तपोवर्णनपुरस्सरम् मनुष्य-जन्मप्राशस्त्य वर्णनम् ।

२१—तत्तत्कर्मभिस्तत्तद्वर्णे जन्म निरूप्य सङ्ग्राम फल निरूपणम् ।

२२—देहोत्पत्ति वर्णनम् ।

२३—देहाऽशुचित्व बाल्याद्यवस्था दुःख वर्णनम् ।

२४—नारदम् प्रति पञ्चचूडाऽप्सरः कृतस्त्रीस्वभाव वर्णनम् ।

२५—मृत्युकाल ज्ञान वर्णनम् ।

२६—योगिनाम् मृत्युकालवञ्चनमवर्णि ।

२७—कालवञ्चनपुरस्सरम् शिवप्राप्ति वर्णनम् ।

२८—छाया पुरुष दर्शन वर्णनम् ।

२९—आदि सर्ग निरूपम् ।

३०—स्वायम्भुवादि सर्ग वर्णनम् ।

३१—सर्गवर्णने त्वम् क्वापि स्थितिम् मालभस्व तव सान्निध्यात्कलहः स्यादिति नारदाय दक्षस्य शापः ।

३२—कश्यपपत्नीनामपत्यान्यभिहितानि ।

३३—मरुत्तोत्पत्ति वर्णनपूर्वकम् भूतसर्ग वर्णनम् तत्तद्राज्य निरूपणञ्च ।

३४—चतुर्दश मन्वन्तरानुकीर्त्तनम् ।

३५—भास्कर तेजोऽसहमाना संज्ञा स्वच्छायाम् पतिसविधे नियुज्य वडवाभूत्वाऽरण्यम् जगाम । छाया च तत्पुत्रतस्स्वपुत्रेऽधिकम् प्रेम दृष्ट्वा प्रसन्नत्वपृष्टा सर्वमवर्णयत् । सूर्योऽश्वोभूत्वा संज्ञाम् ययाम । ततोऽश्विनीकुमारोत्पत्तिः ।

३६—मनुनवपुत्रवंश वर्णनम् ।

३७—इक्ष्वाकादि मनुवंश वर्णनम् ।

३८—सत्यव्रत त्रिशङ्कु,सगरादि जन्म निरूप्य तत्तच्चरित्र वर्णनम् ।

३९—सगरभार्याद्वयोत्पन्नापत्यैर्वंशविस्तार वर्णनम् ।

४०—पितृश्राद्धप्रभाव वर्णनम् ।

४१—पितृसर्ग वर्णने ससन्याधगति वर्णनम् । श्राद्ध माहात्म्य प्रदर्शनञ्च ।

४२—विगतकल्मष मसन्याधानां दशान्तरे माहात्म्य वंशादि व्यासपूजन प्रकार वर्णनम् ।

४३,४४—सत्यवत्याम् पराशराद्व्यास उत्पद्य तीर्थाटनम् कुर्वन्काश्यांगत्वा व्यासेश्वरम् लिङ्गम् संस्थाप्य मध्यमेश्वरानुग्रहाच्छक्तिम् प्राप्य पुराणानि निर्ममौ ।

४५—देवी चरितवर्णने सुरथराजसमाधिवैश्याभ्यामरिजितराज्यदारादि निस्सारितयोर्नौ कथम् न मोहत्याग इति पृष्टेन मेधसा मधुकैटभसार्यमाणविधिस्तुतका काली प्रादुर्भूय सुप्त विष्णवक्षि तत्याज । विष्णुना च युद्धेऽजले हन्तव्याविति ताभ्याम् वरे लब्धे स्वजघने हताविल्यवर्णि ।

४६—महिषासुर-पीडित-देवानाम् ब्रह्महरिहराणाम् च महसा महालक्ष्मीः प्रादुर्भूय देवेभ्यो भूषाऽऽयुधानि गृहीत्वा महिषम् सञ्जवान ।

४७—शुम्भनिशुम्भ पीडित देवा हिमवति देवीमस्तुवत्, कास्तूयते भवद्भिरिति गौर्य्योक्ते गौरीतनोरुत्पद्य कौशिकी मे स्तुतिः क्रियत इत्यूचे नः कार्यम् साधयिष्ये इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे च । चण्डमुण्डश्रुतदेव्याग्रहणाय शुम्भनिशुम्भप्रेषित धूम्रलोचन-चण्डमुण्ड-रक्तबीजवधोप्यवर्णि ।

४८—सरस्वतीदेव्या समरे शुम्भनिशुम्भौ ससैनावधानिपाताम् ।

४९—उमा प्रादुर्भाव वर्णनम् ।

५०—दशमहाविद्योत्पत्ति निरूप्य दुर्गाऽसुरवधादेव्या दुर्गानाम प्रसिद्धिरवर्णि ।

५१—भगवती ज्ञानक्रियाभक्ति योग वर्णनम् । तत्र प्रतिमास्थापन व्रतकरण निरूपणे नवरात्र व्रत प्राशस्त्यकथनम् ।

(६) कैलास-संहिता

१—कैलास-संहिता प्रवृत्ति हेतु कथनोत्तरम् काशी क्षेत्रे मुनीनाम् व्यासम् प्रति प्रणवार्थ जिज्ञासाऽवर्णि ।

२—एकदाहिमशैलस्थितो हरः मन्त्रदीक्षाप्रदानान्मांकृतार्थाम् कुर्विति प्रार्थयमानामुमाम् कैलासे तथा करिष्यामीत्युक्त्वा गत्वा तत्र पार्वतीम् मन्त्रदीक्षिताम् कृत्वा तया नन्दनवने जगाम । तत्र दिव्य पुष्पभूषितपार्वत्याः साङ्गोपाङ्ग सरहस्योङ्कार विषयकानेक प्रश्न करणम् ।

३—ओङ्कारस्वरूप कथनानन्तरमोम्मन्त्रदीक्षा ग्रहणे विरजाम् होमादि विधिकथनम् ।

४—दीक्षासम्पन्नस्य पूजास्थानगमन-पर्यन्तमाह्निकाचार वर्णनम् ।

५—पूजास्थाने मण्डल-विरचन-प्रकार कथनम् ।

६—आसन प्राणायाम विधान विवरणम् ।

७—ध्यानावाहनार्घ्याचमनादि विधानपूर्वक शिवपूजा वर्णनम् ।

८—पञ्चावरण पूजनक्रम वर्णनम् ।

९—सार्थ शिव नामाष्टक कथनम्, पूजोत्तरम् प्रणवोपदेशग्रहणविधानोक्तिः, ततो लिङ्गपूजाविधि कथनम् । उक्तरीत्या प्रणवग्रहणप्रकार श्रवणाद् देव्याः सन्तोषवर्णम्, सूतस्य ततस्तीर्थयात्रा गमनम् ।

१०—सूतविरहाज्जातदुःखानाम् काशीस्थर्षीणाम् सूतस्य पुनर्दर्शनोत्कठा वर्णनम्, संवत्सरान्ते पुनश्च सूतस्यागमन वर्णनम् ।

११—मुनीनाम् पूर्व सूचित वामदेवोक्तोङ्कारार्थप्रकाश विषयक प्रश्नः, वामदेव प्रोक्त स्कन्दस्तोत्रम्, ततः स्कन्दाद्वामदेवस्य प्रणवार्थ प्राप्त्यादिवर्णनम् ।

१२—ओङ्कारार्थ कथनप्रसङ्गान्नान्दीश्राद्ध ब्रह्मयज्ञादिविधि वर्णनम्, प्रणवार्थश्च साक्षात्सदाशिव इत्यादि कथनम् च ।

१३—प्रणवजपाधिकारार्थम् विरजाहोमप्रकार कथनम् । रात्रौ गायत्रीजप विधानोत्तरम् संन्यासविधानादि वर्णनम् ।

(७) वायवीय-संहिता

पूर्वखण्ड

१७—विधिदेहार्धाच्छतरूपोत्पत्तिर्दक्षादीनाम् चोत्पत्ति वर्णनम् ।

१८—शिवायाः सतीनाम्ना दक्षोदराज्जन्म, दक्षस्य रुद्रद्वेषेकारणम्, शिवद्वेषनिमित्ता-त्सतीदेहत्याग वर्णनञ्च ।

१९—दक्षकृतशिवनिन्दाम् श्रुत्वा दधीचाद्दक्षस्य शाप प्राप्तिः वीरभद्रोत्पत्तिश्च ।

२०—सगणस्य वीरभद्रस्य दक्षयज्ञस्थानगमनम् । तत्कृत दक्षमखविध्वंस वर्णनम् ।

२१—यज्ञस्थानाद्विष्णवादीनाम् गमनम् । अग्न्यादीनाम् च पलायन वर्णनम् ।

२२—दक्षस्य पक्षपाताद्वीरभद्रदेवयोर्मध्ये दारुण सङ्ग्रामः । तत्र वीरभद्रकृत देवादीनाम् विरूपकरणस्य वर्णनम् ।

२३—पराभूतदेवैः कृतया स्तुत्या प्रसन्नाच्छिवान्मख सन्धान देवसान्त्वन शिवान्त-र्धानादि कथनम् ।

२४—ततो मन्दराचले शिवस्य तपोर्थम् गमनम् प्रसङ्गान्मन्दरवर्णनम् च । अत्रान्तरे शुम्भनिशुम्भ दैत्ययोरुत्पत्तिः । विधिप्रार्थनया च तद्वधार्थम् प्रवृत्तयो शिवयो-र्विचित्र लीला प्रपञ्चनम् ।

२५—शिवेन 'काली'त्यभिहिता शिवा तपोऽर्थम् हिमाचलम् जगाम । तत्रोग्रं तपश्चरन्तीम् देवी दैत्यवधेच्छया ब्रह्माऽऽजगाम । तदा कालीम् मां गौरी कुरु, मत्सिंहश्च शिव भक्तो भवत्विति तम् देव्युक्तिः ।

२६—ब्रह्मणा च तथास्त्वित्युक्ते सा सखीभिस्सिंहेन च सह शिवम् द्रष्टुं गता । ब्रह्मापि गौर्याः स्वदेहकोशान्निर्मिताम् कौशिकीम् गृहीत्वा दैत्यवधार्थम् स्वलोकम् जगामेत्यादि वर्णनम् ।

२७—मन्दरे गौरीगतौशिवगणकृतोत्साहवर्णनम् । शिवयोः सम्मेलन प्रसङ्गकथनम् । शिवयाऽऽनीतस्य सिंहस्य शिवप्रसादः ।

२८—विश्वस्यास्य याऽऽग्नीषोमीयता पूर्वोक्ता तस्याः प्रपञ्च. प्रसङ्गाद्ब्रह्मसमहिम वर्णनम् च ।

२९—वागर्था इव चास्य विश्वस्य शिवस्य सम्बन्धः पूर्वोक्तस्तस्य विवरणम् तथा षड्-ध्वस्वरूप कथनम् ।

३०—शिवविचित्र चरित श्रवण नास्तिक्य प्रवृत्त बुद्धि प्रवाहस्य निवर्तनक्षम शिव तत्त्व विषयक ऋषि प्रश्न प्रपञ्चः ।

३१—उत्तरत्वेन वायु प्रोक्तानेकाग्न्यादि दृष्टान्तैर्विशुद्ध शिवतत्व कथनम् ।

३२—मोक्षप्रापक श्रेष्ठधर्म पृच्छानुरोधाच्छैव धर्मानुष्ठानमेवनान्यदित्यादिविवरणम् । तस्य च पञ्चविधत्त्व निरुक्तिः ।

३३—स प्रपञ्च पाशुपत व्रत कथनम् भस्म महिम वर्णनञ्च ।

३४—प्रश्नानुसारेण शिशुत्वेऽप्युपमन्योः शैवागम तत्वज्ञानम् । तस्य पूर्व जन्म व्रत कथनम् । रुद्रकृपया तस्य विभूति लाभश्च ।

३५—उपमन्युतपस्तप्ता देवा. शिवशरणम् प्राप्तास्तदा शक्ररूपशिवेनोपमन्युसमीपम् गत्वा वरम् याचस्वेत्युक्ते बालकेनोक्तम् शिवभक्तिम् विना मम किमपि नेष्टम

तदा शक्ररूपी शिवः शिवनिन्दामकरोत्ताम् श्रुत्वा चोपमन्युस्तम् शप्तुं प्रवृत्त-स्तदा शिवरूपेण तस्य कामवरम् दत्त्वा स्वलोकम् गत इत्यादिवर्णनम् ।

(७) वायवीय-संहिता

उत्तरखण्ड

१—एकदा पुत्रकामनया शिवसन्निधिम् गतस्य श्रीकृष्णस्योपमन्योर्लब्धात्पाशुपताख्यवार्षिकव्रताच्छिवतुष्ट्यासाम्बनामकपुत्रप्राप्ति वर्णनम् ।

२—ऋषिप्रश्नानुरोधात्पाशुपतज्ञानस्य वायुकृत विवरणम् । तत्सम्बन्धादेव पशुपतिम् विना कस्यापि पशोः (जीवस्य) तृणच्छेदनेपि शक्त्यभावात्पशुपति रूपाच्छिवादिम् संसारचक्रम् भ्रमत इत्यादि निरूपणम् ।

३—सर्वस्यास्य जगतः शिवनयत्वात्सर्वेषामभयदानात्सर्वोपकारकरणाच्च पुत्रपौत्रादिप्रीत्यापितृसन्तोषस्तथा शिवस्तुष्यतीत्याद्युपमन्योः कृष्णम् प्रत्युपदेशः ।

४—श्रीकृष्णकृतप्रश्नस्योत्तरत्वेन चन्द्रचन्द्रिकावदिदम् विश्वम् गौरीशङ्कराधिष्ठितमित्युपमन्युकृतविवरण वर्णनम् ।

५—विश्वस्यास्य वस्तुतः शिवस्वरूपत्वे पाशसामर्थ्यात्पशवो जीवा 'एकम् तम् बहुधा वदन्ति' इत्यस्योपमन्युकृतविस्तारकथनम् ।

६—यथा जीवानाम् मायाऽऽहङ्कारादिबन्धास्तथा शिवस्य नेत्यादिसविस्तरप्रतिपादनम् ।

७—यथा वह्नेः सकाशादनेके स्फुलिङ्गा उत्पद्यन्ते लीयन्ते च तथा शिवादनन्ताः शक्तय उत्पद्यन्ते विलयम् प्राप्नुवन्तीत्येवम् प्रकारेण शक्तिस्वरूपकथनम् । तासाम् च सम्यग्ज्ञानाच्छिवभक्त्या च शिवतत्त्वज्ञानप्राप्तिरित्यादि प्रपञ्चनम् ।

८—वेदान्तज्ञानाधीनम् शिवतत्वज्ञानम् । बुद्धिहीनानाम् नेति च यदुक्तम् तत्प्रसङ्गादादौ व्यासावतारकथनम् ।

९—युगेयुगे शिवस्य योगावतार वर्णनम् ।

१०—गौरीम् प्रति ससाधनाया. शिवभक्तेः स्वरूपफलादि प्रकार कथनम् ।

११—ब्राह्मणानाम् तदितरभक्तानामधिकारिणाम् च धर्मप्रपञ्चनम् ।

१२—'नमः शिवाय' इति पञ्चाक्षरमन्त्रमाहात्म्यकथनम् ।

१३—कलिकलुषित कालेपि श्रद्धायुक्तपञ्चाक्षर मन्त्रानुष्ठानाच्छिवसालोक्यप्राप्तिरित्यादिकथनम् ।

१४—पञ्चाक्षरमन्त्रजपविधानकथनम् ।

१५—शिवदीक्षाविधानकथनम् तत्प्रसङ्गाद्गुरुमाहात्म्य वर्णनम् च ।

१६—शिवदीक्षायाम् शिष्यसंस्कारविधानकथनम् ।

१७—गुरोः शिष्ययोग्यताविचारणायाम् षडध्वविज्ञानविचारणावश्यम् कार्येत्यभिधाय तत्प्रसङ्गेन षडध्वलक्षणप्रपञ्चनम् दीक्षादान प्रकार कथनञ्च ।

१८—षडध्वशुद्धितद्विधाननिरूपणम् ।

१९—साधक संस्कार मन्त्र माहात्म्य निरूपणम, तत्र मन्त्र ग्रहण जप प्रकार तत्फलादीन्यभिहितानि ।

२०—शिष्यस्य आचार्यत्वायाभिषेचनस्य प्रकारोभिहित. ।

२१—नित्यनैमित्तिक कर्म कथनम्, तत्र सूर्यपूजा पञ्चयज्ञप्रकारश्चाभिहितः ।

२२—न्यासप्रकार निरुक्तिः, तत्र मातृकान्यासषडङ्गन्यासादिक्रमप्रपञ्चनम् ।

२३—शैवागमोक्त पूजापद्धति व्याख्या कथनम् ।

२४—शैवानाम् लिङ्ग पूजाविधि कथनम् ।

२५—पूजास्योपचाराणाम् प्रत्येकस्य स्वरूपकथनम् ।

२६—महोग्रपातकि कृत शिवलिङ्ग पूजनात्पापनाशो भवत्यन्तः सर्वेषाम् साङ्गोपाङ्ग लिङ्ग पूजायामधिकारोभिहितः ।

२७—अग्निकार्ये कुण्डादि कथनम् । होमद्रव्य संख्यादि कथनम् ।

२८—शिवाश्रमवताम् नैमित्तिक विधि कथनम् ।

२९—शैवशास्त्रोक्तैहिकामुष्मिककाम्यकर्मोक्तिः ।

३०—शैवावरण पूजाक्रमस्तत्फल दर्शनञ्च ।

३१—पञ्चावरण पूजा विषयक शिव महास्तोत्र कथनम् ।

३२—शिवशास्त्रोक्तैहिकफलद पूजा होम जपतपोदानादि कथनम् ।

३३—आमुष्मिक कर्मणः सिद्धि प्रकथनम् ।

३४—नित्यादिकर्मणाम् लिङ्गवरे प्रतिष्ठ्या सिद्धिस्तत्प्रतिष्ठाविधिश्च ।

३५—लिङ्गरूपधारिणा शिवेन विधि विष्णुमोहोऽन्यवर्त्ति तदारभ्य लिङ्गपूजा प्रवृत्तिः ।

३६—सपरिकर लिङ्ग प्रतिष्ठापन विधान वर्णनम् ।

३७,३८—योगमार्ग वर्णनम् ।

३९—शिवध्यान योगस्य वर्णनम् । तद्भेदानाम् स्वरूपादि वर्णनम् च ।

४०—नैमिषेयर्षि यात्रा वर्णनम् । तत्र काश्यामाकाशस्थतेजः पुञ्जे प्रविशत्तो नवलोच्य साशङ्कर्षीणाम् ब्रह्मणोऽन्तिकम् गत्वा प्रश्नः । तच्छैवम् तेज भवद्भ्योऽप्युपलप्स्यत इत्यसूचीति विधि नाम्यधायीति ।

४१—स्कन्द सरस्सविधमागत्य ऋषिभ्यश्शैवम् ज्ञानम् दत्वा शिवसन्निधौ जगाम । नन्दीत्युक्त्यनन्तरम् शिवपुराणमाहात्म्य निरूपणम् ।

उपर्युक्त विषयसूची उस शिवमहापुराणकी है जिसमें २४००० श्लोक पाये जाते हैं। जिस पोथीसे यह विषयसूची ली गयी है उसमें भियुरा ग्रामवासी पं० रामनाथ शैव ग्रन्थ-विशारदने सन्देह-भेदिका नामकी एक भूमिका दी है। उसमें लिखा है कि शैव महापुराण दो प्रकारके हैं। एकमें १ लाख श्लोक हैं और दूसरेमें २४,०००। १ लाख श्लोकवाले महापुराणमें (१) विद्येश्वर, (२) रौद्र, (३) वैनायक, (४) औम, (५) मातृपुराण, (६) एकादश-रुद्र, (७) कैलास, (८) शतरुद्र, (९) कोटिरुद्र, (१०) सहस्रकोटिरुद्र, (११) वायवीय और (१२) धर्म, यह बारह संहितायें हैं। विद्येश्वर-संहितामें १०,००० श्लोक हैं। रौद्र, वैनायक, औम, मातृक इन चारोंमेंसे हरएकमें ८,००० श्लोक हैं। एकादश रुद्र-संहितामें १३,०००

श्लोक हैं। कैलास-संहितामें ६००० श्लोक हैं। शतरुद्र-संहितामें ३००० हैं। कोटिरुद्र-संहितामें ९००० हैं। सहस्रकोटि रुद्र-संहितामें ११,००० हैं। वायवीय-संहितामें ४००० हैं और धर्मपुराणमें १२,००० श्लोक हैं। इस प्रकार सब मिलाकर १ लाख श्लोक हुए। यह १ लाख श्लोक भगवान् शङ्करके रचे हुए हैं। विद्येश्वर-संहितामें दूसरे अध्यायके उपक्रम और उपसंहारमें लिखा है कि इसी लक्षश्लोकात्मक महापुराणमेंसे व्यासजीने संक्षेप करके सात संहिताओंवाला ग्रन्थ २४,००० श्लोकोंवाला चौथा शैवपुराण रचा। (१) विद्येश्वर-संहिता, (२) रौद्र-संहिता, (३) शतरुद्र-संहिता, (४) कोटिरुद्र संहिता, (५) उमा-संहिता (६) कैलास-संहिता और (७) वायवीय-संहिता।

विश्वकोषकारके मतसे वायुपुराण और शिवपुराण प्रायः एक ही ग्रन्थके दो नाम हैं। दोनोंमें एक ही विषय है दोनोंका आरम्भ ज्ञान संहितासे होता है, जिसका बम्बईवाली पोथीमें अभाव है। ज्ञान-संहिता और सनत्कुमार-संहिता यह दोनों प्रस्तुत पोथीमें नहीं मिलते। साथ ही हमारे सामने आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलीका ४९ वां ग्रन्थ वायुपुराण मौजूद है, जिसकी विषयसूची शिवपुराणकी दी हुई सूचीसे सर्वथा भिन्न है। इससे स्पष्ट होता है कि वायुपुराण और शिवपुराण अलग-अलग ग्रन्थ हैं। अन्य पुराणोंमें शिवपुराणकी श्लोक-संख्या भी २४,००० दी हुई है और यही संख्या वायुपुराणकी भी है। परन्तु वायुपुराणकी जो पोथी हमारे सामने है उसमें श्लोक-संख्या १०,९९१ है। भगवान् शङ्करके चरित उन्हींके सम्बन्धके इतिहास और कथायें शिवपुराणकी विशेषता है, परन्तु इस वायुपुराणकी नहीं।

१९—साधक संस्कार मन्त्र माहात्म्य निरूपणम, तत्र मन्त्र ग्रहण जप प्रकार तत्फलादीन्यभिहितानि ।

२०—शिष्यस्य आचार्यत्वायाभिषेचनस्य प्रकारोभिहितः ।

२१—नित्यनैमित्तिक कर्म कथनम्, तत्र सूर्यपूजा पञ्चयज्ञप्रकारश्चाभिहितः ।

२२—न्यासप्रकार निरुक्तिः, तत्र मातृकान्यासषडङ्गन्यासादिक्रमप्रपञ्चनम् ।

२३—शैवागमोक्त पूजापद्धति व्याख्या कथनम् ।

२४—शैवानाम् लिङ्ग पूजाविधि कथनम् ।

२५—पूजास्थोपचाराणाम् प्रत्येकस्य स्वरूपकथनम् ।

२६—महोग्रपातकि कृत शिवलिङ्ग पूजनात्पापनाशो भवत्यन्तः सर्वेषाम् साङ्गोपाङ्ग लिङ्ग पूजायामधिकारोभिहितः ।

२७—अग्निकार्ये कुण्डादि कथनम् । होमद्रव्य संख्यादि कथनम् ।

२८—शिवाश्रमवताम् नैमित्तिक विधि कथनम् ।

२९—शैवशास्त्रोक्तैहिकामुष्मिककाम्यकर्मोक्तिः ।

३०—शैवावरण पूजाक्रमस्तत्फल दर्शनञ्च ।

३१—पञ्चावरण पूजा विषयक शिव महास्तोत्र कथनम् ।

३२—शिवशास्त्रोक्तैहिकफलद पूजा होम जपतपोदानादि कथनम् ।

३३—आमुष्मिक कर्मणः सिद्धि प्रकथनम् ।

३४—नित्यादिकर्मणाम् लिङ्गवरे प्रतिष्ठया सिद्धिस्तत्प्रतिष्ठाविधिश्च ।

३५—लिङ्गरूपधारिणा शिवेन विधि विष्णुमोहोऽन्यवर्त्ति तदारभ्य लिङ्गपूजा प्रवृत्तिः ।

३६—सपरिकर लिङ्ग प्रतिष्ठापन विधान वर्णनम् ।

३७,३८—योगमार्ग वर्णनम् ।

३९—शिवध्यान योगस्य वर्णनम् । तद्भेदानाम् स्वरूपादि वर्णनम् च ।

४०—नैमिषेयर्षि यात्रा वर्णनम् । तत्र काश्यामाकाशस्थतेजः पुञ्जे प्रविशतो ऽनवलोच्य साशङ्कर्षीणाम् ब्रह्मणोऽन्तिकम् गत्वा प्रश्नः । तच्छैवम् तेज' भवद्भ्योऽप्युपलप्स्यत इत्यसूचीति विधि नाभ्यधायीति ।

४१—स्कन्द सरस्सविधमागत्य ऋषिभ्यश्शैवम् ज्ञानम् दत्वा शिवसन्निधौ जगाम । नन्दीत्युक्त्यनन्तरम् शिवपुराणमाहात्म्य निरूपणम् ।

उपर्युक्त विषयसूची उस शिवमहापुराणकी है जिसमें २४००० श्लोक पाये जाते हैं। जिस पोथीसे यह विषयसूची ली गयी है उसमें भियुरा ग्रामवासी पं० रामनाथ शैव ग्रन्थ-विशारदने सन्देह-भेदिका नामकी एक भूमिका दी है। उसमें लिखा है कि शैव महापुराण दो प्रकारके हैं। एकमें १ लाख श्लोक है और दूसरेमें २४,००० । १ लाख श्लोकवाले महापुराणमें (१) विद्येश्वर, (२) रौद्र, (३) वैनायक, (४) औम, (५) मातृपुराण, (६) एकादश-रुद्र, (७) कैलास, (८) शतरुद्र, (९) कोटिरुद्र, (१०) सहस्रकोटिरुद्र, (११) वायवीय और (१२) धर्म, यह बारह सहितायें हैं। विद्येश्वर-सहितामें १०,००० श्लोक हैं। रौद्र, वैनायक, औम, मातृक इन चारोंमेंसे हरएकमें ८,००० श्लोक हैं। एकादश रुद्र-संहितामें १२,०००

श्लोक हैं। कैलास-संहितामें ६००० श्लोक हैं। शतरुद्र-संहितामें ३००० हैं। कोटिरुद्र-संहितामें ९००० हैं। सहस्रकोटि रुद्र-संहितामें ११,००० हैं। वायवीय-संहितामें ४००० हैं और धर्मपुराणमें १२,००० श्लोक हैं। इस प्रकार सब मिलाकर १ लाख श्लोक हुए। यह १ लाख श्लोक भगवान् शङ्करके रचे हुए हैं। विद्येश्वर-संहितामें दूसरे अध्यायके उपक्रम और उपसंहारमें लिखा है कि इसी लक्षश्लोकात्मक महापुराणमेंसे व्यासजीने संक्षेप करके सात संहिताओंवाला ग्रन्थ २४,००० श्लोकोंवाला चौथा शैवपुराण रचा। (१) विद्येश्वर-संहिता, (२) रौद्र-संहिता, (३) शतरुद्र-संहिता, (४) कोटिरुद्र संहिता, (५) उमा-संहिता (६) कैलास-संहिता और (७) वायवीय-संहिता।

विश्वकोषकारके मतसे वायुपुराण और शिवपुराण प्रायः एक ही ग्रन्थके दो नाम हैं। दोनोंमें एक ही विषय है दोनोंका आरम्भ ज्ञान संहितासे होता है, जिसका बम्बईवाली पोथीमें अभाव है। ज्ञान-संहिता और सनत्कुमार-संहिता यह दोनों प्रस्तुत पोथीमें नहीं मिलते। साथ ही हमारे सामने आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलीका ४९ वां ग्रन्थ वायुपुराण मौजूद है, जिसकी विषयसूची शिवपुराणकी दी हुई सूचीसे सर्वथा भिन्न है। इससे स्पष्ट होता है कि वायुपुराण और शिवपुराण अलग-अलग ग्रन्थ हैं। अन्य पुराणोंमें शिवपुराणकी श्लोक-संख्या भी २४,००० दी हुई है और यही संख्या वायुपुराणकी भी है। परन्तु वायुपुराणकी जो पोथी हमारे सामने है उसमें श्लोक-संख्या १०,९९१ है। भगवान् शङ्करके चरित उन्हींके सम्बन्धके इतिहास और कथायें शिवपुराणकी विशेपता है, परन्तु इस वायुपुराणकी नहीं।

इकतीसवाँ अध्याय

श्रीमद्भागवत महापुराण

श्रीमद्भागवत महापुराणकी विषयसूची इस प्रकार है—

प्रथमः स्कन्धः

१—दुष्टकलेरागमनम् ज्ञात्वा तत्तरणोपायम् शौनकादय. सूतम् पप्रच्छुः ।

२—एकाग्रमनसा भगवत्कथा श्रवण कीर्तनमेव कलेर्निस्तरणोपाय इति निर्णीतम् ।

३—भगवतः पुरुषाद्यवतारास्तच्चरितम् च संक्षेपेण दर्शितम् भागवतार्कोदयश्च ।

४—आम्नायविभागसदर्थप्रकाशनाय भारतादिपुराणकरणेनाऽपि व्यासस्यापरितोषः ।

५—नारदम् प्रति व्यासेन चित्तापरितोषकारणे पृष्टे भगवद्गुणवर्णनाप्राचुर्यम् कारण-मुपदिष्टम् तेन ।

६—व्यासप्रत्ययार्थमात्मनः पूर्वजन्मचरितम् कृष्णकथोद्भवम् नारदेन दर्शितम् ।

७—भागवतश्रोतृ परीक्षिज्जन्मप्रस्तावे सुप्त द्रौपदीपुत्रवधादि चौरकृत्यमश्वत्थाम्नः कथितम् ।

८—अश्वत्थाम्नोऽस्त्रात्परीक्षिद्रक्षणम् कृष्णेन । तत्स्तुतिश्च कुन्त्याकृता ।

९—धर्मस्य शोके तच्छान्त्यर्थम् भीष्मसन्निधिगमनम् तेन तच्छोकापनोदस्तन्नि-र्याणम् च ।

१०—युधिष्ठिरस्य राज्याभिषेकानन्तरम् भगवतो द्वारकागमनम् ।

११—भगवतो द्वारका प्रवेशस्तदैश्वर्यकथनम् ।

१२—द्रौण्यस्त्राद्रक्षितस्य परीक्षितो जन्म तज्जातकर्म च युधिष्ठिरेण कृतम् वर्णितम् ।

१३—सस्त्रीकस्य धृतराष्ट्रस्य विदुरोपदेशेन निर्याणम् । परीक्षिद्राज्याभिषेकः ।

१४—उत्पातदर्शनेन युधिष्ठिरस्यार्जुनागमचिन्तायाम् तदागमनम् ।

१५—अर्जुनाद्भगवन्निर्याणम् श्रुत्वा प्रव्रजितानाम् पाण्डवानाम् कुन्त्यासह स्वर्गारोहणम् ।

१६—कलिखिन्नभूमिधर्मसंवादे परीक्षिदागमनम् ।

१७—उभयो. संवादात्कलिम् ज्ञात्वा तन्निग्रहः परीक्षिताकृतः ।

१८—मृतसर्पकलेवरम् शमीककण्ठे राज्ञाक्षिप्तं निशम्य तत्पुत्रेण शृङ्गिणा शापोत्सर्जनम् ।

१९—गङ्गायाम् प्रायोपविष्टे परीक्षिति ऋषीणामागमनम् शुकप्राप्तिश्च ।

द्वितीयः स्कन्धः

१—राज्ञा पृष्टः शुकः सूक्ष्मे ब्रह्मणि चित्तस्थैर्यार्थमादौ स्थूलविराड्रूपोपासनमुपादिशत् ।

२—स्थूलधारणाजितस्य मनसोऽतिसूक्ष्मे ब्रह्मणि चित्तलयोपदेशः ।

३—विष्णुभक्तिश्रैष्ठ्यश्रवणेन तत्साधनभूतासु भगवत्कथासु परीक्षित आदरो दर्शित. ।

४—हरिलीला प्रश्ने कृते शुकेन नारदब्रह्मसंवाद प्रस्तावो वर्णित· ।

५—ब्रह्मणा नारदाय विराड्रूपसृष्टिरुक्ता ।

६—पुरुषसूक्तार्थेन भगवतो विराड्देहवर्णनम् ।

७—वराहावतारादारभ्य आकृष्णावतारमवतारास्तच्चरितानि चोपवर्णितानि ।

८—जीव परमात्मसम्बन्धाक्षेपपूर्वकम् पुराणार्थप्रश्नाः ।

९—शुकेन परीक्षित्प्रश्नोत्तरे भगवता ब्रह्मणे प्रोक्तम् चतुःश्लोकम् भागवतमुपदिष्टम् ।

१०—राज्ञ. परीक्षितः प्रश्नोत्तरद्वारा पुराणलक्षणादिवर्णनम् ।

तृतीयः स्कन्धः

१—गतायुषो यदून् त्यक्त्वा गतस्योद्धवस्य विदुरेण सह सम्भाषणम् ।

२—कृष्णविरह दुःखितोद्धवः कृष्णचरितानि संक्षेपेण क्षेत्त्रेऽकथयत् ।

३—मथुराया आगतस्य भगवतो द्वारकाक्रीडादिवर्णनम् ।

४—भगवदादेशादुद्धवज्ञापितो विदुरो मैत्रेयमगमत् ।

५—विदुरसन्देहे मैत्रेयेण तन्निरासार्थम् महदादीनाम् स्थूलानाम् सृष्टिवर्णनम् ।

६—ईशशक्ति प्रवेशेन स्थूलभूतानाम् जगन्निर्माणशक्तित्वम् ।

७—स्वतो निर्गुणस्य भगवतो गुणमय्या मायायाः कथम् सङ्ग इत्यादिविदुरप्रश्नाः ।

८—नाभिकमलोद्भूतस्य भीतस्य ब्रह्मणो भगवत्स्तुतिः ।

९—ततस्तपस्तुष्टस्य भगवतो वरदानेन ब्रह्मणः सृष्टि प्रवृत्तिः ।

१०—प्रथमम् कालोत्पत्तिर्विसर्गसृष्टिश्च वर्णिता ।

११—कल्पयुगादिकालमानवर्णनम् ।

१२—ब्रह्मणः सनत्कुमारादिमानससृष्टेरनन्तरम् द्विधादेहभेदेन स्वायम्भुवस्य शतरूपायाश्चोत्पत्ति. ।

१३—ब्रह्मणो नासिकोद्भूतस्य यज्ञरूपवराहस्य स्तुति. ।

१४—दितिप्रार्थनया कश्यपात्तस्याम् गर्भसम्भूतिः ।

१५—सनत्कुमाराद्वैकुण्ठस्थितयोर्जयविजयो. शाप वर्णनम् ।

१६—कुपितस्य कुमारस्य भगवता सान्त्वनम् तयोरनुग्रहश्च कृत इति वर्णितम् ।

१७—हिरण्याक्ष हिरण्यकशिप्वोर्जन्मन्युत्पातकथनम् तयोः दिग्विजयश्च ।

१८—धरोद्धारे हिरण्याक्षवराहयोर्महाभयमायोधनम् ।

१९—ब्रह्मप्रार्थनाङ्गीकारेण हिरण्याक्षवध. ।

२०—सर्वस्थिरचरसर्गानन्तरम् स्वायम्भुवमनोर्वंशवर्णनम् ।

२१—कर्दमतपस्तुष्टेन भगवता तस्य सृष्ट्यर्थम् विवाहोपदेशः ।

२२—स्वायम्भुव मनुना स्वयम् प्रत्तया देवहूत्यासह कर्दमर्पेर्विवाह. ।

२३—पत्न्यै प्रसन्नेन कर्दमेन तप.सिद्धिनिर्मिते विमाने तयोर्गार्हस्थ्यवर्णनम् ।

२४—भगवतः कपिलस्य जन्मानन्तरम् कर्दमस्य प्रव्रज्योक्ता ।

२५—मात्रा पृष्ट. कपिलो जीवस्य बन्धविमोक्षणम् भक्तियोगमाह ।

२६—पुम्प्रकृत्योर्विवेकाय सर्वसूक्ष्मभावानाम् जन्मलक्षणम् ।

२७—पुम्प्रकृत्योर्विवेके मोक्षप्राप्तिर्दर्शिता कपिलेन ।

२८—सगुणस्य भगवतो ध्यानयोग उक्तः ।

२९—मायाध्यासेन कालकृता जीवस्य जन्मादिघोरा संसृतिरुपदिष्टा ।

३०—देहाध्यासेन जीवानाम् पापादधोगतिरुदीरिता ।

३१—पुण्यपापयो. साम्यान्मानुषीगतिः कथ्यते ।

३२—सात्त्विकैः कर्मभिरूर्ध्वगतिः । ज्ञानविहीनस्य पुनरावृत्तिर्वर्णिता ।

३३—कपिलोपदेशेन ज्ञानप्राप्त्या मातुर्विदेहकैवल्यप्राप्त्यनन्तरम् कपिलस्य योगालम्बनम् ।

चतुर्थः स्कन्धः

१—स्वायम्भुवमनोर्वंशकीर्तनम् ब्रह्मपुत्रादत्रेर्दत्तावतारः ।

२—विश्वसृजाम् सत्रे दक्षशिवयोवरकारणम् परस्परशापविसर्जनम् च ।

३—दाक्षायण्याः सत्याः पितृयज्ञदिदृक्षया गच्छन्त्या. शिवेन निषेधः कृतः ।

४—शिवम् विहाय गतायाः सत्याः पितृकृतावमानाद्योगेन देहत्यागः ।

५—नारदात् पत्नीनाशश्रवणेन कुपितः शिवो वीरभद्रम् निर्माय तेन दक्षयज्ञविध्वंसनम् दक्षवधम् च कारयामास ।

६—सदेवो विधिः कैलासम् गत्वा यज्ञसन्धानार्थम् दक्षजीवितार्थम् शिवम् तुष्टाव ।

७—पुनर्दक्षयज्ञसन्धानार्थमुद्भूतस्य विष्णोः सर्वदेवै. स्तुति' कृता ।

८—सपत्नी मातरिकोपादरण्यम् गत्वा नारदोपदेशेन ध्रुवो हरिमतोषयत् ।

९—ध्रुवोऽभीष्टवरान्हरेर्लब्ध्वा पित्रा समर्पितम् राज्यमकरोत् ।

१०—पुण्यजनात् भ्रातृवधम् श्रुत्वा ध्रुवः पुण्यजनानलकाम् गत्वाऽवधीत् ।

११—पुण्यजनक्षयम् दृष्ट्वाऽऽगतेन स्वायम्भुवा ध्रुवस्य सान्त्वनम् युद्धात्परावर्तनम् च ।

१२—पश्चात्कुवेरेणाभिनन्दितो ध्रुवः प्रजापालनम् कृत्वा यज्ञैरिष्ट्वा हरेः स्थानमारुरोह ।

१३—ध्रुवान्वयोत्पन्नस्याङ्गस्य पुत्रवेनक्रौर्याददर्शनगमनम् ।

१४—अङ्गगमनादूर्ध्वम् तत्पुत्रवेनस्य राज्याभिषेके कृते तस्याधर्मवर्तित्वाद् ऋषिभिर्वधः ।

१५—अराजके वेन दक्षिणबाहुमथनम् कृत्वा ऋषिभिरुत्पादितस्य पृथोर्जन्म ।

१६—ऋषिप्रेरितैर्मागधवन्दिभिस्तत्स्तुतिः कृतेति ।

१७—क्षुत्पीडितानाम् शरणम् प्राप्तानाम् प्रजानामन्नदानार्थम् ग्रस्तबीजाम् महीम् हन्तु-मुद्यतस्य पृथोस्तया कृता स्तुतिः ।

१८—महीवचनाद्वत्सपात्रादिकल्पनया सर्वैर्महीदोहनम् ।

१९—तस्याश्वमेधे हयापहरणादिन्द्रवधोद्यतस्य पृथोर्ब्रह्मणा निर्वाणम् ।

२०—तद्यज्ञोद्भूतस्य विष्णोर्वरप्रदानमुभयप्रीतिसम्बन्धश्च ।

२१—स्वप्रजाभ्य. पृथुना भगवद्धर्मशासनम् कृतम् ।

२२—भगवदाज्ञयागतेन सनत्कुमारेण पृथवे ज्ञानोपदेशः कृतः ।

२३—ध्यानयोगेन त्यक्तदेहस्य सभार्यस्य पृथोर्विमानेन वैकुण्ठप्राप्तिः ।

२४—पृथो. प्रपौत्रात्प्राचीनबर्हिषो दशप्रचेतसाम् जन्म रुद्रगीतम् च ।

२५—तपस्यत्सु प्रचेतस्सु तत्पित्रे नारदोऽध्यात्मपारोक्ष्यमुपादिशत् ।
२६—पुरञ्जनाय देशस्य जीवस्य समृद्धित्यागात् संसृतिरुदीर्यते ।
२७—प्रियापुत्रापदेशेन्द्रियासक्त्या जीवस्य स्वरूपप्रच्युत्या कालक्रमेण जरारोगाद्यागमः ।
२८—स्त्रीसङ्गात् स्त्रीत्वम् प्राप्तस्य पुरञ्जनस्य परमात्मज्ञानोपदेशान्मुक्तिः ।
२९—परोक्षार्थव्याख्यानेन स्त्रीसङ्गाद्भवे ईशसङ्गान्मुक्तिरितीरितम् ।
३०—ईशाल्लब्धवराः प्राचीन बर्हिषो वार्क्षी कन्याम् परिणीय राज्यमकुर्वन् ।
३१—स्वसुते दक्षे राज्यधुरन्यस्य वनम् गतानाम् प्रचेतसाम् नारदोपदेशान्मुक्तिः ।

पञ्चमः स्कन्धः

१—प्रियव्रतस्य विरक्तत्वेपि ब्रह्मणो मनोधारणार्थम् राज्यकर्तृत्वम् तदनुनारदोपदेशात्परमपदप्राप्तिः ।
२—आग्नीध्रस्य स्त्रैणम् गन्धर्वलोकावाप्तिश्च । तस्मान्नाभे राज्ञ उत्पत्तिः ।
३—पुत्रार्थम् यजतोनाभेर्यज्ञे भगवताविर्भूय तत्प्रार्थनयात्मसदृशपुत्रदाने ऋषभावतारः ।
४—इन्द्रेण वृष्टि प्रतिबन्धे स्वयोगमाययर्षभस्य धर्षणादि चरितम् तद्राज्ये प्रजानाम् परमनिर्वृतिश्चाख्याता ।
५—भरतादीनामुपदेश आत्मनश्च पारमहंस्य धर्माचरणम् ।
६—देहाभिमानत्यागान्निरभिमानत्वेन भुवम् चरतस्तस्याग्निप्रवेशः ।
७—भरतेन यज्ञेश्वरस्य भगवतः स्तुतिः पश्चात्तस्य प्रव्रजनम् तपश्च कथितम् ।
८—विष्णुं भजतस्तस्यैणसङ्गादेणत्वम् वर्णितम् ।
९—तस्य तृतीयविप्रजन्मनि जडत्वेन गृहीतस्य चौरैर्बलिप्रदानाद्भद्रकाल्या मोक्षः ।
१०—रहूगणेनाक्षिप्तस्यापि तथैव शिविकावहनम् तद्वाक्यम् च कथितम् ।
११—सिन्धुसौवीरपतिना पृष्टः स योगी तस्मै ज्ञानमाचष्ट ।
१२—तत्संशयोपाकरणेनाज्ञाननिवृत्त्या तज्ज्ञानप्राप्तिश्च ।
१३—अविरक्ताय ज्ञानम् व्यर्थमिति प्रदर्शनार्थम् भवाटव्युपदेशः ।
१४—भवाटवीरूपकस्य वास्तवार्थकथनम् ।
१५—भरतवंशस्य सुमत्यन्तस्य वर्णनम् समाप्तिश्च ।
१६—मेरोः सर्वतो विस्तरस्य वर्णनम् योजनप्रमाणादि ।
१७—तस्माच्चतुर्दिक्षु गङ्गावतरणमिलावृते रुद्रेण सङ्कर्षण स्तुतिः ।
१८—मेरोः पूर्वदिक्क्रमतः खण्डत्रयवर्णनम् ।
१९—किंपुरुष भरतखण्डवर्णनम् भरतखण्डश्रैष्ठ्यं च दर्शितम् ।
२०—प्लक्षादि षड्द्वीपवर्णनम् षण्णाम् सागराणामन्ते लोकालोकमर्यादा विस्तारः कथितः।
२१—कालचक्रेण भ्रमतो रवेन्वहम् गतिमानम् तद्रथवर्णनञ्च ।
२२—सोमशुक्रादिग्रहाणामूर्ध्वस्थितिमानम् तद्गतिश्च ।
२३—ध्रुवपदादारभ्य ज्योतिश्चक्ररूपेण भगवतो विराड्देहकल्पनम् ।
२४—सूर्याधस्ताद्राहोरारभ्य पातालादीनाम् भूविवराणाम् मानम् लक्षणतः ।

२५—शेषसंस्थितिस्तन्मुख ज्वालादिभ्यः प्रलयप्रवर्तनम् ।
२६—पापिनाम् यथायथम् या नारक्यो गतयस्तासाम् कथनम् ।

षष्ठः स्कन्धः

१—भगवन्नाममाहात्म्यनिरूपणार्थमजामिलकथायाम् विष्णुयमदूत संवादः ।
२—विष्णुदूतैर्नाममाहात्म्यम् याम्यान्छ्रावयित्वा सोऽजामिलोविष्णुलोकम् नीतः ।
३—यमेनापि वैष्णवोत्कर्षवर्णनैः स्वदूताः सान्त्विताः ।
४—प्रजासिसृक्षया दक्षेण कृतस्य तपसोन्ते भगवदाविर्भावः । हंसगुह्यस्तुतिश्च ।
५—हर्यश्व संज्ञानाम् दक्षसुतानाम् नारदोपदेशादपुनरावर्तने नारदाय दक्षेण शापदानम् ।
६—दक्षस्य षष्ठिकन्याप्रसवः तद्वंशे विश्वरूपजन्म ।
७—वृहस्पतित्यक्तैर्देवैर्विश्वरूपः पौरोहित्यायवृतः ।
८—विश्वरूपेणेन्द्राय नारायणवर्मदानम् ।
९—इन्द्रेण हते विश्वरूपे तत्पित्रा वृत्र इन्द्रनाशार्थमुत्पादिते भीतैर्देवैर्भगवत्स्तुतिः ।
१०—भगवदुपदेशेन दधीचऋषेरस्थिभिर्निर्मितम् वज्रमात्तवता सदेवेन्द्रेण वृत्रस्य युद्धम् ।
११—वृत्रयुद्धे तस्य भक्तिज्ञानवैराग्यजुष्टा वाचो वर्णिताः ।
१२—विषण्णोत्साहितेनेन्द्रेण वृत्र वधः ।
१३—वृत्रवधोत्पन्नया ब्रह्महत्यया नष्टस्य पुनरागमनमश्वमेधेन यजनम् च ।
१४—वृत्रस्येदृग्भक्तिकारणप्रश्ने तत्पूर्वचित्रकेतु जन्मकथनम् । तस्य कृच्छ्रलब्धसुते नष्टेऽतिशोकः ।
१५—चित्रकेतोर्नारदोंऽगिरोभ्याम् शोकापनोदः ।
१६—मृतपुत्रोक्तिभिस्तन्मायामपहाय नारदेन शेषतोषिणी विद्या तस्मा उपदिष्टा ।
१७—शेषवरदानेन ऋद्ध्युन्मत्तस्येशहसनम् । तन्निदानेन पार्वतीशापाद्दैत्यत्वम् ।
१८—चतुर्थादित्यान्वयवर्णने दितिगर्भच्छेदनादिना मरुतामुत्पत्तिः ।
१९—कश्यपेन दित्या इन्द्रहन्तृपुत्रोत्पादन समर्थ व्रतोपदेशः ।

सप्तमः स्कन्धः

१—हिरण्यकशिपोर्ब्रह्मशापेन विष्णुभक्तेर्विरोधः ।
२—भ्रातृवधसन्तप्तानाम् बन्धूनाम् कपोताद्याख्यानेन सान्त्वनम् हिरण्यकशिपुना ।
३—हिरण्यकशिपोस्तपसा तप्तानाम् देवानाम् प्रार्थनया ब्रह्मणा तस्मै वरदानम् ।
४—लब्धवरो दैत्यस्त्रलोक्यम् विजित्य विष्णुवरेण देवानपीडयत् ।
५—गुरुशिक्षितमगृह्णन्तम् भगवत्स्तुतौ रतम् स्वपुत्रम् प्रह्लादम् पितुर्विषसर्पाद्यैर्घातयितुम् यत्न. ।
६—गुरौ गृहकर्मणि व्यग्रे प्रह्लादो दैत्यसुतेभ्यो विष्णुभक्तिधर्मानुपादिशत् ।
७—वनम् प्रस्थिते पितरि स्वमातरम् हन्तुम् प्रवृत्ते इन्द्रे नारदोपदेशेन गर्भस्थ एव तदुपदिष्टम् ज्ञानमहमगृह्णामिति दैत्यसुतानादिशत् ।
८—पिता सुतम् निघ्नन् हरिणा नृहर्यवतारम् कृत्वा हतः, ब्रह्मादिभिः स्तुतश्च हरिः ।

९—तत्स्वरूपभीतेन ब्रह्मणा प्रणोदितः प्रह्लादोः हरिमस्तौत् ।

१०—एनमनुगृह्यान्तर्हिते भगवति प्रसङ्गेन शिवात् त्रिपुरवध ईरितः ।

११—युधिष्ठिरेण पृष्टो नारदो नृणाम् तथा स्त्रीणाम् साधारणम् धर्ममुपादिशत् ।

१२—ब्रह्मचारिवानप्रस्थयोर्धर्मप्राधान्येन चतुर्णामाश्रमाणाम् साधारणा धर्मा उपदिष्टाः ।

१३—साधकस्य यते धर्मस्तथा सिद्धस्यावधूतेतिहासेन धर्माः सिद्धावस्था च वर्णिता ।

१४—देशकालादिविशेषेण गृहस्थस्य श्रेयस्कृद्धर्म उपदिष्टः ।

१५—सर्वेषाम् मोक्षधर्माणाम् सर्ववर्णाश्रमनिबन्धनम् सारसङ्ग्रहम् धर्ममाचष्ट नारदः ।

अष्टमः स्कन्धः

१—यज्ञावतारस्तथा स्वायम्भुवस्वारोचिषोत्तमतामसानाम् चतुर्णाम् मन्वन्तराणाम् वर्णनम् ।

२—तुर्यमन्वन्तरोक्तगजेन्द्रमोक्ष श्रवणोत्सुकस्य राज्ञस्तत्कथा प्रस्तावः ।

३—दुःखम् प्राप्तेन गजेन्द्रेण स्तुतस्तन्मन्वन्तरावतारो हरिर्ग्राहग्रस्तम् गजेन्द्रम् देवल-शापतश्च ग्राहम् मोचयामास ।

४—ग्राहाय गन्धर्वताम् दत्त्वा गजेन्द्रम् स्वपार्षदम् कृत्वा तौ हरिर्निजम् पदमनयत् ।

५—पञ्चषष्ठमन्वन्तरवर्णनम् प्रसङ्गाद्दुर्वासःशापाच्छ्रिःश्रीकैर्देवैर्हरिः स्तुत इति ।

६—भगवदाविर्भावानन्तरम् तदुपदेशतो देवैर्दैत्यानाम् सन्धिमभिधाय सुधोत्पाद-नार्थम् समुद्रमन्थनोद्योगः ।

७—मन्थनोद्भूतविषभयेन भीतैर्देवैः स्तुतो रुद्रस्तद्विषम् पपौ ।

८—तदुद्भूतेषु चतुर्दशरत्नेषूत्पन्नया लक्ष्म्या हरिर्वृतः । धन्वन्तरेरमृते दैत्यैर्हृते भगवतो मोहिनीरूपाविर्भावः ।

९—तन्मोहितै दैत्यैरर्पितेऽमृतभाजने तान्वञ्चयित्वा सुरानमृतम् पाययन् स्वम् रूपम् हरिर्जगृहे ।

१०—एतत्कारणादेव दैत्यैरारब्धे युद्धे दैत्यपराजितैर्देवैः स्तुतो हरिराविर्बभौ ।

११—नारदो ब्रह्मणो वाक्याद्दैत्यवधाद्देवान्यषेधत् तेच शुक्रेण सञ्जीविन्या जीविता पातालम् विविशुः ।

१२—मोहिनीरूपदर्शनोत्सुकेन हरेण हरिरात्मनो मोहिनीरूपदर्शनेन धैर्यं त्याजयित्वा तम् सान्त्वितवान् ।

१३—अवशिष्टानि सप्त मन्वन्तराणि क्रमादवर्णयत् ।

१४—प्रतिमन्वन्तरमाविर्भूतस्यावतारादिषट्कस्य प्रत्येकस्य कर्म वर्णितम् ।

१५—आचार्यः शुक्रो बलिम् विश्वजिताऽयाजयत्, तद्भयेन स्वर्गान्नष्टा देवा निलिल्यिरे ।

१६—पुत्रनाशसन्तप्तयाऽदित्या स्तुतः कश्यपः पयोव्रतमुपादिशत् ।

१७—तत्कृतेन व्रतेन तुष्टो भगवानाविर्भूय पुत्रत्वस्वीकरणेन तामनन्दयत् ।

१८—वामनावतारम् गृहीत्वाखिलैः सम्भावितो बलेर्यज्ञम् गतस्तम् तुष्टाव, तेन च वराय नियुक्तः ।

१९—पदत्रये भूमेर्याचिते श्रुतदानो वलिः शुक्रेण निषिद्धः।

२०—अनुतापाद्भीतो वलिर्गुरुणा शप्तोपि कपटञ्ज्ञात्वा पदत्रयम् ददौ। अनन्तरम् हरिर्वर्द्धत।

२१—तद्धर्मनिष्ठाम् प्रथयितुम् तम् नागपाशैर्वबन्धः।

२२—प्रसन्नो हरिः सुतले तम् प्रस्थाप्य वरान्दत्त्वा तद्द्वारपोऽभवत्।

२३—यातेवलावुपेन्द्र इन्द्रेण सह स्वर्गम् गत्वा सर्वान्देवानानन्दयत्।

२४—प्रसङ्गान्मत्स्यावतारेण प्रलये मनो. रक्षणम्।

नवमः स्कन्धः

१—सूर्यसुतान्वये सोमवंशोद्भवार्थम् मनुपुत्र सुद्युम्नस्त्रीत्वम् तस्मात्पुरुरवस उत्पत्तिस्तद्राज्यप्रतिष्ठा नाभागचरितम् च।

२—मनोर्दशपुत्राणाम् मध्ये पञ्चानाम् पृषध्र-कवि-करूषधृष्ट-नृगाणाम् वंशानाह।

३—शर्यातेः कन्यायाः सुकन्यायाश्च यवनपरिणयः। रैवतकस्याख्यानम्, तेन वलाय कन्यादानम्।

४—नाभागपुत्रस्याम्वरीषस्य चरिते दुर्वासः कृत्यानाश., सुदर्शनेन दुर्वासः पलायनम्, तत्पृष्ठतश्चक्रगमनम्।

५—विष्णुचक्र सन्तप्तम् दुर्वाससमम्वरीषस्तत्स्तुत्या त्रासान्मोचितवान्, मोचितस्तम् संस्तुत्य दुर्वासा गतः।

६—इक्ष्वाकुवंशस्य शशादस्य चरितम् तत्पुत्रककुत्स्थचरितम् तदन्वये यौवनाश्वस्य मान्धातुराख्यानम् तत्पञ्चाशत्कन्यकाभर्तृतस्य सौभरेराख्यानम्।

७—तदन्वयोत्पन्नस्य हरिश्चन्द्रस्याख्यानम् तद्यज्ञे विश्वामित्रकृपया शुनःशेपमोक्षश्च।

८—तदन्वयोत्पन्न सगरयज्ञ इन्द्रेण हारिताश्वानयनार्थम् प्रवृत्तान्सगरसुतान् कपिलोददाह तत्पौत्रेणांशुमता स्तुतः कपिलोऽश्वं तस्मै दत्वा पितृणामुद्धरणार्थम् गङ्गावतारणमादिशत्।

९—तत्पौत्रो भगीरथो गङ्गामानीय स्वपितॄनुद्धरत् तदन्वय ऋतुपर्णोत्पत्तिः सौदासाख्यानम् तथा खट्वाङ्गो मुहूर्ताद् ब्रह्मलोकमगमदिति।

१०—तदन्वये दशरथाद्रामावतारः संक्षेपेण तच्चरितम् च।

११—रामराज्यवर्णनम्, तद्यज्ञाः, शत्रुघ्नेन लवणासुरम् हत्वा मथुरानिर्माणम्।

१२—कुशादारम्य सुमित्रान्तो मनोर्वंशः कथितः।

१३—ऐक्ष्वाकस्य निमेर्वंशे जनकादीनाम् राज्ञाम् वर्णनम्, वसिष्ठस्य निमिशापेन परस्परम् देहत्यागः।

१४—इन्दुना गुरुपत्न्यङ्गीकारे देवदैत्ययोर्युद्धोद्योगे ब्रह्मणा सान्त्वितायास्ताराया: बुधजन्म, तस्मात्पुरूरवस उर्वश्याख्यानम् तस्याः सकाशादायुरादीनाम् षण्णाम् पुरूरवसः पुत्राणाम् जन्म।

१५—पुरूरवसो वंशे जह्नोरुत्पत्तिः। गाधेर्विश्वामित्राख्याने परशुराम जन्म सहस्रार्जुनवध.।

१६—सहस्रार्जुनसुतैर्जमदग्नेर्वधे तद्रोपात्क्षत्रियाणामेकविंशतिवारम् परशुरामेण निःक्षत्रीकरणम् ।

१७—पुरूरवसश्चतुर्णाम् सुतानाम् वंशवर्णनम् ।

१८—नाहुषस्य ययातेर्देवयान्या सह विवाहः शर्मिष्ठायाम् च द्रुह्युवादीनाम् जन्म । पितृजराग्रहणम् ।

१९—ययातेर्वैराग्यम् पूरो राज्याभिषेकानन्तरम् तस्य वनाश्रयणम् च कथितम् ।

२०—पितृप्रसादादासराज्यस्य पूरोर्वंशे दुष्यन्त शकुन्तलयोर्विवाहोत्तरम् तत्पुत्रस्य भरतस्याख्यानम् । तद्वंश यज्ञतुष्टैर्देवैर्भरद्वाजपुत्रार्पणम् ।

२१—रन्तिदेवाजमीढादेश्चरितम् । दिवोदासोत्पत्तिरहल्याख्यानम् । तस्याः शतानन्दोत्पत्तिः ।

२२—दिवोदासवंशवर्णनमृक्षवंशे जरासन्धपार्थदुर्योधनादीनामुत्पत्तिः ।

२३—द्रुह्युतुर्वसुयदूनाम् यावज्यामघसम्भवावंशाः कथिताः ।

२४—यादवान्वयोत्पन्नस्य विदर्भस्य नानामुखा वंशा रामकृष्णावतारावधिवर्णिताः ।

दशमः स्कन्धः

१—वसुदेवदेवकी विवाहे कंसः स्वमृत्युं देवकीसुताद्विज्ञाय तत्षड् गर्भानवधीत् ।

२—कंसादीनाम् घाताय ब्रह्मणा प्रार्थितो देवकी गर्भगो हरिरभूत् । गर्भस्तुतिः ।

३—देवक्या निजरूपेणोत्पन्नो देवकीवसुदेवस्तुतो हरिर्भीतेन पित्रा गोकुलम् नीतः ।

४—कन्यकावाक्यादतिभयाकुलः कंसो दुष्टदैत्यान् सर्वबालकवधमाज्ञापयत् ।

५—नन्दः पुत्रानन्दनिर्वृतो महोत्सवम् कृत्वा मथुराम् गत्वा वसुदेवसङ्गममकरोत् ।

६—वसुदेववाक्याद्गोकुलेऽनर्थागमशङ्कितो नन्दः पूतनावधादिकम् श्रुत्वा विस्मितोऽभूत्

७—शकटासुरस्तृणावर्तवधः । मात्रे स्वमुखे विश्वरूपदर्शनम् ।

८—गर्गेण कृष्णजन्म कर्मादिजातककथनम् मृद्भक्षणव्याजेन विश्वरूपदर्शनम् ।

९—पयस्युत्सिक्ते यशोदा कृष्णकृतम् भाण्डभङ्गादि दृष्ट्वोलूखले कृष्णम् बबन्ध ।

१०—सहोलूखलेन रिङ्गन् कृष्णो यमलार्जुनौ बभञ्ज, तत्र ताभ्याम् नलकूबराभ्याम् स्तुतः ।

११—वत्सान्पालयता कृष्णेन वत्सासुर बकासुरौ हतौ ।

१२—महासर्पवपुर्धरमघासुरम् वत्सगोपालगलम् कृष्णो गले प्रविश्याहन् ।

१३—ब्रह्मणा वत्सगोपालहरणे तावद्रूपो हरिर्भूत्वापूर्ववद्गोकुले चिक्रीड ।

१४—कृष्णम् परम् ब्रह्म विदित्वाकृता ब्रह्मस्तुतिः ।

१५—तालवने धेनुकार्दनम् कालियविषमृतान्वत्सबालकानजीवयत् कृष्णः ।

१६—यमुनाह्रदे कालियनिग्रहः । तत्पत्न्यभिष्टुतस्तमनुजग्राह ।

१७—कालियम् रमणके विवास्य सुप्तान् गोपान् दावाग्नितोररक्ष ।

१८—वसन्तगुणलक्षितेग्रीष्मे बलेन प्रलम्बासुरमघातयत् ।

१९—मुञ्जारण्ये दावाग्नितो गोगोपानरक्षत् इतीरितम् ।

२०—बलरामकृष्णयोर्वर्षाशरदृतुक्रीडा ।

२१—शरदि भगवतो वेणुनादम् श्रुत्वा गोपीभिः कृतम् वेणुगीतम् ।

२२—कात्यायनी व्रतम् कुर्वाणानाम् गोपकन्यानाम् परिहासेन वस्त्रार्पणम् । यज्ञपत्नीभ्यो गोपप्रेषणम् ।

२३—अन्नयाच्ञामिषेण यज्ञपत्नीननुग्राह्यतत्पतीनन्वतापयत् ।

२४—इन्द्रमखाद्गोपान्निवार्य गोवर्धनमहोत्सवमकारयत्कृष्ण इत्युदीरितम् ।

२५—कुपितेन्द्रे व्रजनाशाय वर्षति गोवर्धनमुद्धृत्यकृष्णो गोपानरक्षत् ।

२६—नन्दः कृष्णपराक्रमशङ्कितान् गोपान् गर्गोक्तिमाश्राव्य तदैश्वर्यमवर्णयत् ।

२७—कृष्णैश्वर्यप्रबोधित इन्द्रस्तुष्टाव कामधेन्वेन्द्रेण च गोराज्येभिषिक्त कृष्ण इति ।

२८—वरुणलोकगतम् नन्दम् भगवांस्तल्लोकम् गत्वा तेन स्तुतः पितरमानयत् । गोपानां वैकुण्ठदर्शनम् ।

२९—रासार्थमागताभिः कृतम् गोपीगीतम् ।

३०—विरहतप्ताभिर्गोपीभिर्मार्गणम् तद्भावभावाकृतयश्च तासाम् वर्णिताः ।

३१—यमुनापुलिनमागताभिः कृतम् गोपीगीतम् ।

३२—तद्भक्त्याकृष्टो हरिराविर्भूयता अरीरमत् ।

३३—ताभिः सह कृष्णो जलस्थलवनक्रीडा अकरोत् ।

३४—अङ्गिरसः शापजातेन सर्परूपेण गन्धर्वेण ग्रस्तम् नन्दममूमुचत् । धनदानुगम् शङ्खचूडमवधीत् ।

३५—वनम् याते कृष्णे युग्मगीतेन गोप्यो वासरमनयन् ।

३६—अरिष्टासुरवधे नारदोपदेशेन वसुदेवसुतौ रामकृष्णौ ज्ञात्वा कंसस्तावानेतुमक्रूरम् प्रैषयत् ।

३७—केशिदैत्ये हते नारदो भाविकर्मभिर्भगवन्तमस्तौत् कृष्णः क्रीडन् व्योमासुरमवधीत् ।

३८—अक्रूरोभगवन्तम् ध्यायन् गोकुलम् गतो रामकृष्णाभ्याम् सत्कृत्य गृहम् नीतः ।

३९—मथुराम् कृष्णे गच्छति गोपिकोक्तयः । अथ कालिंद्यामक्रूरस्य विष्णुलोकदर्शनम् ।

४०—अक्रूरः कृष्णमीश्वरेश्वरम् मत्वा सगुणागुणभेदैस्तमस्तावीत् ।

४१—मथुराम् प्रविशन् रजकम् हत्वा मालाकारेण सुदाम्नालङ्कृतस्तस्मैवरमदात् ।

४२—कुब्जाचन्दनालङ्कृतस्ताम्रजूकृत्य धनुर्भङ्गम् विधाय तद्रक्षिणः कंससेवकाञ्जघान ।

४३—कुवलयापीडम् हत्वा रङ्गम् प्रविष्टयो रामकृष्णयोर्नवरसाविर्भावश्चाणूरमुष्टिकादि-भाषणम् ।

४४—चाणूरवधानन्तरम् कंसवधः । तस्य स्त्रीणमाश्वासनम् । ताभ्याम् पितुर्जरासन्धस्य दर्शनम् ।

४५—श्रीकृष्णेन नन्दादीनाम् सान्त्वनम् । उग्रसेनस्य राज्याभिषेकः । भगवतो गुरु-कुलवासे वरार्थम् तत्पुत्रम् जीवन्तम् समर्प्य पुनर्मथुरागमनम् ।

४६—गोकुल उद्धवम् प्रेष्य गोपीनाम् सान्त्वनम् । यशोदानन्दयोः शोकापनोदनम् च ।

४७—उद्धवः कृष्णादेशेन गोपीर्ज्ञानमुपदिश्य पुनः पुरीमगमत् ।

४८—कुब्जाम् रमयित्वाक्रूर गृहमागत्यतम् पाण्डवानाम् क्षेमज्ञानार्थम् हस्तिनापुरम् प्रैषयत् ।

४९—गजाह्वयमक्रूरो गत्वा पाण्डवेषु विषमशीलम् धृतराष्ट्रम् बुद्ध्वा पुनरागमत् ।

५०—जरासन्धम् पराजित्य तद्भयादिवद्वारकाम् निर्माय तत्र स्वजनम् रात्रावारोपयत् ।

५१—मुचुकुन्ददृशा कालयवनम् दग्ध्वा तेनस्तुतस्तमनुजग्राह ।

५२—भयाद्धावन्निव द्वारकामागतः । द्विजमुखाद्रुक्मिण्याः सन्देशमशृणोत् ।

५३—भगवान्विदर्भान् गत्वा जरासन्धादीनाम् मिषताम् रुक्मिणीम् बलादहरत् ।

५४—शिशुपालपक्षगान् राज्ञो जित्वा रुक्मिणम् विरूपयित्वापुरे भैष्म्या. पाणिमग्रहीत् ।

५५—रुक्मिण्यामुत्पन्नः प्रद्युम्नः शम्बरेण हृतोपि तम् हत्वा सस्त्रीको द्वारकामागमत् ।

५६—स्यमन्तकख्यात्मनिमिथ्यारोपम् परिहरन् हरिर्जाम्बवतो जाम्बवतीम् प्राप, सत्राजितः सत्यभामाञ्च प्रत्यपद्यत ।

५७—पुनः शतधन्वनोवधात् प्राप्तम् दुर्यशः परिमार्ष्टुमक्रूरान्मणिमाजहार ।

५८—कालिन्दी-मित्रविन्दा-सत्या-भद्रा-लक्ष्मणानाम् पञ्चानाम् पाणीनग्रहीत् ।

५९—भौमम् हत्वा तेनाहृताः षोडशसहस्रकन्या अवरयत् पारिजातम् च दिवोऽहरत् ।

६०—परिहासेन रुक्मिणीम् कोपयित्वा कलहे तामसान्त्वयत् ।

६१—भगवतः पुत्रपौत्रादि सन्ततेर्वर्णनम् । अनिरुद्धविवाहे रामतो रुक्मिणोवधः ।

६२—उषया सह रममाणस्यानिरुद्धस्य रोधनम् बाणासुरेणकृतम् ।

६३—बाणयादवसङ्गरे माहेश्वरेण ज्वरेण भगवत्स्तुतिः कृता बाणासुरस्य बाहुच्छेदने रुद्रेण स्तुतिः हरिस्तमनुजग्राहोषयाऽनिरुद्धविवाहश्च ।

६४—नृगम् शापाद्विमोच्य द्विजानाम् राज्ञाम् ब्रह्मस्वहरणेदोषमदर्शयत् ।

६५—गोकुलमागतो रामो गोपी रमयन् यमुनाम् चकर्ष ।

६६—कृष्ण आत्मरूपधरम् पौण्ड्रकम् जित्वा तन्मित्रेण सुदक्षिणेन काशिपतिना कृताम् कृत्याम् तत्पुरीम् काशिकाम् च सुदर्शनेनादहत् ।

६७—रैवतके पर्वते स्त्रीभिः सह रममाणो रामो द्विविदम् वानरमहन् ।

६८—कौरवैर्युधि पराजित्य रुद्धे साम्बे तन्मोक्षार्थमागतेन रामेण हस्तिनापुरकर्षणम् ।

६९—प्रत्येक स्त्रीगृहे भगवतो गार्हस्थ्यम् दृष्ट्वा नारदो विस्मयम् जगाम ।

७०—कृष्णस्याह्निकम् । जरासन्धनिगृहीतानाम् राज्ञाम् दूतप्रेषणम् । तदैव युधिष्ठिरनिमन्त्रणे कार्यमन्त्रविचारणम् ।

७१—उद्धवमन्त्रनिर्णयेनेन्द्रप्रस्थम् गतो भगवान्पाण्डवाननन्दयत् ।

७२—युधिष्ठिरेण कर्तव्ये राजसूये निवेदिते दुर्जयम् जरासन्धम् भगवान्भीमेनाघातयत् ।

७३—जरासन्धनिगृहीतान् राज्ञो विमोच्य तान् सत्कृत्य स्वम् स्वम् राज्यम् प्रैषयत् ।

७४—धर्मराजस्य राजसूयवर्णनम् तथाऽग्रपूजाप्रसङ्गेन भगवन्निन्दया चैद्यवधः ।

७५—यज्ञावभृथ सम्भ्रमे सुयोधनस्याक्षान्त्या मानभङ्गकथनम् ।

७६—शाल्ववृष्णिरणे द्युमत्सेनगदया रणात्प्रद्युम्ननिर्गमः ।

७७—नानामायाविनम् शाल्वम् हत्वा कृष्णस्तद्विमानमचूर्णयत् ।

७८—विदूरथदन्तवक्रौ कृष्णो हत्वा पुरे रेमे । प्रसङ्गेन राम. सूतमवधीत् ।

७९—द्विजतुष्टये रामो बल्वलम् हत्वा सूतहत्या पापशान्त्यर्थम् तीर्थयात्रामकरोत् ।

८०—कृष्णः श्रीदामानम् सतीर्थ्यम् गृहागतम् विधिवत् सम्पूज्य गुरुकुलवासकथाम् मुदाऽकरोत् ।

८१—तत्पृथुकान् भक्षयित्वा तस्य स्वतुल्याम् श्रियमददात् ।

८२—कृष्णो यदुभिर्ग्रहणयात्रायाम् कुरुक्षेत्रमगमत् । तत्र यदुभिः सह राजानः कृष्ण-कथामकुर्वन् गोपनन्द गोपीश्च भगवान् सम्मान्य तेषामात्मज्ञानमुपादिशत् ।

८३—द्रौपद्या सह जल्पन्तीभिः कृष्णस्त्रीभिः स्वस्वकरग्रहाः प्रोक्ताः कृष्ण पत्नीभिरिति कथ्यते ।

८४—वसुदेवनारदसंवादानन्तरम् वसुदेवयज्ञमहोत्सवम् वर्णयित्वा भगवान् सर्वाना-गतान्स्वगृहम् प्रैषयत् ।

८५—पित्रा सम्प्रार्थितौ रामकृष्णौ तस्मै ज्ञानमुपदिश्य मात्रे मृतान् पुत्रानयच्छताम् ।

८६—दम्भात्सुभद्रामर्जुनोऽहरत् । भगवान्मिथिलाम् गत्वा स्वभक्तौ नृपविप्रावनन्दयत् ।

८७—नारायण-नारद-संवाद-प्रस्तावाद्वेदैर्गुणालम्बान्निर्गुणावधि' स्तुतिः कृतेति ।

८८—विष्णुभक्तः कैवल्यपदभागर्वाग्देवताराधकस्तु सम्पदम् प्राप्नोतीति ।

८९—को महान्देव इति निर्णये भृगुर्विष्णोरुत्कर्षमृषिभ्यः समकथयत् ।

९०—कृष्णकथाः संक्षेपेणोक्त्वा यादवानाम् कुलानन्त्यंकीर्तितम् ।

एकादशः स्कन्धः

१—कपटगर्भिणीनिमित्तेन साम्बादिभिः प्रेरिता ऋषयो मौसलापदेशेन यदुकुलक्षयम् भगवदिच्छयाभिदधुः ।

२—नारदः पृच्छते वसुदेवाय निमिजायन्तेय संवादेन भागवतान्धर्मानुपादिशत् ।

३—निमिना माया तत्तरणम् ब्रह्म कर्मेति चतुर्षु प्रश्नेषु कृतेष्वार्षभैस्तन्निर्णयः कृतः ।

४—अवतार-कथा-प्रश्ने राज्ञाकृते द्रुमिलो जायन्तेयोऽवतारानकथयत् ।

५—भक्तिहीनानाम् का निष्ठेति प्रश्ने तेषाम् पूजाधिकारार्थम् पूजाविधि रूपदिष्टः ।

६—ब्रह्मादिभिः स्तुतो हरिर्निजम् पदम् यास्यन्नुद्धवेन स्वधामनयनार्थम् प्रार्थितः ।

७—उद्धवस्यात्मज्ञानसिध्या अवधूतेतिहासेऽष्टौ गुरून् हरिरवर्णयत् ।

८—नवभ्यो गुरुभ्य उद्धवस्य विवेकाय शिक्षितमुपदिशत् ।

९—कुररादिभ्यः शिक्षितमवधूताच्छ्रुत्वा नारदः कृतार्थोऽभूत् ।

१०—देहसम्बन्धादात्मनः संसृतिः स्वतो नेति मतान्तरनिरासतोऽकथयत् ।

११—बद्धमुक्तानाम् साधूनाम् च तथा भक्तेर्लक्षणमुद्धवाय भगवानादिदेश ।

१२—सत्सङ्गमहिमानमादिश्य कर्मानुष्ठातारस्तत्त्यागाधिकारिणो दर्शिताः ।

१३—सत्त्वगुणसेवया ज्ञानोदयः हंसेतिहासेन चित्तगुणविश्लेषवर्णनम् ।

१४—भक्तियोग एव परम् श्रेयोनान्यत् । इति साधनै' सह ध्यानयोगः कथितः ।

१५—अणिमाद्याः सिद्धयः सत्साधनविष्णुपदप्राप्तिविघ्नभूताः कथिताः ।

१६—अभिव्यक्तभगवदंशरूपा विभूतय उक्ता उपासनार्थम् ।

१७—स्वधर्मे भक्ति लक्षणे पृष्टे ब्रह्मचारिगृहस्थयोर्हंसोक्तम् धर्ममाह ।

४९—गजाह्वयमक्रूरो गत्वा पाण्डवेषु विषमशीलम् धृतराष्ट्रम् बुध्वा पुनरागमत् ।

५०—जरासन्धम् पराजित्य तद्भयादिवद्वारकाम् निर्माय तत्र स्वजनम् रात्रावारोपयत् ।

५१—मुचुकुन्ददृशा कालयवनम् दग्ध्वा तेनस्तुतस्तमनुजग्राह ।

५२—भयाद्धावन्निव द्वारकामागतः । द्विजमुखाद्रुक्मिण्याः सन्देशमश्रृणोत् ।

५३—भगवान्विदर्भान् गत्वा जरासन्धादीनाम् मिषताम् रुक्मिणीम् बलादहरत् ।

५४—शिशुपालपक्षगान् राज्ञो जित्वा रुक्मिणम् विरुपयित्वापुरे भैष्म्याः पाणिमग्रहीत् ।

५५—रुक्मिण्यामुत्पन्नः प्रद्युम्नः शम्बरेण हृतोपि तम् हत्वा सस्त्रीको द्वारकामागमत् ।

५६—स्यमन्तकस्यात्मनिमिथ्यारोपम् परिहरन् हरिर्जाम्बवतो जाम्बवतीम् प्राप, सत्राजितः सत्यभामाञ्च प्रत्यपद्यत ।

५७—पुनः शतधन्वनोवधात् प्राप्तम् दुर्यशः परिमार्ष्टुमक्रूरान्मणिमाजहार ।

५८—कालिन्दी-मित्रविन्दा-सत्या-भद्रा-लक्ष्मणानाम् पञ्चानाम् पाणीनग्रहीत् ।

५९—भौमम् हत्वा तेनाहृताः षोडशसहस्रकन्या अवरयत् पारिजातम् च दिवोऽहरत् ।

६०—परिहासेन रुक्मिणीम् कोपयित्वा कलहे तामसान्त्वयत् ।

६१—भगवतः पुत्रपौत्रादि सन्ततेर्वर्णनम् । अनिरुद्धविवाहे रामतो रुक्मिणोवधः ।

६२—उषया सह रममाणस्यानिरुद्धस्य रोधनम् बाणासुरेणकृतम् ।

६३—बाणयादवसङ्करे माहेश्वरेण ज्वरेण भगवत्स्तुतिः कृता बाणासुरस्य बाहुच्छेदने रुद्रेण स्तुतिः हरिस्तमनुजग्राह्योषयाऽनिरुद्धविवाहश्च ।

६४—नृगम् शापाद्विमोच्य हसानाम् राज्ञाम् ब्रह्मस्वहरणेदोषमदर्शयत् ।

६५—गोकुलमागतो रामो गोपी रमयन् यमुनाम् चकर्ष ।

६६—कृष्ण आत्मरूपधरम् पौण्ड्रकम् जित्वा तन्मित्रेण सुदक्षिणेन काशिपतिना कृताम् कृत्याम् तत्पुरीम् काशिकाम् च सुदर्शनेनादहत् ।

६७—रैवतके पर्वते स्त्रीभिः सह रममाणो रामो द्विविदम् वानरमहन् ।

६८—कौरवैर्युधि पराजित्य रुद्धे साम्बे तन्मोक्षार्थमागतेन रामेण हस्तिनापुरकर्षणम् ।

६९—प्रत्येक स्त्रीगृहे भगवतो गार्हस्थ्यम् दृष्ट्वा नारदो विस्मयम् जगाम ।

७०—कृष्णस्याह्निकम् । जरासन्धनिगृहीतानाम् राज्ञाम् दूतप्रेषणम् । तदैव युधिष्ठिरनिमन्त्रणे कार्यमन्त्रविचारणम् ।

७१—उद्धवमन्त्रनिर्णयेनेन्द्रप्रस्थम् गतो भगवान्पाडवानानन्दयत् ।

७२—युधिष्ठिरेण कर्तव्ये राजसूये निवेदिते दुर्जयम् जरासन्धम् भगवान्भीमेनाघातयत् ।

७३—जरासन्धनिगृहीतान् राज्ञो विमोच्य तान् सत्कृत्य स्वम् स्वम् राज्यम् प्रैषयत् ।

७४—धर्मराजस्य राजसूयवर्णनम् तथाऽग्रपूजाप्रसङ्गेन भगवन्निन्दया चैद्यवधः ।

७५—यज्ञावभृथ सम्भ्रमे सुयोधनस्याक्षान्त्या मानभङ्गकथनम् ।

७६—शाल्ववृष्णिरणे द्युमत्सेनगदया रणात्प्रद्युम्ननिर्गमः ।

७७—नानामायाविनम् शाल्वम् हत्वा कृष्णस्तद्विमानमचूर्णयत् ।

७८—विदूरथदन्तवक्रौ कृष्णो हत्वा पुरे रेमे । प्रसङ्गेन रामः सूतमवधीत् ।

७९—द्विजतुष्टये रामो वल्वलम् हत्वा सूतहत्या पापशान्त्यर्थम् तीर्थयात्रामकरोत् ।

८०—कृष्णः श्रीदामानम् सतीर्थ्यम् गृहागतम् विधिवत् सम्पूज्य गुरुकुलवासकथाम् मुदाऽकरोत्।

८१—तत्पृथुकान् भक्षयित्वा तस्य स्वतुल्याम् श्रियमददात्।

८२—कृष्णो यदुभिर्ग्रहणयात्रायाम् कुरुक्षेत्रमगमत्। तत्र यदुभिः सह राजानः कृष्ण-कथामकुर्वन् गोपनन्द गोपीश्च भगवान् सम्मान्य तेषामात्मज्ञानमुपादिशत्।

८३—द्रौपद्या सह जल्पन्तीभिः कृष्णस्त्रीभिः स्वस्वकरग्रहा. प्रोक्ताः कृष्ण पत्नीभिरिति कथ्यते।

८४—वसुदेवनारदसंवादानन्तरम् वसुदेवयज्ञमहोत्सवम् वर्णयित्वा भगवान् सर्वाना-गतान्स्वगृहम् प्रैषयत्।

८५—पित्रा सम्प्रार्थितौ रामकृष्णौ तस्मै ज्ञानमुपदिश्य मात्रे मृतान् पुत्रानयच्छताम्।

८६—दम्भात्सुभद्रामर्जुनोऽहरत्। भगवान्मिथिलाम् गत्वा स्वभक्तौ नृपविप्रावनन्दयत्।

८७—नारायण-नारद-संवाद-प्रस्तावाद्वेदैर्गुणालम्बान्निर्गुणावधिः स्तुतिः कृतेति।

८८—विष्णुभक्तः कैवल्यपदभागर्वाग्देवताराधकस्तु सम्पदम् प्राप्नोतीति।

८९—को महान्देव इति निर्णये भृगुर्विष्णोरुत्कर्षमृषिभ्यः समकथयत्।

९०—कृष्णकथाः संक्षेपेणोक्त्वा यादवानाम् कुलानन्त्यंकीर्तितम्।

एकादशः स्कन्धः

१—कपटगर्भिणीनिमित्तेन साम्बादिभिः प्रेरिता ऋषयो मौसलापदेशेन यदुकुलक्षयम् भगवदिच्छयाभिदधुः।

२—नारदः पृच्छते वसुदेवाय निमिजायन्तेय संवादेन भागवतान्धर्मानुपादिशत्।

३—निमिना माया तत्तरणम् ब्रह्म कर्मेति चतुर्षु प्रश्नेषु कृतेष्वार्षभैस्तन्निर्णयः कृतः।

४—अवतार-कथा-प्रश्ने राज्ञाकृते द्रुमिलो जायन्तेयोऽवतारानकथयत्।

५—भक्तिहीनानाम् का निष्ठेति प्रश्ने तेषाम् पूजाधिकारार्थम् पूजाविधि रूपदिष्टः।

६—ब्रह्मादिभिः स्तुतो हरिर्निजम् पदम् यास्यन्नुद्धवेन स्वधामनयनार्थम् प्रार्थितः।

७—उद्धवस्यात्मज्ञानसिध्या अवधूतेतिहासेऽष्टौ गुरुन् हरिरवर्णयत्।

८—नवभ्यो गुरुभ्य उद्धवस्य विवेकाय शिक्षितमुपदिशत्।

९—कुररादिभ्यः शिक्षितमवधूताच्छ्रुत्वा नारद. कृतार्थोऽभूत्।

१०—देहसम्बन्धादात्मनः संसृतिः स्वतो नेति मतान्तरनिरासतोऽकथयत्।

११—बद्धमुक्तानाम् साधूनाम् च तथा भक्तेर्लक्षणमुद्धवाय भगवानादिदेश।

१२—सत्सङ्गमहिमानमादिश्य कर्मानुष्ठातारस्तत्त्यागाधिकारिणो दर्शिताः।

१३—सत्त्वगुणसेवया ज्ञानोदयः हंसेतिहासेन चित्तगुणविश्लेषवर्णनम्।

१४—भक्तियोग एव परम् श्रेयोनान्यत्। इति साधनैः सह ध्यानयोगः कथितः।

१५—अणिमाद्याः सिद्धयः ससाधनविष्णुपदप्राप्तिविघ्नभूताः कथिताः।

१६—अभिव्यक्तभगवदंशरूपा विभूतय उक्ता उपासनार्थम्।

१७—स्वधर्मे भक्ति लक्षणे पृष्टे ब्रह्मचारिगृहस्थयोर्हंसोक्तम् धर्ममाह।

१८—सविशेषम् वानप्रस्थयतिधर्ममधिकारिविशेषेण कथयत् ।

१९—पूर्वोक्तस्य ज्ञानादेर्दिङ्मोहादिवद् भ्रमकारित्वात् त्यागः ।

२०—अधिकारिभेदेन भक्तिज्ञानक्रियात्मकम् योगमुपादिशत् ।

२१—पूर्वोक्त योग त्रयानाधिकारिणाम् कामिनाम् द्रव्यदेशादीनाम् गुणदोषा दर्शिताः ।

२२—तत्वानाम् मतान्तरेणाविरोधः पुम्प्रकृत्योर्विवेको जन्ममृत्युविधा चोक्ता ।

२३—कदर्याख्यानेन तिरस्कारसहनोपायो भिक्षुगीतेन धिया मनसः संयमः ।

२४—आत्मनः सर्वभावानामागमापायचिन्तया सांख्ययोगेन मनोमोहो निवारितः ।

२५—आत्मनो नैर्गुण्यज्ञानलाभाय चित्तप्रभवाः सत्त्वादिवृत्तीरनेकधाऽकथयत् ।

२६—दुष्टसङ्गेन योगनिष्ठाविघात· साधुसङ्गेन तत्प्राप्तिरित्यैलगीतेन वर्णितम् ।

२७—सद्यश्चित्तप्रसादकः सर्वकामाप्तिहेतुश्च क्रियायोगः साङ्गः प्रोक्तः ।

२८—पूर्वम् विस्तरेणोक्तो ज्ञानयोग एकः सौकर्यार्थम् पुनः संक्षेपेण निगदितः ।

२९—पूर्वम् विस्तरेण प्रोक्तम् भक्तियोगम् संक्षेपेण स्वभक्ताय हरिकथयत् ।

३०—स्वधाम गन्तुमिच्छन् हरिर्मौसलापदेशेन स्वकुलम् सञ्जहार ।

३१—स्वधाम्नि प्रविष्टे हरौ तमनु वसुदेवादयो देहान् जुहुरिति वर्णितम् ।

द्वादशः स्कन्धः

१—मागधान्वये कलिना मलीमसान्तःकरणा भाविनो राजानो निर्दिष्टाः ।

२—कलिदोषवृद्धौ भगवता कल्क्यवतारेणाधार्मिकाणाम् नाशे पुनः कृतयुगागमः ।

३—भूमिगीतै राज्ञाम् मोहादिवर्णनम् तथा दोष भूमिष्ठे कलौ तद्दोष हन्त्री हरेः स्तुतिर्निर्दिष्टा ।

४—नैमित्तिकः प्राकृत आत्यन्तिको नित्य इति चतुरः प्रलयान्प्रदर्श्य तन्निस्तारे भगवत्कथेति सिद्धान्तितम् ।

५—परीक्षितः परब्रह्मोपदेशेन तक्षकसन्दन्शाद्भयनिवारणम् ।

६—परीक्षितो मोक्षस्तत्पुत्र जन्मेजयस्य तक्षकरोषात्सर्पसत्रम् तथा व्यासेन वेदत्रयशाखाविभागश्च तथा गुर्वाज्ञया याज्ञवल्क्यः सूर्यमाराध्य वेदम् लेभे ।

७—अथर्ववेदविस्तारस्तथा पुराणविभागेन तल्लक्षणादि भागवतश्रवणफलम् च निगदितम् ।

८—तपसि तिष्ठतो मार्कण्डेयस्य कामादिभिरसंमोहः, तथा तत्प्रसादार्थमागतयोर्नरनारायणयोः स्तुति. ।

९—भगवन्मायादि दृक्षोर्मुनेर्मिथ्याप्रलयदर्शनेन प्रलयाब्धौ वटपत्रस्थस्य शिशुभूतस्य भगवतो मुखे प्रवेशनिर्गमौ च कथितौ ।

१०—शिव आगत्य मार्कण्डेयाय वरमददात् तेन सह प्रीतिमकरोत् ।

११—उपासनासिद्ध्यै महापुरुषवर्णनम् तथा रवेःप्रतिमासम् पृथक् पृथक् व्यूह कथनम् ।

१२—भागवतोक्तार्थानाम् यथाक्रमम् सक्षेपेण कथनम् ।

१३—पुराणप्रतिपाद्यं देवं नमस्यन्नष्टादशपुराणग्रन्थसंख्यां चाकथयत् ।

श्रीमद्भागवतमें वर्णन किये हुए विषयोंकी सूची ऊपर दी जा चुकी है। इसमें १२ स्कन्ध हैं और कुल मिलाकर १८,००० श्लोक हैं। श्रीमद्भागवतका प्रतिस्पर्धी देवी भागवत नामका भी एक ग्रन्थ है जिसमें १८,००० श्लोक हैं और १२ स्कन्ध हैं। श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरितकी विशेपता है और देवीभागवतमें देवीके चरितकी विशेपता है। शाक्त लोग देवीभागवतको महापुराण मानते हैं और भागवत कहते हैं और वैष्णव लोग श्रीमद्भागवतको महापुराण बतलाते हैं। दोनोंके नाममें भी श्रीमान् और देवीका अन्तर है। श्रीमान् भगवान् विष्णुका नाम है इसलिए श्रीमद्भागवतका अर्थ है वैष्णव-भागवत। नारद-पुराण और पद्मपुराणमें भागवतके जितने लक्षणोंका निर्देश है वह सबके सब वैष्णव भागवतमें पाये जाते हैं। नारदपुराणमें तो श्रीमद्भागवतकी संक्षिप्त विषयसूची भी दी हुई है और पद्मपुराणमें तो माहात्म्य विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इन दोनों पुराणोंके अनुसार महापुराण श्रीमद्भागवत ही सिद्ध होता है। मत्स्यपुराणके मतसे भी यही भागवत पुराण महापुराण ठहरता है। परन्तु मत्स्यपुराणमें एक बात लिखी हुई है जो श्रीमद्भागवतमें नहीं मिलती। उसमें लिखा है कि शारद्वत कल्पमें जो मनुष्य और देवता हुए उन्हींका विस्तृत वृत्तान्त भागवतमें दिया हुआ है। परन्तु प्रचलित श्रीमद्भागवतमें शारद्वत-कल्पका प्रसङ्ग नहीं है किन्तु उसीके प्रमाणसे पाद्म कल्पकी कथा वर्णन की गयी है। इसलिए जान पड़ता है कि मत्स्यपुराणमें या तो शारद्वत-कल्पकी चर्चा प्रक्षिप्त है या शारद्वत और पाद्म एक ही कल्पके दो नाम हैं, या मत्स्यपुराणमें वर्णित भागवत प्रचलित श्रीमद्भागवत नहीं है।

शिवपुराणके एक श्लोकसे यह पता चलता है कि जिस पुराणमें भगवती दुर्गाके चरितका वर्णन हो वह देवीपुराण नहीं है, वही भागवत है। देवीभागवतके पक्षमें महा-पुराणोंमें केवल शिवपुराणकी यह उक्ति है। इसलिए इस स्थलपर महापुराणोंमें श्रीमद्भागवतकी ही सूची दी गयी है। देवीभागवत पुराणकी सूची आगे किसी अध्यायमें हम अलग देंगे।

बत्तीसवाँ अध्याय

वायुपुराण

शिवपुराणके साथ-साथ वायुपुराणका नाम बहुधा विकल्पकी तरह आता है। बङ्गला विश्वकोपकारने दोनों नामोंसे एक ही शिवपुराणकी विषयसूची दी है। परन्तु शिवपुराणवाले अध्यायमें हम यह दिखा आये हैं कि आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलीमें छपे वायुपुराणकी विषयसूची बम्बईवाले शिवपुराणकी विषयसूचीसे नितान्त भिन्न है। वायुपुराणकी जो पोथी हमारे सामने है वह स्वतन्त्र ही पुराण जान पड़ता है। परन्तु वायुपुराणके नामसे जहाँ अठारहों महापुराणोंमें इसकी गिनती की गयी है वहाँ शिवपुराणकी गिनती महापुराणोंमें नहीं रह जाती। मतान्तरसे इस प्रकार वायुपुराण भी महापुराण गिना जाता है। इसमें ११२ अध्याय हैं और १०,९२१ श्लोक हैं। इसकी विषयसूची इस प्रकार है—

१—मङ्गलाचरणम्। कुरुक्षेत्रे सूतस्याऽऽगमनम्। ऋषीणाम् सूतम् प्रति पुराणश्रवण-विषयक. प्रश्न.। सूतोत्पत्तिकथनम्। सूतधर्मनिरूपणम्। व्यासोत्पत्तिप्रकार-वर्णनम्। ऋषिसूतसंवादे वायुऋषिसंवादः। ब्रह्माण्डाद्युत्पत्तिनिरूपणम्। एत-त्पुराणगतकथानामनुक्रमः। आद्यपादाध्ययनस्य फलनिरूपणम्।

२—विश्वसृजाम् सत्रनिरूपणम्। नैमिषारण्यस्य नैमिषमित्यभिधायाः कारणाभिधानम्। विश्वामित्र वसिष्टयो वैरनिरूपणम्। मृगयासञ्चारिणः पुरूरवसो हिरण्मययज्ञवाट आगमनम्। यज्ञवाट हर्तुकामस्य पुरूरवस. कुशवज्रैर्नाशादिवर्णनम्। सत्रवर्णनम्।

३—प्रजापति सृष्टिवर्णनम्।

४—पुराणलक्षणम्। प्रक्रियादिपादचतुष्टयनिरूपणम्। भूतसर्गकथनम्। ब्रह्मादिपदा-नामवयवार्थाभिधानम्। अहङ्कारादीनामुत्पत्तिः। पञ्चमहाभूतानाम् तद्गुणानाम् च निरूपणम्। प्राकृतसर्गवर्णनम्। हिरण्यगर्भस्य जन्मनिरूपणम्।

५—ईशस्य दिनस्वरूपकथनम्। परमेशस्य रात्रिस्वरूपवर्णनम्। क्षोभ्यमाणगुणेभ्यो ब्रह्मादिदेवानामुत्पत्ति·। वाराह कल्पाभिधानम्।

६—वाराहरूपवर्णनम्। पृथिव्यायुद्धप्रकारवर्णनम्। अविद्योत्पत्तिनिरूपणम्। प्राकृत-वैकृतसर्गाणाम् कथनम्। वक्त्रादिभ्यो ब्राह्मणादिवर्णानामुत्पत्तिवर्णनम्।

७—प्रतिसन्धिकीर्तनम्। हिरण्यगर्भस्यरूपवर्णनम्। कल्पलक्षणम्।

८—पृथ्वी सन्निवेशादिवर्णनम्। कृतादियुगानाम् निरूपणम्। मानस सृष्टि निरूप-णम्। युगधर्माणामभिधानम्। प्रादेशादीनाम् लक्षणम्। ओषध्यादीनामुत्पत्ति-निरूपणम्। पृथिविदोहनाद्‌व्रीह्यादिधान्यानाम् प्रादुर्भावः। ब्राह्मणादि वर्णानाम धर्माभिधानम्। आश्रमधर्मनिरूपणम्।

९—देवादिसृष्टिकथनम्। पित्रादीनाम् सम्भवः। पक्षिगणादीनामुत्पत्तिप्रकारवर्णनम्।

ब्रह्मणः सकाशाद्भृग्वादिमानसपुत्राणामुत्पत्तिः। रुद्रोत्पत्तिवर्णनम्। देवीनाम् नाम निरूपणम्। ब्राह्मणादिवर्णानामुत्पत्तिस्थानाभिधानम्।

१०—स्वायम्भुवमनुवंशवर्णनम्। स्वायम्भुवात्प्रियव्रतोत्तानपादयोरुत्पत्तिः आकूतिप्रसूत्यो-रुत्पत्तिनिरूपणम्। दक्षात्प्रसूत्याम् श्रद्धादिदुहितॄणाम् जननम्। श्रद्धादीनाम् धर्मादिकृतम् पत्नीत्वेन सङ्ग्रहणम्। धर्मसर्गवर्णनम्। तामससर्गाभिधानम्। शतरुद्रोत्पत्तिनिरूपणम्। माहेश्वरयोगवर्णनम्। प्राणायामलक्षणम्। प्राणायामा-दीनाम् फलकथनम्।

११—प्राणायामस्य शान्त्यादिप्रयोजनानाम् निरूपणम्। प्राणायामादीनाम् लक्षणम्। प्राणायामदोषाभिधानम्। प्राणायामदोषापनुत्तये चिकित्सा निरूपणम्। योग-प्रवृत्तिलक्षणम्।

१२—योगोपसर्गनिरूपणम्।

१३—योगैश्वर्यनिरूपणम्।

१४—गर्भोत्पत्तिप्रकारवर्णनम्।

१५—पाशुपतयोगनिरूपणम्।

१६—शौचाचारलक्षणम्। भैक्षचर्याभिधानम्। भिक्षुव्रतानाम् कथनम्। भिक्षुनियमाः। मुक्तलक्षणम्।

१७—परमाश्रमविधिकथनम्।

१८—यतिप्रायश्चित्तविधि। पापस्य त्रैविध्यबोधनम्। योगप्रशंसा। व्रतोपव्रतापक्रमे भिक्षूणाम् प्रायश्चित्तम्। स्त्रीगमनादिविषये यतीनाम् प्रायश्चित्तम्। रेतःपाते-भिक्षूणाम् प्रायश्चित्तम्।

१९—अरिष्टनिरूपणम्।

२०—ओङ्कारप्राप्तिलक्षणम्।

२१—कल्पानाम् निरूपणम्। मन्वन्तराणाम् कालसंख्याभिधानम्। वाराहादिकल्पा-नामभिधानम्।

२२—कल्पसंख्यानिरूपणम्।

२३—माहेश्वरावतारयोगः।

२४—शेषपर्यङ्के शयानस्य विष्णोर्ब्रह्मणासह संवादः। ब्रह्मण उदरे विष्णुकृतसप्तद्वीपा-वलोकनवर्णनम्। विष्णोरुदरे ब्रह्मणः प्रवेशः। विष्णोर्नाभिकमलाद्ब्रह्मणः प्रादु-र्भाव॰। ब्रह्मण उपकण्ठे शिवस्याऽऽगमनम्। प्रसङ्गाच्छिवमहिमवर्णनम्। विष्णुकृत शिवस्तवनिरूपणम्।

२५—शङ्कराद्ब्रह्मविष्ण्वोर्वरप्राप्तिनिरूपणम्। प्रसङ्गाच्छिवविष्ण्वोरैक्यवर्णनम्। मधुकैट-भोत्पत्तिवर्णनम्। विष्णुजिष्णुकृतो मधुकैटभयोर्वधः। ब्रह्मणः सकाशादेकादश-रुद्रोत्पत्ति। भृग्वादिमानसपुत्राणामुत्पत्ति निरूपणम्।

२६—स्वरोत्पत्तिनिरूपणम्।

२७—नीललोहितस्य नामसम्प्राप्तिकारणाभिधानम्। अप्सु मूत्रपुरीषादिकरणे निषेध-

निरूपणम् । छायादिषु पुरीषाद्युत्सर्गे निषेधकथनम् । महादेवतनुवर्णनम् ।

२८—ऋषिसर्गनिरूपणम् । मार्कण्डेयोत्पत्तिकथनम् । अङ्गिरस सकाशात्सिनीवाल्यादीनामुत्पत्तिः । अत्रेरनसूयायाम् सत्यनेत्रादिपुत्राणाम् जननम् । षष्ठि सहस्राणाम् वालखिल्यानामुत्पत्तिः ।

२९—अग्निवंशवर्णनम । स्वाहा पुत्राणां कथनम् । देवादीनामग्न्यभिधानम् । हव्यवाहन पुत्राणां कथनम् । पावकाग्निपुत्राणां निरूपणम् ।

३०—पितृवंशवर्णनम् । अग्निष्वात्ता बर्हिषद् इति भेदेन पितृणां द्वैविध्यबोधनम् । हिमवतो मेनायां मैनाकोत्पत्तिनिरूपणम् । दक्षकृतसत्यपमानवर्णनम् । अपमानात्सत्या देहत्यागः । सतीदेहत्यागश्रवणात्सञ्जातकोपशङ्कराद्दक्षस्य शापः । वैवस्वतेऽन्तरे हिमवतो मेनायां सतीजन्मकथनम् । प्रचेतसः सकाशाद्दक्षजन्मनिरूपणम् । दक्षयज्ञवर्णनम् । यज्ञविध्वंसनाय वीरभद्रोत्पत्तिः । वीरभद्रकृतदक्षयज्ञध्वंसवर्णनम् । वीरभद्राद्दक्षस्य वरप्राप्तिः । दक्षकृतशिवस्तुतिनिरूपणम् । ज्वरोत्पत्तिवर्णनम् । शिवस्तुतेः फलश्रुतिनिरूपणम् ।

३१—देववंशवर्णनम् । देवयोनीनामभिधानम् । कालावस्थानिरूपणम् । संवत्सरादीनां निरूपणम् ।

३२—प्रणवविनिश्चयः । युगधर्माणां निरूपणम् । युगप्रमाणाभिधानम् । प्रक्रियादिपादचतुष्टयस्य युगसंख्यया साम्यकथनम् । एतत्पुराणसंख्यानिरूपणम् ।

३३—स्वायम्भुववंशवर्णनम् । सप्तद्वीपनिवेशनादिप्रकारवर्णनम् । नाभेः सर्गनिरूपणम् ।

३४—जम्बूद्वीपवर्णनम् । वर्षपर्वतानां निरूपणम् । इलावृतादिवर्षाणां कथनम् । ब्रह्मण उत्पत्ति वर्णनम् । मेरुपर्वतवर्णनम् । ब्रह्मसभावर्णनम् । इन्द्राद्यष्टलोकपालानां महाविमानानां वर्णनम् ।

३५—मेरुमूलस्याऽऽयाम निरूपणम् । मर्यादापर्वतानामभिधानम् । जम्बू नदी वर्णनम् । केतुमालद्वीपवर्णनम् ।

३६—चैत्ररथादिदेवाक्रीडनकानां निरूपणम् । अरुणोदादिसरसां कथनम् । शीतान्तादिपर्वतानां निरूपणम् ।

३७—भुवनविन्यासः । श्रीसरः सरोवर्णनम् । श्रीवनादीनां निरूपणम् । कश्यपाश्रमवर्णनम् । एकशिलायाभूमेर्वर्णनम् ।

३८—उदुम्बरवनवर्णनम् । कर्दमस्याऽऽश्रमवर्णनम् । विल्वस्थल्यादीनाम् वर्णनम् । किंशुकवनवर्णनम् । बृहस्पतेराश्रमवर्णनम् । शुक्राश्रमादीनां निरूपणम् ।

३९—शीतान्तादिपर्वतानां वर्णनम् । पारिजातवनवर्णनम् । महानीलशैलवर्णनम् । करञ्जादिपर्वतानां वर्णनम् । सप्तर्षीणामाश्रमनिरूपणम् । श्वेतोदरादिपर्वतानां तत्रस्थपुरादीनां च वर्णनम् ।

४०—देवकूटस्थपक्षिराजभवनवर्णनम् । कालकेयदैत्यानां नगरवर्णनम् । औल्कचराक्षसानां पुरवर्णनम् । महादेवस्य भूतवटावास वर्णनम् ।

४१—कैलासवर्णनम् । पुष्पकवर्णनम् । पद्मादिनिधीनां निरूपणम् । मन्दाकिन्यावर्ण-

नम् । महामाल्यादियक्षाणां निरूपणम् । रुद्रस्याऽऽक्रीडभूमीनां वर्णनम् । शरवण-स्थान निरूपणम् । मृकण्डाद्यृष्याश्रमाणां निरूपणम् । विष्ण्वादिदेवतानां स्थाना-भिधानम् । पृथिव्या आकारनिरूपणम् ।

४२—आकाशगङ्गा वर्णनम् ।

४३—गण्डिकावर्णनम् भद्राश्वस्थित कुलपर्वतानां निरूपणम् । जनपदानां निरूपणम् । महानदीनामभिधानम् । भद्राश्वस्थजनानामायुष्प्रमाणकथनम् ।

४४—केतुमालवर्णनम् । केतुमालस्थ कुलपर्वताभिधानम् । तत्रस्थजनपदानां निरूपणम् । कम्बलादिनदीनां प्रतिपादनम् ।

४५—भारतवर्ष वर्णनम् । इन्द्रद्वीपादिभेदेन भारतवर्षस्य नवभेदा । महेन्द्रादिकुल-पर्वतानां निरूपणम् । भारतवर्षस्थ जनपदानामभिधानम् ।

४६—किंपुरुषादि वर्षाणां वर्णनम् ।

४७—कैलासवर्णनम् । चैत्ररथवननिरूपणम् । मानससरोवरवर्णनम् । गङ्गाया उत्पत्तिः । नलिन्यादिभेदेन गङ्गायाः सप्तप्रवाहाः । तत्प्रवाहवर्णनम् च ।

४८—जम्बूद्वीपान्तर्गताङ्ग द्वीपादीनां कथनम् । अगस्त्यभवनवर्णनम् । लङ्कावर्णनम् । गोकर्णवर्णनम् । वराह पर्वत वर्णनम् ।

४९—प्लक्षद्वीपवर्णनम् । गोमेदकादिपर्वतानां निरूपणम् । प्लक्षद्वीपस्थवर्षाणामभिधानम् । शाल्मलद्वीपवर्णनम् । कुशद्वीपवर्णनम् । क्रौञ्चद्वीपस्य विस्तारवर्णनम् । शाकद्वीप-निरूपणम् । सुकुमार्यादिनदीनां कथनम् । समुद्रादिशब्दानां यौगिकार्थाभिधानम् ।

५०—अतलादीनां वर्णनम् । सूर्याचन्द्रमसोर्गति निरूपणम् । भूर्लोकादीनां निरूपणम् । ज्योतिर्गणप्रचारस्य प्रमाणनिरूपणम् । सूर्यम् खादितुमिच्छतां मन्देहराक्षसा-नाङ्गायत्र्यभिमन्त्रितजलप्रक्षेपेण नाश इत्यादि कथनम् । प्रातस्तनादिकालानां नि पणम् । पितृयाणमार्गः देवयानमार्गोभिधानम् । विष्णुपदनिरूपणम् ।

५१—ज्योतिष्प्रचारः । मेघेभ्यो जलवर्षण प्रकार निरूपणम् । घटानां त्रैविध्यबोधनम् । सूर्यरथस्य सन्निवेश वर्णनम् ।

५२—सूर्यरथस्याधिष्ठातृदेवतानां निरूपणम् । सूर्याश्वानां गति निरूपणम् । सोमरथ-वर्णनम् । यय्वादिसंज्ञकानां चन्द्राश्वानामभिधानम् । सोमकलानां वृद्धिक्षय विषये कारणाभिधानम् । स्वर्भान्वादिग्रहाणां रथवर्णनम् । शिशुमारवर्णनम् ।

५३—वैद्युताद्यग्नीनां लक्षणम् । ग्रहाणां प्रकृतिनिरूपणम् । सूर्यमहिमवर्णनम् । सूर्या-दिग्रहाणां मण्डलप्रमाणनिरूपणम् । विशाखादिषु सूर्यादिग्रहाणामुत्पत्तिरिति-निरूपणम् । ज्योतिर्गणविचिन्तने पञ्चहेतवः ।

५४—ऋषिसूतसंवादे वसिष्ठकार्तिकेय संवादः । वसिष्ठकृत कार्तिकेयस्तुतिः । कैलास-शिखरवर्णनम् । कण्ठनीलिमानं जिज्ञासमानाया. पार्वत्याः शङ्करम् प्रति प्रश्नः । कालकूटविषात् त्राणमेषितां ब्रह्मादि देवानां शङ्करोपकण्ठे गमनम् । ब्रह्मादिदेवकृत स्तुति निरूपणम् च देवप्रार्थनया शङ्करकृत विषपानवर्णनम् । सुरगणकृत नील-कण्ठस्तवाभिधानम् । एतदध्यायस्य फलश्रुतिः ।

५५—ब्रह्मविष्णुकृतशिवलिङ्ग दर्शनवर्णनम् । तदन्तर्ज्ञानाय ब्रह्मविष्ण्वोर्गमननिरूपणम् । अनधिगतलिङ्गान्तब्रह्मकृतशिवस्तुतिः । स्तुतिप्रीतशङ्कराद्ब्रह्मविष्ण्वोर्वरप्राप्ति वर्णनम् । एतत्स्तवपाठस्य फलाभिधानम् ।

५६—सोमादित्याभ्याम् सह्पैलस्य संयोगनिरूपणम् । सौम्यादिपितृजातीनामभिधानम् । संवत्सरादियुगात्मकानां निरूपणम् । सूर्यवीर्येणाऽऽप्यायित सोमतनुवर्णनम् । इक्ष्वादिपर्वणां निरूपणम् । मासश्राद्धभुजां पितॄणामभिधानम् । कर्मभ्रष्टानां गतिनिरूपणम् ।

५७—निमेषादिकालनिरूपणम् । कृतादियुगाभिधानम् । तत्परिमाणनिरूपणम् । मन्वन्तरसंख्याभिधानम् । त्रेतायुगधर्मनिरूपणम् । यज्ञप्रवृत्तिनिरूपणम् ।

५८—युगधर्माभिधानम् ।

५९—दिव्यमानुषभावानां निरूपणम् । धर्मादीनां लक्षणम् । यज्ञ लक्षणम् । दयादीनां लक्षणाभिधानम् । ऋषिजातीनां निरूपणम् । धाडादित्यवर्णनम् । सूत्रलक्षणम् ।

६०—वेदविभागकथनम् । जनककृताश्वमेधे याज्ञवल्क्यस्य ऋषिभिः सह संवाद. । ततो याज्ञवल्क्येन पराभूतऋषिगणे संविवादयिषोः शाकल्यस्य याज्ञवल्क्य शापान्नाश इत्यादिकथनम् । वालुकेश्वर दर्शनाद्ब्रह्मघ्नानां मुक्तिनिरूपणम् ।

६१—शाखा भेदनिरूपणम् । ऋगादीनां संख्याभिधानम् । अष्टादशविद्यानां कथनम् । ब्रह्मर्ष्यादीनां लक्षणम् । मन्वन्तराणां सख्यानिरूपणम् । मन्वन्तरप्रतिसन्धानलक्षणम् । प्रजापतिवंशानुकीर्तनम् ।

६२—स्वायम्भुवादिमनूनां सर्गनिरूपणम् । पृथुजन्मकथनम् । सूतमागधयोरुत्पत्तिवर्णनम् । सूतमागधाभ्यामनूपमगधदेशयोर्दानवर्णनम् । पृथिविदोहननिरूपणम् ।

६३—पृथोर्यशोवर्णनम् । पृथिवीदोहने वत्सविशेषाणां दोग्धादीनां च क्रमनिरूपणम् । पृथुवंशानुकीर्तनम् । दक्षजन्मकथनम् ।

६४—वैवस्वत सर्गवर्णनम् ।

६५—भृग्वादीनामुत्पत्तिनिरूपणम् । शुक्रोत्पत्तिकथनम् । तत्पुत्राणामभिधानम् । इन्द्रकृतवरूत्रिपुत्राणां नाश. । भृगुवंशवर्णनम् । अङ्गिरसोवंशनिरूपणम् । मारीचवंशकथनम् । नारदजन्माभिधानम् । दक्षवंशनिरूपणम् ।

६६—धर्मवंशकथनम् । सोमवंशनिरूपणम् । रौद्रादिदिनमुहूर्त्तानां निरूपणम् । जारूवादिस्थानानां कथनम् । धात्रादिद्वादशादित्यानामभिधानम् एकादशरुद्राणां कथनम् । ब्रह्मादिदेवानां तनुवर्णनम् । ब्रह्मादीनामशावतारनिरूपणम् प्रसङ्गाद्वामनावतारवर्णनम् । योगेश्वरमहिमवर्णनम् ।

६७—ब्रह्मण सकाशादाकूतादिपुत्राणामुत्पत्तिः । जयाख्यहरदानामुत्पत्तिवर्णनम् । रुचेरजितायामजिताख्यमाभसपुत्राणां जनिनिरूपणम् । प्रसङ्गाद्धिरण्याक्षहिरण्यकशिपोर्जन्मकथनम् । तदपत्यानां निरूपणम् । दितिगर्भस्येन्द्रकृतसप्तधाछेदनवर्णनम् मरुताद्युत्पत्तिकथनम् ।

नम्। महामाल्यादियक्षाणां निरूपणम्। रुद्रस्याऽऽक्रीडभूमीनां वर्णनम्। शरवणस्थान निरूपणम्। मृकण्डाद्यृष्याश्रमाणां निरूपणम्। विष्ण्वादिदेवतानां स्थानाभिधानम्। पृथिव्या आकारनिरूपणम्।

४२—आकाशगङ्गा वर्णनम्।

४३—गण्डिकावर्णनम् भद्राश्वस्थित कुलपर्वतानां निरूपणम्। जनपदानां निरूपणम्। महानदीनामभिधानम्। भद्राश्वस्थजनानामायुष्प्रमाणकथनम्।

४४—केतुमालवर्णनम्। केतुमालस्थ कुलपर्वताभिधानम्। तत्रस्थजनपदानां निरूपणम्। कम्बलादिनदीनां प्रतिपादनम्।

४५—भारतवर्ष वर्णनम्। इन्द्रद्वीपादिभेदेन भारतवर्षस्य नवभेदा। महेन्द्रादिकुलपर्वतानां निरूपणम्। भारतवर्षस्थ जनपदानामभिधानम्।

४६—किंपुरुषादि वर्षाणां वर्णनम्।

४७—कैलासवर्णनम्। चैत्ररथवननिरूपणम्। मानससरोवरवर्णनम्। गङ्गाया उत्पत्तिः। नलिन्यादिभेदेन गङ्गायाः सप्तप्रवाहाः। तत्प्रवाहवर्णनम् च।

४८—जम्बूद्वीपान्तर्गताङ्ग द्वीपादीनां कथनम्। अगस्त्यभवनवर्णनम्। लङ्कावर्णनम्। गोकर्णवर्णनम्। वराह पर्वत वर्णनम्।

४९—प्लक्षद्वीपवर्णनम्। गोमेदकादिपर्वतानां निरूपणम्। प्लक्षद्वीपस्थवर्षाणामभिधानम्। शाल्मलद्वीपवर्णनम्। कुशद्वीपवर्णनम्। क्रौञ्चद्वीपस्य विस्तारवर्णनम्। शाकद्वीपनिरूपणम्। सुकुमार्यादिनदीनां कथनम्। समुद्रादिशब्दानां यौगिकार्थाभिधानम्।

५०—अतलादीनां वर्णनम्। सूर्याचन्द्रमसोर्गति निरूपणम्। भूर्लोकादीनां निरूपणम्। ज्योतिर्गणप्रचारस्य प्रमाणनिरूपणम्। सूर्यम् खादितुमिच्छतां मन्देहराक्षसानाङ्गायन्यभिमन्त्रितजलप्रक्षेपेण नाश इत्यादि कथनम्। प्रातस्तनादिकालानां नि पणम्। पितृयाणमार्गः देवयानमार्गाभिधानम्। विष्णुपदनिरूपणम्।

५१—ज्योतिष्प्रचारः। मेघेभ्यो जलवर्षण प्रकार निरूपणम्। घटानां त्रैविध्यबोधनम्। सूर्यरथस्य सन्निवेश वर्णनम्।

५२—सूर्यरथस्याधिष्ठातृदेवतानां निरूपणम्। सूर्याश्वानां गति निरूपणम्। सोमरथवर्णनम्। यय्वादिसंज्ञकानां चन्द्राश्वानामभिधानम्। सोमकलानां वृद्धिक्षय विषये कारणाभिधानम्। स्वर्भान्वादिग्रहाणां रथवर्णनम्। शिशुमारवर्णनम्।

५३—वैद्युताद्यग्नीनां लक्षणम्। ग्रहाणां प्रकृतिनिरूपणम्। सूर्यमहिमवर्णनम्। सूर्यादिग्रहाणां मण्डलप्रमाणनिरूपणम्। विशाखादिषु सूर्यादिग्रहाणामुत्पत्तिरितिनिरूपणम्। ज्योतिर्गणविचिन्तने, पञ्चहेतवः।

५४—ऋषिसूतसंवादे वसिष्ठकार्तिकेय संवादः। वसिष्ठकृत कार्तिकेयस्तुतिः। कैलासशिखरवर्णनम्। कण्ठनीलिमानं जिज्ञासमानायाः पार्वत्याः शङ्करम् प्रति प्रश्न.। कालकूटविषात् त्राणमेप्सितां ब्रह्मादि देवानां शङ्करोपकण्ठे गमनम्। ब्रह्मादिदेवकृत स्तुति निरूपणम् च देवप्रार्थनया शङ्करकृत विषपानवर्णनम्। सुरगणकृत नीलकण्ठस्तवाभिधानम्। एतदध्यायस्य फलश्रुतिः।

५५—ब्रह्मविष्णुकृतशिवलिङ्ग दर्शनवर्णनम् । तदन्तर्ज्ञानाय ब्रह्मविष्ण्वोर्गमननिरूपणम् । अनधिगतलिङ्गान्तब्रह्मकृतशिवस्तुतिः । स्तुतिप्रीतशङ्कराद्ब्रह्मविष्ण्वोर्वरप्राप्ति वर्णनम् । एतत्स्तवपाठस्य फलाभिधानम् ।

५६—सोमादित्याभ्याम् सहैलस्य संयोगनिरूपणम् । सौम्यादिपितृजातीनामभिधानम् । संवत्सरादियुगात्मकानां निरूपणम् । सूर्यवीर्येणाऽऽप्यायित सोमतनुवर्णनम् । इक्ष्वादिपर्वणां निरूपणम् । मासश्राद्धभुजां पितृणामभिधानम् । कर्मभ्रष्टानां गतिनिरूपणम् ।

५७—निमेषादिकालनिरूपणम् । कृतादियुगाभिधानम् । तत्परिमाणनिरूपणम् । मन्वन्तरसंख्याभिधानम् । त्रेतायुगधर्मनिरूपणम् । यज्ञप्रवृत्तिनिरूपणम् ।

५८—युगधर्माभिधानम् ।

५९—दिव्यमानुषभावानां निरूपणम् । धर्मादीनां लक्षणम् । यज्ञ लक्षणम् । दयादीनां लक्षणाभिधानम् । ऋषिजातीनां निरूपणम् । वाडादित्यवर्णनम् । सूत्रलक्षणम् ।

६०—वेदविभागकथनम् । जनककृताश्वमेधे याज्ञवल्क्यस्य ऋषिभिः सह संवाद. । ततो याज्ञवल्क्येन पराभूतऋषिगणे संविवादयिषोः शाकल्यस्य याज्ञवल्क्य शापान्नाश इत्यादिकथनम् । वालुकेश्वर दर्शनाद्ब्रह्मघ्नानां मुक्तिनिरूपणम् ।

६१—शाखा भेदनिरूपणम् । ऋगादीनां संख्याभिधानम् । अष्टादशविद्यानां कथनम् । ब्रह्मर्ष्यादीनां लक्षणम् । मन्वन्तराणां सख्यानिरूपणम् । मन्वन्तरप्रतिसन्धानलक्षणम् । प्रजापतिवंशानुकीर्तनम् ।

६२—स्वायम्भुवादिमनूनां सर्गनिरूपणम् । पृथुजन्मकथनम् । सूतमागधयोरुत्पत्तिवर्णनम् । सूतमागधाभ्यामनूपमगधदेशयोर्दानवर्णनम् । पृथिविदोहननिरूपणम् ।

६३—पृथोर्यशोवर्णनम् । पृथिवीदोहने वत्सविशेषाणां दोग्धादीनां च क्रमनिरूपणम् । पृथुवंशानुकीर्तनम् । दक्षजन्मकथनम् ।

६४—वैवस्वत सर्गवर्णनम् ।

६५—भृग्वादीनामुत्पत्तिनिरूपणम् । शुक्रोत्पत्तिकथनम् । तत्पुत्राणामभिधानम् । इन्द्रकृतवरूत्रिपुत्राणां नाशः । भृगुवंशवर्णनम् । अङ्गिरसोवंशनिरूपणम् । मारीचवंशकथनम् । नारदजन्माभिधानम् । दक्षवंशनिरूपणम् ।

६६—धर्मवंशकथनम् । सोमवंशनिरूपणम् । रौद्रादिदिनमुहूर्तानां निरूपणम् । जारद्गवादिस्थानानां कथनम् । धात्रादिद्वादशादित्यानामभिधानम् एकादशरुद्राणां कथनम् । ब्रह्मादिदेवानां तनुवर्णनम् । ब्रह्मादीनामंशावतारनिरूपणम् प्रसङ्गाद्वामनावतारवर्णनम् । योगेश्वरमहिमवर्णनम् ।

६७—ब्रह्मण सकाशादाकूतादिपुत्राणामुत्पत्तिः । जयाख्यहरदानामुत्पत्तिवर्णनम् । रुचेरजितायामजिताख्यमानसपुत्राणां जनिनिरूपणम् । प्रसङ्गाद्धिरण्याक्षहिरण्यकशिपोर्जन्मकथनम् । तदपत्यानां निरूपणम् । दितिगर्भस्येन्द्रकृतसप्तधाछेदनवर्णनम् मरुतााद्युत्पत्तिकथनम् ।

६८—दनुवंशवर्णनम् । दनोः प्रधानपुत्राणामभिधानम् । एकाक्षादिदनुपुत्राणां निरूपणम् ।

६९—मौनेयाख्यदेवगन्धर्वादीनां निरूपणम् । गन्धर्वदुहितॄणां कथनम् । चित्राङ्गदादिगन्धर्वाणामभिधानम् । किन्नरगणप्रतिपादनम् । मेनकाद्यप्सरसामभिधानम् । पर्वतनारदयोः सम्भूतिकथनम् । विनतावंशवर्णनम् । राक्षसादीनां सर्गनिरूपणम् । एतध्यायस्य पठनफलम् ।

७०—सोमादीनामाधिपत्यकथनम् । कश्यपाद्वत्सरासितसंज्ञक पुत्रयोरुत्पत्तिस्तद्वंशवर्णनम् च । वैश्रवणोत्पत्तिकथनम् । रावणकुम्भकर्णादीनां जन्माभिधानम् । यातुधानादिराक्षसजातीनां निरूपणम् । अत्रिवंशानुकीर्तनम् । दत्तात्रेयादीनामुत्पत्तिनिरूपणम् । द्वैपायनादरण्यां शुकजन्मकथनम् । भूरिश्रव आदीनां शुकपुत्राणां निरूपणम् ।

७१—पितृसर्गनिरूपणम् । श्राद्धदानप्रशंसा । ऋषिसूतसंवादेशंयुबृहस्पतिसंवादः । वैराजादीनामुत्पत्तिकथनम् । श्राद्धाचरणे कारणाभिधानम् । योगिभ्यः श्राद्धदाने महाफलम् । तदलाभे ब्रह्मचार्यादीनां निरूपणम् ।

७२—पितृगणानां निरूपणम् । प्रसङ्गान्मेनोत्पत्तिकथनम् । हिमवतः एकांशान्मेनायां मेनाकोत्पत्तिः । अपर्णादिकन्यानां जन्मकथनम् । अपर्णादिकन्यानां महादेवादिकृतं पत्नीत्वेन ग्रहणम् । रतिकाले विघ्नं कुर्वतोऽग्नेरपर्णायाः शापः । शरवणे कार्तिकेयोत्पत्तिनिरूपणम् ।

७३—अच्छोदसरोवर्णनम् । अग्निष्वात्तादिपितॄणां तत्कन्यानां च निरूपणम् । पितृप्रसादादैश्वर्यप्राप्तिनिरूपणम् ।

७४—पितृपात्राणामभिधानम् । पितृस्थाननिरूपणम् । सप्तार्चिर्मन्त्र जपस्य फलकथनम् ।

७५—बलिपात्राणां कीर्तनम् । पितृभ्यो माल्यादिदानाल्लक्ष्म्यादिप्राप्तिनिरूपणम् । पितृभ्योऽन्नदानम् । पिण्डदानविधिनिरूपणम् । श्राद्धेवर्जनीयानि । श्राद्धकर्तृनियमाः । होममन्त्राणामभिधानम् । यज्ञियवृक्षाणां निरूपणम् ।

७६—विश्वेदेवानामुत्पत्तिः । ब्रह्मणः सकाशाद्विश्वेदेवानां वरप्राप्तिः । पञ्चमहायज्ञानां कर्तव्यत्वेन बोधनम् । शूद्रस्य पञ्चयज्ञकरणेऽभ्यनुज्ञा । अग्न्यादिषु पिण्डप्रक्षेपविधि कथनम् । ब्राह्मणविसर्जनम् ।

७७—अमरकण्टकादिस्थानविशेषेषु पिण्डदानात्फलाधिक्यबोधनम् । पुष्करादितीर्थेषु श्राद्धाचरणात्पितॄणामक्षयतृप्तिः । अजतुङ्गादितीर्थादिषु श्राद्धदानात्पुण्याधिक्य कथनम् । कालञ्जरादिदेशेषु श्राद्धाचरणात्फलानन्त्याभिधानम् । कनकनन्द्यादितीर्थानां निरूपणम् । अश्रद्दधानादयस्तीर्थफलभाजो न भवन्तीत्यादिनिरूपणम् ।

७८—श्राद्धोपादेयानि । श्राद्धेऽपासनीयानि । प्रसङ्गाद्द्रव्यशुद्धिनिरूपणम् । शौचाचारादिविधिकथनम् ।

७९—श्राद्धे ब्राह्मण परीक्षणम् । मृताशौचजननाशौचयोरभिधानम् । शौचाचारविधि कथनम् । पुष्पादिद्रव्याणां शुद्धिः । आचमनविधिः । पंक्तिपावनानां निरूपणम् ।

श्राद्धे वर्ज्यब्राह्मणानामभिधानम्। श्राद्धोच्छिष्टान्नदाने दोषनिरूपणम्। सव्रतादीनां प्रशंसा।

८०—पितृुद्देश्यकानां नानाविधदानानां निरूपणम्। तद्दानफलकथनम् च।

८१—अष्टकाश्राद्धफलनिरूपणम्। तिथिविशेषे श्राद्धफलवर्णनम्।

८२—नक्षत्रविशेषे श्राद्धफलनिरूपणम्।

८३—पितृ तृप्तिसाधन द्रव्याणामभिधानम्। गयाश्राद्धनिरूपणम्। ब्रह्मकुण्डादितीर्थविशेषे श्राद्धफलवर्णनम्। गयाकूपे सवर्णमित्रादीनुद्दिश्य पिण्डपातने मित्रादीनां मोक्ष.। पित्र्युद्देश्यकवृषोत्सर्गस्य फलाभिधानम्। श्राद्धार्हब्राह्मणां प्रतिपादनम्। अश्रद्धादीनां निरूपणम्। वेदपारगादिब्राह्मणानां लक्षणम्। एतच्छ्राद्धकल्पस्य पठनफलम्। देवकार्यापेक्षया पितृकार्यस्य महत्त्वबोधनम्।

८४—वरुणवंशवर्णनम्। त्वष्टुरुत्पत्तिकथनम्। मार्तण्ड इति सञ्ज्ञायाः कारणाभिधानम्। मार्तण्डवंशनिरूपणम्। संज्ञाकृतवडवारूपग्रहण प्रकारवर्णनम्। संज्ञातो यमस्य शापः। अश्विनी सुतयोर्जन्मकथनम्।

८५—वैवस्वतमनुवंशवर्णनम्। नवानामिक्ष्वाक्वादिपुत्राणां निरूपणम्। इलोत्पत्यभिधानम्। सुद्युम्नस्य स्त्रीभावे कारणाभिधानम्।

८६—वैवस्वतमनुवंशाभिधानम्। स्वरमण्डलवर्णनम्। षड्जादिस्वराणां निरूपणम्। गान्धारग्रामिकाणां कथनम्। मूर्छनालक्षणाभिधानम्। स्वरदेवतानां निरूपणम्।

८७—गीतालङ्कारनिर्देशः। वर्णानां रोहणावरोहाभिधानम्। स्थापनादिभेदेन चतुर्णामलङ्काराणां निरूपणं तल्लक्षणाभिधानम् च। अलङ्कारप्रयोजनकथनम्। अलङ्काराद्रागोत्पत्तिकथनम्।

८८—वैवस्वतमनुवंशवर्णनम्। इक्ष्वाकुवंशनिरूपणम्। कुवलाश्वकृत धुन्धुदैत्यस्य वधः। दृढाश्वादिकुवलाश्व पुत्राणामभिधानम्। मान्धातृवंशवर्णनम्। त्रिशंङ्क्वाख्यानम्। हरिश्चन्द्रजन्मकथनम्। हरिश्चन्द्रवंशनिरूपणम्। सगरोत्पत्तिः। सगरकृतहयमेधयज्ञवर्णनम्। कपिलकृतः सगरपुत्राणां नाश.। तदुद्धरणाय गङ्गानयनवर्णनम्। भगीरथवंशवर्णनम्। श्रीरामचरितवर्णनम्।

८९—निमिवंशवर्णनम्। जनकजन्मनिरूपणम् तद्वंशवर्णनम् च सीताया उत्पत्तिकथनम्। कुशध्वजवंशनिरूपणम्।

९०—सोमजन्मकीर्तनम्, सोमकृत राजसूययज्ञ वर्णनम्। ताराहरणादिवर्णनम्। सोमपुत्रस्य बुधस्य जन्मादिकथनम्। सोमजन्मश्रवणफलम्।

९१—सोमवंशानुकीर्तनम्। पुरूरवस आख्यानम्। गन्धर्वदत्तवरस्य पुरूरवसो गन्धर्वलोक प्राप्तिः। आयुराद्युर्वशी पुत्राणां कथनम्। भृगुवंशनिरूपणं परशुरामोत्पत्तिकथनम् च। विश्वामित्रस्य वंशवर्णनम्। दानप्रशंसा।

९२—आयोर्वंशवर्णनम्। प्रसङ्गाद्धन्वन्तर्युत्पत्तिकीर्तनम्। धन्वन्तरेर्विष्णुतो वरप्रदानम्। वाराणस्यां शङ्करावासस्य कारणाभिधानम्।

९३—सोमवंशवर्णनम् । नहुषवंशाभिधानम् । ययातिचरितम् । तच्चरितश्रवणफलम् ।

९४—यदुवंशवर्णनम् । कार्तवीर्योत्पत्तिकथनम् । कार्तवीर्यप्रभाववर्णनम् । आपवात्कार्तवीर्यस्य शापः । कार्तवीर्यवंशाभिधानम् । कार्तवीर्य जन्म कथनफलम् ।

९५—कार्तवीर्यकृतापवभुवनदाहे प्रयोजनकथनम् । वृष्णिवंशाभिधानम् । ज्यामघवृत्तानुकीर्तनम् ।

९६—देवावृधचरितनिरूपणम् । स्यमन्तकोपाख्यानम् । बलभद्राद्दुर्योधनस्य गदाविद्याप्राप्तिः । अक्रूरवंशनिरूपणम् । शूराद्भोजायां वसुदेवोत्पत्तिः । कृष्णजन्माभिधानम् । कृष्णवंशानुकीर्तनम् ।

९७—सङ्कर्षणादिवंशवीराणां निरूपणम् । श्रीकृष्णमहिमवर्णनम् । रसादिभ्यः शोणिताद्युत्पत्तिकथनम् । गर्भप्रवृत्यभिधानम् । विष्णोर्नारसिंहाद्यवतारचरितवर्णनम् । देवदैत्ययोर्युद्धवर्णनम् । काव्यमातृतो दैत्येभ्योऽभयदानादिनिरूपणम् । कृतस्त्रीवधं विष्णुं प्रति भृगोःशापः । काव्यमातृसञ्जीवनादिवर्णनम् । शुक्रकृतशिवस्तुतिकथनम् ।

९८—काव्योपरि शङ्करस्यानुग्रहः । शुक्ररूपेण गुरुकृतदैत्यवञ्चनादिवर्णनम् । दैत्यान्प्रति शुक्रस्योपदेशः शुक्रयोरूपदर्शनाद्दैत्यानां सम्भ्रान्तिः । दैत्यान्प्रति शुक्रशापादिनिरूपणम् । प्रसङ्गाद्वामनकृतबलिबन्धनादिवर्णनम् । दत्तात्रेयाद्यवतराणाम् निरूपणम् ।

९९—तुर्वसोर्वंशवर्णनम् । सभानराद्यनुपुत्राणां कथनम् । अङ्गवङ्गादिबलिपुत्राणां जन्मनिरूपणम् । दीर्घतमस उत्पत्तिकथनम् । अङ्गराजस्य वंशाभिधानम् । पुरोर्वंशवर्णनम् । परीक्षितस्य वंशनिरूपणम् । इक्ष्वाकुवंशनिरूपणम् । मागधेयवंश वर्णनम् । कलिधर्मनिरूपणम् । क्षात्रवंश प्रवर्तकानां राज्ञां निरूपणम् ।

१००—वैवस्वतमन्वन्तरीय सप्तर्षीणां निरूपणम् । सावर्णमनुवंशवर्णनम् । मन्वन्तरनिसर्गनिरूपणम् । देवगणानां निरूपणम् । ब्रह्मणोदिनप्रमाणकथनम् । जगत्प्रलयवर्णनम् । हिरण्यगर्भस्वरूपाभिधानम् । ब्रह्मणो रात्रिक्षये पुनर्भूतसर्गादिकथनम् । निमेषादिकालविशेषस्य लक्षणाभिधानम् । ब्रह्मण आयुष्प्रमाण निरूपणम् ।

१०१—भूर्लोकादिष्व्यवस्थावर्णनम् । वैराजानामाहारादिकथनम् । ब्रह्मपदनिरूपणम् । परार्धादीनां परिसंख्याभिधानम् । परमाण्वादीनां लक्षणम् । सूर्यमहीतलयोर्मध्येऽवकाशप्रमाणाभिधानम् । महर्लोकादीनां स्थितिप्रकारवर्णनम् । रौरवादिनरकाणां निरूपणम् । पापविशेषे नरकविशेषाभिधानम् । भूर्लोकादिलोकानां परस्परयान्तर प्रमाणनिरूपणम् । क्षेत्रज्ञादीनामुत्पत्तिकथनम् । त्र्यम्बकपुरवर्णनम् । रुद्रसालोक्येऽधिकारिणां निरूपणम् । रुद्रमहिमवर्णनम् ।

१०२—प्रतिसर्गवर्णनम् । अज्ञानहेतुकानां प्राकृतादिबन्धानां निरूपणम् । तामसवृत्तेः प्रकारनिरूपणम् । ज्ञानमोक्षयोर्लक्षणाभिधानम् । मोक्षस्य त्रैविध्यबोधनम् । वैराग्यदर्शनाभिधानम् । वैराग्यकारणाभिधानम् । क्षेत्रस्य पदस्य यौगिकार्थबोधनम् । सहेतुलक्षण तृतीय प्राकृतसर्गवर्णनम् ।

१०३—सृष्टिवर्णनम् । पुरुषसाधर्म्येण प्रधानस्थितिरित्यादिनिरूपणम् । महदादीनामुत्पत्तिः । ब्रह्मत्वमुक्त्वादिवर्णनम् । प्रक्रियादि पादचतुष्टयनिरूपणम् । एतत्पुराणस्य पठनफलम् । वायुपुराणपाठक्रमातरिश्वादि शिष्यप्रशिष्यादि परम्पराभिधानम् ।

१०४—ससंख्याकानां मात्स्याद्यष्टादशपुराणानाम् कथनम् । ब्रह्मस्वरूपवर्णनम् । जीवस्य जागृत्याद्यवस्थासुविश्वाख्यादिसंज्ञानिरूपणम् । जगत्कर्तृविषये व्यासस्य संशयः । संशयापनोदनाय मेरौ व्यासस्य तपस आचरणम् । व्यासं प्रति दिव्यमूर्तिधराणां चतुर्णां वेदानाम् दर्शनम् । वेदशरीरेषु मथुरादिक्षेत्राणाम् वर्णनम् । वेदान्प्रति व्यासप्रश्नः । वेदकृतव्याससंशयापनोदवर्णनम् च ।

१०५—गयामाहात्म्यम् । ब्रह्मणाऽर्थितस्य गयासुरस्य तपस आचरणम् । गयाप्राप्त सुत दर्शनात्पितॄणामुत्साहः । गयाश्राद्धाद्ब्रह्महत्यादिदोषाणाम् नाशः । गयाश्राद्धेऽधिकमासादिदोषाभावः । कुरुक्षेत्रादौ मुण्डनादिनिषेधः । गयायां दण्डप्रदर्शनादिनाभिक्षूणां मुक्तिः । गयाशिरसि श्राद्धकर्माचरणाच्छतानां कुलानामुद्धारः । चर्वादिभिर्गयायां पिण्डपातनम् । तीर्थश्राद्धे विशेषविधिः । ब्रह्मचर्यादिविशेषव्रतग्राहिणां तीर्थफलभाक्त्वम् । अक्षयवटश्राद्धाद्यभिधानम् ।

१०६—गयासुराख्यानम् । गयासुरकृततपश्चर्यावर्णनम् । गयासुराद्भीतानां ब्रह्मादीनां विष्णुं प्रति गमनम् । ब्रह्मादिदेवकृतविष्णु स्तुतिः । विष्णुना सह देवानां सम्भाषणम् । ब्रह्मादि देवेभ्यो गयासुरस्य वरप्राप्ति कथनम् । यज्ञ संसिध्यर्थं ब्रह्मदेवकृत गयासुर देहस्य याचना । ब्रह्मणे गयासुरकृत देहदानं । तद्देहे ब्रह्मदेवकृत यज्ञवर्णनम् च । तच्छिरसि शिलाप्रक्षेपादिनिरूपणम् । निश्चलार्थं शिलायां ब्रह्मादिदेवतानाम् वासः । तच्छिलायां विष्णोः संस्थितिः । गयासुरस्य ब्रह्मादिभ्यो वर प्राप्तिः । ब्राह्मणान्प्रति ब्रह्मशापः । विरजायां पिण्डदाने महाफलम् ।

१०७—शिलाख्यानम् । धर्माद्विश्वरूपायां धर्मव्रताया उत्पत्तिः । अनुरूपवरप्राप्तये धर्मव्रतायास्तपस आचरणम् । धर्मव्रताया सह धर्मपुत्रस्य मरीचेः सम्भाषणम् । मरीचिकृतधर्मव्रतापाणिग्रहणम् । धर्मव्रताम् प्रति मरीचेः शापः । शापमुक्त्यै धर्मव्रतायास्तप आचरणवर्णनम् ।

१०८—शिलामाहात्म्यम् । रामतीर्थवर्णनम् । यमादिभ्यो बलिप्रदानम् । भरताश्रये श्राद्धचरणादक्षय्य फलप्राप्तिः । अभ्युद्यन्तकादिगिरिषु पिण्डदानात्पितॄणां ब्रह्मपुरप्राप्तिः । कपिलायाम् स्नात्वा पिण्डदानात्पितॄणाम् मुक्तिः । गृध्रकूटादिषु पिण्डदानाच्छिवलोक प्राप्ति. । क्रौञ्चपदे पिण्डदानात्स्वर्गावाप्तिः । भस्मकूटे पिण्डदानाद्विष्णुलोकावाप्तिः ।

१०९—गदाधराख्यानम् । गदासुरकृतं ब्रह्मणे स्वस्थिदानवर्णनम् । विश्वकर्मकृतं तदस्थिगदानिर्माणम् । ब्रह्मपुत्रस्य हेतिनिशाचरस्य देवान्निर्जित्येन्द्रपदारोहणादिकीर्तनम् । तद्गदया विष्णुकृतो हेतिराक्षसस्य वध । सगदस्य हरेर्गयासुर शिरः शिलायां संस्थितिः । प्रभासादिपर्वतानां निरूपणम् । शिलायां गायत्र्यादिदेवतानां स्थिति-

निरूपणम् । हेतिराक्षसस्य विष्णुपुरे गमनम् । ब्रह्मादिदेवकृता गदाधरस्तुतिः । विष्णोः सकाशाद्ब्रह्मणो वर प्राप्तिः । आदि गदाधर दर्शनस्य फलकथनम् । शिव-कृत गदाधरस्तोत्रानुकीर्तनम् । गदाधर पूजनस्य फलनिरूपणम् ।

११०—गयायात्राभिधानम् । गयां गन्तुमुद्यतस्यानुष्ठाननिरूपणम् । गयां प्राप्य प्रेतपर्वते श्राद्धसम्पादनार्थं कव्यवाहादि देवतानां प्रार्थना । प्रेतशिलायां पञ्चगव्येन तत्स्थान-शोधनम् । पितॄणां कुशेष्वावाहनादिकथनम् । सप्तानां गोत्राणामनुकीर्तनम् । पिण्डदानविधिः । पितृकार्ये गदाधरप्रार्थना ।

१११—उत्तरमानसतीर्थे पितृमुक्त्यर्थं स्नानादिविधिकथनम् । कनखलादितीर्थवर्णनम् । पञ्चतीर्थवर्णनम् । मतङ्गवाप्यां स्नात्वामतङ्गेशनिकटे श्राद्धाचरणम् । ब्रह्मसरसि पिण्डदानात्पितॄणां मुक्तिः । यमादिभ्यो बलिदानम् । रुद्रपदादिषु पिण्डदानां शिवपुरादि प्राप्तिः । कश्यपपदे पिण्डं दातुमुद्यते भारद्वाजे पदमुद्भिद्य शुक्लकृष्ण-हस्तयोर्निगमनम् । पिण्डदानोद्यतेन रामेण सह स्वर्गतस्य दशरथस्य सम्भाषणम् । रामाय दशरथस्य वरदानम् । विष्णुपदे भीष्मकृत पिण्डदानानुकीर्तनम् । गदा-लोल तीर्थे पिण्डदानात्पितॄणां ब्रह्मलोकावाप्तिः । अक्षयवटे श्राद्धाचरणात्महाफलम् गयातीर्थपुरोधसे षोडशकदाननिरूपणम् । अक्षयवटप्रार्थना मन्त्रः ।

११२—गयराजस्य यज्ञवर्णनम् । विष्ण्वादिदेवेभ्यो गयराजस्य वरप्राप्ति कथनम् । गयस्य विष्णुलोकावाप्तिः । पितृभिः सह विशालस्य सम्भाषणम् । पितृदत्तवरस्य विशा-लस्य स्वर्गं प्रति गमनम् । गयायां पिण्डदानात्प्रेतानां मुक्तिः । गायत्र्यादितीर्थादौ स्नानदानादिभ्यः पितॄणां मुक्तिः । विशालायां भरताश्रमादौ च पिण्डदानात्पिण्ड-दस्य कुलशतोद्धारः । दशाश्वमेधिकादितीर्थादिषु पिण्डदानात्पितॄणां स्वर्गादि-लोकावाप्तिः । मरीचेः शङ्कराद्वरप्राप्तिः । युधिष्ठिरकृत पिण्डदानात्पाण्डोः शाश्वत-पदप्राप्तिवर्णनम् । मतङ्गपदादौ श्राद्धदानात्पितॄणां ब्रह्मलोकः । गयाख्यानस्य पठनपाठनफलम् ।

वायुपुराणकी विषयसूची ऊपर दे दी गयी। इस पुराणमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश और मन्वन्तर और वंशानुचरितके सिवाय विशेष रूपसे गयामाहात्म्य विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। अन्तिम आठ अध्याय गयामाहात्म्यपर ही हैं। परन्तु यह भी साथ-ही-साथ कह देना आवश्यक है कि प्रकृत वायुपुराणकी फलस्तुति एकसौ तीसरे अध्यायमें दे दी गयी है और एकसौ चौथे अध्यायमें १८ हों पुराणोंकी श्लोक-संख्या बतायी गयी है। इस अध्यायमें वायुपुराणके २३००० श्लोक बताये गये हैं। परन्तु प्रस्तुत-ग्रन्थमें नव कम ग्यारह हजार श्लोकमात्र हैं। शेष १२ हजार श्लोकोंका पता नहीं है। इस ग्यारह हजारमें गयामाहात्म्य सन्निविष्ट है।

जिस पोथीसे ऊपर दी हुई विषयसूची उद्धृत की गयी है उसमें अठारहों पुराणोंकी श्लोक-संख्या बतलानेकी प्रतिज्ञा करके भी केवल १६ पुराणोंकी चर्चा है। जान पड़ता है कि इस प्रसङ्गका एक श्लोक छूट गया है जिसमें शेष दो पुराणोंका भी उल्लेख रहा होगा। विष्णु, शिव, देवीभागवत, श्रीमद्भागवत, नारद, मार्कण्डेय, ब्रह्मवैवर्त्त, लिङ्ग, वाराह, कूर्म्म,

मत्स्य, पद्म और वायु, इन १३ पुराणोंमें पुराणोंका क्रम और कईमें श्लोक-संख्याका भी उल्लेख किया है। कूर्म्मपुराणमें ही केवल शिवपुराणका नाम अलग और वायुपुराणका अलग दिया गया है। कूर्म्मपुराणके अनुसार वायुपुराण १७ वां है परन्तु अग्निपुराणका नाम इसमें नहीं है।

इस वायुपुराणसे ही लिया हुआ प्रसिद्ध ग्रन्थ गयामाहात्म्य है।

तैंतीसवाँ अध्याय

नारदीय महापुराण

नारदीय महापुराणमें पूर्व और उत्तर दो खण्ड हैं। पूर्वखण्डमें १२५ अध्याय हैं और उत्तरखण्डमें ८२ अध्याय हैं। इस पुराणकी विषयानुक्रमणिका इस प्रकार है—

१—धर्मकामार्थमोक्षोपायान्वेदितुं शौनकादिभिः कृते प्रश्ने सूतस्य नारदाय सनकादिभिर्निरूपित पुराणस्य नारदीयस्य कथनोपन्यासे पुराणमाहात्म्यकथनम् ॥७९॥

२—ब्रह्मसभाप्रस्थित सनकादीनां गङ्गातीरे विष्णुप्रसादनोपाय बोधनाय नारदप्रश्ने पुराणोपन्यासे विष्णुस्तुतिः ॥ ५७ ॥

३—भगवद्भिरचित-सृष्टिनिरूपण प्रसङ्गेन भूगोलवर्णनम्। भरतखण्डोत्पत्ति प्राशस्त्य-वर्णनम् ॥ ८३ ॥

४—हरिभक्ति निरूपणे मृकण्डुमुनेस्तपसा तोषितस्य भगवतोऽहं तव पुत्रतां यास्यामीति मनोभीष्ट वरप्रदानम् ॥ ९९ ॥

५—मार्कण्डेयस्य प्रलयदर्शनान्ते पुराणसंहितां विरच्य परम्पदमेष्यसीति हरेर्वर-वितरणम् ॥ ८३ ॥

६—गङ्गायमुनयो. समागमात्प्रयागक्षेत्र प्रशंसापूर्वकं गङ्गामाहात्म्य-कथनम् ॥ ६९ ॥

७—गङ्गामाहात्म्य प्रसङ्गेन रिपुजितस्य बाहुभूमिपतेरौर्वमुनेराश्रमसविधेमृतस्य गर्भवत्या. सहगमनोद्यतायाः प्रियपत्न्यामुनिकृतः सहगमननिषेधः ॥ ७६ ॥

८—बाहुसुतसगरान्वय-जातभगीरथनृपानीतगङ्गासङ्गमात् कपिल-महामुनि-कोपानल दग्ध तत्पूर्वजानां परमपदावलम्बनम् ॥ १३७ ॥

९—कुलगुरुवसिष्ठमहर्षिशापलब्धराक्षस-देहस्य सौदासनृपतेर्गङ्गोदकसम्बन्धाच्छापमोचनम् ॥ १४८ ॥

१०—गङ्गोत्पत्ति-प्रसङ्गेन देवासुरयुद्धे देवपराजय दु.खिताया हिमाद्रौ भगवदाराधनोद्यताया अदितेर्विनाशायोत्पादितेऽग्नौ दैतेयविनाशः ॥ ४८ ॥

११—त्रैलोक्यराज्यमिन्द्राय पुनः प्रदातुं गृहीतवामनावतारस्य बलियज्ञमास्थितस्य भगवतस्त्रिविक्रमस्य चरणतलाद्गङ्गोत्पत्तिः ॥ ९७ ॥

१२—धर्माख्याने सत्पात्र ब्राह्मणलक्षणं, महावने तडागबन्धनात् वीरभद्रनृपतेरुत्तमलोकावासिरिति भगीरथाय धर्मराजद्विजनिवेदनञ्च ॥ ९८ ॥

१३—देवतायतनवापीकूपतडागादिनिर्माणं, नानादानादिनिरूपणञ्च ॥ १५४ ॥

१४—श्रुतिस्मृति-प्रतिपादित-वर्णत्रयधर्मनिरूपणे पातकप्रायश्चित्त निवेदनं, श्राद्धपञ्चक-कथनञ्च ॥ ९४ ॥

१५—पातकिनां पृथक्पृथङ्-निरययातना-वर्णनपूर्वकं नृपपूर्वजानां नरकोद्धाराय धर्मराज द्विजस्य भूतले गङ्गानयनार्थं भगीरथायोद्योतनम् ॥ १६९ ॥

१६—द्विजरूपिणो धर्मस्य वचनात्पित्रुद्धरणाय भूतले भगीरथस्य गङ्गानयनम्, निज-कुलोद्धारश्च ॥ ११६ ॥

१७—व्रताख्याने मार्गशीर्षमारभ्य कार्तिकमासपर्यन्तं सोद्यापनं शुक्लद्वादशी व्रत-कथनम् ॥ ११३ ॥

१८—प्रतिमासं पौर्णिमायां सोद्यापनविधि-लक्ष्मीनारायणव्रतम् ॥ ३२ ॥

१९—कार्तिकस्य शुक्लपक्षे दशम्यां हरिमन्दिरे ध्वजारोपणव्रतम् ॥ ४७ ॥

२०—ध्वजारोपण प्रसङ्गात्सोमवंशोद्भवनरपतेः सुमतेर्विभाण्डकमुनये स्वपूर्व जन्मेतिहास कथनम् ॥ ८६ ॥

२१—मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे दशमीमारभ्य पौर्णमासी पर्यन्तं हरिपञ्चरात्रव्रतम् ॥ २८ ॥

२२—आषाढ-श्रावण-भाद्रपदाश्विनेष्वेकस्मिन्मासे मासोपवास व्रतम् ॥ २८ ॥

२३—एकादशी व्रत प्रसङ्गेन भद्रशील द्विजोपाख्यानम् ॥ ९९ ॥

२४—ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रीशूद्राणाञ्च सदाचार वर्णनम् ॥ ३५ ॥

२५—वर्णाश्रमधर्मिणां स्मार्ताचारेषु अध्ययनादिधर्मनिरूपणम् ॥ ६५ ॥

२६—द्विजातीनां स्मृतिनिरूपित-वेदाध्ययनादिधर्मनिरूपणम् ॥ ४६ ॥

२७—सदाचारेषु गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यासिनां धर्मनिरूपणम् ॥ १०६ ॥

२८—श्राद्धकृत्यविवरणम् ॥ ९० ॥

२९—प्रायश्चित्तपूर्वकं तिथ्यादिनिर्णयः ॥ ६३ ॥

३०—पञ्चमहापातकिनामुपपातकिनाञ्च प्रायश्चित्त-कथनपूर्वकं पातकनिवृत्तये भगव-दुपासना कथनम् ॥ ११२ ॥

३१—पुण्यपापवतां नृणां सुखदुःखप्रदस्य यममार्गस्य सम्यक्तया निरूपणम् ॥ ७१ ॥

३२—संसारनानाविधयातनाकथनपूर्वकं तन्निवृत्तये हरेराधन-कथनम् ॥ ५० ॥

३३—भगवद्भक्तिमतां पापक्षये बोधैकलभ्यमोक्षोपायभूत यमाद्यष्टाङ्गयोगनिरूपणम्॥ १६२॥

३४—ऐहलौकिक-पारलौकिक-सुखावाप्ति-साधन-हरिभक्ति-लक्षणनिरूपणम् ॥ ७७ ॥

३५—कर्मपाशविच्छेदक-भगवद्भक्तिमाहात्म्य-निरूपणे वेदमालिद्विजेतिहासकथनम् ॥७३॥

३६—विष्णुसेवाप्रभावेण यज्ञमालि-सुमालिद्विजयोरुत्तमलोकावासिकथनम् ॥ ५८ ॥

३७—विष्णुमाहात्म्ये गुलिकाभिध्यलुब्धकोत्तङ्केतिहासकथनम् ॥ ६९ ॥

३८—भगवत्स्तवनादुत्तङ्कमुनेर्विष्णुपदावासिकथनम् ॥ ६० ॥

३९—हरिमन्दिरसंमार्जनदीपदानकर्तुर्जयध्वजनरपतेरितिहास-कथनम् ॥ ६९ ॥

४०—सुधर्मोदितब्रह्मकल्पमध्ये मनुमनवन्तरेन्द्र देवतानिरूपणम् ॥ ५९ ॥

४१—युगचतुष्टयस्थितिकथनपूर्वकं कलौ भगवन्नामस्मरणत एव मुक्तिरिति नाममाहा-त्म्यकथनम् ॥ १२२ ॥

४२—भरद्वाज-भृगुसंवादे जगत्सृष्टिनिरूपणम् ॥ ११४ ॥

४३—सृष्टिनिरूपणे वर्णाश्रमधर्मकथनम् ॥ १२७ ॥

४४—भूतसृष्टिप्रसङ्गेन ध्यानयोगकथनम् ॥ १०५ ॥

४५—जनकपञ्चशिख संवादेन मोक्षधर्म निरूपणम् ॥ ८७ ॥

उत्तरार्ध

१०—वनविहरणोद्यतस्य नरपतेर्वामदेवाश्रमगमनम्, तत्र वामदेवाय सर्वसम्पत्प्राप्ति-मेमैतज्जन्मसम्पादिता वा पूर्वसम्पादितेति प्रश्नकरणञ्च ॥ ६८ ॥

११—वामदेवकृतं नरपतेः प्राक्जन्मवृत्तवर्णनम्, राज्ञो मन्दराचलगमनम्, गिरिशोभा-वलोकनप्रसङ्गेन मोहिनी दर्शनञ्च ॥ ४७ ॥

१२—मोहिनीरूपमोहितस्य नरपतेस्तया सह याचितदाने समयकरणम्, स्ववृत्तकथनं तद्वृत्तश्रवणञ्च ॥ ३३ ॥

१३—रुक्माङ्गदस्य नरपतेरात्मविनाशाय मोहिन्या सह विवाहो गिरेरवतरणञ्च ॥ २५ ॥

१४—मोहिन्या सह प्रस्थितस्य नरपतेश्वरखुराग्रप्रहृताया गृहगोधायाः प्रागजन्मवृत्त-कथनम्, विजयैकादशी पुण्यदानेन तस्या उद्धारश्च ॥ ७४ ॥

१५—गृहगोधामुद्धृत्य सह भार्यया नरपतेर्निजनगरागमनं, सम्मुखागतेन धर्मध्वजपुत्रेण सह वार्तालापकरणञ्च ॥ ४७ ॥

१६—धर्मध्वजेन वस्त्रालङ्कारादिभिः पूजिताया मोहिन्याः सेवार्थं सन्ध्यावल्ल्या नियोजनं तत्प्रसङ्गेन पतिव्रतोपाख्यानम् ॥ ८९ ॥

१७—सन्ध्यावल्ल्योपास्यमानाया मोहिन्याः सन्निधौ नरपतेरागमनं। तस्यास्तेन सह संवाद. ॥ ५७ ॥

१८—धर्मध्वजस्य सुतस्याग्रहात्सन्ध्यावल्ली प्रभृतिभिर्वस्त्रालङ्कारपूजिताभिर्नृपस्त्रीभिः सह मोहिन्या विलासोपभोगार्थं नृपस्याभ्यनुज्ञानम् ॥ ५५ ॥

१९—मोहिन्या सह नृपस्य विलासवर्णनम् ॥ २९ ॥

२०—धर्मध्वजस्य मलये विद्याधरान् विजित्य पञ्चमणीनां आहरणं, नागलोके नागान् विजित्यायुतनागकन्याहरणं, दिग्विजयं कृत्वा नानाविधद्रव्याहरणं, पित्रे सर्ववृत्त-निवेदनञ्च ॥ ३१ ॥

२१—धर्मध्वजस्य नागकन्याभिर्महोत्सवेन विवाहकरणम्, राष्ट्रे प्रजानां शिक्षा निरू-पणञ्च ॥ ३८ ॥

२२—विषयाभिसेवनरतस्य नरपतेः रुक्माङ्गदस्यागामिकार्तिकमासस्मरणम्, मोहिन्यै कार्तिकमासमाहात्म्यकथनञ्च ॥ ८६ ॥

२३—मोहिन्यनुरोधान्नृपस्य सन्ध्यावल्ल्यै कार्तिकमासोपवासकरणानुज्ञानम्। मोहिन्या रुक्माङ्गदसमीपे समयानुसारेणैकादश्यां भोजनसम्बन्धेन याचनाकरणञ्च ॥ ९० ॥

२४—एकादश्यां नाहं भोक्ष्ये इति राज्ञो निश्चय ज्ञात्वा मोहिन्या गौतमादिब्राह्मणेभ्यो राज्ञोपवासकरणं युक्तमयुक्तमिति प्रश्नकरणम् ॥ ५२ ॥

२५—एकादश्यां भोजने न ते दोष. इति द्विजवाक्यश्रवणात् परमक्रुद्धस्य व्रतभङ्गमसहमा-नस्य नरपतेर्वचनात्प्रस्थिताया मोहिन्या धर्मध्वजस्य विनयात्पुनः परावर्तनम् ॥८२॥

२६—धर्माङ्गदसमीपे मोहिन्यै अन्यत्सर्वमपि प्रयच्छामि न त्वेकादश्यां भोक्ष्य इति राज्ञो निश्चयपूर्वकं वचनम् ॥ १७ ॥

२७—सुतवचनान्मोहिनी मनुनेतुमुद्यताया. सन्ध्यावल्ल्याः काष्ठीलादेहमापन्नायाः कौण्डिण्यभार्यायाः पूर्ववृत्तकथनम् ॥ १५४ ॥

२८—धनाशया स्वभार्यां परित्यज्य समुद्रमध्यगतस्य कौण्डिन्यस्य राक्षसावसथगमनं, राक्षसां हत्वा राक्षस्या सह धनं गृहीत्वा राक्षसाहृतां रत्नावलीं स्वावसथं प्रेषयितुं काञ्यामागमनम् ॥ ८९ ॥

२९—ब्रह्मणः शिरः कर्तने हस्ते लग्नं शिरः पातयितुमशक्तस्य शिवस्य ब्रह्महत्यापीडितस्य काञ्यामुभयनिवृत्तौ तत्रैव हरेराज्ञया निवास इति काञ्या राक्षसीकृत माहात्मवर्णनम् ॥ ७२ ॥

३०—राक्षसी सम्मत्या रत्नावल्याः पाणिग्रहणं कृत्वा स्वनगरमागतस्य प्रथमभार्यां संत्कृत्य भार्याभिस्त्रिसृभिः कौंडिन्यस्य संसारकरणम्, भर्तृवञ्चनपापात् प्रथम भार्यायाः काष्ठीला देहावाप्ति कथनञ्च ॥ ८७ ॥

३१—माघमास पुण्यप्रदानेन काष्ठीलाया उत्तम लोकावाप्तिकथनं पत्युरर्थे जीवितमपि दास्यामीति मोहिन्यग्रे सन्ध्यावल्ल्याः कथनम् ॥ ५९ ॥

३२—एकादशी व्रतभङ्गमनिष्टं मन्यसे चेत्स्वपुत्रस्य शिरः पत्न्या सह निकृत्य दीयतामिति मोहिन्या वचनं श्रुत्वा सभार्यस्य विरोचनस्याख्यायिकामुक्त्वा सन्ध्यावल्यास्तद्वचोऽङ्गीकरणम् ॥ ६८ ॥

३३—मोहिन्याः प्रियचिकीर्षया स्वपुत्रं हन्तुं भर्तुस्तुष्टौ सन्ध्यावल्ल्या अभ्यर्थना, राज्ञोऽन्यवरार्थे मोहिन्याः प्रार्थना, धर्माङ्गदस्य पितरं प्रति स्वशिरः कृन्तनेऽनुनयकरणञ्च ॥ ६९ ॥

३४—सन्ध्यावल्ल्या सहाविषण्णेन राज्ञा सुतस्य शिरः कृन्तनात् भगवत् प्रादुर्भावः, सभार्यस्य राज्ञः सुतेन सह भगवत्सायुज्यलाभः, तत्प्रसङ्गेन मोहिन्या अनुतापकरणञ्च ॥ २६ ॥

३५—मोहिनीं प्रतिबोधयितुं दैवतानां तत्सन्निधावागमनम्, सान्त्वनपूर्वकं वरप्रदानायोद्यतानां देवतानामग्रे राज्ञः पुरोहितेन तस्य धिक्कारपूर्वकं मोहिन्यै शापप्रदानम् ॥ ८६ ॥

३६—ब्रह्मशापदग्धायास्त्रैलोक्येऽपि स्थानमलभमानाया मोहिन्या गतिप्रदानाय सह देवैर्ब्रह्मणो राजपुरोहिताश्रमगमनम्, तत्प्रसादनञ्च ॥ ६० ॥

३७—ब्रह्मणः प्रार्थनया दशमी विद्धैकादश्यां मोहिन्यै स्थानप्रदानम्, ब्रह्मशापदग्धाया मोहिन्या. पुरोहितानुमत्या पुनः स्वशरीरलाभः सह देवैर्ब्रह्मणो निजलोकगमनञ्च ॥ ४६ ॥

३८—मोहिन्या स्वपापक्षालनाय प्रार्थितेन वसुपुरोहितेन तीर्थयात्रा प्रसङ्गात्कृतं गङ्गामाहात्म्यवर्णनम् ॥ ६३ ॥

३९—गङ्गास्नानमाहात्म्य-वर्णनम् ॥ ४८ ॥

४०—गङ्गायां स्थलविशेषेण स्नानफलकथनम् ॥ ९७ ॥

४१—गङ्गातीरे आरामादिकरण नानाविध दानफलकथनम् ॥ ७० ॥

४२—गङ्गातीरे गुडधेन्वादि दशधेनु-दान-विधानम्, आसंवत्सरं गङ्गार्चनविधि कथनञ्च ॥ ४४ ॥

४३—माघशुक्लदशम्यां दशहरायां गङ्गायाः पूजनविधानं, तन्माहात्म्य-कथनञ्च ॥१२९॥
४४—विशालनृपेतिहास-कथनपूर्वकं गयायां पिण्डदानात् पितॄणां नरकपतितानाम-प्युत्तम लोकावाप्तिरिति गयामाहात्म्य-कथनम् ॥ ९१९ ॥
४५—गयायां प्रथम-द्वितीय-दिनयोः श्राद्ध पिण्डदानविधि-निरूपणम् ॥ १०४ ॥
४६—गयायां तृतीय-चतुर्थ-दिनयोर्विष्ण्वादिपदे पिण्डदानविधि-निरूपणम् ॥
४७—गयायां पञ्चमेऽह्नि गयाकूपान्तं-स्नान-श्राद्ध-पिण्डदानादिविधि-माहात्म्य-निरूपणम् ॥ ९४ ॥
४८—काशीक्षेत्रस्थित नानाविध शिवलिङ्गनिरूपणपूर्वकं काशी-माहात्म्यकथनम् ॥ ८६ ॥
४९—कूपह्रदवापी कुण्डादिषु स्नान शिवपूजापूर्वकं काश्यास्तीर्थयात्रा वर्णनम् ॥ ७४ ॥
५०—यात्राकाल-कथनपूर्वकं नानाविध शिवलिङ्ग-स्थापनेतिहास कथनम्, तत्तल्लिङ्ग-दर्शनं पूजन-फल-कथनञ्च ॥ ६९ ॥
५१—काश्यां गोदायामुत्तरवाहिन्यां पञ्चनदे च स्नातॄणां महापातकनिरसनपूर्वकं शिव-लोकावाप्तिकथनम् ॥ ४८ ॥
५२—दक्षिणोदधितीरे उत्कलदेशे पुरुषोत्तमक्षेत्रे सुभद्रा कृष्ण सङ्कर्षणाराधनेनेन्द्रद्युम्न-नृपतेर्भगवत्पदावाप्तिरित्याख्यायिका कथनपूर्वकम् पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) क्षेत्र-माहात्म्य वर्णनम् ॥ ९३ ॥
५३—उत्कलदेशे पुरुषोत्तमक्षेत्रे अश्वमेधयाजिना भगवन्मूर्तिलब्धकामेनेन्द्रद्युम्ननृपेणकृता भगवत्स्तुतिः ॥ ६८ ॥
५४—नृपतिस्तवेन सन्तुष्टो भगवान्रात्रौ स्वप्ने तं प्रबोध्य सिन्धोः कूलाश्रितं वृक्षमुत्पाट्य तस्य मूर्त्तिर्विधाय स्थापनीया इत्यशिक्षयत्, नरपतिः प्रभाते सिन्धुकूलं गत्वा वृक्षमुत्पाट्य तत्र विष्णुविश्वकर्माणावपश्यत्, भगवन्निर्देशात् कृष्णरामसुभद्रा मूर्तीर्विधाय सुमुहूर्तेऽस्थापयत्, ततो भगवदर्चनतो राज्ञो मोक्षावाप्तिः, पुरुषोत्तम क्षेत्रमाहात्म्यञ्च ॥ १२१ ॥
५५—ज्येष्ठ शुक्ल द्वादश्यां पुरुषोत्तमक्षेत्रमभिगम्य यात्राविधेया, तत्र मार्कण्डेयह्रदे शिवं प्रणम्यकल्पवृक्षं दृष्ट्वा पुरुषोत्तमदर्शनम्, तत्रैव नृसिंहाराधनविधानम् ॥ १३० ॥
५६—अनन्तमत्स्यमाधव-श्वेतमाधवदर्शनफल-निरूपणम्, ज्येष्ठमासे पौर्णिमायां ज्येष्ठा नक्षत्रे तत्र समुद्रस्नानविधि-निरूपणञ्च ॥ ६८ ॥
५७—समुद्रतीरे मण्डलकरणपूर्वकं मण्डले भगवदर्चनविधि फलकथनम् ॥ ५८ ॥
५८—पुरुषोत्तमक्षेत्रे स्नान-दान-पितृश्राद्धादि-फल-निरूपणम्, राधिकाशापेन सिन्धु जलस्य क्षारत्वकथनम्, गोलोकनिवासि-राधाकृष्ण-तत्वनिरूपण-प्रसङ्गेन राधा-कृष्णात् एवाखिल ब्रह्माण्डोत्पत्तिकथनञ्च ॥ ६७ ॥
५९—गोलोकस्थित राधाकृष्णयोः पञ्चधारूपग्रहणनिरूपणम् ॥ ४८ ॥
६०—ज्येष्ठ शुक्लदशमीमारभ्य पौर्णमासी पर्यन्तं रामकृष्ण सुभद्रादर्शने महायात्राफला-वाप्तिकथनम्, पौर्णिमायां भगवत्स्नानविधिनिरूपणञ्च ॥ ७६ ॥
६१—पुरुषोत्तममाहात्म्य-सहितं तत्क्षेत्र-यात्राविधि-फल-कथनम् ॥ १०० ॥

नारदपुराणके ही अनुसार नारदपुराणमें २५,००० श्लोक होने चाहिए। इस सूचीमें प्रत्येक अध्यायके अन्तमें उस अध्यायकी श्लोक-संख्या दी हुई है। इन सबका जोड़ १८,११०

६२—तीर्थराज-प्रयागे तीर्थविधिप्रसङ्गेन स्नानदान-श्राद्धमुण्डनादिविधिनिरूपणम् ॥५५॥

६३—मकरसंक्रमणगते रवौ पञ्चयोजनपरिमाण प्रयागराजस्थितानेकविध तीर्थस्थान माहात्म्यवर्णनम् ॥ १७२ ॥

६४—कुरुक्षेत्र माहात्म्ये क्षेत्रप्रमाणादिनिरूपणम् ॥ ३२ ॥

६५—कुरुक्षेत्र गत काम्यकादिवनेषु सरस्वत्यादि तीर्थेषु च दक्षेश्वरादि शिवलिङ्ग पूजा-विधि सहितं तीर्थयात्राविधि वर्णनम् ॥ १३१ ॥

६६—स्वपितुर्गृहे महान्यज्ञोत्सव इति श्रुत्वैकाकिनी दाक्षायणी शिवमनादृत्य प्राप्ता शिवापमानं यत्र दृष्ट्वा प्राणान् जहौ तदेव हरिद्वारसंज्ञकं क्षेत्रं, तत्रत्यतीर्थ यात्रा वर्णनम् ॥ ५४ ॥

६७—बदरीक्षेत्र प्रतिष्ठित नरनारायण माहात्म्यपूर्वकं तत्क्षेत्र-यात्रा-विधिवर्णनम् ॥८०॥

६८—गङ्गातीराधिष्ठित कामोदाख्यदेवी-क्षेत्रयात्राविधि निरूपणम् ॥ २५ ॥

६९—श्रीसिद्धनाथ-चरित्र-सहितं कामाक्षी-माहात्म्य-वर्णनम् ॥ २७ ॥

७०—नानाविधतीर्थ-शिवलिङ्ग-विराजित-प्रभासक्षेत्र-यात्राविधि-माहात्म्यवर्णनम् ॥९५॥

७१—यात्राविधानपूर्वकं पुष्करक्षेत्र-माहात्म्य-वर्णनम् ॥ ५० ॥

७२—तपः प्रभावेतिहास-कथनपूर्वकं गौतमाश्रममाहात्म्य-वर्णनम् ॥ ३५ ॥

७३—पुण्डरीकपुरे जैमिनिमुने शिवसाक्षात्कार-सन्तुष्टस्य गणैः सह शिवस्य ताण्डव-नृत्यात्परांमुदमुपगतस्य वेदपादेन स्तुतिं कुर्वाणस्याभ्यर्थनया शिवस्य निवासात् तत्पुरस्य क्षेत्रत्वनिरूपणं, त्र्यम्बकेश्वर-क्षेत्रयात्रा-निरूपणञ्च ॥ १५२ ॥

७४—सार्धयोजन-प्रमाण-पश्चिम-समुद्रतीरस्थित गोकर्णक्षेत्रमाहात्म्य-वर्णनम् ॥ ७४ ॥

७५—संक्षेपेण रामलक्ष्मण-चरितमुक्त्वाऽन्ते रामवचनान्निष्क्रान्तो लक्ष्मणो यस्मिन्नचले योगधारणया तनुमजहात् तस्य लक्ष्मणाचलस्य माहात्म्यनिरूपणम् ॥ ७७ ॥

७६—दक्षिणोदधितीरे रामस्थापित-रामेश्वर-शिवलिङ्गमाहात्म्यसहित-सेतु-माहात्म्य-वर्णनम् ॥ २१ ॥

७७—नर्मदा-तीर्थसङ्ग्रह-माहात्म्य-निरूपणम् ॥ ३५ ॥

७८—श्रीमहाकालेश्वराधिष्ठितावन्तिकाक्षेत्र-यात्रा-माहात्म्य-वर्णनम् ॥ ४७ ॥

७९—पद्मभुवार्थितस्य भगवतोऽवतारग्रहणान्मथुरा-माहात्म्य-वर्णनम् ॥ ५६ ॥

८०—नारदाख्यायिका-कथनपूर्वकं वृन्दावनमाहात्म्य-वर्णनम् ॥ ११६ ॥

८१—वसुर्नरपत्युपाध्यायो मोहिन्यै तीर्थयात्रा विधिमुक्त्वा तां यात्राकारणाय नियोज्य ब्रह्मणे मोहिनीवृत्तं निवेद्य ततो वृन्दावने तपस्तप्तुङ्गतवान्, तत्र तस्य नारदमुनि निरूपित भाविकृष्णावतारचरित्र विलोकनौत्सुक्यान्निवास वर्णनम् ॥ ५१ ॥

८२—मोहिन्या सह तीर्थयात्राकरणेनोत्तमलोकावाप्ति-वर्णनम्, दशमीविद्धे मोहिन्यव-स्थानात् द्वादशीविद्धैकादशीव्रतस्यैवोक्तफलदातृनिरूपणम्, श्रीनारदीय पुराणोत्तर-खण्डपठन-श्रवणफलवर्णनञ्च ॥ ६२ ॥ पूर्ण संख्या ५१९२ ।

नारदपुराणके ही अनुसार नारदपुराणमें २५,००० श्लोक होने चाहिए। इस सूचीमें प्रत्येक अध्यायके अन्तमें उस अध्यायकी श्लोक-संख्या दी हुई है। इन सबका जोड़ १८,११०

होता है। जो लक्षण इस पुराणके दिये हुए हैं वह उपर्युक्त विषयसूचीमें मिलते हैं। जान पड़ता है कि इस पुराणका कुछ अंश, कमसे कम ७०००, तो अवश्य ही लुप्त हो गया है। बृहन्नारदीय-पुराणके नामसे भी एक पुराण छपा है। यह उपपुराण हो सकता है, महापुराण नहीं। लघुबृहन्नारदीयपुराणके नामकी भी एक छोटी पोथी है। यह तो शायद उपपुराणमें भी नहीं गिनी जा सकती।

कार्त्तिक-माहात्म्य, दत्तात्रेय-स्तोत्र, पार्थिवलिङ्ग-माहात्म्य, मृगव्याध-कथा, यादवगिरि-माहात्म्य, श्रीकृष्ण-माहात्म्य, सङ्कट-गणपति-स्तोत्र इत्यादि कई छोटी-छोटी पोथियाँ नारद-पुराणके ही अन्तर्गत समझी जाती हैं।

नारदीयपुराण वैष्णवपुराण है। विष्णुपुराणमें रचना-क्रमसे यह छठा बताया गया है। परन्तु इसमें प्रायः सभी पुराणोंकी संक्षिप्त विषयसूची श्लोकबद्ध दी गयी है। इससे जान पड़ता है कि इस महापुराणमें कमसे-कम इतना अंश अवश्य ही उन सब पुराणोंसे पीछेका है। इस महापुराणकी यही विशेषता है कि इससे पुराने संस्करणोंका ठीक-ठीक पता लगता है। नारदीयपुराणमें दी हुई विषयसूचीके बादकी जो रचनायें हैं उनका सहजमें पता लग जाता है और पुराण और उपपुराणका अन्तर भी मालूम हो जाता है।

चौंतीसवाँ अध्याय

अग्निपुराण

इस पुराणमें कुल ३८३ अध्याय हैं। विषयसूची इस प्रकार है—

१—मङ्गलाचरणम्। ऋषीणां सूतं प्रति प्रश्नः। शुकादीनां व्यासं प्रति प्रश्नः। अग्निवसिष्ठ-संवादः। विद्यासागर जिज्ञासोर्वसिष्ठस्याग्निं प्रति प्रश्नः। वसिष्ठं प्रति अग्निना विष्णुप्रभाववर्णनम्।

२—मत्स्याद्यवतार-हेतुवर्णनम्। वैवस्वतमनोर्मत्स्यमूर्त्तिसाक्षात्कारः। मत्स्यमूर्त्तिना हयग्रीव दैत्यवधः।

३—देवानां दुर्वाससः शापः। देवानां समुद्रमन्थनाय विष्णोराज्ञया क्षीराब्धिमन्थनम्। समुद्राद्विषप्रादुर्भाव.। शङ्करस्य तद्विषपानम्। तदा मन्दराचलस्य कूर्मरूपेण विष्णुना धारणम्। समुद्रान्मथिताद्वारुणीपारिजातादीनामुत्पत्तिः। विष्णोर्लक्ष्मीपतित्वे-हेतुः। धन्वन्तर्यवतारः। दैत्यैर्धन्वन्तरिहस्तादपहृतस्यामृतकलशस्यापहरणाय विष्णोर्मोहिनीरूपधारणम्। मोहिन्या दैत्यवञ्चनाद्द्वारा सुरेभ्योऽमृतदानम्। चन्द्ररूपेणामृतं स्वीकर्त्तुं चन्द्रसूर्यमुखेनावगुप्तराहोर्विष्णुकृतं शिर.कर्तनम् राहोर्विष्णुवरेण देवत्वप्राप्तिः। राहुणा सूर्यचन्द्रमाभ्यां ग्रहणशापः। ग्रहणे दानप्रशंसा। पार्वतीं परित्यज्य मोहिनीमनुधावत. शङ्करस्य वीर्यस्खलनम्। अमृतार्थं युध्यतां दैत्यानां देवकृतपराजयः। एतदध्याय-श्रवण प्रशंसा।

४—पुरन्दरपदाक्रमणं देवमुखेन ज्ञात्वा वराहरूपेण विष्णुना कृतो हिरण्याक्षस्य वधः। तथैव नृसिंहरूपेण विष्णुना कृतस्तद्भ्रातुर्हिरण्यकशिपोर्वधः। त्रिपद्या भुवोयाञ्चाद्द्वारा वामनरूपेण विष्णुना कृतो वलिनिग्रहः। जमदग्ने रेणुकायामवतीर्णेन परशुरामेण कार्तवीर्यार्जुनस्य वधः। एतदाख्यान-श्रवणप्रशसा।

५—श्रीमद्रामायणारम्भः। तत्रादौ बालकाण्डम्। वैवस्वते मनुवंशे रामावतारः तथा भरतलक्ष्मणशत्रुघ्नानामुत्पत्तिः। यज्ञरक्षार्थं विश्वामित्रेण नीतयो रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तदाश्रमे रामकृतः सुबाहोर्वधः। तदाश्रमे सुदूर बाणेन मारीचोन्नयनं च। पणीकृत शिवधनुर्भङ्गलब्धया सीतया रामस्य भरतादीनामपि माण्डव्यादिभिस्सह मिथिलायां जनकगृहे विवाहः। रामस्य जामदग्न्यजय। अयोध्यायामागमनं रामादीनाम्।

६—अयोध्याकाण्डम्। रामायणैव राज्यपदाभिषेक. कार्य इति विचारसमये मन्थराबोधितायै कैकेय्यै प्राग्दत्तवरद्वयं दत्तवतो दशरथस्याज्ञया सीता लक्ष्मणाभ्यां सह रामस्य वनगमनम्। चित्रकूटे रामकृतं सीतापराधिन. शरणागतस्य काकासुरस्य रक्षणम्। पुत्रशोकान्ममरणमिति कौशल्यामुक्त्वा दशरथस्य शरीरत्यागः। मातुलगृहाद् भरतागमनपर्यन्तं तैलद्रोण्यान्तन्मृतशरीरनिधानम्, वसिष्ठाज्ञया भरतानयनमयोध्यायाम्, भरतेन कृतं दशरथाय सरयूतटे और्ध्वदेहिककृत्यम्। वसिष्ठेन

भरताय राज्य परिपालनादेशः । राज्याधिकारमनङ्गीकृत्य रामानयनाय भरद्वाजाश्रमे भरतस्य ससीतारामलक्ष्मणाभ्यां समागमे दशरथस्य परलोकगमनवर्णनम् । राज्याधिकारस्वीकृत्यर्थं रामस्य राज्यं प्रति प्रत्यावर्तने भरतप्रार्थना । तामनङ्गीकृत्य-राज्यपालनाय रामदत्तपादुके गृहीत्वा नन्दिग्रामे भरतस्य स्थितिः ।

७—अरण्यकाण्डम् । अरण्ये रामकृतमत्रिशरभङ्गादिमहर्षीणां दर्शनम् । अगस्त्येन रामाय चापखड्गदानम् । दण्डकारण्ये पञ्चवट्यां रामरूपमोहेनागतायाः शूर्पणखाया लक्ष्मणकृत नासिकाकर्त्तनम् । तत्र रामकृतः खरदूषण त्रिशिर आदि राक्षसानां युद्धे संहारः । स्वपुत्रवधेन खिन्नायाः भगिन्याः शूर्पणखाया उक्त्या तत्र सीतां वञ्चयितुं स्वर्णमृगरूपेण रावणानीतस्य मारीचस्य रामकृतो बधः । रावणकृतं सीता-पहरणं । तदामध्ये पन्थनियुध्यन्तं जटायुषं निपात्य रावणस्य लङ्का प्रति सीतया सहागमनम् । सीतान्तत्रादृष्ट्वा विलपतो रामस्य तदन्वेषणे जटायुष उक्त्या राव-णापहृतां ज्ञात्वा स्वर्गतं जटायुषं संस्कृत्य कबन्धासुरस्य रामकृतो वधः । शापान्मु-क्तस्य कबन्धस्य रामं प्रति स्वकार्यार्थं सुग्रीव सख्यकरणे विज्ञापना ।

८—किष्किन्धाकाण्डम् । रामः पम्पाङ्गत्वा सुग्रीवेण सङ्गत्य विश्वासार्थं सप्ततालाञ्छित्त्वा दुन्दुभिकलेवरं पादाङ्गुष्ठेनदूरतः क्षिप्त्वा च तच्छत्रुं वालिनं हत्वा तद्राज्ये सुग्रीवम-भिषिषे च रामस्य सुग्रीवकारणाय किष्किन्धायां लक्ष्मणप्रेषणम् । सुग्रीवेणकृतं वानरैः सह सीतान्वेषणाय हनुमतः प्रेषणम् । तदन्वेषणमार्गे सम्पातिदर्शनम् ।

९—सुन्दरकाण्डम् । सम्पात्युक्त्या लङ्कायां सीतास्थितिं ज्ञात्वा गत्वा तत्राशोकवनि-कायां तां दृष्ट्वा श्रीरामाङ्गुलीयकन्दत्त्वा हनुमतः सीतया रामार्थं दत्तचूडामणिं रत्नाभिज्ञानग्रहणम् । उपवनभङ्गन कुपितस्याक्षकुमारस्य हनने इन्द्रजितानागपाशेन हनुमतो बन्धनम् । रावणभाषणोत्तरं कुपितेन हनुमतास्वलाङ्गूलप्रक्षिप्तेनाग्निना-लङ्कादहनम् । श्रीरामाय चूडामणिरत्नाभिज्ञानार्पणम् । विभीषणस्य रामेण समागमे रामकृतलङ्काराज्याभिषेकः, समुद्रे सेतुं बद्ध्वा तेन रामस्य दक्षिणतीरस्थ सुवेलाचल-गमनम् ।

१०—युद्धकाण्डम् । रावणं प्रति सन्ध्यर्थं दयया रामेण प्रेषिताङ्गदेन भाषणे जाते राव-णस्य रामेण युद्धम् । रावणेन निद्रायाः प्रबोधितस्य कुम्भकर्णस्य रामेण युद्धे मरणम् । ततो रामेण रावणस्य युद्धे संहारः । अमृतवर्षणेण युद्धमृतानां वानराणामेवो-ज्जीवनम् । विभीषणायाभिषिक्तराज्यदानम् । अग्निप्रवेश परिशुद्धया सीतादेव्या सह विमाने आरुह्यायोध्यानिकटेनन्दिग्रामे भरतेन सह सङ्गतिः । भरतेन सहा-योध्यायां गत्वा सर्वान्नत्वा वसिष्ठेन राज्येऽभिषिक्त सम्मान्यधर्मेण रामेणाश्वमेधेनेष्टे राज्यस्य परिपालनम् ।

११—उत्तरकाण्डम् । रामेणागस्त्यादिसमागमः । वाल्मीक्याश्रमे सीतायां रामस्य कुशलव पुत्रोत्पत्तिः । रामस्य वैकुण्ठे गमनम् । एतच्छ्रवणफलम् ।

१२—कृष्णावतार-कथा । हरिवंशयोर्वर्णने कृष्णबलरामयोरुत्पत्तिः । कृष्णस्य वसुदेवेन गोकुलप्रापणम् । कृष्णेन यमलार्जुनमोक्षणं । शकटासुर-पूतनावधस्य च वर्णनम् ।

कालियमर्दनम्। गोवर्द्धनोद्धारः। अक्रूरस्य रामकृष्णाभ्यां समागमः। कृष्णेन रजकस्यवधः। कृष्णस्य मालाकारायवरदानम्। कृष्णेन कुब्जा देह ऋजुकरणम्। कुवलयापीडाख्यगजस्य संहारः। रामकृष्णाभ्यां चाणूरमुष्टिकयोर्मल्लयुद्धे संहारः। कंसस्य कृष्णेन कृतो वधः। उग्रसेनेन कृष्णात्स्वराज्यलाभः। कृष्णेन जरासन्धपौण्ड्रवासुदेवयोर्वधः। कृष्णोद्धारकाङ्क्त्वान्नरकासुरम् संहृत्य तदीय षोडशसहस्रकन्याः परिजग्राह। कृष्ण· सन्दीपनगुरवे मृतपुत्रानानीय ददौ। कृष्णेन कालयवनस्यवधः। रुक्मिण्यां प्रद्युम्नोत्पत्तिः। प्रद्युम्नादनिरुद्धोत्पत्तिः। बाणकन्ययोषया स्वप्ने दृष्टोऽनिरुद्धश्चित्रलेखया द्वारकाया आहृत.। शोणितपुरे तया सङ्गतः। अनिरुद्धस्य बाणासुरेण सह युद्धम्। कृष्णस्य स्वभक्तरक्षणार्थमागतेन शङ्करेण सह युद्धम्। बाणासुरस्य सहस्रभुजानां छेदः। शिवोक्तेन कृष्णेन बाणासुरे अनुग्रहः। उषा सहितस्यानिरुद्धस्य कृष्णादिभिः सह द्वारकायामागमनम्। बलरामेण हस्तिनापुराकर्षणम्। कृष्णस्य रुक्मिण्यादिषु बहुपुत्रोत्पत्तिः। हरिवंशकीर्तनफलम्।

१३—महाभारतम्। अत्रेः सोमस्योत्पत्तिः। सोमाद्बुधादीनामुत्पत्तिः। अम्बिकाम्बालिकयोर्विधवयोर्व्यासाद्धृतराष्ट्रपाण्डवोरुत्पत्तिः। गान्धार्यां धृतराष्ट्राद्दुर्योधनादीनामुत्पत्तिः। पाण्डवानामुत्पत्तिः। पाण्डवैर्दुर्योधनादीनां वैरम्। पाण्डवानां द्रौपदीलाभः स्वयंवरे। अर्जुनोक्त्या खाण्डवदाहः। युधिष्ठिरस्य राजसूययागः। पाण्डवानां दुर्योधनादिभिर्धूतम्। घूतेपराजितानां पाण्डवानां वनवासः। पाण्डवाञ्जेतुं युद्धाय दुर्योधनादीनां यत्न.।

१४—पुनर्महाभारतम्। कुरुपाण्डवयोर्युद्धम्। अर्जुनाय भगवता गीतोपदेशः। शिखण्डिनाभीष्मस्य पातनम्। धृष्टद्युम्नस्य द्रोणाचार्ये वधः। अर्जुनेन युद्धे कर्णस्य वधः। भीमेन दुर्योधनस्य वधः। पाण्डवपुत्राणामश्वत्थामकृतः संहारः। अश्वत्थामास्त्रात्कृष्णस्योत्तरागर्भस्थपरीक्षिद्रक्षणम्। युधिष्ठिरेण मृतानामुदकदानम्। युधिष्ठिराय भीष्मेणापद्राजमोक्षधर्माणामुपदेश। युधिष्ठिरेण परिक्षितो राज्याभिषेक.।

१५—पाण्डवानां स्वर्गारोहणम्। गान्धारी धृतराष्ट्रयोर्वनवासः। मुसलेन यादवकुलनाश·। चोरैः कृष्णदाराणां हरणम्। पाण्डवानां महापथे गमनम्। स्वर्गे पाण्डवानां भगवद्दर्शनम्। महाभारत श्रवणफलम्।

१६—बौद्धावतारः। कलियुगान्ते जातिसङ्करवेदादिवर्णनम्। दैत्यान्वञ्चयितुं कल्क्यवतारवर्णनम्। विष्णोरवतारकथा-श्रवणफलम्।

१७—सृष्टिः। महत्तत्वस्य उत्पत्तिः। तस्मादहङ्कारस्य। तस्माद्वैकारिकादीनाम् पञ्चमहाभूतानाञ्च। ब्रह्मणस्तस्मान्मरीच्यादिमानसपुत्राणामुत्पत्तिः।

१८—स्वायम्भुवमनुवंशवर्णनम्। स्वायम्भुवात्प्रियव्रतोत्तानपादयोरुत्पत्तिः। उत्तानपादात्सुरुचिसुनीत्योरुत्तमध्रुवयोरुत्पत्तिः। ध्रुवचरितम्। ध्रुवाद्वृष्ट्यादिपुत्राणामुत्पत्तिः। पृथुचक्रवर्त्याख्यानम्। पृथोर्वसुन्धरादोहनम्। दक्षोत्पत्तिः। एकादशरुद्राणां कश्यपादुत्पत्ति.।

१९—कश्यपवंशः। कश्यपाद्द्वादशादित्यानामुत्पत्तिः। कश्यपाद्धिरण्यकशिपोरुत्पत्तिः

प्रह्लादोत्पत्तिः। हिरण्यकशिपोर्विरोचनादेरुत्पत्तिः। दितिगर्भे इन्द्रेण सप्तधाछिन्ने एकोनपञ्चाशन्मरुदुत्पत्तिः। पृथ्वादिभ्यो भगवत्कृतं राज्यदान-विभागः।

२०—जगत्सृष्टिः। ब्रह्मणोनवविधः सर्गः। दक्षकन्याभिः भृग्वादीनां पतित्वेन वरणम्। अनसूयायामत्रेः सोमादीनामुत्पत्तिः। षष्ठि सहस्र बालखिल्यानामुत्पत्तिः। अधर्माद्धिंसायामनृतादि पुत्राणामुत्पत्तिः।

२१—विष्ण्वादिदेवतानां सामान्य पूजा, नवग्रह पूजा, सरस्वती पूजा, तिलादिभिर्होमः, देवतानां मन्त्राः, पूजार्थं सामान्यं स्नानम्।

२२—क्रियाङ्गमृत्तिकादि स्नानविधिः। अघमर्षण-स्नानम्। स्नानाङ्गतर्पणम्। ततः पूजागृहप्रवेशः। ततस्तन्मूलमन्त्रेण स्नानं तत्तत्पूजायाम्।

२३—योगेनकायशोधनम्। योगेन न्यासादयः। विष्णोर्द्वारपालपूजा। विष्णोरावाहनादि-पूजा। नवव्यूहार्चनम्।

२४—कुण्डनिर्माणम्। अग्निकार्यम्। अर्धचन्द्र-चतुरस्रवर्तुलाकारकुण्डविधिः। होम प्रकारः। अग्निसंस्कारः। शिष्याय गुरूपदेशविधिः।

२५—वासुदेवादिमन्त्रा. जीवस्वरूपम्।

२६—मुद्रालक्षणानि। अञ्जलि-वन्दन-वराहमुद्रा.।

२७—दीक्षादान विधिः।

२८—राजादीनामभिषेक-विशेष-विधि.।

२९—मन्त्र साधनार्थं सर्वतोभद्रादिमण्डलम्।

३०—तत्र मण्डले देवता-प्रतिष्ठा-प्रकारः। तन्मण्डलमनेकवर्णैः कार्यम्। मन्त्रसाधकस्य नियमः।

३१—अपामार्जन-स्तोत्रं सर्वरोगहरम्।

३२—अष्टाचत्वारिंशत्संस्काराः निर्वाणदीक्षार्थम्।

३३—देवतानां पवित्रारोपणम्। सुपर्णादिभिस्तत्पवित्रं कार्यम्। पवित्र-निर्माण प्रकारः। बलिदानपूर्वकं विष्णो. पूजाविधिः। देहशुद्ध्यर्थं विष्णोर्मानसोपचार पूजा। आवरणदेवता-पूजा।

३४—मण्डलं विलिख्य द्वारपूजा कार्या। ग्रहणे पञ्चगव्यमन्त्राः। कुम्भे देवतां प्रतिष्ठाप्य पूजा कार्या। होमप्रकारः।

३५—पवित्राधिवास-विधिः।

३६—विष्णु-पवित्रारोपणविधिः। पवित्रे समर्प्य विष्णुपूजा कार्या। ब्राह्मणाय पवित्रं देयम्। पवित्र-धारणप्रशंसा।

३७—पवित्रारोपणप्रकारः सर्वदेवेषु समानः।

३८—देवालयादिनिर्माणस्य फलम्। देवालयार्थं यद्धनं न भवति तद्व्यर्थम्। मृद्भिर्दारुभिरिष्टकाभिः शिलाभिर्हेमभिर्वादेवालयनिर्माणे उत्तरोत्तरफलं श्रेष्ठम्। एतद्विषये स्वदूतान्प्रतियमस्योक्ति.।

३९—हयग्रीवादि पञ्चविंशति तन्त्र नामानि। प्रतिष्ठाकर्तृषु वर्ज्यावर्ज्यौ स्थापनीय देव-

तानां नगराद्यपेक्षया स्थानदिशोर्विभागः। भूपरिग्रहविधिः। कराङ्गुलादिपरिमाषा।

४०—वास्तुपुरुषस्वरूपम्। तस्य परिमाणम्। तस्य पूजनार्घ्य बलिदानादिविधिः।

४१—मण्डपविधिः। कुण्डचतुष्टय-निर्माणप्रकारः। इष्टकान्यासक्रमः। इष्टकापरिमाणम्। शिलान्यासप्रकारः। देवागार निर्माण प्रशस्तिः।

४२—प्रासादलक्षणम्।

४३—प्रासाददेवताप्रतिष्ठा। भूतशान्त्यादिनिरूपणम्।

४४—वासुदेवादि प्रतिमालक्षणम्। प्रतिमासु अङ्गानां प्रमाणम्।

४५—पिण्डिकादिलक्षणम्। ५३तमेध्यायेपि वक्ष्यते।

४६—शालिग्रामेषु मूर्तिलक्षणानि।

४७—शालिग्रामादि पूजाप्रकारः।

४८—केशवादि चतुर्विंशति मूर्तिस्तोत्रम्।

४९—दशावतार प्रतिमालक्षणम्।

५०—चण्ड्यादि प्रतिमालक्षणम् तत्र विंशतिभुजचण्डीस्वरूपम्। दशभुजचण्डीस्वरूपम्। नवदुर्गास्वरूपम्। अष्टादशभुजादि देवतानां स्वरूपाणि।

५१—नवग्रहदेवतादीनां प्रतिमालक्षणम्। अनन्ततक्षकादिलक्षणम्। इन्द्राद्यष्टदिक्पाललक्षणम्। विश्वकर्मलक्षणम्। हनूमल्ल०। किन्नर-ल०। विद्याधर-ल०। पिशाच-ल०। वेताल-ल०। क्षेत्रपाल-ल०।

५२—चतुष्षष्टि योगिनी-प्रतिमा-लक्षणम्। भैरव-ल०। वीरभद्र-ल०। गौरी-ल०। ५० तमेध्यायेप्युक्तम् ललिता-ल०। चण्डिका-ल०।

५३—लिङ्गादि-लक्षणम्। ४५तमेऽध्यायेप्युक्तम्।

५४—लवण, घृत, वस्त्र, अपक्वमृल्लिङ्ग, पक्वमृल्लिङ्ग, दारव, शैलज, मुक्ता, लौह, सुवर्ण, रजत, ताम्र, पैत्तल, रत्न, रसरत्नगर्भादि लिङ्ग मानादिकम्।

५५—प्रतिमानां पिण्डिकालक्षणम्। सर्वदेवानां विष्णूक्तमानम्। सर्वदेवीनां लक्ष्म्युक्तं मानम्।

५६—दशदिक्पालयागः।

५७—कलशाधिवासविधिः।

५८—देवतास्नापनविधिः। देवतापूजनप्रकारः।

५९—अधिवासनविधिः (हरेः सान्निध्यकरणम्)। न्यासविधिः। लोकपालानां सपर्याय होमविधिः। बलिदानविधिः।

६०—सामान्य प्रतिष्ठाविधिर्वासुदेवादीनाम्। अष्टदिक्षुकलशान्संस्थाप्यहोमविधिः। नगरे भ्रमणं शिविकारूढस्य हरेः।

६१—अवभृथस्नानविधिः। द्वारप्रतिष्ठाविधिः। प्रासादप्रतिष्ठाविधिः। ध्वजारोपणादिविधिः ध्वजदण्डपरिमाणम्। ध्यज प्रतिष्ठाफलम्।

६२—देवी प्रतिष्ठाविधिः लक्ष्मीपूजनमाचार्यपूजनं च श्रीसूक्तेन।

६३—गरुडसुदर्शन ब्रह्म नृसिंह प्रतिष्ठाविधिः। पुस्तक लेखनविधिः। पुस्तक प्रतिष्ठाविधिः। पुस्तकदान-माहात्म्यम्।

६४—कूप वापी तडाग प्रतिष्ठाविधिः। तडागादौ यूपप्रतिष्ठाविधिः। जलदानप्राशस्त्यम्।

६५—सभा प्रतिष्ठा, सभा सन्निवेशक्रमः, सभाप्रवेशः।

६६—देवता-सामान्य-प्रतिष्ठा। आरामनिर्माणप्राशस्त्यं। मठदान-प्रशंसा। प्रपादान-प्रशंसा।

६७—गृहे जीर्णदेवस्य परित्यागविधिः। गृहे देवस्य जीर्णोद्धारविधिः। जीर्ण कूप-वापी-तडागोद्धार-प्रशंसा।

६८—उत्सवे देवप्रतिष्ठायां कार्य एव अङ्कुरार्पणम्। तीर्थस्नानार्थं देवस्य यात्रास्नानं मन्त्रैः।

६९—साङ्ग तीर्थस्नानविधिः।

७०—पादपप्रतिष्ठाविधिः। आराम प्रतिष्ठा-प्रशंसा। सूर्येशगणेशशक्तिहरिप्रतिष्ठा।

७१—गणपतिपूजाविधिः (प्रतिष्ठाङ्गभूयातम्)।

७२—स्नानविधिः (प्र०)। अस्त्रसन्ध्या (प्र०)। सन्ध्या चतुष्टयी (प्र०)। निशीथे-ज्ञानिनः सन्ध्याऽघमर्षणम्। (प्र०) तर्पणम्।

७३—सूर्य पूजाविधिः (प्र०)। चण्डाय सूर्यनिर्माल्यार्पणम्।

७४—शिवपूजाविधिः।

७५—शिवपूजाङ्गहोमविधिः।

७६—पूजाहोमादिकानां समर्पणादिकं चण्डेशपूजानिर्माल्यापनयनादिकम्।

७७—कपिलापूजनम्। विद्यापुस्तकगुरुनमनम्। स्नात्वा शिवायाष्टपुष्पिका पूजा। शिवाय नैवेद्यं किञ्चित्समर्प्य वैश्वदेवबलिहरणम्।

७८—शिवपवित्राधिवासनविधिर्नैमित्तक पूजारूपः तत्र कालाः। युगभेदेन भिन्न-भिन्न पवित्रापवित्र पूजाविधिः। पवित्रमानम्। शिवाय तत्समगुणिताङ्गपूजनपूर्वम् पवित्रावतरणम्। उत्तरपूजा। होमगुरु पूजादि।

७९—ततो द्वितीय दिने देवी-पूजनाद्यङ्ग-शिवपूजा-होमादिकम्। गुरुपूजा होमादिकम्।

८०—शिवेदमनकारोहणविधिः। दमनोत्पत्तौकारणम्। तत्र कालः शिवाय पूजयित्वा-दमनकारोपणम्। गुरुपूजादिकम्।

८१—समयदीक्षाविधिः, दीक्षापदार्थः, अनुग्राह्यस्त्रिविध। दीक्षाद्विविधा साधारा निरा-धारा च। साधारा चतुर्विधा तेषां लक्षणानि। निराधाराद्विविधा। दीक्षाविधिः। शिवपूजा होम जपन्यासादिभि.। तत्र होमद्रव्यभेदेन फलभेदः। उद्देश्यभेदेन होम संख्यातारतम्यम्। तर्पणम्। गलेकटक बन्धनावरोपणादिकम्। समयदीक्षा-दीक्षितस्यैव भवार्चने अधिकार इति तत्फलम्।

८२—संस्कारदीक्षाविधिः। शिवयोः पूजा होम.। होमार्थकाग्निलक्षणम्। शिशोः गर्भा-धानपुसवनसीमन्तजननबोधनसमरसीभावादिकं शिववह्निपूजादिकं गुरोः कृत्यम्। शिशवे समयशिक्षणम्। अर्थदानम्। व्रताङ्गानि होमादिकम्। संस्कारदीक्षा दीक्षितस्यैव वह्निहोमागम ज्ञानयोग्यता शिशोः।

८३—निर्वाणदीक्षायां दीक्षाधिवासनविधिः। दीपदानादिकम्। सूत्रेण शिष्यदेहबन्धन-प्रकारः। कालानां ग्रहणबन्धनादिकम्। चण्डेश लोकपालपूजा। गुरुयागशालायां प्रवेश.। शिष्याणां स्नपनम्।

८४—निर्वाणदीक्षायाः निवृत्तिकलाशोधनविधिः। सुस्वप्नदुःस्वप्नौ शिवपूजा तर्पण-पूजनानि। वह्नौ होमपूर्णाहुत्यन्तः तर्पणम्। अष्टोत्तरशतभुवनानि तत्र दशावरुणाः। दुःस्वप्ने शान्त्यादिकम्। निवृत्तिकलाशोधनम् प्रायश्चित्तम्।

८५—निर्वाणदीक्षायां प्रतिष्ठाकलासंशोधनविधिः। तत्त्वयोः सन्धानम्। तत्र षष्ठि भुव-नादिकम्। कला संशोधनं। विष्णु पूजादिकम्। मुमुक्षुदीक्षणम्।

८६—निर्वाणदीक्षायां विद्यासंशोधनविधिः। सप्ततत्त्वानि एकविंशतिपदानि रुद्रभुवनयोः स्वरूपम्। विद्यातत्त्वविशोधनं प्रायश्चित्तम्।

८७—निर्वाणदीक्षायां विद्यासन्धानाय शान्त्यासंशोधनविधिः। कालानां कुण्डे निवेशनम्। मुमुक्षुदीक्षणे विज्ञापनम्। शान्ति संशोधनादिकम्।

८८—निर्वाणदीक्षायां ताण्डनाद्याकर्षणादिकम्। शिष्टविधि सन्धानकरणम्। भुवनाष्टक-सिद्धिः। तत्त्वसञ्चयसन्धानम्। शान्त्यतीताख्यताडनादिकम्। वह्नि प्रतिष्ठा होमा-दिकं निवृत्तिवत् सदा शिवावाहनादिकम्। शिष्योत्पादनादिकम्। गर्भाधानादिकं प्राग्वत्। शिवविसर्जनादिकम्। शिष्यशिखायां चतुरङ्गुलस्य च्छेदः। शिष्यस्य-स्नपनादिकम्। पुनः कुम्भस्नानान्तं दीक्षा शेषसमापनम्।

८९—एकतत्वदीक्षाविधिः।

९०—साङ्गदीक्षाभिषेकादिविधिः। अष्टसागरादिकं निवेश्य शिवादींश्च पूज्य शिष्यं स्नप-येत्। वस्त्रादिकं दत्त्वा शिष्याय स्वशिष्योपदेशादि-विषये आज्ञाप्रदानादिकृत्यम्।

९१—अभिषिक्तेन शिष्येण कर्तव्यशिवादिपूजा-विशेषविधिः।

९२—देवप्रतिष्ठाविधिः। प्रतिष्ठापञ्चधा, प्रतिष्ठापदार्थः स्थापनपदार्थः स्थितस्थापनपदार्थः उत्थापनपदार्थः आस्थापनपदार्थः। आस्थापनं द्विधा। भूपरीक्षणं पञ्चधा। उत्तम भूलक्षणम्। भूशोधनम्। मण्डपे द्वारपूजादिकम्। शिववास्तु पूजनम्। कुद्दाला-दिसेचनरक्षा। पूजा बलिदानानि कुद्दालकादिपूजयत् भूखननप्रकारः। भूपरिग्रहः। सशल्यभूपरीक्षणम्। भुविलोहभस्मास्थीष्टकाकपालशवकीटरजतादिज्ञानम्। भूस-मीकरणम्। तोरणद्वारपालपूजादिकम्। आत्मशुद्धिमण्डपादिसंस्कारकलशपूजा-दिकम्। अग्निपूजादिकम्। शिलानां धर्मादिनाम् शिलेष्टकायोर्नियमः। शिलेष्टका-परिणामादिकम् शिलातत्तत्कुम्भाः। शिलापूजा होमादिकृत्यम्।

९३—वास्तुपूजाविधिः। वास्तुस्वरूपं। तत्पूजाविस्तरेण विशेषत उक्ता। गृहे नगरे च वास्तुविशेषः। नगरग्रामखेटादौ वास्तुविशेषः। ततो विदेश संस्थापने वास्तु-विशेषः। गृहप्रसादमानेन वास्तुकल्पनाकार्यैव।

९४—शिलाविन्यासविधि.। चरक्यादिकं संपूज्य हुत्वा बलिन्दत्वा शिलासु देवतान्यासः। पूर्णानन्दादि शिलाप्रतिष्ठादिकम्।

९५—लिङ्गादिप्रतिष्ठायां मासर्क्षवार ग्रहयोगादयः। मण्डपादिमानादि प्रतिष्ठा। साम-ग्र्यादिकम् ओषधीगणः सप्तलोहानि अष्टधातवः अष्टौव्रीहयः।

९६—साङ्गशिवप्रतिष्ठाङ्गाधिवासनादि द्रव्यभेदेन मूर्तौ लक्ष्य निर्माणक्रमः शिष्टाधिवास प्रयोगक्रमादि।

९७—शिवप्रतिष्ठाविध्यादि अन्यदेवप्रतिष्ठापनादि ।

९८—गौरीप्रतिष्ठादि ।

९९—सूर्यप्रतिष्ठादि ।

१००—द्वारप्रतिष्ठादिकम् ।

१०१—प्रासादप्रतिष्ठादिकम् ।

१०२—ध्वजारोपणविध्यादिकम् । ध्वजभेदाः । तन्मानानि । ध्वजारोपण प्रयोगादिकम् ।

१०३—जीर्णलिङ्गोद्धारविधिः । तत्र हेतवः । तत्प्रयोगः । जीर्णग्रहप्रतिष्ठाप्यमेव ।

१०४—प्रासादलक्षणम् । तत्र स्थाप्यादेवताः । प्रमथादिप्रासादनामभेदाः । नवपुष्पकोद्भवा नवकैलासोद्भववृत्ताः नवमणिकोद्भवाः नवत्रिविष्टपजाः नगराणां संज्ञाः । तत्रमानानि । चूलादीनाम् प्रतिहारद्वयकल्पनम् । स्तम्भवृक्षकूपक्षेत्रप्रासादगृहशालामार्गसभावर्णोलूखलशिलावेधेषु दोषाः । तद्वेधदोषपरिहारोपायाः ।

१०५—नगरग्राम दुर्गादौ गृहप्रासादवृद्धये वास्तुपूजासाधनविशेषः । नाड्यास्यभेदाः । तत्र वास्तु पूजाक्रमादिः । तत्र कुड्यादिमानानि । न्यूनाधिक्ये दोषाः । दिग्भेदेन द्वारफलानि ।

१०६—नगरवास्तुविध्यादिकं तत्र क्रमः । तत्तज्जाति लोकवस्त्वादिभेदेन दिक्स्थान सन्निवेशव्यवस्था । देवालयाश्चात्रकार्याः । गृहेकल्पनीयस्थानविशेषेषु दिग्व्यवस्था । शालाभेदाः । अलिन्दभेदाः ।

१०७—पृथ्वीद्वीपतत्स्वामिपर्वतभेदादिवर्णनं नाम स्वायम्भुवः सर्गः ।

१०८—महामेरुवर्णनम्—(भुवनकोशवर्णनं) ।

१०९—तीर्थमाहात्म्यम्—तीर्थयात्राफलं न सर्वस्य । तीर्थे कर्तव्यकृत्यानि दानादि च । पुष्करादितीर्थानितन्माहात्म्यं च ।

११०—गङ्गामाहात्म्यम् तत्रास्थिक्षेपेफलम ।

१११—प्रयागमाहात्म्यम् ।

११२—काशीमाहात्म्यम् ।

११३—नर्मदामाहात्म्यम् ।

११४—गयामाहात्म्यम् धर्मव्रतायाः देवमयशिलात्वेहेतुः । गदासुरास्थिनिर्मितगदायुधधरो गदाधर इत्यस्य वर्णनम् । गयाब्राह्मणानां शापः ।

११५—गयायात्राक्रमविध्यादिकम् ।

११६— „ „

११७—गयादौ श्राद्धपद्धतिः ।

११८—भारतवर्षस्य द्वीपनद्यादिवर्णनम् ।

११९—जम्बूद्वीपादिमहाद्वीपवर्णनम् । भुवनकोशवर्णनम् ।

१२०—पृथ्वी विस्तारोच्छ्रायादिमानम् । खगोलवर्णनम् । नवग्रहाणां रथाश्वादि संख्यादिकम् ।

१२१—ज्योतिश्शास्त्रम् ।

१२२—कालगणनम् ।

१२३—युद्धजयार्णवीयनानायोगाभिधानम् । स्वरोदयशनिकूर्मराहुचक्रव्यूहप्रशंसा । विजय-

१४७—त्वरितापूजादि । सर्वोपद्रवादिहरगुह्यकुब्जिकादिदेवतापूजा ।

१४८—सङ्ग्रामविजयपूजा । दीप्तामोघाविद्युतादि देवता पूजनम् ।

१४९—लक्षकोटि होमः । होमाद्राज्यप्राप्त्यादिफलम् । सकलशत्र्वादिप्रणाशनलक्षकोट्यादि होमफलम् । होमप्रशस्तौषधयः ।

१५०—मन्वन्तराणि । स्वायम्भुवमनोश्चाग्नीध्रादि पुत्राणामुत्पत्तिः । तत्रतत्र सप्तर्ष्यादि देवानामुत्पत्तिवर्णनम् ।

१५१—वर्णेतरधर्माः । ब्राह्मणादि वर्णानामाचारा. । चण्डालादीनामुत्पत्तिः । तेषां जीविका वर्णनम् ।

१५२—गृहस्थवृत्तिः । गृहस्थानां धर्माः ।

१५३—ब्रह्मचर्याद्याश्रमधर्माः । गर्भाधानादिकालः । सीमन्तोन्नयन समयः । जातकर्मादिकथनम् । ब्राह्मणादीनामुपनयनम् । ब्रह्मचारिधर्मा. ।

१५४—विवाहः । द्विजस्य ब्राह्मण्यादिचतुर्वर्णभार्याग्रहणेधिकारः । क्षत्रियस्य क्षत्रियाद्यास्तिस्त्रोभार्याः वैश्यस्य द्वे शूद्रस्य तज्जातीया एकाभार्येति विवाहभेदः । शचीपूजोद्वाहे । विवाहे निषिद्धः कालः । शुभकालश्च विवाहे ग्रहानुकूल्यम् ।

१५५—आचारः नित्यनैमित्तिकः । षोढास्नानविधानम् । मन्त्रस्नानम् । पुरुषसामान्यधर्माः ।

१५६—द्रव्यशुद्धिः । मृण्मयादीनां शुद्धिः । यज्ञभाजनानां परिमार्जनाच्छुद्धिः । गृहादीनां शुद्धिश्च ।

१५७—शावाशौचादि जननमरणे सपिण्डानां दशाहाच्छुद्धिः । क्षत्रियवैश्यशूद्राणां क्रमाच्छुद्ध्यादि । प्रेतमुद्दिश्य श्राद्धादिकम् । शूद्रस्यामन्त्रकर्मकथनम् । नाना शस्त्रैरात्मघातिनां पतितानां वा मरणे सपिण्डेष्वाशौचाभावनिरूपणम् । ब्राह्मण शूद्रयोरन्योन्यं शवनिर्हरणे दोषाः । अनाथ द्विजशव निर्हरणात्स्वर्गलोकप्राप्तिः । शव निर्हरणविधिः । अजातदन्तादीनामनग्निसंस्कारः ।

१५८—शावाद्यशौचम् । ब्राह्मणादीनामस्थिचयनादिकालः । सपिण्डादीनां मृताशौचम् । आत्मघातिनामन्धतमः प्राप्तिः । मृतस्य दशाहकर्म । मृतेपितरि पुत्रादीनां धर्माः । पुत्र जन्मदिने कर्तव्यश्राद्धकथनम् । आशौचसन्तापनिर्णयः ।

१५९—गङ्गायामस्थि प्रक्षेपणान्मृतस्यमुक्तिः । आत्मघातिनां पतितानामुदकक्रियानिषेध. । एतस्मान्नारायणबलि-प्रतिपादनम् ।

१६०—वानप्रस्थाश्रमवनवासिनां धर्मा. ।

१६१—प्रजापत्येष्ट्यात्मन्यग्निमारोप्यनिलयाग्निर्गच्छेदित्यादि यतिग्राह्यपात्राणां निरूपणम् । पञ्चप्रकारभिक्षुकवृत्तिवर्णनमहिंसाजनकदोषनिवृत्त्यर्थं प्राणायामादिकथनम् । कुटीचक्रादिभिन्नत्वेन भिक्षुवृत्तिश्चतुर्विधेतिवर्णनम् । प्रसङ्गाद्यमनियमवर्णनम् । सगर्भागर्भभिन्नत्वेन प्राणायामस्य प्रकारद्वयकथनम् । पूरककुम्भकरेचकेति भेदेन भूयस्तयोस्त्रिविधिनिरूपणम् । यतिविधेय ध्यानादीनां कथनम् ।

१६२—धर्मशास्त्रनिरूपणम् । प्रवृत्तनिवृत्तभिन्नत्वेन कर्मेण. प्रकारद्वयकथनम् । श्रावण्यां स्वाध्यायानामुपाकर्मविधिवर्णनम् । सप्तत्रिंशदनध्यायानां निरूपणम् ।

प्रायश्चित्तवर्णनम्। अन्योदक्यया स्पृष्टाया उदक्यायाः प्रायश्चित्तवर्णनम्। पदत्राण-स्पृष्टश्वादीनां प्रायश्चित्तादि वर्णनम्।

१७०—प्रायश्चित्तानि। रहस्यादि प्रायश्चित्तवर्णनम्। सकलकृच्छ्रेषु मुण्डनादिप्रकारः। वीरासनलक्षणकथनम्। यतिचान्द्रायणलक्षणकथनं बालकचान्द्रायण-देवचान्द्रायण लक्षणकथनम्। तप्तकृच्छ्रलक्षणकथनम्। कृच्छ्रातिकृच्छ्रलक्षणकथनम्। कृच्छ्र-सान्तपनलक्षणम्। महासान्तपनलक्षणम्। अतिसान्तपनलक्षणम्। तप्तकृच्छ्रादि-वर्णनम्। ब्रह्मकूर्चलक्षणम्।

१७१—सर्वपाप प्रायश्चित्तानि। हरेः पाप प्रणाशनस्तोत्रवर्णनम्।

१७२—प्रतिपाद्यविषयाः। प्रायश्चित्तम्। ब्रह्मघातस्वरूपवर्णनम्। ब्रह्महत्यादीनां प्राय-श्चित्तानि। यष्टिकादिभिर्गोताडने सान्तपनादिवर्णनम्। रेतोविण्मूत्राशनस्य प्राय-श्चित्तम्। नरहरणादि-दोषाणां प्रायश्चित्तानि।

१७३—प्रायश्चित्तानि। सुराश्रमार्चनादीनां नष्टे प्रायश्चित्तानि। अघनाशनायान्नदानादि-कथनम्। गङ्गादीनां पापप्रणाशकत्वेन वर्णनम्। अघापनोदकानां वाराणस्यादिक्षे-त्राणां वर्णनम्।

१७४—व्रतपरिभाषा। व्रतनिषेध-द्रव्यवर्णनम्। असकृदुदकपानादिभिर्व्रतभङ्गः। सर्व-व्रतसाधारणधर्मकथनम्। व्रतग्राह्यपदार्थकथनम्। व्रते कूष्माण्डादीनां निषेधक-त्वेन वर्णनम्। प्रसङ्गात्प्राजापत्यातिकृच्छ्रसान्तपनमहासान्तपनपराकचान्द्रायणानां लक्षणम्। ब्रह्मकूर्चलक्षणवर्णनम्। अधिमासेऽग्न्याधेयादीनां निषेधकत्वेन निरूप-णम्। चान्द्रमसादीनां कथनम्। अपरपाक्षिकश्राद्धस्य विधेयत्वेन वर्णनम्। गर्भिणी सूतिका रजस्वलादीनां यद्यशुद्धिस्तदा व्रतादीन्यन्येन कुर्यादिति वर्णनम्। कुपितादिना व्रते नष्टप्रायश्चित्तम्। व्रतसंसिद्धये विष्णोः स्तुत्यादिकथनम्। केशवा-र्चनं पुनः। व्रताङ्ग विप्रभोजनादि कथनम्।

१७५—प्रतिपद्व्रतानि। पञ्चदश्यामुपवासपूर्वकं प्रतिपदिब्रह्मपूजनविधिः। सलक्षण हैम ब्रह्मार्चनम्। शक्त्याब्रह्मणेपयः प्रदानवर्णनम्। व्रतजनकफलवर्णनम्। मार्गशीर्षे प्रतिपदि शिखिव्रतम्।

१७६—द्वितीया व्रतानि। द्वितीयायामश्विनी कुमारार्चनम्। ऊर्जशुक्लपक्षे द्वितीयायां यमपूजनम्। नभसि कृष्णपक्षे द्वितीयायामशून्यशयनव्रतस्य विधेयत्वेन वर्णनम्। अशून्यशयनव्रतप्रकार-कथनम्। ऊर्जशुक्लपक्षे कान्तिव्रतम्। तद्व्रतविधानञ्च। पौषशुक्ल द्वितीयायां विष्णुव्रतम्। तद्व्रतविधानकथनम्।

१७७—तृतीया व्रतानि। चैत्रशुक्लतृतीयायां मूलगौरीव्रतम्। तद्व्रतविधि कथनञ्च। शुक्लपक्षे नभस्य वैशाखमार्गशीर्षेष्वप्येतद्व्रतविधिः। फाल्गुनादि तृतीयायां सौभा-ग्यव्रतादिनिरूपणम्।

१७८—चतुर्थी व्रतानि। माघशुक्लचतुर्थ्यां विनायकव्रतम्। तन्मन्त्र वर्णनम्। विनायका-र्चनविधिश्च। भाद्रपदे चतुर्थी व्रतम्। अङ्गारक चतुर्थी व्रत वर्णनञ्च।

१७९—पञ्चमी व्रतानि। श्रावणस्यादि मासे सितेपक्षे पञ्चम्यां वासुक्यादीनामर्चनम्।

१९५—वारव्रतानि हस्तर्क्षे सूर्यवारव्रतम्। नक्ते नान्दिव्रतम्। चित्राभे सोमवारव्रतम्। स्वात्यां भौमव्रतम्। विशाखायां बुधव्रतम्। अनुराधायां गुरुवारव्रतम्। ज्येष्ठायां शुक्रवार व्रतम्। मूले शनैश्चरव्रतम्।

१९६—नाक्षत्रव्रतानि। मूलादौ विष्णुपाद्यादिपूजनम्। कार्त्तिके कृत्तिकायां केशवाद्याह्वाभिः पद्मनाभपूजनम्। कार्त्तिकादि मासचतुष्टयेऽन्नदानकर्तव्यता। फाल्गुनादि मास चतुष्टये कृशदानम्। आषाढ़ाद्यौपायसदानम्। नक्षत्रव्रतम्। अनन्तव्रत कथनम्। मासचतुष्टयपर्यन्तमनन्तनिमित्तं होमविधि राज्येन। चैत्रादौ शालिना होमादेः कर्तव्यता।

१९७—दिवसव्रतानि। धेनुपयः कल्पवृक्षव्रतम्। त्रिरात्र-व्रत-महिमा कार्त्तिक शुक्ल दशम्यां शिखिवाहनव्रतम्। चैत्रे त्रिरात्रादि व्रतम्।

१९८—मासव्रतानि। आषाढादिमास चतुष्टयव्रतम्। वैशाखव्रतम्। माघे चैत्रे गुडधेनुदानम्। मार्गशीर्षादि मासेषु नक्तव्रतम्। मांसादि त्यागाद्विप्रत्वादि प्राप्तिः। आश्विने कौमुदव्रतम्। कौमुदव्रतफलम्।

१९९—वर्षाकाल इन्धनादि व्रतम्। सन्ध्यायां मौनव्रतम्। तिलघण्टा वस्त्रदानादि व्रतानि। संक्रान्ति व्रतम्। उमाव्रतादिकम्।

२००—दीपदानव्रतम्। दीपदान माहात्म्यम्। दीपदानेन विदर्भराज दुहितुर्ललिताया राजपत्नीत्वप्राप्तिः।

२०१—नवव्यूहार्चनम्। वासुदेवादि बीजानां पृथग्दिक्ष्वावाहनम्। तेषामर्चनम्।

२०२—पुष्पाध्याय कथनम्। नानाविध विष्णुपूजनम्। देवयोग्यान्ययोग्यानि वा पृथक्कुसुमानि, तेन सद्सल्लोकप्राप्तिः। पुष्पप्रशंसा।

२०३—अथ नरकस्वरूपम्। गोघादि दुष्ट जन्तूनां महावीचिताम्रकुम्भादि नरकेषु क्षेपणम्। महापापिनां नानाविध प्रहरणैर्हननम्।

२०४—मासोपवास व्रतम्। तत्र वृथालापादि दूरीकरणम्। द्विजपूजनम्। तेभ्यो दानानि।

२०५—भीष्मपञ्चकव्रतम्। तत्र देवपितृतर्पणम्।

२०६—अगस्त्यार्घ्य दान-कथनम्। साघ्र्यागस्त्यवनम्।

२०७—अथ कौमुदव्रतम्।

२०८—व्रतदानादि समुच्चयः। ग्रहणादौ व्रतफलम्।

२०९—दान-परिभाषा-कथनम्। वापी कूपादि निर्माणत, मोक्षप्राप्ति वर्णनम्। अग्निहोत्र वेदादि परिपालनान्मुक्तिकथनम्। गङ्गादितीर्थेषु दानप्रकारः। पृथग्वर्णाचार्य ब्राह्मणेभ्यो दत्तदानफलम्। नानाविधेषु द्रव्येषु विष्ण्वादि देवस्वरूपनिरूपणम्। कृतादियुगेषु दानविधानम्।

२१०—महादानानि तुला पुरुषादि षोडश दानानि। गुड घृतादिविहित नानाविधानि दानानि। तद्विधिः। तत्फलम्।

२११—नानादानानि—गो सहस्रदानतः सौवर्ण प्रासादादिस्थगन्धर्वैः स्तूयमानत्वकथनं गृहमठसभादीनां नानाविधानि दानानि तत्फलञ्च। गजाश्वादिदानम्। अन्नदान-महिमा।

२१२—मेरुदानानि। नानाविधान्नदानानि। भिन्न-भिन्न-धातुविहित-मेरुदानं रत्नमेरुदानं च।

२१३—पृथिवीदानादि पृथिव्याः पृथग्दानादि ।

२१४—मन्त्रमाहात्म्यकथनम् । दशनाडी वर्णनम् । तत्स्थानानि प्राणीनां निरूपणम् । तत्कार्यं पृथगवयवेषु ब्रह्मादि देवानां स्थापनम् । ह्रस्वदीर्घादि प्रासादधारणफलम् ।

२१५—सन्ध्याविधिः । ओङ्कार-महिमा वर्णनम् । गायत्री प्रशंसा । तस्या अयुतलक्षादि जपात्सिद्धिकथनम् ।

२१६—गायत्री निर्वाणम् । सन्ध्यान्ते गायत्रीजपः । भूरादिव्याहृतिवर्णनम् ।

२१७—पुनः गायत्रीनिर्वाणम् । कनकादि लिङ्गरूपिमहादेवस्य स्तुतिः । वसिष्ठवरप्रदानम् ।

२१८—राज्याभिषेकवर्णनम् । क्षत्रियादीनां रूप्यादि कुम्भाभिषेचनम् ।

२१९—अभिषेक मन्त्राः । ब्रह्माद्यभिषेक मन्त्राः । आदित्याद्यभिषेक मन्त्राः । स्वायम्भुवादिमनूनामभिषेक मन्त्राः ।

२२०—सहायसम्पत्तिः राज्ञाकरणीय । सेनापति-सजाति-लक्षणम् । सभासदलक्षणम् । धर्मसङ्ग्रामादि कार्येषु नियोज्याः पुरुषाः । दुष्टादुष्टाश्रयणम् । भृत्यानां परीक्षा । शुभाशुभज्ञानम् ।

२२१—अनुजीविवृत्तं भृत्यकृत्यम् ।

२२२—दुर्गसम्पत्तिः । नृपकृत्यं धनुरादि दुर्गनिर्माणम् । पुररचना राजरक्षा गो-ब्राह्मण प्रतिपालनादीनि राजकृत्यानि ।

२२३—राजधर्माः। ग्रामाधिपतिकृत्यम् । प्रजारक्षणप्रकारः। दण्ड्यादण्ड्यत्वादिराजकृत्यानि ।

२२४—राजधर्माः । अत्यनासक्तित्वेन स्त्री-सेवा । शरीरारोग्यकराणि कार्याणि । सेव्यासेव्य स्त्री लक्षणकथनम् । कपित्थादि कर्माष्टकम् । अनङ्गवर्द्धनो धूपःस्नान-द्रव्य-कथनम् । कन्दर्पवर्द्धन स्नानम् । नानाविधौषधीवर्णनम् ।

२२५—राजधर्मा. । सर्वाधिकारेषु योजनीयपुरुषः । नृपेण त्याज्यानि कर्माणि । मित्रलक्षणम् । सप्ताङ्गराज्यम् । नानाविधान्यन्यानि राजकृत्यानि ।

२२६—सामाद्युपायकथनम् । सामवर्णनम् । दानफलम् । राज्ञे दण्ड्यादण्ड्ययोरविचारितत्वेन दोषप्राप्तिः ।

२२७—दण्डप्रणयनम् । मापकर्षादीनां मानम् । सुवर्णादीनां स्तैन्ये पृथग्विधो दण्डः । ब्राह्मणक्षत्रियादीनां पृथग्दण्डः । गोगजाश्वघातिनां दण्डाः । अन्यदण्ड्यदण्डाः ।

२२८—युद्धयात्रा । यात्रायै गम्यागम्यदिशः । शरीरस्फुरणादीनि शकुनानि ।

२२९—स्वप्नः शुभाशुभः । दु.स्वप्नहरणकथनम् । जघन्यस्वप्नवर्णनम् । तच्छान्तिः । शोभनानि स्वप्नानि ।

२३०—शकुनानि । प्रयाणकाले शुभाशुभ शकुनानि । विष्णुपूजयाऽमङ्गलनाशः । श्वेतादिपुष्पाणां शुभत्वम् ।

२३१—शकुनानि । शकुनाष्टप्रकाराः । सदसत्फलप्रदानि शकुनानि । गवोष्ट्रादीनां ग्रामवासित्वम् । भारद्वाज-सारङ्गादीनां दिवाचरत्वम् । उलूकशर्भादीनां रात्रिचरत्वम् । मृगमार्जारवृकादीनां ह्युभयचारित्वम् । तेषां पुरतः पृष्ठतः पार्श्वतो वा विनिर्गमेन शुभाशुभफलम् ।

२३२—शकुनानि । युद्धप्रयाणे पुरतः शुभाशुभफलपिशुनशकुनानि ।

२३३—यात्रामण्डल चिन्तादि । यात्रायां निषिद्धः कालः । शोभनदिवसाः । छायामानम् । राज्यसप्ताङ्गमण्डल-रचना-वर्णनम् ।

२३४—षाड्गुण्यं दण्डद्वैविध्यं शत्रोरुद्वेजनं इन्द्रजाल कथनम् ।

२३५—राज्ञो दिनचर्या । अजस्रकर्मकथनम् । स्नान-सन्ध्यादिपित्रर्चनादीनि प्रत्यहङ्करणीयानि कार्याणि राज्ञाम् ।

२३६—अनेकविषयाः । राज्ञो यात्राया. प्राक् सप्ताहपर्यन्तं पृथग्देवतानां पूजनम् । मोदकादिभिर्गणेशादि देवपूजनम् । राज्ञो विजयस्नानम् । सप्तमेह्नि त्रिविक्रमपूजनम् । सङ्ग्रामगमनविधिः । दशव्यूह प्रतिपादनम् । चमूनिवेशनादि युद्धधर्मः । विजयप्राप्तौ गोदेव द्विजानां पूजनम् । रणान्मुक्तशत्रोः पुत्रवत्पालनम् ।

२३७—श्रीस्तोत्रम् । इन्द्रकृतेन्दिरास्तुतिवर्णनम् । वरप्राप्तिः । पाठकर्तृफल-प्रशंसा ।

२३८—न्यायार्जनादिवृत्तचतुष्टयम् । विनयप्रशंसा । सम्पत्तिहेतवः गुणाः । कामक्रोधादिवर्जनम् । आन्वीक्षिक्यादिनार्थविज्ञानप्रकारः । वर्णिनां सामान्योधर्मः । राज्ञःकृत्यम् ।

२३९—पुनः राजधर्माः । राज्यसप्ताङ्ग साधुभूपगुणाः । आत्मसम्पद्गुणाः । मित्रसङ्ग्रहः । भृत्यवृत्तम् । वर्गाष्टक-परिपालनादिकथनम् ।

२४०—पुनः षाड्गुण्यम् । द्वादशराजकमण्डलनिर्माणम् । सन्धिविग्रहादिवर्णनम् । बालवृद्धादिषु सन्ध्यभावः । सापत्न्यादिभेदेन वैरपञ्चवैध्यम् । विग्रहावसरः । यानस्य पञ्चविधत्वम् ।

२४१—सामादि पञ्चाङ्गमन्त्रः । कर्मसिद्धिलक्षणम् । त्रिविधोदूतः । पञ्चविधं दैवम् । अमात्य कर्मव्यसननिगर्हणम् । सचिव-व्यसनकथनम् । दुर्ग-व्यसनम् । कोश-व्यसनम् । बाल व्यसनम् । पञ्चविधदानविधिः । शत्रूणां भयायेन्द्रजालादिनिर्माणकथनम् ।

२४२—राजनीतिः । सेनारचनादि युद्धधर्मः । सैन्यविभागेन व्यूहादिरचना । गोमूत्रिकादिव्यूहवर्णनम् । गोमूत्रिकादि व्यूहलक्षणम् ।

२४३—पुरुषलक्षणम् । सुलक्षण्यः पुरुषः त्रिविनतः पुरुषः ।

२४४—स्त्रीलक्षणम् । सुलक्षण्यास्त्री ।

२४५—भद्रासनलक्षणम् । चामरछत्रादिलक्षणम् । त्रैलोक्य मोहन मन्त्रैर्धनुः खड्गपूजनविधानं खड्गधनुर्लक्षणम् । खड्गास्यं नालोकयेदित्यादि धर्माः ।

२४६—रत्नपरीक्षा । नृपधार्य रत्नानां निरूपणम् । वज्रधारणम् । वज्रलक्षणम् । मौक्तिकादि परीक्षणम् । इन्द्रनीलादिमणय. ।

२४७—वास्तुलक्षणम् । वास्तुकर्मणि समुचिता पृथ्वी खातस्य परितो महेन्द्रादि देवतावाहनम् ।

२४८—पुष्पादि पूजाफलम् ।

२४९—धनुर्वेदः । धनुर्वेद पञ्चविधत्वम् । मन्त्रमुक्तलक्षणम् । समपदस्थादीनां लक्षणानि । बाणधारण प्रकारः ।

२५०—धनुर्वेदकथनम् । धनुर्विद्याभ्यासः । वेध्यवर्तन विधानम् ।

२५१—धनुर्वेदकथनम् । धनुर्विद्यामाश्रित्य वाहनारोहणादि विधानम् ।

२५२—धनुर्वेदकथनम् । खड्गचर्मादि शस्त्रधारणम् । भ्रान्तोद्भ्रान्तादिभेदेन नानाजातीय प्रकार वर्णनम् ।

२५३—नयानयादिविचारः । निक्षेपादिलक्षणम् । मूल्येन पण्यं विक्रीय यश्च क्रेत्रेण दीयते इत्यादि विवादपदवर्णनम् ।

२५४—व्यवहारकथनम् ऋणप्रत्यर्पणादिविषयः ।

२५५—दिव्यप्रमाणकथनम् । साक्षिलक्षणादि । कूटसाक्षिणः । पातकादिकम् । तद्दण्ड-प्रणयन प्रकारः । लेख्यकृत ऋणदेयत्वम् । सत्यपरीक्षणार्थं सप्तस्वश्वत्थपत्रेषु सूत्रै-र्लोहमग्निमयपिण्डधारणादिकथनम् ।

२५६—दायविभागकथनम् । पित्रोरूर्ध्वमृक्थमृणं पुत्राः समं विभजेयुरित्यादि । विद्ययाप्त द्रविणविभागः । औरसादि पुत्रभेदः । धनाधिकारिणः । स्त्रीधनादिकम् । स्त्रीधनाधि-कारिणश्च दौर्बल्यादिदशायां भर्त्रागृहीतस्त्रीधनं तस्यै पुनर्दातुं नार्हतीति कथनम् ।

२५७—सीमाविवादादि निर्णयः । मृषा सीमाविवादे दण्डप्रणयनादिकम् । तस्य घातका-रिणां महिष्यादीनां दण्डनीयत्वम् । किङ्कराणां वेतनादिकम् ।

२५८—वाक्पारुष्यादि प्रकरणम् । मिथ्यापशब्दवाचिनां नानाविध दण्ड प्रणयनादिकम् ।

२५९—ऋग्विधानम् । गायत्री जपादिविधिः । "अग्निमीळे पुरोहितमि"ति जपन्सकला-भीष्टकामानाप्नोतीत्यादिकम् ।

२६०—यजुर्विधानम् । होमाद्यनेकविधानुष्ठानविधानम् । तदनुष्ठानफलम् ।

२६१—सामविधानम् । "यत इन्द्र भयामहे" इत्यादि जपाद्धिंसा-दोष-निवारण-फलकथ-नम् । सर्पसामप्रयुञ्जानस्य सर्पभयाभावबोधः । पृथग्विधानुष्ठानविधिः तत्फलं च ।

२६२—अथ विधानम् होमादिविधिः ।

२६३—उत्पातशान्तिः । श्रीसूक्तजपेन श्रियःप्राप्तिः । अमृताभयादि शान्तीनां सर्वोत्पात-नाशनत्वम् । उल्कापातादि शान्तिः । अकाल-विकृत-प्रस्वादीनां शान्तिः । आका-शतुमुलनादादीनां शान्ति कथनम् ।

२६४—देवपूजा । वैश्वदेवबलि-विष्णुपूजनम् । होमनिरूपणम् । देवताभ्यः बलिदानादि-कथनम् । पिण्डनिर्वपनविधानादि ।

२६५—दिक्पालादिस्नानम् । देवतालयादिषु स्नानात्पृथक्फलप्राप्ति-वर्णनम् । पुनर्नवादि-भिरुद्वर्तनपूर्वकस्नानाचरणम् । मण्डले विष्ण्वादिदेवतापूजनपूर्वक-होमविधिः । कुम्भे औषधी निक्षेपणादि विधिकथनम् ।

२६६—विनायकस्नानम् । दुःस्वप्न प्रदर्शनदोषादिनाशनाय स्नानविधि कथनम् । स्त्रीणा-मनपत्यादि दोषनाशकस्नानम् । होमादिविधिः ।

२६७—माहेश्वर-स्नान-लक्षकोटि-होमादयः । नृपाणां विजयप्रद-माहेश्वर-स्नानम् । मन्त्र-पूर्वक-होमविधिः । शूलपाणिपूजनम् । घृतादि स्नानैरायुर्वृद्धिः । विष्णुपादोदक स्नान-महिमा । अवक्रन्दतिसूक्तेन करे मणिबन्धादि प्रकारः । घृतादिभिर्विष्णोः स्नानम् । धूपादिभिस्तत्पूजनम् । लक्षकोटि होमप्रतिपादनम् ।

२६८—नीराजनविधिः । जन्मनक्षत्रे राजपूजनम् । अगस्त्योदयेऽगस्त्यपूजनम् । चातुर्मास्ये विष्णु

पूजनम्। शयनोत्थापने पञ्चदिनोत्सवादि करणीयत्वम्। नभस्येसितपक्षे शक्रध्वज स्थापनपूर्वकं शचीपूजनम्। पद्मजादि-स्तुतिः। भद्रकालीपूजनम्। नीराजनादिविधिः।

२६९—छत्रादि प्रार्थना मन्त्राः।

२७०—विष्णुपञ्जरम्। विष्णोश्चक्रगदाद्यायुधवर्णनम्। यक्षयातुधानादिनाशन-विष्णु-स्तुतिः।

२७१—वेदशाखादिकथनम्। ऋग्वेदादि मन्त्रप्रमाणम्। तच्छाखाभेदः। समग्र पुराणेष्वाग्नेयश्रैष्ठ्यम्।

२७२—पुराणदानादिमाहात्म्यम्। ब्रह्मादि पुराणश्लोकसंख्योक्त्या दानप्रक्रमः।

२७३—सूर्यवंश कीर्तनम्। ब्रह्मपुत्र मरीचेः कश्यपोत्पत्तिस्तत्पुत्रो विवस्वांस्ततः सूर्यवंशीया नृपाः।

२७४—सोमवंश वर्णनम्। विष्णुनाभिपद्माद्ब्रह्मोत्पत्तिस्तत्पुत्रोऽत्रिस्तदात्मजसोमकृत राजसूयावभृथे सोमरूपदर्शनेन लक्ष्म्यादि नवदेवीनां मोहनत्वम्। गुरोर्बृहस्पतेर्भार्याहरणम्। सोमाङ्गिरः सुतयोर्युद्धम्। बृहस्पतेः पत्न्याः सोमपुत्र बुधोत्पत्तिः। ततस्तद्वंशीयनृपवर्णनम्।

२७५—यदुवंशवर्णनम्। यदोः सहस्रजिदादीनामुत्पत्ति.। स्यमन्तकोपाख्यानम्। पाण्डवानामुत्पत्तिः।

२७६—द्वादशसङ्ग्रामाः। देवक्यां वासुदेवोत्पत्तिः। समासतः कृष्णचरित वर्णनम्। नारसिंहादीनां द्वादश सङ्ग्रामवर्णनम्।

२७७—राजवंशवर्णनम्। तुर्वसोर्वर्गादीनामुत्पत्तिः।

२७८—पुरुवंशवर्णनम्। पुरोजनमेजयादीनामुत्पत्ति.। शान्तनोर्गङ्गायां भीष्मोत्पत्तिः।

२७९—सिद्धौषधानि अधस्ताद्गते ज्वरे वमनमूर्ध्वं गते विरेचनमिति ज्वरादि रोग निवृत्तौ सिद्धौषधयः।

२८०—सर्वरोगहराण्यौषधानि। शारीर मानसागन्तुकादि रोगाणां वर्णनम्। तेषां परिहरणाय सूर्यवारादौ घृतगुडादि दानानि। शिशिरादिऋतूनां धर्माः। रोगसमुद्भवनिदानम्। वातादि प्रकृतीनां लक्षणम्।

२८१—रसादिलक्षणम्। कषायकल्पनादिकम्। कषाये द्रव्य-परिमाणम्। लेह्यचूर्णगुणाः। निदाघादावङ्गपीडनादि विधानम्। अजीर्णेश्रमनिषिद्धत्वम्। व्यायामादितः कफनाशनादि गुणोत्पत्तिः।

२८२—वृक्षायुर्वेदः। उत्तरादिदिक्षु प्लक्षादि वृक्षाणां शुभत्वम्। ब्राह्मण-चन्द्रपूजनपूर्वकं वृक्षरोपणविधि.। द्रुमरोपणे शस्यनक्षत्राणि। अशोकादि वृक्षाणां घर्मान्ते सायमुष्सेचनं शीतकाले सूर्योदयानन्तरमित्यादि वृक्षाणां फल पुष्पादि समृद्धये विडङ्गघृतादि द्रव्यैः सेचनादि विधानम्।

२८३—नानारोगहराण्यौषधानि। सर्वेष्वतिसारेषु सिंहीसटीत्यादि-विनिर्मित-क्वाथ-सेवनादिकम् बालरोगहराण्यौषधानि। गुदाङ्कुरे तक्रादिपेयत्वकथनम्। मूत्रकृच्छ्रादि नाशक क्वाथादिनिरूपणम्।

२८४—मन्त्ररूपौषधकथनम्। ओङ्कारादि मन्त्रैरायुरारोग्यवर्द्धनादि वर्णनम्।

३०३—अङ्गाक्षरार्चनम् । वासुदेवादि पूजाविधिः ।

३०४—पञ्चाक्षरादि पूजामन्त्राः । शिष्यदीक्षाविधिः । अनन्तयागपीठे तत्पुरुषादि मूर्त्तिनां स्थापनं पूजनं च । दीक्षायां शिष्यनामकरणादिकम् ।

३०५—पञ्चपञ्चाशद्विष्णुनामानि ।

३०६—नारसिंहादिमन्त्राः । मन्त्रजपात्क्षुद्रग्रहमारीविषामयानां विनाशः ।

३०७—त्रैलोक्य मोहनमन्त्रः । विष्णुपूजाजपहोमादिविधानम् ।

३०८—त्रैलोक्यमोहिनी लक्ष्म्यादि पूजा । तस्याएवमन्त्राः ।

३०९—त्वरिता पूजा त्वरिता ध्यानादिकम् ।

३१०—त्वरिता मन्त्रादि प्रणीतादि मुद्रालक्षणम् ।

३११—त्वरिता मूलमन्त्रादि पूजाजपहोमादिकम् ।

३१२—त्वरिता विद्या । विद्याप्रस्तावः । मुखस्तम्भादि प्रयोगाः । त्वरिता विद्या-प्रशंसा ।

३१३—नानामन्त्राः । विनायकार्चनादि प्रयोगः । शत्रूच्चाटनविधिः । गौरीमन्त्रानुष्ठानादिकम् ।

३१४—त्वरिताज्ञानम् । त्वरितापूजनविधिः । निग्रहानुग्रहचक्रलेखनादि विधानम् ।

३१५—स्तम्भनादि मन्त्राः ।

३१६—नानामन्त्राः । कालदष्ट-जीवनादि मन्त्रनिरूपणम् ।

३१७—सकलादि मन्त्रोद्धारः । ब्रह्मपञ्चकम् । प्रासादमन्त्रादिकथनम् । पञ्चाङ्ग सदाशिव कथनम् । विद्येश्वर वर्णनम् ।

३१८—गणपूजा । शिवगायत्री द्वारोपद्वार निर्मित विघ्ननाशनाख्यमण्डले गणपति पूजन-विधिः । जपहोमादि विधानम् ।

३१९—वागीश्वरी पूजा । समण्डलं वागीश्वरी पूजनम् । कपिलाज्येन होमविधानम् । पूजनात्कवित्वप्राप्तिः ।

३२०—मण्डलानि । सर्वतोभद्रकादि मण्डलानि ।

३२१—अघोरास्त्रादि शान्तिकल्पः । शिवाद्यस्त्रपूजनम् । ग्रहपूजनादेकादशस्थानप्राप्तिः । सर्वोत्पातविनाशिकास्त्रशान्ति-कथनम् ।

३२२—पाशुपत शान्तिः ।

३२३—षडङ्गान्यघोरास्त्राणि । वशीकरणादि मन्त्राणां विधिः । शतावर्यादिचूर्णसेवनात्पुत्र-लाभ. । महामृत्युञ्जयादि मन्त्राः ।

३२४—रुद्रशान्तिः । रुद्रशान्तिफलम् ।

३२५—अंशकादिः रुद्राक्षधारणम् । मन्त्रसिद्ध्यै सिद्धाद्यंशकथनम् ।

३२६—गौर्यादिपूजा । मन्त्रध्यानमण्डलमुद्रादिवर्णनम् । गौरीपूजा-फलम् । मृत्युञ्जया-र्चनम् । तत्फलम् ।

३२७—देवालय-माहात्म्यम् । यमला-जप-विधिः । शिवलिङ्ग-पूजा-प्रशंसा । वित्तानुसारतो देवालयादि निर्माणावश्यकत्वम् ।

३२८—छन्द.सारः ।

३२९—छन्द.सारः । यजुषां षडर्णा गायत्र्यृचामष्टादशार्णेत्यादि गायत्रीभेदः । गायत्रीछन्दो

३५१—सुब्विभक्ति सिद्धरूपम् । विभक्ति पदवाच्य सुप्तिङोः कथनम् । स्वादिविभक्तिनिरूपणम् । अजन्त-हलन्तभेदेन प्रातिपदिकद्वैध्यम् । तयोस्त्रिप्रकारत्वं पुंस्त्वादिभेदेन । वृक्षादि सिद्धरूपाणि ।

३५२—स्त्रीलिङ्ग शब्दसिद्धरूपम् रमादिरूपाणि ।

३५३—नपुंसक शब्द सिद्धरूपम् ।

३५४—कारकम् । अभिहितानभिहितत्वेन कर्त्तुरुत्तमाधमत्वम् । कर्मसंज्ञादिनिरूपणम् ।

३५५—समासः । तत्पुरुषादि समासकथनम् ।

३५६—तद्धिताः । तद्धितसिद्धरूपाणि ।

३५७—उणादिसिद्धरूपकथनम् ।

३५८—तिङ्विभक्तिसिद्धरूपम् ।

३५९—कृत्सिद्धरूपम् ।

३६०—स्वर्गपातालादि वर्गा. ।

३६१—अव्ययवर्गः ।

३६२—नानार्थवर्गा. ।

३६३—भूमिवनौषध्यादिवर्गा. ।

३६४—नृब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रवर्गाः ।

३६५—ब्रह्मवर्गाः ।

३६६—क्षत्रविट्शूद्रवर्गाः ।

३६७—सामान्यनामलिङ्गानि ।

३६८—प्रलयवर्णनम् । नित्यनैमित्तिकप्राकृतात्यन्तिकादिभेदैश्चतुर्विधप्रलयवर्णनम् ।

३६९—आत्यन्तिक-लयगर्भोत्पत्त्योर्लक्षणम् । शरीरमानसभेदेनाऽऽध्यात्मिकसंतापस्यद्विप्रकारत्वम् ।भोगदेहं विसृज्य जीवस्य कर्मणा गर्भान्तरप्राप्तिः । शुभाशुभकर्मफलम् । गर्भस्य प्रतिमासमवयवोत्पत्तिः । सत्वादिगुणलक्षणम् । देहे सृगादीनां गुणा. ।

३७०—शरीरावयवाः । कर्मेन्द्रियाणि शरीरे सप्ताशयाः । समग्रदेहे षोडशजालानि । ग्रीवाद्यवयवादिषु नाडीप्रमाणम् ।

३७१—नरकनिरूपणम् । शुभकर्मणां मनुष्याणां प्राणा ऊर्ध्वच्छिद्राद्विनिर्गच्छतीत्यादियाम्यमार्गकथनम् । तामिस्त्रादिनरकाणां वर्णनम् । पापिनाञ्जनानामतीव दु.खप्रदयातनानिदर्शनम् । आध्यात्मिकादितापलक्षणम् ।

३७२—यमनियमाः । अष्टाङ्गयोगः । प्रसह्यपरद्रव्यहरणेन तिर्यग्योनिप्राप्तिः । मनोजयादिकथनम् । विष्णुपूजनादुत्तमागतिः ।

३७३—आसन-प्राणायाम-प्रत्याहारा· ।

३७४—ध्यानम् । ध्यानयज्ञस्य मुक्तिसाधनन्त्वम् । हृदयेविष्णोर्ध्यानादिकम् ।

३७५—धारणा । धारणालक्षणम् । वारुणीधारणा, ऐशानीधारणा, धारणादिभिः साधकस्य विगतक्लेशत्वम् ।

३७६—समाधि. । समाधिलक्षणम् । योगिन. प्रशंसा । योगी सूर्यमण्डलं निर्भिद्य ब्रह्मलोक-

मतिक्रम्य निर्वाणमृच्छतीत्यादि सदाचारगृहस्थस्यापि मोक्षरीतिकथनम् ।

३७७—ब्रह्मज्ञानम् । देहादेरात्मभावबोधनम् । द्रष्टृभोक्तृत्वादिनिरूपणमात्मनः लिङ्ग-शरीरोत्पत्तिः । ब्रह्मज्ञस्य संसारान्मुक्तिः ।

३७८—ब्रह्मज्ञानम् ।

३७९—ब्रह्मज्ञानम् । क्रतुभिर्देवपदप्राप्तिः । तपसा वै राजपदस्य प्राप्तिः । कर्म संन्यासद्ब्रह्म-पदावाप्तिः । वैराज्ञात्प्रकृतौलयः । ज्ञानात्कैवल्यम् । जीवानामित्येताः पञ्चगतयः । भावनात्रैविध्येन ब्रह्मोपासना । ब्रह्मज्ञानलक्षणम् ।

३८०—अद्वैतब्रह्मविज्ञानम् । अन्तकाले मृगादिस्मरणात्तद्देह प्राप्तिः । अद्वैतज्ञानविषये नृप-ब्राह्मण-संवादः । तत्र निदाघ-ऋतु-संवाद कथनम् । ब्राह्मणोपदेशाद्राज्ञोमुक्तिः ।

३८१—गीतासारः ।

३८२—यमगीता तस्याःफलम् ।

३८३—आग्नेयमहापुराणमाहात्म्यम् । हेमन्तादावाग्नेय पुराण श्रवणतोऽग्निष्टोमादि यज्ञ-फल प्राप्तिः । आग्नेयपुराणान्तर्गत विषयक्रमः । पुराणसंख्या । पुराणपाठकपूजना-दिकम् । पुस्तकदानफलम् ।

अग्निपुराणकी विषयसूची नारदीय पुराणमें दी हुई है । ऊपरकी विषयसूची उससे ठीक-ठीक मिलती जुलती है । अग्निपुराणमें अठारहों विद्याओंका संक्षेपसे वर्णन है । रामायण महाभारत हरिवंश आदि इतिहासके विषयोंका सार है । धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, आयुर्वेद अर्थशास्त्र तथा वेदाङ्गोंका भी वर्णन है । दर्शनोंके विषय भी नहीं छूटे हैं । अन्तमें काव्यका भी अच्छा वर्णन हुआ है । कौमार व्याकरणके नामसे एक छोटासा उपयोगी व्याकरण, एका-क्षरकोश, नाम लिङ्गानुशासन भी दिया हुआ है । यदि यह अंश निकालकर अलग छपें तो विद्यार्थियोंके लिये बड़े उपयोगी हो सकते हैं । इस पुराणमें पञ्चलक्षणत्वके अतिरिक्त हिन्दू-साहित्य और संस्कृतिके सम्पूर्ण विषयोंका समावेश है । अतः यह एक प्रकारका हिन्दू-सांस्कृतिक विश्वकोश है । इसकी श्लोक-संख्या अन्य पुराणोंमें १५ हजार बतायी गयी है और है भी १५ हजारसे कुछ ही अधिक ।

जिस पोथीसे ऊपर दी हुई सूची उद्धृत हुई है वह बम्बईके वेङ्कटेश्वर प्रेसकी छपी है ।

पैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मवैवर्तपुराण

ब्रह्मवैवर्त महापुराण वैष्णवपुराण समझा जाता है। इसमें आधेमें तीन खण्ड हैं ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, गणपतिखण्ड। और आधेसे कुछ अधिकमें श्रीकृष्ण जन्मखण्डका पूर्वार्ध और उत्तरार्ध है। इस पुराणकी विषयानुक्रमणिका इस प्रकार है।

अथ ब्रह्मखण्डम् ॥ १ ॥

१—ग्रन्थादौ मङ्गलाचरणम्। नैमिषारण्ये शौनकादीन्प्रति सौतेरागमनम्, तत्र कुशल-प्रश्नानन्तरं सौतिं प्रति शौनक महर्षे. श्रीकृष्ण भक्तीहापरसौख्यप्रदन्महापुराण तत्वजिज्ञासया प्रश्नः। सौतिना शौनकं प्रति ब्रह्मवैवर्त महापुराण प्रशंसा, तत्पुराणस्थ चतुष्खण्डगतमुख्यविषयवर्णनम्। अध्यायेन संहृत्य श्लोक-संख्याः ॥६४॥

२—सौतिना गुरुवन्दनपूर्वकं सर्वोपरिस्थ गोलोक वर्णनम्। ततः शतकोटि योजनाधः प्रदेशे वैकुण्ठलोकः। तदधः शिवलोकः। प्रलये वैकुण्ठशिवलोकयोः गोलोके लयः। गोलोकस्य तूत्पत्तिलयाभावः। गोलोकस्थ तेजो मण्डलस्यैव सर्वजगत्कारण श्रीकृष्ण रूपत्ववर्णनम् ॥ २१ ॥ श्लो०

३—श्रीकृष्णपरमात्मनः जगत्सिसृक्षया स्वाङ्ग दक्षिणपार्श्वतः स्रष्टॄणां त्रयोदशानां पञ्चतन्मात्राणां महाभूतादीनां नारायणस्य चोत्पत्तिः। शङ्करकृत श्रीकृष्ण स्तोत्रम्। नाभिप्रदेशाद्ब्रह्मोत्पत्तिस्तत्कृत श्रीकृष्ण-स्तोत्रम्, तद्वक्षसो धर्मोत्पत्तिः तत्कृत श्रीकृष्ण स्तोत्रम्। सरस्वती महालक्ष्मी दुर्गोत्पत्तिः। तत्कृत श्रीकृष्ण-स्तोत्र वर्णनम् ॥ ८७ ॥ श्लोक०

४—श्रीकृष्ण नासाग्रतः सावित्र्युत्पत्ति.। तत्कृत कृष्ण-स्तुतिः। श्रीकृष्ण मनसोमन्मथोत्पत्तिः तद्वामाङ्काद्रत्युत्पत्तिः। इति दर्शनेन ब्रह्मणोरेतः पतनम्। तस्माद्रेतसो वरुणोत्पत्ति.। अग्निस्वाहावरुणानीनां क्रमेणोत्पत्तिः। श्रीकृष्णरेतः स्खलनान्महाविष्णोरुत्पत्ति.। श्रीकृष्णकर्णमलान्मधुकैटभोत्पत्तिः। श्रीकृष्णकृत मधुकैटभवध वर्णनम् ॥ २९ ॥ श्लो०

५—गोलोकगोगोपगोपीनां नित्यानित्यत्व व्यवस्था। शम्भुनारायणयो. कल्पत्रयवर्णनम्। ब्रह्मणः कालनिर्णयः। मार्कण्डेयस्थितिकालनिर्णयः। श्रीकृष्णकृत गोगोपबलीवर्दोत्पत्तिः। प्रकृते. सकाशाद्राधोत्पत्तिः। राधागण्डप्रदेशात्कोटिसंख्याक गोपीनामुत्पत्तिवर्णनम् ॥ ७६ ॥ श्लो०

६—श्रीकृष्णेन नारायणादिभ्यो महालक्ष्म्यादीनां दानम्। महेश्वराय दुर्गायां समर्पयितन्यायां शङ्करेण तत्स्वीकारप्रत्याख्यानम्। श्रीकृष्णेन शङ्कराय सर्वपूज्यत्वादि वरप्रदानपूर्वकं तन्माहात्म्यवर्णनम्। सिंहवाहिनी देवी समाश्वासनपूर्वकं मन्त्र-

दानम् । ब्रह्मणे सृष्टिकरणायाज्ञाया दानम् ॥ ७२ ॥ श्लो०

७—ब्रह्मदेवकृत पृथिव्यादि विश्वसृष्टिवर्णनम् ॥ २० ॥ श्लो०

८—ब्रह्मणा सावित्र्यां वीर्याधानतो वेदशास्त्रादि सृष्टि वर्णनम् । ब्रह्मणः पृष्ठदेशादि-भ्योऽधर्माद्युत्पत्तिः । स्वसुतेभ्यः सृष्टिकरणे आज्ञादानम् । ब्रह्मणो नारदाय शाप-दानम् । नारदेन च ब्रह्मणे शापदानम् ॥ ६८ ॥ श्लो०

९—ब्रह्माज्ञया नारदातिरिक्त सर्वमहर्षिकृत सृष्टिः । तत्र कश्यपादि सम्बन्धवर्णनम् । मङ्गलग्रहोत्पत्तिविषये इतिहासवर्णनम् । चन्द्रपत्नीनां चरित्रे रोहिणी सङ्गत चन्द्रं प्रतिदक्षेण यक्ष्मरोगित्वापादक शापदानम् । चन्द्रस्य शिवाश्रयणम् । चन्द्रपत्नीभिः स्वपतिलिप्सया पितृसमीपे पतिमाहात्म्यस्य वर्णनम् । दक्षेण शिवाच्चन्द्रस्य याच-नम् । शिवेन तत्प्रत्याख्यानम् । कृष्णेन दक्षाय चन्द्राय दानम् ॥ ९९ ॥ श्लो०

१०—भृग्वादिभ्यश्च्यवनाद्युत्पत्तिः । कुवेरजन्मकथनम् । क्षत्रियादिजात्युत्पत्तिः । शिल्पकारोत्पत्तिः । शिल्पकाराणां पतितत्वादि दोषेण अयाज्यत्वे इतिहासवर्णनम् । घृताचीनामाप्सरोभिः सह विश्वकर्मणः समागमे उभयोः संवादः । घृताच्या नीति धर्मवर्णनम् । परस्परशापवर्णनम् । भूलोके विश्वकर्मणो ब्राह्मण जन्म । घृताच्या गोपिकायाः गङ्गातीरे रमणं ततः मलये रमणम् । ततो नवपुत्रोत्पत्ति. । तेषां कार्य निर्णयः । सङ्करजातिवर्णनम् । वैद्यजातिनिर्णयेऽश्विनीकुमारोत्पत्ति वर्णनम् । सर्वजातिषु योनिसम्बन्धवर्णनम् ॥ १७० ॥ श्लो०

११—सुतपो ब्राह्मणस्याश्विनीकुमाराभ्यां शापः । सूर्यकृतब्राह्मणस्तुति. । सुतपसाश्विनी कुमारयोर्नैरुज्यकरणम् । ब्राह्मणमाहात्म्यम् ॥ ४५ ॥ श्लो०

१२—गन्धर्वराजस्य पुत्रप्राप्तिनिमित्तं पुष्करक्षेत्रे शङ्करोद्देशेन तपश्चर्या । तत्तपस्तुष्टेन शङ्करेण वरप्रदानम् । गन्धर्वराजभार्यायां नारदजननम् ॥ ४५ ॥

१३—नारदस्य पूर्व जन्मनि उपबर्हणेति नामकथनम् । उपबर्हणस्य दुष्करतपश्चरणेन गन्धर्वकन्यानां परिणयनम् । रम्भादर्शनेन उपबर्हणस्य वीर्यस्खलने तस्मै शूद्रत्व-प्रापकशापः । उपबर्हणस्य स्वदेहपरित्यागः । तन्निमित्तं मालावती नाम ज्येष्ठ-पत्न्याः विलापः । शापोद्यतमालावतीभयाद्ब्रह्मादिसर्वदेवानां तत्रागमनम् ॥ ९ ॥ श्लो०

१४—मालावती समीपे श्रीविष्णोरागमनम् । स्वपतिमरणे कारणपृच्छायां ब्राह्मणेन सर्वदेवानाम् पृथक्-पृथक्-फलप्राप्ति वर्णनम् । विष्णुप्रशसा ॥ ६६ ॥ श्लो०

१५—ब्राह्मणस्य स्वयं सर्वज्ञताप्रशस्तिः । मालावत्या प्रत्यक्षतोदर्शनं धर्मादीनाम् । धर्मा-दीन् प्रतिनिजकान्तनिधनकारणपृच्छा । मालावतीकाल-पुरुष-संवादः ॥ ५६ ॥ श्लो०

१६—मालावत्याः व्याध्युत्पत्तेः हेतुज्ञानाय प्रश्नः । ब्राह्मणेन व्याधिकारण वर्णनम् । तत्रायुर्वेदविद्याप्रवृत्तिजरानाशकोपचार-कथनम् । वातपित्तश्लेष्महारकोपाय कथनम् ॥ ८८ ॥

१७—ब्राह्मणरूपधारि-विष्णो. ब्रह्मशिवादिभिः सह-संवादे विष्णुप्रशंसा ॥ ७२ ॥

१८—ब्रह्मादीनां पुनः मालावतीसमीपं प्रत्यागमनम् । गन्धर्वजीवनम् । तदा मालावती-कृत महापुरुषस्तोत्रम् । कृष्णेन गन्धर्वजीवदानम् ॥ ४ ॥

इति ब्रह्मखण्डम् ॥ १ ॥

अथ प्रकृतिखण्डम् ॥ २ ॥

इति प्रकृतिखण्डम् ॥ २ ॥

अथ गणपतिखण्डम् ॥ ३ ॥

इति गणेशखण्डम् ।

अथ ब्रह्मवैवर्त महापुराणान्तर्गत श्रीकृष्ण जन्मखण्ड विषयाऽनुक्रमणिका ।

२—यतोहरेर्गोपवेषेण गोकुलागमनं तथा येन राधा गोपालिकाजाता तत्कारणकथनं, नारदस्य श्रीदाम्नो राधायाश्च कलहविषयप्रश्नः, रत्नमण्डपविरजासक्तं श्रीहरिं सखीमुखच्छित्वा कुपिताया राधिकाया रत्नमण्डपगमनं, राधाशब्दश्रवणतो हरेर्दर्शनं। दृष्ट्वा भीत्या विरजयाकृतं प्राणत्यागपूर्वकं नदीरूपधारणं च ॥६८॥ श्लो०

३—सप्तसमुद्रोत्पत्तिः। कोपमन्दिरद्वारि श्रीदाम्ना सहागतं हरिं प्रति पुनः पुनः राधोक्तिः, हरिं निर्गमयितुमाज्ञप्तानां सखीनां तं प्रतिवचनानि, राधां प्रति श्रीहरिभक्तत्ववर्णनात्मकं श्रीदाम्नोवचनं, राधाश्रीदाम्नोः परस्परं शापः, शापदुःखाकुलौ राधा श्रीदामानौप्रति समाधानकारं श्रीहरिवचनं च ॥ ११७ ॥ श्लो०

४—सुरैः सह शरणागतां धरां प्रति ब्रह्मणोवचनम्। ब्रह्मप्रश्नतस्तस्मै केषां भारो मेऽसह्यस्तद्धरया कथनम्। धरया सुरसङ्घैश्च सह शिवलोकं गतेन ब्रह्मणा शिवाय धरावृत्तकथनम्, ससुरधराणां ब्रह्मेशधर्माणां वैकुण्ठे गमनं, ब्रह्मेशधर्मकृतं श्रीहरिस्तोत्रम्, श्रीहर्याज्ञया शर्वदेवानां गोलोकगमनं, गोलोकवर्णनं च ॥ १८० ॥

५—राधा मन्दिरषोडशद्वाराणां वर्णनम्। षोडशाद्वारातिक्रमोत्तरं राधाभ्यन्तरगृहे देवानां गमनं। राधामन्दिरवर्णनम्। देवैः राधामन्दिर श्रीकृष्ण तेजःस्वरूपस्य दर्शनम्। ब्रह्मेशधर्मकृतः श्रीकृष्णस्तवराजः। तत्पठनफलकथनं च ॥ १२६ ॥

६—पूर्वदृष्टतेजः स्वरूपमध्ये देवैशलोकितायाः कृष्णमूर्तेर्वर्णनम्। संस्कृतस्तवतुष्टेन श्रीकृष्णेन देवेभ्योऽभयदानम्। पृथिव्याभवतरणार्थं राधादि गोलोकस्थ जनान् प्रति कृष्णस्याज्ञावचनम्। गोलोकसमागतानां नारायण विष्णु सङ्कर्षणानां श्रीकृष्णदेहे लीनता। पृथिव्यां स्वस्वांशेनावतरणार्थं सकल देवताभ्यः श्रीकृष्णस्याज्ञा। केन कुत्र किंनाम्नावतरणं कर्तव्यमिति ब्रह्मप्रश्नतः कृष्णेन तत्कथनम्। भावि विरहकातरया रुदतीं राधां प्रति श्रीकृष्णस्य बोधवचनम्। कृष्णाज्ञया सकल देवतानां स्वस्वस्थाने गमनम्। कृष्णाज्ञया गोलोकाद्गोपगोपीगणैःसह राधाया गोकुलेगमनम्। श्रीहरेर्मथुरागमनं च ॥ २७८ ॥

७—श्रीकृष्ण जन्माख्यानम् ॥ १३२ ॥

८—श्रीकृष्ण जन्माष्टमीव्रतोपवासविधानकथनम् ॥ ८६ ॥

९—नारदप्रश्नतो नारायणेन नन्दयशोदा रोहिणीनां जन्मान्तरवृत्तकथनम्। बलदेव जन्माख्यानम्। नन्दपुत्रोत्सव कथनं च ॥ ८० ॥

१०—कंस प्रेरणया कृष्णं हन्तुं नन्दगृहमागतायाः पूतनायाः कृष्णकृतस्तनपानेन मोक्षः। पूतनाया जन्मान्तरकथनं च ॥ ४६ ॥

११—तृणावर्त दैत्यवधः, तज्जन्मान्तरवृत्तकथनं च ॥ ३५ ॥

१२—शकटासुरभञ्जनम्, योगनिद्रोक्त कवचन्यासश्च ॥ ४२ ॥

१३—वसुदेवकृतप्रार्थनया श्रीकृष्णस्य नामकरणादि संस्कारकरणार्थं गर्गस्य नन्दगृहे गमनम्। गर्गेण स्वागमनप्रयोजनस्य श्रीकृष्णनामार्थस्य तथा पुरा शिवमुखाच्छ्रुतस्य गोलोकवृत्तस्य च नन्दयशोदाभ्यां कथनम्, गर्गाज्ञया नन्दन कृष्णस्य नामकरणादि संस्करणम्, गर्गकृत श्रीकृष्णस्तोत्रं, गर्गस्य स्वगृहगमनम् ॥ २४७ ॥

अथोत्तरार्द्धम्

७५—भगवता नन्दाय सांसारिकज्ञानकथनम् ॥ १०५ ॥

७६—दर्शनार्हवस्तुनिरूपणम्, कस्मिन्दिने कस्य दर्शनेकृते मुक्तिर्भवति तत्कथनम्, कस्य दानस्य किंफलं तन्निरूपणं च ॥ १२ ॥

७७—सुस्वप्नकथनम् ॥ ७६ ॥

७८—भगवता नन्दायाध्यात्मिकज्ञानकथनम्, सर्वसिद्धिदमन्त्रनिरूपणं, येषां दर्शनं पापजनकं तेषां कथनं च ॥ ६२ ॥

७९—भगवता नन्दप्रश्नतो राहुग्रस्तसूर्यदर्शननिषेधहेतुकथनम् ॥ ६२ ॥

८०—भगवता नन्दाय भाद्रशुक्लचतुर्थी चन्द्रदर्शननिषेधस्य हेतुं वक्तुं चन्द्रकृततारापहरणस्य वृत्तान्त कथनम् ॥ ३८ ॥

८१—ताराहरण प्रसङ्गेनैव देवासुरयोर्युद्धोद्योगात्तारामोचनान्तं वृत्तकथनम् ॥ ६७ ॥

८२—दुःस्वप्नकथनम्, तच्छान्तिनिरूपणं च ॥ ५७ ॥

८३—नन्दप्रश्नतो विप्रवैष्णवक्षत्रियविट्शूद्रसंन्यासिविधवाधर्माणां कथनम्, पतिव्रताधर्म कथनम् च ॥ १४८ ॥

८४—गृहस्थगृहिणीशिष्यपुत्रकन्याधर्माणां कथनं, स्त्रीणां त्रिविधत्वकथनम्, भक्तत्रैविध्यकथनम्, ब्रह्माण्डरचनाख्यानं च ॥ १२६ ॥

८५—चातुर्वर्णानां भक्ष्याभक्ष्यकथनम्, कर्मविपाकनिरूपणं च ॥ २१२ ॥

८६—केदारराजकन्योपाख्यानम् (वृन्दोपाख्यानम्) ॥ १५१ ॥

८७—भगवन्नन्दसंवादेसति तत्र सनत्कुमारादीनामागमनम्, कृष्णसनत्कुमार-संवादश्रवणतो विस्मितान्तरस्य नन्दस्य मोहावस्था च ॥ ८२ ॥

८८—श्रीकृष्णेन नन्दाय दुर्गास्तोत्रराजस्यदानम् ॥ ७५ ॥

८९—श्रीकृष्णकृता नन्दप्रार्थना तथा व्रजजनैःसह गोलोकं गमिष्यसीति नन्दाय वरप्रदानम् ॥ १९ ॥

९०—चतुर्युगानां धर्मकथनम्, कलेर्गुणदोषकथनम्, कृष्णेन व्रजगमनार्थं प्रार्थितस्य नन्दस्य पुनः कृष्णं प्रतिवचनञ्च ॥ ८१ ॥

९१—देवकीवसुदेवयोर्नन्दं प्रति सम्भाषणम्, अध्यात्मज्ञानकथनेन व्रजजनान् बोधयितुं व्रजगमने उद्धवंप्रति कृष्णस्याज्ञा ॥ १४ ॥

९२—श्रीकृष्णाज्ञयोद्धवस्य व्रजगमनम्, उद्धवोक्त रामकृष्ण शुभवृत्तश्रवणादानन्दिताभ्यां यशोदारोहिणीभ्यां कृतो महोत्सवः, सर्वजनान्समाश्वास्य तैः सहोद्धवस्य राधामन्दिरगमनं, उद्धवकृतं राधास्तोत्रं च ॥ ९३ ॥

९३—राधोद्धवसंवादः । तत्र उद्धवं प्रति राधाया कृष्णकुशलप्रश्नः, उद्धवोक्त कृष्ण कुशलश्रवणाद्राधाया विरहमूर्च्छावस्था, पुनः पुनः उद्धवस्य राधांप्रति समाधानकारकं वचनम्, तद्वचनतुष्ट्या राधयोद्धवाय नानालङ्कारदानम्, स्वविरहावस्थाकथनं च, विरहदुःखेन राधाया अचेतनपतनं च ॥ १०० ॥

९४—मृतामिवमूर्छितां राधांप्रति उद्धवस्य माधव्यादि राधासखीनां च भाषणानि, उद्धवंप्रति कृष्णसत्स्वरूपवर्णनात्मकं माधव्या वचनम्, उद्धवकृता गोपीनां प्रशंसा,

कलावत्योद्धवायपूर्वजन्मवृत्तान्तस्य कथनम्, उद्धवकृता राधा प्रार्थना च ॥ ११ ॥

९५ } ९६ } उद्धवंप्रति राधायाः स्वदुःखनिवेदनात्मकं वचनम्, मथुरागमनोन्मुखमुद्धवंप्रति माधव्युक्तिः, राधिकां प्रति उद्धवस्य भवाब्धितरणोपाययाञ्चा, राधयोद्धवाय भवतरणोपायकथनपूर्वकं कालगति निवेदनम् ॥ १०६ ॥

९७—मथुरागमनोत्कायोद्धवाय राधाकृतो ज्ञानोपदेशः, उद्धवकृतं राधाभक्तिवर्णनम्, उद्धवनिर्गमनोत्तरं राधायाः शोकावस्था च ॥ ६५ ॥

९८—उद्धवस्य मथुरायां गमनम्, श्रीकृष्णस्योद्धवंप्रति व्रजजनकुशलादिप्रश्नाः, श्रीकृष्णंप्रति राधाप्रेमवर्णनात्मकमुद्धवस्य वचनम्, श्रीकृष्णो यशोदाराधादि व्रजाङ्गनानां स्वप्ने गत्वा तान्समाश्वासनज्ञानदानादि यथोचितकर्मभिः सन्तोष्य पुनर्मथुरां ययाविति सविस्तरं कथनं च ॥ ४४ ॥

९९—रामकृष्णोपनयनोत्सवः, तत्रादौ वसुदेवगृहे गर्गागमनम्, गर्गवचनान्मङ्गलपत्रिकाप्रेषणेनामन्त्रितानां बान्धवादीनां राज्ञां तथा कृष्णस्मृतानां देवमुनिसिद्धर्ष्यादीनां च सदाराणामागमनम्, वसुदेवकृतं यथोचितं सर्वातिथ्यम्, शुभकर्मारम्भे गणेशपूजनं च ॥ ७५ ॥

१००—देवक्यादिस्त्रीभिः कृतं गौर्यादीनां पूजनम्, ब्रह्मादिदेवगणैः कृतं भगवत्स्तोत्रं च ॥ ३४ ॥

१०१—रामकृष्णयोरुपनयनसंस्कारविधानानन्तरं सर्वेषां स्वस्वगृहगमनम् ॥ ४२ ॥

१०२—रामकृष्णयोर्विद्याभ्यासार्थं सान्दीपनिगुरुगृहगमनम्, तत्र गुरुणातत्पत्न्या च कृता कृष्णस्तुतिः, ततोऽधीतसकलविद्याभ्यां रामकृष्णाभ्यां कृतं गुरुदक्षिणादानं, सदारस्यसान्दीपनेर्गोलोकगमनं च ॥ ३३ ॥

१०३—गुरुगृहान्मथुरागमनोत्तरं गोपवेषत्यागपूर्वकं गृहीतनृपवेषस्य कृष्णस्य सन्निधौ स्मृतिमात्रतः सुदर्शन गरुड विश्वकर्म समुद्राणामागमनम्, समुद्रंप्रति द्वारकानगरार्थं स्थलयाचना, द्वारकां निर्मातुं विश्वकर्माणं प्रत्याज्ञा, द्वारकापुरं कीदृग्गुणविशिष्टं कर्त्तव्यं तद्विश्वकर्मणे कथनम्, विश्वकर्मप्रश्नतः कृष्णेन गृहादिनिर्माणशास्त्रनिरूपणं च ॥ ८१ ॥

१०४—द्वारकादर्शनार्थं ब्रह्मादिदेवानामागमनम्, द्वारकावर्णनम्, श्रीकृष्णेच्छाबलेनोग्रसेनादियादवानां तथा देवमुनिसिद्धर्षिनृपनराणां द्वारकानिकटवटमूलेऽकस्मात्प्राप्तिः, द्वारकाप्रवेशार्थं कृष्णोग्रसेनयोः सम्भाषणम् कृष्णाज्ञया द्वारकाप्रवेशोत्तरमुग्रसेनाभिषेकोत्सवश्च ॥ ९९ ॥

१०५—रुक्मिण्युद्वाहाख्यानम् । तत्र रुक्मिणीसौन्दर्यप्रशंसा, भीष्मकस्य सुतमन्त्रिपुरोहितादिजनान्प्रति रुक्मिण्यर्थं वरवरणप्रश्नः, रुक्मिणी श्रीकृष्णायदेयेति तन्महत्त्ववर्णनपूर्वकं शतानन्दस्यवचनम्, तद्वचनतुष्टेन भीष्मकेण कृतो भूरत्नादिदानतः शतानन्दस्य सन्मानः, तद्वचनरुष्टस्य रुक्मिणः पितरंप्रति शिशुपालाय कन्या देयेति विप्रकृष्णभर्त्सनपूर्वकं वचनं, सर्वत्रामन्त्रणपत्रिकाप्रेषणं, कृष्णाह्वानार्थं भीष्मकेण विप्रद्वारागूढप्रेषितपत्रिकायादर्शनेन रामकृष्णोग्रसेनादीनां कुण्डिनयात्रार्थं सज्जना च ॥ ८६ ॥

१०६—तत्समय एव रेवतीबलरामयोर्विवाहः। ततः सपरिवारस्य कृष्णस्य कुण्डिनपुरान्तिकेगमनम्, तदागमनकुपितानां रुक्मिशाल्वशिशुपालानां कृष्णोपहासरूपं वचनं च ॥ २७ ॥

१०७—तदुपहासवचनरुष्टेन बलभद्रेण रुक्मिशाल्वादिदुष्टानांमर्दनम्। शतानन्देन पुरप्रवेशितानां सकृष्णवरयात्रिकाणां भीष्मकेण कृतो वासोन्नदानादिना सत्कारः, वसुदेवभीष्मकयोर्दैवकप्रतिष्ठादिकृत्यम्, विवाहमण्डपे श्रीकृष्णागमनम्, मण्डपवर्णनम्, कृष्णोद्वाहदर्शनार्थमागतान् ब्राह्मणादीन्प्रति तत्स्तवनात्मकं भीष्मवचनं, भीष्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं च ॥ १०१ ॥

१०८—श्रीकृष्णाय कन्यादानविधिना रुक्मिणीसमर्पणम् ॥ १४ ॥

१०९—कन्यादानोत्तरं रुक्मिणीमात्रादिभिः कृतो वधूवरयोः सुवेषकरणादिमङ्गलोत्सवः, श्रीकृष्णं प्रति पार्वती सरस्वती लोपामुद्रादि देवर्षि स्त्रीणामुपहासवचनानि, सर्वेभ्यो भोजनदानम्। सदारे श्रीकृष्णे द्वारकागमनोद्युक्ते सति रुक्मिणी प्रति मातुर्वचनम्, भीष्मकृतयौतुकदानस्य कथनम्, द्वारकागमनोत्तरं वधूगृहप्रवेशादि मङ्गलोत्सवश्च ॥ ४९ ॥

११०—यशोदायाः श्रीकृष्णंप्रति ज्ञानयाज्ञोक्तिः, कृष्णाज्ञया यशोदानन्दयोः राधान्तिके गमनम्, राधायाः तत्कालीनस्थितेर्वर्णनम्, यशोदानन्दाभ्यां राधाया संवादश्च ॥ ३९ ॥

१११—राधया यशोदायै भक्तिज्ञानोपदेशः तथा वरदानपूर्वकं स्वनामव्युत्पत्ति कथनं च॥६२॥

११२—प्रद्युम्नोत्पत्तिः, शम्बरासुरवधः, मायावतीमोक्षणम्, सत्यभामादि सप्ताधिकशतोत्तर षोडशसहस्रस्त्रीणां पाणिग्रहणम्, द्वारकाङ्गतस्य दुर्वासस एकानंशया विवाहः, दुर्वासःकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं, श्रीकृष्णेन कृतो दुर्वाससम्प्रति बोधश्च ॥ ६० ॥

११३—दुर्वाससः कैलासे गमनम्, दुर्वाससं प्रति पार्वत्या वचनम्, दुर्वाससः पुनर्द्वारकागमनम्, श्रीकृष्णस्य हस्तिनापुरे गमनम्, धर्मयज्ञ शिशुपाल दन्तवक्त्रयोर्वधः, शिशुपालस्य जीवात्मनाकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्, श्रीकृष्णस्य लोकातीत चरित्राणां संक्षेपतः कथनं च ॥ ६१ ॥ श्लो०

११४—उषाहरणाख्यानम्। तत्र अनिरुद्धस्य स्वप्नदृष्टोषया-संवाद', अनिरुद्धस्योषाविरहजावस्थां दृष्ट्वा भीता देवकीरुक्मिण्यादियोषितः प्रति कृष्णवचनम्, उषायै कृष्णदर्शितस्वप्नस्य प्रकार., उषाम्प्रति चित्रलेखाया वचनम्, गणेशशिवयोः सम्भाषणम्, चित्रलेखायानिरुद्धस्योषां प्रतिनयनम्, श्रीकृष्णस्य शोणितपुरप्रयाणम्, उषानिरुद्धयोरतिक्रीडा च ९४ ॥

११५—उषासंरक्षकदूतानां बाणं प्रतिवचनम्, उषाचेष्टितश्रवणतो बाणे कुपिते सति तं प्रति शिवगौरीस्कन्दगणेशानां बोधवचनानि, बाणस्य प्रतिज्ञावचनम्, बाणंप्रति कोटवीमातुर्बोधवचनम्, बाणस्ययुद्धोद्योग., पार्वतीदूतवचनेनानिरुद्धसमद्धता, अनिरुद्धंप्रति रामकृष्णनिन्दात्मकं बाणस्य वचनम्, तन्निन्दाखण्डनरूपमनिरुद्धस्य वचनं च ॥ ११६ ॥

साम्प्रासेनाद्भुतरथेन राधादि सर्वगोपीनां गोलोके गमनं च ॥ ५३ ॥

१२९—पुनः कृष्णेन गोकुलजनानां समाश्वसनम्, भाण्डीरवने ब्रह्मेशादिभिः कृता कृष्णस्य प्रार्थना, ब्रह्मशापेन यादवनिधनं, द्वारकालयादिवृत्तम्, पाण्डवमोक्षणम्, कलिप्रासिभीत्यारुदतीजाह्नव्यादि पुण्यनदीः प्रतिसमाधानात्मकं कृष्णवचनम्, श्रीकृष्णस्य निजधामगमनम् ॥ १११ ॥

१३०—नारायणाज्ञया नारदेन सृञ्जयकन्यायाः पाणिग्रहणम्, सनत्कुमारेण स्त्रीप्रेममग्नाय नारदायकृतं सद्बोधपूर्वकः कृष्णमन्त्रोपदेशः, तपसेगत नारदम्प्रति कृष्णध्याननिरूपणात्मकं शिवस्य वचनम् ॥ ६० ॥

१३१—शौनकाद्यृषिप्रश्नतः सूतेन वह्निसुवर्णयोरुत्पत्तिकथनम् ॥ ३८ ॥

१३२—शौनकादिकृत प्रश्नानां सूतेन पुनरेतदखिलब्रह्मवैवर्तपुराणस्य कथानां क्रमेण संक्षेपत. कथनम् ॥ ९० ॥

१३३—शौनकादिकानां प्रश्नतः सूतेन पुराणलक्षणसंख्यादिकथनम्, एतत्पुराणप्रशंसा, एतत्पुराणश्रवणपठनफलवर्णनम्, एतत्पुराणश्रवणविधिकथनं च ॥ ७४ ॥

मत्स्यपुराण, शिवपुराण और नारदीयपुराणमें इस पुराणके सम्बन्धमें जो लक्षण और कथाएं दी हुई हैं, उनमें आपसमें एकता नहीं है। कथान्तर कथन सावर्णिनारद-संवाद ब्रह्मवराहका वृत्तान्त या ब्रह्माका विवर्त-प्रसङ्ग आदि कोई कथा प्रचलित ब्रह्मवैवर्त-पुराणमें नहीं पायी जाती। तो भी प्रकृतिका माहात्म्य और पूजादि विस्तारसे वर्णित है। नारदीय-पुराणमें जिस तरहसे गणेशखण्ड और कृष्णखण्डकी अनुक्रमणिका है वह तो प्रस्तुत-पुराणमें पूरी पायी जाती है।

शिवपुराण, श्रीमद्भागवत, नारदीय-पुराण और मत्स्यपुराणमें ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणकी श्लोक-संख्या १८ हजार दी हुई है। स्वयं ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणमें भी यही संख्या बतलायी है। स्कन्द-पुराणके अनुसार यह पुराण सूर्य्य भगवान्‌की महिमा प्रतिपादन करता है। मत्स्यपुराण इसमें ब्रह्माकी मुख्यताकी ओर इशारा करता है। परन्तु स्वयं ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणमें विष्णुकी ही महत्ता प्रतिपादित है।

निर्णयसिन्धुमें एक लघु ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणका वर्णन है, परन्तु वह सम्प्रति कहीं पाया नहीं जाता।

दाक्षिणात्य और गौडीय दो पाठ इस पुराणके मिलते हैं।

आजकल अनेक छोटे-छोटे ग्रन्थ ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणकेअन्तर्गत प्रसिद्ध हैं, जैसे—

अलङ्कार दानविधि, अहिशकुष्टि-माहात्म्य, आदि रत्नेश्वर-माहात्म्य, एकादशी-माहात्म्य, कृष्ण-स्तोत्र, गङ्गा-स्तोत्र, गणेशकवच, गर्भस्तुति, परशुरामप्रति शङ्करोपदेश, बकुलारण्य तथा ब्रह्मारण्य-माहात्म्य, मुक्तिक्षेत्र-माहात्म्य, राधा उद्धव-संवाद, श्रावण द्वादशी व्रत, श्री-गोष्ठी-माहात्म्य, स्वामिशैल-माहात्म्य, काशी-केदार-माहात्म्य, इत्यादि, इत्यादि।

छत्तीसवाँ अध्याय

वराहपुराण

जिस वराहपुराणकी पोथी हमारे सामने है उसकी अनुक्रमणिकाके अन्तमें लिखा है "इदं महापुराणमपूर्णमेव पुराणान्तरोक्तसंख्यापेक्षयाल्पसंख्याकदर्शनात् । यदि पूर्णो भागो मिलिष्यत्यधिकस्तदा तमपि मुद्रयित्वा प्रकाशयिष्यामः । येषां निकट इतोऽधिकोंशः स्यात्तैः प्रेषणीय इति प्रार्थना" ।

यह पोथी व्यङ्कटेश्वरकी प्रकाशित की हुई है । इसमें कुल २१८ अध्याय हैं । स्पष्ट ही इस वराहपुराणमें २४,००० श्लोक होने चाहिये । उक्त संख्यासे अत्यन्त कम होनेके कारण यह पोथी अपूर्ण है । विषयानुक्रमणिका इस प्रकार है ।

१—मङ्गलाचरणम् । अनुक्रमणिकाध्यायः, वराहम्प्रति धरणीकृताः प्रश्नाः, हसतः क्रोडरूपिणो हरेरुदरे रुद्रसिद्धं महर्ष्यादि दर्शनम् ॥ २८ ॥

२—सृष्टिस्थितियुगादिमाहात्म्यम्, पुराणलक्षणम्, तत्रादौ सर्गः संक्षेपेण, अथ सृष्टिं विस्तरेण वदेति महीप्रश्नः, सात्विकसृष्टिः, तमोमोहमहामोहतामिस्रान्धतामिस्राख्य पञ्चपर्वाऽविद्योत्पत्तिः, पश्वादितिर्यक्स्रोतः सर्गः, देवाद्यूर्ध्वस्रोतः सर्गः, मनुष्याद्यर्वाक्स्रोतः सर्गः, पुनः षट्सर्गनामानि, अथ स्थितिः, तत्रादौ रुद्रसनकादिमरीच्याद्युत्पत्तिः, दक्षकन्याभ्यो देवदानवगन्धर्वोरगपक्षिणामुत्पत्तिः, रुद्रसर्गः, एकादशरुद्रसमुद्भवः, युगमाहात्म्यम्, स्वायम्भुवात्मज प्रियव्रत सदसि नारदागमनम्, नारदावलोकिताश्चर्यं निरूपणम्, तत्र कन्यारूपसावित्रीदर्शनम्, नारदाय सावित्रीकृतं वेदादीनां दानम् ॥ ८३ ॥

३—प्रियव्रत-नारद-संवादः, नारदप्राग्जन्मवृत्तान्तः, ब्रह्मपारस्तवकथनम्, नारायणदर्शनम्, नारदवरप्राप्तिः ॥ २८ ॥

४—नारायणव्यापकत्वम्, नारायणस्याष्टमूर्त्तयः, प्रियव्रतमोक्षः, अश्वशिरश्चरितम्, अश्वमेधावभृथेब्राह्मणैः परिवारितस्य तस्य कपिलजैगीषव्य समागमः, नारायणदर्शनाभिलाषिणो राज्ञः सन्देहवारणाय कपिलजैगीषव्याभ्यां विष्णुगरुडरूपधारणम्, पुनर्योगमायया शेषाङ्कशायिनारायणरूपदर्शनम्, नारायणस्य सर्वव्यापित्वकथनम् ॥ ७२ ॥

५—कर्मजन्यमोक्षादिकथनम्, मोक्षप्राप्तिनिमित्तं राज्ञः संशयं छेत्तुं रैभ्यवसुबृहस्पतिसंवादानन्तरं विप्रलुब्धक-संवादकथनम, कपिलोपदेशतोऽश्वशिरोराजर्षेर्वनगमनम्, तेनकृता यज्ञनारायणस्तुतिः, राज्ञोमुक्तिः ।

६—वसुराजर्षिणां कृतं पुण्डरीकाक्षया स्तोत्रकथनम्, एवमुच्चरतस्तस्य देहाद्विनिर्गतव्याधकथितजन्मान्तरवृत्तान्तश्रवणम्, एतत्सहर्षप्रभावतो राजर्षेमुक्तिकथनम इति वसुचरितम् ॥ ४१ ॥

७—अथ तपोगदाधरस्तोत्राभ्यामुत्तमलोकप्राप्तिकथनम्, रैभ्यस्य तपश्चरन्तु गयायामागमनम्, तत्र तत्तपोद्रष्टुं सनत्कुमारागमनप्रसङ्गेन विशालनृपतिपितृमुक्तिकथनद्वारा गया-माहात्म्यनिरूपणम्, गदाधरस्तवप्रभावतो विष्णुप्रादुर्भावः, रैभ्यमुक्तिकथनम् ॥ ४७ ॥

८—धर्मव्याधचरितम्, मातङ्गाय व्याधस्य पुत्रीप्रदानम्, मातङ्गगृहागतेन तेन गोधूमव्रीह्यादिभक्षणे कोटिशो जीवघातित्वनिरूपणम्, तपश्चर्तुं व्याधस्य पुरुषोत्तमाख्यतीर्थागमनम्, व्याधकृतं विष्णुस्तोत्रम्, व्याधस्य वरप्राप्तिर्ब्रह्मणिलयश्च ॥ ५६ ॥

९—मत्स्यावतारः, भूराद्युत्पत्तिः, तेजसश्चन्द्रसूर्यकल्पना, चातुर्वर्ण्यसर्जनम्, नानाविधसृष्ट्याभूरादिलोकपूरणं, व्यतीतायां रात्रौ मत्स्यरूपेन जले प्रविष्टस्य विष्णोर्जलकृता-स्तुतिः कूटस्थविकृतस्य भगवतो मूर्त्या लयवृद्धिनिरूपणम् ॥ ३५ ॥

१०—अथसृष्टिः, सुप्रतीकादात्रेयप्रसादतो दुर्जयसुद्युम्नयोरुत्पत्तिः, दुर्जये राज्यधुरंन्यस्य सुप्रतीकस्य चित्रकूटगमनम्, दुर्जयेन भारतादिवर्षाणां स्वायत्तीकरणम्, दुर्जयस्य देवराज जेतुमुद्यमः, तन्नारदादवगम्य दुर्जयं हन्तुमिन्द्रस्य मेरुमुल्लंघ्य पूर्वदेशागमनम्, सुदीजित्वा प्रतिनिवृत्य पथिसमागच्छतस्तस्य हेतृप्रहेत्रोः सुकेशी मिश्रकेश्याख्यकन्याभ्यां परिणयनम्, ताभ्यां प्रभवसुदर्शनोत्पत्तिः, अरण्ये पर्यटतस्तस्य गौरमुखाश्रममागमनम् ॥ ८४ ॥

११—पुनर्दुर्जयचरित्रम्, गौरमुखकृत विष्णुस्तवेन साक्षान्नारायणदर्शनम्, भगवद्दत्तमणिप्रभावतो विविधैश्वर्यवर्णनम्, अक्षौहिणी बलयुतस्यातिथिभूतस्य तस्य राज्ञः परितोषणम्, मणिमाच्छेत्तुं कृतोद्यमस्य राज्ञः मणिसमुत्पन्नैर्योद्धैःसह सुमहान्सङ्गरः, चिन्तापरिप्लुतस्य गौरमुखस्य पुरत' प्रादुर्भूतस्य हरेः प्रार्थनया चक्रेण सकलसैन्यादिहननम्, अतः परमिदं क्षेत्रं नैमिषारण्यसंज्ञितं भविष्यतीत्यादिकं कथयित्वा हरेरन्तर्धानम् ॥ ११२ ॥

१२—ततश्चित्रकूटं समागतदुर्जयकृत श्रीरामस्तवनतस्तस्य मुक्तिः ॥ २१ ॥

१३—श्राद्ध. कल्प., भगवत्कृतमहदाश्चर्यं निरीक्ष्य तमेवारिराधयिषो गौरिमुखस्यमुनेः प्रभासनामसोमतीर्थगमनम्, तत्रागतमार्कण्डेयं प्रति गौरमुखकृतः पितृगणादिप्रश्नः, मार्कण्डेयनिरुक्तः पैतृक' सर्गः, श्राद्धकालाः, श्राद्धै' पितृगणतृप्तिपदः कालः, रहस्यापरश्राद्धकालः, नानाविधतीर्थेषु श्राद्धम्, पितृगीतम् ॥ ५९ ॥

१४—श्राद्धे निमन्त्रणयोग्यायोग्यब्राह्मणादिनिरूपणम्, निमन्त्रणादिकम्, ब्राह्मणसंख्यादिकम्, भोजनायोपवेशनादिकथनम्, श्राद्धप्रकारः, तत्राभ्यागतातिथिपूजननिर्णयः, होमविधि., भोजनप्रकारः, अभिश्रवणम्, विकिरान्नदानादि, पिण्डदानादिकम्, श्राद्धान्ते वैश्वदेवादि' ॥ ५३ ॥

१५—गौरमुखस्य दशावतारस्तोत्रेण मोक्षः, गौरमुखस्य पूर्वजन्मशतं निशम्य पितृनिष्ठा पश्चात्तेन कृतं दशावतारस्तोत्रम्, गौरमुखमोक्षः ॥ २२ ॥

१६—सरमोपाख्यानम्, दुर्वाससा शप्तस्येन्द्रस्य वाराणस्यां निवसनम्, दुर्जयं मृतं श्रुत्वा तुरङ्गमानीय देवान्प्रति विद्युत्सु विद्युदागमनम्, बृहस्पत्युपदेशेन देवानां गोमेध-

यज्ञारम्भः, शुक्रोपदेशतोऽसुरैश्चरन्तीनां गवां हरणम्, मरुद्भ्यो दैत्यैरपहृता गाः श्रुत्वासरमानुयायिनेन्द्रेण दैत्यानां पराजयं कृत्वा गवामानयनम्, बहुयज्ञैः सम्वर्द्धितेनेन्द्रेण दैत्यचमूहननम्, सरमाख्यानश्रवणादिफलम् ॥ २४ ॥

१७—अथ महालयउपाख्यानम्, श्रुतकीर्त्यात्मजप्रजापालस्य मृगयाचरता महालय आश्रमगमनम्, मुनिं प्रति तेन मोक्षसम्बन्धी प्रश्नकरणम्, अहमहमिकया विवदमानेषु देवेषु जनार्दनप्रभाववर्णनद्वारा मोक्षमार्गोपदेशः ॥ ७६ ॥

१८—अथाग्न्याद्युत्पत्तिवर्णनम्, पञ्चमहाभूतोत्पत्तिः, वैश्वानराद्युत्पत्तिः ॥ २६ ॥

१९—अथाग्निप्राशस्त्यम्, पावकाय प्रतिप्रतिथिदानम्, तस्यां होमादिना पितृतृप्तिः, तस्यामुपोषणफलम् ॥ १० ॥

२०—अथाश्विनोरुत्पत्तिः, मरीचिवंशसमुत्पन्नमार्तण्डाय त्वष्ट्रादत्तं कन्यादानम्, तस्य तेजोऽसहमानतयाऽश्वरूपिण्यां तस्यामाश्विनोरुत्पत्तिः, मार्तण्डेनोपदिष्टयोरश्विनोस्तपश्चरणम्, ताभ्यामीरितं ब्रह्मपारमयस्तोत्रपाठेन प्रजापतेर्वरप्राप्तिः, ताभ्यां द्वितीयातिथौदानम्, अस्यामुपोषणफलम्, श्रवणफलञ्च ॥ ३७ ॥

२१—गौर्युत्पत्तिः, प्रजाः स्रष्टुमसमर्थस्य रुद्रस्य जलेनिमज्जनम्, दक्षात्सवासवामराणामुत्पत्तिः, दक्षयज्ञारम्भः, तत्र ऋषिदेवादीनां नाना विघ्नकर्मणिकल्पना, रुद्रस्य जलाद्बहिर्निर्गमनम्, अन्यकृतसृष्ट्यादिवर्णनम् निरीक्ष्यकोपान्नदतो रुद्रस्य श्रोत्रेभ्यो भूतप्रेतादीनामुत्पत्तिः, कुपितस्य रुद्रस्य तैःसार्द्धं दक्षयज्ञं प्रतिगमनम्, तत्र महासङ्ग्रामवर्णनम्, तत्र भगादीनां नानावयवकृन्तनम्, तत्र गतेन विष्णुना सह प्रवृत्तं युद्धम्, तत्र हरिहरनियोजित नारायणपाशुपताद्योः प्रवृत्तं व्योम्नियुद्धम्, अन्योन्यातिशयसमेतौ तौ दृष्ट्वा तत्रागतेन परमेष्ठिना हरिहरयुद्धप्रशमनम्, तत्र रुद्रभागकल्पना, देवैः कृता रुद्रस्तुतिः, ततस्तुष्टहरेण समग्रदेवानामवयवसमीकरणम्, रुद्राय दाक्षायणीदानम्, सर्वदेवानां स्वस्वस्थानगमनम् ॥ ९० ॥

२२—गौरीविवाहः, हिमवद्गृहेवतरितुं तत्रैव तपश्चरन्त्याः सत्या हिमवद्गिरेऽवतरणम्, ततोपि रुद्रं पतिमभिलषन्त्यास्तस्यास्तपसाऽऽराधितहरस्य वृद्धब्राह्मणवेषेणागमनम्, स्नातुं गतस्य रुद्रस्य झषादुद्धरन्त्यास्तस्याः स्वरूपदर्शनपुरःसरं पाणिग्रहणम्। पित्रे हिमवते तद्वृत्तान्तनिवेदनम्, पित्रासम्मानितायास्तस्या विवाहोत्सवारम्भः, तत्र नारदादीनामागमनम्, उमायाः पाणिग्रहणम्, तृतीयायां संवृतत्वेनास्य तत्र लवणनिषेधः, उपोषणफलम्, श्रवणफलञ्च ॥ ५१४ ॥

२३—अथ गणपत्युत्पत्तिः। देवानां कैलासं प्रत्यागमनम्, परमेष्ठिनो हास्यत. कुमारोत्पत्तिः, क्रुद्ध्यन्तं तं दृष्ट्वा गजवक्त्रो भवेतिशापदानम्, मस्तकं धुन्वानस्य तस्य देहाद्विनायकानां प्रादुर्भावः, तेषां नामकरणम्, वक्रसमुद्भवस्य गजवक्त्रस्य नामकरणम्, सर्वयज्ञादिषु तस्य सर्वोत्कर्षत्वम्, देवै. कृता गणनायकस्तुतिः, एतत्सर्वं चतुर्थ्यां संवृत्तमेतस्मात्तस्यां तिलभक्षणपुरःसरं गणनायकाराधनावश्यकत्वम् एतच्छ्रवणादिफलम् ॥ ३८ ॥

२४—अथ सर्पोत्पत्तिः, कश्यपस्य कद्रुभार्यायामनन्तवासुक्यादिजननम्, तेषां वंशपर-

७—अथ तपोगदाधरस्तोत्राभ्यामुत्तमलोकप्राप्तिकथनम्, रैभ्यस्य तपश्चरन्तु गयायामागमनम्, तत्र तत्तपोद्रष्टुं सनत्कुमारागमनप्रसङ्गेन विशालनृपतिपितृमुक्तिकथनद्वारा गया-माहात्म्यनिरूपणम्, गदाधरस्तवप्रभावतो विष्णुप्रादुर्भावः, रैभ्यमुक्तिकथनम् ॥ ४७ ॥

८—धर्मव्याधचरितम्, मातङ्गाय व्याधस्य पुत्रीप्रदानम्, मातङ्गगृहागतेन तेन गोधूमव्रीह्यादिभक्षणे कोटिशो जीवघातित्वनिरूपणम्, तपश्चर्तुं व्याधस्य पुरुषोत्तमाख्यतीर्थागमनम्, व्याधकृतं विष्णुस्तोत्रम्, व्याधस्य वरप्राप्तिर्ब्रह्मणिलयश्च ॥ ५६ ॥

९—मत्स्यावतारः, भूराद्युत्पत्तिः, तेजसश्चन्द्रसूर्यकल्पना, चातुर्वर्ण्यसर्जनम्, नानाविधसृष्ट्याभूरादिलोकपूरणं, व्यतीतायां रात्रौ मत्स्यरूपेन जले प्रविष्टस्य विष्णोर्जलकृता-स्तुतिः कूटस्थविकृतस्थ भगवतो मूर्त्या लयवृद्धिनिरूपणम् ॥ ३५ ॥

१०—अथसृष्टिः, सुप्रतीकादात्रेयप्रसादतो दुर्जयसुद्युम्नयोरुत्पत्तिः, दुर्जये राज्यधुरंन्यस्य सुप्रतीकस्य चित्रकूटगमनम्, दुर्जयेन भारतादिवर्षाणां स्वायत्तीकरणम्, दुर्जयस्य देवराज जेतुमुद्यमः, तन्नारदादवगम्य दुर्जयं हन्तुमिन्द्रस्य मेरुमुलंघ्य पूर्वदेशागमनम्, सुदीज्जित्वा प्रतिनिवृत्य पथिसमागच्छतस्तस्य हेतृप्रहेत्रोः सुकेशी मिश्रकेश्याख्यकन्याभ्यां परिणयनम्, ताभ्यां प्रभवसुदर्शनोत्पत्ति., अरण्ये पर्यटतस्तस्य गौरमुखाश्रममागमनम् ॥ ८४ ॥

११—पुनर्दुर्जयचरित्रम्, गौरमुखकृत विष्णुस्तवेन साक्षान्नारायणदर्शनम्, भगवद्दत्तमणिप्रभावतो विविधैश्वर्यवर्णनम्, अक्षौहिणी बलयुतस्यातिथिभूतस्य तस्य राज्ञः परितोषणम्, मणिमाच्छेत्तुं कृतोद्यमस्य राज्ञः मणिसमुत्पन्नैर्योद्धैःसह सुमहान्सङ्गरः, चिन्तापरिप्लुतस्य गौरमुखस्य पुरतः प्रादुर्भूतस्य हरेः प्रार्थनया चक्रेण सकलसैन्यादिहननम्, अतः परमिदं क्षेत्रं नैमिषारण्यसंज्ञितं भविष्यतीत्यादिकं कथयित्वा हरेरन्तर्धानम् ॥ ११२ ॥

१२—ततश्चित्रकूटं समागतदुर्जयकृत श्रीरामस्तवनतस्तस्य मुक्तिः ॥ २१ ॥

१३—श्राद्ध' कल्प., भगवत्कृतमहदाश्चर्यं निरीक्ष्य तमेवारिराधयिषो गौरिमुखस्यमुनेः प्रभासनामसोमतीर्थगमनम्, तत्रागतमार्कण्डेयं प्रति गौरमुखकृतः पितृगणादिप्रश्नः, मार्कण्डेयनिरुक्तः पैतृकः सर्गः, श्राद्धकालाः, श्राद्धैः पितृगणतृप्तिपद' कालः, रहस्यापरश्राद्धकालः, नानाविधतीर्थेषु श्राद्धम्, पितृगीतम् ॥ ५९ ॥

१४—श्राद्धे निमन्त्रणयोग्यायोग्यब्राह्मणादिनिरूपणम्, निमन्त्रणादिकम्, ब्राह्मणसंख्यादिकम्, भोजनायोपवेशनादिकथनम्, श्राद्धप्रकारः, तत्राभ्यागतातिथिपूजननिर्णयः, होमविधिः, भोजनप्रकारः, अभिश्रवणम्, विकिरान्नदानादि, पिण्डदानादिकम्, श्राद्धान्ते वैश्वदेवादि' ॥ ५३ ॥

१५—गौरमुखस्य दशावतारस्तोत्रेण मोक्ष., गौरमुखस्य पूर्वजन्मशतं निशम्य पितृनिष्ठा पश्चाचेन कृतं दशावतारस्तोत्रम्, गौरमुखमोक्षः ॥ २२ ॥

१६—सरमोपाख्यानम्, दुर्वाससा शप्तस्येन्द्रस्य वाराणस्यां निवसनम्, दुर्जयं मृतं श्रुत्वा तुरङ्गमानीय देवान्प्रति विद्युत्सु विद्युदागमनम्, बृहस्पत्युपदेशेन देवाभां गोमेध-

यज्ञारम्भः, शुक्रोपदेशतोऽसुरैश्चरन्तीनां गवां हरणम्, मरुद्भ्यो दैत्यैरपहृता गाः श्रुत्वासरमानुयायिनेन्द्रेण दैत्यानां पराजयं कृत्वा गवामानयनम्, बहुयज्ञैः सम्वर्द्धितेनेन्द्रेण दैत्यचमूहननम्, सरमाख्यानश्रवणादिफलम् ॥ २४ ॥

१७—अथ महालयउपाख्यानम्, श्रुतकीर्त्यात्मजप्रजापालस्य मृगयाचरता महालय आश्रमगमनम्, मुनिं प्रति तेन मोक्षसम्बन्धी प्रश्नकरणम्, अहमहमिकया विवदमानेषु देवेषु जनार्दनप्रभाववर्णनद्वारा मोक्षमार्गोपदेशः ॥ ७६ ॥

१८—अथाग्न्याद्युत्पत्तिवर्णनम्, पञ्चमहाभूतोत्पत्तिः, वैश्वानराद्युत्पत्तिः ॥ २६ ॥

१९—अथाग्निप्राशस्त्यम्, पावकाय प्रतिप्रतिथिदानम्, तस्यां होमादिना पितृतृप्तिः, तस्यामुपोषणफलम् ॥ १० ॥

२०—अथाश्विनोरुत्पत्तिः, मरीचिवंशसमुत्पन्नमार्तण्डाय त्वष्ट्रादत्तं कन्यादानम्, तस्य तेजोऽसहमानतयाऽश्वरूपिण्यां तस्यामाश्विनोरुत्पत्तिः, मार्तण्डेनोपदिष्टयोरश्विनोस्तपश्चरणम्, ताभ्यामीरितं ब्रह्मपारमयस्तोत्रपाठेन प्रजापतेर्वरप्राप्तिः, ताभ्यां द्वितीयातिथौदानम्, अस्यामुपोषणफलम्, श्रवणफलञ्च ॥ ३७ ॥

२१—गौर्युत्पत्तिः, प्रजाः स्रष्टुमसमर्थस्य रुद्रस्य जलेनिमज्जनम्, दक्षात्सवासवामराणामुत्पत्तिः, दक्षयज्ञारम्भः, तत्र ऋषिदेवादीनां नाना विघ्नकर्मणिकल्पना, रुद्रस्य जलाद्बहिर्निर्गमनम्, अन्यकृतसृष्ट्यादिवर्णनम् निरीक्ष्यकोपान्नदतो रुद्रस्य श्रोत्रेभ्यो भूतप्रेतादीनामुत्पत्तिः, कुपितस्य रुद्रस्य तैःसार्द्धं दक्षयज्ञं प्रतिगमनम्, तत्र महासङ्ग्रामवर्णनम्, तत्र भगादीनां नानावयवकृन्तनम्, तत्र गतेन विष्णुना सह प्रवृत्तं युद्धम्, तत्र हरिहरनियोजित नारायणपाशुपतादयोः प्रवृत्तं व्योम्नियुद्धम्, अन्योन्यातिशयसमेतौ तौ दृष्ट्वा तत्रागतेन परमेष्ठिना हरिहरयुद्धप्रशमनम्, तत्र रुद्रभागकल्पना, देवैः कृता रुद्रस्तुतिः, ततस्तुष्टहरेण समग्रदेवानामवयवसमीकरणम्, रुद्राय दाक्षायणीदानम्, सर्वदेवानां स्वस्वस्थानगमनम् ॥ ९० ॥

२२—गौरीविवाहः, हिमवद्गृहेवतरितुं तत्रैव तपश्चरन्त्याः सत्या हिमवद्गिरेऽवतरणम्, ततोपि रुद्रं पतिमभिलषन्त्यास्तस्यास्तपसाऽऽराधितहरस्य वृद्धब्राह्मणवेषेणागमनम्, स्नातुं गतस्य रुद्रस्य झषादुद्धरन्त्यास्तस्याः स्वरूपदर्शनपुरःसरं पाणिग्रहणम्। पित्रे हिमवते तद्वृत्तान्तनिवेदनम्, पित्रासम्मानितायास्तस्या विवाहोत्सवारम्भः, तत्र नारदादीनामागमनम्, उमायाः पाणिग्रहणम्, तृतीयायां संवृतत्वेनास्य तत्र लवणनिषेधः, उपोषणफलम्, श्रवणफलञ्च ॥ ५१४ ॥

२३—अथ गणपत्युत्पत्तिः। देवानां कैलासं प्रत्यागमनम्, परमेष्ठिनो हास्यतः कुमारोत्पत्तिः, मोहयन्तं तं दृष्ट्वा गजवक्त्रो भवेतिशापदानम्, मस्तकं धुन्वानस्य तस्य देहाद्विनायकानां प्रादुर्भावः, तेषां नामकरणम्, वक्रसमुद्भवस्य गजवक्त्रस्य नामकरणम्, सर्वयज्ञादिषु तस्य सर्वोत्कर्षत्वम्, देवैः कृता गणनायकस्तुतिः, एतत्सर्वं चतुर्थ्यां संवृत्तमेतस्मात्तस्यां तिलभक्षणपुरःसरं गणनायकाराधनावश्यकत्वम् एतच्छ्रवणादिफलम् ॥ ३८ ॥

२४—अथ सर्पोत्पत्तिः, कश्यपस्य कद्रुभार्यायामनन्तवासुक्यादिजननम्, तेषां वंशपर-

म्परया वृद्धिगमितैस्तैर्मनुजादिनां विनाशः, ब्रह्मणः शरणं गतानां सान्त्वनम्, सरीसृपेभ्यो ब्रह्मणा दत्तः शापः, शापानुग्रहश्च, पञ्चम्यामस्यामुपोषणादिभिः सत्फलावाप्तिः ॥ ३३ ॥

२५—अथ कार्त्तिकेयोत्पत्तिः, देवदैत्ययुद्धे वर्तमाने हिरण्यकशिपुप्रभृतिसैन्याञ्जेतुमशक्यान्वीक्ष्य कमपि बलीयांसं सेनापतिं विधातुमाङ्गिरसोपदेशतः परमेष्ठिपुरोगमानां देवानां कैलासं प्रतिगमनम्, दैवैर्विहिता रुद्रस्तुतिः, शक्तिं क्षोभयतस्तस्य कुमारोत्पत्तिः, सेनापतिकरणञ्च, अस्यामुपोष्य पुत्रफलादिप्राप्तिः ॥ ५२ ॥

२६—अथादित्योत्पत्तिः, सूर्यस्य नानाविधनामहेतवः, तस्यैवान्तः स्थितानां देवानां स्तुतिः। सप्तम्यां सूर्येण भूतिरङ्गीकृतेति तस्यामुपोषणादिभिः शुभफलस्वाप्तिः ॥१॥

२७—अथाष्टमात्रुत्पत्तिः, अन्धकात्परित्रस्त ब्रह्मादि देवानां शिवप्रतिगमनम्, समस्त देवानां सत्कृतिः शम्भुकृता, तावदेव तत्रान्धकागमनम्, देवदैत्यानां तुमुलं युद्धम्, नारदमुखात्प्रवर्त्तमानं युद्धं श्रुत्वा तत्र नारायणागमनं, दानवैः सह युद्धञ्च, सङ्गरे संक्रुद्धस्य शम्भोर्मुख ज्वालाविनिर्गमेन देव्युत्पत्तिः, अष्टमातृगणना, तया शोषिते रक्ते सुरचमूनाशः। एतच्छ्रवणफलम् ॥ ४३ ॥

२८—अथ दुर्गाया उत्पत्तिः, इन्द्रवधाय सिन्धुद्वीपराजस्तपश्चरणम्, मानुषरूपमास्थाय तत्रागतया वेत्रवत्या सह सङ्गमेन वेत्रासुरोत्पत्तिः, तेन कृतो ब्रह्मादिदेवानां पराजयः, तद्धननोपायं चिन्तयतो ब्रह्मणो देवीप्रादुर्भावः, युध्यन्त्यादेव्या वेत्रासुरहननं, देवानां स्तुतिश्च, देव्या ब्रह्मण आदेशाद्धिमालयगमनम्, कर्त्तव्यकार्यं प्रत्यादेशो ब्रह्मणः, नवमीव्रतनिरूपणं, तत्कर्तुंफलश्च ॥ ४५ ॥

२९—अथ दिगुत्पत्तिः, प्रजाधारणकारणं चिन्तयतो ब्रह्मणः श्रोत्रेभ्यो दशकन्याजननम्, तासाञ्च स्वयं जनितेभ्यो दशलोकपालेभ्यो दानं। दशमीतिथिदानञ्च, दशमीव्रतोपवासादिफलश्रुतिः ॥ १६ ॥

३०—अथ धनदोत्पत्तिः, सृष्टिकामस्य ब्रह्मणो मुखाद्वायुनिर्गमनम्, शर्करावर्षितया प्रतिषेधितस्य तस्यानिलस्य मूर्तिमत्करणम्, तस्माएकादशीतिथौदानम्, तद्व्रतप्रकारस्तत्कृतिफलञ्च ॥ २३ ॥

३१—अथ विष्णूत्पत्तिः। सृष्टायां सृष्टौ कर्मकाण्डं कर्तुमिच्छोनारायणस्य देहतो विष्णूत्पत्तिः, तन्नामकरणं, प्रजापालनं प्रत्यादेशश्च, नानायुधप्रदानम्, द्वादशीव्रतनिरूपणम्, तत्फलञ्च ॥ २३ ॥

३२—अथ धर्मोत्पत्तिः। प्रजापालनं चिन्तयतो ब्रह्मणो दक्षिणाङ्गाद्वृषाकृतिधर्मोत्पत्तिः तस्य कृतादियुगेषु ब्राह्मणादिवर्णेषु च भिन्नभिन्नतया स्थितिः, ताराक्षिप्तचक्षुणा सोमेन धर्महेलनम्, सोमदोषेण कोपितानां देवासुराणां युद्धम्, ब्रह्मण आदेशाद्धर्मतोषणम्, अत. परं त्रयोदशीतिथिदानं। धर्माय तद्व्रतोपोषणादिफलम् ॥२६॥

३३—अथ रुद्रोत्पत्तिः। सृष्ट्यवृद्धिकाले कुपितस्य ब्रह्मणो रुद्रोत्पत्तिः, ततः पिशाचादि उत्पत्तिवर्णनम्, कुपितस्य रुद्रस्य स्तुति पुरःसरं यज्ञे रुद्रभागकल्पनम, तस्मै चतुर्दशीतिथिदानम, श्रवणफलञ्च ॥ ३३ ॥

४६—श्रीकृष्णद्वादशीव्रतम्, पूजादिक्रमः, अस्य व्रतस्याचरणेन वसुदेवस्य श्रीकृष्णाख्य-पुत्रफलप्राप्तिः ॥ १५ ॥

४७—बुधद्वादशीव्रतम्, श्रावणशुक्लद्वादशी बुधद्वादशी, अत्र जनार्दनपूजाविधिः, अस्य फलश्रुतौ नृगाख्यानम्, मृगयासक्तचित्तो भ्रममाण इतस्ततो नृगो राजातरोर-धस्तात्सुप्तस्तं हन्तुमुद्यतानां लुब्धानां नृपदेहनिर्गतया देव्याहननम्, ततो विस्म-याविष्टस्य मृगस्य वामदेवमुख्यात्स्वप्राग्जन्मकृतं बुधद्वादशीव्रताचरणफलमिति ज्ञानम्, अन्यत्फलञ्च ॥ २४ ॥

४८—अथ कल्किद्वादशीव्रतम्, भाद्रपदशुक्लद्वादशी कल्किद्वादशी, कल्किपूजनं ब्राह्म-णेभ्यो दानादिकञ्च, हृतराज्योविशालाख्यभूपो बदरिकाश्रमे तपश्चरंतस्तत्रागताभ्यां नरनारायणाभ्यां द्रविणादिवृद्धिरूपवरं लेभे, तस्मै ताभ्यामुपदिष्टं कल्किद्वादशी-व्रतञ्च, अस्याचरणेन परत्रेह च सुखप्राप्तिः ॥ २४ ॥

४९—अथ पद्मनाभद्वादशीव्रतम्, आश्विनशुक्लद्वादशी पद्मनाभद्वादशी, तस्यां पद्मनाभ-पूजनम् भद्राश्वगृहागतेनागस्त्येन राज्ञीमुखावलोकनश्चतुर्थदिवसपर्यन्तं पृथक्पृथ-गुच्चारणेन तस्य प्राग्जन्मकृतं पद्मनाभद्वादशीफलकथनम्, अगस्त्यगमनञ्च ॥४६॥

५०—अथ धरणीव्रतम्, कार्तिक्यामब्जनाभपूजनविधानम्, तत्फलम् ॥ २८ ॥

५१—अथागस्त्यगीतारम्भः, दुर्वाससोवचः श्रवणानन्तरं सत्यतपसो हिमवद्गमनम्, पुन-र्भद्राश्वगृहागतेनागस्त्येनेरितं पशुपालनृपमुद्दिश्य परोक्षज्ञानद्वारा मोक्षधर्मनि-रूपणम् ॥ ३० ॥

५२—मोक्षधर्मनिरूपणम् ॥ ११ ॥

५३—मोक्षधर्मनिरूपणे पशुपालोपाख्यानम् ॥ २६ ॥

५४—अथोत्तमभर्तृप्राप्तिव्रतम्, नारदेनाप्सरोभ्यउपदिष्टं सद्भर्तृप्रापकं वसन्त शुक्लद्वाद-श्यां विष्णुपूजनविधानम् ॥ २० ॥

५५—अथ शुभव्रतम्, मार्गशीर्षमास्याचरणीयं शुभव्रतम्, तत्र हरेः पूजनम्, ब्राह्मणेभ्यो रौप्यमहीदानादिकम्, एतद्व्रताचरणेन ब्रह्मवादिनृपाय प्रत्यक्षताङ्गतेन विष्णुना-दत्तं पुत्रप्राप्तिरूपवरं प्राप्य पुनस्तपसेयुक्तेन राज्ञाकृतास्तुतिः, तत्कृतस्तवतोषित-हरेः कौब्जरूपेणागमनम्, नृपाय मोक्षप्राप्तिरूपवरप्रदानं, तत्तीर्थस्य कुब्जकाम्र-नामकरणञ्च ॥ ५९ ॥

५६—अथ धन्यव्रतम्। मार्गशीर्षसितप्रतिपदिकरणीयम्, तत्र विष्ण्वग्निपूजनं तत्फ-लञ्च ॥ १६ ॥

५७—कार्त्तिकसितद्वितीयायामारभ्य कान्तिव्रतं संवत्सरावधिकरणीयम्, तत्र केशव-पूजनपुरस्सरं नक्तादिनियमाः, तत्र होमः, ब्राह्मणेभ्योदानादिकम्, तत्फलम् ॥१८॥

५८—फाल्गुनशुक्लतृतीयायां करणीयं सौभाग्यव्रतम्, लक्ष्मीनारायणोमामहेश्वरपूजनम्, व्रतं भक्ष्यपदार्थाः, तत्फलञ्च ॥ १९ ॥

५९—चातुर्मास्याचरणीयं फाल्गुनशुक्लचतुर्थ्यां विघ्नहरं नामव्रतम्, व्रतान्ते ब्राह्मणभोज-नादिकम्, अस्य फलञ्च ॥ १० ॥

अनुक्रमणिका

९०—अथ त्रिशक्तिगतसृष्टिमाहात्म्यम् ।। ४७ ।।

९१—अथ सरस्वतीवर्णनादिकम् ।। १६ ।।

९२—अथ वैष्णवीमाहात्म्यम् ।। ३६ ।।

९३—अथ मन्त्रिमहिषासुर-संवादः ।। ३६ ।।

९४—अथ सुरासुरयुद्धवर्णनम् ।। १७ ।।

९५—अथ महिषासुर वधः ।। ७२ ।।

९६—अथ त्रिशक्तिरहस्येरौद्रीव्रतम् ।। ७६ ।।

९७—अथ रुद्रमाहात्म्यम् ।। ४८ ।।

९८—अथ पर्वाध्यायः ।। ३८ ।।

९९—अथ तिलधेनुमाहात्म्यम् ।। १०० ।।

१००—अथ जलधेनुदानविधिः ।। २१ ।।

१०१—अथ रसधेनुदानमाहात्म्यम् ।। १५ ।।

१०२—अथ गुडधेनुदानमाहात्म्यम् ।। २५ ।।

१०३—अथ शर्कराधेनुदानमाहात्म्यम् ।। १९ ।।

१०४—अथ मधुधेनुदानमाहात्म्यम् ।। २१ ।।

१०५—अथ क्षीरधेनुदानविधिः ।। १९ ।।

१०६—अथ दधिधेनुदानमाहात्म्यम् ।। ९ ।।

१०७—अथ नवनीतधेनुदानमाहात्म्यम् ।। १५ ।।

१०८—अथ लवणधेनुदानमाहात्म्यम् ।। १७ ।।

१०९—अथ कार्पासधेनुदानमाहात्म्यम् ।। १० ।।

११०—अथ धान्यधेनुदानमाहात्म्यम् ।। २२ ।।

१११—अथ कपिलाधेनुदानमाहात्म्यम् ।। १९ ।।

११२—अथोभयतोमुखीगोदानहेमकुम्भदानपुराणप्रशंसाः ।। ८२ ।।

११३—भगवत्स्तुतिः, कल्पान्तेरसातलगतयाधरण्याकृता माधवस्तुतिः, श्रवणफलञ्च ।।६८।।

११४—अथ श्रीवराहावतारः, वराहरूपिणं देवं स्तुवन्ती महीकृता योग सांख्य विनिश्चयात्मकाः प्रश्नाः ।। ६५ ।।

११५—अथ विविधधर्मोत्पत्तिः, प्रतिद्वादशी वराहपूजनम्, ब्राह्मणस्य भगवत्कर्मनियमः, क्षत्रियाणां भगवत्कर्मनियमः, भगवत्कर्मस्थानां वैश्यानां कर्म, शूद्रस्य कर्माणि, योगप्राप्तिहेतुः ।। ५३ ।।

११६—अथ सुखदुःखनिरूपणम्, दुःखरूपाणि कर्माणि, सुखरूपाणि कर्माणि ।। ५६ ।।

११७—अथ द्वात्रिंशदपराधाः, आहारानाहारादिद्वात्रिंशदपराधाः, अन्यदृढव्रतम्, कर्मणामुत्तमं कर्म ।। ५१ ।।

११८—अथ देवोपचारविधिस्तत्कृतफलञ्च ।। ५८ ।।

११९—अथाभोज्यनियमविधिः, प्रापणद्रव्यकर्मण्यभोज्यनियमविधिः ।। २० ।।

१२०—अथ त्रिसन्ध्यामन्त्रोपस्थानम् ।। २३ ।।

१२१—अथ जन्माभावः, भगवत्परायणानां पुरुषाणां लक्षणानि, प्रसभानां पुरुषाणां धर्मः, अगर्भप्रापकधर्माः ॥ २९ ॥

१२२—अथ कोकामुखमाहात्म्यम्, शकाधिपनृपस्य प्राग्जन्मवृत्तान्तम्, चिल्लीमत्स्ययोः परासिद्धिस्तत्क्षेत्रकृतदानादिफलम् ॥ १२२ ॥

१२३—अथ सुमनोगन्धादिमाहात्म्यम्, कार्तिकशुद्धद्वादश्यां प्रबोधिनीकर्म, शैशिरंकर्म, द्वादशीमाहात्म्यम्, हरये गन्धपत्रसमर्पणम् ॥ ४२ ॥

१२४—अथ ऋतूपस्करम् फाल्गुनशुक्लद्वादश्यां हरेः पूजनम्, तद्व्रताचरणफलं, भगवतोपदिष्टमृतुकर्म, तच्छ्रवणादिफलञ्च ॥ ५५ ॥

१२५—अथ मायाचक्रम्, वसुधयाप्रार्थितेन वराहरूपिहरिणा तस्यै मायायाः सर्वत्र व्याप्तिकथनम्, सोमशर्मणे द्विजायप्रदर्शित मायाख्यानम्, एतच्छ्रवणफलम् ॥१८९॥

१२६—अथ कुब्जाम्रकमाहात्म्यम्, कुब्जाम्रके तपश्चरतो रैभ्यस्य तपसा परितुष्टेन भगवतान्यतीर्थानां माहात्म्यकथनम्, कुब्जाम्रकेस्थितस्य कुमुदाकारतीर्थस्य-माहात्म्यम्, तत्रस्थमानसतीर्थ-महिमा, मायातीर्थ-माहात्म्यम्, सर्वात्मकतीर्थ-माहात्म्यम्, पूर्णमुखतीर्थ-माहात्म्यम्, करवीरपुण्डरीकाख्यतीर्थफलम्, अग्नितीर्थ-माहात्म्यम्, वायुतीर्थशुक्रतीर्थ माहात्म्यम्, सप्तसामुद्रकं तीर्थम्, मानससरोनामतीर्थम्, कुब्जाम्रकेवृत्तं व्यालीनकुलाख्यानम्, एतत्पठनफलम् ॥ ३६ ॥

१२७—अथ दीक्षासूत्रवर्णनम्, दीक्षितानां वर्ज्यावर्ज्यकर्माणि, दीक्षाग्रहणप्रकारः ॥ ७५ ॥

१२८—अथ कङ्कताञ्जनदर्शनम्, क्षत्रियदीक्षाप्रकारः, वैश्यदीक्षाप्रकारः, शूद्रदीक्षाप्रकारः, चतुर्णां वर्णानां छत्रम्, दीक्षितानां कर्तव्यता, स्नानोपकल्पनान्तेषु कर्तव्यता ॥९२॥

१२९—सन्ध्यादिप्रकारः, विष्णुपूजनादिकञ्च, ताम्रोत्पत्तिस्तन्माहात्म्यञ्च ॥ ६० ॥

१३०—राजान्नभोगप्रायश्चित्तम् ॥ २४ ॥

१३१—अथ दन्तकाष्ठचर्वणप्रायश्चित्तम् ॥ ११ ॥

१३२—अथ मृतकस्पर्शप्रायश्चित्तम्, मैथुनं कृत्वा शवस्पर्शदोषः, तद्दोपनिवारण प्रायश्चित्तम्, शवस्पर्शदोषः, रजस्वलां स्पृष्ट्वा भगवत्स्पर्शनतः पापम्, तत्प्रायश्चित्तम् ॥३९॥

१३३—अथ पूजासामयिकगुदरवपुरीषोत्सर्गयोः प्रायश्चित्तम् ॥ १३ ॥

१३४—अथ पूजादिसामयिकान्यापराधेषु प्रायश्चित्तम्, मौनत्यागप्रायश्चित्तम्, नीलवस्त्रं धृत्वा भगवत्पूजनादौ प्रायश्चित्तम्, विनाविधिं भगवत्स्पर्शने प्रायश्चित्तम्, आचारविधिः, क्रुद्धतया भगवदुपसर्पणे दोषः प्रायश्चित्तञ्च ॥ ७२ ॥

१३५—अथ जालपादभक्षणापराधप्रायश्चित्तम्, रक्तवस्त्रं धृत्वा भगवदुपसर्पणे दोषः। प्रायश्चित्तम्, विनादीपेनान्धकारे भगवत्सेवादिना दोषः प्रायश्चित्तञ्च, कृष्णवस्त्रं धृत्वा विष्णुपूजने दोषः प्रायश्चित्तञ्च, अधौतवस्त्रं धृत्वा भगवत्कर्मकरणे दोषः प्रायश्चित्तञ्च, श्वानोच्छिष्टदाने दोषः प्रायश्चित्तञ्च, वराहमांसं भुक्त्वा भगवत्सेवायां दोषः प्रायश्चित्तञ्च, जालपादं भक्षयित्वा विष्णुपूजनादौ दोषः प्रायश्चित्तञ्च ॥ ५९ ॥

१३६—अथ प्रायश्चित्तकर्मसूत्रम्, दीपं स्पृष्ट्वा विष्णुकर्मणि दोषः प्रायश्चित्तञ्च, स्मशानं गत्वाऽस्नात्वा विष्णुपूजने दोषः प्रायश्चित्तञ्च, विष्णुना स्मशानजुगुप्सनकारणम्, वराहमांसेन

प्रापणे कृते दोषः प्रायश्चित्तञ्च, मद्यंपीत्वा विष्णूपसर्पणे दोषः प्रायश्चित्तञ्च, भगवद्भक्तः कौशुम्भं शाकं भक्षयेत्तद्दोषः प्रायश्चित्तञ्च, नवान्नमदत्त्वाभोजने दोषः प्रायश्चित्तञ्च, गन्धमाल्यान्यदत्त्वा विष्णवे धूपदाने पद्भ्यामुपानहौवहन्भगवत्कर्मपरायणे दोषः प्रायश्चित्तञ्च, भेर्यादिशब्दमकृत्वा भगवत्प्रबोधने दोषः प्रायश्चित्तञ्च, बहुतरमन्नं भुक्त्वाऽजीर्णेन परिप्लुतेऽस्नाते भगवत्कर्मणि प्रवृत्त दोषः। अस्यपठनफलम् ॥१२७॥

१३७—अथ गृध्रजम्बूकाख्यानम्, चक्रतीर्थगमनफलम्, सोमतीर्थ-माहात्म्यम्, तत्र सोमाय विष्णुना वरप्रदानम्, शृगालीगृध्रयोस्तत्रक्षेत्रेमरणेन मानुषत्वप्राप्तिः, तदाख्यानम् ॥ २६९ ॥

१३८—अथ खञ्जरीटोपाख्यानम्, सौकरवे मृतस्य खञ्जरीटस्य क्रीडद्भिबालकैर्गङ्गाम्भसिक्षेपणेनमानुषत्वप्राप्तिसम्बन्धाख्यानम्, तच्छ्रवणफलम् ॥ १०३ ॥

१३९—सौकरवमाहात्म्यम्, गोमयमाहात्म्यम्, स्नानोपलेपनेधूमेसलिलदानेफलम्, सम्मार्जनफलम्, गायनफलम्, श्वपाकवृत्तम्, सत्यमाहात्म्यम्, एकगीतफलदानेन ब्रह्मरक्षसोदेवाग्रेनृत्यमानस्य मुक्तिफलम् ॥ १२१ ॥

१४०—कोकामुखमाहात्म्यं, तत्र पर्वतात्पतितायां विष्णुधारायां स्नानात्फलम्, तत्र विष्णुपदं नामस्थानम्, तत्र स्नानफलम्, विष्णुसरोनामतीर्थमाहात्म्यम्, पापप्रमोचननामतीर्थमाहात्म्यम्, यमव्यसनकं तीर्थम्, मातङ्गतीर्थमाहात्म्यम्, वज्रभवं नाम तीर्थम्, शक्रुरुद्रेति विख्यातं तीर्थम्, विष्णुतीर्थम्, मत्स्यशिलानामतीर्थम्, एतत्पठनफलम् ॥ १९८ ॥

१४१—अथ बदरिकाश्रम-माहात्म्यम्, तत्रत्यं ब्रह्मकुण्डमितिख्यातं तीर्थम् अग्निसत्यपदं नाम तीर्थम्, तत्र इन्द्रलोकमितिख्यातो विष्ण्वाश्रमः, पञ्चस्रोतस्तीर्थम्, चतुःस्रोतस्तीर्थम्, वेदधारं नाम तीर्थम्, द्वादशादित्यकुण्डं नामतीर्थम्, लोकपालं नाम तीर्थम् तच्चिन्हम्, सोमाभिषेकं नाम तीर्थम्, उर्वशीकुण्डं नाम तीर्थम् अस्य श्रवणफलम् ॥ ७० ॥

१४२—अथ गुह्यकर्म-माहात्म्यम्, भगवति चित्तधारणत्वम्, ऋतुकाले गमननिषेधः, ऋतुकालानन्तरं स्त्र्यभिगमनम्, शयने स्त्रीदर्शननिषेध., सम्भोगानन्तरं स्नानम्, अपूर्णे ऋतुकाले स्त्रीगमननिषेधः, ऋतुस्नातायामनाभिगमने दोषः, स्त्रीगमनदिवसः, संन्यासयोगः, एतच्छ्रवणफलम् ॥ ६४ ॥

१४३—अथ मन्दारमहिमनिरूपणम्, मन्दारतीर्थ-माहात्म्यम्, तत्र प्रापणो नामगिरिः, स्नानकुण्डं नाम तीर्थम्, मोदनं नाम तीर्थम् वैकुण्ठकारणं नाम तीर्थम् सोमस्रोतो नाम तीर्थम्, पूर्वेण गुह्यनाम तीर्थम्, विन्ध्यविनिःसृतं गुह्यं तीर्थम्, पश्चिमपार्श्वे देवसमन्वितं चक्रवर्तं नाम तीर्थम्, गुह्यो गभीरको नाम महाह्रदः, दक्षिणेचक्रम्, वामे गदा, एतच्छ्रवणफलम् ॥ ५२ ॥

१४४—अथ सोमेश्वरादि लिङ्गमुक्तिक्षेत्रत्रिवेण्यादि माहात्म्यम्, शापनिवृत्तये तपश्चरते सोमाय सन्तुष्टेन हरेण वरदानम्, रेवायास्तपसातुष्टेन शम्भुना तस्यै "लिङ्गरूपेन तव गर्भे स्थास्यामि" इति वरप्रदानम्, ततः पर रेवाखण्डमितिख्यातम्,

गण्डक्या तपसा स्तुत्या च सन्तुष्टेन हरिणातस्यै "शालग्रामशिलारूपी तव गर्भ-गतो भविष्यामि" इति वरप्रदानम्, बाणगङ्गोत्पत्तिः, रावणतपोवनम्, नर्तनाचलोत्पत्तिः मुक्तिक्षेत्रगण्डकीसमुत्पत्तिः, तन्माहात्म्यम्, त्रिवेणीप्रकटनं, परस्परं शापप्रदानतोगजग्राहत्वमाप्तयोर्जयविजययोस्तत्रमोक्षः, हरिहरप्रभं-तीर्थम्, हंस-तीर्थम्, यक्ष-तीर्थम् ॥ १८४ ॥

१४५—शालग्रामक्षेत्रमाहात्म्यम्, तपस्यते सालङ्कायनाय वरदानम्, नन्दिकेश्वरोत्पत्तिः, तत्र च विल्वप्रभं नामक्षेत्रम्, चक्रस्वामितीर्थम्, विष्णुपदं नामक्षेत्रम्, हृदस्रोत-स्तीर्थम्, शङ्खप्रभं क्षेत्रम्, गदाकुण्डम् क्षेत्रम्, अग्निप्रभं नामक्षेत्रम्, सर्वायुधं तीर्थम्, देवप्रभक्षेत्रम्, विद्याधरं नामक्षेत्रम्, पुण्यनदी नाम तीर्थम् गन्धर्व-क्षेत्रम्, देवहृदं क्षेत्रम्, देवनद्योः सम्भेदः, श्वेतगङ्गा, त्रिशूलगङ्गा, सिद्धाश्रमः तन्माहात्म्यम् ॥ १२४ ॥

१४६—अथ रुरुक्षेत्रस्य हृषीकेशमाहात्म्यम्, रुरुतीर्थं प्राकट्येतिहास., तपस्यतो देवदत्तस्य पदच्युतिं, शङ्कमानेनेन्द्रेण तपः खण्डनम्, पुनर्निर्वेदमाप्तस्य भृगुतुङ्गे तपस्यतस्तस्य शिवेन वरप्रदानम्, ततः परं समङ्गेति तीर्थख्यातिः प्रम्लोचाप्सरसः कन्यकां प्रसूयस्वर्गङ्गतासती रुरुभिर्मृगैः पोपिताया अतएव रुरुनाम्न्याः कन्यकायास्तपसा-तुष्टेन हरिणा "स्वन्नाम्नाख्यातं भविष्यतिक्षेत्रम्" इति वरप्रदानम् तस्यै ॥८७॥

१४७—अथ गोनिष्क्रमण माहात्म्यम्, महादेवतेजसाभस्मोद्भूतमाश्रमं वीक्ष्य क्रोधकलु-षितेनौर्वेणदत्तशापप्रभावतस्तस्य महादेवस्य नारायणसन्निधावागमनम्, ततो गवांस्नापनतोरुद्रतापनिवृत्तिः, ततः परं गोनिष्क्रमं नामतीर्थम्, तत्र स्नानदाना-दिफलम्, पञ्चक्रोशतीर्थम्, एतच्छ्रवणफलम् ॥ ६७ ॥

१४८—अथ स्तुतस्वामि-माहात्म्यम्, मात्सर्यदोपाः, पञ्चारुमेतिख्यातं तीर्थम्, भृगुकुण्ड-नाम तीर्थम्, मणिकुण्डं नाम तीर्थम्, धूतपापं नाम तीर्थम्, तत्रस्नानादिजन्यं फलम् ॥ ८२ ॥

१४९—द्वारिकामाहात्म्यम्, द्वारिकापरिमाणम्, यादवकुलस्य दुर्वाससः शापकारणकथ-नम्, अत्र पञ्चाप्सरस्तीर्थम्, शतशाखःप्लक्षः तत्रप्रभासं नाम तीर्थम्, तत्रा-श्चर्यम्, पञ्चपिण्डतीर्थम् सङ्गमनं क्षेत्रम्, हंसकुण्डं तीर्थम्, कदम्बं-तीर्थम्, चक्र-तीर्थम्, रैवतकं-तीर्थम्, विष्णुसंक्रमणं-तीर्थम्, एतत्पठनफलम् ॥ ६० ॥

१५०—अथ सानन्दूर-माहात्म्यम्, तत्र रामगृहं नाम-तीर्थम्, रामसरो नाम-तीर्थम्, ब्रह्मसरः, सङ्गमनं नाम-तीर्थम्; शक्रसरो नाम-तीर्थम्, शूर्पासकं नाम क्षेत्रम्, जटाकुण्डं तीर्थम्, एतत्पठनफलम् ॥ ६० ॥

१५१—अथ लोहार्गल-माहात्म्यम्, पञ्चसरो नाम क्षेत्रम्, नारदकुण्डं तीर्थम्, वसिष्ठ-कुण्डम्, पञ्चकुण्डम्, सप्तर्षि-कुण्डम, शरभङ्ग कुण्डम्, अग्निसरो नाम-कुण्डम्, वैश्वानर-कुण्डम्, कार्तिकेय-कुण्डम्, उमा-कुण्डम्, महेश्वर-कुण्डम्, ब्रह्मकुण्डम्, पठनफलम् ॥ ८५ ॥

१५२—अथ मथुरामाहात्म्यम्, तत्र विश्रान्ति संज्ञकं तीर्थम्, प्रयागं नाम तीर्थम्, कन-

खलं तीर्थम्, तिन्दुकं-क्षेत्रम्, सूर्य-तीर्थम्, ऋषि-तीर्थम्, कोटि-तीर्थम्, वायु-तीर्थम् ॥ ७० ॥

१५३—अथ मथुरामाहात्म्यम्, नवकं-तीर्थम्, संयमनं-तीर्थम्, निषादाख्यानम्, कुन्दवनं नामवनम्, काम्यकवनम्, बकुलवनम्, भद्रवनम्, खादिरंवनम्, महावनम्, लोहजङ्घवनम्, बिल्ववनम्, भाण्डीरवनम्, वृन्दावनम् ॥ ४९ ॥

१५४—अथ यमुनातीर्थप्रभावः, पीवरीवृत्तान्तम्, धारापतनकतीर्थमाहात्म्यम्, नाग-तीर्थम्, घण्टाभरणकं तीर्थम्, सोमतीर्थम्, मानसंतीर्थम्, विघ्नराजतीर्थम्, कोटितीर्थम्, शिवक्षेत्रम् ॥ ३२ ॥

१५५—अथाक्रूरतीर्थप्रभावः, सुधन्ववृत्तान्तम् ॥ ७५ ॥

१५६—अथ मथुराप्रादुर्भावः आदित्यस्थापनम् ॥ १९ ॥

१५७—अथ मलयार्जुन तीर्थादिस्नानादि प्रशंसा, भाण्डहृदं तीर्थम्, वीरस्थलं नाम तीर्थम्, कुशस्थलं तीर्थम् पुण्यस्थलं तीर्थम् सप्तसामुद्रकं कूपम्, वसुपत्रं तीर्थम्, फाल्गुनकं तीर्थम्, वृषभाञ्जनकतीर्थम्, तालवनम्, स्वच्छजलं कुण्डम्, सपीठकं तीर्थम् प्रसभसलिलं कुण्डम् ॥ ५० ॥

१५८—अथ मथुरातीर्थप्रादुर्भावः, दिक्पालादिभिर्मथुरारक्षणम्, मुचुकुन्दं क्षेत्रम् ॥४३॥

१५९—अथ मथुराप्रदक्षिणा, विन्ध्यादिकथनम्, मथुराप्रदक्षिणाफलम्, तद्विधानम् ॥२३॥

१६०—अथ मथुरोपक्रमः। मथुरास्थतीर्थप्रदेशेपूत्तरोत्तरं गमनक्रमः प्रदक्षिणाफलम् ॥८५॥

१६१—द्वादशवनयात्राप्रभावः, तन्माहात्म्यञ्च ॥ ११ ॥

१६२—अथ चक्रतीर्थप्रभावः मथुराया उत्तरे चक्रतीर्थवृत्तं ब्राह्मणवृत्तान्तम् ॥ ६८ ॥

१६३—अथ कपिलवराहमाहात्म्यम्, मथुरास्थवैकुण्ठतीर्थे स्नानेन कस्यचित् ब्राह्मणस्य ब्रह्महत्या-निवारणम्, रावणेन वराहरूपिणो देवस्यानयनम्, रावणवधानन्तरं रामेणायोध्यायामानयनम्, ततः लवणासुरवधानन्तरं शत्रुघ्नेन मथुरायाः स्थापनम्, तत्र स्नानादिफलम् ॥ ६९ ॥

१६४—अथान्नकूटपरिक्रमप्रभावः, मथुरापश्चिमे भागे गोवर्द्धनं क्षेत्रम्, पूर्वे इन्द्रतीर्थम्, दक्षिणे यमतीर्थम्, पश्चिमे वारुणम्, उत्तरे कौवेरम्, अन्नकूटप्रदक्षिणम्, प्रदक्षिणा-विधानम्, पुण्डरीकतीर्थमहिमा, आप्सरसं कुण्डम्, सङ्कर्षणं तीर्थम्, कदम्ब-खण्डकुण्डम्, अरिष्टतीर्थम्, राधाकुण्डम्, मोक्षराजाख्यं तीर्थम्, इन्द्रध्वजंतीर्थम्, अन्नकूटपरिक्रमफलम् ॥ ४६ ॥

१६५—ब्राह्मणमाहात्म्यम्, कूपप्रभावः, मथुरायां प्रेतमुक्तिः ॥ ६८ ॥

१६६—असिकुण्डप्रभावः, असिकुण्डोत्पत्ति. ॥ ३० ॥

१६७—विश्रान्तिमाहात्म्यम्, राक्षसमुक्तिः ॥ ३० ॥

१६८—मथुरायां महादेवस्य क्षेत्रपालत्वनिरूपणम्, महादेवदर्शनेन मथुरायां प्रवेशात्फलप्राप्तिः ॥ २१ ॥

१६९—गरुडवृत्तान्तम् ॥ ४२ ॥

१७०—वसुकर्णवैश्यस्यापुत्रस्य कस्यचिन्मुनेरुपदेशतः सस्त्रीकस्य व्रतं गोकर्णं नाम महा-

इस वराहपुराणकी श्लोक-संख्या दस हजारसे कुछ अधिक आती है। यह दाक्षिणात्य संस्करण है। बङ्गालकी एशियाटिक सोसैटीके संस्करणमें भी लगभग साढ़े दस हजार श्लोक हैं। नारदपुराणमें पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो खण्डोंका वर्णन है। जान पड़ता है कि उपलब्ध प्रतियां किसी एक ही खण्डकी हैं। पाठान्तर तो दोनोंमें ही हैं। नारदादि कई पुराणोंमें लिखा है कि मनुष्य-कल्पकी कथाका इसमें वर्णन है और श्लोक-संख्या २४ हजार बतलायी है। प्रस्तुत पोथियोंमें यह दोनों बातें नहीं मिलतीं।

चातुर्मास्य-माहात्म्य, त्र्यम्बक-माहात्म्य, भगवद्गीता-माहात्म्य मृत्तिका शौच-विधान, विमान-माहात्म्य, वेंकटगिरि-माहात्म्य, व्यतीपात-माहात्म्य आदि छोटी-छोटी अनेक पोथियां वराहपुराणसे ली हुई बतायी जाती हैं।

सैंतीसवाँ अध्याय

स्कन्दपुराण

स्कन्दपुराण महापुराणोंमें सबसे बड़ा है। इसमें इक्यासी हजार एक सौ श्लोक बतलाये गये हैं। हमारे सामने वेङ्कटेश्वरकी छपी पोथी मौजूद है। इसमें सम्पादकने स्कन्द-पुराण सम्बन्धी सन्देहका निरसन भी किया है। यों तो स्कन्दपुराणके अन्तर्गत सैकड़ों माहात्म्य हैं और शायद नारदीय-पुराणकी अनुक्रमणिकाके बननेके बाद भी उसमें अनेक अंश जोड़े गये हों, फिर भी वेङ्कटेश्वरके छपे ग्रन्थकी श्लोकसंख्या अवश्य इक्यासी हजार है। सम्पादकने एक छोटे स्कन्दपुराण नामक उपपुराणका भी वर्णन किया है। परन्तु यह पोथी मेरे देखनेमें नहीं आयी। वेङ्कटेश्वरवाले ग्रन्थकी विषयानुक्रमणिका ही यदि यहाँ पूर्वक्रमानुसार दे दी जाय तो डेढ़ सौ पृष्ठसे अधिक लग जावेंगे। इस विस्तारके भयसे हम यहाँ उसी अनुक्रम-णिकाकी प्रतिलिपि देते हैं जो नारदीय महापुराणमें श्लोकोंमें दी गयी है। वह इस प्रकार है—

ब्रह्मोवाच—शृणुवत्सप्रवक्ष्यामि पुराणं स्कान्दसंज्ञकम्।
यस्मिन्प्रतिपदं साक्षान्महादेवी व्यवस्थितः॥ १॥
पुराणे शतकोटौ तु यच्छैवम् वर्णितम् मया।
लक्षितस्यार्थ जातस्य सारो व्यासेन कीर्त्तितः॥ २॥
स्कान्दाह्वयस्तत्र खण्डाः सप्तैव परिकल्पिताः।
एकाशीति सहस्रम् तु स्कान्दम् सर्वाघकृन्तनम्॥ ३॥
यः शृणोति पठेद्वापि स तु साक्षाच्छिवः स्थितः।
यत्र माहेश्वराधर्माः षण्मुखेन प्रकाशिताः॥ ४॥
कल्पे तत्पुरुषे वृत्ताः सर्वसिद्धिविधायकाः।
तस्य माहेश्वरस्याद्यः खण्डः पापप्रणाशनः॥ ५॥
किञ्चिन्न्यूनार्क साहस्रो बहुपुण्योबृहत्कथः।
सुचरित्र शतैर्युक्तः स्कान्दमाहात्म्य सूचकः॥ ६॥
यत्र केदारमाहात्म्ये पुराणोपक्रमः पुरा।
दक्ष यज्ञ कथा पश्चाच्छिवलिङ्गार्चने फलम्॥ ७॥
समुद्रमथनाख्यानं देवेन्द्रचरितम् महत्।
पार्वत्याः समुपाख्यानम् विवाहस्तदनन्तरम्॥ ८॥
कुमारोत्पत्तिकथनम् ततस्तारकसङ्गरः।
ततः पाशुपताख्यानम् चण्ड्याख्यानसमन्वितम्॥ ९॥
द्यूतप्रवर्तनाख्यानम् नारदेन समागमः।
ततः कुमारमाहात्म्ये पञ्चतीर्थ कथानकम्॥ १०॥
धर्मवर्मनृपाख्यानम् महीसागरकीर्तनम्।

इन्द्रद्युम्न कथा पश्चान्नाडी जङ्घ कथान्विता ॥ ११ ॥
प्रादुर्भावस्ततो मह्याः कथा दमनकस्य च ।
महीसागर संयोगः कुमारेश कथा ततः ॥ १२ ॥
ततस्तारकयुद्धं च नानाख्यानसमन्वितम् ।
वधश्च तारकस्याथ पञ्चलिङ्गनिवेशनम् ॥ १३ ॥
द्वीपाख्यानम् ततः पुण्यमूर्ध्वलोकव्यवस्थितिः ।
ब्रह्माण्डस्थितिमानम् च बर्करेश कथानकम् ॥ १४ ॥
महाकाल समुद्भूतिः कथा चास्य महाद्भुता ।
वासुदेवस्य माहात्म्यम् कोटि तीर्थम् ततः परम् ॥ १५ ॥
नानातीर्थसमाख्यानम् गुप्तक्षेत्रे प्रकीर्त्तितम् ।
पाण्डवानां कथा पुण्या महाविद्या प्रसाधनम् ॥ १६ ॥
तीर्थयात्रा समाप्तिश्च कौमारमिदमद्भुतम् ।
अरुणाचलमाहात्म्यम् सनक ब्रह्म सङ्कथा ॥ १७ ॥
गौरी तपः समाख्यानम् तत्ततीर्थनिरूपणम् ।
माहिषासुरमाख्यानम् वन्धश्चास्य महाद्भुतः ॥ १८ ॥
द्रोणाचले शिवास्थानम् नित्यदापरिकीर्त्तितम् ।
इत्येष कथितः स्कान्दे खण्डो माहेश्वरोद्भुतः ॥ १९ ॥
द्वितीयो वैष्णवः खण्डस्तस्याख्यानानि मेश्रृणु ।
प्रथमम् भूमि वाराह समाख्यानम् प्रकीर्त्तितम् ॥ २० ॥
यत्र वेङ्कट कुद्धस्य माहात्म्यम् पाप नाशनम् ।
कमलायाः कथा पुण्या श्रीनिवासस्थितिस्ततः ॥ २१ ॥
कुलालाख्यानकम् चात्र सुवर्णमुखरी कथा ।
नानाख्यानसमायुक्ता भरद्वाज कथाद्भुता ॥ २२ ॥
मतङ्गाञ्जन संवादः कीर्त्तितः पापनाशनः ।
पुरुषोत्तममाहात्म्यम् कीर्त्तितम् चोत्कले ततः ॥ २३ ॥
मार्कण्डेय समाख्यानमम्बरीषस्य भूपतेः ।
इन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यम् विद्यापति कथा ततः ॥ २४ ॥
जैमिनेः समुपाख्यानम् नारदस्यापि वाडव ।
नीलकण्ठसमाख्यानम् नरसिंहोपवर्णनम् ॥ २५ ॥
अश्वमेध कथा राज्ञो ब्रह्मलोक गतिस्तथा ।
रथयात्राविधिः पश्चाज्जन्मस्थानविधिस्तथा ॥ २६ ॥
दक्षिणामूर्त्युपाख्यानम् गुण्डिचाख्यानकम् ततः ।
रक्षरक्षाविधानम् च शयनोत्सवकीर्त्तिनम् ॥ २७ ॥
श्वेतोपाख्यान मन्त्रोक्तम् पृथूत्सवनिरूपणम् ।
दोलोत्सवो भगवतो व्रतम् सांवत्सराधिकम् ॥ २८ ॥

पूजा चाकामिका विष्णोरुद्दालकनियोगतः ।
योगसाधन मन्त्रोक्तम् नाना योग निरूपणम् ॥ २९ ॥
दशावतारकथनम् स्नानादिपरिकीर्त्तनम् ।
ततो वदरिकायाश्च माहात्म्यम् पापनाशनम् ॥ ३० ॥
अग्न्यादि तीर्थमाहात्म्यम् वैनतेय शिलाभवम् ।
कारणम् भगवद्वासे तीर्थम् कापालमोचनम् ॥ ३१ ॥
पञ्चधाराभिधम् तीर्थम् मेरु संस्थापनम् तथा ।
ततः कार्त्तिकमाहात्म्ये माहात्म्यम् मदनालसम् ॥ ३२ ॥
धूम्रकेशसमाख्यानम् दिनकृत्यानि कार्त्तिके ।
पञ्चभीष्मव्रताख्यानम् कीर्त्तितम् मुक्ति भुक्तिदम् ॥ ३३ ॥
ततो मार्गस्य माहात्म्ये विधानम् स्नानजम् तथा ।
पुण्ड्रादिकीर्त्तनम् चात्र मालाधारणपुण्यकम् ॥ ३४ ॥
पञ्चामृतस्नानपुण्यम् घण्टानादादिजम् फलम् ।
नाना पुष्पार्चनफलम् तुलसीदलजम् फलम् ॥ ३५ ॥
नैवेद्यस्य च माहात्म्यम् हरिवासरकीर्त्तनम् ।
अखण्डैकादशी पुण्यम् तथा जागरणस्य च ॥ ३६ ॥
यात्रोत्सवविधानम् च नाममाहात्म्य कीर्त्तनम् ।
ध्यानादि पुण्यकथनम् माहात्म्यम् मथुराभवम् ॥ ३७ ॥
मथुरातीर्थमाहात्म्यम् पृथगुक्तम् ततः परम् ।
वनानां द्वादशानां च माहात्म्यम् कीर्त्तितम् ततः ॥ ३८ ॥
श्रीमद्भागवतस्यात्र माहात्म्यम् कीर्त्तितम् परम् ।
वज्रशाण्डिल्य संवादोह्यन्तर्लीला प्रकाशनम् ॥ ३९ ॥
ततो माघस्य माहात्म्यम् स्नानदानजपोद्भवम् ।
नानाख्यानसमायुक्तम् दशाध्यायैर्निरूपितम् ॥ ४० ॥
ततो वैष्णवमाहात्म्ये शय्यादानादिजम् फलम् ।
जलदानादि विधयः कामाख्यानमतः परम् ॥ ४१ ॥
श्रुतदेवस्य चरितम् व्याधोपाख्यानमद्भुतम् ।
तथाऽक्षय्यतृतीयादेर्विशेषात्पुण्यकीर्त्तनम् ॥ ४२ ॥
ततस्त्वयोध्यामाहात्म्ये चक्र ब्रह्माह्वतीर्थके ।
सुरापापविमोक्षाख्ये तथाधार सहस्रकम् ॥ ४३ ॥
स्वर्गद्वारम् चन्द्रहरिर्धर्महर्युपवर्णनम् ।
स्वर्णवृष्टेरुपाख्यानम् तिलोदासरयूयुतिः ॥ ४४ ॥
सीताकुण्डम् गुप्तहरिः सरयू वर्घरान्वयः ।
गो प्रतारम् च दुग्धोदम् गुरु कुण्डादि पञ्चकम् ॥ ४५ ॥
सोमार्कादीनि तीर्थानि त्रयोदश ततः परम् ।

गया कूपस्य माहात्म्यम् सर्वौघविनिवर्तकम् ॥ ४६ ॥
माण्डव्याश्रम पूर्वाणि तीर्थानि तदनन्तरम् ।
अजितादि मानसादि तीर्थानि गदितानि च ॥ ४७ ॥
इत्येष वैष्णवः खण्डो द्वितीयः परिकीर्त्तितः ।
अतः परम् ब्राह्मखण्डो मरीचे शृणु पुत्रक ॥ ४८ ॥
यत्र वै सेतु माहात्म्ये फलम् स्नात क्षणोद्भवम् ।
गालवस्य तपश्चर्या राक्षसाख्यानकम् ततः ॥ ४९ ॥
चक्र तीर्थादि माहात्म्यम् देवीपत्तन संयुतम् ।
वेताल तीर्थ महिमा पापनाशादिकीर्तनम् ॥ ५० ॥
मङ्गलादिक माहात्म्यम् ब्रह्मकुण्डादिवर्णनम् ।
हनुमत्कुण्ड महिमाऽगस्त्यतीर्थभवम् फलम् ॥ ५१ ॥
रामतीर्थादि कथनं लक्ष्मीतीर्थ निरूपणम् ।
शङ्खादि तीर्थ महिमा तथा साध्यामृतादिजः ॥ ५२ ॥
धनुष्कोट्यादि माहात्म्यम् क्षीरकुण्डादिजं तथा ।
गायत्र्यादिक तीर्थानाम् माहात्म्यम् चात्रकीर्त्तितम्॥ ५३ ॥
रामनाथस्य महिमा तत्वज्ञानोपदेशनम् ।
यात्रा विधान कथनम् सेतो मुक्तिप्रदम् नृणाम् ॥ ५४ ॥
धर्मारण्यस्य माहात्म्यम् ततःपरमुदीरितम् ।
स्थाणुः स्कन्दाय भगवान्यत्र तत्वमुपादिशत् ॥ ५५ ॥
धर्मारण्य सुसम्भूतिस्तत्पुण्य परिकीर्तनम् ।
कर्मसिद्धेः समाख्यानमृषिवंश निरूपणम् ॥ ५६ ॥
अप्सरस्तीर्थमुख्यानां माहात्म्यम् यत्र कीर्त्तितम् ।
वर्णानामाश्रमाणां च धर्मतत्वनिरूपणम् ॥ ५७ ॥
देवस्थानविभागश्च बहुलार्क कथा शुभा ।
छत्रानन्दा तथा शान्ता श्रीमाता च मतङ्गिनी ॥ ५८ ॥
पुण्यदा च समाख्याता यत्र देव्यः समास्थिताः ।
इन्द्रेश्वरादि माहात्म्यम् द्वारकादिनिरूपणम् ॥ ५९ ॥
लोहासुर समाख्यानम् गङ्गाकूपनिरूपणम् ।
श्रीरामचरितम् चैव सत्यमन्दिरवर्णनम् ॥ ६० ॥
जीर्णोद्धारस्य कथनमासनप्रतिपादनम् ।
जातिभेदप्रकथनम् स्मृतिधर्मनिरूपणम् ॥ ६१ ॥
ततस्तु वैष्णवाधर्मा नानाख्यानैरुदीरिताः ।
चातुर्मास्ये ततः पुण्ये सर्वधर्मनिरूपणम् ॥ ६२ ॥
दान प्रशंसा तत्पश्चाद्व्रतस्य महिमा ततः ।
तपसश्चैव पूजायाः सच्छिद्रकथनम् ततः ॥ ६३ ॥

तद्वृत्तीनां भिदाख्यानम् शालग्रामनिरूपणम् ।
भारकस्य वधोपायो वृक्षार्चा महिमा तथा ॥ ६४ ॥
विष्णोः शापश्च वृक्षत्वम् पार्वत्यनुतपस्ततः ।
हरस्य ताण्डवम् नृत्यम् रामनाम निरूपणम् ॥ ६५ ॥
हरस्य लिङ्ग कथनम् कथा पैजवनस्य च ।
पार्वती जन्मचरिते तारकस्य वधोऽद्भुतः ॥ ६६ ॥
प्रणवैश्वर्य कथनम् तारकाचरितम् पुनः ।
दक्ष यज्ञ समाप्तिश्च द्वादशाक्षर भूषणम् ॥ ६७ ॥
ज्ञानयोग समाख्यानम् महिमा द्वादशाक्षरः ।
श्रवणादिक माहात्म्यम् कीर्त्तितम् शर्मदंनृणाम् ॥ ६८ ॥
ततो ब्राह्मोत्तरे भागे शिवस्य महिमाऽद्भुतः ।
पञ्चाक्षरस्य महिमा गोकर्ण महिमा ततः ॥ ६९ ॥
शिवरात्रेश्च माहात्म्यम् प्रदोषव्रतकीर्तनम् ।
सोमवारव्रतम् चापि सीमन्तिन्याः कथानकम् ॥ ७० ॥
भद्रायूत्पत्तिकथनम् सदाचार निरूपणम् ।
शिववर्म समुद्देशो भद्रायूद्वाह वर्णनम् ॥ ७१ ॥
भद्रायुमहिमा चापि भस्ममाहात्म्य कीर्तनम् ।
शवराख्यानकम् चैवाथोमामाहेश्वरम् व्रतम् ॥ ७२ ॥
रुद्राक्षस्य च माहात्म्यम् रुद्राध्यायस्य पुण्यदम् ।
श्रवणादिक पुण्यम् च ब्राह्मखण्डोऽयमीरितः ॥ ७३ ॥
अतः परम् चतुर्थम् तु काशीखण्डमनुत्तमम् ।
विन्ध्यनारदयोर्यत्र संवादः परिकीर्त्तितः ॥ ७४ ॥
सत्यलोक प्रभावश्चागस्त्यावासे सुरागमः ।
पतिव्रता चरित्रम् च तीर्थयात्रा प्रशंसनम् ॥ ७५ ॥
ततश्च सप्तपुर्याख्याः संयमिन्या निरूपणम् ।
बुधस्य च तथेन्द्राग्न्योर्लोकाप्तिः शिवशर्मणः ॥ ७६ ॥
अग्नेः समुद्भवश्चैव क्रव्याद्वरुणसम्भवः ।
गन्धवत्यलकापुर्योरीश्वर्याश्च समुद्भवः ॥ ७७ ॥
चन्द्रार्क बुधलोकानां कुजेज्यार्क भुवां क्रमात् ।
मम विष्णोर्ध्रुवस्यापि तपोलोकस्य वर्णनम् ॥ ७८ ॥
ध्रुवलोक कथा पुण्या सत्यलोक निरीक्षणम् ।
स्कन्दागस्त्य समालापो मणिकर्णी समुद्भवः ॥ ७९ ॥
प्रभावश्चापि गङ्गायाः गङ्गानाम सहस्रकम् ।
वाराणसी प्रशंसा च भैरवाविर्भवस्ततः ॥ ८० ॥
दण्डपाणि ज्ञानवाप्योरुद्भवः समनन्तरम् ।

ततः कलावत्याख्यानम् सदाचारनिरूपणम् ॥ ८१ ॥
ब्रह्मचारिसमाख्यानम् ततः स्त्रीलक्षणानि च ।
कृत्याकृत्य विनिर्देशो ह्यविमुक्तेशवर्णनम् ॥ ८२ ॥
गृहस्थयोगिनो धर्माकालज्ञानम् ततः परम् ।
दिवोदास कथा पुण्या काशिका वर्णनम् ततः ॥ ८३ ॥
माया गणपतेश्चाथ भुवि प्रादुर्भवस्ततः ।
विष्णुमाया प्रपञ्चोऽथ दिवोदास विमोक्षणम् ॥ ८४ ॥
ततः पञ्चनदोत्पत्तिर्बिन्दुमाधव सम्भवः ।
ततो वैष्णव तीर्थाख्या शूलिनः काशिकागमः ॥ ८५ ॥
जैगीषव्येण संवादो ज्येष्ठे शाख्या महेशितुः ।
क्षेत्राख्यानम् कन्दुकेशो व्याघेश्वर समुद्भवः ॥ ८६ ॥
शैलेश रत्नेश्वरयोः कृत्तिवासस्य चोद्भवः ।
देवतानामधिष्ठानम् दुर्गासुर पराक्रमः ॥ ८७ ॥
दुर्गाया विजयश्चाथ ॐकारेशस्य वर्णनम् ।
पुनरोङ्कार माहात्म्यम् त्रिलोचन समुद्भवः ॥ ८८ ॥
केदाराख्या च धर्मेश कथा विष्णु समुद्भवा ।
वीरेश्वरसमाख्यानम् गङ्गा माहात्म्यकीर्तनम् ॥ ८९ ॥
विश्वकर्मेश महिमा दक्ष यज्ञोद्भवस्तथा ।
सतीशस्यामृतेशादेर्भुजस्तम्भः पराशरे ॥ ९० ॥
क्षेत्रतीर्थकदम्बश्च मुक्तिमण्डपसङ्कथा ।
विश्वेशविभवश्चाथ ततो यात्रा परिक्रमः ॥ ९१ ॥
अतः परम् त्ववन्त्याख्यां श्रृणुखण्डम् च पञ्चमम् ।
महाकालवनाख्यानम् ब्रह्मशीर्षच्छिदा ततः ॥ ९२ ॥
प्रायश्चित्त विधश्चाग्नेरुत्पत्तिश्च सुरागमः ।
देवदीक्षा शिवस्तोत्रम् नानापातक नाशनम् ॥ ९३ ॥
कपालमोचनाख्यानम् महाकाल वनस्थितिः ।
तीर्थम् कनखलेतस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ९४ ॥
कुण्डमप्सरसंज्ञम् च सरो रुद्रस्य पुण्यदम् ।
कुडवेशम् च विद्याभ्रम् मर्कटेश्वर तीर्थकम् ॥ ९५ ॥
स्वर्गद्वारम् चतुःसिन्धुः तीर्थम् शङ्कर वापिका ।
शङ्करार्कम् गन्धवती तीर्थम् पापप्रणाशनम् ॥ ९६ ॥
दशाश्वमेधिकानंशा तीर्थेश हरसिद्धिदम् ।
पिशाचकादि यात्रा च हनुमत्केश्वरम् सरः ॥ ९७ ॥
महाकालेश यात्रा च वाल्मीकेश्वर तीर्थकम् ।
शुक्रेश्वरादि माहात्म्यम् कुशस्थल्याप्रदक्षिणा ॥ ९८ ॥

अक्रूर संज्ञकम् त्वेक पादम् चन्द्रार्क वैभम् ।
करमेशाख्यतीर्थम् च लकुटेशादि तीर्थकम् ॥ ९९ ॥
मार्कण्डेशम् यज्ञवापी सोमेशम् नरकान्तकम् ।
केदारेश्वर रामेश सौभाग्येश नरार्ककम् ॥१००॥
केशवार्कम् शक्तिभेदं स्वर्णसार मुखानि च ।
ॐकारेशादि तीर्थानि अन्धकश्रुतिकीर्तनम् ॥१०१॥
कालारण्ये लिङ्ग संख्या स्वर्णशृङ्गाभिधानकम् ।
कुशस्थल्या अवन्त्याश्चोज्जयिन्या अभिधानकम् ॥१०२॥
पद्मावती कुमुद्वत्यमरावतिकनामकम् ।
विशाला प्रतिकल्पाभिधानम् च ज्वरशान्तिकम् ॥१०३॥
शिवानामादिकफलम् नागोद्गीता शिवस्तुतिः ।
हिरण्याक्षवधाख्यानम् तीर्थम् सुन्दर कुण्डकम् ॥१०४॥
नीलगङ्गापुष्कराख्यम् विन्ध्यवासनतीर्थकम् ।
पुरुषोत्तमाभिधानम् तु तत्तीर्थम् चाघनाशनम् ॥१०५॥
गोमती वामनम् कुण्डम् विष्णोर्नाम सहस्रकम् ।
वीरेश्वरसरः कालभैरवस्य च तीर्थकम् ॥१०६॥
महिमा नागपञ्चम्या नृसिंहस्य जयन्तिका ।
कुटुम्बेश्वर यात्रा च देवसाधन कीर्तनम् ॥१०७॥
कर्क राजाख्यतीर्थम् च विघ्नेशादि सुरोहनम् ।
रुद्रकुण्डप्रभृतिषु बहुतीर्थे निरूपणम् ॥१०८॥
यात्राऽष्ट तीर्थजा पुण्या रेवामाहात्म्यमुच्यते ।
धर्मपुत्रस्य वैराग्यान्मार्कण्डेयेन सङ्गमः ॥१०९॥
प्राग्रीयानुभवाख्यानम् भूभृतापरिकीर्तनम् ।
कल्पे कल्पे पृथङ्नाम नर्मदायाप्रकीर्तितम् ॥११०॥
स्तवमार्षम् नार्मदम् च कालरात्रि कथा ततः ।
महादेव स्तुतिः पश्चात्पृथक्कल्प कथाद्भुता ॥१११॥
विशल्याख्यानकम् पश्चाज्जालेश्वर कथा तथा ।
गौरीव्रतसमाख्यानम् त्रिपुर ज्वालनम् तथा ॥११२॥
देहपातविधानं च कावेरी सङ्गमस्ततः ।
दारुतीर्थम् ब्रह्मावर्तम् यज्ञेश्वरकथानकम् ॥११३॥
अग्नितीर्थम् रवितीर्थम् मेघनादाद्दिदारुकम् ।
देवतीर्थम् नर्मदेशम् कपिलाख्यम् करञ्जकम् ॥११४॥
कुण्डलेशम् पिप्पलादम् विमलेशम् च शूलभित् ।
शचीहरणमाख्यानमन्धकस्य वधस्तथा ॥११५॥
शूलभेदोद्भवो यत्र दानधर्माः पृथग्विधाः ।

आख्यानम् दीर्घतपसः ऋष्यश्रृङ्गकथा ततः ॥११६॥
चित्रसेन कथा पुण्या काशीराजस्य लक्षणम् ।
ततो देवशिलाख्यानम् शवरीतीर्थकान्वितम् ॥११७॥
व्याधाख्यानम् ततः पुण्यम् पुष्करिण्यर्कतीर्थकम् ।
आदित्येश्वर तीर्थम् च शक्रतीर्थम् करोटिकम् ॥११८॥
कुमारेशमगस्त्येशमानन्देशं च मातृजम् ।
लोकेशम् धनदेशम् च मङ्गलेशम् च कामजम् ॥११९॥
नागेशम् चापि गोपारम् गौतमम् शङ्खचूडकम् ।
नारदेशम् नन्दिकेशम् वरुणेश्वरतीर्थकम् ॥१२०॥
दधि स्कान्दादि तीर्थानि हनूमन्तेश्वरम् ततः ।
रामेश्वरादि तीर्थानि सोमेशम् पिङ्गलेश्वरम् ॥१२१॥
ऋणमोक्षम् कपिलेशम् पूतिकेशम् जलेशयम् ।
चण्डार्कम् यमतीर्थम् च कह्लोडीशम् वनादिकम् ॥१२२॥
नारायणम् च कोटीशम् व्यासतीर्थम् प्रभासकम् ।
नागेशसङ्कर्षणकम् प्रश्रयेश्वरतीर्थकम् ॥१२३॥
एरण्डी सङ्गमम् पुण्यम् सुवर्णशिलतीर्थकम् ।
करञ्जम् कामदम् तीर्थम् भाण्डीरो रोहिणीभवम् ॥१२४॥
चक्रतीर्थम् धौतपापम् स्कान्दमाङ्गिरसाह्वयम् ।
कोटितीर्थभयोन्याख्यमङ्गाराख्यम् त्रिलोचनम् ॥१२५॥
इन्द्रेशम् कम्बुकेशं च सोमेशम् कोहनाशकम् ।
नार्मदम् चार्कमाग्नेयम् भार्गवेश्वरमुत्तमम् ॥१२६॥
ब्राह्मम् दैवम् च मार्गेशमादिवाराहकेश्वरम् ।
रामेशमथ सिद्धेशमाहिल्यम् कण्टकेश्वरम् ॥१२७॥
शक्रम् सौम्यम् च नादेशम् तोयेशम् रुक्मणीभवम् ।
योजनेशम् वराहेशम् द्वादशी शिव तीर्थकम् ॥१२८॥
सिद्धेशम् मङ्गलेशम् च लिङ्गवाराहतीर्थकम् ।
कुण्डेशम् श्वेतवाराहम् गर्भावेशम् रवीश्वरम् ॥१२९॥
शुक्लादीनि च तीर्थानि हुङ्कारस्वामितीर्थकम् ।
सङ्गमेशम् नारकेशम् मोक्षणम् पञ्चगोपकम् ॥१३०॥
नागशावम् च सिद्धेशम् मार्कण्डाक्रूर तीर्थके ।
कोमादशूलारोपाख्ये माण्डव्यम् गोपकेश्वरम् ।
कपिलेशम् पिङ्गलेशम् भूतेशम् गाङ्गगौतमे ॥१३१॥
अश्वमेधम् भृगुकच्छम् केदारेशम् च पापनुत् ।
कल्कलेशम् च जालेशम् शालग्रामम् वराहकम् ॥१३२॥
चन्द्रहास्यम् तथादित्यम् श्रीपत्याख्यम् च हंसकम् ।

मूलस्थानम् च शूलेशमाश्विनम् चित्रदैवकम् ॥१३३॥
शिखीशम् कोटितीर्थम् च तीर्थम् पैतामहम् परम् ।
तथैव कुकुरीतीर्थम् दशकन्यम् सुवर्णकम् ।
ऋणमोक्षम् भारमूर्त्तिं पुखिलम् मुण्डिडिण्डिमम् ॥१३४॥
आमलेशं कपालेशम् शृङ्गैरण्डीभवं ततः ।
कोटितीर्थम् लोटणेशम् फलस्तुरि ततः परम् ॥१३५॥
कृमिजाङ्गल माहात्म्ये रोहिताश्वकथा ततः ।
धुन्धमारसमाख्यानम् वधोपायस्ततोऽस्य च ॥१३६॥
वधो धुन्धोस्ततः पश्चात्ततश्चित्रवहोद्भवः ।
सद्देभास्या ततश्चण्डी सप्रभावो रतीश्वरः ॥१३७॥
केदारेशो लक्षतीर्थम् ततो विष्णुपदीभवम् ।
मुखारम् च्यवनांधास्यम् ब्रह्मणश्च सरस्ततः ॥१३८॥
चक्राख्यम् ललिताख्यानम् तीर्थम् च बहुगोमयम् ।
रुद्रावर्तम् च मार्कण्डम् तीर्थम् पाप प्रणाशनम् ॥१३९॥
श्रवणेशम् शुद्धपुटम् देवान्धप्रेत तीर्थकम् ।
जिह्वोदतीर्थे सम्भूतिः शिवोद्भेदम् फलस्तुतिः ॥१४०॥
एष खण्डोह्यवन्त्याख्यः शृण्वतां पाप नाशनः ।
अतः परम् नागराख्याः खण्डः षष्ठोऽभिधीयते ॥१४१॥
लिङ्गोत्पत्तिसमाख्यानम् हरिश्चन्द्र कथा शुभा ।
विश्वामित्रस्य माहात्म्यम् त्रिशङ्कुस्वर्गतिस्तथा ॥१४२॥
हाटकेश्वरमाहात्म्ये वृत्रासुर वधस्तथा ।
नागविलम् शङ्खतीर्थमचलेश्वर वर्णनम् ॥१४३॥
चमत्कारपुराख्यानम् चमत्कारकरम् परम् ।
गयशीर्षम् वालशाख्यम् वालमण्डम् मृगाह्वयम् ॥१४४॥
विष्णुपादम् च गोकर्णम् युगरूपम् समाश्रयः ।
सिद्धेश्वरम् नागसरः सप्तार्षेयमगस्त्यकम् ॥१४५॥
भ्रूणगर्तम् नलेशम् च भैष्मम् वैदुरमर्ककम् ।
शार्मिष्ठम् सोमनाथम् च दौर्गमानर्तकेश्वरम् ॥१४६॥
जामदग्न्यवधाख्यानम् नैःक्षत्रियकथानकम् ।
रामह्रदम् नागपुरम् षड्लिङ्गे चैव यज्ञभूः ॥१४७॥
मुण्डीरादित्रिकार्कम् च सतीपरिणयाह्वयम् ।
रुद्रशीषम् च यागेशम् वालखिल्यं च गारुडम् ॥१४८॥
लक्ष्मीशापः सप्तविंशम् सोमप्रासादमेव च ।
अम्बावृद्धम् पाण्डुकाख्यमाग्नेयम् ब्रह्मकुण्डकम् ॥१४९॥
गोमुखम् लोहयष्ठ्याख्यमजापालेश्वरी तथा ।

आख्यानम् दीर्घतपसः ऋष्यशृङ्गकथा ततः ॥११६॥
चित्रसेन कथा पुण्या काशीराजस्य लक्षणम् ।
ततो देवशिलाख्यानम् शवरीतीर्थकान्वितम् ॥११७॥
व्याधाख्यानम् ततः पुण्यम् पुष्करिण्यर्कतीर्थकम् ।
आदित्येश्वर तीर्थम् च शक्रतीर्थम् करोटिकम् ॥११८॥
कुमारेशमगस्त्येशमानन्देशं च मातृजम् ।
लोकेशम् धनदेशम् च मङ्गलेशम् च कामजम् ॥११९॥
नागेशम् चापि गोपारम् गौतमम् शङ्खचूडकम् ।
नारदेशम् नन्दिकेशम् वरुणेश्वरतीर्थकम् ॥१२०॥
दधि स्कान्दादि तीर्थानि हनूमन्तेश्वरम् ततः ।
रामेश्वरादि तीर्थानि सोमेशम् पिङ्गलेश्वरम् ॥१२१॥
ऋणमोक्षम् कपिलेशम् पूतिकेशम् जलेशयम् ।
चण्डार्कम् यमतीर्थम् च कह्लोडीशम् वनादिकम् ॥१२२॥
नारायणम् च कोटीशम् व्यासतीर्थम् प्रभासकम् ।
नागेशसङ्कर्षणकम् प्रश्रयेश्वरतीर्थकम् ॥१२३॥
एरण्डी सङ्गमम् पुण्यम् सुवर्णशिलतीर्थकम् ।
करञ्जम् कामदम् तीर्थम् भाण्डीरो रोहिणीभवम् ॥१२४॥
चक्रतीर्थम् धौतपापम् स्कान्दमाङ्गिरसाह्वयम् ।
कोटितीर्थभयोन्याख्यमङ्गाराख्यम् त्रिलोचनम् ॥१२५॥
इन्द्रेशम् कम्बुकेशं च सोमेशम् कोहनाशकम् ।
नार्मदम् चार्कमाग्नेयम् भार्गवेश्वरमुत्तमम् ॥१२६॥
ब्राह्मम् दैवम् च मार्गेशमादिवाराहकेश्वरम् ।
रामेशमथ सिद्धेशमाहिल्यम् कण्टकेश्वरम् ॥१२७॥
शक्रम् सौम्यम् च नादेशम् तोयेशम् रुक्मणीभवम् ।
योजनेशम् वराहेशम् द्वादशी शिव तीर्थकम् ॥१२८॥
सिद्धेशम् मङ्गलेशम् च लिङ्गवाराहतीर्थकम् ।
कुण्डेशम् श्वेतवाराहम् गर्भावेशम् रवीश्वरम् ॥१२९॥
शुक्लादीनि च तीर्थानि हुङ्कारस्वामितीर्थकम् ।
सङ्गमेशम् नारकेशम् मोक्षणम् पञ्चगोपकम् ॥१३०॥
नागशावम् च सिद्धेशम् मार्कण्डाक्रूर तीर्थके ।
कोमादशूलारोपाख्ये माण्डव्यम् गोपकेश्वरम् ।
कपिलेशम् पिङ्गलेशम् भूतेशम् गाङ्गगौतमे ॥१३१॥
अश्वमेधम् भृगुकच्छम् केदारेशम् च पापनुत् ।
कल्कलेशम् च जालेशम् शालग्रामम् वराहकम् ॥१३२॥
चन्द्रहास्यम् तथादित्यम् श्रीपत्याख्यम् च हंसकम् ।

मूलस्थानम् च शूलेशमाश्विनम् चित्रदेवकम् ॥१३३॥
शिखीशम् कोटितीर्थम् च तीर्थम् पैतामहम् परम् ।
तथैव कुर्कुरीतीर्थम् दशकन्यम् सुवर्णकम् ।
ऋणमोक्षम् भारमूर्त्ति पुखिलम् मुण्डिडिण्डिमम् ॥१३४॥
आमलेशं कपालेशम् शृङ्गेरण्डीभवं ततः ।
कोटितीर्थम् लोटणेशम् फलस्तुरि ततः परम् ॥१३५॥
कृमिजाङ्गल माहात्म्ये रोहिताश्वकथा ततः ।
धुन्धमारसमाख्यानम् वधोपायस्ततोऽस्य च ॥१३६॥
वधो धुन्धोस्ततः पश्चात्ततश्चित्रवहोद्भवः ।
सहेभास्या ततश्चण्डी सप्रभावो रतीश्वरः ॥१३७॥
केदारेशो लक्षतीर्थम् ततो विष्णुपदीभवम् ।
मुखारम् च्यवनांधास्यम् ब्रह्मणश्च सरस्ततः ॥१३८॥
चक्राख्यम् ललिताख्यानम् तीर्थम् च वहुगोमयम् ।
रुद्रावर्तम् च मार्कण्डम् तीर्थम् पाप प्रणाशनम् ॥१३९॥
श्रवणेशम् शुद्धपुटम् देवान्धप्रेत तीर्थकम् ।
जिह्वोदतीर्थ सम्भूतिः शिवोद्भेदम् फलस्तुतिः ॥१४०॥
एप खण्डोह्यवन्त्याख्यः शृण्वतां पाप नाशनः ।
अतः परम् नागराख्याः खण्डः षष्ठोऽभिधीयते ॥१४१॥
लिङ्गोत्पत्तिसमाख्यानम् हरिश्चन्द्र कथा शुभा ।
विश्वामित्रस्य माहात्म्यम् त्रिशङ्कुस्वर्गतिस्तथा ॥१४२॥
हाटकेश्वरमाहात्म्ये वृत्रासुर वधस्तथा ।
नागविलम् शङ्खतीर्थमचलेश्वर वर्णनम् ॥१४३॥
चमत्कारपुराख्यानम् चमत्कारकरम् परम् ।
गवशीर्षम् वालशाख्यम् वालमण्डम् मृगाह्वयम् ॥१४४॥
विष्णुपादम् च गोकर्णम् युगरूपम् समाश्रयः ।
सिद्धेश्वरम् नागसरः सप्तार्षेयमगस्त्यकम् ॥१४५॥
भ्रूणगर्तम् नलेशम् च भैष्मम् वैदुरमर्ककम् ।
शार्मिष्ठम् सोमनाथम् च दौर्गमानर्तकेश्वरम् ॥१४६॥
जामदग्न्यवधाख्यानम् नैःक्षत्रियकथानकम् ।
रामह्रदम् नागपुरम् षड्लिङ्गे चैव यज्ञभूः ॥१४७॥
मुण्डीरादित्रिकार्कम् च सतीपरिणयाह्वयम् ।
रुद्रशीषम् च यागेशम् वालखिल्यं च गारुडम् ॥१४८॥
लक्ष्मीशापः सप्तविंशम् सोमप्रासादमेव च ।
अम्वावृद्धम् पाण्डुकाख्यमाग्नेयम् ब्रह्मकुण्डकम् ॥१४९॥
गोमुखम् लोहयष्ट्याख्यमजापालेश्वरी तथा ।

शानैश्चरम् राजवापी रामेशो लक्ष्मणेश्वरः ॥१५०॥
कुशेशाख्यम् लवेशाख्यम् लिङ्गम् सर्वोत्तमोत्तमम् ।
अष्टषष्ठिसमाख्यानम् दमयन्त्यास्त्रिजातकम् ॥१५१॥
ततोम्बारेवती वापी भक्तिका तीर्थसम्भवः ।
क्षेमङ्करी च केदारम् शुक्लतीर्थं मुखारकम् ॥१५२॥
सत्यसन्धेश्वराख्यानम् तथा कर्णोत्पलाकथा ।
अटेश्वरम् याज्ञवल्क्यम् गौर्यम् गाणेशमेव च ॥१५३॥
ततो वास्तुपदाख्यानम् जागृह कथानकम् ।
सौभाग्यान्धश्च शूलेशम् धर्मराजकथानकम् ॥१५४॥
मिष्टान्नदेश्वराख्यानम् गाणपत्यत्रयम् ततः ।
जाबालिचरितम् चैव मकरेश कथा ततः ॥१५५॥
कालेश्वर्यन्धकाख्यानम् कुण्डमाप्सरसम् तथा ।
पुष्पादित्यम् रोहिताश्वम् नागरोत्पत्ति कीर्त्तनम् ॥१५६॥
भार्गवम् चरितम् चैव वैश्वामित्रम् ततः परम् ।
सारस्वतम् पैप्पलादम् कंसारीशम् च पिण्डकम् ॥१५७॥
ब्रह्मणो यक्षचरितम् सावित्र्याख्यानसंयुतम् ।
रैवतम् भर्तृयाज्ञाख्यम् मुख्यतीर्थनिरीक्षणम् ॥१५८॥
कौरवम् हाटकेशाख्यम् प्रभासम् क्षेत्रकत्रयम् ।
पौष्करम् नैमिषम् धार्ममरण्यत्रितयम् स्मृतम् ॥१५९॥
वाराणसी द्वारकाख्यम् मन्वाख्येति पुरीत्रयम् ।
वृन्दावनम् खाण्डवाख्यम् द्वैताख्यम् च वनत्रयम् ॥१६०॥
कल्पः शालस्तथा नन्दिग्राम त्रयमनुत्तमम् ।
असि शुक्लपितृसंज्ञम् तीर्थत्रयमुदाहृतम् ॥१६१॥
त्र्यर्बुदो रैवतश्चैव पर्वतत्रयमुत्तमम् ।
नदीनां त्रितयम् गङ्गा नर्मदा च सरस्वती ॥१६२॥
सार्धकोटित्रयफलमेकम् चैषुप्रकीर्त्तितम् ।
कपिकाशङ्खतीर्थम् चामरकम् बालमण्डनम् ॥१६३॥
हाटकेशक्षेत्रफलप्रदम् प्रोक्तम् चतुष्टयम् ।
श्राद्धादित्यम् श्राद्धकल्पम् यौधिष्ठिरमथान्धकम् ॥१६४॥
जलशायि चतुर्मासमशून्यशयनव्रतम् ।
मङ्कणेशम् शिवरात्रिस्तुलापुरुषदानकम् ॥१६५॥
पृथ्वीदानम् वानकेशम् कपालमोचनेश्वरम् ।
पाप पिण्डम् मासलैङ्गम् युगमानादिकीर्तनम् ॥१६६॥
निम्बेशं शाकंभर्याख्य रुद्रैकादशकीर्तनम् ।
दानमाहात्म्यकथनम् द्वादशादित्यकीर्तनम् ॥१६७॥

इत्येष नागरः खण्डः प्राभासाख्योऽधुनोच्यते ।
सोमेशो यत्र विश्वेशोऽर्क स्थलम् पुण्यदम् महत् ॥१६८॥
सिद्धेश्वरादिकाख्यानम् पृथगत्र प्रकीर्त्तितम् ।
अग्नितीर्थम् कपर्दीशम् केदारेशम् गतिप्रदम् ॥१६९॥
भीमभैरवचण्डीश भास्कराङ्गारकेश्वराः ।
बुधेज्य भृगु सौरागुशिखीशा हरविग्रहाः ॥१७०॥
सिद्धेश्वराद्याः पञ्चान्ये रुद्रास्तत्र व्यवस्थिताः ।
वरारोहो ह्यजाफला मङ्गलाललितेश्वरी ॥१७१॥
लक्ष्मीशो वाडवेशश्चोर्वीशः कामेश्वरस्तथा ।
गौरीशवरुणेशाख्यम् दुर्वासेशम् गणेश्वरम् ॥१७२॥
कुमारेशम् चण्डकल्पम् लकुलीश्वर संज्ञकम् ।
ततः प्रोक्ताऽद्य कोटीशवालब्रह्मादि सत्कथा ॥१७३॥
नरकेश संवर्तेश निधीश्वर कथा ततः ।
वलभद्रेश्वरस्याथ गङ्गाया गणपस्य च ॥१७४॥
जाम्बवत्याख्य सरितः पाण्डुकूपस्य सत्कथा ।
शतमेघ लक्षमेघ कोटिमेघ कथा तथा ॥१७५॥
दुर्वासार्क घटस्थान हिरण्या सङ्गमोत्कथा ।
नगरार्कस्य कृष्णस्य सङ्कर्षण समुद्रयोः ॥१७६॥
कुमार्याः क्षेत्रपालस्य ब्रह्मेशस्य कथा पृथक् ।
पिङ्गला सङ्गमेशस्य शङ्करार्क घटेशयोः ॥१७७॥
ऋषि तीर्थस्य मन्दार्कत्रितकूपस्य कीर्तनम् ।
शशापानस्य पर्णार्कन्यंकुमत्योः कथाऽद्भुता ॥१७८॥
वाराहस्वामि वृत्तान्तम् छायालिङ्गाख्य गुल्फयोः ।
कथा कनकनन्दायाः कुन्ती गङ्गेशयोस्तथा ॥१७९॥
चमसोद्भेदविदुर त्रिलोकेश कथा ततः ।
मङ्कणेश त्रैपुरेश षण्डतीर्थ कथास्तथा ॥१८०॥
सूर्य प्राचीत्रीक्षणयोरुमानाथ कथा तथा ।
भूद्वार शूलस्थलयोश्च्यवमार्केशयोस्तथा ॥१८१॥
अजपालेश वालार्क कुवेरस्थलजा कथा ।
ऋषि तोया कथा पुण्या सङ्गालेश्वरकीर्तनम् ॥१८२॥
नारदादित्यकथनम् नारायण निरूपणम् ।
तप्तकुण्डस्य माहात्म्यम् मूलचण्डीशवर्णनम् ॥१८३॥
चतुर्वक्त्रमणाध्यक्षकलम्वेश्वरयोस्तथा ।
गोपाल स्वामिवकुलस्वामिनोर्मरुतां कथा ॥१८४॥
क्षेमार्कोन्नत विघ्नेश जलस्वामि कथा ततः ।

कालमेघस्य रुक्मिण्या दुर्वासेश्वर भद्रयोः ॥१८५॥
शङ्खावर्त मोक्षतीर्थ गोष्पदाच्युत सद्मनाम् ।
जालेश्वरस्य हुङ्कारेश्वर चण्डीशयोः कथा ॥१८६॥
आशा पुरस्थ विघ्नेश कलाकुण्ड कथाद्भुता ।
कपिलेशस्य च कथा जरद्गव शिवस्य च ॥१८७॥
नलकर्कोटेश्वरयोर्हाटकेश्वरजा , कथा ।
नारदेश यन्त्रभूषादुर्गकूट गणेशजा ॥१८८॥
सुपर्णैलाख्यभैरव्योर्भल्लतीर्थ भवा कथा ।
कीर्तनं कर्दमालस्य गुप्तसोमेश्वरस्य च ॥१८९॥
बहुस्वर्णेश श्रृङ्गेश कोटीश्वर कथा ततः ।
मार्कण्डेश्वर कोटीश दामोदर गृहोत्कथा ॥१९०॥
स्वर्णरेखा ब्रह्मकुण्डम् कुन्तीभीमेश्वरौ तथा ।
मृगीकुण्डं च सर्वस्वम् क्षेत्रेवस्त्रापथे स्मृतम् ॥१९१॥
दुर्गाभल्लेश गङ्गेश रैवतानां कथाऽद्भुता ।
ततोऽर्बुदेश्वर कथा अचलेश्वर कीर्तनम् ॥१९२॥
नागतीर्थस्य च कथा वसिष्ठाश्रम वर्णनम् ।
भद्रकर्णस्य माहात्म्यम् त्रिनेत्रस्य ततः परम् ॥१९३॥
केदारस्य च माहात्म्यम् तीर्थागमन कीर्तनम् ।
कोटीश्वर रूपतीर्थ हृषीकेश कथास्ततः ॥१९४॥
सिद्धेश शुक्रेश्वरयोर्मणिकर्णीश कीर्त्तनम् ।
पङ्गुतीर्थ यमतीर्थ वाराहतीर्थ वर्णनम् ॥१९५॥
चन्द्रप्रभास पिण्डोद श्रीमाता शुक्लतीर्थजम् ।
कात्यायन्याश्च माहात्म्यं ततः पिण्डारकस्य च ॥१९६॥
ततः कनखलस्याथ चक्र मानुष तीर्थयोः ।
कपिलाग्नितीर्थ कथा तथा रक्तानुबन्धजा ॥१९७॥
गणेशपार्थेश्वरयोर्यात्रायामुज्ज्वलस्य च ।
चण्डीस्थान नागोद्भव शिवकुण्ड महेशजाः ॥१९८॥
कामेश्वरस्य मार्कण्डेयोत्पत्तेश्च कथा ततः ।
उद्दालकेश सिद्धेश गत तीर्थ कथाः पृथक् ॥१९९॥
श्री देवमातोत्पत्तिश्च व्यास गौतम तीर्थयोः ।
कुल सन्तारमाहात्म्यम् रामकोट्याह्वतीर्थयोः ॥२००॥
चन्द्रोद्भेदेशानश्रृङ्ग ब्रह्मस्थानोद्भवोद्भुतः ।
त्रिपुष्कर रुद्रह्रद गुहेश्वर कथा शुभा ॥२०१॥
अविमुक्तस्य माहात्म्यमुमामाहेश्वरस्य च ।
महौजसः प्रभावश्च जम्बुतीर्थस्य वर्णनम् ॥२०२॥

गङ्गाधर मिश्रकयोः कथा चाथ फलस्तुतिः ।
द्वारकायाश्च माहात्म्ये चन्द्रशर्मे कथानकम् ॥२०३॥
जागराद्यर्चनाद्याख्या व्रतमेकादशी भवम् ।
महाद्वादशिकाख्यानम् प्रह्लादर्षि समागमः ॥२०४॥
दुर्वासस उपाख्यानम् यात्रोपक्रमकीर्तनम् ।
गोमत्युत्पत्ति कथनम् तस्यां स्नानादिजम् फलम् ॥२०५॥
चक्रतीर्थस्य माहात्म्यम् गोमत्युदधिसङ्गमः ।
सनकादिह्रदाख्यानम् नृगतीर्थं कथा ततः ॥२०६॥
गोप्रचार कथा पुण्या गोपीनां द्वारकागमः ।
गोपीसरः समाख्यानं ब्रह्मतीर्थादिकीर्त्तनम् ॥२०७॥
पञ्चनद्यागमाख्यानम् नानाख्यान समन्वितम् ।
शिवलिङ्ग गदातीर्थं कृष्णपूजादि कीर्तनम् ॥२०८॥
त्रिविक्रमस्य मूर्त्याख्या दुर्वासः कृष्ण सङ्कथा ।
कुशदैत्यवधोच्चार विशेषार्चनजं फलम् ॥२०९॥
गोमत्यां द्वारकायां च तीर्थागमन कीर्तनम् ।
कृष्णमन्दिर संप्रेक्षा द्वारवत्यभिषेचनम् ॥२१०॥
तत्र तीर्थावास कथा द्वारका पुण्य कीर्तनम् ।
इत्येष सप्तमः प्रोक्तः खण्डः प्राभासिको द्विजाः ॥२११॥
स्कान्दे सर्वोत्तरकथे शिवमाहात्म्यवर्णने ।
लिखित्वैतत्तु यो दद्याद्धेमशूल समन्वितम् ॥२१२॥
माघ्यां सत्कृत्य विप्राय स शैवे मोदते पदे ॥२१३॥

इति श्री नारदीय पुराणे पूर्व० वृहदुपाख्याने चतुर्थपादे स्कान्द महापुराणानुक्रमणी-
म् नाम चतुराधिकशततमोऽध्यायः ।

नारदपुराणकी सूची अत्यन्त प्राचीन है । परन्तु स्वयम् प्रभासखण्डमें जो कि नारद-
ोक्त सातवाँ खण्ड है, लिखा है कि—"तस्यादिमो विभागस्तु स्कन्दमाहात्म्यसंयुतः ।
ार समाख्यातो द्वितीयो वैष्णवस्य च । तृतीयो ब्रह्मणः प्रोक्तः सृष्टिसंक्षेप-सूचकः । काशी-
ास्य संयुक्तश्चतुर्थपरिपठ्यते । रेवायां पञ्चमो भाग उज्जयिन्याः प्रकीर्त्तितः । षष्ठः कल्पार्चनं
तापी माहात्म्य-सूचकः । सप्तमोऽथ विभागोऽयं स्मृतः प्राभासिको द्विजाः । सर्वे द्वादश
त्रं विभागाः साधिकाःस्मृताः ॥"

इसमें पाचवाँ रेवाखण्ड गिनाया है और रेवाखण्ड नारदीय सूचीमें अवन्ति-खण्डके
ति है । विश्वकोशकारने अपने पासकी लिखी पोथियोंके अनुसार इसके और ही विभाग
ए हैं । प्रथम सनत्कुमार-संहिता, द्वितीय सूत-संहिता, तृतीय शङ्कर-संहिता, जिसके
ति सात काण्ड और गिनाये हैं। फिर इसके वाद सौर-संहिता भी गिनायी है । उन्होंने
है कि नैपालमें एक वहुत पुरानी पोथी मिली है, जिसमें पहिला खण्ड अम्बिकाखण्ड

है और उसके बाद सात खण्ड नारदीय सूचीके ही दिये हुए हैं। इस तरह स्कन्दपुराणके एक लाखसे अधिक श्लोक हो जाते हैं।

स्कन्दपुराण नारदादि-पुराणोंके अनुसार विशेष रूपसे शैव पुराण है। परन्तु जान पड़ता है कि अन्यान्य सम्प्रदायवालोंका भी इसमें हाथ लगा है। इस महापुराणमें भारतवर्षके असंख्य तीर्थोंका वर्णन पाया जाता है। एक प्रकारसे इसमें तीर्थोंके बहाने सारे प्राचीन भारतवर्षका बहुत उत्तम भौगोलिक वर्णन है। और उनके सम्बन्धमें अनेक तरहकी अद्भुत कथाएँ दी हुई हैं। अनेक कथाएँ भिन्न रूपोंमें कई बार पायी जाती हैं, जिससे अनुमान होता है कि यदि पुनरुक्तियाँ हटा दी जायँ तो श्लोक-संख्या इक्यासी हजारसे आगे न बढ़ेगी। भारतके अनेक प्रान्तोंमें सत्यनारायण व्रत-कथा-माहात्म्यका बहुत प्रचार है। हर पोथीके अन्तमें इति श्री स्कन्दपुराणे रेवाखण्डे इत्यादि दिया हुआ है। परन्तु वेङ्कटेश्वरकी जो पोथी हमारे सामने है, उसके रेवाखण्डमें हमको यह अंश नहीं मिला। परन्तु स्कन्दपुराणके इतने विशालकाय बहुपाठ और बहूक्तिमय ग्रन्थ होनेसे यह अनुमान होता है कि सत्यनारायण-व्रत-कथा-माहात्म्यकी तरहसे सैकड़ों फुटकर माहात्म्य आदिकी पोथियाँ जो स्कन्दपुराणसे उद्धृत कही जाती हैं और बाजारमें बिकती हैं, वास्तविक स्कन्दपुराणकी भी हो सकती हैं और बाहरसे मिलायी भी हो सकती हैं। विश्वकोशकारकी दी हुई लम्बी सूचीसे इस प्रकारके अनेक पोथियोंके नाम हम देते हैं—

सह्याद्रि-खण्ड, अर्बुदाचल-खण्ड, सनकादि-खण्ड, काश्मीर-खण्ड, कोशलखण्ड, गणेश-खण्ड, उत्तर-खण्ड, पुष्कर-खण्ड, बदरिका-खण्ड, भीम-खण्ड, भैरव-खण्ड, भूमि-खण्ड, मलयाचल-खण्ड, मानस-खण्ड, कालिका-खण्ड, श्रीमाल-खण्ड, पर्वत-खण्ड, सेतु-खण्ड, हालास्य-खण्ड, हिमवत-खण्ड, महाकाल-खण्ड, अगस्त्य-संहिता, ईशान-संहिता, उमा-संहिता, महा-शिव-संहिता, प्रह्लाद-संहिता इत्यादि। अदुःख नवमी-कथा, अधिमास-माहात्म्य, अयोध्या-माहात्म्य, अरुन्धती-व्रत-कथा, अर्द्धोदय-व्रत-कथा, आदिकैलाश, आलमपुरी, आषाढ़, इन्द्रा-वतार-क्षेत्र, इषुपात-क्षेत्र, उत्कण्ठ-एकादशी, ओङ्कारेश्वर, कदम्बवन, कनकाद्रि, कमलालय, कलशक्षेत्र, कात्यायिनी, कान्तेश्वर, कालेश्वर, कुमारक्षेत्र, कुरकापुरी, कृष्णनाम, कैवल्यरक्ष, केशवक्षेत्र, कोटीश्वरी व्रत, गणेशगरलपुर, गोकर्ण, गो, चन्द्रपाल, परमेश्वरी, चातुर्मास्य, चिद-म्बर, जगन्नाथ, तञ्जापुरी, जयन्ती, विष्णुस्थली, तपस्तीर्थ, तल्पगिरि, तिरुनल्वल्ली, तुङ्गभद्रा, तुङ्गशैल, तुलजा, तृशिरगिरि, त्रिशूलपुरी, नन्दिक्षेत्रादि, नन्दीश्वर, पञ्चपार्वती, पराशरक्षेत्र, पाण्डुरङ्ग, पुराणश्रवण, पावकाचल, वेरलस्थल, प्रबोधिनी, प्रयाणपुरी, वपुलारण्य, बदरिका-वन, विल्ववन, भागवत, भीमेश्वर, भैरव, मथुरा, मन्दाकिनी, धराचल, मल्लारि, महालक्ष्मी, मायाक्षेत्र, मार्गशीर्ष, मौनी, युद्धपुरी, रामशिला, रामायण, रुद्रकोटि, रुद्रगया, शिवलिङ्ग, वट-तीर्थ, वरलक्ष्मी, वह्नेश्वर, वनवासी, वानरवीर, विनायक, विरजा, वृद्धगिरि, वेदपाद, शिव, वैशाख, विल्वारण्य, सम्भलग्राम, शम्भुगिरि, शम्भुमहादेवक्षेत्र, शालग्राम, शीतला, शुद्ध-पुरी, श्रृङ्गवेरपुर, शूलटङ्केश्वर, श्रीमाल, श्रीमुक्ति, श्रीशैल, श्रीस्थल, श्रृङ्गाचल, सिद्धिविनायक, सुरक्षण्यक्षेत्र, सुमितक्षेत्र, स्वयम्भुवक्षेत्र, हेमेश्वर, हृदालय-माहात्म्य इत्यादि असंख्य-माहात्म्य प्रचलित हैं। दक्षिण देशके समस्त मन्दिरों और तीर्थोंके माहात्म्य स्कन्दपुराणके ही अन्तर्गत

समझे जाते हैं। स्कन्द भगवान् सुब्रह्मण्यके नामसे दक्षिणके सभी प्रान्तोंमें पूजे जाते हैं। सत्यनारायणके भी अनेक मन्दिर हैं। सुतरां स्कन्दपुराणका दक्षिण देशमें बहुत बड़ा प्रचार है। और सम्भव है कि आन्ध्र या द्रविड लिपियोंमें सन्देह-रहित शुद्ध पाठवाला स्कन्दपुराण उपलब्ध हो।

अट्ठतीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय पुराण

क्रमानुसार इस पुराणको नारदीय पुराणके बाद ही वर्णन करना चाहिए था। परन्तु हम तो उपलब्धि-क्रमसे दे रहे हैं। अतः मार्कण्डेय पुराणकी वारी अब आयी है। यह पुराण जैसा पाया जाता है उसी रूपमें निर्विवाद रूपसे मौलिक समझा जाता है। हमारे सामने वेङ्कटेश्वरका छपा मार्कण्डेय पुराण है। उसकी विषय-सूची इस प्रकार है—

१—जैमिनिके महाभारत विषयक प्रश्न और मार्कण्डेयका वपु अप्सरा शाप कथन।

२—चटक चतुष्टयकी उत्पत्ति।

३—शमीक मुनिके समीप पक्षियोंका निज शाप-वृत्तान्त कहकर विन्ध्याञ्चलमें जाना।

४—चटक गणोंके समीप जैमिनिके पूर्वोक्त चार प्रश्न और पक्षियोंके द्वारा भगवान-का चतुर्व्यूहावतार और प्रथम प्रश्नोत्तर कथन।

५—द्रौपदीके पांच पति होनेका कारण और इन्द्रविक्रिया कथन।

६—बलदेवजीकी ब्रह्महत्या-जनित-पाप-प्रक्षा-लनार्थ तीर्थयात्राका वर्णन।

७—द्रौपदीके पांच पुत्र अविवाहित अवस्था-में मृत्युको प्राप्त हुए, इसका कारण वर्णन।

८—हरिश्चन्द्रका उपाख्यान।

९—आडिम्बक युद्ध।

१०—प्राणियोंके जन्मादि विषयमें प्रश्न और पिता-पुत्र-संवाद वर्णनद्वारा जीव-विपत्ति-कथन।

११—प्राणियोंकी उत्पत्तिका क्रम।

१२—नरक विवरण।

१३—यमदूतसे विदेहराजकी वार्ता।

१४—कर्मफल-जनित नरकयातना वर्णन।

१५—कर्मविपाक और प्राणियोंका नरकसे छुटकारा।

१६—पतिव्रता-माहात्म्य और अनसूयाको वर लाभ। चन्द्र, दत्तात्रेय और दुर्वासाकी उत्पत्ति। कार्त्तवीर्य अर्जुनके प्रति गर्ग-मुनिका उपदेश और दत्तात्रेय वृत्तान्त वर्णन।

१७—कार्त्तवीर्यके प्रति दत्तात्रेयका अनुग्रह।

१८—कुवलयाश्वको कुवलय नामक अश्वका मिलना।

१९—कुवलयाश्वका पातालगमन, मदालसा परिणय और सेना-सहित पातालकेतु दैत्यका वध।

२०—मदालसा वियोग।

२१—तपस्याके प्रभावसे अश्वतरको मदालसा-की प्राप्ति और कुवलयाश्वका नागराजके घर जाना।

२२—कुवलयाश्वको पुनर्वार मदालसा प्राप्ति।

२३—मदालसाका पुत्र उल्लापन।

२४—राजधर्म कथन।

२५—वर्णाश्रम-धर्म कीर्तन।

२६—गार्हस्थ्यधर्म-निरूपण।

२७—नित्य नैमित्तिकादि श्राद्ध-कल्प।

२८—पार्वण श्राद्ध-कल्प।

२९—श्राद्धमें प्रशस्ताप्रशस्त-निरूपण।

'मत्स्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, नारदीयपुराण, श्रीमद्भागवतपुराण आदिके अनुसार मार्कण्डेयपुराणमें नौ हजार श्लोक होने चाहिए परन्तु उपलब्ध-पोथियोंमें छः हजार नौ सौ श्लोक पाये जाते हैं। श्लोकोंकी गिनती देखते हुए जान पड़ता है कि दो हजार एकसौ श्लोक इसमें नहीं हैं। नारदीयपुराणमें जो सूची मार्कण्डेयपुराणके वर्णित विषयोंकी दी हुई है उसमें नरिष्यन्त-चरितके बाद अर्थात् १३१ वें अध्यायके अनन्तर इक्ष्वाकुचरित, तुलसीचरित, रामचन्द्रकी कथा, कुशवंश, सोमवंश, पुररवा, नहुष और ययातिके चरित, यदुवंश और श्रीकृष्ण भगवान्‌की बाल्य और माथुरलीला, द्वारकाचरित, साख्य-कथा, प्रपञ्चसत्व और

मार्कण्डेय-चरित भी दिया हुआ है। प्रस्तुत-ग्रन्थमें केवल एकसौ चालीस अध्याय हैं। यदि मान लिया जाय कि इन छूटी हुई कथाओंके पन्द्रह अध्याय और होंगे तो अध्यायोंकी संख्या एकसौ उनचास हो जाती है। अनुमान यही कहता है कि मार्कण्डेयपुराणकी जो पोथी उपलब्ध है वह सम्पूर्ण नहीं है। इस पुराणमें कोई विशेष साम्प्रदायिक भाव देखनेमें नहीं आता। जान पड़ता है कि बौद्ध लोग भी इस पुराणका आदर करते थे, क्योंकि विश्वकोशकारने लिखा है कि नैपालमें किसी बौद्धाचार्यके हाथकी लिखी आठसौ वर्ष पहिलेकी सप्तशती पायी गयी है। इस पुराणका मुख्य अंश सप्तशती चण्डी ही है, जिसका हिन्दू मात्रके घरमें पाठ होता है। इस सप्तशतीका अंश अठहत्तरवें अध्यायसे लेकर नब्बे अध्यायतक है। मार्कण्डेय-पुराणका यही अंश अलग प्रकाशित हुआ पाया जाता है।

उन्तालीसवाँ अध्याय

वामनपुराण

वामनपुराणकी विषय-सूची इस प्रकार है—

१—हरललित।
२—नरोत्पत्ति-प्रलय-कथन।
३—विष्णु और महादेवजीका संवाद।
४—विष्णुजीका वीरभद्रके साथ युद्ध।
५—शिवजीका कालस्वरूप-कथन।
६—कामदाह।
७—प्रह्लाद-युद्ध।
८—प्रह्लाद-वरदान।
९—देवासुर-युद्ध।
१०—अन्धक-विजय।
११—पुष्करद्वीप-वर्णन।
१२—कर्मविपाक।
१३—भुवनकोश-वर्णन।
१४—सुकेश्यनुशासन।
१५—सुकेशी-चरित्र और लोलार्क-जनन।
१६—अशून्यशयन द्वितीया कालाष्टमी-व्रत।
१७—महिषासुरकी उत्पत्ति।
१८—देवीजीका माहात्म्य-वर्णन।
१९— ” ”
२०—महिषासुर वध।
२१—पार्वतीजीकी उत्पत्ति।
२२—सरोमाहात्म्य।
२३—राजा बलिका वंश और राज्यका वर्णन।
२४—राजा बलिसे परास्त हो सम्पूर्ण देवताओंका कश्यपजीके शरणमें जाना और कश्यपजीकी आज्ञासे पुनः ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीके शरणमें जाना।
२५—कश्यपादि ऋषियोंका क्षीरसागरके प्रति जाना।
२६—कश्यपकृत भगवत्स्तुति।
२७—अदितिकृत भगवत्स्तुति।
२८—अदितिको वरदान देना।
२९—प्रह्लादकृत बलिनिन्दा और शाप देना।
३०—ब्रह्मकृत वामन-स्तुति।
३१—वामन-बलि-चरित्र।
३२—सरस्वती-स्तोत्र।
३३—सरस्वती-माहात्म्य।
३४—अनेक तीर्थोंका माहात्म्य-वर्णन।
३५—अनेक तीर्थ और वनका माहात्म्य-वर्णन।
३६—अनेक तीर्थोंका माहात्म्य-वर्णन।
३७— ” ” ”
३८—मङ्कणकृत शिव-स्तुति।
३९—औशनस आदि तीर्थोंका माहात्म्य-वर्णन।
४०—अरुणा और सरस्वतीके सङ्गमका माहात्म्य।
४१—ऋणमोचनादि तीर्थोंका और काम्यकादि वनोंका माहात्म्य।
४२—दुर्गादि तीर्थोंका और स्थाणुवटका माहात्म्य-वर्णन।
४३—सृष्टि-वर्णन और धर्मनिरूपण।
४४—ब्रह्मादिदेवकृत शिव-स्तुति।
४५—स्थाणु लिङ्गका माहात्म्य-वर्णन।
४६—विविध शिवलिङ्ग स्थान-माहात्म्य-वर्णन।
४७—वेनचरित और वेनकृत शिव-स्तुति।
४८—शिवजीका वेनको वरदान देना।
४९—ब्रह्माजीकृत शिव-स्तुति-वर्णन।
५०—कुरुक्षेत्र-माहात्म्य-वर्णन।
५१—भिक्षुकरूपधारी शिवजीका पार्वतीसे संवाद।

५२–पार्वतीजीके साथ महादेवजीका विवाह करानेकी इच्छासे देवताओंकी हिमालयसे प्रार्थना।
५३–गौरी-विवाह।
५४–गणेशजीकी उत्पत्ति।
√५५–चण्डमुण्डका वध।
√५६–शुम्भ निशुम्भका वध।
५७–कार्त्तिकेयकी उत्पत्ति।
५८–महिषासुर और तारकके उपाख्यान क्रौञ्चका भेदन।
५९–अन्धकासुरका पराजय।
६०–मुरदानवका चरित्र।
६१–मुरत्रावध।
६२–देवताओंका विष्णु भगवान्‌के हृदयमें शिवजीका दर्शन करना।
६३–अन्धक और प्रह्लादके संवादमें राजा दण्डका उपाख्यान।
६४–जाबालिको बन्धनसे छुड़ाना।
६५–चित्राङ्गदाका विवाह।
६६–राजा दण्डका भस्म होना।
६७–सदाशिवका दर्शन।
६८–अन्धककी सेनाका पराजय।
६९–जम्भ और कुजम्भका वध।
७०–अन्धककी पराजय और अन्धकको वर देना।
७१–मरुत्‌की उत्पत्ति।
७२– " " "
७३–कालनेमिका वध।
७४–राजा बलिके प्रति प्रह्लादजीका उपदेश।
७५–राजा बलिकी महिमाका वर्णन।
७६–अदितिको वर देना।
७७–प्रह्लादजीका राजा बलिको शिक्षा देना।
७८–धुन्ध दैत्यका पराजय।
७९–पुरूरवाका उपाख्यान।
८०–नक्षत्र पुरुषका व्रत-वर्णन।
८१–जलोद्भवका वध।
८२–श्रीदाम-चरित्रका वर्णन।
८३–प्रह्लादजीकी तीर्थयात्रा वर्णन।
८४– " " "
८५–गजेन्द्रमोक्षण।
८६–सारस्वत-स्तोत्र।
८७–पाप प्रशमन-स्तव।
८८– " " "
८९–वामनजीका जन्म-वर्णन।
९०–वामनजीके विविध स्वस्थान-कथन।
९१–शुक्राचार्य और राजा बलिका-संवाद।
९२–राजा बलिका बन्धन।
९३–वामनजीका प्रकट होना।
९४–भगवत्-प्रशंसा।
९५–पुलस्त्य और नारदजीका संवाद, पुराणकी पूर्त्ति।

नारदपुराणमें जैसी सूची दी हुई है, प्रस्तुत वामनपुराण उससे बिलकुल मिलता जुलता है। इसमें दस हजार श्लोक हैं और पञ्चानबे अध्याय हैं। मत्स्यपुराणमें लिखा है कि—

"त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुखः।
त्रिवर्गमभ्यधात्तच्च वामनं परिकीर्त्तितम्॥
पुराणं दश साहस्रं ख्यातं कल्पानुगम् शिवम्।

अर्थात् जिस पुराणमें चतुर्मुख ब्रह्माने त्रिविक्रम वामनके कथा-प्रसङ्गमें त्रिवर्ग-विषयका कथन किया है और फिर शिवकल्पका वर्णन किया गया है वह दस सहस्र श्लोकोंवाला वामनपुराण है।

प्रस्तुत वामन-पुराणमें नारद और पुलस्त्यका संवाद है। और कहीं यह चर्चा नहीं है कि ब्रह्माने पुलस्त्य-ऋषिसे वामनपुराणकी कथा कही है। मत्स्यपुराणसे इस तरहके विरोधका

सहज ही निराकरण होता, यदि किसी श्लोकमें पुलस्त्यजीने कहा होता कि मैंने वामनपुराणकी जो कथा ब्रह्माजीसे सुनी है वही तुमसे कहता हूँ। बहुत सम्भव है कि जो पोथी हमारे सामने है उसमें इस सम्बन्धके श्लोक छूट गये हों।

नारदपुराणकी सूचीमें इस संवादकी विशेष चर्चा नहीं है। सम्भव है कि इसी प्रकार शिवकल्पादिकी भी कथा छूट गयी हो।

कर्क-चतुर्थी-कथा, कायज्ज्वली व्रत कथा, गङ्गामानसिक स्नान, गङ्गामाहात्म्य, दधि-वामन-स्तोत्र वराह-माहात्म्य, वेङ्कटगिरि-माहात्म्य इत्यादि कई छोटी छोटी पोथियाँ वामन-पुराणान्तर्गत कहलाती हैं।

चालीसवाँ अध्याय

कूर्मपुराण

कूर्मपुराणकी विषयसूची इस प्रकार है—

१—शौनकादि प्रश्नतस्सूतकृत कथा प्रारम्भः। समुद्रमथनोद्भूत-लक्ष्मी-महिमा-वर्णन-प्रसङ्गतो विष्णु-विहितेन्द्रद्युम्न-मोक्ष-वर्णनञ्च।

२—कूर्मरूपिणा भगवता नारदादिभ्यो निजप्रसाद प्रकोपाभ्यां ब्रह्मशिवोत्पत्तिरवर्णि, लक्ष्मीमोहनाय मत्सृष्टौ नियोज्येति ब्रह्मणाऽभ्यर्थितेन विष्णुनाऽसन्मार्गगा एव मोहनीया इत्युक्त्वा तत्र तन्नियोगः, किञ्चित्सृष्टिवर्णनम्, वर्णाश्रमधर्मवर्णनञ्च।

३—नारदप्रश्नतः कूर्म्मकृताश्रमक्रमवर्णनम्।

४—प्राकृत सर्ग वर्णनम्।

५—निमेषादिपरार्द्धान्त कालसङ्ख्या कथनम्, कालस्याऽनादीश्वरत्वोक्तिश्च।

६—नष्ट स्थावर जङ्गमैकार्णवे सलिलान्तः प्रविष्टामवनिमुद्धरतः सनकादिस्तुतस्य वाराहरूपिणो नारायणस्य यथास्थानं धरासंस्थापनम्।

७—सृष्टिवर्णनम्।

८—स्वायम्भुवशतरूपो यज्ञसृष्टि-वर्णनम्।

९—शेषशायिनः सविधमुपागते ब्रह्मणि कृत्स्नं जगन्मयिस्थितमिति परस्परवादेऽन्योऽन्योदरप्रवेशः नाभिनालरन्ध्रेण निःसृतस्य ब्रह्मणः पद्मयोनित्वम्, प्राक्साभिमानाय शिवागमनेन मोहिताय तव जनकोऽहमप्यस्यैव तनुरिति विष्णूक्त्या निर्गर्वस्तुत्या प्रसन्नस्य वरं ब्रह्मणो दत्त्वा शिवस्य स्वधामगमनम्।

१०—मधुकैटभयोर्जितविष्णुकृतपराजयः स्वक्रोधसमुत्पन्नरुद्रकृतसृष्टौ जरामरणरहित प्रजा वीक्ष्याऽन्यविधाः स्रष्टव्या इति ब्रह्मोक्तौ तदस्वीकारे परमात्मबुध्या स्तुतः शिवस्सगणोऽन्तर्दधे।

११—शिवनियोगेन स्वसन्निधिमुपगतायै दक्षकन्या भवेतीशान्यै ब्रह्मणो नियोगात्तत्र तत्प्रादुर्भावः, अथ हिमवतोऽपि।

१२—श्रीकूर्म्मकृत देवी-माहात्म्यम्, तत्पारमेश्वररूपमवलोक्य मेनाहिमवद्भ्यां स्तुतादत्ता शङ्करमुपगतवती पार्वती।

१३—दक्षकन्याख्याति सन्तति वर्णनम्।

१४—स्वायम्भुव-मनुवंश-वर्णनम्, दक्षाय शिवशापः।

१५—अकल्पितशिवांशदक्षाध्वरे विवदमान दधीचस्येशद्रोहि ब्राह्मणेषु शापः, वीरभद्रकृताध्वर विध्वंसोत्तरं पार्वती प्रार्थनया दक्षदेवब्राह्मणादिषु शिवानुग्रहः।

१६—दक्षकन्यावंशकथनोत्तरं हिरण्याक्षहिरण्यकशिपुवधः, न्यग्राहि च शिवेनान्धकः।

१७—वामनो वलिनिगृह्य पुरन्दराय त्रैलोक्यं ददे।

१८—कश्यपवंशानुवर्णनम् ।

१९—ऋषिवंशोऽनुवर्णितः ।

२०—राजवंशवर्णनम्, राज्ञो वसुमनसश्चरितकथनञ्च ।

२१—इक्ष्वाकुवंशवर्णने संक्षेपतो रामचरिताऽभिधानम् ।

२२—पुरूरव आदि चन्द्रवंशीय नृपति-वर्णन-प्रसङ्गे नृपाणां विष्णूपासना प्रधानकत्व-निरूपणम् ।

२३—जयध्वजवंशीय दुर्जयनृपस्य उर्व्वश्यप्सरोनुरक्तिपूर्वकं तदघक्षालनाय वाराणस्यां विश्वेश्वरदर्शनम् ।

२४—संक्षेपतो यदुवंशवर्णनम् ।

२५—भगवतः श्रीकृष्णस्य पुत्राभिकांक्षयोपमन्योराश्रमगमनं तत्र तदुपदेशतः पुत्रार्थं शिवाराधनमल्पकालेन श्रीशिवप्रसादश्च ।

२६—श्रीशङ्करकीर्त्ति-वर्णनपुरस्सरं शिवलिङ्गोत्पत्तिकथनम् ।

२७—श्रीकृष्णात्मजसाम्बादि राजवंशानुकीर्तनम् ।

२८—पार्थाय व्यासदर्शनम् ।

२९—युगवंशानुकीर्तनम् ।

३०,३१—कलिदोषप्रदर्शनपूर्व्वकन्तस्मिन्युगे शिवाराधनतः श्रेयः कथनं वाराणसी-माहात्म्य वर्णनञ्च ।

३२—विशिष्य तत्र लिङ्ग माहात्म्य प्रदर्शनपुरस्सरं वाराणसीमाहात्म्यवर्णनम् ।

३३—शङ्कुकर्ण पिशाचोद्धारवर्णनपूर्वकं वाराणसीमाहात्म्यकथनम् ।

३४—काशीवासादि नानाफल प्रदर्शनम् ।

३५—वाराणसीस्थप्रधानप्रधानतीर्थवर्णनम् ।

३६—प्रयागमाहात्म्यवर्णनम् ।

३७—तत्र तीर्थयात्रा विधिः ।

३८—प्रयागे माघमासि त्रिरात्रादि-वास-फलम् ।

३९—प्रयागवर्णने यमुना माहात्म्यम् ।

४०—भुवनविन्यासवर्णन प्रसङ्गेन स्वायम्भुवमनोर्वंशवर्णनम् ।

४१—ज्योतिः-सन्निवेश-वर्णने भूर्लोकादि मानकथनम् । तत्र भुवः सूर्यादि ग्रहाणां दूरतादि निरूपणम् ।

४२—सूर्यरथमभितः सप्तर्षिप्रभृति देवानां वेदादिस्तुतिभिरोजोवर्द्धनम् ।

४३—भुवनकोश-वर्णनप्रसङ्गे सूर्यप्रभावेण नक्षत्रतारकादिवृद्धिकथनमलातचक्रवद्भवि-मभितश्च प्रवहवायुशक्त्या चन्द्रादि भ्रमणन्तेषां रथादिस्वरूपकथनञ्च ।

४४—भुवादूर्ध्वं महर्लोकादिप्रमाणकथनपूर्वकम् तत्तल्लोकस्थितसनकादि देवता निर्देशः । भूम्यधःस्थितपातालादिवर्णनञ्च ।

४५—भुवनकोशे जम्ब्वादिद्वीपं तत्रन्त्यपर्वतादिवर्णनम् ।

४६—भुवनविन्यासवर्णने मेरोरुपरि ब्रह्मादिस्थिति वर्णनम् ।

इति कूर्म्मपुराणे पूर्व्वार्द्धम् ।

उत्तरार्द्धम्

२५—द्विजातीनां वृत्ति-निरूपणम् ।

२६—व्यासगीतायां दानधर्म-निरूपणम् ।

२७—वानप्रस्थाश्रम-धर्माः

२८—यतिधर्माः ।

२९—यतिधर्मेषु विशेषः ।

३०—प्रायश्चित्तनिरूपणे ब्रह्महत्या प्रायश्चित्तम् ।

३१—न कश्चिन्मदधिक इत्यवलिप्तस्य ब्रह्मणः श्रीशिव (कालभैरव) द्वारा तच्छिरः कृन्तनं । ततस्तद्धत्यानिवारक कपालमोचन तीर्थोत्पत्त्यादि-निरूपणम् ।

३२—सुरापानादि महापातक प्रायश्चित्ताभिधानम् ।

३३—अगम्यागमनावध्यहत्यादि-प्रायश्चित्त-कथनम् ।

३४—स्तेयाभक्ष्यभक्षणापेयपानायाज्ययाजन-नित्यकर्मलोपाद्यनेककर्मप्रायश्चित्त-प्रदर्शनम् । प्रसङ्गात्सीतापातिव्रतञ्च ।

३५—प्रयागादितीर्थ वर्णनम् ।

३६—रुद्रकोटि-तीर्थ-विवरण-पूर्वकत्तदुपाख्यानम् ।

३७—महालय केदारादि तीर्थ-कथनम् ।

३८—कर्म्मवासनासक्त मुनिबोधाय श्रीहरस्य स्त्रीवेषधारि विष्णुना सह दारुवनप्रवेशः ।

३९—छद्मनारी-वेशवद्विष्णु द्वितीय रहस्यमुधायुवमुनिमोहकारिणी तवेयं आर्य्यैस्त्यधिक्षिप्तस्य तत एव कृतस्वलिङ्गस्यैनोभीत्मुनीनामत्युग्र तपश्चर्याचरणम् ।

४०—नर्मदा-माहात्म्यम् ।

४१—नर्मदातीरस्थ शिवलिङ्ग-महिमा ।

४२—नर्म्मदा-माहात्म्ये भृगुतीर्थ-वर्णनम् ।

४३—भृगुतीर्थ वर्णनावसरे जप्येश्वर महिमा ।

४४—पञ्चनदादि-तीर्थ-माहात्म्यम् ।

४५—कूर्म्मरूपिणो भगवतः प्रति सञ्चर-वर्णनम् ।

४६—प्राकृत प्रतिसर्ग वर्णनोत्तरं संक्षेपतः सम्पूर्ण कथोक्तिः, कूर्मपुराण फलस्तुतिश्च ।

इति श्री कूर्ममहापुराणविषयाऽनुक्रमणिका समाप्ता ।

नारदपुराण आदि प्रायः सभी पुराणोंमें जहाँ कूर्मपुराणकी चर्चा आयी है बराबर सत्रह हजार श्लोक बताये गये हैं । परन्तु प्रचलित ग्रन्थोंमें केवल छः हजारके लगभग श्लोक पाये जाते हैं । नारदपुराणमें जो विषय-सूची दी हुई है उसकी आधीसे कम ही सूची छपी पुस्तकोंमें पायी जाती है । ऐसा जान पड़ता है कि कूर्मपुराणके कुछ अंश तन्त्र-ग्रन्थोंमें मिला दिये गये हैं, क्योंकि नारदपुराणोक्त सूचीके छूटे विषय डामर, यामल आदि तन्त्रोंमें पाये जाते हैं ।

इकतालीसवाँ अध्याय

मत्स्यपुराण

मत्स्यपुराणकी विषयसूची इस प्रकार है—

१—मङ्गलात्मक श्लोक जगत्की रचनाका हेतु और मत्स्यावतार धारण करनेका कारण है।

२—प्रलयके होनेका कालपूर्वक वर्णन है।

३—ब्रह्माजीके चार मुख हो जानेका कारण।

४—अपनी महारूपवाली पुत्रीपर ब्रह्माजीके आसक्त होनेके दोषका परिहार।

५—देव-दानव गन्धर्वादिकी उत्पत्तिका वर्णन।

६—कश्यपजीकी स्त्रियोंसे जो जो पुत्र उत्पन्न हुए उनका वर्णन।

७—दितिके पुत्र मरुद्गणोंकी उत्पत्तिका वर्णन।

८—ब्रह्माकी सृष्टिके अधिपतोंका वर्णन।

९—पूर्वमें होनेवाले मनुओंका चरित्र।

१०—पृथ्वी किसके योगसे हुई और इसको गौ आदिक संज्ञा कैसे हुई इसका वर्णन।

११—सूर्य्यवंश और चन्द्रवंशका वर्णन।

१२—इलराजाको उसके छोटे भाई इक्ष्वाकु आदिका वनमें ढूँढ़ना।

१३—पितरोंके और सूर्य्यचन्द्रवंशके श्राद्धदेवोंका वर्णन।

१४—सोमपथ-लोकमें देव पितरोंको देवताओंका पूजना।

१५—सुन्दर तेजयुक्त लोकोंमें हजारों विमानोंमें कुशासङ्कल्पित फलका मिलना।

१६—श्राद्धोंके कालमें भोजनकी वस्तु और श्राद्धके योग्य ब्राह्मणोंका वर्णन।

१७—भुक्तिमुक्तिके फल देनेवाले श्राद्धका वर्णन है।

१८—विष्णु भगवान्के कहे हुए एकोदिष्ट श्राद्धका वर्णन।

१९—हव्यकव्य संज्ञक शाकल्यके दानका प्रकार।

२०—कौशिकके पुत्रोंका उत्तम योग प्राप्त होना।

२१—ब्रह्मदत्तका सब जीवोंकी बोलियोंका जानना।

२२—अनन्त फल देनेवाले श्राद्धका समय।

२३—शास्त्रज्ञ चन्द्रमा पितरोंका पति कैसे हुआ और उससे चन्द्रवंशी राजा कीर्त्ति बढ़ानेवाले कैसे हुए।

२४—चन्द्रमा बुधपुत्र कैसे हुआ ?

२५—पौरव वंश इस पृथ्वीपर कैसे श्रेष्ठ हुआ ?

२६—गुरुसे आज्ञा पाके जब कच स्वर्ग जाने लगा तब शुक्रकी पुत्री देवयानी कचसे जो बोली उसका वर्णन।

२७—स्वर्गमें पहुँचे हुए कचसे देवताओंके मिलनेका वर्णन ।
२८—देवयानीको शुक्रजीका समझाना ।
२९—देवयानीकी बातोंसे क्रोधयुक्त शुक्रजीका राजा वृषपर्वासे वार्त्तालाप ।
३०—फिर बहुत कालतक देवयानीका उसी बनमें सखियों सहित विचरना ।
३१—राजा ययातिका देवयानीको अपने महलमें रखना और देवयानीके कहनेसे शर्मिष्ठाको अशोक-वनमें पृथक् रखना ।
३२—शर्मिष्ठाके पुत्र होना सुनकर देवयानीका दुखी होकर शर्मिष्ठासे पूछना ।
३३—वृद्ध होके राजा ययातिका बड़े पुत्रसे वचन कहना ।
३४—शुक्रजीका स्मरण करके राजा ययातिका अपनी वृद्धावस्था पुरुको देना ।
३५—राजा ययातिका अपने पुत्र पुरुको राज्य देकर वानप्रस्थ होना ।
३६—स्वर्गमें राजा ययातिका पहुँचकर देवताओंसे पूजित होना ।
३७—राजा ययातिसे इन्द्रका पूँछना ।
३८—इन्द्रसे ययातिका अपना सब वृत्तान्त कहना ।
३९—अष्टकका और ययाति वार्त्तालाप ।
४०—अष्टकने राजा ययातिसे जो जो धर्म पूछे उनका वर्णन ।
४१—राजा ययातिसे अष्टकका धर्म पूछना ।
४२—वसुमान् और राजा ययातिका सम्भाषण ।
४३—राजाका शतानीकद्वारा शौनक-मुनिको रत्नादिक दान ।
४४—ऋषियोंका सूतजीसे सहस्रबाहुके वन जलानेका हेतु पूछना ।
४५—गान्धारी और माद्री दोनों स्त्रियोंकी सन्तानोंका वर्णन ।
४६—इक्ष्वाकुकी ऐक्ष्वाकी पुत्रीमें पौरुषसे शूर पुत्रादिका होना ।
४७—पूर्वक्रीड़ाके निमित्त श्रीकृष्णजीकी उत्पत्तिका वर्णन ।
४८—तुर्वसुके पुत्र पौत्रादिकी उत्पत्तिका वर्णन ।
४९—पुरुके पुत्र जनमेजय और उसके भी पुत्र पौत्रादिका वर्णन ।
५०—अजमीढके वंशका वर्णन है ।
५१—ब्राह्मणोंमें अग्नि-पूजक ब्राह्मणोंके वंशका क्रमसे वर्णन ।
५२—ऋषियोंका सूतजीसे मानवधर्मका पूछना ।
५३—सब पुराणोंकी संख्या और दान धर्मोंका वर्णन ।
५४—मत्स्यावतारके कहे हुए दानधर्म और नियमोंका वर्णन ।
५५—व्रत करनेमें असमर्थ होनेवालेका रात्रिमें ही भोजन ।
५६—सब फलोंकी देनेवाली कृष्णाष्टमीका वर्णन ।
५७—महादेवजीसे दीर्घायु आरोग्य कुलकी वृद्धि होनेवाला व्रत नारदजीद्वारा पूछा जाना ।
५८—मत्स्यजीसे मनुजीका सरोवर, वाग, कूपादि, मन्दिरकी प्रतिष्ठाकी सब रीति पूछना ।
५९—वृक्षोंके उद्यापनादिककी विधि ।
६०—सब कामना देनेवाले सौभाग्य-शयन-व्रतका वर्णन ।

६१—भूर्भुवस्स्वरादि लोकोंका वर्णन।

६२—मनुजीका मत्स्यावतारसे सर्व कामना देनेवाले धर्म पूछना।

६३—सब पापोंकी दूर करनेवाली अन्य-तृतीयाका वर्णन।

६४—सर्वपापनाशिनी आर्द्रानन्दकरी तृतीयाका वर्णन।

६५—शिवजीद्वारा नारदसे उस अन्य-तृतीयाका वर्णन जिसके सब दान हवनादिक अनन्त फलदायी हैं।

६६—चन्द्रसूर्य ग्रहणके स्नान-दानादिका माहात्म्य मत्स्य भगवानूद्वारा मनुजीसे वर्णन।

६७—मनुजीका मत्स्यभगवान्से प्रश्न कि चित्तके उद्वेग होनेमें क्या करना योग्य है?

६८—रथन्तर कल्पमें शिवजीसे ब्रह्माजीने जो जो पूछा उसका वर्णन।

६९—ब्रह्माजीका शिवजीसे उत्तम स्त्रियोंका सदाचार पूछना।

७०—तथा शिवजीसे वह व्रत पूछना जिससे कि स्त्री-पुरुषका वियोग न हो और शोक दुःखादि भी न हो।

७१—शिवजीका ब्रह्माजीसे वह अन्य व्रत कहना जिसका संवाद युधिष्ठिरादिसे और पिप्पलादि ऋषियोंसे हुआ।

७२—शुक्र दोषकी शान्तिका वर्णन।

७३—शिवजीसे ब्रह्माजीका संसारसें उद्धार होनेका व्रत पूछना।

७४—विशोक-सप्तमीका वर्णन।

७५—पापमोचनी-सप्तमीका वर्णन।

७६—शर्करा-सप्तमीका वर्णन।

७७—कमल-सप्तमीका वर्णन।

७८—मन्दार-सप्तमीका वर्णन।

७९—शुभ-सप्तमीका वर्णन।

८०—प्रियजनोंका वियोगशोक न हो और ऐश्वर्य हो ऐसे व्रतका वर्णन।

८१—गुड़धेनुका विधान।

८२—अक्षयदानके माहात्म्यका वर्णन।

८३—लवणाचल पर्वतके दानका फल।

८४—गुड़के पर्वतका विधान।

८५—वर्णाचलका विधान।

८६—तिलके पर्वतका विधान।

८७—कपासके पर्वतका विधान।

८८—घृताचलका विधान।

८९—रत्नाचलका विधान।

९०—रौप्याचलका विधान।

९१—उत्तम शर्कराचलका विधान।

९२—पुष्टि और शान्तिका उपाय।
९३—कमलासनादिपूर्वक सूर्य्यकी मूर्त्ति बनाना योग्य है।
९४—उक्त-विधानके विशेष भुक्ति-मुक्ति देनेवाले अन्य विधानका वर्णन।
९५—व्रतके फलत्याग करनेका माहात्म्य, अक्षय फलदायी होनेका वर्णन।
९६—पुरुषोंके अत्यानन्दकारी अनन्त फलदायी व्रतका वर्णन।
९७—संक्रान्तिके उद्यापनका वर्णन।
९८—विष्णु भगवान्‌के उत्तम व्रतका वर्णन।
९९—राजा पुष्पवाहनको ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर एक इच्छाचारी सुवर्णका कमल दिया उसकी कथा।
१००—शिवजीके कहे हुए साठ व्रतोंका वर्णन।
१०१—जलके बिना नारायण नामसे ही स्नान करना।
१०२—प्रयाग-माहात्म्य-सम्बन्धी मार्कण्डेयजीकी कही हुई कथाका वर्णन।
१०३—प्रयाग तीर्थपर किस विधिसे जाना योग्य है।
१०४—प्रयागजीके अन्य माहात्म्यका वर्णन।
१०५—प्रयागमें जानेकी विधि।
१०६—मार्कण्डेय प्रोक्त प्रयाग-माहात्म्य।
१०७—प्रयागके माहात्म्य सुननेसे हृदय शुद्ध होनेकी कथा।
१०८—तीर्थोंके विषयमें मार्कण्डेयजीसे युधिष्ठिरकी शङ्का।
१०९—सब तीर्थोंका प्रयागजीमें निवास।
११०—प्रयागकी ही महिमाका वर्णन।
१११—मार्कण्डेयजीके वचनपर श्राद्ध करके युधिष्ठिरका प्रयागमें स्नानादि करना।
११२—द्वीप, समुद्र और नदी आदिका वर्णन।
११३—सब मनुओंने प्रजाओंकी जैसे उत्पत्ति की उसका वर्णन।
११४—बुधके पुत्र राजा पुरुरवाके स्वरूपका वर्णन।
११५—पुरुरवाका तीर्थादि-गमन।
११६—पुरुरवाने हिमवान् गिरिको देखा, उसका वर्णन।
११७—उसी हिमवान्‌की नदी आदिकी शोभाका वर्णन।
११८—बड़े आश्चर्यकारी आश्रममें राजा पुरुरवाका प्रवेश।
११९—राजा पुरुरवाका अप्सरा गन्धर्वादिकी क्रीडा देखना।
१२०—कैलाश और अलकापुरी समेत कुबेरका वर्णन।
१२१—शाकद्वीपकी लम्बाई आदिका वर्णन।
१२२—गोमेदनाम छठे द्वीपका वर्णन।
१२३—सूर्य और चन्द्रमाकी गतिका वर्णन।
१२४—सूर्य मण्डलमें तारादिको भ्रमनेकी ब्योरेवार कथा।
१२५—सूर्यका रथ प्रति मास देवताओंसे संयुक्त रहता है।

१२६—ताराग्रह और राहुके रथका वर्णन ।

१२७—सूर्य और चन्द्रमा आदिक देवताओंके घर कैसे हैं ?

१२८—शिवजीका त्रिपुरके घर जानेका वर्णन ।

१२९—मय दैत्यने जिस प्रकारसे त्रिपुरका स्थान बनाया उसका वर्णन ।

१३०—उस मय दैत्यने त्रिपुरका स्थान ऐसा बनाया जो देवताओंसे दुर्गम था ।

१३१—दुष्ट दैत्योंने ऋषियोंके स्थान जैसे उजाड़े उसका वर्णन ।

१३२—ब्रह्मादिक देवताओंसे स्तुति किये जानेपर शिवजीका कहना कि भय मत करो ।

१३३—सब देवोंसे स्तुति किये हुए महादेवजीका उस रथपर बैठना जो त्रिपुरके विजय करनेको रचा गया था ।

१३४—नारदजीका रणभूमिमें आकर देवताओंकी सभामें प्राप्त होना ।

१३५—मय दैत्य देवतोंपर प्रहार करके त्रिपुरमें प्रवेश कर गया ।

१३६—शिवगणोंसे ताड़ित हुए दैत्य, शिवगणोंके तोड़े हुए स्थानोंमें प्रवेश कर गये ।

१३७—दैत्योंके मारनेको लोकपालों समेत इन्द्रका जाना ।

१३८—तारकासुरके मरनेके पीछे मयदैत्यका शिवगणोंको भगाकर भयभीत दैत्योंसे उसका वर्णन ।

१३९—सुमेरु पर्वतपर सूर्योदय होनेपर दैत्योंकी समुद्रके समान गर्जना ।

१४०—ऋषियोंके पूछनेपर सूतजीका पुरुरवाका प्रताप कहाना ।

१४१—स्वायम्भुवके अन्तरमें चारों युगोंके स्वभाव-संख्याका वर्णन ।

१४२—त्रेताके आदिमें यज्ञोंकी प्रवृत्ति ।

१४३—द्वापर-युगकी विधिका वर्णन ।

१४४—चौदह मनुओंका विस्तारपूर्वक वर्णन ।

१४५—मत्स्यावतारके कहे तारकासुरका वध वर्णन ।

१४६—वराङ्गीकी उक्ति कि मुझको इन्द्रने भयभीत किया है और ताड़न किया ।

१४७—तारकासुर दैत्यका सब दैत्योंसे कहना कि अपने कल्याणमें वृद्धि करो ।

१४८—देव-दानवोंके दारुण युद्धका वर्णन ।

१४९—धर्मराजका क्रोधित होकर ग्रसन दैत्यपर बाणोंकी वर्षा करना ।

१५०—विष्णुजीके ऊपर दैत्योंका मधुकी मक्खियोंके समान आ चिपटना ।

१५१—दैत्योंके सेनापति ग्रसन दैत्यके मरनेपर सब दैत्योंका विष्णुसे बे-मर्यादा लड़ना ।

१५२—टूटे अस्त्र-शस्त्रोंसे विष्णुको भागता देखकर इन्द्रका अपनी पराजय मानना ।

१५३—नीले वस्त्रवाला द्वारपाल घोटूं टेककर तारकासुरसे बोला ।

१५४—शिवजीने श्रीपार्वतीसे अपनी श्वेतक्रान्ति वर्णन की ।

१५५—पार्वतीजीका पर्वतकी देवता कुसुमामोहिनी नाम सतीके सन्मुख दीखना ।

१५६—वीरभद्रपर क्रोधयुक्त होकर शाप देना कि तेरी माता कृष्णशिलाके समान हो जावे ।

१५७—वीरभद्रका पार्वतीको यही उत्तर देना कि मेरी माताने कहा है कि किसी अन्य स्त्रीको भीतर मत जाने देना ।

१५८—अग्निके वीर्यके प्रभावसे पार्वतीजीके बाम कन्धेको फाड़कर दूसरा बालक निकलना ।

१५९—तारकासुरका सब वृत्तान्त सुनकर ब्रह्माजीके कहे हुए अपने कालको स्मरण करना ।

१६०—ऋषियोंका सूतजीसे हिरण्य-कशिपु-वध और नृसिंह-माहात्म्य पूछना ।

१६१—नृसिंह शरीरमें छिपकर आये हुए विष्णु भगवानूको प्रह्लादका देखना ।

१६२—नाना मुखवाले दैत्योंका नृसिंहजीपर शस्त्रवर्षा करना उससे उनको कुछ पीड़ा न होना ।

१६३—सूतजीका नृसिंहजीके अन्य माहात्म्यको ऋषियोंसे वर्णन करना ।

१६४—मत्स्यजीका मनुसे सत्ययुगकी संख्या आदि वर्णन करना ।

१६५—योगीश्वर नारायण सूर्य होकर समुद्र पर्वतादिके जलोंको शोषण कर लेते हैं ।

१६६—एकार्णव जल हो जानेके समय भगवानूका जलमें शयन करना ।

१६७—जलको ही अपने कुलसे उत्पन्न आत्माको आच्छादित करके तप करना ।

१६८—ब्रह्माजीको स्वर्ण-कमलसे विष्णुजीका उत्पन्न करना ।

१६९—ब्रह्माजीका कमलमें ही तप करना, मधुदैत्यका विघ्न करना ।

१७०—ब्रह्माजीका ऊँची भुजा करके तप करना ।

१७१—सत्ययुगमें विष्णुका हरि, स्वर्गमें बैकुण्ठ और श्रीकृष्ण कहलाना ।

१७२—दैत्य-दानव लोगोंका विष्णुके वचनको सुनकर युद्धमें विजयके निमित्त बहुतसा उद्योग करना ।

१७३—मत्स्यका मनुको दैत्योंकी सेना सुनाकर देवताओंकी भी सेनाका विस्तार सुनाना ।

१७४—दैत्य-दानवोंकी सेनाका परस्पर खड़े होकर पर्व्वतोंके समान दीखना ।

१७५—दैत्योंसे युद्ध करनेके लिए चन्द्रमाको आज्ञा होना ।

१७६—दैत्योंकी सेनामें कालनेमि दैत्यका अपने तेजको ऐसा बरसाना जैसे कि तपनेके अन्तकी घोर वृष्टि होती है ।

१७७—विपरीत-कर्मी कालनेमिके पास वेद, धर्म, अर्थ, काम, लक्ष्मी, इन पांचोंका न आना ।

१७८—ऋषि लोगोंका विष्णु-माहात्म्यको सुनकर शिवजी और भैरवके माहात्म्यको सूतजीसे पूछना ।

१७९—अन्धकके वधको सुनकर ऋषि लोगोंका सूतजीसे काशीजीके माहात्म्यको पूछना ।

१८०—शिवजीने जिन यक्षकोंको गणेश्वर बनाया उनकी कथा ।

१८१—सनकादिकोंने स्वामि कार्त्तिकजीसे अविमुक्त तीर्थकी महिमा पूछी ।

१८२—पार्वतीजीने शिवजीसे अविमुक्ति तीर्थकी महिमा पूछी ।

१८३—अविमुक्त तीर्थपर मोक्षके चाहनेवालोंका वास ।

२१७—उन ओषधियोंका वर्णन जो राक्षसोंका नाश करनेवाली और विषोंकी हरने-वाली हैं।

२१८—राजाको अपने किलेमें कौन-कौनसी वस्तु गुप्त रखनी चाहिए उनका वर्णन।

२१९—मत्स्यजी कहते हैं कि राजाको अपने पुत्रकी रक्षाके निमित्त और गौरव बढ़ानेके लिए बहुतसे भृत्य रखने चाहिए।

२२०—मनुजी पूछते हैं कि हे प्रभो भाग्य और पुरुषार्थ इन दोनोंमें कौनसा बड़ा और श्रेष्ठ है।

२२१—मनुका मत्स्यजीसे सामादिक उपायोंको पूछना।

२२२—मनुजीसे मत्स्य भगवान् कहते हैं कि दुष्ट, क्रोधी और अभिमानियोंमें भेद उपाय करना योग्य है।

२२३—सब उपायोंमें दान ही श्रेष्ठ है।

२२४—तीनोंके न हो सकनेमें दण्ड उपाय ही श्रेष्ठ है।

२२५—सबके दण्डके निमित्त सब देवताओंके अंशसे ब्रह्माने राजाको बनाया है।

२२६—घरोहड़ मारनेवालेको राजा घरोहड़के धनके समान दण्ड देवे।

२२७—मनुजी मत्स्यजीसे आकाश, पृथ्वी, देवलोक और भौम दिव्यादिसे उत्पन्न होने-वाले महान् उत्पातोंकी शान्ति पूछते हैं।

२२८—मनुजी मत्स्यजीसे अद्भुत उत्पातोंके फल और शान्तिके बारेमें पूछते हैं।

२२९—जहां देवताओंकी मूर्त्ति नृत्य करें, कांपें, ज्वलित हों, धुवाँ, रक्तस्नेह और घासादिका वमन करें, रोवें, हँसें, पसीना आवे, खड़ी हों, श्वास लें, भोजन करें, ध्वजा-दिकको दूर फेंक दें, नीचेको मुख करें, ऐसे किसी भी स्थानमें वास न करना चाहिए। इस प्रकारकी बहुतसी बातोंका वर्णन।

२३०—जहाँ बिना ईंधनके अग्नि जले वा जहां ईंधनसे भी नहीं जले वह राज्य जल्द अन्य राजाओंसे पीड़ित होता है।

२३१—जिन पुरोंमें देव-प्रेरित वृक्ष हँसते रोते बहुतसे रसोंको रिसावें और बिना वायुके शाखा टूटें, इत्यादि प्रकारकी बातें हों वहाँ भी पूर्वोक्त ही नष्ट फल जानो।

२३२—अतिवृष्टि अनावृष्टि दोनों उपद्रवोंसे दुर्भिक्षका भय।

२३३—नदी नगरके समीप आ जाय, सरोवरके जल अस्वाद हो जावें इत्यादि अशुभ लक्षणोंका वर्णन।

२३४—बिना काल स्त्रियोंकी सन्तान हों, दो बालक हों, मनुष्य योनिमें अन्य जीव हों, यह अशुभ है।

२३५—उत्तम सवारी चलानेसे भी न चलें और निकृष्ट सवारी अच्छी चलें, यह अशुभ है।

२३६—वनके जीव ग्राममें आ जायँ, ग्रामके कुत्ते आदि वनमें चले जायँ इत्यादि अशुभ हैं।

२३७—जहांके राजाके सुन्दर महल अकारण गिर पड़ें, वहाँ राजाको मृत्युका भय होता है।

२३८—ग्रह-यज्ञ लक्ष-होम और कोटि-होम कैसे करें इसकी विधिका वर्णन।

२३९—राजाओंके यात्रा-कालका वर्णन।

२४०—मनुष्योंके शुभाशुभ लक्षणोंको मनु मत्स्यजीसे पूछते हैं।

२४१—शत्रुके सम्मुख विचार करनेवाले राजाको कैसे स्वप्नका कैसा फल होता है इसका वर्णन।

२४२—राजाकी यात्राके समय कौनसे शकुन सम्मुख होनेसे उत्तम हैं।

२४३—उत्पातोंकी अशुभता समेत स्वप्न-प्रदर्शनके फल वर्णन।

२४४—बलिदैत्य दैत्योंको तेजहत देखकर अपने बाबा प्रह्लादजीसे इसका कारण पूछता है और प्रह्लाद उस विष्णु भगवान्‌के निन्दक बलिको शाप देता है।

२४५—पृथ्वीको चलायमान देखकर राजा बलि अपने गुरु शुक्राचार्यजीसे हाथ जोड़कर कारण पूछता है, तब शुक्रजी ध्यानसे वामन अवतारको बताते हैं।

२४६—अर्जुन शौनकजीसे शूकरावतार होनेका कारण पूछता है।

२४७—शौनकजी अर्जुनसे वेदकी श्रुतिके आशयसे ब्रह्माण्ड-रचना कहते हैं।

२४८—सूतजीसे ऋषि लोग देवताओंके अमर होनेका हेतु पूछते हैं और सूतजी समुद्र-मथनसे अमृत होने और पान करनेका कारण बताते हैं।

२४९—नारायणके वचनसे देव-दानवोंका समुद्रको मथना और लक्ष्मी आदि रत्नोंका निकलना।

२५०—फिर मथनेमें धन्वन्तरिवैद्य, मदिरा, अमृत, सुरभिणी आदिका निकलना और सबका विभाग हो जाना।

२५१—महल आदि बनानेकी विधि और वास्तु-शास्त्रके जितने आचार्य हैं उनकी संख्या नाम-सहित सूतजी ऋषियोंसे कहते हैं।

२५२—गृहके बनाने और चिननेके समयका वर्णन।

२५३—चारशालाके स्थानके स्वरूप, द्वारका चौखट समेत वर्णन।

२५४—स्तम्भ अर्थात् खम्भ बनानेकी विधि।

२५५—प्रत्येक दिशाकी झुकाववाली भूमिका प्रत्येक वर्णके अर्थ शुभाशुभका वर्णन।

२५६—घरके काष्ठके लिये वृक्ष काटनेकी विधि और उसके गिरनेका शुभाशुभ लक्षण।

२५७—गृहस्थीके क्रियायोगकी सिद्धि और ज्ञानयोगसे कर्मयोगकी प्रधानताका वर्णन।

२५८—देवताओंकी मूर्त्तियाँ, भेद, प्रमाण आदिका वर्णन।

२५९—अर्द्धनारीश्वर शिवजीकी मूर्त्तिका और बनानेकी विधिका वणन।

२६०—सूर्यकी मूर्त्ति विधि और उनका शृङ्गार और शिवजीकी मूर्त्तिका वर्णन।

२६१—शिवजीकी जलहरी आदि मूर्त्तिस्थापनकी विधि, पृथ्वीका लक्षण और मूर्त्तिकी ऊँचाईके सोलह भागोंका यथा-विभाग।

२६२—उत्तम लिङ्गका लक्षण और स्थानके प्रमाणसे सुवर्णादिके लिङ्गका शुभाशुभ लक्षण।

२६३—देवताओंकी उत्तम प्रतिष्ठा और कुण्ड मण्डपादिकी विधि।

२६४—मूर्त्तिके स्थापित करनेवाले और रक्षा करनेवाले पुरुषोंके लक्षण।

२६५—देवताओंके अधिवासादिक और जलसे मन्दिरोंमें छिड़काव आदिकका वर्णन।

२६६—देवताओंके अर्घपाद्य और स्नान पूजनकी संक्षेप विधि।

२६७—देव मन्दिर कैसे बनावे और उनके प्रमाण कितने-कितने हों इसका वर्णन।

२६८—वास्तु-पूजन बलिपूर्वक प्रासादादिके १६ भागोंमेंसे चार भागका गर्भ अर्थात् स्नानका चौक और बारह भागोंमें गृह और मन्दिर आदिके बनानेका क्रम।

२६९—सब मण्डपोंके लक्षण और वर्णन और उनके उत्तम मध्यम और निकृष्टतापूर्वक नाम।

२७०—सूर्यवंशियोंका और कलियुगमें होनेवाले कीर्त्तिवर्द्धक देववंशके भी राजाओंका वर्णन।

२७१—वीतहोत्रसंज्ञक बृहद्रथोंके पीछे पुलक आदि राजाओंके जीवन-चरित्र और जितने जितने वर्ष राज्य करेंगे उसका वर्णन।

२७२—शुङ्ग राजाओंमें जो बलवान् होगा उसको आन्ध्र-जातिका शिशुक राजा मारेगा।

२७३—धनी विद्वान् कौन-कौनसे दानसे कृत-कृत्य होता है, इसका वर्णन और मुख्य-मुख्य तुलादिक दानोंके सोलहों प्रकारका वर्णन।

२७४—हिरण्यगर्भादिक महादानोंका वर्णन।

२७५—पूर्वोक्त दानोंकी प्रशंसा।

२७६—महापातक-नाशक कल्पपाद-प्रदानकी विधिका वर्णन।

२७७—बड़े पुण्यकारी गो-सहस्र-नामक उत्तम दानका वर्णन।

२७८—कामधेनु दानकी विधिका वर्णन।

२७९—हिरण्याश्व दानकी विधि वर्णन।

२८०—अश्वरथ-दानका वर्णन।

२८१—बड़े सुन्दर हेमहस्ती रथके दानका वर्णन।

२८२—पञ्चलाङ्गलक प्रमाण भूमिके दानका माहात्म्य।

२८३—धरा अर्थात् भूमि-दानका वर्णन।

२८४—विश्वचक्र नाम उत्तम दानका वर्णन।

२८५—महापुण्यकारी कल्पलता नाम दानका वर्णन।

२८६—महा पापोंका नाशक सप्तसागर नाम उत्तम दानका वर्णन।

२८७—गोलोकमें फल देनेवाले रत्नधेनु दानका वर्णन।

२८८—बड़े पापोंके नाशक महाभूत घट नाम उत्तम दानका वर्णन।

२८९—मन्वन्तर-युगोंमें कल्पोंके क्रमपूर्वक नाम-कीर्तन और पाठका माहात्म्य।

२९०—इस अध्यायमें सम्पूर्ण मत्स्यपुराणभरमें जो कथा आदिक विषय हैं उन सबके नाम क्रमपूर्वक लिखे हैं, इसी एक अध्यायके देखनेसे मत्स्यपुराणकी सब बातें देखनेवालेको विदित हो जावेंगी। तात्पर्य यह है कि यह अन्तका अध्याय मत्स्य-पुराणके २९० अध्यायोंका सूचीपत्र है।

मत्स्यपुराण

मत्स्यपुराणकी श्लोक-संख्या नारदीय-पुराणके अनुसार पन्द्रह हजार है। परन्तु रेवा-माहात्म्य, श्रीमद्भागवत, ब्रह्मवैवर्तपुराण और स्वयं मत्स्यपुराणके अनुसार यह संख्या केवल चौदह हजार है। प्रचलित मत्स्यपुराणकी संख्या भी इतनी ही है और जो विषय-सूची मत्स्यपुराणकी नारदपुराणमें दी हुई है वह प्रायः ज्योंकी त्यों मिलती है। मत्स्यपुराणको प्रायः मौलिक और प्राचीन माना जाता है।

बयालीसवाँ अध्याय

गरुडपुराण

गरुडपुराणकी कोई बड़ी पोथी उपलब्ध न हुई। विश्वकोशकारके मतसे जो पोथी उन्हें उपलब्ध थी उसकी विषयसूची और नारदपुराणकी विषयसूची प्रायः एकसी पायी गयी है। इसीलिए हम नारदपुराणसे लेकर विषयसूची उद्धृत करते हैं। नारदपुराणके पूर्वांशका यह एक सौ आठवाँ अध्याय है।

ब्रह्मोवाच—मरीचे शृणु वक्ष्यामि पुराणम् गारुडम् शुभम्।
गरुडायाब्रवीत्पृष्टो भगवान्गरुडासनः ॥ १ ॥
एकोनविंश साहस्रं तार्क्ष्यकल्पकथान्वितम्।
पुराणोपक्रमप्रश्नः सर्गः संक्षेपतस्ततः ॥ २ ॥
सूर्यादि पूजनविधिर्दीक्षाविधिरतः परम्।
श्राद्धपूजा ततः पश्चान्नवव्यूहार्चनम् द्विज ॥ ३ ॥
पूजाविधानम् च तथा वैष्णवम् पञ्जरम् ततः।
योगाध्यायस्ततो विष्णोर्नाम साहस्रकीर्त्तनम् ॥ ४ ॥
ध्यानम् विष्णोस्ततः सूर्यपूजा मृत्युञ्जयार्चनम्।
मालामन्त्राः शिवार्चाथ गणपूजा ततः परम् ॥ ५ ॥
गोपालपूजा त्रैलोक्यमोहन श्रीधरार्चनम्।
विष्ण्वर्चा पञ्चतत्त्वार्चा चक्रार्चा देवपूजनम् ॥ ६ ॥
न्यासादि सन्ध्योपास्तिश्च दुर्गार्चाथसुरार्चनम्।
पूजा माहेश्वरी चातः पवित्रारोपणार्चनम् ॥ ७ ॥
मूर्त्तिध्यानं वास्तुमानं प्रासादानां च लक्षणम्।
प्रतिष्ठा सर्वदेवानां पृथक्पूजाविधानतः ॥ ८ ॥
योगोऽष्टाङ्गो दानधर्माः प्रायश्चित्तविधिक्रिया।
द्वीपेश नरकाख्यानम् सूर्यव्यूहश्च ज्योतिषम् ॥ ९ ॥
सामुद्रिकम् स्वरज्ञानम् नवरत्नपरीक्षणम्।
माहात्म्यमथ तीर्थानां गयामाहात्म्यमुत्तमम् ॥१०॥
ततो मन्वन्तराख्यानम् पृथक्पृथग्विभागशः।
पित्राख्यानम् वर्णधर्मा द्रव्यशुद्धिः समर्पणम् ॥११॥
श्राद्धम् विनायकस्यार्चा ग्रहयज्ञस्तथाश्रमाः।
जननाख्यम् प्रेतशौचम् नीतिशास्त्रम् व्रतोक्तयः ॥१२॥
सूर्यवंशः सोमवंशोऽवतारकथनम् हरेः।
रामायणम् हरेर्वन्शो भारताऽख्यानकम् ततः ॥१३॥

आयुर्वेदनिदानम् प्राक् चिकित्सा द्रव्यजागुणाः ।
रोगघ्नम् कवचम् विष्णोर्गारुडम् त्रैपुरो मनुः ॥१४॥
प्रश्नचूड़ामणिश्चान्तोह्ययायुर्वेदकीर्तनम् ।
ओषधीनामकथनम् ततो व्याकरणोहनम् ॥१५॥
छन्दः शास्त्रं सदाचारस्ततः स्नानविधिः स्मृतः ।
तर्पणम् वैश्वदेवम् च सन्ध्या पार्वण कर्म च ॥१६॥
नित्य श्राद्धं सपिण्डाख्यं धर्मसारोऽय निष्कृतिः ।
प्रति संक्रम उक्ताःस्युगधर्माः कृते फलम् ॥१७॥
योगशास्त्रं विष्णुभक्तिर्नमस्कृति फलं हरेः ।
माहात्म्यम् वैष्णवम् चाथ नारसिंहस्तवोत्तमम् ॥१८॥
ज्ञानामृतम् गुह्याष्टकम् स्तोत्रम् विष्णवर्चनाह्वयम् ।
वेदान्त सांख्य सिद्धान्तो ब्रह्मज्ञानं तथात्मकम् ॥१९॥
गीतासारः फलोत्कीर्त्तिः पूर्वखण्डोयमारितः ।
अथास्यैवोत्तरे खण्डे प्रेतकल्पः पुरोहितः ॥२०॥
यत्र तार्क्ष्येण संपृष्टो भगवानाह वाडवाः ।
धर्मप्रकटनम् पूर्वम् योगीनां गतिकारणम् ॥२१॥
दानादिकम् फलम् चापि प्रोक्त मन्त्रोर्द्ध्वदैहिकम् ।
यमलोकस्य मार्गस्य वर्णनम् च ततः परम् ॥२२॥
षोडश श्राद्धफलको वृत्तान्तश्चात्रवर्णितः ।
निष्कृतिर्यम मार्गस्य धर्मराजस्य वैभवम् ॥२३॥
प्रेतपीड़ा विनिर्देशः प्रेतचिह्ननिरूपणम् ।
प्रेतानां चरिताख्यानम् कारणम् प्रेततां प्रति ॥२४॥
प्रेतकृत्य विवारश्च सपिण्डी करणोक्तयः ।
प्रेतत्व मोक्षणाख्यानं दानानि च विमुक्तये ॥२५॥
आवश्यकोत्तमम् दानम् प्रेत सौख्यकरोहनम् ।
शारीरक विनिर्देशो यमलोकस्य वर्णनम् ॥२६॥
प्रेतत्वोद्धारकथनम् कर्मकर्तृविनिर्णयः ।
मृत्योः पूर्वक्रियाख्यानम् पश्चात् कर्मनिरूपणम् ॥२७॥
मध्य षोडशकं श्राद्धं स्वर्ग प्राप्ति क्रियोहनम् ।
सूतकस्याथ संख्यानम् नारायणबलिक्रिया ॥२८॥
वृषोत्सर्गस्य माहात्म्यम् निषिद्ध परिवर्जनम् ।
अपमृत्युक्रियोक्तिश्च विपाकः कर्मणम् नृणाम् ॥२९॥
हत्याकृत्यविचारश्च विष्णु ध्यान विमुक्तये ।
स्वर्गतो विहिताख्यानम् स्वर्ग सौख्यनिरूपणम् ॥३०॥
भूर्लोकवर्णनम् चैव सप्ताधोलोकवर्णनम् ।

पञ्चोर्द्ध्वलोक कथनम् ब्रह्माण्डस्थिति कीर्त्तनम् ॥३१॥
ब्रह्माण्डानेक चरितं ब्रह्मजीव निरूपणम् ।
आत्यन्तिकस्तयाख्यानं फलस्तुति निरूपणम् ॥३२॥
इत्येतद्गारुडं नाम पुराणं भुक्तिमुक्तिदम् ।
कीर्त्तितं पापशमनं पठतां शृण्वतां नृणाम् ॥३३॥
लिखित्वैतत्पुराणं तु विषुवे यः प्रयच्छति ।
सौवर्णहंसयुग्माढ्यं विप्राय स दिवं व्रजेत् ॥३४॥

इति श्री नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे गारुडानुक्रमणीवर्णनम् नाम अष्टोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

मत्स्यपुराणके अनुसार गरुडपुराणमें अठारह हजार श्लोक हैं, और रेवामाहात्म्य श्रीमद्भागवत नारदपुराण तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार यह संख्या उन्नीस हजार है। जो गरुडपुराण विश्वकोशकारको उपलब्ध था, उसकी उन्होंने पूर्वखण्डकी दो-सौ-तैंतालीस अध्यायोंकी और उत्तरखण्डकी पैंतालीस अध्यायोंकी विषयसूची दी है। यह सूची नारदीय-पुराणके लक्षणोंसे मिलती है। परन्तु श्लोक-संख्यामें गड़बड़ है। जो पोथी विश्वकोशकारके पास थी, उसमें ग्यारह हजार श्लोक थे। परन्तु सात हजारकी कमी होते हुए भी कथा-भागमें कोई न्यूनता नहीं है। यह पुराण हिन्दुओंमें बहुत लोक-प्रिय है। विशेष करके मृत्युके सम्बन्धमें इसका पाठ विशेष पुण्यप्रद समझा जाता है। इस पुराणका श्रवण श्राद्धकर्मका एक अङ्ग समझा जाता है। इसमें प्रेतकर्म, प्रेतयोनि, प्रेत-श्राद्ध, यमलोक, यमयातना, नरक आदि विशेष रूपसे वर्णित हैं।

त्रिवेणी-स्तोत्र, पञ्चपर्व-माहात्म्य, विष्णुधर्मोत्तर वेङ्कटगिरि-माहात्म्य, श्रीरङ्गमाहात्म्य, सुन्दरपुर-माहात्म्य इत्यादि अनेक छोटे-छोटे ग्रन्थ गरुडपुराणसे उद्धृत बताये जाते हैं।

तैतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माण्डपुराण

ब्रह्माण्डपुराणकी वेङ्कटेश्वर प्रेसकी छपी पोथी हमारे सामने है। उसकी विषयानुक्रमणिका अत्यन्त विस्तृत है। उसे एक प्रकारसे पुराणका सार कहना चाहिये। परन्तु नारदपुराणमें जो सूची दी हुई है वह अधिक संक्षिप्त है और हमने मिलाकर देखा तो दोनों सूचियोंमें विस्तार और संक्षेपका ही अन्तर पाया। इसीलिये हम यहाँ नारदपुराणकी सूची उद्धृत करते हैं। नारदपुराणमें यह पूर्व खण्डका एक सौ नवाँ अध्याय है।

ब्रह्मोवाच—शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डाख्यम् पुरातनम्।
यच्च द्वादश साहस्रमादिकल्प कथायुतम्॥ १॥
प्रक्रियाख्योऽनुषङ्गाख्य उपोद्घातस्तृतीयकम्।
चतुर्थ उपसंहारः पादाश्चत्वार एव हि॥ २॥
पूर्वपादद्वयम् पूर्वो भागोऽत्र समुदाहृतः।
तृतीयो मध्यमो भागश्चतुर्थस्तूत्तरोमतः॥ ३॥
आदौ कृत्यसमुद्देशो नैमिषाख्यानकम् ततः।
हिरण्यगर्भोत्पत्तिश्च लोककल्पनमेव च॥ ४॥
एष वै प्रथमः पादो द्वितीयम् शृणु मानद।
कल्पमन्वन्तराख्यानम् लोक्यज्ञानम् ततः परम्॥ ५॥
मानसी सृष्टि कथनम् रुद्रप्रसववर्णनम्।
महादेव विभूतिश्च ऋषिसर्गस्ततः परम्॥ ६॥
अग्नीनाम् विजयश्चाथ काल सद्भाववर्णनम्।
प्रियव्रतान्वयोद्देशः पृथिव्याया सविस्तरः॥ ७॥
वर्णनम् भारतस्यास्य ततोऽन्येषां निरूपणम्।
जम्ब्वादि सप्तद्वीपाख्या ततोऽधोलोकवर्णनम्॥ ८॥
उर्द्ध्वलोकानुकथनम् ग्रहचारस्ततः परम्।
आदित्य व्यूहकथनम् देव ग्रहानुकीर्त्तनम्॥ ९॥
नीलकण्ठाह्वयाख्यानम् महादेवस्य वैभवम्।
अमावास्यानुकथनम् युगतत्वनिरूपणम्॥१०॥
यज्ञप्रवर्त्तनम् चाथ युगयोरन्त्ययोः कृतिः।
युगप्रजालक्षणम् च ऋषिप्रवरवर्णनम्॥११॥
वेदानां व्यसनाख्यानम् स्वायम्भुवनिरूपणम्।
शेष मन्वन्तराख्यानम् पृथिवी दोहनम् ततः॥१२॥
चाक्षुषेद्यतने सर्गे द्वितीयांघ्रिः पुरोदले।

अथोपोद्धातपादे तु सप्तर्षि परिकीर्त्तनम् ॥१३॥
प्रजापत्यन्वयस्तस्माद्देवादीनां समुद्भवः ।
ततो जयाभिलाषश्च मरुदुत्पत्तिकीर्त्तनम् ॥१४॥
काश्यपेयानुकथनम् ऋषिवंशनिरूपणम् ।
पितृकल्पानुकथनम् श्राद्धकल्पस्ततः परम् ॥१५॥
वैवस्वत समुत्पत्तिः सृष्टिस्तस्य ततः परम् ।
मनुपुत्रान्वयश्चान्तो गान्धर्वस्य निरूपणम् ॥१६॥
इक्ष्वाकुवंशकथनम् वंशोत्रेः सुमहात्मनः ।
अमावसोरन्वयश्च रजेश्चरितमद्भुतम् ॥१७॥
ययाति चरितम् चाथ यदुवंशनिरूपणम् ।
कार्तवीर्यस्य चरितम् जामदग्न्यम् ततः परम् ॥१८॥
वृष्णिवंशानुकथनम् सगरस्याथ सम्भवः ।
भार्गवस्यानुचरितम् पितृकार्यवधाश्रयम् ॥१९॥
समरस्याथ चरितम् भार्गवस्य कथा पुनः ।
देवासुराहवकथा कृष्णाविर्भाव वर्णनम् ॥२०॥
इन्द्रस्य तु स्तवः पुण्यः शुक्रेण परिकीर्त्तितः ।
विष्णुमाहात्म्य कथनम् बलिवंशनिरूपणम् ॥२१॥
भविष्य राजचरितम् सम्प्राप्तेऽथ कलौ युगे ।
एवमुद्धातपादोयम् तृतीयो मध्यमे दले ॥२२॥
चतुर्थमुपसंहारम् वक्ष्ये खण्डे तथोत्तरे ।
वैवस्वतान्तराख्यानम् विस्तरेण यथातथा ॥२३॥
पूर्वमेव समुद्दिष्टम् संक्षेपादिहकथ्यते ।
भविष्याणां मनूनां च चरितम् हि ततः परम् ॥२४॥
कल्प प्रलय निर्देशः कालमानम् ततः परम् ।
लोकाश्चतुर्दश ततः कथिता प्राप्त लक्षणैः ॥२५॥
वर्णनम् नरकाणां च विकर्माचरणैस्ततः ।
मनोमयपुराख्यानम् लयः प्राकृतिकस्ततः ॥२६॥
शैवस्याथ पुरस्यापि वर्णनम् च ततः परम् ।
त्रिविधा गुण सम्बन्धाज्जन्तूनां कीर्त्तिता गतिः ॥२७॥
अनिर्देश्या प्रतर्क्यस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
अन्वय व्यतिरेकाभ्यां वर्णनम् हि ततः परम् ॥२८॥
इत्येप उपसंहारः पादो वृत्तः सहोत्तरः ।
चतुः पादम् पुराणम् ते ब्रह्माण्डम् समुदाहृतम् ॥२९॥
अष्टादशमनौपम्यम् सारात्सारतरम् द्विज ।
ब्रह्माण्डम् यच्चतुर्लक्षम् पुराणम् येन पठ्यते ॥३०॥

तदेतदस्य गदितमत्राष्टादशधा पृथक् ।
पाराशर्येण मुनिना सर्वेषामपि मानद ॥३१॥
वस्तुतस्तूपदेष्टाथ मुनीनां भावितात्मनाम् ।
मत्तः श्रुत्वा पुराणानि लोकेभ्यः प्रचकाशिरे ॥३२॥
मुनयो धर्मशीलास्ते दीनानुग्रहकारिणः ।
मया चेदम् पुराणम् तु वसिष्ठाय पुरोदितम् ॥३३॥
तेन शक्ति सुतायोक्तम् जातुकर्ण्याय तेन च ।
व्यासो लब्ध्वा ततश्चैतान्प्रभञ्जन मुखोद्गताम् ॥३४॥
प्रमाणीकृत्य लोकेस्मिन्प्रावर्तयदनुत्तमम् ।
य इदम् कीर्त्तयेद्वत्स शृणोति च समाहितः ॥३५॥
स विधूयेह पापानि यातिलोकमनामयम् ।
लिखित्वैतत्पुराणम् तु स्वर्ण सिंहासन स्थितम् ॥३६॥
यत्रोर्णाच्छादितम् यस्तु ब्राह्मणाय प्रयच्छति ।
स याति ब्रह्मणो लोकम् नात्र कार्या विचारणा ॥३७॥
मरीचेष्टादशैतानि मया प्रोक्तानि यानि ते ।
पुराणानि तु संक्षेपाच्छ्रोतव्यानि च विस्तरात् ॥३८॥
अष्टादश पुराणानि यः शृणोति नरोत्तमः ।
कथयेद्वा विधानेन नेह भूयः स जायते ॥३९॥
सूत्रमेतत्पुराणानां यन्मयोक्तम् तवाधुना ।
तन्नित्यम् शीलनीयं हि पुराणफलमिच्छता ॥४०॥
न दाम्भिकाय पापाय देवगुर्वनुसूयवे ।
देयम् कदापि साधूनां द्वेषिणे न शठाय च ॥४१॥
शान्ताय रामचित्ताय शुश्रूषाभिरताय च ।
निर्मत्सराय शुचये देयम् सद्वैष्णवाय च ॥४२॥

इति श्री नारदीयपुराणे पूर्व भागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे ब्रह्माण्डपुराणानुक्रमणी निरूपणम् नाम नवोत्तर शततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

रेवाखण्ड और मत्स्यपुराणके अनुसार बारह हजार दो सौ, और श्रीमद्भागवत, नारदीय-पुराण और ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार बारह हजार, श्लोक ब्रह्माण्डपुराणमें होने चाहिए। प्रस्तुत ग्रन्थमें श्लोक इतनेके ही लगभग हैं। इसीके साथ-साथ ललितोपाख्यान भी है। विश्वकोशमें लिखा है कि इसी ब्रह्माण्डपुराणमेंसे रामायणी कथा अध्यात्म-रामायणके नामसे अलग कर ली गयी है। रामायणकी कथा और पुराणोंमें भी दी हुई है। परन्तु अध्यात्म-रामायणमें विस्तार अधिक है। जो पोथी हमारे सामने है उसमें अध्यात्म-रामायण नहीं है और न नार-दीयपुराणकी सूचीमें रामायणकी चर्चा है। रामायणकी चर्चाके अभावसे अनुमान होता है कि परशुरामकी कथाके बाद ही रामायणी-कथा रही होगी, जिसे रामायणके रूपमें अलग कर दिया गया है। श्लोक-संख्या भी बिना ललितोपाख्यान और अध्यात्म-रामायणके कथिताङ्क

तक न पहुँच सकेगी। इन दो अंशोंके अतिरिक्त नीचे लिखे छोटे-छोटे ग्रन्थ ब्रह्माण्डपुराणमेंसे निकाले हुए बताये जाते हैं—

अग्नीश्वर, अञ्जनाद्रि, अनन्तशयन, अर्जुनपुर, अष्टनेत्रस्थान, आदिपुर, आनन्दनिलय, ऋषिपञ्चमी, कठोरगिरि, कालहस्ती, कामाक्षीविलास, कार्त्तिक, कावेरी, कुम्भकोण, गोदावरी, गोपुरी, क्षीरसागर, गोमुखी, चम्पकारण्य, ज्ञानमण्डप, तञ्जापुरी, तारकब्रह्ममन्त्र, तुङ्गभद्रा, तुलसी, दक्षिणमूर्ति, देवदारुवन, नन्दगिरि, नरसिंह, लक्ष्मीपूजा, वेङ्कटेश, शिवगङ्गा, काञ्ची, श्रीरङ्ग, गणेश-कवच, वेङ्कटेश-कवच, हनुमत-कवच, इत्यादि इत्यादि।

चौवालीसवाँ अध्याय

देवीभागवत-पुराण

देवीभागवत-पुराणकी सूची इस प्रकार है—

प्रथम-स्कन्ध

१—ऋषियोंका पुराण-विषयक प्रश्न करना।

२—ग्रन्थकी संख्या और विषय।

३—पुराणोंकी संख्या और व्यासोंका वर्णन।

४—देवीकी सर्वोत्तमता-कथनमें शुक-जन्म-कथन।

५—देवीकी उत्कृष्टता वर्णन।

६—मधुकैटभका युद्धोद्योगवर्णन।

७—मधुकैटभसे त्रसित हो ब्रह्माजीका देवीकी स्तुति करना।

८—आराध्य-निर्णय।

९—देवीकी कृपासे भगवान्‌का मधुकैटभको मारना।

१०–शिवका वरदान।

११–बुधकी उत्पत्तिका वर्णन।

१२–पुरुरवाकी उत्पत्तिका वर्णन।

१३–पुरुरवा और उर्वशीका चरित्र वर्णन।

१४–शुकदेवजीकी उत्पत्तिका वर्णन।

१५–शुकदेवजीका वैराग्य-वर्णन।

१६–शुकदेवजीके प्रति इस पुराणका उपदेश।

१७–जनककी परीक्षाके निमित्त शुकदेवजीका मिथिलापुरीमें जाना।

१८–जनकका शुकदेवजीको उपदेश देना।

१९–शुकदेवजीका विवाहादि।

२०–शुकदेवजीके जानेपर व्यासकृत्य वर्णन।

द्वितीय-स्कन्ध

१—व्यास-जन्म-कथा।

२—पराशरसे दास-कन्यामें व्यासका जन्म।

३—शान्तनुका गङ्गा और सत्यवतीसे व्याह।

४—वसुओंकी उत्पत्ति।

५—शान्तनुका सत्यवतीको वरण करना।

६—व्यासजीसे तीन पुत्रोंका जन्म, पाण्डवोंकी उत्पत्ति।

७—पाण्डवोंकी कथा, मृतक-दर्शन।

८—यदुकुलक्षय, परीक्षितका वृत्तान्त।

९—रुरुकी कथा, राजाका गुप्त गृहमें निवास।

१०–तक्षक-ब्राह्मणका संवाद तथा तक्षकका राजाको देखना।

११–सर्पसत्रमें उद्यत हुए राजाको आस्तीकका निवारण करना।

१२–आस्तीककी उत्पत्ति, देवीभागवत-माहात्म्य-वर्णन।

तृतीय-स्कन्ध

१—भुवनेश्वरी-निर्णय।

२—विमानद्वारा ब्रह्मादिकी गति।

३—विमानमें स्थित हरिहरादिका देवी-दर्शन।

४—विष्णुकृत देवी-स्तुति।

५—शिव-स्तुति, ब्रह्म-स्तुति।

६—श्रीदेवीका ब्रह्माजीको उपदेश देना।

७—तत्वनिरूपण।

८—गुणोंके रूपस्थानादि।

९—गुणोंके अधिकारमें नारदका प्रश्न।

१०–सत्यव्रतकी कथा।

११–वाग्बीजके उच्चारणसे सत्यव्रतको सिद्धि-लाभ होना।

१२–देवीयज्ञ-विधि।

१३–विष्णुका देवीयज्ञ करना।
१४–राजप्रश्नोत्तर वैभव-वर्णन।
१५–युधाजित वीरसेनका दौहित्रके निमित्त युद्ध करना।
१६–युधाजितका सुदर्शनके मारनेकी इच्छासे भरद्वाजके आश्रममें जाना।
१७–विश्वामित्रकी कथाके उपरान्त राजपुत्रको कामबीज प्राप्ति।
१८–काशीराजका पुत्रीके निमित्त विवाहोद्योग।
१९–सुदर्शनके सहित राजोंका स्वयंवरमें आना।
२०–राजसंवाद-निवृत्तिपूर्वक कन्याको समझाना।
२१–राजोंके कोलाहल होनेमें कन्याके सम्मत होनेपर राजाका बैठना।
२२–सुदर्शनका विवाह, सुबाहुकी कन्याका भी विवाह।
२३–महायुद्धमें देवीका शत्रुओंको मारना।
२४–देवीकी महिमा, देवीका काशीवास।
२५–अम्बिकादेवीका सन्तोष और उस पुरमें देवीका स्थापन।
२६–व्यासका राजासे नवरात्र-विधि कहना।
२७–कुमारिका-कथन।
२८–रामायण कथा प्रश्न।
२९–रामका शोक करना।
३०–नारदका व्रत-कथन करना।

चतुर्थ-स्कन्ध

१—कृष्णावतार-विषयक प्रश्न।
२—कर्मसे जन्मादि-कारण कथन।
३—अदितिका शाप-कथन।
४—अधर्ममें जगत्‌की स्थिति।
५—नारायणकी कथा।
६—नारायणका उर्वशीको निर्माण करना।
७—अहङ्कारका आवर्त्तन।
८—प्रह्लादनारायणका समागम।
९—प्रह्लादनारायणका युद्ध।
१०–नारायणको भृगुका शाप होना।
११–शुक्राचार्यका मन्त्र-लाभको जाना, पीछे उनकी माताका वध।
१२–जयन्तीका शुक्रकी सेवाको भेजना।
१३–शुक्ररूपसे बृहस्पतिका दैत्योंको वञ्चित करना।
१४–दैत्योंको शुक्रकी प्राप्ति।
१५–देवता दानवोंके युद्धकी शान्ति।
१६–हरिके अनेक अवतार-वर्णन।
१७–अप्सराओंका नारायणके आश्रममें आना।
१८–दुष्टराजोंके भारसे आक्रान्त हो भूमिका ब्रह्माके समीप जाना।
१९–देवताओंका शक्तिकी स्तुति करना।
२०–वासुदेवके अंशावतारकी कथा।
२१–देवकीके सात पुत्रोंका वध।
२२–देवताओंका अंशावतार।
२३–कृष्णजन्म-कथन।
२४–कृष्णकथा।
२५–पराशक्तिका सर्वज्ञत्व-कथन।

पञ्चम-स्कन्ध

१—विष्णुकी अपेक्षा रुद्रका श्रेष्ठत्व।
२—देवीमाहात्म्य वर्णन महिषोत्पत्ति।
३—देवेन्द्रके साथ युद्धका उद्योग।
४—देव-सभामें सम्मति।
५—देवसेनाका पराजय।
६—देवदानवका युद्ध-वर्णन।
७—पराजित हो देवताओंका कैलास-गमन।
८—जगदम्बाका पलाश समिधा ज्वालनके निमित्त उत्पत्ति-कथन।
९—महायुद्धमें देवताओंका देवीको पूजना।
१०–रक्तदूत संवाद-कीर्तन।
११–महिषासुरकी सभामें विमृश्यदूतको भेजना।
१२–ताम्रके आगमन-उपरान्त वाष्कल और दुर्मुखको भेजना।

१३—बाष्कल दुर्मुखका वध ।
१४—देवीका ताम्र और चिक्षुरको मारना ।
१५—महायुद्धमें असिलोमादिका वध ।
१६—महिषासुर और देवीका संवाद ।
१७—मन्दोदरीका कथानक ।
१८—महिषासुरका वध-वर्णन ।
१९—देवताओंका देवीकी स्तुति करना ।
२०—अन्तर्द्धानके उपरान्त वृत्तान्त ।
२१—शुम्भासुरकी कथा ।
२२—परादेवीका देवकार्यके निमित्त प्रगट होना ।
२३—कौशिकी देवीका पर्वतमें प्रगट होना ।
२४—दूत-संवाद-कीर्तन ।
२५—धूम्रलोचनका वध ।
२६—चण्डमुण्डका देवीसे युद्ध ।
२७—रक्तबीज युद्ध ।
२८—रक्तबीजके युद्धका विस्तार ।
२९—रक्तबीजका वध, शुम्भका युद्धको जाना ।
३०—निशुम्भका वध ।
३१—शुम्भासुरके वधकी कथा ।
३२—राजा और वैश्यका चरित्र, तीन सेवककी वार्त्ता ।
३३—राजासे भुवनसुन्दरीका कथन ।
३४—राजाके निमित्त तपस्वीका उपदेश ।
३५—राजा और वैश्यको देवीका दर्शन ।

षष्ठ-स्कन्ध

१—वृत्र दैत्यवध कथारम्भ ।
२—त्रिशिरावध-वर्णन ।
३—पिताकी आज्ञासे वृत्रके तपके निमित्त वन-गमन ।
४—वृत्रका वर पाकर गर्वित होना तथा पराजित हो देवताओंका कैलास-गमन ।
५—देवताओंका देवीकी स्तुति कर वर पाना ।
६—वृत्रके वधकी कथा ।
७—इन्द्रका गुप्त होना नहुषका इन्द्रपद पाना ।
८—नहुषकी प्रार्थनासे शचीका चिन्तित होना और देवीके प्रसादसे इन्द्रका दर्शन पाना ।
९—नहुषका अधःपतन ।
१०—कर्मका त्रिविध रूप कथन ।
११—युगधर्म-कथन, सत्-असत्-धर्मका निर्णय ।
१२—तीर्थयात्रा-प्रसङ्गसे आडीवक युद्ध-कथन ।
१३—शुनःशेपकी कथाके उपरान्त युद्धका स्मरण ।
१४—वसिष्ठका मित्रावरुणकी सान्तान होना ।
१५—निमिकी देहान्तरगति, हैहयोंकी कथा ।
१६—हैहयद्वारा भार्गवोंका वध ।
१७—देवीकी कृपासे भृगुवंशकी स्थिति ।
१८—हैहयकी कथा ।
१९—हरिका अश्विनीमें जन्म ।
२०—हयीसे प्रगट हरिका कथानक ।
२१—एक वीरका अभिषेकके पीछे वृतान्त ।
२२—एकावलीकी कथा ।
२३—हैहयका कालकेतुसे महायुद्ध ।
२४—विक्षेप-शक्ति-वर्णन ।
२५—व्यासका निजमोह-कथन ।
२६—नारदका निज-वृत्तान्त-कथन ।
२७—नारदका विवाह ।
२८—फिर भी उसका विस्तार ।
२९—स्त्रीभावको प्राप्त हुए नारदजीका फिर पुरुष होना ।
३०—हरिका महामायाका प्रभाव-कहना ।
३१—भगवतीका ध्यानादि-कथन ।

सप्तम-स्कन्ध

१—सूर्य सोमवंशियोंकी कथा ।
२—उनके वंशका विस्तार ।
३—च्यवनको सुकन्याकी प्राप्ति ।
४—सुकन्याका अश्विनीकुमारसे संवाद ।
५—अश्विनीकुमारकी कृपासे च्यवनका युवा होना ।

६—शर्यातिका यज्ञ करना ।
७—उसमें अश्विनीकुमारका सोमपान ।
८—उसके वंशकी कथा ।
९—ककुत्स्थादिकी उत्पत्ति ।
१०—सत्यव्रतकी कथा ।
११—त्रिशङ्कुकी कथा ।
१२—त्रिशङ्कुका स्वर्ग-गमन ।
१३—हरिश्चन्द्रके राजा होनेमें त्रिशङ्कुका विश्वामित्रके सङ्ग समागम ।
१४—हरिश्चन्द्रकी कथा ।
१५—राजाका पुत्रोत्सव करना ।
१६—शुनःशेपकी कथा ।
१७—विश्वामित्रका शुनःशेपको छुड़ाना ।
१८—हरिश्चन्द्रका विश्वामित्रसे बैर ।
१९—हरिश्चन्द्रका राज्यध्वंस ।
२०—राजाका दक्षिणा देनेका यत्न करना ।
२१—राजाका शोक वर्णन ।
२२—हरिश्चन्द्रका अपनेको बेचना ।
२३—चाण्डालका हरिश्चन्द्रको मोल लेना ।
२४—हरिश्चन्द्रका चाण्डालके घर रहना ।
२५—राजाके पुत्र और भार्याकी कथा ।
२६—पत्नीको पहिचानकर राजाका शोक ।
२७—हरिश्चन्द्रका स्वर्गवास ।
✓२८—शताक्षीकी महिमा ।
२९—राजवार्त्ताका प्रश्न ।
३०—गौरीका जन्म नाना पीड़ाकी उत्पत्ति ।
३१—पार्वतीका हिमालयसे जन्म ।
३२—आत्मतत्त्वका निरूपण ।
३३—विश्वरूपदर्शन ।
३४—ज्ञानका मोक्षार्थत्व ।
३५—मन्त्रसिद्धिका साधन ।
३६—ब्रह्मतत्त्व-वर्णन ।
✓३७—भक्ति-महिमा ।
✓३८—देवीके महोत्सव-व्रत और स्थान ।
३९—भगवती-पूजन ।
४०—ब्रह्मपूजाका विधान ।

✓ अष्टम-स्कन्ध

१—मनुको देवीका वर देना ।
२—वाराहका भूमि उद्धार ।
३—मनुवंश-वर्णन ।
४—प्रियव्रतका कथानक ।
५—भूमण्डलका विस्तार ।
✓६—देवीका वर्णन, देवी उपासना ।
७—मूलसे ऊर्ध्व-वर्णन ।
८—इलावृत्त-वर्णन ।
९—वर्षोंके अन्तरमें सेव्य सेवकत्वका वर्णन ।
१०—सेव्य-सेवक-स्वरूप कथन ।
११—अन्य वर्षोंमें क्रमसे प्राप्त हुई सेव्य-सेवकता ।
१२—द्वीपान्तरोंके समाचार ।
१३—शेष द्वीप-समाचार ।
✓१४—लोकालोक पर्वतोंकी व्यवस्था ।
१५—सूर्यकी गति मान्द्यता-प्रकार ।
१६—चन्द्रादिकी गतिके अनुसार फल ।
१७—ध्रुवमण्डलकी स्थिति ।
१८—राहुमण्डल, चन्द्र-सूर्य-ग्रहण-वर्णन ।
१९—तलादिका वर्णन ।
२०—तलातलकी स्थिति ।
२१—नरक-स्वरूप-वर्णन ।
२२—पातकोंका वर्णन ।
२३—शेष नरकोंका वर्णन ।
२४—देवीका आराधन-वर्णन ।

नवम-स्कन्ध

१—संक्षेपसे शक्तिका वर्णन ।
२—पाँच प्रकृतिका सम्भव ।
३—देवता आदिकी सृष्टि ।
४—सरस्वती-स्तोत्र पूजादि ।
५—धर्मपुत्रका नारदके निमित्त सरस्वती महास्तोत्र कहना ।
६—पृथ्वीमें लक्ष्मी-गङ्गा और सरस्वतीका जन्म-वर्णन ।

७—इनका शापसे उद्धार होना ।
८—गङ्गादिकी उत्पत्ति-काल-वर्णन ।
९—शक्तिकी उत्पत्ति-प्रसङ्गसे भूमिशक्तिकी उत्पत्ति ।
१०—धरादेवीका अपराधी होनेसे नरक-प्राप्ति ।
११—गङ्गाकी उत्पत्ति ।
१२—राधाकृष्णके अङ्गसे सम्भव गङ्गाकी गोलोकमें उत्पत्ति ।
१३—गङ्गाका नारायणका प्रिय होना ।
१४—गङ्गा और विष्णुका परस्पर सम्बन्ध ।
१५—तुलसी उपाख्यानका प्रश्न ।
१६—महालक्ष्मीका राजगृहमें जन्म ।
१७—धर्मध्वजकी सुता तुलसीकी कथा ।
१८—शङ्खचूड़से तुलसीकी सङ्गति और संवाद ।
१९—उन दोनोंके विवाह उपरान्त देवताओंका वैकुण्ठ गमन ।
२०—शङ्खचूड़का देवताओंसे युद्ध ।
२१—शङ्खचूड़ और शिवका युद्ध ।
२२—युद्धारम्भ ।
२३—जनार्दनद्वारा शङ्खचूड़का कवच हरण ।
२४—तुलसीसङ्गवर्णन और उसका माहात्म्य ।
२५—महामन्त्र-सहित तुलसी पूजन ।
२६—सावित्रीका आख्यान ।
२७—उसका राजाके उदरमें जन्म ।
२८—अध्यात्म-विषयक प्रश्न ।
२९—दानधर्मका फल ।
३०—अनेक दानोंका फल ।
३१—सावित्रीके निमित्त मूल-शक्तिका महा-मन्त्र देना ।
३२—पातकोंके फल ।
३३—नरककुण्डमें गिरनेवालोंके लक्षण ।
३४—शेष कुण्डोंका वर्णन ।
३५—फिर भी शेष नरककुण्डोंका वर्णन ।
३६—देवीकी भक्तिसे यमपुरीका भय-निवारण ।
३७—नरककुण्डोंके लक्षण ।
३८—देवीकी महत्ता ।
३९—महालक्ष्मीका आख्यान ।
४०—नारदसे लक्ष्मीका जन्म-कथन ।
४१—इन्द्रका ब्रह्मलोक-गमन ।
४२—महालक्ष्मीका पूजन-कर्मादि ।
४३—स्वाहा-शक्तिका उपाख्यान ।
४४—स्वधा-शक्तिकी कथा ।
४५—दक्षिणादेवीका उपाख्यान ।
४६—षष्ठीदेवीका उपाख्यान ।
४७—मङ्गलचण्डीकी कथा ।
४८—मनसादेवीकी कथा-स्तोत्रादि ।
४९—सुरभीका उपाख्यान ।
५०—राधा और दुर्गाका चरित्र ।

दशम-स्कन्ध

१—स्वायम्भू मनुका उपाख्यान ।
२—भगवतीका विन्ध्यपर्वतपर जाना ।
३—विन्ध्यद्वारा सूर्यका मार्ग रुकना ।
४—वृषभध्वजकी स्तुति और उसके निमित्त वृत्तान्त-कथा ।
५—महाविष्णुका स्तोत्र ।
६—अगस्त्यका देवताओंकी प्रार्थनासे विन्ध्याचलकी वृद्धिको रोकना ।
७—मुनिद्वारा विन्ध्याचलकी वृद्धि रुकनी ।
८—स्वारोचिष-मनुकी कथा ।
९—चाक्षुष-मनुकी कथा ।
१०—सावर्णि-मनुकी कथा ।
११—महाकालीका चरित्र ।
१२—महालक्ष्मी और महासरस्वतीका चरित्र ।
१३—मनुओंके तपसे देवीका वर देना ।

एकादश-स्कन्ध

१—प्रातःकृत्य-वर्णन ।
२—शौचादि विधि ।
३—स्नान-विधिः रुद्राक्षधारण-महिमा ।
४—रुद्राक्षोंकी अनेक विधि-वर्णन ।
५—जपमाला-विधान ।

द्वादश-स्कन्ध

श्रीमद्भागवत् और देवीभागवत्में इस बातका झगड़ा है कि इन दोनोंमेंसे महापुराण कौन है ? अन्य महापुराणोंमें जहाँ कहीं चर्चा आयी है, वहाँ केवल भागवत् शब्दका प्रयोग है और स्पष्ट है कि भागवत् शब्द भगवती महामायासे सम्बन्ध रखनेवाला अथवा भगवान् श्रीमान्से सम्बन्ध रखनेवाला दोनों ही अर्थोंमें प्रयुक्त हो सकता है। परन्तु विशेषण-रहित भागवत् शब्द पारिभाषिक है और अत्यन्त प्राचीन वैष्णव-सम्प्रदायका द्योतक है जिसका विस्तृत वर्णन महाभारतमें हुआ है। हमारे सामने श्रीमद्भागवत्की जितनी पोथियाँ आयीं उनमेंसे किसीमें सम्पादककी ओरसे यह प्रयत्न नहीं है कि श्रीमद्भागवत्को महापुराण सिद्ध किया जाय। परन्तु देवीभागवत्के प्रत्येक संस्करणमें उसे महापुराण सिद्ध करनेका महा प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है। विषय भी महत्वकी दृष्टिसे प्रायः दोनों ही बराबर दीखते हैं। श्रीमद्भागवत्में विष्णु-भक्तिका उत्कर्ष है और देवीभागवत्में परमात्माकी पराशक्तिका उत्कर्ष दिखाया है। दोनों भागवतोंमें अठारह हजार श्लोक हैं और बारह ही स्कन्द हैं। परन्तु नारद-पुराणमें जो विषय-सूची दी हुई है वह श्रीमद्भागवत्में घटित होती है और पद्मपुराण तथा मत्स्यपुराण दोनों श्रीमद्भागवत्की ही गवाही देते हैं। विष्णुपुराणमें शिवपुराणकी चर्चा है परन्तु वायुपुराणकी नहीं। अर्थात् विष्णुपुराणने वायुपुराणको उपपुराण माना है। परन्तु जो वायुपुराण और शिवपुराणको एक मानते हैं वह वायुपुराणको शिवपुराण कहकर उसके उत्तर-खण्डसे यह प्रमाण देते हैं—

भगवत्याश्च दुर्गायाश्चरितम् यत्र विद्यते ।
तत्तु भागवतम् प्रोक्तम् न तु देवीपुराणतम् ॥

और कालिकापुराणमें लिखा है कि—

यदिदं कालिकाख्यं तन्मूलं भागवतं स्मृतम् ।

इन दोनों प्रमाणोंको देकर लोग यह सिद्ध करते हैं कि देवीभागवतका नाम ही भागवत है । और देवीयामलतन्त्रमें तो यह कहा है कि श्रीमद्भागवतमें राधाजीका उत्कर्ष वर्णन किया है और जो श्रीमद्भागवत वैष्णवपुराण मशहूर है, उसमें भगवती राधाजीका कहीं नाम भी नहीं है ।

देवीभागवतके पक्षमें इतनी निर्बलता है कि जिन प्रमाणोंसे उसका महापुराणत्व प्रतिपादित होता है वह उपपुराणों और तन्त्रोंसे उद्धृत होते हैं । और श्रीमद्भागवत्के लिए महापुराण ही प्रमाण देते हैं । इसीलिए श्रीमद्भागवतका पक्ष प्रबल है । एक बात और है कि कुछ लोग नारदपुराणको ही उपपुराण मानते हैं और बृहन्नारदीयको जिसमें कि पुराणोंकी सूची नहीं है महापुराण मानते हैं । यह तो दोनोंके अवलोकनसे उल्टी बात मालूम होती है। देवीभागवत भी नारदीयपुराणको ही महापुराण कहता है ।

हमने उपलब्धिके क्रमसे इस ग्रन्थमें पुराणोंके विवरण दिये हैं। अन्तमें देनेसे कोई ऐसा न समझे कि हमने उपपुराण समझकर इसे श्रीमद्भागवतके साथ-साथ नहीं दिया है । दोनों भागवतोंमें महापुराण कौन सा समझा जाय यह बात मैं विद्वानोंकी रुचि, बुद्धि और सम्मतिपर छोड़ देता हूँ ।

पैंतालीसवाँ अध्याय

लिङ्गपुराण

लिङ्गपुराणकी विषय-सूची इस प्रकार है—

२६—सन्ध्या, तर्पण, पञ्चयज्ञ और भस्मस्नानका विधान।
२७—शिवपूजनका संक्षेपसे विधान।
२८—आभ्यन्तर पूजनका वर्णन।
२९—देवदारु वनमें शिवजीका जाना, वहाँके मुनियोंका शिवजीपर क्रोध आदि और सुदर्शन मुनिका वृत्तान्त।
३०—श्वेतमुनिकी कथा और कालका पराजय।
३१—शिवपूजन-विधान, मुनियोंको शिवदर्शन।
३२—मुनियोंका किया शिव-स्तोत्र।
३३—मुनियोंके प्रति शिवजीका उपदेश देना, मुनिकृत-स्तुति।
३४—भस्म-माहात्म्य, मुनियोंके प्रति पाशुपत योगका उपदेश।
३५—दधीचि मुनि और क्षुप राजाका विवाद, शुक्राचार्यका किया दधीचिके प्रति मृत्युञ्जय मन्त्रोपदेश, मृत्युञ्जय मन्त्रका अर्थ।
३६—दधीचिका विष्णुजीसे युद्ध, दधीचिकी जय।
३७—शिलाद मुनिका तप, इन्द्रका वहाँ आगमन और शिलाद प्रति उपदेश।
३८—सृष्टिके उत्पन्न करनेका वर्णन।
३९—सत्ययुग आदि तीनों युगोंका वर्णन।
४०—कलियुगके धर्म, युगकी सन्ध्याके धर्म और सत्ययुगके आरम्भका वर्णन।
४१—ब्रह्माजीकी उत्पत्ति, ब्रह्माजीका मरण और पुनर्जीवन।
४२—नन्दीकी उत्पत्ति।
४३—नन्दीके प्रति शिवजीका वर-प्रदान जटोदकादि पाँच नदियोंकी उत्पत्ति।
४४—नन्दीके अभिषेकका वर्णन।
४५—पातालोंका वर्णन।
४६—सप्तद्वीपोंका वर्णन।
४७—जम्बूद्वीपका वर्णन।
४८—सुमेरु पर्वत और इन्द्र आदि दिग्पालोंकी पुरियोंका वर्णन।
४९—पर्वतोंका वर्णन।
५०—पर्वतोंके निवासियोंका वर्णन।
५१—शिवक्षेत्रोंका वर्णन।
५२—जम्बूद्वीपके खण्डोंमें रहनेवालोंका वर्णन।
५३—द्वीपोंके पर्वत और सप्तलोकोंका वर्णन, देवताओंको शिवजीका दर्शन।
५४—सूर्यकी गति और मेघोंका वर्णन।
५५—सूर्य भगवान्‌के रथ और उनके साथ रहनेवाले देवता आदिका वर्णन।
५६—चन्द्रका वर्णन।
५७—ग्रहोंके प्रमाण और गति आदिका वर्णन।
५८—सबके स्वामियोंका वर्णन जो सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माजीने बनाये।

सङ्ग करनेसे जैसी सन्तान होय उन सबका वर्णन।

९०—यतियोंके लिए प्रायश्चित्त।

९१—अरिष्टोंका वर्णन और अरिष्ट देख मृत्युकाल समीप आया जान धारण करे, उसका वर्णन।

९२—काशीका वर्णन, माहात्म्य, वहाँके अनेक शिवलिङ्गोंके दर्शनका फल, और श्रीशैल पर्वतके मल्लिकार्जुन आदि शिवक्षेत्रोंका माहात्म्य।

९३—अन्धकासुरकी कथा।

९४—वाराह भगवान और हिरण्याक्षकी कथा, वराहजीकी स्तुति।

९५—नृसिंहजीकी कथा, नृसिंह-स्तुति और शिवस्तुति।

९६—शरभावतारकी कथा, नृसिंहजीकृत शिवस्तुति और नृसिंहका संहार।

९७—जलन्धर दैत्यके वधकी कथा।

९८—सुदर्शन प्राप्त्यर्थ विष्णु भगवानके तप करनेका वर्णन, विष्णु भगवानका किया शिवसहस्रनाम और विष्णु भगवानको सुदर्शनचक्रकी प्राप्ति।

९९—संक्षेपसे सतीजीकी कथा।

१००—दक्ष यज्ञ विध्वंसका वर्णन।

१०१—तारकासुरका किया देवताओंका पराजय, कामदेवका शिवजीकी नेत्राग्निसे भस्म होना।

१०२—पार्वतीजीका स्वयम्वरमें शिवजीको वरना।

१०३—शिवजी और पार्वतीजीके विवाहका वर्णन।

१०४—देवताओंकी की शिवस्तुति।

१०५—गणेशके जन्मका वर्णन।

१०६—काली भगवतीकी उत्पत्ति, दारुक दैत्यका वध, क्षेत्रपालकी उत्पत्ति।

१०७—उपमन्युकी कथा।

१०८—श्रीकृष्णका उपमन्युका शिष्य होना और पाशुपत योगका माहात्म्य।

उत्तरार्द्ध

१—कौशिक आदि विष्णु-भक्तोंकी कथा, ब्रह्माजीका भगवानके दर्शनार्थ श्वेतद्वीपमें गमन, विष्णु भगवान्‌का किया तुम्बुरुका सत्कार देख क्षुब्ध हो नारदजीका तप करना।

२—सङ्गीतकी प्रशंसा और सङ्गीतसे भगवानकी प्रसन्नता होती है इसका कथन।

३—जातबन्धु नाम उलूकराजसे नारदजीका सङ्गीत विद्या सीखना।

४—विष्णुभक्तोंकी प्रशंसा।

५—राजा अम्बरीष, नारद, पर्वत और अम्बरीषकी कन्या श्री सतीकी कथा।

६—अलक्ष्मीकी कथा और उसके निवासयोग्य स्थानोंकी कथा।

७—अष्टाक्षर और द्वादशाक्षर विष्णु मन्त्रका माहात्म्य और द्वादशाक्षरके उपासक एक ब्राह्मणकी कथा।

८—शिवपञ्चाक्षर और षडक्षर मन्त्र माहात्म्य और एक दुराचारी ब्राह्मणकी कथा।
९—पशुपाशोंका वर्णन और परमेश्वरका प्रतिपादन।
१०—शिवकी आज्ञाका वर्णन।
११—शिवपार्वतीकी विभूतियोंका वर्णन।
१२—शिवजीकी आठ मूर्त्तियोंका वर्णन।
१३—शिवजीकी शर्व आदि आठ मूर्त्तियोंका वर्णन।
१४—ईशान आदि पञ्चब्रह्मोंका वर्णन।
१५—सत् असत् आदि रूपोंसे शिवका प्रतिपादन।
१६—शिवके क्षेत्रज्ञ आदि नामोंका प्रतिपादन।
१७—शिवका सर्वरूपत्वसे वर्णन।
१८—देवताओंकी करी शिवस्तुति, पाशुपतव्रतका विधान, भस्म धारणकी आवश्यकता, देवताओंको शिवजीका दर्शन होना।
१९—सूर्यमण्डलमें स्थित शिवका मुनियोंके प्रति दर्शन और मुनिकृत शिवस्तुति।
२०—गुरु-शिष्य-लक्षण और षड्ध्व वर्णन।
२१—शैव दीक्षाका विधान।
२२—सौर स्नान, सन्ध्या, तर्पण, सूर्यार्घ्य और सूर्यपूजन कुण्डका।लक्षण और हवन-विधि।
२३—शिवजीका आभ्यन्तर पूजन।
२४—भूतशुद्धि आदिका और शिव-पूजनका विधान।
२५—कुण्डस्रुक स्रव और प्रणीता पात्रादि हवनके पात्रोंके लक्षण। हवनका विधान।
२६—अघोर मन्त्र और अघोर परमेश्वरके पूजनका विधान।
२७—जयाभिषेकके विधान।
२८—तुलादानका विधान।
२९—हिरण्यगर्भ दानका विधान।
३०—तिलपर्वतके दानका विधान।
३१—तिलपर्वत दानका दूसरा विधान।
३२—सुवर्ण पृथिवी दानका विधान।
३३—कल्पवृक्ष दानका विधान।
३४—गणेशेश दानका विधान।
३५—सुवर्णधेनु दानका विधान।
३६—लक्ष्मी दानका विधान।
३७—तिल धेनु दानका विधान।
३८—गोसहस्र दानका विधान।
३९—सुवर्णाश्व दानका विधान।
४०—कन्या दानका विधान।
४१—सुवर्ण वृष दानका विधान।

४२—सुवर्ण गज दानका विधान ।

४३—अष्ट लोकपाल दानका विधान ।

४४—त्रिमूर्त्ति दानका विधान ।

४५—जीवत श्राद्धका विधान ।

४६—शिवलिङ्ग स्थापन फलका विधान ।

४७—शिवलिङ्ग स्थापनका विधान ।

४८—और देवताओंके स्थापनका विधान और उनको गायत्री ।

४९—अघोर विष्णुके स्थापनादिका विधान और अघोर मन्त्रके जप और हवनका फल ।

५०—अघोर मन्त्रद्वारा शत्रु निग्रहका विधान ।

५१—वज्रवाहनिका नाम शत्रु संहार करनेवाले मन्त्रकी प्रशंसा, वृत्रासुरकी उत्पत्ति और वज्रवाहनिका नाम-मन्त्र ।

५२—वज्रवाहनिका विद्याके काम्य-प्रयोगोंका विधान ।

५३—मृत्युञ्जय मन्त्रका संक्षेपसे विधान ।

५४—मृत्युञ्जय मन्त्रका विस्तारसे विधान फल और मन्त्रार्थ ।

५५—पाँच प्रकारके योग और ज्ञानका वर्णन, लिङ्गपुराणके पठन और श्रवणका माहात्म्य और उत्तरार्द्ध समाप्ति ।

रेवामहात्म्य, श्रीमद्भागवत, नारदीयपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण और मत्स्यपुराणके मतसे लिङ्गपुराण ग्यारहवाँ पुराण है और उसमें ग्यारह हजार श्लोक होने चाहिए, नारदपुराणकी विषयसूचीसे मिलान करनेपर नवलकिशोर प्रेसकी छपी हुई पोथीके लिङ्गपुराण होनेमें सन्देह नहीं मालूम होता ।

मत्स्यपुराण और नारदपुराणके अनुसार लिङ्गपुराणमें अग्निकल्पकी कथाएँ होनी चाहिये। परन्तु प्रस्तुत लिङ्गपुराणमें उसीके अनुसार ईशानकल्पकी कथाएँ हैं। यह भेद समझमें नहीं आता ।

अरुणाचलमाहात्म्य, गौरीकल्याण, पञ्चाक्षरमाहात्म्य, रामसहस्रनाम, रुद्राक्षमाहात्म्य, सरस्वती-स्तोत्र इत्यादि नामकी अनेक पोथियाँ लिङ्गपुराणसे ली हुई बतायी जाती हैं। इनके सिवाय वाशिष्ठ लैङ्ग-उपपुराण भी मिलता है। हलायुधने अपने ब्राह्मण सर्वस्वमें किसी वृहद् लिङ्गपुराणके वचन उद्धृत किये हैं, परन्तु यह पुराण देखनेमें नहीं आया ।

छियालीसवाँ अध्याय

भविष्यपुराण

भविष्यपुराणकी विषयसूची इस प्रकार है—

१—सुमन्तमुनिके प्रति राजा शतानीकका प्रश्न, युगोंकी संख्या और उनके धर्म, चार वर्णोंकी उत्पत्ति, ब्राह्मणकी प्रशंसा, संस्कारोंकी आवश्यकता और उनके नाम, अनसूया आदि आठ गुणोंके लक्षण, सृष्टिकी उत्पत्तिका कथन।

२—संस्कारोंकी विधि, नामकरणकी विधि, यज्ञोपवीतकी विधि, भोजनविधि, अधिक भोजन करनेका निषेध। उच्छिष्ट रखनेका निषेध, आचमन करनेकी विधि और आचमनका विस्तारपूर्वक फल।

३—वेद पढ़नेकी विधि, गायत्रीका माहात्म्य, सन्ध्यावन्दनका समय, जपका फल, विद्या पढ़ानेका अधिकारी, अभिवादनकी विधि, आचार्य आदिके लक्षण, विद्वान्‌की स्तुति और विद्याहीनकी निन्दा, वेद पढ़कर वैदिक कर्मोंके अनुष्ठान करनेकी आवश्यकताका कथन, दानके पात्रका कथन, ब्रह्मचारीके धर्म।

४—स्त्रीके सब अङ्गोंका लक्षण।

५—धन सम्पादन करनेकी आवश्यकताका कथन, तुल्य कुलमें सम्बन्ध करनेकी प्रशंसा।

६—चार वर्णके विवाहोंकी व्यवस्था, आठ प्रकारके विवाह, उनसे उत्पन्न हुए पुत्रोंके गुण, कन्याका धन लेनेका निषेध, निवास योग्य देशका निर्णय।

७—उत्तम देशमें रहने योग्य स्थानका विचार, उस स्थानमें घर बनानेका प्रकार उसमें रहकर स्त्रियोंकी रक्षाका प्रकार, स्त्रियोंकी दुष्टताका वर्णन, बहुत पत्नियोंसे वर्तनेकी रीति, स्त्रीके आचरणकी परीक्षाका प्रकार, दुष्ट स्त्रीका त्याग, पतिव्रताके आदरका कथन।

८—शास्त्रकी आवश्यकता, परम्पराके धर्मके आचरणकी आवश्यकता।

९—पतिव्रताका आचरण।

१०—गृहस्थका व्यवहार।

११—गृहस्थका व्यवहार।

१२—गृहस्थकी स्त्रीको आचरणका उपदेश।

१३—प्रोषितपतिकाका आचरण, छोटी बड़ी सपत्नियोंका परस्पर वर्तना।

१४—दुर्भगाको योग्य आचरणका उपदेश जिससे पति अनुकूल हो जाय।

१५—तिथियोंके व्रतकी विधि, प्रतिपदा व्रतका माहात्म्य।

१६—ब्रह्माजीके पूजनका फल, मन्दिर बनानेका फल, अनेक दुग्ध आदि द्रव्योंसे स्नान करानेका फल, पूजा-विधान।

१७—ब्रह्माजीकी रथयात्राका विधान, कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाकी प्रशंसा, प्रतिपदा कल्प समाप्त।

१८—द्वितीया कल्पका आरम्भ, च्यवन मुनिकी कथा, पुष्पद्वितीयाके व्रतकी विधि ।

१९—द्वितीयाके व्रतका विधान और फल, द्वितीया कल्पकी समाप्ति ।

२०—तृतीया कल्पका आरम्भ गौरी तृतीयाके व्रतका विधान और फल ।

२१—चतुर्थी व्रतकी विधि और फल, गणेशजीके विघ्नराज होनेका वृत्तान्त, शिव और ब्रह्माका विवाद, ब्रह्माका पाँचवाँ मस्तक छेदन कर शिवजीने हाथमें धारण किया इसीसे कपाली कहलाये इसका वर्णन ।

२२—गणपतिके विघ्नराज होनेका कारण, गणपति करके उपद्रुत पुरुषके लक्षण, सब विघ्न निवृत्त होनेके लिए गणेशजीके अभिषेक और बलिका विधान ।

२३—पुरुषोंके लक्षण ।

२४—पुरुषोंके लक्षण ।

२५—पुरुषोंके लक्षण ।

२६—राजाके लक्षण ।

२७—स्त्रियोंके लक्षण ।

२८—गणपतिके आराधनका विधान, मन्त्रके अनेक प्रयोग ।

२९—तीन प्रकारकी चतुर्थीका फल और व्रतका विधान, चतुर्थी कल्प समाप्ति ।

३०—पञ्चमी कल्पका प्रारम्भ, नागोंकी मातासे शाप होनेकी कथा । नागपञ्चमीका विधान, और व्रतका फल ।

३१—सर्पोंके उत्पन्न होनेका वर्णन, सर्पके शरीर, दाढ़ और अवस्थाका कथन, सर्पके काटनेके कारण, काटे हुए दंशके लक्षण ।

३२—कालसर्प करके डसे हुए पुरुषके लक्षण, दूतके लक्षण नागोंका उदय, तिथि और नक्षत्र जिनमें सर्प काटे तो रोगी असाध्य हो ।

३३—विषके फैलनेका वर्णन, विषके सात वेग, सात धातुओंमें प्राप्त विषके अलग अलग लक्षण और उसकी चिकित्सा, सब प्रकारके सर्पका विष हरनेवाली मृत सञ्जीवनी गोली ।

३४—सर्पकी भिन्न-भिन्न जातियोंमें काटे हुएका लक्षण, दर्वीकर आदि चार प्रकारके सर्प, ब्राह्मण आदि चार वर्णके सर्प, उनके डसे हुएका लक्षण और चिकित्सा, इनके काटनेका समय, रहनेका स्थान, शरीरके लक्षण, नागोंकी दृष्टि, आठनागोंकी दिशा, जाति, आयुध, रङ्ग उत्पत्ति, नागपूजनका फल, पञ्चमीका विधान ।

३५—षष्ठीकल्पका प्रारम्भ, पुष्पषष्ठीका विधान, और फल, स्कन्द-प्रशंसा ।

३६—जाति-भेदका खण्डन ।

३७—जाति-भेदका खण्डन ।

३८—जाति-भेदका खण्डन ।

३९—जाति-भेदका खण्डन ।

४०—चार वर्णोंके लक्षण, और उनमें भेद होनेका कारण ।

४१—भाद्रपष्ठीका माहात्म्य, स्कन्दके दर्शन पूजन आदिका फल, षष्ठीकल्प समाप्ति ।

७१—नारदजीके प्रति साम्बका प्रश्न।

७२—नारदका कहा हुआ सूर्यनारायणका प्रभाव, साम्बका प्रश्न।

७३—नारदकृत प्रकृति पुरुष वर्णन।

७४—सूर्यभगवान्‌की उत्पत्ति, किरणोंका वर्णन, सूर्यनारायणका सर्वव्यापकत्व कथन।

७५—सूर्यनारायणकी दो भार्या और सन्तानोंका वर्णन।

७६—सूर्यनारायणको प्रणाम, प्रदक्षिणा आदि करनेका फल, संक्षेपसे अर्वावसु नाम ब्राह्मणका इतिहास।

७७—विजया-सप्तमीका विधान।

७८—आदित्यवारका कल्प, बारह प्रकारके आदित्यवारोंका कथन, नन्दनाम आदित्य-वारका विधान और फल।

७९—भद्रवारका विधान और फल।

८०—सौम्यवारका विधान।

८१—कामदवारका विधान।

८२—पुत्रदवारका विधान।

८३—जयवार और जयन्तवारका विधान।

८४—विजयवारका विधान।

८५—आदित्याभिमुखवारका विधान।

८६—हृदयनामवारका विधान।

८७—रोगहावारका विधान।

८८—महाश्वेत प्रियवरका विधान, आदित्यवार-कल्प समाप्ति।

८९—सूर्यनारायणको अनेक उपचार और पदार्थ अर्पण करनेका अलग अलग फल।

९०—एक वैश्य और ब्राह्मणकी कथा, सूर्यमन्दिरमें पुराण बाँचनेका फल।

९१—सूर्यनारायणको स्नान आदि करानेका फल।

९२—जयासप्तमीका विधान और फल।

९३—जयन्तीसप्तमीका विधान और फल।

९४—अपराजितासप्तमीका विधान।

९५—महाजयासप्तमीका विधान।

९६—नन्दासप्तमीका विधान।

९७—भद्रासप्तमीका विधान।

९८—तिथिस्वामी और नक्षत्र स्वामियोंके पूजनका फल।

९९—सूर्यनारायणकी उपासनाकी आवश्यकता।

१००—फाल्गुन शुक्ल सप्तमीके उपवासका विधान।

१०१—सप्तमी व्रतके उद्यापनका विधान और फल।

१०२—पापनाशिनी सप्तमीका विधान।

१०३—पदद्वय व्रतका कथन।

उत्तरार्द्ध

२५—अनन्तादि तृतीयाका विधान और फल ।

२६—अक्षयतृतीयाका फल और विधान ।

२७—अङ्गारक-चतुर्थीका विधान और फल ।

२८—गणपति द्वारा उपद्रुत पुरुषके लक्षण और गणपतिके अभिषेकका विधान ।

२९—विघ्नविनायक चतुर्थीका विधान और फल ।

३०—शान्ति-व्रतका विधान और फल ।

३१—सरस्वती-व्रतका विधान और फल ।

३२—नागपञ्चमीके व्रतका विधान और फल ।

३३—श्री पञ्चमीके व्रतका विधान और फल ।

३४—विशोक षष्ठी-व्रतका विधान और फल ।

३५—कमल-षष्ठीका विधान और फल ।

३६—मन्दार-षष्ठीका विधान और फल ।

३७—ललिता-षष्ठीका विधान और फल ।

३८—कुमार-षष्ठीका विधान और फल ।

३९—विजय-सप्तमीका विधान और फल ।

४०—आदित्य-मण्डकदानका विधान ।

४१—वर्ज्य-सप्तमीका विधान और फल ।

४२—कुक्कुटी-व्रतका फल और विधान ।

४३—सप्तमी-कल्पका विधान और फल ।

४४—कल्याण-सप्तमीका विधान और फल ।

४५—शर्करा-सप्तमीका विधान और फल ।

४६—अचला सप्तमीको स्नानका माहात्म्य और विधान ।

४७—बुधाष्टमीका विधान और फल ।

४८—श्रीकृष्ण जन्माष्टमीका विधान और फल ।

✓४९—दूर्वाष्टमीका विधान और फल ।

५०—प्रतिमासकी कृष्णाष्टमीका विधान और फल ।

५१—दत्तात्रेय और कार्तवीर्यकी कथा, अनाद्याष्टमीका विधान और फल ।

५२—सोमाष्टमी और अर्काष्टमीका विधान और फल ।

५३—श्रीवृक्षनवमीका विधान और फल ।

✓५४—ध्वज नवमीका विधान और फल, नव दुर्गास्तोत्र ।

५५—उल्का नवमीका विधान और फल ।

५६—दशावतार व्रतका विधान और फल ।

५७—तारक द्वादशीका विधान और फल और एक राजाकी कथा ।

५८—अरण्यद्वादशीका विधान और फल ।

५९—रोहिणी व्रतका विधान और फल ।

६०—अवियोग व्रतका विधान और फल।

६१—गोवत्स द्वादशीका विधान, फल, गौओंका माहात्म्य, मुनियोंकी कथा, राजा उत्तान पादकी कथा।

६२—गोविन्दशयन व्रतका विधान, चातुर्मास्यके नियम और फल।

६३—सब प्रकारकी शान्ति करनेवाला नीराजन विधान।

६४—भीष्मपञ्चकका विधान और फल।

६५—मल्ल द्वादशीका विधान।

६६—वामन द्वादशीका विधान और फल।

६७—प्रसि द्वादशीका विधान और फल।

६८—गोविन्द द्वादशीका विधान और फल।

६९—अखण्ड द्वादशी व्रतका विधान और फल।

७०—मनोरथ द्वादशीका विधान और फल।

७१—तिल द्वादशीका विधान और फल।

७२—एक वैश्यकी कथा और सुकृत द्वादशीका विधान।

७३—धरणी द्वादशी व्रतका विधान और फल।

७४—विशोक द्वादशीका विधान और फल, गुड़धेनु आदि दश धेनुओंके दानका विधान।

७५—विभूति द्वादशीका विधान, फल और राजा पुष्पवाहनकी कथा।

७६—मदन द्वादशीका विधान और फल, गर्भिणीके धर्म।

७७—दुर्गा महिमा और अङ्कपाद व्रतका विधान।

७८—दुर्गन्धनाशन व्रतका विधान।

७९—यमादर्शन व्रतका विधान।

८०—अनङ्ग त्रयोदशी व्रतका विधान और फल।

८१—पालीव्रतका विधान और फल।

८२—रम्भाव्रतका विधान और फल।

८३—उतथ्य मुनि और अङ्गिरा मुनिकी कथा, शिव चतुर्दशीका विधान और फल।

८४—श्रवणिका व्रतका विधान और फल।

८५—नक्त व्रतका विधान और फल।

८६—प्रतिमासकी शिवचतुर्दशीका विधान और फल।

८७—सर्व फल त्याग व्रतका माहात्म्य और फल।

८८—ताराके निमित्त देवताओंसे चन्द्रमाका युद्ध। विजय पूर्णिमा व्रतका विधान और फल और अमावस्याको श्राद्ध आदि करनेका फल।

८९—वैशाखी, कार्त्तिकी और माघी पूर्णिमाका विधान और फल।

९०—युगादि तिथियोंका माहात्म्य और विधान।

९१—सत्यवान् और सावित्रीकी कथा, सावित्री व्रतका विधान और फल।

९२—कलिङ्गभद्रा रानीकी कथा, कृत्तिका व्रतका विधान और फल।

√१२६—महानवमीका विधान।

१२७—इन्द्रध्वजका विधान।

१२८—दीपमालाकी कथा और विधान।

१२९—ग्रहयज्ञ, अयुत होम और लक्ष होमका विधान।

१३०—कोटि होमका विधान।

१३१—महाशान्तिका विधान।

१३२—दानकी प्रशंसा, गोदानका विधान और फल।

१३३—तिलधेनुका विधान और फल।

१३४—जलधेनुका विधान फल और मुद्गल मुनिकी कथा।

१३५—घृतधेनुका विधान और फल।

१३६—लवणधेनुका विधान और फल।

१३७—सुवर्णधेनु दानका विधान और फल।

१३८—रत्नधेनुके दानका विधान और फल।

१३९—उभय मुखी धेनुके दानका विधान और फल।

१४०—वृषभदानका विधान और फल।

१४१—महिषीदानका विधान और फल।

१४२—मेषीदानका विधान और फल।

१४३—भूमिदानका विधान और फल।

१४४—सुवर्णभूमिदानका विधान और फल।

१३५—हलपंक्तिदानका विधान और फल।

१४६—राजा बभ्रुवाहनकी कथा और अपाकदानका विधान।

१४७—गृहदानका विधान और फल।

१४८—अन्नदानका माहात्म्य, राजा श्वेत तथा एक वैश्यकी कथा।

१४९—स्थालीदानका विधान और फल।

१५०—दासीदानका विधान और फल।

१५१—प्रपादान और जलदानका विधान और फल।

१५२—शीतकालमें अँगीठी दानका विधान और फल।

१५३—पुस्तकदान और विद्यादानका विधान और फल।

१५४—तुलादानका विधान और फल।

१५५—हिरण्यगर्भदानका विधान और फल।

१५६—ब्रह्माण्डदानका विधान और फल।

१५७—भुवनप्रतिष्ठाका विधान और फल।

१५८—नक्षत्रदानका फलसहित विधान।

१५९—तिथिदानका फलसहित विधान।

१६०—वराहदानका विधान और फल।

१६१—धान्याचलके दानका विधान और फल।

१६२—लवणाचलके दानका विधान और फल।

१६३—गुड़पर्वतके दानका विधान और फल।

१६४—सुवर्णपर्वतके दानका विधान और फल।

१६५—तिलके पर्वतके दानका विधान और फल और तिलोकी उत्पत्तिसहित प्रशंसा।

१६६—कर्पासाचल दानका विधान और फल।

१६७—घृताचल दानका विधान और फल।

१६८—रत्नाचल दानका विधान और फल।

१६९—रजताचल दानका विधान और फल और एक राजाकी कथा।

१७०—सदाचार निरुपण।

१७१—पुराणश्रवण आदिका महात्म्य और पुराण समाप्ति।

विश्वकोशकारने चार भविष्य पुराणोंका वर्णन किया, पहिलेमें एकसौ तैंतीस अध्याय हैं, दूसरेमें दोसौ सत्तासी और चौरासी अध्याय, तीसरेकी अध्याय संख्या नहीं दी गयी है, चौथेमें एकसौ निन्नानवे अध्याय हैं। हमारे सामने नवलकिशोर प्रेसका छपा हिन्दीका भविष्यपुराण है जिसके पूर्वार्द्धमें १४१ अध्याय हैं और उत्तरार्द्धमें एकसौ इकहत्तर अध्याय है, विषय सूचीका मिलान करनेपर पता लगता है कि विश्वकोशकारने जिसे पहिला भविष्यपुराण और चौथा भविष्योत्तर नामका पुराण लिखा है, नवलकिशोर प्रेसकी पोथीमें वही क्रमशः पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध है। विश्वकोशमें दी हुई सूचीमें अध्यायोंकी संख्या पूर्वार्द्धमें आठ कम है और भविष्योत्तरमें अट्ठाईस अधिक है। सब मिलाकर विश्वकोशकारकी पोथियोंमें बीस अध्याय अधिक हैं।

नारदपुराणमें जो सूची दी हुई है, उस सूचीसे पूरा-पूरा मेल चारोंमेंसे एक भी संस्करणमें नहीं पाया जाता। पहिलेमें नारदपुराणकी कुछ कथाएँ मिलती हैं। दूसरे तीसरेमें भी कुछ-कुछ मिलती हैं, चौथेमें कुछ भी नहीं मिलतीं। नारदपुराणके अनुसार चौदह हजार श्लोक होने चाहिए, ब्रह्मवैवर्त तथा मत्स्यपुराणके मतसे साढ़े चौदह हजार। हमको जो पोथी उपलब्ध है वह उल्थामात्र है। उसमें श्लोक-संख्या नहीं दी हुई है।

भविष्यपुराणमें एक भारी विशेपता है, इसमें शाकद्वीपी मग ब्राह्मणोंका शाकद्वीपसे लाया जाना वर्णित है। इसमे चाल-ढाल रस्म-रिवाज विस्तारसे बताया गया है। इनके लानेवाले कृष्णपुत्र साम्ब हैं। वर्णनसे जान पड़ता है कि जरथुस्त्रके पहिले या उन्हींके समकालीन सूर्योपासक आर्य जातियाँ भारतवर्पसे पश्चिम प्रदेशोंमें रहती थीं। पारसियोंकी रीति-रस्में, मगोंसे कुछ मिलती-जुलती-सी हैं। वह वर्णन बड़े महत्वका है और शाकद्वीपी ब्राह्मणोंका पता देता है। अठारह प्रकारके कुलीन ब्राह्मण भारतमें लाये गये थे। आज भी फारसी साहित्यमें मगोंके आचार्योंका नाम "पीरे-मुगाँ' सैकड़ों जगह पाया जाता है। यह लोग यज्ञविहित सुरापान करते थे। यह बात पीरेमुग़ाँके वर्णनसे भी पायी जाती है और भविष्य-पुराणमें भी लिखी गयी है।

विश्वकोशकार कहते हैं कि तीसरे भविष्यपुराणमें उद्भिज्ज विद्याका भी वृत्तान्त है जो आधुनिक वैज्ञानिकोंके लिए ज्ञातव्य विपय है।

सैंतालीसवाँ अध्याय

उपपुराण और हरिवंशपुराण

पिछले अध्यायोंमें जिन पुराणोंके विषय-सार दिये गये हैं, उनमेंसे कई एकके सम्बन्धमें यह झगड़ा है कि यह महापुराण हैं या उपपुराण हैं। वायुपुराण और शिवपुराणके बीच पहिला झगड़ा है। श्रीमद्भागवत और देवीभागवतमें दूसरा झगड़ा है। चारों भविष्यपुराणोंमें कोई महापुराण और कोई उपपुराण अवश्य होगा। हमने इन झगड़ालू पुराणोंको भी महापुराणोंमें ही गिना है। इस तरह महापुराणोंकी संख्या बीस हो जाती है। परन्तु होनी चाहिये अठारह।

पुराण पञ्चलक्षण हैं। परन्तु यह देखा जाता है कि पुराणोंमें भिन्न भिन्न कल्पोंकी कथाएँ हैं। कथाओंमें सादृश्य भी है और भेद भी। इतिहासकी बातोंके साथ-साथ आचार-व्यवहारकी बातोंका भी बाहुल्य है। वेद, उपवेद, षडङ्ग, इतिहास, पुराण, स्मृति, दर्शन, तथा भाँति-भाँतिकी कलाओंका भी वर्णन इन पुराणोंमें आ चुका है। पुराण, रामायण, महाभारत और तन्त्र यह सब मिलाकर यदि कहा जाय कि हिन्दू-धर्मका यह विश्वकोश है तो अनुचित न होगा। इनमें जैनों, बौद्धों और अन्य नास्तिकोंकी चर्चा भी जहाँ-तहाँ आयी है जिसे देखकर साधारणतया पाश्चात्य विद्वान् इन्हें आधुनिक ग्रन्थ कहते हैं। या कम-से-कम यह मानते हैं कि इनमें क्षेपकोंका बाहुल्य है।

जिस तरह बीस महापुराण हैं उसी तरह कमसे कम उन्तीस उपपुराण भी प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक उपपुराण किसी-न-किसी महापुराणसे निकला हुआ समझा जाता है। बहुतोंका विश्वास है कि उपपुराण पीछेकी रचनाएँ हैं परन्तु अनेक उपपुराणोंसे यह प्रकट होता है कि वह अति प्राचीन कालमें संगृहीत हुए होंगे, क्योंकि उनमेंसे अनेकके उद्धरण माने हुए पुराने ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं। नीचे लिखे उपपुराण प्रसिद्ध हैं—

१—सनत्कुमार, २—नरसिंह, ३—बृहन्नारदीय, ४-शिव वा शिवधर्म, ५—दुर्वासस, ६—कपिल, ७—मानव, ८-उपनस, ९-वारुण, १०-कालिका, ११-साम्ब, १२-नन्दकेश्वर, १३—सौर, १४—पाराशर, १५—आदित्य, १६—ब्रह्माण्ड, १७—माहेश्वर, १८-भागवत, १९—वाशिष्ठ, २०—कौर्म, २१—भार्गव, २२—आद, २३-मुद्गल, २४-कल्कि, २५-देवी, २६—महाभागवत, २७—बृहद्धर्म, २८—परानन्द, २९—पशुपति।

इन उनतीस उपपुराणोंके अतिरिक्त महाभारतका खिल-पर्व, हरिवंश पुराण कहलाता है और उपपुराणोंमें भी गिना जाता है। महाभारतके प्रसङ्गमें हम यह दिखा आये हैं कि उसकी लक्षाधिक श्लोक संख्या हरिवंश-पुराणसे ही पूरी होती है। और, कई विद्वानोंका मत है कि यह अंश महाभारतमें पीछेसे जोड़ दिया गया है। इसमें विष्णुभगवानके चरितका कीर्तन है और विशेष रूपसे कृष्णावतारकी कथा है। इसी प्रसङ्गमें यह भी बताया गया है कि जैन तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि यादव कुलके थे और श्रीकृष्णजीके कोई जाति-बन्धु थे। जैनियोंका एक

५२

अलग हरिवंशपुराण है जिसमें अरष्टनेमि आदिकी कथाका प्राधान्य है, उन्हें श्रीकृष्णजी भाई बताया है और अरिष्टनेमिका ही उत्कर्ष दिखाया है। जैनियोंका हरिवंशपुराण महाभारत खिल-पर्वसे नितान्त भिन्न है। उसकी विस्तृत चर्चा अगले अध्यायमें की जायगी।

हम यहाँ उपपुराणोंकी विषय-सूची देनेको तैयार नहीं हैं, क्योंकि इससे ग्रन्थका कले बहुत अधिक बढ़ जायेगा। परन्तु हरिवश-पुराण, महाभारतका एक अंश समझा जाता है महाभारतकी विषय सूचीके साथ-साथ इसकी सूची नहीं दी गयी है, इसलिये हम नीचे ह वंशपुराणकी सूची देते हैं—

हरिवंश-पर्व

१—आदिसर्ग-कथन।
२—दक्षोत्पत्ति वर्णन।
३—मरुतोत्पत्ति वर्णन।
४—पृथूपाख्यान वर्णन।
५—पृथूपाख्यान और पृथ्वी कूटन कथन।
६—मनुवर्णन।
७—मन्वन्तरानुकीर्तन।
८—मन्वन्तर वर्णन।
९—द्वादश आदित्योंका जन्म।
१०—ऐलोत्पत्ति वर्णन।
११—धुन्धुवध वर्णन।
१२—गालवोत्पत्ति वर्णन।
१३—त्रिशंकुचरित्र वर्णन।
१४—सगरोत्पत्ति वर्णन।
१५—आदित्यवंश वर्णन।
१६—पितृकल्प वर्णन।
१७—पितृकल्प वर्णन।
१८—श्राद्धफल कथन।
१९—पितृकल्प वर्णन।
२०—पितृकल्प चटक आख्यान वर्णन।
२१-२४—पितृकल्प वर्णन (चार अध्याय)
२५—सोमोत्पत्ति कथन।
२६—ऐलोत्पत्ति कथन।
२७—अमावसुवंश कथन।
२८—आयुवंशानुकीर्तन।
२९—काश्यपवंश वर्णन।
३०—ययातिचरित वर्णन।
३१—कुक्षेयुवंशानुकीर्तन।
३२—पुरुवंशानुकीर्तन।
३३—यदुवंश वर्णन। कार्तवीर्यार्जुनोत्प वर्णन।
३४—वृष्णिवंश वर्णन।
३५—कृष्णजन्म वर्णन।
३६—जनमेजयवंश वर्णन।
३७—कुक्कुरवंश वर्णन।
३८—श्रीकृष्णको मिथ्याभिशाप वर्णन।
३९—स्यमन्तकके निमित्त श्रीकृष्णका श धन्वाको मारना।
४०—वराह उत्पत्ति कथन।
४१—योगेश्वररूप विष्णुका अवतार कथन
४२—विष्णुके ईश्वरत्वका वर्णन।
४३—दैत्य सेनाका विस्तार कथन।
४४—देव सेनाका विस्तार वर्णन।
४५—देवासुर संग्राम वर्णन।
४६—दैत्योंका देवताओंसे विकल होना।
४७—कालनेमि और देवताओंका युद्ध।
४८—विष्णुका देवताओंको धैर्य देना अ ब्रह्मलोकको जाना।
४९—जनमेजयका वैशम्पायनसे विष्णुविषय प्रश्न करना।
५०—पृथ्वीके दुःखसे दुखी हो ऋषियों ब्रह्मलोकमें जाना।

५१—विष्णु-देव-संवाद वर्णन ।
५२—विष्णुके प्रति पृथ्वीका वाक्य कथन ।
५३—देवताओंका अंशावतार वर्णन ।
५४—नारद वाक्य वर्णन ।
५५—ब्रह्मवाक्य वर्णन ।

विष्णु-पर्व

१—नारदप्रति कंसवाक्य वर्णन ।
२—विष्णुका योगनिद्राके प्रति कथन ।
३—आर्यास्तव ।
४—श्रीकृष्ण जन्म वर्णन ।
५—व्रजगमन वर्णन ।
६—शकटासुरवध वर्णन, पूतनावध वर्णन ।
७—यमलार्जुन भंग वर्णन ।
८—वृकदर्शन, बाललीला वर्णन ।
९—श्रीकृष्णका वृन्दावन, गमन वर्णन ।
१०—श्रीकृष्णसे बलदेवका वर्षाऋतु वर्णन ।
११—कालिय ह्रद वर्णन ।
१२—कालिय सद्म कथन ।
१३—धेनुकवध वर्णन ।
१४—प्रलम्बवध वर्णन ।
१५—घोषवाक्य वर्णन ।
१६—शरदऋतु वर्णन ।
१७—गोपकृत गिरि उत्सव वर्णन ।
१८—गोवर्धन धारण ।
१९—गोविन्दाभिषेक वर्णन ।
२०—हल्लीस क्रीड़ा वर्णन ।
२१—अरिष्टवध वर्णन ।
२२—अक्रूर प्रस्थान वर्णन ।
२३—अन्धक वाक्य कथन ।
२४—केशीवध वर्णन ।
२५—अक्रूर आगमन वर्णन ।
२६—अक्रूरका नागलोक दर्शन वर्णन ।
२७—धनुर्भङ्ग वर्णन ।
२८—कंस वाक्य वर्णन ।
२९—कुवलयापीडवध वर्णन ।
३०—कंसवध वर्णन ।
३१—कंस स्त्री-विलाप वर्णन ।
३२—कंसका मृतक संस्कार, उग्रसेन अभिषेक वर्णन ।
३३—कृष्णके प्रति सबका आगमन वर्णन ।
३४—मथुरामें जरासन्धका युद्धार्थ आगमन वर्णन ।
३५—जरासन्ध-श्रीकृष्ण-युद्ध वर्णन ।
३६—जरासन्ध-प्रयाण वर्णन ।
३७—विकद्रु-वाक्य वर्णन ।
३८—विकद्रु-वाक्य-वर्णन ।
३९—परशुराम-वाक्य वर्णन ।
४०—गोमन्तारोहण वर्णन ।
४१—जरासन्धाभिगमन वर्णन ।
४२—जरासन्धसे पुनः युद्ध, गोमन्तदाह वर्णन ।
४३—करवीरपुर गमन वर्णन ।
४४—शृगालवध वर्णन ।
४५—मथुरामें पुनरागमन वर्णन ।
४६—यमुनाकर्षण वर्णन ।
४७—रुक्मिणी-स्वयंवर-वर्णन ।
४८—सुनीथ वाक्य वर्णन ।
४९—रुक्मिणी-स्वयंवर वर्णन ।
५०—रुक्मिणी-स्वयंवरमें नृप आश्वासन वर्णन ।
५१—कृष्णाभिषेक वर्णन ।
५२—रुक्मिणी-स्वयंवर-वर्णन ।
५३—शाल्व वाक्य वर्णन ।
५४—कालयवन आगमन वर्णन ।
५५—रुक्मिणी स्वयंवर मन्त्रोदाहरण वर्णन ।
५६—द्वारावती प्रयाण वर्णन ।
५७—रुक्मिणी-हरण । कालयवन-वध-वर्णन ।
५८—द्वारावती-निर्माण वर्णन ।
५९—रुक्मिणी-हरण वर्णन ।

उत्तरार्द्ध

१२५—हरिहरात्मकस्तव वर्णन।
१२६—बाणासुर वरप्रदान वर्णन।
१२७—द्वारकागमन वर्णन।
१२८—उषाहरण समाप्ति वर्णन।

भविष्य पर्व

१—हरिवंश वर्णन, जनमेजय वंश वर्णन।
२–४—भविष्य वर्णन।
५—विश्वावसुवाक्य वर्णन।
६—महात्माओंके चरित्र वर्णन।
√७–९—पुष्कर प्रादुर्भाव वर्णन।
१०—पुष्कर प्रादुर्भाव वर्णन, मार्कण्डेय दर्शन
११—ब्रह्माकी उत्पत्ति वर्णन।
१२—पद्मरूप वर्णन।
√१३—मधुकैटभ वध वर्णन।
१४—सर्वभूतोंकी उत्पत्ति वर्णन।
१५—जनमेजय वाक्य वर्णन।
१६—सनातन ब्रह्म वर्णन।
१७—शुभाशुभ कर्मोंका फल वर्णन।
१८—सनातन जगतका प्रमाण।
१९—कर्मोंका फल वर्णन।
२०—ब्रह्माके अङ्गसे प्राणियोंकी उत्पत्ति।
२१—क्षत्रयुगका वर्णन।
२२—प्रकृत्यात्मक यज्ञादि रूप धर्मका वर्णन
२३—ब्रह्माका यज्ञ वर्णन।
२४—ब्राह्मणोंके कर्म वर्णन।
√२५—मधु दैत्यसे विष्णुका युद्ध वर्णन।
२६—मधुसे विष्णुका युद्ध वर्णन।
२७—मधुके वधसे देवताओंका प्रसन्न होना।
२८—देवताओंका तप वर्णन।
२९—प्रत्येक देवताके शस्त्र वर्णन।
३०—समुद्रमथन वर्णन।
३१—वामनरूप धर बलिको छलना।
√३२—पुष्कर प्रादुर्भाव वर्णन।
३३—वाराह प्रादुर्भाव वर्णन।
३४—वाराहजीका पृथ्वीको रसातलसे लाकर स्थापित करना।
३५—वाराह प्रादुर्भाव वर्णन।
३६—वाराह जगत सर्ग वर्णन।
३७—ब्रह्माजीका जगतमें सबका पृथक पृथक स्वामी नियत करना।
३८—हिरण्याक्ष और देवताओंका युद्ध वर्णन।
३९—वाराह भगवान्‌का हिरण्याक्षको मारना
४०—विष्णुका यथोचित देवताओंको स्थान देना।
४१—नृसिंहावतार वर्णन।
४२—हिरण्याक्षका दैत्योंसे पूजित हो, राज्य-सिंहासनपर बैठना।
४३—नृसिंहजीको देख दैत्योंका आश्चर्य करना।
४४—नृसिंहजीपर दैत्योंका शस्त्र प्रहार करना।
४५—नृसिंहजीका दैत्योंकी माया नष्ट करना।
४६—युद्धको देख देवताओंका विकल होना।
४७—हिरण्यकशिपुका वध वर्णन, ब्रह्माजीका नृसिंहजीकी स्तुति करना।
४८—हिरण्यकशिपुका वध होनेसे दैत्योंका बलिको राज्य देना।
४९—दैत्योंका संग्रामके निमित्त स्वर्गको जाना
५०—दैत्यसेनाका विस्तार वर्णन।
५१—दैत्यसेनाका विस्तार वर्णन।
५२—देवसेनाका विस्तार वर्णन।
५३—देव दैत्य युद्ध वर्णन।
५४—घोर युद्ध वर्णन।
५५—महाघोर युद्ध वर्णन।
५६—महाघोर युद्ध वर्णन।
५७—वृत्रासुरका अश्विनीकुमारको जय करना।
५८—वामन-प्रादुर्भाव, देवासुर-संग्राम वर्णन।
५९–६३—देवासुर-संग्राम वर्णन।
६४—देवासुर-संग्राममें इन्द्रका प्रयाण करना।
६५—देवासुर-संग्राम वर्णन, दैत्योंकी जय।

हरिवंशकी कथानुक्रमणिका समाप्त

अड़तालीसवाँ अध्याय

जैन और बौद्धपुराण

जैसे हम चार वेद, चार उपवेद, छः अङ्ग और चार उपाङ्ग पहिले गिना आये हैं ठीक उसी तरह जैन मतावलम्बियोंके भी वेद, वेदाङ्ग और उपाङ्ग है, जो पिछले अध्यायोंमें वर्णित ग्रन्थोंसे नितान्त भिन्न हैं। हमको जैन वेदों और वेदाङ्गोंको देखनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ है परन्तु जिन ग्रन्थोंको हमने देखा है उनसे हम अनुमान करते हैं कि जैन-साहित्य बहुत विशाल है। इसी प्रकार बौद्ध-साहित्य भी विस्तारमें इतना अधिक है कि प्रस्तुत ग्रन्थमें उसका सार दिया जाना सम्भव नहीं है। दर्शनोंमें छः आस्तिक और छः नास्तिक गिनाये जाते हैं। हिन्दू साहित्य इन नास्तिक दर्शनोंको भी अपना अङ्ग समझता है। यह छः दर्शन वस्तुतः, तीनके ही रूपान्तर हैं। एक चार्वाक और दूसरा, तीसरा, चौथा और पाचवाँ बौद्ध और छठा जैनदर्शन है। बौद्धदर्शनके चार विभाग होनेसे नास्तिक-दर्शनोंकी संख्या छः हो गयी। विपरीत मत-सहिष्णु भारतमें आस्तिक और नास्तिक दोनों तरहके विचारोंका अनादि कालसे पूर्ण विकास होता चला आया है, ऐसा सनातनियोंका विचार है। आस्तिक और नास्तिक दोनों दलोंकी परम्परा और संस्कृति समान चली आयी है। दोनोंका इतिहास एक ही है। हां, प्रत्येक दलने स्वभावतः अपने इतिहासमें अपना उत्कर्ष दिखाया है। पिछले अध्यायमें जिस हरिवंशपुराणकी सूची दी हुई है, उसमें कृष्णभगवान्‌का उत्कर्ष जिस तरह बखान किया है ठीक उसी तरह जैन-हरिवंशपुराणमें अरिष्टनेमिका उत्कर्ष बताया है। पिछली सूचीमें अरिष्टनेमिकी एक जगह चर्चा है, परन्तु जैन-हरिवंशमें अरिष्टनेमिकी कथाको मुख्यता दी गयी है। बौद्ध पुराणोंका भी ऐसा ही हाल है। बौद्ध पुराणोंमें स्वायम्भुवपुराण मैंने देखा है। परन्तु यह मुझे पता नहीं है कि बौद्धपुराण कुल कितने हैं।

जैनों और बौद्धोंके आर्य-भारतोद्भूत-धर्म होनेसे हम उनके साहित्यको हिन्दू-साहित्यके अन्तर्गत समझते हैं। परन्तु ग्रन्थोंकी उपलब्धिकी कठिनाई भी उनके अनुशीलनमें बाधक है। जैनों और बौद्धोंकी संख्या भी भारतवर्षमें बहुत कम है। उनके विशालसाहित्यका प्रचार भी उसी परिमाणसे कम ही है। इसीलिए यहाँ उनकी चर्चामात्र की जाती है। यदि पुस्तकें उपलब्ध हों और सब प्रामाणिक ग्रन्थोंकी विषय-सूची दी जाय तो जितनी बड़ी सूची हमारी हो चुकी है उतनी ही बड़ी या उससे भी बड़ी सूची सहज ही बन सकती है।

जैनोंके पुराण पञ्चलक्षण नहीं होते। वह पुरानी कथाको ही पुराण कहते हैं—

पुरातनं पुराणं स्यात्तन्महन्महदाश्रयात्।

जैनोंके चौबीस महात्मा तीर्थङ्कर कहे जाते हैं। दिगम्बर जैनियोंने इन्हीं चौबीसोंकी कथाके प्रसङ्गमें चौबीस महापुराण रचे हैं।

१—आदिपुराण—जिसमें ऋषभदेवकी कथाएँ हैं, यह पहिले तीर्थङ्कर हुए हैं। कहते हैं कि सर्वार्थसिद्धि-नामक योग, उत्तराषाढ नक्षत्र, धनराशि, चैत्र मासकी कृष्णाष्टमीको

इक्ष्वाकुवंशी राजा नाभिके औरससे और रानी मरुदेवीके गर्भसे विनीता नगरीमें भगवान् ऋषभदेवका जन्म हुआ। इन्होंने घोर तपस्या की और जैनियोंके अनुसार चौरासी लाख बरस अर्थात् दो चतुर्युगीके लगभग जीकर मोक्षपदको प्राप्त हुए। श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि ऋषभदेवमें जन्मसे ही भगवत्के लक्षण देख पड़े। इनके सद्गुणोंका विस्तार करके लिखा है कि राजा नाभि रानी मरुदेवी सहित जब वानप्रस्थ हो गये तब ऋषभदेवजी राज्य करने लगे। इनका विवाह इन्द्रकन्या जयन्तीसे हुआ। भरत, कुशावर्त आदि इनके सौ पुत्र हुए। सबके सब धर्मात्मा, वेदज्ञ और भागवतधर्म प्रदर्शक हुए। अन्तमें ऋषभदेवने परमहंस धर्मशिक्षा देनेके लिए संसारका त्याग किया। अन्तमें दावानलमें इन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। भागवतमें भगवान्के जिन बाईस अवतारोंकी कथा है, उनमेंसे आठवाँ अवतार इन्हीं ऋषभदेवका गिनाया है। इस प्रकार विष्णुके दसों अवतारोंमें जैसे नवाँ अवतार बुद्धदेवका हुआ है उसी तरह बाईस अवतारोंमें आठवाँ अवतार ऋषभदेवका हुआ है जो जैनोंके आदि तीर्थङ्कर हैं।

२—दूसरा अजितनाथ पुराण—इसमें अजितनाथका वर्णन है।

३—तीसरा सम्भवनाथ पुराण—इसमें सम्भवनाथका वर्णन है।

४—चौथा अभिनन्दी पुराण—इसमें अभिनन्दीकी कथा है।

५—पाँचवाँ सुमतिनाथ पुराण—इसमें सुमतिनाथका वर्णन है।

६—छठा पद्मप्रभ पुराण—इसमें पद्मप्रभका वर्णन है।

७—सातवाँ सुपार्श्व पुराण—इसमें सुपार्श्वनाथका वर्णन है।

८—आठवाँ चन्द्रप्रभ पुराण—इसमें चन्द्रप्रभका वर्णन है।

९—नवाँ पुष्पदन्त पुराण—इसमें पुष्पदन्ताचार्यका वर्णन है।

१०—दसवाँ शीतलनाथ पुराण—इसमें शीतलनाथजीका वर्णन है।

११—ग्यारहवाँ श्रेयांश पुराण—इसमें श्रेयांशका वर्णन है।

१२—बारहवाँ वासुपूज्यका पुराण—इसमें वासुपूज्यका वर्णन है।

१३—तेरहवाँ विमलनाथ पुराण—इसमें विमलनाथका वर्णन है।

१४—चौदहवाँ अनन्तजित पुराण—इसमें अनन्तजित तीर्थङ्करका वर्णन है।

१५—पन्द्रहवाँ धर्मनाथ पुराण—इसमें धर्मनाथजीका वर्णन है।

१६—सोलहवाँ शान्तिनाथ पुराण—इसमें शान्तिनाथजीकी कथाएँ हैं।

१७—सत्रहवाँ कुण्डनाथका पुराण—इसमें कुण्डनाथका वर्णन है।

१८—अठारहवाँ अरनाथ पुराण—इसमें अरनाथका वर्णन है।

१९—उन्नीसवाँ मल्लिनाथ पुराण—इसमें मल्लिनाथकी चर्चा है।

२०—बीसवाँ मुनिसुव्रत पुराण—इसमें मुनिसुव्रतका वर्णन है।

२१—इक्कीसवाँ नेमिनाथ पुराण—इसमें नेमिनाथका वर्णन है।

२२—बाईसवाँ नेमिनाथका पुराण—इसमें नेमिनाथकी कथा है।

२३—तेईसवाँ पार्श्वनाथका पुराण—इसमें पार्श्वनाथकी कथाएँ हैं।

२४—चौबीसवाँ सम्मति पुराण—इसमें अन्तिम तीर्थङ्करका वर्णन है।

रविसेनका पद्मपुराण, जिनसेनका अरिष्टनेमि पुराण जिसे हरिवंश भी कहते हैं, जिन-सेनका आदि पुराण और गुणभद्रका उत्तर पुराण इन चारों पुराणोंको पढ़ लेनेसे दिगम्बर जैन सम्प्रदायका पौराणिक तत्व स्पष्ट हो जाता है।

सब पुराणोंकी विषय-सूची उपलब्ध भी नहीं है और होती भी तो यहाँ देनेसे ग्रन्थका कलेवर बहुत बढ़ जाता। कुछ मुख्य पुराणोंकी विषय-सूची हम बँगला विश्वकोषसे यहाँ देते हैं। पहले हम उपर्युक्त चार पुराणोंकी सूची देंगे।

१—आदि पुराण

पहला पर्व—वृषभादि जिन स्तुति, महापुराणादि निरुक्ति, सिद्धसेनादि पूर्व जैन कवियोंकी प्रशस्ति, आक्षेपण्यादि कथा लक्षण, ऋषभके प्रति भरतका प्रश्न, उसके उत्तरमें आदि तीर्थङ्करकी पुराण वर्णना, पीछे महावीरसे आचार्य-परम्परामें पुराण-प्राप्ति कथन।

दूसरा पर्व—मगधाधिप श्रेणिक और गौतम-संवादमें पुराणाख्यान प्रसङ्ग, धर्म-प्रशंसा, क्षेत्र-काल-तीर्थादि पाँच प्रकारका पुराण-कथन, गणधरकृत आदि-जिन-स्तोत्र, अनुयोगादि चार प्रकारका श्रुतस्कन्ध-वर्णन। अनुयोगादिका ग्रन्थ-संख्या-निरूपण, त्रिषष्ट्यवयवकथन, चौवीस जिन-पुराण-नाम-कथन, गौतम स्वामीका काल-निर्णय, जिनसेनके आदि पुराण-प्रसङ्गमें उपोद्घात वर्णन।

तीसरा पर्व—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी नामक काल-निर्णय, मानवकी आयु और देह-परिमाण, जैनमतानुसार क्षेमङ्करादि मन्वन्तरनिर्णय, मरुदेवकी जन्म-कथा, युगादि-निर्णय, पुराणपीठिका वर्णन।

चौथा पर्व—आदिनाथ ऋषभचरित प्रसङ्गमे जम्बूद्वीप और तदन्तर्गत कुल-पर्वतादि वर्णन।

पाँचवाँ पर्व—सचिवोंकी धर्मनीति, संसारकी अनित्यता और जीवाजीवादि तत्व-कथन, जात्यन्तर कथन, शून्यवाद निराकरण, अरविन्द राजाख्यान, शतबल नामक राजकथा, ललिताङ्गका आख्यान।

छठा पर्व—ललिताङ्ग पुत्र वज्रजङ्घ और उनके बन्धु कुमुदानन्दकी कथा, ललिताङ्गका स्वर्गच्युतिप्रसङ्ग, चक्रधराख्यान।

सातवाँ पर्व—श्रीमती-वज्रजङ्घ-समागम।

आठवाँ पर्व—जिनधर्म-प्रभाव वर्णनमें श्रीमती-वज्रजङ्घ-पात्र-दानानुवर्णन।

नवाँ पर्व—श्रीमती और वज्रजङ्घकी आर्यसम्यक्त्वोत्पत्ति।

दसवाँ पर्व—अच्युतेन्द्रका ऐश्वर्य वर्णन।

ग्यारहवाँ पर्व—वज्रनाभिका सर्वार्थसिद्धि लाभ।

बारहवाँ पर्व—आदि-जिनके स्वर्गावतरण-प्रसङ्गमें व्याज-स्तुति, प्रहेलिका कालापक, क्रिया-गुप्त-स्पष्टान्धक, निरोष्ठ्य, विन्दुमान्, विन्दुच्युत शब्द-प्रहेलिकादि कथन।

तेरहवाँ पर्व—नाभिके औरस और मेरु देवीके गर्भसे नवमास गर्भवासके बाद चैत्रमास कृष्णपक्षकी नवमी तिथिको ब्रह्म-महायोगमें आदि जिन ऋषभदेवका जन्म और जन्मोत्सव-कथन। इन्द्रादि देवगण और इन्द्राणी प्रभृति देवीगण द्वारा जन्माभिषेक वर्णन।

चौदहवाँ पर्व—आदि जिनका जातकर्मोत्सव वर्णन ।

पन्द्रहवाँ पर्व—कुमारका यशस्वतीके साथ विवाह और उनके पुत्र भरतका जन्म-कथा-वर्णन ।

सोलहवाँ पर्व—वृषभसेनाके गर्भसे ९९ पुत्रोत्पत्ति और उनके नाम तथा पुत्रादि-सह आदि-जिनका साम्राज्यभोग वर्णन ।

सत्रहवाँ पर्व—आदि जिनका संसारके प्रति वीतराग और उनका परिविष्क्रमण ।

अठारहवाँ पर्व—धरणेन्द्र और विजयका ऊर्ध्व-पथगमन ।

उन्नीसवाँ पर्व—नमि और विनमि नामक राजपुत्रोंकी राज्यप्रतिष्ठा वर्णन ।

बीसवाँ पर्व—आदि जिनका कैवल्योत्पत्ति-कथन ।

इक्कीसवाँ पर्व—ध्यान तत्वानुवर्णन ।

बाईसवाँ पर्व—आदि जिनका समवसर और विनिवेश वर्णन ।

तेईसवाँ पर्व—आदि जिनका विभूतिवर्णन ।

चौबीसवाँ पर्व—आदि-जिनका धर्मदेश कथन ।

पच्चीसवाँ पर्व—उनका तीर्थविहार वर्णन ।

छब्बीसवाँ पर्व—भरतराजका दिग्विजयोद्योग वर्णन ।

सत्ताईसवाँ पर्व—भरतराजकी विजययात्रा ।

अट्ठाईसवाँ पर्व—पूर्व-सागर-द्वारादि-विजय वर्णन ।

उनतीसवाँ पर्व—प्राची दिग्वर्त्ती जनपद समूहका वर्णन ।

तीसवाँ पर्व—पश्चिमार्णव पर्यन्त पश्चिमदिग्वर्त्ती जनपद समूहका विजय वर्णन ।

इकतीसवाँ पर्व—म्लेच्छराज-विजय-प्रसङ्गमें गुहाद्वार उद्घाटन ।

बत्तीसवाँ पर्व—भरतका उत्तर दिग्विजय वर्णन ।

तैंतीसवाँ पर्व—भरतका कैलासगिरि गमन ।

चौंतीसवाँ पर्व—भरतराजके अनुजोंका दीक्षा-वर्णन ।

पैंतीसवाँ पर्व—कुमार बाहुबलिका रणोद्योग ।

छत्तीसवाँ पर्व—कुमार भुजबलिका विजयवर्णन ।

सैंतीसवाँ पर्व—भरतेश्वराभ्युदय कथन ।

अड़तीसवाँ पर्व—द्विजोत्पत्ति वर्णन । प्रसङ्गमें गर्भाधान, प्रीति, सुप्रीति, धृति, मोद-प्रियोद्भव नाम कर्म, बहिर्यान, निषेध्य, अन्नप्राशन, व्युष्टि, केशवाय, लिपि-संख्या संग्रह उपनीति, व्रतचर्या, व्रतावतार, विवाह, वर्णलाभ, कुलचर्या, गृहीशिता-प्रशान्ति, गृहत्याग, आद्यदीक्षा, जिनरूपता, मौनाध्ययन वृत्ति, तीर्थंकृतकी भावना, गुरुस्थान गमन, गणापग्रहण स्वगुरुस्थानप्राप्ति, निःसङ्गत्वात्मभावना, योगनिर्वाण साधन, इन्द्रोपपाद, इन्द्राभिषेक, विधि-दान, सुखोदय, इन्द्रत्याग, इन्द्रावतार, हिरण्योत्कृष्ट जन्मता, मन्दरेन्द्राभिषेक, गुरुपूजा, यौव-राज्य, स्वराज्य, चक्रलाभ, दिग्विजय, साम्राज्य, चक्राभिषेक, परिनिष्क्रान्ति, योगसम्मद, आर्हन्त्य, विहार, योगत्याग, अग्रनिर्वृत्ति इत्यादि गर्भाधानसे निर्वाण पर्यन्त तिरपन प्रकारकी गर्भान्वय-क्रियाका वर्णन ।

उन्तालीसवाँ पर्व—द्विजातियोंके दीक्षा-प्रसङ्गमें वृत्तिलाभ, पूजाराध्य पुण्ययज्ञ, दृढ़-चर्या, उपयोगिता, उपनीति, ब्रह्मचर्या, मतावतार, विवाह कुलचर्या, गृहीशिता, प्रशान्तता, गृहत्याग, दीक्षार्व्य, जिनरूपता, दीक्षान्वय, पारिव्राज्य, सुरेन्द्रता, साम्राज्य, आर्हन्त्य और परि-निर्वाण पर्यन्त अष्ट चत्वारिंश प्रकार दीक्षान्वय वर्णन।

चालीसवाँ पर्व—उत्तर-चूलिका, क्रिया वर्णन प्रसङ्गमे आधानादि-ससक्रिया और मन्त्रसमूह वर्णन।

इकतालीसवाँ पर्व—भरतराजका स्वप्न-दर्शन और तत्फलोपवर्णन।

बयालीसवाँ पर्व—भरतराजर्षिका प्रजा-पालन-स्थिति प्रतिपादन।

तैंतालीसवाँ पर्व—हस्तिनापुरपति जयराज पुत्राख्यान प्रसङ्गमें सुलोचनाका स्वयंवर, मालारोपण और कल्याण वर्णन।

चौवालीसवाँ पर्व—जयविजयका प्रभाव वर्णन।

पैंतालीसवाँ पर्व—सुलोचनाका सुख-सौभाग्य वर्णन।

छियालीसवाँ पर्व—जय और सुलोचनाका जन्मान्तर वर्णन।

सैंतालीसवाँ पर्व—श्रीपाल चरित, यशःपाल वसुपालादिका प्रसङ्ग, आदिनाथके गण-धर, पूर्वधर, केवलागमी, विक्रियर्द्धि ब्राह्मी, आर्यिका, श्रावक और श्राविकाओंका संख्या-निर्णय, आदिनाथ और भरतादिका विभिन्न जन्म कथन, भरतका स्वर्गगमन, उपसंहार।

आदि पुराणके रचयिता जिनसेन हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थके प्रारम्भमें नयकेशरी, सिद्ध-सेन, वादिचूडामणि, समन्तभद्र, श्रीदत्त, यशोभद्र, चन्द्रोदयकर, प्रभाचन्द्र, मुनीश्वर, शिव-कोटि, जटाचार्य (सिंहनन्दी), कथालङ्कारकार काणभिक्षु (देव मुनि), कवि तीर्थकृत अकलङ्क, जिनसेनके गुरु भट्टारक वीरसेन और वागर्थ संग्रहकार जयसेन गुरुकी प्रशंसा की है। इनसे रचनाकालकी सीमा बँध जाती है।

पाश्चात्य ढङ्गसे विचार करनेवाले विद्वान् कहते हैं कि शारीरक भाष्य करनेवाले शङ्कर स्वामी ईसाकी आठवीं शताब्दीके शेष भागमें विद्यमान थे। किन्तु हम देखते हैं कि शङ्करके जन्मके पहले ही जिनसेन शङ्कराचार्यको जानते थे। शङ्कराचार्यने शारीरक भाष्यके दूसरे अध्यायके पहले पादमें अद्वैत ब्रह्मकी जगत्सृष्टिके सम्बन्धमें जो विचार किया है, जिनसेन इस आदिपुराणके चौथे पर्वमें उसका खण्डन इस प्रकार कर चुके हैं—

"स्रष्टास्य जगतः कश्चिदस्तीत्येकोजगुर्जडाः।
तद्दुर्णयनिरासार्थं सृष्टिवादः परीक्ष्यते॥ १॥
स्रष्टासर्गवहिर्भूतः कस्थः सृजति तज्जगत्।
निराधारश्च कूटस्थः सृष्टैतत्क निवेशयेत्॥ २॥
नैको विश्वात्मकस्यास्य जगतो घटने पटुः।
वितनोश्च न तन्वादि मूर्त्तमुत्पत्तुमर्हति॥ ३॥
कथं च स सृजेल्लोकं विनान्यैः करणादिभिः।
तानि सृष्ट्वा सृजेल्लोकमिति चेदनवस्थितिः॥ ४॥
तेषां स्वभावसिद्धत्वे लोकेऽप्येतत्प्रसज्यते।

किञ्चनिर्मातृवद्विश्वं स्वतः सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ५ ॥
सृजेद्विनापि सामग्र्याः स्वतन्त्र प्रभुरिच्छया ।
इतीच्छामात्रमेवैतत्कः श्रद्दध्यादयुक्तिकम् ॥ ६ ॥
कृतार्थस्य विनिर्मित्सा कथमेवास्ययुज्यते ।
अकृतार्थोऽपि न स्रष्टुं विश्वमीष्टे कुलालवत ॥ ७ ॥
अमूर्तोनिष्क्रियो व्यापी कथमेष जगत्सृजेत् ।
न सिसृक्षापि तस्यास्ति विक्रियारहितात्मनः ॥ ८ ॥
तथाप्यस्य जगत्सर्गे फलं किमिति मृग्यताम् ।
निष्ठितार्थस्य धर्मादि पुरुषार्थेष्वनर्थिनः ॥ ९ ॥
स्वभावतो विनैवार्थान्सृजतोऽनर्थ सङ्गतिः ।
क्रीडेयं कापि चेदस्य दुरन्ता मोहसन्ततिः ॥ १० ॥
कर्मापेक्षः शरीरादिः देहिनां घटयेद्यदि ।
नन्वेवमीश्वरो न स्यात्पारतन्त्र्यात्कुविन्दवत् ॥ ११ ॥
निमित्तमात्रमिष्टश्चेत्कार्ये कर्मादि हेतुके ।
सिद्धोपस्थाप्यसौ हन्त पोष्यते; किमकारणम् ॥ १२ ॥
वत्सलः प्राणिनामेकः सृजन्ननु जिघृक्षया ।
ननु सौख्यमयीं सृष्टिं विदध्यादनुपप्लुताम् ॥ १३ ॥
सृष्टि प्रयासवैयर्थ्यं सर्जने जगतः सतः ।
नात्यन्तमसतः सर्गोऽयुक्तोव्योमारविन्दवत् ॥ १४ ॥
नोदासीनः सृजेन्मुक्तः संसारी सोप्यनीश्वरः ।
सृष्टिवादावतारोऽयं ततश्च न कुतश्च न ॥ १५ ॥
महानधर्मयोगोऽस्य सृष्ट्वा संहरति प्रजाः ।
दुष्ट निग्रह बुद्ध्या चेद्वरं दैत्याद्य सर्जनम् ॥ १६ ॥
बुद्धिमत्ततसान्निध्ये तन्वाद्युत्पत्तुमर्हति ।
विशिष्टसन्निवेशादि प्रतीतेर्नगरादिवत् ॥ १७ ॥
इत्यसाधनमेवैतदीश्वरास्तित्वसाधने ।
विशिष्टसन्निवेशादेरन्यथाप्युपपत्तितः ॥ १८ ॥
चेतनाधिष्ठितं देहं कर्म निर्मातृचेष्टितम् ।
तन्वक्ष सुखदुःखादि वै स्वरूप्यायकल्प्यते ॥ १९ ॥
निर्माण कर्म निर्मातृकौशलापादितोदयम् ।
अङ्गोपाङ्गादिवैचित्रमङ्गिनां सङ्गिरामहे ॥ २० ॥
तदेतत्कर्म वैचित्र्याद्भवन्नानात्मकं जगत् ।
विश्वकर्माणमात्मानं साधयेत्कर्म सारथिम् ॥ २१ ॥
विधिः स्रष्टा विधाता च दैवं कर्म पुराकृतम् ।
ईश्वरश्चेति पर्यायाः विज्ञेयाः कर्म वेधसाः ॥ २२ ॥

स्रष्टारमन्तरेणापि व्योमादीनां च सङ्गरात्।
सृष्टिवादी स निग्राह्यः शिष्टैर्दुर्मतदुर्मदी ॥ २३ ॥

भावार्थ—अनेक बुद्धिहीन पुरुष कहते हैं कि इस जगत्का रचनेवाला कोई एक (ईश्वर) अवश्य है। इसलिये उनके इस असत्पक्षके मिटानेके लिये सृष्टिवादकी परीक्षा वा जाँच करते हैं।

जो सृष्टिका रचनेवाला है वह इस सृष्टिसे बहिर्भूत जुदा होना चाहिये। तब कहो कि वह किस स्थानपर बैठकर इस जगत्को बनाता है? (जिस स्थानपर बैठकर वह बनाता है वह क्या जगत्से बाहर है? यदि है तो इस सृष्टिके सिवाय एक दूसरी सृष्टि ठहरी और फिर उसके बनाते समय भी उसके पृथक स्थानकी कल्पनाका प्रसङ्ग आया है, यदि कहोगे कि उसके लिये जुदा स्थानकी जरूरत नहीं है वह निराधार है और कूटस्थ है, तो हम पूछते हैं कि वह सृष्टिको बनाकर रखता कहाँ है? (और जहाँ रखता है उस आकाशका, अथवा और जो कुछ आधार है उसका, रचनेवाला कौन है?)

एक अकेला ईश्वर इस विश्वात्मक अर्थात् अनेकात्मक अनन्त पदार्थोंके समूहरूप जगत्-को नहीं बना सकता है। इसके सिवा ईश्वर शरीररहित निराकार है, इसलिये उससे शरीरादि साकारमूर्तिक पदार्थोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि साकारसे ही साकारकी उत्पत्ति हो सकती है, निराकारसे नहीं।

और यह भी तो कहो कि वह विना दूसरे उपकरणोंके लोकको कैसे बनाता है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थके बनानेमें कुछ न कुछ उपकरण और सामग्रीकी जरूरत होती है। यदि ऐसा कहा जाय कि उन उपकरणोंको पहले बनाकर फिर लोकको बनाता है तो फिर यह प्रश्न होता है कि उन उपकरणोंको काहेसे बनाता है? यदि दूसरे उपकरणोंसे बनाता है तो उन्हें काहेसे बनाता है? इस प्रकार अनवस्था दोष आता है।

यदि ऊपर बतलाये हुए अनवस्था दोषका निवारण करनेके लिये लोकके बनानेके उप-करणोंको स्वतःसिद्ध बतलाओगे अर्थात् यह कहोगे कि उन्हें किसीने नहीं बनाया है आप ही आप बन गये हैं तो फिर जगत्को ही स्वतः सिद्ध कहनेमें क्या हानि है? उपकरणोंके समान उसे ही स्वतःसिद्ध क्यों नहीं कहते हो? इसके सिवाय सृष्टिका बनानेवाला जो ईश्वर है उसे भी तो तुम स्वतःसिद्ध मानते हो, अर्थात् यह कहते हो कि उसको किसीने नहीं बनाया है वह स्वयम्भू है, तो इससे ईश्वरके समान विश्व भी स्वतःसिद्ध है, ऐसा स्वीकार करना पड़ेगा। जब ईश्वर स्वतःसिद्ध हो सकता है तब सृष्टि स्वतः सिद्ध क्यों नहीं हो सकती?

यदि, ईश्वर उपकरण और सामग्रीके विना ही स्वतन्त्र होकर केवल इच्छासे संसारका सृजन करता है, ऐसा कहोगे तो इस तुम्हारे इच्छामात्र युक्तिशून्य काल्पनिक कथनपर कौन श्रद्धा करेगा? अर्थात् केवल यही कह देनेसे कि ईश्वरमात्र जगत्को बनाता है, काम नहीं चलेगा। इसके लिये कुछ युक्ति चाहिये।

अब यह कहो कि तुम्हारा सृष्टिकर्ता ईश्वर कृतार्थ है अथवा अकृतार्थ है? यदि कृतार्थ है अर्थात् उसे कुछ करना बाकी नहीं रहा, चारों पुरुषार्थोंका साधन कर चुका है, तो उसका कर्तापन कैसे बनेगा? वह सृष्टि क्यों बनावेगा? और यदि अकृतार्थ है, अपूर्ण है, उसे कुछ

करना बाकी है, तो कुम्भकारके समान वह भी सृष्टिको नहीं बना सकेगा, क्योंकि कुम्हार भी तो अकृतार्थ है। इसलिए जैसे उससे सृष्टिकी रचना नहीं हो सकती है उसी प्रकार अकृतार्थ ईश्वरसे भी नहीं हो सकती।

यदि, ईश्वर अमूर्त निष्क्रिय और सर्वव्यापक है, ऐसा तुम मानते हो तो वह इस जगत्को कैसे बना सकता है? क्योंकि जो अमूर्त है उससे मूर्तिक संसारकी रचना नहीं हो सकती। जो क्रियारहित है वह सृष्टि-रचना-रूप क्रिया नहीं कर सकता और जो सबमें व्यापक है वह जुदा हुए बिना सृष्टि नहीं बना सकता।

इसके सिवा ईश्वरको तुम विकार रहित भी कहते हो और सृष्टि बनानेकी इच्छा होना एक प्रकारका विकार है। तो बतलाओ उस निर्विकार परमात्माको जगत् बनानेकी विकार-चेष्टा होना कैसे सम्भव हो सकता है।

और यदि थोड़ी देरके लिए सम्भव भी मान लिया जाय तो यह विचार करना चाहिए कि जो निष्ठितार्थ है, सिद्धसङ्कल्प है, और धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष पुरुषार्थके साधनका जिसे कुछ प्रयोजन नहीं है, उस ईश्वरको सृष्टिके उत्पन्न करनेमें फल कौन सा है? अभिप्राय यह कि जिसे कुछ करना शेष नहीं है—कृतकृत्य है, वह किसलिये सृष्टि बनावेगा?

यदि यह कहो कि बिना किसी प्रयोजनके स्वभावसे ही सृष्टिकी रचना करता है तो अनर्थ होता है, क्योंकि बुद्धिमान पुरुष किसी प्रयोजनके बिना किसी भी कामके करनेमें प्रवृत्त नहीं होते हैं। यदि कहो कि यह उसकी एक क्रीड़ा है—खेल है—तो ईश्वरमें अज्ञान-परम्परा सिद्ध होती है, क्योंकि अज्ञानी जीव ही अपना समय खेलमें व्यतीत करते हैं।

यदि सृष्टिकर्त्ता जीवोंके किये हुए पूर्व कर्मोंके अनुसार उनके शरीरादि बनाता है तो कर्मोंकी परतन्त्रताके कारण वह ईश्वर नहीं हो सकता, जैसे कि जुलाहा। अभिप्राय यह कि जो स्वतन्त्र है समर्थ है उसीके लिए ईश्वर संज्ञा ठीक हो सकती है परन्तु परतन्त्रके लिए नहीं हो सकती। जुलाहा यद्यपि कपड़े बनाता है परन्तु परतन्त्र है और असमर्थ है इसलिए उसे ईश्वर नहीं कह सकते।

यदि यह संसार कर्मादिहेतुक है, अर्थात् प्रत्येक जीव अपने-अपने कर्मोंके अनुसार उत्पन्न होता है—ईश्वर उसमें केवल निमित्तमात्र है—तो फिर कर्मोंके अनुसार उत्पन्न होनेवाले ससारका करनेवाला बिना कारण ईश्वर क्यों ठहराया जाता है? यह बड़े खेदकी बात है। अभिप्राय यह है कि जब संसारका मुख्य कर्त्ता प्रधान कारण कर्म है, तब फिर निमित्तमात्र ईश्वरको सृष्टिके कर्त्तापनका श्रेय व्यर्थ ही क्यों दिया जाता है?

यदि ईश्वर दयालु है, इसलिए प्राणियोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे सृष्टि बनाता है तो उसे सारी सृष्टिको सुखमयी बनानी चाहिये थी—कुछ सुखी और दुखी नहीं बनानी थी।

यदि यह जगत् सत् है अर्थात् द्रव्यदृष्टिसे अविनाशी है, सदासे है, और सदा कालतक रहेगा, तो इसके बनानेका परिश्रम व्यर्थ है, और यदि सर्वथा असत् है—असत्से सत् होता है अर्थात् पहले नहीं था पीछे उत्पन्न किया जाता है—तो यह आकाशके कमल पुष्पके समान अयुक्त है—बन नहीं सकता है। अभिप्राय यह है कि सत् पदार्थकी वास्तवमें उत्पत्ति नहीं होती है, उसका केवल कोई पदार्थ, अवस्था विशेष, उत्पन्न होता है। जैसे सोनार सत्रूप

सोनेको उत्पन्न नहीं करता किन्तु सोनेका कुण्डल वलय आदि किसी पर्यायको उत्पन्न करता है। इसलिए ईश्वर यदि सत् स्वरूप जगत्को उत्पन्न करता है तो उसका यह प्रयास निष्फल है, क्योंकि सत्ता रूपसे तो जगत् पहले था ही—उसने बनाया ही क्या? और जो पदार्थ असत् है, जिसकी सत्ता ही नहीं है, जैसे कि आकाशका पुष्प अथवा गधेका सींग, तो उसका उत्पन्न करना ही असम्भव है। पहले सृष्टि सर्वथा ही नहीं थी तो ईश्वर उसको उत्पन्न भी नहीं कर सकता।

यदि ईश्वर मुक्त है, कर्मजालसे रहित है, तो उदासीन अर्थात् सर्व प्रकारकी प्रवृत्तियों-से रहित होना चाहिये और ऐसी अवस्थामें वह सृष्टि बनानेकी प्रवृत्ति ही नहीं करेगा। और यदि संसारी है—कर्ममें लिप्त है—तो वह ईश्वर अर्थात् समर्थ नहीं हो सकता, असमर्थ होगा, क्योंकि संसारी पुरुष सृष्टि निर्माण रूप महान् कार्यको नहीं कर सकते, जैसे कि हम तुम। अतः तुम्हारा यह सृष्टि-रचना-वाद किसी तरहसे सिद्ध नहीं हो सकता।

और आगे यदि ईश्वर सृष्टिको रचकर फिर उसका संहार करता है तो यह उसके लिए महान् पापका कार्य है। क्योंकि "विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्"। सज्जन पुरुष अपने हाथसे लगाये हुए विष वृक्षको भी स्वयं नहीं उखाड़ सकते। यदि कहो कि दैत्यादि दुष्टोंका नाश करनेके लिए वह ऐसा करता है तो इससे अच्छा यही है कि वह पहलेसे ही सोचकर दैत्यादि दुष्ट जीवोंको उत्पन्न न करे। "प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूराद्-स्पर्शनं वरं" शरीरमें लगी हुई कीचड़को धोनेकी अपेक्षा तो यही अच्छा है कि स्पर्श ही न करे। यह कहाँकी बुद्धिमत्ता है कि पहले राक्षसोंको बनाना और फिर उनके संहारके लिए यत्न करना।

यदि यह कहोगे कि विलक्षण प्रकारकी रचनादि होनेके कारण शरीरादि सृष्टिकी उत्पत्ति किसी एक बुद्धिमान कर्त्ताके होनेसे हो सकती है। जैसे विलक्षण रचनावाले नगरा-दिकोंकी रचना चतुर कारीगरके ही होनेसे हो सकती है तो यह युक्ति भी सृष्टिकर्त्ता ईश्वरका अस्तित्व साधन करनेमें समर्थ नहीं है। क्योंकि बुद्धिमान् कर्त्ताके विना दूसरी तरहसे भी विलक्षण रचनाएँ हो सकती हैं।

यह चेतनासे युक्त शरीर कर्मरूपी कर्त्ताका बनाया हुआ है और इसमें जो शरीर इन्द्रियाँ और सुखदु:खादि हैं ये सब इसकी विलक्षण प्रकारकी रचनाएँ हैं। अभिप्राय यह कि बुद्धिमान कर्त्ताके विना केवल जड़स्वरूप कर्मोंके द्वारा भी विलक्षण रचना हो सकती है। इससे तुम्हारा यह हेतु ठीक नहीं है कि सृष्टि एक विलक्षण प्रकारकी रचना है, इसलिए उसका कर्त्ता कोई विलक्षण वा बुद्धिमान् पुरुष होना ही चाहिये।

प्राणियोंके अङ्गोंमें तथा उपाङ्गोंमें जो विचित्रता होती है, यह निर्माण कर्म-रूपी कर्त्ताके रचनाकौशलसे होता है, ईश्वरकी कारीगरीसे नहीं होता, ऐसा हम कहते हैं।

अतएव यह जगत् कर्मोंकी विचित्रतासे नानात्मक अर्थात् अनेक प्रकारका होता हुआ अपने विश्वकर्मा रूप कर्म-सारथीको साधता है अर्थात् यह सिद्ध करता है कि जगत्का कर्त्ता कर्म है, कोई पुरुष-विशेष नहीं है।

विधि, स्रष्टा, विधाता, दैव, पुराकृत कर्म और ईश्वर ये सब कर्मरूपी ब्रह्माके ही पर्यायवाची नाम हैं।

आकाशादि पदार्थ किसी बनानेवाले बिना भी सिद्ध हैं अर्थात् उन्हें किसीने बनाया नहीं है—स्वतः सिद्ध हैं। इसमें मिथ्यामतके मदसे उन्मत्त हुए सृष्टिवादीका शिष्ट पुरुषोंको निग्रह करना चाहिये।

उपर्युक्त कथनसे फलितार्थ यह निकला कि यह सृष्टि अनादिनिधन है अर्थात् न कोई इसका बनानेवाला है और न संहार करनेवाला।

पद्मपुराण

१–जिनस्तुति। कुशाग्रगिरि शिखरपर महावीरका अवस्थान। इन्द्रभूतिके निकट श्रेणिकका प्रश्न। पद्मपुराणकी अनुक्रमणिका। २—त्रिलोकसंस्थान। ३—कुलकरगणकी उत्पत्ति। संसारका दुःख देखकर भयवर्णन। ४—आदि जिन ऋषभकी उत्पत्ति। नागाधिपमें ऋषभका अभिषेक। विविध उपदेश, लोकका आर्त्तिनाश, श्रमण धर्मग्रहण। केवल ज्ञानोत्पत्ति, विष्ट पातिग ऐश्वर्य, सर्वदेव और राजगणका आगमन, निर्वाण सुखसङ्गम, बाहुबल और भरतका निर्वाण वर्णन, द्विजातिगणकी उत्पत्ति, कुतीर्थक गणका प्रादुर्भाव, इक्ष्वाकु प्रभृति राजाओंका वंशकीर्तन, विद्याधरका उद्भव, विद्युद्दंष्ट्रका जन्म, जवण्यका उपसर्ग और केवल ज्ञानसम्पद् वर्णन, नागराजका संक्षोभ, विद्याहरण तर्जन, अजितनाथका अवतार, पूर्णाम्बुदकन्यासुख वर्णन, विद्याधर कुमारकाशरण और प्रतिसंश्रय, राक्षसराजका रक्षोद्वीप लाभ, सगरकी उत्पत्ति, सगरका दुःख, सगरकी दीक्षा और निर्वाण। ५—अतिक्रान्त महाराक्षसगणका वंशकीर्तन। ६—प्रधान प्रधान वानरोंका वंशविस्तार, तडित-केश चरित, उदधिका चरित, अमर चरित, किष्किन्धामें अन्ध खगोत्पत्ति, श्रीमालाखेचरका आगमन, विजयसिंहकावध, अशनिवेगजका क्रोध, अन्धकका शत्रु लाभ, पुरका विनिवेश, मधुपर्वत-शेखरपर किष्किन्धपुर-स्थापन, सुकेशनन्द नादिका, लङ्का प्राप्ति निरूपण, निर्घातवध हेतु, सुमालिका सम्पद् वर्णन, विजयार्द्धके दक्षिण इन्द्रका जन्म कथन, सर्वविद्या लाभ, सुमालिकी पञ्चत्व-प्राप्ति, वैश्रवणका जन्म, पुष्पान्तक समावेश, केकयराजके साथ सुमालिके पुत्रका योग, चारु स्वप्नदर्शन, दशाननका जन्म और विद्या लाभ, अनावृत्तका संक्षोभ, सुमालिका समागम। ८–रावणका मन्दोदरी लाभ, कन्याओंकी परीक्षा, भानुकर्णकी चेष्टा, वैश्रवण पुत्रका क्रोध, यक्षराक्षसका युद्ध, कुवेरकी तपस्या, दशाननका लङ्का गमन, प्रश्न-चैत्यदर्शन, हरिषेणका माहात्म्य, त्रिजगद्भूषण नामक करीन्द्रदर्शन, यमस्थानच्युति, अर्करजः किष्किन्ध सङ्गम, चोरद्वारा केकसेयीका हरण, लङ्काका संश्रय, चन्द्रोदय वियोगपर अनुराधाका महादुःख, विरोधित पुरध्वंस, सुग्रीव श्रीराम समागम, बालिकी प्रव्रज्या, अष्टापद पर्वतका क्षोभ, वालि निर्वाण। १०—सुग्रीवका सुताराලाभ, साहसगामीका सन्ताप, रावणका विजयार्द्ध पर्वतपर गमन, अनरण्य सहस्रांशुका वैराग्य। ११—मरुत्तयज्ञ नाश। १२—मधुका पूर्व जन्माख्यान, उपरम्भाका अभिलाष, महेन्द्रका विद्यालाभ और राज्यलक्ष्मी क्षय, इन्द्रपराभव। १३–इन्द्र निर्वाण। १४–दशाननका मेरुगमन, पुनः प्रत्यावर्त्तन, अनन्तवीर्यका प्रश्न, दशाननका नियमकरण। १५–हनुमान्‌की उत्पत्ति। १६–अष्टापद पर्वतपर महेन्द्रके साथ प्रह्लादका अभिलाप, वायुका कोप, उसके प्रसादसे अञ्जना सुन्दरीका विवाह, दिगम्बर कर्तृक हनूमानका पूर्वजन्म कथन। १७–पवनाञ्जना

सम्भोग, भूताटवीप्रविष्ट वायुका इभदर्शन, विद्याधर समायोग, अञ्जनाका दर्शनोत्सव। १८–हनुमान्का जन्म, दारुणदशामें वायुका पुत्र साहाय्यमें स्वीकार। १९–रावणका साम्राज्य। २०–जैन उत्सेध, तीर्थङ्करादिका जन्मानुकीर्त्तन। २१—वज्रबाहु और कीर्त्तिधरका माहात्म्य। २२–कोशल माहात्म्य विवरण, विभीषण व्यञ्जन। २४–दशरथका जन्म, केकयीको वरदान। २५–पद्म (राम) लक्ष्मण शत्रुघ्न और भरतका जन्म विवरण। २६–सीताकी उत्पत्ति। २७–म्लेच्छ पराजय वर्णन। २८–लक्ष्मणका रत्नलाभ, प्रभाचक्र हरण, तन्माताका शोक, नारदाङ्कित सीताको देखकर उनकी माताका मोह, सीतास्वयंवर वृत्तान्त, महाधनुकी उत्पत्ति, सर्वभूत शरण्यका दशरथको दीक्षा प्रदान। २९—दशरथका वैराग्य। ३०—भू-मण्डल-समागम। ३१–दशरथकी प्रव्रज्या। ३२–दशरथका वानप्रस्थाश्रम, सीतादर्शन, केकयीके वरसे भरतका राज्यलाभ। ३३–वैदेही पद्म और सौमित्रिका दक्षिणकी ओर गमन, वज्रकर्णोपाख्यान, वज्रकर्णकी चेष्टा, कल्याण पत्नीलाभ, रुद्रभूति का वशीकरण। ३४–वालखिल्य विमोचन। ३५–अरुणग्राममें रामपुर स्थापन। ३६—कपिलोपाख्यान। ३७–अतिवीर्याख्यान। ३८–अतिवीर्य पुत्र पद्म चरित, वनमालाका सङ्गम, जिता पद्मा लाभ। ३९–देशभूषण कुलभूषणका चरित। ४०–रामगिरिका आख्यान, वंशपर्वतपर रामचैत्यादिका कारण। ४१–जटायुका उपाख्यान। ४२–दण्डकारण्य निवास, पात्रदान फल। ४३–महानाग रथारोह। ४३—शम्बूकविनाश। ४४—कैकयीका वृत्तान्त, खरदूषण वध, सीताहरण, रामका विलाप। ४५—सीता वियोगदाह। ४६—विराधका आगमन, रत्नजटिका छेद। ४७–सुग्रीवसमागम, साहस-गतिका निधन। ४८–आकाशमें सीता-संवाद॥ ४९–हनुमत् प्रस्थान। ५०—महेन्द्र दुहिता समागम। ५१—गन्धर्व कन्या लाभ। ५२—हनुमानका लङ्का सुन्दरी कन्या लाभ। ५३–हनुमानका प्रत्यागमन। ५४–पद्मका लङ्कागमन। ५६–दोनोंका बल परिमाण। ५७–रावण निर्गमन। ५८–हस्तप्रदानकी कथा। ५९—हस्तप्रदान और नलनीलका पूर्व जन्म कथन। ६०–हरि और पद्मका विद्या लाभ। ६१–सुग्रीवभामण्डल समाश्वास, इन्द्रजित और कुम्भकर्णका सुरपन्नगबन्धन। ६२–लक्ष्मणका शक्ति शेल। ६३—रामका विलाप। ६४–विशल्यका पूर्व जन्म। ६५–विशल्यका समागम। ६६–रावण दूतागम। ६७–रावणका जिन शान्तिगृहमें प्रवेश। ६८–जिनस्तुति। ६९–फल्गुनाह्निक निरूपण। ७०–देवताओंकी लङ्काभवनमें प्रातिहार्य कल्पना। ७१–बहूरूपविद्या। ७१–युद्ध-निर्णय। ७३–युद्धोद्योग। ७५–चक्रोत्पत्ति ७६—लक्ष्मणद्वारा कैकसेयवध, रावणवध, उसकी नारियों और विभीषणका विलाप। ७७—प्रीतिङ्करोपाख्यान। ७८—केवलिका आगमन, इन्द्रजितादिकी दीक्षा और निष्क्रमण। ७९—सीतासमागम। ८०—मयोपाख्यान। ८१–नारदकी सम्प्राप्ति, अयोध्यामें प्रवेश, राम लक्ष्मण समागम। ८२–त्रिभुवनालङ्कार संक्षोभ। ८३–गजकी पूर्व जन्मकथा। ८४–त्रिभुवनालङ्कार समाधि। ८५–भरतका पूर्व-जन्मानुचरित। ८६–भरतकी प्रव्रज्या। ८७–भरतका निर्वाण। ८८–श्रीचक्रधरका साम्राज्य, लक्ष्म्यालिङ्गित वक्षका मनोरमा लाभ। ८९–मधुसुन्दरवध, लवण दैत्यकी मृत्यु। ९०–मधुरामें उपसर्ग। ९१–शत्रुघ्न जन्मानुकीर्त्तन। ९२–रम्भा लाभ। ९३–राम लक्ष्मणकी विभूति। ९४–जिनेन्द्र पूजा। ९५–रामकी चिन्ता। ९७–सीता-निर्वासन। ९८–सीता समाश्वासन। ९९–रामका शोक, सप्तर्षिका आगमन, वज्रजङ्घका परित्राण। १००–लवणाङ्कुशका जन्म। १०१–लवणाङ्कुशकी दिग्विजय। १०२–पिता (पद्म) के साथ महायुद्ध। १०३–लव-

णाङ्कुशका ऐश्वर्यलाभ, कैवल्य सम्प्राप्ति। १०४—लङ्काभूषणका अमरागमन, वैदेहीका प्रातिहार्य। १०५—रामका धर्मश्रवण। १०६—रामका पूर्व-जन्माख्यान, कृतान्तवक्त्रका स्तव, स्वयंवरमें परिक्षोभ। १०७—कृतान्तवक्त्रकी प्रव्रज्या। १०८—लवणाङ्कुशका पूर्व-जन्मकथन। १०९—मधुपाख्यान। ११०—कुमारगणका श्रमणधर्म और निष्क्रमण कथन। १११—भू-मण्डलका परलोक। ११२—हनुमानका निर्वेद। ११३—हनुमानका निर्वाण, इन्द्रपुर संवाद, रामपुत्रकी तपस्या। ११४—पद्मका दारुण शोक वर्णन। ११५—लक्ष्मण वियोग और विभीषणका संसार स्थिति वर्णन। ११६—लक्ष्मणका संस्कार और कल्याण मित्रका देवागम। ११७—वलदेवका निष्क्रमण। ११८—दान प्रसङ्ग। ११९—पद्म (राम) की कैवल्योत्पत्ति। १२०—वलदेव (राम) का सिद्धिगमन (निर्वाण)। (श्लोक संख्या १८८२३।)

३—अरिष्टनेमि पुराण (हरिवंश)

१—मङ्गलाचरण, ध्रुवसेन लोहाचार्य प्रभृति पूर्वाचार्य कथन। २—विदेहान्तर्गत कुण्डपुराधिपति सिद्धार्थ, श्रीसमुद्रका पुत्ररूपमें जिनका कथन, इन्द्रादि देवगणद्वारा जिनाभिषेक वर्णन, जिनका वर्द्धमान नामकरण, तीस वर्षमें उनकी वैराग्योत्पत्ति, वनगमन पूर्वक द्वादश वर्षव्यापी तपस्या, घातिसङ्घातिकर्मविनाश, केवल-ज्ञान-प्राप्ति, षट्षष्ठि दिवस मौनावलम्बनपर विहरण, राजगृह गमन, वहाँ रत्नसिंहासनोपविष्ट जिनेन्द्रके समीप चन्द्रलोक स्थिति, देवगण, नागकुमारगण और किन्नर गन्धर्वादिका समागम, तीर्थार्थ प्रकाशके लिए जिनेन्द्रके समीप गौतमका अनुरोध, वर्द्धमान द्वारा जिनधर्मार्थ प्रकाश, तत् प्रसङ्गमें संस्थान, समवाय, आचाराङ्ग, सूत्रकृत प्रज्ञप्ति हृदय, ज्ञातधर्म कथा, श्रावकाध्ययन, अन्तकृतदशा, अनुत्तर दशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्रार्थ और दृष्टिवादार्थ कथन, अनन्तर सबोंका जिनधर्मग्रहण पुरःसर स्वस्व-स्थानमें प्रस्थान। मगधमें जिन गृहावली निर्माणादि कथन, धर्मतीर्थ प्रवर्त्तन। ३—काशि-काञ्चि-द्रविड़-महाराष्ट्र-गान्धारादि सभी देशोंमें जैनधर्मप्रचार, जिनमुखोद्गत मागधी भाषामें उपदेश सुनकर जनताका शान्तिलाभ वर्णन, जिनके धर्म शासन प्रसङ्गमें सिद्धासिद्ध भेदसे दो प्रकारके जीव, पञ्चविध ज्ञानावरण, नवविध दर्शनावरण, अष्टाविंशति विध मोहनीय, चतुर्विध आयु, चत्वारिंशत् नाम, द्विविध गोत्र और पञ्चविध अन्तराय कर्म कथन, कर्म विध्वंसमें जीवका सिद्धत्व कथन, सिद्धगणका सम्यक् रूपसे परमानन्त केवलज्ञान और केवल दर्शनादिरूप अष्टविध गुण कथन। मोहोदय और नाशोपशम रूप अवस्थात्रययुक्त त्रिविध असिद्ध निरूपण, मिथ्यादृष्टि आसादन, सम्यङ्मिथ्या दृष्टि, संयतासंयताश्रय, सयत उपशान्त कषाय, सम्यक दृष्टि क्षीणकषायादि रूप असिद्धका गुणस्थाननिरूपण, सुख-दुःख प्राप्ति कारण कथन, भव्याभव्य भेदसे जीवोंका द्वैविध्य कथन, कुदृष्टि माया-लोभ प्रभृतिका फल कथन, मधुमांसादिवर्जनमें सुमानुष्यप्राप्ति, कुकर्म द्वारा कुमानुष्यप्राप्ति, इन्द्रियनिग्रहफल, कन्दर्परञ्जित कन्दर्प नामक देवताओंकी अभियोगिता और क्लिष्टत्वादिकथन, सम्यक् दर्शनका दुर्ल्लभत्वकथन, उसके अभावमें संसारसागर निमज्जन, पूर्वोक्त सम्यक्त्व-परमानन्तादिका कारण कथन, संक्षेपमें सनत्कुमार-महेन्द्र-शुक्र-महाशुक्रादि कल्पविवरण, दिवश्च्युति गणका गतिकथन, पूर्वजन्माभ्यस्त शुभ षोडश कारणोंसे जिन-शासनानुष्ठानद्वारा निर्वाण-प्राप्ति

कथन, जितशत्रुनामक श्रेणिकराजके निकट गौतमका हरिवंश कीर्त्तन। ४—आलोकाकाश शब्द-निरुक्ति, वहाँ जीव और पुद्गलका अवस्थानाभाव कथन, वहाँ धर्मास्तिकाय और अधर्मास्ति-कायादिका गतिस्थानाभाव, आलोकाकाशमें लोकका स्थितिकथन। ५—लोकशब्द निरुक्ति, लोकका वेत्रासन मृदङ्ग झल्लरी सदृश आकृतिकथन, वहाँ चतुर्दश रज्जुविभागादि कथन, लोकका धनवातादि त्रिविध वायु गणका परिमाणादि कथन। ६—अधोलोक संस्थान, नरकादिका वृत्तान्त, तिर्यक् लोकवर्णन प्रसङ्गमें द्वीपसागर देशादि निरूपण, उनका संस्थान और परिमाणादि कथन, अर्द्ध लोकवर्णन, नक्षत्रलोक और तदितर ज्योतिष्कादिका धरातलसे दूरत्वादि निरूपण, सिद्ध-लोक कथन, वर्णगन्धादिहीन कालस्वरूप कथन, मुख्य गौणभेदसे द्विविधकाल निरूपण, समय वृत्तिक्रमसे कालका त्रिविधत्व निरूपण, विश्वास-उच्छ्वास-प्राण-तोक-लवादिका लक्षण, परमाणु षडंशत्वकथन, वर्णगन्धरसस्पर्शद्वारा पूरण और गलन हेतु परमाणुकी पुद्गलाख्यता कथन, सुभद्र-त्रुटि-रेणु-वालाग्र-यूका-यव-अंगुल्यादिका मान लक्षण, अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीका लक्षण, अनुलोमक्रमसे अवसर्पिणीका सुखमादि षट्कालत्वनिरूपण, यथा सुखमा सुखमा सुखमा, दुखमा सुखमा सुखमा, इसके विलोममें उत्सर्पिणी निरूपण, अवसर्पिणीके प्रथम त्रिकालमें भारतभूमिका कल्पवृक्ष भूषित भोगभूमित्वादि कथन, तदनन्तर दुःखमा-अतीतमें परवर्त्ती दोनों कालमें गङ्गा और सिन्धु नदीके मध्य तथा दक्षिण भारतमें कुलकरोंकी उत्पत्तिके कथन-प्रसङ्गमें पहले श्रुति नामक कुलकरका राज्य-शासनादि वर्णन, उसके पुत्र सन्मति नामक कुलकारका विवरण, पीछे यथाक्रमसे क्षेमङ्कर, क्षेमन्धर, सीमन्धर, यथार्थ, विपुलवाहन, चक्षुष्यत, यशस्वी, अभिचन्द्र, मल्लदेव प्रसेनजितादि चतुर्दश कुलकरोंकी उत्पत्ति आदि कथन। ८—आदि जिन ऋषभके जन्मादि कथन प्रसङ्गमें दक्षिण नाभिराज, उनकी पत्नी मरुदेवकीकी कथा, मरुदेवकीके गर्भसे ऋषभदेवका जन्म, इन्द्र शची प्रभृति देव-देवीद्वारा मरुदेवीकी सेवा। भगवान् जिनदेव वृषरूपमें उनके उदरमें मुखप्रवेश कर रहे हैं मरुदेवीका इस प्रकार सुख-स्वप्न दर्शन, जिनदेवका जन्म। तीर्थङ्कर दर्शनार्थ सुरासुरोंका आगमन, साकेत नाम निरुक्ति, शचीका जिन-सूतिकागारमें प्रवेश, और तद्द्वारा जिनदेवका सुमेरु शिखरपर लाया जाना, इन्द्रादि सुरासुरद्वारा जिन देवका जन्माभिषेक, इन्द्रका वज्रसूचिद्वारा जिनका कर्णवेध सम्पादन, और उनके कर्णको रत्नकुण्डलद्वारा अलंकृत करना, जिनका 'ऋषभ' ऐसा नामकरण, पौलो-मीका जिनदेवको फिरसे अयोध्यानगरीमें लाना और उनके पिताका आनन्दवर्द्धन। ९—जिनदेवकी बाल्य क्रीड़ा, यौवनमें नन्दा और सुनन्दा नामक दोनों कन्याओंका पाणिग्रहण, नन्दाके गर्भसे भरत पुत्र और ब्राह्मी नामकी कन्याका जन्मविवरण, पीछे सुनन्दाके गर्भसे महावल नामक पुत्र और लोकसुन्दरी नाम्नी कन्याका जन्म, नन्दाके गर्भसे क्रमशः वृषभसेनादि ९८ पुत्रोंका जन्म कथन, अनन्तर आदिनाथका प्रजागणकी दुरवस्थापर दयार्द्र हो क्षतत्राण वाणिज्य और शिल्पादि सम्बन्धके क्रमसे क्षत्रिय वैश्य और शूद्र रूप त्रिविधवर्ण विभाग करना, नीलाञ्जन नाम्नी इन्द्रनर्त्तकीका नृत्य देख ऋषभकी वैराग्योत्पत्ति और इन्द्रादिका वाह्य शिविकामें आरोहण कर सिद्धार्थ-वनमें गमन, प्रयागक्षेत्रमें गमनपूर्वक केशमुण्डन, जिन देवका ध्याना-वलम्बन, देववाणी सुनकर समाधिस्थ क्षत्रियोंका भगवदभिप्राय जान नग्नोंका कुश चीवर-वल्कलधारण वृत्तान्त कथन, षण्मास अनशनपूर्वक नग्न जिनदेवका पृथ्वीपर भ्रमण, एकदा सोम-

प्रभ नामक राजाके घर जिनदेवका गमन और राजाका इक्षुरसपूर्ण कलसदान, इस प्रसङ्गमें दान तीर्थङ्करोत्पत्ति, प्रतिग्रह, स्थान, दानपाद प्रक्षालन, पूजन, प्रणति, मनः शुद्धि, वाक्य शुद्धि, काय-शुद्धि और एषणा शुद्धि इत्यादि नवविध दान कथन, पूर्वताल, पुराधिपति, वृषभसेनके शकट नामक महोद्यानमें न्यग्रोधवृक्षके नीचे जिनदेवका ध्यानयोग आश्रयपूर्वक कैवल्य ज्ञानप्राप्ति कथन, वह वृत्तान्त सुनकर भरतादिका वहाँ आना और जिनका अर्हितैश्वर्य दर्शन, प्रव्रज्या ग्रहण कथन। १०—जिनदेवका धर्मादेश, दया सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अमोहतादि पञ्च-सूक्ष्म यतिधर्म तथा गृहस्थधर्म निरूपण, उक्त विधर्मानुष्ठानसे मोक्षोद्भव कथन, श्रुतज्ञानसे वे सब धर्म लक्षणोत्पत्ति कथा, द्वादशाङ्ग निरूपण, पर्याय-अक्षर-पद-संघात-प्रतिपत्ति-अनुयोग प्रभृति वस्तु-पूर्ववाद इत्यादि क्रमसे श्रुतज्ञान विकल्प निरूपण, वर्ण पदादिका अवान्तर भेद, प्रपञ्च पर्यायाङ्गमें दृष्टिवाद प्रदर्शन, क्रियादृष्टिवाद, नियतिस्वभावकाल दैव और पौरुषादि द्वारा स्वपर नित्यानित्य भेदमें प्रत्येक जीवाजीवादि नव पदार्थका विंशति प्रकार भेद कथन, इस प्रकार कुल १८० प्रकारका भेद कथन, तिरसठ प्रकारका क्रियावाद दृष्टि निरूपण, विनय दृष्टि-वादका बत्तीस भेद यथा जनक-जननी-देव नृपति ज्ञाति बालवृद्ध और तपस्वीमें मन-वचन काय और दामरूप चतुर्विध विनयकार्य तथा परिकर्म सूत्र, अनुयोग, पूर्वगत, चूलिका प्रभृति परिकर्मादि भेद कथन पूर्वक चन्द्र, सूर्य, जम्बूद्वीप, द्वीप सागरादिके संस्थापनादिका निरूपण, अक्षरपदादि निरूपण, श्रोतृगणका श्रावकधर्म दीक्षा कथन। ११—जिनपुत्र भरतके दिग्विजय वर्णन प्रसङ्गमें गङ्गासागर प्रदेश दाक्षिणात्य सिन्धु देश हिमालय वृषभगिरि म्लेच्छदेशविजयादि कथन, म्लेच्छराजादिद्वारा भरतको कन्यादान, भरतके आदेशसे उनके भ्रातृगणका स्वस्वराज्य-त्यागपूर्वक जिनदेवकी शरण और प्रव्रज्या कथन, भरतका ऐश्वर्यादि वर्णन, भरतमित्र जय नामक हस्तिनापुरपतिका अपनी भार्याके साथ जिनधर्म श्रवणपूर्वक प्रव्रज्या ग्रहण, वृषभसेन-दृढरथ-कुम्भ-शत्रुमर्दन देवशर्म-गणधर धनदेव-नन्दन प्रभृति चौरासी गणिगणका नाम कथन, इनके मध्य वृषभका ही अपर नाम आदि जिनदेव कैलाशगिरि गमनपूर्वक गणिगणवेष्टित हो ऋषभका सिद्धस्थान गमन, देवगणका गन्धपुष्प धूपादि द्वारा जिनपूजा कथन। १२—भरत द्वारा निजपुत्र आदित्ययशाको राजपदपर अभिषेक, भरतका जैन दीक्षा ग्रहण, सपुत्र यशश्रुति-को राजपदपर अभिषेकपूर्वक आदित्ययशाका निष्क्रमण और निर्वाण वर्णन, बल-सुबल-अति-बल महाबल-अमृतबल प्रभृति चतुर्दश लक्ष संख्यक आदित्य वंशीय गणका राजत्याग और निर्वाण प्राप्ति कथन, जिनकुमार बाहुबलके औरससे सोमयशाकी उत्पत्ति और उससे सोमवंश प्रवर्त्तन, सोमयशाके पुत्र महाबल, महाबलके पुत्र सुबल, सुबलके पुत्र भुजबल इत्यादि पञ्च-शत कोटि लक्ष सोमवंशीय गणका निर्वाण, उग्रादि कौरवोंका निर्वाण और नामके वंशीय खेचरनाथ रत्नवज्र, रत्नरथ, प्रभृतिका निर्वाणप्राप्ति कीर्त्तन। १३—सगर नामक चक्रधरका षष्ठि सहस्र पुत्रजन्म कथन, दम्भपूर्वक उनका पृथ्वी खनन और उससे कुपित नागराजका उन्हें भस्म करना, यह सुनकर सगरकी जैनदीक्षा और मोक्षप्राप्ति, सगरके अपर पुत्र सम्भवनाथ और सम्भवके पुत्र अभिनन्दन इसी प्रकार उनके पुत्र सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ पुष्पदन्त और शीतल जिनेन्द्र इत्यादि इक्ष्वाकु वंशवर्णन। १४—वत्सदेशमें कौशाम्बीराज सुमुखकी कथा, सुमुखका वसन्तकालमें हस्तियानपर कालिन्दीपुलिनमें गमन, वसन्तोत्सवमें

एक सर्वाङ्ग सुन्दरी कामिनी दर्शन, इसके लिए सुमुखराजका विरह, यह वृत्तान्त सुनकर मन्त्रिगणद्वारा वनमाला नाम्नी उस कन्याका लाया जाना, वनमालाके साथ राजाका समागम, उसके गर्भसे हरिका जन्म, हरिके पुत्र मोदागिरि, मोदागिरिके पुत्र हेमगिरि और हेमगिरिके सुनय इत्यादि हरिवंशका वर्णन। १५—हरिवंशीय सुमित्र राजाख्यान, राजमहिषी पद्मावतीका शुभस्वप्न दर्शन उसके गर्भसे माघ शुक्ला द्वादशी श्रवण नक्षत्रमें जिनका जन्म-वृत्तान्त, पुरन्दरादि देवगणद्वारा हिमालय अधित्यकापर जिनका जन्माभिषेक, कुशाग्रपुरमें जननीकी गोदपर जिनेन्द्रका मुनि सुव्रत ऐसा नामकरण, सुव्रतका पाणिग्रहण, जलधरको देखकर विनश्वर शरीर वायुके सम्बन्धमें उपदेश, सुव्रतका राज्याभिषेक और उनके पिताकी समाधि, सुव्रतका निर्वेद, छः दिन उपवासपूर्वक उनका भिक्षार्थ बहिर्गमन, राजगृह निवासी वृषभदत्तका भिक्षादान, तदुपलक्षमें पुष्पवृष्ट्यादि शुभ कल्याण वर्णन, निजपुत्र दक्षको राज्यप्रदानपूर्वक सुव्रतका निष्क्रमण और निर्वाण कथन, दक्षके औरस और उनकी पत्नी इलाके गर्भसे ऐलेय नामक पुत्र और मनोहारी नाम्नी कन्याका जन्म, दक्ष प्रजापतिके नवयौवना कन्याका रूप देखकर विक्षिप्त हृदय होनेसे इलाका उसके प्रति क्रोध और इलाका पुत्रके साथ दुर्गम प्रदेशमें गमन, ऐलेयद्वारा नर्मदाके किनारे माहिष्मती नामक नगरी निर्माण, और पुत्र कुनिमको राज्यदानपूर्वक ऐलेयका तपस्याके लिए वनगमन, कुनिमद्वारा वरदाके किनारे कुण्डिन नामक नगर स्थापन और पुलोम पुत्रको राज्य देकर वानप्रस्थ ग्रहण, पुलोमके पुत्र चरम पौलोमद्वारा रेवाके किनारे इन्द्रपुर और उनके लड़के महीदत्तद्वारा कुलपुर-स्थापन, अनन्तर पुत्रादि क्रमसे मत्स्य, अवोधन, साल, सूर्य और देवदत्तादिका वृत्तान्त, देवदत्तपुत्र मिथिलानाथका विदेहाधिपत्य और उनके लड़के हारषेण शङ्ख और अभिचन्द्रादिका विवरण, अभिचन्द्रके पुत्र वसु उनके पुत्र बृहद्वसु महावसु आदि दश वसुका विवरण, वेदवित् क्षीरकदम्बके पुत्र पर्वत और शिष्यवसु तथा नारद वसुराजकी सभामें पर्वत और नारदका शास्त्रार्थ प्रकाश, नारदके कर्मकाण्डीय वेदभागकी निन्दा और कर्ममार्ग समर्थनमें पर्वतकी पराजय, वसुराजका पर्वतके प्रति पक्षपात, इस कारण उनका अधःपतन कथन। १८—मथुराधिप यदुकी उत्पत्तिकथा, उससे सूर और सुवीरका जन्म, सूरसे अन्धक वृष्ण्यादि और सुवीरसे भोजकादिका उद्भव, अन्धक वृष्णि समुद्रविजय और वसुदेवादि दशपुत्र तथा कुन्ती और मन्द्रा नामक दोनों कन्याओंकी जन्मकथा, भोजकवृष्णिसे उग्रसेन महासेन प्रभृति पुत्रका जन्म, सुवसुके वंशमें जरासन्धका उद्भव और उनके पुत्र कालयवनादिकी जन्मकथा, सुप्रतिष्ठ नामक मुनीश्वरद्वारा राजगृहागत वृष्णिगणके सामने नमिभाषित धर्मदेशना, यथा—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और निर्मूर्च्छा साधुओंके ये पाँच महाव्रत, कायिक वाचिक और मानसिक भेदसे त्रिविध गुप्ति, सर्वानिष्टप्रत्याख्यानरूप समिति, हिंसादि निवृत्तिरूप अणुव्रत, दिग्देश अनर्थ दण्डादि निवृत्तिरूप गुणव्रत, अतिथि पूजादि रूपव्रत, मांस मद्य-मधु-द्यूत-वेश्यादि त्यागरूप नियम, ये सब व्रत गृहियोंके अभ्युदयका साधक, अनन्तर अनेक प्रकारके जीवोंका कर्मवशसे कुयोनिप्राप्ति, पृथ्वी सलिलादिमें जीवविभाग संख्या और एकेन्द्रियसे पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त जीवगणका शरीरायुः प्रमाणादि कथन, अन्धकवृष्णिका पूर्वजन्म, समुद्रविजयके हाथमें राज्य और वसुदेवको समर्पणपूर्वक अन्धक वृष्णिको सुप्रतिष्ठका शिष्यत्व

स्वीकार, मथुरामें उग्रसेनको अभिषिक्त करके भोजकवृष्णिका निर्ग्रन्थ व्रतग्रहण, समुद्र-विजयके आदेशसे वसुदेवका रमणीय उद्यानमें अवस्थान और एक कुब्जाद्वारा उनका अधि-क्षेप, राजाके प्रति उनकी वीतश्रद्धा और श्मशानमें गमन, अग्निप्रवेश-प्रदर्शनपूर्वक छद्मवेश-में विजयखेद नामक पुरमें गमन, वहाँ गन्धर्व-विद्याप्रवीण सुग्रीव नामक क्षत्रियकी सीमा और विजयसेना नाम्नी कन्याओंका पाणिग्रहण, विजयसेनाके गर्भसे अक्रूरका जन्मदानपूर्वक उनका वन-गमन, अनन्तर दो विद्याधर कुमारोंके यत्नसे कुञ्जरावर्त नामक विद्याधरपुरमें गमन, वहाँ श्यामा नाम्नी विद्याधरकुमारीका पाणिग्रहण, अङ्गारक नामक किसी विद्याधर शत्रुद्वारा उन्हें आलिङ्गनपूर्वक आकाशमार्गमें हरण और चम्पानगरीमें यक्षकुमारीको लाना, चारुदत्तके साथ उनकी मित्रता, चारुदत्तके निकट गन्धर्व विद्याप्रकाश और गन्धर्वसेना नाम्नी राज-कुमारीका पाणिपीड़न। २०–२१ उज्जयिनीनाथ श्रीधर्मराजके बलि बृहस्पति नमुचि और प्रह्लाद नामक मन्त्रिचतुष्टयका प्रसङ्ग, मन्त्रिचतुष्टयके साथ अकम्पनादि जैनमुनि दर्शनार्थ राजाका बहिरुद्यानमें आगमन, उनके संसर्गसे राजाका निर्वेद, पद्मनामक पुत्रके हाथ राज्यभार अर्पण-पूर्वक उनका विष्णुकुमारके निकट जैनदीक्षा ग्रहण, पद्मद्वारा बलि नामक विप्रको सप्ताह-राज्यप्रदान, बलिके निकट विष्णुकुमारका आगमन और त्रिपादभूमि प्रार्थना, बलिद्वारा पाद-त्रय-भूमिदान, विष्णुकुमारका महाकाय धारणपूर्वक एक पादमें ज्योतिश्चक्र द्वितीयपादमें मनुष्य लोक और तृतीयपादमें अवकाशका अधिकार, देवगणद्वारा प्रसादन और विष्णुकुमारका महा-काय संवरण, उनके आदेशसे देवगणद्वारा बलिका बन्धन और देशसे निर्वासन, चारुदत्तका चरित्र और गणिका कलिङ्गसेना और दुहिता वसन्तसेनाका विवरण। २२–२४ फाल्गुनोत्सवमें गन्धर्वसेनाके साथ वसुदेवका पार्श्वनाथ प्रतिमा पूजनार्थ उस मन्दिरमें गमन, वहाँ नीलोत्पल दल श्यामा एक कन्या देखकर वसुदेवका मनोविकार, यह देखकर गन्धर्व सेनाकी ईर्षा और उन्हें जिनेन्द्रके निकट लाकर स्तोत्रद्वारा भगवान्का प्रसादन, पीछे स्वगृहमें लाकर प्रियाके पादतलमें पतित होकर उन्हें सान्त्वना, वसुदेवके निकट एक वृद्धा विद्याधरीका आगमन और उसके द्वारा उग्रभोजादि अनेक क्षत्रिय राजाओंकी जिनभक्ति और तपस्यादि वर्णन, मनु-मानव-कौशिक-गैरिक-गान्धार-भूमितुण्ड-आदित्य-व्योमचर-मातङ्ग प्रभृति विद्याचार्य, गौरीप्रज्ञप्ति रोहिणी, अङ्गारिणी, गौरी, महाश्वेता, मायूरी, कालमुखी आदि विद्या, दैत्य-पन्नग-मातङ्गादि भेदसे अष्ट विद्याधर और उनका विद्यानाम कथन, विनमिकुल तिलक विद्याधरपति मातङ्गकी गोत्रजा हूँ नाम मेरा हिरण्यवती है, इस प्रकार वृद्धा विद्याधरीका परिचयदान और मदङ्क-लालिताकी प्रीतिके लिए आगमन कारण कथन, वसुदेवको पानेके लिए उस विरहिणी विद्या-धरीका अवस्थावर्णन, निशाकालमें एक वेतालकन्याद्वारा वसुदेवहरण, श्रीमन्त नामक विद्याधराधिष्ठित गिरिवरमें लाना, वहाँ वसुदेवद्वारा नीलयशाका पाणिग्रहण और उसका जन्मविवरण श्रवण, नीलकण्ठ नामक विद्याधरद्वारा नीलयशाहरण, वसुदेवका दीनवेशमें देश-भ्रमण, सोमश्री नामक कन्याके साथ वसुदेवके विवाहप्रसङ्गमें सगर पुरोहितकृत सामुद्रिक शास्त्रागम और नरका शुभाशुभलक्षण निरूपण, अनन्तर वसुदेवका तिलवस्तुपुरमें गमन और वहाँ राक्षस वधान्तर पञ्चशत कन्याका पाणिग्रहण, पीछे वसुदेवका वेदसाम नामक पुरमें गमन और कपिलश्रुति नामक राजाकी हत्या करके उसकी कन्या कपिलाका पाणिग्रहण, उसके गर्भसे

कपिल नामक पुत्रजन्म, अनन्तर वसुदेवका शालिगुहापुरी-जयपुर-भद्रिलपुर-इलावर्द्धनपुरमें जाकर वहाँकी राजकुमारियोंका पाणिग्रहण। २५-२८—इलावर्द्धनपुरराज दधिमुखके साथ वसुदेवके संवादप्रसङ्गमें कौरववंशीय कार्त्तवीर्यका कामधेनुके लिए जमदग्निवध, पीछे परशुरामके हाथसे कार्त्तवीर्यका निपातन, परशुराम द्वारा ससवार पृथ्वी-निःक्षत्रियकरण, गर्भवती-कार्त्तवीर्यार्जुन-महिषीका जामदग्न्यके भयसे कौशिक मुनिके आश्रममें पलायन, वहाँ सुभौमनामक पुत्रजन्म, सुभौम द्वारा चक्रसे जामदग्न्यका शिरश्छेदन पूर्वक त्रिससवार पृथ्वी-को अब्राह्मणकरण, मदनवेगाके साथ वसुदेवका विवाह, उसके गर्भसे अनावृष्टि नामक पुत्र-जन्म, मदनवेगाका रूप धारणकर शूर्पणखाका वसुदेवको हरणपूर्वक अन्तरिक्षमें गमन, भद्राकी सहायतासे उसका परित्राण, कन्यापुरमें गमनपूर्वक वेगवती नाम्नी विद्याधर-कुमारीका पाणि-ग्रहण, उस प्रसङ्गमें नमि वंशजात विद्युद्दंष्ट्रका वृत्तान्त, विदेहनगरवासी सञ्जयन्त नामक मुनि चरित, श्रावस्तीपुरराज एणीपुत्रकी कन्या प्रियङ्गुसुन्दरीके साथ विवाह करनेकी इच्छासे वसु-देवका अपने वाह्योद्यानमें जाकर अवस्थान, वहाँ विप्रमुखसे मृगध्वज-महिषीके उपाख्यान प्रसङ्गमें नास्तिक और एकान्तवादी अलकापुर-राजमन्त्री हरिश्मश्रुका विवरण श्रवण। २९-३२—श्रावस्ती नगरमें कामदेव गृह नाम जैन-मन्दिरके नामकरण-प्रसङ्गमें कामदत्त श्रेष्ठी द्वारा स्थापित रतिकाम प्रतिभाव वृत्तान्त, कामदत्तके पुत्र कामदेव और उनकी कन्या बन्धुमती, प्रतिदिन कामदेव गृहमें जाकर वसुदेवकी रतिकामकी पूजा और सन्तुष्ट कामदेवद्वारा वसुदेवको बन्धुमती सम्प्रदान, यह वृत्तान्त सुनकर एणीपुत्र राजकन्याकी वसुदेवके प्रति अनु-रक्ति, पीछे उसके साथ वसुदेवका विवाह वर्णन, अनन्तर म्लेच्छराज कन्या जराका पाणिग्रहण और जराकुमारनामक पुत्रोत्पादन, अरिष्टपुर-राजकन्या रोहिणीका स्वयंवर, स्वयंवरसभामें समुद्रविजय जरासन्धादि अनेक राजाओंका आगमन, वसुदेवकी भ्रातृवेशमें वहाँ उपस्थिति, उनके गलेमें रोहिणीका वरमाल्यदान, इसपर समुद्रविजयादि राजाओंके साथ वसुदेवका तुमुल युद्ध, वसुदेवका जयलाभ, वसुदेवका परिचय पाकर समुद्रविजय द्वारा भ्राताका आलि-ङ्गन, रोहिणीके गर्भसे रामका जन्म, राम और भार्याके साथ वसुदेवका साकेत नगरमें आग-मन महोत्सव वर्णन। ३३-३४—धनुर्विद्या विशारद सशिष्य कंसादिके साथ वसुदेवका जरा-सन्ध जयार्थ राजगृहमें गमन, 'जो जीवित कुम्भीरको पकड़कर ला सकेगा, उसीको कन्या दूँगा' इस प्रकार सिंहपुर-राज सिंहरथकी घोषणा सुनकर वसुदेवका कंसके प्रति वीरपताका धारण-का आदेश, गुरुके आदेशसे कंसद्वारा सिंहरथ बन्धन और जरासन्धपुरमें निक्षेप, कंसका जन्म वृत्तान्त, कोशाम्बीवासिनी एक मद्यकारिणीकी यमुनाप्रवाहमें मञ्जूषाके मध्य कंसप्राप्ति, अपत्य निर्विशेषमें प्रतिपालन, जरासन्धका वह मञ्जूषा लाना और मञ्जूषासंलग्न लिपि पढ़कर कंसको उग्रसेन और पद्मावतीके पुत्रके जैसा अवधारण, जरासन्धद्वारा कंसको स्वकन्या जीवद्यशाप्रदान, कंसका मथुरामें आगमन और अपने पिता उग्रसेनको कारागारमें निक्षेप करके राज्यग्रहण पीछे वसुदेवको लाकर गुरुदक्षिणा स्वरूप देवकी नाम्नी अपनी भगिनीका समर्पण। वसुदेवपुत्रके हाथ पतिपुत्रकी मृत्यु होगी, इत्यादि कंसके प्रति जरासन्धकुमारीकी उक्ति, यह सुनकर वसुदेवके निकट प्रतारणापूर्वक प्रसूतिके समय देवकीको अपने घरमें रखनेकी प्रार्थना, इसपर वसुदेवका सम्मतिदान, देवकी वसुदेव और कंसके अग्रजका अतिमुक्त नामक मुनिके

आश्रममें जाकर स्व-स्व-अवस्था निवेदन, वहाँ उग्रसेनादिका जन्मादि कथन, देवकीका आश्वास, देवकीके गर्भजात नृपदत्त देवपाल अनीकदत्त शत्रुघ्नादि छः पुत्रोंका कंसके हाथसे अकालमृत्यु कथन, देवकीके सप्तम गर्भमें शङ्ख-पद्म-गदासिधारीका जन्म, उसके द्वारा कंसादिका विनाश और पृथ्वी भोग, जिनेन्द्र अरिष्टनेमिके चरितप्रसङ्गमें महोपवासविधि, सर्वतोभद्र नामक तपोविधि, त्रिलोकसार नामक तपोविधि, वज्रमध्यतपोविधि, मृदङ्गमध्य मुरजमध्य एकावली द्विकावली मुक्तावली रत्नावली कनकावली और सिंहनि क्रीडित-तपोविधि, मेरुपंक्ति, विमानपंक्ति शान्तकुम्भ सप्तसप्तम अष्टाष्ट नवनवम दशदशम इत्यादि द्वाविंश पर्यन्त तपोविधि-कथन अनन्तर एक कल्याणसे पञ्चविंशति कल्याणादि नामधेय भावना, भाद्रशुक्ला सप्तमीमें परिनिर्वाण, भाद्रकृष्णअष्टमीमें सूर्यप्रभ, त्रयोदशीमें चन्द्रप्रभ और कुमारसम्भव, सुकुमार सर्वार्थसिद्धि प्रभृतिविधि, तदनुष्ठानसे तीर्थङ्कर प्रकृति लाभ, ज्ञानादि षट्कषाय निवृत्तिसे विनय-सम्पन्नता, शीलव्रत रक्षारूप अनतिचार कथा। जन्म-जरा-मरणामय-मानस-शरीर-दुःखसे संसार भयरूप संवेगकथन इत्यादि प्रकारसे ज्ञानयोग, त्याग, मार्गानुमावेश, समाधि वैयावृत्य, बन्धन, अप्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, मार्गप्रभावन, प्रवचन और वत्सलतादि लक्षण-कथन। ३५-३७—देवकीके यमज पुत्र जन्म। यमजके स्थानमें दो मृतपुत्र रखकर उन दोनोंको ले देवताओंका अलकागमन। कसद्वारा उन दो मृत पुत्रोंको शिलातलपर निक्षेप, इस प्रकार कंसद्वारा देवकीका षटपुत्र नाश, देवकीका शुभ स्वप्न दर्शन पूर्वक गर्भधारण, भाद्रशुक्ल द्वादशी तिथिको शङ्ख चक्रादि चिह्नित अधोक्षजका जन्म कथन, पिताद्वारा वृषभ रूपधारी नगरदेवके निकट बलदेवका प्रदर्शन, भगवत् प्रभावसे यमुनाकी क्षीणप्रवाहता और नदी पार करके वसुदेवका नन्दालयमें गमन, तत्कन्या ग्रहण, उसके स्थानमें श्रीकृष्णकी स्थापना पूर्वक त्वरित पहले मथुरा आगमन, कंसका देवकीके सूतिकागारमें गमन और उस कन्याको ग्रहण कर उसका नासिका छेदन पूर्वक ताड़न, देवकीके नन्दालयमें गमनपूर्वक श्रीकृष्ण दर्शन, बलदेव और कृष्णका मथुरागमनपूर्वक केशी गज चाणूर मुष्टिक प्रभृतिका विनाश और कंस बधपूर्वक उग्रसेनको राज्यदान, रजताद्रिराज सुकेतुकी कन्या रेवती और सत्यभामाके साथ रामकृष्णका विवाह, दुहितृशोकसे सन्तप्त हो जरासन्धका रामकृष्ण निधनार्थ कालयवन नामक पुत्रका प्रेरण, अतुलमाला नामक पर्वतपर रामकृष्णके हाथसे कालयवनवध, जरासन्धद्वारा तद्भ्राता अपराजितका प्रेरण, रामकृष्णके निकट अपराजितकी पराजय। ३८-४०—कुवेरपत्नी शिवाका सुस्वप्न दर्शन, उसके गर्भसे अरिष्टनेमि नामक जिनेन्द्रका जन्म, इन्द्रादि देवगणद्वारा उनका अभिषेक, सुमेरु शिखरपर लाकर उनका नामकरण, महेन्द्रकृत जिनस्तोत्र, भ्रातृवध सुनकर क्रुद्ध हो चतुरङ्ग बलके साथ जरासन्धका मथुरागमन, वृष्णि भोजादिका मथुरात्यागपूर्वक पलायन, जरासन्धका तदनुसरण, यादवगणका विन्ध्यगिरिपर आगमन और वहाँ जरासन्धद्वारा युद्धाह्वान, दैवक्रमसे वहाँ भरतार्द्धवासीद्वारा बहुचिता सज्जा, यह देखकर 'यादवगण दग्ध हो रहे हैं' जरासन्धकी इस प्रकार कल्पना, यादवशिक्षित एक वृद्धाद्वारा जरासन्धके भयसे यादवगण चितामें दग्ध हो रहे हैं इस प्रकारकी उक्ति, यह सुनकर हृष्टचित्त जरासन्धका राजगृहमें प्रत्यागमन और यादवोंका शान्ति-लाभ। ४१-४४—द्वारका-निर्माण, श्रीकृष्णका अनेक राजकन्याओंके साथ विवाह, नेमिकुमारका संवर्द्धन, नारदका द्वारका आगमन और उसका जन्मविवरण, मैं दौर्यपुरनिवासी

निवासी सुमित्र नामक तापसका पुत्र हूँ, देवताके अनुग्रहसे मैं अष्टम वर्षमें सरहस्य जिनागम अध्ययन करके आकाशगामिनी विद्या और संयमासंयम लाभ किया है, इस प्रकार नारदका परिचय दान, नारदके उपदेशसे श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणीहरण, रुक्मिणीमुखच्युत ताम्बूलको श्रीकृष्णके कपडेमें बँधा हुआ देख सत्यभामाकी ईर्षा, पीछे रुक्मिणीको देवता जान उसके पद-पर कुसुमाञ्जलिप्रदान और स्वसौभाग्य प्रार्थना, रुक्मिणीके पुत्रजन्म, धूमकेतु नामक असुर द्वारा पुत्रहरण और खदिर वनके मध्य शिलातलपर स्थापन, पीछे मेघकूटराज, कालसंवर, महिषी, कनकमालाद्वारा वह शिशुग्रहण और पुत्रनिर्विशेषमें प्रतिपालन, पुत्रका संवाद जाननेके लिए श्रीकृष्णका नारदको प्रेरण, विदेहवासी सीमन्धर नामक जिनेन्द्रके निकट नारदागमन, उनके मुखसे मधुकैटभका प्रद्युम्न-साम्बरूपमें जन्मान्तर प्राप्ति-विवरण, श्रवण सीम-न्धरके आदेशसे नारदका मेघकूट जाकर प्रद्युम्नदर्शन, सत्यभामाके पुत्र भानुका जन्म, नारदके उपदेशसे श्रीकृष्णद्वारा जम्बूपुराधिपति जाम्बवकी कन्या जाम्बूवतीका हरण और भ्राता विष्वक्सेनके साथ उनका द्वारकामे प्रत्यागमन, श्रीकृष्णका सिंहल राजकन्या लक्ष्मणाके साथ विवाह, श्रीकृष्णका सौराष्ट्रगमन और नमुचिकी हत्या करके उसकी भगिनी सुसीमाका पाणि-ग्रहण, इस प्रकार श्रीकृष्णके साथ गौरी, पद्मावती और गान्धारी आदिका विवाह, एवं हलधर-के साथ रेवती, बन्धुवती, सीता और राजिवनेत्रादिका परिणय-कथन। ४५-४६—युधिष्ठिरादि-के जन्म-कथन प्रसङ्गमें कुरुवंश कीर्त्तन, आदिजिन ऋषभके समकालीन हस्तिनापुराधिप श्रेय और सोमप्रभका वृत्तान्त, सोमप्रभ-पौत्र कुरुसे कुरुवंशप्रवर्त्तन, अनन्तर क्रमान्वय, तद्वंशीय, कुरुचन्द्र, धृतिकर, धृतिमित्र, धृतिदृष्टि, भ्रमणघोष, हरिघोष, सूर्यघोष, पृथुविजय जयराज, सनत्कुमार, सुकुमार, नारायण, नरहरि, शान्ति, चन्द्रसुदर्शन, सुचारु, चारु, पद्ममाल, वासुकी, वसु, वासव, इन्द्रवीर्य, विचित्रवीर्य, चित्ररथ, पारसर, शान्तनु, धृत-कर्मा, आदिका नाम-कथन, धृतपुत्र धृतराजकी अम्बा, अम्बालिका और अम्बिकाके प्रति आसक्ति, उससे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरका जन्म, सुयोधन, युधिष्ठिर और अश्वत्थामादि-का जन्मादि कथन, निर्वासित-गृहदाह-मुक्त पाण्डवगणका वेशपरिवर्त्तनपूर्वक कौशिकपुरी श्लेष्मान्तक और वसुन्धरापुरादिगमन, युधिष्ठिरका वसन्तसुन्दरी समागम, पीछे उनका तथा उनके भ्रातृगणका त्रिश्रृङ्गपुर गमन-पूर्वक प्रभा सुप्रभा और पद्मादि राजकुमारियोंका पाणिग्रहण, हिडिम्बादिका संवाद, पार्थगणका द्रुपद राज्यमें गमनपूर्वक द्रौपदी लाभ, द्यूतमें पराजित पाण्डवोंका वनवास, उन लोगोंका रामगिरि-गमन और वहाँ राम-लक्ष्मण-प्रतिष्ठित जैनालयादि दर्शन, पीछे विराट् नगरमें वास और उनका वेशपरिवर्त्तनादि वृत्तान्त, द्रौपदी लुब्ध कीचकका भीमसे परित्राण, अनन्तर कीचकका तपश्चर्या-निर्वाण-लाभ, द्रौपदी और कीचकका पूर्व जन्म-वृत्तान्त। ४७ ५२—प्रद्युम्नचरित कीर्त्तन, उनका विविध अलङ्कार कुसुमवाण और कुसुमशयनादि लाभ, संवर-निग्रह, तद्गृहस्थिता दुर्योधनकन्या कनकलता-का वृत्तान्त, प्रद्युम्नका कनकलता-लाभपूर्वक नारदोपदेशसे द्वारका आगमन-कालमें रामकृष्णके साथ युद्ध, नारदके मुखसे प्रद्युम्नका परिचय और उनका द्वारकापुरी प्रवेश, महोत्सवादि वर्णन, साम्बका जन्म-कथन, अक्रूरादि श्रीकृष्ण-पुत्रके नामादि प्राधान्यानुसार यदुकुल कुमारोंमेंसे प्रत्येकका नाम और उनका सार्द्ध-त्रिकोटि-संख्या-कथन, यशोदा-गर्भजाता कंस-

निपीड़िता दुर्गाका पूर्व जन्मादि विवरण, जिन-सेवासे दुर्गाकी निर्वाणप्राप्ति, कृष्णके साथ युद्ध करनेके लिये ससैन्य जरासन्धका द्वारका-गमन, यादव और मागधपक्षीय प्रत्येक वीरका नाम और महासमर वर्णन, कृष्णद्वारा जरासन्ध-वध-वर्णन, जरासन्धके नाशके लिये द्रोण, दुर्योधन, दुःशासनादिका निवेदन और विदुरके समीप जिन दीक्षाग्रहण, कर्णका सुदर्शनोद्यानमें कर्णकुण्डक परित्यागपूर्वक दमवयाके निकट जिन-दीक्षाग्रहण और उस स्थानका कर्ण सुवर्ण नाम पड़नेका कारण कथन। ५३-५४—जरासन्ध और यादवोंका आनन्दस्थान तथा आनन्दपुर नामक जिनमन्दिर स्थापन वर्णन, श्रीकृष्णकी दक्षिण देशादि विजय, उसके द्वारा यदुवंशीय सहदेवको राजगृह, उग्रसेन सुतको मथुरा, पाण्डवोंको हस्तिनापुर और रुक्मनाभको कोशलपुर प्रदान, नारदके उपदेशसे धातकी खण्ड, भारतान्तर्गत अमरकङ्कपुर राज, पद्मनाभद्वारा द्रौपदीहरण, यह वृत्तान्त सुनकर पाण्डवोंका रामकृष्णादि यदुवलके साथ दिव्यरथकी सहायतासे लवणसमुद्र पार हो अमरकङ्कपुरमें गमन और द्रौपदीको उद्धार, पुनः सागर पारकर समुद्रके किनारे मलयाचलकी शोभासे हृतचित्त हो वहाँ मधुरा नामक पुरी निर्माणपूर्वक अवस्थानादि वर्णन। ५५-५६—वाणदुहिता उषाके साथ प्रद्युम्नतनय अनिरुद्धका विवाहादि वर्णन, श्रीकृष्णका रुक्मिण्यादिके साथ रैवतक विहार, नेमि जिनकी वैराग्योत्पत्ति, इन्द्रादि देवगणद्वारा नेमिका अभिषेक, रामकृष्णका निषेधमें भी नेमिनाथकी तपस्याके लिए गिरिराजमें गमन, जिनके ध्यानानुष्ठान प्रसङ्गमें ध्यान-स्वरूप-कथन, आर्त्त और रौद्र भेदसे द्विविध ध्यान कथन, तथा बाह्य और आन्तर भेदसे द्विविध ध्यान, पीछे चतुर्विध आन्तर ध्यान लक्षण, अनुपादेय दुःखका साधन हिंसा, संरक्षा, स्तेय और मृषानन्द भेदसे चातुर्विध रौद्रध्यान तथा भावशुद्धि साधनद्वारा योगाभ्यास रूप, धर्म, ध्यान, वह फिर बाह्य और आध्यात्मिक भेदसे द्विविध, फिर अपार विषयादि भेदसे दशविध, किस प्रकार संसार हेतु प्रवृत्तिका परित्याग किया जाता है उसकी चिन्ता ही प्रथम अपार-विचय, पुण्य प्रवृत्तिके समूहके आत्मसात् करणार्थ सङ्कल्प उद्भवका नाम 'उपाय विचय' जीवगणके अनादि निधनत्वका उपयोग, स्वलक्षणादि चिन्तन ही 'जीव विचय' स्याद्वाद प्रक्रियाका अवलम्बन करके तर्कानुसारी पुरुषका सन्मार्गाश्रय ही 'हेतु-विचय' इसी प्रकार अजीवविचय, विपाकविचय, विरागविचय, भावविचय, संस्थानविचय और आध्यात्मिक विचयादिका स्वरूप कथन, शुक्ल और परमशुक्ल भेदसे द्विविध शुक्ल ध्यान, परम शुक्ल ध्यान-प्रभावसे योगीका ज्ञान दर्शन सम्यक्त्व, वीर्य और चरित्र पूर्वक स्वकर्मक्षयद्वारा अनन्त सद्भावह मोक्ष प्राप्ति कथन, नेमिनाथकी छप्पन-अहोरात्र तपस्याकरके-शुक्ल-ध्यानादि-द्वारा-घातिकर्म-दहनकर-जैन-कैवल्य प्राप्ति कथन। ५७—जिनोंके समवस्थान-भूमि-निरूपण प्रसङ्गमें सामान्य भूमि, उद्यान, सरोवर और गृहादि कथन, वरदत्त नामक गणधरके प्रति जिन देवका उपदेश, एकात्म स्वरूप कथनसे एक रूपा, वाणी द्विविध कथनसे द्विरूपा इसी प्रकार नवरूपा वाणीकी वर्णना, जगतका भावाभाव निर्विकल्प, अहेतु और अनादिकाक्षित्यादि कार्य परम्परासे कर्तृत्व द्वारा सहेतुत्व सिद्धि कथन, अनादित्व, अपरिणामित्व, आत्मपरलोकत्व, धर्माधर्मका अस्तित्व, आत्माका कर्तृत्व, भोक्तृत्वादिकथन, आत्माका अस्ति नास्ति पद प्रकार अविद्याके प्रभावसे, आत्माका संसारबन्ध और विद्याके प्रभावसे, आत्माकी विमुक्ति सम्यक्

दर्शन, ज्ञान और चरित्र, इस त्रिविध विद्योत्पत्ति द्वारा मोक्ष-हेतुत्वनिरूपण, जीव, अजीव, आश्रव बन्ध, सम्बर, निर्जर और मोक्षरूप, सप्त, तत्त्व, ज्ञानेच्छा-द्वेष-सुख दुःखादि आत्म-लिङ्गत्व कथन, पृथिव्यादि भूतगणके संस्थान विशेषसे ही इस जीव तथा पिष्टकिण्वादिसे मद-शक्तिवत् चैतन्यकी उत्पत्ति हुई है, शरीरके चैतन्य व्यभिचारित्वसे नहीं, इस प्रकार चार्वाक मत खण्डन, आत्मा केवल संवित्मात्र नहीं है, क्षणेकात्मामें संवित्से प्रत्यभिज्ञान व्यवहार विलुप्त होता है। इत्यादि रूपसे क्षणिक विज्ञानवाद खण्डन, यही आत्मा अणुमात्र भी नहीं है अथवा अङ्गुष्ठमात्र भी नहीं है, सभी स्थानोंपर जिस प्रकार चक्षुकी दृष्टि नहीं जाती उसी प्रकारकी आत्मा भी सर्वोका विभु नहीं हो सकती देह-मात्र-परिमाण ही यह आत्मा है, बोधात्मक जीव, अबोधात्मक अजीव, अजीवका आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्गल और काल यह पञ्चविध अस्तिकाय कथन, संसारी और मुक्तभेदसे द्विविध जीव, समनस्क और अमनस्क भेदसे द्विविध, संसारी, शिक्षाक्रियाग्रहणालाप रूप संज्ञा जिसमें है वही समनस्क है, जिसमें इसका अभाव है वही अमनस्क है, यह जीव नयादि उपायद्वारा प्रतिपत्तियोग्य है, अनेकात्म द्रव्यमें नियत एकात्म संग्रहका नाम नहीं है, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक भेदसे द्विविध नय कथन, वह फिर नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द और समभिरूढ भेदसे पड्विध् अणु और स्कन्दभेदसे द्विविध पुद्गल, काय वाक् और मनका कर्मयोगरूप आस्रव, वह फिर सकपाय और अकपाय भेदसे द्विविध, कुगति प्राप्ति हेतु कषाय संज्ञा, पुनः शुभ और अशुभ भेदसे द्विविध आस्रव कथन, साम्परायिकी, कायिकी, अध्यात्मिकी, प्रत्यायिकी और नैसर्गिकी भेदसे पञ्चविध क्रियानुप्रवेश, इनमेंसे प्रत्येक पञ्चभेदसे पञ्चविंशति प्रकारका क्रिया लक्षण, इस प्रकार सामान्यभावसे कर्मास्रवका भेद प्रदर्शन पूर्वक प्रत्येकका विशेष कार्य निरूपण, अनन्तर पूर्वोक्त अहिंसा सुनृत अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप महागुण व्रत कथन, संसार कारणसे आत्मगोपनका नाम गुप्ति, कायिक वाचिक और मानसिक भेदसे त्रिविध गुप्ति सागार और अनागार भेदसे द्विविध व्रती कथन, गृहस्थका कर्त्तव्यतानियम, सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यग्चरित्र रूप रत्नत्रय प्राप्ति उपाय कथन, ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय मोहनीय आयु नाम गोत्र और अन्तराय भेदसे अष्टविध कपाय, निमित्तक प्रकृति निरूपण, इसके अवान्तर भेदादि, गतिभेद और मिथ्या दर्शनादि भेद कथन, त्रस स्थावर नाम भेदसे द्विविध, अमनस्क जीव चतुर्विध, द्वीन्द्रियादि कथन, सातप उद्योत उच्छ्वास शरीर सुभग दुभग सुस्वर दुःस्वरादि भेदसे शुभाशुभ सूक्ष्मादिलक्षण, विपाकजा और अविपाकजा द्विविधा निर्जरा कथन, निरोध रूप और भावद्रव्य भेदसे संवर कथन, प्राणि पीड़ा परिहार द्वारा सम्यगयन रूप समिति ईर्य्या भाषा एपणा आदान और उत्सर्ग भेदसे पञ्चधा समिति, समिति और गुप्तिका संवर, कारणता कथन, कर्म बन्धनके अभावमें दुःख-निवृत्त रूप अपवर्ग कथन, मोक्ष कारण जीवादि सप्त तत्व सुनकर यादवगण और उनकी कामिनियोंका अणुव्रत-ग्रहण-पूर्वक निजगृह गमन विवरण। ५९-६६—नेमिनाथका विहार-निर्माण-पुरःसर सुराष्ट्र मत्स्य लाट कुरुजाङ्गल पाञ्चालमागध अङ्ग और वङ्गादिदेशमें भ्रमण और जैनधर्मप्रचार कथन, कृष्णके ज्येष्ठ भ्रातृगणका नेमिनाथसे शिष्यत्वग्रहण, नेमिनाथ द्वारा सत्यभामा रुक्मिणी आदिका पूर्व जन्म कीर्त्तन, कृष्ण और नेमिनाथ संवादमें चक्रधर,

अर्द्ध चक्रधर, वृषभ, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, नेमि आदि अर्हत्‌गणका नाम पार्श्व और महावीर आदि भविष्य तीर्थङ्कर गणके नामादि और संक्षेपमें सभी तीर्थङ्करोंका चरित कीर्तन, पूर्वधर, शिक्षक, अवधि, केवली, वादी, वैक्रियार्द्ध और विपुलायुत भेदसे सप्तविध जिन कथन, इनके मध्य ४०५० पूर्वधर कथन, महावीरके समय पालकराजका भावी जन्म कथन, द्वैपायन मुनिके शापसे यदुवंश-ध्वंस-कथा, राम कृष्ण व्यतीत सभी यादव और पुरवासी गणका अग्निदाहमें विनाश, 'जरा कुमारके हाथसे कृष्णका निधन होना' यह वार्त्ता सुनकर कृष्णभ्राता जरा कुमारका द्वारका परित्यागपूर्वक दक्षिण प्रदेशमें गमन, यादवगणके विनाशपर शोकसे सन्तप्त रामकृष्णका दक्षिण मथुराकी ओर गमन, राहमें वनके मध्य वृक्षके तले सोये हुए कृष्णका जरा कुमार निक्षिप्त शरसे चरण वेधन और कृष्णका देह त्याग, बलदेवका विलाप, जराकुमारके मुखसे कृष्णकी निधनवार्त्ता सुनकर पाण्डवगणका बलदेवके समीप आगमन और कृष्णका और्ध्वदेहिक क्रिया सम्पादन. बलदेवकी तपस्या, पाण्डवगणकी प्रव्रज्या, उनका निर्वाण और नेमिनाथका निर्वाण कीर्तन। (श्लोक संख्या ९३४४)।

इस पुराणमें दिगम्बरोंके मत और विश्वासके सम्बन्धमें अनेक कथाएँ वर्णित हैं।

सनातन धर्मियोंकी पौराणिक कथाओंसे जैनियोंकी पौराणिक कथाएँ कितनी भिन्न हैं और उनमें जैन महापुरुषोंका सनातनिक महापुरुषोंसे कितना उत्कर्ष दिखाया है, यह बात जैन पद्मपुराण और जैन हरिवंश पुराण पढ़ जानेसे स्पष्ट हो जाता है। हमने इन पुराणोंकी विषय-सूची इसीलिए पहले और कुछ विस्तारसे दी है।

४—उत्तरपुराण

आदि पुराणको अधूरा ही छोड़कर जिनसेन निर्वाण प्राप्त हुए। उनके शिष्यने आदि पुराणको ४५ से ४७ सर्गतक समाप्त किया और जिनचरित्र पूरा करनेके उद्देश्यसे उत्तर-पुराणकी रचना की।

समस्त शास्त्रोंके सारस्वरूप यह पुराण धर्मवित् श्रेष्ठ व्यक्तिगणद्वारा ८२० शक, पिङ्गल संवत्सर, ५ आश्विन (शुक्ल पक्ष) बृहस्पतिवारको पूजित हुआ। इस समय विश्व-विख्यात-कीर्त्ति सर्वशत्रुपराजयकारी अकालवर्ष नृपति सारी पृथ्वीके ऊपर राज्य करते थे।

इस उत्तरपुराणमें दूसरे तीर्थङ्कर अजितनाथसे लेकर चौबीसवें तीर्थङ्कर महावीर तक २३ तीर्थङ्करोंका लीलाख्यान संक्षेपसे कहा है। एक-एक तीर्थङ्करको लेकर इस पुराणमें एकएक पुराण बना है। अर्थात् इस पुराणमें २३ पुराणोंका संग्रह है। किन्तु इसकी पर्व-संख्या जिनसेनके आदि पुराणकी पर्व सख्याके बादसे लगायी गयी है। आदि पुराण ४७ पर्वोंमें पूरा हुआ है। अढ़तालीसवें पर्वसे यह उत्तरपुराण आरम्भ हुआ है। इस पुराण संग्रहकी अनुक्रमणिका नीचे दी जाती है।

दूसरे अजितनाथपुराणमें—अढ़तालीसवें पर्वमें साकेत नगराधिप इक्ष्वाकुवंशीय काश्यपगोत्र जितशत्रुके औरस और उनकी पत्नी विजयसेनाके गर्भसे जिनेन्द्रका आविर्भाव ज्येष्ठ पूर्णिमाके रोहिणी नक्षत्रमें द्वितीय जिनका गर्भप्रवेश, माघमासकी शुक्ला दशमीको उनका जन्म, इन्द्रादि देवगणद्वारा उनका जन्माभिषेक, अजितनाथ यह नामकरण, बहत्तर लाख वर्ष

उनका आयुमान, साढ़े चारसौ धनु शरीरमान, देहवर्ण, सुवर्ण, माघमास रोहिणी नक्षत्रकी शुक्ला नवमीको सहेतुक वनमें सप्तपर्णद्रुमके निकट सार्द्धषष्ठोपवास-पूर्वक संयम, शुक्ल एकादशीके शेषमें आत्मज्ञान। उनके सिंहसेनादि ९०, गणधर ३७५०, संख्यक पूर्वधर २१,६००, शिक्षक ९४००, त्रिज्ञानी २०,०००, केवलज्ञानी २०,४००, विक्रियर्द्धि १२,४५०, मनः पर्ययदर्शी २०००, अनुत्तरवादी १,०००००, तपोधन ३,२०,०००, प्राकुब्जादि आर्यिका ३०००००, श्रावक और ५००००० श्राविकाका संख्याकथन, पूर्वविदेहके अन्तर्गत वत्सकावन्तीके राजा जयसेन और उनके पुत्र रतिषेणकी कथा, सगर और उनके साठ हजार पुत्रोंकी कथा।

तीसरे सम्भवनाथ पुराणमें—४९वें पर्वमें पूर्वविदेहकच्छ विषयके अन्तर्गत क्षेमपुरमें विमलवाहन राज और उनके पुत्र विमलकीर्त्ति, विमलकीर्त्तिको राज्यदानपूर्वक विमलवाहनका जिन-शिष्यत्व और निर्वाणकथन, श्रावस्ति राज काश्यप गोत्र दृढ़राज और उनकी महिषी सुषेणा, फाल्गुनकी शुक्लाष्टमीको सुषेणके शुभ स्वप्नमें गिरीन्द्र शिखराकार वारण दर्शन और सुषेणके गर्भसे नवम मासमें मृगशिरा नक्षत्र पूर्णिमाके दिन सम्भवनाथका जन्म और जन्माभिषेकादि चरित कथन, उनका आयुमान छः लाख वर्ष, शरीर मान ४०० धनु, देह सुवर्ण वर्ण, उनकी चारुषेणादि गणधर संख्या १७५, पूर्वधर २१५०, शिक्षक १२,३००, अवधिदर्शी ९६००, केवलज्ञानी १५,०००, वैक्रियार्द्धि १९,८००, मनः पर्ययी १२,१५०, अनुत्तरवादी १२,०००, निर्ग्रन्थ २,०००००, धर्मार्य्यादि आर्यिका ३,३०,०००, उपासक ३,०००००, और श्राविकाकी संख्या ५०,०००। चैत्रमासकी शुक्ल षष्ठीको सम्भवनाथका निर्वाण वर्णन।

चौथे अभिनन्दन पुराणमें—५०वें पर्वमें पूर्वविदेहमें मङ्गलावती नगरमें महाबलका राजत्व और मोक्ष वर्णन, अभिनन्दनके जन्मसे निर्वाणपर्यन्त वर्णन, उनका गणधर १०३, पूर्वधर १२,५००, शिक्षक २,३०,०५०, त्रिज्ञानी ९८००, केवलज्ञानी १६०००, वैक्रियर्द्धि १९,०००, मन.पर्यय ११,६५०, अनुत्तरवादी ११,०००, यति ३,०००००, मेरुषेणा प्रभृति आर्यिका ३,३०,६००, उपासक ३,००,००० और श्राविका ५,००,०००।

पाँचवें सुमतिनाथ पुराणमें—५१वें पर्वमें पुष्पकलावतीके अन्तर्गत पुण्डरीकिणी पुरके राजा रतिषेणका वैभव और मोक्षादि वर्णन, साकेतराज मेघरथ और उनकी पत्नी मङ्गलाके पुत्ररूपमें, श्रावणमास शुक्ल द्वितीया मघानक्षत्रको सुमतिनाथका गर्भप्रवेश और चैत्रमासके शुक्लपक्ष चित्रा नक्षत्रको सुमतिनाथके जन्मसे चैत्रमास मघा नक्षत्र शुक्ल एकादशी-तक उनका मोक्षपर्यन्त वर्णन, उनका आयुमान ४०,००,००० वर्ष, शरीरमान ३०० धनु, गणधर संख्या ११६३, पूर्वधर २४००, शिक्षक २,५४,३५०, अवधिज्ञानी ११,०००, आत्मज्ञानी १३,०००, वैक्रियर्धि १८४००, मनःपर्ययी १०,४००, अनुत्तरवादी १०,४५०, संन्यासी ३२,०००, अनन्तादि आर्यिका ३,३०,०००, श्रावक ३,००,०००, और श्राविका ५,००,०००।

छठे पद्म प्रथम पुराणमें—५२वें पर्वमें विदेहके दक्षिण सुसीमा नगरमें अपराजित नामक राजाका राजत्व और मोक्ष वर्णन, कौशाम्बी नगरमें इक्ष्वाकुवंशीय धरण नामक राजा और उनकी महिषी देवी सुसीमासे पद्मप्रभका जन्म, माघकृष्ण षष्ठीको उनका गर्भ-प्रवेश

ौर कार्त्तिक मासकी कृष्ण त्रयोदशीको उनके जन्मसे लेकर फाल्गुनमास चित्रा नक्षत्र कृष्ण तुर्थीको निर्वाण पर्यन्त। उनकी गणधर संख्या ११०, पूर्वधर २३००, शिक्षक २९,०००, वधि ज्ञानी १०००००, केवल ज्ञानी १२०००, विक्रियार्द्ध १६८००, मनः पर्यय १३,०००, नुत्तरवादी ९६००, यतीश्वर ३३००००, रात्रिषेणादि आर्यिका ४२००००, श्रावक ०००० और श्राविका ५०००००।

सातवें सुपार्श्वस्वामिपुराणमें—५३वें पर्वमें सुकच्छ विषयमें क्षेमपुराधिप नन्दि-गका वैराग्य और मोक्षवर्णन, वाराणसीराज सुप्रतिष्ठ और उनकी महिषी पृथ्विषेणासे सुपार्श्व ामीका जन्म, भाद्रमास विशाखा नक्षत्र शुक्लषष्ठीको उनका गर्भप्रवेश, ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशीमें न्मसे लेकर फाल्गुन कृष्ण सप्तमी अनुराधा नक्षत्रमें निर्वाणपर्यन्त उनकी गणधर संख्या ५, पूर्वधर २३०, शिक्षक २,४४,९२०, अवधिज्ञानी ९,०००, केवलज्ञानी ११,०००, वैक्रि-र्धि १५,३३०, मनःपर्यय ९,१५०, अनुत्तरवादी ८,६००, यतीश्वर ३०,०००, मीनाप्रभृति ार्यिका ३३,०००, श्रावक ३,००,००० और श्राविक ५,००,०००।

आठवें चन्द्रप्रभपुराणमें—५४वें पर्वमें विदेहके पश्चिमस्थित दुर्गवनान्तर्गत श्रीपुर ामक स्थानमें श्रीषेणका राजत्व, श्रीकान्तानाम्नी उनकी महिषीकी कथा, राजाका वैराग्य ौर मोक्ष। इक्ष्वाकुवंशीय चन्द्रपुराधिप महासेन और उनकी महिषी लक्ष्मणासे चन्द्रप्रभका न्म चैत्र कृष्ण पञ्चमीको उनका गर्भप्रवेश, पौषकृष्ण एकादशीको जन्माभिषेकसे फाल्गुन-ासकी शुक्लसप्तमी ज्येष्ठा नक्षत्रको निर्वाण, गणधर संख्या ९३, पूर्वधर २००, शिक्षक ,००,४००, अवधिज्ञानी ८,०००, केवलज्ञानी १०,०००, विक्रियर्द्धि १४,०००, चतुर्ज्ञानी ,०००, वादीश ७,६००, साधु २,५०,०००, वरुणादि आर्यिका ३,८०,०००।

नवें पुष्पदन्तपुराणमें—५५वें पर्वमें पुष्कलावतीके अन्तर्गत पुण्डरीकिनीपुरमें हापद्म नामक राजाकी जिनभक्ति और मोक्षादि वर्णन, काकुन्दिनगराधिपति इक्ष्वाकुवंशीय ुग्रीवराज और उनकी पत्नी जयरामासे पुष्पदन्तका आविर्भाव। फाल्गुन कृष्ण नवमी मूल क्षत्रमें उनका गर्भप्रवेश, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष चैत्रयोगमें जन्माभिषेकादिसे भाद्रमास ुक्लाष्टमीमें निर्वाणपर्यन्त। विदर्भादि सप्तर्द्धि संख्या ८८, श्रुतकेवली १५००, शिक्षक ,५५,५००, त्रिज्ञानी ८४००, केवलज्ञानी ७०००, विक्रियर्द्धि १३,०००, मनःपर्यय ७५००, नुत्तरवादी ६६००, पिण्डितर्द्धि २,००,०००, घोषादि आर्यिका ३,८०,०००, श्रावक ,००,०००, श्राविका ५०००००।

दसवें शीतलनाथपुराणमें—५६वें पर्वमें सुसीमा नगराधिप पद्मगुल्मका प्रभाव, राग्य और मोक्ष वर्णन, भद्रपुरराज दृढ़रथ और उनकी महिषी सुनन्दासे शीतलका आवि-र्भाव। चैत्रमास पूर्वाषाढ़ा और कृष्णाष्टमीको गर्भप्रवेश, माघमास शुक्लद्वादशीको समेद शेखरपर निर्वाणप्राप्तिपर्यन्त वर्णन। उनकी अनागारादि गणधर संख्या ८१, पूर्वधर १४००, शिक्षक ५९,२००, त्रिज्ञानी ७२००, पञ्चमज्ञानी ७,०००, वैक्रियर्द्धि १२,०००, मनःपर्यय २००, वादी ५७००, यति १,००,०००, धरणादि आर्यका ३,८०,००० श्रावक २०,०००, श्राविका ४,००,०००।

ग्यारहवें श्रेयांसनाथपुराणमें—५७वें पर्वमें क्षेमपुरराज नलिनप्रभका प्रभाव,

वैराग्य और मोक्ष वर्णन इक्ष्वाकुवंशीय सिंहपुराधिप विष्णुराज और उनकी पत्नी नन्दासे श्रेयांसका जन्म, ज्येष्ठ मास कृष्ण षष्ठी श्रवणनक्षत्रमें उनका गर्भप्रवेश, फाल्गुनमास कृष्ण एकादशीमें उनके जन्माभिषेकसे श्रावणमासकी पूर्णिमा तिथि और धनिष्ठा नक्षत्रमें निर्वाण-प्राप्ति-पर्यन्त वर्णन। उनकी गणधर संख्या ७७, पूर्वधर १३००, शिक्षक ४८,२००, तृतीय ज्ञानी ६०००, पञ्चमज्ञानी ६५००, विक्रियर्द्धि ११,०००, मनःपर्यय ६००, अनुत्तरवादी ५०००, अखिलदर्शी ४५,०००, धरणादि आर्यिका १,२०,०००, श्रावक २०,०००, श्राविका ४,००,०००। राजगृहपति विश्वभूति विश्वनन्दि और उनकी पत्नी लक्ष्मणाकी कथा, विषयपुर राज पोदन और उनकी पत्नी मृगवती, जयवतीपुरमें विशाखनन्दी और अलकापुरमें मयूरग्रीवके पुत्र हयग्रीवका प्रसङ्ग।

बारहवें वासुपूज्यपुराणमें—५८वें पर्वमें रत्नपुरमें पद्मोत्तर राजप्रसङ्गमें उनका निर्वाण वर्णन, इक्ष्वाकुवंशीय चम्पानगराधिप वासुपूज्य और उनकी पत्नी जयावतीसे वासुपूज्यका जन्म, आषाढ़ कृष्ण चतुर्दशीमें उनका गर्भप्रवेश फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीमें उनके जन्माभिषेकसे भाद्रमास शुक्ल चतुर्दशी विशाखा नक्षत्रमें उनका निर्वाण कथन, उनकी गणधरसंख्या ६६, पूर्वधर १२००, शिक्षक २९,२००, अवधिज्ञानी ५४००, श्रुतकेवली ६००, विक्रियर्द्धि १०,०००, चतुर्ज्ञानी ६०००, अनुत्तरवादी ४२००, यति ७२००, सेना प्रभृति आर्यिका १,०६,०००, श्रावक २०,०००, और श्राविका ४,००,०००, मलयदेशके विन्ध्यपुरमें विन्ध्यशक्ति नामक राजाकी कथा, महापुरराज वायुरथ, इन्द्रकल्पमें द्वारावतीपुरमें ब्रह्म नामक उनका अवतार और मोक्ष वर्णन।

तेरहवें विमलनाथपुराणमें—५९वें पर्वमें रम्यकावतीराज पद्मसेनका प्रभाव, काम्पिल्यपुरमें पुरुवंशीय कृतवर्मासे विमलनाथका जन्म, ज्येष्ठ मास कृष्ण दशमी उत्तर भाद्रपद नक्षत्रमें उनका गर्भप्रवेश, माघ शुक्ल चतुर्दशीको उनके जन्माभिषेकसे आषाढ़ मासकी कृष्णाष्टमीमें निर्वाण और उनका श्रावक श्रावकादि संख्या निरूपण, विमलनाथ तीर्थमें राम केशव धर्म और स्वयम्भूका जन्मादि आख्यान।

चौदहवें अनन्तनाथपुराणमें—६०वें पर्वमें अरिष्ट पुराधिपति पद्मरथका विवरण, इक्ष्वाकुवंशीय साकेत नगराधिप सिंहसेन और उनकी पत्नी जयश्यामासे अनन्तनाथका जन्माख्यान, कार्त्तिकमास कृष्णप्रतिपदमें उनका गर्भप्रवेश, ज्येष्ठमास कृष्ण द्वादशीमें उनके जन्माभिषेकसे चैत्रमास अमावस्याको रेवती नक्षत्रमें उनका मोक्षपर्यन्त, उनके गणधर पूर्वधरादिकी संख्या वर्णन, पोदनाधिपति वसुसेन सुप्रभ पुरुषोत्तम और मधुसूदनका प्रसङ्ग।

पन्द्रहवें धर्मनाथपुराणमें—६१वें पर्वमें सुसीमा नगराधिप दशरथका निर्वाणाख्यान, कुरुवंशीय रत्नपुराधिप भानुराज और उनकी पत्नी सुप्रभासे धर्मनाथका जन्माख्यान, वैशाखमास शुक्ल त्रयोदशी तिथि रेवती नक्षत्रमें उनका गर्भप्रवेश, माघमास शुक्ल त्रयोदशीमें उनके जन्माभिषेकसे निर्वाणपर्यन्त वर्णन, उनके गणधरादिकी संख्या और सनत्कुमारादिका विवरण।

सोलहवें शान्तिनाथपुराणमें—६२वें पर्वमें तिलकान्तपुर राजचन्द्रप्रभा और उनकी पत्नी सुभद्राका आख्यान शान्तिनाथके गर्भ प्रवेशसे दीक्षापर्यन्त वर्णन, प्रसङ्गमें अनन्त

वीर्य और अपराजितका अभ्युदय वर्णन। ६३वें पर्वमें बलदेवकी कन्या विजयाका स्वयंवर वर्णन, शान्तिनाथका वैराग्य और निर्वाण वर्णन।

सत्रहवें कुन्थुनाथपुराणमें—६४वें पर्वमें सुसीमापुराधिप सिंहरथका आख्यान कुन्थु चक्रधरका गर्भप्रवेशसे मोक्षपर्यन्त वर्णन।

अठारहवें अमरनाथपुराणमें—६५वें पर्वमें क्षेमपुरराज धनपतिका आख्यान, अमरनाथका गर्भप्रवेशसे मोक्षपर्यन्त वर्णन, प्रसङ्गमें सुभौम, चक्रवर्ती, नन्दिषेण, वनदेव और पुण्डरीक नामक अर्द्धचक्रवर्त्ती और निशुम्भ नामक प्रतिशत्रुका विवरण।

उन्नीसवें मल्लिनाथपुराणमें—६६वें पर्वमें वीतशोकपुरराज वैश्रवणका आख्यान, मल्लिनाथके चरितप्रसङ्गमें पद्मचक्रधर, नन्दिमित्र, देवदत्त और वासुदेव बलीन्द्रका प्रसङ्ग।

वीसवें मुनिसुव्रतपुराणमें—६७वें पर्वमें राजगृह पुराधिप, सुमित्रराज और उनकी पत्नी सोमासे सुव्रतका जन्म और उनका चरिताख्यान, स्वस्तिकावती, पुराधिप, विश्वावसु और उनके अध्यापक क्षीरकदम्बका आख्यान, नारद और पर्वतकी कथा, सुमार्ग प्रवर्त्तन।

इक्कीसवें नेमिनाथपुराणमें—६८वें पर्वमें नागपुराधिप नरदेवराज-चरित, रावणाख्यान, सीताकी जन्मकथा, नेमिनाथका चरितकीर्त्तन, हरिषेण चक्रवर्त्ती रामदेव लक्ष्मीधर केशवादिका आख्यान। ६९वें पर्वमें जयसेन चक्रवर्त्तीका आख्यान।

बाईसवें नेमिनाथपुराणमें—७०वें पर्वमें नेमिचरितप्रसङ्गमें समुद्रविजय और कृष्ण-चरित वर्णन। ७१वें पर्वमें नेमिनाथका निर्वाण वर्णन। ७२वें पर्वमें पद्मनाथ बलदेव कृष्ण जरासन्ध आदिकी परमायुसंख्या कथन।

तेईसवें पार्श्वनाथ पुराणमें—७३वें पर्वमें पार्श्वनाथका पूर्व जन्म अभ्युदय और निर्वाणाख्यान।

चौबीसवें महावीरपुराणमें—७४वें पर्वमें महावीर-चरित-प्रसङ्गमें मगधाधिप श्रेणिकराज और जयकुमाराख्यान, ७५वें पर्वमें चन्दना नाम्नी आर्यिका और जीवन्धका आख्यान, ७६वें पर्वमें महावीरका निर्वाण, ७७वें पर्वमें जिनसेन और गुणभद्रादिकी प्रशस्ति। (श्लोकसंख्या प्रायः १०,०००)

आदि और उत्तरपुराणमें प्रत्येक तीर्थङ्करके पहले जिन सब राजचक्रवर्त्तियोंकी कथा है पुराणकारोंके मतसे वे तीर्थङ्कर पहले जन्ममें उन्हीं सब राजाओंके रूपमें पैदा हुए थे। जैसे, आदि पुराणमें लिखा है कि ऋषभदेव पहले महाबल चक्रवर्त्ती राजा हुए। जैनधर्ममें दीक्षित होकर वे ही पीछे ललिताङ्गदेव नामसे जन्मे। फिर अन्य जन्ममें उत्पन्न पुराधिप वज्रबाहुके पुत्र वज्रजङ्घ नामसे उत्पन्न हुए। इस जन्ममें जैनभिक्षुको खाद्य दान करके आर्य नामक जैनाचार्य्य रूपमें जन्मे। पीछे वे स्वयम्प्रभ नामसे दूसरे स्वर्गमें लौटे। अनन्तर सुवेदी नामसे शशीनगर राजवंशमें जन्मे। पीछे वे ही सोलहवें स्वर्गमें अच्युतेन्द्र रूपमें प्रकट हुए थे। उन्होंने फिर पुण्डरीकिणी नगराधिप वज्रसेनके पुत्र वज्रनाभ नामसे जन्म लिया। इस जन्ममें वे विशुद्ध चारित्र लाभ करके मोक्षधामके निकट सोलहवें स्वर्गमें प्रकट हुए। इसके परजन्ममें ही वृषभतीर्थ नाम धारण कर पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए। इस जन्ममें

उन्होंने अपने एक पुत्र भरतको नाटक, दूसरे पुत्र बाहुबलको काव्य, अपनी लड़की ब्राह्मीको व्याकरण और दूसरी लड़की सुन्दरीको गणितशास्त्रकी शिक्षा दी थी।

इस उत्तर पुराणमें श्रीकृष्ण त्रिखण्डाधिपति और तीर्थङ्कर नेमिनाथके शिष्य माने गये हैं। जैन पुराणोंकी यह एक विशेषता है कि जगह-जगह जैन धर्मकी दीक्षाकी चर्चा है, और जिन महापुरुषोंको वैदिक पुराणोंमें बहुत महत्त्व दिया है, उन्हें इनमें प्रायः जैन धर्ममें प्रवेश कराकर गौण स्थान दिया है।

आदि और उत्तर पुराणमे चौबीस तीर्थङ्कर बारह चक्रवर्त्ती, नव वासुदेव, नव शुक्ल बल और नव विष्णुद्विप, इस तरह तिरसठ महापुरुषोंका चरित रहनेके कारण उक्त दोनों ग्रन्थ त्रिषष्ठ्यवयवी पुराण नामसे प्रसिद्ध हैं।

५—अजितनाथ पुराण

पहले पर्वमें—मङ्गलाचरणमें चौबीस जिनों स्तवका गौतम सुधर्मादि और गुणभद्रादि पूर्ववर्त्ती पुराणकारोंकी वन्दना, संवेगिनि और निर्वेददायिनी धर्मकथा, वर्द्धमानसे गुरुपरम्परामें पुराणप्राप्ति कथा, विपुलाचलमें महावीर और श्रेणिक संवाद, अजितनाथ पुराणानुक्रमणिका कथन। २—श्रेणिक-इन्द्र-भूति संवादमें पुराणोपक्रम। ३—त्रिलोक रचना विधान। ४—कुल कर्तृगणका जन्म और अभिधान। ५—ऋषभकी उत्पत्ति, सुमेरुपर ऋषभका अभिषेक, विविध उपदेश, लोक दुःखनाश श्रवण, धर्माश्रय केवलोत्पत्ति। ६—आदि जिनका ऐश्वर्य, नर और अमराधिप गणके ऊपर अध्यक्षता, सद्धर्मामृततर्पण, कैलाशमें ऋषभनाथका निर्वाणगमन, भरतका निर्वाण। ७—राजगणका कीर्त्तन, भूतिविक्रम नामक राजेन्द्रका तपोवन-गमन, सूरविक्रमका वैराग्य मोक्ष साधनका कारण, गुणसेनका माहात्म्य, विजयादि राजाओंकी दीक्षा और दीक्षायन्त्रनिरूपण, विजयका महाक्षोभ, उनका अयोध्या गमन। ९—पुरुदेवका चरित। १०—पुरुदेवका माहात्म्य। ११—सिंहध्वजका माहात्म्य। १२—सुकेतु चरित, जितशत्रु-राजका-राज्य लाभ वर्णन। १३—उनका वंशाधिकार। १४—अजित जिनोत्पत्ति प्रसङ्ग। १५—जिन गर्भावतार। १६—अजितनाथका जन्माभिषेक। १७—उनकी चेष्टा। १८—बाल्यकालमें उनका अपराजय कथन, तद्विद्वेग तिरस्कार, अजितनाथका पराक्रम वर्णन। १९—जितशत्रुका वैराग्य, अजितनाथका राज्याभिषेक। २०—सगरका जन्म। २१—अजितनाथका निष्क्रमण। २२—सगरका हरण, प्रेमश्रीका प्रेम बन्धन। २३—सगरकी जिन-वन्दना। २४—सगरका विवाह। २५—सगरका मतिवर्द्धिनी लाभ। २६—सगरका श्रीमाला लाभ कथन। २७—महादेवका दीक्षा-वर्णन। २८—सगरका अभ्युदय। २९—अजितनाथका केवल ज्ञान लाभ। ३०—सगरका स्त्रीरत्नलाभ। ३१—सगरकी दिग्विजय। ३२—अयोध्या गमन। ३३—सगर साम्राज्य। ३४—भगीरथका जन्म। ३५—समवश्रुति व्याख्यान। ३६—जिनका विहार वर्णन और सगरका जिन वन्दन। ३७—तत्त्वोपदेश। ३८—सद्धर्मोपदेश कथन। ३९—देवियोंका भवान्तर सम्बन्ध। ४०—अजितनाथका निर्वाण वर्णन। ४१—सगरका निर्वेद सगरका निष्क्रमण। ४२—सगरका केवल ज्ञानरूप साम्राज्य लाभ। ४३—चैत्यालय, संयत, चैत्य, सिद्ध, प्रतिमा-

दर्शन और सगरका निर्वाण कथन। ४४—भगीरथका निर्वाण, जह्नुकी उत्पत्ति और माहात्म्य। ४५—सम्भव जिन माहात्म्य। ४६—अन्य जिन गणका प्रसङ्ग। ४७—गुरु परम्परा कथन।

६—शान्तिनाथ पुराण

१—जिन-वन्दना, सुधर्मादि गुरुगणका नमस्कार और पूर्ववर्त्ती कवियोंकी प्रशस्ति, ग्रन्थारम्भमें वक्तश्रोतृलक्षण, जीवाजीवादि सप्ततत्व कथन। २—शान्तिनाथोत्पत्ति-प्रसङ्गमें विजयार्द्ध पर्वतके मानादि, तन्निकटवर्त्ती नगर संख्या और नगर मान कथन, शान्तिनाथका जन्म अभिषेक और स्वयंप्रभा सह विवाह वर्णन। ३—अमिततेजका राज्य, प्रजापतिका जलन, जटीकी मुक्ति, श्रीविजयका विघ्नविनाश वर्णन। ४—अमिततेजका धर्मप्रश्न-करण। ५—श्रीपेणराजकी उत्पत्ति और चरित कथन। ६—विचुल देव और बलदेवका आख्यान। ७—अनन्त वीर्यका दुःख और अच्युतेन्द्रका सुख वर्णन। ८—अनन्तवीर्यका सम्यक्त्व लाभ, वज्रायुध और चक्रवर्त्तित्व प्राप्ति। ९—उनका इन्द्रभद्ररूपक वर्णन। १०—मेघरथ नृपतिकी उत्पत्ति और चरित वर्णन। ११—मेघरथकी वैराग्योत्पत्ति और दीक्षाग्रहण। १२—शान्तिनाथका गर्भावतार वर्णन। १३—शान्तिनाथका जन्म और देवताओंका आगमन वर्णन। १४—शान्तिनाथका जन्माभिषेक और राज्यलक्ष्मी वर्णन। १५—शान्तिनाथका निष्क्रमण और ज्ञान कल्याणक द्वयवर्णन। १६—शान्तिनाथका समवसरण धर्मोपदेश और निर्वाणवर्णन। (श्लोक संख्या ४३७५)।

७—मुनि-सुव्रत-पुराण

१—दुर्जन-निन्दा, सज्जन स्तुति, कविका सामर्थ्य और असामर्थ्य कथन, वक्ताका लक्षण, श्रुतिका लक्षण, शास्त्र माहात्म्य। २—मगध विषयमें राजगृह नगरमें श्रेणिक नामक जैन नरपतिकी कथा, उनकी चेलिनी नामक महिषीके गर्भसे रूप विद्या सम्पन्न सप्त पुत्रका जन्म, वैभारगिरि-शिखरपर समागत महावीरके दर्शनार्थ वहाँ श्रेणिकराजका गमन और उन्हें प्रमाणपूर्वक पुराणश्रवणार्थ प्रार्थना। ३—जम्बूद्वीप, भारतवर्ष, चम्पानगरी और तन्न-गराधिप हरिवर्माका वृत्तान्त। ४—धर्मिल्ल नगराधिपति भानुका वृत्तान्त, उनका नागपुरमें गमनपूर्वक नागकामिनी दर्शन और वहाँ उनका युद्धादि वर्णन, कैलासगिरि रामनाथ योगीन्द्रका विवरण, उनके द्वारा विदेहाधिपति महासेनका वृत्तान्त वर्णन, रम्यक-देश-राजपुत्र त्रिविक्रमको उसकी कन्या सम्प्रदानादि कथन। ५—चम्पानगरी राजहरिवर्माका नागकन्याके साथ समागम, अनन्तवीर्य नामक जिन योगीन्द्रके निकट हरिवर्माका उपदेश लाभ। ६—ब्रह्मचर्यादि चतुराश्रम-धर्म-वर्णन, योगीन्द्रके मुखसे धर्मोपदेश सुनकर राजाका निर्वेद और निज पुत्रको राज्यदानपूर्वक तपश्चरण। ७—हरिवर्माका ध्यान-प्रकार-कथन, उनका स्वर्गलाभ और वैभव वर्णन, ८—आर्यावर्त्तके अन्तर्गत शोभाधार मगधका विवरण, हरिवंशराजका वृत्तान्त और उनके घरमें नभ-स्थलसे रत्नादि-पतन वृत्तान्त। ९—जिनदेवका हरिवंश-पुत्र रूपमें जन्म, उनका मुनिसुव्रत यह नामकरण, उनके अभिषेक कालमें इन्द्रादि देवगण द्वारा स्तुतिगान, उनकी बाल्यलीला और राज्यप्राप्ति, तालपुरराजका उनके वाहन गजरूपमें जन्म और गार्हस्थधर्म कथन। ११—मुनि सुव्रतकी दीक्षा केवलोत्पत्ति और आहत्य कथन।

मथुराधिपति मल्लराजका विवरण। १२—मल्लिनगराधिपतिका वृत्तान्त, मल्लिके प्रति मुनि सुव्रतके उपदेश प्रसङ्गमें संक्षेपसे जैनधर्म तात्पर्य, अर्हत् पूजाके मन्त्रादि और चतुराश्रम धर्म कीर्त्तन। १३—मुनिसुव्रतका निर्वाण, मथुरापति यशोधरका अनन्तनाथ नामक चतुर्दश, जिनके निकट दीक्षाग्रहण, हरिषेणका चक्रवर्त्तित्व और सर्वार्थसिद्धि-प्राप्ति कीर्त्तन। १५—कालपरिमाण संख्यादि कुलकर गणका विवरण, उनके वंशमें ऋषभदेवका जन्म और उनके पुत्र भरतादिके वृत्तान्त, क्रमसे सगरादिका वंश वर्णन, सुयोधन-राज कन्याके स्वयंवरमें सगरका गमन-वृत्तान्त। १६—श्रुत नामक मुनिका उपाख्यान, वसुराजका उपाख्यान, नारद और पर्वत नामक तपस्वीका समित् पुष्पाहरणार्थ रमणीय वनमें प्रवेश, वहाँ सात रमणियोंके साथ विहार और एक मयूर दर्शन विवरण, सगरानुष्ठित पशुयोगसे पर्वत मुनिका आर्त्ति ग्रहण, हिंसाका दोषावहत्व और अहिंसाका परम धर्मत्व कथन। १७—वाराणसीमें दिलीपका राजत्व, रघुके उत्पत्ति-कथन प्रसङ्गमें रघुवंश और राम लक्ष्मणादिकी उत्पत्ति-कथन, अयोध्यामें राजा दशरथका राजधानी स्थापन और नागपुराधिपति नरदेवका विवरण। १८—मेघकूटाधिपति सहस्रग्रीव नृपतिका विवरण, तद्भ्रातुष्पुत्र सिकण्ठके निकट युद्धमें पराजित सहस्रग्रीवका निर्वाण, सितकण्ठका लङ्कामें राजधानीकरण, उनके शतकण्ठ पञ्चाशत कण्ठ पुलस्त्यादि पुत्रपौत्रादिका वृत्तान्त। १९—मेघश्रीके गर्भजात पुलस्त्यपुत्रका रावण नामकरण, वालिसुग्रीवादिका जन्म, वालिके निकट रावणकी सात वार पराजय, कण्ठमें हार धारणद्वारा रावणकी दशकण्ठत्व प्राप्ति, रावण कृत नन्दीश्वर, व्रतानुष्ठान, मन्दोदरी, मनोवेगा, मञ्ज, घोषा और मञ्जुघोषा प्रभृति रावण-महिषियोंका विवरण, मन्दोदरीके गर्भसे सीताका जन्म वृत्तान्त, भूमि-खनन-कालमें जनककी मञ्जूषास्थित कन्या प्राप्ति, रामके साथ सीताका परिणय, दशरथकी आज्ञासे रामका अभिषेक, रामका सीता और लक्ष्मणके साथ वाराणसी गमनपूर्वक तद्राज्य शासन, रावणकी सभामें नारदका आगमन वृत्तान्त। २०—वाराणसीस्थ चित्रकूटोद्यानमें स्त्रियोंके साथ राम लक्ष्मणका वसन्तोत्सव, नारदके कहनेसे शूर्पणखा और मारीचकी सहायतासे रावणका सीताहरण, सीताहरण वृत्तान्त सुनकर जनक भरत और शत्रुघ्नका रामके समीप आगमन, इस समय अञ्जनानन्दन और सुग्रीवका स्वयं रामके समीप गमन, अञ्जनापुत्रका हनुमान् नाम पड़नेका कारण, सीता दर्शनार्थ हनुमान्का भ्रमररूपमें लङ्काप्रवेश, मन्दोदरीकृत सीताका आश्वास वर्णन। २२—रावणका हनुमान्के साथ संवाद, विभीषणका रामपक्षपातित्व एक गजके लिए लक्ष्मणके साथ युद्धमें वालिका मृत्युपुर-गमन, वानरसेनाके साथ लङ्कामें प्रविष्ट रामका रावण वधादि वृत्तान्त, राम लक्ष्मणकी दिग्विजय और पुनः अयोध्यामें गमन, दशरथ कृत रामका राज्याभिषेक, कार्त्तिक शुक्ल द्वितीयामें जिनपूजा विधि, रामकी जिनमन्दिरमें पूजा, सीताके गर्भसे अष्टपुत्रका जन्म, उनमेंसे लवको यौवराज्यमें अभिषेक, लक्ष्मणके वियोगसे रामका आदिजिनके निकट जाकर केवल-दीक्षा ग्रहण, अन्यान्य तिथियोंमें जिन-पूजा-विधि और रामका शिव प्राप्ति कथन।

इस पुराणके रचयिता कृष्णदासने ग्रन्थ-रचनाकाल और अपना जो परिचय दिया है वह इस प्रकार है—

"इन्द्वष्टषट्चन्द्रयितेऽथवर्षे (१६८१) श्रीकार्त्तिकाख्ये धवले च पक्षे।
जीवे त्रयोदश्यपराह्णयामे कृष्णेन सौख्यायविनिर्मितोऽयम् ॥
लोहपत्तननिवासमहेभ्यो हर्ष एव वनिजामिव हर्पः ।
तत् सुतः कविविधि कमनीयो भाति मङ्गलसहोदर कृष्णः ॥
श्रीकल्पवल्ली नगरेगरिष्ठे श्रीब्रह्मचारीश्वर एव कृष्णः ।
कण्ठावलम्ब्यूर्ज्जित पूरमल्लः प्रवर्द्धमानो हितमाततान ॥
पञ्चविंशति संयुक्तं सहस्रत्रयमुत्तमम् ।
श्लोकसंख्येति निर्दिष्टा कृष्णेन कवि वेधसा ॥"

(संवत्) १६८१ वर्षमें कार्त्तिक मास शुक्लपक्ष त्रयोदशी तिथि अपराह्ण-कालमें कृष्णद्वारा यह पुराण रचा गया। लोहपत्तन निवासी हर्ष उनके पुत्र कविमङ्गल और कवि-मङ्गलके सहोदर यही कल्पवल्ली नगरवासी श्रीब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास थे, इस समय पूरमल्ल राज्य करते थे। इस पुराणकी श्लोक-संख्या ३०२५ है।

८—मल्लिनाथपुराण (सकल-कीर्त्ति-रचित)

१—जिनस्तुति, विदेहके अन्तर्गत कच्छकावती नामकपुरी वर्णन, वहाँके वैश्रवण नामक राजाकी कथा, धर्मोपदेश रत्नत्रय वर्णन। २—वैश्रवराजका दीक्षा-वर्णन। ३—इन्द्रभवन वर्णन। ४—चैत्रमास शुक्ल प्रतिपद अश्विनी नक्षत्रमें मल्लिनाथका गर्भावतार, जन्माभिषेक कल्याण वर्णन। ५—मल्लिनाथकी वैराग्योत्पत्ति। ६—उनका निष्क्रमण और कैवल्योत्पत्ति। ७—मल्लिनाथका धर्मोपदेश और निर्वाण वर्णन।

९—विमलनाथपुराण (कृष्णदास-विरचित)

१—जिनस्तुति और सज्जनस्तुति-प्रसंगमें जम्बूद्वीपादि लोकसंस्थान राजगृहपुर वर्णन, मगधराज श्रेणिकका विवरण, चन्द्रपुराधिपति सोमशर्माके निकट श्रेणिकका पत्रप्रेरण, श्रेणिक पत्नीका विलाप, श्रेणिकका निर्वेद और उनका परिव्रज्याश्रय, महावीरके निकट श्रेणिकका गमन और पुराणप्रश्न। २—विमलनाथपुराण-जिज्ञासा, धातकी खण्ड वर्णन, पद्मसेन राजका विभूति वर्णन। ३—कपिलापुराधिप कृतवर्मा और उनकी महिषी जय-श्यामाके गर्भसे ज्येष्ठ मास कृष्णा दशमीको जिनेन्द्रका आविर्भाव वर्णन और इन्द्रादिदेवगण-द्वारा उनका अभिषेक तथा विमलनाथ यह नामकरण। ४—विमलनाथकी दीक्षा, मधु स्वयम्भू और बलभद्रकी समृद्धि। ५—विमलनाथका निष्क्रमण, मेरुमन्दरपर आगमन और तत्कृत ब्रह्मज्ञान-तत्त्वोपदेश। ६—वैजयन्त और सञ्जयन्तकी दीक्षा, सञ्जयन्तकी शिवप्राप्ति, आदित्याभदेव समागम। ७—श्रीधर-देवकी-उत्पत्ति और विभूति वर्णन। ८—रामदत्त रत्नमाला अच्युत पूर्णचन्द्र रत्नायुध सिंहासन और वज्रायुधका सर्वार्थसिद्धि-गमन। ९—मेरु मन्दरकी दीक्षा और विमलनाथका निर्वाण, विमलनाथके संयमी और श्रावक-श्रावकादिका संख्या निरूपण, ग्रन्थकार कृष्णदासका गुरुपरम्परा कीर्त्तन।

१०—जैन पुराणका उपसंहार

रविषेणका पद्म (राम) पुराण जिनसेनका अरिष्टनेमि पुराण (हरिवंश) और आदि

पुराण तथा गुणभद्रका उत्तर पुराण, प्रधानतः इन्हीं चार पुराणोंका पाठ करनेसे दिगम्बर जैनियोंका पौराणिक तत्त्व जाना जा सकता है।

उक्त चार महापुराणोंका आधार लेकर ही पीछेके जैन कवियोंने नाना पुराणोंकी रचना की है। सकल कीर्ति, अरुणमणि, जिनदास, श्रीभूषण और ब्रह्मचारी कृष्णदास आदि सबने एक स्वरसे अपने अपने पुराणमें यह बात मानी है। जैन लोगोंका कहना है कि सकलकीर्त्ति और उनके शिष्य जिनदासने चौवीस जिनोंके चरित मूलक पुराणोंकी रचना की थी।

इन पुराणोंके सिवा केशवसेनकृष्णजिष्णु ने कर्णामृतपुराण और खीष्टकी सोलहवीं शताब्दीके श्रीभूषण सूरिने पाण्डवपुराणकी रचना की है। पाण्डवपुराणमें पाण्डवचरित कहा है। महाभारतके आख्यानके साथ अनेक विषयोंमें इसकी कथाएँ मिलती हैं।

विश्वकोशकार कहते हैं कि दक्षिणापथके जैन समाजमें प्राचीन कर्णाटकी भाषामें भी अनेक पुराण पाये जाते हैं।

११—बौद्धधर्म पुराण

नैपाली बौद्ध-समाजमें स्वतन्त्र बौद्ध-पुराणोंका आजकल प्रचार है। परन्तु प्राचीन बौद्ध ग्रन्थोंमें पुराणोंका उल्लेख नहीं है। आजकल नैपाली बौद्ध लोग नौ पुराण मानते हैं। इन्हें नव धर्म भी कहते हैं। आख्यान, इतिहास, बौद्धोंके वृत्तादि और प्रधान-प्रधान तथागतोंकी जीवनी, इन पुराणोंमें वर्णित है।

पहला पुराण प्रज्ञापारमिता—जिसमें आठ हजार श्लोक हैं।

दूसरा पुराण—गण्डव्यूह—इसमें बारह सौ श्लोक हैं और सुधनकुमारका चरित वर्णन है। जिन्होंने चौंसठ गुरुओंसे बोध-ज्ञानकी कथा सुनी थी।

तीसरा पुराण—समाधिराज है—जिसमें तीन हजार श्लोक हैं और जपद्वारा समाधिकी विधि व्यवस्था वर्णित है।

चौथा पुराण—लङ्कावतार है—इसमें तीन हजार श्लोक हैं। इसमें लिखा है कि रावण मलयगिरि गया था और वहाँ शाक्यसिंहसे बुद्धचरित्रका श्रवण किया था। जिससे उसे बोधि-ज्ञान लाभ हुआ।

पाँचवाँ पुराण—तथागत गुह्यक।

छठा पुराण—सद्धर्म पुण्डरीक—इसमें चैत्य वा बुद्धमण्डल निर्माण पद्धति है और उसकी पूजाका फल बताया गया है।

सातवाँ पुराण—बुद्ध वा ललितविस्तर—इसमें सात हजार श्लोक हैं। इसमें भगवान बुद्धका चरित्र विस्तारसे वर्णन किया गया है।

आँठवाँ पुराण—सुवर्णप्रभा है—इसमें सरस्वती, लक्ष्मी और पृथ्वीकी कथा है और उनके द्वारा बुद्धपूजा है।

नवाँ पुराण—दशभूमीश्वर है—इसमें दो हजार श्लोक हैं और विस्तारसे दस भूमियोंका वर्णन है।

इन नव पुराणोंके सिवाय नैपाली बौद्धोंमें वृहद् और मध्यम दो स्वयम्भुवपुराण भी

पाये जाते हैं, नैपालमें स्वयम्भुवक्षेत्र और स्वयंभुवचैत्य प्रसिद्ध तीर्थ हैं। इन ग्रन्थोंमें उनका माहात्म्य विस्तारसे कहा गया है। बृहद् स्वयम्भुव पुराणके अन्तमें जो कुछ लिखा है उससे जान पड़ता है कि इस पुराणकी रचना नैपालमें शैव धर्मकी प्रबलताके बाद विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दिमें हुई होगी।

इस पुराणके शेषांशसे मालूम होता है कि शैवसे ही आधुनिक बौद्धोंका प्रभाव भग्न हुआ है—शैव सम्प्रदायने ही बौद्ध धर्मको अपना ग्रास बना डाला है। इस बृहत् स्वयम्भू पुराणमें लिखा है—

यदा भविष्ये काले च अत्र नेपालमण्डले।
शैव धर्मा प्रवर्त्तन्ते दुर्भिक्षश्च भविष्यति॥
यथा यथा शैव धर्मे प्रवर्त्तन्तेऽत्र मण्डले।
तथा तथा च अत्यर्थं दुःखपीड़ा भविष्यति॥
बौद्ध लोक गणायेऽपि शैव धर्म करिष्यति।
ते सर्वे कृत पापाच्च नरकञ्च गमिष्यति॥
शैवलोका जना येऽपि बौद्धधर्मं प्रवर्त्तते।
तस्य पुण्यप्रसादाच्च सुखावर्ती गमिष्यति॥ (८ अ०)

धर्म्मशास्त्र-खण्ड

उनचासवाँ अध्याय

मानव धर्मशास्त्र

श्रुतिके सम्बन्धमें यह चर्चा हो चुकी है कि वेद, ब्राह्मण और उपनिषदादिको श्रुति इसलिए कहते हैं कि उनकी शिक्षा श्रवणपर अवलम्बित है। श्रुति और स्मृति दोनों शब्द जब साथ-साथ आते हैं, साधारण व्यवहारमें श्रुतिसे वेद ब्राह्मण और उपनिषद्का ही बोध होता है और स्मृतिसे छःहों वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण और नीतिके सभी ग्रन्थ समझे जाते हैं। स्मृति शब्दका यह व्यापक प्रयोग है। परन्तु विशिष्ट अर्थमें स्मृति शब्दसे धर्मशास्त्रके उन्हीं ग्रन्थोंका बोध होता है जिनमें प्रजाके लिए उचित आचार-व्यवहार व्यवस्था और समाजके शासनके निमित्त नीति और सदाचार सम्बन्धी नियम स्पष्टतापूर्वक दिये रहते हैं। यों तो स्मृतियां प्रधानतः अठारह पुराणोंकी तरह अठारहकी ही संख्यामें मानी जाती हैं तथापि इन अठारहोंके अतिरिक्त उपपुराणोंकी तरह स्मृतियोंकी संख्या अट्ठाईस और छप्पन तक गिनायी जाती है। मुख्य स्मृतिकार ये हैं—मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, विष्णु, हारीत, उपनस्, अङ्गिरा, यम, कात्यायन, बृहस्पति, पाराशर, व्यास, दक्ष, गौतम, वशिष्ठ, नारद, भृगु और शङ्ख-लिखित।

इनमें मानव-धर्मशास्त्र मुख्य और आदिम माना जाता है। इस मानव-धर्मशास्त्रके कर्त्ता मानव-जातिके आदिम प्रजापति स्वायम्भुव-मनु समझे जाते हैं। निघण्टुमें मनु शब्दका पाठ द्युस्थान अर्थात् देवगणोंमें हैं और वाजसनेय संहितामें मनुको प्रजापति लिखा है। शतपथ ब्राह्मणमें इन्हीं मनुके प्रसङ्गमें मत्स्यावतारकी कथा कही गयी है और ऐतरेय-ब्राह्मणमें लिखा है कि मनुने अपने पुत्रोंमें सम्पत्तिका विभाग किया। उसका प्रकार वर्णन करके यह भी लिखा है कि उन्होंने नाभानेदिष्टको अपनी सम्पत्तिका भागी नहीं बनाया था। प्राचीन ग्रन्थोंमें जहाँ मानव-धर्मशास्त्रके अवतरण आये हैं वह सूत्ररूपमें हैं और प्रचलित मनुस्मृतिके श्लोकोंसे नहीं मिलते। वह सूत्राकार मानव-धर्मशास्त्र अभीतक देखनेमें नहीं आया। वर्तमान मनुस्मृति भृगु-मनुके सवादके रूपमें जो मिलती हैं, शायद उन्हीं मूल-सूत्रोंके आधारपर लिखी हुई कारिकाये हैं।

मनुस्मृति जैसी कि वर्तमान रूपमें पायी जाती है फिर भी वर्तमान सभी स्मृतियोंमें प्रधान समझी जाती है। हम पहिले उसी मनुस्मृतिकी वृहत् विषय-सूची नीचे देते हैं। और स्मृतियोंकी विषय-सूची इतने विस्तारसे देनेकी आवश्यकता हम इसलिए नहीं समझते कि जो विषय मनुस्मृतिमें दिये हुए हैं, थोड़े बहुत फेर-फारके साथ और स्मृतियोंमें भी दिये हुए हैं। समाज-शास्त्र, नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र और प्रायः अर्थशास्त्रका भी समावेश होनेके कारण समय-समयपर समाजके विकासके अनुसार स्मृतियोंमें भी बराबर परिवर्तन होता चला आया है। परन्तु इस तरहके विकासके साथ होनेवाले परिवर्तन तभी समझे जा सकते हैं जब प्रत्येक स्मृतिका विस्तारपूर्वक समीक्षात्मक अनुशीलन किया जाय। विषय-सूची द्वारा इस बातका पता नहीं लग सकता। मनुस्मृतिका विषय-सार यह है—

प्रथमोऽध्यायः

मनुं प्रति मुनीनां धर्मप्रश्नः, तान् प्रति मनोरुत्तरम्, जगदुत्पत्ति कथनम्, जलसृष्टिक्रमः, ब्रह्मोत्पत्तिः, नारायण शब्दार्थ कथनम्, ब्रह्मस्वरूप कथनम्, स्वर्ग भूम्यादि सृष्टिः, महदादि क्रमेण जगदुत्पत्तिः, देवगणादि सृष्टिः, वेदत्रयसृष्टिः, कालादि सृष्टिः, कामक्रोधादि सृष्टिः, धर्माधर्म-विवेकः, सूक्ष्म-स्थूलाद्युत्पत्तिः, कर्मसापेक्षा सृष्टिः, ब्राह्मणादि वर्ण सृष्टिः, स्त्री-पुरुष सृष्टि', मनोरुत्पत्तिः, मरीच्याद्युत्पत्तिः, यक्षगन्धर्वाद्युत्पत्तिः, मेघादि सृष्टिः, पशु पक्ष्यादि सृष्टिः, कृमि कीटाद्युत्पत्तिः, जरायुज गणना, अण्डजादयः, स्वेदजाद्यः, उद्भिज्जाद्यः, वनस्पति-वृक्ष भेदः, गुच्छगुल्माद्यः, एवं सृष्ट्वा ब्रह्मणोऽन्तर्धानम्, महाप्रलयस्थितिः, जीवस्योत्क्रमणम्, जीवस्य देहान्तर-ग्रहणम्, जाग्रत्स्वप्नाभ्यां ब्रह्मा सर्वं सृजति, एतच्छास्त्रप्रचारमाह, भृगुरेतच्छास्त्रं युष्माकं कथयिष्यति, भृगुस्तान्मुनीनुवाच, मन्वन्तर कथनम्, अहोरात्र मानादि कथनम्, पित्र्याहोरात्र कथनम्, दैवाहोरात्र कथनम्, चतुर्युग प्रमाणम्, दैवयुग प्रमाणम्, ब्राह्माहोरात्र प्रमाणम्, ब्रह्मणः सृष्ट्यर्थं मनोर्नियोजनम्, मनस आकाश प्रादुर्भावः, आकाशाद्वायुप्रादुर्भावः, वायोस्तेजः प्रादुर्भावः, तेजसो जलं जलात्पृथ्वी, मन्वन्तरप्रमाणम्, सत्ये चतुष्पाद्धर्मः, अन्ययुगे धर्मस्य पाद-पाद-हानिः, युगे युगे आयुः प्रमाणम्, युगे युगे धर्म वैलक्षण्यम्, ब्राह्मणस्य कर्माह, क्षत्रियकर्माह, वैश्यकर्माह, शूद्रकर्माह, ब्राह्मणस्य श्रेष्ठत्वम्, ब्राह्मणेषु ब्रह्मवेदिनः श्रेष्ठाः, एतच्छास्त्रं ब्राह्मणे नाध्येतव्यम्, एतच्छास्त्राध्ययन फलम्, आचारो धर्मप्रधानः, ग्रन्थार्थानुक्रमणिका।

द्वितीयोऽध्यायः

धर्मसामान्यलक्षणम्, कामात्मतानिषेधः, व्रताद्यः, सङ्कल्पजाः, अकामस्य न कापिक्रिया, धर्मप्रमाणान्याह, धर्मस्य वेदमूलतामाह, श्रुतिस्मृत्युदितधर्मोऽनुष्ठेयः, श्रुतिस्मृत्योः परिचयः, नास्तिकनिन्दा, चतुर्धा धर्मप्रमाणमाह, श्रुतिस्मृत्योर्विरोधे श्रुतिर्बलवत्ता, श्रुतिद्वैधम् उभयम् प्रमाणम्, श्रुतिद्वैधेदृष्टान्तमाह, दशकर्मोपेतस्यात्राधिकारः, धर्मानुष्ठानयोग्यदेशकथनम्, ब्रह्मावर्तदेशीयः कुरुक्षेत्रादि ब्रह्मर्षि देशानाह। तद्देशीय ब्राह्मणादाचारं शिक्षेत्, मध्यदेशमाह, आर्यावर्तमाह, यज्ञियदेशमाह, वर्णधर्मादिकमाह, द्विजानां वैदिक मन्त्रैर्गर्भाधानादिकं कार्यम्, गर्भाधानादेः पापक्षयहेतुत्व माह, स्वाध्यादेर्मोक्षहेतुत्वमाह, जातकर्माह, नामकरणमाह, स्त्रीणां नामकरणमाह, निष्क्रमणान्नप्राशने, चूडाकरणम्, उपनयनम्, उपनयनकालविचारव्रात्या, कृष्णाजिनादि धारणम्, मौञ्ज्यादिधारणम्, मौञ्ज्यऽलाभे कुशादि मेखलाकार्या, उपवीतमाह, अथदण्डासः, अथभिक्षा, प्राङ्मुखादिकाम्यभोजनफलम्, भोजनादावन्तेचाचमनम्, श्रद्धयाभुञ्जीत, अश्रद्धयाभोजनं निषिद्धम्, भोजने नियमाः, अतिभोजन-निषेधः, ब्राह्मादि तीर्थेनाचमन न पितृतीर्थेन, ब्रह्मादितीर्थान्याह, आचमनविधिः, सव्यापसव्यमाह, विनष्टेपूर्वदण्डादौ द्वितीयादिग्रहणम्, केशान्ताख्यसंस्कारः, स्त्रीणाम् संस्काराथमंत्रकम्, स्त्रीणाम् वैवाहिक विधिर्वैदिक मन्त्रैरेव, उपनीतस्य कर्माह, वेदाध्ययनविधिमाह, गुरुवन्दनविधिः, गुरोराज्ञयाऽध्ययनविरामौ, अध्ययनादावन्ते च प्रणवः, प्राणायामः, प्रणवाद्युत्पत्तिः, सावित्र्युत्पत्तिः, सावित्री-जप-फलम्, सावित्री जपाकरणे प्रायश्चित्तं, प्रणव-व्याहृति-सावित्री-प्रशंसा, प्रणव प्रशंसा, मानस जपस्या-

धिक्यम्, इन्द्रियसंयमः, एकादशेन्द्रियाणि, इन्द्रिय संयमेन सिद्धिर्नतु भोगैः, विषयोपेक्षकः इन्द्रिय संयमोपायमाह, कामासक्तस्य यागाद्यो न फलदाः, जितेन्द्रियासंयमोऽपि निवार्यः, इन्द्रियसंयमस्य पुरुषार्थहेतुत्वम्, सन्ध्यात्रयवन्दनम्, सन्ध्याहीनः शूद्रवत्, वेदपाठाशक्तौ सावित्रीमात्र जपः, नित्यकर्मादौ स्नानध्यायः, जपयज्ञफलम्, समावर्तनान्तरम् होमादिकर्तव्यम्, कीदृशः शिष्योध्याप्येऽत्याह, अपृष्टोवेदं ब्रूयात् निषेधातिक्रमेदोषः, असच्छिष्याय विद्या न वक्तव्या, सच्छिष्याय वक्तव्या, अध्ययनं विना वेदग्रहणनिषेधः अध्यापकानां मान्यत्वमाह, अविदिताचरण निन्दा, गुरोरभिवादनादौ वृद्धाभिवादने अभिवादन फलम्, अभिवादन विधिः, प्रत्यभिवादने, प्रत्यभिवादनाज्ञाने दोषः, कुशल प्रश्नादौ, दीक्षितादेर्नामग्रहणनिषेध', परस्त्र्यादेर्नामग्रहण-निषेधः, कनिष्ठमातुलादिवन्दननिषेधः, मातृष्वस्रादयो गुरुस्त्रीवत्पूज्याः, भ्रातृभार्याद्यभि-वादने, ज्येष्ठ भगिन्याद्यभिवादने, पौरसख्यादौ, दशवर्षोऽपि ब्राह्मणः क्षत्रियादिभिः पितेव वन्द्य', वित्तादीनि मान्यत्वकारणानि, रथारूढादे. पन्था देयः, स्नातकस्य पन्था राज्ञा प्रदेयः, अथाचार्यः, अथोपाध्यायः, अथ गुरुः, अथर्त्विक्, अध्यापक प्रशंसा, मात्रादीनामुत्कर्षः, आचार्यस्य श्रेष्ठत्वम्, बालोऽप्याचार्यः पितेव, अत्र दृष्टान्तमाह, वर्णक्रमेण ज्ञानादिना जैष्ठ्यम्, मूर्खनिन्दा, शिष्याय मधुरावाणी प्रयोक्तव्या, नरस्य वाङ्मनः संयमाह, परद्रोहादि निषेधः परेणावमाने कृतेऽपि क्षमा कार्या, अवमन्तुर्दोषः, अनेन विधिना वेदोऽध्येतव्यः, वेदाभ्यासस्य श्रेष्ठत्वम्, वेदाभ्यास स्तुतिः, वेदमनधीत्य वेदांगाद्यन्यविद्याऽध्ययन-निषेध', द्विजत्व निरूपणार्थ-माह, अनुपनीतस्यानाधिकारः, कृतोपनयनस्य वेदाध्ययनम्, गोदानादौ नव्य दण्डाद्यः, एते नियमानुष्ठेयाः नित्य स्नान तर्पण होमादि, ब्रह्मचारिणो नियमाः, कामाद्रेतःपातनिषेधः, स्वप्ने रेतः पाते, आचार्यार्थं जल कुशाद्याहरणम्, वेदयज्ञापेत गृहाद्भिक्षा कर्तव्या, गुरुकुलादि भिक्षा-याम् अभिशस्तभिक्षा निषेधः, सायंप्रातहोम समिध', होमाद्यकरणे, एक गृह भिक्षानिषेधः, निमन्त्रित स्यैकान्न भोजने, क्षत्रिय वैश्ययोर्नैकान्न भोजनम्, अध्ययने गुरुहिते च यतं कुर्यात्, गुर्वाज्ञा कारित्वमाह, गुरौसुप्ते शयनादि, गुर्वाज्ञाकरण प्रकारः, गुरुसमीपे चाञ्चल्य निषेधः, गुरोर्नामग्रहणादिकं न कार्यम्, गुरुनिन्दाश्रवणनिषेधः, गुरुपरिवादकरण फलम्, समीपं गत्वा गुरुं पूजयेत, गुर्वादि परोक्षे न किञ्चित्कथयेत, यानादौ गुरुणा सहोपवेशने, परम गुरौ गरुवद्वृत्तिः, विद्यागुरुविषये, गुरुपुत्रविषये, गुरुस्त्रीविषये, स्त्री-स्वभाव-कथनम्, मात्रादिभि-रेकान्तवास निषेधः, युवती गुरुस्त्री वन्दने, गुरुशुश्रूषा फलम्, ब्रह्मचारिणः प्रकारत्रयमाह, सूर्योदयास्तकालसमये सन्ध्योपासनमवश्यं कार्यम्, स्त्र्यादेः श्रेयः करणे त्रिवर्गमाह, पित्राचार्या-दयो नावमन्तव्याः, तेषां शुश्रूषाकरणादौ, तेषामनादरनिन्दा, मात्रादि शुश्रूषायाः प्रधान्यम्, नीचादेरपि विद्यादिग्रहणम्, आपदि क्षत्रियादेरप्यध्येतव्यम् तेषां पादप्रक्षालनादि न कार्यम्, क्षत्रियादि गुरावतिवास निषेधः, यावज्जीवं गुरुशुश्रूषणे, गुरुदक्षिणादौ, आचार्ये मृते तत्पुत्रादि सेवनम्, यावज्जीवं गुरुकुलसेवा फलम्।

तृतीयोऽध्यायः

ब्रह्मचर्यावधिः, गृहस्थाश्रमवासमाह, गृहीतवेदस्य पित्रादिभिः पूजनम्, कृत समा-वर्तनो विवाहं कुर्यात्, असपिण्डाद्या विवाह्याः, विवाहे निन्दित कुलानि, कन्यादोषाः, कन्या-लक्षणम्, पुत्रिकाविवाह निन्दा, सवर्णा स्त्री प्रशस्ता, चातुर्वर्ण्यस्य भार्यापरिग्रहणम्, ब्राह्मण-

क्षत्रयोः शूद्राङ्गी निषेध., हीन-जाति-विवाह-निषेधः, शूद्राविवाहविषये, अष्टौ विवाह प्रकाराः, वर्णानां धर्म्यं विवाहानाह, पैशाचासुर-विवाह-निन्दा, ब्राह्मविवाह लक्षणम्, दैव विवाह लक्षणम्, आर्षविवाह लक्षणम्, प्राजापत्य विवाह लक्षणम्, आसुर विवाह लक्षणम्, गान्धर्व विवाह लक्षणम्, राक्षस विवाह लक्षणम्, पैशाचविवाह लक्षणम्, उदकदाना-ब्राह्मणस्य विवाहः, ब्राह्मादि विवाह फलम्, ब्राह्मादि विवाहे सुप्रजोत्पत्तिः, निन्दित विवाहे निन्दित प्रजोत्पत्तिः, सवर्णा विवाह विधिः, असवर्णा विवाह विधिः, दारोपगमे निन्दितकालाः, युग्मानकौ पुत्रोत्पत्तिः, स्त्रीपुंनपुंसकोत्पत्तौ हेतुमाह, वानप्रस्थस्यापि ऋतुगमनमाह, कन्या विक्रये दोषः, स्त्रीधन ग्रहणे दोषः, वरादल्पमपि न ग्राह्यम्, कन्यायै धनदानमाह, वस्त्रालंकारादिना कन्या भूषयितव्या, कन्यादि पूजनापूजन फलम्, उत्सवेषु विशेषतः पूज्या, दम्पत्योः सन्तोषफलम्, स्त्रियोऽलंकरणादि दानादाने, कुलापकर्षकर्माणि, कुलोत्कर्ष कर्माह, पञ्चमहायज्ञानुष्ठानमाह, पञ्चसूनाः, पञ्चयज्ञानुष्ठानं नित्यं कर्तव्यम्, पञ्चयज्ञानाह, पञ्चयज्ञाकरण निन्दा, पञ्चयज्ञानां नामान्तरान्याह, अशक्तौ ब्रह्मयज्ञहोमौ कर्तव्यौ, होमाद् वृष्ट्याद्युत्पत्तिः, गृहस्थाश्रम प्रशंसा, ऋष्याद्यर्चनमवश्यं कर्तव्यम्, नित्यश्राद्धमाह, पित्रर्थं ब्राह्मण भोजने, बलिविश्वेदेवफलमाह, भिक्षादानम्, भिक्षादानफलम्, सत्कृत्यभिक्षादिदानम्, अपात्रदान फलम्, सत्पात्रेदान फलम्, अतिथि सत्कारे, अतिथ्यनर्चन निन्दा, प्रियवचन जलासन दानादौ, अतिथि लक्षणमाह, परपाकरुचित्वनिषेधः, नातिथिः प्रत्याख्यातव्यः, अतिथिमभोजयित्वा स्वयं न भोक्तव्यम्, बहुष्वतिथिषु यथायोग्यं परिचर्या, अतिथ्यर्थं पुनः पाकेन बलिकर्म, भोजनार्थं कुलगोत्र कथन निषेधः, ब्राह्मणस्य क्षत्रियादयोनातिथयः, पश्चात् क्षत्रियादीन् भोजयेत्, सख्यादीनपि सत्कृत्य भोजयेत्, प्रथम गर्भिण्यादयो भोजनायाः, गृहस्थस्य प्रथमम् भोजननिषेध', दम्पत्योः सर्वशेषेण भोजनम्, आत्मर्थं पाकनिषेधः, गृहागतराजादि पूजामाह, राजस्नातकयोः पूजासङ्कोचमाह, स्त्रियाऽमन्त्रकं बलिहरणं कार्यम्, अमावास्यायां पार्वणम्, मांसेन श्राद्धं कर्तव्यम्, पार्वणादौ भोजनीय ब्राह्मणसंख्या, ब्राह्मण विस्तारं न कुर्यात्, पार्वणस्यावश्यकर्माणि, देवपित्र्यान्नानि श्रोत्रियाय देयानि, श्रोत्रिय प्रशंसा, अमत्र ब्राह्मण निषेध', ज्ञाननिष्ठादिषु कव्यादिदानम्, श्रोत्रियस्य पुत्रस्य प्रशंसा, श्राद्धे मित्रादि भोजननिषेध', अविदुषे श्राद्धदानमफलम्, विदुषे दक्षिणादानं फलदम्, विद्वद्ब्राह्मणाभावे मित्रं भोजयेन्न शत्रुम्, वेदपारगादीन् यत्नेन भोजयेत्, मातामहादीनपि श्राद्धे भोजयेत्, ब्राह्मण परीक्षणे, स्तेन पतितादयो निषिद्धाः, श्राद्धे निषिद्धब्राह्मणः, अध्ययनशून्य-ब्राह्मण निन्दा, अपाङ्क्त्ये दाने निषिद्धफलम्, परिवेत्त्रादि लक्षण माह, परिवेदन सम्बन्धिनां फलमाह, दिधिषूपति लक्षणमाह, कुण्डगोलकावाह, तयोर्दाननिषेधः, स्तेनादिर्यथा न पश्यति तथा ब्राह्मण भोजनं कार्यम्, अन्धाद्यसन्निहिते ब्राह्मण भोजनम्, शूद्र याजक प्रातिग्रहनिषेधः, सोमविक्रयादिभोजनदानेऽनिष्टफलम्, पङ्क्तिपावनानाह, ब्राह्मण-निमन्त्रणेनिमन्त्रितस्य नियमा', निमन्त्रणं स्वीकृत्याभोजने दोष., निमन्त्रितस्य स्त्रीगमने, क्रोधादिकं भोक्त्रा कर्त्रा च न कार्यम्, पितृगणोत्पत्तिः, पितॄणां राजतं पात्रं प्रशस्तम्, देवकार्यात्पितृकार्यं विशिष्टम्, दैवकार्यस्य पितृकार्याङ्गत्वम्, दैवाद्यन्ते पितृकार्यम्, श्राद्धदेशा., निमन्त्रितानामासनादिदानम्, गन्धपुष्पादिना तेषामर्चनम्, तैरनुज्ञातो होमम् कुर्यात्, अग्न्यभावे विप्रस्य पाणौ होम', अपसव्येन अग्नौ करणादि पिण्डदानादि विधिः, कुशमूले करावघर्षणम्, ऋतुनमस्कारादि,

प्रत्यवनेजनादि, पित्रादि ब्राह्मणादीन्भोजयेत्, जीवति पितरि पितामहादि पार्वणम्, मृते पितरि जीवति पितामहे पार्वणम्, पित्रादि ब्राह्मण-भोजन-विधिः, परिवेषण विधिः, व्यञ्जनादि दाने, रोदन क्रोधादिकं न कार्यम्, विप्रेप्सित व्यञ्जनादि दानम्, वेदादीन्ब्राह्मणाय श्रावयेत्, ब्राह्मणान्परितोषयेत्, दौहित्रं श्राद्धे यत्नतो भोजयेत, दौहित्रतिलकुतपादयः प्रशस्ताः, उष्णान्न भोजनं हविर्गुणाद्य कथनम्, भोजने उष्णीषादिनिषेधः, भोजनकाले ब्राह्मणान् चाण्डालाद्यो न पश्येयुः, स्वदृष्ट्यादि निषेधः, तद्देशात् खञ्जाद्योऽपनेयाः, भिक्षुकादि भोजने, अग्निदग्धान्नदाने, उच्छेषणं भूमिगतं दासस्यांशः, सपिण्ड पर्यन्तं विश्वेदेवादिरहितं श्राद्धम्, सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पार्वणविधिना श्राद्धम्, श्राद्धे उच्छिष्टं शूद्राय न देयम्, श्राद्धभोजिन. स्त्रीगमन न निषेधः, कृतभोजनान् द्विजानाचामयेत्, स्वधास्त्विति ते ब्रूयुः, शेषान्नं तदनुज्ञातो विनियुञ्जीत। एकोद्दिष्टादिविधिमाह, अपराह्णादयः, ब्राह्मणान्विसृज्य वरप्रार्थनम्, पिण्डान् गवादिभ्योदद्यात्, सुतार्थिन्या स्त्रिया पितामहपिण्डो भक्षणीयः, ततोज्ञात्यादीन् भोजयेत्, अवशिष्टान्नेन गृहबलिः कार्यः, तिलाद्यः पितृणां मासं तृप्तिदा', मांसादि विशेषेण तृप्तिकालाः, मधुदाने मघादि श्राद्धे, गजच्छायादौ, श्रद्धयादानम्, पितृपक्षे प्रशस्त तिथय', युग्मतिथि नक्षत्रादि प्रशस्तम्, कृष्ण पक्षापराह्णप्राशस्त्यं, अपसव्य कुशादयः रात्रिश्राद्धनिषेधः, प्रतिमासं श्राद्ध करणाशक्तो साग्नेरग्नौ-करणे, तर्पणफलम्, पितृणां प्रशंसा, विघसामृत भोजने।

चतुर्थोऽध्यायः

ब्रह्मचर्य-गार्हस्थ्यकालमाह, शिलोञ्छादिना जीवेत्, उचितार्थसङ्ग्रहम् कुर्यात्, अनापदिजीवनकर्माह, ऋताद्यर्थकथनम्, कियद्धनमर्जयेत्तत्राह, अश्वस्तनिकप्रशंसा, जिनाध्यापनादिजीवने, शिलोञ्छाभ्यां जीवने, असज्जीविकाम् न कुर्यात्, सन्तोषस्य प्रशंसा, व्रतकरणे, वेदोदितम् कर्म कर्तव्यम्, गीतादिना धनार्जननिषेधः, इन्द्रियार्थासक्तिनिषेधः, वेदार्थविरोधिकर्मत्यागः, वयः कुलानुरूपेणाचरेत्, नित्यम् शास्त्राद्यवेक्षणम्, पञ्चयज्ञान् यथाशक्ति न त्यजेत्, केचिदिन्द्रियसंयमम् कुर्वन्ति, केचिद्वाचा यजन्ति, सन्ध्याद्वयहोमदर्शपौर्णमासाः, सोमयागादयः, नवान्नश्राद्धाकरणे, शक्तितोऽतिथिपूजयेत्, पाषण्ड्याद्यर्चननिषेधः, श्रोत्रियादीन्पूजयेत्, ब्रह्मचार्यादिभ्योऽन्नदानम्, क्षत्रियादेर्धनग्रहणे, सतिविभवे क्षुधा न सीदेत्, शुचि· स्वाध्यायादियुक्तः स्यात्, दण्डकमण्डल्वादिधारणम्, सूर्यदर्शननिषेधः, वत्सरज्जुलङ्घने जले प्रतिबिम्बनिरीक्षणे दोषः, मार्गे गवादीन् दक्षिणतः कुर्यात्, रजस्वलागमनादि निषेधः, भार्ययासह भोजनादिनिषेध', कालविशेषेस्त्रीदर्शननिषेधः, नग्नस्नानादिनिषेध', मार्गादौ विण्मूत्रादिनिषेधः, मूत्रादौ सूर्यादिदर्शननिषेधः, विण्मूत्रोत्सर्गविधिः, दिवादावुदङ्मुखादि, अन्धकारादौ स्वेच्छामुखः, मन्त्रादौ अग्न्यादिसम्मुखनिषेधः, अग्नौपादप्रतापनादिनिषेधः, अग्नेर्लङ्घनादिनिषेधः, सन्ध्याभोजनभूमिलिखनादौ, जले मूत्रादिप्रक्षेपनिषेधः, शून्यगृहस्वापसुप्तोत्थापनादौ, भोजनादौ दक्षिणहस्तः, जलार्थिनीं गां न वारयेत्, इन्द्रधनुर्नदर्शयेत्, अधार्मिकग्रामवासएकाकीगमने, शूद्रराज्यवासादिनिषेधः, अतिभोजनादिनिषेधः, अञ्जलिनाजलपानादिनिषेधः, नृत्यादिनिषेधः, कांस्ये पादप्रक्षालनभिन्नादिभाण्डेभोजननिषेधः, यज्ञोपवीतादि परधृतम् न धारयेत्, अविनीतव्यानवृषादिनिषेध', धुर्यलक्षणमाह, प्रेतभूमनखादिच्छेदननिषेधः, तृणच्छेदना-

दिनिषेधः, लोष्टमर्दनादेर्मन्दफलम्, मालाधारण गोयानादौ, अद्वारे गृहगमनादौ, अक्षशयन-स्थादिभोजननिषेधः, रात्रौ तिलभोजने नग्नशयने, दुर्गगमनमलदर्शन-नदीतरणे, आर्द्रपाद एव भुञ्जीत, केशभस्मादौ न तिष्ठेत्, पतितादिभिर्नसंवसेत, शूद्रायव्रतकथनादिनिषेधः, शिरः कण्डूयस्नानादौ, कोपेन शिरःप्रहार केशग्रहणे, तैलेन स्नातस्य पुनस्तैलस्पर्शने, अक्षत्रियराजादिप्रतिग्रहे, तैलिकादिप्रतिग्रहे, शास्त्रोल्लङ्घकराजप्रतिग्रहे, तामिस्राद्येकविंशतिनरकानाह, ब्राह्ममुहूर्ते उत्तिष्ठेत्, प्रातः कृत्यम्, अस्यायुः कीर्त्यादिवर्धकत्वम्, श्रावण्यामुपाकर्मकार्यम्, पुष्ये उत्सर्जनाख्यम् कर्म, कृते उत्सर्जने पक्षिणीं नाध्येतव्यम्, ततो वेदम् शुक्लेऽङ्गानि कृष्णे पठेत्, पादनिशान्ते स्वापनिषेधः, नित्यम् गायत्र्यादिपठेत्, अनध्यायानाह, वर्षाकालिकानध्यायमाह, अकालिकानध्यायमाह, सार्वकालिकानध्यायमाह, सन्ध्यागर्जनादौ, नगरादौ नित्यानध्यायः, श्राद्धभोजनग्रहणादौ त्रिरात्रम्, गन्धलेपयुक्तोनाधीयीत, शयनादौनाधीयीत, अमावास्यादयोऽध्ययने निषिद्धाः, सामध्वनौ सति वेदान्तरम् नाधीयीत, वेदत्रयदेवताकथनम्, गायत्रीजपानन्तरम् वेदपाठः, गवाद्यनन्तरागमने, शुचिदेशे शुचिनाध्येयम्, ऋतावप्यमावास्यादौ न स्त्रीगमनम्, रोगस्नानाशक्तस्नाननिषेधः, श्राद्धभोजिनः चतु.पथगमने, रक्तश्लेष्मादौ न तिष्ठेत्, शत्रुचोरपरस्त्रीसेवानिषेध., परदारनिन्दा, क्षत्रियसर्पविप्रानावमन्तव्याः, आत्मावमाननिषेधः, प्रियसत्यकथनम्, वृथावादम् न कुर्यात्, उषाःकालादावज्ञातेन सह न गन्तव्यम्, हीनाङ्गाद्याक्षेपनिषेधः, उच्छिष्टस्पर्शसूर्यादिदर्शने, स्वकीयेन्द्रियस्पर्शादौ, मङ्गलाचारयुक्तः स्यात्, वेदाध्ययनस्य प्राधान्यम्, अष्टकाश्राद्धाद्यवश्यम् कार्यम्, अग्निगृहदूरतो मूत्राद्युत्सर्गः, पूर्वाह्णे स्नानपूजादि, पर्वसु देवादिदर्शनम्, आगतवृद्धादिसत्कारे, श्रुतिस्मृत्युदिताचार. कार्य , आचारफलम्, दुराचारनिन्दा, आचारप्रशंसा, परवशकर्मत्यागादौ, चित्तपारितोषिकं कर्मकाण्डम्, आचार्यादि हिंसानिषेधः, नास्तिक्यादिनिषेधः, परताडनादिनिषेधः ब्राह्मणताडनोद्योगे, ब्राह्मणताडने, ब्राह्मणस्य शोणितोत्पादे, अधार्मिकादीनां न सुखम्, अधर्मे मतो न निदध्यात्, शनैरधर्मफलोत्पत्तिः, शिष्यादिशासने, अर्थकामत्यागे, पाणिपादचापल्यनिषेध, कुलमार्गगमनम्, ऋत्विगादिभिर्वादम् न कुर्यात्, एतैर्विवादोपेक्षायाम् फलमाह, प्रतिग्रहनिन्दा, विधिमज्ञात्वा प्रतिग्रहो न कार्यः, मूर्खस्य स्वर्णादिप्रतिग्रहे, बैडालव्रतिकादौ दाननिषेधः, बैडालव्रतिकलक्षणम्, वकव्रतिकलक्षणम्, तयोर्निन्दा, प्रायश्चित्ते वञ्चना न कार्या, छलेन व्रतचरणे, छलेन कमण्डल्वादिधारणे, परकृतपुष्करिण्यादिस्नाने, अदत्तयानादिभोगनिषेधः, नद्यादिषु स्नानम् कर्त्तव्यम्, यमनियमौ, अश्रोत्रिय यज्ञादि भोजन निषेधः, श्राद्धाद्यन्नकेशादिर्संसृष्टम् न भुञ्जीत, रजस्वलास्पृष्टाद्यन्ननिषेधः, गवाघ्रातम् गणिकाद्यन्नम् च निषिद्धम्, अभोज्यानि स्तेनाद्यन्नानि, राजाद्यन्नभोजने मन्दफलम्, तेषामन्नभोजने प्रायश्चित्तम्, शूद्रपक्वान्ननिषेधः, कदर्यश्रोत्रियवार्धुषिकान्ने, श्रद्धादत्तवदान्यवार्धुषिकान्ने, श्रद्धया यागादिकम् कुर्यात्, श्रद्धादानफलम्, जलभूमिदानादिफलम्, वेददानप्रशंसा, काम्यदाने, विधिवद्दानग्रहणयोः प्रशंसा, द्विजनिन्दा दानकीर्तनादिनिषेधः, अनृतादिफलम्, शनैर्धर्ममनुतिष्ठेत्, धर्मप्रशंसा, उत्कृष्टैः सम्बन्धः कार्यो न हीनैः, फलमूलादिग्रहणे, दुष्कृतकर्मणोभिक्षाग्रहणम्, भिक्षाया अग्रहणे, अयाचितभिक्षायाम्, कुटुम्बार्थाभिक्षा, स्वार्थम् साधुभिक्षा, भोज्यान्नशूद्रः, शूद्रैरात्मनिवेदनकार्यम्, असत्यकथने निन्दा, योग्यपुत्राय कुटुम्बभारदानम्, ब्रह्मचिन्ता, उक्तस्य फलकथनम्।

पञ्चमोऽध्यायः

मनुष्याणां कथं मृत्युरिति प्रश्नः, मृत्युप्रापकानाह, लशुनाद्यभक्ष्याण्याह, वृथामांसादि निषेधः, अभक्ष्यक्षीराणि, शुक्तेषु दध्याद्यो भक्ष्याः, अथाभक्ष्यपक्षिणः, सौनशुष्कमांसादयः, मत्स्य भक्षण निन्दा, भक्ष्यमत्स्यानाह, सर्पवानरादि निषेधः, भक्ष्यपञ्चनखानाह, लशुनादि भक्षणे प्रायश्चित्तम्, यागार्थ पशुहिंसाविधिः, पर्युषितान्यपि भक्ष्याणि, मांसभक्षणे, प्रोक्षितमांस भक्षणनियमः, वृथामांसभक्षण-निषेधः, श्राद्धे मांसभोजन-निन्दा, अप्रोक्षितमांसम् न भक्षयेत्, यज्ञार्थवधप्रशंसा, पशुहननकाल-नियमः, वेदाविहितहिंसा-निषेधः, आत्मसुखेच्छया हनने, वधबन्धनं न कर्तव्यम्, मांसवर्जने, अवघातकाः, मांसवर्जनफलम्, सपिंडानां दशाहाद्या-शौचम्, अथ सपिण्डता, जनने मातुरस्पृश्यत्वम्, शुक्रपोत परपूर्वापत्यमरणे, शवस्पर्शे समानोदक मरणे, गुरोर्मरणाशौचम्, गर्भस्रावे रजस्वला शुद्धौ, बालाद्यशौचम्, ऊनद्वि-वार्षिकस्य भूमिखननम्, नास्याग्नि संस्कारादि, बालस्योदकदाने, सहाध्यायिमरणे, वाग्दत्ता त्र्यशौचम्, हविष्यभक्षणादि, विदेशस्याशौचम्, आचार्यतत्पुत्रादि मरणे, श्रोत्रियमातुलादि मरणे, राज्याध्यापकादि मरणे, सम्पूर्णाशौचमाह, अग्निहोत्रार्थस्नानाच्छुद्धिः, स्पर्शनिमित्ता शौचम्, अशौच दर्शने, मनुष्यास्थिस्पर्शे, ब्रह्मचार्याव्रतसमापनात्प्रेतोदकदानादि न कुर्यात्, न पतितादीनामुदकदाना०, व्यभिचारिण्यादीनां नोदकदानम्, ब्रह्मचारिणः पित्रादिनिर्हरणे, शूद्रादीन्दक्षिणादितो निर्हरेत्, राजादीनामशौचाभावे, राज्ञः सद्यः शौचम्, वज्रादि हतानां सद्यः शौचम्, राज्ञोऽशौचाभावस्तुतिः, क्षात्रधर्महतस्य सद्य. शौचम्, आशौचान्तकृत्यम्, असपिण्डाशौचमाह, असपिण्डनिर्हरणे अशौच्यान्न भक्षणे, निर्हारकानुगमने, ब्राह्मणं शूद्रैर्न निर्हारयेत्, ज्ञानादीनि शुद्धिसाधनानि, अर्थशौचप्रशंसा, क्षमादान जप-तपांसि शोधकानि, समलनदीस्त्रीद्विजशुद्धौ, गात्रमनसात्मबुद्धिशुद्धौ, घृतादि शय्यादिकाष्ठ शुद्धौ, यज्ञपात्रशुद्धौ, धान्यवस्त्रशुद्धौ, चर्मवंशपात्रशाक-फल-मूल-शुद्धौ, कम्बल-पट-वस्त्रादि-शुद्धौ, तृणकाष्ठ गृह-मृद्भाण्ड शुद्धौ, शोणिताद्युपहतमृद्भाण्डत्या भूमिशुद्धौ, पक्षिजग्धगवाघ्रातादौ, गन्धलेपयुक्त द्रव्य शुद्धौ, पवित्राण्याह, जलशुद्धौ, नित्यशुद्धानाह, स्पर्शेनित्यशुद्धानि, मूत्राद्युत्सर्ग शुद्धौ, द्वादशमला, मृद्वारि ग्रहणे नियमः, ब्रह्मचार्यादीनां द्विगुणाद्याचमनानन्तरमिन्द्रियादि स्पर्शः, आचमनविधिः, शूद्राणां मासिवपनं, द्विजोच्छिष्ट भोजनम्, विप्रुट्श्मश्र्वादिकं नोच्छिष्टम्, पादे गण्डूषजबिन्दव. शुद्धाः, द्रव्यहस्तस्योच्छिष्टस्पर्शे, वमनविरेक मैथुन शुद्धौ, निद्राक्षुद्भोज-नादि शुद्धौ, अथ स्त्रीधर्मानाह, स्त्रिया स्वातन्त्र्यं न कार्यम्, कस्यवशेतिष्ठेदित्यत्राह, प्रसन्ना गृहकर्म कुर्यात्, स्वामि शुश्रूषा, स्वाम्यहेतुमाह, स्वामिप्रशंसा, स्त्रीणाम्पृथग्यज्ञनिषेधः, स्वा-मिनोऽप्रियं नाचरेत्, मृतपतिकाधर्माः, परपुरुपगमननिन्दा, पातिव्रत्यफलम्, भार्यायां मृतायां श्रौताग्निनादाहः, पुनर्दारग्रहणे, गृहस्थस्य कालावधिः।

षष्ठोऽध्यायः

वानप्रस्थाश्रममाह, सभार्याग्निहोत्रो वने वसेत्, फलमूलेन पञ्चयज्ञकरणम्, चर्मचीर जटादि धारणम्, अतिथिचर्या, वानप्रस्थनियमाः, मधुमांसादिवर्जनम्, आश्विने सञ्चितनीवारादि त्यागः, फलाकृष्टाद्यन्ननिषेधः, अश्मकुट्टादय., नीवारादि सञ्चयने, भोजनकालाद्यः, भूमिपरिवर्त-

नादि, ग्रीष्मादि ऋतु कृत्यम्, स्वदेहं शोपयेत्, अग्निहोत्रसमापनाद्यः, वृक्षमूलभूशय्याद्यः, भिक्षाचरणे, वेदादिपाठः महाप्रस्थानम्, परिव्राजककालमाह, ब्रह्मचर्यादि क्रमेण परिव्रजेत्, ऋणमशोध्य न परिव्रजेत्, पुत्रमनुत्पाद्य न परिव्रजेत्, प्राजापत्येष्टि कृत्वा परिव्रजेत्, अभयदान फलम्, निस्पृहः परिव्रजेत्, एकाकि मोक्षार्थं चरेत्, परिव्राजका नियमाः, मुक्तलक्षणम्, जीवनादिकामनाराहित्यम्, परिव्राजकाचारः, भिक्षाग्रहणे, दण्डकमण्डल्वाद्यः, भिक्षापात्राणि, एककाले भिक्षाचरणम्, भिक्षाकालः, लाभालाभे हर्षविषादौ न कार्यौ, पूजापूर्वक भिक्षानिषेधः, इन्द्रियनिग्रहः, संसारगतिकथनम्, सुख-दुःखयोर्धर्माधर्मौ हेतू, न लिङ्गमात्रं धर्मकारणम्, भूमिं निरीक्ष्य पर्यटेत्, क्षुद्रजन्तुहिंसा-प्रायश्चित्तम्, प्राणायाम प्रशंसा, ध्यानयोगेनात्मनम् पश्येत्, ब्रह्मसाक्षात्कारेषु मुक्तिः, मोक्षसाधककर्माणि, देहस्वरूपमाह, देहत्यागे दृष्टान्तमाह, प्रियाप्रियेषु पुण्यपापत्यागः, विषयाननभिलाषः, आत्मनो ध्यानम्, परिव्रज्याफलम्, वेद-संन्यासि कर्माह, चत्वारआश्रमाः, सर्वाश्रमफलम्, गृहस्थस्य श्रेष्ठत्वम्, दशविधोधर्मः सेवितव्यः, दशविध धर्माचरण फलम्, वेदमेवाभ्यसेत्, वेद-संन्यास-फलम्।

सप्तमोऽध्यायः

राजधर्मानाह, कृतसंस्कारस्य प्रजारक्षणम्, रक्षार्थमिन्द्राद्यंशाद्राजोत्पत्तिः, राजप्रशंसा, राजद्वेषनिन्दा, राजस्थापितधर्मं न चालयेत्, दण्डोत्पत्तिः, दण्डप्रणयनम्, दण्डप्रशंसा, अपथा-दण्डनिषेधः, दण्ड्येषु दण्डाकरणे निन्दा, पुनर्दण्डप्रशंसा, दण्डप्रणेता कीदृश इत्यत्राह, अधर्म-दण्डे राजादीनां दोषः, मूर्खादीनां न दण्डप्रणयनम्, सत्यसन्धादिना दण्डप्रणयनम्, शत्रुमित्र-विप्रादिषु दण्डविधिः, न्यायवर्तिनो राज्ञः प्रशंसा, दुर्वृत्तराज्ञो निन्दा, राजकृत्ये वृद्धसेवा, विनयग्रहणम्, अविनयनिन्दा, अत्र दृष्टान्तमाह, विनयाद्राज्यादि प्राप्ति दृष्टान्तः, विद्याग्रहणम्, इन्द्रियजयः, कामक्रोधजः व्यसनत्यागः, कामजदशव्यसनान्याह, क्रोधजाष्टव्यसनान्याह, सर्व मूललोभत्यागः, अति दुःखदव्यसनानि, व्यसननिन्दा, अथसचिवाः, सन्धिविग्रहादिचिन्ता, मन्त्रिभिर्विचार्यहितं कार्यम्, ब्राह्मणमन्त्रिणः, अन्यानप्यमात्यान् कुर्यात्, आकरान्तः पुराध्यक्षाः, दूतलक्षणम्, सेनापत्यादि कार्यम्, दूतप्रशंसा, प्रतिराजेप्सितं दूतेन जानीयात्, जाङ्गल देशा श्रयणे, अथ दुर्गप्रकाराः, अस्त्रान्नादिपूरितं दुर्गं कुर्यात्, सुन्दरीं भार्यामुद्वहेत्, पुरोहितादयः, यज्ञादिकरणम्, करग्रहणे, अथाध्यक्षाः, ब्राह्मणानां वृत्तिदानप्रशंसा, पात्रदानफलमाह, संग्रामे आहूतो न निवर्तेत, संमुखमरणे स्वर्गः, कूटास्त्रादि निषेधः, संग्रामेऽव ध्यानाह, भीतादि हनने दोषः, संग्रामे पराङ्मुखहतस्य दोषः, येन यजितं तद्धनं तस्यैव, राज्ञः श्रेष्ठवस्तुदानम्, हस्त्यश्वादिवर्धनम्, अलब्धं लब्धुमिच्छेत्, नित्यमश्वपदात्यादिशिक्षा, नित्यमुद्यतदण्डः स्यात्, अमात्यादिषु माया न कार्या, प्रकृति भेदादि गोपनीयम्, अर्थादिचिन्ता, विजयविरोधिनो वशीकरणम्, सामदण्डप्रशंसा, राजरक्षा, प्रजापीडने दोषः, प्रजारक्षणे सुखम्, ग्रामतत्याधि-पत्यादय., ग्रामदोषनिवेदनम्, ग्रामाधिकृतस्यवृत्तिमाह, ग्राम्यकार्याण्यन्येन कर्तव्यानि, अर्थ चिन्तक., तच्चरितं स्वयं जानीयात्, उत्कोचादिग्राहक शासनम्, प्रेष्यादिवृत्तिकल्पनम्, वणिककरग्रहणे, अल्पाल्पकरग्रहणे, धान्यादीनां करग्रहणे, श्रोत्रियात्करं न गृह्णीयात्, श्रोत्रिय वृत्तिकल्पने, शाकादि व्यवहारिणः स्वल्पकरः, शिल्प्यादिकं कर्मकारयेत्, स्वल्पादि

प्रचुरकर ग्रहण निषेधः, तीक्ष्णमृदुताचरणम्, अमात्येन सह कार्यचिन्तनम्, दस्युनिग्रहणम्, प्रजापालनस्य श्रेष्ठत्वम्, सभाकालः, एकान्ते गोप्यमन्त्रणम्, मन्त्रणकाले स्त्र्याद्यपसारणम्, धर्मकामादि चिन्तनम्, दूत संप्रेषणादयः, अथ प्रकृति प्रकाराः, अरिप्रकृतयः, अथ षड्गुणा., सन्ध्यादि प्रकार., सन्धिविग्रहादिकालाः, बलिनृप-संश्रयणे, आत्मानमधिकं कुर्यात्, आगामि गुणदोष चिन्ता, राजरक्षा, अरिराज्ययानविधिः, शत्रुसेविमित्रादौ सावधानम्, व्यूहकरणे, जलादौ युद्धप्रकारः, अग्रानीकयोग्यानाह, सैन्यपरीक्षणम्, परराष्ट्रपीडने, परप्रकृतिभेदादि, उपायाभावेयुध्येत्, जित्वाब्राह्मणादि पूजनं प्रजानामभयदानं च, तद्वंश्याय तद्राज्यदाने, कर-ग्रहणादि, मित्रप्रशंसा, शत्रुगुणाः, उदासीनगुणाः आत्मार्थं भूम्यादित्यागः, आपदि उपाय चिन्तनम्, अथराज्ञो भोजने, अन्नादिपरीक्षा, विहारादौ, आयुधादि दर्शनम्, सन्ध्यामुपास्य प्रणिधि चेष्टतादि, ततो रात्रि भोजनादयः, अस्वस्थः श्रेष्ठामात्येषु निःक्षिपेत् ।

अष्टमोऽध्यायः

व्यवहारान् दिदृक्षुः सभाम्प्रविशेत्, कुलशास्त्रादिभिः कार्यं पश्येत्, अष्टादश विवादा-नाह, धर्ममाश्रित्य निर्णयं कुर्यात्, स्वयमशक्तौ विद्वांसं नियुज्यात्, स त्रिभिर्ब्राह्मणैः सह कार्य-पश्येत, तत्सभाप्रशंसा, अधर्मे सभासदां दोष., सदसि सत्यमेव वक्तव्यम्, अधर्मवादि शासनम्, धर्मातिक्रमणे दोषः दुर्व्यवहारे राजादीनामधर्मः, अर्थिप्रत्यर्थिपापे, कार्यदर्शने शूद्र निषेध., राष्ट्र नास्तिक दुर्भिक्षादि निषेधः, लोकपालान्प्रणम्य कार्य दर्शनम्, ब्राह्मणादि क्रमेण कार्यपश्येत्, स्वरवर्णादिना अर्थ्यादि परीक्षेत्, बालधनं राज्ञा रक्षणीयम्, प्रोषित-पतिकादिधनरक्षणम्, अपुत्राधनहारक शासनम्, अस्वामिकधनरक्षणे कालः, द्रव्यरूप संख्यादिकथनम्, अकथने दण्डः, प्रणष्ट द्रव्यात् षड्भाग ग्रहणम्, चौरघातनम्, निध्यादौ षड्भाग ग्रहणम्, परनिधौ अनृतकथने, ब्राह्मणनिधिविषये, राज्ञा निधिं प्राप्यार्धं विप्राय देयम्, चौरहृतधनं राज्ञा दातव्यम्, जातिदेशधर्माविरोधेन करणीयम्, राज्ञा विवादोत्था-पनादि न कार्यम्, अनुमानेन तत्वं निश्चिनुयात्, सत्यादिना व्यवहारं पश्येत्, सदाचार आचरणीयः, ऋणादाने, अथहीनाः, अभियोक्तुर्दण्डादिः, धनपरिणाममिथ्याकथने, साक्षिविभाव-नम्, अथ साक्षिण., साक्ष्ये निषिद्धा. स्त्र्यादीनां स्त्र्यादयः साक्षिणः, वादि साक्षिणः, बालादि-साक्ष्यादौ, साहसादौ न साक्षिपरीक्षा, साक्षिद्वैधे, साक्षिणः सत्य कथनम्, मिथ्यासाक्ष्ये दोषः, श्रुतसाक्षिणः, एकोऽपि धर्मवित्साक्षी, स्वभाववचनं साक्षिणो गृह्णीयुः साक्षिप्रश्ने, साक्षिभि. सत्यं वक्तव्यम्ः, रहः कृतं कर्म आत्मादिर्जानाति, ब्राह्मणादिसाक्षिप्रश्ने, असत्यकथने दोषः, सत्यप्रशंसा, असत्यकथनफलम्, पुनः सत्यकथनप्रशंसा, विषयभेदेन सत्यफलम्, निन्दित-ब्राह्मणान् शूद्रवत्पृच्छेन्, विषयभेदेऽसत्यकथने दोषः, अनृतकथने प्रायश्चित्तम्, त्रिपक्षं साक्ष्य-कथने पराजयः, साक्षिभङ्गे, असाक्षिविवादे शपथः, वृथाशपथे दोष., वृथाशपथप्रति-प्रसवमाह, विप्रादेः सत्योच्चारादि शपथम्, शूद्रशपथे, शपथे शुचिमाह, अथ पुनर्वादः, लोभादिना साक्ष्ये दण्डविशेष., दण्डस्य हस्तादि दशस्थानानि, अपराधमपेक्ष्य दण्ड-करणम्, अधर्मदण्डनिन्दा, दण्ड्यपरित्यागे, वाग्दण्डधिग्दण्डादि, त्रसरेण्वादि परिमाणान्याह, प्रथममध्यमोत्तमसहसाः, ऋणादाने दण्डनियमः, अथवृद्धिः, आधिस्थले, बलादाधि-

भोग निषेधे, आधिनिक्षेपादौ धेन्वादौ भोगेऽपि न स्वत्वहानिः, आधिसीमादौ न भोगे स्वत्वहानिः, बलादाधिभोगेऽर्धवृद्धिः, द्वैगुण्यादधिकवृद्धिर्न भवति, वृद्धिप्रकाराः, पुनर्लेख्यकरणे, देशकालवृद्धौ, दर्शनप्रति भूस्थले, प्रातिभाव्यादि ऋणं पुत्रैर्न देयम्, दानप्रति· भूस्थले, निरादिष्टधने प्रतिभुवि, कृतनिवृत्तौ, कुटुम्बार्थ कृतर्णं देयम्, बलकृतं निवर्त्यम्, प्रातिभाव्यादि निषेधः, अग्राह्यमर्घं न गृह्णीयात्, ग्राह्यत्यागे दोषः, अबल रक्षणादौ, अधर्मेकार्य करणे दोषः, धर्मेण कार्याकरणम्, धनिकेन धनसाधने, धनाभावे कर्मणा ऋणशोधनम्, अथ निक्षेपे, साक्ष्यभावे निक्षेपनिर्णयः, निक्षेपदाने, स्वयं निक्षेपार्पणे, समुद्र निक्षेपे, चौरादिहृते निक्षेपे, निक्षेपापहारे शपथम्, निक्षेपापहारादौ दण्डः, छलेन परधनहरणे, निक्षेपे मिथ्या कथने दण्डः, निक्षेपदान ग्रहणयोः अस्वामिविक्रये, सागमभोग प्रमाणम्, प्रकाशक्रये मूल्य धन लाभे, संसृष्टवस्तुविक्रये, अन्यां कन्यां दर्शयित्वान्या विवाहे, उन्मत्तादि कन्याविवाहे, पुरोहित दक्षिणादाने, अध्वर्य्वादि दक्षिणा, संभूयसमुत्थाने, दत्तादानप्रक्रिया, भृतिस्थले, संविद्व्यतिक्रमे, क्रीतानुशयः, अनाख्याय दोषवतीकन्यादाने, मिथ्याकन्यादूषणकथने, दूषित कन्यानिन्दा, अथसप्तपदी, अथस्वामिपालविवादः, क्षीरभृतिस्थले, पालदोषेण नष्टस्थले, चोरहृते, श्रङ्गादिदर्शनम्, वृकादिहतस्थले, सस्यघातकदण्डे, सीमावृक्षादयः, उपच्छन्नानि सीमलिङ्गानि, भोगेन सीमां नयेत्, सीमासाक्षिणः, साक्ष्युक्ताम् सीमाम्बध्नीयात्, साक्ष्युदानविधिः, अन्यथा कथने दण्डः, साक्ष्यभावे ग्रामसामन्तादयः, सामन्तानाम् मृषाकथने दण्डः, गृहादिहरणे दण्डः, राजा स्वयं सीमानिर्णयम् कुर्यात्, अथ वाक्पारुष्यदण्डः, ब्राह्मणाद्याक्रोशे, समवर्णाक्रोशे, शूद्रस्य द्विजाक्रोषे, धर्मोपदेशकर्तुः शूद्रस्य दण्डः, श्रुतदेशजात्याक्षेपे, काणाद्याक्रोशे, मात्राद्याक्रोशे, परस्परपतनीयाक्रोशे, अथ दण्डपारुष्यम्, शूद्रस्य ब्राह्मणादिताडने, पादादिप्रहारे, महता सहोपवेशने, निष्ठीवनादौ, केशग्रहणादौ, त्वगस्थिभेदादौ, वनस्पतिच्छेदने, मनुष्याणां दुःखानुसारेण दण्डः, समुत्थान व्ययदाने, द्रव्यार्हिंसायाम्, चार्मिकभाण्डादौ, यानादेर्दशातिवर्तनानि, रथस्वाम्यादि दण्डने, भार्यादिताड़ने, अन्यथाताड़ने दण्डः, स्तेननिग्रहणे, चोरादितोऽभयदानफलम्, राजाधर्माधर्म षष्ठांशभागी, अरक्षया करग्रहणनिन्दा, पापनिग्रहसाधुसंग्रहणे, बालवृद्धादिषु क्षमा, ब्राह्मणसुवर्णस्तेने, अशासने राज्ञो दोषः, परपाप संश्लेषणे, राजदण्डेन पापनाशे, कूपघटादिहरण प्रपाभेदने, धान्यादिहरणे, सुवर्णादिहरणे, स्त्रीपुरुषादिहरणे, महापश्वादिहरणादौ, सूत्रकार्पासादि हरणे, हरितधान्यादौ, निरन्वयसान्वयधान्यादौ, स्तेयसाहस लक्षणम्, त्रेताग्निस्तेये, चौरहस्तच्छेदादि, पित्रादिदण्डे, राज्ञोदण्डे, विड्शूद्रादेरष्टगुणादिदण्डः, अस्तेयान्याह, चौरयाजनादौ, पथिस्थितेक्षुद्वयग्रहणे, दासाश्वादि हरणादौ, साहसमाह, साहस क्षमानिन्दा, द्विजाते. शस्त्रग्रहणकालः, आततायिहनने, परदाराभिगमने दण्डः, परस्त्रिया रहः सम्भाषणे, स्त्रीसंग्रहणे, भिक्षुकादीनां परस्त्री सम्भाषणे, परस्त्रिया निषिद्ध सम्भाषणे, नटादिस्त्रीषु संभाषणे न दोषः, कन्यादूषणे, अंगुलिप्रक्षेपादौ, व्यभिचरितस्त्रीजारयोर्दण्डे, संवत्सराभिशस्तादौ, शूद्रादेररक्षितोत्कृष्टादिगमने, ब्राह्मणस्य गुप्ताविप्रागमने, ब्राह्मणस्य न वधदण्डः, गुप्तावैश्यक्षत्रियर्योर्गमने, अगुप्ताक्षत्रियादिगमने, साहसिकादिशून्यराज्यप्रशंसा, कुलपुरोहितादि त्यागे, मात्रादित्यागे, विप्रयोर्वादे राज्ञा न धर्मकथनम्, सामाजिकाद्यभोजने, अथ आकराः, रजकस्य वस्त्र-प्रक्षालने, तन्तुवायस्य सूत्रहरणे, पण्यमूल्य करणे, राज्ञा प्रतिषिद्धानां निर्हरणे,

अकालविक्रयादौ, विदेशविक्रये, अर्घस्थापने, तुलादिपरीक्षा, तरिशुल्कम्, गर्भिण्यादीनां न तरिशुल्कम्, नाविकदोषेण वस्तुनाशे, वैश्यादेर्वाणिज्याकरणे, क्षत्रियवैश्यौ न दासकर्मार्हौ, शूद्रं दासकर्म कारयेत्, शूद्रो दास्यान्न मुच्यते, सप्तदश दासप्रकाराः, भार्यादासादयोऽधनाः, वैश्यशूद्रौ स्वकर्मकारयितव्यौ, दिनेदिने आयव्ययनिरीक्षणम्, सम्यग्व्यवहारदर्शनफलम् ।

नवमोऽध्यायः

स्त्रीपुंधर्माः स्त्रीरक्षा, जायाशब्दार्थकथनम्, स्त्रीरक्षणोपायाः, स्त्रीस्वभावः, स्त्रीणाम् मन्त्रैर्नक्रिया, व्यभिचार प्रायश्चित्ते, स्त्री स्वामीगुणाभवन्ति, स्त्रीप्रशंसा, अव्यभिचार फलम्, व्यभिचारफलम्, बीजक्षेत्रयोर्बलाबले, परस्त्रीषु बीजवपननिषेधः, स्त्रीपुंसयोरेकत्वम्, सकृदंशभागादयः, क्षेत्रप्राधान्यम्, स्त्रीधर्मः, भ्रातृस्त्रीगमने पातित्यम्, अथनियोगः, न नियोगे द्वितीय पुत्रोत्पादनम्, कामतोगमननिषेधः, नियोगनिन्दा, वर्णसङ्करकालः, वाग्दत्ताविषये, कन्यायाः पुनर्दाननिषेधः, सप्तपदीपूर्वं स्त्रीत्यागे, दोषवतीकन्यादाने, स्त्रीवृत्तिंप्रकल्प्यप्रवसेत्, प्रोषितभर्तृकानियमाः, संवत्सरम् स्त्रियम् प्रतीक्षेत, रोगार्तस्वाम्यतिक्रमे, क्लीबादेर्न स्त्रीत्यागः, अधिवेदने, स्त्रिया मद्यपाने, सजात्या स्त्रिया धर्मकार्यम् नान्यया, गुणिने कन्यादानम् न निर्गुणाय, स्वयंवरकालः, स्वयंवरे पितृदत्तालङ्कारत्यागः, ऋतुमती विवाहे न शुल्कदानम्, कन्यावरयोर्वयोनियमः, विवाहस्यावश्यकत्वम्, दत्तशुल्काया वरमरणे, शुल्कग्रहणनिषेधः, वाचा कन्याम् दत्वाऽन्यस्मैनदानम्, स्त्रीपुंसयोरव्यभिचारः, दायभागः, विभागकालः, सहावस्थाने ज्येष्ठस्य प्राधान्यम्, ज्येष्ठप्रशंसा, अज्येष्ठवृत्तौज्येष्ठे, विभागे हेतुमाह, ज्येष्ठादेर्विंशोद्धारे, एकमपि श्रेष्ठम् ज्येष्ठस्य, दशवस्तुषु समानां नोद्धारः, समभागविषमभागौ, स्वस्वांशेभ्यो भगिन्यैदेयम्, विषममजाविकम् ज्येष्ठस्यैव, क्षेत्रजेनविभागे, अनेकमातृकेषु ज्यैष्ठ्ये, जन्मतो ज्यैष्ठ्यम्, पुत्रिकाकरणे, पुत्रिकायाम् धनग्राहित्वम्, मातुः स्त्रीधनम् दुहितुः, पुत्रिकापुत्रस्य धनग्राहित्वम्, पुत्रिकौरसयोर्विभागे, अपुत्रपुत्रिकाधने, पुत्रिकाया द्वैविध्यम्, पौत्रप्रपौत्रयोर्धनभागादि, पुत्रशब्दार्थः, पुत्रिकापुत्रकर्तृकश्राद्धे, दत्तकस्य धनग्राहकत्वे, कामजादेर्नधनग्राहकत्वम्, क्षेत्रजस्य धनग्राहकत्वे, अनेकमातृकविभागः, अनूढशूद्रापुत्रस्य भागनिषेधः, सजातीयानेकमातृकविभागे, शूद्रस्य सम एव भागः, दायादादायादबान्धवत्वम्, कुपुत्रनिन्दा, औरसक्षेत्रविभागे. क्षेत्रजानन्तरमौरसोत्पत्तौ, दत्तकादयो गोत्ररिक्थभागिनः, औरसादिद्वादशपुत्रलक्षणम्, दासीपुत्रस्य समभागित्वम्, क्षेत्रजादयः पुत्रप्रतिनिधयः, सत्यौरसेदत्तकादयो न कर्तव्याः, पुत्रित्वातिदेशः, द्वादशपुत्राणाम् पूर्वपूर्वः श्रेष्ठः, क्षेत्रजादयोरिक्थहराः, क्षेत्रजादीनाम् पितामहधने, सपिण्डादयोधनहराः, ब्राह्मणाधिकारः, राजाधिकारः, मृतपतिकानियुक्तापुत्राधिकारः, औरसपौनर्भवविभागे, मातृधनविभागे, स्त्रीधनान्याह, सप्रजस्त्रीधनाधिकारिणः, अप्रजस्त्रीधनाधिकारिणः, साधारणात्स्त्रीधनम् न कुर्यात्, स्त्रीणामलङ्करणमविभाज्यम्, अनंशाः, क्लीबादिक्षेत्रजा अंशभागिनः, अविभक्तार्जितधने, विद्यादिधने, शक्तस्यांशोपेक्षणे, अविभाज्यधने, नष्टोद्धारे, संसृष्टधनविभागे, विदेशादिगतस्य न भागलोपः, ज्येष्ठोगुणशून्य. समभागः, विकर्मस्थाधनम् नार्हन्ति, ज्येष्ठस्यासाधारणकरणे, जीवत्पितृकविभागे, विभागान्तरोत्पन्नस्थले, अनपत्यधनेमातुरधिकारः, ऋणधनयोः समम् विभागः, अविभाज्यमाह, द्यूतसमाह्वयः, द्यूत-

भोग निषेधे, आधिनिक्षेपादौ धेन्वादौ भोगेऽपि न स्वत्वहानिः, आधिसीमादौ न भोगे स्वत्वहानिः, बलादाधिभोगेऽर्धवृद्धिः, द्वैगुण्यादधिकवृद्धिर्न भवति, वृद्धिप्रकाराः, पुनर्लेख्यकरणे, देशकालवृद्धौ, दर्शनप्रति भूस्थले, प्रातिभाव्यादि ऋणं पुत्रैर्न देयम्, दानप्रति· भूस्थले, निरादिष्टधने प्रतिभुवि, कृतनिवृत्तौ, कुटुम्बार्थं कृतर्णं देयम्, बलकृतं निवर्त्यम्, प्रातिभाव्यादि निषेधः, अग्राह्यमर्धं न गृह्णीयात्, ग्राह्यत्यागे दोषः, अबल रक्षणादौ, अधर्मेकार्यं करणे दोषः, धर्मेण कार्याकरणम्, धनिकेन धनसाधने, धनाभावे कर्मणा ऋणशोधनम्, अथ निक्षेपे, साक्ष्यभावे निक्षेपनिर्णयः, निक्षेपदाने, स्वयं निक्षेपार्पणे, समुद्र निक्षेपे, चौरादिहृते निक्षेपे, निक्षेपापहारे शपथम्, निक्षेपापहारादौ दण्डः, छलेन परधनहरणे, निक्षेपे मिथ्या कथने दण्डः, निक्षेपदान ग्रहणयोः अस्वामिविक्रये, सागमभोग प्रमाणम्, प्रकाशक्रये मूल्य धन लाभे, संसृष्टवस्तुविक्रये, अन्यां कन्यां दर्शयित्वान्या विवाहे, उन्मत्तादि कन्याविवाहे, पुरोहित दक्षिणादाने, अध्वर्य्वादि दक्षिणा, संभूयसमुत्थाने, दत्तादानप्रक्रिया, भृतिस्थले, संविद्व्यतिक्रमे, क्रीतानुशयः, अनाख्याय दोषवतीकन्यादाने, मिथ्याकन्यादूषणकथने, दूषित कन्यानिन्दा, अथसप्तपदी, अथस्वामिपालविवाद., क्षीरभृतिस्थले, पालदोषेण नष्टस्थले, चोरहृते, शृङ्गादिदर्शनम्, वृकादिहतस्थले, सस्यघातकदण्डे, सीमावृक्षादयः, उपच्छन्नानि सीमलिङ्गानि, भोगेन सीमां नयेत्, सीमासाक्षिणः, साक्ष्युक्ताम् सीमाम्बध्नीयात्, साक्ष्युदानविधिः, अन्यथा कथने दण्डः, साक्ष्यभावे ग्रामसामन्तादयः, सामन्तानाम् मृषाकथने दण्डः, गृहादिहरणे दण्डः, राजा स्वयं सीमानिर्णयम् कुर्यात्, अथ वाक्पारुष्यदण्डः, ब्राह्मणाद्याक्रोशे, समवर्णाक्रोशे, शूद्रस्य द्विजाक्रोषे, धर्मोपदेशकर्तुः शूद्रस्य दण्डः, श्रुतदेशजात्याक्षेपे, काणाद्याक्रोशे, मात्राद्याक्रोशे, परस्परपतनीयाक्रोशे, अथ दण्डपारुष्यम्, शूद्रस्य ब्राह्मणादिताडने, पादादिप्रहारे, महता सहोपवेशने, निष्ठीवनादौ, केशग्रहणादौ, त्वगस्थिभेदादौ, वनस्पतिच्छेदने, मनुष्याणां दुःखानुसारेण दण्डः, समुत्थान व्ययदाने, द्रव्याहिंसायाम्, चार्भिकभाण्डादौ, यानादेर्देशातिवर्तनानि, रथस्वाम्यादि दण्डने, भार्यादिताड़ने, अन्यथाताड़ने दण्डः, स्तेननिग्रहणे, चोरादितोऽभयदानफलम्, राजाधर्माधर्म षष्ठांशभागी, अरक्षया करग्रहणनिन्दा, पापनिग्रहसाधुसंग्रहणे, बालवृद्धादिषु क्षमा, ब्राह्मणसुवर्णस्तेने, अशासने राज्ञो दोषः, परपाप संश्लेषणे, राजदण्डेन पापनाशे, कूपघटादिहरण प्रपाभेदने, धान्यादिहरणे, सुवर्णादिहरणे, स्त्रीपुरुषादिहरणे, महापश्वादिहरणादौ, सूत्रकार्पासादि हरणे, हरितधान्यादौ, निरन्वयसान्वयधान्यादौ, स्तेयसाहस लक्षणम्, त्रेताग्निस्तेये, चौरहस्तच्छेदादि, पित्रादिदण्डे, राज्ञोदण्डे, विप्रशूद्रादेरष्टगुणादिदण्डः, अस्तेयान्याह, चौरयाजनादौ, पथिस्थितेक्षुद्वयग्रहणे, दासाश्वादि हरणादौ, साहसमाह, साहस क्षमानिन्दा, द्विजातेः शस्त्रग्रहणकालः, आततायिहनने, परदाराभिगमने दण्डः, परस्त्रिया रहः सम्भाषणे, स्त्रीसंग्रहणे, भिक्षुकादीनां परस्त्री सम्भाषणे, परस्त्रिया निषिद्ध सम्भाषणे, नटादिस्त्रीषु संभाषणे न दोषः, कन्यादूषणे, अंगुलिप्रक्षेपादौ, व्यभिचरितस्त्रीजारयोर्दण्डे, संवत्सराभिशस्तादौ, शूद्रादेररक्षितोत्कृष्टादिगमने, ब्राह्मणस्य गुप्ताविप्रागमने, ब्राह्मणस्य न वधदण्डः, गुप्तावैश्यक्षत्रिययोर्गमने, अगुप्ताक्षत्रियादिगमने, साहसिकादिशून्यराज्यप्रशंसा, कुलपुरोहितादि त्यागे, मात्रादित्यागे, विप्रयोर्वादे राज्ञा न धर्मकथनम्, सामाजिकाद्यभोजने, अथ आकराः, रजकस्य वस्त्र-प्रक्षालने, तन्तुवायस्य सूत्रहरणे, पण्यमूल्य करणे, राज्ञा प्रतिषिद्धानां निर्हरणे,

अकालविक्रयादौ, विदेशविक्रये, अर्धस्थापने, तुलादिपरीक्षा, तरिशुल्कम्, गर्भिण्यादीनां न तरिशुल्कम्, नाविकदोषेण वस्तुनाशे, वैश्यादेर्वाणिज्याकरणे, क्षत्रियवैश्यौ न दासकर्मार्हौ, शूद्रं दासकर्म कारयेत्, शूद्रो दास्यान्न मुच्यते, सप्तदश दासप्रकाराः, भार्यादासादयोऽधनाः, वैश्यशूद्रौ स्वकर्मकारयितव्यौ, दिनेदिने आयव्ययनिरीक्षणम्, सम्यग्व्यवहारदर्शनफलम् ।

नवमोऽध्यायः

स्त्रीपुंधर्माः स्त्रीरक्षा, जायाशब्दार्थकथनम्, स्त्रीरक्षणोपायाः, स्त्रीस्वभावः, स्त्रीणाम् मन्त्रैर्नक्रिया, व्यभिचार प्रायश्चित्ते, स्त्री स्वामीगुणाभवन्ति, स्त्रीप्रशंसा, अव्यभिचार फलम्, व्यभिचारफलम्, बीजक्षेत्रयोर्बलाबले, परस्त्रीषु बीजवपननिषेधः, स्त्रीपुंसयोरेकत्वम्, सकृदंशभागादयः, क्षेत्रप्राधान्यम्, स्त्रीधर्मः, भ्रातुःस्त्रीगमने पातित्यम्, अथनियोगः, न नियोगे द्वितीय पुत्रोत्पादनम्, कामतोगमननिषेधः, नियोगनिन्दा, वर्णसङ्करकालः, वाग्दत्ताविषये, कन्यायाः पुनर्दाननिषेधः, सप्तपदीपूर्व स्त्रीत्यागे, दोषवतीकन्यादाने, स्त्रीवृत्तिंप्रकल्प्यप्रवसेत्, प्रोषितभर्तृकानियमाः, संवत्सरम् स्त्रियम् प्रतीक्षेत, रोगार्तस्वाम्यतिक्रमे, क्लीबादेर्न स्त्रीत्यागः, अधिवेदने, स्त्रिया मद्यपाने, सजात्या स्त्रिया धर्मकार्यम् नान्यया, गुणिने कन्यादानम् न निर्गुणाय, स्वयंवरकालः, स्वयंवरे पितृदत्तालङ्कारत्यागः, ऋतुमती विवाहे न शुल्कदानम्, कन्यावरयोर्वयोनियमः, विवाहस्यावश्यकत्वम्, दत्तशुल्काया वरमरणे, शुल्कग्रहणनिषेधः, वाचा कन्याम् दत्वाऽन्यस्मैनदानम्, स्त्रीपुंसयोरव्यभिचारः, दायभागः, विभागकालः, सहावस्थाने ज्येष्ठस्य प्राधान्यम्, ज्येष्ठप्रशंसा, अज्येष्ठवृत्तौज्येष्ठे, विभागे हेतुमाह, ज्येष्ठादेर्विंशोद्धारे, एकमपि श्रेष्ठम् ज्येष्ठस्य, दशवस्तुषु समानां नोद्धारः, समभागविषमभागौ, स्वस्वांशेभ्यो भगिन्यैदेयम्, विषममजाविकम् ज्येष्ठस्यैव, क्षेत्रजेनविभागे, अनेकमातृकेषु ज्यैष्ठ्ये, जन्मतो ज्यैष्ठ्यम्, पुत्रिकाकरणे, पुत्रिकायाम् धनग्राहित्वम्, मातुः स्त्रीधनम् दुहितुः, पुत्रिकापुत्रस्य धनग्राहित्वम्, पुत्रिकौरसयोर्विभागे, अपुत्रपुत्रिकाधने, पुत्रिकाया द्वैविध्यम्, पौत्रप्रपौत्रयोर्धनभागादि, पुत्रशब्दार्थः, पुत्रिकापुत्रकर्तृकश्राद्धे, दत्तकस्य धनग्राहकत्वे, कामजादेर्नधनग्राहकत्वम्, क्षेत्रजस्य धनग्राहकत्वे, अनेकमातृकविभागः, अनूढशूद्रापुत्रस्य भागनिषेधः, सजातीयानेकमातृकविभागे, शूद्रस्य सम एव भागः, दायादादायादबान्धवत्वम्, कुपुत्रनिन्दा, औरसक्षेत्रविभागे. क्षेत्रजानन्तरमौरसोत्पत्तौ, दत्तकादयो गोत्ररिक्थभागिनः, औरसादिद्वादशपुत्रलक्षणम्, दासीपुत्रस्य समभागित्वम्, क्षेत्रजादयः पुत्रप्रतिनिधयः, सत्यौरसेदत्तकादयो न कर्तव्याः, पुत्रित्वातिदेशः, द्वादशपुत्राणाम् पूर्वपूर्वः श्रेष्ठः, क्षेत्रजादयोरिक्थहराः, क्षेत्रजादीनाम् पितामहधने, सपिण्डादयोधनहराः, ब्राह्मणाधिकारः, राजाधिकारः, मृतपतिकानियुक्तापुत्राधिकारः, औरसपौनर्भवविभागे, मातृधनविभागे, स्त्रीधनान्याह, सप्रजस्त्रीधनाधिकारिणः, अप्रजस्त्रीधनाधिकारिणः, साधारणात्स्त्रीधनम् न कुर्यात्, स्त्रीणामलङ्करणमविभाज्यम्, अनंशाः, क्लीबादिक्षेत्रजा अंशभागिनः, अविभक्तार्जितधने, विद्यादिधने, शक्तस्यांशोपेक्षणे, अविभाज्यधने, नष्टोद्धारे, संसृष्टधनविभागे, विदेशादिगतस्य न भागलोपः, ज्येष्ठोगुणशून्यः समभागः, विकर्मस्थाधनम् नार्हन्ति, ज्येष्ठस्यासाधारणकरणे, जीवत्पितृकविभागे, विभागान्तरोत्पन्नस्थले, अनपत्यधनेमातुरधिकारः, ऋणधनयोः समम् विभागः, अविभाज्यमाह, द्यूतसमाह्वयः, द्यूत-

समाह्वयनिषेधः, द्यूतसमाह्वयार्थः, द्यूतादिकारिणाम् दण्डः, पाषण्डादीन्देशान्निर्वासयेत्, दण्ड-दानाशक्तौ, स्त्रीबालादिदण्डे, नियुक्तकार्यहनने, कूटशासनबालवधादिकरणे, धर्मकृतम् व्यवहारम् न निवर्तयेत्, अधर्मकृतम् निवर्त्यम्, प्रायश्चित्तप्रकरणे महापातकिदण्डः, प्रायश्चित्तकरणे नाङ्क्याः, महापातके ब्राह्मणस्य दण्डः, क्षत्रियादेर्दण्डः, महापातकिधनग्रहणे, ब्राह्मणपीडने दण्डः, वध्यमोक्षणे दोषः, राजा कण्टकोद्धरणे यत्नम् कुर्यात्, आर्यरक्षाफलम् तस्कराद्यशासने दोषः, निर्भयराज्यवर्धनम्, प्रकाशाप्रकाशतस्करज्ञानम्, प्रकाशाप्रकाशतस्करानाह, तेषां शासनम्, चौराणाम् निग्राहको दण्ड एव, तस्करान्वेषणम्, लोप्त्रादर्शने, चौराश्रयदायकदण्डः, स्वधर्मच्युतदण्डने, चौराद्युपद्रवे अधावतो दण्डः, राज्ञः कोशहारकादयोदण्ड्याः, सन्धिच्छेदे, ग्रन्थिभेदने, चौरलोप्त्रग्रासण्णादौ, तडागागारभेदने, राजमार्गेमलादित्यागे, मिथ्याचिकित्सनेदण्डः, प्रतिमादिभेदने, मणीनामपवेधादौ, विषमव्यवहारे, बन्धनस्थानम्, प्राकारभेदादौ, अभिचारकर्मणि, अबीजविक्रयादौ, स्वर्णकारदण्डने, हलोपकरणहरणे, सप्तप्रकृतयः, स्वपरशक्तिवीक्षणम्, कर्मारम्भे, राज्ञो युगत्वकथनम्, इन्द्रादीनाम् तेजो नृपो बिभर्ति, एतैरुपायैः स्तेननिग्रहणम्, ब्राह्मणम् न कोपयेत्, ब्राह्मणप्रशंसा, श्मशानाग्निर्नदुष्ट एवम् ब्राह्मणः, ब्रह्मक्षत्रयोः पारस्परसाहित्यम्, पुत्रे राज्यम् दत्त्वारणे प्राणत्यागः, वैश्यधर्मानाह, शूद्रधर्मानाह।

दशमोऽध्यायः

अध्यापनम् ब्राह्मणस्यैव, वर्णानाम् ब्राह्मणः प्रभुः, द्विजवर्णकथनम्, सजातीयाः, पितृजातिसदृशाः, वर्णसङ्कराः, व्रात्याः, व्रात्योत्पन्नादिसङ्कीर्णाः, उपनेयाः, ते सुकर्मणा उत्कर्षम् गच्छन्ति, दस्यवः, वर्णसङ्कराणाम् कर्माण्याह, चाण्डालकर्माह, कर्मणापुरुषज्ञानम्, वर्णसङ्करनिन्दा, एषाम् विप्राद्यर्थे प्राणत्यागः श्रेष्ठः, साधारणधर्माः, सप्तमे जन्मनि ब्राह्मण्यम् शूद्रत्वम् च, वर्णसङ्करे श्रैष्ठ्यम्, बीजक्षेत्रयोर्बलाबले, षट्कर्माण्याह, ब्राह्मणजीविका, क्षत्रियवैश्यकर्माह, द्विजानाम् श्रेष्ठकर्माह, आपद्धर्ममाह, विक्रयेवर्ज्यानि, क्षीरादिविक्रयफलम्, ज्यायसीवृत्तिनिषेधः, परधर्मजीवननिन्दा, वैश्यशूद्रयोरापद्धर्मः, आपदि विप्रस्य हीनयाचनादि, प्रतिग्रहनिन्दा, याजनाध्यापने द्विजानाम्, प्रतिग्रहादि पापनाशे, शिलोञ्छजीवने, धनयाचने, सप्तवित्तागमाः, दश जीवनहेतवः, वृद्धिजीवननिषेधः, राज्ञामापद्धर्ममाह, शूद्रस्य आपद्धर्मः, शूद्रस्य ब्राह्मणाराधनम् श्रेष्ठम्, शूद्रवृत्तिकल्पनम्, शूद्रस्य न संस्कारादि, शूद्रस्यामन्त्रकम् धर्मकार्यम्, शूद्रस्य धनसञ्चयनिषेधः।

एकादशोऽध्यायः

स्नातकस्य प्रकाराः, नवस्नातकेभ्योऽन्नदाने, वेदविद्भ्यो दानम्, भिक्षया द्वितीयविवाहनिषेधः, कुटुम्बिब्राह्मणाय दानम्, सोमयागाधिकारिणः, कुटुम्बयोभरणे दोषः, यज्ञशेषार्थं वेश्यादेर्धनग्रहणम्, षट्टुपवासे आहारग्रहणे, ब्रह्मस्वादिहरणनिषेधः, असाधुधनं हृत्वा साधुभ्यो दाने, यज्ञशीलादि धनप्रशंसा, यज्ञाद्यर्थं विप्रस्य स्तेनादौ न दण्डः, क्षुधावसन्नस्य वृत्तिकल्पने, यज्ञार्थं शूद्रभिक्षा निषेधः, यज्ञार्थं धनं भिक्षित्वा न रक्षणीयम्, देवब्रह्मस्वहरणे, सोमयागाशक्तौवैश्वानरयागः, समर्थस्यानुकल्प निषेधः, द्विजस्य स्वशक्त्या वैरिजयः, क्षत्रियादेर्बाहुवीर्येणारिजयः, ब्राह्मणस्यानिष्टं न ब्रूयात्, अल्पविद्यास्तथादेर्होतृत्वनिषेधः, अश्वदक्षिणादाने, अल्पदक्षिणयज्ञ

निन्दा, अग्निहोत्रिणस्तदकरणे, शूद्रासधनेनाग्निहोत्रनिन्दा, विहिताकरणादौ प्रायश्चित्तं, कामाकाम कृत पापे, प्रायश्चित्तिसंसर्गनिषेध', पूर्वपापेन कुष्ठ्यन्धादयः, प्रायश्चित्तमवश्यं कर्तव्यम्। पञ्चमहापातकान्याह, ब्रह्महत्यादिसमान्याह, उपपातकान्याह, जातिभ्रंशकराण्याह, सङ्करीकरणान्याह, मलिनीकरणान्याह, ब्रह्मवधप्रायश्चित्तम्, गर्भात्रेयीक्षत्रवैश्यवधे, स्त्रीसुहृद्धनिक्षेपहरणादौ, सुरा पानप्रायश्चित्तम्, गोवधाद्युपपातकप्रायश्चित्तम्, अवकीर्णि प्रायश्चित्तम्, जातिभ्रंशकर प्रायश्चित्तम्, सङ्करीकरणादि प्रायश्चित्तम्, क्षत्रियादिवधप्रायश्चित्तम्, मार्जारादिवधप्रायश्चित्तम्, हयादिवधप्रायश्चित्तम्, व्यभिचरितस्त्रीवधे, सर्पादिवधे दानाशक्तौ, क्षुद्रजन्तुसमूहवधादौ, वृक्षादिच्छेदनादौ, अन्नजादिसत्ववधे, वृथौषध्यादिच्छेदने, अमुख्य सुरापानप्रायश्चितम्, सुराभाण्डस्थजलपाने, शूद्रोच्छिष्टजलपाने, सुरागन्धाघ्राणे, विण्मूत्रसुरासंसृष्ट भोजने, पुनः संस्कारे दण्डादिनिवृत्तिः, अभोज्यान्नस्त्रीशूद्रोच्छिष्टाभक्ष्यमांसभक्षणे, शुक्तादिभक्षणे, सूकरादिविण्मूत्र भक्षणे, शुष्कसूनास्थाज्ञातमांस भक्षणे, कुक्कुटनरशूकरादि भक्षणे, मासिकान्नभक्षणे प्रायश्चित्तम्, ब्रह्मचारिणो मधुमांसादिभक्षणे, विडालाद्युच्छिष्टादि भक्षणे, अभोज्यान्नमुत्तार्यम्, सजातीयधान्यादिस्तेये, मनुष्यादिहरणप्रायश्चित्तम्, त्रपुसीसकादिहरणे, भक्ष्ययानशय्यादिहरणे, शुष्कान्नगुडादिहरणे, मणिमुक्तारजतादि हरणे, कार्पासांशुकादि हरणे, अगम्यागमन प्रायश्चित्तं, वडवारजस्वलादि गमने, दिवामैथुनादौ, चाण्डाल्यादिगमने, व्यभिचारे स्त्रीणां प्रायश्चित्तम्, चाण्डालीगमने, पतितसंसर्गप्रायश्चित्तम्, पतितस्य जीवत एव प्रेतक्रिया, पतितस्यांशादिनिवृत्तिः, कृतप्रायश्चित्त संसर्गः, पतितस्त्रीणामन्नादि देयम्, पतित संसर्ग निषेधादि, बालघ्नादि त्यागः, व्रात्यवेदत्यक्तप्रायश्चित्तम्, गर्हितार्जित धनत्यागः, असत्प्रतिग्रह प्रायश्चित्तम्, साम्यम् पृच्छेत्, गोभ्यो घासदानं तत्र संसर्गः, व्रात्ययाजनपतितक्रियाकृत्यादौ, वेदशरणगतत्यागे, श्वादिदंशनप्रायश्चित्तम्, अपांक्त्यप्रायश्चित्तम्, उष्ट्रादियानप्रायश्चित्तम्, जले जलं विना वा मूत्रादित्यागे, वेदोदित कर्मादित्यागे, ब्राह्मस्य धिक्कारे, ब्रह्मणावगुरणे, अनुक्तप्रायश्चित्तस्थले, प्राजापत्यादिव्रतनिर्णयः, व्रताङ्गानि, पापं न गोपनीयम्, पापानुतापे, पापवृत्ति निन्दा, मनस्तुष्टि पर्यन्तम् तपः कुर्यात्, तपः प्रशंसा, वेदाभ्यास प्रशंसा, रहस्यप्रायश्चित्तम्।

द्वादशोऽध्यायः

शुभाशुभकर्मफलम्, कर्मणो मनःप्रवर्तकम्, त्रिविधमानसकर्माणि, चतुर्विधवाचिक कर्माणि, त्रिविध शारीर कर्माणि, मनोवाकायकर्मभोगे, त्रिदण्डिपरिचयः, क्षेत्रज्ञपरिचयः, जीवात्मपरिचयः, जीवानामनन्त्यम्, परलोके पाञ्चभौतिक शरीरम्, भोगानन्तरमात्मनिलीयते, धर्माधर्मबाहुल्याद्भोग, त्रिविधगुणकथनम्, अधिक गुणप्रधानो देह , सत्वादिलक्षणमाह, सात्विक गुणलक्षणम्, राजसगुणलक्षणम्, तामसगुणलक्षणम्, संक्षेपतस्तामसादिलक्षणम्, गुणत्रयात्त्रिविधा गतिः, त्रिविधागतिप्रकाराः, पापेन कुत्सिता गति', पापविशेषेण योनिविशेषोत्पत्तिः, पापप्रावीण्यान्नरकादि, मोक्षोपायषट्कर्माण्याह, आत्मज्ञानस्य प्राधान्यम्, वेदोदित कर्मणः श्रेष्ठत्वम्, वैदिककर्म द्विविधम्, प्रवृत्तनिवृत्तकर्मफलम्, समदर्शनम्, वेदाभ्यासादौ, वेदबाह्यस्मृतिनिन्दा, वेदप्रशंसा, वेदज्ञस्य सेनापत्यादि, वेदज्ञ प्रशंसा, वेदव्यवसायिनः,

श्रेष्ठत्वम्, तपोविद्याभ्यां मोक्षः, प्रत्यक्षानुमानशब्दाः प्रमाणानि, धर्मज्ञलक्षणम्, अकथितं धर्मस्थले, अथ शिष्टाः, अथ परिषत्, मूर्खाणां न परिषत्वम्, आत्मज्ञानं पृथक्कृत्याह, वाय्वाकाशादीनां लयमाह, आत्मस्वरूपमाह, आत्मदर्शनमवश्यमनुष्ठेयम्, एतत्संहिता-पाठ फलम्।

सम्पूर्णेयं मनुस्मृति विषयानुक्रमणी।

पचासवाँ अध्याय

अन्य-स्मृतियाँ

मानव-धर्मशास्त्र अन्य सभी स्मृतियोंका आधार है, क्योंकि सभी पीछेकी बनी हुई हैं। इन सबमें याज्ञवल्क्यकी संहिता बहुत मान्य है।

याज्ञवल्क्य-स्मृति

इस स्मृतिमें तीन अध्याय हैं। आचार, व्यवहार और प्रायश्चित्त। उनकी विषयसूची इस प्रकार है—

१—आचार अध्याय—स्नातकव्रतप्रकरण, भक्ष्याभक्ष्यप्रकरण, द्रव्यशुद्धिप्रकरण, दानप्रकरण।

२—व्यवहार अध्याय—प्रतिभूप्रकरण, ऋणदानप्रकरण, निक्षेपादिप्रकरण, साक्षिप्रकरण, लेख्यप्रकरण, दिव्यप्रकरण, दायभागप्रकरण, सीमाविवादप्रकरण, स्वामिपाल विवादप्रकरण, अस्वामिविक्रयप्रकरण, दत्ताप्रदानिकप्रकरण, क्रीतानुशयप्रकरण, संविद्व्यतिक्रमप्रकरण, वेतनदानप्रकरण, द्यूतसमाह्वयप्रकरण, वाक्पारुष्यप्रकरण, दण्डपारुष्यप्रकरण, साहसप्रकरण, विक्रियासम्प्रदानप्रकरण, सम्भूयसमुत्थानप्रकरण, स्तेयप्रकरण, स्त्रीसंग्रहप्रकरण।

३—प्रायश्चित्त अध्याय—अशौचप्रकरण, आपत्कर्म्मप्रकरण, वानप्रस्थप्रकरण, यतिप्रकरण, अध्यात्मप्रकरण, ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तप्रकरण, सुरापानप्रायश्चित्तप्रकरण, सुवर्णस्तेय प्रायश्चित्तप्रकरण, स्त्रीवध प्रायश्चित्तप्रकरण, रहस्यप्रायश्चित्तप्रकरण।

अष्टादश-स्मृति

इस नामका एक संग्रह छपा है जो प्रसिद्ध है। इसमें मानव धर्म-शास्त्र और याज्ञवाल्क्य-संहिता नहीं हैं। इन दोनोंके सिवाय अठारह स्मृतियोंका संग्रह है।

इस संग्रहमें विष्णुस्मृति शामिल है, हम आगे चलकर इसी संग्रह-ग्रन्थसे शेष समस्त स्मृतियोंका सार देते हैं, परन्तु विष्णुसंहिताके सम्बन्धमें इतना कह देना आवश्यक समझते हैं कि इस संग्रहमें विष्णुस्मृतिके नामसे केवल पाँच ही अध्याय दिये गये हैं, परन्तु हमारे सामने बङ्गवासी-प्रेसकी छपी विष्णुसंहिता मौजूद है। उसमें छोटे बड़े सब तरहके अध्याय मिलाकर कुल सौ अध्याय हैं। यह हम नहीं जानते कि संग्रहकारने किस विष्णु-स्मृतिके पाँच अध्याय दिये हैं। जो विष्णुस्मृति हमारे सामने है उसके पहिले अध्यायमें बासठ अनुष्टुप छन्द हैं। फिर दूसरे अध्यायमें छः सूत्र और दो श्लोक मिलाकर कुल आठ हैं। तीसरेमें इसी प्रकार सूत्र और श्लोक मिलाकर सत्तर हैं। इस स्मृतिमें सूत्रोंकी संख्या अधिक है। श्लोक योंही थोड़े बहुत हैं। इस तरह पाँचवेंमें १९२, छठेमें ४३, सातवेंमें १३, आठवेंमें ४०, नवेंमें ३३, दसवेंमें १३,इस तरह थोड़े और बहुत सूत्र और श्लोकोंको मिलाकर एक सौ अध्याय हैं, सौवें अध्यायमें केवल चार ही श्लोक हैं। विषय वही है जो साधारणतया

धर्मशास्त्रोंमें होते हैं, शेष पाराशरादि स्मृतियोंमें जो अध्याय और विषय हैं वह इस संग्रहमें ठीक ही मिलते हैं। हम अब नीचे उसी संग्रहके अनुसार विषय-सूची देते हैं—

अत्रि-स्मृति

अत्रिस्मृतिका विषयसार यह है—

लोगोंके हितके लिए मुनिजनोंका अत्रिऋषिसे प्रश्न, ऋषिका स्मृति नामक धर्म-शास्त्रको बनाना, इसके श्रवणपठनका फल।

स्ववर्णके अनुसार कर्म करनेसे लोकप्रियता होती है, चारों वर्णोंका कर्म और उसकी उपजीविकाका विचार।

ब्राह्मणादिको पतित करनेवाली क्रियाका कथन।

क्षत्रियके कर्मका निरूपण, मलशुद्धिका कथन, ब्राह्मणोंका लक्षण।

इष्ट, पूर्त, यम, नियमादिका वर्णन।

पुत्रकी प्रशंसा।

प्रमादसे या आलस्यसे सन्ध्योल्लङ्घनमें प्रायश्चित्त।

जूठा आदि भोजन करनेमें प्रायश्चित्त।

मुर्दा पड़नेसे अपवित्र गृहकी शुद्धि।

सूतक निर्णय।

परिवेत्ता और परिवित्त इनके दोष कथन।

चान्द्रायण कृच्छ्रातिकृच्छ्रका कथन।

स्त्री और शूद्रोंको पतित करनेवाले कर्मका कथन।

भोजनमें निषिद्धपात्र।

छः भिक्षुक होते हैं।

धोबी आदिके अन्न-भक्षणमें प्रायश्चित्त और चांडाल आदिके अन्न-भक्षणमें प्रायश्चित्त।

स्त्रियोंको प्रतिमास रज निकलनेसे सदा शुचित्वका कथन।

मदिरासे छुए घड़ेमेंसे जलपानमें प्रायश्चित्त। जूता, विष्ठा आदिसे दूषित कूपका जल पीनेसे प्रायश्चित्त।

गोवधका प्रायश्चित्त।

दूषित जलके पानमें प्रायश्चित्त।

स्पर्शास्पर्श-दोषका प्रायश्चित्त।

शूद्रके यहाँका जल पीनेमें प्रायश्चित्त।

पतितका अन्न खानेमें ब्राह्मणको प्रायश्चित्त।

पशुवेश्यागमन करनेमें प्रायश्चित्त।

रजस्वला स्त्रीकी कुत्ता आदिके स्पर्शसे शुद्धि।

मूर्ख ब्राह्मणके मारनेमें प्रायश्चित्त।

बिल्ली आदिसे उच्छिष्ट अन्नके खानेमें प्रायश्चित्त और ऊँट आदिकी गाड़ीपर बैठनेमें प्रायश्चित्त।

अभक्ष्य अन्नके भक्षणसे प्रायश्चित्त ।

अमङ्गल पदार्थ सेवनका निषेध, मौन करनेके स्थान और उसका फल ।

बहुविध दानोंका फल ।

दान देनेमें योग्य ब्राह्मण ।

श्राद्धकाल, श्राद्धदानकी प्रशंसा और उसका फल ।

दशविध ब्राह्मणोंका निरूपण ।

दान देनेमें अयोग्य ब्राह्मणोंका कथन ।

अत्रिजीकी बनायी हुई स्मृतिके श्रवण पठनका फल ।

विष्णु-स्मृति

विष्णुस्मृतिका विषयसार यह है—

१—कलाप नगरमें बसनेवाले ऋषियोंका विष्णुजीसे धर्मोंके विषे प्रश्न करना, गर्भाधानसे द्विजसंस्कारोंके कालका विचार, उपवीतके अनन्तर ब्रह्मचारीके सामान्य नियम ।

२—गृहस्थियोंके उत्तम धर्मोंका कथन ।

३—वानप्रस्थके धर्मोंका निरूपण ।

४—संन्यासीके नियमोंका संक्षेपसे कथन ।

५—संक्षेपसे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके धर्मोंका कथन ।

हारीत-स्मृति

हारित-स्मृतिका विषयसार यह है—

१—वर्णाश्रमोंके धर्म जाननेके लिए मुनियोंका हारीत नामक ऋषिसे प्रश्न करना और उनसे ब्राह्मणके आचारका कथन ।

२—क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके धर्मका कथन ।

३—यज्ञोपवीत होनेके उपरान्त ब्रह्मचारीके नियम ।

४—ब्राह्म विवाहसे स्त्रीका स्वीकार करनेपर आचरने योग्य धर्मका निरूपण ।

५—वानप्रस्थ धर्मोंका निरूपण ।

६—चौथे आश्रम संन्यासके धर्मका कथन ।

७—संक्षेपसे योगशास्त्रका सार कथन ।

औशनसी-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

जाति और वृत्तिका विधान और अनुलोम-प्रतिलोम उत्पन्न हुई जातियोंका विचार ।

आङ्गिरस-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

चारों वर्णोंके ग्रहस्थ आदि आश्रम धर्मोंमें प्रायश्चित्त विधिका निरूपण ।

यम-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

महापाप तथा उपपातकादि दोष निवृत्तिके लिए संक्षेपसे प्रायश्चित्त विधिका निरूपण।

आपस्तम्ब-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

१—बालक गौ आदिके पालन करनेमें असावधानीसे उनको विपत्ति आ जाय तो इस विषयमें प्रायश्चित्त वर्णन।

२—जलशोधनका विचार।

३—बिना जाने हुए अन्त्यजके घरमें निवास हो जानेपर विदित होय तो उस गृहपतिको करने योग्य प्रायश्चित्तका कथन तथा बाल वृद्ध आदिके पापके प्रायश्चित्तकी व्यवस्था।

४—चाण्डालके कुएं अथवा उसके बर्तनमें अज्ञानसे जलपान करनेमें चारों वर्णोंको प्रायश्चित्त कथन।

५—ब्राह्मण चाण्डालको स्पर्श कर जलपानादि करे उसका प्रायश्चित्त तथा उच्छिष्ट अन्न खानेमें प्रायश्चित्त।

६—नील वस्त्रके धारण आदिमें प्रायश्चित्त।

७—रजस्वला स्त्रीकी शुद्धिकी विचारणा।

८—काँसा आदिके पात्रोंकी शुद्धि और शूद्रान्न भक्षणका प्रायश्चित्त।

९—भोजन करते करते अधोवायु वा मलत्याग हो उसकी शुद्धि तथा भक्षणके, चाटनेके, पीनेके और चूसनेके अयोग्य पदार्थके सेवनमें प्रायश्चित्त।

१०—क्रोधरहित क्षमाशील पुरुषको ही मोक्षलाभ होता है।

संवर्त-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

यज्ञोपवीत होनेपर ब्रह्मचारीका अवश्य कर्तव्य।

विवाहके अनन्तर गृहस्थके आचारका निरूपण।

फलके साथ नानाविध दानोंका वर्णन।

वानप्रस्थ और संन्यासाश्रमके धर्मोंका निरूपण।

ब्रह्महत्या आदि पातकोंका प्रायश्चित्त।

कात्यायन-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

१—यज्ञोपवीत बनानेकी विधि और वृद्धिश्राद्धमें पूजने योग्य सोलह मातृकाओंके नामका कथन।

२—वृद्धि वा नान्दीमुख श्राद्धमें जो विशेष हो उसका कथन।

३—वृद्धिश्राद्धका विधान ।
४—वृद्धिश्राद्धमें पिण्डदानकी विधि ।
५—वृद्धिश्राद्ध किये बिना गर्भाधानादि संस्कारोंकी साङ्गता नहीं होती ।
६—अग्निके आधानकालका निरूपण ।
७—दोनों अरणियोंका विचार ।
८—दोनों अरणियोंको घिसनेसे अग्निकी उत्पत्ति होती है उसकी विधि ।
९—होमकालका कथन तथा बिना प्रदीप्त हुए अग्निमें हवन करनेसे दोष ।
१०—स्नानयोग्य जलोंका विचार ।
११—सन्ध्योपासनकी विधिका निरूपण ।
१२—पितरोंका तर्पण ।
१३—पाँच यज्ञोंका विचार ।
१४—वलिदानका विचार और अग्निकी प्रार्थना ।
१५—ब्रह्माको दक्षिणा देनेका प्रमाण तथा आज्यस्थाली आदिके प्रमाणका कथन ।
१६—अन्वाहार्य आग्रहायणादि पितृयज्ञोंका कथन ।
१७—पितृयज्ञ विधिका निरूपण ।
१८—दर्शपौर्णमासादिमें होमादिका विचार ।
१९—पति प्रवासमें गया हो तो अग्निसेवामें स्त्रीका अधिकार तथा स्त्रीकी प्रशंसा और अग्निहोत्रीकी प्रशंसा ।
२०—पुनराधान अग्नि समारोपणका विचार ।
२१—गृहस्थके मरणकी विधि ।
२२—शवस्पर्श करनेवाले चिताको देखकर किस प्रकार पीछे लौटें ।
२३—अग्निहोत्री विदेशमें मर जाय तो उसकी व्यवस्था ।
२४—सूतकमें त्याज्य कर्मोंका कथन और षोडश श्राद्धोंका विधान ।
२५—ब्रह्मदण्डादिसे युक्तोंके विषयमें कर्तव्य-विधि ।
२६—वृषोत्सर्ग आदिमें समशनीय चरुके निर्वाणका प्रकार कथन ।
२७—अन्वाहार्यकी विधि ।
२८—अध्ययनमें अनध्यायोंका विचार ।
२९—पशुके स्रोतोंको दर्भ कूर्चादिसे धोनेकी विधि ।

वृहस्पति-स्मृति

इसका विषयसार यह है—
भूमिदानकी प्रशंसा ।
गयाश्राद्ध और वृषोत्सर्गकी पुत्रको अवश्य कर्तव्यता ।
स्वदत्त वा परदत्त भूमिका ब्राह्मणसे अपहार करनेमें दोषोंका कथन ।
ब्रह्मस्वहरणसे सर्वस्वका नाश ।

सत्पात्रको सुवर्णादिके दानसे सर्व पातकोंका नाश ।

वापी कूपादिका जीर्णोद्धार करनेका फल ।

व्रतमें फल-मूलादिके भक्षणसे महापुण्य-लाभ ।

पाराशर-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

१—षट्कर्म करनेसे ब्राह्मणोंको सौख्य लाभ, अतिथि-सत्कारका फल और सामान्यतासे वर्णचतुष्टयका कर्म ।

२—कलियुगमें गृहस्थके आवश्यक कर्मोंका साधारणतासे कथन ।

३—जनन-मरणके अशौचकी शुद्धिका कथन ।

४—अति मानसे वा अति क्रोधादिसे मरे हुए स्त्री-पुरुषोंका दाह आदि करनेमें प्रायश्चित्त, तप्तकृच्छ्रका लक्षण और परिवेदनादि दोषका विचार ।

५—भेड़िया, कुत्ते आदिसे काटनेमें शुद्धि, चाण्डालादिसे मारे हुए ब्राह्मणके देहका स्पर्श करनेमें प्रायश्चित्त और अग्निहोत्रीका देशान्तरमें मरण हो तो उसकी क्रियाका विचार ।

६—प्राणियोंकी हिंसाका प्रायश्चित्त कथन ।

७—काठ आदिके बनाये पात्रोंकी शुद्धि और रजस्वला स्त्री परस्पर स्पर्श करें तो उसका प्रायश्चित्त ।

८—अकामसे बन्धनादिमें गौ मर जाय तो उसका प्रायश्चित्त ।

९—भली भाँति गौकी रक्षा करनेकी इच्छासे बाँधने या रोकनेमें गो-हत्या हो जानेपर प्रायश्चित्त ।

१०—अगम्या-गमनका चारों वर्णोंको योग्य प्रायश्चित्त ।

११—अशुद्ध-वीर्य आदि पदार्थके भक्षणमें प्रायश्चित्त और शूद्रान्न भक्षणमें ब्राह्मणको प्रायश्चित्त ।

१२—विष्ठा-मूत्रादि-भक्षणमें प्रायश्चित्त और ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त ।

व्यास-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

१—सोलह संस्कारोंके नाम कथन और संक्षेपसे ब्रह्मचारीका धर्म ।

२—गृहस्थाश्रम-धर्मका निरूपण, स्त्रियोंके धर्म और पतिव्रता स्त्रीका परित्याग करनेमें प्रायश्चित्त ।

३—गृहस्थमात्रके नित्य नैमित्तिक काम्य कर्मोंका कथन

४—सब आश्रमोंमें गृहस्थाश्रमकी प्रशंसा, और दानधर्म ।

शङ्ख-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

१—सामान्य रीतिसे चारों वर्णोंके कर्मका कथन ।

२—निषेक आदि संस्कारोंके कालका निरूपण ।

३—यज्ञोपवीत करनेपर ब्रह्मचारीको अवश्य प्रतिपालनीय नियमोंका निरूपण ।

४—ब्राह्म आदि आठ प्रकारके विवाहोंका निरूपण और विवाह करने योग्य स्त्री-का कथन ।

५—पाँच हत्याके दोषोंकी निवृत्तिके लिये पञ्चमहायज्ञोंका कथन, अग्निकी सेवा और अतिथिकी पूजासे ही गृह-धर्मकी सफलता ।

६—वानप्रस्थ आश्रमके धर्मोंका निरूपण ।

७—सन्यासाश्रमका निरूपण, अष्टाङ्गयोग कथन और ध्यानयोगका निरूपण ।

८—नित्य नैमित्तिकादि भेदसे षडविध स्नानका कथन ।

९—क्रिया स्नानकी विधि ।

१०—शुभकारक आचमनकी विधि ।

११—अघमर्षण आदि सूक्तोंके जपका फल ।

१२—गायत्री मन्त्र जपका फल ।

१३—तर्पण विधिका कथन ।

१४—पितृकार्यमें ब्राह्मणकी परीक्षा, पंक्तिपावनों पंक्तिदूषकोंका कथन, श्राद्धके योग्य देशकालोंका निरूपण ।

१५—जन्म मरण आशौचमें शुद्धि ।

१६—पात्रोंकी शुद्धि और मूत्रपुरीषसे शुद्धि ।

१७—ब्रह्महत्यादि पातकोंकी शुद्धिके लिए प्रायश्चित्त विधि ।

१८—अघमर्षण प्राजापत्य आदि व्रतोंकी व्याख्या ।

लिखित-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

द्विजके कर्तव्य, इष्टापूर्तका कथन, श्राद्धके देश-कालका कथन, सामान्यरीतिसे द्विजाचारका कथन और प्रायश्चित्तकी विधि ।

दक्ष-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

१—उपनयनके पूर्व आठ वर्षतक द्विज बालकको भक्ष्याभक्ष्यका दोष नहीं, आश्रम स्वीकार करनेपर अविहित आचारसे दोष, समयपर आश्रम स्वीकार न करनेसे दोष और आश्रम लक्षणका निरूपण ।

२—ब्राह्मणके प्रतिदिन करने योग्य कर्मोंका निरूपण ।

३—गृहस्थके अमृत ईषद्दान कर्म विकर्मादिका निरूपण ।

४—वशवर्तिनी स्त्रीसे ही गृहस्थके धर्मार्थ कामकी व्यवस्था होती है ।

५—शौच अशौचका विचार ।

६—जन्म मृत्युके निमित्त अशौचका विचार।

७—षडङ्ग योगका निरूपण।

गौतम-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

१—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके उपनयनका काल, मौंजी दण्डादिका विचार।

२—यज्ञोपवीतके पहले शौचाचारका नियम नहीं, उसके ऊपर पालनीय नियमोंका वर्णन।

३—नैष्ठिक ब्रह्मचारीके धर्मका कथन।

४—अनुलोम प्रतिलोमसे उत्पन्नोंकी जातिका निरूपण।

५—विवाहके अनन्तर गृहस्थको आचरने योग्य धर्मोंका कथन।

६—अभिवादनके विषयमें विचार।

७—आपत्कालमें ब्राह्मणादिके धर्मोंका कथन।

८—अपराध होनेपर भी संस्कारयुक्त ब्राह्मणको वध-बन्धनादि दण्डका निषेध और सब सस्कारोंसे युक्त द्विजका मोक्षमें अधिकार होना।

९—गृहस्थद्वारा पालनीय व्रतोंका कथन।

१०—चारों वर्णोंकी उपजीविकाका विचार।

११—राजाके आचारका निरूपण।

१२—शूद्रके अपराधी होनेपर उसके विषयमें दण्डका विचार।

१३—साक्षीके प्रसङ्गसे सत्यासत्यका विचार।

१४—चारा वर्णोंके अशौचका निरूपण।

१५—दर्श आदि सर्व श्राद्धोंका कथन।

१६—अध्ययनमें अनध्यायोंका विचार।

१७—ब्राह्मणको शुद्धान्न भोजन और शुद्ध प्रतिग्रहका कथन।

१८—स्त्री-धर्मोंका वर्णन।

१९—निषिद्ध आचार करनेसे दोष, तन्निवृत्तिके लिए प्रायश्चित्तका कथन।

२०—पापसे नरकयातना भोगकर उत्पन्न हुए मनुष्यके शरीरचिह्नोंका कथन।

२१—पङ्क्ति-बाह्य-द्विजातिका निरूपण।

२२—पतितोंकी गणना।

२३—ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त।

२४—मदिरापान आदिका प्रायश्चित्त।

२५—रहस्यपातकोंका प्रायश्चित्त।

२६—जिसके व्रतका भङ्ग हुआ हो ऐसे अवकीर्णिका व्रत पूर्ण होने योग्य कर्मका कथन।

२७—कृच्छ्रनामक व्रतका विवरण।

२८—चान्द्रायण व्रत विधिका वर्णन।

२९—द्रव्यविभागके अधिकारियोंका विवरण।

शातातप-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

१—इहलोकमें सम्पादित दुष्कर्मसे नरकयातना भोगके अनन्तर भूमिपर उत्पन्न हुए प्राणियोंके देहचिह्नका कथन ।

२—ब्रह्महत्या आदि करनेसे नरकयातना भोगनेपर यहाँ कुष्ठी होता है उसका प्रायश्चित्त और गोहत्यादिका प्रायश्चित्त ।

३—सुरापानादि पातकोंका प्रायश्चित्त ।

४—कुलघ्न आदिकी शुद्धिके लिए प्रायश्चित्त ।

५—मातृगमन आदि करनेवालेको प्रायश्चित्त ।

६—घोड़ा, शूकर, सींगवाले पशु आदिसे हत गतिहीनके उद्धारके लिए प्रायश्चित्तका कथन ।

वसिष्ठ-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

१—मनुष्योंको मुक्तिके लिए धर्म-जिज्ञासा, धर्माचरणमें आर्यावर्त्त देशका महत्त्व-कथन और ब्राह्मणकी प्रशंसा ।

२—वर्णत्रयको द्विजत्व कथन, अध्ययनकी आवश्यकताका निरूपण ।

३—वेदाध्ययन न करनेवाला द्विज शूद्र समान होता है, आततायी ब्राह्मणका भी वध निन्दित है, धर्म-कथनके अधिकारी, आचमनविधि और भूमि आदिकी शुद्धताका कथन ।

४—संस्कारके विशेषसे चार वर्णोंका विभाग, देवता और अतिथिकी पूजामें पशुवधका दोष नहीं है, इसका और अशौचका विचार ।

५—स्त्रियोंके पराधीनत्वका कथन और रजस्वला स्त्रियोंके नियमका कथन ।

६—आचारकी प्रशंसा और सामान्यतासे ब्राह्मणके आचरणका कथन ।

७—संक्षेपसे ब्रह्मचारीके कर्त्तव्यका कथन ।

८—विवाह करने योग्य स्त्रीका निरूपण और विवाहके अनन्तर पालनीय धर्मोंका निरूपण ।

९—वानप्रस्थाश्रमका संक्षेपसे धर्म कथन ।

१०—संन्यासीके धर्मोंका निरूपण ।

११—षट्कर्मरत ब्राह्मणको ब्रह्मचारी, यति और अतिथिसे अन्न लेनेका विचार, श्राद्धका विचार, वर्णत्रयको योग्य दण्ड, अजिन-वस्त्र भिक्षा और उपनयनकालका विचार ।

१२—स्नातकके व्रतोंका कथन ।

१३—स्वाध्याय और उपाकर्मका कथन ।

१४—भक्षणमें योग्य अयोग्य वस्तुओंका विचार ।

१५—पुत्रके दान प्रतिग्रहका विचार ।

१६—राजव्यवहार साक्षि आदिका विचार ।

६—जन्म मृत्युके निमित्त अशौचका विचार।

७—षडङ्ग योगका निरूपण।

गौतम-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

१—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके उपनयनका काल, मौंजी दण्डादिका विचार।

२—यज्ञोपवीतके पहले शौचाचारका नियम नहीं, उसके ऊपर पालनीय नियमोंका वर्णन।

३—नैष्ठिक ब्रह्मचारीके धर्मका कथन।

४—अनुलोम प्रतिलोमसे उत्पन्नोंकी जातिका निरूपण।

५—विवाहके अनन्तर गृहस्थको आचरने योग्य धर्मोंका कथन।

६—अभिवादनके विषयमें विचार।

७—आपत्कालमें ब्राह्मणादिके धर्मोंका कथन।

८—अपराध होनेपर भी संस्कारयुक्त ब्राह्मणको वध-बन्धनादि दण्डका निषेध और सब संस्कारोंसे युक्त द्विजका मोक्षमें अधिकार होना।

९—गृहस्थद्वारा पालनीय व्रतोंका कथन।

१०—चारों वर्णोंकी उपजीविकाका विचार।

११—राजाके आचारका निरूपण।

१२—शूद्रके अपराधी होनेपर उसके विषयमें दण्डका विचार।

१३—साक्षीके प्रसङ्गसे सत्यासत्यका विचार।

१४—चारा वर्णोंके अशौचका निरूपण।

१५—दर्श आदि सर्व श्राद्धोंका कथन।

१६—अध्ययनमें अनध्यायोंका विचार।

१७—ब्राह्मणको शुद्धान्न भोजन और शुद्ध प्रतिग्रहका कथन।

१८—स्त्री-धर्मोंका वर्णन।

१९—निषिद्ध आचार करनेसे दोष, तन्निवृत्तिके लिए प्रायश्चित्तका कथन।

२०—पापसे नरकयातना भोगकर उत्पन्न हुए मनुष्यके शरीरचिह्नोंका कथन।

२१—पङ्क्ति बाह्य-द्विजातिका निरूपण।

२२—पतितोंकी गणना।

२३—ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त।

२४—मदिरापान आदिका प्रायश्चित्त।

२५—रहस्यपातकोंका प्रायश्चित्त।

२६—जिसके व्रतका भङ्ग हुआ हो ऐसे अवकीर्णिका व्रत पूर्ण होने योग्य कर्मका कथन।

२७—कृच्छ्रनामक व्रतका विवरण।

२८—चान्द्रायण व्रत विधिका वर्णन।

२९—द्रव्यविभागके अधिकारियोंका विवरण।

शातातप-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

१—इहलोकमें सम्पादित दुष्कर्मसे नरकयातना भोगके अनन्तर भूमिपर उत्पन्न हुए प्राणियोंके देहचिह्नका कथन ।

२—ब्रह्महत्या आदि करनेसे नरकयातना भोगनेपर यहाँ कुष्ठी होता है उसका प्रायश्चित्त और गोहत्यादिका प्रायश्चित्त ।

३—सुरापानादि पातकोंका प्रायश्चित्त ।

४—कुलघ्न आदिकी शुद्धिके लिए प्रायश्चित्त ।

५—मातृगमन आदि करनेवालेको प्रायश्चित्त ।

६—घोड़ा, शूकर, सींगवाले पशु आदिसे हत गतिहीनके उद्धारके लिए प्रायश्चित्तका कथन ।

वसिष्ठ-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

१—मनुष्योंको मुक्तिके लिए धर्म-जिज्ञासा, धर्माचरणमें आर्यावर्त्त देशका महत्त्व-कथन और ब्राह्मणकी प्रशंसा ।

२—वर्णत्रयको द्विजत्व कथन, अध्ययनकी आवश्यकताका निरूपण ।

३—वेदाध्ययन न करनेवाला द्विज शूद्र समान होता है, आततायी ब्राह्मणका भी वध निन्दित है, धर्म-कथनके अधिकारी, आचमनविधि और भूमि आदिकी शुद्धताका कथन ।

४—संस्कारके विशेषसे चार वर्णोंका विभाग, देवता और अतिथिकी पूजामें पशुवधका दोष नहीं है, इसका और अशौचका विचार ।

५—स्त्रियोंके पराधीनत्वका कथन और रजस्वला स्त्रियोंके नियमका कथन ।

६—आचारकी प्रशंसा और सामान्यतासे ब्राह्मणके आचरणका कथन ।

७—संक्षेपसे ब्रह्मचारीके कर्त्तव्यका कथन ।

८—विवाह करने योग्य स्त्रीका निरूपण और विवाहके अनन्तर पालनीय धर्मोंका निरूपण ।

९—वानप्रस्थाश्रमका संक्षेपसे धर्म कथन ।

१०—संन्यासीके धर्मोंका निरूपण ।

११—षट्कर्मरत ब्राह्मणको ब्रह्मचारी, यति और अतिथिसे अन्न लेनेका विचार, श्राद्धका विचार, वर्णत्रयको योग्य दण्ड, अजिन-वस्त्र भिक्षा और उपनयनकालका विचार ।

१२—स्नातकके व्रतोंका कथन ।

१३—स्वाध्याय और उपाकर्मका कथन ।

१४—भक्षणमें योग्य अयोग्य वस्तुओंका विचार ।

१५—पुत्रके दान प्रतिग्रहका विचार ।

१६—राजव्यवहार साक्षि आदिका विचार ।

६—जन्म मृत्युके निमित्त अशौचका विचार ।

७—षडङ्ग योगका निरूपण ।

गौतम-स्मृति

इसका विषयसार यह है—

१—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके उपनयनका काल, मौंजी दण्डादिका विचार ।

२—यज्ञोपवीतके पहले शौचाचारका नियम नहीं, उसके ऊपर पालनीय नियमोंका वर्णन ।

३—नैष्ठिक ब्रह्मचारीके धर्मका कथन ।

४—अनुलोम प्रतिलोमसे उत्पन्नोंकी जातिका निरूपण ।

५—विवाहके अनन्तर गृहस्थको आचरने योग्य धर्मोंका कथन ।

६—अभिवादनके विषयमें विचार ।

७—आपत्कालमें ब्राह्मणादिके धर्मोंका कथन ।

८—अपराध होनेपर भी संस्कारयुक्त ब्राह्मणको वध-बन्धनादि दण्डका निषेध और सब संस्कारोंसे युक्त द्विजका मोक्षमें अधिकार होना ।

९—गृहस्थद्वारा पालनीय व्रतोंका कथन ।

१०—चारों वर्णोंकी उपजीविकाका विचार ।

११—राजाके आचारका निरूपण ।

१२—शूद्रके अपराधी होनेपर उसके विषयमें दण्डका विचार ।

१३—साक्षीके प्रसङ्गसे सत्यासत्यका विचार ।

१४—चारा वर्णोंके अशौचका निरूपण ।

१५—दर्श आदि सर्व श्राद्धोंका कथन ।

१६—अध्ययनमें अनध्यायोंका विचार ।

१७—ब्राह्मणको शुद्धान्न भोजन और शुद्ध प्रतिग्रहका कथन ।

१८—स्त्री-धर्मोंका वर्णन ।

१९—निषिद्ध आचार करनेसे दोष, तन्निवृत्तिके लिए प्रायश्चित्तका कथन ।

२०—पापसे नरकयातना भोगकर उत्पन्न हुए मनुष्यके शरीरचिह्नोंका कथन ।

२१—पंक्ति बाह्य-द्विजातिका निरूपण ।

२२—पतितोंकी गणना ।

२३—ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त ।

२४—मदिरापान आदिका प्रायश्चित्त ।

२५—रहस्यपातकोंका प्रायश्चित्त ।

२६—जिसके व्रतका भङ्ग हुआ हो ऐसे अवकीर्णिका व्रत पूर्ण होने योग्य कर्मका कथन ।

२७—कृच्छ्रनामक व्रतका विवरण ।

२८—चान्द्रायण व्रत विधिका वर्णन ।

२९—द्रव्यविभागके अधिकारियोंका विवरण ।

१७—पुत्र होनेसे मनुष्य पिताके ऋणसे मुक्त होता है इससे बारह पुत्रोंका कथन।

१८—प्रतिलोमतासे उत्पन्न हुए चाण्डाल आदिका कथन और शूद्रको धर्मोपदेश करनेमें अनधिकारका विचार।

१९—संक्षेपसे राजधर्मका कथन।

२०—ब्रह्महत्या आदि पातकोंका प्रायश्चित्त विधि।

२१—क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रको ब्राह्मण-स्त्रीगमनमें प्रायश्चित्त।

स्मृतिकौस्तुभ

इस ग्रन्थका विषयानुक्रम यह है—

उपसंहार

इन सभी स्मृति-ग्रन्थोंमें सबसे प्राचीन मनुस्मृति ही समझी जाती है। इसका मूल-रूप क्या था, कोई निश्चयपूर्वक नहीं जानता। महाभारतके शान्तिपर्वके ५९वें अध्यायमें लिखा है कि सतयुगमें बहुत कालतक न राजा था, न राज्य था, न दण्ड था, न दण्ड देने-वाला था। प्रजा धर्म्मानुगामिनी थी। इस शान्तिकी दशासे लोग दीर्घकालतक रहते-रहते ऊब गये। तभी काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, राग, द्वेष, आदि बढ़े और लोग विषयी हो गये। लड़ाइयाँ होने लगीं। कर्त्तव्याकर्त्तव्य-ज्ञान नष्ट हो गये। "राखै सोइ जेहिते बनै, जेहि बल होइ सो लेइ" वा "जिसकी लाठी उसकी भैंस"वाली नीति चलने लगी। ऋषियों और देवोंने ब्रह्माके पास जाकर दुहाई दी। ब्रह्माजीने इसपर एक लाख अध्यायोंवाला दण्डनीति नामका एक नीतिशास्त्र रच डाला।

इस दण्डनीतिमें अर्थ, धर्म्म, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थोंका विस्तारसे वर्णन किया। "वणिकोंके धनकी रक्षा, तपस्वियोंकी बढ़ती, चोरोंका नाश," इत्यादिके लिये त्रिवर्ग, आत्मा, देश, काल, उपाय, प्रयोजन और सहाय, नीतिसे उपजे वे षड्वर्ग, कर्म्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, कृषि, वाणिज्य, जीविका और विशाल दण्डनीति, ये सभी विषय ब्रह्मारचित एक लाख अध्यायों-में विस्तारसे वर्णित हैं। शान्तिपर्वमें दी हुई विषयसूची इस प्रकार है।

"हे राजन् ! सेवकोंकी रक्षा, ब्राह्मण और राजपुत्रोंके लक्षण, अनेक उपायके सहित जासूसोंको नियुक्त करना, ब्रह्मचारी आदि वेषधारी गुप्तचरोंको पृथक्-पृथक् रूपसे नियत करना और साम, दान, भेद, दण्ड और उपेक्षा ये सब विषय उस शास्त्रमें विस्तारपूर्वक वर्णित हुए हैं। मन्त्र, भेदार्थ, मन्त्रविभ्रम और सिद्धि असिद्धिके फल भी उसमें कहे गये हैं। भययुक्त, सत्कार-सहित और धनग्रहणरूपी उत्तम, मध्यम और अधम सन्धि भी उसमें वर्णित है। चतुर्व्विध यात्राकाल, त्रिवर्ग विस्तार, धर्म्मयुक्त विजय, अर्थ-विजय और अन्याय-पूर्व्वक कर्म्मोंसे आसुरविजय पूर्ण रीतिसे उस शास्त्रमें वर्णित हैं। उत्तम, मध्यम और अधम भेदसे सेवक, राष्ट्र, किला, बल और कोष इन पञ्चवर्गोंके सब लक्षण वर्णित हुए हैं। प्रकाश्य और गुप्त दोनों भांतिकी सेना उसमें कही गयी हैं, और दोनोंका अष्टविध विस्तार वर्णित हुआ है। हे पाण्डुनन्दन ! रथ, हाथी, घोड़े, पत्ति, विष्टि, नाविक, भार उठानेवाले दूत और उप-देष्टा ये आठ प्रकाश्य बलके अङ्ग हैं। वस्त्रादिक, अन्न आदि भोजनकी वस्तु और अभिचारिक कार्य्योंमें जङ्गम अजङ्गम अर्थात् विषादिक चूर्ण योगरूप दण्ड वर्णित है। हे भरतर्षभ ! उस शास्त्रमें मित्र, शत्रु और उदासीन पुरुषोंके लक्षण भी वर्णित हुए हैं। ग्रह नक्षत्र आदिके मार्गगुण, भूमिगुण, मन्त्र और यन्त्रोंसे आत्मरक्षा, धैर्य्य और रथ-निर्माण आदि कार्य्योंको

अवलोकन करना, मनुष्य, हाथी और घोड़ोंके बलपुष्टिके अनेक भांतिके यत्न, योग, नाना भांतिके व्यूह, विचित्र युद्ध-कौशल, धूमकेतु प्रभृति उत्पात, उल्कापात, शस्त्रोंको तीक्ष्ण करनेकी विधि और उनके चलाने तथा निवारण करनेकी विधि पूर्ण रीतिसे वर्णित है। हे पाण्डुपुत्र! सब बलोंकी बढ़ती, क्षय, और पीड़ा, आपत्कालमें सेनाके गुण दोषोंका ज्ञान, नगारे आदि बाजोंके शब्द सहित यात्राकालमें गमन करनेका विधान, ध्वजा-पताकासे युक्त रथ आदि वाहन, मन्त्रादिकोंसे शत्रुओंको मोहित करनेकी विधि इत्यादि ये सब विषय उस शास्त्रमें वर्णित हुए हैं। चोर, डकैत, जङ्गली भील-किरात, अग्नि, विष और कृत्रिम पत्र बनानेवाले पुरुषोंसे बलवान् शत्रुओंमें भेद कराना, खेती कटवाना मन्त्र और ओषधियोंके प्रयोगसे हाथी घोड़ोंको दूषित करना, प्रजाको भय दिखाना, अनुयायियोंका आदर और सबके मनमें विश्वास उत्पन्न कराके शत्रुराज्यको पीड़ित करनेकी विधि उस शास्त्रमें विशेष रूपसे वर्णन की गयी है। सप्ताङ्ग राज्यकी बढ़ती, ह्रास, शान्ति-स्थापन, राज्यको बढ़ाना, बलवान् पुरुषोंको संग्रह करना इत्यादि ये सब विषय उसमें वर्णित हैं। शत्रुके निकटमें रहनेवाले मित्रोंमें भेद बलवान् शत्रुको यत्नपूर्वक पीड़ित करना, सूक्ष्म-विचार, खलोंका नाश, मल्लयुद्ध, शस्त्र चलाना, दान, धनसंग्रह, भूखोंको भोजन, सेवकोंके कार्य्योंका निश्चय, समयके अनुसार धनव्यय, मृगया आदि व्यसनोंमें अनिच्छा, सावधानता आदि राजगुण, शूरता, वीरता और धीरता आदि सेनापतिके गुण और त्रिवर्गके गुण दोष तथा कारण उस शास्त्रमें विस्तारपूर्वक वर्णित हुए हैं। नाना भांतिकी दुरभिसन्धि, अनुयायी और सेवकोंकी यथायोग्य वृत्ति, सब भांतिके प्रमादोंकी शक्ति, तत्त्व, निवारणविधि, अप्राप्त अर्थका लाभ, प्राप्त अर्थकी बढ़ती और बढ़ाये हुए धनको विधिपूर्व्वक सत्पात्रोंको दान करना, यज्ञादि धर्म्म कर्म्मोंमें दान, काम्यदान और विपद उपस्थित होनेपर धन दान करनेकी विधि भी उस लक्ष श्लोकवाले शास्त्रमें वर्णित हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! लक्ष अध्यायवाले शास्त्रके बीच क्रोध और कामसे उत्पन्न हुए दस प्रकारके व्यसनोंका भी वर्णन है।"

"हे भरतर्षभ! इसके बीच पितामह ब्रह्माने कहा है, जूआ, मृगया, सुरापान और स्त्रियोंमें अत्यन्त आसक्ति ये चारों व्यसन कामसे उत्पन्न होते हैं। कठोर वचन, क्रुद्ध स्वभाव, कठोर दण्ड, निग्रह, क्रोधके वशमें होकर आत्महत्या करनी और अर्थदूषण ये छःहों व्यसन क्रोधसे प्रकट होते हैं। उस शास्त्रमें यन्त्र बनानेके निमित्त नाना भांतिके कौशल और उसकी क्रियाका वर्णन है। शत्रुओंको पीड़ित करना, युद्ध-मार्गोंको ठीक करना, कांटोंसे युक्त लताओं-का नाश, कृषिकर्म्मकी रक्षा, आवश्यकीय वस्तुओंका संग्रह, वर्म्म और वर्म्म-निर्माणकी युक्तियोंका भी उस शास्त्रमें वर्णन हुआ है। हे युधिष्ठिर! उसमें ढोल, मृदङ्ग, शङ्ख, भेरी आदि बाजोंके लक्षण और मणि, पशु, भूमि, वस्त्र, दासी और सुवर्ण आदि छः प्रकारकी वस्तुओंका संग्रह, रक्षा, दान, साधुओंका पूजन, पण्डितोंका सत्कार, दान और होमके नियमोंका ज्ञान, सुवर्ण आदि माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श, शरीरको अलंकृत करना, भोजनके नियम और आस्तिकता आदि सम्पूर्ण विषय कहे गये हैं। हे भरतर्षभ! विषय उत्थापित करना, वचनकी सत्यता, सभा और उत्सवोंके बीच वचनकी मधुरता, ध्वजारोहणादिक गृह-कार्य्य, साधारण पुरुष जिन स्थानोंमें बैठते हैं, उन स्थानोंमें प्रत्यक्ष और परोक्षमें जिन

कार्य्योंके अनुष्ठान होते हैं उनका अनुसन्धान, ब्राह्मणोंको अदण्डित करना, युक्तिपूर्व्वक दण्ड-विधि, अनुजीवी और स्वजातिके पुरुषोंके गुण-अनुसार उनकी मर्य्यादा स्थापित करनी, पुर-वासियोंकी रक्षा, और राज्य बढ़ानेकी विधि पूरी रीतिसे उस शास्त्रमें वर्णित है। हे राजेन्द्र ! शत्रु, मित्र और उदासीन प्रत्येकमें चार-चार भेदोंसे द्वादश राजमण्डल विषयक युक्ति, वेद-शास्त्रोंमें कही हुई पवित्रता, बहत्तर प्रकारके शरीर-संस्कार और देश, जाति तथा कुलभेदसे पृथक्-पृथक् धर्म्म भी उसमें कहे गये हैं। हे बहुतसी दक्षिणा देनेवाले ! उसमें धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, अनेक भांतिके उपाय और अर्थलिप्साके विषय सम्पूर्ण रूपसे वर्णित हुए हैं। कोष बढ़ानेकी विधि, कृषि आदि कार्य्य, मायायोग और बँधे हुए स्रोतके जलके समस्त दोष कहे गये हैं। हे राजशार्दूल ! जिन-जिन उपायोंको अवलम्बन करनेसे मनुष्य लोग आर्य्य-पुरुषोंके अवलम्बित मार्गसे विचलित नहीं होते, वे सब विषय पितामहके बनाये हुए नीतिशास्त्रमें वर्णित हैं।"

"भगवान् शिवने सब प्रजाके आयुका समय घटा हुआ जानके पितामहकृत उस महार्थ शास्त्रको संक्षिप्त किया। महातपस्वी ब्राह्मणश्रेष्ठ इन्द्रने दस हजार अध्यायवाले उस वैशालाक्ष नाम नीतिशास्त्रको ग्रहण कर संक्षेप करके पांच हजार अध्याय किया और वह शास्त्र बाहुदन्तक नामसे विख्यात हुआ; हे तात ! वह इस समय बार्हस्पत्य शास्त्र कहके पुकारा जाता है। अत्यन्त बुद्धिमान् योगाचार्य्य महायशस्वी शुक्रने उसे संक्षेप करके एक हजार अध्याय किया। इसी भांति सम्पूर्ण प्राणियोंके आयुष्कालकी अल्पताके अनुसार मह-र्षियोंने अपनी अपनी बुद्धिके प्रभावसे उस शास्त्रको संक्षेप किया।"

एक लाख अध्यायोंवाली "दण्डनीति"के दर्शन देवोंको भी दुर्लभ थे। उसके संक्षिप्त संस्करण "वैशालाक्ष"की जानकारी देवताओंको ही होगी। "बाहुदन्तक" नामका ग्रन्थ जो पांच हजार अध्यायोंका था, भीष्मपितामहके समयमें "बार्हस्पत्यशास्त्र"के नामसे प्रसिद्ध था। शुक्रकी एक हजार अध्यायोंवाली उस समयकी "औशनसी नीति" होगी, जो अब अलभ्य है। सम्भव है कि शुक्रनीति उसीका सार हो। पहले मनुके मानवसूत्र, वसिष्ठसूत्र, विष्णुसूत्र आदि अनेक सूत्र जो ऋषियोंकी रचनाएँ हैं, उसी मूल पैतामह दण्डनीतिके आधारपर रचे गये होंगे। मानवसूत्रका आधार तो कथाओंसे वही दण्डनीति मालूम होती है। यही दण्डनीति उपवेद अर्थवेद वा अर्थशास्त्रका मूलरूप हो तो कोई आश्चर्य्य नहीं, यद्यपि भीष्मने ऐसा स्पष्ट नहीं कहा है। परन्तु महाभारतमें उसकी जो विषयसूची दी हुई है वह ऐसी सर्वग्राही है कि उससे अर्थशास्त्र, राजनीति, समाजशास्त्र, शिल्पविद्या, रसायनादि कोई विज्ञान नहीं बचता।

भारतीय संस्कृतिका अनुशासन किसी कालमें व्यक्ति और समाज दोनोंपर अत्यन्त विस्तारसे, अत्यन्त दृढ़तासे, अत्यन्त गम्भीरतासे चल रहा होगा और उस सर्वग्राही अनु-शासन और संयमसे कोई देश, कोई काल, कोई व्यक्ति बचा नहीं होगा, यह बात इन स्मृ-तियोंसे प्रकट होती है। इनका मूल वेदकी संहिताओंमें और कल्पसूत्रोंमें बीजरूपसे देख पड़ता है। सतयुगके आदिकालके पर-मानवकी पैनी बुद्धि इन्हीं सूत्रोंके सारगर्भ सिद्धान्तोंको जीवनमें उतारे हुए थी। इसीलिये "दण्डनीति" विना ही उनका काम चलता था।

इस धर्म्मशास्त्रके एक अङ्ग अर्थशास्त्रका वर्णन हम उपवेदके प्रकरणमें कर चुके हैं।

तन्त्र-खण्ड

इक्यावनवाँ अध्याय

तन्त्रशास्त्र

यह शास्त्र शिवप्रणीत कहा जाता है। यह तीन भागोंमें विभक्त है—आगम, यामल और मुख्यतन्त्र। वाराही-तन्त्रके अनुसार जिसमें सृष्टि, प्रलय, देवताओंकी पूजा, सब कार्योंके साधन, पुरश्चरण, षट्कर्म्मसाधन और चार प्रकारके ध्यानयोगका वर्णन हो उसे आगम और जिसमें सृष्टितत्त्व, ज्योतिष, नित्यकृत्य, क्रम, सूत्र, वर्णभेद और युगधर्म्मका वर्णन हो उसे यामल कहते हैं और जिसमें सृष्टि, लय, मन्त्रनिर्णय, देवताओंके संस्थान यन्त्र-निर्णय, तीर्थ, आश्रमधर्म्म, कल्प, ज्योतिष संस्थान, व्रत-कथा, शौच और अशौच, स्त्री-पुरुष लक्षण, राजधर्म्म, दानधर्म्म, युगधर्म्म, व्यवहार तथा आध्यात्मिक-विषयोंका वर्णन हो, वह मुख्य तन्त्र कहलाता है। इस शास्त्रका सिद्धान्त है कि कलियुगमें वैदिक-मन्त्रों जपों और यज्ञों आदिका कोई फल नहीं होता। इस युगमें सब प्रकारके कार्योंकी सिद्धिके लिए तन्त्रशास्त्रमें वर्णित मन्त्रों और उपायों आदिसे ही सहायता मिलती है। इस शास्त्रके सिद्धान्त बहुत गुप्त रखे जाते हैं और इसकी शिक्षा लेनेके लिए मनुष्यको पहले दीक्षित होना पड़ता है। आजकल प्रायः मारण, उच्चाटन, वशीकरण आदिके लिये तथा अनेक प्रकारकी सिद्धियों आदिके साधनके लिये ही तन्त्रोक्त-मन्त्रों और क्रियाओंका प्रयोग किया जाता है। यह शास्त्र प्रधानतः शाक्तोंका ही है और इसके मन्त्र प्रायः अर्थहीन और एकाक्षरी हुआ करते हैं। जैसे, ह्रीं, क्लीं, श्रीं, स्थीं, शूं, क्रूं आदि। तान्त्रिकोंका पञ्च मकार—मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन—और चक्रपूजा प्रसिद्ध है। तान्त्रिक सब देवताओंका पूजन करते हैं पर उनकी पूजाका विधान सबसे भिन्न और स्वतन्त्र होता है। चक्रपूजा तथा अन्य अनेक पूजाओंमें तान्त्रिक लोग मद्य, मांस और मत्स्यका बहुत अधिकतासे व्यवहार करते हैं और धोबिन, तेलिन आदि स्त्रियोंको नङ्गी करके उनका पूजन करते हैं। अथर्ववेद-संहितामें भी मारण, मोहन, उच्चाटन और वशीकरण आदिका वर्णन और विधान है। परन्तु कहते हैं कि वैदिक क्रियाओं और अभिचारोंको और यन्त्र-मन्त्रादि विधियोंको महादेवजीने कीलित कर दिया है और भगवती उमाके आग्रहसे कलि-युगके लिए तन्त्रोंकी रचना की है। बौद्ध-ग्रन्थोंमें भी तन्त्र-ग्रन्थ हैं उनका प्रचार चीन और तिब्बतमें है। हिन्दू तान्त्रिक उन्हें उपतन्त्र कहते हैं।

वाराही-तन्त्रसे यह भी पता लगता है कि जैमिनि, कपिल, नारद, गर्ग, पुलस्त्य, भृगु, शुक्र, बृहस्पति आदि ऋषियोंने भी कई उपतन्त्र रचे हैं।

पुराणोंकी तरह तन्त्रोंका भी बड़ा विस्तार है। यदि हम सबकी विषय-सूची इसी तरह अलग-अलग दें जैसी कि पुराणोंकी दे आये हैं, तो प्रस्तुत ग्रन्थका कलेवर अत्यन्त बढ़ जावेगा। इस विषयपर बँगला विश्वकोषमें बड़ा विशद और विस्तृत वर्णन है। सौभाग्यसे हिन्दी विश्व-कोषमें उसका पूरा अनुवाद दिया गया है। यदि हम उसे ही अविकल उद्धृत करें तो सौसे अधिक पृष्ठ लग जाँय। हम यहाँ उसके आवश्यक अवतरण देते हैं। (देखिए हिन्दी विश्व-कोषमें "तन्त्र")

बाराहीतन्त्रके मतसे समस्त तन्त्रके श्लोक देवलोक ब्रह्मलोक और पाताललोकमें ९ लाख तथा भारतमें १ लाख मात्र हैं।

इनमें—"आगमं त्रिविधं प्रोक्तम् चतुर्थमैश्वरम् स्मृतम्।
कल्पश्चतुर्विधः प्रोक्तः आगमो डामरस्तथा॥
यामलश्च तथा तन्त्रं तेषां भेदाः पृथक् पृथक्॥"

आगम तीन प्रकार है, चौथा ऐश्वर है। कल्प भी चार प्रकार है—आगम, डामर, यामल और तन्त्र। महाविश्वसार तन्त्रमें लिखा है—

"चतुः षष्टिश्च तन्त्राणि यामलादीनि पार्वति।
कल्प भेदेन तन्त्राणि कथितानि च यानि च।
पाषण्डमोहनायैव विफलानीह सुन्दरि॥"

यामल आदिको लेकर ६४ तन्त्र विष्णुक्रान्ता भूमिपर फलदायक हैं। कल्पभेदसे जो तन्त्र कहे गये हैं, वे पाषण्ड मोहनके लिए हैं उनसे कुछ फल नहीं होता। महानिर्वाण तन्त्रमें महादेवने कहा है—

"कलिकल्मष दीनानां द्विजातीनां सुरेश्वरि।
मेध्यामेध्या विचाराणां न शुद्धिः श्रौतकर्मणा॥
न संहिताद्यैः स्मृतिभिरिष्टसिद्धिर्नृणां भवेत्।
सत्यम् सत्यम् पुनः सत्यम् सत्यम् सत्यम् योच्यते॥
विनाह्यागममार्गेन कलौ नास्ति गतिः प्रिये।
श्रुति स्मृति पुराणादौ मयैवोक्तं पुरा शिवे।
आगमोक्त विधानेन कलौ देवात् यजेत् सुधीः॥" २ उ०।

कलिके दोषसे दीन ब्राह्मण क्षत्रियादिकको पवित्र और अपवित्रका विचार न रहेगा। इसलिए वेदविहित कर्मद्वारा वे किस तरह सिद्धिलाभ करेंगे? ऐसी अवस्थामें स्मृति संहितादिके द्वारा भी मानवोंके इष्टकी सिद्धि नहीं होगी। प्रिये! मैं सत्य ही कहता हूँ कि कलियुगमें आगम मार्गके सिवा और कोई गति नहीं है। शिवे! मैंने वेद, स्मृति और पुराणादिमें कहा है कि कलियुगमें साधक तन्त्रोक्त विधानद्वारा देवोंकी पूजा करेंगे।

"कलावागममुल्लंघ्य योऽन्य मार्गे प्रवर्तते।
न तस्य गतिरस्तीति सत्यं सत्यं न संशयः॥"

कलिकालमें जो आगम (तन्त्र) उल्लङ्घन करके अन्य मार्ग अवलम्बन करेगा सचमुच ही उसकी सद्‌गति नहीं होगी।

"निर्वीर्याः श्रौतजातीयाः विषहीनोरगा इव।
सत्यादौ सफला आसन् कलौ ते मृतका इव॥
पाञ्चालिकाः यथा भित्तौ सर्वेन्द्रिय समन्विताः।
अमूरशक्ताः कार्येषु तथान्ये मन्त्रराशयः॥
अन्य मन्त्रैः कृतं कर्म्म वन्ध्या स्त्रीसङ्गमो यथा।
न तत्र फल सिद्धिः स्यात् श्रम एव हि केवलम्॥

कलावन्योदितैर्मार्गैः सिद्धिमिच्छति यो नरः ।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः ॥
कलौ तन्त्रोदिता मन्त्राः सिद्धास्तूर्ण फलप्रदाः ।
शस्ताः कर्मेषु सर्वेषु जपयज्ञ क्रियादिषु ॥"

अब वैदिक मन्त्र विषहीन सर्पके समान वीर्यहीन हो गये हैं। सत्य त्रेता और द्वापर युगमें उक्त मन्त्र सफल होते थे, अब मृत्यु तुल्य हो गये हैं। जिस तरह भीतपर अङ्कित पुत्तलिका इन्द्रिय सम्पन्न होनेपर भी स्वकार्य साधनमें असमर्थ हैं, उसी प्रकार कलियुगके अन्यान्य मन्त्र भी शक्तिहीन हैं। वन्ध्या स्त्रीसे जैसे पुत्रफलकी उत्पत्ति नहीं होती उसी प्रकार अन्य मन्त्रद्वारा कार्य करनेसे फलसिद्धि नहीं होती, केवल वृथा श्रममात्र होता है। कलिकालमें अन्य शास्त्रोक्त विधिद्वारा जो व्यक्ति सिद्धिलाभ करनेकी इच्छा करता है, वह निर्बोध तृष्णातुर होकर गङ्गाके किनारे कूप खोदना चाहता है। कलियुगमें तन्त्रोक्त मन्त्र शीघ्र फलदायक है। वह जप, यज्ञ आदि सभी कार्योंमें प्रशस्त है।

इसलिए रघुनन्दन आदि स्मार्तोंने तन्त्रग्रन्थको प्रामाणिक माना है।

गुह्यशास्त्र

क्या हिन्दू और क्या बौद्ध दोनों ही सम्प्रदायोंमें तन्त्र अति गुह्यतत्त्व समझा जाता है। यथार्थ दीक्षित और अभिषिक्तके सिवा किसीके सामने यह शास्त्र प्रकट नहीं करना चाहिये। कुलार्णवतन्त्रोंमें लिखा है कि धन देना, स्त्री देना, अपने प्राणतक देना पर यह गुह्यशास्त्र अन्य किसीके सामने प्रकट न करना।

आगम-तत्त्व विलासमें निम्नलिखित कुछ तन्त्रोंका उल्लेख है—१—स्वतन्त्र-तन्त्र, २—फेत्कारीतन्त्र, ३—उत्तरतन्त्र, ४—नीलतन्त्र, ५—वीरतन्त्र, ६—कुमारीतन्त्र, ७—कालीतन्त्र, ८—नारायणीतन्त्र, ९—तारिणीतन्त्र, १०—बालातन्त्र, ११—समयाचारतन्त्र, १२—भैरवतन्त्र, १३—भैरवीतन्त्र, १४—त्रिपुरातन्त्र, १५—वामकेश्वरतन्त्र, १६—कुक्कुटेश्वरतन्त्र, १७—मातृकातन्त्र, १८—सनत्कुमारतन्त्र, १९—विशुद्धेश्वरतन्त्र, २०—सम्मोहनतन्त्र, २१—गौतमीयतन्त्र, २२—बृहत् गौतमीयतन्त्र, २३—भूत-भैरवतन्त्र, २४—चामुण्डातन्त्र, २५—पिंगलातन्त्र, २६—वाराहीतन्त्र, २७—मुण्डमालातन्त्र, २८—योगिनीतन्त्र, २९—मालिनी विजयतन्त्र, ३०—स्वच्छन्द भैरव, ३१—महातन्त्र, ३२—शक्तितन्त्र, ३३—चिन्तामणितन्त्र, ३४—उन्मत्त भैरवतन्त्र, ३५—त्रैलोक्यसारतन्त्र, ३६—विश्वसारतन्त्र, ३७—तन्त्रामृत, ३८—महाफेत्कारीतन्त्र, ३९—वायवीयतन्त्र, ४०—तोडलतन्त्र, ४१—मालिनीतन्त्र, ४२—ललितातन्त्र, ४३—त्रिशक्तितन्त्र, ४४—राजराजेश्वरीतन्त्र, ४५—महामोहस्वरोत्तरतन्त्र, ४६—गवाक्षतन्त्र, ४७—गान्धर्वतन्त्र, ४८—त्रैलोक्यमोहनतन्त्र, ४९—हंसपारमेश्वर, ५०—हंसमाहेश्वर, ५१—कामधेनुतन्त्र, ५२—वर्णविलासतन्त्र, ५३—मायातन्त्र, ५४—मन्त्रराज, ५५—कुब्जिकातन्त्र, ५६—विज्ञानलतिका, ५७—लिङ्गागम्, ५८—कालोत्तर, ५९—ब्रह्मयामल, ६०—आदियामल, ६१—रुद्रयामल, ६२—बृहद्यामल, ६३—सिद्धयामल और ६४—कल्पसूत्र।

इनके सिवा और भी कुछ तान्त्रिक ग्रन्थोंके नाम पाये जाते हैं। यथा—१—मत्स्यसूक्त, २—कुलसूक्त, ३—कामराज, ४—शिवागम, ५—उड्डीश, ६—कुलोड्डीश, ७—वीर-

भद्रोड्डीश, ८—भूतडामर, ९—डामर, १०—यक्षडामर, ११—कुल सर्वस्व, १२—कालिका कुल सर्वस्व, १३—कुल चूड़ामणि, १४—दिव्य, १५—कुलसार, १६—कुलार्णव, १७—कुलामृत, १८—कुलावली, १९—कालीकुलार्णव, २०—कुलप्रकाश, २१—वाशिष्ठ, २२—सिद्धसारस्वत, २३—योगिनी-हृदय, २४—काली-हृदय, २५—मातृकार्णव, २६—योगिनी-जाल-कुरक, २७—लक्ष्मीकुलार्णव, २८—तारार्णव, २९—चन्द्रपीठ, ३०—मेरुतन्त्र, ३१—चतुःशती, ३२—तत्वबोध, ३३—महोग्र, ३४—स्वच्छन्दसार-संग्रह, ३५—ताराप्रदीप, ३६—सङ्केत-चन्द्रोदय, ३७—षट्त्रिंशतत्त्वक, ३८—लक्ष्यनिर्णय, ३९—त्रिपुरार्णव, ४०—विष्णुधर्मोत्तर, ४१—मन्त्रदर्पण, ४२—वैष्णवामृत, ४३—मानसोल्लास, ४४—पूजाप्रदीप, ४५—भक्तिमञ्जरी, ४६—भुवनेश्वरी, ४७—पारिजात, ४८—प्रयोगसार, ४९—कामरत्न, ५०—त्रियासार, ५१—आगमदीपिका, ५२—भावचूड़ामणि, ५३—तन्त्रचूड़ामणि, ५४—बृहत् श्रीक्रम, ५५—श्रीक्रम, ५६—सिद्धान्तशेखर, ५७—गणेशविमर्शिनी, ५८—मन्त्र-मुक्तावली, ५९—तत्वकौमुदी, ६०—तन्त्रकौमुदी, ६१—मन्त्रतन्त्रप्रकाश, ६२—रामार्चन-चन्द्रिका, ६३—शारदातिलक, ६४—ज्ञानार्णव, ६५—सारसमुच्चय, ६६—कल्पद्रुम, ६७—ज्ञानमाला, ६८—पुरश्चरणचन्द्रिका, ६९—आगमोत्तर, ७०—तत्वसागर, ७१—सारसंग्रह, ७२—देवप्रकाशिनी, ७३—तन्त्रार्णव, ७४—क्रमदीपिका, ७५—तारा-रहस्य, ७६—श्यामा-रहस्य, ७७—तन्त्ररत्न, ७८—तन्त्रप्रदीप, ७९—ताराविलास, ८०—विश्वमातृका, ८१—प्रपञ्चसार, ८२—तन्त्रसार और ८३—रत्नावली। इनके अलावा महासिद्धि-सारस्वतमें सिद्धीश्वर, नित्य-तन्त्र, देव्यागम, निबन्ध-तन्त्र, राधा-तन्त्र, कामाख्या-तन्त्र, महाकाल-तन्त्र, मन्त्र-चिन्तामणि, काली-विलास और महाचीन-तन्त्रका उल्लेख है।

उपर्य्युक्त तन्त्रोंको छोड़कर और भी कुछ तान्त्रिक ग्रन्थ प्रचलित हैं। यथा—आचारसार-प्रकरण, आचारसार तन्त्र, आगमचन्द्रिका, आगमसार, अन्नदाकल्प, ब्रह्मज्ञान महातन्त्र, ब्रह्मज्ञान-तन्त्र, ब्रह्माण्ड-तन्त्र, चिन्तामणि-तन्त्र, दक्षिणकल्प, गौरीकञ्चलिका-तन्त्र, गायत्री-तन्त्र, ब्राह्मणोल्लास, ब्रह्यामल-तन्त्र, ईशान-संहिता, जप-रहस्य, ज्ञानानन्दतरङ्गिणी, ज्ञानतन्त्र, कैवल्य-तन्त्र, ज्ञानसङ्कलिनी, कौलिकार्चनदीपिका, क्रम-चन्द्रिका, कुमारीकवचोल्लास, लिङ्गार्चन-तन्त्र, निर्वाण-तन्त्र, महानिर्वाण-तन्त्र, बृहन्निर्वाण-तन्त्र, वरदा-तन्त्र, मातृकाभेद-तन्त्र, निगमकल्पद्रुम, निगमतत्वसार, निरुत्तर-तन्त्र, पिच्छिला-तन्त्र, पीठनिर्णय, पुरश्चरण विवेक, पुरश्चरणरसोल्लास, शक्तिसङ्गम-तन्त्र, सरस्वती-तन्त्र, शिव-संहिता, श्रीतत्व-बोधिनी, स्वरोदय, श्यामा-कल्पलता, श्यामार्चन-चन्द्रिका, श्यामा-प्रदीप, तारा-प्रदीप, शाक्तानन्दतरङ्गिणी, तत्वानन्दतरङ्गिणी, त्रिपुरासार-समुच्चय, वर्णभैरव, वर्णोद्धार-तन्त्र, बीजचिन्तामणि, मणितन्त्र, योगिनी हृदयदीपिका, यामल इत्यादि।

वाराही तन्त्रमें तन्त्रोंके नाम और उनकी श्लोक-संख्या इस प्रकार लिखी है—

तन्त्रका नाम	श्लोक-संख्या	तन्त्रका नाम	श्लोक-संख्या
मुक्तक	६०५०	प्रपञ्च (२ य)	८०२७०
शारदा	१६०२५	प्रपञ्च (३ य)	५३१०
प्रपञ्च (१ म)	१२३००	कपिल	६०८०

तन्त्रका नाम	श्लोक-संख्या	तन्त्रका नाम	श्लोक-संख्या
योग	१२३११	दक्षिणामूर्त्ति	५५५०
कल्प	५०९०	कालिका	११०१
कपिञ्जल	२८०१२०	कामेश्वरीतन्त्र	३०००
अमृतशुद्धि	५००५	तन्त्रराज	९०९०
वीरागम	६६०६	हरगौरीतन्त्र	(१ म) २२०२०
सिद्धसंवरण	५००६	"	(२ य) १२०००
योगडामर	२३५२३	तन्त्रनिर्णय	२८
शिवडामर	११००७	कुब्जिकातन्त्र	(१ म) १०००७
दुर्गाडामर	११५०३	"	(२ य) ६०००
		"	(३ य) ३०००
सारस्वत	९९०५	कात्यायनीतन्त्र	२४२००
ब्रह्मडामर	७१०५	प्रत्यङ्गिरातन्त्र	८८००
गान्धर्वडामर	६००६०	महालक्ष्मीतन्त्र	५५०५
आदियामल	३५३००	देवी-तन्त्र	१२०००
ब्रह्मयामल	२२१००	त्रिपुरार्णव	८८०६
विष्णुयामल	२४०२०	सरस्वती-तन्त्र	२२०५
रुद्रयामल	६४६५	आद्या-तन्त्र	(१ म) २२५३२
गणेशयामल	१०३२३	"	(२ य) ६३०३
आदित्ययामल	१२०००	वाराही-तन्त्र	"
नीलपताका	५०००	गवाक्ष-तन्त्र	६५१५
वामकेश्वर	२५	नारायणी-तन्त्र	५०२०३
मृत्युञ्जयतन्त्र	१३२२०	मृडानी-तन्त्र	(१ म) ४४९०
योगार्णव	८३०७	"	(२ य) ३०००
मायातन्त्र	११०००	"	(३ य) ३३०

वाराहीतन्त्रमें लिखा है कि इनके सिवा बौद्ध और कपिलोक्त अनेक उपतन्त्र हैं। जैमिनि वसिष्ठ, कपिल, नारद, गर्ग, पुलस्त्य, भार्गव, सिद्ध, याज्ञवल्क्य, भृगु, शुक्र, बृहस्पति आदि मुनियोंने बहुतसे उपतन्त्र रचे थे, उनकी गिनती नहीं हो सकती।

हिन्दुओंके तन्त्र जिस प्रकार शिवोक्त हैं, बौद्धोंके तन्त्र भी उसी प्रकार बुद्धद्वारा वर्णित हैं। बौद्धोंके तन्त्र भी संस्कृत भाषामें रचे गये हैं। बौद्ध तन्त्रोंमें ये तन्त्र ही प्रधान हैं—१—प्रमोद-महायुग, २—परमार्थ-सेवा, ३—पिण्डीक्रम, ४—सम्पुटोद्भव, ५—हेवज्र, ६—बुद्धकपाल, ७—सम्बरतन्त्र वा सम्बरोदय, ८—वाराहीतन्त्र वा वाराहीकल्प, ९—योगाम्बर १०—डाकिनी-जाल, ११—शुक्लयमारि, १२—कृष्णयमारि, १३—पीतयमारि, १४—रक्तयमारि, १५—श्यामयमारि, १६—क्रियासंग्रह, १७—क्रियाकन्द, १८—क्रियासागर, १९—क्रियाकल्पद्रुम, २०—क्रियार्णव, २१—अभिधानोत्तर, २२—क्रियासमुच्चय, २३—साधनमाला, २४—साधनसमुच्चय, २५—साधनसंग्रह, २६—साधनरत्न, २७—साधनपरीक्षा,

२८—साधनकल्पलता, २९—तत्वज्ञान, ३०—ज्ञानसिद्धि, ३१—गुह्यसिद्धि, ३२—उद्यान, ३३—नागार्जुन, ३४—योगपीठ, ३५—पीठावतार, ३६—कालवीरतन्त्र वा चण्डरोषण, ३७—वज्रवीर, ३८—वज्रसत्व, ३९—मरीचि, ४०—तारा, ४१—वज्रधातु, ४२—विमलप्रभा, ४३—मणिकर्णिका, ४४—त्रैलोक्यविजय, ४५—सम्पुट, ४६—मर्मकालिका, ४७—कुरुकुल्ला, ४८—भूतडामर, ४९—कालचक्र, ५०—योगिनी, ५१—योगिनीसंचार, ५२—योगिनीजाल, ५३—योगाम्बरपीठ, ५४—उड्डामर, ५५—वसुन्धरासाधन, ५६—नैरात्म, ५७—डाकार्णव, ५८—क्रियासार, ५९—यमान्तक, ६०—मञ्जुश्री, ६१—तन्त्रसमुच्चय, ६२—क्रियावसन्त, ६३—हयग्रीव, ६४—सङ्कीर्ण, ६५—नामसङ्गीति, ६६—अमृतकर्णिका नामसङ्गीति, ६७—गूढ़ोत्पादनाम सङ्गीति, ६८—मायाजाल, ६९—ज्ञानोदय, ७०—वसन्ततिलक, ७१—निष्पन्नयोगाम्बर और ७२—महाकालतन्त्र।

इनके सिवा हिन्दुओंके तान्त्रिक कवचकी भाँति नेपाली बौद्धोंमें भी असंख्यधारणी संग्रह हैं। बौद्ध तन्त्रोंमें बहुतोंका चीन और तिब्बती भाषामें अनुवाद हो गया है। तिब्बतमें तन्त्र ऋगयुद्के नामसे प्रसिद्ध हैं, ऋगयुद् ७८ भागोंमें विभक्त हैं।

इनमें २६४० स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। उनमें प्रधानतः बौद्धोंके गुह्य क्रियाकाण्ड, उपदेश, स्तव, कवच, मन्त्र और पूजाविधिका वर्णन है। शिवोक्त तन्त्रशाक्त, शैव और वैष्णवके भेदसे तीन प्रकारके हैं। तान्त्रिकगण स्वसम्प्रदायमुक्त तन्त्रके अनुसार ही चला करते हैं।

उत्पत्ति

तन्त्रशास्त्रकी उत्पत्ति कबसे हुई है इसका निर्णय नहीं हो सकता। प्राचीन स्मृति संहितामें चौदह विद्याओंका उल्लेख है, किन्तु उनमें तन्त्र गृहीत नहीं हुआ है। इनके सिवा किसी महापुराणमें भी तन्त्रशास्त्रका उल्लेख नहीं है। इसी तरहके कारणोंसे तन्त्रशास्त्रको प्राचीनतम आर्यशास्त्र नहीं माना जा सकता। तन्त्रोक्त मरणोच्चाटन-वशीकरणादि आभिचारिक क्रियाका प्रसङ्ग अथर्वसंहितामें पाया जाता है सही किन्तु तन्त्रके अन्यान्य प्रधान लक्षण नहीं मिलते। ऐसी दशामें तन्त्रको हम अथर्वसंहितामूलक नहीं कह सकते। अथर्ववेदीय नृसिंह तापनीयोपनिषद्में सबसे पहले तन्त्रका लक्षण देखनेमें आता है। इस उपनिषदमें मन्त्रराज नरसिंह-अनुष्टुभ् प्रसङ्गमें तान्त्रिक मालामन्त्रका स्पष्ट आभास सूचित हुआ है। शङ्कराचार्यने भी जब उक्त उपनिषदके भाष्यकी रचना की है तब निःसन्देह वह ईसाकी ७वीं शताब्दीसे पहलेका है। हिन्दुओंके अनुकरणसे बौद्ध-तन्त्रोंकी रचना हुई है। ईसाकी ९वीं शताब्दीसे ११वीं शताब्दीके भीतर बहुतसे बौद्ध-तन्त्रोंका तिब्बतीय भाषामें अनुवाद हुआ था। ऐसी दशामें मूल बौद्ध-तन्त्र ईसाकी ७वीं शताब्दीके पहले और उनके आदर्श हिन्दूतन्त्र बौद्ध-तन्त्रसे भी पहले प्रकाशित हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं। श्रीमद्भागवत्में चतुर्थ स्कन्दके द्वितीय अध्यायमें लिखा है—दक्षयज्ञमें शिवनिन्दा सुनकर नन्दीके शिवनिन्दक दक्ष और उसके समर्थनकारी ब्राह्मणोंको अभिशापित करनेपर भृगुने भी इस प्रकार अभिशाप दिया था—

"भवव्रत धरा ये च ये च तान् समनुव्रताः।
पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्र परिपन्थिनः॥
नष्टशौचा मूढ़धियो जटाभस्मास्थिधारिणः।

विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवः सुरासवम् ॥
ब्रह्मा च ब्राह्मणं चैव यद् यूयं परिनिन्दथ ।
सेतुं विधरणं पुंसामतः पाषण्डमाश्रिताः ॥"

जो महादेवका व्रत धारण करेंगे और जो उनके अनुवर्ती होंगे वे सत्‌शास्त्रके प्रतिकूलाचारी और पाखण्डी नामसे प्रसिद्ध हों। शौचाचारहीन और मूढ़बुद्धि व्यक्ति ही जटाभस्मधारी होकर उस शिवदीक्षामें प्रवेश करें, जहाँ सुरासव ही देववत् आदरणीय हैं, तुम लोगोंने शास्त्रोंके मर्यादा स्वरूप ब्रह्मा, देव और ब्राह्मणोंकी निन्दा की है, इसलिए तुम लोगोंको पाषण्डाश्रित कहा है—

पद्मपुराणके पाषण्डोत्पत्ति अध्यायमें लिखा है—लोगोंको भ्रष्ट करनेके लिए ही शिवकी दुहाई देकर पाखण्डियोंने अपना मत प्रकट किया है। उक्त भागवत और पद्मपुराणमें जिस तरह पाषण्डी मतका उल्लेख किया गया है, तन्त्रमें वही शिवोक्त उपदेश कहा गया है। गौड़ीय वैष्णववर्गके ग्रन्थोंके पढ़नेसे मालूम होता है कि, चैतन्यदेवने भी तान्त्रिकोंको पाषण्डीके नामसे सम्बोधन किया है। ऐसा होनेसे भागवत और पद्मपुराणके रचनाकालमें जो तान्त्रिक मत प्रचारित हुआ था, वह एक तरहसे ग्रहण किया जा सकता है। चीन-परिव्राजक फाहियान और यूयेनचुआङ्गने भारतमें आकर यहाँके अनेक सम्प्रदायोंका विवरण लिखा है, किन्तु तान्त्रिकोंके विषयमें कुछ नहीं लिखा है। ईसाकी नवीं शताब्दीमें भोट देशमें बौद्धतन्त्र अनुवादित हुए थे। किन्तु ईसाकी सातवीं शताब्दीमें यूयेनचुआङ्गने नाना प्रकारके बौद्धशास्त्रोंका उल्लेख करनेपर भी तन्त्रशास्त्रका कोई उल्लेख नहीं किया। जब नवीं शताब्दीमें मूल ग्रन्थका अनुवाद हुआ है, तब मानना पड़ेगा कि मूलतन्त्र अवश्य ही उससे पहले रचे गये होंगे। हाँ, यह हो सकता है, कि उस समय उनकी प्रसिद्धि नहीं हुई होगी अथवा साधारणसे उसको विशुद्ध मत मानकर ग्रहण नहीं किया होगा। दक्षिणात्यमें बहुतोंका विश्वास है कि अद्वैतवादी शङ्कराचार्यने ही तान्त्रिक मतका प्रचार किया था और इसी कारण वे मायावादी नामसे प्रसिद्ध हैं। किन्तु शङ्कराचार्यको हम तन्त्रमतका प्रचारक किसी हालतमें नहीं मान सकते।

दक्षिणाचार

तन्त्रराजमें लिखा है कि गौड़, केरल और काश्मीर इन तीनों देशके लोग ही विशुद्ध शाक्त हैं। किन्तु हम गौड देशको ही प्रधान शाक्त वा तान्त्रिकोंकी जन्मभूमि मान सकते हैं। तान्त्रिकोंमें शैव, वैष्णव और शाक्त ये तीन सम्प्रदाय भेद रहनेपर भी कार्यतः अधिकांश शाक्त ही हैं। बौद्ध तान्त्रिकोंको भी हम इस हिसाबसे शाक्त कहनेको बाध्य हैं।

वङ्गालमें जिस प्रकार शाक्तोंका प्राधान्य है, भारतमें और कहीं वैसा नहीं है। जिस समय बौद्धधर्म हीनप्रभ होता आ रहा था उस समय गौड़में तान्त्रिक धर्मका प्रचार हुआ था। इस समय जितने भी शिवोक्त तन्त्र पाये जाते हैं, उनकी रचनाप्रणालीकी पर्यालोचना करनेसे सहजमें ही धारणा होती है कि वे गौड़देशमें रचे गये थे। तन्त्रमें जैसी पृथक् वर्णमाला गृहीत हुई है वह भी सम्पूर्ण गौड़ वा वङ्ग देशमें प्रचलित थी। वरदातन्त्र वर्णोद्धारतन्त्र आदि तन्त्रोंमें वर्णमालाकी जैसी लेखप्रणाली बतायी है उसे भी हम नागरी वा वङ्गीय

अक्षरके सिवा अन्य कोई लिपि नहीं मान सकते। वर्त्तमान लिपिको हजार या बारहसौ वर्षसे ज्यादा पुरानी नहीं कह सकते। इसलिए अब इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि उक्त प्रकारकी लिपिके तन्त्र भी उसके बाद रचे गये हैं। भोट देशमें अतिशका नाम बहुत प्रसिद्ध है। ये बङ्गाली थे, ईसाकी ११वीं शताब्दीमें इन्होंने तिब्बतमें जाकर तान्त्रिक धर्मका प्रचार किया था। यह सम्भव नहीं कि इनसे भी पहले किसी बङ्गवासीने जाकर वहाँ धर्म प्रचार किया होगा। अतएव सम्भव है कि बङ्ग वा गौड़से ही नेपाल, भूटान, चीन आदि दूर देशोंमें तान्त्रिक धर्म फैला था।

गुजराती भाषामें लिखे हुए 'आगम प्रकाश' में लिखा है कि हिन्दू राजाओंके राज्य-कालमें बङ्गालियोंने गुजरात, डभोई, पावागढ़, अहमदाबाद, पाटन आदि स्थानोंमें आकर कालिकामूर्ति स्थापित की थी। बहुतसे हिन्दू राजा और प्रधान-प्रधान व्यक्तियोंने उनसे मन्त्र-दीक्षा ग्रहण की थी (आगम प्रकाश १२)। वास्तवमें देखा जाय तो आजकल जो भारतके प्राय. सभी देशोंमें मन्त्र-गुरुका प्रचलन है वह भी तान्त्रिकोंके प्राधान्य कालमें प्रचलित हुआ था। मन्त्र-गुरुका ऐसा प्रचार पहले न था। शायद बङ्गाली तान्त्रिकोंने ही इस प्रथाका प्रथम प्रचार किया होगा। उनकी देखा-देखी भारतके नाना स्थानों वा नाना सम्प्रदायोंमें इस प्रकार मन्त्रगुरुकी प्रथा चल पड़ी होगी।

सभी तन्त्र प्राचीन नहीं माने जा सकते। त्यागिनी तन्त्रमें कोचराज वंशके प्रतिष्ठाता विशुसिंहका परिचय दिया गया है। विश्वसार तन्त्रमें नित्यानन्दकी जन्मकथाका वर्णन किया गया है। इसलिए ऐसे तन्त्र ईसाकी १५वीं शताब्दीके बादके हैं इसमें सन्देह ही क्या? बङ्गालमें महानिर्वाणतन्त्रका सर्वत्र आदर होता है। किन्तु बहुत जगह किंवदन्ती है कि महात्मा राममोहनरायके गुरुने इस ग्रन्थकी रचना की थी। शक्तिरत्नाकरमें बृहन्निर्वाण तन्त्रका उल्लेख है। किन्तु नितान्त आधुनिक प्राणतोषिणीके सिवा अन्य किसी प्राचीन वा आधुनिक तन्त्र संग्रहमें महानिर्वाण तन्त्रका नामोल्लेख न रहनेसे इसका आधुनिकत्व ही प्रतिपन्न होता है। और मेरुतन्त्रमें लडूज, अंग्रेज इत्यादि शब्दोंद्वारा यही प्रमाणित होता है कि भारतमें अंग्रेजोंके आगमनके बाद उक्त तन्त्रोंकी रचना हुई है।

प्रतिपाद्य विषय

तन्त्रोंमें प्रात.स्मरण, स्नानविधि, त्रिपुण्ड्रधारण, भूशुद्धि, भूतशुद्धि, प्राणायाम, सन्ध्या, जप, पुरश्चरण, कराङ्गन्यास, अन्तर्मातृका, बहिर्मातृका, चित्रान्यास, नामादि-विद्या, नित्यादि विद्या, मूलविद्या, तत्वन्यास, द्वारपूजा, तर्पण, दशविद्यान्यास, पात्र-निर्णय, नित्यपूजा, सूर्यार्घ्य, तीर्थसंस्कार, गुर्वादिपूजन, दीक्षा, पूर्णाभिषेक, प्रायश्चित्त, निम्बपुष्प पूजा, दमनक पूजा, वसन्त पूजा, श्रीचक्र पूजा, दीक्षाकाल, दीक्षाभेद, सर्वतोभद्रादि चक्र निर्णय, यन्त्र निरूपण, पुण्याहवाचन, नान्दीश्राद्ध, नवयोनि, कौलश्राद्ध, मन्त्रशोधन, मन्त्रोद्धार, नामपारायण, तत्वपारायण, पञ्चाङ्गन्यास, महापोढान्यास, महान्यास, सम्मोहन-न्यास, सौभाग्यवर्द्धनन्यास, अन्त्येष्टिक्रिया, विविध मुद्रा, अवधूतादि निर्णय आदि नाना विपयोंका वर्णन किया गया है।

मनुके टीकाकार कुल्लूक भट्टने लिखा है—

"वैदिकी तान्त्रिकी चैव द्विविधा श्रुति कीर्त्तिताः ।"

वैदिकी और तान्त्रिकी इन दो श्रुतियोंका निर्देश है । इसलिए कुल्लूक भट्टके मतसे, तन्त्रको भी श्रुति कहा जा सकता है ।

आदियामलके मतसे—

"आगतः शिववक्त्रेभ्यो गतोपि गिरिजालये ।
मग्नतस्य हृदम्भोजे तस्मादागम उच्यते ॥"

हे दुर्गे ! शिवके मुखसे निकल तुम्हारे हृदय-पद्ममें मग्न हुआ है, इसलिए इसको आगम कहते हैं ।

कुलार्णवके मतसे—

"कृते श्रुत्युक्त आचारस्त्रेतायां स्मृतिसम्भवः ।
द्वापरे तु पुराणोक्तं कलौ आगम केवलम् ॥"

विष्णुयामलमें वर्णित है—

"आगमोक्त विधानेन कलौ देवान् यजेत् सुधीः ।
नहि देवाः प्रसीदन्ति कलौ चान्यविधानतः ॥"

बुद्धिमान् मनुष्य कलिकालमें आगमोक्त व्यवस्थाके अनुसार ही पूजा करेंगे । अन्य नियमसे पूजा करनेसे देवगण प्रसन्न नहीं होते ।

रुद्रयामलके मतसे—

"पञ्चमन्त्रैर्भवेद्दीक्षास्त्वागमोक्तः शृणु प्रिये ।
यां कृत्वा कलिकाले च सर्वाभीष्टं लभेन्नरः ॥"

आगमोक्त पञ्चमन्त्रद्वारा दीक्षा लेवें, इसके लेनेसे मनुष्यको कलिकालमें सर्व अभीष्टकी सिद्धि होगी ।

दीक्षा

तन्त्रोंके मतसे सबसे पहले दीक्षा ग्रहण करके पीछे तान्त्रिक कार्योंमें हाथ डालना चाहिये, बिना दीक्षाके तान्त्रिक कार्यमें अधिकार नहीं है ।

आचारभेद

तान्त्रिकगण पाँच प्रकारके आचारोंमें विभक्त हैं । कुलार्णव तन्त्रके मतसे—

"सर्वेभ्यश्चोत्तमाः वेदाः वेदेभ्यो वैष्णवम् महत् ।
वैष्णवादुत्तमम् शैवम् शैवाद्दक्षिणमुत्तमम् ॥
दक्षिणादुत्तमम् वामम् वामात् सिद्धान्तमुत्तमम् ।
सिद्धान्तादुत्तमम् कौलम् कौलात् परतरम् नहि ॥"

सबसे वेदाचार श्रेष्ठ है, वेदाचारसे वैष्णवाचार महत् है, वैष्णवाचारसे शैवाचार उत्कृष्ट है, शैवाचारसे दक्षिणाचार उत्तम है, दक्षिणाचारसे वामाचार श्रेष्ठ है, वामाचारसे सिद्धान्ताचार उत्तम है और सिद्धान्ताचारकी अपेक्षा कौलाचार उत्तम है । कौलाचारके बाद और कोई नहीं है ।

वेदाचार

प्राणतोषिणीधृत नित्यानन्दतन्त्रके मतसे—

"वेदाचारम् प्रवक्ष्यामि शृणु सर्वाङ्गसुन्दरि ।
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय गुरुम् नत्वा स्वनामभिः ॥
आनन्दनाथ शब्दान्तैः पूजयेदथ साधकः ।
सहस्राराम्बुजे ध्यात्वा उपचारैस्तु पञ्चभिः ॥
प्रजप्य वाग्भवंबीजं चिन्तयेत् परमां कलाम् ॥"

सर्वाङ्ग सुन्दरि ! वेदाचारका वर्णन करता हूँ, तुम सुनो । साधकको चाहिये कि, वह ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठे और गुरुके नामके अन्तमें आनन्दनाथ बोलकर उनको प्रणाम करे । फिर सहस्रदल पद्ममें ध्यान करके पञ्च उपचारसे पूजा करे और वाग्भव बीज जप करके परम कलाशक्तिका ध्यान करे ।

वैष्णवाचार

"वेदाचारक्रमेणैव सदा नियम तत्परः ।
मैथुनम् तत्कथालापम् कदाचिन्नैव कारयेत् ॥
हिंसा निन्दाम् च कौटिल्यम् वर्जयेन्मांसभोजनम् ।
रात्रौ मालां च यन्त्रं च स्पृशेन्नैव कदाचन ॥"

वेदाचारकी विधिके अनुसार सर्वदा नियमतत्पर होना चाहिए । मैथुन वा उसका कथाप्रसङ्ग भी कभी न करना चाहिए । हिंसा, निन्दा, कुटिलता और मांस-भोजन परित्याग करना चाहिये । रातको कभी माला वा यन्त्र न छूना चाहिये ।

शैवाचार

"वेदाचारक्रमेणैव शैवे शाक्ते व्यवस्थितम् ।
तद्विशेषम् महादेवि ! केवलं पशुघातनम् ॥"

शैव और शाक्तोंके लिए जैसे वेदाचारकी व्यवस्था दी गयी है, इनके लिए भी वैसी ही है । शैवाचारमें विशेषता इतनी ही है कि, इसमें केवल पशुहत्याकी व्यवस्था है ।

दक्षिणाचार—"वेदाचारक्रमेणैवम् पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
स्वीकृत्य विजयां रात्रौ जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥"

वेदाचारके क्रमानुसार आद्याशक्तिकी पूजा करें और रातको विजया ग्रहण करके एकाग्रचित्तसे जप करें ।

वामाचार

"पञ्चतत्वम् खपुष्पम् च पूजयेत् कुलयोपितम् ।
वामाचारो भवेत्तत्र वामा भूत्वा यजेत् पराम् ॥"

पञ्चतत्व अथवा पञ्चमकार, खपुष्प अर्थात् रजस्वलाके रजः और कुलस्त्रीकी पूजा करें । ऐसा करनेसे वामाचार होता है । इसमें स्वयं वामा होकर पराशक्तिकी पूजा करें ।

सिद्धान्ताचार

"शुद्धाशुद्धम् भवेत् शुद्धम् शोधनादेव पार्वति ।
एतदेव महेशानि सिद्धान्ताचार लक्षणम् ॥"

पार्वति ! शुद्धाशुद्ध वस्तुओंके संशोधन करनेसे शुद्ध हुआ करता है । सिद्धान्ताचार-का लक्षण निम्न प्रकार है । समयाचारतन्त्रमें सिद्धान्ताचारियोंके विषयमें लिखा है—

"देवपूजारतो नित्यम् तथा विष्णुपरो दिवा ।
नक्तम् द्रव्यादिकम् सर्वम् यथालाभेन चोत्तमम् ॥
विधिवत् क्रियते भक्त्या स सर्वं च फलम् लभेत् ॥"

जो सर्वदा देवपूजामें निरत है, दिनमें विष्णुपरायण होकर रातको यथासाध्य और भक्तिभावसे यथाविधि मद्यदान और मद्यपान करता है, वह समस्त फलोंका लाभ करता है ।

कौलाचार

"दिक्काल नियमो नास्ति तिथ्यादि नियमो न च ।
नियमो नास्तिदेवेशि महामन्त्रस्य साधने ॥
क्वचित्शिष्टः क्वचित्भ्रष्टः क्वचित् भूतपिशाचवत् ।
नानावेश धराकौलाः विचरन्ति महीतले ॥
कर्दमे चन्दनेऽभिन्नं मित्रे शत्रौ तथा प्रिये ।
श्मशाने भवने देवि तथैव काञ्चने तृणे ।
न भेदो यस्य देवेशि स कौलः परिकीर्तितः ॥"

(नित्यातन्त्र)

दिक्कालका नियम नहीं है, तिथ्यादिका भी नियम नहीं है, देवेशि ! महामन्त्र साधनका भी नियम नहीं है । कभी शिष्ट कभी भ्रष्ट और कभी भूत-पिशाचके समान, इस तरह नाना वेशधारी कौल महीतलपर विचरण करते हैं । प्रिये ! कर्दम और चन्दनमें, मित्र और शत्रुमें, श्मशान और गृहमें, स्वर्ण और तृणमें जिनको भेदज्ञान नहीं उन्हें ही कौल कहा जा सकता है ।

पञ्चमकार तन्त्रके प्राणस्वरूप हैं । पञ्चमकारके बिना तान्त्रिकको किसी भी कार्यमें अधिकार नहीं है । पञ्चमकार देवताओंके लिए दुर्लभ हैं । मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन इन पाँच मकारोंसे जगदम्बिकाकी पूजा की जाती है । इसके बिना कोई कार्य भी सिद्ध नहीं होता और तन्त्रवित् पण्डितगण निन्दा करते हैं । काली वा ताराका मन्त्र ग्रहण करके जो मद्यसेवन नहीं करता, वह कलियुगमें पतित होता है । तान्त्रिक जप, होम आदि कार्योंमें अनधिकारी होता है तथा वह व्यक्ति अब्राह्मण और हस्तिमूर्ख कहलाता है । उस व्यक्तिका पितृतर्पण कुत्तेके मूत्रके सदृश है । जो व्यक्ति काली और ताराका मन्त्र पाकर वीराचार नहीं करता, वह शूद्रत्वको प्राप्त होता है । सुरा सभी कार्योंमें युक्त है तथा पृथिवी-पर ये ही एकमात्र मुक्तिदायिनी है । इस सुराका नाम ही तीर्थ और पान है ।

वैदिक आदि ग्रन्थोंमें जिन मांसोंको भक्ष्य कहा गया है, वे ही मांस विशुद्ध हैं। रहस्यमें जिन मीनोंको भक्ष्ययोग्य कहा है, वे मत्स्य सिद्धिप्रदायक हैं। पृथुक्, तण्डुलभ्रष्ट, गोधूम, चणक आदिको मुद्रा कहते हैं, यह मुद्रा मुक्तिप्रदायिनी है। भग और लिङ्गके योगसे मैथुन होता है। यह मैथुन ही पञ्चम है। मकारोंमें प्रथम मद्य द्वितीय मांस, तृतीय मत्स्य, चतुर्थ मुद्रा, पञ्चम मैथुन है, ये पांच द्रव्य ही पञ्चमकार हैं।

पञ्चमकारका अर्थ—

"मायामलादि शयनात् मोक्षमार्गनिरूपणम्।
अष्टदुःखादि विरहान्मत्स्येति परिकीर्त्तितम्॥
माङ्गल्यजननाद् देवी संविदानन्ददानतः।
सर्वदेवप्रियत्वाच्च मांस इत्यभिधीयते॥
पञ्चमम् देवि सर्वेषु मम प्राणप्रियम् भवेत्।
पञ्चमेन विना देवि चण्डीमन्त्रम् कथम् जपेत्॥
यदि पञ्चमकारेषु भ्रान्तिम् चेत् कुरुते प्रिये।
तस्य सिद्धिः कथम् देवि चण्डी मन्त्रम् कथम् जपेत्॥
आनन्दम् परमम् ब्रह्म मकारास्तस्य सूचकाः॥"

जिससे माया और मलादिका प्रशमन, मोक्ष मार्गका निरूपण और आठ प्रकारके दुःखोंका अभाव होता है, उसका नाम मत्स्य है। माङ्गल्यजनन, संविदोंको आनन्ददायक और सब देवताओंका प्रिय होनेसे इसका नाम मांस पड़ा है। पञ्चमकार सब कार्योंमें मेरे प्राणोंके समान प्रिय हैं। पञ्चमकारके बिना चण्डी मन्त्रका जप कैसे हो सकता है? इसलिये उसके लिये सिद्धि भी असम्भव हैं। आनन्द ही परम ब्रह्म है और पञ्चमकार उसका सूचक है।

"सुमनः सेवितत्वाच्च राजत्वात् सर्वदा प्रिये।
आनन्द जननाद् देवि सुरेति परिकीर्त्तिता॥
मुदम् कुर्वंति देवानां मनांसि द्रावयन्ति च।
तस्मान्मुद्रा इति ख्याता दर्शिता व्याकुलेश्वरी॥"

उत्तम पुरुष इसका सेवन करते हैं तथा राजत्व और आनन्द-जननका यह कारण है, इसलिये इसका नाम सुरा है। इससे देवताओंका मन आनन्दित और द्रवीभूत होता है तथा इसके देखनेसे परमेश्वरी भी व्याकुल होती हैं, इसलिये इसका नाम मुद्रा है।

पञ्चमकारका फल महानिर्वाण-तन्त्रके ग्यारहवें पटलमें इस प्रकार है—

"अष्टैश्वर्य परम् मोक्षम् मद्यपानेन शैलेजे।
मांसभक्षण मात्रेण साक्षान्नारायणो भवेत्॥
मत्स्य भक्षणमात्रेण कालीप्रत्यक्षतामियात्।
मुद्रासेवन-मात्रेण भूसुरो विष्णु रूपधृक्॥
मैथुनेन महायोगी मम तुल्यो न संशयः॥"

मद्यपान करनेसे अष्टैश्वर्य और परामोक्ष तथा मांसके भक्षणमात्रसे साक्षात् नारायणत्व लाभ होता है। मत्स्य भक्षण करते समय ही कालीका दर्शन होता है। मुद्राके सेवन मात्रसे विष्णुरूप प्राप्त होता है। मैथुनद्वारा मेरे (शिवके) तुल्य होता है, इसमें संशय नहीं।

पञ्चमकारके दानका फल—

"द्रव्यम् मधुः तथा मत्स्यम् मांसम् मुद्रा च मैथुनम्।
मकारपञ्चसंयुक्तम् पूजयेत् भैरवेश्वरम्॥
कन्याकोटिप्रदानस्य हेमभार शतानि च।
फलमाप्नोति देवेशि कौलिके विंदु दानतः॥
पृथिवी हेमसम्पूर्णा दत्वा यत्फलमाप्नुयात्।
तत्पुण्यम् कौलिके दत्वा तृतीयम् प्रथमायुतम्॥
द्वितीयम् प्रथमायुक्तम् यो दद्यात् कुलयोगिने।
तृप्यन्ति मातरः सर्वाः योगिन्यो भैरवादयः॥
अश्वमेधादिकम् पुण्यमन्नदानान्महर्षिणाम्।
तत्फलम् लभते देवि कौलिके दत्तमुद्रया॥
गवां कोटि प्रदानेन यत्पुण्यम् लभते नरः।
तत्पुण्यम् लभते देवि पञ्चमस्य प्रदानतः॥
पञ्चमेन विनाद्रव्यं यः कुर्यात् साधकाधमः।
तत्सर्वं निष्फलं देवि सत्यम् सत्यम् न संशयः॥
चाण्डाली चर्मकारी च मातङ्गी मांसकारिणी।
मद्यकर्त्री च रजकी क्षौरकी धनवल्लभा॥
अष्टैताः कुलयोगिन्याः सर्वसिद्धिप्रदायिकाः॥"

मधु, मत्स्य, मांस, मुद्रा और मैथुन इन पाँच मकारोंसे भैरवेश्वरकी पूजा करें। कोटि कन्यादान करनेसे तथा भूमि और एक भार सोना दान करनेसे जो फल होता है, कौलिक कार्यमें इसको एक बूँद दान करनेसे उतना ही पुण्य होता है। सुवर्ण संयुक्त पृथ्वी दान देनेसे जो फल होता है, प्रथमयुक्त तृतीय द्रव्य वा प्रथमयुक्त द्वितीय द्रव्य दान देनेसे भी वही फल होता है। माताएँ, योगिनी और भैरवादि सभी इससे तृप्त होते हैं। कोटि गोदान करनेसे जो पुण्य होता है, पञ्चमकार प्रदान करनेसे भी मनुष्यको उतना ही पुण्य होता है। जो साधकाधम पञ्चमकारको छोड़कर अन्य द्रव्य कल्पित करता है उसका सब कुछ निष्फल है। इसको अत्यन्त सत्य मानो।

चाण्डाली, चर्मकारी, मातङ्गी, मत्स्यकारिणी, मद्यकर्त्री, रजकी, क्षौरकी, और धन-वल्लभा ये आठ स्त्रियाँ कुलयोगिनी हैं। ये ही समस्त सिद्धियोंकी देनेवाली हैं।

पञ्चमकारका विषय वर्णित हुआ, किन्तु पञ्चमकारका शोधन किया जाता है।

"संशोधनमनाचर्य स्त्रीषु मद्येषु साधकः।
आचर्यः सिद्धि हानिः स्यात् क्रुद्धाभवति सुन्दरी॥"

जो साधक पञ्चमकारका शोधन बिना किये मद्यादि व्यवहार करता है उसके कार्यमें हानि होती है और उसपर देवी भी क्रुद्ध होती है तथा वह कभी सिद्धि लाभ नहीं कर पाता।

तन्त्रके मतसे तत्वज्ञान

पञ्चभूत, एक-एक भूतके पांच पांच करके पचीस गुण हैं। अस्थिमांस, नख, त्वक, लोम ये पांच पृथ्वीके गुण हैं। शुक्र, शोणित, मज्जा, मल और मूत्र ये पांच जलके गुण हैं, निद्रा क्षुधा, तृष्णा, क्रान्ति और आलस्य ये पाँच तेजके गुण हैं।

धारण, चालन, क्षेपण, संकोच और प्रसव ये पांच गुण वायुके हैं। काम, क्रोध, मोह, लज्जा और लोभ ये पांच आकाशके गुण हैं। समुदायमें पञ्चभूतके पचीस गुण हैं। यह पञ्च-भूत—मही जलमें, जल रविमें, रवि वायुमें और वायु आकाशमें विलीन होती है।

इन पञ्चतत्वके बाद भी तत्व हैं—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र, ये पाँच इन्द्रियां और मन साधन इन्द्रिय है। यह ब्रह्माण्डलक्षण देहके मध्य व्यवस्थित है, तथा सप्तधातु, आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ये भी शरीरके मध्य अवस्थित हैं। शुक्र, शोणित मज्जा, मेद, मांस, अस्थि और त्वक् ये सप्तधातु हैं।

शरीर ही आत्मा है, अन्तरात्मा है। मन और परमात्मा शून्यमय है, इस परमात्मा-मेंही मन विलीन होता है।

रक्तधातु माता, शुक्रधातु पिता और शून्यधातु प्राण, इन्हींसे गर्भपिण्डकी उत्पत्ति होती है।

अव्यक्तसे प्राण, प्राणसे मन और मनसे वाक्यकी उत्पत्ति होती है तथा मन वाक्यके साथ विलीन होता है। सूर्य, चन्द्र, वायु और मन ये कहाँ अवस्थान करते हैं? तालुमूलमें चन्द्र, नाभिमूलमें दिवाकर, सूर्यके आगे वायु और चन्द्रके आगे मन तथा सूर्यके आगे चित्त और चन्द्रके आगे जीवन अवस्थित हैं। किस स्थानमें शक्ति शिव अवस्थान करते हैं? काल कहाँ रहता है और जरा क्यों आती है?

पातालमें शक्तिकी अवस्थिति है, ब्रह्माण्डमें शिव वास करते हैं, अन्तरिक्षमें कालकी अवस्थिति है और इस कालसे ही जराकी उत्पत्ति होती है। कौन आहारकी आकांक्षा करता है और कौन पान-भोजनादि करता है तथा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति किसको होती है और कौन प्रतिबद्ध होता है, प्राण आहारकी आकांक्षा करते हैं हुताशन पान भोजनादि करता है तथा जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिमें वायु ही प्रतिबुद्ध होती है।

कौन कर्म करता है, कौन पातकमें लिप्त होता है तथा पापका आचरण करनेवाला कौन है और पापोंसे मुक्त कौन होता है? मन पाप कार्य करता है, मन ही पापमें लिप्त होता है, मन ही तन्मना होकर पुण्य और पाप उपार्जन करता है। जीव किस प्रकारसे शिव होता है? भ्रान्तियुक्त होनेपर उसको जीव कहते हैं, वह जब भ्रान्तिमुक्त हो जाता है, तब उसे शिव कहते हैं। तामस व्यक्ति इस तीर्थके लिए इसी तरह भ्रमण करते रहते हैं। अज्ञानान्ध होकर आत्मतीर्थसे अभिज्ञ नहीं होते। आत्मतीर्थके विना जाने कैसे मोक्ष हो सकता है?

वेद भी वेद नहीं हैं, अर्थात् चारों वेदोंको वेद नहीं कहा जा सकता, सनातन ब्रह्म ही वेद हैं। चार वेद और समस्त शास्त्रोंके अध्ययन करके योगी उनका सार संग्रह करते हैं, किन्तु पण्डितगण तक्र पीया करते हैं। तप, तपस्या नहीं है, ब्रह्मचर्य ही तपस्या है, जो ब्रह्मचर्यके प्रभावसे ऊर्ध्वरेता होते हैं। वे ही तपस्वी हैं।

होम आदि भी होम नहीं हैं, ब्रह्माग्निमें प्राणोंका समर्पण करना ही होम है। मोक्ष लाभ करनेके लिए पाप पुण्य दोनोंका ही त्याग करना पड़ता है। जबतक ज्ञान न उत्पन्न हो, तबतक वर्णविभाग रहता है, ज्ञान उत्पन्न होनेपर फिर वर्णादि विभाग नहीं रहते। चञ्चल चित्तमें शक्ति अवस्थान करती है और स्थिरचित्तमें शिव। स्थिरचित्त हो सकनेपर ही देहधारी होनेपर भी सिद्धि होती है। (ज्ञान सङ्कलिनी तन्त्र)।

शूद्र लिखित पटलादिका पढ़ना निषिद्ध है।

"विप्रो वा क्षत्रियो वाऽपि वैश्यो वा नगनन्दिनी।
पतयन्नरके घोरे शूद्रस्य लिखनात् प्रिये॥
तस्मात्तु शूद्रलिखितम् पटलम् न जपेत् सुधीः।
शूद्रेण लिखितम् देवि पटलम् यस्तु पठ्यते।
यं यं नरकमाप्नोति तम् तम् प्राप्नोति मानवः॥"

ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य यदि शूद्रके द्वारा लिखित पटलादि पढ़ें तो उसको घोर नरकमें जाना पड़ता है। इसलिए शूद्र लिखित स्तव-कवच आदि नही पढ़ना चाहिए।

तन्त्रोंमें इस प्रकारकी अनेक बातें जानने योग्य हैं। वास्तवमें इस समय भारतवर्षमें सर्वत्र विशेषत. बङ्गालमे जो क्रियाकाण्ड और पूजापद्धति प्रचलित है, वे सभी तान्त्रिक हैं। मन्त्र, बीज, गायत्री, न्यास, मुद्रा, दुर्गा, तारा आदि शब्द दृष्टव्य हैं।

हिन्दूतन्त्रोंका विषय पहले जैसा लिखा गया है, बौद्ध तन्त्रोंमें भी उसी तरहका विवरण देखनेमें आता है। हिन्दूतन्त्रोक्त शिव-दुर्गा आदिके नाम ही मानो वज्रसत्व, वज्र-डाकिनी आदि नामोंमें रूपान्तरित हुए हैं। बौद्धतन्त्रोंमें भी चण्डी, तारा, वाराही, महाविद्या, योगिनी, डाकिनी, भैरव भैरवी आदिकी उपासना प्रचलित है। शिवोक्त तन्त्रोंमें जिस तरह अद्भुत अद्भुत देव मूर्तियोंकी कल्पना की गई है, बौद्धतन्त्रोंमें भी इसी प्रकार हेरुकादि देव-देवीकी मूर्तियोंका वर्णन पाया जाता है।

बौद्धतन्त्रके मतसे वज्रसत्व और वज्रताराकी पूजा ही प्रधान है। हिन्दूतान्त्रिकगण जिस तरह दक्षिणवर्तके क्रमसे न्यास करते हैं, बौद्धतान्त्रिकगण वामावर्तसे उसी तरह न्यास किया करते हैं।

"वामावर्त विवर्तेन पूजान्यासप्रदक्षिणम्।
योहि जानाति तत्वज्ञस्तस्येदम् चक्रदर्शनम्॥"

(अभिधानोत्तर हृदय, ३ पटल)

बौद्धतान्त्रिकोंका भी कहना है कि साधनका कोई नियम नहीं, जब इच्छा हो हर एक अवस्थामें साधन करना चाहिये।

"न तिथिम् न च नक्षत्रम् नोपवासो विधीयते ।
शुचीनाम् वाप्यशुचिर्वा न शौचश्चोदक क्रिया ॥
कालवेला विनिर्मुक्तम् शौचाचारम विवर्जयेत् ।
तन्त्रमन्त्र प्रयोगज्ञः सर्वसत्वार्थ तत्परः ॥
गिरिगह्वर कुञ्जेषु नदीतीरेषु सङ्गमे ।
महोदधितटे रम्ये एकवृक्षे शिवालये ॥
मातृगृहे श्मशाने वा उद्याने विविधोत्तमे ।
विहार चैत्यालयेन गृहे वाऽथ चतुष्पथे ॥
साधयेत् साधको योगम् सर्वकामफलप्रदम् ॥"

(अभिधानोत्तर)

बौद्धतान्त्रिक भी माला मन्त्र, मातृका, कवच, हृदयादिको अतिगुह्य मानते हैं। बौद्धतन्त्रोंमें उन गुह्य विषयोंको अधिकारीके सिवा अन्य किसीके पास प्रकट करनेका निषेध है।

"आचार योगिनीतन्त्राः योगतन्त्राश्च विस्तराः ।
क्रियाभेद क्रमेणैव सर्वतन्त्रेष्वभिज्ञया ॥
आगमैः सिद्धिशास्त्राणि स्वतन्त्रैर्जातकैस्तथा ।
अनुत्तरपदावाचः प्रज्ञापारमितादयः ॥
बाह्य शास्त्रपरिज्ञानमाचार विविधोत्तमम् ।
योगभावनया युक्तं नैष्ठिकम् पद विन्यसेत् ॥
सर्वाहार विहारन्तु निर्विशङ्कन चेतसा ।
शताक्षरेण सर्वेषाम् मन्त्राणाम् दृढभावना ॥
मालामन्त्रयोगनित्यम् सर्वकामार्थ साधनम् ।
उत्तमे वाऽपि चोत्तरम् योगिनीजाल संवरम् ॥
मन्त्रोद्धारश्च कवचो हृदये हृदये न तु ।
लिपिमण्डलविन्यासम् वीर योगिनि तद्भवम् ॥
सर्वेषामेव मन्त्राणामुत्तमो मातृकोत्तमम् ।
गुह्याद्गुह्यतरम् रम्यम् सर्वज्ञानसमुच्चयम् ॥
आलयः सर्व धर्माणां मातृकाख्याजपोद्भवा ।
एतत्तत्त्वन्न कथयन् सिद्धिहानिर्भविष्यति ॥
भावनैषाञ्च परमाकाशसिद्धिरनुत्तमा ।
भावयेत् जन्म जन्मानि वज्रसत्वत्वमाप्नुयात् ।
अप्रकाश्यमिदम् सर्वम् गोपनीयम् प्रयत्नतः ॥"

(अभिधानोत्तर ४ प०)

बुद्धमत-प्रतिपादक बौद्धशास्त्रोंमें पञ्चमकारकी निन्दा है और उनको ग्रहण करनेका निषेध है। किन्तु बौद्ध तान्त्रिक उसमें अन्यथा क्रिया करते हैं। पञ्चमकारकी सेवा बौद्ध-

तन्त्रका एक प्रधान अङ्ग है। जिस मद्य और मांसको ग्रहण करना बौद्धशास्त्रोंमें विशेषरूपसे निषिद्ध बतलाया गया है, बौद्ध तन्त्रोंमें उसीकी सुख्याति पायी जाती है।

"नित्यम् महामांसभोजी मदिराश्रव घूर्णित्तम्।"
"...... महामांसम् पीत्वा मद्यम् प्रिया सह।
स्वच्छचित्तो मृताङ्गारे भावयेत् वीरनायकम्॥"

(अभिधान० ४ प०)

बौद्धतन्त्रोंमें पशु और वीर, इन दो भावोंका उल्लेख है। जो वास्तविक सिद्धतान्त्रिक हैं, बौद्ध तन्त्रोंमें उन्हींको वीरनायक कहा गया है। बौद्ध तान्त्रिकगण भी इस जगत्को वामोद्भव मानते हैं। बौद्ध तन्त्रमें चक्रपूजा, वीरयाग, भगपूजा आदिका विषय भी वर्णित है। वर्तमानके सात्विक बौद्धगण प्रायः जातिभेदको नहीं मानते, किन्तु बौद्धतान्त्रिकगण चतुर्वर्णका विशेषरूपसे विचार करते हैं। (क्रियासङ्ग्रह पञ्जिका १ म अ० इष्टवाद)

तान्त्रिक विषयने जिस तरह भारतीय हिन्दुओंके हृदयमें अधिकार किया है, उसी तरह बौद्धतान्त्रिक विषय भी तिब्बत और चीनके वहुसंख्यक बौद्धोंमें पर्यवसित हुआ है। पद्मकर्प नामके तिब्बतवासी एक लामाने ईसाकी सोलहवीं शताब्दीमे कहा है—"जो यथार्थ तन्त्रतत्वसे अभिज्ञ नहीं है, वह मोक्षमार्गमें राहभूले पथिककी भाँति है, इसमें सन्देह नहीं कि वह भगवान् वज्रसत्वके निर्दिष्ट मार्गसे बहुत दूर विचरण करता है।"

दर्शन-खण्ड

बावनवाँ अध्याय

दर्शन

वेदोंके उपाङ्गोंके प्रकरणमें प्राचीन प्रमाणसे पहिला उपाङ्ग इतिहास-पुराण है, दूसरा धर्मशास्त्र है, तीसरा न्याय और चौथा मीमांसा। इस प्रकार चार-वेद, छ. अङ्ग, चार उपाङ्ग मिलाकर चौदह विद्याएँ गिनायी जाती हैं। जिन लोगोंके मतसे अठारह विद्याएँ हैं वह इन चारोंके साथ साथ चार उपवेदोंको भी जोड़ देते हैं। यह अठारहों विद्याएँ साङ्गोपाङ्गवेदके नामसे प्रचलित हैं। हम पहले इस बातका दिग्दर्शन करा चुके हैं। हमने उपाङ्गोंके वर्णनमें थोड़ासा क्रम विपर्यय किया है। न्याय और मीमांसाकी गिनती दर्शनोंमें है। इसलिए इनको अलग-अलग दो उपाङ्ग न मानकर एक उपाङ्ग दर्शनके नामसे रख दिया गया और चौथेकी पूर्ति तन्त्रशास्त्रसे की गयी। यद्यपि तन्त्रके विषय अथर्ववेदमें आये हुए हैं तथापि तन्त्रोंको वेदके ऊपर आधारित नहीं माना जाता। सुतरां वैदिक और तान्त्रिक यह दोनों ही भिन्न-भिन्न-मार्ग समझे जाते हैं। पिछले अध्यायमें तन्त्रोंका विशद वर्णन हो चुका है। इसे हमने दर्शनोंके पूर्व इसलिए लिखा कि यद्यपि तान्त्रिक भिन्न मार्ग है तथापि वेदोंका विरोधी नहीं है। भगवान् महेश्वरने कलियुगके लिए इस विशेष-मार्गका उद्घाटन किया है परन्तु दर्शनोंमें ऐसे नास्तिक दर्शनोंकी भी गिनती की जाती है जिनमें वेदोंका स्पष्ट विरोध है। ऐसे दर्शन वेदोंके उपाङ्गोंमें नहीं गिनाये जाने चाहिए। परन्तु हम जान-बूझकर दर्शनोंका वर्णन करनेमें नास्तिक दर्शनोंका भी समावेश करते हैं।

इस ग्रन्थके आरम्भमें हिन्दू शब्दकी जैसी परिभाषा हमने की है उसके अनुसार हिन्दू शब्दमें वेदके विरोधी समुदायका भी समावेश होता है। हिन्दू आस्तिक भी हैं और नास्तिक भी।

इसलिए दर्शनोंके वर्णनमें दोनोंका वर्णन करना आवश्यक हुआ। इस समावेशके लिए हम अठारहों विद्याओंकी गणना कुछ थोड़ासा भिन्न प्रकारसे करते हैं। अर्थात् तन्त्र और नास्तिक दर्शनोंको भी उसी संख्यामें सम्मिलित करते हैं।

सर्वदर्शनसंग्रहमें चार्वाक, बौद्ध, आर्हत, पाशुपत, शैव, पूर्णप्रज्ञ, रामानुज, पाणिनीय और प्रत्यभिज्ञा इन नौ दर्शनोंका आस्तिक-छहों शास्त्रोंके साथ-साथ उल्लेख है। परन्तु इनमेंसे पाशुपत, पूर्णप्रज्ञ, रामानुज, पाणिनीय और प्रत्यभिज्ञा इन पाँचों दर्शनोंके कोई विशिष्ट साहित्य मेरे देखनेमें नहीं आये। चार्वाक-दर्शन भी कोई देखनेमें नहीं आया। परन्तु ऐसा अनुमान होता है कि बृहस्पति और चार्वाकके सिद्धान्त बहुत विस्तारसे नहीं हो सकते इसलिए इनपर कोई बृहत् साहित्य होनेकी सम्भावना नहीं दीखती। शैवदर्शनके सम्बन्धमें तो शैवपुराणों और आगमोंके अतिरिक्त सूत्रबद्ध कोई विशिष्ट शास्त्र ग्रन्थ देखनेमें नहीं आया है। बँगला विश्व-कोशवाले छः आस्तिक और छः नास्तिक दर्शनोंका वर्णन करते हैं परन्तु उनके छः नास्तिक दर्शन वास्तवमें तीन ही हैं क्योंकि चार्वाक और जैनके साथ-साथ उन्होंने बौद्धोंके चार दर्शन गिनाये हैं।

हिन्दू-विश्वविद्यालयके महोपाध्याय पण्डित राधाप्रसाद शास्त्रीने "प्राच्य दर्शन" नामका एक संग्रह ग्रन्थ लिखा है। उन्होंने भी छ' नास्तिक दर्शन जहाँ गिनाये हैं वहाँ चार दर्शन बौद्धोंके ही रखे हैं। शास्त्रीजीका दर्शनोंका वर्णन समन्वययुक्त है। आगेके अध्यायोंमें हम प्रत्येक दर्शनका वर्णन उन्हींके ग्रन्थके आधारपर देते हैं।

नास्तिक और आस्तिक दर्शनोंके लक्षण इस प्रकार कहे जाते हैं—

"नास्तिवेदोदितोलोक इति येषाम् मतिः स्थिरा ।
नास्तिकास्ते तथास्तीति मतिर्येषान्त आस्तिकः ॥१॥
अवैदिक प्रमाणानाम् सिद्धान्तानाम् प्रदर्शकाः ।
चार्वाकाद्याः षड्विधास्ते ख्याता लोकेषु नास्तिकाः ॥२॥
वेदप्रमाणकानीह प्रोचुर्ये दर्शनानि षट् ।
न्यायवैशेषिकादीनि स्मृतास्ते आस्तिकाभिधाः ॥३॥"

वेदोक्त परलोकोंके माननेवाले आस्तिक और न माननेवाले नास्तिक कहलाते हैं। चार्वाक, माध्यमिक, योगाचार, सौतान्त्रिक, वैभाषिक और आर्हत् ये छ' नास्तिक दर्शन हैं। वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और वेदान्त ये छः आस्तिक दर्शन कहलाते हैं। मनुष्यके विचारका विकास अत्यन्त स्थूल प्रत्यक्ष जगत्के अनुभवसे उद्भूत होकर धीरे-धीरे वास्तविक सत्ताके सूक्ष्मसे सूक्ष्म रहस्योंका भेदन करता है और इस प्रकार उसके अत्यन्त स्थूल ज्ञानका अन्त धीरे-धीरे अत्यन्त सूक्ष्म तत्व-ज्ञानमें होता है। हिन्दुओंके यह बारह दर्शन इसी क्रमविकासके परिचायक हैं। इसीलिये हम पहले नास्तिक दर्शनका वर्णन करके तब आस्तिक दर्शनोंका वर्णन करेंगे।

तिरपनवाँ अध्याय

चार्वाक दर्शन

नास्तिक दर्शन छः हैं, चार्वाक, माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक और आर्हत। इन सबमें वेदसे असम्मत मतका प्रतिपादन है। इसीलिए नास्तिक कहे जाते हैं। ये आर्य्यवेदोंको प्रमाण नहीं मानते। इन नास्तिकोंमेंसे चार्वाक मतका हम पहले वर्णन करते हैं। चार्वाक केवल प्रत्यक्षवादी है। उसके मतसे पृथ्वी, जल, तेज और वायु ये चार ही तत्व हैं जिनसे सब कुछ बना है। इन ही चारों तत्वोंके मेलसे यह देह है। जिस तरह जिन वस्तुओंके मेलसे शराब बनायी जाती है उनको पृथक्-पृथक् सेवन करनेसे नशा नहीं होता, किन्तु सबके संयोगसे निर्मित शराबसे ही मादकता उत्पन्न होती है, उसी तरह चारों तत्वोंके पृथक् स्थापनामें चैतन्य नहीं मालूम होता किन्तु इनके एक जगह मिल जानेसे शरीरमें ही चैतन्य उत्पन्न हो जाता है। शरीर जब विनष्ट हो जाता है तो उसके साथ-साथ चैतन्य भी नष्ट हो जाता है। इस प्रकार जीव इन भूतोंसे उत्पन्न होकर इन्हीं भूतोंमें नष्ट हो जाता है। मरकर उसका नामोनिशान भी नहीं रहता। अतः चैतन्य-विशिष्ट देह ही आत्मा है, देहसे अतिरिक्त आत्मा होनेका कोई प्रमाण नहीं है। यदि यह कहें कि आत्मा देहादि सङ्घातसे भिन्न है और देहमें गति आदि उसी तरह है जिस तरह सारथी और घोड़ेसे सञ्चालित रथमें तो इस अनुमानसे देहसे भिन्न चेतन मानना सम्भव हो जाता है परन्तु चार्वाकको यह मत अग्राह्य है। प्रत्यक्ष प्रमाणके अतिरिक्त अनुमानादि प्रमाण तो चार्वाकके सम्प्रदायमें मान्य नहीं है। उनके मतसे स्त्री-पुत्रादिके आलिङ्गनसे उत्पन्न सुख पुरुषार्थ है। और परलोक या स्वर्ग आदि सुख पुरुषार्थ नहीं है क्योंकि परलोक आदि प्रत्यक्ष नहीं हैं। यदि यह कहें कि स्त्री-पुत्रके स्पर्श आदिसे जो संसारमें सुख होता है वह दुःखसे मिला है, इसलिए पुरुषार्थ नहीं है, तो इसका उत्तर वह यों देते हैं कि यह तो ठीक है कि स्त्री पुत्र आदिके सम्बन्धसे जो सुख उत्पन्न होता है वह दु.खसे मिला हुआ है, क्योंकि इस सुखके वास्ते सामग्री बटोरनेमें बहुत आयास होता है, तथापि सुखके भोगनेके समय तो अवश्य ही प्राप्त दुःखको हटा लेते हैं या उसे सहकर भी सुख भोग लेते ही हैं। धान चाहनेवाला साथमें पुराल भी लाता है फिर उसे अलग करके धानको काममें लाता है। मछली खानेवाला काँटेको साथ लाता है पर खाती बेर काँटेको फेंक देता है। इसी तरह दुःखके भयसे सुख त्याज्य नहीं है। दुःख दूर करके सुख भोग्य है। मृगके भयसे कोई खेती करनेसे बाज नहीं आता। ऐसा कभी नहीं होता कि भिक्षुकोंसे सताये जानेके डरसे कोई रसोई करना छोड़ दे। प्रत्यक्ष सुखको त्यागनेवाला भीरु मूर्ख है और पशुसे भी गया-गुजरा है। जो लोग परलोकके स्वर्गसुखको अमिश्र शुद्ध सुख मानते हैं वह हवामें महल रचते हैं क्योंकि परलोक तो है ही नहीं, उसका सुख कैसा ? उसे प्राप्त करनेको यज्ञादि उपाय व्यर्थ हैं। इनके प्रवर्तक वेदादि धूर्तों और स्वार्थियोंकी रचना हैं जिन्होंने लोगोंसे धन पानेके लिए यह सब्ज बाग दिखाये हैं।

देह ही आत्मा है। काँटे आदिके सम्बन्धसे जो दुःख होता है वही नरक है। स्त्री-पुत्र धन, सम्पत्ति आदिसे जो सुख होता है वही स्वर्ग है। लोकमें प्रसिद्ध राजा ही परमेश्वर है। देहका नाश होना ही मोक्ष है। मैं पतला हूँ, मोटा हूँ, यह "मैं" का पतला मोटा व्यवहार देहात्मवादमें ही बन सकता है। अच्छा तो "मेरा शरीर" कहना कैसे ठीक है? क्या इससे शरीरसे पृथक् आत्माका बोध नहीं होता। नहीं, देखो कहते हैं, "राहुका सिर" यद्यपि राहु तो सिरका ही नाम है, धड़का नाम तो केतु है। जिस प्रकार अभेदमें ही भेदके आरोपसे "राहुका सिर" कहा करते हैं उसी तरह "मैं" से "शरीर" का अभेद होते हुए भी भेदका आरोप करके "मेरा शरीर" भी कह सकते हैं। अदृष्ट धर्माधर्म केवल आगम और अनुमान-से सिद्ध है और चार्वाक आगम और अनुमान नहीं मानते। फिर जगतकी विचित्र सृष्टि कैसे होती है? इसका उत्तर वह यों देते हैं कि जगत्का वैचित्र्य तो स्वभाव ही है।

"अग्निरुष्णो जलम् शीतम् शीतस्स्पर्शस्तथानिलः।
केनेदम् चित्रितम् तस्मात् स्वभावत्तद् व्यवस्थितिः ॥१॥"

अग्नि उष्ण है जल ठण्ढा है, वायु शीत स्पर्शवाला है। इस प्रकार किसने इन तत्वों-को विचित्र बनाया? किसीने नहीं। इन तत्वोंका वैसा विचित्र स्वभाव ही है।

बृहस्पतिने भी इसी तरह कहा है—

"न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।
नैव वर्णाश्रमादीनाम् क्रियाश्च फलदायिकाः ॥१॥
अग्निहोत्रम् त्रयोवेदास्त्रिदण्डम् भस्म गुण्ठनम्।
प्रज्ञापौरुष हीनानाम् जीविकेति बृहस्पतिः ॥२॥
पशुश्चेन्निहतः स्वर्गम् ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्रकस्मान्नहन्यते ॥३॥
मृतानामपि जन्तूनाम् श्राद्धम् चेत्तृप्ति कारणम्।
गच्छतामिह जन्तूनाम् व्यर्था पाथेय कल्पना ॥४॥
यदि गच्छेत् परम् लोकम् देहादेष विनिर्गतः।
कस्माद्भूयो न चायाति बन्धुस्नेह समाकुलः ॥५॥
ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह।
मृतानाम् प्रेत कार्याणि नत्वन्यद्विद्यतेक्वचित् ॥६॥"

परलोकमें होनेवाला न स्वर्ग है न मोक्ष है, न परलोकमें जानेवाला आत्मा ही है। वर्ण आश्रम आदिकी क्रिया भी अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन वर्णोंका अपना-अपना कर्म और ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ तथा सन्यास इन आश्रमोंके अपने-अपने कर्म भी यहाँ या जन्मान्तरमें फल नहीं देते हैं। अग्निहोत्र, तीनोंवेद, त्रिदण्ड और भस्म लगाना यह सब दम्भ प्रज्ञा और पौरुषसे हीन लोगोंकी जीविकाके लिए हैं ॥२॥

यज्ञमें मारा हुआ पशु यदि स्वर्गको जायगा तो यजमान अपने पिताको ही उस यज्ञमें क्यों नहीं मारता ॥३॥

मरे हुए प्राणियोंके भी तृप्तिका साधन यदि श्राद्ध होता है तो विदेश जानेवाले पुरुषों-

के राहखर्चके वास्ते वस्तुओंको लेना भी व्यर्थ है। यहाँ किसी ब्राह्मणको भोजन करा देवे या दान दे देवे, जहाँ रास्तेमें आवश्यक होगा वहीं वह वस्तु उसको मिल जायगी ॥४॥

यदि आत्मा देहसे पृथक् है वह इस देहसे निकल कर परलोकमें जाता है तो क्यों नहीं स्वजनोंके प्रेमसे व्याकुल हो पुनः लौट आता। लौटता नहीं इसीलिए देहसे अतिरिक्त आत्मा नहीं है ॥६॥

बात यह है कि ब्राह्मणोंने अपनी जीविकाका उपाय रचा है। मृतजीवोंका प्रेतकर्म्म किसी और उद्देश्यसे नहीं किया जाता ॥६॥

जगत्में मनुष्य प्रायः स्वाभाविक दृष्टफलके अनुरागी होते हैं। नीतिशास्त्र और कामशास्त्रके अनुसार अर्थ कामको ही पुरुषार्थ मानते हैं। पारलौकिक सुखको प्रायः नहीं मानते। कहते हैं कि किसने परलोक वा वहाँके सुखको देखा है? यह सब मनगढ़न्त बातें हैं। सत्य नहीं हैं। जो प्रत्यक्ष है वही सत्य है। "चार्वाकका कहना बहुत ठीक है, यह हमें भी सम्मत है" ऐसा निश्चय किये हुए चार्वाक-मतके अनुयायी बहुत हैं। इसलिए चार्वाक मतका एक दूसरा नाम लोकायत भी है। "लोकों" जनोंमें "आयत" फैला हुआ ही लोकायत है। अर्थात् अर्थ-कामको ही पुरुषार्थ माननेवाले मनुष्योंमें यह मत फैला हुआ है। यद्यपि चार्वाकका नाम प्रसिद्ध नहीं है तथापि उसका मत और उसका तर्क बहुत फैला हुआ है। संसारमें पाश्चात्य देशोंमें इस प्रकारका तर्क माननेवाले बहुत हैं। कुछ भेदके साथ अनेक ईसाई, मुसलमान और बहुतसे हिन्दूतक इसी विचारके पाये जाते हैं।

चौवनवाँ अध्याय

माध्यमिक दर्शन

बौद्धमत चार दर्शनोंमें विभक्त है। माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक। यह चारों अतिस्थूल, केवल प्रत्यक्ष प्रमाण माननेवाले चार्वाकसे सन्तुष्ट नहीं हैं। इसलिए यह प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण मानते हैं। इनका कहना है कि यदि अनुमान प्रमाण न माना जाता हो, तो पर्वतमें धुआँ देखकर बुद्धिमान आगके होनेका कभी अनुमान न करें। परन्तु व्यवहारमें इस तरहके अनुमान करते हैं। कोई विश्वसनीय आप्त पुरुष कहता है कि इस नदीके किनारे फल हैं। ऐसा सुनकर नदीके किनारे जानेकी प्रवृत्ति होती ही है। ऐसी प्रवृत्तिका मूल अनुमान ही है। प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं। वस्तुका विचार व्यवहारका कारण है और वस्तुविचार अनुमानके अधीन है। मनुष्यका व्यवहार अनुभवसे प्रारम्भ नहीं होता। प्रत्युत् व्यवहारसे ही अनुभवका आरम्भ होता है। अनुमानसे व्यवहार केवल वस्तुको देखकर और व्यवहारसे प्रत्यक्षानुभव होना प्राय सर्वत्र देखा जाता है। फिर न तो प्रवृत्त ही हो जाता है न निवृत्त ही होता है। प्रत्युत् इष्ट साधनत्व वा अनिष्ट साधनत्वका निश्चय जब कर लेता है तब दूध आदि इष्ट वस्तुको पाने और विष आदि अनिष्ट वस्तुको छोड़नेका यत्न करता है। यदि हमको कोई विष खिलाना चाहे तो हम कभी राजी न होंगे क्योंकि हम जानते हैं कि विषसे हम मर जायँगे क्योंकि विषसे अनेक मनुष्योंके मरनेकी बात हम सुन चुके हैं। विष खानेके परिणामका हमको प्रत्यक्ष नहीं है, केवल अनुमानके आधारपर हम विषको त्यागते हैं। अब बृहस्पतिकी इस उक्तिपर विचार कीजिये।

"न स्वर्गोनापवर्गश्च नैवात्मा पारलौकिकः।"

न स्वर्ग है न अपवर्ग है, परलोकसे सम्बन्ध रखनेवाला आत्मा भी नहीं है, यह किस प्रमाणसे कहा गया है ? न होना तो प्रत्यक्ष नहा हो सकता। यह दावा भी नहीं हो सकता कि हमने सारी सत्ताको प्रत्यक्ष कर लिया है, अथवा हम सर्वज्ञ हैं। अतः इतना ही कह सकते हैं कि प्रत्यक्षमें इनकी अनुपलब्धि है। जैसे बाँझको पूत नहीं हो सकता, उसी तरह परलोक आदि भी नहीं हो सकते। परन्तु यह अनुपलब्धि भी तो अनुमान ही है। प्रत्यक्ष कहाँ है ? अतः अनुपलब्धिके अनुमानको चार्वाकोंने भी स्वीकार ही कर लिया है। फिर अनुमानको विधिवत् प्रमाण क्यों न माना जाय ?

इसी तर्कके अनुसार बौद्धोंके चारों दर्शनवाले अनुमानको भी प्रमाण मानकर चार्वाक्-से भिन्न मत प्रतिपादित करते हैं।

अब पहले माध्यमिक दर्शनपर विचार करते हैं

माध्यमिक मतानुयायी कहते हैं कि जितनी वस्तुसत्ता है जितना भाव है सब क्षणिक है। जैसे हम बादलकी घटाएं प्रत्यक्ष देखते हैं, परन्तु क्षणमात्रमें ही नहीं मालूम वह कहाँ चली जाती है, उसी तरह सम्पूर्ण सत् पदार्थ क्षणिक हैं। सत्का लक्षण है—

"अर्थक्रियाकारित्वम् सत्त्वम्॥"

किसी वस्तुका क्रिया करनेका स्वभाव ही सत्ता है। काम हो गया सत्ता समाप्त हो गयी। यह माध्यमिक सिद्धान्त है। यदि पदार्थकी सत्ता स्थायी मानी जाय तो क्या "अर्थ क्रियाकारित्वम् सत्त्वम्" यह लक्षण नहीं घटता ? इस प्रश्नका उत्तर यह यों देते हैं कि सत्ता-को स्थायी मान लेनेपर किसी वस्तुकी क्रिया करनेके स्वभावको भी स्थायी मान लेना पड़ेगा। जैसे घड़ेमें जलके लानेकी क्रिया भी स्थायी मान लेनी पड़ेगी। किन्तु जल लानेकी क्रिया स्थायी हो नहीं सकती। घड़ा जब जब जल लाया, भूतकाल में। उसकी वह क्रिया समाप्त हो गयी। भविष्यमें भी इसी प्रकार क्रियाका एक परिमितकालमें अन्त हो ही जायगा, जैसे कि वर्तमान में होता है। अतः यह क्रिया स्थायी नहीं है। घड़ेका घड़ापन भी जल लानेपर ही निर्भर है। इसलिए वह घड़ा भी जो जल भूतकालमें लाया समाप्त हो गया। घड़ेके गुणोंमेंसे एक प्रधान गुण जलाहरणमें बराबर परिणाम वा परिवर्तन होते रहनेसे घड़ा भी बराबर बदलता रहा है, यद्यपि हम कहनेको वही घड़ा कहते हैं। अतः घड़ाकी सत्ता भी क्षणिक ही है। भूतकालमें बीजसे अङ्कुर, अङ्कुरसे दो दल, फिर तना, फिर शाखाएँ फिर पत्तियाँ आदि सब बनी। आज फूल फल रहा है। इस तरह अनुमान है कि तीनों कालमें बराबर परिवर्तन होते रहते हैं, किसी क्षणमें भी वही सत्ता नहीं रहती जो उसके पूर्वके क्षणमें थी। गङ्गाके लिए कहते हैं जो लाख बरस पहले थी वही गङ्गा आज भी है। परन्तु यह तो प्रत्यक्ष ही है कि गङ्गा बराबर बहती रहती है। जो जल एक क्षणमें एक स्थानमें है दूसरे क्षणमें और स्थानमें होता है। अतः गङ्गाके बहनेकी क्रिया जो उसमें गङ्गापन पैदा करती है क्षणिक है, अतः गङ्गाकी सत्ता भी क्षणिक ही है। इसी प्रकार माध्यमिक लोग जगत्को क्षणिक है, क्षणिक है, इस प्रकार कहा करते हैं। इसी प्रकार सब संसारका दु:खरूपत्व भी चिन्तन करना चाहिये, नहीं तो संसारसे निवृत्ति चाहनेवाले बुद्धिमान पुरुष भी उसके उपायमें प्रवृत्त नहीं होंगे। अर्थात् निवृत्तिके लिए यत्न नहीं करेंगे। जब संसारको दुःखरूप मानेंगे तो दुःखसे हटनेके लिए निवृत्तिके उपायोंमें प्रवृत्ति हो सकती है, अतः सब दुःख दुःख है, यह भावना करनी चाहिये। और भावनाएँ भी करनी चाहियें, जैसे यह संसार स्वलक्षण है स्वलक्षण है। यह क्यों ? इस प्रकार प्रश्नपूर्वक विचारमें कोई दृष्टान्त नहीं मिलता, क्योंकि पीछे बतायी हुई रीतिसे सब वस्तुओंके क्षणिक होनेसे समान लक्षणका अभाव है। अर्थात् इसके सदृश यह है, यह जिस समय कहेंगे उस समय वह क्षणिक वस्तु नहीं है और उसका समान लक्षण भी नहीं है। इस कारण यह इसके समान है यह कहना भी नहीं बनता, अतः सब वस्तु स्वलक्षण हैं, अपनेमें अपना ही लक्षण है। किसी वस्तुके समान किसी दूसरी वस्तुको नहीं कह सकते। अतः सब वस्तु "स्वलक्षण हैं, स्वलक्षण हैं" यही भावना करनी चाहिए।

इसी प्रकार "सब शून्य है, सब शून्य है" यह चौथी भावना भी करनी चाहिए। जितनी वस्तु हैं सब सत् हैं या असत् हैं वा सत् असत् उभय रूप हैं, या न सत है और न असत् ही है। यदि कहें कि घटादि पदार्थ सत् हैं तो कारक प्रयत्नकी कोई आवश्यकता नहीं, घटादि तो पहलेसे वर्तमान ही हैं तो कुम्हार, चाक, दण्ड, मिट्टी, धागा इन कारणोंका प्रयो-जन क्या है ? यदि घटादिकोंका असत् ही स्वभाव हो तो भी उक्त कुम्हार आदि कारणों-का कोई प्रयोजन नहीं है। जो चीज असत् है, जैसे बाँझका बेटा या आकाशका फूल, वह

चीज हजारों कारणोंके एकत्र होनेसे भी नहीं हो सकती है, और न कोई उसके बनानेका प्रयत्न करता है। यदि कहें कि सत् असत् उभय रूप हैं तो यह पक्ष भी इसलिए त्याज्य है कि जो सत् है वह असत् नहीं हो सकता और जो असत् है वह सत् नहीं हो सकता। यदि कहें कि जो सत् नहीं है वह असत् भी नहीं है तो यह वदतो-व्याघात है, क्योंकि जो सत् नहीं है वह असत् अवश्य होगा। जो असत् नहीं है वह सत् नहीं है यह कहना भी अनुचित है। जो असत् नहीं है वह अवश्य ही सत् होगा। अतः विरोध होनेसे न तो उभय पक्ष ठीक है और न अनुभव पक्ष ही ठीक है।

भगवान् बुद्ध कहते हैं—

"न सतः कारणापेक्षा व्योमादेरिव युज्यते।
कार्य्यस्यासम्भवी हेतुः खपुष्पादेरिवासतः ॥१॥
बुद्ध्या विविच्यमानानाम् स्वभावो नावधार्य्यते।
अतो निरभिलिप्यास्ते निःस्वभावश्च दर्शिताः ॥२॥
इदम् वस्तुवलायातम् यद्वदन्ति विपश्चितः।
यथायथाऽर्थाश्चिन्त्यन्ते विशीर्य्यन्ते तथातथा ॥"

सब क्षणिक हैं, सब क्षणिक है, दु ख है, दु.ख है, स्वलक्षण है, स्वलक्षण है, शून्य है, शून्य है, इस चार प्रकारकी भावनासे परम पुरुषार्थ अर्थात् मुक्ति मिलती है। पर वह निर्वाण वा मुक्ति शून्य है। इस शून्यमें सब वस्तुओंका लय हो जाना ही मुक्ति है। सर्वशून्यत्व-वादी माध्यमिकके मतकी यही स्थिति है। इसका नाम माध्यमिक इसलिए पड़ा कि बुद्धदेव-के उपदेशके अनुसार इस मतने आधी बात ले ली और आधी छोड़ दी। मध्यमें रहा इसलिए माध्यमिक कहलाया।

"शिष्यैस्तावद्योगश्चारश्चारश्चेति द्वयम् करणीयम्।
तत्राप्राप्तार्थस्य प्राप्तये यः पर्य्यनुयोगः सयोगः ॥"
गुरूक्तस्याङ्गीकरणमाचारः।

शिष्यको "योग" और "आचार" दोनोंका अनुष्ठान करना चाहिए। अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिके लिए पर्य्यनुयोग या शङ्काका उठाना "योग" है। गुरुके कहे हुएको अङ्गीकार करना यह "आचार" है। माध्यमिकोंने पर्य्यनुयोग तो नहीं किया पर गुरुके कहे हुएको स्वीकार कर लिया, इसलिए माध्यमिक कहलाये।

पचपनवाँ अध्याय

योगाचार दर्शन

बुद्धभगवान्‌के अनेक शिष्योंने पर्य्यनुयोग भी किया और गुरुके वचनोंको भी अङ्गीकार किया इसलिये वह योगाचार कहलाये। पिछले अध्यायमें वर्णित इन्होंने गुरुसे कही हुई चार भावनाओंके साथ-साथ बाह्य अर्थके शून्यत्वको भी अङ्गीकार किया है और अन्तरमें (बुद्धिमें) जो अर्थ हैं उनको शून्य किस प्रकार कहा जा सकता है, ऐसे पर्य्यनुयोग भी किये हैं। शङ्का भी उठायी है। स्वयं संवेदन अर्थात् बुद्धितत्व ज्ञानरूप वस्तु तो मानना ही चाहिए, नहीं तो जगत्‌में अन्धेरा ही अन्धेरा हो जायेगा, इसलिये यह सिद्ध हुआ कि ज्ञानसे अलग कोई वस्तु नहीं है। उन-उन वस्तुओंकी स्वरूप बुद्धि आप ही अपने स्वरूपको प्रकाश करती है, जैसे प्रकाश अपने स्वरूपका आप ही प्रकाश करता है उसी तरह बुद्धिको भी जानना चाहिए।

"नान्योऽनुभाव्यो बुद्ध्यस्ति तस्या नानुभवोऽपरः।
ग्राह्यग्राहक वैधुर्यात् स्वयं सैव प्रकाशते॥"

बुद्धिसे अनुभाव्य (अनुभवका विषय) पदार्थ कोई नहीं है, बुद्धिका अनुभव दूसरा कोई नहीं है। जो ग्रहण किया जाय और जो ग्रहणका साधन है। इन दोनोंका अभाव है इसीलिए बुद्धि आप ही आप प्रकाशको प्राप्त होती है। न कोई बुद्धिका प्रकाश करनेवाला है, न बुद्धिसे कोई वस्तु प्रकाश्य ही है। सब ज्ञान ही ज्ञान है, ग्राह्य विषय, ग्राहक बुद्धि इन दोनोंका अभेद अनुमानसे भी सिद्ध होता है। जो वस्तु जिससे जानी जाय वह उससे भिन्न नहीं होती। जैसे ज्ञानसे जो चक्षु आदि इन्द्रियाँ जानी जाती है ज्ञानसे भिन्न नहीं हैं। उन ज्ञानरूप इन्द्रियोंसे नील आदि जाने जाते हैं, ये भी ज्ञानसे भिन्न नहीं हैं। यदि भेद माने तो ज्ञानके साथ अर्थका सम्बन्ध नहीं बन सकता क्योंकि हमारे मतमें सम्बन्धके नियमका कारण जो तादात्म्य है वह भेदमें नहीं बन सकता। यदि यह कहें कि ग्राह्य, ग्राहक, ग्रहण अर्थात् ज्ञेय, ज्ञापक और ज्ञान इन तीन वस्तुओंका भेद स्पष्ट है फिर कैसे कहा जाता है कि भेद नहीं है ? इसका उत्तर यह है कि भेद भ्रम है। एक ही वस्तुको तीन रूपसे समझना है, जैसे कभी नेत्रको दबाकर चन्द्रमाको देखें तो चन्द्रमा दो मालूम होता है पर वह दोका ज्ञान भ्रम है। यथार्थ नहीं है। वास्तवमें एक ज्ञान ही ज्ञान है। यदि यह कहें कि एक चन्द्रमें दो चन्द्र यह भ्रम नेत्र दबानेके कारणसे है, उस निमित्तके हट जानेपर फिर चन्द्र एकका एक ही मालूम होता है, तो यहाँ तो ऐसा कोई निमित्त नहीं मालूम होता कि जिसके होनेसे ज्ञेय ज्ञाता, ज्ञान ये भेद भ्रम माने जावें और उस निमित्तको हटा देनेपर भ्रम हट जावे। जैसे स्वप्नमें कोई वास्तविकता नहीं होती एक ज्ञान ही नानारूपमें भासता है इस बहुरूपत्वका कारण भेद वासना मानी जाती है। वही भेद-वासना जाग्रतमें भी ज्ञानको ही नानारूपमें भान कराती है। उस वासनाका प्रवाह विच्छिन्न नहीं है, और

उसके आरम्भका भी पता नहीं चलता। यह वासना स्वयं ज्ञान ही है, क्योंकि ज्ञानके ही साथ उसकी सत्ता है। यहाँ शङ्का होती है कि यदि ऐसी बात है तो आशाके लड्डू और बाहरके लड्डू दोनोंके खानेमें समान तृप्ति होनी चाहिए। और शरीरमें रस वीर्य्य परिणाम भी एक जैसे होने चाहिए। पर वास्तवमें वेद्य और वेदकके आकारसे बुद्धि शून्य है अर्थात् वेद्याकार और वेदकाकार बुद्धि नहीं है तो भी व्यवहार करनेवालोंके ज्ञानके अनुसार भिन्न भिन्न ग्राह्य और ग्राहक जो ही पदार्थ हैं सबके सब ज्ञानके ही आकार हैं। जैसे हाथ पाँव, आँख कान, नाक आदि एक ही व्यक्तिके विविध अङ्ग है उसी तरह घटपट आदि अनेक वस्तु ज्ञानके आकार हैं। अतएव आकारवाले ज्ञानसे जो बाहर लड्डू आदि पदार्थ कहे जाते हैं उन्हींसे तृप्ति होती है आकार-रहित ज्ञानसे नहीं। यहाँ यह सिद्ध हुआ कि यद्यपि यह सिद्धान्त "बाहरके पदार्थ शून्य हैं" स्थिर है, तथापि आन्तर पदार्थ जो हमारेमें ज्ञान भासता है, शून्य नहीं है। जब क्षणिक-क्षणिक, दुःख दुःख, स्वलक्षण-स्वलक्षण, शून्य शून्य, इन चार प्रकारकी भावनाओंका हम अभ्यास करेंगे तब धीरे-धीरे मोक्षके प्रतिबन्धक अनेक प्रकारके विषयका स्वरूप नष्ट होगा और विशुद्ध विज्ञानका उदय होगा, अर्थात् केवल ज्ञान-ज्ञान यही ज्ञान है। यही मोक्ष कहा जाता है। यह शुद्ध ज्ञान नित्य नहीं है, क्षणिक है। दीपककी कलिकाकी तरह धारा-रूपसे बना रहता है। योगाचार नामवाले बौद्ध बुद्धदेवके उपदेशकी चार भावनाएँ मानते हैं। उनके शून्यवादको भी मानते हैं। परन्तु स्वयं शङ्का उठाते हैं और आन्तर पदार्थ ज्ञानको शून्य नहीं मानते। माध्यमिक बौद्धोंने शून्यकी प्राप्ति मुक्ति मानी है। योगाचार बौद्धोंने शुद्ध विज्ञानके उदयको मुक्ति माना है। उन्होंने शङ्का भी उठायी और अपने गुरुके उपदेशको आचरणमें भी लाये। इसीलिये योगाचार कहलाये।

छप्पनवाँ अध्याय

सौत्रान्तिक दर्शन

बुद्धदेवके तीसरे शिष्य सौत्रान्तिक हैं। उनका कहना है कि योगाचारका यह कथन कि बाहरकी वस्तुएँ सब-की-सब शून्य हैं, असङ्गत है, क्योंकि जो आन्तर-वस्तु-ज्ञान माना गया है उसका शुद्ध आकार 'अहम्, अहम्' यह ज्ञान है। यदि नील आदि अर्थ ज्ञानके आकार हैं तो इनमें 'अहम्' इस ज्ञानका भी मान होना चाहिए। अर्थात् नील आदि पदार्थमें "मैं" का ज्ञान होना चाहिए, 'इदम्'का ज्ञान न होना चाहिए। परन्तु नील आदि अर्थोंमें 'इदम्' का ही ज्ञान होता है। 'अहम्'(मैं)का ज्ञान नहीं होता। 'यह' और 'मैं' इन दोनों ज्ञानोंमें अत्यन्त भारी भेद है। 'यह' का ज्ञान सब अवस्थाओंमें नहीं होता। केवल जाग्रत और स्वप्नमें ही होता है। अथवा जब बाहर वस्तुओंकी सत्ता होती है तभी होता है। सुषुप्ति-में "यह"का ज्ञान कभी नहीं होता। 'अहम्'का ज्ञान तो सब अवस्थाओंमें है। पर जाग्रत और स्वप्नमें तो 'यह' और 'अहम्' ये दोनों ज्ञान होते हैं। सुषुप्तिमें केवल 'अहम्' यही ज्ञान होता है। अतएव 'इदम्' और 'अहम्' अर्थात् 'ये' और 'मैं' ये दोनों ज्ञान एक नहीं हैं, इन दोनोंका अत्यन्त भेद है। यदि एक है तो क्या 'इदम्' 'अहम्' है या 'अहम्' 'इदम्' है ? यदि कहें कि 'इदम्' 'अहम्' है तो नील आदि अर्थोंमें 'अहम्'का ज्ञान होना उचित है। और जो कहें कि 'अहम्' 'इदम्' है तो ज्ञाता ही ज्ञेय बन जाता है।

ज्ञानके विषय नील आदि वस्तु ज्ञानसे भिन्न न हुए तो नील आदि वस्तुओंमें अहम् ज्ञान निर्बाध होना चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं होता। अतः 'इदम्' अहम् नहीं है। यदि 'अहम्' 'इदम्' है यह मान लिया जाय तो जाग्रत स्वप्नमें ही 'यह' के स्थानमें 'मैं' ज्ञान होना ठीक है। सुषुप्तिमें तो 'यह' ज्ञान नहीं होता अतः 'मैं' ज्ञान भी नहीं होता। यह कल्पना भी असङ्गत ठहरती है। अगत्या 'यह' और 'मैं' इनका अत्यन्त भेद ही मानना पड़ता है। जिस प्रकार 'अहम्' ज्ञान शून्य नहीं है इसी प्रकार 'इदम्' ज्ञान भी शून्य नहीं है, 'इदम्' ज्ञानके विषयमें बाह्य अर्थ भी हैं, वह भी शून्य नहीं है। यदि योगाचार कहें कि ज्ञान स्वरूप भी नील आकार बाहर वस्तुओंके समान भ्रान्ति द्वारा ज्ञानसे भिन्न भासता है तो यह भी नहीं कह सकते कि बाहर वस्तुओंकी सत्ता तो योगाचारी मानते ही नहीं फिर बाहर वस्तुओंकी नाईं कहकर दृष्टान्त देकर अनुमान कैसे कर सकते हैं। क्या कोई बुद्धिमान ऐसा कह सकता है कि देवदत्त वन्ध्या-पुत्रकी तरह देख पड़ता है। 'इदम्' और 'अहम्'की एकता माननेमें अन्योन्याश्रय दोष भी आता है। अतः दोनोंकी एकता अप्रसिद्ध है। ज्ञानके आकारसे ही हम ज्ञेय वस्तुका अनुमान करते हैं। पुष्टिसे भोजन, भाषासे देश, गद्गदवाणीसे स्नेहका अनुमान किया जाता है, उसी तरह ज्ञानके आकारसे बाहरी ज्ञेय वस्तुओंकी सत्ताका, अनुमान किया जाता है। बाहरी वस्तु है, इस प्रतिज्ञाकी सिद्धिमें अनुमानका प्रयोग सौत्रा-न्तिक इस प्रकार करते हैं। जिसके होते हुए जो वस्तु कदाचित् है वह उससे भिन्न है। जैसे

दीपकके होते हुए घटादि कदाचित हैं अतः दीपसे भिन्न हैं, उसी तरह विवादवाला प्रवृत्ति-ज्ञान (विषयोंमें ज्ञान) आलय-विज्ञान (अहमूज्ञान)के होते हुए होता है, अतएव आलय-विज्ञानसे प्रवृत्ति विज्ञान भिन्न है। अर्थात् नील आदि विषयको ग्रहण करनेवाला आलय-विज्ञान भिन्न है और प्रवृत्ति-विज्ञान भिन्न है। प्रवृत्ति-विज्ञानके हेतु बाह्य अर्थ भी हैं, यह अनुमान किया जाता है, अर्थात् बाह्य अर्थ अनुमानसे सिद्ध होता है। यह यहाँ तत्व है, ज्ञान-सन्तान ही आत्मा है जो क्षणिक है और वृक्षकी तरह आरोह परिणाह, ऊपर नीचे समविस्तारवाला है। उस वृक्षके पाँच स्कन्ध हैं। प्रत्येक स्कन्धसे शाखाएँ प्रतिशाखाएँ भी निकली हैं। रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा और संस्कार यही पाँच स्कन्ध हैं। जो निरूपित हो, या जिसका निरूपण किया जाय वह रूप है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध निरूपित हैं। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु रसना, घ्राणसे निरूपण किया जाता है। इस प्रकार रूप स्कन्धमें पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ और उनके पाँचों विषय आ गये। आलय-विज्ञान और प्रवृत्ति-विज्ञान दोनों मिलाकर विज्ञानस्कन्ध हुआ। रूप-स्कन्ध और विज्ञानस्कन्धके सम्बन्धसे उपजे सुख-दुःखादि प्रत्ययके प्रवाहको वेदनास्कन्ध कहते हैं। वेदनास्कन्ध और रूपस्कन्धसे उपजे राग द्वेष काम आदि क्लेश, मदमान आदि उपक्लेश, तथा धर्म और अधर्म "संसार स्कन्ध" कहलाते हैं। नामका प्रपञ्च (विस्तार) संज्ञास्कन्ध है। भीतर और बाहर फैली हुई इन शाखाओंसे सुशोभित ज्ञान रूप वृक्ष आत्मा है। "यही सम्पूर्ण दुःख, दुःखका स्थान और दुःखका साधन है।" ऐसी भावना दृढ़ करके उसके निरोधका उपाय करे। यह उपाय तत्वज्ञानसे ही साध्य है। तत्वज्ञानके यह चार उपाय हैं। दुःख, आयतन, समुदाय, मार्ग। पहले कहे हुए पाँच स्कन्ध दुःख हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच विषय, मन और बुद्धि ये बारह आयतन हैं अर्थात् दुःखके स्थान हैं। राग, द्वेष, मद, मान और दम्भादिका समूह जो मनुष्योंके हृदयमें उत्पन्न होता है, वह समु-दाय है। यह समुदाय दुःखका साधन है। 'सब ही क्षणिक हैं' ऐसी स्थिर भावना मार्ग है। ऐसे उत्तम तत्व ज्ञानसे मोक्ष होता है। सो यह तत्वज्ञान 'सब क्षणिक क्षणिक, दुःख दुःख, स्वलक्षण स्वलक्षण, शून्य शून्य हैं" इन चार भावनाओंके दृढ़ हो जानेसे होता है। बुद्धदेवके सूत्र, संक्षिप्त वाक्यके अन्त रहस्यको इस शिष्यने इस प्रकार जाना है। इसीलिए इस बौद्ध-दर्शनका नाम सौत्रान्तिक पड़ा।

सत्तावनवाँ अध्याय

वैभाषिक दर्शन

बुद्धदेवके चार शिष्योंमेंसे पहले शिष्य माध्यमिकने सब पदार्थोंको सत्य तथा बाह्य पदार्थोंको शून्य माना। दूसरे योगाचारने बौद्ध पदार्थको सत्य तथा बाह्य पदार्थोंको शून्य माना। तीसरे सौत्रान्तिकने बौद्ध तथा बाह्य दोनों प्रकारकी वस्तुओंको सत्य माना। बौद्ध पदार्थोंको प्रत्यक्ष प्रमाणसे प्रमाणित किया और बाह्य पदार्थोंको अनुमान प्रमाणसे सिद्ध किया। चौथे वैभाषिकने बाह्य पदार्थोंको प्रत्यक्ष सिद्ध माना क्योंकि बाह्य विषय जिनमें इन्द्रिय और अर्थके सम्बन्धसे ज्ञान होता है प्रत्यक्ष हैं। प्रत्यक्ष शब्दका अर्थ भी है अक्षि इन्द्रियके प्रति ज्ञान। आँखों देखी बात, प्रत्यक्षसे सिद्ध वस्तुमें अनुमान लगानेकी जरूरत नहीं है। और प्रत्यक्षको अनुमान कहना यह सबके ही अनुभवके विपरीत है। इसलिए जहाँ इन्द्रिय और उसके विषयके सम्बन्धसे ज्ञान होता है, वहाँ बाह्य-वस्तुओंका ज्ञान "प्रत्यक्ष" ही है। जहाँ धुआँ देखकर हम आगकी अटकल लगाते हैं वहाँ इन्द्रियके विषयका परस्पर सन्धान होनेसे "अनुमान" प्रमाण मानना उचित ही है। सौत्रान्तिक कहते हैं कि पदार्थ दो प्रकारके हैं, ग्राह्य और अध्यवसेय।

"ग्रहणम् नाम प्रत्यक्षज्ञानम् विकल्पविनिर्मुक्तंप्रमाणम्।
अध्यवसायो नामा विसंवादिकल्पनारूपम्नुमानम्॥"

विकल्प (भ्रम)से रहित प्रत्यक्ष ज्ञान (इन्द्रिय और उसके विषयके सम्बन्धसे उत्पन्न ज्ञान) ग्रहण है, वही प्रमाण है। जिस कल्पनामें विरुद्ध संवाद न हो, (अर्थात् सव्यभिचार[१], विरुद्ध[२], सत्प्रतिपक्ष[३], असिद्ध[४], बाधित[५] यह पांच हेत्वाभास जिसमें नहीं आते) उस कल्पनासे प्राप्त ज्ञान अनुमान है। वही "अध्यवसाय"ता है। प्रत्यक्षसे सिद्ध वस्तु "ग्राह्य"है, अनुमानसे सिद्ध वस्तु "अध्यवसेय" है। जहाँ साध्यका अभाव हो वहाँ जिस हेतुकी वृत्ति हो वह हेतु (१) सव्यभिचार है। यथा—

"घटो द्रव्यम् प्रमेयत्वात्"

घट द्रव्य है, प्रेमयत्व हेतुसे। यहाँ घटमें द्रव्यत्व साध्य है। द्रव्यत्वका अभाव गुणमें हैं और वहाँ भी प्रमेयत्व विद्यमान है, इसलिए यह हेतु व्यभिचारी है। (२) विरुद्ध हेतु वह है जो साध्यवाली वस्तुमें रहे ही नहीं, जैसे—

'घटो द्रव्यम् निर्गुणत्वात् निष्क्रियत्वाद्वा।'

घट द्रव्य है निर्गुण और निष्क्रिय होनेसे। यहाँ साध्य द्रव्यत्ववाले घटमें निर्गुणत्व निष्क्रियत्व नहीं है क्योंकि घट गुणवाला और क्रियावाला भी हो तो गुणका अभाव और क्रियाका अभाव नहीं कहा जा सकता, इसलिए यह हेतु विरोधी है। (३) सत्प्रतिपक्ष वह हेत्वाभास है जिस हेतुके साध्याभावका साधक हेतु अन्य हो, जैसे—

'शब्दोऽनित्यः कृतकत्वात् घटवत्"

शब्द अनित्य है, बनानेसे, घटकी तरह। यहाँ शब्दमें अनित्यत्व-धर्म साध्य है उसका

साधक हेतु कृतकत्व है, साध्याभाव है नित्यत्व और इसका साधक दूसरा हेतु है श्रावणत्व, जैसे इस अनुमानमें—

"शब्दो नित्यः श्रावणत्वात् शब्दत्ववत्"

शब्द नित्य है सुने जानेसे, शब्दत्वके तुल्य। यह दोनों अनुमान नहीं ठहरते क्योंकि इसमें सत्प्रतिपक्ष नामक हेत्वाभास है। (४) असिद्ध वह हेत्वाभास है जहाँ हेतुके स्वरूपमें अयुक्तता आदि दोष हों जैसे—"ह्रदो द्रव्यम् धूमवत्वात्" तालाब द्रव्य है, धूमवाला होनेसे। यहाँ "धूमवाला" कहना असिद्ध है, क्योंकि तालाबमें धूमके समान दीखनेवाला वाष्प है, धूम नहीं है। वह धूम अनुमानमें हेतुरूपसे विवक्षित नहीं है। इस प्रकार हेत्वाभास दोष जिसमें आ जावे वह विसंवादि अनुमान है और जिसमें हेत्वाभास दोष न आवे वह अवि-संवादी अनुमान है। उस अनुमानको अध्यवसेय तथा अध्यवसाय इन शब्दोंसे कहते हैं। यदि अनुमान ज्ञान सविकल्प (सभ्रम) हो तो वह प्रमाण नहीं है। किसी आप्तकी उक्ति है—

"कल्पनाऽपोढमभ्रान्तम् प्रत्यक्षम् निर्विल्पकम्।
विकल्पो वस्तु निर्भासादविसंवाद्युपप्लवः ॥१॥
ग्राह्यं वस्तु प्रमाणम् हि ग्रहणम् यदतोऽन्यथा।
न तद्वस्तु न तन्मामम् शब्द लिङ्गेन्द्रियादिजम् ॥२॥"

कल्पना और भ्रान्तिसे रहित प्रत्यक्षका नाम निर्विकल्पक है। वस्तुके निर्भाससे विकल्प (भ्रम) ज्ञान होता है। अविसंवाद (सबकी असम्मति)से उपप्लव (विघ्न) होता है अर्थात् जिस वस्तुको सिद्ध करना चाहते हैं वह सिद्ध नहीं होती। वस्तु ग्राह्य है, प्रमाण ग्रहण है। जो कुछ इससे भिन्न है वह शब्द, लिंग (हेतु) और इन्द्रियादिसे उत्पन्न ज्ञान, अर्थात् जो उक्त भ्रम और विघ्नके साथ है न तो 'वस्तु' ग्राह्य है और न मान वा प्रमाण ग्रहण है।

वैभाषिक शिष्योंने पूर्वोक्त तीन शिष्योंके प्रति बुद्धदेवके उक्त विरुद्ध (भाषा) कथन-को देखा और सोचने लगे कि महात्मा बुद्धदेवने ऐसे विरुद्ध "भाषण" क्यों किये। सोचते सोचते इस विरुद्ध उपदेशके तत्वको जान लिया, अतः बुद्धदेवके 'विरुद्ध भाषा'के तत्वको जान लेनेसे इनकी वैभाषिक संज्ञा हुई। वैभाषिकोंका कहना है कि भगवान् बुद्धके विरोधी उपदेशोंका प्रकृत रहस्य हमने ही समझा है। भगवान्ने, इस दृष्टिसे कि बाहर और बुद्धिमें सम्पूर्ण पदार्थोंके होते हुए भी उन पदार्थोंमें ही शिष्य आसक्त न हो जाय प्रथम शिष्यके प्रति 'सब शून्य है' यह उपदेश किया। दूसरे शिष्यको देखा कि विज्ञान ही विज्ञान है दूसरी कोई बाहरी वस्तु नहीं है वह इस सिद्धान्तपर आग्रही है तो उस शिष्यको विज्ञान सत् और शून्य है यह उपदेश किया। तीसरे शिष्यको देखा कि बाहर और बुद्धिके भीतर दोनों पदार्थोंको सत मानता है, बुद्धिके पदार्थोंको प्रत्यक्ष और बाहरके पदार्थोंको अनुमेय मानता है, तो उस शिष्यको दोनों सत् हैं। यह उपदेश किया। इस प्रकार अधिकारी भेदसे उनके उपदेशोंमें भी भेद पड़ गया। बौद्धचित्त-विवरणनामक ग्रन्थमें वैभाषिकोंने इसी प्रकार कहा है—

"देशानाम् लोकनाथानाम् सत्वाशयवशानुगाः।
भिद्यन्ते बौद्धालोके उपायैर्बहुधा किल ॥"
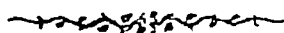
अट्ठावनवाँ अध्याय

सङ्कीर्ण बौद्धमत

यद्यपि इन चारों शिष्योंके उपदेष्टा भगवान् बुद्ध एक ही हैं तो भी शिष्योंके ज्ञान भेदसे उपदेशके चार भेद हो गये हैं। "सूर्यास्त हो गया" इसका वाच्यार्थ तो सीधा यही है कि शाम हो गयी, सूरज छिप गया, परन्तु अपने अधिकारके अनुसार (प्रसङ्ग, परिस्थिति, रुचि आदिके अनुसार) उसके विविध ध्वनितार्थ लेते हैं। लुटेरेने इस वाक्यसे यह समझा कि लूटनेका समय आ गया अब हम लूटें। मज़दूरोंने समझा अब हमारी छुट्टीका समय हो गया। ब्रह्मचारियोंने विचारा कि अब हमें सन्ध्या करनी चाहिए। किसी भीरुने यह समझ लिया कि दूर मत जाओ रात हो गयी, कोई चोर रास्तेमें लूट लेगा। ग्वालेने समझा, अब गौओंको घर ले जानेका समय है। गरमीसे तपा हुआ पुरुष इस वाक्यको सुनकर समझता है, अब गरमी घटी ठण्ढका समय आ गया मुझको सुख मिलेगा। दूकानदारने इस वाक्यसे यह अर्थ लिया कि अब दुकान बढ़ानी चाहिए। किसी विरहीने सोचा कि सन्ध्या हो गयी अभीतक मेरा प्रिय नहीं आया। इस प्रकार अधिकारी भेदसे एक ही वाक्यसे नाना अर्थ व्यक्त हो सकते हैं। बुद्धदेवका "सब क्षणिक-क्षणिक, दुःख-दुःख, स्वलक्षण-स्वलक्षण, शून्य-शून्य है" इस उपदेश-वाक्यसे इसी प्रकार अपने अधिकारभेदसे चारों शिष्योंने अपने-अपने अनुकूल चार अर्थ निकाले। यह चार प्रकारका बौद्धमत "विवेक विलास" ग्रन्थमें इस प्रकार संगृहीत है।

"बौद्धानां सुगतो देवो विश्वञ्च क्षणभङ्गुरम्।
आर्य्य-सत्वाख्यया तत्वं चतुष्टयमिदम् क्रमात्॥
दुःखमायतनम् चैव ततः समुदयो मतः।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामियम्॥
दुःखम् संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्च प्रकीर्तिताः।
विज्ञानम् वेदनासंज्ञा संस्कारोरूपमेव च॥
पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषयाः पञ्च मानसम्।
धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानिहि॥
रागादीनाम् गणो योऽसौ समुदेति नृणाम् हृदि।
आत्मात्मीय स्वभावाख्यः सस्यात्समुदयः पुनः॥
क्षणिकास्सर्वे संस्कारा इति या वासना स्थिरा।
समार्ग इति विज्ञेयः स च मोक्षोऽभिधीयते॥
प्रत्यक्षमनुमानञ्च प्रमाणद्वितयम् मतम्।
चतुः प्रस्थानिका बौद्धाः ख्याता वैभाषिकादयः॥
अर्थो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण बहुमन्यते।

सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्ष ग्राह्योऽर्थोन बहिर्मतः ॥
आकार सहिता बुद्धिर्योगाचारेण सम्मता ।
केवलाम् सविदम् स्वस्थाम् मन्यते मध्यमाः पुनः ॥
रागादि ज्ञान सन्तान वासनाच्छेद सम्भवा ।
चतुर्णामपि बौद्धानाम् मुक्तिरेषा प्रकीर्तिता ॥
कृतिः कमण्डलुर्मौण्ड्यम् चीरम् पूर्वाह्न भोजनम् ।
सङ्घो रक्ताम्बरत्वञ्च शिश्रिये बौद्धभिक्षुभिः ॥

उनसठवाँ अध्याय

आर्हत दर्शन

माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक यह चारों बौद्ध-दर्शन हैं। आर्हत वा जैन दर्शन बौद्धोंके इस मतका विरोधी है कि सब क्षणिक है। वह तो जगतको अनादि मानते हैं। क्षणिकवाले पक्षका वह यों खण्डन करते हैं। यदि आत्मा स्थिर न माना जावे तो जगत्‌में जितने कर्म फलके लिए किये जाते हैं सब व्यर्थ हैं क्योंकि जो करनेवाला है वह क्षणिक होनेसे नष्ट हो गया। वह तो रहा ही नहीं उसके कर्म फलको भोगेगा कौन? यदि यह माना जाय कि करनेवालेसे भिन्न और कोई क्षणिक पदार्थ है जो फलको भोगता है तो यह उचित नहीं प्रतीत होता कि कर्म करनेवाला और हो और उसके फलको भोगनेवाला उससे भिन्न कोई दूसरा हो। सर्व साधारणका ज्ञान भी यही है कि "जो कुछ मैंने पहिले कर्म किये हैं उसीका ही फल भोग रहा हूँ।" इस ज्ञानमें कर्म करनेका साक्षी और फल भोगनेका साक्षी कोई एक स्थायी आत्मा ज्ञात होता है। वह एक है ही नहीं तो फल भोगने-वालेमें भोगकालसे पहलेके किये हुए कर्मोंका स्मरण नहीं हो सकता। स्मृति और अनुभव एक ही आधारमें होते हैं। देवदत्तने काशी देखी है, यज्ञदत्तने नहीं, तो यज्ञदत्त कभी काशी-को स्मरण नहीं कर सकता। जिस देवदत्तने अनुभव किया वही स्मरण करता है। इसी प्रकार शिमलेको अनुभव करनेवाला यज्ञदत्त ही स्मरण करता है, देवदत्त नहीं। इसलिए आत्मा अनुभव तथा स्मरणमें एक है और इसलिए स्थायी सिद्ध होता है।

यदि आत्माको स्थायी न माने तो राजनैतिक दण्डादि व्यवहार भी नहीं हो सकते। फिर जगत्‌में उपकार प्रत्युपकारका व्यवहार क्या होगा। संसारमें सम्पूर्ण व्यवहारोंका लोप हो जाएगा। जिस चोरने चोरी की वह क्षणिक है उसी क्षणमें नष्ट हो गया, वह राजदण्डके समयमें नहीं है। अब राजा जिसको दण्ड देता है वह अपराधी नहीं है, जो अपराधी है उसको दण्ड नहीं दिया जा सकता क्योंकि वह क्षणिक है वह आपही पहले नष्ट हो गया है। इसलिए राजदण्डका विलोप हो गया। इसी तरह जिस मित्रने उपकार किया है वह मित्र प्रत्युपकारके समयमें नहीं है अतः उपकारके प्रति उपकारका होना असम्भव ही होगा। इस प्रकार क्षणिकवादमें सब व्यवहारोंका विलोप होगा। जो व्यवहार करता है, फलको उद्देश रखकर ही करता है। परन्तु जब व्यवहार करनेवाला आत्मा क्षणिक है, तो फल कालमें रहेगा ही नहीं। फिर फलके उद्देशसे उसकी प्रवृत्ति क्योंकर होगी? इस कारण सब व्यव-हारोंका नाश हो जायगा, अतः सिद्ध हुआ कि आत्मा स्थिर है क्षणिक नहीं है। इसपर बौद्ध कहते हैं कि प्रमाणसे जो वस्तु सिद्ध हो उसका निवारण कभी नहीं हो सकता। जो सत है वह क्षणिक है, इस व्याप्तिको आश्रय कर सत्व हेतुसे क्षणिकताका अनुमान सब वस्तुओंमें कर आये हैं और स्थायी पक्षका खण्डन भी कर चुके हैं। इसलिए क्षणिकवाद त्याज्य नहीं हो सकता। व्यवहार विलोपादि दूषण तो नहीं आ सकते, क्योंकि क्षणिकता पक्षका अनुसरण

करते हुए क्षणिक पदार्थोंकी एक जातिके सन्तान प्रवाहको मानकर पूर्व पूर्व ज्ञानके कर्मोंका कर्त्ता उत्तर-उत्तर ज्ञानके फलोंका भोक्ता मान लिया जाय, तो समान सन्तान-प्रवाहमें ही अनुभव स्मृतिका समानाधिकरण, राजदण्डादि व्यवहार और मित्रके उपकार-प्रत्युपकार व्यवहार भी अबाधित सिद्ध होंगे, इस प्रकार किसी व्यवहारका विलोप नहीं होगा। मीठे रसवाला आम्रबीज भूमिमें बोया जाता है, वह बीज आप यद्यपि नष्ट हो जाता है तो भी अपने मधुर रसको अङ्कुर-शाखा आदिमें देते हुए फूल-फलमें देता है। इसी प्रकार ज्ञान आप नष्ट भी होकर उत्तर ज्ञानमें अपने अनुभव संस्कारको देता हुआ स्मृति करा देता है और सब व्यवहारोंको सिद्ध करता है।

इसी प्रकार कपासका बीज लाखके रङ्गमें रँगकर खेतमें बोया जाय तो वह बीज आप नष्ट भी हो जाता है तो भी अपने धारण किए हुए उस रक्तगुणको अङ्कुरादि अवयवोंमें लाता हुआ पुष्पोंमें भी लाता है। इसी तरह पूर्व-पूर्व ज्ञान नष्ट होता हुआ भी अपने अनुभव सस्कारोंको उत्तर-उत्तर विज्ञानमें दे देता है। यह सब संसारका अनुभव-सिद्ध है, इसलिए क्षणिकवादमें कोई दोष नहीं है। इसपर जैन पक्ष यह उत्तर देता है—वादी प्रतिवादी दोनों जिसे मानें वही दृष्टान्त सब क्षणिक हैं। सत्त्व होनेसे, मेघपटलकी तरह इस अनुमान वाक्यमें बौद्ध लोग मेघपटलका जो दृष्टान्त क्षणिकता दिखानेको देते हैं वही जैनोंको मान्य नहीं। वह घनपटलको ही क्षणिक नहीं मानते। घनपटलका क्षणिकत्व ही सिद्ध दृष्टान्त नहीं है। दृष्टान्तके अभावसे अनुमानका भी अभाव होगा। जहाँ सत्व है वहाँ क्षणिकत्व है, इस व्याप्तिका भी निश्चय न होनेसे दृष्टान्तका अभाव है। क्षणिकत्वका अनुमान नहीं बनता। यदि यह कहें कि और किसी हेतुसे दृष्टान्तमें क्षणिकत्व निश्चय कर पीछे सब वस्तुओंमें क्षणिकत्वका अनुमान करें तो उसी हेत्वन्तरसे और सब वस्तुओंमें भी क्षणिकत्व सिद्ध है, फिर क्या आवश्यकता है कि सत्व हेतुसे सब वस्तुओंमें क्षणिकत्व सिद्ध किया जाय। इस प्रकार क्षणिकवाद अत्यन्त हेय प्रतीत होता है। यहाँ पूर्ववादी कहता है कि अर्थ और क्रियाको जो करता है वह सत् है, और सत् ही क्षणिक है यह कहना ठीक है, क्योंकि घटादि पदार्थोंको यदि स्थायी मानें तो पहलेसे ही घटादि मिट्टी है, कुम्हार आदि कारणोंकी क्या अपेक्षा है? यदि असत् मानें तो हजारों कारणोंके व्यापार कभी भी घटादिकोंको बना नहीं सकते। इसलिए सब क्षणिक हैं। इसका समाधान उत्तर पक्ष इस प्रकार करता है कि जब कभी हम अन्धेरेमें जाते हुए लम्बी पड़ी हुई पतली लकड़ीको देखते हैं तो लकड़ी सर्प रूपसे भासती है, तब मनमें भय, शरीरमें कम्पादि क्रिया होती है, और मूर्छा, शरीरका टूटना, इत्यादि फल भी हो जाते हैं, इस कारणसे अर्थ और क्रिया दोनोंको करनेवाला मिथ्या सर्प है। यहाँ भी सत्वका लक्षण आ गया, मिथ्या सर्पको भी सत् कहना पड़ेगा, अत. उक्त लक्षण सत्का ठीक नहीं है। उत्पत्ति और विनाश इन दोनोंसे जो रहित है वह सत्व है, यही लक्षण उचित प्रतीत होता है। इस लक्षणके होनेपर सत्व हेतुसे पदार्थकी क्षणिकता नहीं सिद्ध होती। प्रत्युत् उत्पादनादि धर्म्मसे रहित सत् जिसमें है वह स्थायी है, यह उसके विपरीत सिद्ध होता है। और जो बौद्धोंने ज्ञान-सन्तान मानकर पूर्व-पूर्व ज्ञानको कर्ता उत्तर-उत्तर विज्ञानको फल भोक्ता माना है, और इसकी सिद्धिके लिए बीज और कपासके बीजको दृष्टान्त रूपमें रक्खा

है, यह भी नहीं बनता, क्योंकि अध्यापककी बुद्धिसे अनुभव किये हुएको शिष्य कभी नहीं स्मरण करता। यदि पूर्व-पूर्व विज्ञानकर्ता, उत्तर उत्तर फलभोक्ता हो तो गुरुका विज्ञान जो शिष्यके पढ़ानेसे पहले गुरुमें सन्तान (प्रवाह) रूपसे है, उसने जिस किसी चीजका अनुभव किया है उस वस्तुको उसी गुरुके ज्ञानका उत्तर सन्तान भी जो शिष्यका ज्ञान है प्राप्त होना चाहिए किन्तु प्राप्त नहीं होता। प्रत्युत यह ज्ञानक-सन्तान या समूह किसी रखनेवाला समूहीके बिना ही रहता है, इस बातको भी बुद्धि प्रमाण नहीं करती। लकड़ी ईंट, पत्थर, गारा, चूना, मिट्टी आदि और इन सबका सङ्घात एक गृह बना। उस गृहरूप सङ्घातका भी स्वामी गृहसे पृथक् देवदत्त विष्णुमित्र आदि कोई-न-कोई अवश्य है। इसी प्रकार ज्ञान समूहका स्वामी समूही भी अवश्य स्थायी नित्य आत्मा है, जिस नित्य आत्माके लिये सब प्रपञ्च रचा गया है। अतः पुरुषार्थ (मोक्ष आदि) चाहनेवाले पुरुषोंको बौद्धमत स्वीकृत नहीं हो सकता। और जैनमत सदा ग्रहण करनेके "अर्ह" है। आप्तनिश्चयालंकार ग्रन्थमें अर्हत स्वरूपका वर्णन इस प्रकार किया गया है।

"सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितो।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः॥"

सर्वज्ञ (सबको जाननेवाला), रागादि दोषको जिसने जीत लिया है और तीनों लोकोंमें जिसकी पूजा हुई है, वह देव अर्हन् परमेश्वर यथास्थितार्थवादी अर्थात् "जैसी जो वस्तु है उसको वैसी ही कहनेवाला" है।

जैन मतमें जीव और अजीव दो तत्त्व हैं, बोधवाले जीव और अबोधवाले अजीव हैं। पद्मनन्दीने लिखा है—

चिदचित् द्वे परे तत्त्वे विवेकस्तद् विवेचनम्।
उपादेयमुपादेयम् हेयम् हेयञ्च सर्वतः॥१॥
हेयन्तु कर्तृरागादि तत्कार्य्यमविवेकिनः।
उपादेयम् परम् ज्योतिरुपयोगैक लक्षणम्॥२॥

पर तत्व चित् और अचित् इस भेदसे दो हैं, इन दोनोंके विचारका नाम विवेक है। इन दोनोंमें जो लेनेके योग्य है उसको लेना चाहिए, जो हेय है उसको त्याग देना योग्य है॥१॥ "मैंने इस कामको किया है और उसका फल मेरा है" इस प्रकार क्रिया और उसके फलकी ममतामें अज्ञानी पुरुष फँसे रहते हैं इसे कर्तृरोग कहते हैं। यह त्याज्य है। इसी तरह "आदि" शब्दसे काम क्रोध द्वेष और इनकी कार्यरूप प्रवृत्तिके द्वारा उत्पन्न संयोग वियोगादि भी हेय है। चेतनका एक ही लक्षण (स्वरूप) अन्य वस्तुओंको अपने काममें लाना (उपयोग) है। यहीं परज्योति लेने योग्य (उपादेय) है।

जैनी यह पाँच अस्तिकाय (तत्व) बताते हैं। जीव, आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्गल। इनमें पहिला अस्तिकाय, जीव दो प्रकारका है, संसारी और मुक्त। एक जन्मसे दूसरे जन्मको प्राप्त होनेवाले जीव संसारी हैं। वह भी दो प्रकारके है एक मनवाले हैं, दूसरे मन रहित हैं। जिनमें शिक्षा, क्रिया, आलाप आदि संज्ञा पायी जाती है वह मनवाले हैं। मन-रहित जीव भी त्रस तथा स्थावर भेदसे दो प्रकारके है। जो दो इन्द्रियवाले है शङ्ख गण्डोल आदि

वह त्रस हैं, शङ्खके मध्यमें जन्तु विशेष जो रहता है शङ्ख गण्डोल कहा जाता है। इनके श्रोत्र, चक्षु और घ्राण नहीं होते। केवल त्वक् और रसना यह दो ही इन्द्रियाँ होती हैं। जिन क्षुद्र जन्तुओंके ऐसे स्वभाव हैं इनको "प्रभृति" भी कहते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति यह स्थावर हैं। इन पाँच स्थावरोंमें वनस्पति स्थावर अनस्क जीव हैं, चार केवल स्थावर हैं, जीव नहीं हैं। वनस्पतिमें भी शिक्षा क्रिया आलापादिरूप संज्ञा नहीं हैं पर त्वक अर्थात् केवल स्पर्श ग्रहण करनेवाली इन्द्रिय है। इसीलिए स्थावरोंमें वनस्पति जीव कहे जाते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, इनमें कोई संज्ञा (चेतना) नहीं है इसलिए स्थावरोंमें यह सजीव नहीं हैं। यह संसारी जीवके भेद हुए। मुक्त जीव वह है जिसका जन्मान्तर न हो। जन्म मरणसे रहित होना ही मुक्ति है। जीव तत्व दो प्रकारका हुआ। दूसरा तत्व आकाश है, इसका प्रत्यक्ष नहीं होता है, अनुमानसे ही जाना जाता है। अनुमान यह है कि गृहादि सङ्घात इसलिए आकाशवाले हैं कि मनुष्यादि सङ्घातको अवकाश देनेका उपकार करते हैं। एक वस्तुके मध्यमें दूसरी वस्तुका प्रवेश रूप उपकार आकाशका अनुमान कराता है। जो कोई जिस चीजको देता है वह चीज उसके पास विद्यमान है। जब हमें कपड़ेकी ज़रूरत होती है तो बज़ाज़के पास जाते हैं, घड़ेकी जरूरत होती है तो कुम्हारके पास जाते हैं न कि कपड़ेके वास्ते कुम्हारके पास, घड़ेके वास्ते बज़ाज़के पास जाते हों, और न बज़ाज़ घड़ा देता है, न कुम्हार कपड़ा। जब गृहादिमें आकाश है तभी अवकाश देते हैं। अवकाश ही आकाश है। इस तरह आकाश सिद्ध हो गया। इस आकाशमें भी कहीं कहीं कुण्ठित गति-से प्रवेश होता है। जैसे राजमन्दिरमें डेवढ़ीदार रोकता है। अतः राजमन्दिरके आकाशमें हमारी गति कुण्ठित (रुद्ध) हो गयी। इस आकाशसे भिन्न एक आलोकाकाश है अर्थात् प्रकाशवाला अकाश है। उसमें अकुण्ठित गतिसे अर्थात् बिना रुकावट प्रवेश होता है। आलोकाकाशमें पहुँचकर जीव मुक्त हो जाता है। इस मुक्तिका साधन कोई धर्म है। अतः आलोकाकाशकी प्राप्तिका साधन, धर्म, अनुमानसे सिद्ध हुआ। आकाश दूसरा तत्व और धर्म तीसरा तत्व है। दोनों अनुमानसे सिद्ध हुए। यह प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं हैं। आलोका-काशमें जाकर जीव फिर लौट नहीं आता।

> गत्वा गत्वा निवर्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः।
> अद्यापि न निवर्तन्ते आलोकाकाशमागताः॥

चन्द्र, सूर्य्यादि ग्रह रोज-रोज जाते हैं अर्थात् केवल आकाशमें चक्कर लगाते हैं और लौटकर चले आते हैं, पर जो धार्मिक आलोकाकाशमें पहुँच गये हैं, वह अभीतक लौटकर नहीं आये, किन्तु सदाके लिए मुक्त हो गये। जैसे कि मिट्टीके साँचेमें वन्द किया हुआ तुम्बा जलमें फेंका जाता है और नीचे चला जाता है। जब उसकी मिट्टी पानीसे धुल जाती है तब वह तुम्बा आप ही ऊपर चला आता है। उसी तरह कर्म बन्धसे बँधा हुआ आत्मा संसारमें डूबा होता है। जब इस कर्मबन्धसे विनिर्मुक्त हो जाता है तब असङ्ग होकर ऊपर चला जाता है, अर्थात् मुक्त हो जाता है। अतः मुक्तिके प्रतिबन्धक कर्म्म, अधर्म, रुकावटकी स्थितिसे प्रत्यक्ष नहीं है, अनुमेय है। यही चौथा तत्व अधर्म है। पाचवाँ तत्व पुद्गल है। यह स्पर्श, रस और वर्ण वा रूपवाला है। अणु और स्कन्ध भेदसे, यह दो प्रकारका है।

भोगनेके लिए अशक्य अर्थात् जिसका भोग न बन सके वह अणु है। द्व्यणुक आदि स्कन्ध कहलाते हैं। द्व्यणुक आदि स्कन्धोंको तोड़नेसे अणु उत्पन्न होते हैं। अणुओंके सङ्घातसे द्व्यणुक आदि स्कन्ध बन जाते हैं। स्कन्धकी उत्पत्ति कहीं तोड़नेसे और कहीं सङ्घातसे होती है। जैसे घडेको तोड़ देनेपर कपाल बनता है तो वह भी स्कन्ध ही है। कपालके जोड़नेसे जो सङ्घात घट बनता है, वह भी स्कन्ध है। अतएव "पुत्" जो पूर्ण करता है और "गल" जो गिरता है, वह पुद्गल है। स्कन्ध रूपसे पूर्ण करता है तथा परमाणु रूपसे अलग अलग होता है, इसलिए अन्वर्थ संज्ञा (अर्थ सहित संज्ञा) से पुद्गल नाम होता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु भेदसे पुद्गलके चार रूप हैं। इस क्रमसे जीव, आकाश, धर्म, अधर्म, तथा पुद्गल इन पाँच तत्वोंको कुछ जैनियोंने माना है।

अपर जैनी सात तत्व मानते हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सम्बर, निर्जर और मोक्ष। "जीव" का निरूपण पाँच तत्वोंके वर्णनमें ऊपर कर चुके हैं। आकाश, धर्म, अधर्म और पुद्गल "अजीव" तत्व हैं, यह भी निरूपित हो चुके। अब तीसरे तत्व आस्रवका निरूपण करते हैं। औदरिक अग्नि (पेटकी आग) और कायादिकके चलनेसे जो आत्माका चलना कहा जाता है, यह दोनों योग हैं, और योगको ही "आस्रव" कहते हैं। नदीका वेग जहाँ वह रहा हो, वह देश "आस्रव" कहा जाता है। (आ) अतिशय जिसमें पानी (स्रव) बहता है वह "आस्रव" है। इस अन्वर्थ संज्ञासे आस्रव पद जलके देशके अर्थमें आया है। इसी तरह योग, कर्मके आस्रवका कारण होता है इस वास्ते आत्मचलन रूप याग भी आस्रव कहा जाता है। यह योग, काय, वाक् और मनमें स्फुरित होता है। जैसे गीला कपड़ा वायुसे उड़ी हुई धूलियोंको ले लेता है, अर्थात् उसके ऊपर तमाम गर्द-गुबार भर जाता है; ऐसे "कषाय" (जलसे भीगा हुआ आत्मा) योगरूप वायुसे ले आये हुए कर्मरूप गोबरको अपनेमें लेलेता है। अथवा जैसे गरम किया हुआ लोहा अपने ऊपर डाले हुए पानीको चारों तरफ़से ग्रहण करता है—अर्थात् उसी लोहेमें जलकर रह जाता है, वैसे ही 'कषाय' से गरम हुआ जीव उस कर्मरूप जलको जो योग द्वारा उसके ऊपर आ गया है, चारों तरफसे अपनेमें लेता है। कषाय नाम क्रोध, माया मान और लोभका है। कुत्सित गति देकर जो जीवकी हिंसा करता है उसे "कषाय" कहा। यह क्रोध आदि आत्माका नाश करते हैं अर्थात् उसे पतित बनाते हैं, इस वास्ते इनका अन्वर्थ नाम "कषाय" है। योग दो प्रकारका है, शुभ और अशुभ। इन दोनोंमें कायिक शुभयोग हिंसादिका अभाव है, और सत्य तथा मित भाषणादि वाणीके शुभ योग हैं। उक्त शुभ योगसे विरुद्ध हिंसादि शरीरके अशुभ योग हैं, झूठ बोलना इत्यादि वाणीके अशुभ योग हैं। शुभ योग पुण्यके कारण हैं, अशुभ योग पापके कारण हैं। आस्रवके अनन्तर बन्ध तत्वका वर्णन किया जाता है। मिथ्यादर्शन अविरति, प्रमाद और कषायके वशसे और उक्त लक्षणवाले योगसे पुद्गलके अनन्त अवयवोंके साथ जो सम्बन्ध होता है, वह "बन्ध" है। वस्तु तत्वका निश्चय न करके, उलटे ज्ञानका नाम मिथ्या ज्ञान है। अशुभ कर्मके उदयसे स्वाभाविक तत्वका न तो ज्ञान होना और न उसमें श्रद्धा होना, एक मिथ्या ज्ञान है। किसी पुरुषके कहनेसे उसके वाक्यमें विश्वासकर उलटा पलटा मान लेना दूसरे प्रकारका मिथ्या ज्ञान है। शब्दादि विषयोंसे इन्द्रियोंका संयम न

करनेको अविरति कहते हैं। पुण्य कर्ममें उत्साहका न होना प्रमाद है। क्रोध मान माया और लोभ, यह सब कषाय हैं। इनके वशसे आत्माका बन्ध होता है।

आस्रव रूप ससारके प्रवाह-द्वारको जो ढाँकता है वह संवर है। उसके भेद गुप्ति, समिति इत्यादि रूपसे हैं। संवर जीवमें प्रवेश करके सम्पूर्ण कर्मोंका निषेध करता है। ससार कारणसे आत्माकी रक्षा करना गुप्ति है। वह गुप्ति अशुभ कर्मोंसे काय, वाणी और मनका रोकना है। प्राणियोंकी पीड़ाको हटाकर अर्थात् किसीको कष्ट न देते हुए जगत्में विचरना समिति है। (स = "भली भाँति" इति = 'गमन') अच्छे आचरणसे रहना ही "समिति" का वास्तविक अर्थ है।

सञ्चित कर्मोंको, केशके लुञ्चनादि रूप तपस् कर्मसे निर्जरण (शिथिल) करना, निर्जरा संज्ञकतत्व है। निर्जरा दो प्रकारकी है, सकामा और निष्कामा। जो यमी (मुमुक्षु) हैं उनकी निर्जरा सकामा है और अन्य देहियोंकी अर्थात् जो मुक्त है उनकी निष्कामा है। निःशेष कर्मबन्धके नाश होनेपर असङ्ग रूपसे ठहरना मोक्ष है। आस्रव बन्धका कारण है, संवर मोक्षका साधन है। यह अर्हत्की मुष्टि अर्थात् सूत्र वाक्य है, और सब इसीका प्रपञ्च है। आगमसार ग्रन्थमें मोक्षका लक्षण कहा है—

सम्यग्दर्शनज्ञान चरित्राणि मोक्षमार्गः॥

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्र यह मोक्ष मार्ग हैं, इसका विवरण योगदेवने किया है।

जिस रूपसे जीवादि तत्व हैं, उसी रूपसे अर्हतने उसका वर्णन किया है। अर्हत्से वर्णन किए हुए अर्थोंमें अविपरीत और हठसे रहित होकर जो श्रद्धा है वही सम्यग्दर्शन है।

जिस रूपसे जीवादि तत्व व्यथित हैं उसका उसी स्वभावसे सशय तथा मोहसे रहित ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। वह तत्वज्ञान, गुरुसे उपदिष्ट तत्वके श्रवण मन, नाड़ी द्वारा अभ्यासके सामर्थ्यसे पीछे कहे हुए ज्ञानके ढाँकनेवाले मिथ्यादर्शन, अविरति तथा प्रमादादिके ज्ञात होने पर, आप ही उदयको प्राप्त होता है। संसार-कर्मके नाशके लिए उद्यत श्रद्धावाले ज्ञानी जीवकी पापकर्मसे निवृत्ति सम्यक् चरित्र है। यह ज्ञानादि इकट्ठे होकर मोक्षके कारण हैं, प्रत्येक नहीं। इन तीनोंको ही जैन लोग रत्न कहते हैं।

साठवाँ अध्याय

वैशेषिक दर्शन

किसी वस्तुके निर्णयमें विरोधी और संवादी दोनों दलोंका होना आवश्यक है, क्योंकि विरोधोंका खण्डन करके अपने सिद्धान्तका मण्डन करना ही सत्यके पक्षका पोषक होता है। आत्माके निर्णयमें चार्वाकसे लेकर जैन पर्य्यन्त विरोधी दल हैं। उनके शास्त्रोंका वर्णन हो चुका है। अब उपनिषद्से सुने हुए आत्माके मनन ग्रन्थोंमें कनिष्ठ अधिकारियोंके लिये यह पहला दर्शन कणाद-ऋषि प्रणीत वैशेषिक है। कनिष्ठ अधिकारी वह है जो आत्मा अनात्माका विवेक नहीं रखते, जिन्होंने पृथिवी आदि पदार्थोंमें ही आत्मबुद्धि कर ली है। उनकी जिज्ञासापर परमकारुणिक कणाद ऋषि पहले धर्मका लक्षण कहकर सब पदार्थोंके लक्षणद्वारा स्वरूपका परिचय देते हैं। नाना भेदोंसे भिन्न-भिन्न अनन्त पदार्थ हैं। इनको शृङ्गग्राहिका न्यायसे दिखाया गया है। जैसे हजार गौ हैं, इनको एक-एकका सींग पकड़-पकड़ गिनना कठिन है, पर इतनी काली हैं, इतनी सफेद हैं, इतनी लाल हैं, इस प्रकार लक्षणसे सबका वर्णन भली भांति हो जाता है। इसी तरह जगत्के तमाम पदार्थोंकी अवगति हजार युग बीत जानेपर भी एक-एकको पकड़कर नहीं हो सकती। अतः श्रेणी-विभागद्वारा विश्वके सभी पदार्थोंका ज्ञान इस दर्शनके द्वारा कराया है।

उसीके उपदेशका प्रभाव हो सकता है जिसमें वह बातें मौजूद हों जिनका कि वह उपदेश करता है। ऐसी प्रसिद्धि भी है कि इस कश्यपगोत्रके ऋषि कणादने बड़ा ही उग्र तप किया और साक्षात् कृतधर्मा हुए। इन्होंने शीलोञ्छ करके अपने जीवनको बिताया। ऐसे शुद्ध अन्तःकरणमें इसीलिये पदार्थोंके तत्त्वज्ञानका उदय हुआ। इस ऋषिने अपने शिष्योंको यह सूचित किया कि जबतक धर्म नहीं होगा तबतक अन्तःकरण शुद्ध नहीं होगा। अशुद्ध अन्तःकरणमें विद्याका प्रकाश नहीं होता। इसलिये अन्तःकरणका शुद्ध होना आवश्यक है। अन्त करणकी शुद्धि धर्मके बिना हो नहीं सकती। अतः धार्मिक होना भी आवश्यक है। इसीलिये शुद्ध पदार्थ-विद्या होते हुए भी इस शास्त्रके आदिमें यह चार सूत्र दिये हैं।

अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः।
यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः सधर्मः॥
तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्।
धर्म-विशेष-प्रसूताद्द्रव्यगुणकर्मसामान्य-
वैधर्म्याभ्यां तत्वज्ञानान्निःश्रेयसम्।

'अथ' अर्थात् शिष्यकी जिज्ञासाके अनन्तर और 'अतः' अर्थात् श्रवण तथा मननमें समर्थ अनिन्दक विद्यार्थी इस तत्वज्ञानके लिए प्राप्त हैं, इसलिए धर्मकी व्याख्या करेंगे। जिससे (अभ्युदय) स्वर्गादि (निःश्रेयस) मुक्ति सिद्ध हो, वह धर्म है। यदि यह कहें कि धर्मसे तत्वज्ञान होता है इसका क्या प्रमाण है ? तो कहते हैं कि वेदमें धर्मका विधान किया

करनेको अविरति कहते हैं। पुण्य कर्ममें उत्साहका न होना प्रमाद है। क्रोध मान माया और लोभ, यह सब कषाय हैं। इनके वशसे आत्माका बन्ध होता है।

आस्रव रूप संसारके प्रवाह-द्वारको जो ढाँकता है वह संवर है। उसके भेद गुप्ति, समिति इत्यादि रूपसे हैं। संवर जीवमें प्रवेश करके सम्पूर्ण कर्मोंका निषेध करता है। संसार कारणसे आत्माकी रक्षा करना गुप्ति है। वह गुप्ति अशुभ कर्मोंसे काय, वाणी और मनका रोकना है। प्राणियोंकी पीड़ाको हटाकर अर्थात् किसीको कष्ट न देते हुए जगत्में विचरना समिति है। (स = "भली भाँति" इति = 'गमन') अच्छे आचरणसे रहना ही "समिति" का वास्तविक अर्थ है।

सञ्चित कर्मोंको, केशके लुञ्चनादि रूप तपस् कर्मसे निर्जरण (शिथिल) करना, निर्जरा संज्ञकतत्व है। निर्जरा दो प्रकारकी है, सकामा और निष्कामा। जो यमी (मुमुक्षु) हैं उनकी निर्जरा सकामा है और अन्य देहियोंकी अर्थात् जो मुक्त है उनकी निष्कामा है। निःशेष कर्मबन्धके नाश होनेपर असङ्ग रूपसे ठहरना मोक्ष है। आस्रव बन्धका कारण है, संवर मोक्षका साधन है। यह अर्हत्की मुष्टि अर्थात् सूत्र वाक्य है, और सब इसीका प्रपञ्च है। आगमसार ग्रन्थमें मोक्षका लक्षण कहा है—

सम्यग्दर्शनज्ञान चरित्राणि मोक्षमार्गः॥

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्र यह मोक्ष मार्ग हैं, इसका विवरण योगदेवने किया है।

जिस रूपसे जीवादि तत्व हैं, उसी रूपसे अर्हतने उसका वर्णन किया है। अर्हत्से वर्णन किए हुए अर्थोंमें अविपरीत और हठसे रहित होकर जो श्रद्धा है वही सम्यग्दर्शन है।

जिस रूपसे जीवादि तत्व व्यथित हैं उसका उसी स्वभावसे संशय तथा मोहसे रहित ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। वह तत्वज्ञान, गुरुसे उपदिष्ट तत्वके श्रवण मन, नाड़ी द्वारा अभ्यासके सामर्थ्यसे पीछे कहे हुए ज्ञानके ढाँकनेवाले मिथ्यादर्शन, अविरति तथा प्रमादादिके ज्ञात होने पर, आप ही उदयको प्राप्त होता है। संसार-कर्मके नाशके लिए उद्यत श्रद्धावाले ज्ञानी जीवकी पापकर्मसे निवृत्ति सम्यक् चरित्र है। यह ज्ञानादि इकट्ठे होकर मोक्षके कारण हैं, प्रत्येक नहीं। इन तीनोंको ही जैन लोग रत्न कहते हैं।

साठवाँ अध्याय

वैशेषिक दर्शन

किसी वस्तुके निर्णयमें विरोधी और संवादी दोनों दलोंका होना आवश्यक है, क्योंकि विरोधोंका खण्डन करके अपने सिद्धान्तका मण्डन करना ही सत्यके पक्षका पोषक होता है। आत्माके निर्णयमें चार्वाकसे लेकर जैन पर्य्यन्त विरोधी दल हैं। उनके शास्त्रोंका वर्णन हो चुका है। अब उपनिषद्से सुने हुए आत्माके मनन ग्रन्थोंमें कनिष्ठ अधिकारियोंके लिये यह पहला दर्शन कणाद-ऋषि प्रणीत वैशेषिक है। कनिष्ठ अधिकारी वह है जो आत्मा अनात्माका विवेक नहीं रखते, जिन्होंने पृथिवी आदि पदार्थोंमें ही आत्मबुद्धि कर ली है। उनकी जिज्ञासापर परमकारुणिक कणाद ऋषि पहले धर्मका लक्षण कहकर सब पदार्थोंके लक्षणद्वारा स्वरूपका परिचय देते हैं। नाना भेदोंसे भिन्न-भिन्न अनन्त पदार्थ हैं। इनको शृङ्गग्राहिका न्यायसे दिखाया गया है। जैसे हजार गौ हैं, इनको एक-एकका सींग पकड़-पकड़ गिनना कठिन है, पर इतनी काली हैं, इतनी सफेद हैं, इतनी लाल हैं, इस प्रकार लक्षणसे सबका वर्णन भली भांति हो जाता है। इसी तरह जगत्के तमाम पदार्थोंकी अवगति हजार युग वीत जानेपर भी एक-एकको पकड़कर नहीं हो सकती। अत. श्रेणी-विभागद्वारा विश्वके सभी पदार्थोंका ज्ञान इस दर्शनके द्वारा कराया है।

उसीके उपदेशका प्रभाव हो सकता है जिसमें वह बातें मौजूद हों जिनका कि वह उपदेश करता है। ऐसी प्रसिद्धि भी है कि इस कश्यपगोत्रके ऋषि कणादने बड़ा ही उग्र तप किया और साक्षात् कृतधर्मा हुए। इन्होंने शीलोञ्छ करके अपने जीवनको विताया। ऐसे शुद्ध अन्तःकरणमें इसीलिये पदार्थोंके तत्त्वज्ञानका उदय हुआ। इस ऋषिने अपने शिष्योंको यह सूचित किया कि जबतक धर्म नहीं होगा तबतक अन्त.करण शुद्ध नहीं होगा। अशुद्ध अन्त.करणमें विद्याका प्रकाश नहीं होता। इसलिये अन्तःकरणका शुद्ध होना आवश्यक है। अन्तःकरणकी शुद्धि धर्मके विना हो नहीं सकती। अतः धार्मिक होना भी आवश्यक है। इसीलिये शुद्ध पदार्थ-विद्या होते हुए भी इस शास्त्रके आदिमें यह चार सूत्र दिये हैं।

अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः।
यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः सधर्मः॥
तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्।
धर्म-विशेष-प्रसूताद्द्रव्यगुणकर्मसामान्य-
वैधर्म्याभ्यां तत्वज्ञानान्निःश्रेयसम्।

'अथ' अर्थात् शिष्यकी जिज्ञासाके अनन्तर और 'अतः' अर्थात् श्रवण तथा मननमें समर्थ अनिन्दक विद्यार्थी इस तत्वज्ञानके लिए प्राप्त हैं, इसलिए धर्मकी व्याख्या करेंगे। जिससे (अभ्युदय) स्वर्गादि (निःश्रेयस) मुक्ति सिद्ध हो, वह धर्म है। यदि यह कहें कि धर्मसे तत्वज्ञान होता है इसका क्या प्रमाण है ? तो कहते हैं कि वेदमें धर्मका विधान किया

है और पापकी निवृत्तिके द्वारा अन्तःकरणकी शुद्धि भी कही है। क्योंकि वेद "तत्" ईश्वरका "वचनात्" वचन होनेसे प्रामाण्य है। इसलिए वेदविहित धर्मका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए। पदार्थोंका तत्वज्ञान धर्म-विशेषसे उत्पन्न होता है उस तत्वज्ञानके होनेसे साधर्म्य वैधर्म्यके द्वारा द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इन छः भाव पदार्थोंका ज्ञान होता है। इन सूत्रोंका भाव स्पष्ट प्रतीत होता है कि धर्म्मसे ही तत्वज्ञान होता है। अतः दर्शनको जाननेवाले विद्यार्थीको धार्मिक और आस्तिक अवश्य होना चाहिए, तभी तत्वज्ञान हो सकता है, अन्यथा नहीं।

इन चारों सूत्रोंसे धर्मकी पुष्टि जो की गयी है इससे कर्मफलको भोगनेवाला जीवात्मा और देनेवाला सबका नियन्ता ईश्वर भी वैशेषिक-सम्मत है, यह व्यक्त हुआ। चार्वाकसे लेकर बौद्धतक तो सङ्घातसे अतिरिक्त आत्माको माना ही नहीं है। जैनने माना भी तो मध्यम परिमाण, विकारी और अनित्य आत्माको ही माना है। इन्होंने केवल अर्हत्को नित्य मुक्त माना है। इसके सिवा शेष जीवोंको मुक्त तथा बद्ध माना है। महर्षि कणादने जीवात्मा और ईश्वर दोनोंको माना है और नित्य माना है। इसलिए उन नास्तिकोंसे विशेष मतको अङ्गीकार करनेसे "वैशेषिक" नाम पड़ा। अथवा और किसी दर्शनकारने "विशेष" पदार्थको नहीं माना है, कणादने ही माना है, इस वास्ते इस दर्शनको वैशेषिक कहते हैं।

उद्देश लक्षण परीक्षा और उद्देश-विशेष-विभाग इन भेदोंसे इस शास्त्रकी प्रवृत्ति होती है। पदार्थोंको बतानेके लिए नाममात्रसे वस्तुका कहना उद्देश्य है। उद्दिष्ट पदार्थोंके भेदका वर्णन करना विभाग है। वस्तुके अनुगत धर्म अर्थात् जो उसीमें है औरमें नहीं है, उसको लेकर उस वस्तुको लखाना जिस वाक्यसे हो वह लक्षण है। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेप, समवाय, इन छः भाव पदार्थोंका पहले उद्देश किया है और नवमाध्यायके प्रथम आह्निकमें प्रथम सूत्रसे लेकर कई एक सूत्रोंमें अभावका निरूपण किया है। इसलिए अभाव समेत वैशेषिक सम्मत सात पदार्थ हुए अथवा द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव, यह सात पदार्थ सिद्ध हुए। इन पदार्थोंमें क्रिया और गुणका आश्रय तथा समवायी-कारण जो हो, वह द्रव्य है। इस द्रव्यके नव भेद हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। इन द्रव्योंमें गन्धकरण पृथिवीका ही है। जलादिमें गन्ध-प्रतीतिके सम्बन्धसे है। पृथ्वीका अश उस जलमें मिला हुआ है, इसलिए गन्धकी प्रतीति होती है। अभास्वर (दूसरेको न प्रकाश देनेवाला) शुक्ल रूप ही जिसमें है वह जल है। यमुनाके जलमें जो नील रूपका ज्ञान है, वह पृथ्वीके सम्बन्धसे नील रूपका ज्ञान भ्रमज्ञान है। क्योंकि उसी जलको आकाशमें फेंके तो धवल (सफेद) मालूम होता है। इसी तरह रस मधुर है। पर उसका प्रकाश तब होता है जब हम आँवला या हरड़ खाकर पानी पीते हैं। आँवला और हरड़का अपना रस कषाय होता है, इसलिए जो जलमें मधुर रस प्रतीत होता है वह जलका ही है।

जम्बीर वा खट्टा नीबूमें जो आम्ल रसकी प्रतीति होती है वह उसके जलमें नहीं है किन्तु जम्बीर रूप पृथ्वीमें है। उष्ण स्पर्शवाला द्रव्य तेज है। चन्द्रकिरणादि तेज द्रव्यमें, जलादिके स्पर्शसे उष्ण स्पर्शका अतिभव (तिरस्कार) है, इसलिए वहाँ उष्ण स्पर्शकी प्रतीति

नहीं होती। विलक्षण अनुष्णाशीत (न उष्ण न शीत) स्पर्शवाला वायु है। अनुष्णाशीत स्पर्श पृथ्वीमें भी है पर वह और जातिका और यह और जातिका है। इसलिए विलक्षण पद दिया है। जैसे तण्डुल-तण्डुल सब एक हैं तो भी बासमती और रामजवायन इत्यादि जातियोंसे नाना भेद हैं। उसी तरह पृथ्वी और जलके अनुष्णाशीत स्पर्शमें भेद है। शब्दका समवायी कारण आकाश है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु जबतक द्रव्य हैं तबतक यथासम्भव उनके गुण रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, साथ बने रहते हैं। इनका गुण शब्द होता तो जबतक यह चारों बने रहते तबतक इनमें शब्द झनकता रहता, ऐसा नहीं है। इसलिए शब्द आकाशका गुण है। इस शब्द गुणका निराश्रय होना नहीं बनता, क्योंकि गुण किसी द्रव्यके आश्रयसे रहता है। इस वास्ते अप्रत्यक्ष आकाश भी शब्दका आश्रय होनेसे अनुमानसे सिद्ध हुआ। मैं इससे बड़ा हूँ मुझसे यह छोटा है इत्यादि बुद्धिका कारण काल है। यह दूर है वह पास है, इस बुद्धिका कारण दिक् है। आकाश, काल, दिक् यह तीनों अनेक नहीं हैं। किसी वस्तुके सम्बन्धके भेदसे इनमें भेद हो जाता है। चैतन्याश्रय आत्मा है। वह प्रति शरीर भिन्न-भिन्न विभु (व्यापक) और नित्य है। देह, इन्द्रिय और मन यह तीनों चेतन नहीं हैं। यही आत्मा अनादि मिथ्याज्ञानके वासनासे प्रियमें राग तथा द्वेष्यमें द्वेषको करता हुआ कर्ममें प्रवृत्त और उससे निवृत्त भी होता है। नित्यज्ञान, नित्य इच्छा और नित्य संकल्पवाला सर्व सृष्टिको चलानेवाला परमात्मा जीवात्मासे भिन्न है। अर्थात् परमात्मा और जीवात्मा भेदसे आत्मा दो प्रकारका है। परमात्मा एक है जीवात्मा अगणित हैं।

सुखादिक ज्ञानका साधन, तथा जिसका इन्द्रियोंके साथ संयोग होनेसे ही विषयका ज्ञान होता है, नहीं होनेसे नहीं होता है, वह मन है। उसका परिमाण अणु है, वह बहुत शीघ्र चलनेवाला है, इसलिए कभी-कभी पतली परन्तु बड़ी रोटीको चौपर्तकर खानेमें चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना और त्वक्, इन सब इन्द्रियोंका एक कालमें सम्बन्ध है, पर मनका सबके साथमें सम्बन्ध एक कालमें एक साथ नहीं है, तो भी युगपत् ज्ञानकी प्रतीति होती है। यह प्रतीति भ्रम है। हजार पत्तेके कमलको भेदनेमें कमसे-कम चार हजार क्षण लगता है, क्योंकि सूचीका एक क्षणमें पत्तेके साथ संयोग दूसरे क्षणमें प्रवेश, तीसरे क्षणमें छेदना और चौथेमें पत्रसे सूचीके अवयवका वियोग होना, यह चार बात सब पत्तेके साथ आवश्यक है। जैसे कमलका भेदन-काल जो सूक्ष्म और नाना हैं भासते नहीं, यही मालूम होता है कि एक क्षणमें ही कमलको भेद दिया है, यह प्रतीति भ्रम है। उसी तरह उक्त प्रतीतिको भी भ्रम जानना उचित है। कोई ज्ञान एक कालमें नहीं होता।

अन्धकार द्रव्य नहीं है। पृथिवीका नील रूप और दीपकका चलना, जो अँधेरेमें भासता है वह भ्रम है। पृथिवी, जल, तेज, वायु यह चार द्रव्य और अनित्य हैं। इनके परमाणु नित्य हैं। द्व्यणुकसे लेकर महापृथिवी, महाजल, महातेज, महावायु, अनित्य हैं। यह अनित्य शरीर, इन्द्रिय, विषयभेदसे तीन तीन हैं। शरीर दो प्रकारके हैं। एक योनिज दूसरा अयोनिज, जो योनिसे होते हैं और जो योनिसे नहीं होते हैं।

परमाणुओंके बीच अन्तरकी धारणा न होनेके कारण वैशेषिकोंको "पीलुपाक" नामका विलक्षण मत ग्रहण करना पड़ा। इस मतके अनुसार घड़ा आगमें पड़कर इस प्रकार

लाल होता है कि अग्निके तेजसे घड़ेके परमाणु अलग अलग हो जाते हैं और फिर लाल होकर मिल जाते हैं। घड़ेका यह बनना और बिगड़ना इतने सूक्ष्मकालमें होता है कि कोई देख नहीं सकता।

परमाणुओंका संयोग सृष्टिकी आदिमें कैसे होता है इस सम्बन्धमें कहा गया है कि ईश्वरकी इच्छा या प्रेरणासे परमाणुओंमें गति या क्षोभ उत्पन्न होता है और वे परस्पर मिलकर सृष्टिकी योजना करने लगते हैं।

चार प्रकारके शरीर हैं। अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज। अण्डा, पसीना और जरायुसे, जिसमें गर्भ बँधा होता है, तथा पृथिवीको फाड़कर जो पैदा हो, क्रमशः इन नामोंसे कहे जाते हैं। पार्थिव शरीर, जङ्गल और स्थावर मनुष्य वृक्षादि हैं। पार्थिव इन्द्रिय घ्राण है। पार्थिव विषय, भूमि और पर्वतादि हैं। ऐसे ही जलीय शरीर वरुणलोकमें है। इन्द्रिय रसना है और विषय नदी समुद्रादि हैं। तैजस शरीर सूर्य्यलोकमें है। इन्द्रिय चक्षु है। विषय अग्नि सूर्य्यादि हैं। वायवीय शरीर पिशाचादिकका है और वायुलोकमें है। इन्द्रिय त्वक् है। वायु और प्राणादि वायु विषय हैं। शरीर इन्द्रियसे भिन्न जो कार्य्य-वस्तु द्व्यणुकसे लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त है, वह विषय है।

द्रव्याश्रयी (द्रव्यमें रहनेवाला), (अगुण) जिसमें गुण न हो, कर्मसे भिन्न सत्ता जातिवाला जो हो, वह गुण है। गुणके चौबीस भेद हैं। (१) रूप, (२) रस, (३) गन्ध, (४) स्पर्श, (५) संख्या, (६) परिमाण, (७) पृथक्त्व (८) संयोग, (९) विभाग, (१०) परत्व, (११) अपरत्व, (१२) बुद्धि, (१३) सुख, (१४) दु:ख, (१५) इच्छा, (१६) द्वेष, (१७) यत्न, (१८) गुरुत्व, (१९) द्रवत्व, (२०) स्नेह, (२१) संस्कार (२२) धर्म, (२३) अधर्म, (२४) शब्द। आँखसे जो ग्राह्य गुण हो वह रूप है, वह भी सात प्रकारका है—शुक्ल, नील, रक्त, पीत, हरित, कपिस और चित्र। रसना (जीभ) से जो गुण ग्रहण किया जावे, वह रस है। वह मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय, तिक्त छः प्रकारका है। नाकसे जो गुण ग्रहण किया जावे वह गन्ध है, वह दो प्रकारका है सुगन्ध और दुर्गन्ध। त्वक्से जो गुण ग्राह्य हो वह स्पर्श है, वह रूखा, नरम, गरम, ठढा इत्यादि भेदसे अनेक प्रकारका है। यह रूप, रस, गन्ध, स्पर्श पृथिवीके परमाणुमें पाकसे भी होते हैं। गिनतीका कारण सख्या गुण है, एकसे आरम्भ कर परार्द्धतक अनेक प्रकारकी है। मान (तौल) व्यवहारका कारण परिमाण गुण है। वह अणु, ह्रस्व, महत्, दीर्घ, इस भेदसे अनेक हैं। असंयोग, वैलक्षण्य और अनेकताको पृथक्त्व कहते हैं।

अप्राप्त वस्तुओंकी प्राप्ति "संयोग" है। संयोग एकके कर्मसे या दोके कर्मसे, और संयोगसे भी होता है। जैसे पक्षी उड़कर पर्वतपर बैठ गया, यहाँ एकके कर्मसे सयोग हुआ। दो मेष या मल्ल दौड़कर लड़नेके लिये जहाँ आपसमें मिलते हैं, वहाँ दोके कर्मोंसे सयोग हुआ। हाथ और पुस्तकके संयोगसे काय-पुस्तक-संयोग संयोगज संयोग है। संयोगका नाशक गुण-विभाग है। वह विभाग भी संयोगके समान तीन प्रकारका है। एकके कर्मसे, दोके कर्मसे और विभागसे विभाग भी होता है। हाथ पुस्तकके विभागसे काय पुस्तकका विभाग, विभागसे विभाग है। देश और कालके भेदसे परत्व अपरत्व दो प्रकारका है। दूर और

पासमें देशका परत्व अपरत्व है। छोटे और बड़ेमें कालका परत्व और अपरत्व है। पर दूर है और अपर पास है। यह पर अपर देशके कारण है। ज्येष्ठ पर है, कनिष्ठ अपर है, यह कालके कारण है।

बुद्धि दो प्रकारकी है, एक संशय और दूसरा निश्चय। अनिश्चय ज्ञानका नाम संशय है। साधारण धर्मके देखनेसे और विशेष धर्मके ज्ञान न होनेसे संशय होता है। जैसे स्थाणु और पुरुषका साधारण धर्म ऊँचापन देखनेसे तथा विशेष धर्म जो कि स्थाणु या खम्भामें है पुरुषमें नहीं, और जो पुरुषमें है स्थाणुमें नहीं, उसको न देखनेसे संशय होता है कि स्थाणु है या पुरुष है। यह संशय ज्ञान है, संशयरहित ज्ञानका नाम निश्चय है। जैसे खम्भा ही है, यह ज्ञान निश्चय है। और भी बुद्धिके दो भेद है। प्रमा और अप्रमा। प्रमासे भिन्न बुद्धि अप्रमा है। प्रमाको विद्या भी कहते हैं और अप्रमाको अविद्या कहते हैं। अविद्याके तीन भेद हैं संशय, विपर्यय, और स्वप्न। स्वप्नके बीचमें एक ज्ञान ऐसा होता है कि मैं स्वप्नको देख रहा हूँ। स्वप्नका यह व्याघ्र है क्या कर सकता है, यह भी ज्ञान स्वप्नरूप ही हो रहा है, इस ज्ञानका नाम स्वप्नान्तिक है। स्वप्नमें प्रमारूप जो ज्ञान है वह स्वप्नान्तिक है। कोई सुषुप्तिज्ञानको भी स्वप्नान्तिक कहते हैं। संशयका लक्षण और उदाहरण दे चुके हैं। उल्टा निश्चयका नाम विपर्यय है, जैसे नेत्रमें खास रोग होनेसे तमाम शुक्ल चीजें पीली मालूम होती हैं, यह विपर्यय ज्ञान है।

स्वप्न भी संस्कार अदृष्ट और दोष इन तीन कारणोंसे होता है। जिस अर्थको चिन्तन करता हुआ पुरुष सोता है, संस्कारवश उस अर्थको देखता है। वात-दोषसे आकाशमें उड़ना, पृथिवीमें घूमना, व्याघ्रादिकके भयसे भागना, स्वप्नमें देखता है। पित्त दोषसे अग्निप्रवेश, अग्निके लहरोंके साथ मिलना, सोनेका पर्वत, बिजुलीका फुरना इत्यादि स्वप्नमें देखता है। कफके दोषसे समुद्रका तैरना, नदीमें गोता मारना, वृष्टि, चाँदीका पर्वत इत्यादि वस्तुओंको स्वप्नमें देखता है। अदृष्टवशसे अर्थात् धर्म और अधर्मसे भी स्वप्न होता है। धर्मसे हाथीपर चढ़ना पर्वतपर चढ़ना, छत्रलाभ, पायस का खाना, राजदर्शन इत्यादि देखता है। अधर्मसे, तेल लगाना, अन्धकूपमें गिरना, ऊँटपर चढ़ना, पंकमें मग्न होना, अपना विवाह इत्यादि स्वप्नमें देखता है। इन्द्रिय-दोष और संस्कार-दोषसे अविद्या उत्पन्न होती है।

यथार्थ अनुभवका नाम प्रमा है, इसीको विद्या कहते हैं। प्रमा ज्ञान दो प्रकारका है, प्रत्यक्ष और अनुमान। इन्द्रियके द्वारा जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष होता है। यह चक्षुरादिक इन्द्रियोंके द्वारा होता है। दूसरा अनुमान है जो व्याप्तिके द्वारा हेतुको देखकर साध्यका निश्चय है। एक स्मृति ज्ञान है। अनुभव की हुई वस्तुको याद करनेका नाम स्मरण है। एक आर्षज्ञान है। मणि मन्त्र ओषधिसे व्यवहित दूर देशमें रहनेवाली सिद्ध वस्तुओंका दर्शन (ज्ञान) सिद्ध दर्शन कहा जाता है। वह सिद्ध ज्ञान भी ज्ञानके भेदमेंसे है। आर्षज्ञान ऋषिको तो होता ही है पर कभी-कभी साधारण लौकिक पुरुषोंको भी हो जाता है। जैसे कुमारी कहती है कि कल मेरा भाई अवश्य आयेगा और वह आ भी जाता है, यह आर्षज्ञान है।

आर्षसिद्धदर्शनञ्च धर्मेभ्यः। अ० ९ आ० २ सू० १३

आर्ष और सिद्धज्ञान धर्मसे होता है। अनुकूल जो हो वह सुख है। प्रतिकूल जो

हो वह दुःख है। प्रवृत्तिका कारण इच्छा गुण है। निवृत्तिका कारण द्वेष गुण है। प्रवृत्ति, निवृत्ति जीवनयोनि, इस प्रकार "यत्न" तीन हैं। देहके अन्दरके व्यापारको यत्न कहते हैं। प्रवृत्तिका कारण यत्न "प्रवृत्ति" है। निवृत्तिका कारण यत्न "निवृत्ति" है। श्वास प्रश्वासका हेतु यत्न "जीवनयोनि" है। मान (तौलना) व्यवहारका विशेष कारण "गुरुत्व" है। गुरुत्वका प्रत्यक्ष नहीं है, गुरुत्व (भारीपन)का ज्ञान अनुमानसे होता है। यदि गुरुत्वका प्रत्यक्ष हो तो तौलनेके लिये किसीकी प्रवृत्ति नहीं होगी। बहनेका कारण जो गुण है वह "स्रव" है। पिण्डी होनेका कारण जो गुण है, वह "स्नेह" कहलाता है। संस्कार तीन प्रकारका है। वेग, भावना, स्थिति-स्थापक। बाणमें "वेग" गुण है जिससे वह दूर जा गिरता है। स्मृतिका कारण गुण "भावना" है। शाखादिकको खैंचकर छोड़ देनेपर जिससे शाखादिक अपने स्थानपर चले जाते हैं, वह "स्थिति-स्थापक" गुण है। पुण्य धर्म और पाप अधर्म है। कानसे जिस गुणका ग्रहण हो वह शब्द है, वह ध्वनि और भेदसे दो प्रकारका है। द्रव्यमें रहनेवाला गुण-रहित और संयोग-विभागको करनेमें किसीकी अपेक्षा न करनेवाला "कर्म" है। ऊपर फेंकना, नीचे फेंकना, समेटना, फैलाना, चलना इत्यादि कर्म अनेक हैं।

एकाकार प्रतीतिका कारण सामान्य है, जैसे गौ इत्यादि। सामान्य और जाति पर्याय हैं। जाति दो प्रकारकी है परा और अपरा। परा वह जाति है जो बहुतोंमें रहे, जैसे सत्ता, द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनोंमें रहती है। द्रव्यत्व द्रव्यमें ही है, गुणत्व गुणमें ही है और कर्मत्व कर्ममें ही है, इसलिये सत्ताकी अपेक्षा अल्पदेशमें होनेसे यह अपरा जाति है। द्रव्य गुण और कर्म इन तीनोंमें ही जाति मानी जाती है और पदार्थोंमें नहीं। पृथिवी, जल, तेज, वायु इनके परमाणुओंमें और आकाश, काल, दिक्, आत्मा, मन, इन पाँचोंमें अर्थात् इन नव नित्य द्रव्योंमें रहनेवाला 'विशेष" है। यह एक परमाणुका दूसरेसे भेदके वास्ते माना गया है। नित्य सम्बन्धका नाम "समवाय" है। अभाव चार प्रकारका है, प्रागभाव, प्रध्वसाभाव, अन्योन्याभाव, अत्यन्ताभाव। होगा, यह प्रागभाव है। फूट गया, टूट गया, यह प्रध्वंसाभाव है। गौ घोड़ा नहीं घोड़ा गौ नहीं, यह अन्योन्याभाव है। नहीं है, यह अत्यन्ताभाव है। वस्तुकी उत्पत्तिसे पहिले जो उस वस्तुका अभाव है, वह प्रागभाव है। वस्तुके नाश होनेपर जो अभाव है वह प्रध्वंसाभाव है। आपसमें दोनोंका अभाव अन्योन्याभाव है। बिलकुल अभाव "अत्यन्ताभाव" है। प्रमाज्ञानके कारण प्रत्यक्ष और अनुमान यह दो ही प्रमाण वैशेषिक मतमें भी है। उपमान और शब्दको अनुमानमें ही अन्तर्गत करते हैं।

इस प्रकार उद्देश लक्षण, परीक्षा और उद्देश विशेष विभागसे पदार्थोंका वर्णन करते हुए महर्षि कणादने अधिकारियोंके लिए आत्मा अनात्माका विवेक अच्छी तरहसे कराया है। इस दर्शनको अच्छी तरह जाननेसे देह इन्द्रिय मन आदि अनात्म-वस्तुमें आत्माका भ्रम कभी नहीं होगा। "तद्वचनादाम्नायस्य" ईश्वरके वचनसे वेदका प्रामाण्य है, इस सूत्रको समाप्तिमें रखते हुए कणादने इस बातके ऊपर अधिक जोर दिया है कि कर्मफलको देनेवाले परमात्माको भी अवश्य मानना चाहिए। परमात्माके बिना पृथिवी आदिकी सृष्टि नहीं हो सकती और इसका कर्त्ता अवश्य कोई है, क्योंकि कर्त्ताके बिना कार्य नहीं देखा गया है, जो इसका कर्त्ता है वह ईश्वर है, इस अनुमानसे ईश्वर भी सिद्ध होता है। इसमें श्रुतिका प्रमाण है।

"धाता यथापूर्वमकल्पयद्दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथोस्वः।"

परमात्माने जैसे पहिले कल्पमें सृष्टि थी वैसे ही पृथिवी दिव और अन्तरिक्षको रचा। इससे ईश्वर सृष्टिकर्त्ता नित्य सिद्ध होता है। वैशेषिक मतमें नानाव्यापक नित्य जीवात्मा और व्यापक नित्य परमात्मा एक चेतन, यह दोनों अनात्म पदार्थोंसे अलग हैं, यह मननसे सिद्ध हो गया।

कणादने प्रमेयके विस्तारके साथ आत्म और अनात्म पदार्थोंका विवेचन किया। परन्तु शास्त्रार्थकी विधि और प्रमाणोंके विस्तारके साथ इसी विवेचनकी आवश्यकता थी। इसकी पूर्त्ति गौतमने "न्यायदर्शन"में की है।

कणादके सूत्रोंपर भाष्य नहीं मिलते। प्रशस्तपादका "पदार्थ-धर्म-सङ्ग्रह" नामक ग्रन्थ वैशेषिक दर्शनका भाष्य कहलाता है। परन्तु वह भाष्य नहीं है। सूत्रोंके आधारपर बना हुआ अलग ग्रन्थ है।

हो वह दुःख है। प्रवृत्तिका कारण इच्छा गुण है। निवृत्तिका कारण द्वेष गुण है। प्रवृत्ति, निवृत्ति जीवनयोनि, इस प्रकार "यत्न" तीन हैं। देहके अन्दरके व्यापारको यत्न कहते हैं। प्रवृत्तिका कारण यत्न "प्रवृत्ति" है। निवृत्तिका कारण यत्न "निवृत्ति" है। श्वास प्रश्वासका हेतु यत्न "जीवनयोनि" है। मान (तौलना) व्यवहारका विशेष कारण "गुरुत्व" है। गुरुत्वका प्रत्यक्ष नहीं है, गुरुत्व (भारीपन)का ज्ञान अनुमानसे होता है। यदि गुरुत्वका प्रत्यक्ष हो तो तौलनेके लिये किसीकी प्रवृत्ति नहीं होगी। बहनेका कारण जो गुण है वह "द्रव" है। पिण्डी होनेका कारण जो गुण है, वह "स्नेह" कहलाता है। संस्कार तीन प्रकारका है। वेग, भावना, स्थिति-स्थापक। बाणमें "वेग" गुण है जिससे वह दूर जा गिरता है। स्मृतिका कारण गुण "भावना" है। शाखादिकको खैंचकर छोड़ देनेपर जिससे शाखादिक अपने स्थानपर चले जाते हैं, वह "स्थिति-स्थापक" गुण है। पुण्य धर्म और पाप अधर्म है। कानसे जिस गुणका ग्रहण हो वह शब्द है, वह ध्वनि और भेदसे दो प्रकारका है। द्रव्यमें रहनेवाला गुण-रहित और संयोग-विभागको करनेमें किसीकी अपेक्षा न करनेवाला "कर्म" है। ऊपर फेंकना, नीचे फेंकना, समेटना, फैलाना, चलना इत्यादि कर्म अनेक हैं।

एकाकार प्रतीतिका कारण सामान्य है, जैसे गौ इत्यादि। सामान्य और जाति पर्याय हैं। जाति दो प्रकारकी है परा और अपरा। परा वह जाति है जो बहुतोंमें रहे, जैसे सत्ता, द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनोंमें रहती है। द्रव्यत्व द्रव्यमें ही है, गुणत्व गुणमें ही है और कर्मत्व कर्ममें ही है, इसलिये सत्ताकी अपेक्षा अल्पदेशमें होनेसे यह अपरा जाति है। द्रव्य गुण और कर्म इन तीनोंमें ही जाति मानी जाती है और पदार्थोंमें नहीं। पृथिवी, जल, तेज, वायु इनके परमाणुओंमें और आकाश, काल, दिक्, आत्मा, मन, इन पाँचोंमें अर्थात् इन नव नित्य द्रव्योंमें रहनेवाला 'विशेष" है। यह एक परमाणुका दूसरेसे भेदके वास्ते माना गया है। नित्य सम्बन्धका नाम "समवाय" है। अभाव चार प्रकारका है, प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव, अत्यन्ताभाव। होगा, यह प्रागभाव है। फूट गया, टूट गया, यह प्रध्वंसाभाव है। गौ घोड़ा नहीं घोड़ा गौ नहीं, यह अन्योन्याभाव है। नहीं है, यह अत्यन्ताभाव है। वस्तुकी उत्पत्तिसे पहिले जो उस वस्तुका अभाव है, वह प्रागभाव है। वस्तुके नाश होनेपर जो अभाव है वह प्रध्वंसाभाव है। आपसमें दोनोंका अभाव अन्योन्याभाव है। बिलकुल अभाव "अत्यन्ताभाव" है। प्रमाज्ञानके कारण प्रत्यक्ष और अनुमान यह दो ही प्रमाण वैशेषिक मतमें भी हैं। उपमान और शब्दको अनुमानमें ही अन्तर्गत करते हैं।

इस प्रकार उद्देश लक्षण, परीक्षा और उद्देश विशेष विभागसे पदार्थोंका वर्णन करते हुए महर्षि कणादने अधिकारियोंके लिए आत्मा अनात्माका विवेक अच्छी तरहसे कराया है। इस दर्शनको अच्छी तरह जाननेसे देह इन्द्रिय मन आदि अनात्म-वस्तुमें आत्माका भ्रम कभी नहीं होगा। "तद्वचनादाम्नायस्य" ईश्वरके वचनसे वेदका प्रामाण्य है, इस सूत्रको समाप्तिमें रखते हुए कणादने इस बातके ऊपर अधिक जोर दिया है कि कर्मफलको देनेवाले परमात्माको भी अवश्य मानना चाहिए। परमात्माके बिना पृथिवी आदिकी सृष्टि नहीं हो सकती और इसका कर्त्ता अवश्य कोई है, क्योंकि कर्त्ताके बिना कार्य नहीं देखा गया है, जो इसका कर्त्ता है वह ईश्वर है, इस अनुमानसे ईश्वर भी सिद्ध होता है। इसमें श्रुतिका प्रमाण है।

मात्र होंगे। उन हेतुओं और युक्तियोंके अतिरिक्त जान-बूझकर वादीको घबरानेके लिए उसके वाक्योंका ऊटपटाङ्ग अर्थ करके यदि वादी गड़बड़ डालना चाहता है तो यह उसका छल कहलाता है, और यदि व्याप्तिनिरपेक्ष साधर्म्य वैधर्म्य आदिके सहारे अपना पक्ष स्थापित करने लगता है तो वह जातिमें आ जाता है। इस प्रकार होते-होते जब शास्त्रार्थमें यह अवस्था आ जाती है कि अब प्रतिवादीको रोककर शास्त्रार्थ बन्द किया जाय तब 'निग्रह-स्थान' कहा जाता है।

न्यायका मुख्य विषय है प्रमाण। 'प्रमा' नाम है यथार्थ ज्ञानका। यथार्थ ज्ञानका जो करण हो अर्थात् जिसके द्वारा यथार्थ ज्ञान हो उसे, प्रमाण कहते हैं। गौतमने चार प्रमाण माने हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। इनमेंसे आत्मा, मन और इन्द्रिय-का संयोग रूप जो ज्ञानका करण वा प्रमाण है वही प्रत्यक्ष है। वस्तुके साथ इन्द्रिय-संयोग होनेसे जो उसका ज्ञान होता है वह अनुमान है। भाष्यकारने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है कि लिङ्ग-लिङ्गीके प्रत्यक्ष ज्ञानसे उत्पन्न ज्ञान तथा ज्ञानके कारणको अनुमान कहते हैं। जैसे, हमने बराबर देखा है कि जहाँ धूआँ रहता है वहाँ आग रहती है। इसीको नैयायिक व्याप्ति-ज्ञान कहते हैं जो अनुमानकी पहली सीढ़ी है। हमने कहीं धूआँ देखा जो आगका लिङ्ग या चिह्न है और हमारे मनमें यह ध्यान हुआ कि "जिस धूएँके साथ सदा हमने आग देखी है वह यहाँ है" इसीको परामर्श-ज्ञान या व्याप्तिविशिष्ट-पक्ष-धर्मता कहते हैं। इसके अनन्तर हमें यह ज्ञान या अनुमान उत्पन्न हुआ कि "यहाँ आग है।" अपने समझनेके लिये तो उपर्युक्त तीन खण्ड काफी हैं पर नैयायिकोंका कार्य है दूसरेके मनमें ज्ञान कराना, इससे वे अनुमानके पाँच खण्ड करते हैं जो 'अवयव' कहलाते हैं।

(१) प्रतिज्ञा—साध्यका निर्देश करनेवाला अर्थात् अनुमानसे जो बात सिद्ध करता है उसका वर्णन करनेवाला वाक्य, जैसे, "यहाँ पर आग है।"

(२) हेतु—जिस लक्षण या चिह्नसे बात प्रमाणित की जाती है, जैसे, "क्योंकि यहाँ धूआँ है।'

(३) उदाहरण—सिद्ध की जानेवाली वस्तु बतलाए हुए चिह्नके साथ जहाँ देखी गयी है उसे बतलानेवाला वाक्य। जैसे, जहाँ-जहाँ धूआँ रहता है वहाँ-वहाँ आग रहती है, जैसे 'रसोई घरमें'।

(४) उपनय—जो वाक्य बतलाये हुए चिह्न या लिङ्गका होना प्रकट करे, जैसे 'यहाँ पर धूआँ है।"

(५)—निगमन—सिद्ध की जानेवाली बात सिद्ध हो गयी। यह कथन। अतः अनुमानका पूरा रूप यों हुआ।

यहाँपर आग है (प्रतिज्ञा)
क्योंकि यहाँ धूआँ है (हेतु)।
जहाँ-जहाँ धूआँ रहता है वहाँ-वहाँ आग रहती है "जैसे रसोई-घरमें" (उदाहरण)
यहाँपर धूआँ है (उपनय)
इसलिये यहाँपर आग है। (निगमन)

इकसठवाँ अध्याय

न्यायदर्शन

न्यायदर्शनका सार बड़ी उत्तम रीतिसे हिन्दी-शब्द-सागरमें दिया गया है। यहाँ हम उसीका अवतरण देते हैं।

न्यायदर्शनके प्रवर्त्तक गौतम ऋषि मिथिलाके निवासी कहे जाते हैं। गौतमके न्याय-सूत्र अबतक प्रसिद्ध हैं। इन सूत्रोंपर वात्स्यायन मुनिका भाष्य है। इस भाष्यपर उद्योत करने वार्त्तिक लिखा है। वार्त्तिककी व्याख्या वाचस्पति मिश्रने "न्यायवार्त्तिकतात्पर्य टीका"के नामसे लिखी है। इस टीकाकी भी टीका उदयनाचार्यकृत "तात्पर्य्यपरिशुद्धि" है। इस परि-शुद्धिपर वर्द्धमान उपाध्यायकृत "प्रकाश" है।

गौतमका न्याय केवल प्रमाण तर्क आदिके नियम निश्चित करनेवाला शास्त्र नहीं है बल्कि आत्मा, इन्द्रिय, पुनर्जन्म, दुःख, अपवर्ग आदि विशिष्ट प्रमेयोंका विचार करनेवाला दर्शन है। गौतमने सोलह पदार्थोंका विचार किया है और उनके सम्यक् ज्ञान द्वारा अपवर्ग या मोक्षकी प्राप्ति कही है। सोलह पदार्थ या विषय ये हैं—प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान। इन विषयोंपर विचार किसी मध्यस्थके सामने वादी प्रतिवादीके कथोपकथनके रूपमें कराया गया है। किसी विषयमें विवाद उपस्थित होनेपर पहले इसका निर्णय आव-श्यक होता है कि दोनों वादियोंके कौन कौन प्रमाण माने जायँगे। इससे पहले प्रमाण लिया गया है। इसके उपरान्त विवादका विषय अर्थात् प्रमेयका विचार हुआ है। विषय सूचित हो जानेपर मध्यस्थके चित्तमें सन्देह उत्पन्न होगा कि उसका यथार्थ स्वरूप क्या है। उसीका विचार सन्देह पदार्थके नामसे हुआ है। सन्देहके उपरान्त मध्यस्थके चित्तमें यह विचार हो सकता है कि इस विषयके विचारसे क्या मतलब। यही प्रयोजन हुआ। वादी सन्दिग्ध विषयपर अपना पक्ष दृष्टान्त दिखाकर बतलाता है वही दृष्टान्त पदार्थ है। जिस पक्षको वादी पुष्ट करके बतलाता है वह उसका सिद्धान्त हुआ। वादीका पक्ष सूचित होनेपर पक्षसाधनकी जो जो युक्तियाँ कही गयी हैं प्रतिवादी उनके खण्ड-खण्ड करके उनके खण्डनमें प्रवृत्त होता है। युक्तियोंके येही खण्ड अवयव कहलाते हैं। अपनी युक्तियोंको खण्डित देख वादी फिरसे और युक्तियाँ देता है जिनसे प्रतिवादीकी युक्तियोंका उत्तर हो जाता है। यही तर्क कहा गया है। तर्कद्वारा वादी जो अपना पक्ष स्थिर करता है वही निर्णय है। प्रतिवादीके इतनेसे सन्तुष्ट न होनेपर दोनों पक्षोंद्वारा पञ्चावयवयुक्त युक्तियोंका कथन 'वाद' कहा गया है। वाद या शास्त्रार्थ द्वारा स्थिर सत्य पक्षको न मानकर यदि प्रतिवादी जीतकी इच्छासे अपनी चतुराई-के बलसे व्यर्थ उत्तर-प्रत्युत्तर करता चला जाता है तो वह जल्प कहलाता है। इस प्रकार प्रतिवादी कुछ कालतक तो कुछ अच्छी युक्तियाँ देता जायगा फिर ऊटपटाङ्ग बकने लगेगा जिसे वितण्डा कहते हैं। इस वितण्डामें जितने हेतु दिए जायँगे वे ठीक न होंगे, वे हेत्वाभास

सभी सत्य माने जा सकते हैं जब कि उनका कहनेवाला प्रामाणिक माना जाय। सूत्रोंमें वेदके प्रामाण्यके विषयमें कई शंकाएँ उठाकर उनका समाधान किया गया है। मीमांसक ईश्वर नहीं मानते पर वे भी वेदको अपौरुषेय और नित्य मानते हैं। नित्य तो मीमांसक शब्दमात्रको मानते है और शब्द और अर्थका नित्य सम्बन्ध बतलाते हैं। पर नैयायिक शब्दका अर्थके साथ कोई नित्य सम्बन्ध नहीं मानते।

वाक्यका अर्थ क्या है इस विषयमें बहुत मतभेद है। मीमांसकोंके मतसे नियोग या प्रेरणा ही वाक्यार्थ है—अर्थात् 'ऐसा करो' 'ऐसा न करो' यही बात सब वाक्योंसे कही जाती है चाहे साफ-साफ चाहे ऐसे अर्थवाले दूसरे वाक्योंसे सम्बन्धद्वारा। पर नैयायिकोंके मतसे कई पदोंके सम्बन्धसे निकलनेवाला अर्थ ही वाक्यार्थ है। परन्तु वाक्यमें जो पद होते हैं वाक्यार्थके मूलकारण वे ही हैं। न्यायमञ्जरीमें पदोंमें दो प्रकारकी शक्ति मानी गयी है—अभिधात्री शक्ति जिससे एक-एक पद अपने-अपने अर्थका बोध कराता है और दूसरी तात्पर्य-शक्ति जिससे कई पदोंके सम्बन्धका अर्थ सूचित होता है। शक्तिके अतिरिक्त लक्षण भी नैया-यिकोंने माना है। आलंकारिकोंने तीसरी वृत्ति व्यञ्जना भी मानी है पर नैयायिक उसे पृथक्-वृत्ति नहीं मानते। सूत्रके अनुसार जिन कई अक्षरोंके अन्तमें विभक्ति हो वे ही पद हैं और विभक्तियाँ दो प्रकारकी होती हैं—नाम-विभक्ति और आख्यात-विभक्ति। इस प्रकार नैयायिक नाम और आख्यात दो ही प्रकारके पद मानते हैं। अव्यय पदको भाष्यकारने नामके ही अन्तर्गत सिद्ध किया है।

न्यायमें ऊपर लिखे चार ही प्रमाण माने गए हैं। मीमांसक और वेदान्ती अर्थापत्ति, ऐतिह्य, सम्भव और अभाव ये चार और प्रमाण कहते हैं। नैयायिक इन चारोंको अपने चार प्रमाणोंके अन्तर्गत मानते हैं। ऊपरके विवरणसे स्पष्ट हो गया होगा कि प्रमाण ही न्याय-शास्त्रका मुख्य विषय है। इसीसे 'प्रमाण-प्रवीण' 'प्रमाण-कुशल' आदि शब्दोंका व्यवहार नैयायिक या तार्किकके लिये होता है।

प्रमाण अर्थात् किसी बातको सिद्ध करनेके विधानका ऊपर उल्लेख हो चुका। अब उक्त विधानके अनुसार किन-किन वस्तुओंका विचार और निर्णय न्यायमें हुआ है इसका संक्षेपमें कुछ विवरण दिया जाता है। ऐसे विषय न्यायमें प्रमेय (जो प्रमाणित किया जाय) पदार्थके अन्तर्गत हैं और बारह गिनाये हैं। (१) आत्मा—सब वस्तुओंका देखनेवाला, भोग करनेवाला, जाननेवाला और अनुभव करनेवाला। (२) शरीर भोगोंका आयतन या आधार। (३) इन्द्रियाँ—भोगोंके साधन। (४) अर्थ—वस्तु जिनका भोग होता है। (५) मन—भोग। (६) बुद्धि—अन्तःकरण अर्थात् वह भीतरी इन्द्रिय जिसके द्वारा सब वस्तुओंका ज्ञान होता है। (७) प्रवृत्ति—वचन, मन और शरीरका व्यापार। (८) दोष—जिसके कारण अच्छे या बुरे कामोंमें प्रवृत्ति होती है। (९) प्रेत्यभाव—पुनर्जन्म। (१०) फल—सुख दुःखका संवेदन या अनुभव। (११) दुःख—पीड़ा, क्लेश। (१२) अपवर्ग—दुःखसे अत्यन्त निवृत्ति या मुक्ति।

इस सूचीसे यह न समझना चाहिए कि इन वस्तुओंके अतिरिक्त और प्रमाणके विषय या प्रमेय हो ही नहीं सकते। प्रमाणके द्वारा बहुतसी बातें सिद्ध की जाती हैं। पर गौतमने अपने सूत्रोंमें उन्हीं बातोंपर विचार किया है जिनके ज्ञानसे अपवर्ग या मोक्षकी प्राप्ति हो। न्यायमें

साधारणतः इन पाँच अवयवोंसे युक्त वाक्यको न्याय कहते हैं। नवीन नैयायिक इन पाँचों अवयवोंका मानना आवश्यक नहीं समझते। वे प्रमाणके लिये प्रतिज्ञा, हेतु और दृष्टान्त इन्हीं तीनोंको काफी समझते हैं। मीमांसक और वेदान्ती भी इन्हीं तीनोंको मानते हैं। बौद्ध नैयायिक दो ही मानते हैं, प्रतिज्ञा और हेतु।

दुष्ट हेतुको हेत्वाभास कहते हैं। पर इसका वर्णन गौतमने प्रमाणके अन्तर्गत न करके इसे अलग पदार्थ (विषय) मानकर किया है। इसी प्रकार छल, जाति, निग्रहस्थान इत्यादि भी वास्तवमें हेतुदोष ही कहे जा सकते हैं। केवल हेतुका अच्छी तरह विचार करनेसे अनुमानके सब दोष पकड़े जा सकते हैं और यह मालूम हो सकता है कि अनुमान ठीक है या नहीं।

गौतमका तीसरा प्रमाण 'उपमान' है। किसी जानी हुई वस्तुके सादृश्यसे न जानी हुई वस्तुका ज्ञान जिस प्रमाणसे होता है वही उपमान है। जैसे नीलगाय गायके सदृश होती है।

किसीके मुँहसे यह सुनकर जब हम जङ्गलमें नीलगाय देखते तब चट हमें ज्ञान हो जाता है कि "यह नीलगाय है।" इससे प्रतीत हुआ कि किसी वस्तुका उसके नामके साथ सम्बन्ध ही उपमिति ज्ञानका विषय है। वैशेषिक और बौद्ध नैयायिक उपमानको अलग प्रमाण नहीं मानते, प्रत्यक्ष और शब्द प्रमाणके ही अन्तर्गत मानते हैं। वे कहते हैं कि "गोके सदृश गवय होता है" यह शब्द या आगम ज्ञान है क्योंकि यह आप्त या विश्वासपात्र मनुष्यके कहे हुए शब्दद्वारा हुआ। फिर इसके उपरान्त यह ज्ञान कि "यह जन्तु जो हम देखते हैं गोके सदृश है" यह प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ। इसका उत्तर नैयायिक यह देते हैं कि यहाँ तकका ज्ञान तो शाब्द और प्रत्यक्ष ही हुआ पर इसके अनन्तर जो यह ज्ञान होता है कि "इसी जन्तुका नाम गवय है" वह न प्रत्यक्ष है न अनुमान, न शाब्द, वह उपमान ही है। उपमानको कई नये दार्शनिकोंने इस प्रकार अनुमानके अन्तर्गत किया है। वे कहते हैं कि "इस जन्तुका नाम गवय है" 'क्योंकि यह गोके सदृश है' 'जो-जो जन्तु गोके सदृश होते हैं उनका नाम गवय होता है।" पर इसका उत्तर यह है कि जो-जो जन्तु गोके सदृश होते हैं वे गवय हैं यह बात मनमें नहीं आती। मनमें केवल इतना ही आता है कि "मैंने अच्छे आदमीके मुँहसे सुना है कि गवय गायके सदृश होता है ?"

चौथा प्रमाण है शब्द। सूत्रमें लिखा है कि आप्तोपदेश अर्थात् आप्त पुरुषका वाक्य शब्द-प्रमाण है। भाष्यकारने आप्त पुरुषका लक्षण यह बतलाया है कि जो साक्षात्कृतधर्मा हो, जैसा देखा सुना अनुभव किया हो ठीक-ठीक वैसा ही कहनेवाला हो वही आप्त है, चाहे वह आर्य हो या म्लेच्छ। गौतमने आप्तोपदेशके दो भेद किये हैं दृष्टार्थ और अदृष्टार्थ। प्रत्यक्ष जानी हुई बातोंको बतानेवाला दृष्टार्थ और केवल अनुमानसे जानी जानेवाली बातोंको (जैसे स्वर्ग अपवर्ग, पुनर्जन्म इत्यादिको) बतानेवाला अदृष्टार्थ कहलाता है। इसपर भाष्य करते हुए वात्स्यायनने कहा है कि इस प्रकार लौकिक और ऋषिवाक्य अर्थात् वैदिकका विभाग हो जाता है अर्थात् अदृष्टार्थमें केवल वेदवाक्य ही प्रमाण-कोटिमें माना जा सकता है। नैयायिकोंके मतसे वेद ईश्वरकृत है इससे उसके वाक्य सदा सत्य और विश्वसनीय है। पर लौकिक वाक्य

मत न्यायमत कहे जाते हैं। वात्स्यायनने भी भाष्यमें कह दिया है कि जिन बातोंको विस्तार-भयसे गौतमने सूत्रोंमें नहीं कहा है उन्हें वैशेषिकसे ग्रहण करना चाहिए।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे प्रकट हो गया होगा कि गौतमका न्याय केवल विचार वा तर्कके नियम निर्धारित करनेवाला शास्त्र नहीं है बल्कि प्रमेयोंका विचार करनेवाला दर्शन है। पाश्चात्य लाजिक या तर्कशास्त्रसे यही इसमें भेद है। लाजिक दर्शनके अन्तर्गत नहीं लिया जाता पर न्याय दर्शन है। यह अवश्य है कि न्यायमें प्रमाण वा तर्ककी परीक्षा विशेष रूपसे हुई है।

न्यायशास्त्रका भारतवर्षमें कब प्रादुर्भाव हुआ ठीक नहीं कहा जा सकता। नैयायिकोंमें जो प्रवाद प्रचलित हैं उनके अनुसार गौतम वेदव्यासके समकालीन ठहरते हैं। पर इसका कोई प्रमाण नहीं है। 'आन्वीक्षिकी' 'तर्कविद्या' 'हेतुवाद' का निन्दापूर्वक उल्लेख रामायण और महाभारतमें मिलता है। रामायणमें तो नैयायिक शब्द भी अयोध्याकाण्डमें आया है। पाणिनिने न्यायसे नैयायिक शब्द बननेका निर्देश किया है। न्यायके प्रादुर्भावके सम्बन्धमें साधारणतः दो प्रकारके मत पाये जाते हैं। कुछ पाश्चात्य विद्वानोंकी धारणा है कि बौद्धधर्मका प्रचार होनेपर उसके खण्डनके लिए ही इस शास्त्रका अभ्युदय हुआ। पर कुछ एतद्देशीय विद्वानोंका मत है कि वैदिक वाक्योंके परस्पर समन्वय और समाधानके लिए जैमिनिने पूर्व मीमांसामें जिन युक्तियों और तर्कोंका व्यवहार किया वे ही पहले न्यायके नामसे कहे जाते थे। आपस्तम्ब धर्मसूत्रमें जो 'न्याय' शब्द आया है उसका पूर्वमीमांसासे ही अभिप्राय समझना चाहिए। माधवाचार्यने पूर्व मीमांसाका जो सार-संग्रह लिखा उसका नाम न्याय-माला-विस्तार रखा। वाचस्पति मिश्रने भी 'न्यायकणिका'के नामसे मीमांसापर एक ग्रन्थ लिखा है। पर न्यायके प्राचीनत्वसे वङ्गदेशका गौरव समझनेवाले कुछ बङ्गाली पण्डितोंका कथन है कि न्याय ही सब दर्शनोंमें प्राचीन है क्योंकि और सब दर्शनसूत्रोंमें दूसरे दर्शनोंका उल्लेख मिलता है पर न्यायसूत्रोंमें कहीं किसी दूसरे दर्शनका नाम नहीं आया है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि न्याय सब दर्शनोंमें प्राचीन है, पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि तर्कके नियम बौद्धधर्मके प्रचारसे बहुत पूर्व प्रचलित थे, चाहे वे मीमांसाके रहे हों या स्वतन्त्र। हेमचन्द्रने न्यायसूत्रोंपर भाष्य रचनेवाले वात्स्यायन और चाणक्यको एक ही व्यक्ति माना है। यदि यह ठीक हो तो भाष्य ही बौद्ध धर्मप्रचारके पूर्वका ठहरता है क्योंकि बौद्ध-धर्मका प्रचार अशोकके समयसे और बौद्ध-न्यायका आविर्भाव अशोकके भी पीछे महायान-शाखा स्थापित होनेपर हुआ। पर वात्स्यायन और चाणक्यका एक होना हेमचन्द्रके उस श्लोकके आधारपर ही जिसमें चाणक्यके आठ नाम गिनाये गये हैं ठीक नहीं माना जा सकता। कुछ विद्वानोंका कथन है कि वात्स्यायन ईसाकी पाँचवीं शताब्दीमें हुए। ईसाकी छठीं शताब्दीमें वासवदत्ताकार सुबन्धुने मल्लनाग, न्यायस्थिति, धर्मकीर्त्ति और उद्योतकर इन चार नैयायिकोंका उल्लेख किया है। इनमें धर्मकीर्त्ति प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक थे। उद्योतकरा-चार्यने प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक दिङ्नागाचार्यके 'प्रमाणसमुच्चय' नामक ग्रन्थका खण्डन करके वात्स्यायनका मत स्थापित किया। 'प्रमाण समुच्चय' में दिङ्नागने वात्स्यायनके मतका खण्डन किया था। इससे यह निश्चित है कि वात्स्यायन दिङ्नागके पूर्व हुए। मल्लिनाथने दिङ्नाग-

इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुःख और ज्ञान ये आत्माके लिङ्ग (अनुमानके साधन चिह्न या हेतु) कहे गये हैं। यद्यपि शरीर, इन्द्रिय और मनसे आत्मा पृथक् माना गया है। वैशेषिकमें भी इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख आदिको आत्माका लिङ्ग कहा है। शरीर, इन्द्रिय और मनसे आत्माके पृथक् होनेके हेतु गौतमने दिये हैं। वेदान्तियोंके समान नैयायिक एक ही आत्मा नहीं मानते, अनेक मानते हैं। सांख्यवाले भी अनेक पुरुष मानते हैं पर वे पुरुषको अकर्त्ता और अभोक्ता, साक्षी वा द्रष्टामात्र मानते हैं। नैयायिक आत्माको कर्त्ता, भोक्ता आदि मानते हैं। संसारको रचनेवाला आत्मा ही ईश्वर है। न्यायमें आत्माके समान ही ईश्वरमें भी संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, इच्छा, बुद्धि, प्रयत्न ये गुण माने गये हैं पर नित्य करके। न्यायमञ्जरीमें लिखा है कि दुःख, द्वेष और संस्कारको छोड़ और सब आत्माके गुण ईश्वरमें हैं। बहुतसे लोग शरीरको पाँचों भूतोंसे बना मानते हैं पर न्यायमें शरीर केवल पृथ्वीके परमाणुओंसे घटित माना गया है। चेष्टा, इन्द्रिय और अर्थके आश्रयको शरीर कहते हैं। जिस पदार्थसे सुख हो उसके पाने और जिससे दुःख हो उसे दूर करनेका व्यापार चेष्टा है। अतः शरीरका जो लक्षण किया गया है उसके अन्तर्गत वृक्षोंका शरीर भी आ जाता है। पर वाचस्पति मिश्रने कहा है कि यह लक्षण वृक्ष-शरीरमें नहीं घटता, इससे केवल मनुष्य-शरीरका ही अभिप्राय समझना चाहिए। शङ्कर मिश्रने वैशेषिक सूत्रोपस्कारमें कहा है कि वृक्षोंको शरीर है पर उसमें चेष्टा और इन्द्रियाँ स्पष्ट नहीं दिखाई पड़तीं। इससे उसे शरीर नहीं कह सकते। पूर्वजन्मके किये कर्मोंके अनुसार शरीर उत्पन्न होता है। पाँच भूतोंसे पाँचों इन्द्रियोंकी उत्पत्ति कही गयी है। घ्राणेन्द्रियसे गन्धका ग्रहण होता है इससे वह पृथ्वीसे बनी है। रसना जलसे बनी है, क्योंकि रस जलका ही गुण है। चक्षु तेजसे बना है क्योंकि रूप तेजका ही गुण है। त्वक् वायुसे बना है क्योंकि स्पर्श वायुका गुण है। श्रोत्र आकाशसे बना है क्योंकि शब्द आकाशका गुण है।

बौद्धोंके मतसे शरीरमें इन्द्रियोंके जो प्रत्यक्ष गोलक देखे जाते हैं उन्हींको इन्द्रियाँ कहते हैं। (जैसे, आँखकी पुतली, जीभ इत्यादि) पर नैयायिकोंके मतसे जो अङ्ग दिखाई पड़ते हैं वे इन्द्रियोंके अधिष्ठान मात्र हैं, इन्द्रियाँ नहीं हैं। इन्द्रियोका ज्ञान इन्द्रियोंके द्वारा नहीं हो सकता। कुछ लोग एक ही त्वग् इन्द्रिय मानते हैं। न्यायमें उनके मतका खण्डन करके इन्द्रियोंका नानात्व स्थापित किया गया है। सांख्यमें पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन लेकर ग्यारह इन्द्रियाँ मानी गयी हैं। न्यायमें कर्मेन्द्रियाँ नहीं मानी गयी हैं। पर मन एक करण और अणुरूप माना गया है। यदि मन सूक्ष्म न होकर व्यापक होता तो युगपत् ज्ञान सम्भव होता, अर्थात् अनेक इन्द्रियोंका एक क्षणमें एक साथ संयोग होते हुए उन सबके विषयोंका एक साथ ज्ञान होता। पर नैयायिक ऐसा नहीं मानते। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये पाँचों भूतोंके गुण और इन्द्रियोंके अर्थ वा विषय हैं। न्यायमें बुद्धिको ज्ञान या उपलब्धिका ही दूसरा नाम बतलाया है। सांख्यमें बुद्धि नित्य कही गयी है पर न्यायमें अनित्य।

वैशेषिकके समान न्याय भी परमाणुवादी है अर्थात् परमाणुओंके योगसे सृष्टि मानता है। प्रमेयोंके सम्बन्धमें न्याय और वैशेषिकके मत प्रायः एकही हैं इससे दर्शनमें दोनोंके

मत न्यायमत कहे जाते हैं। वात्स्यायनने भी भाष्यमें कह दिया है कि जिन बातोंको विस्तार-भयसे गौतमने सूत्रोंमें नहीं कहा है उन्हें वैशेषिकसे ग्रहण करना चाहिए।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे प्रकट हो गया होगा कि गौतमका न्याय केवल विचार वा तर्कके नियम निर्धारित करनेवाला शास्त्र नहीं है वल्कि प्रमेयोंका विचार करनेवाला दर्शन है। पाश्चात्य लाजिक या तर्कशास्त्रसे यही इसमें भेद है। लाजिक दर्शनके अन्तर्गत नहीं लिया जाता पर न्याय दर्शन है। यह अवश्य है कि न्यायमें प्रमाण वा तर्ककी परीक्षा विशेष रूपसे हुई है।

न्यायशास्त्रका भारतवर्षमें कब प्रादुर्भाव हुआ ठीक नहीं कहा जा सकता। नैयायिकोंमें जो प्रवाद प्रचलित हैं उनके अनुसार गौतम वेदव्यासके समकालीन ठहरते हैं। पर इसका कोई प्रमाण नहीं है। 'आन्वीक्षिकी' 'तर्कविद्या' 'हेतुवाद' का निन्दापूर्वक उल्लेख रामायण और महाभारतमें मिलता है। रामायणमें तो नैयायिक शब्द भी अयोध्याकाण्डमें आया है। पाणिनिने न्यायसे नैयायिक शब्द वननेका निर्देश किया है। न्यायके प्रादुर्भावके सम्वन्धमें साधारणतः दो प्रकारके मत पाये जाते हैं। कुछ पाश्चात्य विद्वानोंकी धारणा है कि बौद्धधर्मका प्रचार होनेपर उसके खण्डनके लिए ही इस शास्त्रका अभ्युदय हुआ। पर कुछ एतद्देशीय विद्वानोंका मत है कि वैदिक वाक्योंके परस्पर समन्वय और समाधानके लिए जैमिनिने पूर्व मीमांसामें जिन युक्तियों और तर्कोंका व्यवहार किया वे ही पहले न्यायके नामसे कहे जाते थे। आपस्तम्ब धर्मसूत्रमें जो 'न्याय' शब्द आया है उसका पूर्वमीमांसासे ही अभिप्राय समझना चाहिए। माधवाचार्यने पूर्व मीमांसाका जो सार-संग्रह लिखा उसका नाम न्याय-माला-विस्तार रखा। वाचस्पति मिश्रने भी 'न्यायकणिका'के नामसे मीमांसापर एक ग्रन्थ लिखा है। पर न्यायके प्राचीनत्वसे वङ्गदेशका गौरव समझनेवाले कुछ बङ्गाली पण्डितोंका कथन है कि न्याय ही सव दर्शनोंमें प्राचीन है क्योंकि और सव दर्शनसूत्रोंमें दूसरे दर्शनोंका उल्लेख मिलता है पर न्यायसूत्रोंमें कहीं किसी दूसरे दर्शनका नाम नहीं आया है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि न्याय सव दर्शनोंमें प्राचीन है, पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि तर्कके नियम वौद्धधर्मके प्रचारसे वहुत पूर्व प्रचलित थे, चाहे वे मीमांसाके रहे हों या स्वतन्त्र। हेमचन्द्रने न्यायसूत्रोंपर भाष्य रचनेवाले वात्स्यायन और चाणक्यको एक ही व्यक्ति माना है। यदि यह ठीक हो तो भाष्य ही बौद्ध धर्मप्रचारके पूर्वका ठहरता है क्योंकि बौद्ध-धर्मका प्रचार अशोकके समयसे और बौद्ध-न्यायका आविर्भाव अशोकके भी पीछे महायान-शाखा स्थापित होनेपर हुआ। पर वात्स्यायन और चाणक्यका एक होना हेमचन्द्रके उस श्लोकके आधारपर ही जिसमें चाणक्यके आठ नाम गिनाये गये हैं ठीक नहीं माना जा सकता। कुछ विद्वानोंका कथन है कि वात्स्यायन ईसाकी पाँचवीं शताब्दीमें हुए। ईसाकी छठीं शताब्दीमें वासवदत्ताकार सुवन्धुने मल्लनाग, न्यायस्थिति, धर्मकीर्त्ति और उद्योतकर इन चार नैयायिकोंका उल्लेख किया है। इनमें धर्मकीर्ति प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक थे। उद्योतकरा-चार्यने प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक दिङ्नागाचार्यके 'प्रमाणसमुच्चय' नामक ग्रन्थका खण्डन करके वात्स्यायनका मत स्थापित किया। 'प्रमाण समुच्चय' में दिङ्नागने वात्स्यायनके मतका खण्डन किया था। इससे यह निश्चित है कि वात्स्यायन दिङ्नागके पूर्व हुए। मल्लिनाथने दिङ्नाग-

को कालिदासका समकालीन बतलाया है पर कुछ लोग इसे ठीक नहीं मानते और दिङ्नाग-का काल ईसाकी तीसरी शताब्दी कहते हैं। सुबन्धुके उल्लेखसे दिङ्नागाचार्यका ही काल छठी शताब्दीके पूर्व ठहरता है अतः वात्स्यायनको जो उनसे भी पूर्व हुए पाचवीं शताब्दीमें मानना ठीक नहीं। वे उससे पहले हुए होंगे। वात्स्यायनने दशावयव वादी नैयायिकोंका उल्लेख किया है, इससे सिद्ध है कि उनके पहलेसे भाष्यकार नैयायिकोंकी परम्परा चली आती थी। अस्तु, सूत्रोंकी रचनाका काल बौद्धधर्म-प्रचारके पूर्व मानना पड़ता है।

वैदिक, बौद्ध और जैन नैयायिकोंके बीच विवाद ईसाकी पाँचवीं शताब्दीसे लेकर तेरहवीं शताब्दीतक बराबर चलता रहा। इससे खण्डन-मण्डनके बहुतसे ग्रन्थ बने। चौदहवीं शताब्दीमें गगेशोपाध्याय हुए जिन्होंने 'नव्यन्याय'की नींव डाली। प्राचीन न्याय-में प्रमेय आदि जो सोलह पदार्थ थे उनमेंसे और सबको किनारे करके केवल 'प्रमाण'को लेकर ही भारी शब्दाडम्बर खड़ा किया गया। इस नव्यन्यायका आविर्भाव मिथिलामें हुआ। मिथिलासे नदियामें जाकर नव्यन्यायने और भी भयङ्कर रूप धारण किया। न उसमें तत्व-निर्णय रहा, न तत्वनिर्णयका सामर्थ्य।

बासठवाँ अध्याय

सांख्यदर्शन

सांख्यशास्त्रमें चार प्रकारसे पदार्थोंको दिखाया है। केवल प्रकृति, केवल विकृति, प्रकृति-विकृति उभयरूप और प्रकृति-विकृति दोनोंसे भिन्न।

मूल प्रकृति केवल प्रकृति है, किसीकी विकृति नहीं है। महत्वसे आरम्भ करके सात तत्व प्रकृति और विकृति भी हैं। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, पाँच महाभूत और मन यह सोलह केवल प्रकृति ही हैं। पुरुष न तो प्रकृति है और न विकृति है।

"प्रकरोति इति प्रकृतिः" अतिशय कार्योंको जो करे वह प्रकृति है। महदादि सम्पूर्ण कार्योंकी जो जड़ है वह मूल प्रकृति है। 'प्रधान' 'माया' 'अव्यक्त' आदि उसके नामान्तर हैं। इस प्रकृतिका और कोई कारण नहीं है, इसी वास्ते इसको मूल प्रकृति कहा जाता है। इसका भी कारण माना जावे तो उस कारणका कारण फिर उसका कारण इस प्रकार अनवस्था दोष आ जाता है।

"प्रकृतिम् पुरुषञ्चैव विद्ध्यनादी उभावपि।"

प्रकृति और पुरुष दोनोंको सांख्यमें अनादि माना है। इस शास्त्रको भगवान् कपिलजीने छः अध्यायोंमें कहा है। पहिले अध्यायमें विषय, दूसरेमें प्रधान या प्रकृतिके कार्य तीसरेमें विषयसे वैराग्य, चौथेमें विरक्त पुरुषोंकी, पिङ्गला कुरर आदिकी, वर्णित आख्यायिका, पञ्चममें पर-पक्षका विनिर्णय और षष्ठमें सब अर्थोंका संक्षेपसे सङ्ग्रह दिखाया गया है।

न्याय और वैशेषिक यह दोनों शास्त्र, श्रुतिसे सुने हुए आत्माके माननेके लिए विचार हैं। फिर क्या आवश्यकता इस नये सांख्यशास्त्रके बननेकी? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि अधिकारी-भेदसे उपदेशके लिए इसकी आवश्यकता है। आत्माके मननके विषयमें मन्द या कनिष्ठ अधिकारियोंके लिए वैशेषिक और न्याय हैं। मध्यम अधिकारियोंके लिए सांख्य है। उत्तम अधिकारियोंके लिए वेदान्तदर्शन है।

वैशेषिक और न्यायने देहेन्द्रियादिके सब अनात्म चीजोंसे आत्मभावको हटाकर, इनसे भिन्न आत्मा जो नित्य विभु है उसमें जिज्ञासुओंकी बुद्धिको स्थिर किया। पर सुख, दुःख, इच्छा, बुद्धि, काम, क्रोध, मद, मात्सर्य्य, कर्तृत्व, भोक्तृत्वादि नाना धर्म जैसे पामरोंको प्रतीत होते हैं, वैसे ही उनकी बुद्धिके अनुसार मान लिया। मननके द्वारा इन धर्मोंसे आत्माको अलगकर नित्य शुद्ध बुद्ध विभु आत्माका उपदेश नहीं किया। सांख्यने इन धर्मोंसे रहित निर्लेप पुरुषका उपदेश किया है। इसलिये उक्त अधिकारियोंसे उच्च कक्षाके अधिकारी मध्यम अधिकारी हैं, उनके लिए सांख्यशास्त्रका उपदेश है। किञ्च सम्पूर्ण पदार्थोंका उपदेश करते हुए भी कणाद और गौतमने प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कारका उपदेश नहीं किया। अहङ्कारसे उत्पन्न जो पञ्चतन्मात्र हैं, जिनको कणाद और गौतम परमाणु कहते हैं वहाँसे ही वैशेषिक और न्यायमें उक्त ऋषियोंने पदार्थको लिया। कपिलने इनसे परे भी

को कालिदासका समकालीन बतलाया है पर कुछ लोग इसे ठीक नहीं मानते और दिङ्नाग-का काल ईसाकी तीसरी शताब्दी कहते हैं। सुबन्धुके उल्लेखसे दिङ्नागाचार्यका ही काल छठी शताब्दीके पूर्व ठहरता है अतः वात्स्यायनको जो उनसे भी पूर्व हुए पाचवीं शताब्दीमें मानना ठीक नहीं। वे उससे पहले हुए होंगे। वात्स्यायनने दशावयव वादी नैयायिकोंका उल्लेख किया है, इससे सिद्ध है कि उनके पहलेसे भाष्यकार नैयायिकोंकी परम्परा चली आती थी। अस्तु, सूत्रोंकी रचनाका काल बौद्धधर्म-प्रचारके पूर्व मानना पड़ता है।

वैदिक, बौद्ध और जैन नैयायिकोंके बीच विवाद ईसाकी पाँचवीं शताब्दीसे लेकर तेरहवीं शताब्दीतक बराबर चलता रहा। इससे खण्डन-मण्डनके बहुतसे ग्रन्थ बने। चौदहवीं शताब्दीमें गगेशोपाध्याय हुए जिन्होंने 'नव्यन्याय'की नींव डाली। प्राचीन न्याय-में प्रमेय आदि जो सोलह पदार्थ थे उनमेंसे और सबको किनारे करके केवल 'प्रमाण'को लेकर ही भारी शब्दाडम्बर खड़ा किया गया। इस नव्यन्यायका आविर्भाव मिथिलामें हुआ। मिथिलासे नदियामें जाकर नव्यन्यायने और भी भयङ्कर रूप धारण किया। न उसमें तत्व-निर्णय रहा, न तत्वनिर्णयका सामर्थ्य।

बासठवाँ अध्याय

सांख्यदर्शन

सांख्यशास्त्रमें चार प्रकारसे पदार्थोंको दिखाया है। केवल प्रकृति, केवल विकृति, प्रकृति-विकृति उभयरूप और प्रकृति-विकृति दोनोंसे भिन्न।

मूल प्रकृति केवल प्रकृति है, किसीकी विकृति नहीं है। महत्‌से आरम्भ करके सात तत्व प्रकृति और विकृति भी हैं। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, पाँच महाभूत और मन यह सोलह केवल प्रकृति ही हैं। पुरुष न तो प्रकृति है और न विकृति है।

"प्रकरोति इति प्रकृतिः" अतिशय कार्योंको जो करे वह प्रकृति है। महदादि सम्पूर्ण कार्योंकी जो जड़ है वह मूल प्रकृति है। 'प्रधान' 'माया' 'अव्यक्त' आदि उसके नामान्तर हैं। इस प्रकृतिका और कोई कारण नहीं है, इसी वास्ते इसको मूल प्रकृति कहा जाता है। इसका भी कारण माना जावे तो उस कारणका कारण फिर उसका कारण इस प्रकार अनवस्था दोष आ जाता है।

"प्रकृतिम् पुरुषञ्चैव विद्ध्यनादी उभावपि।"

प्रकृति और पुरुष दोनोंको सांख्यमें अनादि माना है। इस शास्त्रको भगवान् कपिल-जीने छः अध्यायोंमें कहा है। पहिले अध्यायमें विषय, दूसरेमें प्रधान या प्रकृतिके कार्य तीसरेमें विषयसे वैराग्य, चौथेमें विरक्त पुरुषोंकी, पिङ्गला कुरर आदिकी, वर्णित आख्यायिका, पञ्चममें पर-पक्षका विनिर्णय और षष्ठमें सब अर्थोंका संक्षेपसे सङ्ग्रह दिखाया गया है।

न्याय और वैशेषिक यह दोनों शास्त्र, श्रुतिसे सुने हुए आत्माके माननेके लिए विचार हैं। फिर क्या आवश्यकता इस नये सांख्यशास्त्रके बननेकी? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि अधिकारी-भेदसे उपदेशके लिए इसकी आवश्यकता है। आत्माके मननके विषयमें मन्द या कनिष्ठ अधिकारियोंके लिए वैशेषिक और न्याय हैं। मध्यम अधिकारियोंके लिए सांख्य है। उत्तम अधिकारियोंके लिए वेदान्तदर्शन है।

वैशेषिक और न्यायने देहेन्द्रियादिके सब अनात्म चीजोंसे आत्मभावको हटाकर, इनसे भिन्न आत्मा जो नित्य विभु है उसमें जिज्ञासुओंकी बुद्धिको स्थिर किया। पर सुख, दुःख, इच्छा, बुद्धि, काम, क्रोध, मद, मात्सर्य्य, कर्तृत्व, भोक्तृत्वादि नाना धर्म जैसे पामरोंको प्रतीत होते हैं, वैसे ही उनकी बुद्धिके अनुसार मान लिया। मननके द्वारा इन धर्मोंसे आत्माको अलगकर नित्य शुद्ध बुद्ध विभु आत्माका उपदेश नहीं किया। सांख्यने इन धर्मोंसे रहित निर्लेप पुरुषका उपदेश किया है। इसलिये उक्त अधिकारियोंसे उच्च कक्षाके अधिकारी मध्यम अधिकारी हैं, उनके लिए सांख्यशास्त्रका उपदेश है। किञ्च सम्पूर्ण पदार्थों-का उपदेश करते हुए भी कणाद और गौतमने प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कारका उपदेश नहीं किया। अहङ्कारसे उत्पन्न जो पञ्चतन्मात्र हैं, जिनको कणाद और गौतम परमाणु कहते हैं यहाँसे ही वैशेषिक और न्यायमें उक्त ऋषियोंने पदार्थको लिया। कपिलने इनसे परे भी

सूक्ष्म अहङ्कार महतत्त्व और प्रकृति इन तीनोंका वर्णन किया। इसलिये भी उक्त दर्शनोंसे सांख्यका दरजा ऊँचा है। सांख्य उच्च है, इस बातको भगवानने गीतामें कहा है, तथा और भी स्मृति हैं, जो सांख्यको महान और उक्त दर्शनोंको हीन सूचित करती हैं।

बौद्ध कहते हैं कि असत्से सत् होता है। नैयायिक कहते हैं कि सत्से असत् होता है अर्थात् घट सत् कारणोंसे है, असत्से नहीं है, कारणमें असत् है फिर अपूर्व-घट होकर सत् रूप हुआ। सत्का सब कार्य विवर्त है अर्थात् जैसे रस्सीमें सर्प न हुआ न है और न होगा, पर भ्रमसे सर्प प्रतीत होता है, इसी तरह सत्में जगत् भ्रमसे प्रतीत होता है, वास्तवमें है नहीं, यह वेदान्ती कहता है। सत्से सत् होता है, यह सांख्य कहता है। असत्से सत्की उत्पत्ति तो बन नहीं सकती। क्योंकि ऐसा देखा नहीं जाता कि बन्ध्यापुत्रसे किसीकी उत्पत्ति हो। दूसरा पक्ष भी नहीं बनता, क्योंकि जब कारणमें कार्य असत् है तो कार्यका सत्ताके साथ कभी सम्बन्ध नहीं हो सकता। खरगोशका सींग असत् है इसलिए खरगोशमें कभी वह कार्य सत्ताको नहीं पाता। तीसरा विवर्तवाद या भ्रमवाद भी सम्भव नहीं है क्योंकि स्वर्णमें चाँदीका, प्रकाशमें अँधेरेका, कभी भ्रम नहीं होता। इसी तरह अत्यन्त विरोधी सत्में असत् जगत्का भासना कभी नहीं बन सकता। इस प्रकार तीनों कार्य-कारणवादको दूषित समझकर कपिलने सत्से सत्की उत्पत्ति अर्थात् कारणमें कार्य है, उसका आविर्भाव माना है, और नाशसे तिरोभाव माना है।

सुख-दुःख मोहमय संसारका कारण भी सुख-दुःख मोहमय ही होना चाहिए। यह कार्यरूप जगत् सुख-दु.ख मोहात्मक कारणवाला है। सुख-दुःख मोहसे अन्वित होनेके कारण, जो जिससे अन्वित होता है वह उस कारणवाला होता है। सोनेका अलङ्कार सोनेसे अन्वित है तो सोना उसका कारण है, इस अनुमानसे भी प्रकृति जगत्का कारण सिद्ध होती है। सत्व, रज, तमकी साम्यावस्था प्रकृति है। क्षोभ होनेसे अर्थात् इन गुणोंकी कमीबेशी होनेपर सृष्टि होती है। सत्व सुख रूप है। दुःख रजरूप है। तम मोह रूप है। सब सृष्टिके पदार्थ तीनों रूपमें होते हैं। जैसे एक मणि जिसके पास है उसके लिए सुखरूप है। जिसके पास नहीं है पर वह चाहता है, उसके लिए दुःखरूप है। जो उदासीन है उसके लिए मोहरूप है। "मुहवैचित्ये" मुह विचेत होनेके अर्थमें है। जो उदासीन है यह उस मणिसे विचेत है। ऐसे ही यह तीनों रूप सब सृष्टिके पदार्थोंमें जानना चाहिए। तीनों रूपसे प्रकृति सब सृष्टिमें है। प्रकृतिकी कोई प्रकृति नहीं, इसलिये प्रधान केवल प्रकृति ही है।

महत्तत्व, अहङ्कार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, यह सात प्रकृति और विकृति भी हैं। अन्त.करण-रूप महत्तत्व, अहङ्कारकी प्रकृति और मूल प्रकृतिकी विकृति है। पाँच विषय और ग्यारह इन्द्रिय इन सोलह पदार्थोंकी प्रकृति अहङ्कार है जो महत्तत्वकी विकृति है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, क्रमसे आकाश, वायु तेज, जल, पृथ्वी इनकी प्रकृति है और अहङ्कारकी विकृति है। पाँच महाभूत, और श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, वाक् पाणि, पाद, पायु, उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रिय, ज्ञान और कर्म उभयेन्द्रियात्मक मन यह सोलह केवल विकार रूप हैं। यह किसीकी प्रकृति नहीं हैं। यद्यपि पृथिवी आदिके गो, वृक्ष आदिके दूध और बीज, और दूध और बीजके भी दधि और अङ्कुर विकार हैं, तथापि यह सब

पृथ्वी तत्व हैं, तत्वान्तर नहीं हैं। यहाँ कार्य-कारण-भाव तत्वान्तर-तत्वान्तरका ही दर्शाया गया है। इसलिए यह सोलह केवल विकृति ही हैं। पुरुष किसीका भी प्रकृति वा विकृति वा उभय नहीं है।

अहङ्कार तीन प्रकारका है। सात्विक, राजस, तामस। सात्विक अहङ्कारसे ग्यारह इन्द्रियाँ हुई हैं। तामस अहङ्कारसे पाँच शब्दादिविषय होते हैं। राजस अहङ्कारसे विषय और इन्द्रियाँ दोनों हैं। क्योंकि रजोगुण चल-स्वभाव है, इसके होनेसे सत्व गुण और गुणमें क्रिया होती है। इसलिए रजोगुण विषयों और इन्द्रियोंका दोनोंका कारण है। शब्द आदि गुणोंसे पाँच भूतकी उत्पत्ति है। इन्द्रियोंकी साधारण वृत्ति ही प्राण है, तत्वान्तर नहीं। वस्तुसे भिन्न भूत भवत् (वर्तमान) भविष्यत् काल कोई चीज नहीं है, क्योंकि स्वतन्त्र कालके स्वरूपको निरूपण करना असम्भव है। केवल प्रकृति एक, और प्रकृति तथा विकृत रूप महदादि सात, और केवल विकार सोलह, यह चौवीस तत्व हैं। पुरुष पचीसवाँ है। वह अन्तःकरणयुक्त पुरुष एक नहीं है किन्तु अनेक है। नहीं तो एकके मरनेसे सब मर जाते, एकके पण्डित होनेसे सब पण्डित हो जाते। ऐसा होता नहीं, इस वास्ते अन्तःकरण-विशिष्ट-पुरुष नाना हैं। वह पुरुष निर्गुण होनेके कारण संसारमें है तो भी जलमें कमलदलके समान निर्लेप है। संसार भोग्य है, पुरुष चेतन भोक्ता है, वही आत्मा है। प्रकृति कर्तृ है। पुरुषके पास होनेसे प्रकृति चेतनकी नाईं भासती है। और चेतन असङ्ग है तो भी प्रकृतिके कर्तृत्व और सुख-दुःखादि धर्मोंको अपनेमें मानता है। प्रकृति और पुरुषका अन्ध पंगु-न्यायसे सम्बन्ध है। जैसे कोई अन्धा चलनेमें समर्थ भी है तो भी मार्ग देखनेके लिए नेत्रवाले पंगुको कन्धेपर लेता है, पंगु देखनेमें समर्थ है तो भी चलनेमें असमर्थ होकर किसी जंघाल पुरुषका आश्रय करता है। इसी तरह अचेतन प्रकृति अपनी प्रवृत्तिके वास्ते पुरुषको आश्रय बनाती है। उत्पत्ति-धर्म-रहित पुरुष अपने भोगके वास्ते प्रकृतिका आश्रय लेता है।

संसारमें निमग्न पुरुष संसारके सुख-दुःखको अपनेमें मानता हुआ कभी पुण्य परिपाकसे सद्गुरुके उपदेशसे आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीन दुःखोंके नाशकी प्रार्थना करता है। उस प्रार्थनाको निवृत्त होकर प्रकृति ही सफल करती है। जैसे नाचको देखनेमें उत्कण्ठित पुरुषोंको नाचनेवाली नाच दिखलाती है, पर जब उनकी उत्कण्ठा शान्त हो जाती है अर्थात् देखनेवाले जब देखना नहीं चाहते हैं तब वह आप ही नाचनेसे हट जाती है। इसी तरह जब पुरुष भोगना नहीं चाहता प्रकृति आप निवृत्त हो जाती है। जिनकी वासना अत्यन्त नष्ट हो गयी है उनके प्रति प्रकृति प्रवृत्ति नहीं करती है, अर्थात् फिर नहीं जाती।

जितनी प्रवृत्ति होती है वह स्वार्थ (अपने वास्ते) होती है, या, परार्थ (दूसरेके वास्ते)। प्रकृति तो जड़ है इसको अपने प्रयोजन और दूसरेके प्रयोजनका कुछ पता ही नहीं है फिर इसकी प्रवृत्ति किस तरह होगी ? यदि कहें कि चेतन जीवात्मा अधिष्ठाता होकर प्रवृत्ति करा देगा तो यह भी नहीं बनता, क्योंकि जीवात्मा प्रकृतिके सम्पूर्ण रूपको तो जानता नहीं फिर उसका अधिष्ठाता कैसे हो सकता है ? इसलिए प्रकृतिकी प्रवृत्तिके लिए सर्वज्ञ अधिष्ठाता ईश्वर मानना चाहिए। इस प्रकार ईश्वरकी सिद्धि करें तो नहीं होती। क्योंकि

पूर्णकाम ईश्वरका अपना तो कुछ प्रयोजन है नहीं फिर वह अपने वास्ते, या दूसरेके लिए जगत्को क्यों रचता है ? दूसरेके लिए तो प्रवृत्ति बुद्धिमान् पुरुषकी होती ही नहीं। यदि कहें कि दयासे निष्प्रयोजन प्रवृत्ति भी बुद्धिमानोंकी हो जाती है, तो यह भी कहना सम्भव नहीं है, क्योंकि सृष्टिसे पहले कोई प्राणी है नहीं, फिर किसके दुःखको देखनेसे करुणा होगी ? इस वास्ते करुणाका होना असम्भव है। यदि करुणासे सृष्टि रची तो सबको सुखी ही बनाता दुःखी नहीं। पर ऐसा देखनेमें नहीं आता बल्कि जगत्की सृष्टि विचित्र देखी जाती है। यदि कहें कि कर्माधीन ईश्वर विचित्र सृष्टि करता है तो बकरीके गलेमें स्तनकी तरह ईश्वर माननेका कोई प्रयोजन नहीं। प्रकृतिकी प्रवृत्ति तो स्वार्थ या दयासे नहीं होती, किन्तु परार्थ ही होती है, क्योंकि अचेतन रथादिककी प्रवृत्ति लोकमें परार्थ ही देखी जाती है।

यदि जीव भोक्ता है तो भोक्तृत्व स्वभाव ही जीवका है फिर भोगकी निवृत्ति किस प्रकार होगी, क्योंकि स्वभाव कभी जा नहीं सकता। अग्नि कभी ठण्डी नहीं हो सकती। फिर जीव मुक्त किस तरह हो सकता है ? रागादि क्लेश रूप जलसे सींची हुई बुद्धिरूप भूमिमें गिरे हुए कर्मरूप बीज वासनारूप अंकुरकी उत्पत्ति करता है। मैं सुख-दुःखवाला नहीं, तीनों गुणोंसे रहित हूँ, इस प्रकार प्रकृति पुरुषका विवेक जब उत्पन्न होता है तब तत्व-ज्ञान रूप सूर्यसे रागादिक क्लेश रूप जलके शोषण होनेपर, भूमिमें दग्ध कर्मरूप बीजसे अंकुरकी उत्पत्तिका सम्भव कहाँ ? इस वास्ते पुरुषकी मुक्ति हो जाती है। जिसको तत्वका साक्षात्कार तो हो गया पर प्रारब्ध कर्मका भोग बाकी है, वह जीवन्मुक्त है। जिसके प्रारब्ध कर्मका भोग समाप्त हो गया और उसने आत्मतत्वको साक्षात् कर लिया है, वह विदेह मुक्त है।

सांख्यशास्त्रके कर्त्ता कपिल हैं। कपिलके सूत्र जो सम्प्रति उपलब्ध हैं, वह छः अध्यायोंमें विभक्त हैं। कुल मिलाकर ५२४ सूत्र हैं।*

माधवाचार्यकृत सर्वदर्शन सङ्ग्रहमें जो सार दिया है उसमें यह सूत्र सर्वथा मिलते हैं। पं० ईश्वरकृष्णकी आर्य्याएँ सांख्यपर अधिक प्रचलित हैं। उसके अतिरिक्त सांख्यतत्व कौमुदी आदि सूत्रोंके आधारपर अन्य ग्रन्थ भी हैं।
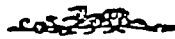
* लक्ष्मीनारायण प्रेस मुरादाबादकी छपी, प० रामस्वरूपशर्मा द्वारा रचित भाषा-टीका-सहित सम्वत् १९६० वि० में प्रकाशित साख्यसूत्र नामकी पोथीके आधारपर।

तिरसठवाँ अध्याय

योगदर्शन

योगदर्शनकार पतञ्जलिने आत्मा और जगत्के सम्बन्धमें सांख्यदर्शनके सिद्धान्तोंका ही प्रतिपादन और समर्थन किया है। उन्होंने भी वही पचीस तत्त्व माने हैं, जो सांख्यकारने माने हैं। इनमें विशेषता यही है कि इन्होंने कपिलकी अपेक्षा एक और छब्बीसवाँ तत्त्व 'पुरुषविशेष' या ईश्वर भी माना है जिससे सांख्यके अनीश्वरवादसे ये बच गये हैं। पतञ्जलिका योगदर्शन समाधि, साधन, विभूति और कैवल्य इन चार पादों या भागोंमें विभक्त है। समाधिपादमें यह बतलाया गया है कि योगके उद्देश्य और लक्षण क्या हैं और उसका साधन किस प्रकार होता है। साधनपादमें क्लेश, कर्म्मविपाक और कर्मफल आदिका विवेचन है। विभूतिपादमें यह बतलाया गया है कि योगके अङ्ग क्या हैं, उसका परिणाम क्या होता है और उसके द्वारा अणिमा, महिमा आदि सिद्धियोंकी किस प्रकार प्राप्ति होती है। कैवल्यपादमें कैवल्य या मोक्षका विवेचन किया गया है। संक्षेपमें योगदर्शनका मत यह है कि मनुष्यको अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच प्रकारके क्लेश होते हैं; और उसे कर्म्मके फलोंके अनुसार जन्म लेकर आयु व्यतीत करनी पड़ती है तथा भोग भोगना पड़ता है। पतञ्जलिने इन सबसे बचने और मोक्ष प्राप्त करनेका उपाय योग बतलाया है, और कहा है कि क्रमशः योगके अङ्गोंका साधन करते हुए मनुष्य सिद्ध हो जाता है और अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है। ईश्वरके सम्बन्धमें पतञ्जलिका मत है कि वह नित्यमुक्त एक अद्वितीय और तीनों कालोंसे अतीत है और देवताओं तथा ऋषियों आदिको उसीसे ज्ञान प्राप्त होता है। योगवाले संसारको दुःखमय और हेय मानते हैं। पुरुष या जीवात्माके मोक्षके लिये वे योगको ही एकमात्र उपाय मानते हैं। पतञ्जलिने चित्तकी क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, निरुद्ध और एकाग्र ये पाँच प्रकारकी वृत्तियाँ मानी हैं, जिनका नाम उन्होंने चित्तभूमि रक्खा है, और कहा है कि आरम्भकी तीन चित्तभूमियोंमें योग नहीं हो सकता, केवल अन्तिम दोमें हो सकता है। इन दो भूमियोंमें सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात ये दो प्रकारके योग हो सकते हैं। जिस अवस्थामें ध्येयका रूप प्रत्यक्ष रहता हो, उसे सम्प्रज्ञात कहते हैं। यह योग पाँच प्रकारके क्लेशोंका नाश करनेवाला है। असम्प्रज्ञात उस अवस्थाको कहते हैं, जिसमें किसी प्रकारकी वृत्तिका उदय नहीं होता, अर्थात् ज्ञाता और ज्ञेयका भेद नहीं रह जाता, संस्कारमात्र बच रहता है। यही योगकी चरम भूमि मानी जाती है और इसकी सिद्धि हो जानेपर मोक्ष प्राप्त हो जाता है। योगसाधनका उपाय यह बतलाया गया है कि पहले किसी स्थूल विषयका आधार लेकर उसके उपरान्त किसी सूक्ष्म वस्तुको लेकर और अन्तमें सब विषयोंका परित्याग करके चलना चाहिए और अपना चित्त स्थिर करना चाहिए। चित्तकी वृत्तियोंको रोकनेके जो उपाय बतलाये गये हैं, वे इस प्रकार हैं—अभ्यास और वैराग्य, ईश्वरका प्रणिधान, प्राणायाम और समाधि, विषयोंसे विरक्ति आदि। यह भी कहा गया है कि जो लोग

योगका अभ्यास करते हैं, उनमें अनेक प्रकारकी विलक्षण शक्तियाँ आ जाती हैं, जिन्हें विभूति या सिद्धि कहते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठों योगके अङ्ग कहे गये हैं, और योगसिद्धके लिये इन आठों अङ्गोंका साधन आवश्यक और अनिवार्य कहा गया है। इनमेंसे प्रत्येकके अन्तर्गत कई-कई बातें हैं। कहा गया है कि जो व्यक्ति योगके ये आठों अङ्ग सिद्ध कर लेता है वह सब प्रकारके क्लेशोंसे छूट जाता है, अनेक प्रकारकी शक्तियाँ प्राप्त कर लेता है और अन्तमें कैवल्य अर्थात् मुक्तिका भागी होता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि सृष्टि-तत्त्व आदिके सम्बन्धमें योगका भी प्रायः वही मत है जो सांख्यका है, इससे सांख्यको ज्ञानयोग और योगको कर्मयोग भी कहते हैं। पतञ्जलिके सूत्रोंपर वाचस्पतिका वार्त्तिक है। विज्ञानभिक्षुका 'योगसारसङ्ग्रह' भी योगका एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। सूत्रोंपर भोजराजकी भी एक वृत्ति है। पीछेसे योगशास्त्रमें तन्त्रका बहुतसा मेल मिला और 'कायव्यूह'का बहुत विस्तार किया गया, जिसके अनुसार शरीरके अन्दर अनेक प्रकारके चक्र आदि कल्पित किये गये। क्रियाओंका भी अधिक विस्तार हुआ और हठयोगकी एक अलग शाखा निकली, जिसमें, नेती, धोती, वस्ती आदि षट्कर्म तथा नाड़ी-शोधन आदिका वर्णन किया गया है। शिवसंहिता, हठयोगप्रदीपिका, घेरण्डसहिता आदि हठयोगके ग्रन्थ हैं। हठयोगके बड़े भारी आचार्य्य मत्स्येन्द्रनाथ (मछन्दरनाथ) और उनके शिष्य गोरखनाथ हुए हैं। हठयोगका वर्णन आगे नाथ-सम्प्रदायके सम्बन्धमें किया जायगा।

श्री पं० धनराजशास्त्रीके स्मृति-सङ्ग्रहके ग्रन्थोंकी सूचीमें योगदर्शनके कई ग्रन्थ हैं जो अभी अप्रकाशित हैं। उनका विषयसार इस प्रकार है—

योगप्रभा

इसकी श्लोक-संख्या ३२ हजार है। इसके निर्माणकर्त्ता जनक हैं। इसका समय वैवस्वत मन्वन्तरका पचीसवाँ त्रेता है। इसमें तीन प्रकरण हैं—

(१) वृत्ति-वर्णन—उसके निरोधका प्रकार, सांसारिक पञ्चक्लेश, त्रितापवर्णन, उसका निवारण, अष्टाङ्ग विधि।

(२) जीवन प्रकार, श्वास-प्रश्वासविधि, अजपाजप प्रकार, ईश्वर प्रणिधान, ईश्वर निरूपण।

(३) ध्यान-धारणा लय-समाधिका निरूपण, इनकी आवश्यकता, अष्टसिद्धि वर्णन, उनके रोकनेका प्रकार, उनपर विजयप्राप्ति।

योग-प्रदीप

इसकी श्लोक-संख्या १५ हजार है। इसके निर्माणकर्त्ता अंगिरा हैं। इसका समय स्वायम्भुव मन्वन्तरका द्वितीय सत्ययुग है। इसमें दो प्रकरण हैं—

(१) स्थूल, लिङ्ग, सूक्ष्म, कारण देहोंका वर्णन, इनके पृथक् करनेका उपाय, इनके संयुक्त होनेका प्रकार, आयु बढ़ानेका उपचार।

(२) नित्यस्थिति, अष्टाङ्गसाधनविधि, आन्तरिक चक्रादि दर्शन, स्मृतियोग, जन्मान्तर ज्ञान विधि, शरीरान्तर प्रवेश, समाधिलय।

योग-रत्नाकर

इसकी श्लोक-संख्या साठ हजार है। इसके निर्माणकर्ता कश्यप हैं। इसका समय स्वारोचिष मन्वन्तरका प्रथम सत्ययुग है। इसमें तीन प्रकरण हैं—

(१) राजयोग, वृत्तिविरोध, वृत्तिवर्णन, त्रिताप वर्णन, निवारण उपाय, मन और इन्द्रियोंका एकत्र कार्य, ब्रह्मदर्शन, मोक्ष निर्वाण, महानिर्वाण वर्णन, परानिर्वाण वर्णन।

(२) लययोग, तत्वनिरूपण, भृकुटी मध्य नासाग्र दर्शन, छाया-पुरुष-दर्शन, ब्रह्मतत्व, महापरा-निर्वाण।

(३) हठयोग, नाडीशोधन, चक्रशोधन, कुञ्जर-क्रिया, शब्द-श्रवण, सहस्रदल कमल, भ्रमर-गुहा, चैतन्य-उद्गम-देश, शब्दब्रह्मप्राप्ति।

योग-विलास

इसकी श्लोक-संख्या पन्द्रह हजार है। इसके निर्माणकर्त्ता कौत्स हैं। इसका समय श्राद्धदेव मन्वन्तरका नवम् सत्ययुग है। इसमें तीन प्रकरण हैं।

(१) अन्तःकरणशोधन, प्राणकल्प-शोधन, लिङ्गदेह-त्याग, सूक्ष्मदेह-निवेश, जगत्धारावर्णन, शब्दद्वारा अष्टसिद्धि प्राप्ति, उनके त्यागका उपाय, उनका वशीकरण।

(२) स्मृतियोग, स्वप्न-दर्शन, आत्मविलास, आत्म-धारण, देहान्तर-प्रवेश, जगत् ब्रह्ममय।

(३) काम, क्रोधादिका परिवर्तन, शील-शान्ति आदिका वर्णन, मुमुक्षुता, षट् सम्पत्ति-वर्णन जगत्का अङ्गाङ्गीभाव-निरूपण।

योग-सिद्धान्त

इसकी श्लोक-संख्या १८ हजार है। यह मरीचिकृत है। इसका समय श्राद्धदेव मन्वन्तरका नवम त्रेता है। इसमें दो प्रकरण हैं।

(१) योगमें भोगप्रक्षेप, मनका पृथग्विलास।

(२) ध्यान, धारणा, समाधि, लय।

प्रदर्शन-योग

इसकी श्लोक-संख्या ७००० है। इसका समय वैवस्वत् मन्वन्तरका २८वाँ द्वापर है। इसके आचार्य्य सञ्जय हैं। इसमें दो प्रकरण हैं—

(१) दिव्यदृष्टि प्रापणविधि, दूसरोंको दिव्य दृष्टि प्रदानका अधिकार, अष्टसिद्धि प्राप्तिविधि, उनकी त्यागविधि।

(२) कालसूत्र और देशसूत्रको एकत्र करनेकी विधि, दूरीकरणको समीप कर लेनेकी विधि, दूरत्व मिटानेका प्रकार, अणिमा सिद्धि द्वारा देशान्तर गमन, शरीरान्तरप्रवेश, सूत्र, आत्माज्ञान, जाग्रत, स्वप्नका अभेद कार्य्य, अवस्थान्तरका मिटाना।

योग-निदर्शन

इसकी श्लोक-संख्या १८ हजार है। इसका समय तामस मन्वन्तरका द्वितीय युग है। इसके आचार्य कौशिक हैं। इसमें कुमुद-कौशिक संवाद हैं। तीन प्रकरण हैं—

योगका अभ्यास करते हैं, उनमें अनेक प्रकारकी विलक्षण शक्तियाँ आ जाती हैं, जिन्हें विभूति या सिद्धि कहते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठों योगके अङ्ग कहे गये हैं, और योगसिद्धके लिये इन आठों अङ्गोंका साधन आवश्यक और अनिवार्य कहा गया है। इनमेंसे प्रत्येकके अन्तर्गत कई-कई बातें हैं। कहा गया है कि जो व्यक्ति योगके ये आठों अङ्ग सिद्ध कर लेता है वह सब प्रकारके क्लेशोंसे छूट जाता है, अनेक प्रकारकी शक्तियाँ प्राप्त कर लेता है और अन्तमें कैवल्य अर्थात् मुक्तिका भागी होता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि सृष्टि-तत्त्व आदिके सम्बन्धमें योगका भी प्रायः वही मत है जो सांख्यका है, इससे सांख्यको ज्ञानयोग और योगको कर्मयोग भी कहते हैं। पतञ्जलिके सूत्रोंपर वाचस्पतिका वार्त्तिक है। विज्ञानभिक्षुका 'योगसारसङ्ग्रह' भी योगका एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। सूत्रोंपर भोजराजकी भी एक वृत्ति है। पीछेसे योगशास्त्रमें तन्त्रका बहुतसा मेल मिला और 'कायव्यूह'का बहुत विस्तार किया गया, जिसके अनुसार शरीरके अन्दर अनेक प्रकारके चक्र आदि कल्पित किये गये। क्रियाओंका भी अधिक विस्तार हुआ और हठयोगकी एक अलग शाखा निकली, जिसमें, नेती, धोती, वस्ती आदि षट्कर्म तथा नाड़ी-शोधन आदिका वर्णन किया गया है। शिवसंहिता, हठयोगप्रदीपिका, घेरण्डसंहिता आदि हठयोगके ग्रन्थ हैं। हठयोगके बड़े भारी आचार्य्य मत्स्येन्द्रनाथ (मछन्दरनाथ) और उनके शिष्य गोरखनाथ हुए हैं। हठयोगका वर्णन आगे नाथ-सम्प्रदायके सम्बन्धमें किया जायगा।

श्री पं० धनराजशास्त्रीके स्मृति-सङ्ग्रहके ग्रन्थोंकी सूचीमें योगदर्शनके कई ग्रन्थ हैं जो अभी अप्रकाशित हैं। उनका विषयसार इस प्रकार है—

योगप्रभा

इसकी श्लोक-संख्या ३२ हजार है। इसके निर्माणकर्त्ता जनक हैं। इसका समय वैवस्वत मन्वन्तरका पचीसवाँ त्रेता है। इसमें तीन प्रकरण हैं—

(१) वृत्ति-वर्णन—उसके निरोधका प्रकार, सांसारिक पञ्चक्लेश, त्रितापवर्णन, उसका निवारण, अष्टाङ्ग विधि।

(२) जीवन प्रकार, श्वास-प्रश्वासविधि, अजपाजप प्रकार, ईश्वर प्रणिधान, ईश्वर निरूपण।

(३) ध्यान-धारणा लय-समाधिका निरूपण, इनकी आवश्यकता, अष्टसिद्धि वर्णन, उनके रोकनेका प्रकार, उनपर विजयप्राप्ति।

योग-प्रदीप

इसकी श्लोक-संख्या १५ हजार है। इसके निर्माणकर्ता अंगिरा हैं। इसका समय स्वायम्भुव मन्वन्तरका द्वितीय सत्ययुग है। इसमें दो प्रकरण हैं—

(१) स्थूल, लिङ्ग, सूक्ष्म, कारण देहोंका वर्णन, इनके पृथक् करनेका उपाय, इनके संयुक्त होनेका प्रकार, आयु बढ़ानेका उपचार।

(२) नित्यस्थिति, अष्टाङ्गसाधनविधि, आन्तरिक चक्रादि दर्शन, स्मृतियोग, जन्मान्तर ज्ञान विधि, शरीरान्तर प्रवेश, समाधिलय।

योग-रत्नाकर

इसकी श्लोक-संख्या साठ हजार है। इसके निर्माणकर्त्ता कश्यप हैं। इसका समय स्वारोचिष मन्वन्तरका प्रथम सत्ययुग है। इसमें तीन प्रकरण हैं—

(१) राजयोग, वृत्तिविरोध, वृत्तिवर्णन, त्रिताप वर्णन, निवारण उपाय, मन और इन्द्रियोंका एकत्र कार्य, ब्रह्मदर्शन, मोक्ष निर्वाण, महानिर्वाण वर्णन, परानिर्वाण वर्णन।

(२) लययोग, तत्वनिरूपण, भृकुटी मध्य नासाग्र दर्शन, छाया-पुरुष-दर्शन, ब्रह्मतत्व, महापरा-निर्वाण।

(३) हठयोग, नाड़ीशोधन, चक्रशोधन, कुञ्जर-क्रिया, शब्द-श्रवण, सहस्रदल कमल, भ्रमर-गुहा, चैतन्य-उद्गम-देश, शब्दब्रह्मप्राप्ति।

योग-विलास

इसकी श्लोक-संख्या पन्द्रह हजार है। इसके निर्माणकर्त्ता कौत्स हैं। इसका समय श्राद्धदेव मन्वन्तरका नवम् सत्ययुग है। इसमें तीन प्रकरण हैं।

(१) अन्त:करणशोधन, प्राणकल्प-शोधन, लिङ्गदेह-त्याग, सूक्ष्मदेह-निवेश, जगत्धारावर्णन, शब्दद्वारा अष्टसिद्धि प्राप्ति, उनके त्यागका उपाय, उनका वशीकरण।

(२) स्मृतियोग, स्वप्न-दर्शन, आत्मविलास, आत्म-धारण, देहान्तर-प्रवेश, जगत् ब्रह्ममय।

(३) काम, क्रोधादिका परिवर्तन, शील-शान्ति आदिका वर्णन, मुमुक्षुता, षट् सम्पत्ति-वर्णन जगत्का अङ्गाङ्गीभाव-निरूपण।

योग-सिद्धान्त

इसकी श्लोक-संख्या १८ हजार है। यह मरीचिकृत है। इसका समय श्राद्धदेव मन्वन्तरका नवम त्रेता है। इसमें दो प्रकरण हैं।

(१) योगमें भोगप्रक्षेप, मनका पृथग्विलास।

(२) ध्यान, धारणा, समाधि, लय।

प्रदर्शन-योग

इसकी श्लोक-संख्या ७००० है। इसका समय वैवस्वत् मन्वन्तरका २८वाँ द्वापर है। इसके आचार्य्य सञ्जय हैं। इसमें दो प्रकरण हैं—

(१) दिव्यदृष्टि प्रापणविधि, दूसरोंको दिव्य दृष्टि प्रदानका अधिकार, अष्टसिद्धि प्राप्तिविधि, उनकी त्यागविधि।

(२) कालसूत्र और देशसूत्रको एकत्र करनेकी विधि, दूरीकरणको समीप कर लेनेकी विधि, दूरत्व मिटानेका प्रकार, अणिमा सिद्धि द्वारा देशान्तर गमन, शरीरान्तरप्रवेश, सूत्र, आत्माज्ञान, जाग्रत, स्वप्नका अभेद कार्य्य, अवस्थान्तरका मिटाना।

योग-निदर्शन

इसकी श्लोक-संख्या १८ हजार है। इसका समय तामस मन्वन्तरका द्वितीय युग है। इसके आचार्य कौशिक हैं। इसमें कुमुद-कौशिक संवाद हैं। तीन प्रकरण हैं—

(१) ज्ञानका प्रश्रवण, दूसरेको जतानेकी विधि । न जतानेका दोष और प्रायश्चित्त, भक्ति-योग, मानस उपासनाविधि, इष्टदेवकी निर्धारणा, गुरु-कौशल्य, विभूति-निरूपण, आत्मसन्धारण ।

(२) अलभ्यलाभकी गोपनविधि, अधिकारीसे गोपन दोष, और प्रायश्चित्त, जातस्मर होनेकी विधि, पूर्वजन्मका वृत्तान्त ज्ञान, भक्तियोगमें सहायता, प्राण आदिकोंके कार्य ।

(३) पञ्चकोष-निर्माण (अन्नमय कोष) प्राणमय कोष, ज्ञानयम कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष ।

पञ्चकोष ज्ञान, भक्तियोगका नवाङ्ग, नवरस-निरूपण, भाव उत्पत्तिक्रम, उसका विलास । उसकी एकता, दूसरेपर इजहार, दूसरेके भावकी ग्राहकता, ईश्वरसिद्धिमें हेतु, नित्य-दर्शन-उपाय ।

योग-मार्तण्ड

इसकी श्लोक-संख्या १२ हजार है । इसका समय स्वाजम्भुव मन्वन्तरका पञ्चम सत्य-युग है । यह सूर्य्यकृत है । इसमें दो प्रकरण हैं—

(१) योग-महिमा, योगविभूति, धातुवनस्पति, पशु आदिमें योग-सञ्चारण प्रकार; आत्माका समस्तीकरण । पृथक्-पृथक् भासनेका हेतु, अहं-त्वंका एक योग, द्वैतमें एकत्वका विलास, नानात्वकी एकता, काव्य करने तथा सुननेकी इच्छाका हेतु, उससे अलभ्य लाभ ।

(२) अन्तर्धान होनेकी विधि, उसकी आवश्यकता, समर्पणविधि, ग्रहण प्रकार, प्रसाद लेने तथा देनेकी विधि, न देनेमें दोष और प्रायश्चित्त, उपहार देने और लेनेकी विधि, नाम योगकी महिमा और विभूति, नाम रटना विधि, हरएक देवोंकी पृथक् पृथक् माला, उसकी संख्या, आवश्यकता और चिह्न धारण प्रकार, कर मालाविधि, श्वासमाला विधि, उपासनामें मानस विधिमें एककार्य, इष्टदेव सम्बन्धमें लानेकी विधि, सम्बन्ध पत्र, अधिकारियोंमें प्राय. ह्रासविधि, बोलचालके शब्द, एक परिषद् सामाजिक साङ्केतिक भाषा, एक दूसरेके आर्यप्रायके ज्ञानका प्रकार, एक दूसरेसे नित्य सम्भाषणविधि, सम्मिलन प्रकार, उपास्य इष्टदेवका पृथक् पृथक् शृङ्गार, पृथक् पृथक् चरित्रोंमें प्रीति तथा आवश्यकता, दर्शनमें बातचीत करनेकी विधि, कार्य करनेका क्रम, सेवाविधि, चरणोदक तथा प्रसाद ग्रहण करनेकी विधि, प्रसन्नमानस रहनेकी विधि, समय ज्ञान, अकिञ्चनभाव, हृदयविलास, इष्टदेवका रुख जानना, सांसारिक प्रकृतिमें इष्टदेवका वृत्त प्राप्त करनेका प्रकार और उसके सुननेकी विधि ।

योग-विलास

इसकी श्लोक-संख्या २४ हजार है । इसका समय स्वारोचिप मन्वन्तरका नवाँ सतयुग है । यह मरीचिकृत है । इसमें चार प्रकरण हैं ।

(१) विपय-निवृत्तिका प्रकार, विपयोंके साथ विपाद, चित्तवृत्तिके निरोधका प्रकार । श्वास-प्रश्वासका इष्ट मन्त्रके साथ प्रयोग विधि । इष्टमन्त्र, इष्टदेव, तथा गुरुमें अभेदज्ञान, रहनसहनका प्रकार, नवधा भक्ति निरूपण, सेवनविधि ।

(२) इष्टदेव स्मरणविधि, समीपीकरण, पूजन-प्रकार, विसर्जन-प्रकार, आत्मसमर्पणविधि ।

(३) जगानेकी विधि, स्नानविधि, भोजन-प्रकार, अर्पणविधि, गन्धादिसे पूजन-प्रकार, अर्घ्य-पाद, आचमनीय आदिका स्मरणके साथ योग, प्रियअप्रिय ज्ञान ।

(४) स्तोत्रपाठ प्रकार, आवश्यकता किस इष्टदेवकी किस प्रकारकी प्रतिभा, चित्रमूर्त्ति, अनु-सन्धान, मनमें स्थिति करनेका प्रकार, श्वास निर्धारण विधि, माला भेद और उसकी आवश्यकता, प्राप्ति प्रकार, काम्य अकाम्य फलप्रदान ।

(१) ज्ञानका प्रश्रवण, दूसरेको जतानेकी विधि। न जतानेका दोष और प्रायश्चित्त, भक्तियोग, मानस उपासनाविधि, इष्टदेवकी निर्धारणा, गुरु-कौशल्य, विभूति-निरूपण, आत्मसन्धारण।

(२) अलभ्यलाभकी गोपनविधि, अधिकारीसे गोपन दोष, और प्रायश्चित्त, जातस्मर होनेकी विधि, पूर्वजन्मका वृत्तान्त ज्ञान, भक्तियोगमें सहायता, प्राण आदिकोंके कार्य।

(३) पञ्चकोष-निर्माण (अन्नमय कोष) प्राणमय कोष, ज्ञानयम कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष।

पञ्चकोष ज्ञान, भक्तियोगका नवाङ्ग, नवरस-निरूपण, भाव उत्पत्तिक्रम, उसका विलास। उसकी एकता, दूसरेपर इजहार, दूसरेके भावकी ग्राहकता, ईश्वरसिद्धिमें हेतु, नित्य-दर्शन-उपाय।

योग-मार्तण्ड

इसकी श्लोक-संख्या १२ हजार है। इसका समय स्वाजम्भुव मन्वन्तरका पञ्चम सत्ययुग है। यह सूर्य्यकृत है। इसमें दो प्रकरण हैं—

(१) योग-महिमा, योगविभूति, धातुवनस्पति, पशु आदिमें योग-सञ्चारण प्रकार; आत्माका समस्तीकरण। पृथक्-पृथक् भासनेका हेतु, अहं-त्वंका एक योग, द्वैतमें एकत्वका विलास, नानात्वकी एकता, काव्य करने तथा सुननेकी इच्छाका हेतु, उससे अलभ्य लाभ।

(२) अन्तर्धान होनेकी विधि, उसकी आवश्यकता, समर्पणविधि, ग्रहण प्रकार, प्रसाद लेने तथा देनेकी विधि, न देनेमें दोष और प्रायश्चित्त, उपहार देने और लेनेकी विधि, नाम योगकी महिमा और विभूति, नाम रटना विधि, हरएक देवोंकी पृथक् पृथक् माला, उसकी संख्या, आवश्यकता और चिह्न धारण प्रकार, कर मालाविधि, श्वासमाला विधि, उपासनामें मानस विधिमें एककार्य, इष्टदेव सम्बन्धमें लानेकी विधि, सम्बन्ध पत्र, अधिकारियोंमें प्रायः ह्रासविधि, बोलचालके शब्द, एक परिषद् सामाजिक साङ्केतिक भाषा, एक दूसरेके आर्यप्रायके ज्ञानका प्रकार, एक दूसरेसे नित्य सम्भाषणविधि, सम्मिलन प्रकार, उपास्य इष्टदेवका पृथक् पृथक् श्रृङ्गार, पृथक् पृथक् चरित्रोंमें प्रीति तथा आवश्यकता, दर्शनमें बातचीत करनेकी विधि, कार्य करनेका क्रम, सेवाविधि, चरणोदक तथा प्रसाद ग्रहण करनेकी विधि, प्रसन्नमानस रहनेकी विधि, समय ज्ञान, अकिञ्चनभाव, हृदयविलास, इष्टदेवका रुख जानना, सांसारिक प्रकृतिमें इष्टदेवका वृत्त प्राप्त करनेका प्रकार और उसके सुननेकी विधि।

योग-विलास

इसकी श्लोक संख्या २४ हजार है। इसका समय स्वारोचिष मन्वन्तरका नवाँ सतयुग है। यह मरीचिकृत है। इसमें चार प्रकरण हैं।

(१) विषय-निवृत्तिका प्रकार, विषयोंके साथ विषाद, चित्तवृत्तिके निरोधका प्रकार। श्वास-प्रश्वासका इष्ट मन्त्रके साथ प्रयोग विधि। इष्टमन्त्र, इष्टदेव, तथा गुरुमें अभेदज्ञान, रहनसहनका प्रकार, नवधा भक्ति निरूपण, सेवनविधि।

(२) इष्टदेव स्मरणविधि, समीपीकरण, पूजन-प्रकार, विसर्जन-प्रकार, आत्मसमर्पणविधि ।

(३) जगानेकी विधि, स्नानविधि, भोजन-प्रकार, अर्पणविधि, गन्धादिसे पूजन-प्रकार, अर्घ्य-पाद, आचमनीय आदिका स्मरणके साथ योग, प्रियअप्रिय ज्ञान ।

(४) स्तोत्रपाठ प्रकार, आवश्यकता किस इष्टदेवकी किस प्रकारकी प्रतिमा, चित्रमूर्त्ति, अनुसन्धान, मनमें स्थिति करनेका प्रकार, श्वास निर्धारण विधि, माला भेद और उसकी आवश्यकता, प्राप्ति प्रकार, काम्य अकाम्य फलप्रदान ।

(१) ज्ञानका प्रश्रवण, दूसरेको जतानेकी विधि। न जतानेका दोष और प्रायश्चित्त, भक्ति-योग, मानस उपासनाविधि, इष्टदेवकी निर्धारणा, गुरु-कौशल्य, विभूति-निरूपण, आत्मसन्धारण।

(२) अलभ्यलाभकी गोपनविधि, अधिकारीसे गोपन दोष, और प्रायश्चित्त, जातस्मर होनेकी विधि, पूर्वजन्मका वृत्तान्त ज्ञान, भक्तियोगमें सहायता, प्राण आदिकोंके कार्य।

(३) पञ्चकोष-निर्माण (अन्नमय कोष) प्राणमय कोष, ज्ञानयम कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष।

पञ्चकोष ज्ञान, भक्तियोगका नवाङ्ग, नवरस-निरूपण, भाव उत्पत्तिक्रम, उसका विलास। उसकी एकता, दूसरेपर इजहार, दूसरेके भावकी ग्राहकता, ईश्वरसिद्धिमें हेतु, नित्य-दर्शन-उपाय।

योग-मार्तण्ड

इसकी श्लोक-संख्या १२ हजार है। इसका समय स्वाजम्भुव मन्वन्तरका पञ्चम सत्य-युग है। यह सूर्य्यकृत है। इसमें दो प्रकरण हैं—

(१) योग-महिमा, योगविभूति, धातुवनस्पति, पशु आदिमें योग-सञ्चारण प्रकार; आत्माका समस्तीकरण। पृथक्-पृथक् भासनेका हेतु, अहं-त्वंका एक योग, द्वैतमें एकत्वका विलास, नानात्वकी एकता, काव्य करने तथा सुननेकी इच्छाका हेतु, उससे अलभ्य लाभ।

(२) अन्तर्धान होनेकी विधि, उसकी आवश्यकता, समर्पणविधि, ग्रहण प्रकार, प्रसाद लेने तथा देनेकी विधि, न देनेमें दोष और प्रायश्चित्त, उपहार देने और लेनेकी विधि, नाम योगकी महिमा और विभूति, नाम रटना विधि, हरएक देवोंकी पृथक् पृथक् माला, उसकी संख्या, आवश्यकता और चिह्न धारण प्रकार, कर मालाविधि, श्वासमाला विधि, उपासनामें मानस विधिमें एककार्य, इष्टदेव सम्बन्धमें लानेकी विधि, सम्बन्ध पत्र, अधिकारियोंमें प्रायः ह्रासविधि, बोलचालके शब्द, एक परिषद् सामाजिक साङ्केतिक भाषा, एक दूसरेके आर्यप्रायके ज्ञानका प्रकार, एक दूसरेसे नित्य सम्भाषणविधि, सम्मिलन प्रकार, उपास्य इष्टदेवका पृथक् पृथक् शृङ्गार, पृथक् पृथक् चरित्रोंमें प्रीति तथा आवश्यकता, दर्शनमें बातचीत करनेकी विधि, कार्य करनेका क्रम, सेवाविधि, चरणोदक तथा प्रसाद ग्रहण करनेकी विधि, प्रसन्नमानस रहनेकी विधि, समय ज्ञान, अकिञ्चनभाव, हृदयविलास, इष्टदेवका रुख जानना, सांसारिक प्रकृतिमें इष्टदेवका वृत्त प्राप्त करनेका प्रकार और उसके सुननेकी विधि।

योग-विलास

इसकी श्लोक-संख्या २४ हजार है। इसका समय स्वारोचिप मन्वन्तरका नवाँ सतयुग है। यह मरीचिकृत है। इसमें चार प्रकरण हैं।

(१) विपय-निवृत्तिका प्रकार, विपयोंके साथ विपाद, चित्तवृत्तिके निरोधका प्रकार। श्वास-प्रश्वासका इष्ट मन्त्रके साथ प्रयोग विधि। इष्टमन्त्र, इष्टदेव, तथा गुरुमें अभेदज्ञान, रहनसहनका प्रकार, नवधा भक्ति निरूपण, सेवनविधि।

(२) इष्टदेव स्मरणविधि, समीपीकरण, पूजन-प्रकार, विसर्जन-प्रकार, आत्मसमर्पणविधि ।

(३) जगानेकी विधि, स्नानविधि, भोजन-प्रकार, अर्पणविधि, गन्धादिसे पूजन-प्रकार, अर्घ्य-पाद, आचमनीय आदिका स्मरणके साथ योग, प्रियअप्रिय ज्ञान ।

(४) स्तोत्रपाठ प्रकार, आवश्यकता किस इष्टदेवकी किस प्रकारकी प्रतिभा, चित्रमूर्त्ति, अनुसन्धान, मनमें स्थिति करनेका प्रकार, श्वास निर्धारण विधि, माला भेद और उसकी आवश्यकता, प्राप्ति प्रकार, काम्य अकाम्य फलप्रदान ।

(१) ज्ञानका प्रश्रवण, दूसरेको जतानेकी विधि। न जतानेका दोष और प्रायश्चित्त, भक्ति-योग, मानस उपासनाविधि, इष्टदेवकी निर्धारणा, गुरु-कौशल्य, विभूति-निरूपण, आत्मसन्धारण।

(२) अलभ्यलाभकी गोपनविधि, अधिकारीसे गोपन दोष, और प्रायश्चित्त, जातस्मर होनेकी विधि, पूर्वजन्मका वृत्तान्त ज्ञान, भक्तियोगमें सहायता, प्राण आदिकोंके कार्य।

(३) पञ्चकोष-निर्माण (अन्नमय कोष) प्राणमय कोष, ज्ञानयम कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष।

पञ्चकोष ज्ञान, भक्तियोगका नवाङ्ग, नवरस-निरूपण, भाव उत्पत्तिक्रम, उसका विलास। उसकी एकता, दूसरेपर इजहार, दूसरेके भावकी ग्राहकता, ईश्वरसिद्धिमें हेतु, नित्य-दर्शन-उपाय।

योग-मार्तण्ड

इसकी श्लोक-संख्या १२ हजार है। इसका समय स्वाजम्भुव मन्वन्तरका पञ्चम सत्य-युग है। यह सूर्य्यकृत है। इसमें दो प्रकरण हैं—

(१) योग-महिमा, योगविभूति, धातुवनस्पति, पशु आदिमें योग-सञ्चारण प्रकार; आत्माका समस्तीकरण। पृथक्-पृथक् भासनेका हेतु, अहं-त्वंका एक योग, द्वैतमें एकत्वका विलास, नानात्वकी एकता, काव्य करने तथा सुननेकी इच्छाका हेतु, उससे अलभ्य लाभ।

(२) अन्तर्धान होनेकी विधि, उसकी आवश्यकता, समर्पणविधि, ग्रहण प्रकार, प्रसाद लेने तथा देनेकी विधि, न देनेमें दोष और प्रायश्चित्त, उपहार देने और लेनेकी विधि, नाम योगकी महिमा और विभूति, नाम रटना विधि, हरएक देवोंकी पृथक् पृथक् माला, उसकी संख्या, आवश्यकता और चिह्न धारण प्रकार, कर मालाविधि, श्वासमाला विधि, उपासनामें मानस विधिमें एककार्य, इष्टदेव सम्बन्धमें लानेकी विधि, सम्बन्ध पत्र, अधिकारियोंमें प्रायः ह्रासविधि, बोलचालके शब्द, एक परिषद् सामाजिक साङ्केतिक भाषा, एक दूसरेके आर्यप्रायके ज्ञानका प्रकार, एक दूसरेसे नित्य सम्भाषणविधि, सम्मिलन प्रकार, उपास्य इष्टदेवका पृथक् पृथक् शृङ्गार, पृथक् पृथक् चरित्रोंमें प्रीति तथा आवश्यकता, दर्शनमें बातचीत करनेकी विधि, कार्य करनेका क्रम, सेवाविधि, चरणोदक तथा प्रसाद ग्रहण करनेकी विधि, प्रसन्नमानस रहनेकी विधि, समय ज्ञान, अकिञ्चनभाव, हृदयविलास, इष्टदेवका रुख जानना, सांसारिक प्रकृतिमें इष्टदेवका वृत्त प्राप्त करनेका प्रकार और उसके सुननेकी विधि।

योग-विलास

इसकी श्लोक-संख्या २४ हजार है। इसका समय स्वारोचिप मन्वन्तरका नवाँ सतयुग है। यह मरीचिकृत है। इसमें चार प्रकरण हैं।

(१) विषय-निवृत्तिका प्रकार, विषयोंके साथ विपाद, चित्तवृत्तिके निरोधका प्रकार। श्वास-प्रश्वासका इष्ट मन्त्रके साथ प्रयोग विधि। इष्टमन्त्र, इष्टदेव, तथा गुरुमें अभेदज्ञान, रहनसहनका प्रकार, नवधा भक्ति निरूपण, सेवनविधि।

(२) इष्टदेव स्मरणविधि, समीपीकरण, पूजन-प्रकार, विसर्जन-प्रकार, आत्मसमर्पणविधि ।

(३) जगानेकी विधि, स्नानविधि, भोजन-प्रकार, अर्पणविधि, गन्धादिसे पूजन-प्रकार, अर्घ्य-पाद, आचमनीय आदिका स्मरणके साथ योग, प्रियअप्रिव ज्ञान ।

(४) स्तोत्रपाठ प्रकार, आवश्यकता किस इष्टदेवकी किस प्रकारकी प्रतिमा, चित्रमूर्त्ति, अनु-सन्धान, मनमें स्थिति करनेका प्रकार, श्वास निर्धारण विधि, माला भेद और उसकी आवश्यकता, प्राप्ति प्रकार, काम्य अकाम्य फलप्रदान ।

चौसठवाँ अध्याय

पूर्व-मीमांसा

विद्याके दो प्रकार कह आये हैं, एक परा और दूसरा अपरा। पराभागमें आत्माके मननके लिए कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम इन तीन अधिकारियोंके भेदसे १ न्याय, २ सांख्य और ३ उत्तर-मीमांसा यह तीन दर्शन हैं। न्यायमें वैशेषिक शामिल है। उत्तम अधिकारीके लिए उत्तर-मीमांसा वा वेदान्त-दर्शन आगे कहा जायेगा। उससे पहले पूर्व मीमांसाका वर्णन करते हैं। यह अपराविद्याका प्रतिपादन करता है, अर्थात् अपराविद्याके विचारके लिए पूर्व-मीमांसा है। पूर्व-मीमांसा प्रथम विचारको कहते हैं, उत्तर-मीमांसा उत्तर विचारको कहते हैं। इस दृष्टिसे मनन शास्त्रके प्रसङ्गमें अवसर-प्राप्त उत्तर-मीमांसाको छोड़कर, प्रथम विचारको सन्दर्भमें पहिले लाये। उत्तर विचारको पीछे लायेंगे। क्योंकि ऐसा करनेसे पूर्व और उत्तर शब्द जो मीमांसा शब्दके आदिमें हैं, उसका भी अनुसरण हो जायगा। वेदका सौमें निन्नानबे भाग कर्म-काण्ड और उपासना है। सौवाँ हिस्सा ज्ञान-काण्ड है। कर्मकाण्ड कनिष्ठ अधिकारीके लिये है। उपासना और कर्म मध्यमके लिए। कर्म, उपासना, ज्ञान तीनों उत्तमके लिए हैं। पर उत्तम अधिकारी कर्म तथा उपासना, इन दोनोंको निष्काम करता है। यह दोनों ज्ञानीके लिए आवश्यक भी नहीं हैं, तथापि लोकसंग्रहके लिए ज्ञानी भी कर्म्म करते हैं। क्योंकि—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतर जनः।
सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते॥

वेदके उपाङ्गोंमें 'मीमांसा'मात्रको जहाँ चारमेंसे एक गिनाया है, वहाँ कर्म्म, भक्ति और ज्ञान तीनों पक्षोंका ग्रहण किया गया है। कर्म्म-दर्शन पूर्व-मीमांसा जैमिनीके बारह अध्यायोंवाला है. और ब्रह्मज्ञान या वेदान्त चार अध्यायोंवाला है। प्रायः सविशेष ब्रह्मवादी आचार्योंने, जो समुच्चय-पक्ष मानते हैं, सम्पूर्ण मीमांसाका भाष्य एक साथ किया है। पूर्व और उत्तर दोनोंको एक ही माना है।

कनिष्ठ कक्षाके मनुष्योंके लिए केवल कर्मकाण्ड ही है। कुछ अवस्थातक उन्नति करनेपर उसके लिए उपासना है, ज्ञान नहीं। अतएव गीतामें कहा है—

नबुद्धिभेदम् जनयेदज्ञानाम् कर्मसङ्गिनाम्।
जोपयेत् सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्॥

कर्मकाण्डके अधिकारी अज्ञानी बहुत हैं और उपासनाके अधिकारी जो मध्यम वर्गके हैं कर्मकाण्डके अधिकारीसे न्यून हैं तो भी संख्यामें अधिक ही हैं। ज्ञानकाण्डका अधिकारी तो करोड़ोंमें एक भी दुर्लभ है। इसलिए कि कर्मकाण्डके अधिकारी अधिक हैं। वेदका अत्यधिक अंश कर्ममें आ जाता है। अतः वेदके इस भागकी मीमांसा (विचार) जो पूर्व मीमांसा दर्शनमें की गयी है, वह भी बहुत विस्तृत है। इस कारणसे जो विस्तार जानना चाहें वह पूर्व-मीमांसा दर्शनका ही अध्ययन करें। यहाँ कुछ वर्णन संक्षेपसे किया जाता है।

इस दर्शनके सूत्र जैमिनिके हैं। और भाष्य शबरस्वामीका है। मीमांसापर कुमारिल भट्टके 'कातन्त्रवार्त्तिक' और 'श्लोकवार्त्तिक' भी प्रसिद्ध हैं। माधवाचार्यने भी "जैमिनीय न्यायमाला विस्तार' नामक एक भाष्य रचा है। मीमांसा शास्त्रमें यज्ञोंका विस्तृत विवेचन है, इससे इसे 'यज्ञविद्या' भी कहते हैं। बारह अध्यायोंमें विभक्त होनेके कारण यह मीमांसा 'द्वादशलक्षणी' भी कहलाती है।

न्यायमाला-विस्तारमें माधवाचार्य्यने मीमांसा सूत्रोंके विषयको संक्षेपमें इस प्रकार बतलाया है।

पहले अध्यायमें विधि, अर्थवाद, मन्त्र, स्मृति और नामधेयकी प्रमाणताका विचार है। दूसरेमें अपूर्व कर्म और उसके फलका प्रतिपादन तथा विधि और निषेधकी प्रक्रिया है। तीसरेमें श्रुतिलिङ्ग वाक्यादिकी प्रमाणता और अप्रमाणता कही गयी है। चौथेमें नित्य और नैमित्तिक यज्ञोंका विचार है। पाँचवेंमें यज्ञों और श्रुति-वाक्योंके पूर्वापर सम्बन्धपर विचार किया गया है। छठेमें यज्ञोंके करने और करानेवालोंके अधिकारका निर्णय है, सातवें और आठवेंमें एक यज्ञकी विधिको दूसरे यज्ञमें करनेका वर्णन है, नवेंमें मन्त्रोंके प्रयोगका विचार है। दसवेंमें यज्ञोंमें कुछ कर्मोंके करने या न करनेसे होनेवाले दोषोंका वर्णन है। ग्यारहवेंमें तन्त्रोंका विचार है। और बारहवेंमें प्रसङ्गका तथा कोई इच्छापूर्ण करनेके हेतु यज्ञोंके करनेका विवेचन है। इसी बारहवें अध्यायमें शब्दके नित्यानित्य होनेके सम्बन्धमें भी सूक्ष्म विचार करके शब्दकी नित्यता प्रतिपादित की गयी है। मीमांसामें प्रत्येक अधिकरणके पाँच भाग हैं—विषय, संशय, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष और सिद्धान्त। अतः सूत्रोंके समझनेके लिए यह जानना आवश्यक होता है कि कोई सूत्र इन पाँचोंमेंसे किसका प्रतिपादक है।

इस शास्त्रमें वाक्य, प्रकरण, प्रसङ्ग या ग्रन्थके तात्पर्यके निर्णयके लिए यह श्लोक प्रसिद्ध है—

उपक्रमोपसंहारौ अभ्यासोऽपूर्वताफलम्।
अर्थवादोपपत्ती च लिङ्ग-तात्पर्य-निर्णये॥

अर्थात् किसी ग्रन्थ या प्रकरणके तात्पर्य-निर्णयके लिए सात बातोंपर ध्यान देना चाहिए—उपक्रम (आरम्भ), उपसंहार (अन्त), अभ्यास, (बार बार कथन), अपूर्वता (नवीनता), फल (ग्रन्थका परिणाम या लाभ जो बताया गया हो), अर्थवाद (किसी बातको जीमें जमानेके लिए दृष्टान्त, उपमा, गुण-कथन आदिके रूपमें जो कुछ कहा जाय और जो मुख्य बातके रूपमें न हो) और उपपत्ति (साधक प्रमाणों द्वारा सिद्धि)। मीमांसक ऐसे ही नियमोंके द्वारा वेदके वचनोंका तात्पर्य निकालते हैं। शब्दार्थोंका निर्णय भी विचार-पूर्वक किया गया है। जैसे, यज्ञके लिए जहाँ 'सहस्र-संवत्सर.' हो, वहाँ 'संवत्सर'का अर्थ दिवस लेना चाहिए। इत्यादि।

मीमांसाशास्त्र कर्मकाण्डका प्रतिपादक है। अतः मीमांसक पौरुषेय, अपौरुषेय सभी वाक्योंको कार्य-परक मानते हैं। वे कहते हैं कि प्रत्येक वाक्य किसी व्यापार या कर्मका बोधक होता है, जिसका कोई फल होता है। अतः वे किसी बातके सम्बन्धमें यह निर्णय करना बहुत आवश्यक मानते हैं कि वह 'विधिवाक्य' (प्रधान कर्म सूचक) है अथवा केवल अर्थ-

वाद (गौण-कथन, जो केवल किसी दूसरी बातको जीमें बैठाने उसके प्रति उत्तेजना उत्पन्न करने आदिके लिए) है ।

जैसे—"रणक्षेत्रमें जाओ, वहाँ स्वर्ग रखा है ।" इस वाक्यमें दो खण्ड हैं—'रणक्षेत्रमें जाओ' यह तो "विधिवाक्य" या मुख्य कथन है, और 'वहाँ स्वर्ग रखा है ।' यह केवल 'अर्थ-वाद' या गौण बात है ।

मीमांसाका तत्व-सिद्धान्त विलक्षण है । इसकी गणना अनीश्वरवादी दर्शनोंमें है । आत्मा, ब्रह्म, जगत् आदिका विवेचन इसमें नहीं है । यह केवल वेद या उसके शब्दकी नित्यताका ही प्रतिपादन करता है । इसके अनुसार मन्त्र ही सब कुछ हैं । वे ही देवता हैं, देवताओंकी अलग कोई सत्ता नहीं । 'भट्टदीपिका' में स्पष्ट कहा है 'शब्दमात्रं देवता' । मीमांसकोंका तर्क यह है कि सब कर्म फलके उद्देश्यसे होते हैं । फलकी प्राप्ति कर्मद्वारा ही होती है । अतः वे कहते हैं कि कर्म और उनके प्रतिपादक वचनोंके अतिरिक्त ऊपरसे और किसी देवता या ईश्वरको माननेकी क्या आवश्यकता है । मीमांसकों और नैयायिकोंमें बड़ा भारी भेद यह है कि मीमांसक शब्दको नित्य मानते हैं और नैयायिक अनित्य । सांख्य और मीमांसा दोनों अनीश्वरवादी हैं, पर वेदकी प्रमाणिकता दोनों मानते हैं । भेद इतना ही है कि सांख्य प्रत्येक कल्पमें वेदका नवीन प्रकाशन मानता है और मीमांसक उसे नित्य अर्थात् कल्पान्तमें भी नष्ट न होनेवाला कहते हैं ।

इस शास्त्रका 'पूर्व-मीमांसा' नाम इस अभिप्रायसे नहीं रखा गया है कि यह उत्तर-मीमांसासे पहले बना । 'पूर्व' कहनेका तात्पर्य यह है कि 'कर्मकाण्ड' मनुष्यका प्रथम धर्म है, ज्ञान-काण्डका अधिकार उसके उपरान्त आता है ।

पैंसठवाँ अध्याय

वेदान्त-दर्शन

'वेदान्त' शब्द 'वेद' और 'अन्त' इन दो शब्दोंके मेलसे बना है। अतः इस शब्दका वाच्यार्थ वेद अथवा वेदोंका अन्तिम भाग है।

वैदिक साहित्य भी दो भागोंमें बँटा है—पहलेका नाम है 'कर्मकाण्ड'। दूसरेका नाम है 'ज्ञानकाण्ड'। ये विभाग किसी पुस्तक विशेषसे अथवा वेदके काण्डों आदिसे तो प्रतीत नहीं होते, परन्तु साधारणतया मन्त्रभाग और ब्राह्मण ग्रन्थोंके वे भाग जिनका सम्बन्ध यज्ञोंसे है 'कर्मकाण्ड' कहलाते हैं और 'उपनिषदें' ज्ञानकाण्ड कहलाती हैं। अर्थात्, वेदान्त शब्दका वाच्यार्थ वेदोंका 'ज्ञानकाण्ड' है। वेदभाग होनेसे वेदान्त शब्दसे 'श्रुति' समझनी चाहिये। 'वेदान्त','श्रुति' तथा 'उपनिषद्' एकार्थक हैं। उपनिषदोंमें वेदान्त शब्दका प्रयोग प्रायः इसी अर्थमें देखा गया है। उदाहरणार्थ मुण्डकोपनिषद् ३।२।६ श्वेताश्वतरोपनिषद् ६। २२ में 'वेदान्त' शब्द इसी अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। श्रीशङ्कराचार्यजीने अपने भाष्योंमें 'वेदान्त' शब्दका प्रयोग इसी अर्थमें किया है।

'अन्त' शब्दका अर्थ क्रमशः 'तात्पर्य','सिद्धान्त' तथा आन्तरिक अभिप्राय अथवा मन्तव्य भी किया गया है। उपनिषदोंके मार्मिक स्वाध्यायसे पता चलता है कि उन ऋषियों-ने, जिनके नाम तथा जिनका मत इन उपनिषदोंमें पाया जाता है, 'अन्त' शब्दका प्रयोग इसी अर्थमें किया है। इनके मतके अनुसार वेद वा ज्ञानका अन्त अर्थात् पर्यवसान, ब्रह्म-ज्ञानमें है। देवी-देव, मनुष्य, पशु-पक्षी स्थावर-जङ्गमात्मक सारा विश्व-प्रपञ्च नाम-रूप-स्वरूप सारा जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहीं, यह वेदान्त अर्थात् वेद-सिद्धान्त है। 'जो कुछ दृष्टि-गोचर होता है, जो कुछ नामरूपसे सम्बोधित होता है, उसकी सत्ता ब्रह्मकी सत्तासे भिन्न नहीं, मनुष्यका एकमात्र कर्तव्य ब्रह्मज्ञानप्राप्ति, ब्रह्ममयता, ब्रह्मस्वरूपताप्राप्ति है' यही एक बात वेदोंका 'मौलिक सिद्धान्त','अन्तिम तात्पर्य' तथा सर्वोच्च-सर्वमान्य अभिप्राय है। यही 'वेदान्त' शब्दका मूलार्थ है। इस अर्थमें वेदान्त शब्दसे उपनिषद्-ग्रन्थोंका साक्षात् बोध होता है।

परन्तु उपनिषदोंमें भी केवल उन्हीं विषयोंका प्रतिपादन नहीं है जिनका एकमात्र आध्यात्मिक जीवनसे सम्बन्ध हो। बहुतसे और विषयोंका भी वर्णन है। इसलिए एक ऐसे मौलिक ग्रन्थकी रचना हुई जिसमें आध्यात्मिक ज्ञान-सम्बन्धी विषयोंका ही प्रधानतया निस्सन्दिग्ध प्रतिपादन हो और उपनिषत्सम्बन्धी ज्ञानमें जो बुद्धिविभ्रमजन्य भ्रान्तियाँ हों उनका युक्ति तर्कद्वारा संशोधन और समन्वय हो। उपनिषदोंमें सभी मतोंके सिद्धान्तोंके आश्रयभूत, सभी सम्प्रदायोंके मूलभूत वाक्य पाये जाते हैं। जैसे यदि सद्वादका वर्णन है तो असद्वादका भी वर्णन है ही। ऐसी अवस्थामें कौन सा सिद्धान्त, कौन-सा मत, कौन-सा सम्प्रदाय वेद-मूलक है, और कौन-सा वेदामूलक है, ऐसा सन्देह स्वाभाविक ही है।

इन अड़चनोंको दूर करनेके लिए वेदमूलक अर्थात् उपनिषन्मूलक सिद्धान्तोंको नये सिरेसे, युक्तितर्कद्वारा यथावत् प्रतिपादन करनेके लिए आध्यात्मिक शास्त्र रचा गया। इसका नाम है 'वेदान्त' दर्शन और इसके सूत्रोंके समूहका 'ब्रह्मसूत्र'। वेदान्तशास्त्र अथवा वेदान्तदर्शन शब्दसे प्रायः ब्रह्मसूत्रोंको ही समझा जाता है। हाँ, 'श्रुति' से 'उपनिषद्वाक्य' का तात्पर्य लिया जाता है।

वेदान्तके मौलिक ग्रन्थ तीन हैं—उपनिषद्, वेदान्तसूत्र तथा श्रीमद्भगवद्गीता। तीनोंको समुच्चयपरिभाषामें 'प्रस्थानत्रयम्' अथवा 'प्रस्थानत्रयी' कहते हैं। पहलेका नाम श्रुतिप्रस्थान है। ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कौषीतकि तथा श्वेताश्वतर—ये बारह प्रधान उपनिषदें हैं। इनमेंसे ऐतरेय तथा कौषीतकि ऋग्वेदीय, केन और छान्दोग्य सामवेदीय, ईश तथा बृहदारण्यक शुक्ल यजुर्वेदीय, कठ, तैत्तिरीय तथा श्वेताश्वतर कृष्ण यजुर्वेदीय, प्रश्न, मुण्डक तथा माण्डूक्य अथर्ववेदीय उपनिषदें हैं।

दूसरा प्रस्थान जिसको न्यायप्रस्थान भी कहते हैं, ब्रह्मसूत्र है। इन ब्रह्मसूत्रोंका नाम वेदान्तसूत्र, शारीरक मीमांसा, उत्तर-मीमांसा भी है। कहते हैं कि इन सूत्रोंके रचयिता बादरायण अथवा कृष्णद्वैपायन हैं और ये बादरायण वे ही हैं जिनका सार्थक नाम वेदव्यास है। परन्तु यह विषय विवादग्रस्त है, क्योंकि सूत्रोंमें भी बादरायणका नाम आया है। जान पड़ता है कि सूत्रकार अनेक होंगे। हमें अन्तिम 'बादरायण सूत्र' ही उपलब्ध हैं।

तीसरा प्रस्थान गीताप्रस्थान स्मृतिप्रस्थान कहलाता है। श्री शङ्कराचार्यजीने जहाँ तहाँ गीताकी जगह 'स्मृति' ही लिखा है।

हर एक आचार्यने, प्रत्येक साम्प्रदायिकने, इस प्रस्थानत्रयीपर भाष्य लिखे, टीकाएँ बनायीं, विवरण, वार्तिक, तिलक आदि प्रबन्ध लिखे। प्रधान बारह उपनिषदोंपर ब्रह्मसूत्रों पर तथा श्रीमद्भगवद्गीतापर श्री शङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य आदिके भाष्य आदि मिलते हैं। बात यह है कि प्राचीन कालमें किसी आचार्यका मत प्रामाणिक तबतक नहीं गिना जाता था जबतक उसके मतकी पुष्टि उपनिषद् आदिसे न होती हो। ब्रह्म ही इसका मुख्य विषय होनेसे वेदान्तदर्शनको ब्रह्मसूत्र कहते हैं। ब्रह्मसूत्रका दूसरा नाम उत्तरमीमांसा इसलिए है कि यह वेदके अन्तिम ज्ञानकाण्डका प्रतिपादक है। शारीरकमीमांसा इसे इसलिए कहते हैं कि यह शरीरस्थित जीवावस्थापन्न ब्रह्मविषयक विवेचनका प्रतिपादन करता है। प्रायोवाद है कि इसमें ५५६ सूत्र हैं। परन्तु यह भी विषय विवादग्रस्त है।

वेदान्तदर्शनके केवल चार अध्याय हैं, और प्रत्येक अध्यायमें चार-चार पाद हैं। भाष्यकारोंने यथामति इन ब्रह्मसूत्रोंकी सङ्गति लगायी है, विषय-निर्वाचन किया है। किन-किन सूत्रोंमें क्या-क्या विषय प्रतिपादित हुआ है, यह बात खोलकर बतायी है। यह विषय-निर्वाचन अधिकरणद्वारा किया गया है। अधिकरणसङ्ख्यामें भी मतभेद है। श्री शङ्कराचार्यानुसार अधिकरणसङ्ख्या १९१ है। बलदेवभाष्यमें अधिकरणसङ्ख्या १९८ है। श्रीकण्ठीय ब्रह्मसूत्र मीमांसा-भाष्यमें अधिकरणसङ्ख्या १७२ है। श्रीरामानुज-मतानुसार अधिकरणसङ्ख्या

१५६ और निम्बार्क भाष्यानुसार १५१ है। इसी प्रकार अणुभाष्य वल्लभाचार्यकृतमें १६२ तथा मध्वभाष्यमें अधिकरणसंख्या २२३ है। भास्कराचार्य तथा विज्ञानभिक्षुजीने अधिकरण-संख्याकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

ब्रह्मसूत्रोंका विषयसार

ब्रह्मसूत्रके प्रथम अध्यायका नाम 'समन्वय' है। इस अध्यायमें अनेक प्रकारकी श्रुतियोंका समन्वय किया गया है। जैसे प्रथम अध्यायके पहले पादमें स्पष्टज्ञापक श्रुति-समूहका, दूसरे पादमें अस्पष्ट ब्रह्मभावात्मक श्रुतिसमूहका, तीसरे और चौथे पादमें संशया-त्मक श्रुतियोंका, समन्वय किया गया है। दूसरे अध्यायका साधारण नाम अविरोध है। इसके प्रथम पादमें स्वमत प्रतिष्ठाके लिये स्मृतितर्कादिविरोधोंका परिहार किया गया है। द्वितीय पादमें विरुद्ध मतोंके प्रति दोषारोपण किया गया है। तृतीय पादमें ब्रह्मसे तत्त्वोंकी उत्पत्ति कही गयी है, और चतुर्थ पादमें भूतविषयक श्रुतियोंका विरोध-परिहार किया गया है। फलतः इस अध्यायमें विरोधी दर्शनोंका खण्डन करके युक्ति और प्रमाणके साथ वेदान्तमत अविरोध कथन किया है।

तृतीय अध्यायका साधारण नाम साधन है। इसमें जीव और ब्रह्मके लक्षणोंका निर्देश करके मुक्तिके बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग साधनोंका उपदेश किया गया है।

चतुर्थ अध्यायका नाम फल है। इसमें जीवन्मुक्ति, जीवकी उत्क्रान्ति, सगुण और निर्गुण उपासनाके फलके तारतम्यपर विचार किया गया है। ऊपरके संक्षिप्त विवेचनका नाम षोडशपदार्थसङ्ग्रह है। भाष्यकारोंने सूत्रोंके गूढ़ अर्थोंके समझानेके लिये कई प्रकारकी सङ्गतियाँ भी लगायी हैं। प्रधानतया तीन तरहकी सङ्गति है—शास्त्रसङ्गति, अध्यायसङ्गति तथा पाद-सङ्गति। उदाहरण—ईक्षति-अधिकरणमें विवेचन किया गया है कि 'तदैक्षत' यह वाक्य प्रधानपरक है अथवा ब्रह्मपरक। यतः यह विचार ब्रह्मसम्बन्धी है अतः इसकी ब्रह्मविचार-शास्त्रमें सङ्गति है। इसीको शास्त्रसङ्गति कहा गया है। 'तदैक्षत' इस वाक्यका तात्पर्य ब्रह्ममें है, प्रधानमें नहीं, ऐसा निर्णय होनेसे समन्वयाध्यायसङ्गति भी है। ईक्षण चेतनब्रह्मका असा-धारणतया स्पष्ट लिङ्ग है, अतः इसकी प्रथम पादसे सङ्गति है। इसका नाम पादसङ्गति है। यही नहीं, और भी कई प्रकारकी सङ्गतियाँ हैं जिनका नाम अवान्तरसङ्गति है, जैसे आक्षेप-सङ्गति, दृष्टान्तसङ्गति, प्रत्युदाहरणसङ्गति तथा प्रासङ्गिक सङ्गति। प्रत्येक अधिकरण पञ्चावयव है—विषय, संशय, सङ्गति, पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्ष (सिद्धान्त)। वेदान्ताचार्योंने भामती आदि ग्रन्थोंमें इनका सविस्तर प्रतिपादन किया है।

यह शास्त्र परा विद्यामें उत्तम अधिकारीके आत्ममननके लिये बना है। इसमें आरम्भ-से लेकर अन्ततक आत्मविचार ही है। और पाँचों दर्शनोंमें आत्मा और अनात्मा पृथिव्यादि पदार्थ, तथा कर्मकाण्डके विषय वर्णन किये हैं। इसीलिये वेदान्त उत्तम अधिकारीके लिये है। और शास्त्र-कनिष्ठ और मध्यम अधिकारीके लिये हैं।

इस जन्मके या जन्मान्तरके कर्म और उपासनासे अन्तःकरणकी शुद्धि होनेपर जो परमार्थका ज्ञान पुरुषमें आता है उसका ही इसमें प्रधानतासे वर्णन किया है। और शास्त्रोंने 'नेदम् यदिदमुपासते' यह जगत् ब्रह्म नहीं है जिस जगत्की उपासना कर रहे हो अर्थात्

जिसमें रात-दिन तत्पर हो रहे हो, इस श्रुतिके आधारपर एक-एक देशका वर्णन किया है। फिर प्रश्न होता है कि "तब ब्रह्म है क्या ?" इसी प्रश्नका उत्तर वेदके महावाक्योंके आधार-पर वेदान्त देता है। यही वेदका अन्त या अन्तिम लक्ष्य है।

उपनिषद्का विषय उपनिषद् शब्दसे ही मालूम होता है। उपनिषद् शब्दमें उप तथा नि उपसर्ग है, और सद् धातु है जिसका अर्थ विशरण (शिथिल होना) अवसादन (नाश होना) और गति (प्राप्त होना) है। "उप"का अर्थ समीप, "नि"का अर्थ है सदा, आत्माके समीपमें निरन्तर (सदा) कर्मादिक तथा इनकी वासनाको नाश करके ज्ञान पहुँचानेवाली उपनिषद् है। वही ज्ञान उपनिषद्का विषय है। जिन विधियोंसे कर्म शिथिल हों और वासनाओंका नाश हो, वह सब उपाय उपनिषदोंमें विविध प्रकारसे वर्णन किये हैं। कर्मकाण्डमें बताये यज्ञ, दान, तपः स्वाध्याय आदि कर्मोंसे जिनका हृदय विशुद्ध है, जो योग-साधनद्वारा शमदमादिवाले हैं, अर्थात् जितेन्द्रिय हैं, नित्यानित्य वस्तुके विवेकसे इस लोक और परलोकके विषयोंसे जिनको वैराग्य है, ऐसे मुमुक्षु पुरुषोंके लिये अध्यात्म-विद्याके उप-देशकी इच्छासे इस शास्त्रका निर्माण हुआ है।

शास्त्रोंका समन्वय

जगत् जीव और ब्रह्म या परमात्मा इन तीनों वस्तुओंके स्वरूप तथा इनके पारस्प-रिक सम्बन्धका निर्णय ही वेदान्तशास्त्रका विषय है। न्याय और वैशेषिकने ईश्वर, जीव और जगत् या जगत्के मूल-द्रव्य परमाणु ये तीन तत्त्व मानकर ईश्वरको जगत्का कर्त्ता ठहराया है, जो सर्वसाधारणकी स्थूल-भावनाके अनुकूल है। वैशेषिकके अनुसार जगत्का मूलरूप परमाणु हैं जो नित्य हैं और जिनके ईश्वर-प्रेरित संयोगसे सृष्टि होती है। इसके आगे बढ़कर साङ्ख्यने दो ही नित्य तत्व स्थिर किये (१) पुरुष (आत्मा) और (२) प्रकृति, अर्थात् एक ओर तो असङ्ख्य-चेतन जीवात्माएँ और दूसरी ओर जड़जगत्का अव्यक्तमूल। ईश्वर या परमात्माका समावेश साङ्ख्यपद्धतिमें नहीं है। सृष्टिके विकासकी सूक्ष्म तात्त्विक विवेचना साङ्ख्यने ही की है। किस प्रकार एक अव्यक्त प्रकृतिसे क्रमशः आपसे आप जगत्का विकास हुआ, इसका पूरा ब्योरा उसमें बताया गया है, और जगत्का कोई कर्त्ता है; नैयायिकोंके इस सिद्धान्तका खण्डन किया गया है। पुरुष या आत्मा केवल द्रष्टा है, कर्त्ता नहीं। इसी प्रकार प्रकृति जड़ और क्रियामयी है। एक लँगड़ा है, दूसरी अन्धी। असङ्ख्य पुरुषोंके संयोग या सान्निध्यसे ही प्रकृति सृष्टि-क्रियामें तत्पर हुआ करती है।

वेदान्तने और आगे बढ़कर प्रकृति तथा असङ्ख्य पुरुषोंका एक ही परम तत्व ब्रह्ममें अविभक्त रूपसे समावेश करके जड़चेतनके द्वैतके स्थानपर अद्वैतकी स्थापना की। वेदान्तने साङ्ख्योंके अनेक पुरुषोंका खण्डन किया और चेतनतत्वको एक और अविच्छिन्न सिद्ध करते हुए बताया कि प्रकृति या मायाकी 'अहङ्कार' गुणरूपी उपाधिसे ही एकके स्थानपर अनेक पुरुषों या आत्माओंकी प्रतीति होती है। यह अनेकता माया-जन्य है। साङ्ख्योंने पुरुष और प्रकृतिके संयोगसे जो सृष्टिकी उत्पत्ति कही है, वह भी असङ्गत है, क्योंकि यह संयोग या तो सत्य हो सकता है अथवा मिथ्या। यदि सत्य है तो नित्य है, अत. कभी टूट नहीं सकता। इस दशामें आत्मा कभी मुक्त हो ही नहीं सकता। इसी प्रकारकी युक्तियोंसे पुरुष और

प्रकृतिके द्वैतको न मानकर वेदान्तने उन्हें एक ही परम तत्व ब्रह्मकी विभूतियाँ बतायीं। वेदान्तके अनुसार ब्रह्म जगत्का निमित्त और उपादान दोनों है।

नामरूपात्मक जगत्के मूलमें आधारभूत होकर रहनेवाले इस नित्य और निर्विकार तत्व ब्रह्मका स्वरूप कैसा हो सकता है, इसका भी निरूपण वेदान्तने किया है। जगत्में जो नाना दृश्य दिखाई पड़ते हैं, वे सब परिणामी और अनित्य हैं। वे बदलते रहते हैं, पर उनका ज्ञान करनेवाला आत्मा या द्रष्टा सदा वही रहता है। यदि ऐसा न होता तो भूतकालमें अनुभव की हुई बातका वर्त्तमान-कालमें अनुभूत विषयके साथ जो सम्बन्ध जोड़ा जाता है, वह असम्भव होता (पञ्चदशी)। इसीसे ब्रह्मका स्वरूप भी ऐसा ही होना चाहिए, अर्थात् ब्रह्म चित्स्वरूप या आत्मस्वरूप है। नाना ज्ञेय पदार्थ भी ज्ञाताके ही सगुण, सोपाधि या मायात्मक रूप हैं, यह निश्चित करके ज्ञाता और ज्ञेयके द्वैतको वेदान्तने हटा दिया है। ब्रह्म-स्वरूपका विवेचन वेदान्तके पिछले ग्रन्थोंमें ब्योरेके साथ हुआ है।

जगत् और सृष्टिके सम्बन्धमें वेदान्तियोंने नैयायिकोंके 'आरम्भवाद' [अर्थात् ईश्वर सृष्टि उत्पन्न करता है] और सांख्योंके "परिणामवाद" [अर्थात् सृष्टिका विकास उत्तरोत्तर विकार या परिणामद्वारा अव्यक्त प्रकृतिसे आपसे आप होता है] इन दोनोंके स्थान-पर "विवर्तवाद"की स्थापना की है जिसके अनुसार जगत् ब्रह्मका विवर्त या कल्पित रूप है। रस्सीको यदि हम सर्प समझें तो रस्सी सत्य वस्तु है और सर्प उसका विवर्त या भ्रान्ति-जन्य प्रतीति है।' इसी प्रकार ब्रह्म तो नित्य और वास्तविक सत्ता है और नामरूपात्मक जगत् उसका विवर्त है। यह विवर्त अध्यासद्वारा होता है। जो नामरूपात्मक दृश्य हम देखते हैं, वह न तो ब्रह्मका वास्तव स्वरूप ही है, न कार्य्य या परिणाम ही है, क्योंकि ब्रह्म निर्विकार और अपरिणामी है। अध्यासके सम्बन्धमें कहा जा सकता है कि सर्प कोई अलग पदार्थ अवश्य है, तभी तो उसका आरोप होता है। अतः इस विषयको और स्पष्ट करनेके लिये 'दृष्टि-सृष्टिवाद' उपस्थित किया जाता है जिसके अनुसार माया या नामरूप मनकी वृत्ति है। इनकी सृष्टि मन ही करता है और मन ही देखता है। ये नामरूप उसी प्रकार मन या वृत्तियोंके बाहरकी कोई वस्तु नहीं है, जिस प्रकार जड़ चित्के बाहरकी कोई वस्तु नहीं है। इन वृत्तियोंका शमन ही मोक्ष है।

इन दोनों वादोंमें कुछ त्रुटि देखकर कुछ वेदान्ती "अवच्छेदवाद"का आश्रय लेते हैं। वे कहते हैं कि ब्रह्मके अतिरिक्त जगत्की जो प्रतीति होती है, वह एक रस या अनवच्छिन्न सत्ताके भीतर मायाद्वारा अवच्छेद या परिमितिके आरोपके कारण होती है। कुछ अन्य वेदान्ती इन तीनों वादोंके स्थानपर "बिम्ब प्रतिबिम्बवाद" उपस्थित करते हैं, और कहते हैं कि ब्रह्म प्रकृति या मायाके बीच अनेक प्रकारसे प्रतिबिम्बित होता है, जिससे नामरूपात्मक दृश्योंकी प्रतीति होती है। अन्तिमवाद 'अज्ञातवाद' है जिसे "प्रौढ़िवाद' भी कहते हैं। यह सब प्रकारकी उत्पत्तिको चाहे वह विवर्तके रूपमें कही जाय चाहे दृष्टि सृष्टि या अवच्छेद या प्रतिबिम्बके रूपमें अस्वीकार करता है और कहता है कि जो जैसा है, वह वैसा ही है और सब ब्रह्म है। ब्रह्म अनिर्वचनीय है, उसका वर्णन शब्दोंद्वारा हो ही नहीं सकता, क्योंकि हमारे पास जो भाषा है, वह द्वैतकी ही है, अर्थात् जो कुछ हम कहते हैं, वह भेदके आधारपर ही।

यद्यपि ब्रह्मका वास्तविक या पारमार्थिक रूप अव्यक्त, निर्गुण और निर्विशेष है, पर व्यक्त और सगुणरूप भी उसके बाहर नहीं है, फिर भी पञ्चदशीमें इन सगुण रूपोंका विभेद प्रतिविम्बवादके शब्दोंमें इस प्रकार समझाया गया है। रजोगुणकी प्रवृत्तिसे प्रकृति दो रूपोंमें विभक्त होती है—सत्वप्रधान और तमःप्रधान। सत्वप्रधानके भी दो रूप हो जाते हैं—शुद्ध-सत्व (जिसमें सत्वगुण पूर्ण हो) और अशुद्ध सत्व (जिसमें सत्व अंशतः हो)। प्रकृतिके इन्हीं भेदोंमें प्रतिविम्बित होनेके कारण ब्रह्मको 'जीव' कहते हैं।

वेदान्त या अद्वैतवादसे साधारणतः शङ्कराचार्य प्रतिपादित अद्वैतवाद लिया जाता है जिसमें ब्रह्म स्वगत्, सजातीय और विजातीय तीनों भेदोंसे परे कहा गया है। पर जैसा ऊपर कहा जा चुका है, वादरायणके ब्रह्मसूत्रपर रामानुजाचार्य और वल्लभाचार्यके भाष्य भी हैं। रामानुजके अद्वैतवादको 'विशिष्टाद्वैत' कहते हैं, क्योंकि उसमें ब्रह्मको चित् और अचित् इन दो पक्षोंसे युक्त या विशिष्ट कहा है। ब्रह्मके इसी सूक्ष्म चित् और सूक्ष्म अचित्से स्थूल चित् (जीव) और स्थूल अचित् (जड़) उत्पन्न हुए। अतः रामानुजके अनुसार ब्रह्म केवल निमित्त कारण है, उपादान हैं जड़ (स्थूल अचित्) और जीव (स्थूल चित्)। इस मतके अनुसार जीवको ब्रह्मका अंश कह सकते हैं, पर शङ्कर-मतसे नहीं, क्योंकि उसमें ब्रह्म सब प्रकारके भेदोंसे परे कहा गया है।

वल्लभाचार्यजीका अद्वैत 'शुद्धाद्वैत' कहलाता है, क्योंकि उसमें रामानुजकृत दो पक्षों-की विशिष्टता हटाकर अद्वैतवाद शुद्ध किया गया है। इस मतके अनुसार सत्, चित् और आनन्दस्वरूप ब्रह्म अपने इच्छानुसार इन तीनों स्वरूपोंका आविर्भाव करता रहता है। जड़ जगत् भी ब्रह्म ही है, पर अपने चित् और आनन्द स्वरूपोंका पूर्ण तिरोभाव किये हुए तथा सत् स्वरूपका कुछ अंशतः आविर्भाव किये हुए है। चेतन जगत् भी ब्रह्म ही है जिसमें सत्, चित् और आनन्द इन तीनों स्वरूपोंका कुछ आविर्भाव और छ तिरोभाव रहता है। माया ब्रह्मकी ही शक्ति है जो उसीकी इच्छासे विभक्त होती है, अतः मायात्मक जगत् मिथ्या नहीं है। जीव अपने शुद्ध ब्रह्मस्वरूपको तभी प्राप्त करता है जब आविर्भाव और तिरोभाव दोनों मिट जाते हैं, और यह बात केवल ईश्वरके अनुग्रहसे ही, जिसे 'पुष्टि' कहते हैं, हो सकती है।

रामानुज और वल्लभाचार्य केवल दार्शनिक ही न थे, भक्तिमार्गी भी थे।

वेदान्तकी भिन्न भिन्न व्याख्याओंके आधारपर विविध सम्प्रदाय बन गये हैं। उनके मतोंका वर्णन तत्तत्सम्प्रदायके वर्णनके साथ पाठक पायेंगे। यद्यपि शङ्करस्वामी कोई सम्प्रदाय नहीं चलाना चाहते थे तथापि उनके भी चारों मठोंमें शिष्य-परम्परा बराबर चली आ रही है और उनके संन्यासी शिष्य तो अद्वैतवादी होते ही हैं। इस प्रकार उनका भी एक प्रकारका सम्प्रदाय है जिसका विस्तृत वर्णन हम अन्यत्र करेंगे।

छासठवाँ अध्याय

दर्शनोंका उपसंहार

अखिल विश्वमें चेतन और अचेतन दो ही पदार्थ हैं। इनके बाहरी और स्थूल भाव-पर बाहरसे विचार करनेवाले शास्त्रको "विज्ञान" और भीतरी और सूक्ष्म भावपर भीतरसे निर्णय करनेवाले शास्त्रको "दर्शन" कहते हैं। इन दोनोंके भी दो रूप हैं, वैदिक और अवैदिक। फिर दोनों ही ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी दोनों हो सकते हैं। इस तरह तो आठ भेद हुए। तात्पर्य्यभेदसे प्रत्येकके अवान्तरभेद हुए। वास्तवमें सर्वसमन्वय दृष्टिसे यथार्थ विरोध कहीं नहीं है।

पिछले बारह अध्यायोंमें भारतवर्षीय बारह दर्शनोंका दिग्दर्शन हुआ है। इनमेंसे पहिले छः नास्तिक दर्शन इसलिये नहीं कहलाते कि वह ईश्वरको नहीं मानते। अनीश्वरवादी तो आस्तिक कहलानेवाले सांख्य और मीमांसादर्शन भी हैं। नास्तिक इसलिये कहलाते हैं कि ऋग्वेदादि चारों वेदोंको इनमेंसे एक भी प्रमाण नहीं मानता। प्रत्युत् जहाँ मौका मिलता है वहाँ वेदोंकी निन्दा करनेमें नहीं चूकते। इसीलिये नास्तिकको हम अवैदिक कहते हैं। सांख्य और मीमांसा अनीश्वरवादी होते हुए भी आस्तिक हैं, अर्थात् वैदिक हैं।

नास्तिकवाद और आस्तिकवाद दोनोंके दोनों अनादिकालसे चले आते जान पड़ते हैं। दैव और आसुर दलोंकी तरह नास्तिक और आस्तिक पक्षोंका पता वेदोंसे चलता है। जैन और बौद्ध सम्प्रदायवाले भी अपनेको अत्यन्त प्राचीन बतलाते हैं। भगवान् ऋषभदेवको जिन्हें श्रीमद्भागवतमें भगवदंशावतार माना गया है जैन लोग अपना पहिला तीर्थङ्कर कहते हैं। बौद्धोंका कहना है कि सिद्धार्थ गौतम वास्तवमें अन्तिम बुद्ध हैं और त्रेतायुगके दाशरथी रामचन्द्रजी भगवान् बुद्धके एक अवतार समझे जाते हैं। हिन्दुओंके प्राचीन ग्रन्थोंमें यत्र-तत्र जैनों और बौद्धोंके प्राचीन अस्तित्वके प्रमाण मिलते हैं। महाभारतमें चार्वाक्की चर्चा है। और बृहस्पति जो चार्वाक् सम्प्रदायके पूर्वाचार्य समझे जाते हैं अवश्य ही महाभारतकालसे पहिलेके हैं। इसलिये यह कहना बहुत मुश्किल है कि इन बारह दर्शनोंमें कौनसा दर्शन किसकी अपेक्षा अधिक प्राचीन है। यहाँ यह बात स्मरण रखने योग्य है कि प्रत्येक दर्शनके सूत्ररूपमें रचे जानेका काल चाहे जो हो परन्तु सूत्रोंमें जिन विचारोंका सङ्कलन हुआ है वह विचार अत्यन्त प्राचीन हैं, जैसा कि यत्रतत्र उन सूत्रोंमें दिये हुए प्रमाणोंसे ही विदित होता है।

निस्सन्देह यह बारह दर्शन विचारके क्रम-विकासके द्योतक हैं। वेदोंमें तो यत्रतत्र सभी तरहके विचारोंका आभास मिलता है। साथ ही वेदनिन्दकों, असुरों नास्तिकों और यज्ञमें विघ्न डालनेवाले दस्यादस्य सभी तरहके प्राणियोंके विरुद्ध मन्त्र और निराकरणके साधन हैं। इससे यह तो स्पष्ट ही है कि चाहे बारहों दर्शनोंका हमारा दिया हुआ क्रम वैदिक कालमें माना न गया हो तो भी, इसमें तो हमें सन्देह नहीं है कि, नास्तिक और आस्तिक दोनों प्रकारके सभी विचार वेदमन्त्रोंकी रचनाकालके पहलेके हैं, फिर चाहे वे पूर्व-

कल्पके ही क्यों न हों। यह भी निर्विवाद है कि सूत्रोंकी रचना बादकी है। इसलिये उस वैदिक कालके बिखरे विचारोंको विद्वान् सूत्रकार ऋषियोंने तर्ककी कसौटीपर कसकर पीछेसे सूत्रबद्ध कर दिया और एक-एक दर्शनकी इस तरह नीवँ पड़ी।

पाश्चात्य विद्वान् ऐसा नहीं मानते। उनका विचार है कि यह क्रम-विकास वेदोंके आविर्भावके बादका है। यद्यपि वेदोंमें किसी विशिष्ट मत वा सम्प्रदायका पता नहीं चलता, तथापि इसमें तो कोई सन्देह नहीं है कि विचारके क्रम-विकाससे ही अनेक मतों और सम्प्रदायोंकी सृष्टि हुई है, जैसा कि महाभारतकालके पांच सम्प्रदायोंके अनुशीलनमें हमें आगे चलकर मालूम होगा। पुराणोंके प्रसङ्गमें हम बौद्धों और जैनोंकी, इस ग्रन्थके लिये, पर्याप्त चर्चा कर आये हैं। इसलिये आगे चलकर मतों और सम्प्रदायोंके सम्बन्धमें इनके दर्शनोंकी चर्चा न कर केवल संक्षेपसे इन सम्प्रदायोंका विवरण देंगे। संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि भारतकी पुण्यभूमिसे निकले हुए जितने धर्म मत वा सम्प्रदाय संसारमें फैले हुए हैं उन सबके मूल आधार यही बारह दर्शन हैं। व्याख्याभेदसे और आचार और व्यवहारमें विविधता आ जानेसे सम्प्रदायोंकी संख्या बहुत बढ़ गयी है। परन्तु जो कोई निरपेक्षभावसे इन दर्शनोंका परिशीलन करता है, अधिकारी और पात्रभेदसे उसके क्रम-विकासके अनुकूल आत्मोन्नतिकी सामग्री इनमें अवश्य मिल जाती है।
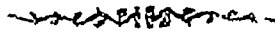
सम्प्रदाय-खण्ड

सरसठवाँ अध्याय

महाभारत-कालके पाँच सम्प्रदाय

साङ्ख्यम् योगः पाञ्चरात्रम् वेदाः पाशुपतम् तथा ।
ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नाना मतानि वै ॥

—म० भा० शान्तिपर्व ३४९वाँ अध्याय

ऊपर लिखे हुए श्लोकसे यह पता चलता है कि महाभारत-कालमें भी अनेक मत और सम्प्रदाय प्रचलित थे। भीष्मपितामहने उनमेंसे पाँचकी चर्चा की है। साङ्ख्य, योग, पाञ्चरात्र, *वेद और पाशुपत। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्यकी रची महाभारत मीमांसा नामक ग्रन्थके सत्रहवें प्रकरणमें बड़ी खोजके साथ इन पाँचों मतोंका वर्णन है। उनके मतसे यहां वेदसे वेदान्त अभिप्रेत है। हम आगे चलकर उसी ग्रन्थके आधारपर इन सम्प्रदायोंका विवरण देते हैं। साङ्ख्यमत और योगमत श्रीमद्भगवद्गीतामें जिस तरहपर दिखाये गये हैं उससे पता चल जाता है कि उस समयके ये दो सम्प्रदाय किस प्रकारके रहे होंगे। इसमें सन्देह नहीं कि साङ्ख्य और योग यह दोनों सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन थे और महाभारतमें जहाँ-जहाँ इनकी चर्चा आयी है वहाँ-वहाँ इनकी प्राचीनता सर्ववादिसम्मत समझी गयी है। इनमेंसे साङ्ख्य अनीश्वरवादी और योग ईश्वरवादी सम्प्रदाय था। परन्तु आजकल इन दोनों सम्प्रदायोंका प्राचीन रूपमें प्रायः लोप हो चुका है। इसीलिये यहाँ हमें इनका विस्तृत दिग्दर्शन अभीष्ट नहीं है। प्रचलित साङ्ख्य और योगदर्शन उनके ही दार्शनिक रूपके अवशेष जान पड़ते हैं। फिर भी सम्प्रदायके रूपसे आजकलके योगमतमें दोनोंका कुछ-कुछ अवशिष्टरूप देख पड़ता है। पाञ्चरात्रमत वैष्णव भक्तिमतका प्रतिपादक था और पाशुपत् मत शैव-भक्ति-विशिष्ट था। वेदान्तका मत उपनिषदोंका तत्त्वज्ञान था। इन पाँचों मतोंके माननेवाले वैष्णव, शैव और स्मार्तोंके विविध सम्प्रदायोंके रूपमें आज भी मौजूद हैं। हम यहाँ वेदान्त पाञ्चरात्र और पाशुपत इन तीनोंका ही कुछ थोड़ा वर्णन देते हैं।

वेदान्त मत

उपनिषदोंमें वेदान्तके तत्त्वज्ञानका प्रतिपादन विस्तृत रीतिसे किया है और यह स्पष्ट है कि उसके वैदिक होनेसे वह सारे सनातन जनसमाजको मान्य ही है। इस तत्त्वज्ञानके मुख्य-मुख्य अङ्ग उपनिषदोंमें बतलाये गये हैं, इसीसे उसे वेदान्त नाम मिला है। भगवद्गीतामें "वेदान्तकृत्" शब्द आया है। महाभारतमें तो वेदान्तका अर्थ ही उपनिषत् या आरण्यक लिया गया है। वेदवाद शब्दसे कर्मवादका अर्थात् संहिताके भागोंमें वर्णित यज्ञादि भागका

---

* मेरा मत है कि यहा वेदसे कर्म्म उपासना और ज्ञान तीनों काण्ड अभिप्रेत हैं, केवल वेदान्त नहीं। उस समयके वेदमतकी परम्परा आजकलके स्मार्त मतमें स्थिर है।

बोध होता है, और वेदान्त शब्दका अर्थ उपनिषत् तत्वज्ञान है। वेदकी संहिताओंमें मुख्यतः कर्मका ही प्रतिपादन है और कहीं-कहीं ब्रह्मका भी है। परन्तु उपनिषद्में ब्रह्मका प्रतिपादन मुख्य है और वैदिक कर्म भी ब्रह्मके लिये ही बतलाया गया है। यद्यपि वेदका अर्थ संहिता और वेदान्तका उपनिषत् होता है, तथापि जान पड़ता है कि महाभारत-कालमें वेदवादका अर्थ कर्मवाद और वेदान्तका अर्थ औपनिषत् तत्वज्ञान निश्चित हो गया था। श्रीभगवद्गीतासे यह बात स्पष्ट हो जाती है। इस तत्वज्ञानका पहला आचार्य्य अपान्तरतमा था, यथा—

अपान्तरतमाश्चैव वेदाचार्य्यः स उच्यते ।
प्राचीनागर्भम् तमृषिं प्रवदन्तीह केचन ॥

इस अध्यायके आरम्भके श्लोकके पहले ही उपर्युक्त श्लोक आता है। पण्डितवर वैद्यजी कहते हैं कि इसमें वेद शब्द वेदान्तवाचक है। तथापि आगेकी बात ध्यानमें रखनेसे कुछ शङ्का होती है। अपान्तरतमाकी कथा इसी अध्यायमें है। वह यों है।

"नारायणके पुकारनेपर सरस्वतीसे पैदा हुआ अपान्तरतमा नामका पुत्र सम्मुख आ खड़ा हुआ। नारायणने उसे वेदकी व्याख्या करनेकी आज्ञा दी। उसने आज्ञानुसार स्वायम्भुव मन्वन्तरमें वेदोंके भाग किये। तब भगवान्ने उसे वर दिया कि वैवस्वत-मन्वन्तरमें भी वेदका प्रवर्तक तू ही होगा। तेरे वंशमें कौरव पैदा होंगे, उनकी आपसमें फूट होगी और वे सहारके लिये तैयार होंगे, तब तू अपने तपोबलसे वेदोंके विभाग करेगा। वशिष्ठके कुलमें पराशर ऋषिसे तेरा जन्म होगा।" इससे यह भी स्पष्ट है कि मुख्यतः इस ऋषिने वेदोंके विभाग किये। तथापि यह माननेमें कुछ हर्ज नहीं कि इस अपान्तरतमाने दोनों बातें कीं। और यह मानना चाहिए कि वेदान्तशास्त्रका आदि प्रवर्तक ऋषि यही है। फिर वह उपनिषदोंका कर्ता या वक्ता रहा हो तो आश्चर्य्य नहीं। वेदान्तशास्त्रपर इसका पहले कोई सूत्र ग्रन्थ रहा हो ऐसा बहुत सम्भव है। भगवद्गीतामें बताया हुआ ब्रह्मसूत्र इसीका हो सकता है, क्योंकि बादरायणके ब्रह्मसूत्र गीताके बहुत बादके हैं। उनकी चर्चा तो गीतामें हो ही नहीं सकती। बादरायणके ही सूत्रोंमें अनेक पूर्व ऋषियोंका हवाला है जिससे पहलेके सूत्रकारोंका पता लगता है।

वेदान्तका मुख्य रहस्य ऊपर आ चुका है। वेदवादमें जो कर्मकाण्ड प्रधान माना गया है उसको पीछे छोड़कर और इन्द्रादि देवताओं और स्वर्गको तुच्छ समझकर पराविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या उपनिषदोंमें आगे बढ़ी। "इसीसे सारा जगत् पैदा होता है, इसीमें रहता है और इसीमें वह लीन हो जाता है। अर्थात् सब जगत् वही है"। 'सर्वम् खल्विदम् ब्रह्म' यह उपनिषद्वाक्य इसी सिद्धान्तका प्रतिपादक है। हमें यह देखना है कि इस सिद्धान्तका प्रवाह पहले उपनिषद्से चलकर फिर भारती-कालतक कैसा उमड़ा। भगवद्गीतामें वह काफी जोरसे बहता हुआ दिखाई देता है। उपनिषत्-तत्वज्ञान भगवद्गीताको मान्य है और उसमें इसी सिद्धान्तका विशेष रीतिसे प्रतिपादन है। फिर भी कुछ बातोंमें भगवद्गीता उपनिषदोंसे बढ़ गयी है। वह कुछ बातें हम यहाँ सक्षेपसे देते हैं। गीतामें औपनिषदिक तत्वज्ञानका भागवत सम्प्रदायकी दृष्टिसे विकास हुआ है। जैसे, क्षेत्रक्षेत्रज्ञज्ञान भी उपनिषद्का एक प्रतिपाद्य विषय है। परन्तु उपनिषद्में उसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। यह विषय भगवद्गीताके १३वें

अध्यायमें है और वहाँ स्पष्ट बतलाया गया है कि यह विषय उपनिषदों और वेदोंका है। ऐसा जान पडता है कि भगवद्गीताने अपनी क्षेत्रकी व्याख्यामें उपनिषद्के आगे बढ़कर कदम रक्खा है, बल्कि यह माननेमें भी कोई हानि नहीं कि उस ज्ञानको परिपूर्ण किया है। "इच्छा-द्वेष. सुखम् दु खम् सङ्घातः चेतनाधृति." इतने विषय उसने क्षेत्रमें और बढ़ा दिये हैं। इसी प्रकार ज्ञान यानी ज्ञानका साधन जो यहाँ बताया गया है वह उपनिषद्में किसी एक स्थानमें नहीं है। "अमानित्वमदंभित्वम्" आदि श्लोकसे "अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम् तत्वज्ञानार्थदर्शनम्" श्लोकतक भगवद्गीतामें उसकी जो व्याख्या की गयी है और जो 'एतत्ज्ञानमितिप्रोक्तम्' कहकर पूरी की गयी है वहुत ही सुन्दर है। उससे भगवद्गीताकी विशिष्ट कार्यक्षमता प्रकट होती है। यहाँ उपनिषद्का भावार्थ भगवद्गीताने इतनी सुन्दर रीतिसे व्यक्त किया है कि हर मुमुक्षुके अध्ययन करने योग्य है। इसमें भी भगवान्ने "मयिचानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी" भगवद्भक्तिका बीज बो दिया है। इसके आगे जो ज्ञेयका वर्णन है वह उपनिषद्में दिये हुए ब्रह्मके वर्णनके समान ही है। जगह-जगहपर (सर्वत. पाणिपादम् तत् आदि स्थानोंमें) उपनिषद्के वाक्योंका स्मरण होगा। इसमें निर्गुणम् गुण भोक्तृ च' अधिक रक्खा गया है। हम पहले ही दिखा चुके हैं कि उपनिषदोंमें गुणोंकी बिलकुल कल्पना नहीं है। साङ्ख्यमतकी मुख्य बातोंमेंसे त्रिगुण भी एक है। भगवान्ने उसे यहाँ मान्य करके वेदान्तके ज्ञानमें उसे शामिल किया है। वेदान्तमें निर्गुणकी परिभाषा भगवद्गीतासे शुरू हुई। यह तत्व कि ब्रह्म ज्ञेय तथा निर्गुण है और वह जगत्सृष्टिके गुणोंका भी भोक्तृ है, उदात्त है और उपनिषत्तत्वोंमें उसका योग्य समावेश हुआ है, इसलिये इस अध्यात्ममें ज्ञेयकी व्याख्या करते हुए भगवान्ने साङ्ख्यज्ञानके ग्राह्य भागकी ओर दृष्टि की है। गीतामें जो प्रकृति पुरुषकी व्याख्या दी है वह स्वतन्त्ररूपसे गीताकी है, साङ्ख्यकी नहीं है। तो भी पुरुषके हृदयमें निवास करनेवाला आत्मा और परमेश्वर या परमात्मा एक है और उसके सम्बन्धमें साङ्ख्य-मत भूलसे भरा और अग्राह्य है, यह दिखलानेके लिए कहा है कि—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्त्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेस्मिन् पुरुषः परः॥

उपनिषदोंके अनुसार परमेश्वर, परब्रह्म, परमात्मा आदि शब्दोंसे ज्ञात "ज्ञेय"का वर्णन करके उसमें गुणोंका समावेश कर इस अध्यायमें फिर क्षेत्रक्षेत्रज्ञके मुख्य विषयकी ओर भगवान् झुके हैं और उन्होंने यहाँ उपनिषदोंका परम मत बतलाया है कि सब जगह ईश्वर एकसा भरा हुआ है—

यदा भूत पृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारम् ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥

यह कहकर उपनिषन्मतके अनुसार उन्होंने यह भी बतलाया है कि यह देही क्षेत्रज्ञ परमात्मा सर्वत्रावस्थित होकर अनुलिप्त है और सूर्यके समान क्षेत्रको प्रकाशित करता है।

इसी प्रकार गीतामें उपनिषद्के तत्वोंका भली-भाँति अवलम्बन और विस्तार किया है। यही बात है कि उपनिषदोंके तुल्य भगवद्गीताका आदर है। उपनिषद्में दिये हुए सिद्धान्तका गीताने जो विस्तार किया, उसमें मुख्यतः निर्गुण परब्रह्मका और श्रीकृष्णकी भक्ति-

का एक जगह मेल करके भगवद्गीताने पहले सगुणब्रह्मकी कल्पना स्थापित की। भगवद्गीतामें यह स्पष्ट प्रश्न किया है कि किसका ध्यान—निर्गुण ब्रह्मका या अव्यक्तका—अधिक फलदायक है। यह भी पूछा गया है कि श्रीकृष्णका सगुण ध्यान फलदायक है या निर्गुणका। उत्तरमें यह कहा गया है कि अव्यक्तकी उपासना अधिक क्लेशदायक है। इसमें श्रीकृष्णने जो सगुण उपासनाका बीज बतलाया है वह आगे कैसे बढ़ा, इसका कुछ विस्तारसे विचार हम पाञ्चरात्र मतमें करेंगे। परन्तु यहाँ यह कहना आवश्यक है कि श्रीकृष्णने यहाँ कुछ विशिष्ट मत स्थापित नहीं किया। उपनिषदोंमें भी ब्रह्मके ध्यानके लिए ओंकार या सूर्य या गायत्री मन्त्र आदि प्रतीक लेनेका नियम बतलाया है, उसीके समान या उससे कुछ अधिक यानी भिन्न-भिन्न विभूतियाँ, विभूति अध्यायमें बतलायी गयी हैं। उनमें यह कहा है कि वृष्णियोंमें वासुदेव एक विभूति है और रुद्रोंमें शङ्कर दूसरी विभूति है। अर्थात् भगवद्गीतामें "मैं" शब्दसे सगुणब्रह्मकी कल्पना है। इसीसे भगवद्गीता सब उपासकोंमें समान भावसे पूज्य हुई है।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञज्ञान, त्रिगुणोंका सिद्धान्त, सगुणब्रह्मकी कल्पना और तदनुरूप भक्तियोग-का, (साङ्ख्य, योग और वेदान्तके अतिरिक्त,) मोक्षमार्ग उपनिषदोंकी अपेक्षा भगवद्गीतामें तो विशेष है ही, परन्तु उपनिषदोंकी अपेक्षा उसमें कर्मयोगके सिद्धान्तकी भी विशेषता है। ऐसा नहीं है कि यह मार्ग उपनिषदोंमें न हो। यह सच है कि उपनिषदोंका जोर सन्यासपर है, तथापि हम समझते हैं कि उसमें भी निष्काम कर्मपक्ष है, और इसीलिये भगवद्गीताने उपनिषद्के प्रथमतः मुख्य दिखाई देनेवाले मार्गका विरोध किया है। "पुत्रैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यम् चरन्ति" पक्ष यद्यपि विशेष कहा गया है, तथापि "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतम् समा." "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा." आदि पक्ष उपनिषद्में हैं।

भीष्म-स्तवमें भी वेदान्तकी स्तुति है। जैसे भीष्म स्तवसे योग और साङ्ख्यकी प्राचीन कल्पना हमारे सम्मुख उपस्थित होती है, वैसे ही उससे वेदान्त तत्वकी प्राचीन कल्पना भी हमारे सन्मुख निस्सन्देह उपस्थित हो जाती है। यह सच है कि भीष्म-स्तवमें वेदान्त या उपनिषत् शब्द नहीं है। परन्तु योगस्वरूपके आगे ही श्लोकमें वेदान्तके तत्वज्ञानका उल्लेख है—

अपुण्यपुण्योपरमे यं पुनर्भव निर्भयाः।
शान्ताः सन्यासिनो यान्ति तस्मै मोक्षात्मने नमः॥

इस वाक्यमें उपनिषन्मतका ही उल्लेख है। यह उपनिषद्का तत्व है कि पाप और पुण्यके नष्ट हुए विना मोक्ष नहीं मिलता। पुण्य और अपुण्यकी निवृत्ति, शान्ति और सन्यास यह तीन बातें ही वेदान्तका मुख्य आधार हैं। इसके पहलेका भी एक श्लोक वेदान्तमतका दिखाई देता है। "अज्ञानरूपी घोर अन्धकारके उस पार रहनेवाले जगद्व्यापक जिस परमेश्वरका ज्ञान होनेपर मोक्ष मिलता है, उस ज्ञेय-स्वरूपी परमेश्वरको नमस्कार है"। स्पष्ट ही यही ज्ञेय ब्रह्म है। इसके सिवा ब्रह्मका तथा परब्रह्मका भी उल्लेख पूर्वके स्तुति-विषयक श्लोकोंमें वेदान्तमतके अनुसार ही आया है। यह कल्पना नयी है कि उससे सारे जगत्का विस्तार होता है, इसीसे उसे ब्रह्म कहते हैं।

पुराणे पुरुषम् प्रोक्तम् ब्रह्मप्रोक्तम् युगादिषु।
क्षये सङ्कर्षणम् प्रोक्तम् तमुपास्यमुपास्महे॥

यह कल्पना उपनिषद्में नहीं है और इसमें कहा है कि पुरुष संज्ञा पूर्व कल्पोंके सम्बन्धकी है। इससे हम कह सकते हैं कि भीष्म-स्तवराजमें संन्यास पक्षपर कुछ अधिक जोर दिया दीखता है।

सनत्सुजातके प्राचीन आख्यानमें भी वेदान्त-तत्व प्रतिपादित है। यह सिद्धान्त कि ज्ञानसे ही मोक्ष मिलता है, उपनिषद्का ही है। यह भी सिद्धान्त वहींका है कि जीवात्मा और परमात्मा अभिन्न हैं। प्रमादके कारण मृत्यु होती है, यानी अपने परमात्म-स्वरूपको भूलनेसे आत्माकी मृत्यु होती है, यह एक नवीन तत्व है। परमात्मा भिन्न-भिन्न आत्माका क्यों निर्माण करता है? और सृष्टि उत्पन्न करके दु:ख क्यों भोगता है? इन प्रश्नोंका यह उत्तर दिया गया है कि परमेश्वर अपनी मायासे जगत्का निर्माण करता है। इस मायाका उद्गम वेदमें ही है जो "इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते" इस वचनमें है। तथापि, उपनिषद्में उसका विशेष विस्तार नहीं है। भगवद्गीतामें यह कहा है कि माया परमेश्वरकी एक शक्ति है। "सम्भवाम्यात्ममायया" वाक्यका ही उल्लेख इस आख्यानमें है। कर्मके तीन प्रकार कहे हैं। आत्मनिष्ट साक्षात्कारीको शुभाशुभ कर्मोंसे बाधा नहीं होती। निष्काम कर्म करनेवालेका पाप शुभ कर्मसे नष्ट होता है और काम्य कर्म करनेवालेको शुभाशुभ कर्मोंके शुभाशुभ फल भोगने पड़ते हैं। "मौन" यानी परमात्माकी एक विशेष कल्पना है। पर वह उपनिषदोंसे ही निकली है। उपनिषद्में "यतो वाचो निवर्त्तन्ते" कहा है। "मौन संज्ञा परमात्माकी है, क्योंकि वेद भी मनसे वहाँ प्रवेश नहीं कर सकते।" ब्रह्मके चिन्तनके लिये जो मौन धारण करता है उसे मुनि कहते हैं और जिसे ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है वही श्रेष्ठ मुनि और वही ब्राह्मण है। गुरुगृहमें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करना और गुरुके अन्तःकरणमें घुसकर ब्रह्मविद्या प्राप्त करनी चाहिए। विद्या चतुष्पदी है, उसका एक पाद गुरुसे मिलता है, दूसरा शिष्य अपनी बुद्धिके बलसे पाता है, तीसरा बुद्धिके परिपक्व होनेपर कालगतिसे मिलता है और चौथा सहाध्यायियोंके साथ तत्व-विचारकी चर्चासे मिलता है। ब्रह्मका जो वर्णन सनत्सुजातके अन्तमें विस्तारपूर्वक दिया है वह उपनिषद्के अनुसार ही है। परन्तु यह कल्पना इसमें नवीन दिखाई देती है कि ब्रह्मसे हिरण्यगर्भकी उत्पत्ति हुई और उसीने सृष्टि रची। इस कल्पनामें साधारण पौराणिक धारणाके साथ वेदान्तका मेल मिलानेका प्रयत्न है।

महाभारतमें वेदान्तमतका विस्तार किस प्रकार किया हुआ मिलता है, इसके बतलानेमें पहले इस बातको स्वीकार करना होगा कि, महाभारतके समयमें साङ्ख्य तथा योगका इतना आदर था कि उनकी छाया महाभारतके शान्तिपर्व और अन्य पर्वोंके तत्वज्ञानके विवेचनपर पूर्णतया पड़ी हुई दिखाई देती है। किसी विषय या अध्यायको लीजिये, वहाँ साङ्ख्य और योगका नाम अवश्य आता है। इसके सिवा साङ्ख्य और वेदान्तमें ज्ञानका ही महत्व होनेसे कई जगह उनका अभेद माना गया है। बादरायणके वेदान्त-सूत्रमें मुख्यतः साङ्ख्य और योगका भी खण्डन है। यह स्पष्ट है कि वे सूत्र पीछेके हैं। उनमें उपनिषद् बाह्य साङ्ख्यादि मत त्याज्य माने गये। महाभारत-कालमें यह स्थिति न थी। उस समय साङ्ख्य और योग वेदान्तके साथ ही साथ समान पूज्य माने जाते थे। तथापि यह स्पष्ट है कि वेदान्तमत ही मुख्य था और उसीके साथ अन्य मतोंका समन्वय किया जाता था।

शान्तिपर्वके कुछ आख्यानोंमें इस तत्वज्ञानकी चर्चा है। परन्तु उसमें प्रायः गूढ़ अर्थके श्लोक अधिक हैं। फिर भी जितना स्पष्ट है उससे हम कह सकते हैं कि शान्तिपर्वमें पहले वैराग्यका अधिक वर्णन है। वेदान्त ज्ञानको वैराग्यकी आवश्यकता है। फिर भृगु और भारद्वाजके संवादमें जीवका अस्तित्व सिद्ध किया है और मनु और बृहस्पतिके संवादमें मोक्ष-का वर्णन है। यहाँपर सबका स्पष्ट सिद्धान्त यह बतलाया गया है कि—

सुखाद्बहुतरम् दुःखम् जीविते नास्ति संशयः।
परित्यजति यो दुःखम् सुखम् वाप्युभयम् नरः॥
अभ्येति ब्रह्म सोऽत्यन्तन्न ते शोचन्ति पण्डिताः॥
(अ० २०५)

सुख-दु.ख पुण्य-अपुण्य दोनों जब छूटेंगे तब मोक्ष मिलेगा। मालूम होता है कि वेदान्त-तत्वका यह मत महाभारतकालमें निश्चित था। इसके सम्बन्धमें शुक और व्यासका संवाद महत्वका है। उसमें कहा है, शुकने प्रश्न किया—

यदिदम् वेदवचनम् लोकवादे विरुध्यते।
प्रमाणे वाऽप्रमाणे च विरुद्धे शास्त्रतः कुतः॥
(शां० अ० २४३)

इसपर व्यासजी कहते हैं—

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
यथोक्तचारिणः सर्वे गच्छन्ति परमां गतिम्॥
चतुष्पदी हि निःश्रेणी ब्रह्मण्येता प्रतिष्ठिता॥

इसमें यह दिखलाया गया है कि किसी आश्रमका विधिवत् पालन करनेसे परम गति मिलती है। ब्रह्मको पहुँचनेकी चार सीढ़ियोंकी यह निसैनी है। हर एक सीढ़ीपर चढ़कर जाना सरल है, परन्तु निष्कर्प यह भी दिखाई देता है कि एक ही सीढ़ीपर मजबूत और पूरा पैर जमाकर वहाँसे उछलकर परब्रह्मको जाना सम्भव है। कपिल और स्यूमरश्मिके संवादमें यही विपय फिर आया है, और उसका निर्णय भी ऐसा ही अनिश्चित हुआ है। स्यूमरश्मिने गृहस्थाश्रमका पक्ष लेकर कहा है कि—

कस्यैषा वाग्भवेत्सत्या नास्ति मोक्षो गृहादिति॥१०॥
(शां० अ० २६६)

और भी कहा है कि—

यद्येतदेवम् कृत्वापि न विमोक्षोऽस्ति कस्यचित्।
धिक्कर्त्तारम् च कार्यम् च श्रमश्चायम् निरर्थकः॥६६॥

कपिलने पहले यह स्वीकार किया कि—

वेदाः प्रमाणम् लोकानां न वेदाः पृष्ठतः कृताः।
द्वे ब्रह्मणो वेदितव्ये शब्द ब्रह्म परम् च यत्॥
शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परम् ब्रह्माधिगच्छति॥

और फिर अन्तमें उन्होंने यह भी मान्य किया है कि "चतुर्थोपनिपद्धर्मः साधारण

इति स्मृतिः।" और यह बात भी मानी है कि स्मृतिमें यह कथन है कि उपनिषदोंमें बताये हुए चतुर्थ अथवा तुरीय पदवाच्य ब्रह्मपदकी प्राप्ति कर लेनेकी स्वतन्त्रता चारों आश्रमों और चारों वर्णोंको है। उपनिषद्में जानश्रुति शूद्रको मोक्षमार्गका उपदेश किया है और श्वेतकेतु ब्रह्मचारीको तत्व-प्राप्तिका उपदेश किया है। भगवद्गीताके "स्त्रियो वैश्याः" आदि वचनोंसे यही स्वतन्त्रता दी गयी है। यद्यपि महाभारत-कालमें यह बात मानी जाती थी, तथापि यथार्थमें लोग समझने लगे कि ब्राह्मण और विशेषत. चतुर्थाश्रमी ही मोक्ष-मार्ग स्वीकार करते हैं और मोक्षपदको पहुँचते हैं। बहुत क्या कहा जाय, शान्तिपर्वके २४६वें अध्यायमें वेदान्त-ज्ञानकी स्तुति करते समय उपनिषन्मतका ही वर्णन करके व्यासजीने कहा है कि यह रहस्यधर्म स्नातकोंको ही देने योग्य है, अर्थात् स्त्रियाँ इसके लिए अधिकारी नहीं हैं। इस तरह वेदान्तज्ञान और संन्यासका सम्बन्ध महाभारत-कालमें अधिक दृढ़ हुआ। पर वह अपरिहार्य न था। इस कालके पीछे बादरायणके सूत्रोंमें यह सम्बन्ध पक्का और नित्य हो गया। शूद्र शब्दकी भिन्न व्युत्पत्ति करनेवाले सूत्रोंसे पता चलता है कि यही प्रतिपादित हुआ था कि ब्राह्मणको ही और विशेषत. संन्यासाश्रमीको ही मोक्ष मिलता है। शान्तिपर्वके २७८वें अध्याय-में हारीतोक्त मोक्षज्ञान बतलाया गया है। उसमें संन्यासधर्मका विस्तारपूर्वक वर्णन करके अन्तमें यह कहा है कि—

अभयम् सर्वभूतेभ्यो दत्वा यः प्रव्रजेद्गृहात्।
लोकास्तेजोमयास्तस्य तथानन्त्यायकल्पते॥

महाभारतकालमें प्रव्रज्यादि मोक्षकी प्रणाली मान्य हुई दिखाई देती है। क्योंकि बौद्धों तथा जैनोंने भी अपने मोक्षमार्गके लिए इसी प्रव्रज्याके मार्गको मान्य किया है। महाभारतकालमें प्रव्रज्याका महत्व बहुत बढ़ा हुआ दिखाई देता है। विस्तारपूर्वक अन्यत्र कहा ही गया है कि सनातनधर्मियोंकी प्रव्रज्या बहुत प्रखर थी। बौद्धों तथा जैनोंने प्रव्रज्याको बहुत हीन कर डाला और वह पेट भरनेका धन्धा हो गया। एक समय युधिष्ठिरको संन्यास-की अत्यन्त लालसा हुई और उसने पूछा—"कदावयम् करिष्यामः संन्यासम् दुःख-सञ्ज्ञकम्। कदावयम् गमिष्यामो राज्यम् हित्वा परन्तप॥" इस प्रश्नपर भीष्मने सनत्सुजात और वृत्रका संवाद सुनाया। यह कहते-कहते कि जीव संसारमें करोड़ों वर्षतक कैसे परिभ्रमण करता है, उन्होंने यह भी बतलाया कि जीवके छ. वर्ण होते हैं—कृष्ण, धूम्र, नील, रक्त, हारिद्र और शुक्ल (शा० अ० २८०। ३३)। वर्णोंकी यह कल्पना विचित्र है। हरएक वर्णकी चौदह लाख योनियाँ बतलायी गयी हैं (शतम् सहस्राणि चतुर्दशेह, परागतिर्जीवगुणस्य दैत्य। ३६)। भिन्न-भिन्न रङ्गोंमेंसे पुनः-पुन. ऊपर नीचे भी ससरण होता है। नरकमें पड़े रहनेतक कृष्णवर्ण होता है। वहाँसे हरित, धूम्र। इसके अनन्तर सत्वगुणसे युक्त होनेपर नीलमेंसे निकलकर लाल रङ्ग होता है और जीव मनुष्यलोकको आता है। पीला रङ्ग मिलनेपर देवत्व मिलता है। फिर जब सत्वाधिक्य होता है तब उसे शुक्लवर्ण मिलता है (नहीं तो वह नीचे गिरता हुआ कृष्ण रङ्गतक आता है)। शुक्ल गतिमेंसे यदि वह पीछे न गिरा और योग्य मार्गसे चला गया तो गत श्लोकमें कहा है कि—"ततोऽव्ययम् स्थानमनन्तमेति देवस्य विष्णोरथब्रह्मणश्च" "संहारकाले परिदग्धकाया ब्रह्माणमायान्ति

सदा प्रजाहि" सर्वसंहारके समय ऐसा दिखाई देता है कि उसका ब्रह्मसे तादात्म्य होता है। इससे यह भी जान पड़ता है कि महाभारतकालमें परमगतिकी कल्पना कुछ भिन्न थी। उपनिषद्में भी कहा है कि भिन्न-भिन्न देवताओंके लोक हैं, किन्तु यह माना जाता था कि सबमें ब्रह्मलोक अपुनरावर्त्ति है। उपनिषद्में प्रजापति लोक और ब्रह्मलोक अलग-अलग माने गये थे। पर, भगवद्गीता और महाभारतमें यह एक स्वरसे माना गया है कि ब्रह्मलोक पुनरावर्त्ति है। "आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोर्जुन" इस मतके अनुसार यह निश्चय हुआ था कि ब्रह्मलोककी गति शाश्वत नहीं है। योगी और जापक वहीं जाते हैं। परन्तु ऊपरके श्लोकमें इतनी कल्पना अधिक है कि ब्रह्मलोकके लोग संहारके समय मुक्त होते हैं। यह स्पष्ट है कि वेदान्तका अन्तिम ध्येय मोक्ष है। परन्तु वेदान्तमतसे मोक्षका अर्थ है ब्रह्मभाव। मोक्ष और विमोक्ष शब्द गीतामें तथा उपनिषदोंमें भी हैं। परन्तु ब्रह्मनिर्माण, ब्रह्मभूय आदि शब्द गीतामें अधिक हैं। सभापर्वकी ब्रह्मसभासे यह स्पष्ट है कि ब्रह्मसभा अन्तिम गति नहीं है। वनपर्वके २६१वें अध्यायमें ब्रह्मलोकके ऊपर ऋभुलोक बतलाये हैं, जो कल्पमें भी परिवर्त्तन नहीं पाते। ऐसा वर्णन है कि—"न कल्पपरिवर्तेषु परिवर्तन्ति ते तथा" "देवानामर्षि मौद्गल्यकाङ्क्षिता सा गतिः परा।" परन्तु कहा है कि इसके आगे विष्णुका स्थान है—"ब्रह्मणः सादनादूर्ध्वम् तद्विष्णो. परमम् पदम्। शुद्धम् सनातनम् ज्योति· परब्रह्मेति यद्विदुः।" पञ्चेन्द्रियाँ, बुद्धि, मन, पञ्चमहाभूत और उनके रूपरसादि गुण तथा सत्वरजस्तमः त्रिगुण, उनके भेद आदि अनेक विषय महाभारतमें, उद्योगपर्वके सनत्सुजातीयमें और अन्यत्र, वर्णित हैं। इनमेंसे शान्तिपर्वके मोक्षधर्म पर्वमें इनका बहुत ही विस्तार है जिनकी चर्चा भी यहाँ सम्भव नहीं है। तथापि उपनिषदोंमें जिन वेदान्त तत्वोंका उपदेश किया गया है, उनका विस्तार भगवद्गीतामें ही किया है और महाभारतमें सुन्दर संवाद और आख्यान कहे गये हैं। अन्तका व्यास-शुकाख्यान बहुत ही मनोहर है और उसके आरम्भका 'पावकाध्ययन" नामका ३२१ वाँ अध्याय तो मूलमें ही पढ़ने लायक है।

पाञ्चरात्र

वेदान्तके बाद पाञ्चरात्र ही एक महत्वका ज्ञान महाभारतके समयमें था। ईश्वरकी सगुण-उपासना करनेकी परिपाटी शिव और विष्णुकी उपासनासे ही प्रचलित हुई दीखती है। वैदिक कालमें ही यह बात मान्य हो गयी थी कि सब वैदिक देवताओंमें विष्णु श्रेष्ठ हैं। उस वैष्णवधर्मका मार्ग धीरे धीरे बढ़ता गया और महाभारत कालमें उसे पाञ्चरात्र नाम मिला। इस मतकी असली नींव भगवद्गीताने ही डाली थी और यह बात सर्वमान्य हुई थी कि श्रीकृष्ण श्रीविष्णुके अवतार हैं। इससे स्पष्टतः पाञ्चरात्रमतकी मुख्य नीति श्रीकृष्णकी भक्ति ही है। परमेश्वरकी भावनासे श्रीकृष्णकी भक्ति करनेवाले श्रीकृष्णके समयमें भी थे, जिनमें गोपियाँ मुख्य थीं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत लोग थे। यह अनुभव-सिद्ध है कि सगुणरूपकी भक्ति करनेवालेको भगवद्भजनसे कुछ और ही आनन्द होता है। भक्तिमार्ग बहुत पुराना तो है, परन्तु पाञ्चरात्र-मार्गसे कुछ भिन्न और प्राचीन है। पाञ्चरात्र तत्वज्ञानके मत कुछ भिन्न हैं और रहस्यके समान हैं। महाभारतके नारायणीय उपाख्यानसे जान पड़ता है

कि महाभारतके समयमें भगवद्भक्ति करनेवाले "भागवत" कहलाते थे और उनका एक सामान्य वर्ग था। इस वर्गमें विष्णु और श्रीकृष्ण देवताओंको परमेश्वर स्वरूप मानकर उनकी भक्ति होती थी। परन्तु पाञ्चरात्र इससे कुछ भिन्न है। इसका आधार नारायणीय आख्यान है।

नारायणीय आख्यान शान्तिपर्वके ३३४वें अध्यायसे ३५१वें अध्यायके अन्ततक है। इसके बाद अन्तका उंच्छवृत्युपाख्यान है। अर्थात् नारायणीयाख्यान शान्तिपर्वका अन्तिम प्रतिपाद्य विषय है, वह वेदान्त आदि मतोंसे भिन्न और अन्तिम ही माना गया है।

इस मतके मूल आधार नारायण हैं। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें "सनातन विश्वात्मा नारायणसे नर, नारायण, हरि और कृष्ण चार मूर्त्तियाँ उत्पन्न हुई।" नर-नारायण ऋषियोंने बदरिकाश्रममें तप किया। नारदने वहाँ जाकर उनसे प्रश्न किया। उसपर उन्होंने उन्हें यह पाञ्चरात्र धर्म सुनाया। इस धर्मका पहला अनुयायी राजा उपरिचर वसु था। इसीने पाञ्च-रात्र विधिसे पहले नारायणकी पूजा की। चित्रशिखण्डी नामके सप्त ऋषियोंने वेदोंका निष्कर्ष निकालकर पाञ्चरात्र नामका शास्त्र तैयार किया। ये सप्तर्षि स्वायम्भुव मन्वन्तरके मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ हैं। इस शास्त्रमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारोंका विवेचन है। यह ग्रन्थ एक लाख श्लोकोंका है। "ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अङ्गिरा ऋषिके अथर्ववेदके आधारपर इस ग्रन्थमें प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों मार्ग हैं। दोनों मार्गोंका यह आधारस्तम्भ है।" नारायणने कहा कि "हरिभक्त वसु राजा उपरिचर इस ग्रन्थको बृहस्पतिसे सीखेगा और उसके अनुसार चलेगा, परन्तु उसके पश्चात् यह ग्रन्थ नष्ट हो जायगा।" अर्थात् चित्रशिखण्डीका यह ग्रन्थ आजकल उपलब्ध नहीं है।

इसमें पहली कथा यह है कि क्षीरसमुद्रके उत्तरकी ओर श्वेतद्वीप है जहाँ नारायणकी पाञ्चरात्र-धर्मसे पूजा करनेवाले श्वेतचन्द्रकान्तिके "अतीन्द्रिय, निराहारी और अनिमेष" लोग हैं। वे एक निष्ठासे भक्ति करते हैं और उन्हें नारायणका दर्शन होता है। इस श्वेत-द्वीपके लोगोंकी अनन्य भक्तिसे नारायण प्रकट होते हैं और ये लोग पाञ्चरात्र विधिसे उनका पूजन करते हैं।

अहिंसा मत भी इस तत्वज्ञानके द्वारा साङ्ख्य-योगादि अन्य मतोंके समान ही प्रधान माना गया है। वसु राजाने जो यज्ञ किया था उसमें पशु-वध नहीं हुआ। वसु राजाके शापकी जो बात आगे दी है, केवल वह इसके विरुद्ध है। ऋषियोंके और देवोंके झगडेमें छागहिंसाके यज्ञके सम्बन्धमें जब वसुसे प्रश्न किया गया, तब उसने देवोंके मतके अनुकूल कहा कि छागबलि देना चाहिए। इससे ऋषियोंका उसे शाप हुआ और वह भूवि-वरमें घुसा। वहाँ उसने अनन्य भक्तिपूर्वक नारायणकी सेवा की जिससे वह मुक्त हुआ और नारायणकी कृपासे ब्रह्मलोकको पहुँचा। वसु राजाके नामसे यज्ञमें घीकी धारा आज भी अग्निमें छोड़नी पड़ती है। कहा है कि देवोंने उसे प्राशन करनेके लिए यह घृतधारा दिलायी। आज भी उसे "वसोर्धारा" कहते हैं। यही कथा अश्वमेधपर्वके नकुलाख्यानमें भी आयी है।

आगेके अध्यायोंमें यह वर्णन है कि नारद नारायणका दर्शन करनेके लिए श्वेतद्वीपमें गये और भगवान्के गुह्य नामोंसे उनकी स्तुति की। ये नाम विष्णुसहस्रनामसे भिन्न हैं।

पाञ्चरात्र-मतमें भी नारदकृत स्तुति विशेष महत्वकी होगी। नारायण प्रसन्न हुए और उन्होंने नारदको विश्वरूप दिखाया। इस रूपका वर्णन यहाँ देने योग्य है। "प्रभुके स्वरूपमें भिन्न-भिन्न रत्नोंकी छटा थी। नेत्रहस्तपादादि सहस्र थे। वह विराट्-स्वरूपका परमात्मा ओङ्कारयुक्त सावित्रीका जप करता था। उस जितेन्द्रिय हरिके अन्य मुखोंमेंसे चारों वेद, वेदाङ्ग और आरण्यकोंका घोष हो रहा था। उस यज्ञरूपी देवके हाथमें वेदि, कमण्डलु, शुभ्रमणि, उपानह, कुश, अजिन, दण्डकाष्ठ और ज्वलित अग्नि थे"। इस वर्णनसे यह स्पष्ट दिखाई देता है कि पाञ्चरात्र-मत वेदों और यज्ञोंको पूरा-पूरा मानता था। अस्तु। यह विश्वरूप गीताके विश्वरूपसे उसी तरह भिन्न है, जैसे प्रसङ्ग। यहाँपर नारायणने नारदको जो तत्वज्ञानका उपदेश दिया है उसमें पाञ्चरात्रके विशिष्ट मत आये हैं। वे ये हैं—"जो नित्य, अजन्मा और शाश्वत है, जिसे त्रिगुणोंका स्पर्श नहीं, जो आत्मा प्राणिमात्रमें साक्षिरूपसे रहता है, जो चौबीस तत्वोंके परे पचीसवाँ पुरुष है, जो निष्क्रिय होकर ज्ञानसे ही जाना जा सकता है, उस सनातन परमेश्वरको "वासुदेव" कहते हैं। वह सर्वव्यापक है। प्रलयकालमें पृथ्वी जलमें लीन होती है, जल अग्निमें, तेज वायुमें, वायु आकाशमें और आकाश अव्यक्त-प्रकृतिमें और अव्यक्त-प्रकृति पुरुषमें लीन होती है। फिर उस वासुदेवके सिवा कुछ भी नहीं रहता। पञ्चमहाभूतोंका शरीर बनता है और उसमें अदृश्य वासुदेव सूक्ष्म रूपसे तुरन्त प्रवेश करता है। यह देहवर्त्ती जीव महा समर्थ है और शेष और "सङ्कर्षण" उसके नाम हैं। इस सङ्कर्षणसे मन उत्पन्न होकर "सनत्कुमारत्व" यानी जीवन-मुक्तता पा सकता है। उस मनको "प्रद्युम्न" कहते हैं। इस मनसे कर्त्ता, कारण और कार्यकी उत्पत्ति है तथा इससे चराचर जगत्का निर्माण होता है, इसीको "अनिरुद्ध" कहते हैं। इसीको ईशान भी कहते हैं। सब कामोंमें व्यक्त होनेवाला अहङ्कार यही है। निर्गुणात्मक क्षेत्रज्ञ भगवान् वासुदेव जीवरूपमें जो अवतार लेता है, वह सङ्कर्षण है, सङ्कर्षणसे जो मन रूपमें अवतार होता है वह प्रद्युम्न है और प्रद्युम्नसे जो उत्पन्न होता है वह अनिरुद्ध है और वही अहङ्कार और ईश्वर है।"

पाञ्चरात्र मतका यही सबसे विशिष्ट सिद्धान्त है। वासुदेव सङ्कर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्धका श्रीकृष्णके चरित्रसे अति घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब वासुदेवका अवतार वासुदेव कृष्णके रूपमें हुआ तो प्रद्युम्न और अनिरुद्ध भी परमात्माके मन और अहङ्कारके तत्वोंके अवतार समझे गये। परन्तु सङ्कर्षण नाम वलरामका यानी श्रीकृष्णके बड़े भाईका है। बलरामके लिए मान लिया कि पूज्य भाव था, तथापि उनका नाम जीवको कैसे दिया गया? उनका और श्रीकृष्णका सम्बन्ध बढे और छोटे भाईका था, वैसा सम्बन्ध जीव और परमेश्वरका तो नहीं है। यथार्थ बात यह है कि इस सम्बन्धके विचारसे ये नाम नहीं रक्खे गये। श्रीकृष्ण तो अवतार थे। अवतारमें क्रम वदल गया। गीतामें एक जगह "वासुदेव" परमात्माके अर्थमें आया है—

> बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
> वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

भगवद्गीतामें चतुर्व्यूह सिद्धान्तका वर्णन कहीं नहीं है। परन्तु शायद धीरे-धीरे यह सिद्धान्त वढ़ता गया है। यह सच है कि भीष्मस्तवमें इस मतका उल्लेख है, परन्तु उसमें

सङ्कर्षण नाम परमेश्वरके ही लिए आया है और उसका अर्थ भिन्न ही किया है। "मैं उस परमात्माकी उपासना करता हूँ जिसे सङ्कर्षण कहते हैं, क्योंकि संहार-कालमें वह जगत्‌को आकर्षित कर लेता है।" शान्तिपर्वके २८०वें अध्यायमें कहा है कि श्रीकृष्णने मूर्त्तस्वरूप लिया, तथापि वे उपाधि वर्गोंसे निरुद्ध या बद्ध नहीं थे, इसीसे उन्हें "अनिरुद्ध" कहते हैं। सहज ही उसी अर्थमें अर्थात् जीव, मन और अहङ्कारके अर्थमें वे शब्द माने गये। चतुर्व्यूहकी यह कल्पना वेदान्त, साङ्ख्य या योग मतोंसे भिन्न है और पाञ्चरात्र मतकी स्वतन्त्र है। यह मत श्रीकृष्णके समयमें सात्वत लोगोंमें फैला होगा। सात्वत लोग श्रीकृष्णके वंशके लोग थे, इसीसे इस मतको सात्वत कहते हैं। महाभारतमें तो एक जगह कहा है कि बलदेव और श्रीकृष्ण श्रीविष्णुके समान ही अवतार हैं (आदि प० अ० १९७)। बलदेवके मन्दिर अभीतक हिन्दुस्थानके कुछ स्थानोंमें हैं। जैन तथा बौद्ध-ग्रन्थोंमें वासुदेव और बलदेव दोनों नाम ईश-स्वरूपी धर्म-प्रवर्तकके अर्थमें आये हैं। अर्थात् उनके समयमें ये ही दो व्यक्ति सामान्यतः लोगोंमें मान्य थे। प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नाम केवल सात्वत या पाञ्चरात्र मतमें ही हैं और वंशपरम्परासे सात्वतोंके मतमें उनकी भक्तिका रहना भी स्वाभाविक है। भीष्मस्तवमें इन सात्वत गुह्य नामोंका ऐसा उल्लेख किया है—

चतुर्भिश्चतुरात्मानम् सत्वस्थम् सात्वताम् पतिम्।
यम् दिव्यैर्देवमर्चन्ति गुह्यैः परमनामभिः॥

शान्तिपर्वके ३३९वें अध्यायमें नारायण नारदसे आगे कहते हैं—"जिसका ज्ञान निरुक्तसे होता है वह हिरण्यगर्भजगज्जनक चतुर्वक्त्र ब्रह्मदेव मेरी आज्ञासे सब काम करते हैं और मेरे ही कोपसे रुद्र हुए हैं। पहले जब मैंने ब्रह्मदेवको पैदा किया तब उन्हें ऐसा वर दिया कि—जब तू सृष्टि उत्पन्न करेगा, तब तुझे पर्यायवाची अहङ्कार नाम मिलेगा, और जो कोई वर-प्राप्तिके लिए तपश्चर्या करेंगे उन्हें तुझसे ही वर-प्राप्ति होगी। देवकार्यके लिये मैं हमेशा अवतार लूँगा, तब तू मुझे पिताके तुल्य आज्ञा कर। मैं ही सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध अवतार लेता हूँ, और अनिरुद्धके नाभिकमलसे ब्रह्मदेवका अवतार होता है"। यह कहकर इसके आगे इस अध्यायमें दशावतारोंके संक्षिप्त चरित्रका जो कथन किया है वह बहुत ही महत्वका है। इन दस अवतारोंमें बुद्धका अन्तर्भाव नहीं है। स्पष्ट कारण यही है कि यह नारणीयाख्यान महाभारतकालका है।

हंसः कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावो द्विजोत्तम।
वाराहो नारसिंहश्च वामनो राम एव च॥
रामो दाशरथिश्चैव सात्वतो कल्किरेव च॥

इस समय लोगोंमें जो अवतार प्रसिद्ध हैं वे बहुधा ये ही हैं, परन्तु प्रारम्भमें जो हंस है, केवल वह भिन्न है और उसके बदले नवाँ अवतार बुद्ध आया है। हंस अवतारकी कथा इसमें नहीं है परन्तु वाराहकी है और यहींसे वर्णन शुरू होता है—"जो पृथ्वी समुद्रमें डूबकर नष्ट हो गयी उसे मैं वाराह रूप धारण कर ऊपर लाऊँगा। हिरण्याक्षका वध मैं करूँगा। नृसिंह रूप धारण कर मैं हिरण्यकशिपुको मारूँगा। बलि राजा बलवान् होगा, तो मैं वामन होकर उसे पातालमें डालूँगा। त्रेतायुगमें सम्पत्ति और सामर्थ्यसे क्षत्रिय मत्त

होंगे तो भृगुकुलमें परशुराम होकर मैं उनका नाश करूँगा। प्रजापतिके दो पुत्र—ऋषि एकत और द्वित, त्रित ऋषिका घात करेंगे जिसके प्रायश्चित्तके लिए उन्हें बन्दरकी योनिमें जन्म लेना पड़ेगा। उनके वंशमें जो महाबलिष्ट बन्दर पैदा होंगे वे देवोंको छुड़ानेके लिए मेरी सहायता करेंगे और मैं पुलस्त्यके कुलके भयङ्कर राक्षस रावण और उसके अनुयायियोंका नाश करूँगा। (वानरोंकी यह उत्पत्ति बहुत ही भिन्न और विचित्र है जो रामायणमें भी नहीं है।) द्वापरके अन्तमें और कलियुगारम्भके पूर्व मैं मथुरामें कंसको मारूँगा। फिर प्राग्ज्योतिषाधिपतिको मारकर वहाँकी सम्पत्ति द्वारकामें लाऊँगा। तदनन्तर बलिपुत्र बाणासुरको मारूँगा। फिर सौभनिवासियोंका नाश करूँगा। फिर कालयवनका वध करूँगा, जरासन्धको मारूँगा और युधिष्ठिरके राजसूयके समय शिशुपालका वध करूँगा।" लोग मानते हैं कि भारती-युद्ध-कालमें नर-नारायण कृष्णार्जुनके रूपसे क्षत्रियोंका संहार करनेके लिये उद्युक्त हुए हैं। "अन्तमें द्वारकाका तथा यादवोंका भी घोर प्रलय मैं ही करूँगा। इस प्रकार अपार कर्म करनेपर मैं उस प्रदेशको वापस जाऊँगा जो ब्राह्मणोंको पूज्य है और जिसे मैंने पहले निर्माण किया।"

ऊपरके विस्तृत अवतरणमें नारायणीय-आख्यानमें दशावतारकी प्रचलित कल्पना मौजूद है और श्रीविष्णु या नारायणने भिन्न-भिन्न असुरोंको मारनेके लिए जो-जो अवतार धारण किये हैं उनका वर्णन किया गया है। इस वर्णनमें यह बात गर्भित है कि ये असुर ब्रह्मदेवके वरसे ही पैदा होते थे और अन्तमें उन्हें मरवानेके लिए ब्रह्मदेव नारायणके पास जाकर उनसे प्रार्थना करते थे। श्वेतद्वीपमें नारदको भगवान्‌के दर्शन होनेका और दोनोंके भाषणका उपर्युक्त वर्णन जिसमें किया है उसका नाम है महोपनिषत् और इस मतमें यह माना गया है कि वह नारदका बनाया हुआ पाञ्चरात्र है। यह भी कहा है कि जो इस कथाका श्रवण और पठन करेगा वह चन्द्रके समान कान्तिमान् होकर श्वेतद्वीपको जायगा। यहाँ यह भेद किया हुआ दिखाई देता है कि भगवद्गीता उपनिषत् है और यह आख्यान महोपनिषत् है।

भगवद्गीताके ढङ्गपर इस महोपनिषत्‌की उपदेश-परम्परा भी बतलायी गयी है। पहले नारदने इसे ब्रह्मदेवके सदनमें ऋषियोंको सुनाया। उनसे इस पाञ्चरात्र उपनिषत्‌को सूर्यने सुना। सूर्यसे देवोंने इसे मेरु पर्वतपर सुना। देवोंसे असित ऋषिने, असितसे शान्तनुने, शान्तनुसे भीष्मने और भीष्मसे धर्मने सुना। भगवद्गीताके समान यह भी कहा गया है कि—"जो वासुदेवका भक्त न हो, उसे तू इस मतका रहस्य मत बतला।"

इसके आगेके ३४०वें अध्यायमें साङ्ख्य और वेदान्तके तत्व-ज्ञानोंका मेल करके सृष्टिकी उत्पत्तिका जो वर्णन किया गया है उससे मालूम होता है कि परमात्माको, उसके कर्मके कारण ही महापुरुष कहते हैं। उसीसे प्रकृति उत्पन्न हुई जिसका नाम प्रधान है। प्रकृतिसे व्यक्तका निर्माण हुआ और वही लोगोंमें (वेदान्तमें) महान् आत्माके नामसे प्रसिद्ध है। उससे ब्रह्मदेव पैदा हुए। ब्रह्मदेवने मरीच्यादि सात ऋषि और स्वायम्भुव मनु उत्पन्न किये। इनके पूर्व ब्रह्मदेवने पञ्चमहाभूत तथा उनके पांच शब्दादि गुण उत्पन्न किये। सात ऋषि और मनुको मिलाकर अष्ट प्रकृति होती है, जिससे सारी सृष्टि हुई। यह सब

पाञ्चरात्र मत है। इन्होंने देव उत्पन्न किये और जब तपश्चर्या की तब यज्ञकी उत्पत्ति हुई और ब्रह्मदेवके इन मानस पुत्र ऋषियोंने प्रवृत्ति धर्मका आश्रय लिया। इनके मार्गको 'अनिरुद्ध' कहते हैं। सन, सनत्सुजात, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, कपिल और सनातन ब्रह्मदेवके दूसरे मानसपुत्र हैं। इन्होंने निवृत्ति-मार्ग लिया। मोक्षधर्मका मार्ग इन्होंने ही दिखाया। इस अध्यायमें यह वर्णन है कि प्रवृत्ति-मार्गियोंकी पुनरावृत्ति नहीं टलती। इससे पाञ्चरात्रका मत यह दिखाई देता है कि यज्ञमार्ग नारायणने दिखाया, यज्ञके हविर्भागका भोक्ता वही है, वही निवृत्ति-मार्गका दर्शक है और वही उसका पालन भी करता है। यह भी दिखाई देता है कि वे यह भी मानते हैं कि प्रवृत्ति हीन है और निवृत्ति श्रेष्ठ है।

३४१वें और ३४२वें अध्यायोंमें नारायणके नामोंकी उपपत्ति लिखी है जो बहुत ही महत्वकी है। यह संवाद प्रत्यक्ष अर्जुन और श्रीकृष्णके बीच हुआ है और श्रीकृष्णने स्वयम् अपने नामकी व्युत्पत्ति बतायी है। पहले श्रीकृष्णने श्रीमुखसे वर्णन किया है कि शिव और विष्णुमें कोई भेद नहीं। "रुद्र नारायण-स्वरूपी है। अखिल विश्वका आत्मा मैं हूँ और मेरा आत्मा रुद्र है। मैं पहले रुद्रकी पूजा करता हूँ।" इत्यादि विस्तृत विवेचन प्रारम्भमें किया गया है। "आप अर्थात् शरीरको ही 'नारा' कहते हैं, सब प्राणियोंका शरीर मेरा अयन अर्थात् निवास-स्थान है इसलिये मुझे नारायण कहते हैं। सारे विश्वको मै व्याप लेता हूँ और सारा विश्व मुझमें स्थित है इसीसे मुझे वासुदेव कहते हैं। मैंने सारा विश्व व्याप लिया है अतएव मुझे विष्णु कहते हैं। पृथ्वी और स्वर्ग भी मैं हूँ और अन्तरिक्ष भी मैं हूँ इसीसे मुझे दामोदर कहते हैं। चन्द्र, सूर्य, अग्निकी किरणें मेरे बाल हैं, इसलिये मुझे केशव कहते हैं, गो यानी पृथ्वीको मै ऊपर ले आया, इसीसे मुझे गोविन्द कहते हैं, यज्ञका हविर्भाग मैं हरण करता हूँ इसीसे मुझे हरि कहते हैं। सत्वगुणी लोगोंमें मेरी गणना होती है, इसीसे मुझे सात्वत कहते हैं।" "लोहेका काला स्याह हलका फार होकर मैं जमीन जोतता हूँ और मेरा वर्ण कृष्ण है इससे मुझे कृष्ण कहते हैं।"

पाञ्चरात्र-मतमें दशावतारोंको छोड़ हयशिरा नामका और एक विष्णुका अवतार माना गया है जिसका थोड़ा सा वृत्तान्त देना आवश्यक है। दशावतार बहुधा सर्वमान्य हुए हैं। परन्तु हयग्रीव या हयशिरा अवतार पाञ्चरात्र मतमें ही है। इसका सम्बन्ध वेदसे है। ब्रह्मदेवने कमलमें बैठकर वेदोंका निर्माण किया। उन्हें मधु और कैटभ दैत्य ले गये। उस समय ब्रह्मदेवने शेषशायी नारायणकी प्रार्थना की। तब नारायणने ईशान्य समुद्रमें हयशिरा रूप धारण कर ऊँची आवाजसे वेदका उच्चारण करना प्रारम्भ किया। तब वे दानव दूसरी ओर चले गये और हयशिराने ब्रह्मदेवको वेद वापस ला दिये। आगे मधुकैटभने नारायणपर चढ़ाई की, तब नारायणने उनको मारा। इस प्रकार यह कथा है। इस रूपका तात्पर्य ध्यानमें नहीं आता। यदि इतना ध्यानमें रक्खा जाय कि पाञ्चरात्रमत वैदिक है और वेदसे इम स्वरूपका निकट सम्बन्ध है, तो मालूम हो जायगा कि वैदिक मतके समान ही इस मतका आदर क्यों है। पाञ्चरात्रका मत है कि ब्रह्मदेव अनिरुद्धकी नाभिसे पैदा हुए। परन्तु यहाँ यह बतलाने योग्य है कि अन्यत्र महाभारतसे और पौराणिक कल्पनासे लोगोंकी यह धारणा भी है कि नारायणके ही नाभि-कमलसे ब्रह्मदेव पैदा हुए।

श्वेतद्वीपसे लौट आनेपर नर-नारायण और नारदका जो संवाद हुआ है वह ३४२वें तथा ३४३वें अध्यायमें दिया है। उसकी दो बातें यहाँ अवश्य बतलानी चाहिएँ। नारायणने श्वेतद्वीपसे श्रेष्ठ तेजसञ्ज्ञक स्थान उत्पन्न किया है। वह वहाँ हमेशा तपस्या करते हैं। उनके तपका ऐसा वर्णन है कि—"वह एक पैरपर खड़े होकर हाथ ऊपर उठाकर और मुँह उत्तरकी ओर करके साङ्गवेदका उच्चारण करते हैं।" "वेदमें इस स्थानको सद्भूतोत्पादक कहते हैं।" दूसरी बात, मोक्षगामी पुरुष पहले परमाणु-रूपसे सूर्यमें मिल जाते हैं, वहाँसे निकलकर वे अनिरुद्धके रूपमें प्रवेश करते हैं, इसके अनन्तर वे सब गुणोंको छोड़ मनके रूपसे प्रद्युम्नमें प्रवेश करते हैं। वहाँसे निकलकर जीव या सङ्कर्षणमें जाते हैं। फिर वे द्विजश्रेष्ठ सत्त्व, रज और तम तीन गुणोंसे मुक्त होकर क्षेत्रज्ञ परमात्मा वासुदेवके स्वरूपमें मिल जाते हैं। पाञ्चरात्रका यह मत वेदान्तके मोक्षसे और भगवद्गीताके वर्णित ब्रह्मपदसे भी भिन्न है। अस्तु, पूर्वाध्यायमें यह बतलाया गया है कि वैकुण्ठ वासुदेव या परमात्माका नाम है। आश्चर्य इस बातका होता है कि यहाँ नारायणके अलग लोक होनेका वर्णन नहीं है। यह सच है कि वैकुण्ठकी गति नारायणके लोककी ही गति है, परन्तु वह यहाँ बतलायी नहीं गयी। यहाँ इस बातका भी उल्लेख करना आवश्यक है कि वर्त्तमान वैष्णव मतमें मोक्षकी कल्पना भी भिन्न है।

पाञ्चरात्रमतमें वेदको पूरा-पूरा महत्त्व तो दिया ही गया है परन्तु साथ ही वैदिक यज्ञ-क्रियाएँ भी उसी तरह मान्य की गयी हैं। हाँ, यज्ञका अर्थ अहिंसायुक्त वैष्णव यज्ञ है। आगेके ३४५वें अध्यायमें यह वर्णन है कि श्राद्ध-क्रिया भी यज्ञके समान ही नारायणसे निकली है, और श्राद्धमें जो तीन पिण्ड दिये जाते हैं वे ये ही हैं जो पहले पहल नारायणने वराह अवतारमें अपने दांतोंमें लगे हुए मिट्टीके पिण्ड निकालकर स्वतःको पितररूप समझकर दिये थे। इसका तात्पर्य यह है कि पिण्ड ही पितर हैं, और पितरोंको दिये हुए पिण्ड श्रीविष्णुको ही मिलते हैं।

अन्तमें यह कहा है कि—"नारायण ही वेदोंका भण्डार है, वही साङ्ख्य, वही ब्रह्म और वही यज्ञ है, तप भी वही है और तपका फल भी नारायणकी प्राप्ति है। मोक्षरूपी निवृत्ति लक्षणका धर्म भी वही है और प्रवृत्ति लक्षणका धर्म भी वही है।"

इसके बाद पाञ्चरात्रमतका एक विशिष्ट सिद्धान्त यह बताया है कि सृष्टिकी सब वस्तुएँ पांच कारणोंसे उत्पन्न होती हैं। पुरुष, प्रकृति, स्वभाव, कर्म और दैव ये पांच कारण अन्यत्र कहीं नहीं बतलाये हैं। भगवद्गीतामें भी नहीं हैं। ३४८वें अध्यायमें सात्वतधर्मका और हाल बतलाया है। कहा है कि यह निष्काम भक्तिका पन्थ है। इसीसे उसे एकान्तिक भी कहते हैं। ३४१वें अध्यायमें भगवद्गीताका जो श्लोक निराले ढङ्गसे बदला सा दीखता है वह यह है—

चतुर्विधा मम जनाः भक्ता एव हि मे श्रुतम्।
तेषामेकान्तिनः श्रेष्ठा ये चैवानन्य देवताः ॥३३॥

'ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय हैं, इस भगवद्गीताके बदले इस श्लोकमें कहा गया है कि अनन्यदेव एकान्ती मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। अर्थात् यह वाक्य पाञ्चरात्रका है। इस बातका वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है कि नारायणने यह धर्म ब्रह्मदेवको भिन्न-भिन्न सात जन्मोंमें बतलाया तथा अन्य कई लोगोंको बतलाया।

ब्रह्माके इस सातवें जन्ममें भगवान्‌के बतलाये हुए इस धर्मकी परम्परा भगवद्गीतासे भिन्न है। "नारायणने यह धर्म ब्रह्माको दिया। ब्रह्माने युगके आरम्भमें दक्षको दिया। दक्षने आदित्यको, आदित्यने विवस्वान्‌को और विवस्वान्‌ने त्रेताके आरम्भमें मनुको दिया। मनुने इक्ष्वाकुको दिया और इक्ष्वाकुने उसे लोगोंमें फैलाया। युगका क्षय होनेपर वह फिर नारायणके पास वापस जायगा।" यहाँ यह भी कहा है कि "मैंने तुझे हरिगीतामें पहले यतिका धर्म बतलाया है।" यहाँ भगवद्गीताके किसी पूर्व संस्करणका उल्लेख देख पड़ता है।

"यह धर्म नारदने व्यासको बतलाया और व्यासने उसे ऋषियोंके सन्निध तथा श्रीकृष्ण और भीमके समक्ष धर्मराजको बतलाया। यह एकान्तधर्म मैंने तुझे बतलाया है।"

देवम् परमकम् ब्रह्म श्वेतम् चन्द्राभमच्युतम् ।
यत्र चैकान्तिनो यान्ति नारायणपरायणाः ॥

एकान्ती इस प्रकार श्वेत-गतिको जाते हैं। यह धर्म गृहस्थ तथा यति दोनोंके ही लिये है।

श्वेतानाम् यतिनाम् चाह एकान्तगतिमव्ययाम् ॥८५॥
(अ० ३४८)

एवमेकम् साङ्ख्ययोगम् वेदारण्यकमेव च ।
परस्पराङ्गान्येतानि पाञ्चरात्रम् च कथ्यते ॥

इस श्लोकमें साङ्ख्य, योग और वेदान्त, तत्वज्ञानका और पाञ्चरात्रका अभेद बतलाया गया है।

३४९वें अध्यायमें अपान्तरतमाके पूर्वकालका वृत्तान्त बतलाया है। इसका नाम वैदिक साहित्यमें नहीं है। यह पूर्व कल्पमें व्यासके स्थानका अधिकारी है। इस अध्यायके अन्तमें साङ्ख्य, योग, वेद, पाञ्चरात्र तथा पाशुपत इन पांच तत्वज्ञानोंका वर्णन कर यह कहा है कि अपान्तरतमा वेद या वेदान्तका आचार्य है। इसमें ऐसा समन्वय किया गया है कि पांचों मतोंका अन्तिम ध्येय नारायण ही दिखाया है। कहा है कि पाञ्चरात्रमतसे चलनेवाले निष्काम भक्तिके बलसे श्रीहरिको ही पहुँचते हैं। इसमें पाञ्चरात्रको अलग कहा है।

अन्तके ३५०वें तथा ३५१वें अध्याय भी महत्वके हैं। साङ्ख्य और योग इस बातको मानते हैं कि प्रति पुरुषमें आत्मा भिन्न है। इसके सम्बन्धमें पाञ्चरात्रमतका जो सिद्धान्त है वह इस अध्यायमें बतलाया गया है, परन्तु वह निश्चयात्मक नहीं दिखाई देता। आरम्भमें ही हमने व्यासका यह मत बतला दिया है कि सब जगह आत्मा एक है और कपिल मतसे भिन्न है। बहुधा इसी मतके आधारपर पाञ्चरात्रमत होगा, पर हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते। कहा गया है कि "जीवकी उत्क्रान्ति, गति और अगति भी किसीको नहीं मालूम होती" और "व्यवहारतः पृथक् दिखाई देनेवाले अनेक पुरुष एक ही स्थानको जाते हैं।" पुनः चारों मतोंकी एकता करके कहा है कि—"जो जीव शान्तवृत्तिसे अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, सङ्कर्षण और वासुदेवके अधिदैव चतुष्टयका अथवा विराट्, सूत्रात्मा, अन्तर्यामी और शुद्ध ब्रह्मके अध्यात्मचतुष्टयका अथवा विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीयके अवस्था चतुष्टयका क्रमशः स्थूलसे

सूक्ष्ममें लय करता है, यह कल्याण पुरुषको पहुँचता है। योगमार्गी उसे परमात्मा कहते हैं, साङ्ख्यवाले उसे एकात्मा कहते हैं और ज्ञानमार्गी उसे केवल आत्मा कहते हैं।"

एवम् हि परमात्मानम् केचिदिच्छन्ति पण्डिताः ।
एकात्मानम् तथात्मानमपरे ज्ञानचिन्तकाः ॥
सहि नारायणो ज्ञेयः सर्वात्मा पुरुषोहिसः ॥
(अ० ३५१)

"यही निर्गुण है। यही नारायण सर्वात्मा है। एक ही कर्मात्मा या जीव कर्मके भेदसे अनेक पुरुष बनता है।" प्राचीन वैष्णव वा पाञ्चरात्र-मतका यह सार है। ऐसा जान पड़ता है कि पीछेसे प्रचलित वैष्णव सम्प्रदाय इसी पाञ्चरात्र एवम् भागवत-मतके नये संस्करण हैं।

पाशुपत-मत

यह कहना कठिन है कि सगुण उपासनाका शैवरूप अधिक प्राचीन है या वैष्णव। वैष्णव रूपपर हम विचार कर चुके हैं। अब हम पाशुपत मतपर विचार करेंगे। विष्णु और रुद्र दोनों वैदिक देवता हैं। परन्तु दशोपनिषत्में परब्रह्मसे विष्णुका तादात्म्य हुआ दीखता है। श्वेताश्वतरमें यह तादात्म्य शङ्करसे पाया जाता है। यह बात "एकोहि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः" "मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनम् तु महेश्वरम्" इन वचनोंसे स्पष्ट है। भगवद्गीतामें भी "रुद्राणाम् शङ्करश्चास्मि" वचन है। अर्थात् यह निर्विवाद है कि वेदोंसे ही शङ्करकी परमेश्वरके रूपसे उपासना शुरू हुई। यजुर्वेदमें रुद्रकी विशेष स्तुति है। यजुर्वेद यज्ञ-सम्बन्धी वेद है और यह मान्य हुआ है कि वह क्षत्रियोंका विशेष वेद है। धनुर्वेद भी यजुर्वेदका उपाङ्ग है और श्वेताश्वतर उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेदका है। अर्थात् यह स्वाभाविक है कि क्षत्रियोंमें और यजुर्वेदमें शङ्करकी विशेष उपासना हो। इसके सिवा यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि क्षत्रिय युद्धादि क्रूर कर्म किया करते थे। इसी कारण शङ्करकी भक्ति रूढ़ हो गयी और महाभारत-कालमें तत्वज्ञानमें भी पाञ्चरात्रके समान पाशुपतमतको प्रमुख स्थान मिला। अब हम महाभारतके आधारपर देखेंगे कि यह पाशुपतमत उस समय कैसा था।

पाशुपत तत्वज्ञान शान्तिपर्वके ३४९वें अध्यायमें है और उसमें कहा है कि इसके मूल आचार्य्य, शङ्कर अर्थात् उमापति ब्रह्मदेव पुत्र ही हैं। महाभारतमें विष्णुकी स्तुतिके बाद बहुधा शीघ्र ही शङ्करकी स्तुति आती है। इस नियमके अनुसार नारायणीय उपाख्यानके समान पाशुपतमतका सविस्तर वर्णन महाभारतमें शान्तिपर्वके २८०वें अध्यायमें विष्णु-स्तुतिके बीचमें इन्द्र और वृत्रका प्रसङ्गोपात हाल कहनेपर २८४वें अध्यायमें दक्षद्वारा की हुई शङ्करकी स्तुतिसे किया गया है। दक्षके यज्ञमें शङ्करको हविर्भाग न मिलनेसे पार्वती और शङ्करको क्रोध आया। शङ्करने अपने क्रोधसे वीरभद्र नामक गणको उत्पन्न किया और उसके हाथसे दक्षयज्ञका विध्वंस कराया। तब अग्निमेंसे शङ्कर प्रकट हुए और दक्षने उनकी १००८ नामोंसे स्तुति की। कथा ऐसी ही है। आगे अनुशासनपर्वमें उपमन्युने जो सहस्र नाम बतलाये हैं उनसे ये नाम भिन्न दिखलाई देते हैं। इस समय शङ्करने दक्षको 'पाशुपत' मत बतलाया है। "वह गूढ़ और अपूर्व है। वह सब वर्णोंके लिए और आश्रमोंके लिए खुला है

और तिसपर वह मोक्षदायी भी है। वर्णाश्रम-विहित धर्मोंसे वह कुछ मिलता भी है और कुछ नहीं भी मिलता। जो न्याय और नियम करनेमें प्रवीण हैं, उन्हें यह मान्य होने योग्य है और जो लोग चारों आश्रमोंके परे हो गये हैं यह उनके लायक भी है।"

इस वर्णनसे पाशुपतमतकी कुछ कल्पना होगी। यह मत शङ्करने सिखलाया है। इस मतमें पशुपति सब देवोंमें मुख्य हैं। वही सारी सृष्टिके उत्पन्नकर्त्ता हैं। इस मतमें पशुका अर्थ है, सारी सृष्टि, पशु, अर्थात् ब्रह्मासे स्थावरतक सब पदार्थ। उनकी सगुण भक्तिके लिये कार्त्तिक स्वामी, पार्वती और नन्दीश्वर भी शामिल किये जाते हैं, और उनकी पूजा करनेको कहा गया है। शङ्कर अष्टमूर्त्ति हैं। वे ये हैं—पञ्चमहाभूत, सूर्य, चन्द्र और पुरुष। परन्तु इन मूर्त्तियोंके नाम टीकाकारने दिये हैं। अनुशासनपर्वमें उपमन्युके आख्यानमें इस मतका और थोड़ा सा विकास किया गया है, परन्तु इसमें सब मतोंको एकत्र करनेकी प्रक्रिया दिखाई देती है। उदाहरणार्थ—"शङ्करने ही पहले पाञ्चभौतिक ब्रह्माण्ड पैदा करके जगदुत्पादक विधाताकी स्थापना की। पञ्चमहाभूत, बुद्धि, मन और महत्तत्व महादेवने ही पैदा किये। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और उनके शब्दादि विषय भी उन्होंने उत्पन्न किये। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रको उन्हीं महादेवसे शक्ति मिली है। भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, लोकालोक, मेरुपर्वत और अन्यत्र सब स्थानोंमें शङ्कर ही व्याप्त हैं।" "यह देव दिगम्बर, ऊर्ध्वरेता, मदनको जीतनेवाले और स्मशानमें क्रीड़ा करनेवाले हैं। उनके अर्धाङ्गमें उनकी कान्ता हैं। उन्हींसे विद्या और अविद्या निकलीं और धर्म तथा अधर्म भी निकले। शङ्करके भगलिङ्गसे निर्गुण चैतन्य और माया कैसे होती है और इनके संयोगसे सृष्टि कैसे उत्पन्न होती है इसका अनुमान भी हो सकता है। महादेव सारे जगत्के आदि कारण हैं। सारा चराचर जगत् उमा और शङ्करके दोनों देहोंसे व्याप्त है।" (अनु० अ० १४)

शङ्करके स्वरूपका उपमन्युको ऐसा दर्शन हुआ—"शुभ्र कैलासाकार नन्दिपर शुभ्र देहके देदीप्यमान महादेव बैठे हैं, उनके गलेमें जनेऊ है, उनकी अठारह भुजाएँ और तीन नेत्र हैं, हाथमें पिनाक धनुष और पाशुपत अस्त्र है तथा त्रिशूल है, त्रिशूलमें लिपटा हुआ सांप है, एक हाथमें परशुरामका दिया हुआ परशु है। दाहिनी ओर हंसपर विराजमान् ब्रह्माजी हैं और बायीं ओर गरुडपर शङ्ख-चक्र-गदाधारी नारायण विराजमान् हैं। सामने मयूरपर हाथमें शक्ति और घण्टी लिये स्कन्द बैठे हैं।" इस प्रकार शङ्करका सगुणरूप वर्णन किया गया है। ऐसा वर्णन भी है कि इन्द्रने शतरुद्रीय कहकर उनका स्तवन किया है। शङ्करके अवतारोंका महाभारतमें कहीं वर्णन नहीं है। शङ्करने जो त्रिपुरदाह किया उसका वर्णन बारबार आता है। पाशुपत तत्वज्ञानका इससे अधिक ज्ञान महाभारतमें नहीं मिलता। पाशुपतके परम स्थानका उल्लेख भी कहीं नहीं है। महाभारतमें इस बातका वर्णन नहीं पाया जाता कि पाशुपत-मतके अनुसार मुक्त जीव कौनसी गतिको कैसे जाता है। कुछ उल्लेखोंसे हम यह मान सकेंगे कि कदाचित् वह कैलाशमें शङ्करका गण होता है और वहाँसे कल्पान्तमें शङ्करके साथ मुक्त होता है। पहले अवतरणसे देख पड़ेगा कि पाशुपत-मतमें संन्याससे एक सीढ़ी बढ़कर अत्याश्रमी मान लिये गये हैं। आजकल सब मतोंमें अत्याश्रमी माने जाते हैं, परन्तु दक्षके पाशुपत-व्रतमें उनका जैसा उल्लेख है, वैसा पहले श्वेताश्वतर उपनिषद्में आता है।

तपः प्रभावादेव प्रासादाच्च ब्रह्म ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान् ।
अत्याश्रमिभ्यः परमम् पवित्रम् प्रोवाच सम्यगृषिसङ्घजुष्टम् ॥

पाशुपत-मत सब वर्णोंको समान मोक्ष देनेवाला है, इससे बहुधा नीचेके वर्णमें इस मतके अधिक अनुयायी होंगे। परन्तु हमारा अनुमान है कि पाशुपत-मत केवल द्विजोंका ही मोक्ष होना मानता है। उसका यह मत दिखाई देता है कि भिन्न-भिन्न जन्मोंके अन्तमें द्विजका जन्म मिलता है और नारायणके प्रसादसे उसे मोक्ष या परमगति प्राप्त होती है।

पाशुपत-मतमें तपका विशेष महत्व है। इस मतका थोड़ासा तपस्या सम्बन्धी वर्णन देना आवश्यक है—"कुछ लोग वायु भक्षण करते थे। कुछ लोग जलपर ही निर्वाह करते थे। कुछ लोग जपमें निमग्न रहते थे। कोई योगाभ्याससे भगवच्चिन्तन करते थे। कोई केवल धूम्रपान करते थे। कोई उष्णताका सेवन करते थे। कोई दूध पीकर रहते थे। कोई हाथोंका उपयोग न करके केवल गायोंके समान खाते-पीते थे। कोई पत्थरपर अनाज कूटकर अपनी जीविका चलाते थे। कोई चन्द्रकी किरणोंपर कोई जलके फेन-पर और कोई पीपलके फलोंपर अपना निर्वाह करते थे। कोई पानीमें पड़े रहते थे।" एक पैरपर खड़े होकर हाथ ऊपर उठाकर वेद कहना भी एक विकट तप था। कहा गया है कि श्रीकृष्णने ऐसा तप छः महीनेतक किया था। इस उपमन्यु आख्यानमें लिखा है कि शङ्कर भी तप करते हैं।

पाशुपत-मतका आरम्भ कब और किससे हुआ यह कहना कठिन है। कथानकसे तो स्पष्ट है कि भगवान् शङ्करसे ही इसका आरम्भ होगा और इसका काल सृष्टिका आदिकाल ही होगा। महाभारतमें अनुशासनपर्वके ग्यारहवें अध्यायमें सहस्र नाम-स्तोत्रके सम्बन्धमें उस गुह्यस्तवकी प्राप्तिकी परम्परा इस तरह बतलायी है—"ब्रह्मदेवने यह गुह्य पहले-पहल शक्रको बतलाया, शक्रने मृत्युको, मृत्युने रुद्रको, रुद्रने तण्डीको, तण्डीने शुक्रको, शुक्रने गौतमको, गौतमने वैवस्वत मनुको, मनुने यमको, यमने नचिकेताको, नचिकेताने मार्कण्डेयको और मार्कण्डेयने मुझ उपमन्युको बतलाया।" यह परम्परा सहस्रनाम स्तवनकी ही है। पाशुपत-मतकी नहीं तो कमसे कम स्तवनकी परम्पराका आरम्भ तो ब्रह्मासे होता है।

महाभारतसे पाशुपतमतका इतना ही पता लगता है। इस मतमें लिङ्गार्चन कबसे चला इसका पता महाभारतमें नहीं है।

स्कन्दपुराणान्तर्गत (वेङ्कटेश्वर) केदारखण्डके छठे अध्यायमें शौनकादिके इस प्रश्नपर कि शङ्करकी मूर्त्तिको छोड़कर लिङ्गकी पूजा क्यों होने लगी, लोमशने एक कथा कही है। इससे लिङ्गार्चनकी परम्परा स्थापित हो जाती है। लोमशकी कही कथामें यों वर्णन है कि दारुवनमें भगवान् शङ्कर भिक्षाके लिये अटन कर रहे थे, उस समय उनके अत्यन्त सुन्दर दिगम्बर रूपपर मोहित होकर सभी आश्रमोंसे मुनि-पत्नियाँ उनके पीछे हो लीं। आश्रमोंको खाली पाकर मुनियोंने क्रुद्ध हो शाप दिया जिससे भगवान् शङ्करके लिङ्गका पतन हो गया। पतन होकर महान् चराचर व्यापी अनाद्यन्तरूप एक लिङ्ग प्रकट हुआ जिसका पता लगानेको ऊपर ब्रह्मा गये और नीचे विष्णु गये। ऊपर नीचे पता किसीको कुछ न लगा। विष्णुजीने अपनी लाचारी स्वीकार कर ली, पर ब्रह्माने केतकी और गायकी झूठी

गवाही दी कि मैंने लिङ्गका मस्तक देख लिया है। आकाशवाणीसे केतकी गाय और ब्रह्मादि-कों शाप मिला। इस शापसे पीड़ित हो ब्रह्मादिने लिङ्गकी शरण ली और शिव-स्तुति की। शिवजीने प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि विष्णुकी प्रार्थना करो। विष्णुकी प्रार्थनापर फिर आकाश-वाणी हुई कि भगवान् विष्णु पिण्डी बनें और लिङ्गको धारण करें। जब विष्णुजीने पिण्डी बनकर लिङ्ग धारण किया तब शङ्करके प्रिय वीरभद्रने ब्रह्मादिके साथ शिवलिङ्गकी पूजा की। वह पहली लिङ्गपूजा थी। इसके अन्तमें सबने स्तुति की कि इस महत्तोमहीयान्की अर्चा सर्वत्र सर्वसुलभ नहीं है। अतः अर्चकोंके लिये सुलभ कर दिया जाय। इसपर भगवान् शङ्करने अनेक रूपोंमें अनेक लोकोंके लिये उस एक महालिङ्गसे अनेक छोटे लिङ्ग कर दिये। और, देवोंने विश्वके उपकारके लिये सर्वत्र तत्तल्लिङ्ग स्थापित कर दिये। लिङ्गेशोंसे जगत् परिपूर्ण हो गया। देवताओंने लिङ्गाराधनके लिये वीरभद्रके भी अनेक अंशावतार प्रकट किये।

"सन्ति रुद्रेण कथिताः शिवधर्म्माः सनातनाः।
वीरभद्रो यथा रुद्रस्तथान्ये गुरवः स्मृताः॥३८॥
गुरोर्जाताश्च गुरवो विख्याता भुवनत्रये।
लिङ्गस्यमहिमानन्तु नन्दीजानाति तत्त्वतः॥३९॥
तथा स्कन्दो हि भगवान् अन्येते नामधारकाः।
यथोक्ताः शिवधर्म्मा हि नन्दिना परिकीर्त्तिताः॥४०॥
शैलादेन महाभागा विचित्रा लिङ्गधारकाः।
शवस्योपरिलिङ्गम् च ध्रियते च पुरातनैः॥४१॥
लिङ्गे न सह पञ्चत्वम् लिङ्गे न सह जीवितम्।
एतेधर्म्माः सुप्रतिष्ठाः शैलादेन प्रतिष्ठिता॥४२॥
धर्म्मः पाशुपतः श्रेष्ठः स्कन्देन प्रतिपालितः॥४३॥
शुद्धा पञ्चाक्षरी विद्या प्रासादी तदनन्तरम्।
षडक्षरी तथा विद्या प्रासादस्य च दीपिका॥४४॥
स्कन्दात्तत्समनुप्राप्तम् अगस्त्येन महात्मना।
पश्चादाचार्य्यभेदेन ह्यागमा वहवोऽभवन्॥४५॥
किं नु वै वहुनोक्तेन शिव इत्यक्षरद्वयम्।
उच्चारयन्ति ये नित्यम् ते रुद्रा नात्रसंशयः॥४६॥
स ताम् मार्गम् पुरस्कृत्य ये सर्वे ते पुरान्तकाः।
वीरा माहेश्वरा ज्ञेयाः पापक्षयकरा नृणाम्॥४७॥
प्रसङ्गेनानुषङ्गेण श्रद्धया च यदृच्छया।
शिवभक्तिम् प्रकुर्वन्ति ये वै तेयान्ति सद्गतिम्॥४८॥
(केदारखण्डे सप्तमोऽध्यायः)

इन श्लोकोंसे स्पष्ट है कि "शिवधर्म्माः सनातना." और लिङ्गार्चन एक ही बात है और इस "श्रेष्ठ पाशुपतधर्म्मका" आरम्भ भगवान् शङ्करसे ही हुआ और स्कन्दने उसका प्रति-

पालन किया। स्कन्दसे अगस्त्यने पाया। अगस्त्यद्वारा आगे प्रचार हुआ। "वीरा माहेश्वरा"से यह भी स्पष्ट हुआ कि वीरमाहेश्वर या वीरशैव नाम भी इसी "सनातन शिवधर्म्म" और "श्रेष्ठ पाशुपतधर्म्म"का ही है, क्योंकि आज भी लिङ्गायत ही "लिङ्गधारकाः" हैं जो लिङ्गके साथ जीते हैं और लिङ्गके साथ ही मरते हैं, और पञ्चाक्षरी विद्यामें वे ही रत हैं, और यही आगमोंमें "वीर" शब्दकी व्युत्पत्ति बतायी है।

अड़सठवाँ अध्याय

नास्तिक सम्प्रदाय, जैन और बौद्ध

१. जैन-सम्प्रदाय

जैन और बौद्ध-साहित्यका वर्णन हम अन्यत्र कर आये हैं इसलिये यहाँ उसके विशेष वर्णन करनेका कोई प्रयोजन नहीं है। परन्तु प्रस्तुत खण्डमें हम उन सम्प्रदायोंका वर्णन कर रहे हैं जो अबतकके वर्णित साहित्यसे उत्पन्न हुए हैं। पिछले अध्यायमें महाभारत-कालमें प्रचलित पाँच आस्तिक सम्प्रदायोंकी चर्चा हुई है। जिनमेंसे तीनके अवशिष्ट रूप आज भी विद्यमान हैं। नास्तिक सम्प्रदायोंमें जैन-बौद्धमात्र रह गये हैं। यहाँ हम इन दोनों सम्प्रदायोंका संक्षेपसे वर्णन करते हैं।

जैनधर्म कितना प्राचीन है ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। जैन ग्रन्थोंके अनुसार अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर वा वर्द्धमानने गतकलि २५७४ में निर्वाण प्राप्त किया था। इसी समयसे पीछे कुछ लोग विशेषकर यूरोपियन विद्वान् जैनधर्म्मका प्रचलित होना मानते हैं। उनके अनुसार यह धर्म्म बौद्धके पीछे उसीके कुछ तत्वोंको लेकर और उनमें कुछ ब्राह्मण धर्म्मकी शैली मिलाकर खड़ा किया गया। जिस प्रकार बौद्धोंमें २४ बुद्ध हैं उसी प्रकार जैनोंमें भी २४ तीर्थङ्कर हैं। सनातनधर्म्मी भी विष्णुके चौबीस अवतार मानते हैं। सानातनिकोंकी तरह जैनोंने भी अपने ग्रन्थोंको आगम और पुराण आदिमें विभक्त किया है। पर प्रो० याकोबी आदिके आधुनिक अन्वेषणोंके अनुसार यह स्थिर किया गया है कि जैनधर्म्म, बौद्ध-धर्म्मसे पहलेका है। उदयगिरि, जूनागढ़ आदिके शिलालेखोंसे भी जैनमतकी प्राचीनता पायी जाती है। ऐसा जान पड़ता है कि यज्ञोंकी हिंसा आदि देख जो विरोधका सूत्रपात बहुत पहलेसे होता आ रहा था उसीने आगे चलकर जैनधर्म्मका रूप प्राप्त किया। भारतीय ज्योतिषमें यूनानियोंकी शैलीका प्रचार विक्रमीय संवत्से तीनसौ वर्ष पीछे हुआ। पर जैनोंके मूल-ग्रन्थ अङ्गोंमें यवन ज्योतिषका कुछ भी आभास नहीं है। जिस प्रकार सानातनिकोंकी वेद-संहितामें पञ्चवर्षात्मक युग है और कृत्तिकासे नक्षत्रोंकी गणना है उसी प्रकार जैनोंके अङ्ग ग्रन्थोंमें भी है। इससे उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है।

(१) महावीर वर्द्धमान

चौबीसवें तीर्थङ्कर महावीरका जन्म, जो जैनधर्मके अन्तिम प्रवर्त्तक थे, महापराक्रमी राजा सिद्धार्थके यहां हुआ। कहते हैं कि उनकी माता रानी त्रिशलाने एक दिन सोलह शुभ स्वप्न देखे थे जिनके प्रभावसे वह गर्भवती हो गयी थीं। जन्म होनेपर इन्द्र इन्हें ऐरावतपर बैठाकर मन्दराचलपर ले गये और वहां इनका पूजनकर माताकी गोदमें पहुँचा गये थे। इनका नाम वर्द्धमान रक्खा गया था। ये बहुत शुद्ध और शान्त प्रकृतिके थे। भोग-विलास-में इनकी रुचि न थी। जब तीस वर्षके हुए तब किसी बुद्ध या अर्हत्ने आकर इनमें ज्ञानका

सञ्चार किया था। मार्गशीर्ष कृष्ण-दशमीको ये राजपाट छोड़कर वनको चले गये और वहां बारह वर्षतक घोर तपस्या की। उसके बाद घूम-घूमकर उपदेश करने लगे। कुछ काल पीछे भोजन त्यागकर तपस्या करनेसे इन्हें कैवल्य ज्ञान प्राप्त हुआ। फिर मौन धारण करके राजगृहमें रहने लगे। वहां देवताओंने इनके रहनेके लिये रत्नजटित प्रासाद बनाया। वहां इन्द्रके भेजे देवगण आये जिन्हें उन्होंने जैनधर्म्मोपदेश किया। कहते हैं कि इनके जीवनकालमें ही मगधभरमें जैनधर्म्म फैल गया था। ७० वर्षकी अवस्थामें इनका निर्वाण हुआ।

(२) जैन-मतका सार

जैन लोग जगत्को अनादि-अनन्त मानते हैं, अतः वे सृष्टिकर्त्ता ईश्वरको नहीं मानते। जिन वा अर्हत्को ही ईश्वर मानते हैं। उन्हींकी प्रार्थना करते हैं और उन्हींके निमित्त मन्दिर आदि बनवाते हैं। जिन चौबीस हुए हैं। इनके नाम पुराणोंके प्रकरणमें दिये गये हैं। इनमेंसे महावीरस्वामीका गतकलि २५७४से पहले होना ग्रन्थोंसे पाया जाता है। शेषके विषयमें अनेक प्रकारकी अलौकिक कथाएँ हैं। ऋषभदेवकी कथा भागवत आदि पुराणोंमें भी आयी है और उनकी गणना हिन्दुओंके चौबीस अवतारोंमें है। जिस प्रकार हिन्दुओंमें काल मन्वन्तर कल्प आदिमें विभक्त है उसी प्रकार जैन लोगोंमें काल दो प्रकारका है, उत्सापणी और अवसर्पिणी। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीमें चौबीस-चौबीस जिन वा तीर्थङ्कर होते हैं। अन्यत्र जो चौबीस तीर्थङ्करोंके नाम गिनाये गये हैं वे वर्त्तमान अवसर्पिणीके हैं। जो एक बार तीर्थङ्कर हो जाते हैं वे फिर दूसरी उत्सर्पिणी वा अवसर्पिणीमें जन्म नहीं लेते। प्रत्येक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणीमें नये-नये जीव तीर्थङ्कर हुआ करते हैं। इन्हीं तीर्थङ्करोंके उपदेशोंको लेकर गणधर लोग द्वादश अङ्गोंकी रचना करते हैं। ये ही द्वादशाङ्ग जैनधर्म्मके मूल-ग्रन्थ माने जाते हैं। इनके नाम ये हैं—आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग, भगवतीसूत्र, ज्ञाताधर्म्म-कथा, उपाशकदशा, अन्तकृत्-दशा, अनुत्तरोपपातिक-दशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुत और दृष्टिवाद। इनमेंसे ग्यारह अङ्ग तो मिलते हैं पर बारहवाँ दृष्टिवाद नहीं मिलता। ये सब अङ्ग अर्द्धमागधी प्राकृतमें हैं और अधिकसे अधिक बीस-बाईस सौ वर्ष पुराने कहे जाते हैं। इन आगमों वा अङ्गोंको श्वेताम्बर जैन मानते हैं, पर दिगम्बर पूरा-पूरा नहीं मानते। उनके ग्रन्थ संस्कृतमें अलग हैं, जिनमें इन तीर्थङ्करोंकी कथाएँ हैं। और जो चौबीस पुराणके नामसे प्रसिद्ध हैं। यथार्थमें जैनधर्म्मके तत्त्वोंको सङ्ग्रह करके प्रकट करनेवाले महावीरस्वामी ही हुए हैं। उनके प्रधान शिष्य इन्द्रभूति वा गौतम थे, जिन्हें कुछ यूरोपियन विद्वानोंने भ्रमवश शाक्यमुनि गौतमबुद्ध समझा था।

जैनधर्म्ममें दो सम्प्रदाय हैं श्वेताम्बर और दिगम्बर। श्वेताम्बर ग्यारह अङ्गोंको मुख्यधर्म्म मानते हैं और दिगम्बर अपने चौबीस पुराणोंको। इसके अतिरिक्त श्वेताम्बर लोग तीर्थङ्करोंकी मूर्त्तियोंको कच्छ वा लँगोट पहनाते हैं और दिगम्बर लोग नङ्गी रखते हैं। इन बातोंके अतिरिक्त तत्त्व या सिद्धान्तोंमें कोई भेद नहीं है। अर्हन्देवने संसारको द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे अनादि बताया है। जगत्का न तो कोई कर्त्ता हर्त्ता है और न जीवोंको कोई सुख दु ख देनेवाला है। अपने-अपने कर्म्मोंके अनुसार जीव सुख दु.ख पाते हैं। जीव या आत्माका

मूलस्वभाव शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानन्दमय है, केवल पुद्गल वा कर्म्मके आवरणसे उसका मूल-स्वरूप आच्छादित हो जाता है। जिस समय यह पौद्गलिक भार हट जाता है उस समय आत्मा परमात्माकी उच्च दशाको प्राप्त होता है। जैनमत स्याद्वादके नामसे भी प्रसिद्ध है। स्याद्वादका अर्थ है अनेकान्तवाद अर्थात् एक ही पदार्थमें नित्यत्व और अनित्यत्व, सादृश्य और विरूपत्व, सत्व और असत्व, अभिलाप्यत्व और अनभिलाप्यत्व आदि परस्पर भिन्न धर्म्मोंका सापेक्ष स्वीकार। इस मतके अनुसार आकाशसे लेकर दीपक-पर्यन्त समस्त पदार्थ नित्यत्व और अनित्यत्व आदि उभय धर्म्मयुक्त हैं।

जैनपुराणोंमें हम अन्यत्र विशेष विस्तारसे जैनधर्म्मका प्रसङ्गतः वर्णन कर आये हैं।

(३) जैन-साहित्य

कहते हैं कि जैनोंके साहित्यमें जैसे पुराण हैं, जिनकी चर्चा हम कर आये हैं, उसी तरह चारों वेद भी हैं। हमने स्वयं जैनोंका वेद कहीं नहीं देखा। अतः उसकी चर्चा वेदोंके प्रसङ्गमें हम नहीं कर सके। जैनोंका मूल-साहित्य-प्राकृतमें और विशेषतः मागधीमें है जिसे वे मूल भाषा कहते हैं। श्वेताम्बर जैन-साहित्यमें बारह अङ्ग ग्रन्थ हैं। आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, भगवती, ज्ञातधर्म्मकथा, उपाशकदशा, अन्तकृतदशा, अनुत्तर-उपपातिक-दशा, प्रश्नव्याकरण, विपाक और दृष्टिवाद।

बारह उपाङ्ग ग्रन्थ हैं। औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्य्यप्रज्ञप्ति, निरयावली या कल्पिक, कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्प-चूड़ा और वृष्णिदशा।

दस प्रकीर्ण ग्रन्थ हैं। चतुःशरण, संस्तार, आतुर-प्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तण्डुल-वैतालिक, चन्दाविय्यय, देवेन्द्रस्तव, गणितविद्या, महाप्रत्याख्यान और वीरस्तव।

छः छेदसूत्र या छेदग्रन्थ हैं। निशीथ, महानिशीथ, व्यवहार, दशश्रुत-स्कन्ध, बृह-त्कल्प और पञ्चकल्प।

चार मूलसूत्र या मूलग्रन्थ हैं। उत्तराध्ययन, आवश्यक, दशवैकालिक और पिण्ड-निर्य्युक्ति।

इनके सिवा अनुयोग और नन्दद्वार इन दो सूत्रोंको मिलाकर कुल छियालीस ग्रन्थ हुए। ये ग्रन्थ मुख्य हैं। इनके सिवा अमुख्य सैकड़ों ग्रन्थ हैं।

दिगम्बर जैनसाहित्यमें अनेक ग्रन्थ वही हैं जो श्वेताम्बरोंके गिना आये हैं। उनके सिवा मूलाचार, त्रिवर्णाचार, षट्प्राभृत, अष्टप्राभृत, समयसारप्राभृत, प्राभृतसार, प्रवचन-सार, नियमसार, पञ्चास्तिकाय, रयणसार, द्वादशानुप्रेक्षा, गन्धहस्ति महाभाष्य, आप्तमी-मांसा, रत्नकरण्डश्रावकाचार, युक्त्यनुशासन, स्वयम्भूस्तोत्र, चतुर्विंशति जिनस्तुति, सर्वार्थ-सिद्धि, अकलङ्कस्तोत्र, अष्टशती, राजवार्त्तिक, जयधवला आदि सैकड़ों ग्रन्थ हैं। पुराण प्रक-रणमें हम जो कुछ विस्तारसे दिखा आये हैं, वह भी इसी साहित्यमें परिगणित हैं।

भारतकी कर्णाटकी आदि प्रान्तीय भाषाओंमें भी जैनमतका प्रचुर साहित्य है।

२. बौद्ध-सम्प्रदाय

जिस तरह जैनधर्म्म जैनियोंके अनुसार अनादिकालसे चला आ रहा है उसी तरह बौद्ध भी कहते हैं कि बौद्धमत अनादिकालसे चला आ रहा है। गौतमबुद्धका वर्णन तो कई पुराणोंमें मिलता है, जिससे अनुमान किया गया है कि उन पुराणोंकी रचना गौतमबुद्धके पीछे की है। परन्तु गौतमबुद्धके समयके सम्बन्धमें मतैक्य नहीं है। पौराणिक मतसे गत-कलि बारहसौके लगभग बुद्धका समय समझा जाता है। पच्छाहीं विद्वान् गतकलि पच्चीस-सौके लगभग मानते हैं। परन्तु बौद्धमत* कबसे चला, इस विषयमें सभी बौद्धोंमें मतैक्य है कि वह अनादि है और सिद्धार्थ वर्त्तमान कल्पके अन्तिम वा चौबीसवें बुद्ध थे।

बुद्धदेवके जीवन-चरितकी कोई कमी नहीं है। ललित-विस्तरसूत्र, बुद्धचरितकाव्य, लङ्कावतारसूत्र, अवदानकल्पलता, ये ग्रन्थ संस्कृतमें हैं। महावंश, महापरिनिव्वाणसुत्त, महावग्ग तथा अनेक जातक पालीके ग्रन्थ हैं और चीनी, बर्म्मी, तिब्बती, सिंहाली भाषाओंके प्राचीन और नवीन ग्रन्थ तो अगणित हैं। इन ग्रन्थोंके अनुसार कल्प-कल्पमें भगवान् बुद्धके अनेक अवतार हुआ करते हैं। वर्त्तमान समय बौद्धोंके अनुसार महाभद्र कल्प है। इसी कल्पमें क्रकुच्छन्द, कनकमुनि, काश्यप और शाक्यसिंहने कलिके आरम्भमें और उसके एक सहस्र, दो सहस्र और ढाई सहस्र वर्ष बीतनेपर क्रमशः जन्म लिया। इन चारोंके पहले एकसौ बीस बुद्ध हो चुके थे। उनसे भी पहले अस्सी करोड़ बुद्ध जन्म ले चुके हैं। बौद्धों-का विश्वास है कि इस अनादि संसारमें कुल कितने बुद्धोंने जन्म लिया, इस संख्याका निर्धारण असम्भव है। स्वय अन्तिम गौतमबुद्धने अपने बुद्धत्व-प्राप्तिके विकास-मार्गमें असंख्य जन्म असंख्य योनियोंमें लिये। इनके अनेक जन्मोंका विवरण भी मिलता है। सिद्धार्थ नामसे जो जन्म हुआ है, वह गौतमबुद्धका अन्तिम जन्म है।

(१) बुद्धकी जीवनी

इनका जन्म शाक्यवशी राजा शुद्धोदनकी रानी महामायाके गर्भसे नेपालकी तराईके लुम्बिनी नामक स्थानमें माघकी पूर्णिमाको हुआ था। इनके जन्मके थोड़े ही दिनों बाद इनकी माताका देहान्त हो गया था और इनका पालन इनकी विमाता महा प्रजावतीने बहुत उत्तमतापूर्वक किया था। इनका नाम गौतम अथवा सिद्धार्थ रक्खा गया था और इन्हें कौशिक विश्वामित्रने अनेक शास्त्रों, भाषाओं और कलाओं आदिकी शिक्षा दी थी। बाल्या-वस्थामें ही ये प्राय· एकान्तमें बैठकर त्रिविध दुखोंकी निवृत्तिके उपाय सोचा करते थे। युवा-वस्थामें इनका विवाह देवदहकी राजकुमारी गोपाके साथ हुआ। शुद्धोदनने उनकी उदासीन वृत्ति देखकर इनके मनोविनोदके लिये अनेक सुन्दर प्रासाद आदि बनवा दिये थे और-और सामग्री एकत्र कर दी थी। तिसपर भी एकान्तवास और चिन्ताशीलता कम न होती थी। एक वार एक दुर्बल वृद्धको, एक वार एक रोगीको और एक वार एक शवको देखकर ये

* बुद्ध शब्दका और बुद्धकी मूर्त्तिकी पूजाका प्रचार एशियामें कमसे कम उतना ही पुराना है जितना फारसीका "बुत" शब्द है जो "बुद्ध" शब्दसे बना है और जिसका अर्थ है "मूर्त्ति"।

संसारसे और भी अधिक विरक्त तथा उदासीन हो गये। पर पीछे एक संन्यासीको देखकर उन्होंने सोचा कि संसारके कष्टोंसे छुटकारा पानेका उपाय वैराग्य ही है। वे संन्यासी होनेकी चिन्ता करने लगे और अन्तमें एक दिन जब उन्हें समाचार मिला कि गोपाके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ है, तब उन्होंने संसारको त्याग देना निश्चित कर लिया। कुछ दिनों बाद आषाढ़की पूर्णिमाकी रातको अपनी स्त्रीको निद्रावस्थामें छोड़कर उन्तीस वर्षकी अवस्थामें ये घरसे निकल गये और जङ्गलमें जाकर इन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की। इसके उपरान्त इन्होंने गयाके समीप निरञ्जना नदीके किनारे उरुवि ग्राममें कुछ दिनोंतक रहकर योगसाधन तथा तपश्चर्या की और अपनी काम, क्रोध आदि वृत्तियोंका पूर्ण रूपसे नाश कर लिया। उसी अवसरपर घरसे निकलनेके प्रायः सात वर्ष बाद एक दिन आषाढ़की पूर्णिमाकी रातको महाबोधि वृक्षके नीचे इनको उद्बोधन हुआ और इन्होंने दिव्यज्ञान प्राप्त किया। उसी दिनसे ये गौतमबुद्ध या बुद्ध-देव कहलाये। इसके उपरान्त ये धर्म्म-प्रचार करनेके लिए काशी आये। इनके उपदेश सुन-कर धीरे-धीरे बहुतसे लोग इनके शिष्य और अनुयायी होने लगे और थोड़े ही दिनोंमें अनेक राजा, राजकुमार और दूसरे प्रतिष्ठित पुरुष इनके अनुयायी बन गये जिनमें मगधके राजा बिम्बिसार भी थे। उस समयतक प्रायः सारे उत्तर भारतमें उनकी ख्याति हो चुकी थी। कई बार महाराज शुद्धोदनने इनको देखनेके लिये कपिलवस्तुमें बुलवाना चाहा, पर जो लोग इनको बुलानेके लिये जाते थे, वे इनके उपदेश सुनकर विरक्त हो जाते थे और इन्हींके साथ रहने लगते थे। अन्तमें ये एक बार स्वयं कपिलवस्तु गये थे, जहाँ इनके पिता अपने बन्धु-बान्धवों सहित इनके दर्शनोंके लिये आये थे। उस समयतक शुद्धोदनको आशा थी कि सिद्धार्थ गौतम कहने सुननेसे फिर गृहस्थ आश्रममें आ जायँगे और राजपद ग्रहण कर लेंगे। पर इन्होंने अपने पुत्र राहुलको भी अपने उपदेशोंसे मुग्ध करके अपना अनुयायी बना लिया। इसके पीछे कुछ दिनोंके उपरान्त लिच्छिवि महाराजका निमन्त्रण पाकर ये वैशाली गये। वहाँसे चलकर ये सङ्काश्य, श्रावस्ती, कोशाम्बी, राजगृह, पाटलिपुत्र, कुशीनगर, आदि अनेक स्थानोंमें भ्रमण करते फिरते थे, और सभी जगह हजारों आदमी इनके उपदेशसे संसार त्यागते थे। इनके अनेक शिष्य भी चारों ओर घूम-घूमकर धर्मप्रचार किया करते थे। इनके धर्म्मका इनके जीवन-कालमें ही बहुत अधिक प्रचार हो गया था। इसका कारण यह था कि इनके समयमें कर्म्मकाण्डका जोर बहुत बढ़ चुका था और यज्ञों आदिमें पशुओंकी हत्या बहुत अधिक होने लगी थी। इन्होंने इस निरर्थक हत्याको रोककर लोगोंको जीवमात्रपर दया करनेका उपदेश दिया था। इन्होंने प्रायः ४४ वर्षतक विहार तथा काशीके आस-पासके प्रान्तोंमें धर्म्मप्रचार किया था। अन्तमें कुशीनगरके पासके वनमें एक शालवृक्षके नीचे वृद्धावस्थामें इनका शरीरान्त या परिनिर्वाण हुआ था। पीछेसे इनके समस्त उपदेशोंका सङ्ग्रह हुआ जो तीन भागोंमें होनेके कारण त्रिपिटक कहलाया। इनका दार्शनिक सिद्धान्त ग्रहावाद या सर्वास्तिवाद था। ये संसारको कार्यकारणके अविच्छिन्न नियममें बद्ध और अनादि मानते थे, तथा छः इन्द्रियों और अष्टाङ्ग मार्गको ज्ञान तथा मोक्षका साधन समझते थे।

सानातनिक हिन्दू इन्हें भगवान् विष्णुका नवां अवतार मानते हैं। नित्यके सङ्कल्पमें प्रत्येक हिन्दू भगवान् बुद्धका वर्त्तमान अवतारकी भांति स्मरण करता है। बोधगयामें इनकी

मूर्त्ति है जिसपर सानातनिकोंका अधिकार है और साथ ही बौद्धोंका भी दावा है। सानातनिकोंका विश्वास है कि भगवान् विष्णुने यह नवाँ अवतार असुरोंको माया-मोहमें फँसानेके लिये लिया और वेद प्रतिपादित यज्ञ-विधिकी निन्दा की और अहिंसा और प्रव्रज्याका प्रचार किया कि असुर लोग, जो उस समय बहुत प्रबल थे, शान्त रहें और संसारसे विरत रहें। विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत, अग्निपुराण, वायुपुराण, स्कन्दपुराण आदिमें, एवं पीछेके ग्रन्थोंमें भी यही भाव दिये हैं। श्रीवल्लभाचार्य्यजीने ब्रह्मसूत्रोंके द्वितीय पादके छब्बीसवें सूत्रकी व्याख्यामें एक आख्यायिका दी है जो सानातनिकोंके उपर्य्युक्त विचारोंकी पोषिका है।

(२) बुद्धका मत

भगवान् बुद्धने "आर्य्य-सत्य" और "द्वादशनिदान" या "प्रतीत्य-समुत्पाद"के अन्तर्गत अपने सिद्धान्तकी "व्याख्या" की है। आर्य्य-सत्यके अन्तर्गत ही प्रतिपद या मार्ग है। इस नवीन मार्गका नाम, जिसका साक्षात्कार गौतमको हुआ, "मध्यमा प्रतिपदा" है। इस मध्य-मार्गकी व्याख्या भगवान् बुद्धने इस प्रकार की है—"हे भिक्षुओ! परिव्राजकको इन दो अन्तोंका सेवन न करना चाहिए। वे दोनों अन्त कौन हैं? पहला तो काम या विषयमें सुखके लिये अनुयोग करना। यह अन्त अत्यन्त दीन, ग्राम्य, अनार्य्य और अनर्थ-सहत है। दूसरा है, शरीरको क्लेश देकर दुःख उठाना। यह भी अनार्य्य और अनर्थ-संहत है। हे भिक्षुओ! तथागतने (मैंने) इन दोनों अन्तोंका त्याग कर मध्यमा प्रतिपदाको (मध्यम-मार्गको) जाना है।"

मार्ग आर्य्य-सत्योंमें चौथा है। चार आर्य्य सत्य ये हैं—दुःख, दुःख-समुदाय, दुःख निरोध और मार्ग। पहली बात तो यह है कि दुःख है। फिर इस दुःखका कारण भी है। कारण है तृष्णा, यह तृष्णा इस प्रकार उत्पन्न होती है। मूल है अविद्या, अविद्यासे संस्कार, संस्कारसे विज्ञान, विज्ञानसे नामरूप, नामरूपसे षडायतन (इन्द्रियाँ और मन) षडायतनसे स्पर्श, स्पर्शसे वेदना, वेदनासे तृष्णा, तृष्णासे भव, भवसे जाति या जन्म, जाति या जन्मसे जरामरण इत्यादि। निदानोंद्वारा इस प्रकार कारण मालूम हो जानेपर उसका निरोध आवश्यक है, यह जानना चाहिए। अन्तमें उस निरोधका जो मार्ग है, उसे भी जानना चाहिए। इसी मार्गको निरोधगामिनी प्रतिपदा कहते हैं। यह मार्ग अष्टाङ्ग है। आठ अङ्ग ये हैं—सम्यक्दृष्टि, सम्यक् सङ्कल्प, सम्यक्-वाचा, सम्यक्कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्-स्मृति और सम्यक्समाधि।

बौद्धमतके अनुसार कोई पदार्थ नित्य नहीं सब क्षणिक हैं। नित्य चैतन्य कोई पदार्थ नहीं। सब विज्ञान मात्र है। बौद्ध अमर आत्मा नहीं मानते, पर कर्मवादपर उनका बहुत जोर है। कर्मके शेष रहनेसे ही फिर जन्मके बन्धनमें पड़ना पड़ता है। यहाँपर शङ्का हो सकती है कि जब शरीरके उपरान्त आत्मा रहती ही नहीं, तब पुनर्जन्म किसका होता है? बौद्ध आचार्य इसका इस प्रकार समाधान करते हैं। "मृत्युके उपरान्त उसके सब खण्ड, आत्मा इत्यादि सब नष्ट हो जाते हैं। पर उसके कर्मके कारण फिर उन खण्डोंके स्थानपर नये-नये खण्ड उत्पन्न हो जाते हैं और एक नया जीव उत्पन्न हो जाता है। इस नये और पुराने जीवमें केवल कर्मसम्बन्ध-सूत्र रहता है। इसीसे दोनोंको एक कहा करते हैं।

बौद्ध धर्म्मकी दो प्रधान शाखाएँ हैं। हीनयान और महायान। हीनयान बौद्ध मतका विशुद्ध और पुराना रूप है। महायान उसका अधिक विस्तृत रूप है, जिसके अन्तर्गत बहु-देवोपासना और तन्त्रकी क्रियाएँतक हैं। हीनयानका प्रचार बर्म्मा, स्याम और सिंहलमें है, और महायानका तिब्बत, मङ्गोलिया, चीन, जापान, मञ्चूरिया आदिमें है। इस तरह बौद्ध मतके माननेवाले अब भी पृथ्वीपर सबसे अधिक हैं। हिन्दू नास्तिक धर्म्मोंमेंसे ही एक धर्म्म या सम्प्रदाय बौद्ध मत है। अतः यह कहना भी ठीक है कि संसारमें हिन्दू धर्म्मका आस्तिक अङ्ग माननेवाले सबसे अधिक भारतवर्षमें हैं और नास्तिक अङ्ग माननेवाले जम्बू-द्वीपके और देशोंमें फैले हुए हैं। इस प्रकार अब भी जम्बूद्वीप या एशियाका अधिकांश हिन्दू-मतानुयायी है और पृथ्वीपर आज भी हिन्दुओंकी ही आबादी सबसे ज्यादा है, जिसमें आस्तिक कम हैं और नास्तिक दूनेके लगभग हैं।

(३) बौद्ध-साहित्य

बौद्ध-साहित्य बहुत विशाल है। इसका मूल ग्रन्थ "त्रिपिटक" कहलाता है। पिटक तीन हैं, **विनय, सुत्त और अभिधम्म।**

विनयपिटकमें सुत्तविभङ्ग, महावग्ग, चुल्लवग्ग और परिवार ये विभाग हैं।

सुत्तपिटकमें दीघ-निकाय, मज्झिम-निकाय, संयुत्त-निकाय, अङ्गुत्तर-निकाय और खुद्दक-निकाय, ये उपदेशोंके सङ्ग्रह हैं। इनमें बड़े छोटे सवा दो हजारसे अधिक व्याख्यान और उपदेश हैं। इनके सिवा इसी पिटकमें खुद्दक पाठ, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, सुत्त-निपात, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा, जातक, निद्देस, पटिसंभिदामग्ग, अपदान, बुद्धवंस, चरियापिटक, ये पन्द्रह ग्रन्थ भी सुत्तपिटकके अन्तर्गत हैं।

अभिधम्मपिटकमें धम्मसङ्गणि, विभङ्ग, कथावत्थु, युगल-पञ्ञत्ति, धातुकथा, यमक और पट्टान ये सात विभाग हैं।

त्रिपिटक सबसे प्राचीन हैं। उसके पीछेके बौद्ध-ग्रन्थ पाली हीमें मुख्यतया मिलिंद-पञ्ह, निदान-कथा, नेत्ति, दीपवंश, विशुद्धि-मग्ग, समन्तपासादिका, महावंश, बोधिवंश, अभिधम्मत्थसङ्ग्रह, दाठावंश, थूपवंश, बुद्धालङ्कार, निदान-कथा, योगावाचार, महालङ्कार-वत्थु, और इनके सिवा विशेषतः सुत्तपिटकके विविध निकायोंकी टीकाएँ, एवं विभिन्न बौद्ध-सम्प्रदायोंके ग्रन्थ भी गिने जाते हैं। महासंघिक, महीशासक, लोकोत्तरवादी, सर्वास्तिवादी, मूलसर्वास्तिवादी, धर्म्मगुप्तानुयायी और सम्मितीय इन सात हीनयान-उपसम्प्रदायोंके विशिष्ट ग्रन्थ अलग हैं। महायान-सम्प्रदायके भी अनेक भेद हैं। इसका भी संस्कृत और पाली-साहित्य बहुत विस्तृत है। महायानसूत्र, महावस्तु और तदन्तर्गत दशभूमक वा माध्यमिक-सूत्र, बोधिसत्वभूमि (योगाचार), सुखावतीव्यूह, अमितायुर्ध्यानसूत्र, प्रज्ञापारमितासूत्र, प्रज्ञाप्रदीप, महायानसूत्रालङ्कार, उत्तरतन्त्र, अभिधर्म्मकोश, परमार्थसप्तति, उदानवर्ग, आदि विशेष ग्रन्थ संस्कृतमें हैं।

इनके सिवा बौद्धोंमें शाक्त-सम्प्रदाय भी है। गुह्यसमाज, सुवर्ण प्रभासोत्तमराज, महावैरोचनाभिसम्बोधि, सुसिद्धिकार-महातन्त्र, महाकाल तन्त्र, श्री कालचक्र-तन्त्र, हेवज्र-तन्त्र,

तथा (१) चण्डमहारोषण, (२) हेरुक, (३) वज्रभैरव, (४) मञ्जुश्रीमूल, (५) मूल-डामर, ये पांच तन्त्र, उष्णीषविजय आदि अनेक धारणियाँ, अनेक स्तोत्र, स्तवादि शाक्त बौद्धोंके संस्कृत ग्रन्थ हैं। इनके सिवा संस्कृत, पाली और प्राकृतके असंख्य ग्रन्थ पुस्तका-लयोंमें बचे बचाये अबतक पड़े हैं।

उनहत्तरवाँ अध्याय

वेदान्ताचार्य्योंकी परपम्रा और स्मार्त्त मत

महाभारतकालके पीछे आजतक जितने सम्प्रदाय चले सबने अपनी बुनियाद वेदान्त-पर ही रक्खी। प्रत्येक सम्प्रदायके अगुआने अपने विशेष ढङ्गपर ब्रह्मसूत्रोंकी व्याख्या की और उसी व्याख्याको सामने रखकर अपने सिद्धान्तोंका प्रचार किया। वादको देशी भाषा द्वारा प्रचारक-पन्थोंने भी अपना आधार वेदान्तके सिद्धान्तोंको ही रक्खा, यद्यपि किसीने भाषामें भाष्य करनेका विचार नहीं किया। परन्तु इस कथनसे यह न समझना चाहिये कि ये सम्प्रदाय वादरायण सूत्रोंके निर्माणके बाद ही प्रकट हुए। वल्कि वास्तविक वात यह है कि वादरायण व्यासके पहले अनेक आचार्य्य वेदान्तके सम्बन्धमें अनेक मतोंके माननेवाले थे और वादरायणने तो उन सबके मतोंका अपने सूत्रोंमें सङ्कलन और समन्वय किया है। इन आचार्य्योंके नाम जगह-जगह सूत्रोंमें आये हैं। वादरि, कार्ष्णाजिनि, आत्रेय, औडुलोमि, आश्मरथ्य, काशकृत्स्न, जैमिनि, काश्यप और वादरायणके नाम सूत्रोंमें आये हैं। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्यजीके अनुसार कृष्णद्वैपायन और वादरायण दोनों व्यासके, परन्तु भिन्न व्यक्तियोंके, नाम हैं, यद्यपि साधारणतया दोनों एक समझे जाते हैं। परन्तु वादरायणके ही ब्रह्मसूत्रोंमें जिस वादरायणका हवाला है, वह अवश्य ही कोई प्राचीन वादरायण हैं जो ब्रह्म-सूत्रकारके वहुत पहलेके माननीय आचार्य्य हैं। दोनों वादरायण व्यास हो सकते हैं। कमसे कम सूत्रकार वादरायणका व्यास होना तो निर्विवाद है।

ब्रह्मसूत्रोंकी रचनाके पहलेके वेदान्तके प्राचीन आचार्योंका उल्लेख जो ब्रह्मसूत्रोंमें हुआ है उनमेंसे कुछका वर्णन हम यहां देते हैं।

आचार्य वादरि

आचार्य वादरिके मतका उल्लेख ब्रह्मसूत्र (१।२।३०; ३।१।११, ४।३।७; ४।४।१०) और मीमांसासूत्र (३।१।३) (६।१।२७) (८।३।६) (९।२।३०) दोनोंमें पाया जाता है। इससे ऐसा अनुमान होता है कि ये ब्रह्मसूत्रकार और मीमांसा-सूत्रकारसे प्राचीन थे और इनके मतका देशमें काफी प्रभाव था। वादरायणने अपने मतके समर्थनमें और मीमांसासूत्रकार जैमिनिने पूर्वपक्षके रूपमें खण्डनके लिये इनके मतको उद्धृत किया है। इससे मालूम होता है, ये मीमांसक आचार्य थे। यत्र-तत्र इनके मतका उल्लेख पाया जाता है, जिससे निम्नलिखित वातें मालूम होती हैं—

(१) आचार्य वादरिके मतानुसार यद्यपि परमेश्वर महान् हैं, फिर भी प्रादेशमात्र हृदयद्वारा अर्थात् मनद्वारा उनका स्मरण हो सकता है।

(२) इनके मतानुसार गतिश्रुतिवलसे कार्यब्रह्म अर्थात् सगुण ब्रह्मकी ही प्राप्ति होती है और अमानव पुरुष ही ब्रह्मकी प्राप्ति करा सकते हैं।

(३) इनके मतमें वेदज्ञानी पुरुषके शरीरादि नहीं होते, मुक्त पुरुष निरिन्द्रिय और शरीरविहीन होते हैं ।

(४) इनके मतमें वैदिक कर्म करनेका सबको अधिकार है ।

आचार्य-कार्ष्णाजिनि

आचार्य कार्ष्णाजिनिके नामका उल्लेख भी ब्रह्मसूत्र (३ । १ । ९) और मीमांसासूत्र (४ । ३ । १७; ६ । ७ । ३५) दोनोंमें हुआ है । ये भी व्यासदेव और जैमिनिके पूर्ववर्ती आचार्य मालूम होते हैं । इनके मतका भी उल्लेख व्यासदेवने अपने मतके समर्थनमें और जैमिनिने उनका खण्डन करनेके लिये ही किया है । इससे मालूम होता है कि ये भी वेदान्तके ही आचार्य थे । ये प्रायः बादरिके मतके ही समर्थक प्रतीत होते हैं ।

आचार्य आत्रेय

आचार्य आत्रेयके मतका उल्लेख करके (ब्र० सू० ३ । ४ । ४४) ब्रह्मसूत्रकारने उसका खण्डन किया है । उनका मत है कि यजमानको ही यज्ञके अङ्गभूत उपासनाका फल प्राप्त होता है, ऋत्विक्‌को नहीं हो सकता । अतएव सारी उपासनाएँ स्वयं यजमानको करनी चाहिये, पुरोहितके द्वारा नहीं करवानी चाहिये । इसका खण्डन व्यासदेवने आचार्य औडुलोमिके मतको प्रमाणस्वरूप उद्धृत करके किया है । मीमांसादर्शनमें जैमिनिने वेदान्तके आचार्य कार्ष्णाजिनिके मतका खण्डन करनेके लिये सिद्धान्तरूपसे आचार्य आत्रेयके मतका उल्लेख किया है । फिर बादरिके वैदिक कर्ममें सर्वाधिकारके मतका खण्डन करनेके लिये भी जैमिनिने आत्रेयके मतका प्रमाण दिया है । इससे मालूम होता है, ये पूर्वमीमांसाके आचार्य थे । ये भी सम्भवतः व्यासदेवके पहले हुए थे ।

आचार्य औडुलोमि

आचार्य औडुलोमिका नाम केवल वेदान्तसूत्र (१ । ४ । २१; ३ । ४ । ४५; ४ । ४ । ६)में ही मिलता है । मीमांसासूत्रमें नहीं मिलता । ये भी बादरायणके पूर्ववर्ती ही मालूम होते हैं । ये वेदान्तके आचार्य थे और भेदाभेदवादी थे । इनका कहना है कि संसार-दशामें जीव और ब्रह्ममें भेद है, मुक्ति होनेपर अभेद है । मीमांसक आचार्य आत्रेयके मतका खण्डन करनेके लिये बादरायणने इनके मतका उल्लेख किया है और इनका मत उन्हें मान्य है, यह भी स्वीकार किया है । (४ । ४ । ५१) ब्रह्मसूत्रमें जैमिनिका यह मत प्रकट किया गया है कि मुक्त व्यक्ति ब्रह्मस्वरूपताको प्राप्त होता है । वह निष्पाप, सर्वज्ञ और ऐश्वर्यादिका अधिकारी हो जाता है । इसके विरुद्ध औडुलोमिका यह मत प्रकट किया गया है कि चैतन्य-ही आत्माका स्वरूप है और इस कारण वह मुक्तिमें भी चैतन्यमात्रको ही प्राप्त होता है । सत्यसङ्कल्पत्व, सर्वज्ञत्व और सर्वेश्वरत्व आदि धर्म उसमें नहीं रहते ।

आचार्य आश्मरथ्य

आचार्य आश्मरथ्यके मतका उल्लेख मीमांसादर्शनमें करके जैमिनिने उसका खण्डन किया है । अतएव इसमें सन्देह नहीं कि ये वेदान्तके आचार्य थे । वेदान्तसूत्रमें (१ । २ ।

२१; १।४।२०) जो इनके मतका उल्लेख आया है, उससे आचार्य शङ्कर तथा भामती-कार वाचस्पति मिश्रने इन्हें विशिष्टाद्वैतवादी सिद्ध किया है। ये भी वेदव्यास और जैमिनि-से पहले हुए थे। इनका कहना है कि परमेश्वर अनन्त होनेपर भी उपासकके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये प्रादेशमात्रस्थानमें आविर्भूत होते हैं। इनके मतमें विज्ञानात्मा और परमात्मामें परस्पर भेदाभेदसम्बन्ध है। आश्मरथ्यके इस भेदाभेदवादकी ही आगे चलकर यादवप्रकाशके द्वारा पुष्टि हुई, ऐसा कहा जाता है।

आचार्य काशकृत्स्न

आचार्य काशकृत्स्नका उल्लेख जैमिनिने अपने पूर्वमीमांसादर्शनमें नहीं किया है। बादरायणने इनके मतका समर्थन किया है। ये अद्वैतवादी थे। ये भी बादरायणसे पहले ही हुए थे।

आचार्य जैमिनि

आचार्य जैमिनिके मतका ब्रह्मसूत्रमें बहुत अधिक उल्लेख हुआ है। ये पूर्व मीमांसा-दर्शनके रचयिता थे। मीमांसादर्शनके सिद्धान्तोंका ब्रह्मसूत्रमें और ब्रह्मसूत्रके सिद्धान्तोंका मीमांसादर्शनमें खण्डन करनेकी चेष्टा की गयी है। मीमांसादर्शनने कहीं-कहींपर ब्रह्मसूत्रके कई सिद्धान्तोंको ग्रहण भी किया है। इन सब बातोंसे ऐसा मालूम होता है कि जैमिनि बाद-रायणके समकालीन ही थे। पुराणोंमें ऐसा वर्णन मिलता है कि ये वेदव्यासके शिष्य थे। इन्होंने वेदव्याससे सामवेद और महाभारतकी शिक्षा पायी थी। मीमांसादर्शनके अतिरिक्त इन्होंने भारतसंहिताकी, जिसे जैमिनिभारत भी कहते हैं, रचना भी की थी। इन्होंने द्रोण-पुत्रोंसे मार्कण्डेयपुराण सुना था। इनके पुत्रका नाम सुमन्तु और पौत्रका नाम सत्वान् था। इन तीनों पिता पुत्रोंने वेदकी एक-एक संहिता बनायी है, जिनका अध्ययन हिरण्यनाभ, पैष्पञ्जि और अवन्त्य नामके तीन शिष्योंने किया था।

आचार्य काश्यप

प्राचीन-कालमें काश्यपका भी एक सूत्रग्रन्थ था। सूत्रकार शाण्डिल्यने अपने सूत्र-ग्रन्थमें काश्यप तथा बादरायणके मतका उल्लेख करके अपना सिद्धान्त स्थापित किया है। उनके मतमें काश्यप भेदवादी और बादरायण अभेदवादी थे।

इनके अतिरिक्त असित, देवल, गर्ग, जैगीषव्य, पराशर और भृगु आदि ऋषियोंके नाम भी प्राचीन वेदान्ताचार्योंमें पाये जाते हैं।

भगवान् वेदव्यास

वेदान्तदर्शनके प्रणेता भगवान् वेदव्यास हैं। यही माठर, द्वैपायन, पाराशर्य, कानीन, बादरायण, व्यास, कृष्णद्वैपायन, सत्यभारत, पाराशरि, सात्यवत, सत्यवतीसुत, सत्यरत आदि नामोंसे परिचित हैं। इन्होंने ही वेदोंका विभाग किया था और महाभारत, अष्टादश महा-पुराण और अध्यात्म रामायणकी रचना की थी। योगवाशिष्ठ रामायण भी इन्हींकी रचना कही जाती है। महाभारतकालमें इनके वर्त्तमान रहनेकी बात महाभारतसे मालूम होती है। इससे यह कहा जा सकता है कि ये प्रायः ईसासे तीन हजार वर्ष पूर्व जीवित थे। इनका

जीवन-वृत्तान्त कुछ महाभारतमें मिलता है। उससे पता चलता है कि इनका जन्म मत्स्यगन्धा या सत्यवती नाम्नी कन्याके गर्भसे हुआ था। इनके पिता पराशर मुनि थे। इनका जन्म यमुनागर्भस्थ एक द्वीपमें हुआ था और इनका रङ्ग श्याम था। इसीसे इनका नाम कृष्णद्वैपायन हुआ। ये पैदा होते ही माताकी आज्ञासे तपस्या करने चले गये और जाते समय यह कह गये कि जब तुम्हें मेरी कोई ज़रूरत हो तो मुझे स्मरण करना, मैं स्मरण करते ही तुम्हारी सेवामें उपस्थित हो जाऊँगा।

कालक्रमसे सत्यवतीका विवाह चन्द्रवंशीय राजा शान्तनुसे हुआ, जिस विवाहको देवव्रत भीष्मपितामहने महान् त्याग करके सम्पन्न कराया था। जब शान्तनुपुत्र विचित्रवीर्यका देहान्त हो गया और कोई राज्याधिकारी न रहा तब सत्यवतीने व्यासदेवको स्मरण किया और योगबलसे इन्होंने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरको जन्म दिया। महामुनि शुकदेवजी भी इन्हींके पुत्र थे।

इन्होंने जब देखा कि क्रमशः धर्मका ह्रास होता जा रहा है तब इन्होंने धर्मकी रक्षाके लिये वेदका व्यास अर्थात् विभाग किया और इसीसे इनका नाम वेदव्यास पड़ा। इन्होंने वेदोंका विभाग करके अपने शिष्य सुमन्तु, जैमिनि, पैल और वैशम्पायन तथा पुत्र शुकदेवको अध्ययन कराया और महाभारतका उपदेश दिया। व्यासदेवने जो महान् कार्य किया और जैसी अलौकिक प्रतिभा दिखलायी, उसे देखते हुए कहना पड़ेगा कि इनकी बराबरीके दूसरे कोई आचार्य्य न तो भारतमें हुए और न अन्यत्र। इन्हें भगवान्‌का अवतार माना जाता है।

कुछ लोगोंका मत है कि वेदका विभाग करनेवालोंकी "व्यास" एक उपाधि है। प्रत्येक कल्पमें धर्मका ह्रास होते देखकर भगवान् ब्रह्माने व्यासरूपमें अवतीर्ण होकर वेदोंकी रक्षा की। कूर्म, वायु और विष्णुपुराणमें अट्ठाईस व्यासोंका उल्लेख मिलता है। उनके नाम हैं—स्वयम्भू, प्रजापति या मनु, उशना, बृहस्पति, सवितृ, मृत्यु या यम, इन्द्र, वशिष्ठ, सारस्वत, त्रिधामन्, ऋषभ या त्रिवृपन्, सुतेजा या भारद्वाज, आन्तरिक्ष या धर्म, सप्तवन् या सुचक्षुः, त्रय्यारुणि, धनञ्जय, कृतञ्जय, ऋतञ्जय, भरद्वाज, गौतम, उत्तम, वाचश्रवस या वेण या नारायण सोमसुख्यायन या तृणविन्दु, ऋक्ष या वाल्मीकि, शक्ति, पराशर, जातुकर्ण और कृष्णद्वैपायन।

ब्रह्मसूत्रोंके बाद और शङ्करसे पहले *

ब्रह्मसूत्रोंकी रचनाके बाद और स्वामी शङ्कराचार्य्यसे पूर्व भी वेदान्तके आचार्य्योंकी परम्परा अक्षुण्णसी रही है। शङ्करने अपने भाष्यमें उनकी चर्चा की है और दार्शनिक-साहित्यमें उनका जगह-जगह उल्लेख है।

भर्तृप्रपञ्च, ब्रह्मनन्दी, टङ्क, गुहदेव, भारुचि, कपर्दी, उपवर्ष, बोधायन, भर्तृहरि, सुन्दरपाण्ड्य, दमिडाचार्य, ब्रह्मदत्त आदि वेदान्ताचार्योंके नाम इनमें मिलते हैं। इनमेंसे किसीने गीताके ऊपर भाष्यरचना की थी और किसीने ब्रह्मसूत्र और गीता दोनोंपर ही।

---

* महामहोपाध्याय पण्डित श्री गोपीनाथजी कविराजके एक लेखसे सङ्कलित।

उपनिषदोंपर भी किसी-किसीकी व्याख्या प्रचलित थी। परन्तु इन सबका ठीक-ठीक निर्देश करनेके लिये इस समय कोई उपाय नहीं है।

भर्त्तृप्रपञ्च

भर्त्तृप्रपञ्चने कठोपनिषद् और बृहदारण्यकपर भाष्यरचना की थी। सुरेश्वराचार्य और आनन्दगिरिके समयमें भी भर्त्तृप्रपञ्चका ग्रन्थ उपलब्ध था, क्योंकि इन लोगोंने जिस प्रकार उनके मतका उपन्यास तथा प्रपञ्चन किया है, वैसा ग्रन्थके साक्षात् समालोचनके विना हो नहीं सकता। भर्त्तृप्रपञ्चका सिद्धान्त ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद था। यद्यपि शङ्कराचार्यने बृहदारण्यकभाष्यमें कहीं-कहींपर 'औपनिषदम्मन्य' कहकर उनका परिहास किया है, तथापि यह बात अवश्य ही माननी होगी कि उस समय दार्शनिक क्षेत्रमें उनका पाण्डित्य तथा प्रभाव कुछ कम नहीं था। इसी कारण शङ्करके साक्षात् शिष्य अपने वार्तिकमें 'सम्प्रदायवित्' तथा 'ब्रह्मवादी' कहकर उनकी प्रशंसा करनेके लिए बाध्य हुए थे। दार्शनिक दृष्टिसे इनका मत द्वैताद्वैत, भेदाभेद, अनेकान्त आदि अनेक नामोंसे प्रसिद्ध था। उनका मत है कि परमार्थ एक भी है और नाना भी है—ब्रह्मरूपमें एक है और जगद्रूपमें नाना है। इसीलिये उन्होंने एकान्ततः कर्म अथवा ज्ञानका स्वीकार न कर दोनोंकी ही सार्थकता मानी है। ज्ञान और कर्मका समुच्चय माननेका यही मुख्य उद्देश्य है। भर्त्तृप्रपञ्चकी दृष्टिसे जीव नाना और परमात्माका एकदेशमात्र है,—जैसे ऊपर देश पृथिवीके एक देशमें आश्रित है। विद्या, कर्म तथा पूर्वकर्मसंस्कार जीवमें विद्यमान रहते हैं, अविद्या परमात्मासे अभिव्यक्त होकर जीवमें विकार उत्पन्न करती हुई अनात्मस्वरूप अन्तःकरणमें धर्मभावसे वर्त्तमान रहती है। वे कहते हैं कि जीव परम मोक्ष लाभ करनेके पहले हिरण्यगर्भभावको प्राप्त होते हैं। हिरण्यगर्भत्व मुक्तावस्था नहीं है, किन्तु मोक्षकी पूर्वकालीन अन्तराल अवस्थामात्र है। इस अवस्थामें परमात्माका आभिमुख्य सर्वदाके लिये वर्त्तमान रहता है। काम, वासना आदि जीवके धर्म हैं। जीवका नानात्व औपाधिक नहीं है, परन्तु धर्म तथा दृष्टिके भेदसे है। ब्रह्म एक होनेपर भी समुद्रतरङ्गके समान द्वैताद्वैत है। जैसे अद्वैतभाव सत्य है, वैसे ही द्वैत भी सत्य है। द्वैतभावकी सत्तासे कर्मकाण्डका प्रामाण्य स्वीकार करना आवश्यक होता है। कार्य-कारणभाव कल्पित नहीं है, किन्तु सत्य है। मुमुक्षु तथा मुक्तपुरुषका आत्मदर्शन ठीक एक प्रकारका नहा है। भर्त्तृप्रपञ्चने प्रथम दर्शनको परिच्छिन्न कर्मात्मदर्शन तथा द्वितीय प्रकारके दर्शनको अपरिच्छिन्न परमात्मदर्शन कहा है। परिच्छेदक विज्ञान ही अविद्या है। 'अहमेव इदं सर्वम्' इत्याकारक अर्थबोध परमात्मामें नित्य ही है, परन्तु तिरस्कृतविज्ञान सांसारिक आत्मामें इस प्रकारके बोधका अस्तित्व अनित्य है। अविद्याके सम्बन्धसे परब्रह्म ही हिरण्यगर्भपदवाच्य होता है। हिरण्यगर्भ सर्वत्र व्यापक है, यह निखिल सत्त्वोंका आत्मा अथवा जगदात्मा है। हिरण्यगर्भके साथ आसक्तिके सम्बन्धसे जीवभावका विकास होता है। आसङ्ग या वासना अन्तःकरणका धर्म है, यह जीवमें संक्रान्त होकर जीवधर्म बन जाता है। जीव ही कर्त्ता, भोक्ता तथा ज्ञाता है। भर्त्तृप्रपञ्चकी दृष्टिसे जीव ब्रह्मका परिणाम-स्वरूप है। इनके मतमें इन्द्रियाँ भौतिक हैं, आहङ्कारिक नहीं हैं। मोक्ष दो प्रकारका है—(१) अपरमोक्ष अथवा

अपवर्ग, (२) परामुक्ति अथवा ब्रह्मभावापत्ति। इसी देहमें ब्रह्मसाक्षात्कार होनेपर प्रथम प्रकारका मोक्ष आविर्भूत होता है। यह जीवन्मुक्तिके अनुरूप है, इसका नाम अपवर्ग है। वस्तुतः यह आसङ्गत्यागनिमित्तक संसार निवृत्ति मात्र है। देहपात न होनेसे ब्रह्ममें लय नहीं हो सकता, परन्तु देहपातके अनन्तर दूसरे प्रकारके मोक्षका-परममोक्षका—उदय होता है। यह ब्रह्ममें जीवका लय अथवा जीवकी ब्रह्मभावापत्ति है। इस अवस्थाका आविर्भाव अविद्या-निवृत्तिका फलस्वरूप है। इससे सिद्ध होता है कि भर्तृप्रपञ्चके मतसे ब्रह्मसाक्षात्कार होनेपर भी अर्थात् अपरामुक्ति या अपवर्ग दशामें भी अविद्या पूर्णतया निवृत्त नहीं होती। अविद्या-निवृत्तिके साथ-साथ जीवके ब्रह्मभावकी उपलब्धिका प्रतिबन्धक शरीर छूट जाता है और परामुक्तिका अधिगम होता है। परमात्मा अथवा परब्रह्म नित्य पदार्थ है। इस अवस्थामें सम्पूर्ण विशेष अव्यक्त रहते हैं,—जैसे समुद्रमें ऊर्मियोंका एकत्व है, वैसे ही अविशेष अव्यक्त परमात्मावस्थामें निखिल विशेषोंका एकत्व है। ब्रह्मका परिणाम तीन प्रकारका है—(१) अन्तर्यामी तथा जीवरूपमें; (२) अव्याकृत, सूत्र, विराट् तथा देवता रूपमें; (३) जाति तथा पिण्डरूपमें। ये आठ अवस्थाएँ ब्रह्मकी ही हैं। इसी प्रकार जगत् आठ प्रकारसे विभक्त है। प्रकारान्तरसे ये तीन भागोंमें विभक्त किये गये हैं—(१) परमात्मराशि, (२) जीव-राशि और (३) मूर्तामूर्तराशि। भर्तृप्रपञ्च प्रमाणसमुच्चयवादी थे। उनके मतमें लौकिक प्रमाण और वेद दोनों ही सत्य हैं। इसीलिये उन्होंने लौकि-प्रमाणगम्य भेदको और वेदगम्य अभेदको सत्यरूपमें माना है। इसी कारण इनके मतमें जैसे केवल कर्म मोक्षका साधन नहीं हो सकता, वैसे ही केवल ज्ञान भी मोक्षका साधन नहीं हो सकता। मोक्षप्राप्तिके लिये ज्ञान-कर्मसमुच्चय ही प्रकृष्ट साधन है।

भर्तृमित्र

भर्तृमित्रका प्रसङ्ग जयन्तकृत न्यायमञ्जरी (पृ० २१३, २२६)में तथा यामुनाचार्यके सिद्धित्रय (पृ० ४–५)में आया है। इससे प्रतीत होता है कि ये भी वेदान्तिक आचार्य ही रहे होंगे। भर्तृमित्रने मीमांसापर भी ग्रन्थरचना की थी। भट्टपाद कुमारिलने अपने श्लोक-वार्तिकमें (१।१।१।१०, १।१।६।१३०-१३१) इनका उल्लेख किया है—टीका-कार पार्थसारथि मिश्रने न्यायरत्नाकर नामक टीकामें ऐसा ही आशय प्रकट किया है। कुमारिल कहते हैं कि भर्तृमित्रप्रभृति आचार्योंके अपसिद्धान्तोंके प्रभावसे मीमांसाशास्त्र लोकायतवत् हो गया। विशिष्टाद्वैत ग्रन्थोंमें उल्लिखित भर्तृमित्र और श्लोकवार्तिकोक्त मीमांसक भर्तृमित्र एक ही व्यक्ति थे या भिन्न थे, इसका निश्चय करना कठिन है। परन्तु कुमारिलके समालोचन-से मालूम होता है कि ये दो पृथक् व्यक्ति थे। मुकुलभट्टने अपने 'अभिधावृत्तिमातृका' ग्रन्थमें पृथक् भी भर्तृमित्रका नाम निर्देश किया है। (पृ० १७ निर्णयसागर)।

भर्तृहरि

भर्तृहरिका नाम भी यामुनाचार्यके ग्रन्थमें उल्लिखित हुआ है। इनको वाक्यपदीय-कारसे अभिन्न माननेमें कोई अनुपपत्ति नहीं प्रतीत होती। परन्तु इनका कोई वेदान्तग्रन्थ अभीतक उपलब्ध नहीं हुआ। वाक्यपदीय व्याकरणविषयक ग्रन्थ होनेपर भी प्रसिद्ध दार्श-

निक ग्रन्थ है। अद्वैतसिद्धान्त ही इसका उपजीव्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं। किसी-किसी आचार्यका मत है कि भर्तृहरिके शब्दब्रह्मवादका ही प्रधानतया अवलम्बन करके आचार्य मण्डनमिश्रने ब्रह्मसिद्धि नामक ग्रन्थका निर्माण किया था। इसपर वाचस्पति मिश्रकी ब्रह्म-तत्त्वसमीक्षा नामक एक टीका थी। उत्पलाचार्यके गुरु काश्मीरीय शिवाद्वैतके प्रधानतम आचार्य सोमानन्दपादने स्वरचित शिवदृष्टि नामक ग्रन्थमें भर्तृहरिके शब्दाद्वयवादकी विशेष रूपसे समालोचना की है। शान्तरक्षितकृत तत्त्वसङ्ग्रह, अविमुक्तात्मकृत इष्टसिद्धि तथा जयन्तकृत न्यायमञ्जरीमें भी शब्दाद्वैतवादका उल्लेख मिलता है। उत्पल तथा सोमानन्दके वचनोंसे ज्ञात होता है कि भर्तृहरि तथा तदनुसारी शब्दब्रह्मवादी दार्शनिकगण 'पश्यन्ती' वाक्को ही शब्दब्रह्मरूप मानते थे। यह भी प्रतीत होता है कि इस मतमें पश्यन्ती ही परावाक् रूपमें व्यवहृत होती थी। यह वाक् विश्व जगत्का नियामक तथा अन्तर्यामी चित्-तत्त्वसे अभिन्न है।

उपवर्ष

आचार्य शङ्करने ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें कहीं-कहीं उपवर्ष नामक एक प्राचीन वृत्तिकारके मतका उल्लेख किया है। इस वृत्तिकारने दोनों ही मीमांसा शास्त्रोंपर वृत्तिग्रन्थ बनाये थे, ऐसा प्रतीत होता है। पण्डित लोग अनुमान करते हैं कि ये 'भगवान् उपवर्ष' वे ही हैं जिनका उल्लेख शाबरभाष्यमें (मी० सू० । १ । १ । ५) स्पष्टतः किया गया है। शङ्कर कहते हैं (ब्र० सू० ३ । ३ । ५३) कि उपवर्षने अपनी मीमांसावृत्तिमें कहीं-कहींपर शारी-रकसूत्रपर लिखी गयी वृत्तिकी बातोंका उल्लेख किया है। ये उपवर्षाचार्य शबरस्वामीसे पहले हुए, इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु कृष्णदेवनिर्मित तन्त्रचूडामणि नामक ग्रन्थमें लिखा है कि शबरभाष्यके ऊपर उपवर्षकी एक वृत्ति थी। कृष्णदेवके वचनका कोई मूल है या नहीं, यह कहना कठिन है। यदि उनका वचन प्रामाणिक माना जाय, तो इस उपवर्षको प्राचीन उपवर्षसे भिन्न मानना पड़ेगा।

बोधायन

प्रसिद्ध है कि ब्रह्मसूत्रपर बोधायनकी एक वृत्ति थी, जिसके वचनोंका आचार्य रामा-नुजने अपने भाष्यमें उद्धार किया है।

प्रसिद्ध जर्मन पण्डित याकूबीका मत है कि बोधायनने मीमांसा सूत्रपर भी वृत्ति लिखी थी। प्रपञ्चहृदय नामक ग्रन्थसे भी यह बात सिद्ध होती है और प्रतीत होता है कि बोधायननिर्मित्त वेदान्तवृत्तिका नाम 'कृतकोटि' था (देखिये श्री अनन्तपुरम्से प्रकाशित 'प्रपञ्चहृदय', पृ० ३९)।

ब्रह्मनन्दी

प्राचीनकालमें एक वेदान्ताचार्य 'ब्रह्मनन्दी' नामके भी आविर्भूत हुए थे। इनका मत मधुसूदन सरस्वतीने संक्षेप-शारीरककी टीका (३–२१७)में उद्धृत किया है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि शायद ये भी अद्वैतवेदान्तके आचार्य रहे होंगे। प्राचीन वेदान्तसाहित्यमें 'ब्रह्मनन्दी' छान्दोग्यवाक्यकारके अथवा केवल वाक्यकारके नामसे प्रसिद्ध थे।

टङ्क

श्री वैष्णवसम्प्रदायके साहित्यमें भी एक वाक्यकारका पता लगता है। उनका नाम है 'टङ्क'। विशिष्टाद्वैती लोग ब्रह्मनन्दी और टङ्कको अभिन्न समझते हैं।

ब्रह्मदत्त

शङ्कराचार्यजीके पूर्व एक और अति प्रसिद्ध वेदान्ती थे, उनका नाम था ब्रह्मदत्त। सम्भव है, वे भी वेदान्तसूत्रके भाष्यकार रहे हों। परन्तु यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। ब्रह्मदत्तके मतसे जीव अनित्य है, एकमात्र ब्रह्म ही नित्य पदार्थ है।

एकं ब्रह्मैव नित्यं तदितरदखिलं तत्र जन्मादिभाग् इत्यायातम्, तेन जीवोऽपि अचिदिव जनिमान्—

यह मत ब्रह्मदत्तका है। इसे वेदान्तदेशिकाचार्यने अपने तत्त्वमुक्ताकलापकी टीका सर्वार्थसिद्धिमें (२–१६) उद्धृत किया है। ब्रह्मदत्त कहते हैं—जीव तथा जगत् दोनों ही ब्रह्मसे उत्पन्न होकर ब्रह्ममें ही लीन हो जाते हैं। इनकी दृष्टिसे उपनिषदोंका यथार्थ तात्पर्य 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्योंमें नहीं है, किन्तु 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' इत्यादि नियोग-वाक्योंमें है। इनका कहना है कि भिन्नवत् प्रतीत होनेपर भी जीव वस्तुतः ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। ब्रह्मदत्तके मतसे साधकको किसी अवस्थामें भी, कर्मोंका त्याग नहीं हो सकता। प्राचीन आचार्योंमें आश्मरथ्यका सिद्धान्त था कि जीव ब्रह्मसे उत्पन्न होते हैं और मुक्तिमें ब्रह्ममें ही लीन हो जाते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मदत्त भी जीवकी उत्पत्ति और विनाश मानते थे। परन्तु आश्मरथ्य भेदाभेदपक्षके अनुकूल थे। ब्रह्मदत्त अद्वैतवादी थे (देखिये नैष्कर्म्यसिद्धि १–६८)। शङ्कराचार्यके मतमें महावाक्यजन्य ज्ञानसे अविद्याकी निवृत्ति होती है। उनके मतमें ज्ञानसे उपासना भिन्न है। शङ्कर उपासनाके विषयमें विधि माननेपर भी (ब्र० सू० १। १। ४) ज्ञानके विषयमें विधि नहीं मानते। अविद्याकी निवृत्ति करनेवाला यथार्थ ज्ञान वस्तुतन्त्र या पुरुषतन्त्र है। इसलिये आत्मज्ञानके लिये विधिकी कोई आवश्यकता नहीं है। और वेदान्ती ज्ञान और उपासनामें इस प्रकारका भेद नहीं मानते। वे लोग किसी-न-किसी प्रकारसे आत्मज्ञानमें भी विधि मानते ही हैं। मीमांसक लोग कहते हैं कि वेदका मुख्य तात्पर्य सिद्ध वस्तुके निर्देशमात्रमें नहीं है, परन्तु शङ्करेतर वेदान्ती भी कर्मका उपदेश प्रायः ऐसा ही मानते हैं। इन वेदान्तियोंकी दृष्टिसे पूर्व और उत्तरमीमांसामें यही भेद है कि पूर्वकाण्डमें कर्मविधि है और उत्तरकाण्डमें भावनाविधि है। इसीलिये उपनिषद्में 'आत्मा वा अरे' इत्यादि विधिवाक्योंकी ही प्रधानता माननी चाहिये, 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्योंका प्राधान्य नहीं। वस्तुके स्वरूपज्ञानके विना भावना नहीं हो सकती। 'तत्त्वमसि' आदि वाक्य वस्तुके स्वरूपमात्रके वोधक हैं, अतएव आत्मा उपासनाविधिका शेष है। कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड दोनों ही साध्यविषयक हैं, सिद्धविषयक नहीं हैं। सुरेश्वराचार्यने नैष्कर्म्यसिद्धिमें कहा है—

'केचित् स्वसम्प्रदायबलावष्टम्भाद् आहुः—यदेतद् वेदान्तवाक्यादहं ब्रह्मेति विज्ञानं समुत्पद्यते, तन्नैव स्वोत्पत्तिमात्रेण अज्ञानं निरस्यति किं तर्हि अहन्यहनि

द्राघीयसा कालेन उपासीनस्य सतः भावनोपचयात् निःशेषमज्ञानमपगच्छति, 'देवो भूत्वा देवानप्येति' इति श्रुतेः।' (१-६७)

ज्ञानामृतविद्यासुरभि नामकी नैष्कर्म्यसिद्धि टीकामें, यह मत ब्रह्मदत्तका है, ऐसा निर्णय किया गया है। शङ्कराचार्यने (१। ४। ७) बृहदारण्यकके भाष्यमें ब्रह्मदत्तके मतका उल्लेख किया है। इस मतमें अज्ञानकी निवृत्ति भावनाजन्य ज्ञानसे ही होती है, औपनिषद ज्ञान मुक्तिके लिये पर्याप्त नहीं है। इस प्रकारके ज्ञानका लाभ करनेपर भी जीवनपर्यन्त भावना आवश्यक है। ब्रह्मदत्त कहते हैं—यद्यपि देहके अवस्थिति-कालमें भी उपायसे देवताका साक्षात्कार हो सकता है, तथापि उनके साथ मिलन तभी हो सकता है जब देह न रहे। प्रारब्धकर्मलब्ध देह उपास्यके साथ उपासकके मिलनेमें प्रतिबन्धक है (देखिये—बृ० उ० वार्तिक, पृ० १३५७; नैष्कर्म्यसिद्धिटीका 'चन्द्रिका' १—६७)। जिस प्रकार मृत्युके अनन्तर ही स्वर्गलाभ हो सकता है, उसी प्रकार मोक्ष भी देह छूटनेके पश्चात् ही होता है। दोनों ही वैदिक विधिके पालनके फल हैं। ब्रह्मदत्त ध्याननियोगवादी थे। वे जीवन्मुक्ति नहीं मानते थे। शङ्कराचार्यके मतसे मोक्ष दृष्ट फल है, परन्तु ब्रह्मदत्तके मतसे यह अदृष्ट फल है। शङ्करमतमें कर्मसे जिज्ञासा उत्पन्न होती है, मोक्ष नहीं होता। जीवन्मुक्तको कर्मोंकी आवश्यकता नहीं है। इस अवस्थामें कर्मसंन्यास स्वतः प्राप्त है। सत्त्वशुद्धि अथवा वैराग्य होनेपर शङ्करमतमें कर्मकी आवश्यकता नहीं रहती। इस अवस्थामें कर्मसंन्यास विधि प्राप्त है (देखिये—ऐतरेयभाष्य, उपोद्घात)। इस प्रकारकी द्वितीयावस्थामें साधकको केवल ज्ञानके अर्जनमें प्रयत्नशील होना चाहिये। ब्रह्मदत्तकी दृष्टिसे साधनक्रम इस प्रकार है—पहले उपनिषद्से ब्रह्मका परोक्षज्ञान लाभ करना चाहिये। तदनन्तर 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्याकारक भावनाका अभ्यास करना चाहिये। इस अवस्थामें कर्म आवश्यक है। जीवनपर्यन्त कर्मका त्याग नहीं होता। इसलिये ब्रह्मदत्तका मत भी ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद ही है। सुरेश्वराचार्यने भी उनका उल्लेख समुच्चयवादीके रूपमें ही किया है। ज्ञानोत्तमने नैष्कर्म्यसिद्धिकी टीकामें उन्हें ज्ञानकर्मसमुच्चयवादी कहा है—

वाक्यजन्यज्ञानोत्तरकालीनभावनोत्कर्षाद् भावनाजन्यसाक्षात्कारलक्षणज्ञानान्तरेणैव अज्ञानस्य निवृत्तः ज्ञानाभ्यासदशायां ज्ञानस्य कर्मणा समुच्चयोपपत्तिः।

ब्रह्मदत्त कहते हैं कि मुमुक्षुको 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्याकारक अहंग्रहोपासना करनी चाहिये। बृहदारण्यक उपनिषद् (१। ४। ७। १०)में भी 'आत्मेत्येव उपासीत' इत्याकारक उपदेश मिलता है। अब प्रश्न यह है कि जीव परमात्मासे परमार्थतः भिन्न है या अभिन्न? शङ्करने अभेदपक्ष माना है। परन्तु किसी-किसी वेदान्ताचार्यका यह मत है कि जीवके ब्रह्मसे अभिन्न न होनेपर भी अभेदभावनाकी आवश्यकता है (देखिये सम्बन्धवार्तिक—श्लोक ७०२, ८४५, ब्र० सू० भा० ४। १३, संक्षेपशारीरक १। ३०७—३११। पञ्चपादिका पृ० २५२-२५३)। ब्रह्मदत्तके मतमें जीव और ब्रह्मका परस्पर क्या सम्बन्ध है, यह ज्ञात नहीं होता। यदि भेद हो तो ऐक्यभावनाके बलसे मोक्षमें जीवका लय हो जायगा। यदि जीवको ब्रह्मका अंश माना जाय या दोनोंमें अभेद हो, तो भावनासे भेदभावकी निवृत्ति,

अभेदका स्फुरण या साक्षात्कार तथा अन्तमें मोक्ष होगा। ब्रह्मदत्तकी दृष्टिसे 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंके श्रवणसे आत्मस्वरूपविषयक अखण्ड वृत्ति नहीं उत्पन्न हो सकती, क्योंकि उन शब्दोंमें तादृश शक्ति नहीं है; परन्तु निदिध्यासन अथवा प्रसंख्यानमें ऐसा सामर्थ्य है। यदि प्रसंख्यान पूर्णतया सम्पन्न हो, तो उससे आत्माका अखण्ड ज्ञान आविर्भूत होता है (देखिये ब्र० सू० भा० नि० सा० १२८ से १३० और १५३)। शङ्करके मतसे इस मतका विरोध स्पष्ट ही प्रतीत होता है। सुरेश्वराचार्यने नैष्कर्म्यसिद्धिमें (१—६७) तथा पद्मपादने पञ्च-पादिकामें (पृ० ९९) स्पष्ट ही कहा है कि महावाक्यसे साक्षात्—अपरोक्ष ज्ञान—उत्पन्न होता है। परन्तु मण्डनमिश्रका मत यह है (देखिये बृ० भा० टीका ४ । ४ । ७९६) कि शब्दसे अपरोक्षज्ञान हो ही नहीं सकता।

भारुचि

रामानुजकृत वेदार्थसङ्ग्रहमें (पृ० १५४) प्राचीन कालके छः वेदान्ताचार्योंके नाम-का उल्लेख मिलता है। इन आचार्योंने रामानुजसे पहले वेदान्तशास्त्र ज्ञानके प्रचारके लिये ग्रन्थ निर्माण किये थे। आचार्य रामानुजके सत्कारपूर्वक उल्लेखसे प्रतीत होता है कि ये लोग निर्विशेष ब्रह्मवादी नहीं थे। इन आचार्योंके नाम हैं—भारुचि, टङ्क, बोधायन, गुहदेव, कपर्दिक और द्रमिलाचार्य (द्रविडाचार्य)। श्रीनिवासदासने यतीन्द्रमतदीपिका (पूना सं० पृ० २)में व्यास, बोधायन, गुहदेव, भारुचि, ब्रह्मनन्दी, द्रमिडाचार्य, श्रीपराङ्कुश, नाथमुनि और ज्योतीश्वर प्रभृतिके नामका इसी प्रसङ्गमें उल्लेख किया है। इनमें टङ्क और ब्रह्मनन्दी वैष्णवोंके मतसे अभिन्न हैं। इनका नाम तथा विवरण पहले दिया जा चुका है।

भारुचिके विषयमें विशेष परिज्ञान नहीं है। विज्ञानेश्वरकी मिताक्षरा (१ । १८ और २ । १२४), माधवाचार्यकृत पराशरसंहिताकी टीका (२ । ३, पृ० ५१०) एवं सरस्वती-विलास (प्रस्तर १३३) प्रभृति ग्रन्थोंमें धर्मशास्त्रकार भारुचिका नाम उपलब्ध होता है। प्रतीत होता है कि इन्होंने विष्णुकृत धर्मसूत्रके ऊपर एक टीका लिखी थी। श्रीवैष्णव-सम्प्रदायमें प्रसिद्ध भारुचि और धर्मशास्त्रकार भारुचि यदि एक माने जायँ, तो इनका समय ख्री० नवम सदीके प्रथमार्द्धमें माना जा सकता है (देखिये श्रीकानेकृत 'धर्मशास्त्रका इतिहास', पृ० २६५)।

द्रविडाचार्य भी प्राचीन वैदान्तिक थे। इन्होंने छान्दोग्य-उपनिषद्पर अति बृहत् भाष्य लिखा था। बृहदारण्यक उपनिषद्पर भी इनका भाष्य था, ऐसा प्रमाण मिलता है। माण्डूक्योपनिषद्के (२ । ३२; २ । २०) भाष्यमें शङ्करने उनका 'आगमवित्' कहकर उल्लेख किया है और बृहदारण्यक-उपनिषद्के (पृ० २९७, पूना सं०) भाष्यमें उनका उल्लेख 'सम्प्रदायवित्' कहकर किया गया है। जहाँ-जहाँ द्रविडाचार्यका उल्लेख करना आव-श्यक था वहाँ सम्मानके साथ ही किया गया है। कहीं भी उनके मतका खण्डन नहीं किया गया। इससे प्रतीत होता है कि द्रविडाचार्यका सिद्धान्त शङ्करके सिद्धान्तके प्रतिकूल नहीं था। छान्दोग्य-उपनिषद्में जो 'तत्त्वमसि' महावाक्यका प्रसङ्ग आया है उसकी व्याख्यामें द्रविडाचार्यने व्याधसवर्धित राजपुत्रकी आख्यायिकाका वर्णन किया है। आनन्दगिरि कहते हैं—

तत्त्वमस्यादिवाक्यमैक्यपरम्, तच्छेषः सृष्ट्यादिवाक्यम्।

यह मत आचार्य द्रविडको अङ्गीकृत है।

पहले कहा गया है कि रामानुजसम्प्रदायके ग्रन्थोंमें भी द्रविडाचार्य नामके एक प्राचीन आचार्यका उल्लेख मिलता है। किसी-किसीका मत यह है कि ये द्रविडाचार्य शङ्करोक्त द्रविडसे भिन्न थे। इन्होंने पाञ्चरात्र सिद्धान्तका अवलम्बन करके द्रविड भाषामें ग्रन्थरचना की थी। यामुनाचार्यने सिद्धित्रयमें इन्हीं आचार्यके विषयमें कहा है—

भगवता बादरायणेन इदमर्थमेव सूत्राणि प्रणीतानि विवृतानि च परिमित-गम्भीरभाष्यकृता।

यहाँपर 'भाष्यकृत्' शब्दसे द्रविडाचार्य लिये गये हैं। किसी-किसीका मत है कि द्रविडसंहिताकार अलवार, शठकोप अथवा वकुलाभरण ही वैष्णवग्रन्थोंमें द्रविडाचार्य नामसे प्रसिद्ध हैं।

इन दोनों द्रविडोंकी परस्पर भिन्नता अथवा अभिन्नताके सम्बन्धमें अबतक कोई स्थिर सिद्धान्त नहीं कायम कर सका। सर्वज्ञात्म मुनिने सक्षेप शारीरकमें [३ । २२१] ब्रह्मनन्दि ग्रन्थके द्रविडभाष्यसे जिन वचनोंका उद्धार किया है, वे रामानुजद्वारा उद्धृत द्रविडभाष्य-वचनोंसे अभिन्न दीख पड़ते हैं। इसीलिये किसी-किसीके मतसे शङ्करसम्प्रदायमें प्रसिद्ध द्रविड और रामानुज-सम्प्रदायमें प्रसिद्ध द्रविड एक ही व्यक्ति है, भिन्न नहीं।

सुन्दरपाण्ड्य

भगवान् शङ्करके पहले सुन्दरपाण्ड्य नामक आचार्यने एक कारिकाबद्ध वार्तिककी रचना की थी। यह वार्तिक ब्रह्मसूत्रके किसी प्राचीन भाष्य या वृत्तिका अवलम्बन करके बनाया गया था। परन्तु इस वृत्ति या भाष्यका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। इस वृत्तिके निर्माता बोधायन थे, या उपवर्ष थे, अथवा और कोई प्राचीन आचार्य, इस विषयमें निश्चित-रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु समन्वयाधिकरणके भाष्यके अन्तमें (१ । १ । ४) इस वार्तिकग्रन्थसे शङ्कराचार्यने स्वयं 'अपि चाहुः' कहकर तीन श्लोक उद्धृत किये हैं—

अपि चाहुः—

गौणमिथ्यात्मनोऽसत्त्वे पुत्रदेहादिबाधनात्।
सद् ब्रह्मात्माहमित्येवं बोधे कार्यं कथं भवेत्॥
अन्वेष्टव्यात्मविज्ञानात् प्राक् प्रमातृत्वमात्मनः।
अन्विष्टः स्यात् प्रमातैव पाप्मदोषादिवर्जितः॥
देहात्मप्रत्ययो यद्वत् प्रमाणत्वेन कल्पितः।
लौकिकं तद्वदेवेदं प्रमाणं त्वात्मनिश्चयात्॥ इति

इसका तात्पर्य यह है कि जबतक 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्याकारक ब्रह्मज्ञानका उदय नहीं होता, तबतक सब प्रकारकी विधियाँ और प्रमाण सार्थक हैं। आत्मवस्तु हेय भी नहीं है और उपादेय भी नहीं है। यह अद्वैत है, इस प्रकार आत्माके बोधमें प्रमाणकी अपेक्षा ही नहीं है, क्योंकि उस समय प्रमाता भी नहीं रहता और विषय भी नहीं रहता। वाचस्पति-मिश्रने भामतीमें इन श्लोकोंका 'ब्रह्मविदां गाथा' कहकर वर्णन किया है। परन्तु पद्मपादकृत

पञ्चपादिकाके ऊपर 'प्रबोधपरिशोधिनी' नामकी एक टीका है, जिसका रचयिता नरसिंह-स्वरूपका शिष्य आत्मस्वरूप है। इस टीकासे पता चलता है कि ये तीनों श्लोक सुन्दरपाण्ड्य-कृत हैं। सूतसंहिताकी माधवमन्त्रिकृत तात्पर्यदीपिका नामकी टीकामें भी कहा गया है कि इन श्लोकोंके अन्तर्गत तृतीय श्लोक—अर्थात् 'देहात्मप्रत्ययो यद्वत्'—सुन्दरपाण्ड्यकृत वार्त्तिकसे लिया गया है। अमलानन्दकृत कल्पतरुमें (३ । ३ । २५) सुन्दरपाण्ड्यके 'निःश्रेण्यारोहणप्राप्यम्' प्रभृति और तीन वचन तथा तन्त्रवार्त्तिकमें (बनारस सं० ८५२-८५१ पृ०) ये तीन और 'तेन यद्यपि सामर्थ्यम्' प्रभृति दो—कुल पाँच वचन उद्धृत हुए हैं। न्यायसुधामें (पृ० १२२८) ये पाँच श्लोक 'वृद्धानाम्'के नामसे उद्धृत किये गये हैं। किसी-किसी आचार्यके मतसे सुन्दरपाण्ड्यका समय ७०७ विक्रमाब्द है। सुन्दरपाण्ड्य शैव-वेदान्ती थे, इस विषयमें कोई सन्देह नहीं है। किसी पण्डितके मतमें यह राजा नेडूमारण नायरका नामान्तर है। भट्ट कुमारिलने तन्त्रवार्त्तिकके दूसरे स्थानमें (पृ० २८०-२८१ तथा ३५७) 'आह च' कहकर दो श्लोक उद्धृत किये हैं। न्यायसुधाके मतसे भी ये वृद्ध-वचन हैं। ये वृद्ध सुन्दरपाण्ड्य ही हैं, दूसरा कोई नहीं। प्रतीत होता है कि सुन्दरपाण्ड्यने पूर्वमीमांसापर एक वार्त्तिककी रचना की थी।

इन आचार्योंकी यथाशक्य चर्चा करके हमने यह स्पष्ट कर दिया कि वेदान्तके परि-शीलनकी परम्परा टूटी नहीं। उसके विशिष्ट विद्वान् अपने-अपने सिद्धान्तोंकी पुष्टिमें बराबर श्रम करते आये हैं अब हम अद्वैतसम्प्रदायकी चर्चा करेंगे।

अद्वैतसम्प्रदायके अर्वाचीन प्रधान आचार्य श्रीशङ्कराचार्यजी ही हैं। उन्होंने बड़े समारोहके साथ अन्य मतावलम्बियोंके मन्तव्योंका खण्डन करते हुए स्वसिद्धान्तका स्थापन और प्रचार किया है। किन्तु उसे साम्प्रदायिक मतवादका रूप तो उनके परमगुरु श्रीमद्गौड़-पादाचार्यजीने ही दे दिया था। भगवान् शङ्करने उसीका विस्तार किया। श्रीगौड़पादाचार्य-तक अद्वैतसम्प्रदायके आचार्योंकी परम्पराका क्रम इस प्रकार है—श्रीनारायण, श्रीब्रह्मा, वसिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास और शुकदेव। शुकदेवजीके शिष्य श्रीगौड़पादाचार्य माने जाते हैं। गौड़पादाचार्यजीसे पूर्व जो अद्वैतसम्प्रदायके प्रवर्त्तक माने गये हैं वे सब वैदिक एवं पौराणिक ऋषि हैं। अतः हम श्रीगौड़पादाचार्यसे आरम्भ करके उनके उत्तरवर्त्ती प्रमुख आचार्योंके विषयमें ही कुछ कहेंगे।

श्रीगौड़पादाचार्य

गौड़पादाचार्यजीके जीवनके विषयमें कोई विशेष बात नहीं मिलती। आचार्य शङ्करके शिष्य सुरेश्वराचार्यजीके नैष्कर्म्यसिद्धि नामक ग्रन्थसे केवल इतना पता लगता है कि वे गौड़-देशके रहनेवाले थे। इससे प्रतीत होता है कि उनका जन्म बङ्गाल प्रान्तके किसी स्थानमें हुआ होगा। श्रीशङ्करके जीवनचरितसे इतना मालूम होता है कि गौड़पादाचार्यके साथ उनकी भेंट हुई थी। परन्तु इसके अन्य प्रमाण नहीं मिलते।

आचार्य गौड़पादके ग्रन्थोंमें बौद्धमतका स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं मिलता, केवल आभासमात्र मिलता है। इससे मालूम होता है, उन्होंने जब ग्रन्थ लिखा था उस समय देशमें बौद्धधर्मका कोई प्राधान्य नहीं था।

श्रीगौड़पादाचार्यका सबसे प्रधान ग्रन्थ है माण्डूक्योपनिषत्-कारिका। इसका श्रीशङ्कराचार्यने भाष्य लिखा है। इस कारिकाकी मिताक्षरा नामकी एक टीका भी मिलती है। परवर्त्ती आचार्योंने इस कारिकाको प्रमाणरूपसे स्वीकार किया है। गौड़पादाचार्यप्रणीत सांख्यकारिका भाष्य भी मिलता है। परन्तु इसमें सन्देह है कि यह भाष्य उनका है या दूसरेका। उनका तीसरा ग्रन्थ मिलता है उत्तरगीताभाष्य। उत्तरगीता महाभारतका ही एक अंश है। परन्तु यह अंश सब महाभारतोंमें नहीं मिलता।

आचार्य गौड़पाद अद्वैतसिद्धान्तके प्रधान आचार्य थे। उन्होंने अपनी कारिकामें जिस सिद्धान्तको बीजरूपसे प्रकट किया, उसीको श्रीशङ्कराचार्यने अपने ग्रन्थोंमें और भी विस्तृत रूपसे समझाकर संसारके सामने रक्खा है। कारिकाओंमें उन्होंने जिस मतका प्रतिपादन किया है उसे अजातवाद कहते हैं। सृष्टिके विषयमें भिन्न-भिन्न मतावलम्बियोंके भिन्न-भिन्न मत हैं। कोई कालसे सृष्टि मानते हैं, कोई प्रकृतिको प्रपञ्चका कारण मानते हैं, कोई परमाणुओंसे ही जगत्की उत्पत्ति मानते हैं और कोई भगवान्के सङ्कल्पसे इसकी रचना मानते हैं। इस प्रकार कोई परिणामवादी हैं और कोई आरम्भवादी हैं। किन्तु श्रीगौड़पादाचार्यके सिद्धान्तानुसार जगत्की उत्पत्ति ही नहीं हुई, केवल एक अखण्ड चिद्घनसत्ता ही मोहवश प्रपञ्चवत् भास रही है। यही बात आचार्य इन शब्दोंमें कहते हैं—

मनोदृश्यमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः।
मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते॥

अर्थात् 'यह जितना द्वैत है सब मनका ही दृश्य है, परमार्थतः तो अद्वैत ही है; क्योंकि मनके मनशून्य हो जानेपर द्वैतकी उपलब्धि नहीं होती।' आचार्यने अपनी कारिकाओंमें अनेक प्रकारकी युक्तियोंसे यही सिद्ध किया है कि सत्, असत् अथवा सदसत् किसी भी प्रकारसे प्रपञ्चकी उत्पत्ति सिद्ध नहीं हो सकती। अतः परमार्थतः न उत्पत्ति है, न प्रलय है, न बद्ध है, न साधक है, न मुमुक्षु है और न मुक्त ही है—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

बस, जो समस्त विरुद्ध कल्पनाओंका अधिष्ठान, सर्वगत, असङ्ग, अप्रमेय और अविकारी आत्मतत्त्व है एकमात्र वही सद्वस्तु है। मायाकी महिमासे रज्जुमें सर्प, शुक्तिमें रजत और सुवर्णमें आभूषणादिके समान उस सर्वसङ्गशून्य निर्विशेष चित्तत्त्वमें ही समस्त पदार्थोंकी प्रतीति हो रही है।

आचार्य गोविन्द भगवत्पाद

आचार्य गोविन्द भगवत्पाद गौडपादाचार्यके शिष्य तथा शङ्कराचार्यके गुरु थे। इनके विषयमें विशेष कोई बात नहीं मिलती। शङ्कराचार्यकी जीवनीसे ऐसा मालूम होता है कि ये नर्मदा तटपर कहीं रहा करते थे। शङ्कराचार्यका शिष्य होना ही यह बतलाता है कि वे अपने समयके एक उद्भट विद्वान्, अद्वैत-सम्प्रदायके प्रमुख आचार्य और सिद्ध योगी होंगे। उनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। किसी-किसीका कहना है कि ये गोविन्दपादाचार्य ही पत-

अलि थे। यदि यह बात सत्य हो तो कहा जा सकता है कि महाभाष्य उन्हींका बनाया हुआ है। उनका कोई अद्वैतसिद्धान्त सम्बन्धी ग्रन्थ नहीं मिलता।

भगवान् शङ्कराचार्य

वेदान्तदर्शनका, अद्वैतवादका, प्रचार भारतमें यों तो बहुत प्राचीन कालसे है। परन्तु इधर उसका सबसे अधिक प्रचार भगवान् शङ्कराचार्यके द्वारा ही हुआ है। और उस मतके समर्थक प्रधान ग्रन्थ उन्हींके हैं। इसीसे श्रीशङ्कराचार्यको अद्वैतवादका प्रवर्त्तक मानते हैं और अद्वैतमतको शाङ्करमत या शाङ्करदर्शन भी कहते हैं। ब्रह्मसूत्रपर आज जितने भाष्य मिलते हैं, उनमें सबसे प्राचीन शाङ्करभाष्य ही है और उसीका सर्वत्र सबसे अधिक आदर भी है। भगवान् शङ्करके जो ग्रन्थ मिलते हैं तथा यत्र-तत्र उनकी जीवन-सम्बन्धी जो घटनाएँ मिलती हैं, उनसे ऐसा मालूम होता है कि वे एक अलौकिक व्यक्ति थे। उनके अन्दर हम प्रकाण्ड पाण्डित्य, गम्भीर विचारशैली, प्रचण्ड कर्मशीलता, अगाध भगवद्भक्ति, सर्वोत्तम त्याग, अद्भुत योगैश्वर्य आदि अनेक गुणोंका दुर्लभ समुच्चय पाते हैं। उनकी वाणीमें तो मानो साक्षात् सरस्वती ही विराजती थीं। यही कारण है कि अपने बत्तीस वर्षकी अल्प आयुमें ही उन्होंने अनेक बड़े-बड़े ग्रन्थ रच डाले, सारे भारतमें भ्रमण करके विरोधियोंको शास्त्रार्थमें पराजित किया, भारतके चारों कोनोंमें चार प्रधान मठ स्थापित किये और सारे देशमें युगान्तर उपस्थित कर दिया। थोड़ेमें यह कहा जा सकता है कि शङ्कराचार्यने डूबते हुए सनातनधर्मकी रक्षा की। उनके इस धर्मसंस्थापनके कार्यको देखकर लोगोंका यह विश्वास है कि वे साक्षात् भगवान् शङ्करके ही अवतार थे—'शङ्करो शङ्करः साक्षात्'—और इसीसे सब लोग 'भगवान्' शब्दके साथ उनका स्मरण करते हैं।

इतने बड़े आचार्य और इतने सुप्रसिद्ध, प्रभावशाली तथा सर्वमान्य महापुरुषकी कोई प्रामाणिक जीवनी नहीं मिलती। उनके बहुत काल पीछे उनकी जीवन-सम्बन्धी घटनाओंका सङ्कलन हुआ है, जिनमें आनन्दगिरिकृत शङ्करदिग्विजय, चिद्विलासयतिकृत शङ्कर-दिग्विजय तथा माधवाचार्यविरचित संक्षिप्त शङ्करजय मुख्य हैं। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे इनमेंसे एक भी प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। आधुनिक कालमें इस विषयमें जो कुछ अन्वेषण हुए हैं, उनमें भी बड़ा मतभेद है। शङ्कराचार्यका आविर्भाव और तिरोभाव कब हुआ था, इस विषयमें अनेक मत हैं।

भगवान् शङ्कराचार्य कब हुए?

ईसासे पूर्व षष्ठ शताब्दीसे लेकर ईसाके अनन्तर नवम शताब्दीतक किसी समयमें इनका आविर्भाव हुआ था, यह सब लोग मानते हैं। किन्तु किस वर्षमें इनकी उत्पत्ति हुई थी, इसका अभीतक पक्का निश्चय नहीं हो सका है।

पहला मत यह है कि शङ्कराचार्यने गतकलि २५९३ वर्षमें जन्म-ग्रहण किया तथा २६२५ कलि वर्षमें, ३२ वर्षकी अवस्थामें, देह त्याग किया।

काञ्चीमठ तथा द्वारिकामठमें जो गुरुपरम्पराकाल प्रसिद्ध है उसके अनुसार शङ्कर कलिकी सत्ताईसवीं शताब्दीमें विद्यमान् थे, ऐसा प्रतीत होता है। परन्तु एक मतमें शङ्करका

जन्मकाल गतकलि २६२५ और दूसरे मतमें उनका निर्वाणकाल २६२४ कलि गताब्द है, इतना ही काञ्ची और द्वारिकाके मतमें भेद है।

किसी-किसीके मतसे कलिवर्ष ३०५७ में शङ्करका आविर्भाव हुआ। केरलोत्पत्तिके मतानुसार शङ्करका आविर्भावकाल यही है, परन्तु इस मतसे शङ्करका जीवनकाल ३२ वर्षके स्थानमें ३८ वर्ष है।

षष्ठ शताब्दीके अन्तमें शङ्कराचार्य आविर्भूत हुए थे, यह भी एक मत है।

बर्नेलने अपने 'सौथ इण्डियन पेलियोग्राफ़ी' नामक ग्रन्थमें तथा सिवेलने "लिस्ट आफ़ अण्टी क्विटीज़ इन मद्रास" नामक ग्रन्थमें कहा है कि शङ्कराचार्यका आविर्भाव-काल ईसवी सन्‌की ७वीं शताब्दी है। वर्त्तमान समयमें श्रीराजेन्द्रनाथ घोषने विविध प्रमाणोंसे यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि शङ्कराचार्य ६०८ शकाब्द* अथवा ६८६ ईसवीमें आविर्भूत हुए थे। वे कहते हैं कि शङ्कराचार्यने ३४ वर्षकी अवस्थामें देह त्याग किया था। उनके कथनका मूल महानुभव सम्प्रदायके दर्शनप्रकाश नामक ग्रन्थमें उद्धृत शङ्करपद्धतिका वचन है। इस ग्रन्थमें शङ्करका तिरोभाव-काल 'युगमपयोधिरसामित' (२ ४६) शकाब्द कहा गया है। इससे उनका जन्मकाल ६४२ शक-संवत्सरमें प्राप्त होता है। 'रसा' पदसे एक अथवा रसातल समझकर छः माना जा सकता है। घोष महाशय कहते हैं कि छः मानना ही युक्तिसङ्गत है। एक माननेमें असम्भव दोष† आ जाता है।

शङ्कर अष्टम शताब्दीमें थे, यह भी एक मत है। अध्यापक वेबरने इस मतका समर्थन किया था। लूईरैसने शृङ्गेरीमठके गुरुपरम्परा-कालको एक-एक करके जोड़कर अनुमान किया था कि शङ्कर ७४० से ७६७ के बीचमें जीवित थे।

---

* शकसंवत्‌के कारण भी शङ्कर-कालमें उसी तरह प्रमाद देख पड़ता है, जिस तरह भारतके प्राय. सभी ऐतिहासिक पुरुषोंके सम्बन्धमें चल पड़ा है। शकसंवत् दो हैं। प्राचीन शकसंवत् श्रीवैद्यके मतसे गौतमबुद्धके समयसे और दूसरे ऐतिहासिकोंके मतसे फारसके बादशाह कैखुसरोके भारतविजयके समयसे आरम्भ होता है। यह समय २५५१ गतकलि था। शालिवाहनका शकसंवत् ६२८ बरस पीछे गतकलि ३१७९ में आरम्भ हुआ। शङ्कर-कालकी गणनामें जो शालिवाहनीय शक लेते हैं वे शङ्कर-कालको ६२८ बरस पीछे हटा देते हैं। दोनों संवतोंको "शक" ही कहते हैं, भ्रान्तिका कारण यही है। युरोपीय विद्वान् भारतीय-कालको पीछे घसीटनेमें विशेष प्रवृत्त रहते हैं। परन्तु श्रीकण्ठाचार्य्यने शाङ्करसिद्धान्तका उल्लेख किया है और वे विक्रमकी चौथी शताब्दीमें निश्चय ही थे, अत. श्रीशङ्कराचार्य्य उनसे पूर्व हुए और शङ्कर-कालकी गणनामें शकसंवत्‌के उल्लेखसे उसी प्राचीन शकसंवत्‌का ही उल्लेख समझना उचित होगा।

† असम्भव दोष इसीलिये आ जाता है कि १४२ शालिवाहनीय शकका अर्थ होगा विक्रमकी पहली शताब्दी जो घोष महोदयको मान्य नहीं है। परन्तु मठोंकी परम्परासे जो उनके तिरोभावका समय ई० पू० ४७५ आता है, तो दर्शनप्रकाशके अनुसार ई० पू० ४०८ आता है। मेरे मतसे रसासे "एक"की ही सूचना होती है।

एक मत यह भी है कि शङ्कराचार्य ७८८ ईसवीमें आविर्भूत होकर ३२ वर्षकी अवस्थामें तिरोहित हुए थे। आजकल अधिकांश लोग इसी मतको मानते हैं।

जो हो, भगवान् शङ्करके विषयमें जो कुछ सामग्री मिलती है उससे मालूम होता है कि उनका जन्म केरल-प्रदेशके पूर्णानदीके तटवर्त्ती कलादी नामक गाँवमें वैशाख शुक्ल ५ को हुआ था। उनके पिताका नाम शिवगुरु तथा माताका सुभद्रा या विशिष्टा था। शिवगुरु बड़े विद्वान् और धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। सुभद्रा भी पतिके अनुरूप ही विदुषी और धर्मपरायणा पत्नी थीं। परन्तु प्रायः प्रौढ़ावस्था समाप्त होनेपर भी उन्हें कोई सन्तान न हुई। पति पत्नीने बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ भगवान् शङ्करकी सकाम उपासना की। कहते हैं कि भगवान्ने प्रकट होकर मनोवाञ्छित वरदान दिया। माँ सुभद्राके गर्भसे पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ और उसका नाम भगवान्के नामपर ही शङ्कर रक्खा गया।

बालकके रूपमें कोई महान् विभूति अवतरित हुई है, इसका प्रमाण बचपनसे ही मिलने लगा। एक वर्षकी अवस्था होते-होते बालक अपनी मातृभाषामें अपने भाव प्रकट करने लगा और दो वर्षकी अवस्थामें मातासे पुराणादिकी कथा सुनकर कण्ठस्थ करने लगा। तीन वर्षकी अवस्थामें उनका चूड़ाकर्म करके उनके पिता स्वर्गवासी हो गये। पाँचवें वर्षमें यज्ञोपवीत करके उन्हें गुरुके घर पढ़नेके लिये भेजा गया और केवल ७ वर्षकी अवस्थामें ही वे वेद, वेदान्त और वेदाङ्गोंका पूर्ण अध्ययन करके घर वापस आ गये। उनकी असाधारण प्रतिभा देख उनके गुरुजन दङ्ग रह गये।

विद्याध्ययन समाप्तकर शङ्करने संन्यास लेना चाहा। परन्तु माताने आज्ञा न दी। शङ्कर माताके बड़े भक्त थे। उन्हें कष्ट देकर संन्यास लेना नहीं चाहते थे। एक दिन माताके साथ वे नदीमें स्नान करने गये। उन्हें मगरने पकड़ लिया। पुत्रको सङ्कटमें देख माताके होश उड़ गये। वह बेचैन होकर हाहाकार मचाने लगीं। शङ्करने मातासे कहा—मुझे संन्यास लेनेकी आज्ञा दे दो तो मगर मुझे छोड़ देगा। माताने तुरत आज्ञा दे दी और मगरने शङ्करको छोड़ दिया। इस तरह माताकी आज्ञा पा वे आठ वर्षकी उम्रमें घरसे निकल पड़े। जाते समय माताकी इच्छाके अनुसार यह वचन देते गये कि तुम्हारी मृत्युके समय मैं घरपर उपस्थित रहूँगा।

घरसे चलकर शङ्कर नर्मदा-तटपर आये और वहाँ स्वामी गोविन्द भगवत्पादसे दीक्षा ली*। गुरुने उनका नाम भगवत्-पूज्यपादाचार्य रक्खा। उन्होंने गुरूपदिष्ट मार्गसे साधना

---

* महामहोपाध्याय प० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम० ए०, कल्याणके वेदान्ताङ्कमें लिखते हैं—"शाक्तागमसाहित्यमें श्रीविद्यार्णव नामक एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ अभीतक मुद्रित नहीं हुआ इसकी एक सम्पूर्ण प्रति काश्मीरमें विद्यमान है (देखिये—श्रीस्टैनका बनाया हुआ जम्मू-रघुनाथ-मन्दिरस्थ पुस्तकालयका सूचीपत्र) यह अति बृहद् ग्रन्थ है। इसका कोई-कोई फुटकर अंश भिन्न-भिन्न पुस्तकालयोंमें उपलब्ध होता है। उसमें श्रीविद्याकी उपासनाके क्रमका अवलम्बन करके तन्त्रशास्त्रके सम्पूर्ण सिद्धान्तोंका भलीभाँति प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रन्थमें श्रीशङ्कराचार्यकी गुरुपरम्परा तथा शिष्यपरम्पराका भी कुछ वर्णन किया गया है।

शुरू कर दी और अल्पकालमें ही बहुत बड़े योगसिद्ध महात्मा हो गये। गुरुकी आज्ञासे वे काशी आये। यहाँ उनकी ख्याति बढ़ने लगी और लोग शिष्यत्व भी ग्रहण करने लगे। उनके प्रथम शिष्य सनन्दन हुए जो पीछे पद्मपादाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुए। शिष्योंको पढ़ानेके साथ साथ वे ग्रन्थ भी लिखते जाते थे। कहते हैं, एक दिन भगवान् विश्वनाथने चाण्डालके रूपमें उन्हें दर्शन दिया और ब्रह्मसूत्रपर भाष्य लिखने और धर्मका प्रचार करनेका आदेश दिया। जब भाष्य लिख चुके तो एक दिन एक ब्राह्मणने गङ्गा-तटपर उनसे एक सूत्रका अर्थ पूछा। उस सूत्रपर ब्राह्मणके साथ उनका आठ दिनतक शास्त्रार्थ हुआ। पीछे उन्हें मालूम हुआ कि ये स्वयं भगवान् वेदव्यास हैं। फिर वेदव्यासने उन्हें अद्वैतवादका प्रचार करनेकी आज्ञा दी और उनकी १६ वर्षकी अल्पायुको ३२ वर्ष बढ़ा दिया। फिर तो शङ्कराचार्य दिग्विजयके लिये निकल पड़े।

वहाँसे कुरुक्षेत्र होते हुए वे बदरिकाश्रम गये। जो ग्रन्थ उनके मिलते हैं, प्रायः सबको उन्होंने काशी अथवा बदरिकाश्रममें ही लिखा था। १२ वर्षसे १६ वर्षतककी अवस्थामें उन्होंने सारे ग्रन्थ लिखे थे। वहाँसे प्रयाग आये और यहाँ कुमारिलभट्टसे भेंट हुई। कुमारिलभट्टके कथनानुसार वे माहिष्मती नगरीमें मण्डनमिश्रके पास शास्त्रार्थके लिये आये। उस शास्त्रार्थमें मध्यस्थ बनायी गयीं मण्डनमिश्रकी विदुषी पत्नी भारती। मण्डन-मिश्रकी पराजय हुई और उन्होंने शङ्कराचार्यका शिष्यत्व ग्रहण किया और ये ही आगे चल-कर सुरेश्वराचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुए। कहते हैं, भारतीने पतिके हार जानेपर स्वयं शङ्करा-

---

इसके अनुसार शङ्कराचार्य गौड़पादके प्रशिष्य नहीं थे। गौड़पादसे लेकर शङ्कराचार्यतक गौड़पाद, पावक, पराचार्य, सत्यनिधि, रामचन्द्र, गोविन्द और शङ्कर इन सात पुरुषोंके नाम मिलते हैं। आदि-विद्वान् कपिलसे ही शङ्करसम्प्रदायकी प्रवृत्ति हुई है, यह इस ग्रन्थकारका मत है। कपिलसे गौड़पाद-तक गुरुओंके नाम क्रमशः इस प्रकार है—कपिल, अत्रि, वसिष्ठ, सनक, सनन्दन, भृगु, सनत्सुजात, वामदेव, नारद, गौतम, शौनक, शक्ति, मार्कण्डेय, कौशिक, पराशर, शुक, आङ्गिरा, कण्व, जाबालि, भरद्वाज, वेदव्यास, ईशान, रमण, कपर्दी, भूधर, सुभट, जलज, भूतेश, परम, विजय, मरण, पद्मेश, सुभग, विशुद्ध, समर, कैवल्य, गणेश्वर, सपाथ, विबुध, योग, विज्ञान, अनङ्ग, विभ्रम, दामोदर, चिदाभास, चिन्मय, कलाधर, वीरेश्वर, मन्दार, त्रिदश, सागर, मृड, हर्ष, सिंह, गौड़, वीर, घोर, ध्रुव, दिवाकर, चक्रधर, प्रथमेश, चतुर्भुज, आनन्दभैरव, धीर, गौड़पाद।

इस ग्रन्थके अनुसार शङ्कराचार्यके १४ शिष्य थे, ५ सन्यासी और ९ गृहस्थ सन्यासी शिष्योंमें एक नाम शङ्कर भी था, शेष चारके नाम—पद्मपाद, बोध, गीर्वाण और आनन्दतीर्थ थे।

पद्मपादके छः सन्यासी शिष्य थे—माण्डल, परपावक, निर्वाण, गीर्वाण, चिदानन्द और शिवोत्तम। बोधाचार्यके बहुत शिष्य थे। गीर्वाणेन्द्रके मुख्य शिष्यका नाम विद्वद्गीर्वाण था। विद्वद्गी-र्वाणके विबुधेन्द्र, विबुधेन्द्रके सुधीन्द्र और सुधीन्द्रके शिष्यका नाम मन्त्रगीर्वाण था। मन्त्रगीर्वाणके गृही और सन्यासी दोनों प्रकारके शिष्य थे। आनन्दतीर्थके सभी शिष्य गृही थे जो पादुकापीठकी आराधना करते थे। सुन्दराचार्यके तीन प्रकारके शिष्य थे—पीठनायक, सन्यासी और गृही। विष्णुशर्माके शिष्यका नाम प्रगल्भाचार्य था। ये विद्यार्णवग्रन्थकार प्रगल्भाचार्यके शिष्य थे।

चार्यसे विवाद किया और कामकलासम्बन्धी प्रश्न पूछा, जिसके लिये शङ्कराचार्यको योगबलसे एक मृत राजाके शरीरमें प्रवेश करके कामकलाकी शिक्षा ग्रहण करनी पड़ी। पतिके संन्यासी हो जानेपर भारती शृङ्गगिरिमें रहकर अध्यापनका कार्य करने लगी। कहते हैं कि भारतीद्वारा शिक्षा प्राप्त करनेके कारण ही शृङ्गेरी और द्वारकाके मठोंका शिष्यसम्प्रदाय "भारती"के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

मगधविजय करके शङ्कराचार्य दक्षिणकी ओर चले और महाराष्ट्रमें शैव और कापालिकोंको पराजित किया। वहांसे चलकर दक्षिणमें तुङ्गभद्राके तटपर उन्होंने एक मन्दिर बनवाकर उसमें शारदादेवीकी स्थापना की। इसके साथ जो मठ स्थापित हुआ उसे शृङ्गेरीमठ कहते हैं। सुरेश्वराचार्य इसी मठमें आचार्य पदपर नियुक्त हुए। इन्हीं दिनों शङ्कराचार्य अपनी वृद्धा माताकी मृत्यु समीप जानकर घर वापस आये और माताकी अन्त्येष्टि क्रिया की। वहाँसे ये शृङ्गेरीमठमें आये और फिर वहाँसे पुरी आकर इन्होंने गोवर्धनमठकी स्थापना की और पद्मपादाचार्यको मठाधिपति नियुक्त किया। इन्होंने चोल और पाण्ड्य देशके राजाओंकी सहायतासे दक्षिणके शाक्त, गाणपत्य और कापालिक सम्प्रदायके अनाचारको दूर किया। पुनः उत्तर भारतकी ओर मुड़े। उज्जैन आये और वहाँ इन्होंने भैरवोंकी भीषण साधनाको बन्द किया। फिर गुजरात आये और द्वारकामें एक मठ स्थापित कर अपने शिष्य हस्तामलकाचार्यको आचार्य पदपर बैठाया। फिर गाङ्गेय प्रदेशके पण्डितोंको पराजित करते हुए काश्मीरके शारदाक्षेत्रमें आये तथा वहाँके पण्डितोंको हराकर अपने मतकी स्थापना की। फिर यहाँसे आचार्य आसामके कामरूप स्थानमें आये और वहाँके शैवोंसे शास्त्रार्थ किया। यहाँसे फिर बदरिकाश्रमको वापस आये और वहाँ ज्योतिर्मठकी स्थापन कर तोटकाचार्यको मठाधीश बनाया। वहाँसे अन्ततः ये केदारक्षेत्रमें आये और यहींपर कुछ दिनों पीछे भारतवर्षका यह प्रोज्ज्वल सूर्य सदाके लिये अस्त हो गया।

यों तो शङ्कराचार्यके लिखे हुए लगभग २७२ ग्रन्थ बताये जाते हैं, परन्तु यह कहना कठिन है कि वे सब उन्हींके लिखे हुए हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इनमेंसे बहुतेरे पीछेके आचार्योंके बनाये हुए होंगे जो शङ्कराचार्यकी उपाधि धारण करनेवाले थे और जिन्होंने अपने पूरे नाम नहीं दिये। जो हो, प्रधान-प्रधान ग्रन्थ ये हैं—ब्रह्मसूत्रभाष्य, उपनिषद् (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, नृसिंहपूर्वतापनीय, श्वेताश्वतर इत्यादि) भाष्य, गीताभाष्य, विष्णुसहस्रनाम भाष्य, सनत्सुजातीय भाष्य, हस्तामलक भाष्य, ललितात्रिशती भाष्य, विवेकचूडामाण, प्रबोध-सुधाकर, उपदेशसाहस्री, अपरोक्षानुभूति, शतश्लोकी, दशश्लोकी, सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसङ्ग्रह, वाक्यसुधा, पञ्चीकरण, प्रपञ्चसारतन्त्र, आत्मबोध, मनीषापञ्चक, आनन्दलहरी-स्तोत्र इत्यादि।

मल्लिकार्जुनके अधिकांश शिष्य विन्ध्यदेशमें रहते थे। इसी प्रकार त्रिविक्रमके शिष्य जगन्नाथक्षेत्रमें, श्रीधरके शिष्य गौड़, मिथिला तथा वङ्गदेशमें और कपर्दीके शिष्य काशी, अयोध्या प्रभृति देशोंमें रहते थे।

वेदान्ताचार्य्योंकी परम्परा और स्मार्त्त मत

शङ्कर-मत

उनके समयमें भारतवर्ष बौद्ध, जैन एवं कापालिकोंके प्रभावसे पूर्णतया प्रभावित हो चुका था। वैदिकधर्मका लोप हो रहा था। लोग बड़ी तेजीसे सुगत और महावीरकी छत्र-छायामें शरण ले रहे थे। इसी कठिन अवसरपर शङ्करने प्रकट होकर डूबते हुए वैदिकधर्मका पुनरुद्धार किया। अपनी छोटी-सी आयुमें उन्होंने जो अतिमानुष कार्य किया वह वास्तवमें बड़ा ही विस्मयजनक है। उन्होंने जिस सिद्धान्तकी स्थापना की उसपर संसारके बड़ेसे बड़े विद्वान् और विचारक मन्त्रमुग्ध हैं।

आत्मा और अनात्मा—भगवान् शङ्करने ब्रह्मसूत्रका भाष्य लिखते समय सबसे पहले आत्मा और अनात्माका विवेचन किया है। यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो सम्पूर्ण प्रपञ्चको दो प्रधान भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—द्रष्टा और दृश्य। एक वह तत्त्व जो सम्पूर्ण प्रतीतियोंका अनुभव करनेवाला है और दूसरा वह जो अनुभवका विषय है। इनमें समस्त प्रतीतियोंके चरम साक्षीका नाम 'आत्मा' है तथा जो कुछ उसका विषय है वह सब 'अनात्मा' है। आत्मतत्त्व नित्य, निश्चल, निर्विकार, असङ्ग, कूटस्थ, एक और निर्विशेष है। बुद्धिसे लेकर स्थूल भूतपर्यन्त जितना भी प्रपञ्च है उसका आत्मासे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। अज्ञानके कारण ही देह और इन्द्रियादिसे अपना तादात्म्य स्वीकार कर जीव अपनेको अन्धा-काना, मूर्ख-विद्वान्, सुखी दुखी तथा कर्त्ता-भोक्ता मानता है। इस प्रकार बुद्धि आदिके साथ जो आत्माका तादात्म्य हो रहा है उसे आचार्यने 'अध्यास' शब्दसे निरूपित किया है। आचार्यके सिद्धान्तानुसार तो सम्पूर्ण प्रपञ्चकी सत्यत्वप्रतीति अध्यास या मायाके ही कारण है। इसीसे अद्वैतवादको अध्यासवाद या मायावाद भी कहते हैं। इसका तात्पर्य यही है कि जितना भी दृश्यवर्ग है वह सब मायाके कारण ही विभिन्न-सा प्रतीत होता है। वस्तुतः तो वह एक अखण्ड, शुद्ध, चिन्मात्र ही है।

ज्ञान और अज्ञान—सम्पूर्ण विभिन्न प्रतीतियोंके स्थानमें एक अखण्ड सच्चिदानन्द-घनका अनुभव करना ही 'ज्ञान' है तथा उस सर्वाधिष्ठानपर दृष्टि न देकर भेदमें सत्यत्वबुद्धि करना ही 'अज्ञान' है। जिस प्रकार नानाप्रकारके आभूषण तत्त्वदृष्टिसे सुवर्णमात्र ही हैं, तरह-तरहके मृन्मय पात्र केवल मृत्तिकामात्र ही होते हैं तथा तरङ्ग और भँवर आदि जलसे अभिन्न ही होते हैं, उसी प्रकार यह अनेकविधभेदसङ्कुलित संसार केवल शुद्ध परब्रह्म ही है। उससे भिन्न कहीं कोई वस्तु नहीं है—और वही अपना आत्मा है। इस प्रकारका अभेदबोध ही 'ज्ञान' कहलाता है। जबतक ऐसा बोध नहीं होता तबतक जीव आवागमनके चक्रसे मुक्त नहीं होता। ऐसा बोध होते ही उसकी दृष्टिमें जगत्का अत्यन्ताभाव हो जाता है और वह दूसरोंकी दृष्टिमें शरीर रहते हुए भी स्वयं मुक्त हो जाता है।

साधन—भगवान् शङ्कराचार्यने श्रवण, मनन और निदिध्यासनको ज्ञानका साक्षात् साधन स्वीकार किया है। किन्तु इनकी सफलता ब्रह्मतत्त्वकी जिज्ञासा होनेपर ही है तथा जिज्ञासाकी उत्पत्तिमें प्रधान सहायक दैवी सम्पत्ति है। आचार्यका मत है कि जो मनुष्य विवेक, वैराग्य, शमादि षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुता, इन चार साधनोंसे सम्पन्न है उसीको

चित्तशुद्धि होनेपर जिज्ञासा हो सकती है। इस प्रकारकी चित्तशुद्धिके लिये निष्काम कर्मानुष्ठान बहुत उपयोगी है।

भक्ति—भगवान् शङ्करने भक्तिको ज्ञानोत्पत्तिका प्रधान साधन माना है, फलरूपसे तो वे ज्ञानको ही स्वीकार करते हैं। भक्तिका लक्षण करते हुए वे विवेकचूडामणिमें कहते हैं—'स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते।' अर्थात् अपने शुद्ध स्वरूपका स्मरण करना ही 'भक्ति' कहलाता है। आत्मजिज्ञासुके लिये वस्तुतः यह भक्ति प्रधान है ही फिर भी उन्होंने सगुणोपासनाकी उपेक्षा नहीं की। प्रबोधसुधाकरमें तो यहाँतक लिखा है कि भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंकी भक्तिके विना चित्त शुद्ध हो ही नहीं सकता। इसके सिवा उन्होंने जो बहुतसे भक्तिस्तोत्र लिखे हैं उनसे भी उनकी सगुणभक्तिका अच्छा परिचय मिलता है। प्रबोधसुधाकरके निम्नलिखित श्लोकोंसे तो यह सिद्ध होता है कि वे भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे और उनकी वनभोजन लीलाका ध्यान किया करते थे।

ध्यानविधि

यमुनातटनिकटस्थितवृन्दावनकानने महारम्ये।
कल्पद्रुमतलभूमौ चरणं चरणोपरि स्थाप्य॥
तिष्ठन्तं घननीलं स्वतेजसा भासयन्तमिह विश्वम्।
पीताम्बरपरिधानं चन्दनकर्पूरलिप्तसर्वाङ्गम्॥
आकर्णपूर्णनेत्रं कुण्डलयुगमण्डितश्रवणम्।
मन्दस्मितमुखकमलं सुकौस्तुभोदारमणिहारम्॥
वलयाङ्गुलीयकाद्यानुज्ज्वलयन्तं स्वलङ्कारान्।
गलविलुलितवनमालं स्वतेजसापास्तकलिकालम्॥
गुञ्जारवालिकलितं गुञ्जापुञ्जान्विते शिरसि।
भुञ्जानं सह गोपैः कुञ्जान्तरवर्त्तिनं हरिं स्मरत॥

'श्रीयमुनाजीके तटपर स्थित वृन्दावनके किसी महामनोहर बगीचेमें जो कल्पवृक्षके नीचेकी भूमिमें चरणपर चरण रक्खे बैठे हैं, जो मेघके समान श्याम वर्ण हैं और अपने तेजसे इस निखिल ब्रह्माण्डको प्रकाशित कर रहे हैं, जो सुन्दर पीताम्बर धारण किये हुए हैं तथा समस्त शरीरमें कर्पूरमिश्रित चन्दनका लेप लगाये हुए हैं, जिनके कर्णपर्यन्त विशाल नेत्र हैं, कुण्डलके जोड़ेसे कान सुशोभित हैं, मुखकमल मन्द-मन्द मुसका रहा है, तथा जिनके वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणियुक्त सुन्दर हार है, और जो [अपनी कान्तिसे] कङ्कण और अँगूठी आदि सुन्दर आभूषणोंकी भी शोभा बढ़ा रहे हैं, जिनके गलेमें वनमाला लटक रही है और अपने तेजसे जिन्होंने कलिकालको परास्त कर दिया है तथा जिनका गुञ्जावलिविभूषित मस्तक गूँजते हुए भ्रमरसमूहसे सुशोभित है, किसी कुञ्जके भीतर बैठकर ग्वालबालोंके साथ भोजन करते हुए उन श्रीहरिका स्मरण करो'।

मन्दारपुष्पवासितमन्दानिलसेवितं परानन्दम्।
मन्दाकिनीयुतपदं नमत महानन्ददं महापुरुषम्॥

वेदान्ताचार्य्योंकी परम्परा और स्मार्त्त मत

'जो कल्पवृक्षके पुष्पोंकी गन्धसे युक्त मन्द-मन्द वायुसे सेवित हैं, परमानन्दस्वरूप हैं तथा जिनके चरणकमलोंमें श्रीगङ्गाजी विराजमान् हैं, उन महानन्ददायक महापुरुषको नमस्कार करो'।

कर्म और संन्यास—श्रीशङ्कराचार्यने अपने भाष्योंमें जगह-जगह कर्मोंका स्वरूपसे त्याग करनेपर ही जोर दिया है। वे जिज्ञासु और बोधवान् दोनोंके लिये सर्वकर्मसंन्यासकी आवश्यकता बतलाते हैं। उनके मतमें निष्काम कर्म केवल चित्तशुद्धिका हेतु है। परमपदकी प्राप्ति तो कर्मसंन्यासपूर्वक श्रवण, मनन और निदिध्यासन करके आत्मतत्त्वका बोध प्राप्त होनेपर ही हो सकती है।

स्मार्त्त मत—महाभारतके अध्ययनसे यह पता चलता है कि किसी न किसी रूपमें उस समय भी शिव, विष्णु, दुर्गा, दत्तात्रेय और स्कन्द आदि अनेक देवताओंकी उपासना प्रचलित थी। दत्तात्रेय, ब्रह्मा विष्णु और शिवकी त्रिमूर्त्तिके अवतार माने जाते थे। गणेश और स्कन्द सभी मारक-शक्तियोंके अधिपति माने जाते थे। आह्निक सन्ध्या और होम, तप और उपवास, जप और अहिंसाव्रत, अतिथिपूजा और शौचाचार, संस्कार प्रायश्चित्त और श्राद्ध-बलिदान आदि वैदिक रीतिके अनुसार प्रचलित थे। देव-प्रतिमाओंके वर्णनसे मूर्त्ति-पूजाका भी उस समय होना सिद्ध होता है। वर्णाश्रमधर्म उस समय साधारणतया सर्वमान्य समझा जाता था, और आस्तिक लोग साधारणतया स्वर्ग और नरक आदि परलोकोंको भी मानते थे।

उस समय नास्तिक भी थे। चार्वाककी चर्चा महाभारतमें आयी है। रामायणमें जाबालिके कथनसे पता चलता है कि रामायणकालमें भी नास्तिक लोगोंकी संख्या अच्छी रही होगी। बौद्धों और जैनोंकी चर्चासे कुछ लोग समझते हैं कि ये अंश पीछेसे मिलाये गये हैं, अथवा इन ग्रन्थोंकी रचना ही पीछे हुई है। परन्तु नास्तिकोंकी चर्चा वेदोंमें प्रचुरतासे मौजूद है, और उन्हें असुरयोनिमें गिना गया है। इस बातसे स्पष्ट है कि नास्तिकोंकी पर-म्परा भी बहुत पुरानी है, या कमसे कम उतनी ही पुरानी है, जितनी आस्तिकोंकी।

महाभारतके बहुत काल पीछे महावीर जिन और गौतमबुद्धके समयसे नास्तिक मतोंका प्रचार बढ़ा और धीरे-धीरे सारे देशमें राजा और प्रजा दोनोंमें व्याप गया। बौद्ध मतके आत्यन्तिक प्रचारसे आस्तिक धर्म्मों और वर्ण-विभागका कुछ कालके लिए लोप हो गया। नास्तिक मतका प्रभाव भारतवर्षसे बाहर अन्यान्य देशोंमें भी जाकर फैल गया। यह एक भारी परिवर्त्तन था। धार्मिक क्रान्ति थी। जिससे श्रुतियों और स्मृतियोंको लोग बिल-कुल भूल गये। बौद्धोंको राज्याश्रय मिल जानेके कारण नास्तिक मत दुर्जेय हो गया।

वर्णाश्रमधर्मकी फिरसे स्थापना भगवान् शङ्करने ही की। जप, तप, व्रत, उपवास, यज्ञ, दान, संस्कार, उत्सव, प्रायश्चित्त आदि फिरसे जीवित हुए। इसमें भगवान् शङ्करको तान्त्रिकोंसे भी बड़ी सहायता मिली। तान्त्रिकोंकी प्रथा गुप्त रहती थी उनके चक्र और मण्डल देशमें गुप्तरूपसे फैले हुए थे। इनका प्रभाव बौद्धोंपर भी पड़ा और वह भी तान्त्रिकों-में सम्मिलित हुए। इन लोगोंने प्राचीन श्रौत और स्मार्त्त ग्रन्थोंको किसी न किसी तरह सुरक्षित रक्खा था। शङ्करने जब शास्त्रार्थके लिये ललकार-ललकार कर उस समयके प्रचलित-

मतोंका खण्डन करना शुरू किया तो उनके प्रहारसे बहुत कम लोग बचने पाये। उन्होंने अद्वैतवेदान्तकी जो व्याख्या की उसके सामने उस समयके आस्तिक और नास्तिक सब कट गये। उन्होंने पञ्चदेव उपासनाकी रीति चलायी, जिसमें विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश और शक्ति, परमात्माके इन पाँचों रूपोंमेंसे एकको प्रधान मानकर और शेषको उसका अङ्गीभूत समझकर उपासना की जाने लगी। उन्होंने पुराने पाञ्चरात्र पाशुपत आदि मतोंको भी न छोड़ा। पञ्चदेव उपासनावाला मत इसीलिये स्मार्त्त मत कहलाया। आज भी साधारण सनातनधर्मी इसी स्मार्त्त मतके माननेवाले समझे जाते हैं।

शिष्य-परम्परा—उनका संन्यासियोंका भी एक विशेष सम्प्रदाय चला जो दशनामी करके मशहूर हैं। शङ्कराचार्यके चार प्रधान शिष्य बतलाये जाते हैं, पद्मपाद, हस्तामलक, मण्डन और तोटक। इनमेंसे पद्मपादके दो शिष्य थे, तीर्थ और आश्रम। हस्तामलकके दो शिष्य थे, वन और अरण्य। मण्डनके तीन शिष्य थे, गिरि, पर्वत और सागर। इसी प्रकार तोटकके तीन शिष्य थे, सरस्वती, भारती और पुरी। इन्हीं दस शिष्योंके नामसे सन्यासियोंके दस भेद चले। शङ्कराचार्यने चार मठ स्थापित किये थे जिनमें इन दस प्रशिष्योंकी शिष्य-परम्परा चली आती है। पुरी, भारती और सरस्वतीकी शिष्य-परम्परा शृङ्गेरीमठके अन्तर्गत है। तीर्थ और आश्रम शारदामठके अन्तर्गत हैं। वन और अरण्य गोवर्द्धनमठके अन्तर्गत हैं, तथा गिरि, पर्वत और सागर जोशीमठके अन्तर्गत हैं। प्रत्येक दशनामी संन्यासी इन्हीं चार मठोंमेंसे किसी न किसीके अन्तर्गत होता है। यद्यपि दशनामी ब्रह्म या निर्गुण उपासक प्रसिद्ध हैं पर इनमेंसे बहुतेरे शैव मन्त्रकी दीक्षा लेते हैं। शङ्कराचार्यने सामान्य शैव और स्मार्त्त मत चलाया और वैष्णव सम्प्रदायोंका खण्डन भी किया। जो हो बौद्ध धर्म-विप्लवके बाद स्वामी शङ्कराचार्यका अवतार न हुआ होता तो आज हिन्दू आस्तिक धर्मका दुनियाके पर्देपर पता न होता। इन्हींकी पञ्चदेव उपासनाकी बदौलत प्राग्बौद्ध-कालीन उपासनाएँ किसी न किसी रूपमें फिरसे जी उठीं। शङ्करस्वामीके शिष्य संन्यासियोने बौद्ध संन्यासियों-की तरह घूम-घूमकर सनातनधर्मके इस महा जागरणमें बड़ी सहायता पहुँचायी।

उनकी गद्दीपर बैठनेवाले उनके चारों मठोंमें शङ्कराचार्य ही कहलाते आये हैं। शङ्करा-चार्य प्राय. अपने समयके अप्रतिम विद्वान् ही होते आये हैं। इनकी असंख्य रचनाएँ हैं, स्तोत्र हैं, सभी "श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितम्" कहे जाते हैं। सभी आदिशङ्करकी रचनाएँ नहीं हो सकतीं। फिर भी स्मार्त्त मतकी पोषिका सभी रचनाएँ हैं और सभी स्मार्त्तोंमें प्रचलित हैं।

आचार्य पद्मपाद

आचार्य पद्मपाद भगवान् शङ्कराचार्यके सर्वप्रथम शिष्य थे। उनका नाम पहले सनन्दन था। इनका जन्म दक्षिणके चोलप्रदेशमें हुआ था। ये गुरुके अनन्यभक्त और आज्ञा-नुवर्त्ती थे। शङ्कराचार्य इन्हें सदा पास रखकर परमात्मतत्त्वका उपदेश दिया करते थे और अपने भाष्य तीन वार पढ़ा चुके थे। एक वार गुरुने इन्हें नदीके उस पारसे आवाज दी। वस, आवाज सुनते ही ये गुरुकी ओर चल पड़े, यह विचार ही नहीं किया कि नदी सामने है और इसे कैसे पार करेंगे। कहते हैं, नदीके ऊपर जहाँ-जहाँ इनका पैर पड़ता वहाँ-वहाँ

कमलका फूल उग आता और उन्हीं फूलोंपर चलकर वह नदीके पार आ गये। गुरुने इनकी भक्तिसे प्रसन्न होकर प्रेमपूर्वक आलिङ्गन किया और उनका नाम पद्मपाद रख दिया। उग्र-भैरव कापालिकने जब शङ्कराचार्यको बलि चढ़ाना चाहा तब आचार्य पद्मपादने ही उसका वध किया था। जब शङ्कराचार्य शृङ्गेरीमठमें कुछ दिन ठहरे हुए थे तब गुरुकी आज्ञा लेकर ये तीर्थाटनको चले गये और अपने साथ अपनी लिखी हुई पुस्तक भी लेते गये। कहते हैं, जब ये अपनी पुस्तक अपने मामाके घर रखकर रामेश्वर गये तब मामाने घरमें आग लगाकर पुस्तक जला दी। इनके मामा प्राभाकरमतावलम्बी थे। वे यह नहीं चाहते थे कि शाङ्करमतका प्रचार हो। इसीसे उन्होंने ऐसा किया। जब पद्मपादको पुस्तक जलनेकी बात मालूम हुई तब इन्होंने दुबारा लिखनेका विचार किया। जब यह बात इनके मामाको मालूम हुई तो उन्होंने पद्मपादको विष दे दिया, जिससे ये प्रायः पागलसे हो गये। आखिर पद्मपादने आकर सब हाल गुरुसे निवेदन किया। गुरुने कहा कि एक बार तुमने मुझे वह ग्रन्थ सुनाया था, वह मुझे याद है, मैं बोलता हूँ, तुम लिख लो। फिर शङ्कराचार्यने वह ग्रन्थ इन्हें लिखा दिया। शङ्कराचार्यने पद्मपादको पुरीके गोवर्द्धनमठका अध्यक्ष बनाया। शङ्कराचार्यके तिरोभावके बाद भी इन्होंने जीवित रहकर अद्वैतमतका प्रचार किया।

आचार्य पद्मपादका वह ग्रन्थ अब पूरा नहीं मिलता। उसका नाम 'पञ्चपादिका' है। आचार्य पद्मपादने गुरुकी आज्ञासे शारीरक भाष्यकी व्याख्या लिखना आरम्भ किया था। पञ्चपादिकामें केवल चार सूत्रोंकी व्याख्या है। पञ्चपादिकापर प्रकाशात्म मुनिकी विवरण नामक एक टीका मिलती है। पञ्चपादिका-विवरणकी भी एक टीका अखण्डानन्द मुनिने लिखी है, जिसका नाम तत्त्वदीपन है।

पञ्चपादिकाके अतिरिक्त आत्मानात्मविवेक, प्रपञ्चसार तथा सुरेश्वराचार्यकृत लघुवार्त्तिककी टीका—ये तीन ग्रन्थ और भी पद्मपादाचार्यके लिखे मिलते हैं। आचार्य पद्मपादके शिष्योंसे ही दशनामी संन्यासियोंकी 'आश्रम' और 'अरण्य' नामकी शाखाएँ निकली हैं।

श्रीसुरेश्वराचार्य या मण्डनमिश्र

मण्डनमिश्र रेवानदीके तटवर्त्ती प्राचीन माहिष्मती नगरीके रहनेवाले थे। किसी-किसीके मतानुसार माहिष्मती नगरी वर्त्तमान राजगृह ही थी या उसके आसपास कहीं बसी थी। कुछ लोगोंका कहना है कि यह नगरी नर्मदातटपर कहीं वर्त्तमान इन्दौर राज्यमें थी। मण्डनमिश्र अपने समयमें मगधके सबसे बड़े विद्वान् और पूर्वमीमांसक थे। कहते हैं, ये कुमारिलभट्टके शिष्य थे और कुमारिलभट्टने ही शङ्कराचार्यको मण्डनमिश्रके पास शास्त्रार्थ करनेके लिये भेजा था। जिस समय शङ्कराचार्य माहिष्मती नगरीमें पहुँचे, उस समय उन्होंने स्त्रियोंके समूहसे स्नानार्थ नदी तटपर आयी हुई मण्डनमिश्रकी एक दासीसे उनके घरका पता पूछा। उस दासीने श्लोकोंमें उत्तर दिया—

स्वतःप्रमाणं परतःप्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनमिश्रधाम॥
फलप्रदं कर्म फलप्रदोऽजः कीराङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति।

द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनमिश्रधाम ॥
जगद्ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात् कीराङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति ।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनमिश्रधाम ॥

अर्थात् "वेद स्वतःप्रमाण है या परतःप्रमाण, कर्म आप ही फल देता है या ईश्वर कर्मका फल देता है, जगत् नित्य है या अनित्य, इस प्रकार जिनके द्वारके आगे पिंजरेमें बैठी मैना बोलती है, वही मण्डनमिश्रका घर है।"

इस उत्तरसे सहज ही अनुमान हो सकता है कि उस समय देशमें विद्याका कितना प्रचार था और मण्डनमिश्रके घरपर कैसी शास्त्रचर्या हुआ करती थी।

शङ्कराचार्य आखिर मण्डनमिश्रके घर पहुँचे और शास्त्रार्थमें उन्हें परास्त किया, जिसका वर्णन पहले शङ्कराचार्यके जीवनचरितमें आ चुका है। मण्डनमिश्र शर्तके अनुसार शङ्कराचार्यका शिष्यत्व ग्रहण करके संन्यासी हो गये और विश्वरूप तथा सुरेश्वराचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुए। सुरेश्वर संन्यास लेकर गुरुके साथ देशका भ्रमण करते रहे और जब शङ्करने शृङ्गेरीमठकी स्थापना की तब सुरेश्वरको वहाँका आचार्य बनाया। शृङ्गेरीमठके प्राचीन लेखोंसे ऐसा मालूम होता है कि वे ८०० वर्षतक जीवित रहे। परन्तु इसका और कहीं कोई प्रमाण नहीं मिलता।

सुरेश्वराचार्य पाण्डित्यके अगाध सागर थे। उन्होंने कितने ही ग्रन्थ बनाये जिनमें विचारकी बड़ी प्रौढ़ता तथा सुशृङ्खला पायी जाती है। यही कारण है कि उनके वाक्योंको चित्सुख, विद्यारण्य, सदानन्द, गोविन्दानन्द, अप्पय्य दीक्षित आदि प्रायः सभी परवर्त्ती आचार्योंने प्रमाणके रूपमें उद्धृत किया है। शाङ्करमतके आचार्योंमें सबसे अधिक प्रतिष्ठा इन्हींको प्राप्त है।

संन्यास ग्रहण करनेके पूर्व मण्डनमिश्रने आपस्तम्बीय मण्डनकारिका, भावनाविवेक और काशीमोक्षनिर्णय नामक ग्रन्थोंकी रचना की थी। संन्यास लेनेके बाद इन्होंने तैत्तिरीय-श्रुतिवार्त्तिक, नैष्कर्म्यसिद्धि, इष्टसिद्धि या स्वाराज्यसिद्धि, पञ्चीकरणवार्त्तिक, बृहदारण्यकोपनिषद्वार्त्तिक, ब्रह्मसिद्धि, ब्रह्मसूत्रभाष्यवार्त्तिक, विधिविवेक, मानसोल्लास या दक्षिणामूर्त्ति-स्तोत्रवार्त्तिक, लघुवार्त्तिक, वार्त्तिकसार और वार्त्तिकसारसङ्ग्रह आदि ग्रन्थ लिखे। सुरेश्वराचार्यने संन्यास लेनेके बाद शाङ्करमतका ही प्रचार किया और अपने ग्रन्थोंमें प्रायः उसी मतका समर्थन किया।

सर्वज्ञात्ममुनि

श्रीशङ्कराचार्यजीके प्रधान शिष्योंमेंसे पद्मपादाचार्य और सुरेश्वराचार्यके अतिरिक्त और किसीके विषयमें विशेष कुछ पता नहीं लगता और न किसीका कोई प्रसिद्ध ग्रन्थ ही मिलता है। श्रीशङ्करके तिरोभावके बाद उनके स्थापित देशके चारों कोनोंके चारों मठोंद्वारा अद्वैत-मतका प्रचार होने लगा। चार मठोंके अन्तर्गत दशनामी संन्यासियोंकी परम्परा निकल पड़ी और ये सब लोग शाङ्करमतके प्रचारमें हाथ बँटाने लगे। परन्तु प्रायः ईसवी सन्की आठवीं-नवीं शताब्दीतक किसी वैसे बड़े आचार्यका वर्णन नहीं मिलता और न कोई प्रधान ग्रन्थ ही उस समयमें लिखा हुआ मिलता है। प्रायः आठवीं शताब्दीमें वेदान्तके अन्यान्य मतोंका भी

प्रचार होना शुरू हुआ। उस समय शृङ्गेरीमठकी गद्दीपर सर्वज्ञात्ममुनि विराजमान् थे। इनका दूसरा नाम नित्यबोधाचार्य था। इन्होंने लगभग आठवीं शताब्दीके अन्तमें शाङ्कर-मतको और भी परिस्फुट करनेके उद्देश्यसे 'संक्षेपशारीरक' नामक ग्रन्थकी रचना की। इन्होंने अपने गुरुका नाम देवेश्वराचार्य लिखा है। टीकाकार मधुसूदन सरस्वती और रामतीर्थने देवे-श्वराचार्यका अर्थ सुरेश्वराचार्य किया है। किन्तु इन दोनोंके कालमें बहुत अन्तर है। इसलिये सम्भव है, इस नामके कोई दूसरे आचार्य रहे हों। ये शृङ्गेरीमठकी गद्दीपर आसीन थे, अतः सम्भव है, कहीं दक्षिणके ही रहनेवाले हों। शृङ्गेरीमठके प्राचीन लेखोंसे मालूम होता है कि उनका समय विक्रमी संवत् ८१४-९०५ था। इससे अधिक उनके जीवनके विषयमें कुछ पता नहीं लगता।

इनका रचा हुआ 'संक्षेपशारीरक' नामक ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र-शाङ्करभाष्यके आधारपर लिखा गया है। इसमें श्लोक और वार्त्तिक दोनों हैं। जिस प्रकार शारीरकभाष्य चार अध्यायोंमें समाप्त हुआ है, उसी प्रकार इसमें भी चार ही अध्याय हैं और उनके विषयोंका क्रम भी उसीके समान है। श्रीसर्वज्ञात्ममुनिने अपने ग्रन्थको 'प्रकरणवार्त्तिक' बतलाया है। इसके पहले अध्यायमें ५६२, दूसरेमें २४८, तीसरेमें ३६५ और चौथेमें ५३ श्लोक हैं। पर-वर्त्ती आचार्योंने इस ग्रन्थको प्रमाणरूपसे स्वीकार किया है तथा श्रीमधुसूदन सरस्वती और श्रीरामतीर्थ स्वामीने इसपर टीकाएँ भी लिखी हैं।

आचार्य वाचस्पतिमिश्र

आचार्य सर्वज्ञात्ममुनिके समयमें ही अद्वैताकाशमें पुनः एक देदीप्यमान् नक्षत्रका उदय हुआ। ये नक्षत्र थे 'भामती'कार वाचस्पतिमिश्र। प्रायः नवीं शताब्दीमें जब कि देशमें सर्वत्र बौद्धवाद, पूर्वमीमांसा तथा अन्यान्य वैदान्तिक मतोंका घनघोर संग्राम हो रहा था, उसी समय वाचस्पतिमिश्र रणक्षेत्रमें उपस्थित हुए। इनके समयके विषयमें बहुत मतभेद है। कोई कोई कहते हैं कि इनका जन्म संवत् ११५७में हुआ था। किसी किसीका कहना है कि वह हर्षके समकालीन थे और बारहवीं शताब्दीके अन्तमें या तेरहवीं शताब्दीके आरम्भमें उत्पन्न हुए थे। इन्होंने स्वयं अपने ग्रन्थ 'न्यायसूचीनिबन्ध'में समयके विषयमें जो कुछ कहा है, उससे मालूम होता है कि वह ग्रन्थ सवत् ८९८ वि०में लिखा गया था। इससे मालूम होता है कि ये नवीं दसवीं शताब्दीमें वर्त्तमान थे। इन्होंने 'भामती' नामक टीकामें धर्मकीर्त्ति नामक बौद्ध दार्शनिकका उल्लेख किया है, बादके किसी दार्शनिकका नाम नहीं लिखा, और धर्मकीर्त्तिके पाँचवीं या छठी शताब्दीमें वर्त्तमान रहनेकी बात कही जाती है। इससे भी वाचस्पतिमिश्रका समय नवीं शताब्दीमें मानना उचित मालूम होता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाण भी इस मतके पक्षमें मिलते हैं।

वाचस्पतिमिश्रका जन्मस्थान मिथिला माना जाता है। इनके ग्रन्थोंसे ऐसा मालूम होता है कि ये बड़े धुरन्धर विद्वान् थे और अपने समयके अद्वैतमतके सर्वप्रधान आचार्य थे। इनके बादके प्रायः सभी आचार्योंने इनके वाक्य प्रमाणरूपमें ग्रहण किये हैं। शाङ्करभाष्यपर जो इन्होंने 'भामती' टीका लिखी है, शाङ्करमत समझनेके लिये उसका अध्ययन अनिवार्य

समझा जाता है। इनकी विद्वत्ताके कारण ही इन्हें राजसम्मान प्राप्त हुआ था और उस समयके मगधके राजासे इन्हें बराबर आर्थिक सहायता मिलती रही। आर्थिक सहायता मिलनेके कारण वाचस्पतिमिश्र निश्चिन्ततापूर्वक ग्रन्थ-लेखनका कार्य करते रहे, जिससे ये इतने अधिक सुन्दर, गम्भीर और विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिख सके। ये ग्रन्थ लिखनेमें कितने तल्लीन और बाह्य संसारसे कितने अलग तथा निश्चिन्त रहते थे, इसका अनुमान एक घटनासे लगाया जा सकता है। जिन दिनों ये शारीरक भाष्यकी टीका लिख रहे थे, उन्हीं दिनों एक रात इनके कमरेका दीपक बुझ गया। इनकी धर्मपत्नीने घरके भीतरसे आकर दीपक फिरसे जला दिया और कुछ देर वहाँ मानो कुछ कहनेके लिये खड़ी रहीं। उन्हें खड़ी देखकर वाचस्पतिमिश्रने पूछा—'तुम कौन हो?' स्त्रीने उत्तर दिया, 'मैं आपकी दासी हूँ।' फिर वाचस्पतिमिश्रने पूछा—'क्या तुम मुझसे कुछ माँगना चाहती हो?' स्त्रीने उत्तर दिया—'हिन्दू ललनाके लिये पति सेवा ही परम धर्म है। आपके श्रीचरणोंकी सेवा प्राप्त होनेके कारण मेरा जीवन सार्थक हो गया है। मुझे कोई कामना-वासना नहीं है, बस मैं यही चाहती हूँ कि आपके श्रीचरणोंमें मस्तक रखकर आपसे पहले ही इस संसारसे बिदा हो जाऊँ।' स्त्रीके इस उत्तरसे वाचस्पतिमिश्र बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—'हिन्दू रमणियोंमें तुम आदर्श हो। यह देह तो क्षणभङ्गुर है ही, इसका नाश तो होगा ही। परन्तु मैं तुम्हें अमर करके जाऊँगा। मेरी इस टीकाका नाम तुम्हारे ही नामपर 'भामती' रहेगा।' इस प्रकार अपनी अपूर्व टीकाका नाम 'भामती' रखकर इन्होंने वास्तवमें भामतीका नाम अजर-अमर बना दिया।

वाचस्पतिमिश्रने वेदान्तपर 'भामती', सुरेश्वरकृत ब्रह्मसिद्धिपर 'ब्रह्मतत्त्वसमीक्षा', सांख्यकारिकापर 'तत्त्वकौमुदी', पातञ्जलदर्शनपर 'तत्त्ववैशारदी', न्यायदर्शनपर 'न्यायवार्तिकतात्पर्य', पूर्वमीमांसादर्शनपर 'न्यायसूचीनिबन्ध', भाट्टमतपर 'तत्त्वबिन्दु' तथा मण्डनमिश्रके विधिविवेकपर 'न्यायकणिका' नामक टीकाकी रचना की। इनके अतिरिक्त 'खण्डनकुठार' तथा 'स्मृतिसंग्रह' नामक पुस्तकोंके रचयिताका नाम भी वाचस्पतिमिश्र ही मिलता है। परन्तु यह कहना कठिन है कि इन दोनोंके लेखक भी यही थे या कोई अन्य वाचस्पतिमिश्र।

वाचस्पतिमिश्रने यों तो छहों दर्शनोंकी टीकाएँ लिखी हैं और उनमें उनके सिद्धान्तोंका निष्पक्षभावसे समर्थन किया है, तो भी उनका प्रधान लक्ष्य शाङ्करसिद्धान्त ही है। इनके ग्रन्थोंमें काफी मौलिकता पायी जाती है। शाङ्करसिद्धान्तके प्रचारमें इनका बहुत बड़ा हाथ रहा है। इनकी 'भामती' टीका अद्वैतवादका एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। ये केवल विद्वान् ही नहीं थे, उच्चकोटिके साधक भी थे। इन्होंने अपना प्रत्येक ग्रन्थ श्रीभगवान्‌को ही समर्पण किया है। इससे इनकी आध्यात्मिक प्रवृत्तिका ज्ञान होता है। किन्हीं-किन्हींका विश्वास है कि श्रीसुरेश्वराचार्यने ही वाचस्पतिमिश्रके रूपमें पुनः जन्म लिया था।

श्रीकृष्णमिश्र यति

प्राय. नवीं-दसवीं शताब्दीतक वैदान्तिक चर्चा विद्वानोंतक ही सीमित थी। परन्तु ज्यों ज्यों इसके विभिन्न मतवाद विस्तार-लाभ करते गये त्यों-त्यों इस चर्चाका क्षेत्र बढ़ता गया और सर्वसाधारणमें भी इस चर्चाको फैलानेकी चेष्टा होने लगी। इस दिशामें पुराणोंने

कुछ-कुछ कार्य किया था। परन्तु ग्यारहवीं शताब्दीमें नाटक-काव्यादिके रूपमें वेदान्ततत्त्वको समझानेका प्रयास आरम्भ हुआ। नाटक और काव्य सर्वसाधारणपर गद्यादिकी अपेक्षा अधिक प्रभाव डालते हैं और सुबोध भी होते हैं। अतएव इसी समय अद्वैतमतका प्रचार करनेके उद्देश्यसे श्रीकृष्णमिश्रने 'प्रबोधचन्द्रोदय' नामक नाटककी रचना की। वे प्रायः ग्यारहवीं शताब्दीके शेष भागमें हुए थे। ये एक संन्यासी थे। इनके ग्रन्थसे उनकी कवित्व-शक्ति तथा दार्शनिक प्रतिभा दोनोंका परिचय मिलता है। इससे अधिक इनके जीवनके विषयमें कुछ ज्ञात नहीं है।

प्रकाशात्म यति

प्रायः बारहवीं शताब्दीमें आचार्य रामानुजका आविर्भाव हुआ था और इन्होंने शाङ्करमतका बड़े जोरदार शब्दोंमें खण्डन किया। उस समय शाङ्करमतको पुष्ट करनेकी चेष्टा श्रीप्रकाशात्म यतिने की। इन्होंने पद्मपादाचार्यकृत पञ्चपादिकापर 'पञ्चपादिकाविवरण' नामक टीकाकी रचना की। अद्वैतजगत्में यह टीका भी बहुत मान्य है। बादके आचार्योंने प्रकाशात्म यतिके वाक्य प्रमाणके रूपमें उद्धृत किये हैं। परन्तु इन्होंने अपना परिचय कहीं नहीं दिया। ऐसा मालूम होता है कि ये दसवीं शताब्दीके बाद और तेरहवीं शताब्दीके पहले हुए थे। ये संन्यासी थे और इनके गुरुका नाम श्रीमत् अनन्यानुभव था। इनके गुरुको ब्रह्म-साक्षात्कार हुआ था, ऐसा इनके ग्रन्थसे पता चलता है। उन्होंने गुरुसे ब्रह्मविद्या प्राप्त करके ग्रन्थरचना की थी। ग्रन्थके देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि ये प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनका दूसरा नाम प्रकाशानुभव था। इनके पञ्चपादिका विवरण नामक ग्रन्थके द्वारा अद्वैतमतका—विशेषकर पद्मपादाचार्यके मतका काफी प्रचार हुआ।

आचार्य श्रीअद्वैतानन्द बोधेन्द्र

आचार्य अद्वैतानन्दका जन्म लगभग १२०६ विक्रमीमें दक्षिण भारतकी कावेरी नदीके तटपर पञ्चनन्द नामक स्थानमें हुआ था। इनके पिताका नाम प्रेमनाथ और माताका नाम पार्वतीदेवी था। ये कौण्डिन्य गोत्रके थे। इनका नाम पहले सीतानाथ था। इन्होंने प्रायः सत्रह वर्षकी उम्रमें संन्यास ले लिया। इनके गुरुका नाम भूमानन्द सरस्वती या चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती था। उनके गुरु काञ्चीके शारदामठ (कामकोटिपीठ) के अध्यक्ष थे। गुरुने अद्वैता-नन्दको अपने स्थानपर प्रायः संवत् १२२३ में महन्त नियुक्त किया और आप काशी चले गये। अद्वैतानन्द संन्यास लेनेके पूर्व ही न्याय और मीमांसादर्शनमें पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके थे। जब गुरु वाराणसी चले गये तब इन्होंने रामानन्द सरस्वतीसे पढ़कर अद्वैतविद्यामें भी अच्छी गति प्राप्त कर ली। रामानन्द सरस्वतीने ही इन्हें शारीरकसूत्रभाष्य पढ़ाया। अद्वैतमतका पूर्ण अध्ययन करके इन्होंने सारे भारतका भ्रमण किया और अन्य मतावलम्बियोंसे शास्त्रार्थ करके उन्हें परास्त किया। 'पुण्यश्लोकमञ्जरी'में लिखा है कि इन्होंने खण्डनखण्ड-खाद्यकार श्रीहर्षमिश्रको भी पराजित किया था। परन्तु यह बात उतनी युक्तिसङ्गत नहीं मालूम होती, क्योंकि श्रीहर्षके साथ विवाद करनेका कोई कारण नहीं था। वे भी प्रायः इन्हींके मतके समर्थक थे। श्रीहर्षने श्रीअद्वैतानन्दका नाम तथा अन्य पण्डितोंके इनके द्वारा

पराजित होनेकी बात अपने ग्रन्थमें दी है, परन्तु अपने साथ विवाद होनेकी बात कहीं नहीं लिखी, बल्कि उन्होंने इनके लिये सर्वत्र सम्मानसूचक शब्दोंका व्यवहार किया है, ऐसा ही मालूम होता है। अवश्य ही श्रीहर्ष इनके समसामयिक ही थे। श्रीअद्वैतानन्दके ग्रन्थोंसे मालूम होता है कि रामानन्द मुनिके प्रति इनकी अगाध भक्ति थी। प्रायः ३३ वर्षतक अध्यक्ष पदपर रहकर इन्होंने ५० वर्षकी उम्रमें संवत् १२५५ विक्रमीमें समाधि ग्रहण की। इनके दो और नाम थे—चिद्विलास और आनन्दबोधाचार्य।

अद्वैतानन्दने तीन ग्रन्थोंकी रचना की—ब्रह्मविद्याभरण, शान्तिविवरण और गुरुप्रदीप। इनमें ब्रह्मविद्याभरण ही मुख्य है। इसमें ब्रह्मसूत्रके चारों अध्यायोंकी व्याख्या है। इसे शाङ्करभाष्यकी वृत्ति कह सकते हैं। अद्वैतानन्दने अधिकतर वाचस्पतिमिश्रके मतका अनुसरण किया है।

श्रीहर्षमिश्र

श्रीशङ्कराचार्य और श्रीसुरेश्वराचार्यके बाद प्रायः बारहवीं शताब्दीतक अद्वैतमतके जितने आचार्य हुए, उन्होंने प्राय· व्याख्या या वृत्ति ही लिखी। किसीने कोई प्रमेयबहुल प्रकरण ग्रन्थ नहीं लिखा। बारहवीं शताब्दीमें श्रीहर्षमिश्र हुए, जिन्होंने अन्य मतोंका खण्डन करनेके लिये एक प्रकरण ग्रन्थ लिखा और इस प्रकार अद्वैतजगत्में नवयुग उपस्थित कर दिया। इनकी देखादेखी इनके समसामयिक आनन्दबोध भट्टारकाचार्य तथा बादके चित्सुखाचार्य आदिने भी प्रकरण ग्रन्थोंकी रचना की। श्रीहर्ष दार्शनिक और कवि दोनों थे।

सुना जाता है कि इनके पिताका नाम श्रीहीरपण्डित तथा माताका नाम मामल्लदेवी था। इनके पिता भी कवि थे। परन्तु उनका कोई ग्रन्थ या वर्णन नहीं मिलता। कहते हैं कि श्रीहर्षके पिता श्रीहीरपण्डितको राजसभामें किसी पण्डितने शास्त्रार्थमें हरा दिया। इससे उन्हें बड़ा दु.ख हुआ और वे भगवतीकी उपासना करने लगे। भगवतीने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया कि तुम्हें एक दिग्विजयी पुत्र प्राप्त होगा। उसीके कुछ दिन बाद श्रीहर्षका जन्म हुआ। श्रीहीरपण्डितके मनमें हारका दु.ख जन्म भर बना रहा, शान्त नहीं हुआ। जब वे मृत्युशय्यापर पड़ गये तब उन्होंने श्रीहर्षको बुलाकर अपने पराभवका वृत्तान्त सुनाया और पराजित करनेवाले पण्डितका परिचय देकर कहा कि यदि तुम उस पण्डितको हरा दोगे तो परलोकमें मुझे शान्ति मिलेगी। पुत्रने पिताके अन्तिम वाक्यको पूरा करनेकी प्रतिज्ञा की।

पिताकी मृत्युके बाद उनका श्राद्ध आदि करके श्रीहर्ष विभिन्न स्थानोंमें घूम-घूमकर विद्याध्ययन करने लगे। उन्होंने पिताकी अन्तिम अभिलाषा पूर्ण करना अपने जीवनका मुख्य व्रत बना लिया। इससे उनके अनन्य पितृभक्त और दृढ़प्रतिज्ञ होनेका परिचय मिलता है। जब उन्होंने सर्वत्र घूमकर पूर्णरूपसे अध्ययन कर लिया तब एक सुयोग्य साधकसे दीक्षा ली और उनसे चिन्तामणि मन्त्र लेकर वे किसी नदी तटपर एक पुराने मन्दिरमें भगवतीकी आराधना करने लगे। भगवतीने उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर यह वर प्रदान किया कि तुम समस्त विद्याओंमें पारङ्गत हो जाओगे तथा तुम्हें असाधारण वाक्चातुरी प्राप्त होगी। इस प्रकार देवीकी कृपा प्राप्त करके वे कान्यकुब्जके राजाकी सभामें आये। वहाँ उन्होंने अपने पिताको पराजित करनेवाले पण्डितको शास्त्रार्थमें हराया। राजाने उनके प्रकाण्ड पाण्डित्यसे

सन्तुष्ट होकर उनका खूब सम्मान किया। तबसे वे प्रायः राजाके ही आश्रित रहे। राजाका नाम जयचन्द्र या जयन्तचन्द्र था। उन्होंने अपने एक ग्रन्थमें राजाका कुछ परिचय भी दिया है।

मतवाद

श्रीहर्ष जिस समय हुए थे उस समय देशमें न्यायदर्शनका कुछ विशेष प्रचार हो रहा था। दूसरी ओर वैष्णव लोगोंका मत बढ़ रहा था, दक्षिण और उत्तर भारतमें श्रीरामानुज और श्रीनिम्बार्कके मतका प्रचार हो रहा था। ऐसे समयमें श्रीहर्षने अपनी अपूर्व प्रतिभासे अद्वैतमतका समर्थन और अन्य मतोंका खूब जोरदार खण्डन करके अद्वैतमतकी रक्षा की। न्यायमतपर उनका इतना कठोर प्रहार हुआ जितना शायद ही किसी दूसरेने किया हो। उनका 'खण्डनखण्डखाद्य' अपने ढङ्गका एक ही ग्रन्थ है। उनका दूसरा काव्यग्रन्थ 'नैषधचरित' है। इसमें उनकी अपूर्व कवित्व-छटा और पाण्डित्य परिस्फुटित हुआ है। इनके सिवा अर्णववर्णन, शिवशक्तिसिद्धि, साहसाङ्कचम्पू, छन्दःप्रशस्ति, विजयप्रशस्ति, गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति, ईश्वराभिसन्धि और स्थैर्यविचारण प्रकरण, ये सब उनके अन्यान्य ग्रन्थ हैं। श्रीहर्षने अपने ग्रन्थोंमें अद्वैतमतका प्रतिपादन किया है, और विशेषतः उदयनाचार्यके न्यायमतका खण्डन किया है। आचार्य श्रीहर्षके 'खण्डनखण्डखाद्य'का दूसरा नाम 'अनिर्वचनीयसर्वस्व' है। वास्तवमें यह नाम सार्थक है। भगवान् शङ्करका मायावाद अनिर्वचनीय ख्यातिके ऊपर ही अवलम्बित है। उनके सिद्धान्तानुसार कार्य और कारण भिन्न, अभिन्न अथवा भिन्नाभिन्न भी नहीं हैं, अपितु अनिर्वचनीय ही हैं। इस अनिर्वचनीयताके कारणसे ही कारण सत् है और कार्य मायामात्र है। श्रीहर्षने खण्डनखण्डखाद्यमें सब प्रकारके विपक्षोंका बड़े रोबके साथ खण्डन किया है, तथा उसके सिद्धान्तका ही नहीं, बल्कि जिनके द्वारा वे सिद्ध होते हैं उन प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका भी खण्डन कर एक अप्र[illegible] अद्वितीय एवं अखण्ड वस्तुकी ही स्थापना की है।

श्रीआनन्दबोध भट्टारकाचार्य

श्रीआनन्दबोध भट्टारकाचार्य बारहवीं शताब्दीमें वर्त्तमान थे। उन्होंने 'न्यायमकरन्द' नामक अपने ग्रन्थमें आचार्य वाचस्पति मिश्रका नामोल्लेख किया है तथा विवरणाचार्य प्रकाशात्म यतिके मतका अनुवाद भी किया है। वाचस्पति मिश्र दसवीं शताब्दीमें और प्रकाशात्म यति ग्यारहवीं शताब्दीमें हुए थे। चित्सुखाचार्यने जो तेरहवीं शताब्दीमें वर्त्तमान थे, 'न्यायमकरन्द'की व्याख्या की है। इससे मालूम होता है कि आनन्दबोध बारहवीं शताब्दीमें ही हुए थे। उनके ग्रन्थसे ही मालूम होता है कि उन्होंने विभिन्न ग्रन्थोंसे सङ्ग्रह करके 'न्यायमकरन्द'की रचना की थी। वे संन्यासी थे। इससे अधिक उनके जीवनकी कोई बात नहीं मालूम होती। उनके तीन ग्रन्थ मिलते हैं—(१) न्यायमकरन्द, (२) प्रमाणमाला और (३) न्यायदीपावली। इन तीनोंमें उन्होंने अद्वैतमतका विवेचन किया है। 'न्यायमकरन्द' भी अद्वैतमतका एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

आचार्य अमलानन्द

आचार्य अमलानन्दका आविर्भाव दक्षिण भारतमें हुआ था। वे यादववंशीय राजा महादेव और राजा रामचन्द्रके समसामयिक थे। देवगिरिके राजा महादेवने विक्रमी संवत् १३१७-१३२८ तक शासन किया। १३५४ में राजा रामचन्द्रपर अलाउद्दीनने आक्रमण किया था। अमलानन्दने अपने ग्रन्थ 'वेदान्तकल्पतरु'में ग्रन्थरचनाके कालके विषयमें जो कुछ लिखा है, उससे मालूम होता है कि दोनों राजाओंके समयमें ग्रन्थ लिखा गया था। राजा रामचन्द्रके वैभवके विषयमें भी ग्रन्थमें उल्लेख है। परन्तु यवन आक्रमणके सम्बन्धमें कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता और यवन-आक्रमणके बादसे यादव वंशका ह्रास भी होने लगा था। इससे मालूम होता है कि अमलानन्द तेरहवीं शताब्दीके अन्तमें हुए थे और उनका ग्रन्थ संवत् १३५४ से पहले ही लिखा जा चुका था। वे देवगिरि राज्यके अन्तर्गत किसी स्थानमें रहते थे, ऐसा अनुमान होता है। उनके जन्मस्थान आदिके विषयमें कुछ नहीं मालूम होता। उनके गुरुका नाम अनुभवानन्द था।

आचार्य अमलानन्द अद्वैतमतके समर्थक थे। उनके लिखे हुए तीन ग्रन्थ मिलते हैं। पहला 'वेदान्तकल्पतरु' है, जिसमें वाचस्पति मिश्रकी 'भामती' टीकाकी व्याख्या की गयी है। यह भी अद्वैतमतका प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है और बादके आचार्योंने इससे भी प्रमाण ग्रहण किये हैं। दूसरा है 'शास्त्रदर्पण'। इसमें ब्रह्मसूत्रके अधिकरणोंकी व्याख्या की गयी है। तीसरा ग्रन्थ है 'पञ्चपादिकादर्पण'। यह पद्मपादाचार्यकी 'पञ्चपादिका'की व्याख्या है। इन तीनों ग्रन्थोंकी भाषा प्राञ्जल और भाव गम्भीर हैं। इनसे अमलानन्दकी महान् विद्वत्ताका परिचय मिलता है।

श्री चित्सुखाचार्य

आचार्य चित्सुखका आविर्भाव प्रायः तेरहवीं शताब्दीमें हुआ था। उन्होंने 'तत्त्व-प्रदीपिका' नामक ग्रन्थमें न्यायलीलावतीकार वल्लभाचार्यके मतका खण्डन किया है, जो बारहवीं शताब्दीमें हुए थे। उस खण्डनमें उन्होंने श्रीहर्षके मतका उद्धरण दिया है, जो उस शताब्दीके अन्तमें हुए थे। उधर चौदहवीं शताब्दीके विद्यारण्य स्वामीने उनका अपने ग्रन्थमें उल्लेख किया है। इससे मालूम होता है कि वे तेरहवीं शताब्दीमें ही हुए थे। उनके जन्म-स्थान आदिके विषयमें कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। उन्होंने 'तत्त्वप्रदीपिका'के मङ्गला-चरणमें अपने गुरुका नाम ज्ञानोत्तम लिखा है।

जिन दिनों चित्सुखाचार्यका आविर्भाव हुआ था, उन दिनों पुनः न्यायमतका जोर चढ़ रहा था। द्वादश शताब्दीमें श्रीहर्षने न्यायमतका खण्डन किया था। अब तेरहवीं शताब्दी-के आरम्भमें गङ्गेशने हर्षके मतको काटकर न्यायमतका प्रचार किया। दूसरी ओर द्वैतवादी वैष्णव आचार्य भी अद्वैतमतका खण्डन कर रहे थे। ऐसे समयमें चित्सुखाचार्यने अद्वैतमतका समर्थन और न्याय आदि मतोंका खण्डन करके शाङ्कर मतकी रक्षा की। उन्होंने इस उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिये 'तत्त्वप्रदीपिका', 'न्यायमकरन्द'की टीका, और 'खण्डनखण्डखाद्य'की टीका लिखी। तत्त्वप्रदीपिकाका दूसरा नाम चित्सुखी भी है। अपनी प्रतिभाके कारण चित्सुखाचार्यने थोड़े

ही समयमें काफी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। चित्सुख भी अद्वैतवादके स्तम्भ माने जाते हैं। परवर्त्ती आचार्योंने उनके वाक्योंको भी प्रमाणके रूपमें उद्धृत किया है।

आचार्य भारतीतीर्थ

आचार्य भारतीतीर्थ विद्यारण्य स्वामीके गुरु बताये जाते हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि विद्यारण्य स्वामीका ही नाम भारतीतीर्थ भी था। परन्तु कई कारणोंसे यह मत उचित नहीं जँचता। यही ठीक मालूम होता है कि विद्यारण्य और भारतीतीर्थ दो व्यक्ति थे। स्वयं माधवाचार्य अर्थात् विद्यारण्यने अपने ग्रन्थ 'जैमिनीय न्यायमाला'की टीका 'विस्तर'में भारती-तीर्थको अपना गुरु लिखा है। अवश्य ही उन्होंने कहीं भारततीतीर्थ, कहीं विद्यातीर्थ और कहीं शङ्करानन्दको गुरु रूपमें स्मरण किया है। विद्यातीर्थ भारतीतीर्थके गुरु थे, ऐसा भारती-तीर्थने अपने ग्रन्थ 'वैयासिक-न्यायमाला'में लिखा है। इस तरह मालूम होता है, विद्यारण्य स्वामीने पहले विद्यातीर्थसे और उनके अन्तर्धान होनेपर भारतीतीर्थ और शङ्करानन्दसे उपदेश ग्रहण किया था। विद्यारण्यके शिष्य रामकृष्णने भी पञ्चदशीकी स्वलिखित टीकाके प्रत्येक परिच्छेदके मङ्गलाचरणमें भारतीतीर्थ और विद्यारण्य दोनोंका उल्लेख किया है। अतएव दोनों एक व्यक्ति नहीं हो सकते।

आचार्य भारतीतीर्थ शाङ्कर मतके अनुयायी थे और उन्होंने उस मतकी व्याख्या करनेके लिये ही 'वैयासिक-न्यायमाला की रचना की थी। शाङ्कर मतानुसार ब्रह्मसूत्रका तात्पर्य समझनेके लिये यह ग्रन्थ बड़ा उपयोगी माना जाता है। यह ग्रन्थ सरल और सुबोध पद्योंमें लिखा गया है। इसमें ब्रह्मसूत्रके चारों अध्यायोंका सारांश चार श्लोकोंमें इस प्रकार दिया हुआ है—

प्रथम अध्यायका तात्पर्य—

> समन्वये स्पष्टलिङ्गमस्पष्टत्वेऽप्युपास्यगम्।
> ज्ञेयगं पदमात्रं च चिन्त्यं पादेष्वनुक्रमात्॥

द्वितीय अध्यायका तात्पर्य—

> द्वितीये स्मृतितर्काभ्यामविरोधोऽन्यदुष्टता।
> भूतभोक्तृश्रुतेर्लिङ्गश्रुतेरप्यविरुद्धता ॥

तृतीय अध्यायका तात्पर्य—

> तृतीये विरतिस्तत्त्वं पदार्थपरिशोधनम्।
> गुणोपसंहृतिर्ज्ञानबहिरङ्गादिसाधनम् ॥

चतुर्थ अध्यायका तात्पर्य—

> चतुर्थे जीवतो मुक्तिरुत्क्रान्तेर्गतिरुत्तरा।
> ब्रह्मप्राप्तिब्रह्मलोकाविति पादार्थसङ्ग्रहः॥

आचार्य शङ्करानन्द

आचार्य शङ्करानन्द भी विद्यारण्य स्वामीके शिक्षागुरु थे। विद्यारण्यने पञ्चदशीके मङ्गलाचरणमें तथा विवरण-प्रमेयसङ्ग्रहके मङ्गलाचरणमें उन्हें गुरु रूपसे प्रणाम किया है।

वे भी चौदहवीं शताब्दीमें हुए थे। वे भी अद्वैतवादी आचार्य थे। उन्होंने भी शाङ्करमत-का समर्थन किया है। उन्होंने शाङ्करमतको पुष्ट तथा प्रचारित करनेके लिये ब्रह्मसूत्रदीपिका, गीताकी टीका तथा १०८ उपनिषदोंकी टीका लिखी है। ब्रह्मसूत्रदीपिकामें उन्होंने बड़ी सरल भाषामें शाङ्करमतानुसार ब्रह्मसूत्रकी व्याख्या की है। गीता और उपनिषदोंकी टीकामें भी उन्होंने शङ्कराचार्यका ही अनुसरण किया है। उनके ग्रन्थोंसे ऐसा प्रतीत होता है कि वे भी अगाध पण्डित थे। उनके नामसे एक आत्मपुराण नामक ग्रन्थ भी मिलता है। इसमें अद्वैतवादके प्रायः सभी सिद्धान्त, श्रुतिरहस्य, योगसाधनरहस्य आदि सभी बातें बड़ी सरल और मर्मस्पर्शी भाषामें दी गयी हैं। अद्वैतसाहित्य-जगत्का यह भी एक अमूल्य रत्न है।

श्रीमाधवाचार्य या विद्यारण्य मुनि

श्रीमन्माधवाचार्य प्रायः चौदहवीं शताब्दीमें हुए थे। उनके जीवनचरितके विषयमें भी बड़ा मतभेद है। कुछ लोगोंका कहना है कि उनका जन्म संवत् १३२४ विक्रमीमें तुङ्ग-भद्रा नदीके तटवर्त्ती हाम्पी नगरके पास एक गाँवमें हुआ था। उन्होंने 'पराशरमाधव' नामक अपने ग्रन्थमें जो अपना परिचय दिया है, उससे मालूम होता है कि उनके पिताका नाम मायण, माताका श्रीमती तथा दो भाइयोंका सायण और भोगनाथ था। सूत्र बोधायन, गोत्र भरद्वाज और यजुर्वेदी ब्राह्मण कुलमें उनका जन्म हुआ था। उन्हींके ग्रन्थोंसे मालूम होता है कि उनका कुलनाम भी सायण ही था और उनके भाई वेदभाष्यकार सायण अपने कुलनामसे ही प्रसिद्ध हुए थे। श्रीमाधवके गुरुके विषयमें पहले वर्णन आ चुका है। उन्होंने गुरु रूपसे विद्यातीर्थ, भारतीतीर्थ और शङ्करानन्दको नमस्कार किया है। सायणाचार्यने भी विद्यातीर्थकी ही वेदभाष्यके आरम्भमें वन्दना की है। उधर भारतीतीर्थने भी विद्यातीर्थको ही अपना गुरु लिखा है। इससे मालूम होता है माधवाचार्य, सायण और भारतीतीर्थ तीनोंने विद्यातीर्थसे ही शिक्षा प्राप्त की। विद्यातीर्थके अवसानके बाद माधवने सम्भवतः भारतीतीर्थ और शङ्करानन्दसे भी शिक्षा प्राप्त की। इस तरह तीनोंको उन्होंने गुरु माना है।

श्रीमाधवाचार्य विजयनगर राज्यके संस्थापक थे। संवत् १३९२ विक्रमीके लगभग विजयनगरके राजसिंहासनपर महाराज वीर बुक्कको अभिषिक्त कर वे उनके प्रधान मन्त्री बने। वे उच्च-कोटिके राजनीतिज्ञ और प्रबन्धपटु थे। उन्होंने कितने ही यवन राज्योंको स्वायत्त कर विजयनगर राज्यकी सीमावृद्धि की थी। सुप्रसिद्ध विशिष्टाद्वैताचार्य श्रीवेदान्तदेशिकाचार्य उनके समकालीन और बालसखा थे। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनके समान विभिन्न गुण-सम्पन्न व्यक्ति बहुत दुर्लभ हैं। उन्होंने जिस कामको हाथमें लिया उसीमें अपूर्व सफ-लता प्राप्त की। अब हम उनकी रचनाओंका सङ्क्षिप्त परिचय देनेका प्रयत्न करते हैं—

१—माधवीय धातुवृत्ति—यह व्याकरण ग्रन्थ है।

२—जैमिनीय न्यायमाला और उसकी टीका 'विवरण'—यह पूर्वमीमांसा-सम्बन्धी ग्रन्थ है।

३—पराशरमाधव—यह पराशर संहिताके ऊपर एक निबन्ध है। स्मृतिशास्त्रका ऐसा उपयोगी ग्रन्थ सम्भवतः दूसरा नहीं है। पराशर-संहितामें जिन विषयोंपर प्रकाश नहीं

डाला गया वह सब अंश दूसरी स्मृतियोंसे लेकर उसे श्लोकबद्ध कर 'पराशरमाधव'में जोड़ दिया गया है।

४—सर्वदर्शनसङ्ग्रह—इसमें समस्त दर्शनोंका सार सङ्गृहीत किया गया है।

५—विवरणप्रमेयसङ्ग्रह—यह श्रीपद्मपादाचार्यकृत पञ्चपादिका-विवरणके ऊपर एक प्रमेयप्रधान निबन्ध है।

६—सूतसंहिताकी टीका—सूतसंहिता स्कन्दपुराणके अन्तर्गत है। उसमें अद्वैत वेदान्तका निरूपण है। उसके ऊपर माधवाचार्यने विशद टीका लिखी है।

७—पञ्चदशी—यह अद्वैत वेदान्तका एक प्रधान प्रकरण-ग्रन्थ है। इसमें पन्द्रह प्रकरण और प्रायः पन्द्रह सौ श्लोक हैं।

८—अनुभूतिप्रकाश—इसमें उपनिषदोंकी आख्यायिकाएँ श्लोकबद्ध करके सङ्ग्रह की गयी हैं।

९—अपरोक्षानुभूतिकी टीका—'अपरोक्षानुभूति' भगवान् शङ्कराचार्यकी रचना है। उसपर विद्यारण्य स्वामीने बहुत सुन्दर टीका की है।

१०—जीवन्मुक्तिविवेक—इस ग्रन्थमें संन्यासियोंके समस्त धर्मोंका निरूपण किया गया है।

११—ऐतरेयोपनिषद्दीपिका—यह ऐतरेयोपनिषद्की शाङ्करभाष्यानुसारी टीका है।

१२—तैत्तिरीयोपनिषद्दीपिका—यह तैत्तिरीयोपनिषद्की शाङ्करभाष्यानुसारी टीका है।

१३—छान्दोग्योपनिषद्दीपिका—यह छान्दोग्योपनिषद्की शाङ्करभाष्यानुसारी टीका है।

१४—बृहदारण्यकवार्त्तिकसार—आचार्य शङ्करके बृहदारण्यक भाष्यपर जो श्री सुरेश्वराचार्यकृत वार्त्तिक है, इसमें उसका श्लोकबद्ध सङ्क्षिप्त सार है।

१५—शङ्करदिग्विजय—यह भगवान् शङ्कराचार्यका जीवनचरित है और एक उत्कृष्ट कोटिका काव्य है।

१६—कालमाधव—यह एक स्मृतिशास्त्रसम्बन्धी ग्रन्थ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीविद्यारण्य स्वामीकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। वे एक साथ ही कवि और दार्शनिक, राजनीतिज्ञ और तत्त्वनिष्ट तथा महान् सङ्ग्रही और पूर्ण त्यागी थे। जिस प्रकार वे सफल राज्यसंस्थापक थे वैसे ही संन्यासियोंमें भी अग्रगण्य थे। संन्यास ग्रहणके पीछे वे शृङ्गेरीमठके शङ्कराचार्यकी गद्दीपर सुशोभित हुए थे। इस प्रकार सौ वर्षसे भी अधिक आयु लाभ कर उन्होंने अपनी जीवन-यात्रा समाप्त की।

मतवाद

चतुर्विध चेतन—श्रीविद्यारण्य स्वामी भगवान् शङ्कराचार्यके ही अनुयायी हैं। उनकी गणना अद्वैत सम्प्रदायके प्रधान आचार्योंमें है। अद्वैतवादमें जीव और ईश्वरके स्वरूपके विषयमें अवच्छेदवाद, आभासवाद, प्रतिबिम्बवाद आदि कई मत प्रचलित हैं। इनमेंसे विद्या-

वे भी चौदहवीं शताब्दीमें हुए थे। वे भी अद्वैतवादी आचार्य थे। उन्होंने भी शाङ्करमत-का समर्थन किया है। उन्होंने शाङ्करमतको पुष्ट तथा प्रचारित करनेके लिये ब्रह्मसूत्रदीपिका, गीताकी टीका तथा १०८ उपनिषदोंकी टीका लिखी है। ब्रह्मसूत्रदीपिकामें उन्होंने बड़ी सरल भाषामें शाङ्करमतानुसार ब्रह्मसूत्रकी व्याख्या की है। गीता और उपनिषदोंकी टीकामें भी उन्होंने शङ्कराचार्यका ही अनुसरण किया है। उनके ग्रन्थोंसे ऐसा प्रतीत होता है कि वे भी अगाध पण्डित थे। उनके नामसे एक आत्मपुराण नामक ग्रन्थ भी मिलता है। इसमें अद्वैतवादके प्रायः सभी सिद्धान्त, श्रुतिरहस्य, योगसाधनरहस्य आदि सभी बातें बड़ी सरल और मर्मस्पर्शी भाषामें दी गयी हैं। अद्वैतसाहित्य-जगत्‌का यह भी एक अमूल्य रत्न है।

श्रीमाधवाचार्य या विद्यारण्य मुनि

श्रीमन्माधवाचार्य प्रायः चौदहवीं शताब्दीमें हुए थे। उनके जीवनचरितके विषयमें भी बड़ा मतभेद है। कुछ लोगोंका कहना है कि उनका जन्म संवत् १३२४ विक्रमीमें तुङ्ग-भद्रा नदीके तटवर्त्ती हाम्पी नगरके पास एक गाँवमें हुआ था। उन्होंने 'पराशरमाधव' नामक अपने ग्रन्थमें जो अपना परिचय दिया है, उससे मालूम होता है कि उनके पिताका नाम मायण, माताका श्रीमती तथा दो भाइयोंका सायण और भोगनाथ था। सूत्र बोधायन, गोत्र भरद्वाज और यजुर्वेदी ब्राह्मण कुलमें उनका जन्म हुआ था। उन्हींके ग्रन्थोंसे मालूम होता है कि उनका कुलनाम भी सायण ही था और उनके भाई वेदभाष्यकार सायण अपने कुलनामसे ही प्रसिद्ध हुए थे। श्रीमाधवके गुरुके विषयमें पहले वर्णन आ चुका है। उन्होंने गुरु रूपसे विद्यातीर्थ, भारतीतीर्थ और शङ्करानन्दको नमस्कार किया है। सायणाचार्यने भी विद्यातीर्थकी ही वेदभाष्यके आरम्भमें वन्दना की है। उधर भारतीतीर्थने भी विद्यातीर्थको ही अपना गुरु लिखा है। इससे मालूम होता है माधवाचार्य, सायण और भारतीतीर्थ तीनोंने विद्यातीर्थसे ही शिक्षा प्राप्त की। विद्यातीर्थके अवसानके बाद माधवने सम्भवतः भारतीतीर्थ और शङ्करानन्दसे भी शिक्षा प्राप्त की। इस तरह तीनोंको उन्होंने गुरु माना है।

श्रीमाधवाचार्य विजयनगर राज्यके संस्थापक थे। संवत् १३९२ विक्रमीके लगभग विजयनगरके राजसिंहासनपर महाराज वीर बुक्कको अभिषिक्त कर वे उनके प्रधान मन्त्री बने। वे उच्च-कोटिके राजनीतिज्ञ और प्रबन्धपटु थे। उन्होंने कितने ही यवन राज्योंको स्वायत्त कर विजयनगर राज्यकी सीमावृद्धि की थी। सुप्रसिद्ध विशिष्टाद्वैताचार्य श्रीवेदान्तदेशिकाचार्य उनके समकालीन और बालसखा थे। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनके समान विभिन्न गुण-सम्पन्न व्यक्ति बहुत दुर्लभ हैं। उन्होंने जिस कामको हाथमें लिया उसीमें अपूर्व सफ-लता प्राप्त की। अब हम उनकी रचनाओंका सङ्क्षिप्त परिचय देनेका प्रयत्न करते हैं—

१—माधवीय धातुवृत्ति—यह व्याकरण ग्रन्थ है।

२—जैमिनीय न्यायमाला और उसकी टीका 'विवरण'—यह पूर्वमीमांसा-सम्बन्धी ग्रन्थ है।

३—पराशरमाधव—यह पराशर संहिताके ऊपर एक निबन्ध है। स्मृतिशास्त्रका ऐसा उपयोगी ग्रन्थ सम्भवतः दूसरा नहीं है। पराशर-संहितामें जिन विषयोंपर प्रकाश नहीं

डाला गया वह सब अंश दूसरी स्मृतियोंसे लेकर उसे श्लोकबद्ध कर 'पराशरमाधव'में जोड़ दिया गया है।

४—सर्वदर्शनसङ्ग्रह—इसमें समस्त दर्शनोंका सार सङ्गृहीत किया गया है।

५—विवरणप्रमेयसङ्ग्रह—यह श्रीपद्मपादाचार्यकृत पञ्चपादिका विवरणके ऊपर एक प्रमेयप्रधान निबन्ध है।

६—सूतसंहिताकी टीका—सूतसंहिता स्कन्दपुराणके अन्तर्गत है। उसमें अद्वैत वेदान्तका निरूपण है। उसके ऊपर माधवाचार्यने विशद टीका लिखी है।

७—पञ्चदशी—यह अद्वैत वेदान्तका एक प्रधान प्रकरण-ग्रन्थ है। इसमें पन्द्रह प्रकरण और प्रायः पन्द्रह सो श्लोक हैं।

८—अनुभूतिप्रकाश—इसमें उपनिषदोंकी आख्यायिकाएँ श्लोकबद्ध करके सङ्ग्रह की गयी हैं।

९—अपरोक्षानुभूतिकी टीका—'अपरोक्षानुभूति' भगवान् शङ्कराचार्यकी रचना है। उसपर विद्यारण्य स्वामीने बहुत सुन्दर टीका की है।

१०—जीवन्मुक्तिविवेक—इस ग्रन्थमें संन्यासियोंके समस्त धर्मोंका निरूपण किया गया है।

११—ऐतरेयोपनिषद्दीपिका—यह ऐतरेयोपनिषद्की शाङ्करभाष्यानुसारी टीका है।

१२—तैत्तिरीयोपनिषद्दीपिका—यह तैत्तिरीयोपनिषद्की शाङ्करभाष्यानुसारी टीका है।

१३—छान्दोग्योपनिषद्दीपिका—यह छान्दोग्योपनिषद्की शाङ्करभाष्यानुसारी टीका है।

१४—बृहदारण्यकवार्त्तिकसार—आचार्य शङ्करके बृहदारण्यक भाष्यपर जो श्री सुरेश्वराचार्यकृत वार्त्तिक है, इसमें उसका श्लोकबद्ध सङ्क्षिप्त सार है।

१५—शङ्करदिग्विजय—यह भगवान् शङ्कराचार्यका जीवनचरित है और एक उत्कृष्ट कोटिका काव्य है।

१६—कालमाधव—यह एक स्मृतिशास्त्रसम्बन्धी ग्रन्थ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीविद्यारण्य स्वामीकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। वे एक साथ ही कवि और दार्शनिक, राजनीतिज्ञ और तत्त्वनिष्ठ तथा महान् सङ्ग्रही और पूर्ण त्यागी थे। जिस प्रकार वे सफल राज्यसंस्थापक थे वैसे ही संन्यासियोंमें भी अग्रगण्य थे। संन्यास ग्रहणके पीछे वे श्रृङ्गेरीमठके शङ्कराचार्यकी गद्दीपर सुशोभित हुए थे। इस प्रकार सौ वर्षसे भी अधिक आयु लाभ कर उन्होंने अपनी जीवन-यात्रा समाप्त की।

मतवाद

चतुर्विध चेतन—श्रीविद्यारण्य स्वामी भगवान् शङ्कराचार्यके ही अनुयायी हैं। उनकी गणना अद्वैत सम्प्रदायके प्रधान आचार्योंमें है। अद्वैतवादमें जीव और ईश्वरके स्वरूपके विषयमें अवच्छेदवाद, आभासवाद, प्रतिबिम्बवाद आदि कई मत प्रचलित हैं। इनमेंसे विद्या-

रण्य स्वामी प्रतिविम्बवादके समर्थक हैं। उनके मतमें चेतनके चार भेद हैं। पञ्चदशीके चित्रदीपमें वे लिखते हैं—

> कूटस्थो ब्रह्मजीवेशावित्येवं चिच्चतुर्विधा।
> घटाकाशमहाकाशौ जलाकाशाभ्रखे यथा॥

अर्थात् घटाकाश, महाकाश, जलाकाश और मेघाकाशके समान कूटस्थ ब्रह्म जीव और ईश्वर-भेदसे चेतन चार प्रकारका है। व्यापक आकाशका नाम 'महाकाश' है। घटावच्छिन्न आकाशको घटाकाश कहते हैं, घटमें जो जल है उसमें प्रतिविम्बित होनेवाले आकाशको 'जलाकाश' कहते हैं और मेघके जलमें प्रतिबिम्बित होनेवाले आकाशका नाम 'मेघाकाश' है। इन्हींके समान जो अखण्ड और व्यापक शुद्ध चेतन है उसका नाम 'ब्रह्म' है, देहरूप उपाधिसे परिच्छिन्न चेतनको 'कूटस्थ' कहते हैं, देहान्तर्गत अविद्यामें प्रतिविम्बित चेतनका नाम 'जीव' है और मायामें प्रतिविम्बित चेतनको 'ईश्वर' कहते हैं। माया और अविद्या, ये दो प्रकारकी प्रकृति हैं। माया शुद्ध सत्त्वमयी और अविद्या त्रिगुणमयी है। अविद्यामें रज और तमका अंश रहता है, इसलिये उसके आश्रित जीव अल्पज्ञ और अल्पशक्ति है तथा माया रज तमसे रहित शुद्ध सत्त्वमयी है, इसलिये तदुपाधिक ईश्वर सर्वज्ञ है। किन्तु माया और अविद्या इन दोनोंसे रहित जो शुद्ध चेतन है वह सर्वथा प्रपञ्चलेशशून्य है। देहरूप दृश्यमान उपाधिके कारण ही उसमें ब्रह्म और कूटस्थरूप भेदकी कल्पना की गयी है। किन्तु उपाधि तो अविद्याजनित है, इसलिये वस्तुतः उनमें कोई भेद नहीं है। इसीसे ब्रह्म और कूटस्थका मुख्य समानाधिकरण माना गया है और ईश्वर तथा जीवका बाध-समानाधि[illegible]

साक्षी तत्त्व—कर्तृत्व-भोक्तृत्व जीवके ही [illegible] कूटस्थ केवल साक्षी मात्र है। पञ्चदशीके नाटकदीपमें इसका वर्णन कर[illegible] लिखते [illegible] जिस प्रकार नृत्यशालास्थ-दीपकमाला सूत्रधार, पा[illegible] प्रका[illegible] है और इन सबके न रहनेपर भी उनके अभ[illegible] है, [illegible] भी अहं प्रत्यय सिद्ध कर्त्ता, इन्द्रियवृत्ति [illegible] रहता है तथा इनके अभावमें स्वयं देदीप्[illegible]

अविद्याधिष्ठान—अद्वैत[illegible] कारण ही सम्पूर्ण प्रपञ्चकी [illegible] किसके आश्रित है? इस सम्बन्धमें दो [illegible] कोई शुद्ध चेतनके। विद्यारण्य स्वा[illegible] अधि ष्ठानके विषयमें भी इसी प्रकार [illegible] मानते हैं और कोई अनवच्छिन्न [illegible] ही स्वीकार है। वे कहते हैं। [illegible] नहीं हो सकता। अतः जिस [illegible]

साधनविचार—विद्यारण्य स्वामीके मतमें ज्ञानका मुख्य साधन साङ्ख्य या विचार है, जो क्रमशः श्रवण, मनन और निदिध्यासन कहा जाता है। इससे पूर्व चित्तशुद्धिके लिये निष्काम कर्म और उपासनाकी भी आवश्यकता है। उपासनाओंमें यों तो सभी प्रकारकी उपासनाएँ चित्तशुद्धिमें सहायक हैं, किन्तु उनमें निर्गुणोपासना प्रधान है। निर्गुणोपासनाको उन्होंने संवादी भ्रम कहा है तथा अन्य उपासनाओंको विसंवादी भ्रम। जो भ्रम, भ्रम होने-पर भी परिणाममें इष्ट वस्तुकी प्राप्ति करानेवाला होता है उसे संवादी भ्रम कहते हैं। ब्रह्म अनुपास्य है, अतः यद्यपि वह उपासनाका विषय नहीं हो सकता, तो भी जो लोग मनः-समाधानपूर्वक उसकी उपासनामें तत्पर होते हैं उन्हें उसकी प्राप्ति हो जाती है। यह क्रम मन्द और मध्यम अधिकारियोंके लिये है। उत्तम अधिकारियोंके लिये तो श्रवणादि ही मुख्य साधन हैं।

आनन्दगिरि

आचार्य आनन्दगिरि श्रीशङ्कराचार्यके भाष्योंके टीकाकार हैं। उन्होंने वेदान्तसूत्रके शाङ्करभाष्यपर 'न्यायनिर्णय' नामकी टीका लिखी है। आचार्यके जितने भाष्य हैं उन सभी-पर इनकी टीका है। भाष्यके भावको हृदयङ्गम करानेमें इनकी टीका बहुत ही सहायक है। इनके गुरु श्रीशुद्धानन्द स्वामी थे। वे सम्भवतः शृङ्गेरी आदिमेंसे किसी मठके अधीश्वर थे। किन्हीं-किन्हींके मतमें वे स्वयं भगवान् शङ्कराचार्यके शिष्य थे। परन्तु यह सम्भव नहीं है। उनकी टीकामें भामती, विवरण, कल्पतरु आदि टीकाओंकी छाया देख पड़ती है तथा उन्होंने स्वयं भी अन्य टीकाओंका आश्रय लेनेकी बात लिखी है। अत. उनका उन टीकाकारोंसे पूर्व-वर्त्ती होना कदापि सम्भव नहीं है। टीकाओंके अतिरिक्त उन्होंने 'शाङ्करदिग्विजय' नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थकी भी रचना की है। वह भी श्रीविद्यारण्य स्वामीके शङ्करदिग्विजयके पीछे लिखा गया है। इससे सिद्ध होता है कि वे विद्यारण्य स्वामीके परवर्त्ती और अप्पय्य दीक्षितके पूर्ववर्त्ती हैं, क्योंकि अप्पय्य दीक्षितने 'सिद्धान्तलेश'में न्यायनिर्णय टीकाका उल्लेख किया है। विद्यारण्य स्वामीका काल चौदहवीं शताब्दी है और अप्पय्य दीक्षितका सोलहवीं एवं सतरहवीं शताब्दीका पूर्व भाग है। अत. आनन्दगिरिका काल पन्द्रहवीं शताब्दी है।

आनन्दगिरि स्वामीका दूसरा नाम आनन्दज्ञान है। उनके पूर्वाश्रम और जीवन-चरित्रके विषयमें किसी प्रकारका परिचय नहीं मिलता। उनका जीवन एक संन्यासीका जीवन था और वे एक सफल टीकाकार और उन्नत दार्शनिक थे। उन्होंने भगवान् शङ्कराचार्यकृत उपनिषद्भाष्य, गीताभाष्य, शारीरकभाष्य और शतश्लोकीपर तथा श्रीसुरेश्वराचार्यकृत तैत्ति-रीयोपनिषद्वार्त्तिक एवं बृहदारण्यकोपनिषद्वार्त्तिकपर टीका लिखी है और 'शाङ्करदिग्विजय' नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ निर्माण किया है।

प्रकाशानन्द

आचार्य प्रकाशानन्द 'वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावली'के रचयिता हैं। इनके गुरु आचार्य ज्ञानानन्द थे। ये भी अप्पय्य दीक्षितके पूर्ववर्त्ती थे, क्योंकि अप्पय्य दीक्षितने सिद्धान्तलेशमें उनके मतका उल्लेख किया है। वे विद्यारण्यके परवर्त्ती हैं, क्योंकि वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावलीमें

कहीं-कहीं उन्होंने पञ्चदशीके उदाहरणोंको उद्धृत किया है। अतः उनका जीवनकाल पन्द्रहवीं शताब्दी ही होना चाहिये। इसके सिवा उनकी जीवनसम्बन्धी और कोई घटना नहीं दी जा सकती।

'वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावली' वेदान्तका सुप्रसिद्ध प्रमाण-ग्रन्थ है। ग्रन्थकारके कथनानुसार उन्होंने स्वयं कृतकृत्य होकर इस ग्रन्थकी रचना की थी। इसकी विवेचनशैली बहुत युक्तियुक्त, पाण्डित्यपूर्ण और प्राञ्जल है। इससे उनकी साहित्यिक प्रतिभाका अच्छा परिचय मिलता है। इसमें गद्यमें विचार करके पद्यमें सिद्धान्तनिरूपण किया है। इसके ऊपर अप्पय्य दीक्षितकी 'सिद्धान्तदीपिका' नामकी एक वृत्ति है। इस ग्रन्थका अंग्रेजीमें भी अनुवाद हो चुका है।

अखण्डानन्द

आचार्य अखण्डानन्दका स्थितिकाल भी पन्द्रहवीं शताब्दी ही है। इनके गुरु आचार्य अखण्डानुभूति थे। इन्होंने पञ्चपादिका-विवरणके ऊपर 'तत्त्वदीपन' नामक निबन्ध लिखा है। यह एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। आचार्य अप्पय्य दीक्षितने भी अपने सिद्धान्तलेशमें इसका मत उद्धृत किया है। विवरणके ऊपर भावप्रकाशिका नामक एक और टीका है। 'तत्त्वदीपन' उससे पूर्ववर्त्ती है, क्योंकि भावप्रकाशिकामें उसका उल्लेख है। भावप्रकाशिकाकार नृसिंहाश्रम सं० १५९८ में वर्त्तमान थे। अतः अखण्डानन्द स्वामीका जीवनकाल सोलहवीं शताब्दी होना चाहिये।

मल्लनाराध्य

श्रीमल्लनाराध्यजी दक्षिण भारतके निवासी थे। उनका जन्म कोटीश वंशमें हुआ था। उन्होंने 'अद्वैतरत्न' और 'अभेदरत्न' नामक दो प्रकरणग्रन्थ लिखे हैं। उनका जन्म सोलहवीं शताब्दीके आरम्भमें हुआ था। उन्होंने अद्वैतरत्नके ऊपर 'तत्त्वदीपन' नामक टीका लिखी है। मल्लनाराध्यने द्वैतवादियोंके मतका खण्डन करनेके लिये इस ग्रन्थकी रचना की है। यह ग्रन्थ अभीतक अप्रकाशित है।

नृसिंहाश्रम

नृसिंहाश्रमजी अद्वैतसम्प्रदायके प्रमुख आचार्योंमें गिने जाते हैं। उनके गुरु श्रीजगन्नाथाश्रमजी थे। उनका 'तत्वविवेक' नामक एक ग्रन्थ है। उससे विदित होता है कि उसका समाप्तिकाल सं० १६०४ वि० है। अतः उनका जीवनकाल सोलहवीं शताब्दीका उत्तरार्ध होना चाहिये। श्रीनृसिंहाश्रम स्वामी उद्भट दार्शनिक और बड़े प्रौढ़ पण्डित थे। उनकी रचना बहुत उच्च कोटिकी और युक्तिप्रधान है। कहते हैं, उन्हींकी प्रेरणासे श्रीअप्पय्य दीक्षितने परिमल, न्यायरक्षामणि एवं सिद्धान्तलेश आदि वेदान्त-ग्रन्थोंकी रचना की थी। उनके रचे हुए ग्रन्थोंका सक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है—

भावप्रकाशिका—यह श्रीप्रकाशात्मयतिकृत पञ्चपादिका-विवरणकी टीका है।

तत्त्वविवेक—यह ग्रन्थ अभी प्रकाशित है। इसमें केवल दो परिच्छेद हैं। इसके ऊपर उन्होंने स्वयं ही 'तत्त्वविवेकदीपन' नामकी एक टीका लिखी है।

भेदधिक्कार—इसमें भेदवादका खण्डन है ।

अद्वैतदीपिका—यह अद्वैत वेदान्तका एक युक्तिप्रधान ग्रन्थ है ।

वैदिकसिद्धान्तसङ्ग्रह—इसमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी एकता सिद्ध की गयी है, और यह बतलाया गया है कि ये तीनों एक ही परब्रह्मकी अभिव्यक्ति-मात्र हैं ।

तत्त्वबोधिनी—यह सर्वज्ञात्ममुनिकृत सक्षेपशारीरककी व्याख्या है ।

नारायणाश्रम

श्रीनारायणाश्रमजी आचार्य नृसिंहाश्रमके शिष्य थे । अतः वे उन्हींके समकालीन हैं । उन्होंने अपने गुरुके 'भेदधिक्कार' तथा 'अद्वैतदीपिका' नामक ग्रन्थोंपर टीका लिखी है । उन्होंने भेदधिक्कारके ऊपर जो टीका लिखी है उसका नाम 'भेदधिक्कारसत्क्रिया' है, उसके ऊपर 'भेदधिक्कारसत्क्रियोज्ज्वला' नामकी एक टीका है । श्रीनारायणाश्रमकी ग्रन्थरचनाका प्रधान प्रयोजन द्वैतवादका खण्डन ही है ।

रङ्गराजाध्वरी

श्रीरङ्गराजाध्वरी सुप्रसिद्ध विद्वान् अप्पय्य दीक्षितके पिता थे । इनके पिताका नाम आचार्य दीक्षित था । आचार्य दीक्षित भी अद्वैतसम्प्रदायके आचार्योंमें गिने जाते हैं । उन्होंने बहुतसे यज्ञ किये थे, इसीसे वे 'दीक्षित' इस उपनामसे विभूषित हुए । इनका निवासस्थान काञ्ची था । इनका दूसरा नाम वक्षःस्थलाचार्य था । ये विजयनगरके राजा कृष्णदेवराजके सभापण्डित थे । उन्हींने इन्हें यह नाम प्रदान किया था । ये बड़े ही धर्मनिष्ठ और कर्त्तव्य-परायण थे । इन्होंने बहुतसे यज्ञ, देवालयप्रतिष्ठा, ब्राह्मणभोजन एवं जलाशयनिर्माणादि धार्मिक कृत्य किये थे । इनके दो विवाह हुए थे । इनकी पहली पत्नी एक शैवमतावलम्बी ब्राह्मणकी कन्या थी तथा दूसरी श्रीवैकुण्ठाचार्यवंशीय श्रीरङ्गमाचार्यकी पुत्री तोताम्बा देवी थी । तोताम्बाके गर्भसे आचार्य दीक्षितके चार पुत्र हुए । उनमें सबसे बड़े रङ्गराजाध्वरी अथवा रङ्गराजमखी[1] थे । अप्पय्य दीक्षितने अपने ग्रन्थोंमें अपने पिता, पितामह एवं मातामहादिका परिचय दिया है ।

रङ्गराजाध्वरी सम्पूर्ण विद्याओंमें कुशल थे । अप्पय्य दीक्षितको उन्हींसे विद्यालाभ हुआ था । अपने पिताके विषयमें अप्पय्य दीक्षितने न्यायरक्षामणि नामक ग्रन्थके आरम्भमें लिखा है—

यं ब्रह्म निश्चितधियः प्रवदन्ति साक्षात् तद्दर्शनादखिलदर्शनपारभाजम् ।
तं सर्ववेदसमशेषबुधाधिराजं श्रीरङ्गराजमखिनं गुरुमानतोऽस्मि ॥

अप्पय्य दीक्षितने रङ्गराजसे ही विद्या प्राप्त की थी, यह बात भी स्वयं दीक्षितके वाक्योंसे ही प्रकट होती है—

तन्मूलानिह सङ्ग्रहेण कतिचित्सिद्धान्तभेदान्धियः ।
शुद्ध्यै सङ्कलयामि तातचरणव्याख्यावचःख्यापितान् ॥

---

१ 'रङ्गराज' उनका नाम था, 'अध्वरी' या 'मखी' याज्ञिक होनेके कारण जोड़ दिया गया है । इसी प्रकार उनका नाम रङ्गराज दीक्षित भी हो सकता है ।

इससे सिद्ध होता है कि रङ्गराजाध्वरीका पाण्डित्य असाधारण था। ऐसा पाण्डित्य बहुत दुर्लभ होता है। उन्होंने 'अद्वैतविद्यामुकुर' एवं 'विवरणदर्पण' प्रभृति ग्रन्थ रचे हैं जिनमें उन्होंने न्याय, वैशेषिक एवं साङ्ख्यादि मतोंका खण्डन करके अद्वैतमतकी स्थापना की है। खेद है, ऐसे प्रौढ़ विद्वान्‌के ग्रन्थोंका भी अभीतक प्रकाशन नहीं हो सका है।

अप्पय्य दीक्षित

भगवान् शङ्कराचार्यद्वारा प्रतिष्ठापित अद्वैतसम्प्रदाय परम्परामें जो सर्वश्रेष्ठ आचार्य हुए हैं उन्हींमेंसे एक अप्पय्य दीक्षित भी हैं। विद्वत्ताकी दृष्टिसे इन्हें वाचस्पति मिश्र, श्रीहर्ष एवं मधुसूदन सरस्वतीके समकक्ष कहा जा सकता है। ये एक साथ ही आलङ्कारिक, वैयाकरण और दार्शनिक थे। इन्हें सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र कहा जाय तो कुछ भी अत्युक्ति न होगी। केवल भारतीय साहित्य ही नहीं, इन्हें विश्वसाहित्याकाशका एक देदीप्यमान नक्षत्र कह सकते हैं। मुगलसम्राट् अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँका शासनकाल भारतीय साहित्यका सुवर्णयुग कहा जा सकता है। इस समयमें अलङ्कार, नाटक, काव्य एवं दर्शन, सभी प्रकारके ग्रन्थोंका खूब विस्तार हुआ था। सम्भव है, इस समयकी राजनैतिक सुव्यवस्था ही इसमें कारण हो। अप्पय्य दीक्षित अकबर और जहाँगीरके शासनकालमें हुए थे। इनका जन्म सवत् १६०८ में हुआ था और मृत्यु ७२ वर्षकी आयुमें संवत् १६८० में। इनके जीवनमें जिस साहित्यिक प्रतिभाका विकास हुआ उसे देखकर चित्त चकित हो जाता है।

पहले यह बतलाया जा चुका है कि इनके पितामह आचार्य दीक्षित और पिता रङ्गराजाध्वरि थे। ऐसे प्रकाण्ड पण्डितोंके वंशधर होनेके कारण उनमें अद्भुत प्रतिभाका विकास होना स्वाभाविक ही था। ये दो भाई थे। इनके छोटे भाईका नाम अच्चान दीक्षित था। अप्पय्य दीक्षितने अपने पितासे ही विद्या प्राप्त की थी। पिता और पितामहके संस्कारानुसार उन्हें भी अद्वैत मतकी ही शिक्षा मिली थी, तथापि वे परम शिवभक्त थे। उनका हृदय भगवान् शङ्करके प्रेमसे भरा हुआ था। अतः शैवसिद्धान्तकी स्थापनाके लिये वे ग्रन्थरचना करने लगे। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उन्होंने शिवतत्त्वविवेक आदि पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थोंकी रचना की। इसी समय उनके समीप नर्मदातीर-निवासी श्रीनृसिंहाश्रम स्वामी उपस्थित हुए। उन्होंने इन्हें सचेत करते हुए अपने पिताके सिद्धान्तका अनुसरण करनेके लिये प्रोत्साहित किया। तब उन्हींकी प्रेरणासे उन्होंने परिमल, न्यायरक्षामणि एवं सिद्धान्तलेश नामक ग्रन्थोंकी रचना की।

अप्पय्य दीक्षितके पितामह विजयनगर राज्याधीश्वर कृष्णदेवके आश्रित थे। किन्तु सं० १६२१ में तालीकोट युद्धके पश्चात् उस राजवंशका अन्त हो गया था। इस समय दीक्षितकी आयु केवल १५ वर्षकी थी। इस राजवंशका अन्त होनेपर एक नवीन वंशका उदय हुआ, जो तृतीय वंशके नामसे विख्यात है। इस वंशके मूलपुरुष रामराज, तिरुमलई और वेङ्कटादि अपने पूर्ववर्त्ती राजवंशके अन्तिम दो नृपति अच्युतराज और सदाशिवके समय ही बहुत शक्तिमान् हो गये थे। इनमेंसे रामराज और तिरुमलईके साथ महाराज कृष्णकी कन्या वेङ्गला और तिरुमलाम्माका विवाह हुआ था। अच्युत्का राज्यकाल विक्रम सं० १५८७

से १५९९ तक है तथा सदाशिवका १५९९ से १६२४ तक। तालीकोटके युद्धमें रामराज और वेङ्कटादिका देहान्त हो गया था। अतः अब तीनों भाइयोंमें केवल तिरुमल्लई ही जीवित था। उसने सं० १६२४तक सदाशिवको नाममात्रका सम्राट् स्वीकार करते हुए राज्यका प्रबन्ध किया और अन्तमें उसकी हत्या कर स्वयं राजा बन गया। तिरुमल्लईके चार पुत्र थे। सं० १६३१में उसकी मृत्यु होनेपर उसका दूसरा पुत्र चिन्नतिम्म या द्वितीय रङ्ग सिंहासनारूढ़ हुआ और उसके पश्चात् सं० १६४२में सबसे छोटा पुत्र वेङ्कट या वेङ्कटपति राज्यका अधिपति हुआ। अप्पय्य दीक्षित इन तीनों नृपतियोंके सभापण्डित थे। इन्होंने अपने विभिन्न ग्रन्थोंमें इन राजाओंका नाम निर्देश किया है। इससे सिद्ध होता है कि अप्पय्य दीक्षितका विजयनगर राज्यमें बहुत सम्मान था।

सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजि दीक्षितने अपने गुरुरूपसे उनका वर्णन किया है। कुछ कालतक इन दोनों विद्वानोंने काशीमें निवास किया था। अप्पय्य दीक्षित शिवभक्त थे और भट्टोजि दीक्षित वैष्णव थे, तो भी इन दोनोंका सम्बन्ध अत्यन्त मधुर था। वे दोनों ही शास्त्रज्ञ थे, अतः उनकी दृष्टिमें वस्तुतः शिव और विष्णुमें कोई भेद नहीं था।

कुछ काल काशीमें रहकर दीक्षित दक्षिणमें लौट आये। वहाँ अपना मृत्युकाल समीप जानकर उन्होंने चिदम्बरम् जानेकी इच्छा की। उस समय उनके हृदयमें जो भाव जाग्रत् हुए उन्हें उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया है—

चिदम्बरमिदं पुरं प्रथितमेव पुण्यस्थलं
सुताश्च विनयोज्ज्वलाः सुकृतयश्च काश्चित् कृताः।
वयांसि मम सप्ततेरुपरि नैव भोगे स्पृहा
न किञ्चिदहमर्थये शिवपदं दिदृक्षे परम्॥
आभाति हाटकसभानटपादपद्मो
ज्योतिर्मयो मनसि मे तरुणारुणोऽयम्।

इस प्रकार दूसरा श्लोक समाप्त नहीं हो पाया था कि उन्होंने श्रीमहादेवजीके दर्शन करते-करते अपनी जीवनलीला समाप्त कर दी। यह उनकी जीवनव्यापिनी साधनाका ही फल था। मृत्युके समय उनके ग्यारह पुत्र और छोटे भाईके पौत्र नीलकण्ठ दीक्षित पास ही थे। उस समय उन्होंने सबसे अधिक प्रेम नीलकण्ठपर ही प्रकट किया। उनका जो श्लोक अधूरा रह गया था उसकी उनके पुत्रोंने इस प्रकार पूर्त्ति की—

'नूनं जरामरणघोरपिशाचकीर्णा संसारमोहरजनी विरतिं प्रयाता॥'

मतवाद

दार्शनिक दृष्टिसे अप्पय्य दीक्षित अद्वैतवादी या निर्गुण ब्रह्मवादी थे। सगुणोपासनाको वे निर्गुण ब्रह्मकी उपलब्धिके साधनरूपसे स्वीकार करते हैं। वे यद्यपि शिवभक्त थे तथापि उनकी रचनाओंसे उनकी विष्णुभक्तिका भी प्रमाण मिलता है। कई स्थानोंपर उन्होंने भक्तिभावसे विष्णुकी ही वन्दना की है। तो भी उनका अधिक आकर्षण भगवान् चन्द्रमौलिकी ही ओर देखा जाता है। उन्होंने स्वयं ही कहा है—'तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे।'

उनके ग्रन्थोंसे उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभाका परिचय मिलता है। मीमांसाके तो वे धुरन्धर पण्डित थे। उनकी 'शिवार्कमणिदीपिका' नामकी पुस्तकमें उनका मीमांसा, न्याय, व्याकरण और अलङ्कार शास्त्र-सम्बन्धी अगाढ़ पाण्डित्य पाया जाता है। शाङ्करसिद्धान्तमें वाचस्पति मिश्रने, रामानुज मतमें सुदर्शनने और मध्वमतमें जयतीर्थने जो काम किया है वही काम दीक्षितने शिवार्कमणिदीपिका रचकर श्रीकण्ठके सम्प्रदायमें किया। कहीं-कहीं तो दीपिकामें उनकी अपेक्षा भी अधिक मौलिकता है। इस निबन्धको टीका न कहकर यदि मौलिक ग्रन्थ कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा। उन्होंने अद्वैतवादी होकर भी द्वैतवादकी स्थापनामें जैसी उदारताका परिचय दिया है वह वस्तुतः बहुत ही सराहनीय है। जिस प्रकार वाचस्पति मिश्रने छहों दर्शनोंकी टीका करके प्रत्येक दर्शनके सिद्धान्तकी पूर्णतया रक्षा करके अपनी सर्वतन्त्र-स्वतन्त्रताका परिचय दिया वैसी ही स्थिति अप्पय्य दीक्षितकी है। उन्होंने जिस प्रकार शिवार्कमणिदीपिकादिमें विशिष्टाद्वैतके पक्षका पूर्णतया समर्थन किया उसी प्रकार परिमल एवं सिद्धान्तलेशादिमें अद्वैतसिद्धान्तकी पूर्णतया रक्षा की है।

सिद्धान्तलेशमें उन्होंने अद्वैतवादी आचार्योंके मतभेदोंका दिग्दर्शन कराया है। अद्वैतवादी आचार्योंका एक जीववाद, नाना जीववाद, बिम्ब-प्रतिबिम्बवाद, अवच्छेदवाद एवं साक्षित्व आदि विषयोंमें बहुत मतभेद है। उन सबका स्पष्टतया अनुभव कर आचार्य अप्पय्य दीक्षितने उनपर अपना विचार प्रकट किया है। सिद्धान्तलेशमें ब्रह्मसूत्रकी तरह चार अध्याय हैं—समन्वय, अविरोध, साधन और फल। इसे शाङ्कर-सम्प्रदायका कोश कहा जा सकता है। इसमें ऐसे बहुतसे ग्रन्थ और ग्रन्थकारोंका विवरण है जिनका इस समय कोई पता नहीं चलता। किन्तु उनकी स्थितिके कालके विषयमें कोई उल्लेख न होनेके कारण यह ऐतिहासिक उपयोगकी सामग्री नहीं है।

सिद्धान्तलेशमें सब आचार्योंके मतोंका केवल उल्लेखमात्र है, उनकी समालोचना करके अपना कोई मत निश्चित नहीं किया गया है। अतः यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि स्वयं अप्पय्य दीक्षितको कौन मत इष्ट था। तो भी अधिकांशमें उन्हें एक जीव-वादी एवं बिम्ब-प्रतिबिम्बवादी कह सकते हैं।

ग्रन्थ-विवरण

अप्पय्य दीक्षितके विषयमें यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने भिन्न-भिन्न विषयोंपर १०४ ग्रन्थ लिखे थे। वे सब इस समय प्राप्य नहीं हैं। उनमेंसे जो प्राप्य हैं उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है—

अलङ्कार

१—कुवलयानन्द—यह 'चन्द्रालोक' नामक अलङ्कार ग्रन्थकी विस्तृत व्याख्या है।

२—चित्रमीमांसा—इस ग्रन्थमें अर्थचित्रका विचार किया गया है। इसका खण्डन करनेके लिये ही पण्डितराज जगन्नाथने 'चित्रमीमांसा खण्डन' नामक ग्रन्थकी रचना की थी।

३—वृत्तिवार्त्तिक—इस ग्रन्थमें केवल अभिधा और लक्षणा दो ही वृत्तियोंका विचार किया गया है।

४—नामसङ्ग्रहमाला—यह ग्रन्थ कोशके सदृश है। इसमें अनुराग, स्नेह आदि परस्पर पर्यायवाची प्रतीत होनेवाले शब्दोंके तात्पर्यका भेद प्रदर्शित किया गया है।

व्याकरण

५—नक्षत्रवादावली अथवा पाणिनितन्त्रवादनक्षत्रवादमाला—यह ग्रन्थ क्रोड़पत्रके समान है। इसमें सत्ताईस सन्दिग्ध विषयोंपर विचार किया गया है।

६—प्राकृतचन्द्रिका—इस ग्रन्थमें प्राकृत शब्दानुशासनकी आलोचना की गयी है।

मीमांसा

७—चित्रपुट—यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

८—विधिरसायन—इसमें विधित्रयका विचार है।

९—सुखोपयोजनी—यह विधिरसायनकी व्याख्या है।

१०—उपक्रमपराक्रम—उपक्रम एवं उपसंहारादि षड्विध लिङ्गसे शास्त्रका निर्णय किया जाता है। इस ग्रन्थमें यह दिखलाया गया है कि उनमें उपक्रम ही सबसे अधिक प्रबल है।

११—वादनक्षत्रमाला—इसमें पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसाके सत्ताईस विषयोंकी आलोचना है।

वेदान्त

१२—परिमल—ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्यकी व्याख्या 'भामती' है, भामतीकी टीका 'कल्पतरु' है और कल्पतरुकी व्याख्या 'परिमल' है।

१३—न्यायरक्षामणि—यह ब्रह्मसूत्रके प्रथम अध्यायकी शाङ्करसिद्धान्तानुसारिणी व्याख्या है।

१४—सिद्धान्तलेश—इसमें अद्वैतसम्प्रदायके आचार्योंके भिन्न-भिन्न मतोंका निरूपण है।

१५—मतसारार्थसङ्ग्रह—इसमें श्रीकण्ठ, शङ्कर, रामानुज, मध्व प्रभृति आचार्योंके मतोंका संक्षिप्त परिचय है।

शाङ्करसिद्धान्त

१६—न्यायमञ्जरी—यह ग्रन्थ अप्राप्य है।

मध्वमत

१७—न्यायमुक्तावली—इसपर अप्पय्य दीक्षितने स्वयं ही टीका भी लिखी है।

रामानुजमत

१८—नियमयूथमालिका—इसमें रामानुजमतका दिग्दर्शन है।

श्रीकण्ठमत

१९—शिवार्कमणिदीपिका—यह ब्रह्मसूत्रके श्रीकण्ठकृत भाष्यकी व्याख्या है।

२०—रत्नत्रयपरीक्षा—इसमें हरि, हर और शक्तिकी उपासनाका विषय दिखलाया गया है।

शैवमत

२१—मणिमालिका—यह शिवविशिष्टाद्वैतपर हरदत्त प्रभृति आचार्योंके सिद्धान्तका अनुसरण करनेवाला निबन्ध है।

२२—शिखरिणीमाला—इसमें ६४ शिखरिणी छन्दोंमें भगवान् शङ्करके सगुण स्वरूपका गुणगान है।

२३—शिवतत्त्वविवेक—यह उपर्युक्त शिखरिणी मालाका व्याख्या-ग्रन्थ है। इसमें भगवान् शिवकी प्रधानताका प्रतिपादन किया है।

२४—शिवतर्कस्तव—इसमें भी श्रुति, स्मृति एवं पुराणादिके द्वारा शिवका प्राधान्य निश्चय किया गया है।

२५—ब्रह्मतर्कस्तव—यह ग्रन्थ वसन्ततिलकावृत्तमें लिखा गया है। इसमें भी शिवजीकी प्रधानताका प्रतिपादन किया गया है।

२६—शिवार्चनचन्द्रिका—इस निबन्धमें शिवपूजनकी विधिका विचार है। इसके ऊपर दीक्षितने स्वयं ही बालचन्द्रिका नामकी टीका लिखी है।

२७—शिवध्यानपद्धति—इसमें पुराणादिसे वाक्य उद्धृत कर शिवजीके ध्यानकी विधिका विचार किया गया है।

२८—आदित्यस्तवरत्न—यह सूर्यके मिषसे अन्तर्यामी शिवका ही स्तव है।

२९—मध्वतन्त्रमुखमर्दन—इस ग्रन्थमें मध्वसिद्धान्तका खण्डन है।

३०—यादवाभ्युदयका भाष्य—श्रीवेदान्तदेशिकाचार्यने 'यादवाभ्युदय' नामक काव्यकी रचना की थी। यह उसीका भाष्य है।

इसके सिवा शिवकर्णामृत, रामायणतात्पर्यसङ्ग्रह, भारततात्पर्यसङ्ग्रह, शिवाद्वैतविनिर्णय, पञ्चरत्नस्तव और उसकी व्याख्या, शिवानन्दलहरी, दुर्गाचन्द्रकलास्तुति और उसकी व्याख्या, कृष्णध्यानपद्धति और उसकी व्याख्या तथा आत्मार्पण आदि निबन्ध भी उनकी उत्कृष्ट कृतियाँ हैं।

भट्टोजि दीक्षित

आचार्य भट्टोजि दीक्षित सुप्रसिद्ध वैयाकरण थे। उनकी रची हुई सिद्धान्तकौमुदी और प्रौढमनोरमा उनकी दिगन्तव्यापिनी अक्षुण्ण कीर्त्तिकौमुदीका विस्तार करनेवाली हैं। वेदान्तशास्त्रमें वे आचार्य अप्पय्य दीक्षितके शिष्य थे। तथा उनके व्याकरणके गुरु प्रक्रियाप्रकाशकार श्रीकृष्ण दीक्षित थे। भट्टोजि दीक्षितकी प्रतिभा असाधारण थी। उन्होंने मनोरमामें अपने गुरुके मतका खण्डन किया है। एक बार शास्त्रार्थ होते समय उन्होंने पण्डितराज जगन्नाथको म्लेच्छ कह दिया था। इससे पण्डितराजका उनके प्रति स्थायी वैमनस्य हो गया और उन्होंने मनोरमाका खण्डन करनेके लिये मनोरमाकुचमर्दन नामक ग्रन्थकी रचना की। पण्डितराज उनके गुरु कृष्ण दीक्षितके पुत्र वीरेश्वर दीक्षितके शिष्य थे।

भट्टोजि दीक्षितके रचे हुए ग्रन्थोंमें सिद्धान्तकौमुदी और प्रौढमनोरमा जगत्प्रसिद्ध हैं। सिद्धान्तकौमुदी पाणिनीय व्याकरणसूत्रोंकी वृत्ति है और मनोरमा सिद्धान्तकौमुदीकी व्याख्या है। उनका तीसरा ग्रन्थ 'शब्दकौस्तुभ' है। इसमें उन्होंने पातञ्जल महाभाष्यके विषयका

युक्तिपूर्वक समर्थन किया है। चौथा ग्रन्थ वैयाकरणभूषण है। इसका प्रतिपाद्य विषय भी व्याकरण ही है। इन व्याकरण-ग्रन्थोंके अतिरिक्त उन्होंने तत्वकौस्तुभ और वेदान्ततत्वविवेक टीकाविवरण नामक दो वेदान्तग्रन्थ भी रचे थे। इनमेंसे केवल तत्वकौस्तुभ प्रकाशित हुआ है। इसमें द्वैतवादका खण्डन किया गया है।

सदाशिव ब्रह्मेन्द्र

सदाशिव ब्रह्मेन्द्र स्वामी दीक्षितके समकालीन थे। ये संन्यासी थे और सम्भवतः काञ्ची-कामकोटि पीठके अधीश्वर थे, क्योंकि इनके रचे हुए गुरुरत्नमालिका नामक ग्रन्थमें ब्रह्मविद्याभरणकार स्वामी अद्वैतानन्दका उल्लेख है, और वे काञ्चीपीठके अधीश्वर थे। सदाशिव स्वामीने अद्वैतविद्याविलास, बोधार्यात्मनिर्वेद, गुरुरत्नमालिका और ब्रह्मकीर्त्तनतरङ्गिणी आदि ग्रन्थोंकी रचना की थी, किन्तु वे सभी अभीतक अप्रकाशित हैं।

नीलकण्ठ सूरि

आचार्य नीलकण्ठ महाभारतके टीकाकार हैं। इनका जन्म महाराष्ट्र देशमें हुआ था। ये गोदावरीके पश्चिमी तटपर कूर्पर नामक स्थानमें रहते थे। इनका स्थितिकाल भी सोलहवीं शताब्दी ही है। ये चतुर्धर वंशमें उत्पन्न हुए थे और इनके पिताका नाम गोविन्द सूरि था। इन्होंने महाभारतपर जो टीका लिखी है वह 'भारतभावदीप' नामसे विख्यात है। गीताकी व्याख्याके आरम्भमें अपनी व्याख्याको सम्प्रदायानुसारी बताते हुए इन्होंने भगवान् शङ्कराचार्य एवं श्रीधरादिकी वन्दना की है। इससे सिद्ध होता है कि वे अद्वैतवादी थे। यद्यपि गीताकी व्याख्यामें इन्होंने कहीं-कहीं शाङ्करभाष्यका अतिक्रमण भी किया है तथापि इनका मुख्य अभिप्राय अद्वैतसम्प्रदायके अनुकूल ही है। भारतभावदीपके अतिरिक्त इनकी और कोई कृति नहीं मिलती।

सदानन्द योगीन्द्र

स्वामी श्रीसदानन्द योगीन्द्र वेदान्तसारके रचयिता हैं। इनका स्थितिकाल सोलहवीं शताब्दीका प्रथम भाग है। वेदान्तसारके ऊपर श्रीनृसिंह सरस्वतीकी 'सुबोधिनी' टीका है। उसके अन्तमें इन्होंने जो श्लोक लिखा है उससे विदित होता है कि सुबोधिनीकी रचना शक संवत् १५१८में हुई थी। वेदान्तसार उससे कुछ पूर्व ही प्रसिद्ध हो गया होगा। इससे तथा और भी कई हेतुओंसे सदानन्द स्वामीका जीवनकाल सोलहवीं शताब्दीका पूर्वार्ध ही निश्चित होता है।

वेदान्तसार अद्वैतवेदान्तका अत्यन्त सरल प्रकरण ग्रन्थ है। ऐसी सरलता प्रायः किसी अन्य ग्रन्थमें नहीं पायी जाती। इसीसे यह बहुत लोकप्रिय है। इसके ऊपर कई टीकाएँ लिखी गयीं और इसके कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इस ग्रन्थको लिखकर सदानन्द स्वामीने वस्तुतः मुमुक्षुओंका बहुत उपकार किया है। इसके सिवा उन्होंने एक 'शङ्करदिग्विजय' भी लिखा है, जो सम्भवतः अभी देवनागरी लिपिमें प्रकाशित नहीं हुआ।

नृसिंह सरस्वती

श्रीनृसिंह सरस्वती वेदान्तसारकी टीका 'सुबोधिनी'के रचयिता हैं। यह टीका उन्होंने शाके १५१८में लिखी थी। अतः उनका स्थितिकाल विक्रमी सत्रहवीं शताब्दी होनी चाहिये।

सुबोधिनीकी भाषा बहुत सुन्दर है। इससे उनकी उच्च कोटिकी प्रतिभाका परिचय मिलता है। उनके गुरुका नाम श्रीकृष्णानन्द स्वामी था।

मधुसूदन सरस्वती

श्रीमधुसूदन सरस्वती अद्वैतसम्प्रदायके प्रधान आचार्योंमेंसे हैं। उनके गुरुका नाम श्रीविश्वेश्वर सरस्वती था। उनका जन्मस्थान बङ्गदेश था। कहते हैं, वे फरीदपुर जिलेके अन्तर्गत कोटालिपाड़ा ग्रामके निवासी थे। वे आजन्म ब्रह्मचारी थे। विद्याध्ययनके अनन्तर वे काशीमें आये और यहाँके बहुतसे प्रमुख पण्डितोंको शास्त्रार्थमें पराजित किया। इस प्रकार विद्वन्मण्डलीमें सर्वत्र उनकी कीर्त्तिकौमुदी फैलने लगी। इसी समय उनका परिचय श्रीविश्वेश्वर सरस्वतीसे हुआ और उन्हींकी प्रेरणासे उन्होंने दण्ड ग्रहण किया।

श्रीमधुसूदन स्वामी मुगल सम्राट् शाहजहाँके समकालीन थे। कहते हैं, उन्होंने रामराज स्वामीके ग्रन्थ न्यायामृतका खण्डन किया था। इससे चिढ़कर उन्होंने अपने शिष्य व्यास रामाचार्यको मधुसूदन सरस्वतीके पास वेदान्तशास्त्रका अध्ययन करनेके लिये भेजा। व्यास रामाचार्यने विद्या प्राप्त कर फिर श्रीमधुसूदन स्वामीके ही मतका खण्डन करनेके उद्देश्यसे 'तरङ्गिणी' नामक ग्रन्थकी रचना की। इससे ब्रह्मानन्द सरस्वती आदिने असन्तुष्ट होकर तरङ्गिणीका खण्डन करनेके लिये 'लघुचन्द्रिका' नामक ग्रन्थकी रचना की।

मधुसूदन सरस्वती बड़े भारी योगी थे। वीरसिंह नामक एक राजाके सन्तान नहीं थी। उसने एक रातको स्वप्नमें देखा कि मधुसूदन नामक एक यति है, उसकी सेवासे पुत्र अवश्य होगा। तदनुसार राजाने मधुसूदनका पता लगाना शुरू किया। कहते हैं कि उस समय मधुसूदनजी एक नदीके किनारे जमीनके अन्दर समाधिस्थ थे। राजा खोजते-खोजते वहाँ पहुँचा। वहाँकी मिट्टी खोदनेपर अन्दर एक तेजःपुञ्ज महात्मा समाधिस्थ दिखाई दिये। राजाने स्वप्नके स्वरूपसे मिलाकर निश्चित किया कि यही मधुसूदन यति हैं। राजाने वहाँ एक मन्दिर बनवा दिया। कहा जाता है कि इस घटनाके तीन वर्ष बाद मधुसूदनजीकी समाधि टूटी थी। इसीसे उनकी योगसिद्धिका पता लगता है। परन्तु वे इतने विरक्त थे कि समाधि खुलनेपर उस स्थानको और राजप्रदत्त भोग और मन्दिरको छोड़कर तीर्थाटनको चल दिये।

मधुसूदन सरस्वतीके विद्यागुरु श्रीमाधव सरस्वती थे। अद्वैतसिद्धिकी समाप्ति करते हुए वे लिखते हैं—

श्रीमाधवसरस्वत्यो जयन्ति यमिनां वराः।
वयं येषां प्रसादेन शास्त्रार्थे परिनिष्ठिताः॥

इससे सिद्ध होता है कि उनके विद्यागुरु श्रीमाधव सरस्वती थे और दीक्षागुरु श्रीविश्वेश्वर सरस्वती थे।

मतवाद

श्रीमधुसूदन स्वामी अद्वैतसम्प्रदायके महारथी हैं। उन्होंने अद्वैतसिद्धान्तका जैसा युक्तियुक्त समर्थन किया है उससे विपक्षियोंका मानमर्दन करनेके लिये उसे बहुत बड़ी शक्ति प्राप्त हुई। उन्हें अद्वैतसाहित्यका एक युगनिर्माता कह सकते हैं। उनके पूर्ववर्त्ती आचार्योंकी युक्तिमें शास्त्रप्रमाणकी प्रधानता रहती थी, किन्तु इन्होंने प्रधानतया अनुमानप्रमाणके बलपर

ही स्वसिद्धान्तकी स्थापना की है। वस्तुतः उनका युक्तिकौशल अभूतपूर्व है। इस प्रकार अद्वैतसिद्धान्तके प्रधान स्तम्भ होनेपर भी उनकी सगुण भक्ति सर्वत्र प्रकट है। उनकी लिखी हुई श्रीमद्भगवद्गीताकी व्याख्या गूढार्थदीपिकामें जगह-जगह उनकी भक्तिका परिचय मिलता है। यद्यपि उनकी यह प्रतिज्ञा है कि उन्होंने भगवान् श्रीशङ्कराचार्यके भाष्यार्थको स्फुट करनेके लिये ही गीताकी व्याख्या की है, तथापि गीताके सिद्धान्तभूत 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' इस श्लोकको तो उन्होंने आचार्यके मतका लिहाज न करके शरणागतिपरक ही बतलाया है।

कहते हैं कि इन्हें भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात्कार था और ये श्रीकृष्ण-भक्तिके सामने अन्य सभी साधनोंको तुच्छ समझते थे। इनकी निष्ठाका पता इनकी गीताकी व्याख्याके १३वें अध्यायके प्रारम्भमें और १५वें अध्यायके अन्तमें दिये हुए निम्नलिखित स्वरचित श्लोकोंसे भलीभाँति लग जाता है—

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं
ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं
कालिन्दीपुलिनोदरे किमपि यन्नीलं महो धावति॥
वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

× × × × × ×

प्रमाणतोऽपि निर्णीतं कृष्णमाहात्म्यमद्भुतम्।
न शक्नुवन्ति ये सोढुं ते मूढा निरयं गताः॥

'ध्यानके अभ्याससे जिनका चित्त वशमें हो गया है वे योगी यदि उस निर्गुण और निष्क्रिय परम ज्योतिको देखते हैं तो देखा करें। हमारे नेत्रोंको तो कालिन्दी तटविहारी नीले तेजवाला साँवला ही सुख पहुँचाता रहे।' जिसके हाथोंमें वंशी सुशोभित है, जो नवनीर-नीरद-सुन्दर है, पीताम्बर पहने है, जिसके होठ बिम्बाफलके समान लाल-लाल हैं, जिसका मुखमण्डल पूर्णचन्द्रके सदृश और जिसके नेत्र कमलवत् हैं, उस कृष्णसे परे कोई तत्त्व हो तो मैं उसे नहीं जानता।' 'प्रमाणोंसे निर्णय किये हुए श्रीकृष्णके अद्भुत माहात्म्यको जो मूढ नहीं सह सकेंगे वे नरकगामी होंगे।'

इसके सिवा उनका लिखा हुआ 'भक्तिरसायन' ग्रन्थ भी उनके भक्तिभावका अद्भुत परिचायक है। इससे उनकी भगवद्रसज्ञता और भावुकताका परिचय मिलता है। सुप्रसिद्ध महिम्नस्तोत्रकी शिव और विष्णु उभयपरक व्याख्या करके उन्होंने श्रीहरि और हरका अभेद सिद्ध किया है। वस्तुत. वे जैसे विद्वान् थे वैसे ही तत्वनिष्ठ और वैसे ही भगवत्प्राण भी थे। ऐसे महापुरुषोंकी वाणी ही वस्तुतः ठीक-ठीक पथप्रदर्शन कर सकती है।

ग्रन्थ-विवरण

अब हम उनके रचे हुए ग्रन्थोंका संक्षिप्त विवरण देते हैं—

१-**सिद्धान्तविन्दु**—यह श्रीशङ्कराचार्यजी कृत 'दशश्लोकी'की व्याख्या है। इसपर ब्रह्मानन्द सरस्वतीने रत्नावली नामक निबन्ध लिखा है। भगवान् शङ्करने दशश्लोकीमें वेदान्तके स्वारसिक सिद्धान्तका निरूपण किया है। मधुसूदन सरस्वतीने उसीका युक्ति-प्रयुक्तियोंद्वारा विस्तार किया है।

२-**संक्षेपशारीरककी व्याख्या**—यह सर्वज्ञात्म-मुनिकृत संक्षेप शारीरककी व्याख्या है।

३-**अद्वैतसिद्धि**—यह अद्वैतसिद्धान्तका अत्यन्त उच्च-कोटिका ग्रन्थ है। इसमें चार परिच्छेद हैं। ब्रह्मानन्द सरस्वतीने इसके ऊपर लघुचन्द्रिका नामकी व्याख्या लिखी है। यह ग्रन्थ अद्वैतसम्प्रदायका अमूल्य रत्न है।

४-**अद्वैतरत्नरक्षण**—इसमें द्वैतवादका खण्डन करते हुए अद्वैतवादकी स्थापना की है।

५-**वेदान्तकल्पलतिका**—यह भी वेदान्त-ग्रन्थ ही है। इसकी रचना अद्वैतसिद्धिसे पहले हुई थी, क्योंकि अद्वतसिद्धिमें इसका उल्लेख है।

६-**गूढार्थदीपिका**—यह श्रीमधुसूदन स्वामिकृत श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका है। इसे गीताकी सर्वोत्तम व्याख्या कह सकते हैं। इसमें प्रायः प्रत्येक शब्दकी व्याख्या की गयी है।

७-**प्रस्थानभेद**—इसमें सब शास्त्रोंका सामञ्जस्य करके उनका अद्वैतमें तात्पर्य दिखलाया गया है। यह निबन्ध सक्षिप्त होनेपर भी मधुसूदन स्वामीकी अद्भुत प्रतिभाका द्योतक है।

८-**महिम्नस्तोत्रकी टीका**—इसमें सुप्रसिद्ध महिम्न-स्तोत्रके प्रत्येक श्लोककी शिव और विष्णुपरक व्याख्या की गयी है। इससे उनके असाधारण कौशलका परिचय मिलता है।

९-**भक्तिरसायन**—यह भक्तिसम्बन्धी लक्षणग्रन्थ है।

धर्मराज अध्वरीन्द्र

धर्मराज अध्वरीन्द्र 'वेदान्तपरिभाषा' नामक ग्रन्थके प्रणेता हैं। भेदधिक्कारादि ग्रन्थोंके रचयिता श्रीनृसिंहाश्रम स्वामी उनके परमगुरु थे। वेदान्त परिभाषाके आरम्भमें उन्होंने इस प्रकार उनका परिचय दिया है।

यदन्तेवासिपञ्चास्यैर्निरस्ता भेदिवारणाः।
तं प्रणौमि नृसिंहाख्यं यतीन्द्रं परमं गुरुम्॥

'अर्थात् जिनके शिष्यरूप सिंहोंद्वारा भेदवादीरूप हस्तिसमूह परास्त हो गये उन परमगुरु योगिराज श्रीनृसिंहाश्रमको मैं प्रणाम करता हू।'

नृसिंहाश्रम स्वामीके शिष्य वेङ्कटनाथ थे और वेङ्कटनाथके शिष्य धर्मराज। नृसिंहाश्रम सोलहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें विद्यमान् थे, इसलिये धर्मराजका स्थितिकाल सत्तरहवीं शताब्दीका होना सम्भव है।

धर्मराज अध्वरीन्द्रके ग्रन्थोंमें वेदान्तपरिभापा प्रधान है। यह अद्वैतसिद्धान्तका अत्यन्त उपयोगी प्रकरणग्रन्थ है। इसके ऊपर बहुतसी टीकाएँ हुई हैं और भिन्न-भिन्न स्थानोंसे

इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। अद्वैतवेदान्तका रहस्य समझनेमें इसका अध्ययन बहुत उपयोगी है। इसके सिवा उन्होंने गङ्गेशोपाध्यायकृत 'तत्वचिन्तामणि' नामक नव्य-न्यायके ग्रन्थपर 'तर्कचूड़ामणि' नामकी एक टीका भी लिखी है। उसमें अपनेसे पूर्ववर्त्तिनी दस टीकाओंके मतका खण्डन किया गया है। यह टीका बहुत ही युक्तियुक्त है।

रामतीर्थ

श्रीरामतीर्थ स्वामी वेदान्तसारके टीकाकार हैं। वेदान्तसारके प्रणेता स्वामी सदानन्द सोलहवीं शताब्दीमें वर्त्तमान थे। नृसिंह सरस्वतीने संवत् १५९८में वेदान्तसारकी पहली टीका लिखी थी। रामतीर्थ उनके परवर्त्ती हैं। अतः उनका स्थितिकाल सत्तरहवीं शताब्दी है। उनके गुरु स्वामी कृष्णतीर्थ थे।

स्वामी रामतीर्थने संक्षेपशारीरकके ऊपर 'अन्वयार्थप्रकाशिका', भगवान् शङ्कराचार्य-कृत उपदेशसाहस्रीपर 'पदयोजनिका' और वेदान्तसारपर 'विद्वन्मनोरञ्जिनी' नामकी टीकाएँ लिखी हैं। इनके सिवा उन्होंने एक टीका मैत्रायणी उपनिषद्पर भी लिखी है, जो अभीतक सम्भवतः प्रकाशित नहीं हुई है।

आपदेव

आपदेव सुप्रसिद्ध मीमांसक थे। उनका 'मीमांसा न्यायप्रकाश' पूर्वमीमांसाका एक प्रामाणिक प्रकरणग्रन्थ है। किन्तु मीमांसक होते हुए भी उन्होंने श्रीसदानन्दकृत वेदान्तसार-पर 'बालबोधिनी' नामकी टीका लिखी है, जो नृसिंहसरस्वतीकृत 'सुबोधिनी' और रामतीर्थ-कृत 'विद्वन्मनोरञ्जिनी'की अपेक्षा भी अधिक उत्कृष्ट समझी जाती है। उस टीकाके आरम्भमें उन्होंने लिखा है—

> आपदेवेन वेदान्तसारतत्त्वस्य दीपिका।
> सिद्धान्तसम्प्रदायानुरोधेन क्रियते शुभा॥

इससे उनका अद्वैतवादी होना सिद्ध होता है। सम्भव है, पूर्वमीमांसाके प्रौढ विद्वान् होनेपर भी उनका मत अद्वैतवाद ही रहा हो।

गोविन्दानन्द

आचार्य गोविन्दानन्द शारीरक भाष्यके टीकाकार हैं। उनकी लिखी हुई 'रत्नप्रभा' टीका सम्भवतः शाङ्करभाष्यकी टीकाओंमें सबसे सरल है। इसमें भाष्यके प्रायः प्रत्येक पदकी व्याख्या है। सर्वसाधारणके लिये भाष्यको हृदयङ्गम करानेमें यह टीका बहुत ही उप-योगी है। जो लोग विस्तृत और गम्भीर टीकाओंको समझनेमें असमर्थ हैं उन्हींके लिये यह व्याख्या लिखी गयी है—ऐसा ग्रन्थकारने स्वयं लिखा है। वे कहते हैं—

> विस्तृतग्रन्थवीक्षायामलसं यस्य मानसम्।
> व्याख्या तदर्थमारब्धा भाष्यरत्नप्रभाभिधा॥

श्रीगोविन्दानन्दजीने भाष्य-रत्नप्रभामें अपने गुरुके सम्बन्धमें जो श्लोक लिखा है उसके एक पदके साथ ब्रह्मानन्दसरस्वतीकृत लघुचन्द्रिकाकी समाप्तिके एक श्लोकका कुछ सादृश्य देखा जाता है।

उन दोनों वाक्योंसे सिद्ध होता है कि श्रीगोविन्दानन्दजी और ब्रह्मानन्दजी दोनों हीके विद्यागुरु श्रीशिवरामजी थे। इससे उन दोनोंका समकालीन होना भी सिद्ध होता है। श्रीब्रह्मानन्दजी मधुसूदन स्वामीके समकालीन थे। अतः गोविन्दानन्दजीका स्थितिकाल भी सत्तरहवीं शताब्दी ही है।

रामानन्द सरस्वती

श्रीरामानन्द सरस्वती रत्नप्रभाकार गोविन्दानन्द स्वामीके शिष्य थे। अपने गुरुकी भाँति ये भी रामभक्त थे। इनकी स्थितिका काल सत्तरहवीं शताब्दी है। इन्होंने ब्रह्मसूत्रकी 'ब्रह्मामृतवर्षिणी' नामक टीका लिखी है, जो सिद्धान्तत. शाङ्करभाष्यका अनुसरण करती है। ब्रह्मामृतवर्षिणीकी भाषा बहुत सरल है। ब्रह्मसूत्रोंका शाङ्करभाष्यानुसारी तात्पर्य जाननेके लिये आरम्भमें इसका अध्ययन बहुत उपयोगी है। इसके सिवा उनका दूसरा ग्रन्थ 'विवरणोपन्यास' है। यह श्रीपद्मपादाचार्यकी पञ्चपादिकापर प्रकाशात्म यतिके लिखे हुए 'विवरण' नामक ग्रन्थपर एक निबन्ध है। इसमें गद्यमें विचार कर पद्यमें उसका फलस्वरूप सिद्धान्त दिया गया है। जिस प्रकार विद्यारण्य स्वामीका 'विवरणप्रमेयसङ्ग्रह' नामक ग्रन्थ है, उसी प्रकार रामानन्द स्वामीका 'विवरणोपन्यास' है।

काश्मीरक सदानन्द यति

काश्मीरक सदानन्द यति 'अद्वैत ब्रह्मसिद्धि' नामक प्रकरण-ग्रन्थके प्रणेता हैं। उनका जीवनकाल सत्तरहवीं शताब्दी है। उनके नामके साथ 'काश्मीरक' शब्दका व्यवहार होनेसे जान पड़ता है कि वे काश्मीरदेशीय थे। उनकी 'अद्वैतब्रह्मसिद्धि' अद्वैतमतका एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें प्रतिबिम्बवाद एवं अवच्छिन्नवाद सम्बन्धी मतभेदोंकी विशेष विवेचनामें न पड़कर एक-जीववादको ही वेदान्तका मुख्य सिद्धान्त बतलाया गया है। वास्तवमें यह बात ठीक भी है। जबतक प्रबल साधनाके द्वारा जिज्ञासु ऐकात्म्यका अनुभव नहीं कर लेता तभी-तक वह इस वाग्जालमें फँसा रहता है। अन्यथा—'ज्ञाते द्वैतं न विद्यते'।

रङ्गनाथ

श्रीरङ्गनाथजी ब्रह्मसूत्रोंकी शाङ्करभाष्यानुसारिणी वृत्तिके रचयिता हैं। इनका स्थिति-काल सत्तरहवीं शताब्दी है। आचार्य रङ्गनाथकी वृत्ति बहुत सरल है। इन्होंने ब्रह्मसूत्र प्रथमाध्याय—द्वितीय पादके अन्तर्गत तेईसवें सूत्रके पश्चात् 'प्रकरणत्वात्' यह एक नवीन सूत्र माना है। भामतीकारादिने इसे भाष्यके अन्तर्गत स्वीकार किया है। किन्तु वैयासिक न्यायमालाकार भारतीतीर्थने इसे पृथक् सूत्र माना है। रङ्गनाथजीने भी उन्हींके मतका अनुसरण किया है। इनके मतमें कोई नवीनता नहीं है। इन्हें आचार्यपाद भगवान् शङ्करका ही सिद्धान्त अभिमत है।

ब्रह्मानन्द सरस्वती

श्रीब्रह्मानन्द सरस्वती अद्वैतसिद्धिके टीकाकार हैं। वे मधुसूदन स्वामीके समकालीन थे। द्वैतमतावलम्बी व्यासराजके शिष्य रामाचार्यने मधुसूदन स्वामीसे अद्वैतसिद्धान्तकी शिक्षा ग्रहण कर फिर उन्हींके मतका खण्डन करनेके लिये 'तरङ्गिणी' नामक ग्रन्थकी रचना की थी।

इससे असन्तुष्ट होकर ब्रह्मानन्दजीने 'अद्वैतसिद्धि' पर 'लघुचन्द्रिका' नामकी टीका लिखकर तरङ्गिणीकारके मतका खण्डन किया। इसमें उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। उन्होंने रामाचार्यकी सभी आपत्तियोंका बहुत सन्तोषजनक समाधान किया। संसारका मिथ्यात्व एकजीववाद, निर्गुण ब्रह्मवाद, नित्य निरतिशय आनन्दरूप मुक्तिवाद—इन सभी विषयोंका उन्होंने बहुत अच्छा विवेचन किया है। इस ग्रन्थसे उनकी दार्शनिक प्रतिभाका बड़ा सुन्दर परिचय मिलता है। वस्तुतः वे एक सफल समालोचक थे।

लघुचन्द्रिकाके सिवा उन्होंने मधुसूदन स्वामीके सिद्धान्तविन्दुपर 'रत्नावली' और 'सूत्रमुक्तावली' नामक दो निवन्ध भी लिखे हैं। वे अद्वैतवादके एक प्रधान आचार्य गिने जाते हैं। उनकी रचनाओंसे उनकी सर्वतन्त्र स्वतन्त्रता एवं मौलिकताका सुन्दर परिचय मिलता है। उनका स्थितिकाल सत्तरहवीं शताब्दी है। उनके दीक्षागुरु श्रीपरमानन्द सरस्वती थे और विद्यागुरु श्रीनारायणतीर्थ थे। लघुचन्द्रिकाके अन्तमें उन्होंने जो श्लोक लिखा है उससे विदित होता है कि 'शिवराम' नामक कोई महानुभाव भी उनके पूज्यवर्गमें थे। सम्भव है, उनसे भी उन्हें विद्यालाभ हुआ हो।

अच्युतकृष्णानन्द तीर्थ

श्रीअच्युतकृष्णानन्द तीर्थ अप्पय्य दीक्षितकृत सिद्धान्तलेशके टीकाकार हैं। इन्होंने छायावलनिवासी श्रीस्वयंप्रकाशानन्द सरस्वतीसे विद्या प्राप्त की थी। ये स्वयं कावेरीतीरवर्त्ती नीलकण्ठेश्वरम् नामक स्थानमें रहते थे। ये भगवान् कृष्णके भक्त थे। इनके ग्रन्थोंमें इनकी कृष्णभक्तिका यथेष्ट आभास मिलता है। इन्होंने सिद्धान्तलेशके ऊपर जो टीका लिखी है उसका नाम 'कृष्णालङ्कार' है। इस टीकामें उन्हें अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। इससे उनके पाण्डित्यका अच्छा परिचय मिलता है। किन्तु विद्वान् होनेके साथ ही वे अत्यन्त विनयशील थे। कृष्णालङ्कारके आरम्भमें वे लिखते हैं—

आचार्यचरणद्वन्द्वस्मृतिर्लेखकरूपिणम्।
मां कृत्वा कुरुते व्याख्यां नाहमत्र प्रभुर्यतः॥

अर्थात् 'श्रीगुरुके चरणोंकी स्मृति ही मुझे लेखक बनाकर यह व्याख्या कर रही है, क्योंकि मैं इस कार्यके करनेका सामर्थ्य नहीं रखता।' इससे उनकी गुरुभक्ति और निरभिमानिता सर्वथा सुस्पष्ट है।

कृष्णालङ्कारके सिवा उन्होंने तैत्तिरीयोपनिषद् शाङ्करभाष्यके ऊपर 'वनमाला' नामकी टीका लिखी है। इस टीकाके नामसे भी उनकी कृष्णभक्तिका परिचय मिलता है।

महादेव सरस्वती

महादेव सरस्वती श्री स्वयंप्रकाशानन्द सरस्वतीके शिष्य थे। उन्होंने 'तत्त्वानुसन्धान' नामक एक प्रकरण-ग्रन्थ लिखा है। इसके ऊपर उन्होंने 'अद्वैतचिन्ताकौस्तुभ' नामकी टीका भी लिखी है। 'तत्त्वानुसन्धान' बहुत सरल भाषामें लिखा गया है। इससे सहजमें ही अद्वैतसिद्धान्तका ज्ञान हो सकता है। भाषाकी कठिनता न होनेपर भी इसमें प्रतिपाद्य विषयका अच्छा विवेचन है। यह ग्रन्थ जिज्ञासुओंके लिये बहुत उपयोगी है। इनका स्थितिकाल अठारहवीं शताब्दी है।

श्रीसदाशिवेन्द्र सरस्वती

परमहंसप्रवर सदाशिवेन्द्र सरस्वतीका दूसरा नाम सदाशिवेन्द्र ब्राह्मण था। साधारणतया वे इसी नामसे विख्यात थे। वे एक असाधारण योगी थे। उनके जीवनकी बहुतसी घटनाएँ दक्षिण-भारतमें प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अठारहवीं शताब्दीके आरम्भमें करूर नामक स्थानमें जन्म ग्रहण किया था। वे अपने छात्रजीवनमें भी बड़े मेधावी और दक्ष थे तथा तञ्जाओर जिलेके अन्तर्गत तिरुविसानाल्लूर नामक स्थानमें अध्ययन किया करते थे। इस समय वे बड़े तार्किक थे और अपने अध्यापकोंके साथ उनकी प्रायः मुठभेड़ हो जाया करती थी।

छात्रजीवनके अवसानमें उनकी स्त्री पहली बार रजस्वला हुई। इसके उपलक्षमें सदाशिवेन्द्रकी माताने भोजकी तैयारी की। निमन्त्रित लोगोंने भोजनके लिये एकत्र होनेमें देरी कर दी। अतः गुरुगृहसे आनेपर सदाशिवको भोजनके लिये प्रतीक्षा करनी पड़ी। उस समय उनके चित्तमें यह विचार हुआ कि 'जब विवाहित-जीवनका आरम्भ ही ऐसा दुःखपूर्ण है तो आगे न जाने कितना कष्ट उठाना पड़ेगा।' इस प्रकार सोचते-सोचते उनमें वैराग्यवृत्ति जागृत हो उठी और वे उसी समय घर छोड़कर चल दिये।

अब वे गुरुकी खोजमें इधर-उधर भटकने लगे तथा जातीय बन्धन तोड़कर सबके साथ समान व्यवहार करने लगे। उन्हें जो कोई जो कुछ दे देता वही पा लेते थे। यदि कभी कुछ भोजन न मिलता तो जहाँ उच्छिष्ट फेंका जाता था वहाँ जाकर उससे उदरपूर्त्ति कर लेते। उनके ऐसे व्यवहारसे बहुतसे लोग उन्हें पागल समझने लगे।

इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर उनका महात्मा श्रीपरमशिवेन्द्र सरस्वतीसे साक्षात्कार हुआ। तब वे उनसे दीक्षा ग्रहण कर योगाभ्यास करने लगे। वे जिस प्रकार अध्ययनमें सफल रहे थे उसी प्रकार योगमें भी प्रगतिमान् सिद्ध हुए। इस समय उन्होंने बहुतसी कीर्त्तन-सम्बन्धी पदावलियाँ रचीं, जो इस समय भी दक्षिण भारतमें प्रचलित हैं।

इस अवस्थामें गुरुदेवके पास रहते हुए भी उनकी तर्कशक्ति बहुत बढ़ी हुई थी और समय-समयपर वे बहुतसे पाण्डित्याभिमानियोंको नीचा दिखा दिया करते थे। एक दिन ऐसे कुछ लोगोंने उनके गुरुसे उनके इस वाक्चाञ्चल्यके विषयमें शिकायत की। तब श्रीपरमशिवेन्द्रने उनसे कहा, 'न जाने तुम अपने मुखको बन्द रखना कब सीखोगे?' गुरुजीके इन शब्दोंका उनके हृदयपर बहुत प्रभाव हुआ, उन्हें अपनी भूल दिखाई देने लगी और वे उसी समय उनकी चरणवन्दना कर जीवन भरके लिये मौन होकर वहांसे चल दिये।

इसके पश्चात् वे प्रायः विचरते रहते थे, किसी एक स्थानपर अधिक नहीं ठहरते थे। उनके जीवनकी बहुतसी चमत्कारपूर्ण घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। उनकी स्थितिका पता लगनेपर एक बार उनके गुरुजीको भी ऐसा विचार हुआ था कि 'यदि मुझे ऐसी अवस्था प्राप्त होती तो मैं भी कृतकृत्य हो जाता।'

सुना जाता है, श्रीसदाशिवेन्द्रने योरोपीय टर्कीतक भ्रमण किया था। नेरूरके समीप उनकी समाधि इस समय भी बनी हुई है।

श्रीसदाशिवेन्द्रने कई ग्रन्थ लिखे। उनमेंसे बहुतसे अभीतक अप्राप्य हैं। उनके ग्रन्थोंमें ब्रह्मसूत्रवृत्ति प्रधान है। यह ब्रह्मसूत्रोंकी शाङ्करभाष्यानुसारिणी वृत्ति है। इसका

अध्ययन कर लेनेपर शाङ्करभाष्यको समझना सरल हो जाता है। इस वृत्तिका नाम 'ब्रह्म-तत्त्वप्रकाशिका' है।

द्वादश उपनिषदोंपर भी उनकी टीका है। वह अभीतक अप्रकाशित है। योगसूत्रोंपर उन्होंने 'योगसुधाकर' नामकी वृत्ति लिखी है। वह भी बहुत उपयोगी है। इनके सिवा उनके ग्रन्थोंमेंसे 'आत्मविद्याविलास', कविताकल्पवल्ली' और 'अद्वैतरसमञ्जरी' नामक तीन ग्रन्थ और भी प्रकाशित हो चुके हैं।

श्रीसदाशिवेन्द्र महान् योगी और परम अद्वैतनिष्ठ महात्मा थे। उनका जीवन एक सिद्ध पुरुषका जीवन था। उनके ग्रन्थोंमें भी उनके उत्कृष्ट-जीवनकी छाप है ही। इनकी रचना सरल और भावपूर्ण है। ऐसे महापुरुषोंसे भूमि कृतकृत्य होती है।

आयन्न दीक्षित

आयन्न दीक्षित श्रीवेङ्कटेशके शिष्य थे। उन्होंने 'व्यासतात्पर्यनिर्णय' नामक एक अद्भुत ग्रन्थकी रचना की। श्रीवेङ्कटेश सदाशिवेन्द्र सरस्वतीके समकालीन थे। उन्होंने 'अक्षयषष्टि' और 'दायशतक' नामक दो ग्रन्थ रचे हैं। उनके शिष्य होनेके कारण इनका जीवनकाल भी अठारहवीं शताब्दी ही सिद्ध होता है।

आयन्न दीक्षितका 'व्यासतात्पर्यनिर्णय' नामक केवल एक ही ग्रन्थ पाया जाता है। भगवान् व्यासके वेदान्तसूत्रोंको अद्वैतवादी, विशिष्टाद्वैती, शुद्धाद्वैती, द्वैताद्वैती एवं शिवाद्वैत-वादी सभी प्रमाण मानते हैं, और उन सभीके सिद्धान्तोंमें बहुत अन्तर होते हुए भी सभीने बहुतसी युक्ति-प्रयुक्तियोंसे उसे स्वाभिमत-सिद्धान्तानुकूल बतलाया है। ऐसी स्थितिमें यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन है कि वास्तवमें भगवान् व्यासका क्या अभिप्राय है।

इसके लिये आयन्न दीक्षितने एक नवीन युक्ति दी है। वे कहते हैं कि साङ्ख्य, मीमांसा, पातञ्जल, न्याय, वैशेषिक, पाशुपत एवं वैष्णव दर्शनोंमें भी ब्रह्मसूत्रोंके ऊपर विचार हुआ ही है। इन सभीने अपने-अपने सिद्धान्तोंकी स्थापना करनेके लिये जिस प्रकार शेष सब मतोंका खण्डन किया है उसी प्रकार ब्रह्मसूत्रोंका भी खण्डन किया ही है। वहाँ उन्होंने अद्वैतपरक मानकर ही उनका निरास किया है। इससे उनका मुख्य तात्पर्य अद्वैतमें ही सिद्ध होता है। इसी प्रकार उन्होंने और भी बहुतसी मौलिक युक्तियाँ लिखी हैं। इससे उनकी विचित्र प्रतिभाका ज्ञान होता है। अद्वैतसिद्धान्तके प्रेमियोंके लिये वास्तवमें 'व्यास-तात्पर्यनिर्णय' सङ्ग्रहणीय है।

सत्तरवाँ अध्याय

भागवत वा वैष्णव मत

पाञ्चरात्र-मतको पुष्ट करते हुए भागवत सम्प्रदाय तो महाभारत-कालमें भी मौजूद था। या यों कहना चाहिए कि कृष्णावतारके लगभग ही पाञ्चरात्रधर्म सात्वतोंके भागवत-धर्ममें परिणत हो गया। परन्तु बौद्धधर्मके जोर-शोरमें प्रायः इस धर्मका भी ह्रास ही समझा जाना चाहिए। जो कुछ इसका अवशिष्ट था उसके भी खण्डन करनेकी कोशिश शङ्कर स्वामी-ने की थी। उन्होंने ब्रह्मसूत्रोंमें दूसरे पादके दूसरे अध्यायके ४२वें सूत्रकी व्याख्यामें भागवत धर्म्मके अनुसार भगवान् वासुदेवके चतुर्व्यूहकी उपासनाकी पांच विधियां दी हैं, अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय और योग। इन पांच विधियोंसे उपासना करते हुए उपासक सौ वर्षमें धूतपाप हो भगवान्‌को प्राप्त करता है। नारदपञ्चरात्र और ज्ञानामृतसारसे पता चलता है कि भागवतधर्म्मकी परम्परा बौद्धधर्म्मके फैलनेपर भी नष्ट नहीं हो पायी। इनके अनुसार हरिभजन ही मुक्तिकी पराकाष्ठा है। ज्ञानामृतसारमें छ. प्रकारकी भक्ति दी है—स्मरण, कीर्त्तन, वन्दन, पादसेवन, अर्चन और आत्मनिवेदन। श्रीमद्भागवत पुराणमें (७।५। २३–२४) श्रवण, दास्य और सख्य ये तीन और मिलाकर नव प्रकारकी भक्तिका वर्णन है। सम्भवतः भागवत-सम्प्रदायकी अनेक शाखाओंका अस्तित्व शङ्कर स्वामीके समयमें भी रहा होगा, परन्तु सिद्धान्त एक ही भागवत-मतका होनेसे शङ्कर स्वामीने शाखाओंकी चर्चा नहीं की। सम्प्रदायोंके इतिहाससे भी यही पता लगता है कि उनकी सत्ताका मूल अत्यन्त प्राचीन है, यद्यपि उनके मुख्य-प्रचारक वा आचार्य्य हालके ही हैं।

भगवान् शङ्कराचार्य्यके पीछे वैष्णव-धर्म्मके चार प्रधान सम्प्रदाय दिखाई पड़ते हैं। श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय, माध्व-सम्प्रदाय, रुद्र-सम्प्रदाय और सनक-सम्प्रदाय। इन चारों सम्प्र-दायोंका आधार श्रुति है, और दर्शन-वेदान्त है। साहित्य वही पुराना है। केवल व्याख्या और बाह्याचारमें परस्पर अन्तर होनेसे सम्प्रदायभेद उत्पन्न हो गया है। महाभारतकी रचना-कालसे लेकर आदि शङ्कराचार्य्यके समयतक पाञ्चरात्र और भागवतधर्म्मका क्या रूप रहा होगा इसका पता तो शङ्कराचार्य्यसे ही लगता है। परन्तु शङ्कराचार्य्यके पीछे भागवत और पाञ्च-रात्र दोनों वैष्णव-सम्प्रदायोंमें सम्भवतः आचार्य्योंके समय समयपर सिद्धान्तोंकी भिन्न रीतिसे व्याख्या करनेसे इनकी शाखाएँ बन गयीं जो काल पाकर पुष्ट हो सम्प्रदायके रूपमें प्रकट हुईं।

पुराण-खण्डमें हम यह देख चुके हैं कि अवतारों और विष्णु वा नारायणके चरितके वर्णनमें प्रत्येक पुराणकी अपनी-अपनी विशेषता है। इनमें वैष्णव पुराणोंमें विष्णुपुराण, ब्रह्म-वैवर्त्तपुराण, हरिवंशपुराण और श्रीमद्भागवतमें विष्णु, नारायण, यादवकृष्ण और गोपाल-कृष्णके चरितोंका कई पहलुओंसे वर्णन है। जैसा कि नामसे प्रकट है श्रीमद्भागवत* ही सब पुराणोंमें भागवत-सम्प्रदायका मुख्य ग्रन्थ समझा जाना चाहिये।

---

* श्रीमद्भागवतको महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीने वोपदेवकृत माना है। परन्तु विष्णु-

प्राचीन भागवत सम्प्रदायका अवशेष आज भी दक्षिण देशमें विद्यमान है। द्रविड़, तैलङ्ग, कर्णाटक और महाराष्ट्र देशमें बीचमें गोपीचन्दनकी रेखावाले ऊर्ध्व पुण्ड्रको धारण करनेवाले वैष्णव अब भी बहुत हैं। ये नारदभक्तिसूत्र और शाण्डिल्य भक्तिसूत्रोंके अनुयायी हैं। इनकी उपनिषदें वासुदेव और गोपीचन्दन हैं। इनका पुराण भागवतपुराण है। महाराष्ट्र देशमें इस सम्प्रदायके पूर्वाचार्य्य ज्ञानेश्वरजी ही समझे जाते हैं। जिस तरह योग-मार्गमें ज्ञानेश्वरजी नाथ-सम्प्रदायके माने जाते हैं उसी तरह भक्ति-मार्गमें वे ही विष्णुस्वामीके शिष्य माने जाते हैं। परन्तु विष्णुस्वामीका सम्प्रदाय अलग ही है जो राधागोपालका उपासक है। योगी ज्ञानेश्वरने मराठीमें अमृतानुभव भी लिखा है, जो अद्वैतवादी शैव ग्रन्थ है। निदान ज्ञानेश्वर सच्चे भागवत थे, क्योंकि भागवतधर्म्मकी यही विशेषता है कि वे शिव और विष्णुमें अभेद बुद्धि रखते हैं। इस तरहका भागवतधर्म्म दक्षिणमें स्मार्त्तमतकी तरह असाम्प्रदायिक रूपसे फैला हुआ है।

विशिष्टाद्वैतवादी श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तावलम्बी आचार्य्योंके मतसे मीमांसाशास्त्र एक ही है। वे 'अथातो धर्मजिज्ञासा'से लेकर 'अनावृत्तिः शब्दात्' सूत्रतक बीस अध्यायोंका एक ही वेदार्थ-विचार करनेवाला मीमांसादर्शन मानते हैं, और उसके तीन काण्ड बतलाते हैं। उन काण्डों-के नाम हैं—धर्ममीमांसा, देवमीमांसा और ब्रह्ममीमांसा। प्रथम धर्ममीमांसा नामक काण्ड आचार्य जैमिनिके द्वारा प्रणीत है, उसमें बारह अध्याय हैं, और उसमें धर्मका साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया गया है। द्वितीय देवमीमांसा नामक काण्ड काशकृत्स्नाचार्यने बनाया है, और चार अध्यायोंमें देवोपासनाका रहस्य परिस्फुटित किया है। तृतीय ब्रह्ममीमांसा नामक काण्डके रचयिता हैं बादरायणाचार्य। इन्होंने चार अध्यायोंमें ब्रह्मका पूर्ण विमर्श करके अपना सिद्धान्त अच्छी तरह स्थापित किया है। कर्म्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों काण्डोंसे युक्त सम्पूर्ण शास्त्रका नाम है **मीमांसाशास्त्र**। इस सम्पूर्ण मीमांसाशास्त्रकी वृत्ति भगवान् बोधा-यनाचार्यने बनायी थी। इसीसे भगवान् रामानुजाचार्यने श्रीभाष्यके आरम्भमें ही इनका वृत्तिकाररूपसे स्मरण किया है। यथा—

भगवद्बोधायनकृतां विस्तीर्णां ब्रह्मसूत्रवृत्तिं पूर्वाचार्याः सञ्चिक्षिपुः।

'भगवान् बोधायनद्वारा बनायी हुई विस्तृत ब्रह्मसूत्रवृत्तिको पूर्वाचार्योंने संक्षिप्त बना दिया।' उन्हीं बोधायनाचार्यका उल्लेख भगवान् शबरस्वामीने भी उपवर्ष नामसे किया है, इसमें प्रमाण है वेदान्ताचार्यप्रणीत श्रीभाष्यतत्वटीकाके 'स्फोटवाद' प्रकरणका यह अंश—

अत्र शावरम्—गौरित्यत्र कः शब्दः? गकारौकारविसर्जनीया इति भगवा-

---

पुराणकी सूचीमें अब भी श्रीमद्भागवत पाचवा पुराण है, और अलबेरूनीने जो बोपदेवसे ढाई सौ बरस पहलेका लेखक है, यहाँ विष्णुपुराणवाली सूची देते हुए श्रीमद्भागवतका नाम लिखा है। इसमें सन्देह नहीं कि श्रीमद्भागवतकी रचना उनके अपने ही प्रमाणसे सब पुराणोंके अन्तमें हुई है, और पुराने पुराणोंके जिन श्लोकोंमें इसे पाचवा स्थान दिया गया है, वह तो इसके भी बननेके बाद ही जोड़े गये होंगे, यह तो निश्चय है।

नुपवर्षः, इति वृत्तिकारस्य बोधायनस्यैव ह्युपवर्ष इति स्यान्नाम। तदिह पातञ्जलादिप्रोक्तं प्रामाणिकमिति न भ्रमितव्यं, तेषां बाह्यक्षेपार्थं वैभवोक्तिरपि स्यात्, युक्तिविरोधाच्चेति।

अर्थात् यहाँ शाबरभाष्यमें लिखा है कि "गौः यहाँ कौन शब्द है? गकार, औकार और विसर्ग ही 'गौ'का स्वरूप है, ऐसा उपवर्ष नामक आचार्यने कहा है। इस प्रकार 'उपवर्ष' बोधायनका ही नाम हो सकता है। पतञ्जलिकी कही हुई बात प्रामाणिक है, यह समझकर उपवर्षकी बोधायनतामें सन्देह नहीं करना चाहिये—क्योंकि पतञ्जलिने तो अपने प्रतिपक्षियोंका तिरस्कार करनेके लिये उपवर्षको वैयाकरण बनाकर अपना महत्त्व प्रकट करनेकी चाल चली है, और उनकी बातोंमें युक्तिविरुद्धता भी है।" कई लोग यहाँपर 'स्यात्'के निर्देशसे केवल सम्भावना समझते हैं। परन्तु उन लोगोंको यह पता नहीं है कि सम्भावना होनेसे फिर 'बोधायनस्यैव' यहाँ निश्चयार्थक 'एव'की क्या गति होगी! अतः यहाँ 'नाम स्यादेव हि'—बोधायनका नाम ही हो सकता है, ऐसी योजना कर लेनी चाहिये। 'पुलवर', 'पुराणमणि', 'मेखला' आदि द्राविड़ भाषाके प्रबन्धोंमें बोधायनकृत मीमांसावृत्तिका जो 'कृतकोटि' नामसे निर्देश है वह भी हमारी दृष्टिमें समीचीन ही प्रतीत होता है, क्योंकि 'निघण्टु'के त्रिकाण्डशेषमें और केशवनिघण्टुमें भी उपवर्षका पर्यायवाची 'कृतकोटि' शब्द लिखा है, जैसे—

उपवर्षो हलभूतिः कृतकोटिरयाचितः।

अतः बहुत समयसे ऐसा व्यवहार देखकर ही श्रीवेदान्ताचार्यजीने अपनी तत्वटीकामें 'उपवर्ष' यह बोधायनाचार्यका द्वितीय नाम प्रतिपादित किया है, ऐसा हम समझते हैं। 'पाराशर्यविजय' नामक ग्रन्थमें बोधायन और उपवर्षका जो पृथक्-पृथक् निर्देश किया है वह अवश्य ही ग्रन्थकर्त्ताने सूक्ष्म विचार न करनेके कारण ही किया है।

बोधायनके पीछे ब्रह्मनन्दी और द्रमिडाचार्य्यके नाम भी पीछेके वृत्तिकारों और भाष्यकारोंने बारम्बार लिये हैं। ये किस समयमें हुए, यह बात निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती परन्तु शङ्करस्वामीके पूर्ववर्त्ती तो हैं ही। इनके अतिरिक्त गुहदेव, टङ्क, श्रीवत्साङ्क आदिके नाम भी यामुनाचार्य्यने भाष्यकार, टीकाकार आदिके नाते अपने ग्रन्थ सिद्धित्रयमें लिखे हैं।

ब्रह्मसूत्रमें आचार्य आश्मरथ्यका नाम मिलता है, जो विशिष्टाद्वैतवादी थे। विक्रमकी पांचवीं शताब्दीमें आचार्य श्रीकण्ठने ब्रह्मसूत्रकी शिवपरक व्याख्या करके विशिष्टाद्वैतवादका विशेष रूपसे प्रचार किया था। आचार्य भास्करने भी अपने भेदाभेदवादके द्वारा एक तरहसे इस विशिष्टाद्वैतवादको ही पुष्ट किया था। पाञ्चरात्र मत भी एक तरहसे विशिष्टाद्वैतमत ही था। परन्तु ब्रह्मसूत्रकी विष्णुपरक व्याख्या नये ढङ्गसे विक्रमकी दसवीं शताब्दीसे ही शुरू हुई। यामुनाचार्यने अपने अलौकिक पाण्डित्यके बलपर विशिष्टाद्वैतको नया आलोक प्रदान किया और उसके बाद बारहवीं शताब्दीमें रामानुजाचार्यने तो विशिष्टाद्वैत मतका मानो सारे देशमें समुद्र ही बहा दिया। रामानुजाचार्यके इस प्रचण्ड कार्यका ही यह प्रभाव है कि उस समयसे विशिष्टाद्वैत मतका दूसरा नाम रामानुजमत पड़ गया।

पुराणोंमें विष्णुपुराण वहुत प्राचीन माना जाता है। संस्कृतमें नारद पाञ्चरात्र और विष्णुपुराण इन वैष्णवोंके आधार-ग्रन्थ हैं।

परन्तु यामुनाचार्य और श्रीरामानुजाचार्यने जिस भावका प्रचार किया, उसकी शिक्षा उन्हें गुरु-शिष्य-परम्पराद्वारा ही प्राप्त हुई थी। दक्षिणमें जो इतिहास मिलता है उससे मालूम होता है कि अत्यन्त प्राचीन-कालसे दक्षिण देशमें हरिभक्तिका प्रचार था। श्रीवैष्णवों-का यह भी कहना है कि द्वापरके अन्तमें और कलियुगके आरम्भमें प्रसिद्ध अलवार लोग थे। ये सव वड़े भक्त थे। द्वापरयुगके अन्तमें इनमें तीन आचार्य हुए थे—पोंइहे, पूदत्त और पे। पोंइहेका जन्म काञ्चीनगरमें हुआ था। उनकी ध्यानस्थ अवस्थाकी मूर्त्ति काञ्चीके एक मन्दिरमें है जो वहाँके देवसरोवरके वीचमें पानीके अन्दर वना हुआ है। पूदत्तका जन्म तिरुवल्लमामलयि नामक स्थानमें, जिसे पहले मल्लापुरी कहते थे, हुआ था। पेका जन्म मद्रासके मलयपुर नामक स्थानमें हुआ था। वह सदा श्रीहरिके प्रेममें उन्मत्त रहा करते थे, इसीसे उनका नाम 'पे' अर्थात् उन्मत्त पड़ गया था। द्वापरके अन्तमें ग्यारह सौ वर्ष कलि पूर्व 'तिरुमिढ़िशि'का जन्म हुआ था। कलिके आरम्भमें पाण्ड्य देशकी कुरुकापुरीमें शठारिका जन्म हुआ था, जिन्हें शठरिपु या शठकोप भी कहते थे। शठारिके शिष्य 'मधुर कवि'का जन्म शठरिपुके जन्मस्थानके पास ही हुआ था। वह वड़ी मधुर भापामें कविता किया करते थे, इसीसे उनका नाम 'मधुर कवि' पड़ गया। केरल प्रान्तके प्रसिद्ध 'कुलशेखर' एक प्रधान अलवार हो गये हैं। उनका जन्म भी कलिके आरम्भमें मालावारके चोलपट्टन या तिरु-मञ्चिक्कोलम् नामक स्थानमें हुआ था। उन्होंने 'मुकुन्दमाला' नामक एक ग्रन्थकी रचना की। 'पेरिया अलवार' अर्थात् 'सर्वश्रेष्ठ भक्त'का जन्म कलि संवत् पैंतालीसमें हुआ था। उनकी पुत्री, अण्ढाल, जो कलि संवत् छानवेमें पैदा हुई थी, वहुत वड़ी भक्त थी। वहुत ही मधुर-भापिणी होनेके कारण इसे 'गोदा' कहते थे। उसने तामिल भापामें 'स्तोत्ररत्नावली' नामक एक पुस्तककी रचना की है, जिसमें तीन सौ स्तोत्र हैं। इन स्तोत्रोंका तामिल भक्तोंमें वड़ा आदर है। इस तरह अनेक अलवारोंका विवरण मिलता है जिन्होंने प्रागैतिहासिक-कालमें भक्तिका प्रचार किया। यह परम्परा ऐतिहासिक युगमें भी पायी जाती है। इस प्रकार जहां एक ओरसे दार्शनिक विद्वान् विशिष्टाद्वैतकी परम्परा वनाये हुए थे, वहां ये प्राचीन अलवार भी भक्ति-गङ्गा वहा रहे थे। दोनों अनवरत धाराएँ इस भक्तिप्रवाहकी परम्पराको अनादि-कालसे अक्षुण्ण वनाये हुए थीं। दसवीं शताब्दीमें इस मतको अपनी प्रतिभासे श्रीयामुना-चार्य्यने पुनः स्थापित किया और रामानुजाचार्यने इसका सर्वत्र प्रचार किया।

इस विशिष्टाद्वैत सम्प्रदायके आचार्योंकी परम्पराका क्रम इस प्रकार माना जाता है— भगवान् श्रीनारायणने जगज्जननी श्रीमहालक्ष्मीजीको उपदेश दिया, दयामयी मातासे वैकुण्ठ-पार्षद श्रीविष्वक्सेनको उपदेश मिला, उनसे श्रीशठकोप स्वामीको, इनसे श्रीनाथमुनिको, नाथमुनिसे पुण्डरीकाक्षस्वामीको, इनसे श्रीराममिश्र स्वामीको, और श्रीराममिश्रजीसे श्री-यामुनाचार्यजीको प्राप्त हुआ।

श्रीयामुनाचार्य

श्रीवैष्णव सम्प्रदायके एक प्रधान आचार्य नाथमुनि हो गये हैं। वह लगभग ९६५

विक्रमाब्दमें वर्त्तमान थे। उनके एक पुत्र थे ईश्वरमुनि। ईश्वरमुनि बहुत छोटी अवस्थामें ही परलोक सिधार गये। इन ईश्वरमुनिके ही पुत्र श्रीयामुनाचार्य थे। पिताकी मृत्युके समय यामुनाचार्यकी अवस्था लगभग दस वर्ष थी।

पुत्रकी मृत्युके बाद नाथमुनिने सन्यास ले लिया और वह मुनियोंकी तरह पवित्र जीवन बिताने लगे। इसी कारण उनका नाम नाथमुनि पड़ गया। कहते हैं, उन्होंने योगमें अद्भुत सिद्धियाँ प्राप्त की थीं और इसी कारण वे 'योगीन्द्र' कहलाते थे। उन्होंने दो ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमें उन्होंने अपने मतका वर्णन किया है। ये दोनों ग्रन्थ भी वैष्णवोंके परम आदरकी वस्तु हैं।

पिताकी मृत्यु हो जाने तथा पितामहके संन्यास ले लेनेके कारण यामुनाचार्यका लालन-पालन उनकी दादी और माताने किया। उनका जन्म १०१० विक्रमाब्दमें वीरनारायणपुर या मदुरामें हुआ था। यामुनाचार्यकी अलौकिक प्रतिभाका परिचय उनके बचपनसे ही मिलने लगा। वह अपने गुरु श्रीमद्भाष्याचार्यसे शिक्षा लेने लगे और थोड़े समयमें ही सब शास्त्रोंमें पारङ्गत हो गये। उनका विनीत मधुर स्वभाव बरबस सबको उनकी ओर आकृष्ट करता था। उन्होंने बारह वर्षकी अवस्थामें ही अपनी बुद्धिकी प्रखरताके बलपर पाण्ड्य राज्यके आधे हिस्सेका अधिकार प्राप्त कर लिया। जिन दिनों यह अपने गुरुदेवके पास रहकर विद्याध्ययन करते थे, उन दिनों पाण्ड्य-राज्यकी सभामें विद्वज्जनकोलाहल नामक एक दिग्विजयी पण्डित थे। राजा उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिका भाव रखते थे। जो पण्डित कोलाहलके साथ शास्त्रार्थमें हार जाते थे, उन्हें राजाकी आज्ञाके अनुसार दण्डस्वरूप कुछ वार्षिक कर कोलाहलको देना पड़ता था। कोलाहल सम्राट्की तरह अधीन पण्डितोंसे कर वसूल किया करते थे। यामुनाचार्यके गुरु भाष्याचार्य भी उन्हें कर दिया करते थे।

एक समय अर्थाभाव होनेके कारण भाष्याचार्यने दो तीन वर्षतक कर नहीं चुकाया। एक दिन कोलाहलका एक शिष्य भाष्याचार्यकी पाठशालापर कर माँगनेके लिये आया। उसका नाम वञ्जि था। उस समय भाष्याचार्य कहीं बाहर गये थे। यामुनाचार्य ही वहाँ अकेले एक आसनपर बैठे थे। वञ्जिने आकर बड़े कड़े शब्दोंमें भाष्याचार्यको पूछा और बकाया कर माँगा। उसके व्यवहारसे क्षुब्ध होकर यामुनाचार्यने भी कड़े शब्दोंमें उससे कहा, 'तुम्हारे गुरुसे मैं शास्त्रार्थ करनेके लिये तैयार हूँ।' वञ्जि यह सुनकर बड़ा क्रोधित हुआ और अपने गुरुके पास जाकर उसने सारा हाल सुना दिया। सभाके सब लोग बारह वर्षके बालककी ढिठाईपर चञ्चल हो उठे। राजाने फिरसे आदमी भेजकर पुछवाया कि क्या सचमुच वह लड़का शास्त्रार्थ करना चाहता है। यामुनाचार्यने अपनी स्वीकृति भेज दी और राजासे पण्डितोचित सवारी भेजनेकी प्रार्थना कर दी। राजाने एक सवारी भेज दी। जब भाष्याचार्यने पाठशालामें वापस आनेपर यह सब हाल सुना तो वह बहुत घबड़ाये। यामुनाचार्यने उन्हें आश्वासन दिलाया और उनको प्रणाम कर सवारीपर बैठ गये।

उधर राजसभामें राजा और रानीमें यामुनाचार्यके प्रश्नपर मतभेद हो गया। राजा कोलाहलके पक्षमें थे और रानी यामुनाचार्यके। रानीने कहा कि विजय यामुनकी होगी और यदि न हुई तो मैं महाराजकी क्रीत दासीकी भी दासी बनूँगी। राजाने भी प्रतिज्ञा की कि

यदि बालक कोलाहलको हरा देगा तो मैं उसे आधा राज्य दे दूँगा। इसी बीच यामुनाचार्य सभामें उपस्थित हुए। कोलाहलने बालकको देखकर बड़े गर्वसे हँसते हुए रानीसे कहा—'क्या यही लड़का मुझे जीतेगा ?' रानीने कहा—'हाँ, यही लड़का आपको परास्त करेगा।'

शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। यामुनाचार्यने कोलाहलसे तीन प्रश्न किये—(१) आपकी माता वन्ध्या नहीं हैं, इस बातका खण्डन कीजिये। (२) पाण्ड्याधीश धर्मशील हैं, इसका खण्डन कीजिये और (३) रानी सावित्रीकी तरह साध्वी हैं, इसका खण्डन कीजिये। कोलाहल प्रश्न सुनकर बड़े चकराये। वह कुछ भी उत्तर न दे सके। अन्तमें यामुनाचार्यसे उत्तर देनेके लिये कहा गया। यामुनाचार्यने तीनों प्रश्नोंका उत्तर दे दिया। रानीने प्रसन्न होकर कहा—'कोलाहल ! बालकने सचमुच तुम्हें जीत लिया।' रानीने उस समय अपनी भाषामें 'आळवन्दार' कहकर अपना भाव व्यक्त किया था, इस कारण उसी दिनसे यामुनाचार्यका नाम 'आळवन्दार' पड़ गया। राजाने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार यामुनाचार्यको आधा राज्य दे दिया। यामुनाचार्य सिंहासनपर बैठकर बड़ी दक्षताके साथ राजकाज सँभालने लगे। उन्होंने समीपके कितने ही राजाओंको परास्त किया।

नाथमुनि संन्यासी होनेपर भी अपने पौत्र यामुनाचार्यकी मङ्गलकामना करते थे। उन्होंने इहलीला संवरण करते समय सच्चे दादाका कर्त्तव्य पालन करते हुए अपने शिष्य राममिश्रसे कहा—'देखना ! कहीं यामुनाचार्य विषय-भोगमें फँसकर अपने कर्त्तव्यको न भूल जाय। इसका भार मैं तुम्हारे ऊपर डालता हूँ।'

यामुनाचार्य जब ३५ वर्षके हुए तो एक दिन राममिश्र उनके पास गये। उन्होंने राजासे कहा—'महाराज ! आपके पितामह आपके लिये बहुतसा धन छोड़ गये हैं। उसे लेनेके लिये आप मेरे साथ चलिये।' राजा उनके साथ हो लिये। राममिश्र उन्हें इस बहाने श्रीरङ्गनाथके मन्दिरमें ले आये। रास्तेमें परमभक्त राममिश्रका स्पर्श प्राप्त करने तथा भगवत्सम्बन्धी आलोचना करनेके कारण यामुनाचार्यके हृदयमें भक्तिस्रोत उमड़ पड़ा, वैराग्यसे उनका हृदय भर गया। वह राममिश्रका उपदेश सुनकर मुग्ध हो गये और उसी दिनसे राजपाट छोड़कर यामुनाचार्य श्रीरङ्गनाथजीके सेवक हो गये। आज उन्होंने सच्चा धन प्राप्त कर लिया। तबसे उन्होंने अपना शेष जीवन भगवत्सेवा तथा ग्रन्थ-प्रणयनमें बिताया। उन्होंने संस्कृतमें चार ग्रन्थोंकी रचना की—'स्तोत्ररत्न', 'सिद्धित्रय', 'आगमप्रामाण्य' और 'गीतार्थसङ्ग्रह'। इनमें सबसे प्रधान 'सिद्धित्रय' है। यह गद्य और पद्यमें लिखा गया है। इसमें यामुनाचार्यकी दार्शनिक प्रतिभाका विकास दिखाई देता है। उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें विशिष्टाद्वैतवादका प्रतिपादन किया है।

श्रीयामुनाचार्य श्रीरामानुजाचार्यके परम गुरु थे। यामुनाचार्यका रामानुजाचार्यपर बड़ा प्रेम था और रामानुजाचार्य भी उनके प्रति अटूट भक्तिभाव रखते थे। यामुनाचार्यने मृत्युकालमें रामानुजाचार्यको स्मरण किया, परन्तु उनके पहुँचनेके पूर्व ही वे दिव्यधामको पधार गये। उनके मनमें रही हुई तीन कामनाओंको श्रीरामानुजाचार्यने भलीभाँति पूर्ण किया।

मत

'विशिष्टाद्वैत' शब्द दो शब्दोंके मिलनेसे बना है—विशिष्ट और अद्वैत। विशिष्टसे

मतलब है—चेतन और अचेतनविशिष्ट ब्रह्म, और अद्वैतका मतलब है—अभेद या एकत्व। अतएव चेतनाचेतन-विभागविशिष्ट ब्रह्मके अभेद या एकत्वका निरूपण करनेवाले सिद्धान्तका नाम विशिष्टाद्वैतवाद है। यामुनाचार्यने इसी सिद्धान्तकी स्थापना करनेकी अपने ग्रन्थोंमें चेष्टा की है और इसकी सफलताके लिये अन्य मतोंका खण्डन किया है। शाङ्करमतपर उनका विशेष लक्ष्य देखा जाता है। शाङ्करमतानुयायी सुरेश्वराचार्यके मतसे ज्ञान स्वप्रकाश है, अखण्ड है, कूटस्थ नित्य है, ज्ञान ही आत्मा है, ज्ञान ही परमात्मा है, ज्ञान निष्क्रिय है, ज्ञानमें भेद नहीं है, ज्ञान आपेक्षिक नहीं है। यामुनाचार्य इस मतको अवैदिक बतलाते हैं। उनके मतमें ज्ञान आत्माका धर्म है। शाङ्करमतसे आत्मा ज्ञानस्वरूप है, परन्तु यामुनाचार्यके मतसे आत्मा ज्ञाता है, ज्ञातृत्वशक्ति आत्मा की है, ज्ञान सक्रिय है। शङ्करके मतसे ज्ञान निष्क्रिय है। यामुनके मतसे ज्ञान सविशेष है, शाङ्करमतसे ज्ञान निर्विशेष है। यामुनके मतसे ज्ञान आपेक्षिक है, शङ्करके मतसे ज्ञान स्वप्रकाश है। इस तरह शाङ्करमत और यामुनाचार्यके मतमें बहुत अन्तर है। यामुनाचार्यका मत संक्षेपमें इस प्रकार है—

आत्मप्रतिपत्तिका प्रमाण—यामुनके मतसे श्रुति ही आत्मप्रतिपत्तिका प्रमाण है। नैयायिक अनुमानके आधारपर भी आत्माका अस्तित्व सिद्ध करते हैं। परन्तु यामुनाचार्य इसे असङ्गत बतलाते हैं। केवल अनुमानके बलपर आत्मा सिद्ध नहीं किया जा सकता। श्रुति ही इसका प्रमाण है।

ईश्वर—आचार्य श्रीयामुनके मतानुसार ईश्वर पुरुषोत्तम हैं। जीवसे वे श्रेष्ठ हैं। जीव कृपण है—दुःख-शोकमें डूबा हुआ है, और ईश्वर सर्वज्ञ, सत्यसङ्कल्प और असीम सुखसागर हैं। ईश्वर पूर्ण हैं, जीव अणु है। जीव अंश है, ईश्वर अंशी हैं। जीव और ईश्वर नित्य पृथक् हैं। मुक्त जीव ईश्वरका सान्निध्य प्राप्त करता है, ईश्वरभावको प्राप्त नहीं होता। आचार्य कहते हैं कि अद्वितीय ब्रह्म कहनेसे ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य वस्तुके अस्तित्वका निषेध नहीं होता, बल्कि यह सूचित होता है कि ब्रह्मके सदृश या उसका प्रतियोगी दूसरा कोई पदार्थ नहीं है। आचार्यके मतानुसार ब्रह्मके समान या उनसे अधिक दूसरा कोई नहीं है। क्योंकि जगत्‌रूप शरीर भी उनकी कलामात्र है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार अद्वितीय सम्राट् कहनेसे सम्राट्‌के भृत्य, पुत्र-कलत्रका निषेध नहीं होता, उसी प्रकार अद्वितीय ब्रह्म कहनेसे सुर, नर, असुर, ब्रह्मा, ब्रह्माण्ड इत्यादिका निषेध नहीं होता।

ब्रह्म और जगत्—आचार्यके मतानुसार जगत् ब्रह्मका परिणाम है। ब्रह्म ही जगत्के रूपमें परिणत हुए हैं। जगत् ब्रह्मका शरीर है। ब्रह्म जगत्‌के आत्मा हैं। आत्मा और शरीर अभिन्न हैं। अतएव जगत् ब्रह्मात्मक है।

ब्रह्म और जीव—आचार्यके मतसे जीव और ब्रह्म भिन्न हैं। अभेद कभी सङ्गत नहीं। 'तत्त्वमसि' वाक्यका तात्पर्य ब्रह्म और जीवकी अभिन्नता नहीं है। 'तत्' और 'त्वं' दोनों पद जीवगत तादात्म्यके सूचक हैं। वे भास्कराचार्यके भेदाभेदवादका खण्डन करते हुए कहते हैं कि ब्रह्म और जीवमें सजातीय और विजातीय भेद नहीं है, बल्कि स्वगतभेद है। उनकी रायमें तीन मौलिक पदार्थ हैं—चित्, अचित् और पुरुषोत्तम। चित् जीव है, अचित् जगत् है और पुरुषोत्तम ब्रह्म हैं। ब्रह्म सविशेष—सगुण, अशेषकल्याणगुणगणसागर, सर्व-

नियन्ता हैं। जीव उनका दास है। उन्होंने 'सिद्धित्रय' नामक ग्रन्थमें चिद्‌चित् और पुरुषोत्तमका निर्णय किया है। उनके मतमें जगत् जड है और ब्रह्मका शरीर है। इन्हीं तीन मौलिक पदार्थोंको आधार बनाकर आचार्य रामानुजने अपने मतका विस्तार किया।

भक्तिवाद-शरणागति—श्रीयामुनाचार्यकी भक्तिका निर्मल स्रोत 'स्तोत्ररत्नम्' नामक ग्रन्थमें प्रवाहित हुआ है। उनके हृदयका गम्भीर अनुराग, प्रगाढ़ प्रेम उनके स्तोत्रमें सर्वत्र स्फुरित हुआ है। ग्रन्थ भरमें सब जगह आत्मविसर्जनका भाव भरा हुआ है। भगवान् अशरणशरण, निराश्रयके आश्रय हैं, अतः सर्वस्व उन्हींको निवेदित किया गया है। सब कुछ भूलकर उनके चरण कमलोंका आश्रय प्राप्त करनेके लिये कितनी व्याकुलता है—उन्हींके शब्दोंमें पढ़िये।

नमो नमो वाङ्मनसातिभूमये नमो नमो वाङ्मनसैकभूमये।
नमो नमोऽनन्तमहाविभूतये नमो नमोऽनन्तदयैकसिन्धवे॥ १॥
न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्यं त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥ २॥
न निन्दितम् कर्म तदस्ति लोके सहस्रशो यन्न मया व्यधायि।
सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे॥ ३॥
निमज्जतोऽनन्तभवार्णवान्तश्चिराय मे कूलमिवासि लब्धः।
त्वयाऽपि लब्धम् भगवन्निदानीमनुत्तमम् पात्रमिदम् दयायाः॥ ४॥
अभूतपूर्वम् मम भावि किं वा सर्वम् सहे मे सहजम् हि दुःखम्।
किंतु त्वदग्रे शरणागतानां पराभवो नाथ न तेऽनुरूपः॥ ५॥
निरासकस्यापि न तावदुत्सहे महेश हातुं तव पादपङ्कजम्।
रुषा निरस्तोऽपि शिशुः स्तनन्धयो न जातु मातुश्चरणौ जिहासति॥ ६॥
धिगशुचिमविनीतम् निर्दयम् मामलज्जम्
परमपुरुष योऽहम् योगिवर्याग्रगण्यैः।
विधिशिवसनकाद्यैर्ध्यातुमत्यन्तदूरम्
तव परिजनभावम् कामये कामवृत्तः॥ ७॥ इत्यादि

मन-वाणीके अगोचर किन्तु भक्तोंकी मन वाणीके एक मात्र आधार आप परमेश्वरको मेरा वारम्वार प्रणाम है। देश, काल और वस्तुकृत परिच्छेदसे रहित, महान् ऐश्वर्यवाले तथा दयाके एक मात्र असीम सागर आप भगवान्‌को वार-वार नमस्कार है॥ १॥

मैं न तो धर्मनिष्ठ हूँ, न आत्मज्ञानी, और न आपके चरण कमलोंमें भक्ति ही रखनेवाला हूँ। मैं अकिञ्चन हूँ, आपके सिवा कोई दूसरा मेरा सहारा नहीं है, इसलिये आपके ही शरण लेने योग्य चरणोंकी शरणमें आ पड़ा हूँ॥ २॥

हे मुकुन्द! संसारमें ऐसा कोई निन्दित कर्म नहीं है जिसे हजारों बार मैंने नहीं किया हो, पर वही मैं आज पापोंका कटु परिणाम भोगनेके समय आपके सामने असहाय होकर रोता-चिल्लाता हूँ॥ ३॥

हे भगवन् ! इस अपार भवसागरके भीतर डूबते हुए मुझे आप बहुत दिनोंके बाद तटके रूपमें प्राप्त हुए हैं । इधर आपको भी इस समय यह दयाका सबसे बड़ा पात्र प्राप्त हो गया है [अब अवश्य ही दया करके आप इस भवसागरसे मेरा उद्धार कीजिये] ॥ ४ ॥

हे नाथ ! मुझपर जो कुछ बीत चुका है उससे विलक्षण कौनसा नूतन दुःख अब मुझे मिलेगा ! [मेरे लिये कोई भी कष्ट नया नहीं है, सब कुछ भोग चुका हूँ । जो होगा–] सब सह लूँगा, दुःख तो मेरे साथ ही उत्पन्न हुआ है । परन्तु आपकी शरणमें आये हुएका आपके सामने ही अपमान हो, यह आपको शोभा नहीं देता [अतः मेरे उद्धारमें देर न लगाइये] ॥ ५ ॥

हे महेश्वर ! यदि आप मुझे अपने पाससे दूर हटावें तो भी मैं आपके चरण-कमलोंको छोड़नेका कभी साहस नहीं कर सकता, क्योंकि माता यदि कुपित होकर उसे अपनी गोदसे अलग कर दे तो भी दूध पीता हुआ बच्चा माँके चरणोंको कभी नहीं छोड़ना चाहता ॥ ६ ॥

हे परम पुरुष ! मुझ अपवित्र, उद्दण्ड, निठुर और निर्लज्जको धिक्कार है जो स्वेच्छाचारी होकर भी आपका पार्षद होनेकी इच्छा करता है, जिस पार्षदभावको बड़े-बड़े योगीश्वरोंके अग्रगण्य तथा ब्रह्मा, शिव और सनकादि भी, पाना तो दूर रहा, मनमें सोच भी नहीं सकते ॥ ७ ॥

आचार्य श्रीरामानुज

यतिराज आचार्य श्रीरामानुजका जन्म १०७४ विक्रमाब्दमें दक्षिण भारतके भूतपुरी वर्त्तमान श्रीपेरेम्बुदुरम् नामक स्थानमें हुआ था । उनके पिताका नाम केशव सोमयाजी तथा माताका नाम कान्तिमती था । आचार्यपाद भगवान् श्रीसङ्कर्षणके अवतार माने जाते हैं । श्रीरामानुजके बचपनका विशेष विवरण नहीं मिलता । अवश्य ही आगे चलकर उनकी बुद्धिका अपूर्व विकास देखा गया । वे काञ्चीनगरीमें यादवप्रकाशके पास वेदान्तका अध्ययन करने गये । वेदान्तका ज्ञान उनका थोड़े समयमें ही बहुत बढ़ गया और कभी-कभी तो वेदान्तकी व्याख्या करते समय इनके तर्कोंका उत्तर देना यादवप्रकाशके लिये कठिन हो जाता था । धीरे-धीरे उनकी विद्वत्ताकी ख्याति भी इसी समय बढ़ने लगी । यामुनाचार्य इन्हीं दिनों गुप्त रूपसे आकर उन्हें देख गये और उनकी प्रतिभा देखकर बड़े प्रसन्न हुए । परन्तु यादवप्रकाशके लिये वह प्रतिभा प्रसन्नताका कारण न बन सकी । जब रामानुज उनकी व्याख्याका खण्डन करके अपनी नवीन व्याख्या सुनाते और यादवप्रकाश उसका उचित उत्तर न दे पाते तो यादवप्रकाशके हृदयको बड़ी चोट पहुँचती और क्रमशः उनका चित्त शिष्यसे फटता गया ।

एक समय उस देशकी राजकन्यापर ब्रह्मराक्षसने अधिकार कर लिया, उसे हटानेके लिये यादवप्रकाश बुलाये गये, परन्तु उनके अनुष्ठानसे राजकन्याको कोई लाभ न हुआ । फिर उसी कार्यके लिये रामानुज गये और उन्होंने राजकन्याके मस्तकपर अपना चरण छुआकर ब्रह्मराक्षसको सदाके लिये हटा दिया । कन्या स्वस्थ हो गयी । इस घटनाने यादवप्रकाशकी विद्वेषाग्निके लिये घीका काम किया । उसके बाद एक दिन यादवप्रकाश

सर्वम् खल्विदम् ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन

इसकी व्याख्या कर रहे थे । व्याख्यापर गुरु-शिष्यमें बड़ी गरमागरम बहस हो

गयी। यादवप्रकाशका क्रोध बहुत ही बढ़ गया और इसीलिये उस दिनसे रामानुजको पढ़ना बन्द कर देना पड़ा। परन्तु यहींपर इस मनोमालिन्यका अन्त नहीं हुआ। यादवप्रकाशके मनमें यह विद्वेष इतनी गहराई तक पैठ गया कि उन्होंने रामानुजका प्राणनाश करनेका सङ्कल्प कर लिया। रामानुज अपने मौसेरे भाई गोविन्द भट्टके साथ प्रयागके लिये रवाना हुए थे और इसी यात्रामें यादवप्रकाश अपना उद्देश्य पूरा करना चाहते थे। परन्तु इस षड्यन्त्रका पता रामानुजको लग गया और इससे वे मार्गसे ही लौट आये। रातका भयानक समय था। आचार्यने भगवान् श्रीवरदराजका स्मरण किया। भगवान् वरदराज श्रीलक्ष्मीजी सहित भील-भीलनीका रूप धारण करके उन्हें काञ्ची पहुँचाने गये। काञ्चीके समीप वे अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर आचार्य काञ्चीमें अपनी माताके पास आये और सारा हाल कह सुनाया। इसी समय माताकी आज्ञासे उन्होंने विवाह किया। विवाहके विषयमें किसी-किसीका मत है कि उनके पिता केशवभट्टने ही सोलह वर्षकी आयुमें उनका विवाह कर दिया था और उसके बाद वे स्वर्गवासी हुए थे। इसी समय यामुनाचार्यने मृत्यु समीप जानकर रामानुजको बुलानेके लिये अपने शिष्य महापूर्ण स्वामीको भेजा। श्रीरामानुज उनके साथ श्रीरङ्गम् आये, परन्तु उनके पहुँचनेके पहले ही यामुनाचार्यका देहावसान हो चुका था, लोग एकत्र होकर अन्तिम संस्कारकी तैयारी कर रहे थे। रामानुजने शवके दर्शन किये और हाथ-की तीन अँगुलियोंको बन्द देखकर उसका कारण पूछा। लोगोंने कहा कि आळवन्दारने अपने जीवनकी तीन अपूर्ण आशाओंकी गिनती करते हुए प्राण छोड़ा है, इसीसे ये अँगुलियाँ मुड़ी हैं। वे तीन आशाएँ इस प्रकार हैं—(१) ब्रह्मसूत्रका भाष्य लिखना, (२) दिल्लीके उस समयके बादशाहके यहाँसे श्रीराममूर्त्तिका उद्धार करना, और (३) दिग्विजयपूर्वक विशिष्टा-द्वैतमतका प्रचार करना*। रामानुजने वहींपर इन तीनों बातोंको पूरा करनेकी प्रतिज्ञा की और ऐसा करते ही शवकी तीनों अँगुलियाँ सीधी हो गयीं। यामुनाचार्यका अन्तिम संस्कार पूरा करके रामानुज स्वामी काञ्ची लौट आये।

श्रीरामानुज काञ्ची आकर वरदराजकी सेवामें लग गये और आगे क्या करना चाहिये, इस बातका विचार करने लगे। उन्होंने अन्तःस्थ भगवान्‌की शरण ली। अन्तमें देवराजके मन्दिरके पुजारीकी आज्ञाको भगवान्‌का आदेश मानकर उन्होंने श्रीरङ्गम्‌के लिये प्रस्थान किया। रास्तेमें मधुरान्तकम् स्थानमें उनकी भेंट महापूर्ण स्वामीसे हुई, जो उन्हींसे मिलने आ रहे थे। रामानुजने श्रीमहापूर्ण स्वामीसे वहीं दीक्षा ली और काञ्चीमें उन्हें भी ले आये। श्रीवरदराज भगवान्‌की सेवाके उद्देश्यसे श्रीमहापूर्ण स्वामी आनन्दके साथ रामानुजके घरमें रहने लगे। श्रीमहापूर्ण स्वामीने आचार्यको भगवान् व्यासकृत वेदान्तसूत्रोंके अर्थके साथ-साथ तीन हजार गाथाओंका भी उपदेश दिया।

श्रीरामानुजका वैवाहिक जीवन सुखपूर्ण नहीं था। अपनी धर्मपत्नीके साथ उनका मत-भेद-सा रहता था। एक बार हीन जातिके एक भक्त घरपर आये। जब वे आतिथ्य स्वीकार कर

---

* किसी-किसीके कथनानुसार वे तीन बातें इस प्रकार हैं—(१) ब्रह्मसूत्रकी भाष्यरचना, (२) द्राविड वेदका प्रचार, और (३) दो मनुष्योंको पराशर और शठकोपकी उपाधि प्रदान करना।

1704

वहाँसे चले गये तब रामानुजकी धर्मपत्नीने उस स्थानको धो दिया। इसपर रामानुजको बड़ा दुःख हुआ। उसके बाद एक दिन रामानुजके कहनेपर भी उन्होंने एक भिखारीको भोजन नहीं दिया। फिर एक बार पतिकी अनुपस्थितिमें रामानुजकी स्त्रीने गुरु-पत्नीका कटु वाक्यों-द्वारा तिरस्कार कर दिया। गुरु-पत्नी रूठ गयीं। इसपर गुरु श्रीरङ्गम् चले गये। इन घटनाओंसे रामानुजको अत्यन्त दुःख हुआ। उन्होंने अपनी स्त्रीको किसी बहाने ससुराल भेज दिया और स्वयं वीतराग होकर भगवान् श्रीवरदराजकी अनुमतिसे संन्यास ले लिया।

संन्यास लेनेपर श्रीरामानुजकी शिष्यमण्डली बढ़ने लगी। कहते हैं, उनके पूर्व गुरु यादवप्रकाशने भी उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया और 'यतिधर्मसमुच्चय' नामक ग्रन्थकी रचना की। सर्वत्र रामानुजकी विद्वत्ताकी बड़ी धाक जम गयी। लोग उन्हे बडी श्रद्धा-भक्ति-से देखते थे। उनके पास बहुतसे विद्यार्थी आकर वेदान्तका अध्ययन भी करते थे। उन्हीं दिनों यामुनाचार्यके पुत्र वरदरङ्ग आदि उनके पास आये और श्रीरङ्गम्में चलकर वहाँका अध्यक्ष पद ग्रहण करनेकी प्रार्थना की। रामानुज उनकी प्रार्थना स्वीकार कर श्रीरङ्गम्में आकर रहने लगे। उन्होंने यहाँपर पुनः गोष्ठिपूर्णसे दीक्षा ली। गोष्ठिपूर्णने उन्हें योग्य समझकर मन्त्ररहस्य बतला दिया और यह आज्ञा दी कि वे दूसरोंको मन्त्र न दें। परन्तु जब उन्हें यह मालूम हुआ कि इस मन्त्रके सुननेसे ही मनुष्य मुक्त हो सकता है, तब वे गोष्ठिपूर्णके मन्दिरकी छतपर चढ़कर सैकड़ों नर-नारियोंके सामने चिल्ला चिल्लाकर मन्त्रका उच्चारण करने लगे। गुरु यह सुनकर बड़े क्रोधित हुए और उन्होंने शिष्यको बुलाकर कहा—'इस पापसे तुम्हें अनन्त कालतक नरककी प्राप्ति होगी।' इसपर रामानुजने बड़ी शान्तिसे उत्तर दिया—'गुरुदेव! यदि आपकी कृपासे ये सब स्त्री पुरुष मुक्त हो जायँगे और मैं अकेला नरकमें पड़ूँगा तो मेरे लिये यही उत्तम है।' गुरु रामानुजकी इस उदारतापर मुग्ध हो गये और उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—'आजसे विशिष्टाद्वैतवाद तुम्हारे ही नामपर 'रामानुजदर्शन'के नामसे विख्यात होगा।'

श्रीरामानुजका यश चारों ओर फैलने लगा। श्रीरङ्गनाथके पुजारीके लिये यह बात असह्य हो उठी। उसने रामानुजको विष देकर मार डालना चाहा। परन्तु श्रीरामानुजके यतिवेशपर मुग्ध होकर पुजारीकी स्त्रीने ही उसका सारा षड्यन्त्र बेकार कर दिया। पुजारी अपनी नीचतापर बड़ा लज्जित हुआ और उसने श्रीरामानुजकी शरण ली। श्रीरामानुजने उसे क्षमा करते हुए सान्त्वना प्रदान की।

श्रीरामानुजकी चारों ओर ख्याति फैलनेके कारण विभिन्न स्थानोंसे विद्वान् लोग उनसे विचार-विमर्श करनेके लिये आने लगे। एक बार यज्ञमूर्त्ति नामक एक अद्वैतवादी संन्यासी दिग्विजय करनेके उद्देश्यसे श्रीरङ्गम्में आये। उनके साथ श्रीरामानुजका प्रायः सोलह दिनोंतक शास्त्रार्थ होता रहा, परन्तु कोई एक दूसरेसे हारता हुआ नहीं मालूम होता था। अन्तमें श्रीरामानुजने यामुनाचार्यके 'मायावादखण्डन'का अध्ययन किया और उसकी सहायतासे यज्ञमूर्त्तिको परास्त किया। यज्ञमूर्त्तिने श्रीवैष्णव मत स्वीकार किया। तबसे उनका नाम देवराज पड़ा। उनके रचित 'ज्ञानसागर' और 'प्रमेयसार' नामक दो ग्रन्थ तामिल भाषामें मिलते हैं।

अबतक श्रीरामानुजने उन प्रतिज्ञाओंकी ओर ध्यान नहीं दिया जो उन्होंने यामुनाचार्यके शवके सामने की थीं। अब उन्हें उनकी चिन्ता सताने लगी। वे अपने शिष्य कुरेशके साथ बोधायनवृत्तिकी खोजमें निकले। काश्मीरके एक पुस्तकालयमें वह ग्रन्थ था। परन्तु वह ग्रन्थ केवल पढ़नेके लिये उन्हें दिया गया। परन्तु कुरेशने उस ग्रन्थको कण्ठाग्र कर लिया। उसीकी सहायतासे फिर श्रीरामानुजने वेदान्तके श्रीभाष्यकी रचना की और इस तरह एक प्रतिज्ञाकी पूर्त्ति की। श्रीभाष्य तैयार हो जानेपर वे पुनः काश्मीर गये। वहाँ सरस्वती-पीठमें उनके भाष्यका बड़ा आदर हुआ। वहाँके विद्वानोंने उसका नाम श्रीभाष्य रक्खा और हयग्रीवकी एक मूर्त्ति उपहारमें दी। आज भी मैसूरके परकालमठमें उस मूर्त्तिकी पूजा होती है। दिल्ली जाकर तत्कालीन मुसलमान बादशाहके महलसे एक विष्णुमूर्त्तिका उद्धार किया। कहते हैं कि यतिराजके बुलाते ही मूर्त्ति स्वयमेव उनके पास चली आयी। आचार्यने उसको सम्पत्कुमार कहकर गोदमें ले लिया। तदनन्तर सारे देशमें अपने मतका प्रचार किया। इस प्रकार उन्होंने यामुनाचार्यकी अन्तिम तीनों कामनाओंको पूर्ण किया।

कुछ लोग कहते हैं, रामानुजके शिष्य कुरेशके बहुत दिनों बाद दो पुत्र हुए। उन्होंने श्रीरामानुजकी आज्ञाके अनुसार एक पुत्रका नाम पराशर रक्खा। बड़े होनेपर पराशरने श्रीरामानुजके आदेशानुसार विष्णुसहस्रनामका भाष्य लिखा। इस तरह यामुनाचार्यकी दूसरी आकाङ्क्षा पूरी हुई। फिर श्रीरामानुजके कहनेसे पिलानने 'तिरुभयम्मली'के ऊपर एक भाष्य लिखा। इस प्रकार यामुनाचार्यकी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो गयीं।

चोल देशका राजा कुलतुङ्ग या दूसरा राजेन्द्र चोल संवत् ११२७ वि०में गद्दीपर बैठा। वह शैव था। उसने सम्भवतः शैवोंके कहनेसे श्रीरामानुजको सभामें बुलाया। परन्तु सन्देह होनेपर जब पहले कुरेश और महापूर्ण सभामें गये तो राजाने उनकी आँखें निकलवा लीं। इस कारण श्रीरामानुज श्रीरङ्गम्‌से मैसूर चले गये। वहाँके राजा वित्तिदेवने उनका सत्कार किया और स्वयं श्रीवैष्णव हो गया। उसकी सहायतासे श्रीरामानुजने श्रीवैष्णव मतका बहुत कुछ प्रचार किया। जब सं० ११७५ वि०में कुलतुङ्गकी मृत्यु हुई तब श्रीरामानुज श्रीरङ्गम् आये। यहाँपर उन्होंने प्रायः सभी अलवारोंकी मूर्त्तियाँ स्थापित कीं। फिर यहाँसे वे मामाकी मृत्यु होनेपर तिरुपति आये और वहाँ गोविन्दराजकी मूर्त्तिकी पुनः स्थापना की। यह मूर्त्ति समुद्रमें फेंक दी गयी थी, समुद्रसे निकलवाकर स्थापित की गयी। इसके बाद श्रीरामानुजने प्रायः भ्रमण करना बन्द कर दिया। उन्होंने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और श्रीवैष्णव मतके प्रचारके लिये ७४ शिष्योंको नियुक्त किया। इस तरह सारा जीवन साधन, भजन और धर्मप्रचारमें व्यतीत कर आचार्यने प्रायः १२० वर्षकी अवस्थामें ११९४ विक्रमाब्दमें दिव्यधामको प्रस्थान किया।

आचार्य रामानुजने अपने मतकी पुष्टि और प्रचारके लिये श्रीभाष्यके अतिरिक्त वेदान्तसङ्ग्रह, वेदान्तदीप, वेदान्तसार, वेदान्ततत्त्वसार, गीताभाष्य, गद्यत्रय और भगवदाराधनक्रमकी भी रचना की। इसके अतिरिक्त अष्टादश रहस्य, कण्टकोद्धार, कूटमन्दोद्, ईशावास्योपनिषद्भाष्य, गुणरत्नकोष, चक्रोल्लास, दिव्यसूरिप्रभावदीपिका, देवतापारम्य, न्यायरत्नमाला, नारायणमन्त्रार्थ, नित्यपद्धति, नित्याराधनविधि, न्यायपरिशुद्धि, न्यायसिद्धाञ्जन,

पञ्चपटल, पञ्चरात्ररक्षा, प्रश्नोपनिषद्व्याख्या, मणिदर्पण, मतिमानुष, मुण्डकोपनिषद्व्याख्या, योगसूत्रभाष्य, रत्नप्रदीप, रामपटल, रामपद्धति, रामपूजापद्धति, राममन्त्रपद्धति, रामरहस्य, रामायणव्याख्या, रामार्चापद्धति, वार्त्तामाला, विशिष्टाद्वैतभाष्य, विष्णुविग्रहशंसनस्तोत्र, विष्णु-सहस्रनाम भाष्य, वेदार्थसङ्ग्रह, वैकुण्ठगद्य, शतदूषणी, शरणागतिगद्य, श्वेताश्वतरोपनिषद्-व्याख्या, सङ्कल्पसूर्योदय टीका, सच्चरित्ररक्षा, सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थोंकी भी रचना की। परन्तु यह नहीं पता लगता कि कौनसा ग्रन्थ किस समयमें लिखा गया। उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें शाङ्कर-मतका खूब जोरदार शब्दोंमें खण्डन करनेकी चेष्टा की है।

मत

आचार्य रामानुजने यामुनाचार्यके मतको ही और भी विस्तृत व्याख्या करके संसारके सामने रक्खा है। ये भी तीन ही मौलिक पदार्थ मानते हैं—चित् (जीव), अचित् (जड़-समूह) और ईश्वर या पुरुषोत्तम। स्थूल-सूक्ष्म, चेतना-चेतनविशिष्ट ब्रह्म ही ईश्वर है। अनन्त जीव और जगत् उन्हींका शरीर है। वही उस शरीरके आत्मा हैं। इन्हीं तीनों तत्त्वोंके समर्थनके लिये आचार्यने अनेक विषयोंपर विचार किया है। सङ्क्षेपमें उनके विचार इस प्रकार हैं—

प्रमेयके निरूपणके लिये प्रमाकी आवश्यकता—प्रमा क्या है? आचार्य रामानुजके मतानुसार यथावस्थित व्यवहारानुगुण ज्ञान ही प्रमा है। प्रमाका कारण प्रमाण है। प्रमाण तीन प्रकारके हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। साक्षात्कार प्रमाका कारण ही प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष प्रमाण दो प्रकारका है—निर्विकल्प और सविकल्प। दोनों ही विशिष्टविषयक हैं। अविशिष्टविषयक ज्ञानकी उपलब्धि नहीं हो सकती। प्रत्यक्ष ज्ञानकी प्रक्रिया इस प्रकार है—आत्मा मनके साथ संयुक्त होता है, मन इन्द्रियके साथ संयुक्त होता है, इन्द्रियाँ विषय-के साथ संयुक्त होती हैं। इस प्रकार ज्ञानोदय होता है। इसलिये ज्ञान विषयावगाही है। निर्विशेष वस्तुका ज्ञान नहीं हो सकता। स्मृति पृथक् प्रमाण नहीं है, क्योंकि स्मृति भी प्रत्यक्षके ही अन्तर्गत है। पूर्वानुभूत वस्तुके संस्कारसे स्मृति उत्पन्न होती है। प्रत्यभिज्ञा भी प्रत्यक्षके अन्तर्भुक्त है। अभाव भी भावान्तररूप है। अतएव अभावका ज्ञान भी प्रत्यक्षके अन्दर ही शामिल है। पुण्यवान् पुरुषकी प्रतिभा (योगज ज्ञान) भी प्रत्यक्षके ही अन्तर्गत है। आचार्यके मतसे सब ज्ञान सत्य और सविशेष-विषयक हैं। निर्विशेष वस्तुको ग्रहण करना असम्भव है। भ्रमका ज्ञान, स्वप्नादिका ज्ञान, सभी ज्ञान है। इसीसे उनका सिद्धान्त है कि 'अतः सर्वं ज्ञानं सत्यं सविशेषविषयं च।' वे कहते हैं—'अतः सर्वं विज्ञानजातं यथार्थ-मिति सिद्धम्।' उपमान और अर्थापत्ति भी अनुमानके अन्तर्गत हैं। इसलिये उनको पृथक् प्रमाणरूपसे ग्रहण करनेकी आवश्यकता नहीं। आचार्य रामानुजके मतानुसार अपौरुषेय और नित्य वेदवाक्य ही शब्दप्रमाण हैं।

अधिकारी—श्रीरामानुजाचार्यके मतसे जिस व्यक्तिको कर्मके सम्बन्धमें ज्ञान हो गया है, वही ब्रह्मजिज्ञासाका अधिकारी है। पहले कर्म और कर्मफलकी अनित्यता आदिका ज्ञान होगा, फिर ब्रह्मजिज्ञासाकी प्रवृत्ति उत्पन्न होगी। पहले वेदाध्ययन करना होगा, उससे

कर्मके अनित्य फलका ज्ञान होगा, उसके बाद मुक्तिकी अभिलाषा होगी, स्थिर फल प्राप्त करनेकी इच्छा होगी और उसके फलस्वरूप ब्रह्मकी जिज्ञासा होगी। श्रीरामानुज पूर्वमीमांसा और ब्रह्ममीमांसाको एक ही शास्त्र मानते हैं।

विषय—आचार्य रामानुजके मतसे स्थूल-सूक्ष्म-चेतनाचेतनविशिष्ट ब्रह्म ही विषय हैं। ब्रह्म पुरुषोत्तम हैं। वे सगुण और सविशेष हैं। निर्विशेष वस्तुका ज्ञान नहीं हो सकता।

ब्रह्म और शास्त्रका सम्बन्ध—ब्रह्म या पुरुषोत्तम प्रतिपाद्य हैं और शास्त्र प्रतिपादक। शास्त्र सगुण और सविशेष ब्रह्मका प्रतिपादन करता है। निर्विशेष वस्तुका प्रतिपादन असम्भव है।

प्रयोजन—अविद्याकी निवृत्ति प्रयोजन है। जीवको अज्ञान है। उपासनाद्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार होनेपर अज्ञान दूर होता है। मुक्त जीव ईश्वरके दासके रूपमें स्थित रहता है। वह ईश्वरकी नित्य लीलामें अपार आनन्दका उपभोग करता है।

ब्रह्म-ईश्वर—श्रीरामानुज-मतसे ब्रह्म सगुण और सविशेष है। ब्रह्मकी शक्ति माया है। ब्रह्म अशेष कल्याणकारी गुणोंके आलय हैं। उनमें निकृष्ट कुछ भी नहीं है। सर्वेश्वरत्व, सर्वशेषित्व, सर्वकर्माराध्यत्व, सर्वफलप्रदत्व, सर्वाधारत्व, सर्वकार्योत्पादकत्व, समस्तद्रव्य शरीरत्व आदि उनके लक्षण हैं। चिदचिच्छरीरत्व भी उनका लक्षण है। वे सूक्ष्म चिदचिद्विशेषरूपमें जगत्के उपादान कारण हैं। सङ्कल्पविशिष्ट रूपमें निमित्त कारण हैं। जीव और जगत् उनका शरीर है। भगवान् ही आत्मा है। उनके गुणोंकी सङ्ख्या नहीं। वे गुणोंमें अद्वितीय हैं। ईश्वर सृष्टिकर्त्ता, कर्मफलदाता, नियन्ता, सर्वान्तर्यामी हैं। नारायण विष्णु ही सबके अधीश्वर हैं।

ईश्वर सृष्टि-स्थिति-संहारकर्त्ता हैं। पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावतार भेदसे वे पाँच प्रकारके हैं। शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज हैं, श्री, भू और लीलासहित हैं, किरीटादि भूषणोंसे अलङ्कृत हैं।

अवतार—अवतार दस प्रकारके हैं—मत्स्य, कूर्म, नृसिंह, वराह, वामन, परशुराम, श्रीराम, बलभद्र, श्रीकृष्ण और कल्कि। इनमें मुख्य, गौण, पूर्ण और अंशभेदसे और भी अनेक भेद हैं। अवतारका हेतु इच्छा है। कर्मप्रयोजन हेतु नहीं है। दुष्कृतोंके विनाश और साधुओंके परित्राणके लिये अवतार होता है।

ब्रह्म और जगत्—जगत् जड है। जगत् ब्रह्मका शरीर है। ब्रह्म ही जगत्के उपादान और निमित्त कारण हैं। ब्रह्म ही जगत्रूपमें परिणत हुए हैं, फिर भी वे विकाररहित हैं। जगत् सत् है, मिथ्या नहीं है।

ब्रह्म और जीव—जीव ब्रह्मका शरीर है। ब्रह्म और जीव दोनों चेतन हैं। ब्रह्म विभु हैं, जीव अणु है। ब्रह्म और जीवमें सजातीय और विजातीय भेद नहीं है, स्वगत भेद है। ब्रह्म पूर्ण हैं, जीव खण्डित है। ब्रह्म ईश्वर हैं, जीव दास है। मुक्त जीव भी ईश्वरका दास है। जीव कार्य है, ईश्वर कारण हैं। ईश्वर और जीव दोनों स्वयं प्रकाश हैं, चेतन और ज्ञानाश्रय हैं, आत्मस्वरूप हैं।

जीव देहेन्द्रिय-मनः प्राणादिसे भिन्न है। जीव नित्य है, उसका स्वरूप भी नित्य है।

प्रत्येक शरीरमें जीव भिन्न है। स्वाभाविक रूपमें जीव सुखी है, परन्तु उपाधिके वशमें आ जानेपर उसे संसारभोग प्राप्त होता है। जीव ही कर्त्ता, भोक्ता, शरीरी और शरीर है। जीवके कई भेद-प्रभेद हैं।

मुक्ति-मुक्त—भगवान्के दासत्वकी प्राप्ति ही मुक्ति है। वैकुण्ठमें श्री, भू, लीला देवियोंके साथ नारायणकी सेवा करना ही परम पुरुषार्थ कहा जाता है। प्राकृत देह विच्युत् हो जानेपर अप्राकृत देहमें नारायणके समान भोग प्राप्त करना मुक्ति है। भगवान्के साथ अभिन्नता प्राप्त करना कभी सम्भव नहीं, क्योंकि जीव स्वरूपतः नित्य है। जीव नित्य दास है, नित्य अणु है। यह कभी विभु नहीं हो सकता। मुक्त जीव वैकुण्ठ धाममें अपार कल्याण-गुणसागर भगवान्के चिरदासके रूपमें रहकर आनन्दका अनुभव करते हैं। मुक्त जीवमें आठों गुणोंका आविर्भाव होता है। वह ईश्वरके इच्छाधीन होनेपर भी सर्वत्र सञ्चरण करता है। मुक्ति विद्या अर्थात् उपासनाद्वारा प्राप्त होती है। उपासनात्मक भक्ति ही मुक्तिका श्रेष्ठ साधन है।

साधन—श्रीरामानुजके मतानुसार ध्यान और उपासना आदि मुक्तिके साधन हैं। ज्ञान मुक्तिका साधन नहीं है। मुक्तिप्राप्तिका उपाय भक्ति है। वे कहते हैं कि ब्रह्मात्मैक्य ज्ञानसे अविद्याकी निवृत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि जब बन्धन पारमार्थिक है तब इस प्रकारके ज्ञानसे उसकी निवृत्ति नहीं हो सकती। भक्तिसे भगवान् प्रसन्न होनेपर मुक्ति प्रदान करते हैं। वेदन, ध्यान, उपासना आदि शब्दोंसे भक्ति सूचित होती है। भक्ति दो प्रकारकी है—साधनभक्ति और फलभक्ति।

प्रपत्ति—न्यासविद्या ही प्रपत्ति है। आनुकूल्यका सङ्कल्प और प्रातिकूल्यका वर्जन प्रपत्ति है। भगवान्में आत्मसमर्पण करना प्रपत्ति है। स प्रकारसे भगवान्के शरण हो जाना प्रपत्तिका लक्षण है। नारायण विभु हैं, भूमा हैं, उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण करनेसे जीवको शान्ति मिलती है। उनके प्रसन्न होनेपर मुक्ति मिल सकती है। उन्हें सर्वस्व निवेदन करना होगा। सब विषयोंको त्यागकर उनकी शरण लेनी होगी।

सत्यकाम सत्यसङ्कल्प परब्रह्मभूत पुरुषोत्तम महाविभूते, श्रीमन्नारायण वैकुण्ठनाथ अपारकारुण्यसौशील्यवात्सल्यौदार्यैश्वर्यसौन्दर्यमहोदधे, अनालोचितविशेषाशेषलोकशरण्य प्रणतार्तिहर आश्रितवात्सल्यजलधे, अनवरतविदितनिखिलभूतजातयाथात्म्य अशेषचराचरभूत निखिलनियमाशेषचिदचिद्वस्तुशेषिभूत निखिलजगदाधाराखिलजगत्स्वामिन्, अस्मत्स्वामिन् सत्यकाम सत्यसङ्कल्प सकलेतरविलक्षण अर्थिकल्पक आपत्सख, श्रीमन्नारायण अशरणशरण्य, अनन्यशरणम् त्वत्पदारविन्दयुगलम् शरणमहंप्रपद्ये।

'हे पूर्णकाम, सत्यसङ्कल्प, परब्रह्मस्वरूप पुरुषोत्तम ! हे महान् ऐश्वर्यसे युक्त श्रीमन्नारायण ! हे वैकुण्ठनाथ ! आप अपार करुणा, सुशीलता, वत्सलता, उदारता, ऐश्वर्य और सौन्दर्य आदि गुणोंके महासागर हैं, छोटे-बड़ेका विचार न करके सामान्यतः सभी लोगोंको आप शरण देते हैं, प्रणत जनोंकी पीडा हर लेते हैं। शरणागतोंके लिये तो आप वत्सलताके समुद्र ही हैं। आप सदा ही समस्त भूतोंकी यथार्थताका ज्ञान रखते हैं। सम्पूर्ण चराचर

...नुजके मतानुसार पदार्थ-विभाग

प्रत्येक शरीरमें जीव भिन्न है। स्वाभाविक रूपमें जीव सुखी है, परन्तु उपाधिके वशमें आ जानेपर उसे संसारभोग प्राप्त होता है। जीव ही कर्त्ता, भोक्ता, शरीरी और शरीर है। जीवके कई भेद-प्रभेद हैं।

मुक्ति-मुक्त—भगवान्‌के दासत्वकी प्राप्ति ही मुक्ति है। वैकुण्ठमें श्री, भू, लीला देवियोंके साथ नारायणकी सेवा करना ही परम पुरुषार्थ कहा जाता है। प्राकृत देह विच्युत् हो जानेपर अप्राकृत देहमें नारायणके समान भोग प्राप्त करना मुक्ति है। भगवान्‌के साथ अभिन्नता प्राप्त करना कभी सम्भव नहीं, क्योंकि जीव स्वरूपतः नित्य है। जीव नित्य दास है, नित्य अणु है। यह कभी विभु नहीं हो सकता। मुक्त जीव वैकुण्ठ धाममें अपार कल्याण-गुणसागर भगवान्‌के चिरदासके रूपमें रहकर आनन्दका अनुभव करते हैं। मुक्त जीवमें आठों गुणोंका आविर्भाव होता है। वह ईश्वरके इच्छाधीन होनेपर भी सर्वत्र सञ्चरण करता है। मुक्ति विद्या अर्थात् उपासनाद्वारा प्राप्त होती है। उपासनात्मक भक्ति ही मुक्तिका श्रेष्ठ साधन है।

साधन—श्रीरामानुजके मतानुसार ध्यान और उपासना आदि मुक्तिके साधन हैं। ज्ञान मुक्तिका साधन नहीं है। मुक्तिप्राप्तिका उपाय भक्ति है। वे कहते हैं कि ब्रह्मात्मैक्य ज्ञानसे अविद्याकी निवृत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि जब बन्धन पारमार्थिक है तब इस प्रकारके ज्ञानसे उसकी निवृत्ति नहीं हो सकती। भक्तिसे भगवान् प्रसन्न होनेपर मुक्ति प्रदान करते हैं। वेदन, ध्यान, उपासना आदि शब्दोंसे भक्ति सूचित होती है। भक्ति दो प्रकारकी है—साधनभक्ति और फलभक्ति।

प्रपत्ति—न्यासविद्या ही प्रपत्ति है। आनुकूल्यका सङ्कल्प और प्रातिकूल्यका वर्जन प्रपत्ति है। भगवान्‌में आत्मसमर्पण करना प्रपत्ति है। स प्रकारसे भगवान्‌के शरण हो जाना प्रपत्तिका लक्षण है। नारायण विभु हैं, भूमा हैं, उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण करनेसे जीवको शान्ति मिलती है। उनके प्रसन्न होनेपर मुक्ति मिल सकती है। उन्हें सर्वस्व निवेदन करना होगा। सब विषयोंको त्यागकर उनकी शरण लेनी होगी।

सत्यकाम सत्यसङ्कल्प परब्रह्मभूत पुरुषोत्तम महाविभूते, श्रीमन्नारायण वैकुण्ठनाथ अपारकारुण्यसौशील्यवात्सल्यौदार्यैश्वर्यसौन्दर्यमहोदधे, अनालोचितविशेषाशेषलोकशरण्य प्रणतार्तिहर आश्रितवात्सल्यजलधे, अनवरतविदितनिखिलभूतजातयाथात्म्य अशेषचराचरभूत निखिलनियमाशेषचिदचिद्वस्तुशेषिभूत निखिलजगदाधाराखिलजगत्स्वामिन्, अस्मत्स्वामिन् सत्यकाम सत्यसङ्कल्प सकलेतरविलक्षण अर्थिकल्पक आपत्सख, श्रीमन्नारायण अशरणशरण्य, अनन्यशरणम् त्वत्पदारविन्दयुगलम् शरणमहंप्रपद्ये।

'हे पूर्णकाम, सत्यसङ्कल्प, परब्रह्मस्वरूप पुरुषोत्तम ! हे महान् ऐश्वर्यसे युक्त श्रीमन्नारायण ! हे वैकुण्ठनाथ ! आप अपार करुणा, सुशीलता, वत्सलता, उदारता, ऐश्वर्य और सौन्दर्य आदि गुणोंके महासागर हैं, छोटे-बड़ेका विचार न करके सामान्यतः सभी लोगोंको आप शरण देते हैं, प्रणत जनोंकी पीडा हर लेते हैं। शरणागतोंके लिये तो आप वत्सलताके समुद्र ही हैं। आप सदा ही समस्त भूतोंकी यथार्थताका ज्ञान रखते हैं। सम्पूर्ण चराचर

- पदार्थ
  - प्रमाण
    - प्रत्यक्ष
    - अनुमान
    - शब्द
  - प्रमेय
    - द्रव्य
      - जड
        - प्रकृति
          - प्रकृति, महत्, अहङ्कार, मनः, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चमहाभूत
        - काल
          - भूत
          - भविष्यत्
          - वर्त्तमान्
      - अजड
        - पराक्
          - नित्य विभूति
          - धर्मभूत ज्ञान
        - प्रत्यक्
          - जीव
            - बद्ध
              - बुभुक्षु
                - …र्थकामपर
                - धर्मकामपर
              - मुमुक्षु
                - कैवल्यपर
                - मोक्षपर
                  - …न्तरपर
                  - भगवत्पर
                    - भक्त
                    - प्रपन्न
                      - एकान्ती
                      - परमैका…
            - मुक्त
            - नित्य
          - ईश्वर
            - पर (नारायण)
            - व्यूह
              - केशवादि
              - वासुदेवादि
                - वासुदेव
                - सङ्कर्षण
                - प्रद्युम्न
                - अनिरुद्ध
            - विभव
              - मत्स्यादिअनन्त
            - अन्तर्यामी
              - प्रतिशरीरवर्त्ती
            - अर्चावतार
              - बहु, यथा— श्रीरङ्गनाथ, वेङ्कटनाथ इत्यादि मानवनयनगत मूर्त्ति-विशेष।
    - अद्रव्य
      - त्रिगुण
      - शब्दादिविषय
      - संयोग
      - शक्ति

भूतों, सारे नियमों और समस्त जड-चेतन वस्तुओंके आप अवयवी हैं (ये सभी आपके अवयव हैं)। आप समस्त संसारके आधार हैं, अखिल जगत् तथा हम सभी लोगोंके स्वामी हैं। आपकी कामनाएँ पूर्ण और आपका सङ्कल्प सच्चा है। आप समस्त प्रपञ्चसे इतर और विलक्षण हैं। याचकोंके तो आप कल्पवृक्ष हैं, विपत्तिमें पड़े हुए लोगोंके सहायक हैं। ऐसी महिमावाले तथा आश्रयहीनोंको आश्रय देनेवाले हे श्रीमन्नारायण ! मैं आपके चरणारविन्द युगलकी शरणमें आता हूँ, क्योंकि उनके सिवा मेरे लिये कहीं भी शरण नहीं है।'

पितरम् मातरम् दारान् पुत्रान् बन्धून् सखीन् गुरून्।
रत्नानि धनधान्यानि क्षेत्राणि च गृहाणि च॥
सर्वधर्मांश्च सन्त्यज्य सर्वकामांश्च साक्षरान्।
लोकविक्रान्तचरणौ शरणम् तेऽव्रजम् विभो॥

'हे प्रभो ! मैं पिता, माता, स्त्री, पुत्र, बन्धु, मित्र, गुरु, सब रत्न, धन-धान्य, खेत, घर, सारे धर्म और अक्षरसहित सम्पूर्ण कामनाओंका त्यागकर समस्त ब्रह्माण्डको आक्रान्त करनेवाले आपके दोनों चरणोंकी शरणमें आया हूँ।'

मनोवाक्कायैरनादिकालप्रवृत्तानन्ताकृत्यकरणकृत्याकरणभगवदपचारभागवतापचारासह्यापचाररूपनानाविधानन्तापचारानारब्धकार्याननारब्धकार्यान् कृतान् क्रियमाणान् करिष्यमाणांश्च सर्वान् अशेषतः क्षमस्व।

अनादिकालप्रवृत्तविपरीतज्ञानमात्मविषयम् कृत्स्नजगद्विषयम् च विपरीतवृत्तम् चाशेषविषयमद्यापि वर्त्तमानम् वर्त्तिष्यमाणम् च सर्वं क्षमस्व।

मदीयानादिकर्मप्रवाहप्रवृत्तां भगवत्स्वरूपतिरोधानकरीं विपरीतज्ञानजननीं स्वविषयायाश्च भोग्यबुद्धेर्जननीं देहेन्द्रियत्वेन भोग्यत्वेन सूक्ष्मरूपेण चावस्थितां दैवीं गुणमयीं मायां दासभूतः शरणागतोऽस्मि तवास्मि दास इति वक्तारं मां तारय।

'हे भगवन् ! मन, वाणी और शरीरके द्वारा अनादि कालसे अनेकों न करने योग्य कर्मोंका करना, करने योग्य कर्मोंको न करना, भगवान्‌का अपराध, भगवद्भक्तोंका अपराध तथा और भी जो अक्षम्य अनाचाररूप नाना प्रकारके अनन्त अपराध मुझसे हुए हैं, उनमें जो प्रारब्ध बन चुके हैं अथवा जो प्रारब्ध नहीं बने हैं उन सभी पापोंको तथा जिन्हें मैं कर चुका हूँ, जिन्हें कर रहा हूँ और जिन्हें अभी करनेवाला हू, उन सबको आप क्षमा कर दीजिये।'

'आत्मा और सारे संसारके विषयमें जो मुझे अनादि-कालसे विपरीत ज्ञान होता चला आ रहा है तथा सभी विषयोंमें जो मेरा विपरीत आचरण आज भी है और आगे भी रहनेवाला है वह सबका सब आप क्षमा कर दें।'

'मेरे अनादि कर्मोंके प्रवाहमें जो चली आ रही है, जो मुझसे भगवान्‌के स्वरूपको छिपा लेती है, जो विपरीत ज्ञानकी जननी, अपने विषयमें भोग्य-बुद्धिको उत्पन्न करनेवाली और देह, इन्द्रिय, भोग्य तथा सूक्ष्म रूपसे स्थित रहनेवाली है, उस दैवी त्रिगुणमयी मायासे 'मैं आपका दास हूँ, किङ्कर हूँ, आपकी शरणमें आया हू' इस प्रकार रट लगानेवाले मुझ दीनका आप उद्धार कर दीजिये।''

कैसी मार्मिक प्रार्थना है !

देवराजाचार्य

देवराजाचार्य विशिष्टाद्वैतवादी थे, वे प्रायः विक्रमकी तेरहवीं शताब्दीमें हुए। सुदर्शनाचार्यके गुरु और वरदाचार्यके पिता थे। उन्होंने 'विम्बतत्त्वप्रकाशिका' नामक एक प्रबन्धमें अद्वैतवादियोंके प्रतिविम्बवादका खण्डन किया है। यह पुस्तक अभी प्रकाशित नहीं हुई है।

वरदाचार्य

वरदार्य या वरदाचार्य आचार्य श्रीरामानुजके भानजे और शिष्य और श्रुतप्रकाशिकाके टीकाकार सुदर्शनाचार्यके गुरु थे। वे लगभग तेरहवीं शताब्दी विक्रमीमें विद्यमान थे। अपने ग्रन्थ 'तत्त्वनिर्णय'में अपना गोत्र वात्स्य लिखा है। पिताका नाम देवराजाचार्य था। वरदाचार्यने 'तत्त्वनिर्णय' नामक प्रबन्धकी रचना की थी, जिसमें उन्होंने विष्णुको ही परब्रह्म सिद्ध किया है। यह ग्रन्थ भी सम्भवत. अप्रकाशित है।

सुदर्शन व्यास भट्टाचार्य

आचार्य सुदर्शन या सुदर्शन सूरिका जन्म तामिलनाडमें हुआ था। पिताका नाम विश्वजयी था। हारीत गोत्रके ब्राह्मण थे। गुरुका नाम वरदार्य या वरदाचार्य था। गुरुके मुखसे श्रीभाष्यकी व्याख्या सुनकर 'श्रुतप्रकाशिका' नामक ग्रन्थकी रचना की। श्रीरामानुजके भाष्यको समझनेके लिये इसका पढ़ना आवश्यक है क्योंकि इसमें श्रीभाष्यके दुरूह स्थलोंकी व्याख्या बड़ी सरल भाषामें की गयी है। इसके अतिरिक्त श्रीरामानुजके वेदार्थसङ्ग्रहकी 'तात्पर्यदीपिका' तथा ब्रह्मसूत्रके ऊपर 'श्रुतप्रदीपिका' नामकी टीकाएँ भी लिखी थीं। वे विशिष्टाद्वैतवादी वैष्णव थे।

दिल्लीके बादशाह अलाउद्दीनके सेनापति मलिक काफूरने संवत् १४२३ वि०में मदुरापर आक्रमण करनेको जाते समय श्रीरङ्गम्‌पर भी आक्रमण किया और बहुतसे लोगोंको मार डाला। सुदर्शनाचार्यकी मृत्यु भी इसीमें यवनोंके हाथ हुई।

वरदाचार्य या नड़ाडुरम्मल

वरदाचार्य या नडाडुरम्मल आचार्य वरदगुरुके पौत्र थे। सुदर्शनाचार्यके गुरु तथा श्रीरामानुजाचार्यके शिष्य और पौत्र जो वरदाचार्य या वरदगुरु थे, उन्हींके ये पौत्र थे। स्वयं वरदाचार्यने भी अपने ग्रन्थोंमें ऐसा लिखा है। अतएव इनका भी समय चौदहवीं शताब्दी ही कहा जा सकता है। वरदाचार्यने 'तत्त्वसार' और 'सारार्थचतुष्टय' नामक दो ग्रन्थ रचे। 'तत्त्वसार' पद्यमें है और उसमें उपनिषदोंके धर्म तथा दार्शनिक मतका सारांश दिया गया है। 'सारार्थचतुष्टय' विशिष्टाद्वैतवादका ग्रन्थ है। इसमें चार अध्याय हैं और चारोंमें चार विषयोंकी आलोचना है। पहलेमें स्वरूपज्ञान, दूसरेमें विरोधी ज्ञान, तीसरेमें शेषत्वज्ञान और चौथेमें फलज्ञानकी चर्चा की गयी है।

वीर राघवदासाचार्य

वीर राघवदासाचार्य वरदाचार्यके प्रधान शिष्य थे। अतएव वे भी उनके समकालीन थे। उनके पिताका नाम नरसिंह गुरु था। वाधूल वंशमें इनका जन्म हुआ था। इन्होंने 'तत्त्वसार'पर 'रत्नसारिणी' नामक टीका लिखी थी। यह टीका भी प्रकाशित नहीं हुई है।

रामानुजाचार्य या वादिहंसाम्बुवाचार्य

द्वितीय रामानुजाचार्य या वादिहंसाम्बुवाचार्य वेङ्कटनाथ वेदान्ताचार्यके मामा और गुरु थे। रामानुजाचार्यके पिताका नाम पद्मनाभाचार्य था। रामानुजाचार्यने 'न्यायकुलिश' नामक ग्रन्थकी रचना की। यह ग्रन्थ सम्भवतः कहीं प्रकाशित नहीं हुआ है। इस ग्रन्थमें प्रायः बारह विषयोंपर विचार किया गया है। वे विषय इस प्रकार हैं—(१) सिद्धार्थव्युत्पत्यादिसमर्थन, (२) स्वतःप्रामाण्यनिरूपण, (३) ख्यातिनिरूपण, (४) स्वयम्प्रकाशवाद, (५) ईश्वरानुमानभङ्गवाद, (६) देहाद्यतिरिक्तात्मयाथार्थ्यवाद, (७) समानाधिकरण्यवाद, (८) सत्कार्यवाद, (९) संस्थानसामान्यसमर्थनवाद, (१०) मुक्तिवाद, (११) भावान्तराभाववाद और (१२) शरीरवाद।

वेङ्कटनाथ वेदान्ताचार्य

आचार्य रामानुजने वैष्णव मतका प्रचार करनेके लिये अपने चौहत्तर शिष्योंको नियुक्त किया था। उनको सिंहासनाधिपति कहते हैं। उनमें एक शिष्यका नाम अनन्त सोमयाजी था। अनन्त सोमयाजीके एक पौत्र थे अनन्तसूरि। अनन्तसूरिने तोतारम्बा नाम्नी एक स्त्रीसे विवाह किया। तोतारम्बा रामानुज द्वितीय या वादिहंसाम्बुवाकी बहिन थी और वह भी श्रीरामानुजाचार्यके चौहत्तर शिष्योंमेंसे एक प्रधान शिष्यके वंशकी थीं। अनन्तसूरि अपनी पत्नीके साथ काञ्ची नगरीमें रहते थे। काञ्ची उस समय शिक्षाका केन्द्र था।

वेङ्कटनाथ वेदान्ताचार्यका जन्म तोतारम्बाके गर्भसे १३२५ विक्रमीमें काञ्चीके पास थूपिल नामक गाँवमें हुआ था। यज्ञोपवीतके बाद वेङ्कटनाथ अपने मामा रामानुजके पास पढ़नेके लिये भेजे गये। वे बड़े प्रतिभाशाली और तीव्र बुद्धि थे। बीस वर्षसे कम ही अवस्थामें सब विद्याओंमें पारदर्शिता प्राप्त कर ली। उसके बाद उन्होंने विवाह किया और अन्त समयतक गृहस्थ ही रहे। अद्वैतवादी आचार्य विद्यारण्य और वेङ्कटनाथ सहपाठी एवं मित्र थे। इनके जीवनमें यही अन्तर है कि वेङ्कटनाथ बराबर गृहस्थ रहे और विद्यारण्यने पीछे सन्यास ले लिया। ये दोनों दार्शनिक और कवि थे तथा दोनों सौ वर्षसे अधिक कालतक जीवित रहे। विद्यारण्यके जीवनमें असाधारण राजनैतिक प्रतिभा देखी जाती है, परन्तु वेङ्कटनाथका राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नहीं था।

वेङ्कटनाथ कुछ दिनोंतक विद्यार्थियोंको पढ़ाते रहे और उसके बाद तिरुपाहिन्द्रपुरमें आकर रहने लगे। यहींपर उन्होंने गरुडपञ्चशती, अच्युतशतक, रघुवीरगद्य आदि स्तोत्रोंकी रचना की। वहींपर उन्हें 'सर्वतन्त्रस्वतन्त्र'की उपाधि मिली, जिसका अर्थ है सर्वविद्याविशारद। वहाँपर एक दिन एक राजमिस्त्रीने उन्हें कुआँ खोदनेके लिये कहा। बस, वे कुआँ खोदने लगे। वह कुआँ आजकल भी उस गाँवमें मौजूद है। वहाँसे फिर वह तिरुक्कोइलूरमें आये और फिर वहाँसे काञ्ची आकर रहने लगे। कुछ दिन बाद वह उत्तरभारतमें तीर्थयात्राके लिये निकल पड़े। काशी आदि स्थानोंमें घूमकर वापस आनेपर श्रीरङ्गम्‌के पण्डितोंने उन्हें निमन्त्रित किया। वहाँ आनेपर वह स्थान उन्हें पसन्द आ गया, इसलिये वे वहीं रहने लगे।

मलिक काफूरने मदुरा जाते समय श्रीरङ्गम्‌पर भी चढ़ाई करके बहुतसे लोगोंको मार डाला, जिसमें सुदर्शनाचार्य भी थे। सुदर्शनाचार्यने अपने दो पुत्रों तथा श्रुतप्रकाशिका

पुस्तकको वेङ्कटनाथके ही हाथोंमें सौंप दिया था। वेङ्कटनाथने बड़ी कठिनाईसे दोनों बालकोंके साथ शवोंके ढेरमें छिपकर अपने प्राणोंकी रक्षा की। जब यवनसेना वहाँसे आगे बढ़ गयी तब वह बालकोंके साथ मैसूर राज्यके सत्यकालम् नामक स्थानमें आकर रहने लगे। यहींपर उन्होंने दोनों बालकोंका यज्ञोपवीत संस्कार कराया। वे नित्य श्रीरङ्गम्से मुसलमानोंके चले जानेके लिये भगवान्से प्रार्थना किया करते थे। 'अभीतिस्तव' नामक ग्रन्थकी रचना यहींपर हुई। उसके बाद प्रायः पचास वर्षोंतक मदुरामें मुसलमानोंका राज्य रहा। संवत् १३९२ या ९३में विद्यारण्य मुनिने विजयनगर राज्यकी स्थापना की और उन्हींके उद्योगसे विक्रमी संवत् १४२२में मदुराके मुसलमान परास्त हुए और वहाँ हिन्दुओंका राज्य स्थापित हुआ। जब यह समाचार वेङ्कटनाथको मिला तो वह पुनः श्रीरङ्गम्में आ गये। जबतक वहाँ यवनराज्य रहा तबतक श्रीरङ्गनाथकी मूर्त्ति दक्षिण भारतके कई स्थानोंमें रही। क्योंकि श्रीरङ्गम्का मन्दिर मुसलमानोंद्वारा अपवित्र कर दिया गया था तथा सारी सम्पत्ति छीन ली गयी थी। कुछ दिन बाद उस मूर्त्तिकी स्थापना तिरुपतिमें की गयी, जहाँसे कुछ दिन बाद गोप्पानार्य उसे गिञ्जीमें ले आये और फिर श्रीरङ्गम्में उसकी पुनः स्थापना की गयी। यह स्थापना वेदान्ताचार्यकी उपस्थितिमें ही हुई थी। इस अवसरपर वेदान्ताचार्यने कुछ श्लोक बनाये थे, जो अबतक मन्दिरके भीतर दीवालपर खुदे हुए हैं।

वेङ्कटनाथ विद्यारण्य मुनिके सहपाठी और पुराने मित्र थे। इसलिये विद्यारण्य उन्हें आदर और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। विद्यारण्यने उन्हें एक बार विजयनगर आनेके लिये निमन्त्रित किया, परन्तु उन्होंने राजा और मित्रके निमन्त्रणको एकदम अस्वीकार कर दिया। इससे मालूम होता है कि उनके अन्दर कितनी निःस्पृहता और वैराग्यका भाव था। एक बार जब विद्यारण्यके साथ मध्वमतावलम्बी अक्षोभ्य मुनिका शास्त्रार्थ हुआ तब भी मध्यस्थता करनेके लिये वेङ्कटनाथको बुलाया गया। परन्तु वे फिर भी नहीं आये। तब दोनों आचार्योंने अपने विचार उनके पास निर्णयके लिये लिख भेजे। इस बातसे सहज ही समझा जा सकता है कि उस समय दक्षिणमें उनकी विद्वत्ताकी कितनी धाक थी।

इसके बाद वेङ्कटनाथका यश चारों ओर फैलने लगा। विजयनगरके वैष्णव उनसे वैष्णव मतके ऊपर ग्रन्थ लिखनेकी प्रार्थना करने लगे। लोगोंके अनुरोधपर वेङ्कटनाथने देशी भाषामें कई प्रबन्धोंकी रचना की, जिनमें 'सुभाषितनीति' सबसे अधिक प्रसिद्ध है। अन्त समयमें उन्होंने अपना मत रहस्यत्रयसार नामक ग्रन्थमें सङ्क्षेपमें लिखा।

वेङ्कटनाथकी जीवनीकी आलोचना करनेसे मालूम होता है कि वे मूर्त्तिमान् वैराग्य और भक्तिस्वरूप ही थे। उनके अन्दर तेजस्विता और दीनताका अपूर्व सम्मिश्रण देखा जाता था। अहङ्कार तो उन्हें छू तक नहीं गया था। दूसरी ओर दार्शनिकता और कवित्वका भी अपूर्व समन्वय उनके अन्दर हुआ था। धर्मोपदेशकमें जो गुण होने चाहिये, वे सब उनमें मौजूद थे। वे एक आदर्श शिक्षक भी थे। शिक्षकमें क्या-क्या गुण होने चाहिये, इस विषयमें उन्होंने लिखा है—

सिद्धम् सत्सम्प्रदाये स्थिरधियमनघम् श्रोत्रियम् ब्रह्मनिष्ठम्
सत्त्वस्थम् सत्यवाचम् समयनियतया साधुवृत्त्या समेतम्।

दम्भासूयादिमुक्तम् जितविषयगुणम् दीनवन्धुम् दयालुम्
स्खालित्ये शासितारम् स्वपरहितपरम् देशिकम् भूष्णुरीप्सेत् ॥

उन्होंने अपने जीवनमें लगभग १०८ ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमें भगवद्भक्ति कूट-कूटकर भरी है। ये सब ग्रन्थ प्रायः तामिल लिपिमें हैं और अधिकांश तामिल भाषामें हैं। उनमेंसे कुछके नाम इस प्रकार हैं—गरुडपञ्चशती, अच्युतशतक, रघुवीरगद्य, दायशतक, अभीतिस्तव, पादुकासहस्र, सुभाषितनीति, रहस्यत्रयसार, सङ्कल्पसूर्योदय, हंससन्देश, यादवाभ्युदय, तत्त्वमुक्ताकलाप, अधिकरणसारावली, न्यायपरिशुद्धि, न्यायसिद्धाञ्जन, शतदूषणी, तत्त्वटीका, गीताकी टीका, गद्यत्रयकी टीका, सेश्वरमीमांसा, ईशावास्योपनिषद्भाष्य, गीतार्थ-सङ्ग्रहरक्षा और वादित्रयखण्डन।

इस तरह सारा जीवन भगवद्भक्ति तथा लोकोपकारार्थ ग्रन्थरचनामें बिताकर आचार्य वेङ्कटनाथ विक्रम संवत् १४२६में १०२ वर्षकी अवस्थामें परलोकवासी हुए।

श्रीमल्लोकाचार्य

श्रीमल्लोकाचार्य वेदान्ताचार्यके ही समसामयिक थे। उनका काल विक्रमकी पन्द्रहवीं शताब्दी है। उनके पिताका नाम कृष्णपाद मिलता है। उनका जन्म भी दक्षिणमें ही हुआ था। वह वैष्णव आचार्योंमें एक प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं। उन्होंने श्रीरामानुजका मत समझानेके लिये दो ग्रन्थोंकी रचना की—'तत्त्वत्रय' और 'तत्त्वशेखर'। ये दोनों ग्रन्थ बड़े सरल और सुबोध हैं। 'तत्त्वत्रय'में चित्-तत्त्व या आत्मतत्त्व, अचित् या जडतत्त्व और ईश्वर-तत्त्वका निरूपण करते हुए रामानुजीय सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है। कहीं-कहींपर अन्य मतोंका खण्डन भी किया गया है। इस ग्रन्थपर श्रीबरबर मुनिका भाष्य भी मिलता है।

आचार्य वरदगुरु

आचार्य वरदगुरु पन्द्रहवीं शताब्दीमें हुए थे। वे आचार्य वेङ्कटनाथके पुत्र और नयनाराचार्यके शिष्य थे। उनका दूसरा नाम प्रतिवादिभयङ्करम् अन्नन था। तार्किक होनेके कारण उनका यह नाम पड़ा था। वरदगुरुने वेङ्कटनाथकी प्रशंसामें 'सप्ततिरत्नमालिका' नामक काव्यकी रचना की थी। नयनाराचार्यने वेदान्ताचार्यके 'अधिकरणसारावली' नामक ग्रन्थकी टीका लिखी थी। वरदगुरु महागुरु वेङ्कटनाथके अनन्य भक्त और नयनाराचार्यके उपयुक्त शिष्य थे। वरदगुरु श्रीरामानुजमतके समर्थक थे। उन्होंने 'तत्त्वत्रयचुलुकसङ्ग्रह' नामक एक ग्रन्थकी रचना की, जिसमें श्रीरामानुजमतकी व्याख्या की गयी है।

वरदनायक सूरि

वरदनायक सूरि आचार्य वरदगुरुके बाद हुए थे। क्योंकि वरदनायकने 'चिदचिदीश्वरतत्त्वनिरूपण' नामक अपने ग्रन्थमें वरदगुरुके 'तत्त्वत्रयचुलुक'का उल्लेख किया है। सम्भवतः वे सोलहवीं शताब्दीमें हुए थे। वरदनायकने अपने ग्रन्थमें जीव, जगत् और ईश्वरके सम्बन्धमें विचार किया है। उनका सिद्धान्त श्रीरामानुजके सिद्धान्तसे ही मिलता-जुलता है।

अनन्ताचार्य या अनन्तार्य

अनन्ताचार्य यादवगिरिके रहनेवाले थे। वे मेलकोटमें रहते थे। वे श्रुतप्रकाशिकाके

रचयिता सुदर्शन सूरिके बाद लगभग सोलहवीं शताब्दीमें हुए थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'ब्रह्मलक्षणनिरूपण'में 'श्रुतप्रकाशिका'का उल्लेख किया है। उन्होंने बहुतसे ग्रन्थोंकी रचना करके अक्षयकीर्त्तिका अर्जन किया। वे श्रीरामानुजमतके माननेवाले थे और उसीका समर्थन करनेके लिये उन्होंने सारे ग्रन्थोंकी रचना की। उन्होंने अपने सभी ग्रन्थोंके अन्तमें अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

शेषार्यवंशरत्नेन यादवाद्रिनिवासिना।
अनन्तार्येण रचितो वादार्थोऽयं विजृम्भताम्॥

अनन्ताचार्यके ग्रन्थोंके नाम इस प्रकार हैं—ज्ञानयाथार्थ्यवाद, प्रतिज्ञावादार्थ, ब्रह्मपदशक्तिवाद, ब्रह्मलक्षणनिरूपण, विषयतावाद, मोक्षकारणतावाद, शरीरवाद, शास्त्रारम्भसमर्थन, शास्त्रैक्यवाद, सविदेकत्वानुमाननिरासवादार्थ, समासवाद, सामानाधिकरण्यवाद और सिद्धान्तसिद्धाञ्जन। इन सब ग्रन्थोंसे आचार्यकी दार्शनिकता और पाण्डित्यका पूरा परिचय मिलता है।

दोद्दय महाचार्य रामानुजदास

दोद्दयाचार्य वेदान्तदेशिक वेङ्कटनाथकी 'शतदूषणी'के टीकाकार हैं। चण्डमारुत आदि टीकाएँ उनकी बनायी हुई हैं। वे श्रीरामानुजमतके अनुयायी थे, और अप्पय्य दीक्षितके समसामयिक थे। उनका काल सोलहवीं शताब्दी कहा जा सकता है। वाधूलकुलभूषण श्रीनिवासाचार्य उनके गुरु थे। गुरुसे शिक्षा प्राप्त करनेके बाद उन्हें महाचार्यकी उपाधि मिली थी। उनका जन्मस्थान शोलिङ्गुर है। वेदान्ताचार्यके प्रति उनकी प्रगाढ़ भक्ति थी।

उनके ग्रन्थोंके नाम इस प्रकार हैं—चण्डमारुत, अद्वैतविद्याविजय, परिकरविजय, पाराशर्यविजय, ब्रह्मविद्याविजय, ब्रह्मसूत्रभाष्योपन्यास, वेदान्तविजय, सद्विद्याविजय और उपनिषन्मङ्गलदीपिका।

सुदर्शन गुरु

सुदर्शन गुरु महाचार्यके शिष्य थे, अतएव उनके समसामयिक थे। वह विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दीमें वर्त्तमान थे। उन्होंने महाचार्यकृत वेदान्त-विजयकी व्याख्या लिखी, जिसका नाम 'मङ्गलदीपिका' है। यह ग्रन्थ कहीं प्रकाशित नहीं हुआ है।

श्रीनिवास आचार्य प्रथम

आचार्य श्रीनिवास चण्डमारुतकार महाचार्यके शिष्य थे। महाचार्यने अपनेको वाधूलकुलकी सन्तान लिखा है। श्रीनिवासने अपने ग्रन्थ 'यतीन्द्रमतदीपिका'के प्रत्येक अवतार या परिच्छेदके अन्तमें अपनेको महाचार्यका शिष्य लिखा है। महाचार्य सत्रहवीं शताब्दीके अन्तमें भी वर्त्तमान थे। इसलिये श्रीनिवास आचार्य सत्रहवीं शताब्दीमें हुए थे, ऐसा अनुमान होता है। श्रीनिवासके पिताका नाम गोविन्दाचार्य था।

श्रीनिवासाचार्य द्वितीय

श्रीनिवासाचार्य द्वितीय भी श्रीरामानुज मतके अनुयायी थे। शठमर्षणकुलमें उनका जन्म हुआ था। उनकी पत्नीका नाम रङ्गाम्बा था। अण्णाचार्य और श्रीनिवास नामक उनके

दो पुत्र थे। दोनों पुत्र विद्वान् थे। श्रीनिवासने मध्वाचार्यके मतमें दोष दिखलानेके उद्देश्यसे 'आनन्दतारतम्यखण्डन' नामक प्रबन्धकी रचना की।

श्रीनिवास तृतीय

ये तीसरे श्रीनिवास आचार्य श्रीनिवास द्वितीयके पुत्र थे। उनका जन्म शठमर्पण-कुल या श्रीशैलकुलमें हुआ था। श्रीनिवासके बड़े भाईका नाम अन्नयाचार्य और माताका नाम लक्षाम्बा था। उनके गुरुका नाम श्रीनिवास दीक्षित था। श्रीनिवास दीक्षितका जन्म कौण्डिन्य गोत्रमें हुआ था। श्रीनिवासने अपने बड़े भाईसे भी विद्याध्ययन किया था। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'अरुणाधिकरणसरणिविवरणी'में अपने गुरु तथा बड़े भाईका परिचय दिया है।

श्रीनिवासका समय अठारहवीं शताब्दीका पूर्वार्ध हो सकता है। श्रीनिवासने कई ग्रन्थ लिखे, जिनके नाम इस प्रकार हैं—तत्त्वमार्तण्ड, अरुणाधिकरणसरणिविवरणी, ओङ्कार-वादार्थ, जिज्ञासादर्पण, ज्ञानरत्नप्रकाशिका, तत्त्वदर्पण, विरोधनिरोधभाष्यपादुका, नयद्युमणि, प्रणवदर्पण, भेददर्पण तथा सहस्रकिरणी। उन्होंने विशिष्टाद्वैत मतका समर्थन तथा अन्य मतोंका खण्डन किया है।

बुच्चि वेङ्कटाचार्य

बुच्चि वेङ्कटाचार्य अन्नयाचार्यके तृतीय पुत्र थे। उन्होंने 'वेदान्तकारिकावली' नामक एक ग्रन्थकी रचना की, जिसमें विशिष्टाद्वैतवादके पदार्थों और सिद्धान्तोंका सारांश दिया गया है। ग्रन्थ पद्यमें है। बुच्चि वेङ्कटाचार्य भी श्रीरामानुजके ही अनुयायी थे।

माध्वसम्प्रदाय, द्वैतवाद या स्वतन्त्रास्वतन्त्रवाद

द्वैतवाद या स्वतन्त्रास्वतन्त्रवादके प्रमुख आचार्य श्रीमध्व हैं और इसीसे इसका दूसरा नाम माध्वमत भी है। इस सम्प्रदायका कहना है कि इस मतके आदिगुरु ब्रह्मा हैं। ब्रह्मसूत्रमें विशिष्टाद्वैतवाद, भेदाभेदवाद और अद्वैतवादका उल्लेख मिलता है, परन्तु द्वैतवाद-का कोई उल्लेख नहीं मिलता। अवश्य ही विशिष्टाद्वैतवाद और भेदाभेदवाद भी द्वैतवादके ही अन्तर्गत हैं, साङ्ख्यमत भी द्वैतवाद ही है। परन्तु श्रीमध्वाचार्यका स्वतन्त्रास्वतन्त्रवाद इनसे बिल्कुल भिन्न है। साङ्ख्यके द्वैतवादमें दो पदार्थ हैं, पुरुष और प्रकृति। ये दोनों नित्य और सत्य हैं। माध्वमतसे जीव और ब्रह्म नित्य पृथक् हैं अर्थात् दोनों दो पृथक् पदार्थ हैं। श्रीरामानुज जीव और ब्रह्मका स्वगतभेद स्वीकार करते हैं, परन्तु सजातीय और विजातीय भेद नहीं मानते। ब्रह्म स्वतन्त्र है, जीव अस्वतन्त्र है। ब्रह्म और जीवमें सेव्य-सेवकभाव है। सेवक कभी सेव्य वस्तुसे अभिन्न नहीं हो सकता। भेदाभेदवाद भी विशिष्टाद्वैतवादके समान ही है। अतएव माध्वमतसे ये सब भिन्न हैं। श्रीमध्वाचार्यसे पहले इस मतका कोई उल्लेख नहीं मिलता। अवश्य ही उन्होंने पुराणादिका अनुसरण करके ही इस मतको स्थापित किया है।

मालूम होता है, श्रीमध्वाचार्यका स्वतन्त्रास्वतन्त्रवाद वैष्णवोंके भक्तिवादका फल है। जिन दिनों शाङ्करमत और भक्तिवादका देशमें सङ्घर्ष चल रहा था, उन्हीं दिनों माध्वमतका उद्भव हुआ। घात प्रतिघातके फलस्वरूप माध्वमत शाङ्करमतका एकदम विरोधी बन गया। भेदाभेदवाद और विशिष्टाद्वैतवादपर तो सम्भवतः शाङ्करमतका बहुत कुछ प्रभाव पड़ा,

परन्तु माध्वमत उससे बिल्कुल अलग है। इस मतमें शाङ्करमतका बहुत तीव्र भाषामें खण्डन किया गया है। इस मतमें श्रीमध्वको वायुका पुत्र माना गया है। यह मत भी वैष्णवों-के चार प्रधान मतोंमेंसे एक है। अब हम इसके प्रमुख आचार्योंका संक्षिप्त विवरण देते हैं।

श्रीमध्वाचार्य

श्रीमध्वाचार्यका जीवनचरित श्रीनारायणकृत 'मध्वाचार्यविजय' और 'मणिमञ्जरी'में वर्णित है। इनका जन्म दक्षिण तुलुवदेशके वेलिग्राममें मधिजी भट्ट नामक एक वेदवेदाङ्ग-पारङ्गत ब्राह्मणके घर संवत् १२५६ विक्रमीमें विजयादशमीको हुआ था। इनकी माताका नाम वेदवती था। ब्राह्मणदम्पतीको दो पुत्र होकर मर गये थे। तब उन्होंने पुत्रकामनासे भगवान् श्रीनारायणकी उपासना की और एक बालकका जन्म हुआ। इस बालकका नाम ब्राह्मणने वासुदेव रक्खा। यज्ञोपवीत होनेके बाद वासुदेवाचार्य वेदाध्ययनके लिये ग्रामपाठशालामें भेजे गये। परन्तु बचपनमें इनका मन पढ़नेमें नहीं लगता था। वे थोड़े दिनोंमें ही दौड़ने, कूदने-फाँदने, तैरने और कुश्ती लड़ने आदिमें पारङ्गत हो गये। इस कारण इनका नाम भीम पड़ गया। कहा जाता है कि स्वयं वायु देवता ही भगवान् नारा-यणकी आज्ञासे मध्वाचार्यके रूपमें प्रकट हुए थे। इसीसे इनका नाम भीम भी सार्थक ही समझा जाता है।

ग्रामपाठशालाकी शिक्षा समाप्त कर वासुदेव अपने घरपर ही विभिन्न शास्त्रोंका अध्ययन करने लगे। इसी समय उनके चित्तमें संन्यासकी आकाङ्क्षा उत्पन्न हुई। उन्होंने ग्यारह वर्षकी उम्रमें ही अद्वैतमतके सन्यासी आचार्य सनकङ्कुलोद्भव (नामान्तर शुद्धानन्द) अच्युतपक्षाचार्यसे दीक्षा ले ली। यहाँपर इनका नाम पूर्णप्रज्ञ रक्खा गया। संन्यास लेकर उन्होंने गुरुके पास वेदान्त पढ़ना आरम्भ किया, परन्तु इन्हें गुरुकी व्याख्यासे सन्तोष नहीं होता था और ये उनकी व्याख्याका प्रतिवाद करने लगते थे। उनकी विद्वत्ताकी प्रशंसा चारों ओर होने लगी। जब वह वेदान्तशास्त्रमें पारङ्गत हो गये तब गुरुने उन्हें आनन्दतीर्थ नाम देकर मठाधीश बना दिया। आनन्दज्ञान, ज्ञानानन्द, आनन्दगिरि आदि नामोंसे भी यह प्रसिद्ध हुए। आनन्दतीर्थ अब मठाधीश होकर साधन-भजन करने लगे। बीच-बीचमें पण्डितोंसे शास्त्रार्थ भी करते थे। एक बार वह १२८५ विक्रमीमें दक्षिण विजय करनेके लिये निकले। उनके गुरु अच्युतपक्ष भी अन्यान्य साथियोंके साथ दक्षिण आये और मङ्गलौरसे सत्ताईस मील दक्षिण विष्णुमङ्गलम् स्थानमें ठहर गये। यहाँपर आचार्यने नानाप्रकारकी योग-सिद्धियाँ दिखायीं।

कुछ दिन बाद वहाँसे वह श्री अनन्तपुरम् आये। वहाँके राजाकी सभामें शृङ्गेरीमठके अध्यक्षके साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ। वहांसे वह रामेश्वर आये। फिर वहाँसे वह श्री-रङ्गम् और वहाँसे पला नदीके तटवर्त्ती उदीपिमें आये। यहींपर उन्होंने गीताभाष्यकी रचना की और उसमें अपने मतका सारांश दे दिया। पीछे उसीके आधारपर उन्होंने वेदान्तसूत्रका भाष्य लिखा। कहते हैं कि गीताभाष्यकी रचना करके आचार्य बदरिकाश्रम गये और भग-वान् व्यासदेवके प्रत्यक्ष दर्शन होनेपर इन्होंने उक्त ग्रन्थ व्यास भगवान्को समर्पण कर दिया।

व्यासजीने प्रसन्न होकर इन्हें शालग्रामकी तीन मूर्त्तियाँ दीं। ये ही तीनों मूर्त्तियाँ आचार्यने सुब्रह्मण्य, उदीपि और मध्यतलमें प्रतिष्ठित कीं। शालग्रामजीके सिवा एक श्रीकृष्णमूर्त्तिकी भी स्थापना उदीपिमें आपने की थी। इस कृष्णमूर्त्ति प्रतिष्ठाका इतिहास इस प्रकार है। एक व्यापारीका जहाज द्वारकासे मलाबारको जा रहा था। तुलुवके समीप वह डूब गया। उसमें एक कृष्णविग्रह गोपीचन्दनसे आवृत विराजमान् था। मध्वाचार्यको भगवान्‌ने आदेश दिया, इसीसे उन्होंने मूर्त्तिको जलसे निकालकर उदीपिमें उसकी स्थापना की। तभीसे उदीपि मध्व-मतानुयायियोंके लिये तीर्थ हो गया।

भगवान् व्यासदेवकी आज्ञासे आप वैष्णव सम्प्रदाय और भक्तिके प्रचारमें लग गये। इस प्रकार चलते-चलते अपने मतका प्रचार करते हुए चालुक्य साम्राज्यकी राजधानी कल्याणमें आये। यहाँपर उनके प्रधान शिष्य शोभन भट्टने उनसे दीक्षा ली। यही शोभन अपने गुरुके बाद मठाधीश हुए और उनका नाम पद्मनाभ तीर्थ पड़ा।

कल्याणसे मध्वाचार्य उदीपिमें वापस आये। यहाँपर, कहते हैं, उनके गुरु अच्युत-पक्षाचार्यने भी वैष्णवमत स्वीकार कर लिया।

जो हो, उदीपिमें मध्वाचार्यने श्रीकृष्ण मन्दिरकी स्थापनाके अतिरिक्त अपने शिष्योंकी सुविधाके लिये और भी आठ मन्दिर स्थापित किये, जिनमें श्रीराम-सीता, लक्ष्मण-सीता, द्विभुज कालियदमन, चतुर्भुज कालियदमन, विट्ठल, इस प्रकार आठ मूर्त्तियोंकी प्रतिष्ठा की। आज भी इस सम्प्रदायके लोग इन मन्दिरोंमें दर्शन करनेके लिये जाते हैं। आचार्य मध्वने यज्ञमें पशुहिंसाका निवारण किया। पशु बलिके स्थानपर इन्होंने चावलोंका बकरा बनाकर बलि देनेका प्रचार किया। जिस तरह श्रीरामानुजाचार्यने विष्णुके शङ्ख आदिकी छाप लेनेकी विधि दी है, उसी तरह श्रीमध्व भी शास्त्रद्वारा छाप लेनेका समर्थन करते हैं।

पण्डित त्रिविक्रमने श्रीमध्वाचार्यसे दीक्षा ली। गुरुने शिष्यको एक कृष्णमूर्त्ति उप-हारमें दी, जो आज भी कोचीनराज्यमें विद्यमान है। इन्हीं पण्डित त्रिविक्रमके पुत्र पण्डित नारायण थे, जिन्होंने 'मध्वविजय' और 'मणिमञ्जरी' नामक ग्रन्थ लिखे। सम्भवतः सन् १२७५ में श्रीमध्वके पिताका देहावसान हुआ और उसके बाद उनके भाईने भी संन्यास ले लिया, जिनका नाम विष्णुतीर्थ पड़ा।

श्रीमध्व अपने अन्तिम समयमें सरिदन्तर नामक स्थानमें रहते थे। यहींपर उन्होंने परमधामको प्रयाण किया। इस मतके लोगोंका कहना है कि आचार्यने लगभग उन्नासी वर्ष प्रचारकार्यमें बिताये और इस हिसाबसे उनका वैकुण्ठवास १३६० विक्रमीमें होना चाहिये। देहत्यागके समय आप अपने शिष्य श्रीपद्मनाभ तीर्थको श्रीरामजीकी मूर्त्ति और व्यासजीकी दी हुई शालग्रामशिला देकर कह गये कि तुम मेरे मतका प्रचार करना। गुरुके उपदेशा-नुसार पद्मनाभने चार मठ स्थापित किये।

श्रीमध्वाचार्यने अपने जीवनके प्रायः तीस वर्ष ग्रन्थलेखनमें व्यतीत किये। इस बीच उन्होंने गीताभाष्य, ब्रह्मसूत्रभाष्य, अनुभाष्य, अनुव्याख्यान, प्रमाणलक्षण, कथालक्षण, उपा-धिखण्डन, मायावादखण्डन, प्रपञ्चमिथ्यात्ववादखण्डन, तत्त्वसंख्यान, तत्त्वविवेक, तत्त्वोद्योत, कर्मनिर्णय, विष्णुतत्त्वनिर्णय, ऋग्भाष्य, दशोपनिषद् (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक,

माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक)-भाष्य, गीतातात्पर्यनिर्णय, न्याय-विवरण, यमकभारत, द्वादशस्तोत्र, कृष्णामृतमहार्णव, तन्त्रसारसङ्ग्रह, सदाचारस्मृति, भागवततात्पर्यनिर्णय और महाभारततात्पर्यनिर्णय, जयन्तीकल्प, संन्यासपद्धति, उपदेशसाहस्रीटीका, उपनिषत् प्रस्थान आदि अनेक ग्रन्थोंकी रचना की।

मत

श्रीमध्वाचार्यके मतसे ब्रह्म सगुण और सविशेष है। जीव अणुपरिमाण है। जीव भगवान्‌का दास है। वेद नित्य और अपौरुषेय है। पाञ्चरात्रशास्त्रका आश्रय जीवको लेना चाहिये। प्रपञ्च सत्य है। यहाँतक श्रीरामानुजके मतसे श्रीमध्वका मेल है। किन्तु पदार्थ-निर्णय या तत्त्वनिर्णयमें दोनों आचार्योंमें मतभेद है। श्रीमध्वके मतानुसार पदार्थ या तत्त्व दो प्रकारका है—स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र। अशेष सद्‌गुणयुक्त भगवान् विष्णु स्वतन्त्र तत्त्व हैं। जीव और जड़ जगत् अस्वतन्त्र तत्त्व हैं। श्रीमध्व पूर्णरूपसे द्वैतवादी हैं। वह कहते हैं, जीव भगवान्‌का दास है। दास यदि प्रभुके साथ साम्यका बोध करे तो प्रभु उसे दण्ड देते हैं। उसी तरह जीवके भगवान्‌के साथ ऐक्यका अनुभव करनेपर अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि'का विचार करनेपर भगवान् जीवको नीचे गिरा देते हैं। इससे जीव अधोगतिको प्राप्त होता है। परम-सेव्य भगवान्‌की सेवाके अतिरिक्त जीवको और कुछ नहीं करना चाहिये। स्वतन्त्र भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करना ही एकमात्र पुरुषार्थ है। यह परम पुरुषार्थ भगवान्‌के गुणोंका ज्ञान हुए बिना नहीं प्राप्त हो सकता। 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंको सुननेसे वह ज्ञान नहीं होता। अङ्कन, नामकरण और भजनके द्वारा ही वह प्राप्त होता है। निर्वाणमुक्ति तो कहने भरकी चीज है। सारूप्य, सालोक्य आदि मुक्ति ही परमार्थ है। इन्हीं बातोंको हृदयमें रखकर श्री-मध्वने स्वतन्त्रास्वतन्त्रवादकी स्थापना की।

सत्य—दर्शनका तात्पर्य सत्य या तत्वनिर्णय है। शाङ्कर-मतसे, जो सब अवस्थाओंमें, सब कालोंमें, सब देशोंमें अबाधित है, वही सत्य है। दृश्य वस्तु वास्तविक नहीं है, क्योंकि दृश्य बाधित है। ज्ञान ही सत्य है। परन्तु श्रीमध्वका कहना है कि यह बात ठीक नहीं। सत्य और दृश्य वस्तु अभिन्न हैं, उनमें भेद होना सम्भव नहीं। ज्ञाता और ज्ञेयके बिना ज्ञान असम्भव है।

ज्ञान—आचार्य मध्वके कथनानुसार सब ज्ञान आपेक्षिक है। ज्ञाता और ज्ञेयके बिना ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। उनके मतमें ज्ञान और चिन्तन अभिन्न हैं। वह निर्विकल्प ज्ञानको स्वीकार नहीं करते। उनकी रायमें सब ज्ञान सविकल्पक हैं। सविकल्पक ज्ञानवादके विचारसे जिसकी सत्यता प्रमाणित होगी, वही सत्य है।

वेद—वेद स्वतःसिद्ध और अपौरुषेय है। वेद सत्यस्वरूप और सत्यज्ञानका उपाय है। वेद स्वतः प्रमाण एवं नित्य है।

प्रमाण—प्रमाणके बिना किसी विषयका यथार्थ ज्ञान नहीं होता। विचार करनेके लिये प्रमाणकी आवश्यकता होती है। जिसकी सहायतासे प्रमाण या यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे प्रमाण कहते हैं। आचार्य मध्व इससे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि ज्ञान ही ज्ञेय वस्तुका प्रतिपादक है, ज्ञान ही प्रधान प्रमाण है।

जगत्‌की सत्यता—आचार्य मध्वने जगत्‌की सत्यता सिद्ध की है। उनका कहना है कि जब ज्ञान निर्विकल्प नहीं है, तब विषय या दृश्य अवश्य सत्य है। ज्ञेय सत्य हुए बिना ज्ञानकी स्फूर्त्ति नहीं हो सकती। वह कहते हैं—कार्य क्षणिक होनेपर भी सत्य है। विकार होनेसे ही वह अनित्य होगा, ऐसी बात नहीं। कौन कहता है कि अनित्य और परिवर्त्तनशील होनेसे ही वह मिथ्या या अवान्तर होगा। सत्यका ज्ञान हुए बिना असत्यका ज्ञान नहीं होता। 'यह है' इस प्रामाणिक ज्ञानके ऊपर ही 'यह नहीं है' यह ज्ञान प्रतिष्ठित है। 'यह नहीं है' कहनेसे ही किसी वस्तुकी सत्ता प्रमाणित होती है। जो असत्य है, वह ज्ञानका विषय नहीं हो सकता। वह मिथ्या ज्ञानका भी विषय नहीं हो सकता और न वह कार्य कारणभाव सम्बन्धसे सम्बद्ध हो सकता है। जो लोग जगत्‌को मिथ्या बतलाते हैं, वे कार्यकारणके नियमका उल्लङ्घन और स्वप्रतिज्ञाका विरोध करते हैं।

भेद—आचार्यके मतानुसार वस्तुके साथ वस्तुका भेद है। वस्तुका वस्तुके साथ सम्बन्ध अवश्य स्वीकार करने योग्य है। सम्बन्ध होनेसे ही परस्पर भेद है। अतएव भेद सत्य है। इस भेदके ऊपर ही द्वैतवाद प्रतिष्ठित है।

उपाधिखण्डन—आचार्य मध्वने 'उपाधिखण्डन' नामक अपने ग्रन्थमें सिद्ध किया है कि भेद पारमार्थिक है, औपाधिक भेदवाद श्रुतिविरुद्ध और युक्तिहीन है।

मायावादखण्डन—आचार्य मध्वने अपने ग्रन्थोंमें सिद्ध किया है कि भेद मायिक नहीं है। भेद सत्य है। वह कहते हैं—'सत्यता च भेदस्य।' ज्ञानके आपेक्षिकत्व और भेदके पारमार्थिकत्वपर ही मध्वदर्शन निर्भर करता है।

ब्रह्मविद्याका अधिकारी—आचार्य मध्वके मतानुसार अधिकारी तीन प्रकारके होते हैं—मन्द, मध्यम और उत्तम। मनुष्योंमें जो उत्तम गुण सम्पन्न हैं वे मन्द, ऋषि गन्धर्व मध्यम, और देवता उत्तम अधिकारी हैं। यह भेद जातिगत है। गुणगत भेद इस प्रकार है—परमपुरुष भगवान्‌में भक्तिभाव रखनेवाला और अध्ययनशील अधम, शमसंयुक्त व्यक्ति मध्यम, और जिसके अन्दर समस्त वस्तुओंके प्रति वैराग्य हो गया है, जिसने एकमात्र विष्णुके पदका आश्रय ले लिया है, वह उत्तम अधिकारी है।

सम्बन्ध—ब्रह्म और शास्त्रमें प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभाव सम्बन्ध है। ब्रह्म शास्त्रगम्य है। वह दर्शनीय वस्तु है, इसलिये वाच्य है। यदि वह अवाच्य होते तो वह दृष्टिके भी विषय न होते। 'वह मन-वाणीके अगोचर है' इस श्रुतिवाक्यका तात्पर्य यही है कि ब्रह्म अप्रसिद्ध है। जिस तरह पर्वतको देखनेपर भी उसका पूर्ण दर्शन नहीं होता, उसी प्रकार ब्रह्मको वाणीद्वारा पूर्णरूपसे प्रकट नहीं किया जा सकता।

विषय—असीम सद्‌गुणसम्पन्न विष्णु प्रतिपाद्य हैं। जीव और विष्णु अत्यन्त भिन्न हैं। श्रुति, स्मृति, पुराण, सबमें विष्णुका ब्रह्मत्व सिद्ध किया गया है। विष्णु देश और कालद्वारा परिच्छिन्न नहीं हैं। वह असीम अनन्त हैं, उनके गुणोंकी गिनती नहीं हो सकती। इसी अर्थमें वह निर्गुण हैं। वह असीम गुणोंके भण्डार हैं, जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं। वह निर्विशेष नहीं, वल्कि सविशेष हैं। अतएव सविशेष ब्रह्म ही विषय है।

प्रयोजन—दु:खकी निवृत्ति और आनन्दकी प्राप्ति ही प्रयोजन है। ईश्वरका नामा-

ङ्कन, नामकरण और भजन करनेसे वह प्रसन्न होते हैं। उनकी कृपासे सालोक्य, सारूप्य मुक्ति मिलती है। वैकुण्ठपति विष्णु ही सेव्य हैं। मुक्त पुरुष भी वैकुण्ठमें जाकर नारायणकी सेवा करते हुए परमानन्द प्राप्त करते हैं। यही प्रयोजन है। माध्वमतानुसार वैकुण्ठकी प्राप्ति ही मुक्ति है।

तत्त्व—तत्व दो प्रकारके हैं—स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र। अशेषसद्‌गुणसम्पन्न विष्णु स्वतन्त्र और जीव तथा जगत् अस्वतन्त्र हैं।

पदार्थ—आचार्य मध्वके मतसे पदार्थ दस हैं—(१) भाववस्तु, (२) गुण, (३) क्रिया, (४) जाति, (५) विशेषत्व, (६) विशिष्ट, (७) अंशी, (८) शक्ति, (९) सादृश्य और (१०) अभाव। ये सब पदार्थ परतन्त्र हैं। जो इनकी परतन्त्रताको जानते हैं, वे संसारसे मुक्त हो जाते हैं।

ब्रह्म—ब्रह्म स्वतन्त्र तत्व और स्वतन्त्र प्रमेय हैं, वह अनन्त सद्‌गुणोंके आलय हैं। भाव और अभावके परे हैं। भाववस्तु दो प्रकारकी है—चेतन और अचेतन। जीव चेतन और जगत् अचेतन है। जीव और जगत् भगवान्‌के अधीन है। भगवान् इन दोनोंसे सर्वथा पृथक् हैं।

आचार्यके मतानुसार ब्रह्मा, शिव आदिसे विष्णु श्रेष्ठ है। सब देवता उनके वशमें हैं। वही स्रष्टा, पालक और संहारक है। वही मुक्ति देते हैं। ब्रह्म काल, देश, गुण और शक्तिमें असीम है, इसलिये स्वतन्त्र है।

आत्मा और जीव—जीव अणु है। जीव प्रत्येक देहमें भिन्न है। जीव अस्वतन्त्र है। वह कभी भगवान्‌के साथ अभिन्न नहीं हो सकता। भगवान् सेव्य और जीव सेवक है। अतएव भगवान् जीवसे भिन्न हैं। आचार्यके मतमें जीव चेतन है, परन्तु उसका ज्ञान ससीम है। अतएव उसे ईश्वरपर पूर्णरूपसे निर्भर करना पड़ता है। चेतन जीव दो प्रकारका है—दुःखी और दुःखरहित। दुःखी जीव भी दो प्रकारके हैं—मुक्तिके योग्य और मुक्तिके अयोग्य। सात्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे भी जीवके तीन भेद हैं।

जगत्—आचार्यके मतसे जगत् सत्, जड़ और अस्वतन्त्र है। भगवान् जगत्‌के नियामक हैं। जगत् कालकी दृष्टिसे असीम है। अचेतन वस्तु तीन प्रकारकी है—नित्य, अनित्य और नित्यानित्य। आचार्यने जगत्‌की सत्यताको सिद्ध किया है और असत्यताका खण्डन किया है।

मुक्ति—श्रीमध्वाचार्यकी दृष्टिसे जीवन्मुक्ति और निर्वाणमुक्ति केवल बात ही बात है। इनका कोई अर्थ नहीं। उनके मतसे वैकुण्ठ प्राप्ति ही मुक्ति है। उनके मतसे स्थूल, सूक्ष्म सब वस्तुओंका यथार्थ ज्ञान होनेसे मुक्ति होती है। ईश्वरसे जीव पूर्णरूपसे पृथक् है—इस ज्ञानकी पूर्णता प्राप्त होनेपर, ईश्वरके गुणोंकी उपलब्धि होनेपर, उनकी अनन्त, असीम शक्ति और गुणका बोध होनेपर, समस्त जागतिक पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपका बोध होनेपर मुक्ति होती है। विष्णुके लोक और रूपकी प्राप्ति ही मुक्ति है। मुक्त जीव भी ईश्वरका सेवक है। मुक्तिके लिये पञ्च प्रपञ्चभेदका ज्ञान आवश्यक है। पाँच प्रपञ्चभेद ये हैं—(१) भगवान् जीवसे पूर्ण पृथक् हैं, (२) भगवान् जगत्से पूर्ण पृथक् हैं, (३) एक जीव अन्य जीवसे

पृथक् है, (४) जीव जगत्से पृथक् है, और (५) जड जगत्के विभक्त या कार्यरूपमें परिणत होनेपर उसका एक अंश अन्य अंशसे पृथक् है ।

साधन—भक्ति ही मुक्तिका साधन है । त्याग, भक्ति और ईश्वरकी प्रत्यक्ष अनुभूति मुक्तिका एकमात्र साधन है । ध्यानके बिना ईश्वरसाक्षात्कार नहीं होता । भगवान्में भक्ति, वेदाध्यन, इन्द्रियसंयम, विलासिताका त्याग, आशा और भयसे उदासीनता, सांसारिक वस्तुओंकी नश्वरताका ज्ञान, सम्पूर्णरूपसे भगवान्के प्रति आत्मसमर्पण—इन गुणोंके बिना भगवत्साक्षात्कार होना असम्भव है । भगवान्की सेवा करना उत्तम साधन है । सेवा तीन प्रकारकी है—भगवान्के आयुधोंकी छाप शरीरपर लेना, घरमें पुत्रादिका नाम भगवान्के नामपर रखना, और भजन ।

दशविध भजन—सत्य बोलना, हितके वाक्य बोलना, प्रियभाषण और स्वाध्याय-ये चार प्रकारके वाचिक भजन हैं । सत्पात्रको दान देना, विपन्न व्यक्तिका उद्धार करना और शरणागतकी रक्षा करना-ये तीन शारीरिक भजन हैं । दया, स्पृहा और श्रद्धा-ये तीन मानसिक भजन हैं । दरिद्रका दुःख दूर करना दया है, केवल भगवान्का दास बननेकी इच्छाका नाम स्पृहा है और गुरु तथा शास्त्रमें विश्वास करना श्रद्धा है । इन दसों प्रकारके कार्य करके नारायणको समर्पित करना भजन है ।

श्रीपद्मनाभाचार्य

श्रीपद्मनाभाचार्य श्रीमध्वके शिष्य थे । उनका नाम पहले शोभन भट्ट था । यह बहुत बड़े विद्वान् थे । चालुक्य साम्राज्यकी राजधानी कल्याणमें वह रहते थे और यहींपर उनका शास्त्रार्थ श्रीमध्वसे हुआ । शोभन भट्ट शास्त्रार्थमें हार गये और उन्होंने वैष्णवमत स्वीकार कर लिया । इसी समय उनका नाम पद्मनाभाचार्य पड़ा । श्रीमध्वके बाद वही मठाधीश हुए । पद्मनाभाचार्यने श्रीमध्वके ग्रन्थोंकी टीका लिखी थी । 'पदार्थसङ्ग्रह' नामक एक प्रकरण-ग्रन्थ भी उन्होंने लिखा था, जिसमें मध्वाचार्यके मतका वर्णन किया गया है । 'पदार्थ-सङ्ग्रह'के ऊपर उन्होंने 'मध्वसिद्धान्तसार' नामक व्याख्या भी लिखी थी । वह द्वैतवादी थे । श्रीमध्वमतके ही अनुयायी थे । वह प्रायः तेरहवीं शताब्दीमें वर्त्तमान थे ।

श्रीजय[illegible]र्य

श्री[illegible] दक्षिण भारतमें [illegible] वह द्वैतवादी आचार्य थे । पद्मनाभा-
चार्यके बाद [illegible] क्ष थे । पद्मना[illegible] नरहरितीर्थ, फिर माधवतीर्थ, फिर
अ[illegible] गद्दीपर बै[illegible] के प्रकाण्ड पण्डित थे । उन्होंने
त[illegible] त्त्वसङ्ख्यान[illegible] का, न्यायकल्पलता, सम्बन्ध-
दी[illegible] टीका, [illegible] यावादखण्डनटीका, [illegible]
[illegible] स्यो [illegible] प्रश्नोपनिषद्की टी[illegible]
प[illegible] ग्र[illegible] । उन्होंने श्रीम[illegible]
टी[illegible] है । उनके

आचार्य व्यासराज स्वामी

आचार्य व्यासराज मध्वमतावलम्बी थे। श्रीमद् ब्रह्मण्य तीर्थ उनके गुरु थे। जयतीर्थाचार्यकी 'वादावली'का अनुसरण करके उन्होंने 'न्यायामृत' नामक ग्रन्थकी रचना की। वह एक अद्वितीय पण्डित थे। उनकी प्रतिभाको देखकर ही उनके ग्रन्थोंका नाम 'व्यासत्रयम्' पड़ गया। व्यासराज जयतीर्थाचार्यके बाद हुए थे। कहते हैं, मधुसूदन सरस्वतीने जिस समय उनके ग्रन्थ न्यायामृतका खण्डन अद्वैतसिद्धिमें किया था, उस समय व्यासराज वृद्ध थे। मधुसूदन सत्रहवीं शताब्दीके अन्तमें वर्त्तमान थे। व्यासराजने अपने शिष्य व्यास रामाचार्य्यको मधुसूदनके पास भेजा था। व्यास रामाचार्य्य मधुसूदनके शिष्य हुए और अन्तमें 'तरङ्गिणी' नामक ग्रन्थकी रचना करके उनके मतका खण्डन किया। इन सब बातोंसे मालूम होता है, व्यासराज सोलहवीं शताब्दीके अन्तमें हुए थे। व्यासराजने अपने ग्रन्थ 'न्यायामृत'में अपने विद्यागुरुका नाम लक्ष्मीनारायण मुनि लिखा है।

व्यासराज स्वामीने न्यायामृत, तात्पर्यचन्द्रिका, तथा भेदोज्जीवन नामक तीन ग्रन्थोंकी रचना की। इन ग्रन्थोंमें उन्होंने माध्वमतका ही प्रतिपादन किया है। उनके मतमें कोई अपनी विशेषता नहीं है।

व्यास रामाचार्य

व्यास रामाचार्य मध्वमतावलम्बी थे। आचार्य व्यासराज उनके गुरु थे। रामाचार्यने अपने ग्रन्थ 'तरङ्गिणी'में अपना कुछ परिचय दिया है। उनके पिताका नाम विश्वनाथ था। उनके पिता भी पण्डित थे। रामाचार्यका जन्म व्यासकुलमें हुआ था, उनका गोत्र उपमन्यु था। वह गोदावरीके तटपर अन्धपुरी नामक गाँवमें रहते थे। उनके बड़े भाईका नाम नारायणाचार्य था। कहते हैं, अपने गुरुकी आज्ञासे उन्होंने मधुसूदन सरस्वतीका शिष्यत्व ग्रहण किया और उनसे अद्वैतमतका तात्पर्य जानकर पीछे अद्वैतमतका खण्डन किया। इससे उनका काल सत्रहवीं शताब्दी मालूम होता है। उन्होंने न्यायामृतकी टीका 'तरङ्गिणी'के नामसे लिखी थी। उनका और कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। 'तरङ्गिणी'से उनके अपूर्व पाण्डित्यका परिचय मिलता है। इसमें उन्होंने अद्वैतमतका खण्डन किया है और माध्वमतका प्रतिपादन किया है। वह स्वतन्त्रास्वतन्त्रवादी थे।

श्री राघवेन्द्र स्वामी

श्री राघवेन्द्र स्वामी मध्वमतावलम्बी थे। उन्होंने जयतीर्थाचार्यकी टीकापर वृत्ति लिखी है। जयतीर्थके प्रधान-प्रधान सब ग्रन्थोंपर उन्होंने वृत्ति लिखी है। उनका मत श्रीमध्वाचार्यके मतसे मिलता-जुलता ही है। उनके ग्रन्थोंके नाम इस प्रकार हैं—तत्वोद्योतटीकाकी वृत्ति, न्यायकल्पलताकी वृत्ति, तत्वप्रकाशिकाकी वृत्ति—भावदीप, वादावलीकी टीका, मन्त्रार्थमञ्जरी, तत्वमञ्जरी, गीताविवृत्ति और ईश, केन, प्रश्न, मुण्डक, छान्दोग्य और तैत्तिरीय उपनिषद्का खण्डार्थ। उनके ग्रन्थोंकी भाषा सरल है। वह प्रायः सत्रहवीं शताब्दीमें वर्त्तमान थे।

आचार्य वेदेश तीर्थ

आचार्य वेदेश तीर्थ मध्वमतावलम्बी थे। वह बहुत बड़े हरिभक्त थे। उन्होंने पदार्थ-

पृथक् है, (४) जीव जगत्से पृथक् है, और (५) जड जगत्के विभक्त या कार्यरूपमें परिणत होनेपर उसका एक अंश अन्य अंशसे पृथक् है ।

साधन—भक्ति ही मुक्तिका साधन है । त्याग, भक्ति और ईश्वरकी प्रत्यक्ष अनुभूति मुक्तिका एकमात्र साधन है । ध्यानके बिना ईश्वरसाक्षात्कार नहीं होता । भगवान्में भक्ति, वेदाध्यन, इन्द्रियसंयम, विलासिताका त्याग, आशा और भयसे उदासीनता, सांसारिक वस्तुओंकी नश्वरताका ज्ञान, सम्पूर्णरूपसे भगवान्के प्रति आत्मसमर्पण—इन गुणोंके बिना भगवत्साक्षात्कार होना असम्भव है । भगवान्की सेवा करना उत्तम साधन है । सेवा तीन प्रकारकी है—भगवान्के आयुधोंकी छाप शरीरपर लेना, घरमें पुत्रादिका नाम भगवान्के नामपर रखना, और भजन ।

दशविध भजन—सत्य बोलना, हितके वाक्य बोलना, प्रियभाषण और स्वाध्याय—ये चार प्रकारके वाचिक भजन हैं । सत्पात्रको दान देना, विपन्न व्यक्तिका उद्धार करना और शरणागतकी रक्षा करना—ये तीन शारीरिक भजन हैं । दया, स्पृहा और श्रद्धा—ये तीन मानसिक भजन हैं । दरिद्रका दुःख दूर करना दया है, केवल भगवान्का दास बननेकी इच्छाका नाम स्पृहा है और गुरु तथा शास्त्रमें विश्वास करना श्रद्धा है । इन दसों प्रकारके कार्य करके नारायणको समर्पित करना भजन है ।

श्रीपद्मनाभाचार्य

श्रीपद्मनाभाचार्य श्रीमध्वके शिष्य थे । उनका नाम पहले शोभन भट्ट था । यह बहुत बड़े विद्वान् थे । चालुक्य साम्राज्यकी राजधानी कल्याणमें वह रहते थे और यहींपर उनका शास्त्रार्थ श्रीमध्वसे हुआ । शोभन भट्ट शास्त्रार्थमें हार गये और उन्होंने वैष्णवमत स्वीकार कर लिया । इसी समय उनका नाम पद्मनाभाचार्य पड़ा । श्रीमध्वके बाद वही मठाधीश हुए । पद्मनाभाचार्यने श्रीमध्वके ग्रन्थोंकी टीका लिखी थी । 'पदार्थसङ्ग्रह' नामक एक प्रकरण-ग्रन्थ भी उन्होंने लिखा था, जिसमें मध्वाचार्यके मतका वर्णन किया गया है । 'पदार्थ-सङ्ग्रह'के ऊपर उन्होंने 'मध्वसिद्धान्तसार' नामक व्याख्या भी लिखी थी । वह द्वैतवादी थे । श्रीमध्वमतके ही अनुयायी थे । वह प्रायः तेरहवीं शताब्दीमें वर्त्तमान थे ।

श्रीजयतीर्थाचार्य

श्रीजयतीर्थका जन्म दक्षिण भारतमें हुआ था । वह द्वैतवादी आचार्य थे । पद्मनाभाचार्यके बाद वह चौथे मठाध्यक्ष थे । पद्मनाभाचार्यके बाद नरहरितीर्थ, फिर माधवतीर्थ, फिर अक्षोभ्यतीर्थ और फिर जयतीर्थ गद्दीपर बैठे । जयतीर्थ बड़े प्रकाण्ड पण्डित थे । उन्होंने तत्त्वप्रकाशिका, तत्त्वोद्योतटीका, तत्त्वसङ्ख्यानटीका, तत्त्वविवेकटीका, न्यायकल्पलता, सम्बन्ध-दीपिका, प्रपञ्चमिथ्यात्वानुमानखण्डनटीका, न्यायदीपिका, मायावादखण्डनटीका, विष्णुतत्व-विनिर्णयटीका, उपाधिखण्डनटीका, ईशावास्योपनिषद्की टीका, प्रश्नोपनिषद्की टीका, प्रमाण-पद्धति, न्यायसुधा तथा वादावली नामक ग्रन्थोंकी रचना की । उन्होंने श्रीमध्वके ग्रन्थोंकी टीकाओं तथा अन्य सब ग्रन्थोंमें माध्वमतका ही विवेचन किया है । उनके मतमें मध्वमतसे कोई भिन्नता नहीं है । वह प्राय. पन्द्रहवीं शताब्दीमें हुए थे ।

आचार्य व्यासराज स्वामी

आचार्य व्यासराज मध्वमतावलम्बी थे। श्रीमत् ब्रह्मण्य तीर्थ उनके गुरु थे। जयतीर्थाचार्यकी 'वादावली'का अनुसरण करके उन्होंने 'न्यायामृत' नामक ग्रन्थकी रचना की। वह एक अद्वितीय पण्डित थे। उनकी प्रतिभाको देखकर ही उनके ग्रन्थोंका नाम 'व्यासत्रयम्' पड़ गया। व्यासराज जयतीर्थाचार्यके बाद हुए थे। कहते हैं, मधुसूदन सरस्वतीने जिस समय उनके ग्रन्थ न्यायामृतका खण्डन अद्वैतसिद्धिमें किया था, उस समय व्यासराज वृद्ध थे। मधुसूदन सत्रहवीं शताब्दीके अन्तमें वर्त्तमान थे। व्यासराजने अपने शिष्य व्यास रामाचार्य्यको मधुसूदनके पास भेजा था। व्यास रामाचार्य्य मधुसूदनके शिष्य हुए और अन्तमें 'तरङ्गिणी' नामक ग्रन्थकी रचना करके उनके मतका खण्डन किया। इन सब बातोंसे मालूम होता है, व्यासराज सोलहवीं शताब्दीके अन्तमें हुए थे। व्यासराजने अपने ग्रन्थ 'न्यायामृत'में अपने विद्यागुरुका नाम लक्ष्मीनारायण मुनि लिखा है।

व्यासराज स्वामीने न्यायामृत, तात्पर्यचन्द्रिका, तथा भेदोज्जीवन नामक तीन ग्रन्थोंकी रचना की। इन ग्रन्थोंमें उन्होंने माध्वमतका ही प्रतिपादन किया है। उनके मतमें कोई अपनी विशेषता नहीं है।

व्यास रामाचार्य

व्यास रामाचार्य मध्वमतावलम्बी थे। आचार्य व्यासराज उनके गुरु थे। रामाचार्यने अपने ग्रन्थ 'तरङ्गिणी'में अपना कुछ परिचय दिया है। उनके पिताका नाम विश्वनाथ था। उनके पिता भी पण्डित थे। रामाचार्यका जन्म व्यासकुलमें हुआ था, उनका गोत्र उपमन्यु था। वह गोदावरीके तटपर अन्घपुरी नामक गाँवमें रहते थे। उनके बड़े भाईका नाम नारायणाचार्य था। कहते हैं, अपने गुरुकी आज्ञासे उन्होंने मधुसूदन सरस्वतीका शिष्यत्व ग्रहण किया और उनसे अद्वैतमतका तात्पर्य जानकर पीछे अद्वैतमतका खण्डन किया। इससे उनका काल सत्रहवीं शताब्दी मालूम होता है। उन्होंने न्यायामृतकी टीका 'तरङ्गिणी'के नामसे लिखी थी। उनका और कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। 'तरङ्गिणी'से उनके अपूर्व पाण्डित्यका परिचय मिलता है। इसमें उन्होंने अद्वैतमतका खण्डन किया है और माध्वमतका प्रतिपादन किया है। वह स्वतन्त्रास्वतन्त्रवादी थे।

श्री राघवेन्द्र स्वामी

श्री राघवेन्द्र स्वामी मध्वमतावलम्बी थे। उन्होंने जयतीर्थाचार्यकी टीकापर वृत्ति लिखी है। जयतीर्थके प्रधान-प्रधान सब ग्रन्थोंपर उन्होंने वृत्ति लिखी है। उनका मत श्रीमध्वाचार्यके मतसे मिलता-जुलता ही है। उनके ग्रन्थोंके नाम इस प्रकार हैं—तत्वोद्योत-टीकाकी वृत्ति, न्यायकल्पलताकी वृत्ति, तत्वप्रकाशिकाकी वृत्ति–भावदीप, वादावलीकी टीका, मन्त्रार्थमञ्जरी, तत्वमञ्जरी, गीताविवृत्ति और ईश, केन, प्रश्न, मुण्डक, छान्दोग्य और तैत्तिरीय उपनिषद्का खण्डार्थ। उनके ग्रन्थोंकी भाषा सरल है। वह प्राय. सत्रहवीं शताब्दीमें वर्त्तमान थे।

आचार्य वेदेश तीर्थ

आचार्य वेदेश तीर्थ मध्वमतावलम्बी थे। वह बहुत बड़े विरक्त थे। उन्होंने पदार्थ-

कौमुदी, तत्वोद्योतटीकाकी वृत्ति, कठोपनिषद्वृत्ति, केनोपनिषद्वृत्ति तथा छान्दोग्योपनिषद् आदिकी वृत्तिकी रचना की। उनका समय प्रायः अठारहवीं शताब्दी है।

आचार्य श्रीनिवास तीर्थ

आचार्य श्रीनिवास तीर्थ अठारहवीं शताब्दीमें आचार्य वेदेश तीर्थके समयमें ही हुए थे। उन्होंने अपने ग्रन्थमें श्रीवेदेशको प्रणाम किया है। परन्तु अपने गुरुका नाम उन्होंने यादवाचार्य लिखा है। सम्भवतः यादवाचार्यने जयतीर्थाचार्यकृत ब्रह्मसूत्रकी टीका 'न्याय सुधा'के ऊपर कोई विवृत्ति लिखी थी, परन्तु वह ग्रन्थ शायद अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ है। यादवाचार्यसे पढ़कर श्रीनिवासने न्यायामृत जैसे प्रमेयबहुल ग्रन्थकी वृत्तिकी रचना की। उन्होंने अपने ग्रन्थमें लिखा है कि गुरुकी कृपासे ही मैंने इस ग्रन्थकी रचना की है। श्रीनिवासने 'न्यायामृतप्रकाश', तत्वोद्योतटीकाकी वृत्ति, 'कृष्णामृतमहार्णव'की टीका, तैत्तिरीय उपनिषद् और माण्डूक्योपनिषद्की वृत्ति आदि ग्रन्थ लिखे हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें मध्वमतका ही अनुसरण किया है। सब ग्रन्थोंमें उन्होंने मध्वमतका प्रतिपादन किया है। वह भी स्वतन्त्रास्वतन्त्रवादी थे।

निम्बार्क-सम्प्रदाय वा द्वैताद्वैतमत

द्वैताद्वैतमत एक तरहसे भेदाभेदवाद ही है। इस मतके अनुसार द्वैत भी सत्य है और अद्वैत भी। इस मतके प्रधान आचार्य श्रीनिम्बार्क हो गये हैं। परन्तु यह मत भी है बहुत प्राचीन। ब्रह्मसूत्रमें भी द्वैताद्वैतवाद तथा उसके आचार्यका नाम मिलता है। दसवीं शताब्दीमें आचार्य भास्करने भेदाभेदवादके अनुसार वेदान्तसूत्रकी व्याख्या की। परन्तु यह व्याख्या ब्रह्मपर है, शिव या विष्णुपर नहीं है। ग्यारहवीं शताब्दीमें श्रीनिम्बार्कने ब्रह्मसूत्रकी विष्णुपरक व्याख्या करके द्वैताद्वैतमतकी स्थापना की। वैष्णवोंके प्रमुख चार सम्प्रदायोंमें एक निम्बार्क-सम्प्रदाय भी है। इसे सनकादि-सम्प्रदाय भी कहते हैं। ब्रह्माके जो चार मानसपुत्र सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार थे, वे चारों ऋषि इस मतके आचार्य कहे जाते हैं। छान्दोग्य उपनिषद्में सनत्कुमार-नारद-आख्यायिका प्रसिद्ध है। उसमें कहा गया है कि नारदने सनत्कुमारसे ब्रह्मविद्या सीखी थी। इन्हीं नारदजीने श्रीनिम्बार्कको उपदेश दिया। श्रीनिम्बार्कने भी अपने भाष्यमें सनत्कुमार और नारदके नामका उल्लेख किया है। जो हो, यह बात बिल्कुल ठीक है कि यह मत नया नहीं है, अपितु बहुत प्राचीन कालसे चला आ रहा है। श्रीनिम्बार्कने साम्प्रदायिक ढङ्गसे जिस मतकी शिक्षा पायी थी, उसे अपनी प्रतिभासे और भी उज्ज्वल बना दिया।

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायकी गद्दी मथुराके पास यमुनाके तटवर्त्ती ध्रुवक्षेत्रमें है। वैष्णवोंका यह एक पवित्र तीर्थ माना जाता है। इस सम्प्रदायके लोग विशेषकर भारतके पश्चिमी भागमें ही रहते हैं। बङ्गालमें भी इस सम्प्रदायके कुछ लोग हैं। इस सम्प्रदायकी एक विशेषता यह है कि इसके आचार्योंने अन्य मतोंके आचार्योंकी तरह दूसरे मतोंका खण्डन नहीं किया है। केवल देवाचार्यके ग्रन्थोंमें शाङ्कर मतपर आक्षेप देखा जाता है।

इस सम्प्रदायके प्रमुख आचार्योंका संक्षिप्त परिचय अब नीचे दिया जाता है—

श्रीनिम्बार्काचार्य

श्रीनिम्बार्काचार्यका दूसरा नाम नियमानन्द था। इसी नामसे देवाचार्यने अपने ग्रन्थमें उन्हें नमस्कार किया है। निम्बार्क या निम्बादित्यका नाम पहले भास्कराचार्य था। निम्बार्क-सम्प्रदायके लोगोंमें यह बात प्रचलित है कि निम्बादित्य सूर्यके अवतार थे और पाखण्डरूप अन्धकारका नाश करनेके लिये भूमण्डलपर अवतीर्ण हुए थे। कुछ महानुभाव इन्हें भगवान्‌के प्रिय आयुध श्रीसुदर्शनचक्रका अवतार मानते हैं। उनके विषयमें एक घटना भी प्रसिद्ध है। कहते हैं, वह वृन्दावनके पास रहते थे। एक बार एक दण्डी—किसी-किसीके मतसे एक जैन उदासीन—उनके आश्रमपर आये। दोनोंमें विचार शुरू हुआ और शामतक होता रहा। भास्कराचार्य अपने अतिथिको कुछ भोजन कराना चाहते थे, परन्तु दण्डी या जैन लोगोंके लिये सन्ध्या या रात्रिमें भोजन करना निषिद्ध है। अतएव अतिथिने उनके आग्रहको अस्वीकार कर दिया। तब भास्कराचार्यने अपनी योगसिद्धिसे सूर्यकी गतिको रोक दिया। सूर्य उनकी आज्ञासे समीपके एक नीमके वृक्षपर स्थित हो गये। जब अतिथिका भोजन तैयार हुआ और वह समाप्त कर चुके तब सूर्य भास्कराचार्यकी आज्ञा लेकर अस्त हो गये। तभीसे भास्कराचार्यका नाम निम्बार्क या निम्बादित्य प्रसिद्ध हो गया। इससे मालूम होता है, वह एक महान् योगी थे। उनके नामसे ऐसा मालूम होता है कि वह संन्यासी थे।

श्रीनिम्बार्कके जीवनके विषयमें इससे अधिक कोई बात नहीं मालूम होती। वह कब हुए, यह भी निश्चित करना कठिन मालूम होता है। निम्बार्क सम्प्रदायके मतसे वह पाँचवीं शताब्दीमें हुए थे। भक्तोंका यह विश्वास है कि आपका प्राकट्य द्वापरयुगमें हुआ था। वर्त्तमान अन्वेषकगणोंके मतानुसार उनका आविर्भावकाल ग्यारहवीं शताब्दी है। ऐसा माना जाता है कि ये दक्षिण देशमें गोदावरीके तटपर वैदूर्यपत्तनके निकट अरुणाश्रममें श्रीअरुणमुनिकी पत्नी श्रीजयन्तीदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए। कोई-कोई इनके पिताका नाम जगन्नाथ मानते हैं। कहा जाता है कि उपनयन संस्कारके समय स्वयं देवर्षि नारदजीने इन्हें श्रीगोपाल-मन्त्रकी दीक्षा और श्री-भू-लीलासहित श्रीकृष्णोपासनाका उपदेश दिया था। निम्बादित्य-सम्प्रदायकी दो श्रेणियाँ हैं, एक विरक्त और दूसरी गृहस्थ। आचार्यके दो शिष्य केशव भट्ट और हरिव्यास थे, उन्हींसे ये दो श्रेणियाँ निकली हैं। हरिव्यासके अनुयायी गृहस्थ और केशव भट्टके अनुयायी विरक्त होते हैं। निम्बार्क-सम्प्रदायमें राधाकृष्णकी पूजा होती है और लोग गोपीचन्दनका तिलक करते हैं। श्रीमद्भागवत इस सम्प्रदायका मुख्य ग्रन्थ है।

श्रीनिम्बार्काचार्यका केवल एक ग्रन्थ 'वेदान्तपारिजातसौरभ' ही मिलता है। यह वेदान्तसूत्रकी व्याख्या है। यह ग्रन्थ अत्यन्त संक्षिप्त है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कृष्णस्तवराज, गुरुपरम्परा, वेदान्ततत्वबोध, वेदान्तसिद्धान्तप्रदीप, स्वधर्माध्वबोध, ऐतिह्यतत्वसिद्धान्त आदि कई ग्रन्थोंकी रचना की थी। आपके द्वारा रचित दो श्लोक देवाचार्य और सुन्दर भट्टके ग्रन्थोंमें मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं—

> ज्ञानस्वरूपम् च हरेरधीनम् शरीरसंयोगवियोगयोग्यम्।
> अणुं हि जीवम् प्रतिदेहभिन्नम् ज्ञातृत्ववन्तम् यदनन्तमाहुः॥

सर्वम् हि विज्ञानमतो यथार्थकम् श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतम् त्रिरूपतापि श्रुतिसूत्रसाधिता ॥

मत

आचार्य निम्बार्कके मतानुसार ब्रह्म, जीव और जड अर्थात् चेतन और अचेतनसे अत्यन्त पृथक् और अपृथक् हैं। इस पृथक्त्व और अपृथक्त्वके ऊपर ही उनका दर्शन निर्भर करता है। जीव और जगत् दोनों ब्रह्मके परिणाम हैं। जीव ब्रह्मसे अत्यन्त भिन्न और अभिन्न है। जगत् भी उसी प्रकार भिन्न और अभिन्न है। द्वैताद्वैतवादका यही सार है। आचार्यके मतका सारांश इस प्रकार है—

ब्रह्मजिज्ञासाका अधिकारी—आचार्य निम्बार्कके मतसे वेदाध्ययनके बाद कर्मफलका विचार आरम्भ होता है। उसके अनुसार धर्मतत्त्वका जिज्ञासु कर्मकी मीमांसा करता है। कर्मफल नश्वर मालूम होनेपर कर्मका वह निरादर करता है। उस समय मुमुक्षु श्रीभगवान्‌का गुण श्रवण करके उनके प्रति आकृष्ट होता है और भगवान्‌की प्रसन्नता तथा उनके दर्शन प्राप्त करनेकी इच्छासे सद्‌गुरुकी शरण ग्रहण करता है। वह भक्तिपूर्वक अनन्त, अचिन्त्यशक्ति, ब्रह्मशब्दवाच्य पुरुषोत्तमके विषयमें जानकारी प्राप्त करनेकी इच्छा करता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि कर्ममीमांसाके बाद भक्तिका उदय होनेपर ब्रह्ममीमांसाका अधिकार प्राप्त होता है।

सम्बन्ध—ब्रह्म और शास्त्रमें वाच्यवाचकभाव सम्बन्ध है। शास्त्रद्वारा ही ब्रह्मज्ञान होता है।

अभिधेय या विषय—ब्रह्म ही जिज्ञासाका विषय है। आचार्य कहते हैं—

सर्वभिन्नाभिन्नो भगवान् वासुदेवो विश्वात्मैव जिज्ञासाविषयः।

प्रयोजन—भगवान्‌की प्रसन्नता और दर्शन प्राप्त करना ही प्रयोजन है। उसीसे सब दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति होती है।

ब्रह्म—श्रीनिम्बार्कके मतसे ब्रह्म सर्वशक्तिमान् है। उसका सगुणभाव ही मुख्य है। ब्रह्म जगत्‌रूपमें परिणत होनेपर भी निर्विकार है। जगत्‌से अतीत रूपमें वह निर्गुण है। स्वरूपतः ब्रह्म जगत्‌से अतीत है, प्रलयावस्थामें समस्त जगत् उसमें लीन होता है, परन्तु लीन होनेपर भी उसमें विकार उत्पन्न नहीं करता। गुण और गुणीमें अभेद है। अभेद होनेके कारण ब्रह्म स्वरूपतः निर्गुण और सृष्टिके कारण रूपमें सगुण है।

ब्रह्म और जीव—जीव ब्रह्मका अंश है, ब्रह्म अंशी है। जीव और ब्रह्म भिन्न भी हैं और अभिन्न भी। अंश-अंशी होनेके कारण, अज्ञ और ज्ञ होनेके कारण जीव-ब्रह्ममें भेद है और 'तत्त्वमसि' आदि श्रुतिवाक्य दोनोंकी अभिन्नता प्रकट करते हैं।

ब्रह्म और जगत्—ब्रह्म जगत्‌का निमित्त और उपादान कारण है। ब्रह्म ही जगत् रूपमें परिणत हुआ है। प्रलयमें जगत् ब्रह्ममें लीन हो जाता है। जगत्‌रूपमें परिणत होने तथा जगत्‌के लीन होनेपर भी ब्रह्ममें कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। यही उसकी सर्वशक्तिमत्ता है।

जीव—बद्ध और मुक्त—जीव अणु है, विभु नहीं है। जीव अल्पज्ञ है। मुक्तावस्थामें

भी वह जीव ही है। जीवका नित्यत्व चिरस्थायी है। मुक्त जीव भी अणु है। मुक्त और बद्ध जीवमें यही भेद है कि बद्धावस्थामें जीव अपनी ब्रह्मस्वरूपता और जगत्की ब्रह्मस्वरूपताकी उपलब्धि नहीं कर सकता। वह दृश्य जगत्के साथ एकात्मताको प्राप्त किये रहता है। किन्तु मुक्तावस्थामें जीव ब्रह्मके साथ अपने और जगत्के अभिन्नत्वका अनुभव करता है। वह अपने-को और जगत्को ब्रह्मरूपमें ही देखता है।

तत्त्वमसि वाक्य—वह जीव ब्रह्मकी अभिन्नता बतलाता है। यह जीव और ब्रह्मका साम्य नहीं सूचित करता, बल्कि उनका सादृश्य बतलाता है।

साधन—आचार्यके मतसे भक्ति ही साधन है। उपासनाद्वारा ही ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। भक्ति ही मुक्तिका उपाय है। आचार्यके मतानुसार ब्रह्मका सगुण और निर्गुण दोनों रूपोंमें विचार किया जा सकता है। उपासनाके फलस्वरूप अर्चिरादि मार्गसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है।

आचार्य श्रीनिवास

आचार्य श्रीनिवास श्रीनिम्बार्कके शिष्य थे। वह श्रीनिम्बार्कके ही मतके अनुयायी थे। उन्होंने अपने गुरुके मतको श्रुति और युक्तिबलसे प्रतिपादित करनेके लिये 'वेदान्तकौस्तुभ' नामक ग्रन्थकी रचना की। यह भाष्य भी श्रीनिम्बार्कके भाष्यके समान ही संक्षिप्त है। उनका ग्रन्थ भी निम्बार्क सम्प्रदायमें प्रामाणिक माना जाता है। उनके जीवनके विषयमें विशेष कुछ नहीं मालूम होता। वह भी सम्भवतः ग्यारहवीं शताब्दीमें ही हुए थे।

आचार्य श्रीयादवप्रकाश

आचार्य श्रीयादवप्रकाश भी भेदाभेदवादी थे। उनके मतसे जीव और ब्रह्मका भेद और अभेद स्वाभाविक है। यादवप्रकाश काञ्ची नगरीमें पहले अद्वैत मतके आचार्य थे। उन्हींसे श्रीरामानुजाचार्यने वेदान्त पढ़ना आरम्भ किया था। परन्तु उनकी व्याख्यासे श्री-रामानुजको सन्तोष नहीं हुआ। बात यहाँतक बढ़ी कि गुरु शिष्यमें बड़ा मनोमालिन्य बढ़ गया, श्रीरामानुजको पढ़ना बन्द करना पड़ा और श्रीयादवने, कहते हैं, उन्हें मार भी डालना चाहा। परन्तु अपने षड्यन्त्रमें वह सफल नहीं हुए। श्रीरामानुजाचार्यके जीवनीकारोंका मत है कि श्रीयादवप्रकाशने आगे चलकर श्रीरामानुजाचार्यका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। परन्तु इस बातका कोई प्रमाण नहीं मिलता। श्रीयादवप्रकाशने 'यतिधर्मसमुच्चय' और 'वैजयन्ती' नामक अभिधानकी रचना की। मालूम होता है, श्रीयादवप्रकाशने ब्रह्मसूत्रकी भी व्याख्या की थी; परन्तु वह ग्रन्थ अब नहीं मिलता। श्रीरामानुजने अपने 'वेदान्तदीप'में उनके मतका खण्डन किया है। श्रुतप्रकाशिकाकारने भी कई स्थानोंमें श्रीयादवका नामोल्लेख किया है। श्रीयादव सन्मात्र ब्रह्मवादी थे। आचार्यके मतसे दुःखत्रयका उपशमन करनेके लिये ही ब्रह्म-विचार किया जाता है। एक अद्वितीय सन्मात्र, किन्तु अनेक शक्तिशाली ब्रह्मसे चिदचिद् समग्र जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और नाश होता है। शास्त्रद्वारा ही ब्रह्मको जाना जाता है, अन्य प्रमाणोंसे नहीं।

श्रीपुरुषोत्तमाचार्य

श्रीपुरुषोत्तमाचार्य द्वैताद्वैतवादी थे। उन्होंने श्रीनिम्बार्कके ही मतका अनुसरण कर

इसे और भी पुष्ट करनेकी चेष्टा की। उनका एक ग्रन्थ 'वेदान्तरत्नमञ्जूषा' मिलता है। इन्होंने इसमें द्वैताद्वैतवादकी व्याख्या की है। यह ग्रन्थ भी संक्षेपमें ही लिखा गया है। इनके सिवाय इनके विषयमें और कोई बात नहीं मालूम होती। उनका काल सम्भवतः बारहवीं शताब्दीका प्रथम भाग था।

श्रीदेवाचार्य

श्रीदेवाचार्य द्वैताद्वैतमतके आचार्य थे। उनका जन्म तैलङ्ग देशमें हुआ था। वह सम्भवतः बारहवीं शताब्दीके शेष भागमें वर्त्तमान थे। निम्बार्क-सम्प्रदायका विश्वास है कि वह भगवानके हाथके निज कमलके अवतार थे। उन्होंने कृपाचार्यसे वेदान्तकी शिक्षा ली थी। परन्तु यह कृपाचार्य कौन थे, इसका कुछ पता नहीं लगता। देवाचार्यके ग्रन्थोंसे मालूम होता है कि उन्होंने शाङ्कर मत तथा निम्बार्क मतका खूब अध्ययन किया था। देवाचार्यके दो ग्रन्थ मिलते हैं—'वेदान्तजाह्नवी' तथा 'भक्तिरत्नाञ्जलि'। इन ग्रन्थोंमें देवाचार्यने निम्बार्क-मत तथा भक्तिका प्रतिपादन किया है और शाङ्कर मतका खण्डन किया है। उनका मत प्रायः वही है जो श्रीनिम्बार्कका है।

श्रीकेशवाचार्य

श्रीकेशवाचार्य आचार्य श्रीनिवासके भाष्यके व्याख्याता हैं। वह पन्द्रहवीं शताब्दीमें वर्त्तमान थे। वह श्रीचैतन्य महाप्रभुके समयमें जीवित थे। श्रीनिम्बार्काचार्यके 'वेदान्तपारिजातसौरभ'का भाष्य 'वेदान्तकौस्तुभ'के नामसे श्रीनिवासाचार्यने लिखा और फिर 'वेदान्तकौस्तुभ'की टीका श्रीकेशवाचार्यने लिखी। वह श्रीनिम्बार्कके मतके ही अनुयायी थे।

आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्त्ती

आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्त्तीका जन्म बङ्गालमें हुआ था। वह अठारहवीं शताब्दीमें वर्त्तमान थे। वह निम्बार्क-मतावलम्बी थे। उन्होंने श्रीमद्भागवतकी टीका लिखी है, जिसका निम्बार्क-सम्प्रदायमें बड़ा आदर है। जिस तरह अद्वैत मतमें 'श्रीधरी', रामानुजसम्प्रदायमें 'वीरराघवी', मध्वसम्प्रदायमें 'विजयध्वजी', वल्लभसम्प्रदायमें 'सुबोधिनी' तथा गौड़ीय सम्प्रदायमें 'क्रमसंदर्भ' प्रामाणिक माना जाता है, उसी तरह निम्बार्क-सम्प्रदायमें श्रीविश्वनाथकी टीका प्रामाणिक मानी जाती है। उन्होंने गीतापर भी एक सुन्दर टीका लिखी है।

रुद्रसम्प्रदाय, वल्लभसम्प्रदाय या पुष्टिमार्ग

श्रीरुद्रदेवने बालखिल्य ऋषियोंको उपदेश किया था, वही उपदेश शिष्यपरम्परासे चलता हुआ विष्णुस्वामीको प्राप्त हुआ। अतएव इधर सर्वप्रथम वेदान्तभाष्यकार श्रीविष्णुस्वामीने ही शुद्धाद्वैतवादका प्रचार किया। कहते हैं कि उनके शिष्यका नाम ज्ञानदेव था। ज्ञानदेवके शिष्य नामदेव और त्रिलोचन थे। उन्हींकी परम्परामें श्रीवल्लभाचार्यका आविर्भाव हुआ। कहते हैं कि दक्षिणके विष्णुस्वामी पाण्ड्यविजय राज्यके श्रीराजगुरु देवेश्वरके पुत्ररूपसे प्रकट हुए थे। इनके पूर्वाश्रमका नाम देवतनु था। इन्होंने वेदान्तसूत्रोंपर 'सर्वज्ञसूक्त' नामक एक भाष्य लिखा था। कहते हैं कि इनके बाद दो विष्णुस्वामी और हुए, इसीसे इन्हें 'आदि विष्णुस्वामी' कहते हैं।

दूसरे विष्णुस्वामी आठवीं शताब्दीमें दक्षिणमें हुए। कहते हैं कि श्रीकाञ्चीमें भगवान् श्रीवरदराजकी और श्रीराजगोपालदेवकी प्रतिष्ठा इन्होंने ही की थी। श्रीद्वारिकापुरीके रणछोरजी भी इन्हींके स्थापित कहे जाते हैं। प्रसिद्ध श्रीकृष्णकर्णामृतकार लीलाशुक श्रीबिल्वमङ्गलजी भी इन्हींके प्रशिष्योंमें माने जाते हैं।

तीसरे विष्णुस्वामी आन्ध्र देशमें हुए, इन्हींकी शिष्यपरम्परामें श्रीलक्ष्मण भट्टजी विशेष प्रसिद्ध हुए। असलमें ये सुनी-सुनायी बातें हैं, श्रीविष्णुस्वामी महाराजका कोई निश्चित इतिहास नहीं मिलता। जो कुछ भी हो, इतना निश्चित है कि आचार्य श्रीवल्लभ शुद्धाद्वैतवादके सर्वप्रथम प्रवर्त्तक नहीं थे, महाराष्ट्रमें ज्ञानदेवजीकी गुरुपरम्परा, जिसमें हालमें ही प्रज्ञाचक्षु महाराज गुलाबरावजी जैसे प्रकाण्ड विद्वान् और महात्मा हो चुके हैं, यही शुद्धाद्वैतवादकी है, जो कमसे कम श्रीवल्लभ स्वामीसे तीन सौ बरस पहले की है। अतः श्रीवल्लभ स्वामीने किसी आचार्यसे ही इस मतकी शिक्षा प्राप्त की थी। अवश्य ही इसका प्रसार श्रीवल्लभद्वारा ही हुआ और उन्होंने ही इस मतानुसार ग्रन्थोंकी रचना करके इसे भलीभाँति पुष्ट किया। यह मत माध्वमतसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

श्रीवल्लभाचार्य

आचार्यपाद श्रीवल्लभाचार्यका जन्म संवत् १५३५ वैशाख कृष्ण एकादशीको चम्पारण्यमें रायपुर मध्यप्रान्तमें हुआ था। इनके पिताका नाम लक्ष्मण भट्टजी और माताका नाम श्रीइलम्मा गारु था। ये उत्तराधि तैलङ्ग ब्राह्मण थे। इनके पूर्वज दक्षिणके काँकरवाद नामक ग्राममें रहते थे, आपका गोत्र भरद्वाज और सूत्र आपस्तम्ब है। भारद्वाज, आयास्य, आङ्गिरस ये तीन इस गोत्रके प्रवर हैं। लक्ष्मण भट्टजीकी सातवीं पीढ़ीसे लेकर सभी लोग सोमयज्ञ करते चले आये थे। कहा जाता है कि जिसके वंशमें सौ सोमयज्ञ पूर्ण हो जाते हैं उसके कुलमें भगवान्‌का या भवदीय महापुरुषका आविर्भाव होता है। इस नियमानुसार श्रीलक्ष्मण भट्टजीके कुलमें सौ सोमयज्ञ पूर्ण होनेसे श्रीवल्लभाचार्यके रूपमें भगवान् आपके यहाँ प्रकट हुए। बहुतसे महानुभाव इन्हें अग्निदेवका अवतार मानते हैं। सोमयज्ञकी पूर्त्तिके उपलक्ष्यमें एक लाख ब्राह्मणभोजन काशीमें जाकर करानेके लिये लक्ष्मण भट्टजी सपत्नीक घरसे चले थे। रास्तेमें चम्पारण्यमें श्रीवल्लभका जन्म हो गया। ये भट्टजीके द्वितीय पुत्र थे।

यथासमय आपके द्विजातिसंस्कार हुए। काशीमें आपने श्रीमाधवेन्द्रपुरीसे वेद-शास्त्रादिका पूर्ण अध्ययन किया। ग्यारह वर्षकी अवस्थामें ही आपने अध्ययन समाप्त कर लिया था। काशीसे आप वृन्दावन चले गये। वहाँ कुछ दिन रहे पीछे वे तीर्थाटनके लिये रवाना हुए। उन्होंने विजयनगरके राजा कृष्णदेवकी सभामें उपस्थित होकर वहाँ बड़े-बड़े विद्वानोंको शास्त्रार्थमें हराया। वहींपर उन्हें वैष्णवाचार्यकी उपाधि प्राप्त हुई। राजाने सब महामान्य विद्वानोंके सामने श्रीवल्लभाचार्यको स्वर्णसिंहासनपर बैठाकर उनका साङ्गोपाङ्ग पूजन किया और बहुतसा सोना भेंट किया। उस समय आपने उसमेंसे कुछ ही भाग लेकर शेष सब वहाँके विद्वानों और ब्राह्मणोंको बाँट दिया। इससे आपका त्यागभाव प्रत्यक्ष है। राजा कृष्णदेवने संवत् १५६६ से लेकर १५८७ तक राज्य किया। इससे मालूम होता है, श्रीवल्लभ विक्रम संवत्‌की सोलहवीं शताब्दीके अन्तमें विद्यमान थे।

श्रीवल्लभ विजयनगरसे चलकर उज्जैन आये और वहाँ क्षिप्रा नदीके तटपर एक अश्वत्थ वृक्षके नीचे निवास किया। वह स्थान आज भी उनकी बैठकके नामसे प्रसिद्ध है। मथुराके घाटपर भी ऐसी ही एक बैठक है और चुनारके पास भी उनका एक मठ और मन्दिर है। उस मठके आँगनमें एक कुआँ है जो 'आचार्य-कुआँ' कहलाता है। कुछ दिन पीछे आचार्य वल्लभ वृन्दावनमें आकर श्रीकृष्णकी उपासना करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने उनकी अचल भक्ति और कठोर तपसे प्रसन्न होकर दर्शन दिये और बालगोपालकी पूजाका प्रचार करनेका आदेश दिया। उन्होंने अट्ठाईस वर्षकी अवस्थामें विवाह किया। ऐसा प्रसिद्ध है कि उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे ही ब्रह्मसूत्रके ऊपर 'अणुभाष्य'की रचना की। इस भाष्यमें उन्होंने शाङ्कर मतका खण्डन और अपने मतका प्रतिपादन किया है। श्रीवल्लभाचार्य श्रीचैतन्य महाप्रभुके समसामयिक थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु उनसे मिले थे।

श्रीवल्लभके परमधाम पधारनेके विषयमें एक घटना प्रसिद्ध है। वे अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें काशीमें रहते थे। अपने जीवनके कार्य समाप्त कर वे एक दिन हनुमान घाट पर गङ्गास्नान करने गये। जहाँपर खड़े होकर वे स्नान कर रहे थे, वहाँसे एक उज्ज्वल अग्नि-शिखा उठी और बहुत आदमियोंके सामने श्रीवल्लभ सदेह ऊपर उठने लगे। और लोगोंके देखते-ही-देखते आकाशमें लीन हो गये। हनुमान घाटपर उनका एक मन्दिर बना हुआ है। इस प्रकार विक्रमी १५८७में बावन वर्षकी अवस्थामें आपने भगवान्की आज्ञानुसार अलौकिक ढङ्गसे इहलीला संवरण की।

श्रीवल्लभाचार्यने ब्रह्मसूत्रपर अणुभाष्य, भागवतकी सुबोधिनी व्याख्या, सिद्धान्तरहस्य, भागवतलीला रहस्य, एकान्त रहस्य, विष्णुपद, अन्तःकरणप्रबोध, आचार्यकारिका, आनन्दाधिकरण, नवरत्न, निरोधलक्षण और उसकी विवृत्ति, संन्यासनिर्णय आदि अनेकों ग्रन्थोंकी रचना की। इनमें सिद्धान्तरहस्य और भागवतलीला-रहस्य ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुए हैं। विष्णुपद हिन्दी भाषाका ग्रन्थ है। इसमें विष्णुगुणप्रतिपादक कुछ पद हैं।

मत

श्रीवल्लभाचार्यने अपना मत अणुभाष्यमें प्रकट किया है। श्रीमद्भागवतकी व्याख्या भी शुद्धाद्वैतमतके अनुसार ही है। श्रीवल्लभका मत श्रीशङ्कर और श्रीरामानुजसे बहुत अंशोंमें भिन्न है और श्रीमध्वके मतसे मिलता-जुलता है। आचार्य वल्लभके मतसे जीव अणु और सेवक है। प्रपञ्चभेद (जगत्) सत्य है। ब्रह्म निर्गुण और निर्विशेष है। ब्रह्म ही जगत्का निमित्त और उपादान कारण है। गोलोकाधिपति श्रीकृष्ण ही वह ब्रह्म हैं। वही जीवके सेव्य हैं। जीवात्मा और परमात्मा दोनों शुद्ध हैं। इसीसे इस मतका नाम शुद्धाद्वैत पड़ा है। श्रीवल्लभके मतानुसार सेवा द्विविध है—फलरूपा और साधनरूपा। सर्वदा श्रीकृष्णश्रवण-चित्ततारूप मानसी सेवा फलरूपा एवं द्रव्यार्पण तथा शारीरिक सेवा साधनरूपा है। उनके मतसे गोलोकस्थ परमानन्दसन्दोह वृन्दावनमें भगवत्कृपासे गोपीभाव प्राप्त करके अखण्ड रासोत्सवमें निर्भर रसावेशके साथ पतिभावसे भगवान्की सेवा करना ही मोक्ष है। उनकी रायमें ज्ञानमार्ग कुछ भी नहीं, भक्तिमार्ग भी उत्कृष्ट नहीं, केवल प्रीतिमार्ग ही सर्वोत्कृष्ट है।

अधिकारी—आचार्य वल्लभके मतसे ब्रह्मविद्याका अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातिको ही है।

सम्बन्ध—शास्त्र और ब्रह्ममें प्रतिपादक-प्रतिपाद्य-सम्बन्ध है। श्रीशङ्कर भी यही सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। परन्तु उनके मतसे ज्ञानोदय होनेपर शास्त्रकी भी कोई सार्थकता नहीं रह जाती, और शास्त्र ब्रह्मका निषेधात्मक ढङ्गमें ही निर्देश कर सकता है। ब्रह्म शब्दातीत है। परन्तु श्रीवल्लभ कहते हैं कि ब्रह्म शास्त्रैकगम्य है अर्थात् ब्रह्म वेदान्तप्रतिपाद्य है। वह शब्दका अविषय नहीं, वल्कि शब्दका विषय है।

प्रयोजन—अविद्याकी निवृत्ति अर्थात् ब्रह्मकी प्राप्ति ही प्रयोजन है। ब्रह्मकी प्राप्तिसे अविद्याकी निवृत्ति होती है। अविद्याके कारण ही जीवको दु:ख है। इसलिये ब्रह्मप्राप्ति ही पुरुषार्थ है।

विषय—ब्रह्मप्राप्ति या ब्रह्मसायुज्यकी प्राप्ति ही विषय है। ब्रह्मसायुज्य ही परम पुरुषार्थ है।

ब्रह्म—आचार्य वल्लभ ब्रह्मको साकार, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वकर्तृ और सच्चिदानन्दरूप मानते हैं। उनके मतमें ब्रह्म शुद्ध है, माया आदि ब्रह्ममें नहीं है। ब्रह्म निर्गुण और प्राकृतिक गुणोंसे अतीत है। वह गुणातीत होनेपर भी जगत्का कर्त्ता है। ब्रह्मकी शक्ति अचिन्त्य और अनन्त है। वह सब कुछ हो सकता है, अतएव उसमें विरुद्ध धर्मों और विरुद्ध वाक्योंका भी युगपत् समावेश हो सकता है। उनके मतसे ब्रह्म ही जगत्का निमित्त और उपादान कारण है। वह कर्त्ता भी है और भोक्ता भी। वह कर्त्ता होनेपर भी निर्विकार है। उपादान-कारण होनेपर भी उसमें संसार-धर्म नहीं है।

ब्रह्म और जगत्—आचार्यके मतमें ब्रह्म कारण और जगत् कार्य है। कार्य और कारण अभिन्न हैं। कारण सत् है, कार्य भी सत् है, अतएव जगत् सत् है। हरिकी इच्छासे ही जगत्का आविर्भाव हुआ है। हरिकी इच्छासे ही जगत्का तिरोधान होता है। खेलके लिये अपनी इच्छासे ब्रह्म जगत्रूपमें परिणत हुआ है। जगत् ब्रह्मात्मक है, प्रपञ्च ब्रह्मका ही कार्य है। आचार्य वल्लभ अविकृत-परिणामवादी हैं। उनके मतसे जगत् मायिक नहीं है और न भगवान्से भिन्न ही है। उसकी न तो उत्पत्ति होती है और न विनाश होता है। जगत् सत्य है, पर उसका आविर्भाव और तिरोभाव होता है। जगत्का जब तिरोभाव होता है तब वह कारणरूपसे और जब आविर्भाव होता है तब कार्यरूपसे स्थित रहता है। भगवान्की इच्छासे ही सब कुछ होता है। क्रीडाके लिये ही उन्होंने जगत्की सृष्टि की। अकेले क्रीडा सम्भव नहीं, अतएव भगवान्ने जीव और जगत्की सृष्टि की।

जीव—जीव ब्रह्मका अंश और अणु है। यह जीव हृदयमें रहता है और ब्रह्मकी तरह शुद्ध और चेतन है। चैतन्य जीवका गुण है। उसके हृदयमें रहनेपर भी उसका चैतन्य सर्वत्र फैल सकता है और अनेक स्थानोंमें व्याप्त रहता है।

'तत्त्वमसि' वाक्यका तात्पर्य—आचार्य वल्लभकी सम्मतिमें 'तत्त्वमसि' वाक्यके द्वारा अंशांशिभावका अभेद प्रकट किया गया है।

मुक्ति—गोलोकस्थ श्रीकृष्णकी सायुज्यप्राप्ति मुक्ति है। श्रीकृष्णकी पतिरूपसे सेवा

करना और सर्वात्मभाव रखना मुक्ति है। समस्त विश्व ब्रह्मात्मक है। जब सब कुछ सनातन ब्रह्मके रूपमें दिखाई देने लगता है, जब ब्रह्मरूप कार्यका ब्रह्म ही कारण है–ऐसी उपलब्धि होती है, तब सर्वात्मैकभाव सिद्ध होता है। शुद्ध जीव समस्त जगत्को कृष्णमय देखकर कृष्णके प्रेममें, उनकी सेवा स्वामिरूपमें करके परमानन्दरसमें तन्मय रहता है। जो जीव पुरुषोत्तमके साथ युक्त है, वह सब कुछ उपभोग करता है।

भगवान्की कृपाके बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। भगवत्प्रसादसे शुद्ध पुष्टिमार्गीय भक्तिका उदय होता है। उसी प्रीतिद्वारा भगवान्की उपासना होती है और वे जीवको मुक्त कर देते हैं।

साधन—श्रीवल्लभके मतानुसार शम-दमादि बहिरङ्ग साधन हैं और श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन अन्तरङ्ग साधन हैं। भगवान्में चित्तकी प्रवणता सेवा है और सर्वात्मभाव मानसी सेवा है। आचार्यकी सम्मतिमें पुष्टिमार्गीय साधन ही श्रेष्ठ है। भगवान्का अनुग्रह ही पुष्टि है। पुष्टि ही चारों प्रकारके पुरुषार्थको सिद्ध करती है। पुष्टिसे जो भक्ति उत्पन्न होती है वह पुष्टिभक्ति कहलाती है। भक्ति दो प्रकारकी है–मर्यादाभक्ति और पुष्टिभक्ति। भगवान्के विशेष अनुग्रहसे जो भक्ति पैदा होती है, वह पुष्टिभक्ति कहलाती है। ऐसा भक्त भगवान्के स्वरूपके अतिरिक्त और किसी वस्तुके लिये प्रार्थना नहीं करता।

परम्परा

आचार्य श्रीविट्ठलनाथ श्रीवल्लभाचार्यके पुत्र थे। वे 'गोसाईंजी' नामसे प्रसिद्ध थे। गोसाईंजीसे ही वल्लभ-सम्प्रदायका विस्तार हुआ है। उन्होंने श्रीवल्लभकृत सुबोधिनीपर टिप्पणी लिखी थी। उन्होंने 'श्रीविद्वन्मण्डन' नामक एक ग्रन्थकी रचना की, जिसमें उन्होंने श्रीवल्लभके शुद्धाद्वैतमतका प्रतिपादन किया है। यह ग्रन्थ इस मतका प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। अणुभाष्यके टीकाकार पुरुषोत्तमजी महाराज, 'शुद्धाद्वैतमार्तण्ड'कार गिरिधरजी महाराज, प्रमेयरत्नार्णवके रचयिता बालकृष्ण भट्ट आदि पीछेके प्रायः सभी आचार्यों एवं विद्वानोंने इसकी प्रामाणिकता स्वीकार की है। श्रीविट्ठलनाथके सात पुत्र थे—(१) गिरिधरराय, (२) गोविन्दराय, (३) बालकृष्ण, (४) गोकुलनाथ, (५) रघुनाथ, (६) यदुनाथ और (७) घनश्याम। ये सातों धर्मोपदेशक थे। इनके अनुयायियोंके पृथक् पृथक् समाज बन गये हैं। प्रायः सभी समाजोंमें प्रधान प्रधान विषयोंमें एकता है। केवल श्रीगोकुलनाथजीके शिष्योंमें कुछ भिन्नता है। श्रीविट्ठलनाथका मत श्रीवल्लभाचार्यके समान ही था। इस सम्प्रदायमें व्रजनाथ भट्ट और गोस्वामी पुरुषोत्तमजी महाराज प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं।

अचिन्त्यभेदाभेदवाद या चैतन्य-सम्प्रदाय

वङ्गालके चैतन्यसम्प्रदाय या गौड़ीय वैष्णवसमाजके मतका नाम अचिन्त्यभेदाभेदवाद है। इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक श्रीचैतन्य महाप्रभु थे। अद्वैत और नित्यानन्द उनके दो सहकारी थे। श्रीचैतन्यदेव इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक ही नहीं, वरं उपास्यदेव भी हैं। इस सम्प्रदायका विश्वास है कि श्रीचैतन्यदेव भगवान् श्रीकृष्णके प्रेमावतार थे। श्रीचैतन्य श्रीवल्लभाचार्यके

समसामयिक थे और उनसे मिले भी थे। श्रीचैतन्यदेवका आविर्भाव विक्रम संवत् १५४२में और तिरोभाव १५९० विक्रमीमें प्राय. ४८ वर्षकी अवस्थामें हुआ था। श्रीचैतन्यका जन्म बङ्गालके नवद्वीप स्थानमें हुआ था। श्रीचैतन्यने जिस मतका प्रचार किया, उसके विषयमें कोई ग्रन्थ स्वयं नहीं लिखा। अन्यान्य मत या धर्मके प्रायः सभी प्रवर्त्तकोंने अपने-अपने मत-की पुष्टिके लिये ग्रन्थ लिखे हैं, केवल श्रीचैतन्यदेवका ही कोई ग्रन्थ नहीं है। उनके सहकारी अद्वैताचार्य और नित्यानन्दका भी कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। श्रीचैतन्यके दोनों शिष्य रूप और सनातन गोस्वामीके कुछ ग्रन्थ मिलते हैं। उनके बाद उनके भतीजे जीव गोस्वामी दार्शनिक क्षेत्रमें उतरे। इन्हीं तीन आचार्योंने अचिन्त्यभेदाभेद मतका वर्णन किया है। परन्तु इन्होंने भी न तो वेदान्तसूत्रका कोई भाष्य आदि लिखा और न वेदान्तपर किसी प्रकरण ग्रन्थकी रचना की। अठारहवीं शताब्दीमें बलदेव विद्याभूषणने पहले-पहल अचिन्त्यभेदाभेदवादके अनुसार ब्रह्मसूत्रपर 'गोविन्दभाष्य' लिखा। रूप, सनातन आदि आचार्योंके ग्रन्थोंमें भक्ति-वादकी व्याख्या की गयी है और वैष्णव साधनाकी आलोचना भी है। फिर भी जीव गोस्वामीके ग्रन्थमें अचिन्त्यभेदाभेदवादकी स्थापनाकी भी चेष्टा की गयी है। बलदेव विद्याभूषणके भाष्यमें श्रीचैतन्यका मत स्पष्ट रूपमें पाया जाता है।

श्रीरूप गोस्वामी

श्रीरूप महाप्रभुके शिष्य थे। वह पहले बङ्गालके मुसलमान राजाके यहाँ कार्य करते थे। उन्होंने श्रीचैतन्यदेवके देवोपम चरित्र और पवित्र धर्ममतसे मुग्ध होकर संसारका त्याग कर दिया और महाप्रभुका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। क्रमश वह उस सम्प्रदायके आश्रय और भूषणस्वरूप हो गये। वह पहलेसे ही एक प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने श्रीचैतन्यके तिरोभावसे प्राय. आठ वर्ष पूर्व 'विदग्धमाधव' नाटककी रचना की, जिसकी महाप्रभुने बड़ी प्रशंसा की। इसके अतिरिक्त उन्होंने ललितमाधव, उज्ज्वलनीलमणि, दानकेलिकौमुदी, बन्धु-स्तवावली, अष्टादश लीलाकाण्ड, पद्मावली, गोविन्दविरदावली, मथुरामाहात्म्य, नाटकलक्षण, लघुभागवत, भक्तिरसामृतसिन्धु, व्रजविलास वर्णन और कड़चा नामक ग्रन्थोंकी रचना की। इन ग्रन्थोंसे उनकी विद्वत्ताका परिचय मिलता है। उज्ज्वलनीलमणि अलङ्कारशास्त्रका एक प्रामाणिक और प्रसिद्ध ग्रन्थ है। भक्तिरसामृतसिन्धुमें भक्तिकी व्याख्या तथा वैष्णव मतकी साधनाका विचार किया गया है। श्रीजीव-गोस्वामीने इसकी टीका लिखी है। श्रीरूप गोस्वामीका 'रिपुदमनविषयका रागमय कोण' नामक एक बङ्गला ग्रन्थ भी मिलता है। श्रीरूप और सनातनने जिस मतका बीजारोपण किया, उसे श्रीजीवने विकसित किया और श्रीबलदेवने उसे पूर्णता प्रदान की।

श्रीसनातन गोस्वामी

श्रीसनातन श्रीरूप गोस्वामीके भाई थे। उनका जन्म बङ्गालमें हुआ था। वह भी गौड़ देशके नवाबके यहाँ नौकरी करते थे। श्रीचैतन्यद्वारा प्रभावित होनेके कारण उनके मनमें संसार छोड़नेकी इच्छा उत्पन्न हुई। एक दिन वह बहुत सबेरे किसी सरकारी कामसे कहीं जा रहे थे। उस समय आँधी चल रही थी और आसमानमें बादल घिर रहे थे। रास्तेमें एक

मेहतर दम्पती आपसमें बहस कर रहे थे। मेहतर कामसे बाहर जाना चाहता था और उसकी पत्नी ऐसे समयमें उसे बाहर नहीं जाने देना चाहती थी। पत्नीने बातचीतके सिलसिलेमें कहा—'ऐसी आँधी-बादलमें या तो दूसरेका नौकर बाहर निकल सकता है या कुत्ता।' यह बात श्रीसनातनने सुन ली। उनके मनमें बड़े जोरका वैराग्य उमड़ आया और उन्होंने संसार-त्यागका सङ्कल्प कर लिया। परन्तु यह बात नवाबको मालूम हो गयी और उसने उन्हें किसी कारणसे कैद कर लिया। परन्तु सनातनका मन तो श्रीचैतन्यमें लगा था, अतएव वह बहुतसा धन काराध्यक्षको देकर कारागृहसे भाग गये और श्रीचैतन्यके चरणोंमें पहुँच गये। जब वह महाप्रभुके पास पहुँचे तो उनके पास एक कम्बल था। उसे देखकर महाप्रभुने उदासीनता दिखायी, बस, उन्होंने उस कम्बलका भी त्याग कर दिया। श्रीसनातनके वैराग्यके विषयमें और भी कई कथाएँ प्रसिद्ध हैं। उनका वैराग्य बड़ा प्रचण्ड था। वह अन्तिम समयमें वृन्दावनमें रहते थे। उन्होंने गीतावली, वैष्णवतोषिणी (इसका दूसरा नाम है दशम-टिप्पणी), भागवतामृत और सिद्धान्तसार नामक ग्रन्थोंकी रचना की। 'भागवतामृत'में चैतन्य सम्प्रदायके कर्त्तव्योंका वर्णन किया गया है। एक ग्रन्थ 'हरिभक्तिविलास' भी उन्हींका बनाया हुआ कहा जाता है। परन्तु आजकल जो इस नामका ग्रन्थ मिलता है, वह गोपालभट्टकृत है। मालूम होता है, श्रीसनातनने गोपालभट्टके ग्रन्थका संशोधन किया था अथवा दोनोंने मिलकर उसकी रचना की थी। इस ग्रन्थमें भगवान्‌के स्वरूप और उपासनाका वर्णन है। श्रीसनातन गोस्वामीका बङ्गला भाषामें कृष्णभक्तिविषयक एक ग्रन्थ मिलता है, जिसका नाम 'रसमय कलिका' है। श्रीसनातन गोस्वामी भी अचिन्त्यभेदाभेदवादी थे।

श्रीजीव गोस्वामी

श्रीजीव गोस्वामी श्रीरूप और श्रीसनातन गोस्वामीके छोटे भाईके पुत्र थे। श्रीजीव गोस्वामीने ही बङ्गालमें वैष्णवमतका प्रचार करनेके लिये श्रीनिवास आदिको ग्रन्थोंके साथ भेजा था। श्रीजीवके गुरु श्रीसनातन थे। श्रीरूप और श्रीसनातन दोनोंका प्रभाव श्रीजीवपर पड़ा था। श्रीचैतन्यके अन्तर्धानके बाद श्रीजीव वृन्दावन चले आये और यहींपर उनकी प्रतिभाका विकास हुआ।

श्रीजीवने वृन्दावनमें राधादामोदरके मन्दिरकी प्रतिष्ठा की। वह कहीं भगवान्‌के भजन पूजनमें जीवन व्यतीत करते थे। एक दिन एक दक्षिणी ब्राह्मणने शास्त्रार्थके लिये श्रीरूपका आह्वान किया, परन्तु उन्होंने बिना शास्त्रार्थके ही विजयपत्र लिख दिया। फिर ब्राह्मण श्रीजीवके पास आये। श्रीजीव उस समय यमुनामें स्नान कर रहे थे। ब्राह्मणने जब श्रीजीवको सन्ध्या-वन्दन करते नहीं देखा तो उन्होंने पूछा—'आप ब्राह्मण होकर ब्राह्मणोचित सन्ध्या आदि क्यों नहीं करते ?' श्रीजीवने उत्तरमें दो श्लोक सुनाये—

हृदाकाशे चिदानन्दम् मुदा भाति निरन्तरम्।
उदयास्तम् न पश्यामः कथम् सन्ध्यामुपास्महे॥
सद्भक्तिर्दुहिता जाता मायाभार्या मृताधुना।
अशौचद्वयमाप्नोति कथम् सन्ध्यामुपास्महे॥

अर्थात् 'हृदयाकाशमें चिदानन्दस्वरूप भगवान् निरन्तर प्रकाशित हैं, उनका न उदय होता है न अस्त। सूर्यका उदय-अस्त देखकर सन्ध्या की जाती है, परन्तु मेरे हृदयाकाशमें भगवान्‌रूप सूर्यका उदयास्त नहीं होता। अतएव मैं किस तरह कब सन्ध्या करूँ?

'मेरे सद्भक्तिरूपी कन्या उत्पन्न हुई है और मायारूपी भार्याकी मृत्यु हुई है, जननाशौच और मृताशौचके समयमें मैं किस प्रकार सन्ध्या करूँ?'

इस उत्तरसे उनके प्रगाढ़ पाण्डित्यके साथ ही उनकी पारमार्थिक स्थितिका भी परिचय मिलता है। उन्होंने श्रीरूपगोस्वामीकृत भक्तिरसामृतसिन्धुकी टीका, क्रमसन्दर्भके नामसे भागवतकी टीका, षट्सन्दर्भ, भक्तिसिद्धान्त, गोपालचम्पू और उपदेशामृत नामक ग्रन्थोंकी रचना की। क्रमसन्दर्भ ही गौड़ीयमतानुसार भागवतकी प्रामाणिक व्याख्या है। श्रीजीव गोस्वामीने अपने सब ग्रन्थ अचिन्त्यभेदाभेद मतके अनुसार ही लिखे हैं।

श्रीचैतन्यचरितामृतके रचयिता श्रीकृष्णदास कविराजपर श्रीजीव गोस्वामीका प्रभाव पड़ा था, ऐसा मालूम होता है। अवश्य ही उन्होंने चरितामृतमें श्रीरूप और श्रीरघुनाथके प्रति भी अगाध भक्ति प्रकट की है। श्रीकृष्णदासने संवत् १६७३में चरितामृतकी रचना की थी। श्रीजीव गोस्वामी सोलहवीं शताब्दीके अन्तसे सत्रहवीं शताब्दीके प्रथम भागतक जीवित थे। अतएव श्रीजीवका प्रभाव श्रीकृष्णदासपर पड़ना स्वाभाविक था।

आचार्य बलदेव विद्याभूषण

आचार्य बलदेवका जन्म बङ्गालमें हुआ था। वह अठारहवीं शताब्दीमें हुए थे। उनके गुरुका नाम राधादामोदर था। श्रीबलदेव श्यामानन्दके शिष्य रसिकानन्दकी शिष्य-परम्परामें चौथे पुरुष थे। उन्होंने अन्तिम समयमें वृन्दावन जाकर विश्वनाथ चक्रवर्त्तीका शिष्यत्व ग्रहण किया। उन्होंने पीताम्बरदासके पास रहकर शास्त्राध्ययन किया था।

वेदान्तसूत्रपर श्रीगौड़ीय सम्प्रदायका अपना कोई भाष्य नहीं था। एक बार आचार्य बलदेवने किसी विद्वान्‌के साथ शास्त्रार्थ किया। शास्त्रार्थके बाद पण्डितने पूछा—'आप जिस मतका प्रतिपादन कर रहे हैं, वह किस सम्प्रदायके भाष्यद्वारा अनुमोदित है?' इसके बाद एक मासके भीतर श्रीबलदेवने भगवान् गोविन्ददेवके स्वप्नादेशके अनुसार भाष्यकी रचना कर डाली और इसीसे उसका नाम भगवान् गोविन्दके नामपर 'गोविन्दभाष्य' रक्खा। इस भाष्यमें अचिन्त्यभेदाभेदवादकी व्याख्या की गयी है। इस भाष्यके अतिरिक्त श्रीबलदेवने और भी बहुतसे ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमें सिद्धान्तरत्न या भाष्यपीठक, प्रमेयरत्नावली, वेदान्तस्यमन्तक, गीताभाष्य, दशोपनिषद्भाष्य, स्तवावली और विष्णुसहस्रनाम-भाष्य अधिक प्रसिद्ध हैं। ये सब ग्रन्थ गौड़ीय मतके अनुसार लिखे गये हैं।

मत

श्रीचैतन्यसम्प्रदायके मतानुसार श्रीमद्भागवत ही वेदान्तसूत्रका भाष्य है। ऐसे भाष्यके रहते हुए श्रीचैतन्यदेवने अन्य किसी भाष्यकी आवश्यकता नहीं समझी। फिर भी श्रीमध्वभाष्यको श्रीमद्भागवतके अनुरूप देखकर वह आदरकी दृष्टिसे देखते थे और उसे अपने सम्प्रदायके भाष्यके रूपमें स्वीकार करते थे। जिन स्थानोंपर श्रीमध्वभाष्य भागवतके विरुद्ध

पड़ता था, उन-उन स्थानोंपर वास्तविक अर्थकी खोज करके वह समन्वय करनेकी चेष्टा करते थे। परन्तु वे सब बातें ग्रन्थरूपमें नहीं लिखी गयीं। इसी बातको ध्यानमें रखकर आचार्य बलदेव विद्याभूषणने 'गोविन्दभाष्य'की रचना की।

श्रीचैतन्य-मतपर श्रीमध्व, श्रीनिम्बार्क और श्रीवल्लभका प्रभाव पड़ा मालूम होता है। श्रीवल्लभका पुष्टिमार्गसाधन और गौड़ीय मतका मधुर भावका साधन प्रायः एक ही चीज है। भेदाभेदवाद श्रीनिम्बार्कके द्वैताद्वैतके समान ही है। श्रीनिम्बार्क और श्रीचैतन्यकी अचिन्त्य शक्ति भी प्रायः एक ही चीज है। श्रीमध्वके मतसे ब्रह्म सगुण और सविशेष है। गौड़ीय मतसे भी ब्रह्म सगुण और सविशेष है। मध्वमतानुसार जीव अणु, सेवक है और भगवान् सेव्य हैं। भगवान्‌के प्रसादसे ही जीवकी मुक्ति होती है। इस विषयमें भी श्रीचैतन्य-मत मध्वमतसे मेल खाता है। माध्व और गौड़ीय दोनों मत जगत्‌को सत्य मानते हैं। दोनों मतसे जगत् ब्रह्मका परिणाम है। ब्रह्म जगत्‌का निमित्त और उपादान कारण है। मध्वमतसे जीव और ब्रह्म चिरभिन्न हैं। मुक्तावस्थामें भी जीव ब्रह्मसे भिन्न रहता है। गौड़ीय आचार्य बलदेव भी जीव और ब्रह्मको भिन्न मानते हैं, परन्तु गुण और गुणीभावसे वह जीव और ब्रह्मको अभिन्न और भिन्न दोनों मानते हैं। इसी अर्थमें समस्त जीवजगत् ब्रह्ममें लय होता है। साधनमें श्रीबलदेवका श्रीमध्वके साथ पार्थक्य है। उपासना और भक्तिमें दोनों एक मत हैं, परन्तु मध्वमतमें केवल सेव्यसेवकभावकी स्फूर्त्ति हुई है और श्रीबलदेवके मतमें दास्यके अतिरिक्त शान्त, सख्य, वात्सल्य और मधुर भावको भी स्थान है। श्रीशङ्कर, श्रीरामानुज, श्रीकण्ठ आदि आचार्योंके साथ श्रीबलदेवका कई स्थानोंमें विरोध है।

श्रीबलदेवके मतसे पाँच तत्त्व हैं—ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल और कर्म। अन्य विषयोंमें उनका मत इस प्रकार है—

अधिकारी—आचार्य बलदेवके मतानुसार निष्काम धर्ममें निर्लिप्त चित्तवाला, सत्प्रसङ्गकी इच्छा रखनेवाला, श्रद्धालु और शम-दमादिसे सम्पन्न जीव ब्रह्मजिज्ञासाका अधिकारी है। उनके मतसे शिक्षादि षडङ्ग और उपनिषद्‌के साथ समग्र वेदका अध्ययन करके, उसके पूर्ण अर्थको जानकर, तत्त्वविद् आचार्यके साथ प्रसङ्गमें अनित्य जगत्‌से नित्य ब्रह्मको भिन्न जानकर उनके विषयमें विशेष जानकारी प्राप्त करनेके लिये चतुरध्यायी वेदान्तसूत्रमें चित्त लगाना चाहिये। वह अधिकारीके लिये योगादि कर्म करना आवश्यक नहीं मानते। वह सत्प्रसङ्गकारीको ही मुख्य अधिकारी मानते हैं।

सम्बन्ध—उनके मतसे भी शास्त्र वाचक और ईश्वर वाच्य हैं।

विषय—उनके मतानुसार निरवद्य विशुद्ध अनन्तगुणशाली, अचिन्त्य-अनन्त-शक्ति, सच्चिदानन्द पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही विषय हैं।

प्रयोजन—अशेष दोषका विनाश कर उस पुरुषोत्तमका साक्षात्कार प्राप्त करना प्रयोजन है।

ब्रह्म—ब्रह्म स्वतन्त्र, कर्त्ता, सर्वज्ञ, मुक्तिदाता और विज्ञानस्वरूप है। ईश्वर पूर्ण चैतन्य, नित्य ज्ञानादि गुणोंसे युक्त और असत् शब्दवाच्य है। ईश्वर स्वतन्त्र और स्वरूप-शक्तिमान् है। वह प्रकृति आदिमें प्रविष्ट होकर और उसका नियमन करते हुए जगत्‌की

सृष्टि करता है तथा जीवको भोग और मुक्ति देता है। ईश्वर एक और बहुभावसे अभिन्न होनेपर भी गुण और गुणी तथा देह और देहीभावसे ज्ञानीकी प्रतीतिका विषय होता है। जीव अणुचैतन्य होनेपर भी नित्यज्ञानादि गुणोंसे युक्त और अस्मत्शब्दवाच्य है। इस विषयमें जीव और ईश्वरमें समता है। अवश्य ही ईश्वर विभु है और जीव अणु।

ईश्वर व्यापक होनेपर भी भक्तिग्राह्य है। वह एक रस होनेपर भी स्वरूपभूत ज्ञानानन्द वितरण करता है। ब्रह्म ज्ञानैक्यगम्य, अक्षर, अनन्त सुखरूप है। ब्रह्मकी शक्ति स्वाभाविक है। उसकी शक्ति संवित्, सन्धिनी और ह्लादिनीरूपा है। ब्रह्म नित्य सुखद है। ब्रह्म निर्गुण है। निर्गुणका अर्थ है ब्रह्मकी मूल सत्ता—रजस्तमोगुण नहीं, अवश्य ही उसमें स्वरूपानुबन्धी अतिप्राकृत गुण हैं। भगवान् भोक्ता और जीव भोग्य है।

ब्रह्म और जगत्—ब्रह्म जगत्का कर्त्ता और निमित्त कारण है। वही उपादान कारण भी है। ब्रह्म अविचिन्त्य शक्तिवाला है। इसी शक्तिसे वह जगत्रूपमें परिणत होता है। जगत् सत् है, परन्तु अनित्य है।

जीव—जीव अणुचैतन्य है। ईश्वर गुणी, जीव गुण है। ईश्वर देही, जीव देह है। जीवात्मा बहु और नानावस्थापन्न है। ईश्वरकी विमुखता ही उसके बन्धनका कारण है और ईश्वरके सम्मुख होनेसे ही उसके बन्धन कट जाते हैं और उसे स्वरूपका साक्षात्कार होता है। जीव नित्य है। ईश्वर, जीव, प्रकृति और काल, ये चार पदार्थ नित्य हैं और जीव, प्रकृति और काल ईश्वरके अधीन हैं। जीव ईश्वरकी शक्ति और ब्रह्म शक्तिमान् है।

मुक्ति—आचार्य बलदेवके मतानुसार मुक्ति साध्य और भगवान्की कृपासे प्राप्त होनेवाली है। मुक्तावस्थामें भी जीव ब्रह्मसे पृथक् रहता है। मुक्त पुरुषको भगवत्सान्निध्य प्राप्त होता है। जो जीव भगवान्की उपासना तथा उनके तत्त्वज्ञानके द्वारा भगवद्धामको प्राप्त होता है, उसका पुनरागमन नहीं होता। सर्वेश्वर हरि न तो स्वाधीन मुक्त जीवको अपने लोकसे पतित करना चाहते हैं और न मुक्त पुरुष ही कभी भगवान्को छोड़ना चाहते हैं।

प्रकृति—श्रीबलदेवके कथनानुसार सत्, रज और तमोगुणकी साम्यावस्था ही प्रकृति है। वह तमोमायादि शब्दोंसे पुकारी जाती है और ईश्वरके ईक्षणसे उद्बुद्ध होकर विचित्र जगत्का उत्पादन करती है। प्रकृति ईश्वरकी आश्रिता, नित्या और ईश्वरके अधीन है। प्रकृति ब्रह्मकी शक्ति है और ब्रह्म शक्तिमान् है।

काल—श्रीबलदेवके मतसे एक साथ भूत, भविष्य, वर्त्तमान, चिर, क्षिप्र आदि शब्दोंसे पुकारे जानेवाले, चक्रवत् परिवर्त्तित होनेवाले, प्रलय और सृष्टिके निमित्तभूत जड़ द्रव्यविशेषका नाम काल है। काल नित्य और ईश्वरके अधीन है।

कर्म—श्रीबलदेवकी रायमें कर्म जड़ पदार्थ है। वह अदृष्ट आदि नामोंसे भूषित, अनादि और विनश्वर है। कर्म ईश्वरकी शक्ति है और ईश्वर शक्तिमान् है।

'तत्त्वमसि' वाक्य—आचार्य बलदेवके मतानुसार 'तत्त्वमसि' आदि वाक्य अखण्ड अर्थ बतलानेवाले नहीं। 'तत्त्वमसि'का अर्थ है=उनके तुम हो—'तस्य त्वम् असि'। इससे जीव और ब्रह्मकी अभिन्नता नहीं, बल्कि भिन्नता ही सूचित होती है।

साधन—आचार्य बलदेवके मतमें भक्ति ही मुख्य साधन है। उपासना करनेसे

भगवान् प्रसन्न होते हैं और मुक्ति देते हैं। उनके मतसे ज्ञान और वैराग्य सहकारी साधन हैं। ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके बिना भगवत्प्राप्ति नहीं होती। वह शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर, इन पाँचों भावोंको स्वीकार करते हैं।

भक्ति—आचार्य बलदेवके मतसे भक्ति ही पुरुषार्थ-प्राप्तिका एकमात्र साधन है। भक्ति ह्लादिनी शक्ति और संवित् शक्तिकी सारभूता है, अतएव आनन्ददायिनी और ज्ञान-रूपिणी है। ज्ञानका सार भक्ति है। भक्तिमार्गकी तीन अवस्थाएँ हैं—साधन, भाव और प्रेम। इन्द्रियोंकी प्रेरणाद्वारा की जानेवाली सामान्य भक्तिका नाम साधनभक्ति है। यह जीवके हृदयस्थ प्रेमको जागृत करती है, इसीसे इसे साधनभक्ति कहते हैं। शुद्ध सत्त्वरूपा, प्रेमसूर्यकी किरणसदृश चित्तमें स्निग्धता उत्पन्न करनेवाली भक्तिविशेषका नाम भाव है। भाव प्रेमकी प्रथमावस्था है। यही भाव जब घनीभूत हो जाता है तब उसे प्रेम कहते हैं। प्रेम ही प्रयत्नका चरम फल है, प्रेम ही जीवका नित्यधर्म है। यही परम पुरुषार्थ है।

श्रीसम्प्रदाय वा वैरागियोंका रामोपासक सम्प्रदाय

श्रीसम्प्रदायके प्रधानाचार्य जगद्गुरु १००८ श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजने वैदिक वैष्णवधर्मके संरक्षणके लिये अपूर्व प्रयत्न किया है। इनका जीवनवृत्तान्त विस्तृतरूपसे श्री-वाल्मीकिसंहिता, श्रीरामानन्ददिग्विजय और तत्वप्रकाशिका (स्वामी श्रीरघुवराचार्यकृत श्री-आनन्दभाष्यभूमिका) इत्यादि ग्रन्थोंमें लिखा है। इन्होंने श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर इत्यादि अनेक ग्रन्थरत्नोंका सम्पादन किया है।

स्वामी रामानन्दजी

आचार्य्य रामानन्दजीका जन्म संवत् १३५६ वि०में प्रयागमें पुण्यसदन या भूरिकर्म्मा नामक एक कान्यकुब्ज ब्राह्मणके घरमें हुआ था। पहले इनका नाम रामदत्त था, बाल्या-वस्थामें इनकी बुद्धि बहुत तीव्र थी। कहते हैं कि बारह वर्षकी अवस्थामें ही ये सब शास्त्र पढ़कर पूर्ण पण्डित हो गये थे और दर्शनशास्त्रका विशेषरूपसे अध्ययन करनेके लिये काशी चले आये थे। पहले ये एक स्मार्त्त अध्यापकसे पढ़ने लगे। एक दिन रामानुजकी शिष्यपर-म्पराके राघवानन्दसे इनकी भेंट हुई, जिन्होंने इन्हें देखकर कहा कि तुम्हारी आयु बहुत थोड़ी है और तुम अभीतक हरिकी शरणमें नहीं आये हो। इसपर ये राघवानन्दसे मन्त्र लेकर उनके शिष्य हो गये और उनसे योग सीखने लगे। उसी समय इनका नाम रामानन्द रक्खा गया। इनके समयमें प्राय: सारे भारतमें मुसलमानोंके अनेक प्रकारके अत्याचार हुए थे, जिन्हें देखकर इन्होंने जातिपांतिका बन्धन कुछ ढीला करना चाहा, और सबको रामनामके महामन्त्रका उपदेश देकर अपने "रामावत" सम्प्रदायमें सम्मिलित करना आरम्भ किया। रामानुजके श्रीवैष्णव सम्प्रदायकी सङ्कुचित सीमा तोड़कर इन्होंने उसे अधिक विस्तृत तथा उदार बनाया। इनका शरीरान्त संवत् १४६७में हुआ। इनके मुख्य शिष्योंमें पीपा, कबीर, सेना, धना, रैदास आदि हैं। इनमेंसे कबीरदासका चलाया हुआ कबीरपन्थ रामावत-सम्प्रदायसे सर्वथा भिन्न है। इन्हींकी शिष्यपरम्परामें स्वामी नरहरिदासके शिष्य तुलसीदास

हुए जिनके लिखे रामचरितमानसको रामावत-सम्प्रदायका मुख्य ग्रन्थ मानना चाहिए। यद्यपि यह ग्रन्थ रामावत-सम्प्रदायकी ही चीज है तथापि इसमें किसी सम्प्रदायकी विशेषताकी शिक्षा न होनेके कारण यह ग्रन्थ सार्वभौम हो गया है।

इस सम्प्रदायकी शिक्षाका सार यह है कि ईश्वरकी भक्ति करके जीव सांसारिक कष्टों तथा आवागमनसे बच सकता है। यह भक्ति रामकी उपासनासे ही प्राप्त हो सकती है। इस उपासनाके अधिकारी मनुष्यमात्र हैं। जाति-पांतिका भेद इसमें अवरोध उपस्थित नहीं कर सकता। श्रीरामानन्दाचार्यजीने प्रस्थानत्रयीपर भाष्य किये हैं। वेदान्तदर्शनका श्रीआनन्द-भाष्य उनमेंसे अन्यतम है। इसका आदिसे अन्ततक अच्छी प्रकार परिशीलन करनेसे भाष्यकारका अनुपम पाण्डित्य प्रकट होता है।

*मत—भाष्यकारने विशिष्टाद्वैतमतको ही ब्रह्ममीमांसाभिमत माना है, क्योंकि श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराणसे यही समञ्जस होता है। इसीलिये आचार्यपादने कहा है कि—

एवञ्चाखिलश्रुतिस्मृतीतिहासपुराणसामञ्जस्यादुपपत्तिवलाच्च विशिष्टाद्वैतमेवास्य ब्रह्ममीमांसाशास्त्रस्य विषयो न तु केवलाद्वैतम्। (आनन्द० १।१।१)

विशिष्टाद्वैत शब्दका अर्थ इस प्रकार है—

विशिष्टश्च विशिष्टश्च विशिष्टे, विशिष्टयोरद्वैतम् विशिष्टाद्वैतम्।

प्रथम विशिष्ट शब्दसे सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म अर्थात् कारणब्रह्मका ग्रहण होता है और द्वितीय विशिष्ट शब्दसे स्थूल चिदचिद्विशिष्ट अर्थात् कार्यब्रह्मका ग्रहण होता है। तथा च विशिष्टाद्वैतका अर्थ हुआ कार्य और कारणब्रह्मकी एकता अर्थात् अभेद।

ब्रह्म—ब्रह्मशब्दवाच्य भगवान् श्रीराम हैं।

ब्रह्मशब्दश्च महापुरुषादिपदवेदनीयनिरस्तनिखिलदोषमनवधिकातिशयासङ्ख्येयकल्याणगुणगणम् भगवन्तम् श्रीराममाह। सामान्यवाचकानां पदानां विशेषे पर्यवसानात्। (आनन्दभाष्य १।१।१)

एवञ्च सर्वज्ञसर्वशक्तिमज्जगत्कारणनिर्गुणसगुणादिपदवाच्यम् श्रीरामतत्त्वम् तदेव जगत्कारणम् ब्रह्मेत्युच्यतेऽनेन सूत्रेण। (आनन्द० १।१।२)

'उन्हीं सगुण ब्रह्म श्रीरामके निरवच्छिन्न ध्यानाभ्यासवाले शताधिक सुषुम्ना नाड़ीद्वारा शरीरसे निकलकर अर्चिरादि (उत्तरायण) मार्गसे ब्रह्मलोकमें गये हुए अनन्य भक्तकी मुक्ति प्रतिपादित की गयी है।' (आ० भा० १।१।२)

सगुण-निर्गुण ब्रह्म—श्रीरामानन्दाचार्यजीने एक ही ब्रह्मको सगुण और निर्गुण दोनों माना है।

निर्गता निकृष्टाः सत्त्वादयः प्राकृता गुणा यस्माच्चन्निर्गुणमिति व्युत्पत्तेर्निकृष्टगुणराहित्यमेव निर्गुणत्वम्। (आ० भा० १।१।२)

निकृष्ट प्राकृत गुणोंसे जो रहित हो उसे निर्गुण कहते हैं।

---

* पं० श्रीवैष्णवदासजी त्रिवेदी, न्यायरत्न, वेदान्ततीर्थके लिखे "कल्याण"में प्रकाशित एक लेखसे सङ्कलित।

सत्त्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः ।
स शुद्धः सर्वशुद्धेभ्यः पुमानाद्यः प्रसीदतु ॥ (वि० पु०)
योऽसौ हि निर्गुणः प्रोक्तः शास्त्रेषु जगदीश्वरः ।
प्राकृतैर्हेयसत्त्वाद्यैर्गुणैर्हीनत्वमुच्यते ॥ (प० पु०)

'सगुण' शब्दका अर्थ इस प्रकार किया है—

दिव्यगुणवत्त्वेन च सगुणत्वमित्युभयथैकस्यैव ब्रह्मणो निर्देश इति न किञ्चिदनुपपन्नम् । (आ० भा० १ । १ । २)

अर्थात् दिव्य गुणोंसे भगवान्का सगुणत्व भी सिद्ध हो जाता है । अपितु—

एवञ्चास्याः शारीरकब्रह्ममीमांसाया उपक्रमोपसंहारयोर्ब्रह्मणः शेषित्वसगुणत्वादिप्रतिपादकतया तन्मध्यभूतानामपि सूत्राणां संदंशपतितन्यायेन तत्प्रतिपादकत्वमेवेति मन्तव्यम् । (आ० भा० १ । १ । २)

इस तरह सम्पूर्ण वेदान्तदर्शनको सगुण ब्रह्मप्रतिपादक ही माना है ।

मुक्ति—आनन्दभाष्यकारने सद्योमुक्ति नहीं मानी है ।

तदोकोऽग्रज्वलनम् तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात् तच्छेषावगमात् तच्छेषगत्यनुस्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया । (४ । २ । १६)

इस सूत्रके भाष्यमें भाष्यकारने बतलाया है कि विद्यासामर्थ्यात्का अर्थ है विद्यासामर्थ्यसे अर्थात् परमात्मोपासनरूप विद्यासामर्थ्यसे और परमात्माके शेषत्वके अनुसन्धानसे यह जीवात्मा ईश्वरसे अनुगृहीत होता है । इसीका निर्देश जन्माद्यधिकरणमें भी किया है कि सगुण ब्रह्म श्रीरामके निरवच्छिन्न ध्यानाभ्यासवाले शताधिक (एक सौ एकवीं) सुषुम्ना नाड़ीद्वारा शरीरसे निकलकर अर्चिरादि मार्गसे ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए अनन्य भक्तकी मुक्ति प्रतिपादित की गयी है । विद्यासामर्थ्यात् यहाँपर विद्यापदसे जिसकी पूर्वमें (अर्थात् मरणसे प्रथम) आवृत्ति की गयी है उसी ब्रह्मनिदिध्यासनरूप परमात्मचिन्तनपदवाच्य विद्याका ग्रहण है । यही सूत्रकारका मार्ग है । ऐसा कहकर फिर उन्होंने स्पष्ट कहा है कि—

एतेन ज्ञानिनः सद्योमुक्तेरभावोऽपि व्यक्तो भवति ।

इससे 'ज्ञानीको सद्योमुक्तिका अभाव है' अर्थात् ज्ञानीको सद्योमुक्ति नहीं होती है । यह सिद्धान्त भी व्यक्त हो जाता है । आगे चलकर पुनः भाष्यकारने देवयानपथसे ब्रह्मज्ञानीकी गति है ऐसा हेतु बतलाते हुए—

अर्चिरादिमार्गेण ब्रह्मलोकगमनत्वज्ञपनात् सद्यो न मुक्तिर्ब्रह्मविदामपि तु देवयानक्रमेणैवेति सिद्धान्तः ।

इस प्रकार सद्योमुक्त्यभावको ही दृढ़ किया है ।

मन्तव्य—श्रीरामानन्दाचार्यजीने अनन्य भक्तिको ही मोक्षका अव्यवहितोपाय माना है । प्रपत्तिको भी मोक्षहेतु माना है । कर्मको भक्तिका अङ्ग माना है, जगत्का अभिन्न निमित्तोपादान कारण ब्रह्मको ही माना है । जीवोंका परस्पर भेद तथा नानात्व माना है । तथैव जीवोंका स्वरूपत. अणुत्व, कर्त्तृत्व, भोक्तृत्व, ज्ञातृत्व और नित्यत्व इत्यादि माना है । जीवोंका ब्रह्मसे भेद माना है । विद्योपकारिका वर्णाश्रम-व्यवस्थाको स्वीकार किया है । विवर्त्त-

वादका असकृद् प्रत्याख्यान किया है। नारदपाञ्चरात्रका कार्त्स्न्येन प्रामाण्य स्वीकार किया है। निर्विशेष ब्रह्मवादका अनेकों स्थलोंपर निरास करके सविशेष ब्रह्मका प्रतिपादन किया है। जगन्मिथ्यात्व तथा भावरूप अनिर्वचनीय अविद्याका खण्डन किया है। सत्ख्यातिवादको स्वीकार किया है। तथैव वेदोंका अपौरुषेयत्व स्वीकार किया है।

अनुयायी—अयोध्याजी एवं अन्य स्थानोंके वैरागी कहलानेवाले साधु एवं उनके अनुयायी रामोपासक इसी सम्प्रदायके हैं।

इकहत्तरवाँ अध्याय

शैव मत और शैव सम्प्रदायोंकी परम्परा

१—महाभारतकालके पीछे शैवमत

हम पाशुपत मतके प्रकरणमें यह दिखा आये हैं कि यह सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन है और महाभारतकालके पाशुपत मतके नामसे बहुत आदरणीय समझा जाता था। भगवान् कृष्ण स्वयं जो भागवत सम्प्रदायके आराध्यदेव और "भगवान् स्वयं" हैं, सन्तानके लिये शैवाचार्य्य उपमन्युसे विधिवत् दीक्षा लेते हैं और तपस्या करते हैं और भगवान् शङ्करसे वर पाते हैं। प्रसङ्ग आनेपर जब उपमन्यु-सम्बन्धी उपाख्यान वर्णन करना होता है तो विधिवत् आसन ग्रहण कर आचमन प्राणायामपूर्वक वर्णन आरम्भ करते हैं। महाभारत कालतक जहाँ-तक पता लगता है, पाशुपत मतमें ऐसा कोई विकार नहीं आया था जिसके कारण वह निन्द्य समझा जाय। लिङ्गपुराणमें जहाँ भगवान् शङ्करके अट्ठाईस अवतारोंका वर्णन है वहाँ भविष्य वर्णन करते हुए कहा गया है कि द्वापरमें लकुलीश नामसे भगवान् शङ्करका अवतार होगा। यह अवतार यदि भगवान् कृष्णके समयतक हुआ होता तो महाभारतमें इसकी चर्चा अवश्य होती। जान पड़ता है कि कृष्ण भगवान्के कुछ पीछे लकुलीश भी पाशुपत-सम्प्रदायके उद्धारक हुए होंगे। सर्वदर्शन सङ्ग्रहमें "लकुलीश पाशुपत दर्शन"की चर्चासे स्पष्ट है कि पाशुपत सिद्धान्तोंकी यह एक विशेष शाखा बन गयी थी। इस शाखाके अनुयायी मांस खाते थे, मद्यपान करते थे, यज्ञोंमें बलिदान करते थे। मद्यपानादि निन्दित कर्म्मोंसे इस शाखाकी काफी बदनामी हो गयी होगी। जो हो, इस शाखाका सिद्धान्त इतना फैल गया होगा कि शङ्कर स्वामीको पाशुपत मतका खण्डन करना आवश्यक हो गया था। आज लकुलीश सिद्धान्तवाले होंगे भी तो अत्यन्त थोड़े होंगे। जो पाशुपत मत उस समय मूल-सम्प्रदायसे उद्भूत अपने प्राचीन रूपमें रह गया होगा उसमें कमसे कम दो प्रकारके शैव अवश्य होंगे, एक साधारण पाशुपत दूसरे प्रगाढ़ भक्त। एक वह जो साधारण रीतियोंसे भगवान् शङ्करकी उपासना करते थे, दूसरे वह जो भगवान् पशुपतिके अनन्य भक्त थे और लिङ्गका वियोग एक क्षणके लिये भी सह न सकते थे। वे लोग कण्ठमें शिवलिङ्ग धारण किये रहते थे। कहीं-कहीं ऐसे शैवोंकी चर्चा पुराणोंमें आयी है*। जैसे काशीखण्डमें दुर्वासाका काशीमें आकर पाशुपतोंको इस रूपमें देखना वर्णित है—

---

* भविष्यकथनके रूपमें महाभारतमें भी "लिङ्गि"योंकी चर्चा है।

"असख्याता भविष्यन्ति भिक्षवो लिङ्गिनस्तथा।
आश्रमाणां विकल्पाश्चवृत्तेऽस्मिन् वै कृते युगे॥ शान्ति० ६४। २५॥

इससे पता चलता है कि उस समय भी लिङ्गायतोंकी अच्छी सख्या रही होगी। और वह समय कौन था ? कृतयुग। अर्थात् सतयुगमें भी लिङ्ग धारण करनेवाले बहुत थे। इससे वीर शैवोंकी प्राचीनता सिद्ध होती है।

करण्ड दण्ड पानीयपात्रमात्र परिग्रहान् ।
क्वचित् त्रिदण्डिनो दृष्ट्वा निःस्सङ्गान्निष्परिग्रहान् ॥ ९ ॥

टीकाकारने करण्डको देवाधार पात्र अर्थात् लिङ्गके रखनेका पात्र लिखा है ।

[काशीखण्ड अध्याय ८५]

ऐसे प्रगाढ़ शिवभक्तोंका सम्प्रदाय "वीरमाहेश्वर" या "वीरशैवके नामसे प्रसिद्ध हुआ। अपने अङ्गपर निरन्तर लिङ्ग धारण करनेसे ये पीछेसे प्राकृतमें लिङ्गायत कहलाये। इनके सिवा शेष सभी लिङ्गार्चन करनेवाले शैव कहलाये ।

शैव मत किसी समय जगद्व्यापी था। भारतवर्षके लिये तो कुछ कहना ही नहीं है। महाभारत-कालमें या पूर्वमें ही "शिवभागवत" शब्दका प्रयोग भी होता था, क्योंकि अथर्वशीर्ष उपनिषत्में "भगवत्" शब्द भगवान् शङ्करके लिये और पातञ्जल महाभाष्यमें उपासकके लिये "शिवभागवत" [देखो पाणिनि ५ । २ । ७६ के अन्तर्गत भाष्य] शब्दका प्रयोग हुआ है। वैशेषिक सूत्रोंके भाष्यके अन्तमें प्रशस्तपाद महर्षि कणादकी वन्दना करते हुए कहते हैं कि कणादने भगवान् महेश्वरके प्रसादसे योग और आचारद्वारा ये सूत्र पाये। न्यायभाष्यपर उद्योतकार भारद्वाज अन्तमें पाशुपताचार्य्य कहे गये हैं। कुशान जातिके एक राजाके सिक्केमें जो विक्रमकी चौथी शताब्दीका है, एक ओर राजाको माहेश्वर-सम्प्रदायका कहा है और दूसरी ओर त्रिशूलधारी शिव और नन्दीका चित्र है। वराहमिहिरने बृहत्संहितामें लिखा है कि शम्भुमूर्त्तिकी स्थापनामें भस्मधारी ब्राह्मणोंसे काम लेना चाहिये। चीनी यात्री ह्यूनच्याङ्गने अपने यात्रा-विवरणमें जो विक्रमकी आठवीं शताब्दीके आरम्भमें लिखा है, बारह बार पाशुपतोंकी चर्चा की है। कवियोंमें कालिदास, सुबन्धु, बाण, श्रीहर्ष, भट्टनारायण, भव-भूति आदिने ग्रन्थारम्भमें भगवान् शिवकी ही वन्दना की है। इनमेंसे सुबन्धु, बाण और भट्टनारायण भगवान् हरिकी भी वन्दना करते हैं, जिससे प्रकट है कि ये कट्टर शैव न थे, अथवा यों कहिये कि भगवान् शङ्करकी उपासना शैवसम्प्रदायवाले ही करते थे, और लोग नहीं, यह कहना यथार्थ न होगा। कैलाससे कन्याकुमारीतक और अटकसे कटकतक भारतमें तो शिवोपासना किसी न किसी रूपमें प्राचीन-कालसे अबतक व्यापक दीखती है। इतना ही नहीं। पूर्वमें श्याम देशतक और दक्षिणमें यवद्वीपके बालीद्वीपतक महाभारत-कालके बादकी अवशिष्ट हिन्दू सभ्यताके चिह्नोंमें व्यापक शिवोपासना मौजूद है। परन्तु हिन्दू ही क्यों? जिन-जिन देशोंमें मुसलिम और ईसाई सभ्यताका आज दौर-दौरा है उनमें भी गत दो तीन हजार बरसोंके भीतर लिङ्ग वा शिवकी उपासना होती रही है। पुरातत्वके विद्वानोंका कहना है कि लिङ्गपूजा किसी समय, विशेषतः ईसाके पूर्व, सारे संसारमें व्यापक धर्म्म था और रूप, और विधिके थोड़े बहुत भेदके साथ सारे संसारके मूर्त्तिपूजक लिङ्गपूजा करते थे। मिश्रमें, यूनानमें, बैबिलनमें, आसुर देशमें, इटलीमें, फ्रांसमें, अमेरिकामें, अफ्रिकामें, पालिनेशिया द्वीपोंमें लिङ्गपूजा होती थी। मक्केमें आज भी एक पत्थर वा लिङ्ग है, उसे मुसल्मान यात्री चूमते हैं, वह स्वयं मुहम्मद साहबके हाथोंका वहां रक्खा हुआ है। भारतके पश्चिम चित्राल, आफरीदिस्तान, काबुल, बलख, बुखारा आदि देशोंमें तो हिन्दू हैं और शिवालय हैं ही।

निदान शिवपूजा किसी समय जगद्व्यापिनी अवश्य थी और हिन्दू भारतमें तो शिवपूजा और लिङ्गपूजा अनादि-कालसे परम्परागत रही है।

२—शैव मतका आरम्भ और सम्प्रदाय-विभाग

शङ्करस्वामी शारीरक भाष्यमें दूसरे अध्यायके दूसरे पाठके सैंतीसवें सूत्रके भाष्यमें "माहेश्वरास्तुमन्यन्ते कार्य्यकारणयोगविधिदुःखान्ताः पञ्चपदार्थाः पशुपतिनेश्वरेण पशुपाशविमोक्षणायोपदिष्टाः" ऐसा लिखा है, जिससे स्पष्ट है कि पाशुपत मतको ही माहेश्वर और शैवमत नाम दिया गया और स्वयं महेश्वर या शिव ही उसके आदि उपदेष्टा माने जाते हैं। जैसे स्वयं शिवका जन्म और माता-पिता कुल आदि कुछ भी नहीं है उसी तरह शैवमत भी अनादि जान पड़ता है। हिन्दू-साहित्यमें वेदोंमें रुद्रादि नामोंसे शिवकी उपासना देख पड़ती है। उपाङ्गोंमें पशुपति, महेश्वर, परमेश्वर, शिव, शङ्कर आदि नामसे वही उपासना विशदरूपमें देख पड़ती है। आगमों वा तन्त्रोंमें उसीका अधिक विकास देख पड़ता है। सभी तन्त्र उमा-महेश्वर-सवाद हैं। इनमें शैवतन्त्र, जिनकी चर्चा हम तन्त्र-प्रकरणमें कर चुके हैं, शैवमतका प्रतिपादन करते हैं। अतः शैवमतके प्रतिपादक स्वयं शिव भगवान् ही हैं, ऐसा माना जाता है।

इतिहास ग्रन्थोंके बाद पुराणोंमें शैवमतका व्यापक रूपमें वर्णन मिलता है। शिव-पुराण और स्कन्दपुराणमें भी शैव-सम्प्रदायोंकी चर्चा नहीं देखनेमें आती। लिङ्गपुराणमें लिङ्ग-धारण और पूजाकी महत्ता होते हुए भी सम्प्रदायोंका वर्णन नहीं है। ऐसा बहुत सम्भव है कि इन पुराणोंकी रचनाके समय लिङ्गधारण शैवमात्रकी प्रथा रही हो। कूर्मपुराणमें सम्प्रदाय-भेदका वर्णन इस प्रकार है—

> निर्मितम् हि मया पूर्वम् व्रतम् पाशुपतम् शुभम्।
> गुह्याद्गुह्यतरम् सूक्ष्मम् वेदसारम् विमुक्तये॥
> एष पाशुपताचारः सेवनीयो मुमुक्षुभिः।
> तान्त्रिकम् वैदिकम् मिश्रम् त्रिधा पाशुपतम् शुभम्॥
> तप्तलिङ्गाङ्कशूलादि धारणम् तान्त्रिकम् मतम्।
> लिङ्गरुद्राक्षभस्मादिधारणम् वैदिकम् भवेत्॥
> रविम् शम्भुम् तथा शक्तिम् विघ्नेशम् च जनार्दनम्।
> यजन्ति समभावेन मिश्रपाशुपतम् हि तत्॥
> वेदमार्गैकनिष्ठानाम् मुमुक्षूणाम् निरन्तरम्।
> श्रौतम् पाशुपतम् ग्राह्यम् न ग्राह्ये मिश्रतान्त्रिके॥

श्रीकरभाष्य द्वितीय पादमें "सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्" इस सूत्रपर भाष्य लिखते हुए ऊपरका अवतरण कूर्म्मपुराणसे दिया गया है। परन्तु वामनपुराणके पांचवें अध्यायमें और ही सम्प्रदाय हैं—

> ततश्चकार भगवान् चातुर्वर्ण्यम् हरार्चने।
> शास्त्राणि चैषाम् मुख्यानि नानोक्ति विदितानि च॥
> आद्यम् शैवम् परिख्यातमन्यत्पाशुपतम् मुने।

तृतीयम् कालवदनम् चतुर्थम् च कपालिनम् ॥
शैव आसीत्स्वयम् शक्तिर्वशिष्ठस्य प्रियः सुतः ।
तस्य शिष्यो बभूवाथ गोपायन इति श्रुतः ॥
महापाशुपतस्त्वासीद्भारद्वाजस्तपोधनः ।
तस्य शिष्योऽप्यभूद्राजा भरतः सोमकेश्वरः ॥
कालास्यो भगवानासीदापस्तम्बस्तपोधनः ।
तस्य शिष्यो वको वैश्यो नाम्ना क्रोधेश्वरो मुने ॥
महाव्रती च धनदः तस्य शिष्यश्च वीर्य्यवान् ।
कुल्लोदर इतिख्यातो जात्या शूद्रो महातपाः ॥
एवम् स भगवान् ब्रह्मा पूजनाय शिवस्य च ।
कृत्वा तु चतुराश्रमान् स्वमेव भवनम् गतः ॥

कूर्म्मपुराणके अनुसार पाशुपत मत तीन प्रकारके हैं, वैदिक, तान्त्रिक और मिश्र । जो एकनिष्ठ मुमुक्षु हैं उन्हें वैदिक मत ही ग्रहण करना चाहिये। सम्प्रदाय ये तीन हुए ।

वामनपुराणके अनुसार शैव, पाशुपत, कालमुख और कपाली ये चार जातियाँ शिवोपासनाके लिये ही ब्रह्माने बनायी थीं । यहाँ सम्प्रदाय न कहकर वर्ण कहा है, साथ ही चारों प्रसिद्ध वर्णोंके उदाहरण देकर अन्तमें आश्रम कहा है । जान पड़ता है कि शैव मत चारों वर्णोंमें व्यापक था । यह सम्प्रदायभेद नहीं है। महाभारतमें केवल पाशुपतका ही वर्णन है । जान पड़ता है कि महाभारत-कालमें पाशुपत मतकी ही प्रधानता रही होगी, जिसके अन्तर्गत शेष तीनों समझे जाते होंगे अथवा, उस समय पाशुपत, माहेश्वर, शैव,आदि पर्य्यायमात्र थे ।

तन्त्र वा आगमोंकी रचना कब हुई होगी, यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन है, परन्तु ऐसा अनुमान किया जाता है कि वेदोंकी दुरूहता और मन्त्रोंके कीलित होनेसे महाभारत-कालसे लेकर कलिके आरम्भतकमें अनेक आगमोंका निर्माण और प्रकाश हुआ होगा । कलिका आरम्भ किसी-किसीके मतसे पांच हजार बरस पहले हुआ और किसी-किसीके मतसे विक्रमकी आठवीं शताब्दीके लगभग हुआ । मेरुतन्त्रमें इङ्गेज और लण्ड्रज आदि शब्दोंसे तो यह स्पष्ट है कि सम्भवतः अब भी तन्त्रोंकी रचना जारी होगी और उनकी बड़ी संख्या भी हमारे इस अनुमानको पुष्ट करती है । इस तरह आगम अत्यन्त प्राचीन और अत्यन्त नवीन दोनों हो सकते हैं और यह बतला देना कि अमुक प्राचीन है और अमुक नवीन बहुत कठिन बात है । फिर भी आगमोंसे ही शैव, वैष्णव, शाक्त आदि सम्प्रदायोंके आचार, विचार, शील और विशेषताका विस्तारसे पता लगता है । पुराणोंमें इन सम्प्रदायोंका सूत्ररूपसे कहीं-कहीं वर्णन है, परन्तु आगमोंमें इनके विस्तारकी पूर्त्ति है । आजकल जितने सम्प्रदाय हैं प्रायः सभी आगम ग्रन्थोंपर अवलम्बित हैं ।

वामनपुराणमें जिन चार सम्प्रदायोंकी चर्चा है वे आजकल उसी रूपमें नहीं पाये जाते । शैव, पाशुपत, कालास्य और कपाली, इन चारोंके बदले सायणने सर्वदर्शन-सङ्ग्रहमें माहेश्वर-सम्प्रदायके चार सिद्धान्त बतलाये हैं, (१) शैवदर्शन, (२) प्रत्यभिज्ञादर्शन, (३) रसेश्वरदर्शन और (४) लकुलीश पाशुपत-दर्शन । वामनपुराणके चार शैव मतोंसे ये नाम

भिन्न हैं। सम्भवतः दर्शनोंके नाम होनेसे अन्तर देख पड़ता है, क्योंकि शाङ्करभाष्यके टीका-कार गोविन्दानन्द एवं वाचस्पति मिश्र दोनोंने चारों मतोंका उल्लेख किया है।

"माहेश्वरश्चत्वारः शैवाः, पाशुपताः, कारुणिकसिद्धान्तिनः, कापालिकाश्चेति, चत्वारोऽप्यमी महेश्वरः प्रणीत सिद्धान्तानुयायितया माहेश्वराः।"

गोविन्दानन्दजी यही चार नाम देकर कहते हैं "सर्वेऽप्यमी महेश्वरप्रोक्तागमानुगामित्वान्माहेश्वरा उच्यन्ते।"

इससे प्रतीत होता है कि कालास्यको ही कारुणिक सिद्धान्ती कहा गया है। ये सभी शिवागमोंके अनुयायी हैं। "शैव" शब्द अब प्राचीन "माहेश्वर" या "पाशुपत" शब्दका स्थान ले रहा है और चारों शैव-सम्प्रदायोंका एक यही शब्द बोधक हो रहा है। हम वीर-शैव, लकुलीश पाशुपत, कालास्य और कापालिकका वर्णन यहां करेंगे।

३—वीरशैव या लिङ्गायत तथा अन्य शैव

शैवोंमें भगवान् शिवकी अनन्य और प्रगाढ़ भक्ति करनेवाले वीर-माहेश्वर या वीरशैव हैं जिन्हें लिङ्गायत भी कहते हैं। पाशुपतों या शैवोंमें लिङ्गी वा लिङ्गधारी तथा अलिङ्गी वा साधारण लिङ्गार्चन करनेवाले, ये दो प्रकार हैं। लिङ्गधारी ही लिङ्गायत कहलाते हैं जो मांस मद्यादिसे परहेज करते हैं। लिङ्गी और अलिङ्गी दोनोंके सिद्धान्त और दर्शन एक ही हैं। अर्चाकी विधिमें, रहन-सहनके आचारमें और कुछ संस्कारोंमें अन्तर है। शैवमात्र निगमागमके माननेवाले और वर्णाश्रम धर्म्मके पूरे अनुयायी होते हैं। जिस शैव दर्शनको शैवमात्र मानते हैं हम उसका सारांश यहां देते हैं—

शैवदर्शन—शैव-सिद्धान्त और पाशुपत-सिद्धान्त समान ही हैं। केवल लकुलीश पाशुपत-सिद्धान्तमें इससे कुछ विशेष अन्तर है, इसीलिये उसके पहले "लकुलीश" विशेषण लगा हुआ है। उसका वर्णन हम अन्यत्र करेंगे। यहां शैव या साधारण पाशुपत-सिद्धान्तका सार देते हैं।

पाशुपत-सिद्धान्तकी तरह शैव-सिद्धान्तमें भी जीवमात्र पशु कहलाता है। उसका पति पशुपति भगवान् महेश्वर वा शिव हैं। परन्तु शैव-सिद्धान्तवाले परमेश्वरको कर्म्मादिके सापेक्षकर्त्ता मानते हैं। जीवके कर्म्मानुरूप परमेश्वर ही फल देता है। एक ओर उसने इन्द्रियाँ दीं, दूसरी ओर विषय भी बनाये। वह केवल अपनी इच्छापर संसारको नहीं चलाता। फिर भी उसके स्वतन्त्र-कर्तृत्वमें कोई बाधा नहीं पड़ती।

यह ससार कार्य्य है। ईश्वर कारण है। वह शरीरधारी है। उसका शरीर निर्दोष है, पञ्चमन्त्रात्मक है। ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात ये मन्त्र क्रमानुसार मस्तक, मुख, हृदय, गुह्य और चरण-स्वरूप हैं। वह सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है।

पति, पशु और पाश ये तीन प्रकारके पदार्थ हैं। मल, कर्म्म, माया और रोधशक्ति ये चार पाश हैं। स्वाभाविक अपवित्रताका नाम है मल जो दृक् और क्रियाशक्तिको ढके रहता है। धर्म्माधर्म्मका नाम है कर्म्म। प्रलयमें जिसके भीतर सारे कार्य्य समा जाते हैं और सृष्टिमें जिससे सारे कार्य्य निकलते हैं, उसे माया कहते हैं। पुरुषकी गतिमें रुकावट

डालनेवाले सभी कर्म्म रोधशक्ति कहलाते हैं। पशुपदार्थ जीवात्मा महत् क्षेत्रादि पदवाच्य, देहादिभिन्न, सर्वव्यापक, नित्य, अपरिच्छिन्न, दुर्ज्ञेय एवं कर्त्तास्वरूप है। भगवान् शिव ही पति हैं और दीक्षादि उपाय ही शिवत्व-प्राप्तिकी साधनाएँ हैं।

जीवके तीन प्रकार हैं। (१) विज्ञानाकल, (२) प्रलयाकल और (३) सकल।

(१) **विज्ञानाकल,** केवल मलस्वरूप पाशबद्ध जीवको कहते हैं।

(२) **प्रलयाकल,** मन और कर्म्म पाशबद्ध जीवको कहते हैं।

(३) **सकल,** मल, कर्म्म और मायाके पाशोंसे बँधे जीवको कहते हैं।

समाप्तकलुप विज्ञानाकल जीवको भगवान् दया करके अनन्तसूक्ष्म, एकनेत्र, शिवोत्तम, त्रिमूर्त्तिक, श्रीकण्ठ, एवं शिखण्डी आदि विद्येश्वरोंका पद देते हैं। असमाप्त-कलुप जीवोंको मन्त्रेश्वर बना देते हैं। ये मन्त्र सात करोड़ हैं।

प्रलयाकल जीवोंमें पक्व पाशद्वय मुक्तिपद पाते हैं, और अपक्व पाशद्वय पुर्य्यष्टक देह धरकर स्वकर्म्मानुसार तिर्य्यक् मनुष्यादि विभिन्न योनियोंमें जन्मते हैं। पुर्य्यष्टक देह छत्तीस तत्ववाली देहको कहते हैं। ये छत्तीस तत्व इस प्रकार हैं। चार अन्त.करण, भोगसाधनकला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण, ये सात तत्व, पञ्चभूत, पञ्चभूतात्मा और दसों इन्द्रियाँ और पांच शब्दादिविषय, ये ही छत्तीस तत्व हुए। इन अपक्वपाशद्वयजीवोंमें जो अधिक पुण्यवान् हैं, उन्हें दयालु शङ्कर पृथ्वीपति बना देते हैं।

सकल जीवोंमें पक्वकलुष मन्त्रेश्वरका पद पाते हैं। जिनकी संख्या मण्डल्यादि भेदसे ११८ है। अपक्वकलुप भवकूपमें गिरते हैं। सायणोक्त शैवदर्शनका सार यही है।

शैवमात्र निगमागम दोनोंको प्रमाण मानते हैं। निगम हैं साङ्गोपाङ्ग चारों वेद और आगम हैं उमामहेश्वर संवादात्मक समस्त तन्त्र। निगमागम मात्र स्वतः प्रमाण और ईश्वरोक्त हैं। आगमोंमें भी शैवागम ही उनके विशिष्ट आधार हैं। (१) कामिक, (२) योगज, (३) चिन्त्य, (४) करण, (५) अजित, (६) दीप्त, (७) सूक्ष्म, (८) सहस्र, (९) अंशुमत्, (१०) सुप्रभेद, (११) विजय, (१२) निःश्वास, (१३) स्वयम्भुव, (१४) अनिल, (१५) वीर, (१६) रौरव, (१७) मुकुट, (१८) विमल, (१९) चन्द्रज्ञान, (२०) विम्ब, (२१) प्रोद्गीत, (२२) ललित, (२३) सिद्ध, (२४) सन्तान, (२५) सर्वोत्तर, (२६) पारमेश्वर, (२७) किरण, (२८) वातुल, ये अट्ठाईस शिवागम कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त १७० से अधिक उपागम हैं। सब मिलाकर कई सौ हैं। इनमेंसे कुछ ही अबतक प्रकाशित हुए हैं। इनमें मत, कुल, शील, शिल्प, कर्म्म, धर्म्म, व्यापार, उद्योग आदि विषयोंका रहस्य बतलाया गया है।

प्रत्येक आगममें क्रिया, चर्य्या, योग और ज्ञान ये चार पाद या भाग किये हैं। क्रियापादमें सामान्य शैव, मिश्र शैव, शुद्ध शैव और वीर शैव मुख्यतः शैवोंके ये चार भेद कहे हैं। साथ ही प्रत्येकका आचार भी बतलाया है।

सामान्य शैव—उन्हें कहते हैं जो भस्म धारण करते हैं, भूप्रतिष्ठित शिवलिङ्गकी अर्चा करते हैं, शिव भक्तजनोंसे वात्सल्य भाव रखते हैं, शिवपूजामें उनको रति है, शिवार्थ ही व्यापार करते हैं, शिवकथा सुननेकी इच्छा रखते हैं, एवं शिवध्यानादि अष्टविधा भक्ति करते हैं।

मिश्र शैव—उन्हें कहते हैं जो पीठस्थल लिङ्गकी पूजा करते हैं। साथ ही साथ

विष्णु, उमा, षण्मुख-विघ्नेश्वर और सूर्य्यकी भी पूजा करते हैं। इन देवताओंको वे महेश्वरके अङ्ग वा भक्त मानते हैं। श्रीशङ्कराचार्य्यके अनुयायी स्मार्त्त शैव भी यही कहलाते हैं।

शुद्ध शैव—उन्हें कहते हैं जो कौशिक, कश्यप, भारद्वाज, अत्रि, गौतम आदि शव ऋषियोंके गोत्रके शैव हैं या शिवद्विज हैं।

वीर शैव—उन्हें कहते हैं जो वीर, नन्दी, भृङ्गी, वृषभ और स्कन्द इन पांच गणाधीश्वरोंके गोत्रमें उत्पन्न अपनेको बतलाते हैं। ये मानते हैं कि "अखिल जगत्का कर्त्ता-भर्त्ता-हर्त्ता पञ्चब्रह्मरूप शिव है। जगत्का उपादान और निमित्त कारण वही है। उसकी पञ्चब्रह्म नामक पांच मूर्त्तियां हैं। पहली मूर्त्ति क्षेत्रज्ञ है जिसे ईशान कहते हैं जो सब प्रकृति वर्गका भोक्ता है। दूसरी मूर्त्ति प्रकृति है जिसे तत्पुरुष कहते हैं, वह परमात्माकी गुहा है। तीसरी मूर्त्ति बुद्धि है जिसके धर्म्म आदि आठ अङ्ग हैं, जिसे अघोर कहते हैं। चौथी मूर्त्ति अहङ्कार है जो सब जगत्में व्याप्त है, उसे वामदेव कहते हैं। पांचवीं मूर्त्ति मनस्तत्व है जो सब शरीरोंमें स्थित है जिसे सद्योजात कहते हैं।...... .. .. सब स्थावर जङ्गम जगत् पञ्चब्रह्मस्वरूप है। तत्ववेत्ता मुनि कहते हैं कि यह सब शिवका विलास है। जगत्में जो पच्चीस तत्वोंका प्रपञ्च देख पड़ता है, सब पञ्चब्रह्मरूप शिव है।"
[लिङ्गपुराण उत्तरार्द्ध, अध्याय १४]

इस प्रकार वीरशैव सम्पूर्ण जगत्को शिवमय मानता है। वीरशैवोंके पञ्चाचार्य्य भगवान्के इन्हीं पांचों मुखोंसे प्रकट हुए हैं। ईशानसे विश्वाराध्य, तत्पुरुषसे पण्डिताराध्य, अघोरसे एकोरामार्य्य, वामदेवसे मरुलाराध्य और सद्योजातसे रेंवणाराध्य। ये पांचों माहेश्वर नामके जगद्गुरु कलिके आरम्भमें हुए। भगवान्के ईशानमुखसे एक पञ्चवक्त्र गणेश्वर प्रकट हुए। इनके पांचों मुखोंसे पांच "पञ्चम" प्रकट हुए जिनके नाम हुए (१) मखारि, (२) कलारि, (३) पुरारि, (४) स्मरारि और (५) वेदारि। इनसे फिर उपपञ्चम प्रकट हुए। पञ्चमोंके गुरु भी इन्हीं पञ्चाचार्य्योंमेंसे हुए। शिष्यका गोत्र भी वही हुआ जो गुरुका था। प्रत्येक पञ्चमके गोत्र, प्रवर, शाखा सब अपने-अपने गुरुके थे। इन्हीं गणेश्वरके वंशज वह वीरशैव हुए जो "भक्त" कहलाये। ब्राह्मण वीरशैव "जङ्गम" कहलाये और शेप वीरशैव भक्त "शीलवन्त", "वञ्जिग", और "पञ्चम-शालि" कहलाये।

वीरशैवकी विशेपता इस बातमें है कि—

"परब्रह्ममिदम् लिङ्गम् पशुपाशविमोचकम्।
यो धारयति सद्भक्त्या स पाशुपत उच्यते॥"

[श्रीकर भाष्यके अनुसार लिङ्ग स्कन्द तथा कर्म्मपुराणका श्लोक]

इत्युक्त्वा देवताः सर्वाः शिवलिङ्गादिधारणम्।
कृत्वा पाशुपताः सर्वे तस्मात्पशुपतिः शिवः॥

[श्रीकर भाष्यानुसार लिङ्गपुराणसे]

इन प्रमाणोंसे निरन्तर अहर्निश मृत्युपर्य्यन्त बराबर देहपर ये लिङ्ग धारण किये रहते हैं। इसके विना एक क्षण नहीं रह सकते। अपने प्राणसे अधिक मानते हैं। इन्हें प्राकृत भाषाओंमें "लिङ्गायत" कहते हैं। सभी लिङ्गायतोंको जङ्गम कहना भूल है। इनमें

जो ब्राह्मण कर्म्म या पुरोहिताई करते हैं, उन्हें ही "जङ्गम" कहना चाहिये। कोषोंमें प्रायः ऐसी भूल की गयी है।

वीरशैव मतने शिवभक्तिका इस प्रकार प्रगाढ़ रूप दिखाया है। इनके नामकी व्युत्पत्तिसे भी यही प्रकट है। वेदशिरस्में (सिद्धान्त शिखामणिके अनुसार) लिखा है—

विद्यायां शिवरूपायां विशेषाद्रमणम् यतः।
तस्मादेते महाभागा वीरशैवा इति स्मृताः॥

शिवरूपा विद्यामें विशेष रूपसे रममाण होनेसे ये "वीरशैव" कहलाते हैं।

इस शैवमतका आरम्भ सृष्टिके आरम्भसे बताया जाता है। अतः यह मत पाशुपत मतसे अभिन्न है और कालानुसार ही इसके नामोंमें भेद पड़ता गया है। इसमें सभी प्रकारके वेदान्तीय विचारोंका समावेश है। शिवाद्वैत, शक्तिविशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, भेदाभेद, विशेषाद्वैत ये कई प्रकारके विचार समाविष्ट हैं।

सुप्रबोधागम, स्वयम्भुवागम, पाशुपततन्त्र, यजुर्वेदीय वीर लैङ्ग्योपनिषत् आदिके अनुसार कृतयुगमें इस सम्प्रदायके पञ्चाचार्य्य थे, एकाक्षर शिवाचार्य्य, द्व्यक्षर शिवाचार्य्य, त्र्यक्षर शिवाचार्य्य चतुरक्षर शिवाचार्य्य और पञ्चाक्षर शिवाचार्य्य, त्रेतायुगमें एक वक्र शिवाचार्य्य, द्विवक्रशिवाचार्य्य, त्रिवक्रशिवाचार्य्य, चतुर्वक्रशिवाचार्य्य, और पञ्चवक्रशिवाचार्य्य, द्वापरयुगमें रेणुकशिवाचार्य्य, दारुकशिवाचार्य्य, घण्टाकर्णशिवाचार्य्य, धेनुकर्णशिवाचार्य्य, और विश्वकर्णशिवाचार्य्य। कलिके आरम्भमें रेवणाराध्यशिवाचार्य्य, मरुलाराध्यशिवाचार्य्य, एकोरामाराध्यशिवाचार्य्य, पण्डिताराध्यशिवाचार्य्य और विश्वाराध्यशिवाचार्य्य। अन्तिम पांचों आचार्य्योंके समयका भी ठीक ठीक पता नहीं लग सका है। पौराणिक-साहित्यसे यह पता लगता है कि अगस्त्य, दधीचि, विश्वामित्र, शतानन्द, दुर्वासा, गौतम, ऋष्यश्रृङ्ग, उपमन्यु, व्यास आदि महर्षि शैव थे। व्यासजीके लिये कहा जाता है कि उन्होंने केदारमें घण्टाकर्णजीसे पाशुपत दीक्षा ली जिनके साथ पीछेसे वे काशीजीमें रहने लगे। व्यास काशीमें घण्टाकर्ण तालाव मौजूद है। वहीं घण्टाकर्णकी मूर्त्ति भी हाथमें लिङ्ग धारण किये मौजूद है।*

वीर शैवोंके पांच बड़े-बड़े मठ हैं जो एक-एक आचार्य्यके स्थानविशेष हैं। कहते हैं कि उन-उन स्थानोंके प्राय. ज्योतिर्लिङ्गसे ही ये पांचों आचार्य्य प्रकट हुए।

कोलनुपाकके सोमेश्वर लिङ्गसे, जो भगवान्के सद्योजात रूप हैं, भगवान् रेवणाराध्य प्रकट हुए। अवन्तिकापुरीके सिद्धेश्वर लिङ्गसे, जो भगवान्के वामदेवरूप हैं, भगवान् मरुलाराध्यजी प्रकट हुए। कहते हैं कि वे अवन्तीके राजासे अनबन हो जानेके कारण, बल्लारी जिलेके एक गाँवमें आकर बस गये। उनके बसनेसे उस गाँवका नाम भी उज्जयिनी पड़ गया। अवन्तीमें भी इसकी एक मठ शाखा अबतक मौजूद है। श्रीकेदारजीमें रामनाथ

---

* भारतमें अनेक प्राचीन मूर्त्तिया ऐसी भी मौजूद हैं जो हाथमें उसी तरह लिङ्ग धारण किये हुए हैं जैसे वीरशैव उपासक हाथमें पूजा करनेके लिये लेता है। काशीमें विशालाक्षी देवीके और पढरपुरमें विठोवाके, कोल्हापुरमें अम्बाबाईके, तुलजापुरमें भवानीके और वारशीमें भगवन्तके मस्तकपर लिङ्ग मौजूद है।

लिङ्गसे, जो भगवान्‌के अघोर रूप हैं, एकोरामाराध्यजी प्रकट हुए। श्रीशैलके मल्लिकार्जुन लिङ्गसे, जो भगवान्‌के तत्पुरुष रूप हैं, पण्डिताराध्यजी प्रकट हुए। श्रीकाशीपुरीके विश्वनाथ लिङ्गसे, जो भगवान्‌के ईशानरूप हैं, भगवान विश्वाराध्यजी प्रकट हुए।

इन पांचो स्थानोंमें वीरशैवोंके बड़े-बड़े मठ हैं। उत्तराखण्डमें श्रीकेदारेश्वरमें बहुत प्राचीन मठ है। उसकी प्राचीनताका बहुत भारी प्रमाण एक ताम्रशासन है, जो इसी मठमें मौजूद बताया जाता है। हिमवत् केदारमें महाराजा जनमेजयके राज्यकालमें स्वामी आनन्दलिङ्ग जङ्गम यहाँके मठके जगद्गुरु थे। इन्हींके नाम जनमेजयने मन्दाकिनी, क्षीरगङ्गा, मधुगङ्गा, स्वर्गद्वारगङ्गा और सरस्वती और मन्दाकिनीके सङ्गमके बीच जितना क्षेत्रफल धरती है, सबका दान इस उद्देश्यसे किया कि इसी मठके आचार्य गोस्वामी आनन्दलिङ्ग जङ्गमके शिष्य श्रीकेदारक्षेत्रवासी श्रीज्ञानलिङ्ग जङ्गम इसके आयसे भगवान केदारेश्वरकी पूजा अर्चा किया करें। उन्होंने सूर्य्यग्रहणके अवसरपर श्रीकेदारेश्वरको साक्षी करके अपने माता पिताके शिवलोक प्राप्तिके लिये उन्हें इस क्षेत्रको पूरे अधिकार सहित दान दिया। यह दान उन्होंने मार्गशीर्ष अमावास्या सोमवारको युधिष्ठिरके राज्यारोहणके नवासी बरस बीतने-पर प्लवङ्गम नाम संवत्सरमें किया। अर्थात् केदारेश्वरका यह मठ पांच हजार बरसोंसे अधिक पुराना है। टेहरीनरेश इस पीठके शिष्य हैं और भारतके तेरह नरेश, (जिसमें नेपाल, काश्मीर और उदयपुर भी हैं), प्रतिवर्ष अपनी ओरसे पूजा कराते हैं और भेंट भेजते हैं। इस मठके अधीन अनेक शाखामठ हैं। इनके पास पहले इस दानसे १००० गाँवें थे। अब १४१ गाँवें रह गये हैं।

काशीमें भगवान विश्वाराध्यका स्थान "जङ्गमवाड़ी" (वाटिका) मठके नामसे प्रसिद्ध है। यह मठ भी बहुत प्राचीन है। इस मठके मल्लिकार्जुन जङ्गम नामक शिवयोगीको काशीराज जयनन्ददेवने विक्रम सवत् ६३१में प्रबोधिनी एकादशीको भूमिदान किया था। इस तरह यह ताम्रशासन लगभग पौने चौदह सौ बरसोंका हुआ। इसके बादके तो अनेक दानपत्र हैं। इस मठके पास बारह गाँवें हैं। इनके सिवा गोदौलियासे लेकर दक्खिनमें बङ्गालीटोलाके डाकघरतक, और पूरबमें अगस्त्यकुण्डसे पच्छिममें रामापुरातक सारा स्थान "जङ्गमवाड़ी" मुहल्ला कहलाता है। जो अधिकांश मठका ही है। इनके सिवा मानससरोवर, धनकामेश्वर, मन.कामेश्वर एवं साक्षीविनायकके सामनेका स्थान इसी मठके अधीन है। यह मठ शिवलिङ्गमय है, इसके अधीन रोहिताश्वकी जहाँ सांपने काटा था वह बगीचा भी है। यह मठ काशीमें सबसे पुराना है ऐतिहासिक है और दर्शनीय है।

नेपालराज्यमें भीतगाँवमें काशी जङ्गमवाड़ी मठकी एक शाखा है वह भी "जङ्गम-वाड़ी मठ" कहलाता है। उस मठको भी ज्येष्ठ सुदी अष्टमी सवत् ६९२में नेपालके महाराजा विश्वमल्लने श्रीमल्लिकार्जुन यतिको भूमिदान करके शिलापर उत्कीर्ण करा दिया है जो उस स्थानमें मौजूद है।

डाक्टर भाण्डारकरने "वैष्णविज़्म, शैविज़्म ऐण्ड मैनर रिलिजस सिस्टेम्स" नामकी पुस्तकमें (पृ० १९०) और डाक्टर फार्कुहरने "ऐन औटलैन अव् दि रिलिजस लिटरेचर अव् इण्डिया" नामकी पुस्तकमें (पृ० २६०) लिखा है कि बसव नामक एक शैवोद्धारकके

कुछ ही पहले, अर्थात् अबसे कोई आठ सौ ही बरस पहले वीरशैव मतका आरम्भ हुआ है। अभी हालमें लक्ष्मी बुकडिपो कलकत्तेसे हिन्दू विश्वविद्यालयके दो प्रोफेसरोंका लिखा "संस्कृत-साहित्यका सङ्क्षिप्त इतिहास" प्रकाशित हुआ है। उसमें परिशिष्टके पृ० २८ पर लिखा है— "ई० ११६२के पश्चात् विज्जलके शासनकालमें वीरशैव अथवा लिङ्गायत मत स्थापित हुआ। ......इस पन्थकी उत्पत्ति विज्जलके समयमें हुई, यह बात सर्व-सम्मत है।" भारतीय भाषाओंके विश्वकोष और ज्ञानकोष भी यही कहते हैं। यह सर्व-सम्मत धारणा कितनी भ्रम-पूर्ण है, यहाँ यह कहना अनावश्यक और बाहुल्य है।

वीरशैवोंमें यह प्रथा है कि बालक जब आठ वर्षका होता है तभी उसे शिवदीक्षा दी जाती है। दीक्षाकर्म्म महाचार्य्य वा उपाचार्य्यकी आज्ञासे होता है। इस दीक्षाको शाम्भव-दीक्षा और पाशुपतदीक्षा भी कहते हैं। वीरशैवोंमें वर्णाश्रमधर्म्म पूर्ण रूपसे माना जाता है। इस मतके ब्राह्मण भूरुद्र, माहेश्वर, जङ्गम आदि कहलाते हैं। ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंको द्विज कहते हैं। संन्यासी "विरक्त" कहलाता है। ये लोग अपने गोत्रके अन्दर विवाह नहीं करते। केवल कर्म्मसे ज्ञान होता है, या केवल ज्ञानसे मुक्ति होती है, ऐसा समझकर ये लोग कर्म्म और ज्ञानका आचरण नहीं करते। "न क्रियारहितं ज्ञानम् न ज्ञानरहिता क्रिया" इस शिवागमोक्तिके अनुसार ज्ञानकर्म्मसमुच्चय पञ्चाचार, अष्टावरण, षट्स्थलादि वर्त्तते हैं। आचार्य्यसे पाये हुए शिवलिङ्गकी ये तीनों सन्ध्यामें पूजा करते हैं। ये पशु-हिंसावाले यज्ञ नहीं करते। मन्त्र, भस्म, रुद्राक्ष आदि और सब विषयोंमें इनमें और सामान्य शैवमें कोई भेद नहीं है। शिवलिङ्गसे यह वियोग सह नहीं सकते, परमभक्त हैं इसीलिये ये शैव वीरशैव हैं। कहा जाता है कि वीरशैवोंकी सङ्ख्या सैंतालिस लाख होगी।

बसवपक्षीलिङ्गायत भी एक सुधारदली शाखा है जिसका आरम्भ बसवसे समझा जाता है और जिसका आधार बसवेश्वरपुराण है। इस पुराणमें लिखा है कि जब भूमण्डलपर वीरशैव मतका ह्रास हो रहा था, भगवान्नारदकी प्रार्थनापर परमेश्वरने अपने गण नन्दीको उसके उद्धारके लिये भेजा। नन्दीश्वरने बागेवाड़ीमें जन्म लिया और उनका नाम बसव रक्खा गया। कन्नड़में बसव शब्द वही है जो हिन्दीमें "बसह" और संस्कृतमें वृषभ है। बसवेश्वरने यज्ञोपवीत नहीं कराया, क्योंकि उन्हें सूर्य्यकी उपासना मंजूर न थी। वे बागे-वाड़ीसे कल्याण आये जहाँ विज्जल राजा था और बसवेश्वरके मामा बलदेव मन्त्री थे। बिज्जल-ने विक्रम संवत् १२१४-१२२४ तक अर्थात् कुल दस बरस राज किया। बलदेवकी मृत्युके बाद बसवेश्वर स्वयं मन्त्री हो गये। बसवेश्वर वीरशैवोंके भक्त थे। उन्होंने उनपर बहुत कुछ राजस्व व्यय किया, जिससे राजा रुष्ट हो गया। उसने उन्हें कैद करना चाहा। राजा और मन्त्रीमें युद्ध छिड़ गया। राजा हार गये सन्धि हुई। राजा मन्त्री फिर यथास्थित हुए। फिर उसने वर्णान्तर विवाहका प्रचार किया। चमार और ब्राह्मणमें विवाह सम्बन्ध कराया। इसपर राजाने हरळय्या चमार और मधुवय्या ब्राह्मणकी आँखें निकलवा लीं। इससे बसवका हेतु सफल नहीं हुआ। इसपर रुष्ट होकर बसवेश्वरने षड्यन्त्र रचा और राजाका वध करवा दिया। इसी बसवेश्वरपुराणमें एकान्त रामार्य्यकी भी चमत्कारिणी कथाएँ दी हुई हैं।

कुछ लोगोंका यह अनुमान है कि लिङ्गायतोंके मूलाचार्य्य बसवेश्वर थे। यह कथन

अनेक कारणोंसे भ्रमपूर्ण है। पहले तो बसवपुराण जो मूल तेलगूमें फिर कर्णाटकी भाषामें लिखा गया अबसे सात सौ बरसोंसे अधिक पुराना ग्रन्थ हो नहीं सकता। इसे बादरायण व्यास प्रणीत कहना तो साफ जाल है। इसीमें वीरशैव मतका प्राचीन होना और उसके ह्रासकी अवस्था स्वीकार की गयी है। बसवको वीरशैवोंका भक्त बताया है। डाक्टर फ्लीट-का कहना है कि बसव नहीं बल्कि एकान्त रामाय्य वीरशैव मतके प्रवर्त्तक थे। परन्तु उप-र्युक्त कारणोंसे ही एकान्त-रामाय्यका भी प्रवर्त्तक होना भ्रान्त धारणा है। सबसे बड़ी बात यह है कि वीरशैव मतवालोंको बसवाद्रिके जन्मके साढ़े चार हजार बरस पहले भूमिदान मिलनेके प्रमाण मौजूद हैं और स्वयं बसवपुराण उनकी प्राचीनताकी पुष्टि करता है। हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि बसवेश्वरकी शिक्षाओंको प्रामाणिक करनेके लिये ही इस पुराणकी रचना की गयी। इस पुराणका उल्लेख भी कहीं उपपुराणोंमें देखनेमें नहीं आया।

बसवेश्वरने लिङ्ग-धारणकी विशेषता तो स्थिर रक्खी। परन्तु वीरशैवोंके अनेक मन्तव्योंके विपरीत मत चलाये। उन्होंने वर्णाश्रमधर्म्मका खण्डन किया, ब्राह्मणोंका महत्त्व अस्वीकार किया, वेदोंको नहीं माना, भगवान् शिवके सिवा किसी देवी देवताको मानना अस्वीकार किया, जन्मान्तरको असिद्ध ठहराया, प्रायश्चित्त और तीर्थयात्राको व्यर्थ बतलाया, सगोत्र विवाहको विहित बताया, अन्त्येष्टि क्रियाको अनावश्यक और शौचाशौचके विचारको भ्रमात्मक ठहराया, विधवा विवाह प्रचलित किया। इनके अनुयायी भी अपनेको वीरशैव और लिङ्गायत कहते हैं। परन्तु आचार-विचारमें इतना अधिक भेद होनेसे प्राचीन वीरशैव या पाशुपत शैवमें और बसवपन्थी लिङ्गायतोंमें भेद सहजमें हो सकता है।

४—कालमुख या कारुणिक सिद्धान्ती

विश्वकोशकार कहते हैं कि "महीशूरके दक्षिणमें दक्षिण केदारेश्वरका मन्दिर प्रसिद्ध है। वहाँकी गुरुपरम्परामें श्रीकण्ठाचार्य्य वेदान्तके भाष्यकार हुए हैं। यह श्रीरामानुजकी तरह विशिष्टाद्वैतवादी हैं। महीशूरके कालमुख शैव एकुलागम समय नामक सिद्धान्त-ग्रन्थके अनुयायी हैं और श्रीकण्ठाचार्य भी उसी सम्प्रदायके थे।" श्रीकण्ठ शिवाचार्य्यने वायवीय-संहिताके आधारपर यह सिद्ध किया है कि भगवान् महेश्वर अपनेको उमाशक्तिसे विशिष्ट कर लेते हैं। इस शक्तिमें जीव और जगत्, चित और अचित, दोनोंका बीज मौजूद रहता है। उसी शक्तिसे भगवान् महेश्वर चराचर सृष्टि करते हैं। इसी सिद्धान्तको शक्तिविशिष्टाद्वैत कहते हैं। वीरशैव वा लिङ्गायत इस शक्तिविशिष्टाद्वैत सिद्धान्तको भी अपनाते हैं।

विश्वकोशकारने जहाँ श्रीकण्ठाचार्य्यको कालमुख लिखा है वहाँ स्पष्ट भूल की है। अप्पयदीक्षित और श्रीकरभाष्यके प्रमाणसे भाष्यकार श्रीकण्ठ-शिवाचार्य्य शुद्ध शैव थे, कालमुख नहीं थे। दक्षिण केदारेश्वरको कोशकारने प्रसिद्ध बताया है, परन्तु हम यह पता न लगा सके कि यह मठ या स्थान कहाँ है। दक्षिणका लकुलीश सम्प्रदाय भी प्राचीन और नवीन दो रूपोंमें बँटा हुआ है और कदाचित् इस सम्प्रदायवाले कालमुख या कारुणिक सिद्धान्तको मानते हैं। कहते हैं कि अपने सिद्धान्तको नष्ट होनेसे बचानेके लिये भगवान् लकुलीशने मुनिनाथ चिल्लुक-का अवतार धारण किया था। उनका सिद्धान्त नवीन लकुलीश सिद्धान्त कहलाता है।

५—लकुलीश पाशुपत मत

प्राचीन लकुलीश पाशुपतोंके सिद्धान्तका वर्णन सर्वदर्शनसङ्ग्रहमें सायणाचार्य्यने दिया है। इस दर्शनका सार यह है।

जीवमात्रकी "पशु" संज्ञा है। शिव "पशुपति" हैं। भगवान् पशुपतिने बिना किसी कारण, साधन या सहायताके इस संसारका निर्म्माण किया। अतः वे स्वतन्त्र कर्त्ता हैं। हमारे कर्म्मोंके भी मूलकर्त्ता परमेश्वर ही हैं। अतः पशुपति सब कार्य्योंके कारण हैं।

मुक्ति द्विधा है। (१) सब दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति। (२) पारमैश्वर्य्य प्राप्ति। परोक्ष भी द्विधा है। (१) दृक्शक्ति प्राप्ति। (२) क्रियाशक्ति प्राप्ति। पहलीसे सर्वज्ञता प्राप्त होती है, तो दूसरी क्रियाशक्तिसे इच्छित बात तुरन्त हो जाती है। इन दोनों शक्तियोंकी सिद्धि ही पारमैश्वर्य्य मुक्ति है।

भगवद्दासत्व-प्राप्ति मुक्ति नहीं है। बन्धन है।

इस दर्शनमें प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ये तीन प्रमाण माने गये हैं।

धर्म्मार्थसाधक व्यापारको "विधि" कहते हैं। विधि द्विधा है। "व्रत" और "द्वार"। भस्म-स्नान, भस्मशयन, जप, प्रदक्षिणा, उपहार आदि "व्रत" हैं। शिवका नाम लेकर हहाकर हँसना, गाल बजाना, गाना, नाचना, जप करना आदि "उपहार" हैं। व्रत एकान्तमें करना चाहिये। "द्वार"के अन्तर्गत क्राथन [=सोता हुआ न होकर भी सोता हुआ सा दीखना], स्पन्दन [= शरीरको उसी तरह झोंके खिलाना जैसे हवासे झोंके खाता है], मन्दन [= पागलकी तरह लड़खड़ाते हुए चलना], शृङ्गारण [= किसी सुन्दरीको देखकर कामार्त्त न होते हुए भी कामुकताप्रदर्शन], अवितत्करण [= अविवेकियोंकी तरह निन्द्य कर्म्मोंकी चेष्टा], और अवितद्भाषण [= अर्थहीन और व्याहत शब्दोंका उच्चारण] यह छः क्रियाएँ हैं।

६—कापालिक

कापालिकोंके सिद्धान्तोंका पता सर्वदर्शन-सङ्ग्रहमें नहीं है। ये शैवमत माननेवाले तान्त्रिक साधु होते हैं जो मनुष्यकी खोपड़ी लिये रहते हैं और मद्य-मांसादि खाते हैं। ये लोग भैरव या शक्तिको बलि चढ़ाते हैं। पहले ये नर-बलि भी किया करते थे। गृहस्थोंमें इस मतका प्रचार नहीं देखा जाता। ये स्पष्ट ही वाममार्गी शैव होते हैं। श्मशानमें रहकर बड़ी बीभत्स रीतिसे उपासना करते हैं।

७—प्रत्यभिज्ञा दर्शन और रसेश्वर दर्शन

प्रत्यभिज्ञा दर्शनके अनुयायी काश्मीर देशके शैव होते हैं। इस दर्शनका सार यह है। महेश्वर ही जगत्के कारण और कार्य्य सभी कुछ हैं। यह सृष्टिमात्र शिवमय है। महेश्वर ही ज्ञाता और ज्ञानस्वरूप हैं। घटपटादिका ज्ञान भी शिवस्वरूप है। इस दर्शनके अनुसार पूजा पाठ जपतप आदिकी कोई आवश्यकता नहीं है। केवल इस प्रत्यभिज्ञा या इस ज्ञानकी आवश्यकता है कि जीव और ईश्वर एक हैं। इस ज्ञानकी प्राप्ति ही मुक्ति है। जीवात्मा परमात्मामें जो भेद दीखता है, वह भ्रम है। इसके माननेवाले कहते हैं कि जिस मनुष्यमें ज्ञान और क्रियाशक्ति है वही परमेश्वर है।

अनेक कारणोंसे भ्रमपूर्ण है। पहले तो बसवपुराण जो मूल तेलगू फिर कर्नाटकी भाषामें लिखा गया उससे सात सौ बरसोंसे अधिक पुराना ग्रन्थ हो नहीं सकता। इसे बादरायण व्यास प्रणीत कहना तो साफ जाल है। इसीमें वीरशैव मतका प्राचीन होना और इसके ह्रासकी अवस्था स्वीकार की गयी है। बसवको वीरशैवोंका भक्त बतलाया है। डाक्टर फ्लीट-का कहना है कि बसव नहीं बल्कि एकान्त रामाय्य वीरशैव मतके प्रवर्तक थे। परन्तु उपर्युक्त कारणोंसे ही एकान्त-रामाय्यका भी प्रवर्तक होना भ्रान्त धारणा है। सबसे बड़ी बात यह है कि वीरशैव मतवालोंको बसवादिके जन्मके साढ़े चार हजार बरस पहले भूमिदान मिलनेके प्रमाण मौजूद हैं और स्वयं बसवपुराण उनकी प्राचीनताकी पुष्टि करता है। हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि बसवेश्वरकी शिक्षाओंको प्रामाणिक करनेके लिये ही इस पुराणकी रचना की गयी। इस पुराणका उल्लेख भी कहीं उपपुराणोंमें देखनेमें नहीं आया।

बसवेश्वरने लिङ्ग धारणकी विशेषता तो स्थिर रक्खी। परन्तु वीरशैवोंके अनेक मन्तव्योंके विपरीत मत चलाये। उन्होंने वर्णाश्रमधर्मका खण्डन किया, ब्राह्मणोंका महत्त्व अस्वीकार किया, वेदोंको नहीं माना, भगवान् शिवके सिवा किसी देवी देवताको मानना अस्वीकार किया, जन्मान्तरको असिद्ध ठहराया, प्रायश्चित्त और तीर्थयात्राको व्यर्थ बतलाया, सगोत्र विवाहको विहित बताया, अन्त्येष्टि क्रियाको अनावश्यक और शौचाशौचके विचारको भ्रमात्मक ठहराया, विधवा विवाह प्रचलित किया। इनके अनुयायी भी अपनेको वीरशैव और लिङ्गायत कहते हैं। परन्तु आचार-विचारमें इतना अधिक भेद है जिससे प्राचीन वीरशैव या पाशुपत शैवमें और बसवपन्थी लिङ्गायतोंमें भेद सहजमें हो सकता है।

४—कालमुख या कारुणिक सिद्धान्ती

विश्वकोशकार कहते हैं कि "महीशूरके दक्षिणमें दक्षिण केदारेश्वरका मन्दिर प्रसिद्ध है। वहाँकी गुरुपरम्परामें श्रीकण्ठाचार्य्य वेदान्तके भाष्यकार हुए हैं। वह श्रीरामानुजकी तरह विशिष्टाद्वैतवादी हैं। महीशूरके कालमुख शैव लकुलागम समय नामक सिद्धान्त-ग्रन्थके अनुयायी हैं और श्रीकण्ठाचार्य्य भी उसी सम्प्रदायके थे।" श्रीकण्ठ शिवाचार्य्यने वायवीय-संहिताके आधारपर यह सिद्ध किया है कि भगवान् महेश्वर अपनेको उमाशक्तिसे विशिष्ट कर लेते हैं। इस शक्तिमें जीव और जगत्, चित् और अचित्, दोनोंका बीज मौजूद रहता है। उसी शक्तिसे भगवान् महेश्वर चराचर सृष्टि करते हैं। इसी सिद्धान्तको शक्तिविशिष्टाद्वैत कहते हैं। वीरशैव वा लिङ्गायत इस शक्तिविशिष्टाद्वैत सिद्धान्तको भी अपनाते हैं।

विश्वकोशकारने जहाँ श्रीकण्ठाचार्य्यको कालमुख लिखा है वहाँ स्पष्ट भूल की है। अप्पयदीक्षित और श्रीकरभाष्यके प्रमाणसे भाष्यकार श्रीकण्ठ-शिवाचार्य्य शुद्ध शैव थे, कालमुख नहीं थे। दक्षिण केदारेश्वरको कोशकारने प्रसिद्ध बताया है, परन्तु हम यह पता न लगा सके कि यह मठ या स्थान कहाँ है। दक्षिणका लकुलीश सम्प्रदाय भी प्राचीन और नवीन दो रूपोंमें बँटा हुआ है और कदाचित् इस सम्प्रदायवाले कालमुख या कारुणिक सिद्धान्तको मानते हैं। कहते हैं कि अपने सिद्धान्तको नष्ट होनेसे बचानेके लिये भगवान् लकुलीशने मुनिनाथ चिल्लुक-का अवतार धारण किया था। उनका सिद्धान्त नवीन लकुलीश सिद्धान्त कहलाता है।

५—लकुलीश पाशुपत मत

प्राचीन लकुलीश पाशुपतोंके सिद्धान्तका वर्णन सर्वदर्शनसङ्ग्रहमें सायणाचार्य्यने दिया है। इस दर्शनका सार यह है।

जीवमात्रकी "पशु" संज्ञा है। शिव "पशुपति" हैं। भगवान् पशुपतिने बिना किसी कारण, साधन या सहायताके इस संसारका निर्म्माण किया। अत. वे स्वतन्त्र कर्त्ता हैं। हमारे कर्म्मोंके भी मूलकर्त्ता परमेश्वर ही हैं। अतः पशुपति सब कार्य्योंके कारण हैं।

मुक्ति द्विधा है। (१) सब दु.खोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति। (२) पारमैश्वर्य्य प्राप्ति। परोक्ष भी द्विधा है। (१) दृक्शक्ति प्राप्ति। (२) क्रियाशक्ति प्राप्ति। पहलीसे सर्वज्ञता प्राप्त होती है, तो दूसरी क्रियाशक्तिसे इच्छित बात तुरन्त हो जाती है। इन दोनों शक्तियोंकी सिद्धि ही पारमैश्वर्य्य मुक्ति है।

भगवद्दासत्व-प्राप्ति मुक्ति नहीं है। बन्धन है।

इस दर्शनमें प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ये तीन प्रमाण माने गये हैं।

धर्म्मार्थसाधक व्यापारको "विधि" कहते हैं। विधि द्विधा है। "व्रत" और "द्वार"। भस्म-स्नान, भस्मशयन, जप, प्रदक्षिणा, उपहार आदि "व्रत" हैं। शिवका नाम लेकर हहाकर हँसना, गाल बजाना, गाना, नाचना, जप करना आदि "उपहार" हैं। व्रत एकान्तमें करना चाहिये। "द्वार"के अन्तर्गत क्राथन [= सोता हुआ न होकर भी सोता हुआ सा दीखना], स्पन्दन [= शरीरको उसी तरह झोंके खिलाना जैसे हवासे झोंके खाता है], मन्दन [= पागलकी तरह लड़खड़ाते हुए चलना], श्रृङ्गारण [= किसी सुन्दरीको देखकर कामार्त्त न होते हुए भी कामुकताप्रदर्शन], अवितत्करण [= अविवेकियोंकी तरह निन्द्य कर्म्मोंकी चेष्टा], और अवितद्भाषण [= अर्थहीन और व्याहत शब्दोंका उच्चारण] यह छः क्रियाएँ हैं।

६—कापालिक

कापालिकोंके सिद्धान्तोंका पता सर्वदर्शन-सङ्ग्रहमें नहीं है। ये शैवमत माननेवाले तान्त्रिक साधु होते हैं जो मनुष्यकी खोपड़ी लिये रहते हैं और मद्य-मांसादि खाते हैं। ये लोग भैरव वा शक्तिको बलि चढ़ाते हैं। पहले ये नर-बलि भी किया करते थे। गृहस्थोंमें इस मतका प्रचार नहीं देखा जाता। ये स्पष्ट ही वाममार्गी शैव होते हैं। श्मशानमें रहकर बड़ी बीभत्स रीतिसे उपासना करते हैं।

७—प्रत्यभिज्ञा दर्शन और रसेश्वर दर्शन

प्रत्यभिज्ञा दर्शनके अनुयायी काश्मीर देशके शैव होते हैं। इस दर्शनका सार यह है। महेश्वर ही जगत्के कारण और कार्य्य सभी कुछ हैं। यह सृष्टिमात्र शिवमय है। महेश्वर ही ज्ञाता और ज्ञानस्वरूप हैं। घटपटादिका ज्ञान भी शिवस्वरूप है। इस दर्शनके अनुसार पूजा पाठ जपतप आदिकी कोई आवश्यकता नहीं है। केवल इस प्रत्यभिज्ञा या इस ज्ञानकी आवश्यकता है कि जीव और ईश्वर एक हैं। इस ज्ञानकी प्राप्ति ही मुक्ति है। जीवात्मा परमात्मामें जो भेद दीखता है, वह भ्रम है। इसके माननेवाले कहते हैं कि जिस मनुष्यमें ज्ञान और क्रियाशक्ति है वही परमेश्वर है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शनके माननेवाले शैव काश्मीरमें हैं। उनमें किसी विशेष प्रकारकी क्रिया या साम्प्रदायिक रूप नहीं है।

पदार्थ-निर्णयके सम्बन्धमें प्रत्यभिज्ञा और रसेश्वर दोनों दर्शनोंके मत परस्पर समान हैं।

रसेश्वर दर्शनवाले पारेको रसेश्वर कहते हैं और इसीके द्वारा सब सिद्धियाँ और मुक्तिकी प्राप्ति भी बताते हैं। इस दर्शनके अनुयायी बहुत कम देख पड़ते हैं। इनका भी कोई सम्प्रदाय नहीं दीखता।

यह दर्शन शिवसूत्रोंपर निर्भर है जो शङ्कराचार्यके अद्वैतसिद्धान्तके पोषक हैं। परन्तु काश्मीरी शैव शङ्करस्वामीके अनुयायी नहीं कहे जाते। विक्रमकी दसवीं शताब्दीमें सोमानन्दने "शिवदृष्टि" नामक ग्रन्थ लिखकर इसकी अच्छी व्याख्या की।

श्रीकण्ठाचार्य्यका शिवाद्वैतवाद

विक्रमकी पाँचवीं शताब्दीमें श्रीकण्ठाचार्य्य नामके एक महान आचार्य हो गये हैं, जिन्होंने अद्वैतमतकी प्रबल आँधीके बीचमें भी अपने स्वतन्त्र मतकी स्थापना की। उनके मतका नाम विशिष्टाद्वैतवाद या शिवाद्वैतवाद है। श्रीरामानुजाचार्य्यके विशिष्टाद्वैतसे यह पृथक् है, परन्तु बहुत अंशोंमें उससे मिलता भी है। ये दोनों भक्तिप्रधान मत हैं। श्रीशङ्करके ज्ञानके मुकाबले सबसे पहले श्रीकण्ठने ही भक्तिको सबसे मानने रक्खा। परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि इससे पूर्व भारतमें यह मत था ही नहीं। अन्य मतोंकी तरह यह भी बहुत प्राचीन-कालसे प्रचलित था। आचार्य्य शङ्करने इस मतके आचार्य्योंको 'माहेश्वरा' लिखा है। श्रीकण्ठने भी अपने भाष्यमें प्रथम शैवाचार्य्य श्रीश्वेताचार्य्यको नमस्कार किया है। मालूम होता है कि श्रीकण्ठने साम्प्रदायिक ढङ्गसे ही इस मतकी शिक्षा प्राप्त की थी। श्रीकण्ठने इस मतको केवल अपनी अद्वितीय प्रतिभाके बलपर पुनः स्थापित किया और संसारके सामने रक्खा। उनके बाद अन्य आचार्योंने भी इसका प्रचार करनेकी चेष्टा की। श्रीकण्ठके सर्वप्रधान आचार्य्य होनेके नाते इस मतको श्रीकण्ठमत भी कहते हैं। इस मतमें भगवान् शिवको ही परम तत्त्व माना गया है और ब्रह्मसूत्रकी शिवपरक व्याख्या की गयी है, इसीसे इसका नाम शिवाद्वैतवाद पड़ा है। अब हम सङ्क्षेपमें इस मतके आचार्य्योंका परिचय देते हैं।

श्रीकण्ठाचार्य्य

श्रीकण्ठाचार्य्यके जीवनके सम्बन्धमें विशेष कोई बात नहीं मिलती। अनुमान होता है कि उनका जन्म कहीं दक्षिण भारतमें हुआ था और वे विक्रमकी पाँचवीं शताब्दीमें वर्त्तमान थे। कुछ लोगोंका मत है कि श्रीकण्ठ श्रीशङ्करसे भी पहले हुए थे, परन्तु यह बात उतनी प्रामाणिक नहीं मालूम होती। श्रीरामानुज, श्रीमध्व आदि सब आचार्योंसे तो वे अवश्य ही पहले हुए थे, परन्तु श्रीशङ्करसे वे बादमें ही हुए थे। श्रीकण्ठने स्पष्टरूपमें अपने भाष्यमें श्रीशङ्करमतका उल्लेख किया है और उसका खण्डन करनेकी चेष्टा की है। इससे मालूम होता है, वे श्रीशङ्करके बाद ही हुए थे। इसीसे आदि शङ्करका पांचवीं शताब्दीसे पहले होना भी निश्चित होता है।

श्रीकण्ठके विषयमें अप्पय दीक्षितने अपने ग्रन्थ 'शिवार्कमणिदीपिका'में लिखा है—

महापाशुपतज्ञानसम्प्रदायप्रवर्त्तकान् ।
अंशावतारानीशस्य योगाचार्यानुपास्महे ॥

इससे मालूम होता है कि श्रीकण्ठ एक महान् योगी थे और वे भगवान् शिवके अंशावतार माने जाते थे। उन्होंने ब्रह्मसूत्रपर जो शैवभाष्य लिखा है, उससे उनके अगाध पाण्डित्यका परिचय मिलता है। अप्पय दीक्षितने श्रीकण्ठको दहरविद्याका उपासक लिखा है। उनकी असाधारण शिवभक्ति भी उनके ग्रन्थोंमें सर्वत्र परिस्फुटित हुई है।

श्रीकण्ठने दो ग्रन्थोंकी रचना की—ब्रह्मसूत्रका भाष्य और मृगेन्द्रसंहिताकी वृत्ति। श्रीकण्ठका भाष्य ही शैवभाष्य कहलाता है। इस भाष्यके विषयमें स्वयं श्रीकण्ठने लिखा है—'मधुरो भाष्यसन्दर्भो महार्थो नातिविस्तरः।' वास्तवमें उस भाष्यकी भाषा बड़ी मधुर और प्राञ्जल है और वह सङ्क्षेपमें ही लिखा गया है।

मत

आचार्य श्रीकण्ठके मतानुसार शिव ही परम ब्रह्म हैं। शिवकी उपासना करनेसे ही मुक्ति मिलती है। ब्रह्मज्ञान वेदान्तशास्त्रगम्य है। जो तर्क श्रुतिके अनुकूल होता है, वह भी ब्रह्मज्ञान प्राप्त करानेमें सहायक होता है। ब्रह्मज्ञानद्वारा आत्यन्तिक सुख मिलता है और दुःखका सर्वथा नाश हो जाता है। अतएव ब्रह्मज्ञान ही परम पुरुषार्थ है।

ब्रह्मविचार करनेका अधिकारी—आचार्य्यके मतसे पहले वेदाध्ययन करना चाहिये और उसके बाद धर्म-विचार करना चाहिये। धर्म-विचार किये विना सिद्धि प्राप्त करना असम्भव है। ब्रह्म आराध्य हैं और धर्म आराधना है। धर्म-विचारके बाद ही ब्रह्म-विचार होता है। साधनाके विना साध्यकी मीमांसा नहीं हो सकती। फलकी कामनाका त्याग करके कर्म करनेसे पापका नाश होता है और पापके नाशसे चित्तशुद्धि होती है। तब बोध होता है। अतएव कर्म ज्ञानका हेतु है। आचार्य्यका सिद्धान्त है—

अतो यावदुत्पद्यते ज्ञानम् तावदनुष्ठेयानि कर्माणि।

ब्रह्मबोधके साधनरूप कर्मविचारके बाद ब्रह्मबोधक शास्त्रका आरम्भ करना चाहिये।

आचार्यके मतानुसार ज्ञान और कर्मका फल एक ही है, दोनोंका फल मुक्ति है। उनके मतसे निष्काम कर्मयोगके द्वारा चित्तशुद्धि होती है। शम, दम आदिका अनुष्ठान करनेसे शिवभक्ति उत्पन्न होती है। शिवभक्तिसे पूर्ण चित्त श्रुतिप्रतिपाद्य परम ब्रह्मको जानकर मुक्तिके लिये उसकी उपासना करता है। आचार्यकी रायमें ज्ञान और कर्मके समुच्चयसे मुक्ति होती है। यह बात शाङ्करमतके एकदम विरुद्ध है, परन्तु श्रीरामानुजके मतसे मिलती-जुलती है। श्रीरामानुजाचार्य भी ज्ञानकर्मसमुच्चयवादी हैं और कर्ममीमांसा तथा ब्रह्म-मीमांसाको एक ही शास्त्र मानते हैं। श्रीशङ्करके मतसे कर्म गौणरूपसे ज्ञानका साधन है। निष्काम कर्मसे चित्तशुद्धि होती है और फिर उसके फलस्वरूप ज्ञाननिष्ठाचारसे मुक्ति होती है। यहाँपर श्रीकण्ठने शाङ्करमतका खण्डन करके ज्ञानकर्मसमुच्चयकी स्थापना करनेकी चेष्टा की है।

विषय—आचार्यके मतसे ब्रह्म ही विषय है और ब्रह्मविचार ही परम पुरुषार्थ है।

सम्बन्ध—उपनिषद्के वाक्योंसे ही ब्रह्मज्ञान होना सम्भव है। इसलिये ब्रह्म प्रति-

पाद्य है और उपनिषद् वाक्य प्रतिपादक हैं। शिव ही परब्रह्म हैं और वही चिदचित् प्रपञ्चके रूपमें परिणत हुए हैं। वही अनुग्रह करके जीवको पुरुषार्थ प्रदान करते हैं। उनकी कृपासे ही जीव उनकी समानगुणता प्राप्त करता है। उनका प्रतिपादन करना ही उपनिषद्का तात्पर्य है।

प्रयोजन—श्रीकण्ठके मतमें जीवको पापोंसे मुक्त करना ही प्रयोजन है। नित्य निरतिशय ज्ञानानन्दस्वरूप ईश्वरके समान गुणप्राप्तिरूप कैवल्य ही प्रयोजन है। ईश्वरके प्रसादसे ही यह मुक्ति प्राप्त होती है। उपासनासे प्रसन्न होकर वह मुक्ति प्रदान करता है।

ब्रह्म—ब्रह्म सगुण और सविशेष है। उसकी महिमा अपार है, उसमें अनन्त शक्ति है, वह अनन्त ज्ञानानन्दादि शक्तिसे सम्पन्न है। पापका कलङ्क उसमें नहीं है। सृष्टि, स्थिति, प्रलय, तिरोभाव और अनुग्रहका कर्त्ता ब्रह्म है। चेतनाचेतन प्रपञ्चविलास उसीकी रचना है। वही चेतनाचेतन जगत्-रूपमें परिणत हुआ है। सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् शिव ही ब्रह्म हैं। वे जगत्के कारण हैं। भव, शर्व, शिव, पशुपति, परमेश्वर, महादेव, रुद्र, शम्भु आदि ब्रह्मके पर्यायवाची शब्द हैं। वे जीवको अभीष्टप्राप्ति करानेवाले मुक्ति देनेवाले हैं। ब्रह्म सर्वज्ञ, नित्य-तृप्त, अनादि, ज्ञानस्वरूप, स्वतन्त्र, अलुप्तशक्ति और अनन्तशक्ति हैं। उनके इन्द्रियादि बाह्य करण नहीं हैं, फिर भी वे समस्त वस्तुओंको नित्य देखते हैं। इसीसे वे सर्वज्ञ हैं और सर्वज्ञ होनेके कारण वे जीवोंको उनके कर्मानुसार भोग प्रदान करते हैं। वे इन्द्रियोंके द्वारा आनन्द नहीं भोगते, बल्कि मनके द्वारा भोगते हैं। समस्त प्रपञ्चके रूपमें परिणत होनेवाली शक्ति परमेश्वरकी चिच्छक्ति है। उनका ज्ञान स्वतः सिद्ध है।

आत्मा—श्रीकण्ठके मतसे आत्मा (जीव) अनादि, अज्ञानरूप वासनासे बद्ध, कर्म-फलसे नानाप्रकारके शरीर धारण करनेवाला, परवश है। आत्मा शरीरमें प्रवेश करता है और निकलता है, परन्तु वह विभु (निःसीम) और नाना प्रकारके ताप भोगनेवाला तथा नानाप्रकारका है। जीव चेतन है, जीव बद्ध है। जीवकी शक्ति परिच्छिन्न है। जीव कर्त्ता, भोक्ता है। उसका कर्तृत्व स्वाभाविक है, वह देहादिरूप नहीं है, प्रकाश्य भी नहीं है। जीवात्मा न अव्यापक है, न क्षणिक है, न एक है और न अकर्त्ता है। मुक्त जीवका भी अन्तः-करण होता है। मुक्त जीव ब्रह्मके समान ऐश्वर्य प्राप्त करता है। जीवके बन्धन कट जानेपर वह ब्रह्मके समान गुणवाला बन जाता है। जीवका आनन्द खण्डित है। पाश नष्ट होनेपर जब जीव ब्रह्मभावको प्राप्त होता है तब वह अपने अन्तःकरणमें असीम आनन्दका अनुभव करता है।

ब्रह्म और जगत् या सृष्टितत्त्व—आचार्य श्रीकण्ठके मतसे ब्रह्म ही जगत्का उपा-दान और निमित्त कारण है। उसकी परमा शक्तिमें जगत्का बीज निहित रहता है। सूक्ष्म-रूपसे वह कारण है। स्थूलरूप उसका कार्य है। सूक्ष्म चित्-और-अचित्-विशिष्ट ब्रह्म कारण है। स्थूल चित्-और-अचित्-विशिष्ट ब्रह्म कार्य है। आचार्यके मतसे ब्रह्म ही जगत् रूपमें परिणत हुआ है। ब्रह्मकी परमा शक्ति चिच्छक्ति है, चिच्छक्ति चिदाकाश है, चिदाकाश ही सब प्रपञ्चका कारण है। जन्म, स्थिति, प्रलय, तिरोभाव और अनुग्रह, ये पाँच ब्रह्मके कृत्यप्रपञ्चक हैं। अनन्त शक्तिके बलसे ही ब्रह्म कार्य और कारण बन जाता है। श्रीकण्ठ परिणामवादी हैं।

मुक्ति—आचार्य श्रीकण्ठके मतसे शिवत्वप्राप्ति ही मुक्ति है। शिवके समान ऐश्वर्य और असीम आनन्द प्राप्त करना मुक्ति है। उनके मतसे मुक्ति साध्य है और उपासनाका फल है। ब्रह्मको जानकर उपासना करनेसे मुक्ति होती है। ब्रह्मकी कृपासे मुक्ति मिलती है।

'तत्त्वमसि' वाक्य—श्रीकण्ठकी रायमें 'तत्त्वमसि' महावाक्य उपासनापरक है। 'तुम वह हो'—इस रूपमें उपासना करनी चाहिये।

वेद—श्रीकण्ठ वेदको अपौरुषेय मानते हैं। उनके मतसे वेद शिववाक्य है। वेद अभ्रान्त है। वेदान्त वाक्योंका समन्वय ब्रह्ममें ही होता है। केवल सिद्ध ब्रह्ममें ही वेदान्त-वाक्य पर्यवसित नहीं होते, वेदान्तवाक्य विधिका भी निर्देश करते हैं। उनके मतसे सब वेदान्तवाक्य ज्ञानोपासनाकी विधि प्रदान करते हैं। उनकी रायमें ब्रह्मज्ञानमें श्रुति ही प्रमाण है। अनुमान प्रमाण नहीं है। हाँ, श्रुतिके अनुकूल जो अनुमान है, उसे प्रमाणरूपमें लिया जा सकता है।

ब्रह्मविद्यामें शूद्राधिकार—आचार्य श्रीकण्ठ ब्रह्मविद्यामें शूद्रका अधिकार नहीं मानते। वे कहते हैं कि इतिहास, पुराण आदिको सुननेसे शूद्रको जो ज्ञान होता है, उससे उसके पापका नाश हो जाता है।

कर्म और ज्ञान—आचार्य श्रीकण्ठ कर्म और ज्ञानका समुच्चय करते हैं। उनके मत-से कर्म भी मुक्तिका कारण है। उनकी रायमें धर्ममीमांसा और ब्रह्ममीमांसा एक ही शास्त्र है। धर्ममीमांसा मुक्तिका उपाय, ब्रह्मप्राप्तिका उपाय, बतलाता है। पहले काम्य और निषिद्ध कर्मका त्याग करना चाहिये। फिर निष्काम कर्मयोगका आश्रय लेना चाहिये। उससे चित्त-शुद्धि होगी और उसके फलस्वरूप ज्ञान और भक्तिका उदय होगा। भक्ति दृढ़ होनेपर उपा-सना और उपासनासे मुक्ति प्राप्त होगी। उनके मतसे शास्त्रद्वारा ब्रह्मको जानकर उपासना करनेसे ईश्वरके साथ समानता प्राप्त होती है।

श्रीअघोर शिवाचार्य

श्रीअघोर शिवाचार्य श्रीकण्ठ मतके अनुयायी थे। वेदान्तसूत्रके ऊपर तो उन्होंने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा, परन्तु मृगेन्द्रसंहिताकी व्याख्या लिखी है। शैव मतमें उनका ग्रन्थ प्रामाणिक माना जाता है। श्रीविद्यारण्य मुनिने सर्वदर्शन-सङ्ग्रहमें शैवदर्शनके प्रसङ्गमें अघोर शिवाचार्यके मतको उद्धृत किया है। श्रीकण्ठने पाँचवीं शताब्दीमें जिस शैव मतको नव-जीवन प्रदान किया था, उसीको पुष्ट करनेकी चेष्टा अघोर शिवाचार्यने ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दीमें की। और कोई बात उनके विषयमें नहीं मिलती।

बहत्तरवाँ अध्याय

योग मत

१—नाथ-सम्प्रदाय

विक्रमकी सातवींसे नवीं शताब्दीके भीतर बौद्ध और हिन्दू तान्त्रिक वाममार्गकी उपासनामें एक हो रहे थे। बिहारमें विशेषतः यह सिद्धोंका काल था, और नालन्दा और विक्रमपुरके बौद्ध विश्वविद्यालय तो इनके केन्द्र थे। विक्रमपुरके विश्वविद्यालयकी स्थापना हालमें ही हुई थी और वहाँ तन्त्रविद्याकी गोपनीयता हटाकर खुल्लमखुल्ला मन्त्रयान, तन्त्रयान और वज्रयानका अध्ययन होने लगा और प्रायः सभी तान्त्रिक देवताओंके मन्दिर बन गये। वज्रयानका प्रचार भी प्राकृतमें, जनताकी भाषामें, होने लगा। इस तरह अनधिकारियोंमें रहस्यकी बातें फैलायी जाने लगीं। तन्त्रोंकी सांकेतिक भाषाके भ्रष्टार्थका प्रचार जनतामें होने लगा। बात यह है कि वाममार्गकी उपासना ऐसे गूढ़ शब्दोंमें बतायी जाती थी कि अधिकारी साधक ही उसके वास्तविक अर्थको समझ सकता था। प्राकृत भाषाओंमें होनेसे भ्रष्ट अनुवाद भी हुए और लोगोंने भ्रष्ट अर्थ भी लगाये। निदान पञ्चमकारका दूषित प्रचार हुआ। दुराचार फैलने लगा। तान्त्रिक सिद्धियोंका दुरुपयोग होने लगा। इस तरहके मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि घोर षट्कर्मोंकी आसाममें कामरूप और कामाक्षामें खूब बाढ़ आयी और उस समयके साधक इसीमें बहे। बिहार और आसामकी इस प्रवृत्तिका प्रभाव मशहूर चौरासी सिद्धोंपर अवश्य पड़ा होगा।

इन सिद्धोंमें सभी वर्णके लोग शामिल थे। अतः ब्राह्मणोंका ऊँचा आदर्श उनमें काम नहीं करता था। उनमेंसे किसी किसीको सुरापी और परस्त्रीगामी भी कहा जाता है। बहुत सम्भव है कि उनके आचरणपर सन्देह करके उन्हें ऐसी लाञ्छना लगायी जाती हो, क्योंकि उनमेंसे अनेक मांस-मद्यादि भी सेवन करते थे और किसी एक स्त्रीको महामुद्रा या माध्यम बनाकर उसकी सहायतासे वाममार्गीय उपचार करके यक्षिणी, डाकिनी, कर्णपिशाचिनी आदि सिद्ध करते थे। इन सिद्धियोंके द्वारा बड़े बड़े चमत्कार होते थे। यह सकाम उपासना थी। परन्तु सिद्धोंमें निष्काम उपासक भी थे। वे केवल निर्गुणमें ध्यान जमाकर शून्यतामें लीन हो जाते थे। विद्यालयोंमें कई ऐसे सिद्ध आचार्य्य भी थे और इनके शिष्योंमें कई बड़े विद्वान् और शक्तिमान् हो गये हैं। दीपङ्कर श्रीज्ञान जो प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु थे, वहाँके आचार्य्य सिद्ध नारोपाके (नारोपादके) शिष्य थे। नारोपाके गुरु थे सिद्ध तिलोपा। गोरखनाथजीके गुरु मत्स्येन्द्रनाथजी सिद्धमीनपाके पुत्र और सिद्ध जालन्धरपाके शिष्य बतलाये जाते हैं। इन सिद्धोंने अपने प्रिय तान्त्रिक विषयोंपर प्राचीन मगधी हिन्दीमें जो पद्य लिखे हैं वह हिन्दीकी सबसे प्राचीन पद्यरचना समझी जाती है।

इन तान्त्रिकों और सिद्धोंके चमत्कार प्रसिद्ध हो गये थे और जादूगरी बदनाम भी हो गयी थी। "कामरूकमच्छा" "बङ्गालेका जादू" आदि शब्द आज भी मशहूर हैं। यह

क्रियाएँ काफी बदनाम हो गयीं। ये शाक्त (सकट या साखत) मद्य-मांसादिके व्यवहारके लिये और सिद्ध तान्त्रिक आदि स्त्री-सम्बन्धी आचारोंके कारण घृणाकी दृष्टिसे देखे जाने लगे। इन कदाचारोंके साथ ही इन सिद्धों और साधकोंकी यौगिक क्रियाएँ भी डूब रही थीं। इन यौगिक क्रियाओंके उद्धारके लिये ही उस समय नाथ-सम्प्रदायकी सृष्टि हुई।

इस नाथ-सम्प्रदायकी परम्परामें नव नाथ प्रसिद्ध हैं। इसके प्रथम आचार्य्य आदि-नाथजी भगवान् शङ्करके अवतार समझे जाते हैं। अर्थात् और कई सम्प्रदायोंकी तरह इसके भी स्रष्टा स्वयं शिवजी हैं। ये आदिनाथ कब हुए यह ठीक नहीं कहा जा सकता। यदि यह सही है कि मत्स्येन्द्रनाथजी सिद्ध मीनपाके पुत्र थे, तो आदिनाथका समय विक्रमकी आठवीं शताब्दी मान ली जा सकती है। परन्तु वह सिद्ध जालन्धरपाके शिष्य बतलाये जाते हैं। शायद इन्हींका दूसरा नाम आदिनाथ हो। परन्तु परम्परामें तो निश्चय ही आदिनाथका नाम पहले आता है। आदिनाथके शिष्य मत्स्येन्द्रनाथ, मत्स्येन्द्रनाथके शिष्य गोरक्षनाथ बतलाये जाते हैं। इस बातके प्रमाण हैं महाराष्ट्रके प्रसिद्ध सन्त और नाथ-सम्प्रदायके एक आचार्य्य ज्ञानदेवजी जिन्होंने अपने वेदान्त ग्रन्थ "अमृतानुभव"में अपनी गुरुपरम्परा दी है। उनके बड़े भाई निवृत्तिनाथजी श्री गहिनीनाथके शिष्य हुए थे। श्री गहिनीनाथजी श्री गोरख-नाथजीके शिष्य थे। श्री ज्ञानेश्वरजीका जन्म संवत् १३८५में हुआ था। सं० १४०७में बाईस बरसकी ही अवस्थामें उन्होंने जीवित समाधि ले ली। अतः उनके गुरुके गुरु गोरखनाथजी अवश्य ही संवत् १३५०के पहलेके होंगे। वह मत्स्येन्द्रनाथजीके शिष्य थे, अतः उनका होना हम विक्रमकी दसवीं शताब्दीसे भी पहले मानें तो असङ्गत न होगा। मिश्रबन्धु आदि हिन्दी-साहित्यके प्रायः सभी इतिहास लेखकोंने गुरु गोरखनाथ महाराजका समय देनेमें कमसे कम पांच सौ बरसोंकी भूल की है।

नाथ-सम्प्रदायके नव नाथ मुख्य कहे गये हैं। गोरक्षनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, कारिण-नाथ, गहिनीनाथ, चर्पटनाथ, रेवणनाथ, नागनाथ, भर्तृनाथ, गोपीचन्द्रनाथ। गोरक्षनाथजी ही गोरखनाथके नामसे मशहूर हुए। इनका मुख्य स्थान गोरखपुरमें गोरक्षनाथजीका मन्दिर प्रसिद्ध है। यहाँ नाथ-पन्थी कनफटे योगी रहते हैं। उनके कानोंमें बड़े-बड़े छेद होते हैं जिसमें वे सींगके बड़े-बड़े कुण्डल पहनते हैं। कान छिदे होनेसे आंतों और अण्डकोशोंके बढ़नेका रोग नहीं होता और शायद साधनमें सहायता मिलती है। इन योगियोंके गलेमें काले ऊनका एक बटा हुआ डोरा होता है जिसे 'सेली' कहते हैं, इसमें सींगकी एक सीटी बँधी रहती है जिसे 'नाद' कहते हैं। हाथमें नारियलका खप्पर होता है।

इस सम्प्रदायके परम्परा-संस्थापक आदिनाथ स्वयं भगवान् शङ्कर माने जाते हैं। इनका सम्बन्ध रसेश्वरोंसे भी है और ये आगमोंमें आदिष्ट योगसाधन करते हैं। अतः इसे सबने शैव सम्प्रदाय माना है। परन्तु और शैवोंकी तरह न तो ये लिङ्गार्चन करते हैं और न शिवोपासनाके और अङ्गोंका निर्वाह करते हैं। तीर्थदेवता आदि मानते हैं। शिव-मन्दिरों और देवी-मन्दिरोंमें दर्शनार्थ जाते हैं। बालाजी और हिङ्गलाजके दर्शन विशेषतः करते हैं जिससे शाक्त-सम्बन्ध स्पष्ट है। योगी भस्म भी रमाते हैं, परन्तु भस्म-स्नानका एक विशेष तात्पर्य्य है। जब ये सब ओरसे वायुका आना रोकते हैं तो रोमकूपोंको भी भस्मसे ढक देते

हैं। प्राणायामकी क्रियामें यह महत्त्वकी युक्ति है। फिर भी यह शुद्ध योगसाधनवाला पन्थ है। इसीलिये हम इसे महाभारत-कालके योग-सम्प्रदायकी ही परम्पराके अन्तर्गत मानते हैं, विशेषतया इसलिये कि पाशुपत-सम्प्रदायसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं देख पड़ता। साथ ही योगसाधन तो इसका आदि मध्य और अन्त है। अतः यह शैव नहीं वरन् शुद्ध "योग-सम्प्रदाय" है।

इस पन्थवालोंका योगसाधन पातञ्जल विधिका विकसित रूप है। उसका दार्शनिक अंश छोड़कर हठयोग जोड़ देनेसे नाथ-पन्थकी योगक्रिया हो जाती है। नाथ-पन्थमें ऊर्ध्व-रेतस् होना सबसे अधिक महत्त्वकी बात है। फिर मांस मद्यादि सभी तामसिक भोजनोंका पूरा निषेध है। इस पन्थके योगी बाल-ब्रह्मचारी होते हैं। यह पन्थ चौरासी सिद्धोंके तान्त्रिक वज्रयानका सात्विक रूपमें परिणति प्रतीत होता है। वाममार्ग ईश्वरवादी होनेसे उसका भाव मानता था और बौद्ध-मत अनीश्वरवादी होनेसे "शून्य" या अभाव मानता था। श्रीगोरख-नाथने उसे वेदोंकी तरह सत् और असत् नाम और रूप दोनोंसे परे माना*—

वस्तीन शुन्यम् शुन्यम् न वस्ती अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिखर महँ बालक बोलहिं वाका नावँ धरहुगे कैसा॥
(गोरख सबद)

उनका तात्त्विक सिद्धान्त है कि परमात्मा "केवल" है। इसी परमात्मातक पहुँचना मोक्ष है। जीवका उससे चाहे जैसा सम्बन्ध माना जाय, परन्तु व्यावहारिक दृष्टिसे उससे सम्मिलन ही कैवल्य मोक्ष या योग है। इसकी इसी जीवनमें अनुभूति हो जाय, इस पन्थका यही लक्ष्य है। इस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये पहली सीढ़ी कायाको साधना है। कोई कायाको शत्रु समझकर भांति-भांतिके कष्ट देता है और कोई विषयवासनामें लिप्त होकर उसे बे लगाम छोड़ देता है। परन्तु नाथ-पन्थी कायाको परमात्माका आवास मानकर उसकी उप-युक्त साधना करता है। काया उसके लिये वह यन्त्र है जिसके द्वारा वह इसी जीवनमें मोक्षा-नुभूति कर लेता है, जन्म-मरण-जीवनपर पूरा अधिकार कर लेता है, जरामरण व्याधि और कालपर विजय पा जाता है।

इस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये वह पहले कायाशोधन करता है। इसके लिये वह यम, नियमके साथ हठयोगके षट्कर्म्म (नेति, धौति, वस्ति, नौलि, कपालभीति और त्राटक) करता है कि काया शुद्ध हो जाय। यह नाथ-पन्थियोंका आविष्कार नहीं है। हठयोगपर घेरण्ड ऋषिकी लिखी घेरण्डसंहिता एक प्राचीन ग्रन्थ है और परम्परासे इसकी शिक्षा बराबर होती आयी है। नाथ-पन्थियोंने उसी प्राचीन सात्विक प्रणालीका उद्धार किया है।

इस मतमें शुद्ध हठयोग तथा राजयोगकी साधनाएँ ही अनुशासित हैं। योगासन, नाड़ीज्ञान, षटचक्रनिरूपण तथा प्राणायामद्वारा समाधिकी प्राप्ति ही इसके मुख्य अङ्ग हैं। शारीरिक पुष्टि तथा पञ्चमहाभूतपर विजयकी सिद्धिके लिये रसविद्याका भी इस मतमें एक विशेष स्थान है।

---

* नासदासीन्नोसदासीव।

इस पन्थके योगी या तो जीवित समाधि लेते हैं या शरीर छोड़नेपर उन्हें समाधि दी जाती है। ये जलाये नहीं जाते। ज्ञानेश्वरजीने बाईस बरसकी अवस्थामें जीवित समाधि की। गुरु गोरखनाथजी, मत्स्येन्द्रनाथजी, भर्त्तृनाथजी, गोपीचन्द्रनाथजी, सभी अबतक जीवित और अमर समझे जाते हैं। कहते हैं कि कभी-कभी साधकोंको इनके दर्शन भी हो जाया करते हैं। इन योगियोंको चिरजीवन ही नहीं प्राप्त है, इन्हें चिरयौवन भी प्राप्त है। ये योग-बलसे नित्य किशोर रूप या सनकादिककी तरह नित्य बालरूपमें रहते हैं।

नाथ-पन्थी योगी अलख (अलक्ष) जगाते हैं। इसी शब्दसे इष्टदेवका ध्यान करते हैं, और इसीसे भिक्षा भी करते हैं। उनके शिष्य गुरुके "अलक्ष" कहनेपर "आदेश" कहकर सम्बोधनका उत्तर देते हैं। इन मन्त्रोंका लक्ष्य वही प्रणवरूपी परम पुरुष है जो वेदों और उपनिषदोंका ध्येय है।

नेपालके लोग मत्स्येन्द्रनाथके जैसे भक्त हैं वैसे ही गुरु गोरखनाथको भी मानते हैं। वह गोरखनाथजीको तो पशुपति नाथजीका अवतार मानते हैं। नैपालके भोगमती, भीतगावँ, मृगस्थली, चौधरी, स्वारीकोट, पिढठान आदि स्थानोंमें नाथ-पन्थके योगाश्रम हैं। आज भी नैपाल-राज्यके सिक्केपर "श्री श्रीगोरखनाथ" अङ्कित रहता है। उनकी शिष्यताके कारण ही नेपालियोंमें गोरखा जाति बन गयी है और एक प्रान्तका प्रान्त गोरखा कहलाता है। गोरख-पुरमें उन्होंने तपस्या की थी। वहाँ दर्शनोंको दूर-दूरसे नैपाली आते हैं। गोंढा जिलेमें पाटे श्वरीमें, महाराष्ट्रमें ओंध्या नागनाथके पास भी उनके आश्रम हैं।

नाथ-पन्थी जिन ग्रन्थोंको प्रमाण मानते हैं उनमें सबसे प्राचीन हठयोग सम्बन्धी ग्रन्थ घेरण्ड-संहिता और शिव-संहिता हैं। ये दोनों ग्रन्थ पाणिनि-कार्य्यालय प्रयागसे अङ्ग्रेजी भाषान्तर समेत प्रकाशित हुए हैं। गोरक्षनाथकृत "हठयोग",* "गोरक्षशतक",* "ज्ञाना-मृत",* "गोरक्षकल्प"† गोरक्ष-सहस्त्रनाम,† इन ग्रन्थोंके नाम अङ्ग्रेज ग्रन्थकारोंने दिये हैं। काशी नागरीप्रचारिणीकी खोजमें "चतुरशीत्यासन", "योगचिन्तामणि", "योगमहिमा", "योगमार्त्तण्ड", "योगसिद्धान्तपद्धति", "विवेकमार्त्तण्ड", और "सिद्ध-सिद्धान्तपद्धति" ये संस्कृत ग्रन्थ और मिले। सभाने गोरखनाथजीके ही लिखे हिन्दीके ३७ ग्रन्थ खोज निकाले हैं जिनमेंसे मुख्य ये हैं—(१) गोरखबोध, (२) दत्त-गोरख-संवाद, (३) गोरखनाथजीरा पद, (४) गोरखनाथजीके स्फुट ग्रन्थ, (५) ज्ञानसिद्धान्तयोग, (६) ज्ञानतिलक, (७) योगेश्वरी-साखी, (८) नरवैबोध, (९) विराटपुराण, (१०) गोरखसार।

२—चरनदासी पन्थ

यह योगका दूसरा पन्थ है। नाथ-सम्प्रदाय जैसे शैव समझा जाता है, वैसे ही चरनदासी पन्थ वैष्णव समझा जाता है। परन्तु इसका मुख्य साधन हठयोग-संवलित-राजयोग है। उपासनामें ये राधाकृष्णकी भक्ति करते हैं. परन्तु योगकी मुख्यता होनेसे हम इसे योग-मतका ही एक पन्थ मानते हैं। इस पन्थके प्रथमाचार्य्य शुकदेवजी हैं। चरणदासजी लिखते हैं कि उन्हें श्रीशुकदेवजीके दर्शन हुए और उन्होंने श्रीचरणदासको अपना शिष्य बनाया और

---

* हाल, १५ (अंग्रेजी)। † विलसनके सेक्ट्सके प्रमाणसे।

योगकी शिक्षा दी। श्रीचरणदासजी भार्गव ब्राह्मण थे। अलवरके रहनेवाले थे। फिर दिल्लीमें रहने लगे। इनकी दो शिष्याएँ थीं, सहजोबाई और दयाबाई। दोनोंने योग-सम्बन्धी पद्य-ग्रन्थ लिखे हैं। श्रीचरणदासजीका जन्म-समय श्रीकाशी नागरीप्रचारिणी सभाकी खोजके अनुसार संवत् १७६० है और ७८ वर्षकी अवस्थामें संवत् १८३८में इनका परमपद हुआ।

खोजमें इनके ये ग्रन्थ मिले हैं—

१—अष्टाङ्गयोग। २—नर-साकेत। ३—सन्देहसागर। ४—भक्तिसागर।
५—हरिप्रकाश टीका (१८३४)। ६—अमरलोक खण्ड धाम। (७) भक्तिपदारथ।
८—शब्द। ९—दानलीला। १०—मनविरक्तकरन गुटका। ११—राममाला।
१२—ज्ञानस्वरोदय।

३—शब्दा तवाद और योगमत

किसी-न-किसी रूपमें सभी योगमतवाले शब्दकी उपासना करते हैं। शब्दकी उपासना अत्यन्त प्राचीन है। प्रणवके रूपमें इसका मूल तो वेदमन्त्रोंमें ही मौजूद है। इसका प्राचीन नाम प्रणववाद या स्फोटवाद है।

प्राचीन योगियोंमें भर्तृहरिने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "वाक्यपदीय"में शब्दाद्वैतवादका प्रवर्त्तन किया। नाथ-सम्प्रदायमें भी शब्दपर जोर दिया गया है। चरनदासके पन्थमें भी शब्दको प्राधान्य है। इधरके राधास्वामी मततक, योगसाधन ही जिनका लक्ष्य है, शब्दकी ही उपासना करते हैं। इसलिये शब्दाद्वैतका दिग्दर्शन इस स्थलपर आवश्यक है।

शब्दाद्वैतवाद

इस सिद्धान्तके बीज ऋग्वेद तथा अन्य संहिताओंके मन्त्रोंमें पाये जाते हैं। उपनिषदोंमें ओङ्कारप्रशस्ति पायी जाती है और माण्डूक्योपनिषद्में प्रणवोपासनाकी विस्तृत व्याख्या है—

(१) 'प्रणव एवैकस्त्रिधाभिव्यज्यत'
(२) 'वाचमुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे'

इस दर्शनका सङ्केत पाणिनीय सूत्रोंमें है, विशेषतः इस सूत्रमें, 'तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात्' यह निर्धारण किया गया है कि शब्दव्यवहार अनादि और सनातन है। अपने संस्कृतके व्याकरणग्रन्थ 'सङ्ग्रह'में, जो अब लभ्य नहीं है, व्याळि शब्दाद्वैत सिद्धान्तका विचार बड़ी कुशलतासे करते हैं, और इस ग्रन्थसे उसके पीछे होनेवाले वैयाकरण कात्यायन तथा पतञ्जलि अपने ग्रन्थोंकी बहुत सामग्री लेते हैं। कात्यायनके वार्त्तिक, 'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे' इत्यादिमें इस वादके सभी मुख्य सिद्धान्त आ जाते हैं और वार्त्तिककी पूर्ण व्याख्या पतञ्जलिके महाभाष्यमें हुई है। 'स्फोट' शब्द सबसे पहले हमें महाभाष्यमें मिलता है—'स्फोटमात्रमादरश्रुतेर्लश्रुतिर्भवति' और 'ध्वनिः स्फोटस्य शब्दानां ध्वनिस्तु खलु लक्ष्यते'। और पहली वार इसकी परिभाषा इस प्रसिद्ध वाक्यमें हमें मिलती है—

येनोच्चारितेन सास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाणिनां सम्प्रत्ययो भवति स शब्दः।

भर्तृहरि सर्वप्रथम दार्शनिक थे जिन्होंने इस सिद्धान्तको अपने वाक्यपदीय-ब्रह्म-काण्डमें शास्त्रीय रूप दिया। भर्तृहरिके पश्चात् भर्तृमित्र हुए, जिनका स्फोटपर ग्रन्थ 'स्फोट-सिद्धि' आजकल लभ्य है। इसके बाद इस सिद्धान्तका पूर्ण वर्णन एवं व्याख्या पुण्यराज और कैयटके भाष्यों तथा नागेशके उद्योतमें मिलता है। नागेश सत्रहवीं शताब्दीमें हुए थे। ये शब्दाद्वैतके कट्टर प्रतिपादक हैं, इसका सर्वाङ्गीण प्रतिपादन ये अपनी मञ्जूषामें करते हैं।

शब्द—सब दृश्य पदार्थ कल्पना, अथवा साधारण भाषामें विचारोंकी प्रतिच्छाया वा प्रतिबिम्ब, हैं। यह सम्पूर्ण बाह्य जगत् सत् नहीं, अवास्तविक है। ठीक यही मत उपनिषदोंका भी है—

वाचारम्भणम् विकारो नामधेयम् मृत्तिकेत्येव सत्यम्।

शब्दके बिना कोई बोध ही नहीं, क्योंकि दोनों अविभेद्य हैं। यही नहीं, शब्दके अभावमें ज्ञानका स्वयं प्रकाशत्व ही लुप्त हो जाता है—

वाग्रूपता चेदुत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती।
न प्रकाशः प्रकाश्येत सा हि प्रत्यवमर्शिनी॥

इस शब्दके अभावमें हमारी सारी क्रियाएँ बन्द हो जायँगी और हमारी अवस्था पत्थर और काठसे अच्छी न रहेगी—

'तदुत्क्रान्तौ विसंज्ञोऽयम् दृश्यते कुड्यकाष्ठवत्।'
इदमन्धम् तमः कृत्स्नम् जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयम् ज्योतिरासंसारम् न दीप्यते॥ (दण्डी)

भर्तृहरि कहते हैं कि हमारी वागिन्द्रियोंका प्रथम समायोग, श्वासका निष्क्रमण और अङ्गोंका सञ्चालन भी तभी होता है जब पूर्व संस्कारोंसे बच्चेको शब्दकी स्मृति होती है। इससे वे यह प्रतिपादन करते हैं कि शब्दव्यवहार नित्य एवं अनादि है, क्योंकि यदि ऐसा न हो तो बच्चा अपनेको व्यक्त करनेके लिये शब्दकी शरण न ले। इस प्रकार भर्तृहरि सिद्ध करते हैं कि शब्द सर्वव्यापक और नित्य है। किन्तु इतना ही नहीं। भारतीय वैयाकरण और आगे बढ़कर कहते हैं कि प्रत्येक वर्त्तमान वस्तु शब्दद्वारा व्यक्त की जा सकती है, इसके विरुद्ध कोई वस्तु जो शब्दद्वारा व्यक्त नहीं की जा सकती अविद्यमान है (यद्वर्त्तते तद्व्यपदेश्यं यन्न व्यपदिश्यते तन्नास्ति)। शब्दकी शक्ति अव्याख्येय है, क्योंकि यह शब्द ही है जो हमें, क्षणमात्रहीके लिये सही, शशविषाण और आकाशकुसुमकी अभिव्यक्ति करा देता है, यद्यपि ये पदार्थ सर्वथा असत्य हैं—

अत्यन्तमतथाभूते निमित्ते श्रुत्युपाश्रये।
दृश्यतेऽलातचक्रादौ वस्त्वाकारनिरूपणा॥

इस प्रकार वैयाकरणोंके अनुसार शब्दका आधिपत्य स्थापित करके हमें देखना चाहिये कि हमारे प्रतिदिनके व्यवहारके शब्दोंमें, और नामरूपात्मक जगत्के अतिरिक्त, कौनसी शक्ति है, और हमें भूमण्डलपर स्फोट जैसे पदार्थको स्वीकार करना चाहिये, या नहीं?

शब्दसे ही हमें ज्ञान होता है। इस प्रकार उदाहरणार्थ, 'गौ' शब्द 'गौ' पदार्थका बोध कराता है। अब हमें इस प्रश्नपर विचार करना है—इस 'गौ' शब्दमें क्या है जो हमें

'गौ' पदार्थका ज्ञान कराता है ? क्या ध्वनिसे ही ऐसा होता है ? और यदि ऐसा है तो क्या अन्तिम, प्रथम अथवा मध्यम ध्वनिसे होता है ? क्योंकि यह शब्द तीन ध्वनियोंसे बना है— ग्+औ+ः। हम यह नहीं कह सकते कि इनमेंसे कोई अकेला उस पदार्थका ग्रहण कराता है, क्योंकि ऐसा माननेपर अन्य ध्वनियाँ व्यर्थ होंगी, हमें इस एक ध्वनिसे अर्थकी प्राप्ति हो जाती है। न तो हम यही कह सकते हैं कि ये तीनों ध्वनियाँ मिलकर बोध कराती हैं, क्योंकि नैयायिकोंके अनुसार यह स्वीकृत सिद्धान्त है कि शब्द अधिकसे अधिक दो क्षणसे ज्यादा नहीं ठहर सकते। ऐसा माननेपर प्रथम ध्वनि अन्तिम ध्वनिके उच्चारणतक नष्ट हो जायगी (इन ध्वनियोंके उच्चारणमें कुछ अभ्यन्तरकाल मानना ही पड़ेगा) और इसलिये इन ध्वनियोंकी एकता हमें नहीं मिलेगी। अतएव नैयायिकोंका यह कथन है कि अन्तिम ध्वनिकी अनुभूति दो शब्दोंकी अनुभूतिसे उत्पन्न संस्कारके साथ अर्थको प्रकट करती है। अब उपर्युक्त कठिनाई तो दूर हो जाती है, परन्तु हमारे मार्गमें एक दूसरी कठिनाई आ उपस्थित होती है। वैयाकरण और आधुनिक भाषा-विज्ञानी इस कथनमें एकमत हैं कि वाक्य ही भाषाकी इकाई है और इसमें हमें एक विधान करनेके लिये प्रतिज्ञाओंकी एकता होनी चाहिये। दूसरे शब्दोंमें वाचकताके अधिष्ठानमें अवश्यमेव एकता होनी चाहिये, जिसको हम दो विभिन्न पदार्थोंमें— अर्थात् (१) अन्तिम वर्ण (२) पूर्व ध्वनिके संस्कारमें—नहीं पा सकते। इस तरह नैयायिकोंका सिद्धान्त सदोष सिद्ध होता है। हमें देखना है कि मीमांसक इस विषयपर क्या कहते हैं।

मीमांसकोंके अनुसार वर्ण नित्य हैं और ध्वनिसे व्यक्त होते हैं। अर्थप्रत्यायकत्व-प्रक्रिया तो नैयायिकों-जैसी है, किन्तु वर्णोंकी ऐक्यानुभूतिमें हमें कोई कठिनाई नहीं मालूम होती, कारण कि सभी वर्ण नित्य हैं, फिर भी यह आपत्ति होती है कि इन वर्णोंकी अनुभूति क्षणिक है और इस दशामें उन सबोंकी एकता शक्य नहीं है। इसलिये इन सभी कठिनाइयोंको दूर करनेके लिये वैयाकरणने स्फोटको वाचकताका अधिष्ठान माना और इस सिद्धान्तको शृङ्खलाबद्ध किया। यह स्फोट विभिन्न शब्दों और अर्थोंमें व्यक्त होता है। यही स्फोटवाद है।

सार—यह संसार अर्थोंसे बना है और इस प्रकार वास्तविक नहीं है। यह शब्द ही है जो हमें अर्थज्ञान देता है, और हम कह नहीं सकते कि जो ध्वनि हमारे मुँहसे निकलती है, वह वाचकताका अधिष्ठान है। मीमांसक और नैयायिक दोनों वाचकताके अधिष्ठानकी सन्तोषजनक व्याख्या करनेमें असफल रहे, इसलिये वैयाकरणोंके अनुसार इन सबको एक नित्य आधार मानना पड़ता है, और यह आधार प्रणव है, जिसकी सारा विश्व अभिव्यक्ति है।

यह शब्द-तत्त्व विश्वका कारण है, और इसकी एकता शाङ्कर अद्वैतके ब्रह्मसे की जाती है। केवल शुद्ध ब्रह्मके बदले शब्दब्रह्मका प्रयोग करते हैं। इस प्रकार वर्त्तमानसे प्रारम्भ करके उसके उद्गमका पता लगाते हुए हम उपर्युक्त निष्कर्षपर पहुँचे हैं। कोई नहीं कह सकता है कि यह सब शब्दजाल और अप्रामाणिक कल्पना है, क्योंकि वेद भी इसी तत्त्वका प्रतिपादन करते हैं कि इस विश्वका शब्द ही कारण है—

वागेवार्थम् पश्यति वाग्ब्रवीति वागेवार्थम् सन्निहितम् सन्तनोति ।
वाचैव विश्वम् बहुरूपम् निबद्धम् तदेतदेकम् प्रविभज्योपभुङ्क्ते ॥

और—

वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे वाच इत्सर्वममृतम् मर्त्यम् च।

यहाँ श्रुति कह रही है कि विश्व शब्दसे विकसित हुआ। शङ्करके इस पदसे—

सुवर्णाज्जायमानस्य सुवर्णत्वम् हि निश्चितम्।
ब्रह्मणो जायमानस्य ब्रह्मत्वम् च सुनिश्चितम्॥

—निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि यह विश्व नामरूपात्मकके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

थोड़े परिवर्तनके साथ सभी सम्प्रदायके विचारकोंने शब्दाद्वैतके सिद्धान्तको स्वीकार किया है। वेदोंके अपौरुषेयत्वकी व्याख्याके लिये, मीमांसकोंके द्वारा ऐसा मानना अनिवार्य है, किन्तु वे यह प्रतिज्ञा करके सन्तोष कर लेते हैं कि शब्द और वर्ण एक ही हैं, जो नित्य हैं। यहाँतक कि शङ्कराचार्य भी यह मानते हैं कि संसारकी रचना शब्दसे हुई है, जो उनके अनुसार, उपादानकारण है—

न चेदम् शब्दप्रभवत्वम् ब्रह्मप्रभवत्ववदुपादानकारणत्वाभिप्रायेण।...... चिकीर्षितमर्थमनुतिष्ठंस्तस्य वाचकम् शब्दम् पूर्वम् स्मृत्वा पश्चात् तमर्थमनुतिष्ठतीति सर्वेषां नः प्रत्यक्षमेतत्। तथा प्रजापतेरपि स्रष्टुः सृष्टेः प्राग् वैदिकाः शब्दा मनसि प्रादुर्बभूवुः पश्चात् तदनुगतार्थान् ससर्जेति गम्यते।

(ब्रह्मसूत्र १।३।२८)

यह ध्यान देनेकी बात है कि शङ्कराचार्यका शब्द स्फोट नहीं अपितु मीमांसकोंका वर्ण है—

'वर्णा एव तु न शब्द इति भगवानुपवर्षः।'' '''स्फोटवादिनस्तु दृष्टहानिरदृष्टकल्पनाच्च।'

वे और भी कहते हैं—

'नित्येभ्यः शब्देभ्यो देवादिव्यक्तीनां प्रभव इत्यविरुद्धम्।'

ऋषियोंने वाक्को उत्पन्न नहीं किया, किन्तु जो वाक् पहलेसे वर्त्तमान थी उसीको प्राप्त किया। विश्वनिर्माण करनेवाले शब्दके इस स्वरूपकी व्याख्या भर्तृहरिने अपने वाक्यपदीयमें इस प्रकार की है—

अनादिनिधनम् ब्रह्म शब्दतत्त्वम् यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥
अव्याहता कला यस्य कालशक्तिमुपाश्रिताः।
जन्मादयो विकारः षड्भावा भेदस्य योनयः॥
एकस्य सर्ववीजस्य यस्य चेयमनेकधा।
भोक्तृभोक्तव्यरूपेण भोगरूपेण च स्थितिः॥

यह ध्यान देनेकी बात है कि विश्व शब्दब्रह्मका विवर्त्त है, परिणाम नहीं, और आरम्भवादका तो इसमें बिल्कुल समावेश ही नहीं है। शब्द और अर्थके बीचमें नित्य सम्बन्ध है—

सम्बन्धस्य न कर्तास्ति शब्दानां लोकवेदयोः ।
शब्दैरेव हि शब्दानां सम्बन्धः स्यात् कृतः कथम् ॥
(व्यालि, सङ्ग्रह)

शब्दब्रह्मकी अनुभूति कैसे हो सकती है, अब इस प्रश्नका उत्तर देना है। उत्तर देनेके पहले यह जानना आवश्यक है कि शब्दके चार रूप हैं—

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥
(ऋग्वेद १ । १६४ । १०)

ये चार रूप परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी हैं। इनमेंसे परा मूलाधारमें है, पश्यन्ती नाभिमें, मध्यमा हृदयाकाशमें और जो हम सुनते अथवा बोलते हैं वह वैखरी है। प्रथम तीन तो अति-प्राकृत-शक्तिवाले योगियोंको ही मालूम हैं। जिस किसीको वाक् दर्शन देना चाहती है, वही उसको जान सकता है—

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्त्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥

नागेशने अपनी मञ्जूषामें इन सबकी विशद व्याख्या की है। पुण्यराजने अपने भाष्यमें ये श्लोक दिये हैं—

प्राणवृत्तिमतिक्रान्ते वाचस्तत्त्वे व्यवस्थितः ।
क्रमसंहारयोगेन संहृत्यात्मानमात्मनि ॥
वाचः संस्कारमाधाय वाचः स्थाने निवेश्य च ।
विभज्य बन्धनान्यस्याः कृत्वा तां छिन्नबन्धनाम् ॥
ज्योतिरान्तरमासाद्य छिन्नग्रन्थिपरिग्रहम् ।
परेण ज्योतिषैकत्वम् छित्त्वा ग्रन्थीन् प्रपद्यते ॥

शब्दब्रह्मकी अनुभूतिमें प्रणवोपासन ('नेदिष्ठं ब्रह्मणो यदोङ्कार इति'), योग और शुद्ध भाषण सहायक हैं। शब्दका यही दर्शन है।

तिहत्तरवाँ अध्याय

गाणपत्य और सौर मत

१—गाणपत्य मत

ऋग्वेद-संहिता (२।२३।१) वाजसनेय-संहितामें (१६।२२।२३) गणपतिका स्तवन है और गणेश अथर्वशीर्ष, वरदतापनीय उपनिषद्, गणपति उपनिषद्, श्रुतिके अङ्ग ही हैं। अग्निपुराणमें अध्याय ७१, तथा ३१३, गरुडपुराणमें अध्याय २४ गणेश विषयक हैं। गणेश उपपुराण और मुद्गल उपपुराण और गणेश-संहिता तो गाणपत्य-सम्प्रदायके उपपुराण हैं ही। इन सबमें भगवान् गणपतिकी अनेक कथाएँ दी हुई हैं।

रुद्रके मरुदादि असंख्यगण प्रसिद्ध हैं। इन गणोंके नायक वा पतिको विनायक वा गणपति कहते हैं। महाभारतके अनुशासनपर्वमें १५१वें अध्यायमें गणेश्वरों और विनायकोंका स्तुतिसे प्रसन्न हो जाना और पातकोंसे रक्षा करना वर्णित है। इस नाते गजानन और षडानन दोनों गणाधीश हैं और भगवान् शङ्करके पुत्र हैं। परन्तु गजानन तो परात्पर ब्रह्मके अवतार माने जाते हैं, और परात्पर ब्रह्मका नाम "महागणाधिपति" कहा गया है। भाव यह है कि महा गणाधिपतिने ही अपनी इच्छासे अनन्त विश्व और प्रत्येक विश्वमें अनन्त ब्रह्माण्ड रचे और हर ब्रह्माण्डमें अपने अंशसे त्रिमूर्त्ति प्रकट की। इसी दृष्टिसे सभी सम्प्रदायोंके हिन्दुओंमें सभी मङ्गल कार्य्योंके आरम्भमें गौरी गणेशकी पूजा सबसे पहले होती है। यात्राके आरम्भमें गौरी-गणेशका स्मरण किया जाता है, पुस्तक, पत्र वही आदि किसी लेखके आरम्भमें पहले "श्रीगणेशायनम." लिखनेका पुराना दस्तूर चला आता है। महाराष्ट्रमें गणपति-पूजा भाद्रपद शुक्ल चतुर्थीको बड़े समारोहसे हुआ करती है और गणेश चतुर्थीके व्रत तो सारे भारतमें मान्य हैं। गणपति-विनायकके मन्दिर भी भारतव्यापी हैं और गणेशजी आदि देव और अनादि देव माने जाते हैं।

इन सब बातोंसे यह स्पष्ट होता है कि किसी समय गणपतिकी उपासना भारतमें व्यापक रही होगी।

मानव गृह्यसूत्रमें (२।१४) शालकटङ्कट, कूष्माण्ड राजपुत्र, उस्मित और देवयजन नामके चार विनायकोंकी चर्चा है। ये विनायक विघ्न डालते हैं। जिन्हें ये सताते हैं, वे व्यर्थके काम करते हैं, जैसे मिट्टीके ढेले पीसना, घास काटना, अपने शरीरपर लिखना आदि। सपनेमें उन्हें जल, मुण्डित सिरवाले मनुष्य, ऊँट, सूअर आदि दीखते हैं, हवामें उड़ते हैं और चलते हैं तो कोई पीछा करता दीखता है। विनायकोंके सताये योग्य होते हुए भी मनचाहा काम नहीं कर सकते। इन वैनायिकी तापोंसे बचनेके उपाय भी सूत्रोंमें बताये गये हैं। याज्ञवल्क्य स्मृतिके पहले अध्यायमें यही बातें अधिक विस्तारसे दी गयी हैं। इस स्मृतिके अनुसार ब्रह्मा और रुद्रने विनायकको गणाधिप बनाया और इनके मित, सम्मित, शाल,

कटङ्कट, कूष्माण्ड और राजपुत्र ये छः नाम हैं। सृष्टिके आरम्भमें उसके विस्तारके लिये, क्रियाके साथ प्रतिक्रिया उत्पन्न करनेके लिये, सफलताके अर्थ विशेष प्रयत्नकी ओर उत्कट प्रेरणाके लिये, प्रवृत्तिमार्गमें विशेष उत्तेजना और प्रेरणा पैदा करनेके लिये, मरुत्, रुद्र आदि देवताओंकी सृष्टि हुई और इनके गणोंके स्वामी बननेके लिये महागणाधिपति परमात्माने विनायकका अवतार धारण किया और गणपति हुए। इस निरन्तरके विघ्नसे बचनेके लिये हर कामके शुरूमें गणपतिका स्मरण ध्यान पूजन आदि करना आवश्यक हुआ कि विघ्न करनेके बदले कार्य्यकी सिद्धिमें सहायता पहुँचावें। स्कन्द भी इसी प्रकार गणाधिपति हुए परन्तु जहाँ गणपतिका काम विश्वभरके कामोंमें बाधा डालनेका हुआ, वहाँ स्कन्दको देवपक्ष लेकर असुर पक्षसे लोहा लेनेका हुआ। विश्वके काममें बाधा और उत्पात शङ्कर-शिशुओंका सहज विनोद है।

शङ्कर दिग्विजयमें आनन्दगिरिने और धनपतिने माधवके दिग्विजयके भाष्यमें गाणपत्य-सम्प्रदायकी छः शाखाओंका वर्णन किया है।

(१) महागणाधिपतिके उपासक उन्हें महाब्रह्मा वा स्रष्टा मानते हैं। प्रलयके बाद महागणपति ही रह जाते हैं और आरम्भमें वे ही फिरसे सृष्टि करते हैं।

(२) गणपति कुमार-सम्प्रदायवाले हरिद्रा गणपतिको पूजते हैं। वे भी अपने उपास्य देवको परब्रह्म परमात्मा ही मानते हैं और ऋग्वेद दूसरे मण्डलके २३वें सूक्तको प्रमाण मानते हैं।

(३) हेरम्बसुत-सम्प्रदायवाले उच्छिष्ट गणपतिकी उपासना करते हैं। ये वाममार्गी हैं। इस सम्प्रदायमें वर्णाश्रम धर्म्मका बन्धन नहीं है। विवाह-संस्कारका भी बन्धन नहीं है। पञ्चमकारके बीभत्स रूपका इस सम्प्रदायमें प्रचार है। सन्ध्या वन्दनादि भी आवश्यक नहीं हैं।

(४-६) नवनीत, स्वर्ण और सन्तान ये तीन गणपतियोंके उपासक अपनेको श्रुतिमार्गी कहते हैं और गणपतिको सर्वोपरि परात्पर ब्रह्मके रूपमें ही मानते हैं। वह विश्वको भगवान् गणेशका प्रतीक मानते हैं और सभी देवताओंको उनका अंश मानते हैं।

यह वर्णन हम यहाँ शङ्कर-दिग्विजयके आधारपर देते हैं। इन सम्प्रदायोंके गाणपत्य देखनेमें नहीं आते। इनका प्रचार सम्प्रदाय रूपमें आजकल कहीं सुननेमें नहीं आता।

हेमाद्रिके व्रत-खण्डमें स्कन्दकी पूजा और व्रतादिके विधान दिये हुए हैं और स्कन्द और सुब्रह्मण्यके मन्दिर और मूर्त्तियाँ दक्षिणमें बहुत हैं और उपासना भी होती है, परन्तु सम्प्रदाय रूपमें कहीं विशेषतया देखनेमें नहीं आती।

२—सौर मत

सम्प्रदायोंके बीजारोपणके अत्यन्त पूर्व कालमें भारतवर्षमें सूर्य्यकी उपासना प्रचलित थी। वेदोंमें सूर्य्य भगवान्के असङ्ख्य मन्त्र इस बातके गवाह हैं। आज भी सनातन विधिसे सन्ध्योपासन करनेवाला चाहे वह किसी मत वा सम्प्रदायका क्यों न हो दिनमें तीन बार सूर्य्यको अर्घ्य देता है और स्तुति और परिक्रमा करता है। ऋग्वेदमें [मण्डल ७, सू० ६०–१,

६२–२], कौशीतकी ब्राह्मण उपनिषत्में [२।७] आश्वलायन गृह्यसूत्रमें और तैत्तिरीय आरण्यकमें, सूर्य्योपासनाके स्तोत्र, विधियाँ, उपनयन संस्कारकी रीति दी हुई है, जिससे आर्य्यमात्रमें सूर्य्योपासनाकी प्राचीनता और व्यापकता सिद्ध है।

आनन्दगिरिने शङ्कर दिग्विजयमें लिखा है कि दक्षिणमें शङ्करस्वामीकी दिवाकर नामक एक सौराचार्य्यसे सुब्रह्मण्य नामक ग्राममें भेंट हुई थी। दिवाकरके अनुसार सौर मतका सिद्धान्त है कि परब्रह्म सूर्य्य ही जगत्के स्रष्टा हैं और सौर सम्प्रदायवाले उन्हींकी उपासना करते हैं। सौर सम्प्रदायकी छः शाखाएँ हैं। सभी लाल चन्दनका तिलक लगाते हैं, लाल फूलोंकी माला पहनते हैं, और अष्टाक्षर मन्त्र जपते हैं। कोई ब्रह्मा कोई विष्णु और कोई शिव रूपसे उपासना करते हैं, और कोई त्रिमूर्त्ति रूपसे भगवान् भास्करकी उपासना करते हैं। पांचवें, सूर्य्य बिम्बके नित्य दर्शन करते और उसीमें परमात्माका ध्यान करते हैं, षोडशोपचार पूजा करते हैं और सूर्य्यके दर्शन बिना अन्न नहीं ग्रहण करते। छठी शाखावाले सूर्य्यकी मूर्त्तिका अपने माथेपर और बाहु आदिपर भी तप्त अङ्कन कराते हैं और सूर्य्यका निरन्तर ध्यान करते हैं। ये छहों अष्टाक्षर मन्त्रका जप करते हैं। पुरुषसूक्त और शतरुद्रीयके मन्त्रोंका सूर्य्यपरक अर्थ लगाते हैं और सूर्य्यकी उपासना और सूर्य्य-मन्त्रके जप आदिको ही मोक्षका साधन मानते हैं।

ये छः सम्प्रदाय प्राचीन वैदिक सम्प्रदाय हैं और शुद्ध भारतीय हैं। इनका प्रचार थोड़ा बहुत शङ्करस्वामीके समयतक केवल दक्षिणमें बचा-खुचा रहा होगा। आज सौर मतकी छहों शाखाओंमेंसे एक भी कहीं देखनेमें नहीं आती। शङ्करस्वामीके समयमें भी दिवाकरके दर्शन सुदूर दक्षिणमें ही होते हैं। सम्भवतः दिवाकर भी बचे-खुचे सौर मतके कोई आचार्य्य होंगे। सौर उपासनाका ह्रास तो आजसे साढ़े-चार हजार बरस पहले हो चुका रहा होगा। ऐसा भविष्यपुराणकी एक कथासे प्रतीत होता है। भविष्यपुराणमें श्रीकृष्णके पुत्र साम्बकी कथा है कि उन्हें कुष्ठ रोग हो गया था, अतः उन्होंने सूर्य्यकी विधिवत उपासना करनेकी ठानी। उन्हें भारतमें उपयुक्त आचार्य्य नहीं मिले। वह अपने आचार्य्यके आदेशसे शाकद्वीपसे मगाचार्य्योंको लाये। इन मग ब्राह्मणोंने मूलस्थानमें (मुलतानमें) सूर्य्य-मन्दिरकी स्थापना करायी। इस प्रसङ्गमें कथा दी हुई है कि मिहिर गोत्रके सुजिह्व नामक ब्राह्मणके निक्षुभा नामकी एक कन्या थी जिसपर भगवान् भास्करने कृपा की और जराशब्द या जराशस्त नामक पुत्र दिया। मग-ब्राह्मण इन्हीं जराशस्तके वंशज हैं। वे कमरमें अव्यङ्ग पहनते हैं। इस वर्णनसे पता लगता है कि मग लोग सूर्य्योपासक पारसी थे। यह घटना आजसे कमसे कम साढ़े-चार हजार बरस पहले हुई होगी। पारसियोंकी छन्दावस्थामें मिहिरयस्तखण्डसे पता लगता है कि एक समय सूर्य्योपासक और अग्नि-उपासक पारसियोंमें झगड़ा हुआ। फलतः सूर्य्योपासक मग भारतमें आकर रहने लगे। इस घटनाको हुए पारसियोंके अनुसार चार हजार बरससे अधिक हुए। अतः यह अनुमान होता है कि मग लोग कमसे कम दो बार दो टोलियोंमें भारत आये और रहने लगे और भारतीय सौरोपासनामें भारतसे बाहरकी सौरोपासना भी मिली हुई है। और, साम्बके समयमें ही यहाँ सौरोपासना बहुत घटी हुई अवस्थामें थी।

समस्त श्रुतियाँ, भविष्यपुराण, मार्कण्डेयपुराण, ब्रह्मपुराण, रामायण (आदित्यहृदय), बृहत्संहिता, मयूरकृत सूर्य्यशतक, सौर-संहिता, साम्बपुराण, सूर्य्यपुराण आदि प्रसिद्ध सौर-साहित्य हैं, यद्यपि सूर्य्य-सम्बन्धी कथा आदिसे हिन्दूकोष-साहित्य भरा पड़ा है।

चौहत्तरवाँ अध्याय

शाक्त मत

१—नैगम शाक्त वा दक्षिणाचारी

ऋग्वेदके आठवें अष्टकके अन्तिम सूक्तमें "इयं शुष्मेभिः" प्रभृति मन्त्रोंमें पहले नदी फिर देवतारूपमें महाशक्तिका, सरस्वतीका, स्तवन है। सामवेद वार्च-यम-व्रतमें "हुवा ईवा-चम्" इत्यादि तथा ज्योतिष्टोममें "वाग्विसर्जन स्तोम" आता है। अरण्यगानमें भी इसके गान हैं। यजुर्वेद अध्याय २।२ में "सरस्वत्यै स्वाहा" मन्त्रसे आहुति देनेकी विधि है। पांचवें अध्यायके सोलहवें मन्त्रमें पृथिवी और अदिति देवियोंकी चर्चा है। पांचों दिशाओंसे विघ्नबाधा निवारणके लिये सत्रहवें अध्याय मन्त्र ५५में इन्द्र, वरुण, यम, सोम, ब्रह्म इन पांच देवताओंकी शक्तियों देवियोंका आवाहन किया गया है। अथर्ववेदके चौथे काण्डके तीसवें सूक्तमें—

> अहं रुद्रेभिः वसुभिः चरामि
> अहम् आदित्यैरुत विश्वदेवैः
> अहं मित्रावरुणोभा विभर्मि
> अहम् इन्द्राग्नी अहम् अश्विनोभा

अर्थात् भगवति महाशक्ति कहती है कि मैं समस्त देवताओंके साथ हूँ। सबमें व्याप रही हूँ। केनोपनिषत्में "बहुशोभमानामुमां हैमवतीं" ब्रह्मविद्या महाशक्तिका प्रकट होकर ब्रह्मका निर्देश वर्णित है। अथर्वशीर्ष, देवीसूक्त और श्रीसूक्त तो शक्तिके ही स्तवन हैं। वैदिक शाक्त सिद्ध करते हैं कि दशोपनिषत्में दसों महाविद्याओंका ब्रह्मरूपमें वर्णन है। इस प्रकार शाक्त मतका आधार भी श्रुति ही है। देवीभागवत, देवीपुराण, कालिकापुराण, मार्कण्डेयपुराणमें तो शक्तिका माहात्म्य ही है। इतिहासोंमें, महाभारत और रामायण दोनोंमें, देवीकी स्तुतियाँ हैं और अद्भुत रामायणमें तो अखिल विश्वकी जननी सीताजीका परात्परा शक्तिवाला रूप प्रकट करके बहुत सुन्दर स्तुति दी है। प्राचीन पाञ्चरात्रमतका नारद पञ्चरात्र एक प्रसिद्ध वैष्णव ग्रन्थ है। उसमें दसों महाविद्याओंकी कथा विस्तारसे कही गयी है। निदान, श्रुति-स्मृतिमें शक्तिकी उपासना जहाँ-तहाँ उसी तरह प्रकट है, जिस तरह विष्णु और शिवकी उपासना देखी जाती है। इससे स्पष्ट है कि शाक्त मतके वर्त्तमान साम्प्रदायिक रूपका आधार श्रुति-स्मृति है और यह मत उतना ही प्राचीन है जितना वैदिक-साहित्य है। उसकी व्यापकता तो ऐसी है कि जितने सम्प्रदायोंका वर्णन हम अबतक कर आये हैं बिना अपवादके सभी अपने परम उपास्यकी शक्तियोंको अपनी परम उपास्या मानते हैं और एक न एक रूपमें शक्तिकी उपासना करते हैं।

जहाँतक शैव मत निगमोंपर आधारित है, वहाँतक शाक्त मत भी निगमानुमोदित है।

पीछेसे जब आगमोंके विस्तृत आचारका शाक्त मतमें समावेश हुआ, तबसे ही जान पड़ता है कि निगमानुमोदित शाक्त मतका दक्षिणाचार वा दक्षिणमार्ग वा वैदिक शाक्त मत नाम पड़ा।

आजकल इस दक्षिणाचारका भी एक विशिष्ट रूप बन गया है। विश्वकोशकारके अनुसार इस मार्गपर चलनेवाला उपासक अपनेको शिव मानकर पञ्चतत्त्वसे शिवाकी पूजा करता है और मद्यके स्थानमें विजयारसका सेवन करता है। विजयारस भी पञ्चमकारोंमें गिना जाता है। इस मार्गको वामाचारसे श्रेष्ठ माना जाता है।

भारतके सिवा उसके आस-पासके देशोंमें भी जान पड़ता है कि शक्तिकी उपासना प्राचीन-कालसे चली आयी है। पश्चिममें गान्धार, शाकद्वीप, बाबुल, इराक, छोटी एशिया, शाम आदि, पूर्व और दक्षिणमें ब्रह्मदेश, श्याम, अनाम, काम्बोज, मलयद्वीप, यवद्वीप बाली आदि और उत्तरमें तिब्बत, चीन, जापान आदि देशोंमें भी शक्तिकी उपासना बहुत प्राचीन-कालमें प्रचलित थी और आज भी थोड़ा-बहुत है। पश्चिम पूर्व और दक्षिणमें तो भारतका प्रभाव स्पष्ट दीखता है। मोहन जोदड़ो और हरप्पाकी खुदाईमें योनिके आकारकी मूर्त्तियोंके नमूने सिन्धुनदके आस-पास आजसे छः सात हजार बरस पहले शक्ति-उपासनाके प्रचारका साक्ष्य देते हैं और भारतसे बाहर पश्चिम देशोंमें ऐसे ही चिह्नोंके मिलनेसे भारतका प्रभाव प्रकट होता है। प्रो० दीक्षितारने* यह दिखाया है कि योगका जो पाशुपत रूप वायुपुराणमें वर्णित है, मोहन-जोदड़ोकी ठीक वैसी ही योगमुद्राएँ हैं। यह योगमुद्राएँ उस समयकी शिव-शक्तिकी उपासनाका पता देती हैं। शक्तिसे शक्तिमान् अभिन्न है और इस उपासनाके प्रचारमें योगने सहायता दी। योग-सम्प्रदायके वर्णनमें हम पिछले अध्यायमें योग और शक्तिकी उपासनाका अटूट सम्बन्ध दिखा आये हैं। छहों चक्रोंमें कुण्डलिनी और आज्ञा दोनों महाशक्तिकी प्रतीक हैं। आज्ञाशक्तिके बिना कुछ हो ही नहीं सकता। जान पड़ता है कि सिन्धकी उस युगकी सभ्यतामें योगमत और शाक्त मतकी प्रबलता थी।

२—वामाचार वा वाममार्ग

भारतने उस कालमें जैसे अपना वैदिक शाक्त मत औरोंको दिया वैसे ही जान पड़ता है कि उसने वामाचार औरोंसे ग्रहण भी किया है। हम अभी निगम-मार्गकी चर्चा कर चुके हैं। आगमोंमें वामाचार और शक्तिकी उपासनाकी अद्भुत विधियोंका कुछ विस्तारसे वर्णन हम तन्त्रोंके प्रकरणमें कर चुके हैं। उन्हें यहाँ दोहराना इष्ट नहीं है। परन्तु इसमें तो सन्देह नहीं कि तन्त्रों वा आगमोंका समय ऋगादि संहिताओंके बादका है। उनकी भाषा इस पक्षमें दृढ़ प्रमाण है।

आगमोंमें शक्तिकी उपासनाके प्रसङ्गमें चीनाचार आदि कई तन्त्रोंमें लिखा है कि "वसिष्ठदेवने चीन देशमें जाकर बुद्धके उपदेशसे ताराका दर्शन किया था।"† इससे दो बातें

---

* प्रो० दीक्षितार-सम अस्पेक्ट्स अव् वायुपुराण।

† विश्वकोशके आधारपर। कुलालिकाम्नाय या कुब्जिकामत तन्त्रमें भगवान् शङ्कर भगवतीको आदेश देते हैं—

स्पष्ट होती हैं। एक तो यह कि चीनके शाक्त ताराके उपासक थे और दूसरे यह कि ताराकी उपासना भारतमें चीनसे आयी। इसी तरह कुलालिकाम्नाय तन्त्रमें मगोंको ब्राह्मण स्वीकार किया है। भविष्यपुराणमें भी मगोंका भारतमें लाया जाना और सूर्य्योपासनामें साम्बकी पुरोहिताई करना वर्णित है। फारसी-साहित्यमें पीरे-मगां अर्थात् मगाचार्य्योंकी बहुत चर्चा है। उनकी उपासनाविधिमें मद्य-मांसादिका सेवन विशेषता थी। प्राचीन हिन्दू और बौद्ध-तन्त्रमें शिवशक्ति अथवा बोधिसत्त्व-शक्तिके साधन-प्रसङ्गमें पहले सूर्य्यमूर्त्ति भावनाका भी प्रसङ्ग है। फिर वज्रयानवाले सिद्धों, वाममार्गियों और मगोंके पञ्चमकारके सेवनका मिलान कीजिये तो पता चलेगा कि किसी कालमें छोटी एशियासे लेकर चीनतक मध्य एशियामें और भारत आदि दक्षिणी एशियामें शाक्तमतका एक-न-एक रूपमें प्रचार रहा होगा और यह समय कनिष्कके कालसे लेकर विक्रमी एक हजार बरस पीछेतक अवश्य रहा होगा। कनिष्कके समयमें ही महायान और वज्रयान मतका प्रचार हुआ था और बौद्ध-शाक्तके रूपमें पञ्चम-कारकी उपासना इनकी विशेषता थी। उत्तरमें मङ्गोलिया, दक्षिणमें विन्ध्याचल, पूर्वमें वङ्गो-पसागर और पश्चिममें ईरान देशतक कनिष्कका साम्राज्य था। अतः सारी एशियामें उसने महायान-मत फैलाया। महायान-मतने ही शक्तिपूजा फैलायी। नेपाली बौद्धोंके साधनमाला तन्त्रमें एक-जटा-साधन-प्रसङ्गमें लिखा है—

"आर्यनागार्जुनपादैर्भोटैः सम्मुद्धृता इति"

अर्थात् एकजटा नाम्नी तारादेवीकी विभिन्न मूर्त्ति महायान-मतके प्रतिष्ठाता आर्य नागार्जुन भोट (तिब्बत) देशसे उद्धार कर लाये थे। स्वतन्त्र-तन्त्रमें भी लिखा है—

"मेरोः पश्चिम कूले तु चोलनाख्यो ह्रदो महान्।
तत्र जज्ञे स्वयं तारादेवी नील सरस्वती॥"

३—शाक्तोंके पीठ

कुलालिक-तन्त्रमें पांच वेदों, पांच योगियों और पांच पीठोंका उल्लेख है। उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम और ऊर्ध्व ये पांच तो आम्नाय वा वेद हैं। पांच महेश्वर, शिवयोगी वा

"गच्छ त्व भारते वर्षे अधिकारायसर्वत.।
पीठोपपीठक्षेत्रेपु कुरु सृष्टिरनेकधा॥
गच्छत्व भारतेवर्षे कुरु सृष्टिस्त्वमीदृशा।
पञ्चवेदा. पञ्चैव योगिन· पीठपञ्चकम्॥
एतानि भारतेवर्षे यावत्तु पीठास्थाप्यते (?)।
तावत् न मे त्वया सार्धं सङ्गमश्च प्रजायते॥"

"हे देवि! सर्वत्र अधिकारार्थ भारतवर्षमें जाओ। पीठ उपपीठ और क्षेत्रोंमें बहुतोंकी सृष्टि करो। भारतवर्षमें जाओ। वहा पाचवेद, पाच योगी और पाच पीठोंकी सृष्टि करो। जबतक पीठादि प्रतिष्ठित नहीं होते, तबतक तुम्हारे साथ मेरा सङ्गम नहीं होगा।" इससे भी स्पष्ट है कि वाममार्ग बाहरसे आया है।

ध्यानी बुद्ध हैं। और उत्कलमें उड्डियान, जालन्धरमें जाल, महाराष्ट्रमें पूर्ण, श्रीशैलपर मतङ्ग और आसाममें कामाख्या, ये पांच ही शाक्तोंके आदिपीठ हैं। पीछेसे जो ५१ पीठ हो गये, उनके होते भी ये पांच मुख्य माने जाते हैं। आरम्भमें वैदिक मार्गवालोंने इस अवैदिक शाक्त मतको ग्रहण नहीं किया, किन्तु भारतमें जनसमुदाय जब सभी जगह इस मतका आदर करने लगा और चक्रके अन्दर सभी वर्णके लोग ब्राह्मण माने जाने लगे, तो वैदिक मार्गवाले भी धीरे-धीरे वाममार्गमें दीक्षित होने लगे। संस्कारोंमें पहले सप्तमातृकाएँ फिर षोडश मातृकाएं पूजी जाने लगीं। वराहमिहिरकी बृहत्संहितामें ये ब्राह्मण "मातृकामण्डल-वित्" कहे गये हैं, क्योंकि मण्डल, चक्र या यन्त्रके बिना शक्तिपूजा नहीं होती। जो अबतक वैदिक रीतिसे शक्तिकी उपासना करते थे, अब वैदिक कर्म्मकाण्डमें उन्हींने तन्त्रोंकी विधियों-का समावेश करके दक्षिणाचारके आधुनिक रूपको जन्म दिया।

४—तीनों यान

कुलालिकाम्नाय तन्त्रमें लिखा है—

"दक्षिणे देवयानन्तु पितृयानन्तु उत्तरे।
मध्यमे तु महायानम् शिवसंज्ञा प्रगीयते॥"

दक्षिणमें देवयान, उत्तरमें पितृयान और मध्यदेशमें महायान प्रचलित थे। इन यानोंकी विशेषता तो ठीक-ठीक मालूम नहीं है, परन्तु महायानोंमें श्रेष्ठ तन्त्र तथागत-गुह्यकसे पता लगता है कि रुद्रयामलादिमें जिसे वामाचार या कौलाचार कहा है वही महायानियोंका अनुष्ठेय आचार है। इसी सम्प्रदायसे कालचक्रयान या कालोत्तर महायानकी तथा वज्रयानकी उत्पत्ति हुई। नेपालके सभी शाक्त बौद्ध वज्रयान-सम्प्रदायके हैं।

५—शाक्त मतकी व्यापकता

नेपालमें एक लाख श्लोकोंवाला शक्तिसङ्गम-तन्त्र प्रचलित है। इस महातन्त्रमें शाक्त सम्प्रदायका वर्णन विस्तारसे मिलता है। इसके उत्तर भागके पहले खण्डके आठवें पटलमें तीसरेसे लेकर पचीसवें श्लोकका* सार हम यहाँ देते हैं—

सृष्टिके सुभीतेके लिये यह प्रपञ्च रचा गया है। शाक्त, सौर, शैव, गाणपत्य, वैष्णव, बौद्ध आदि यद्यपि भिन्न नाम हैं, भिन्न सम्प्रदाय हैं, परन्तु वास्तवमें ये एक ही वस्तु हैं। विधिभेदसे भिन्न दीखते हैं। इनमें परस्पर-निन्दा, परस्पर-द्वेष, इस प्रपञ्चके ही लिये है। वस्तुतः मत एक ही है। निन्दककी सिद्धि नहीं होती। जो ऐक्य मानते हैं उन्हींको उनके सम्प्रदायसे सिद्धि मिलती है। काली और ताराकी उपासना इसी ऐक्यकी सिद्धिके लिये चली। यह महाशक्ति भला, बुरा, सुन्दर और क्रूर दोनोंको धारण करती है। यही मत प्रकट करनेके लिये मैंने (शाक्त तत्त्वने) शास्त्रकीर्त्तन किया है। चौदहों विद्याओंको मैंने एकत्त्व प्रतिपादनके लिये ही प्रकट किया है। प्रकृत विषय इस प्रकार है—जगत्तारिणीदेवी चतुर्वेद-मयी, कालिकादेवी अथर्ववेदाधिष्ठात्री, काली और ताराके बिना अथर्ववेद-विहित कोई क्रिया

---

* हिन्दी विश्वकोशमें शाक्त शब्दके प्रसङ्गमें ये श्लोक उद्धृत हैं।

नहीं हो सकती। केरल देशमें कालिकादेवी, काश्मीरमें त्रिपुरा और गौड़देशमें तारा, तथा ये ही पीछे कालीरूपमें उपास्या होती हैं।"

इस कथनसे पता चलता है कि इनसे पहलेके साम्प्रदायिकोंमें जिसमें शाक्त भी शामिल हैं,—और यह अवश्य ही वैदिक शाक्त हैं,—यह तान्त्रिक शाक्तधर्म्म या वामाचार पीछेसे प्रचलित हुआ।

पुराणोंके परिशीलनसे यह पता चलता है कि प्रत्येक सम्प्रदायके उपास्यदेवकी एक शक्ति अवश्य है। गीतामें भगवान् कृष्ण अपनी द्विधा प्रकृतिकी, अपनी मायाकी, बारम्बार चर्चा करते हैं, और पुराणोंमें तो नारायण और विष्णुके साथ लक्ष्मीके, शिवके साथ शिवाके, सूर्य्यके साथ सावित्रीके, गणेशके साथ अम्बिकाके चरित और माहात्म्य वर्णित हैं। इनके पीछे जब सम्प्रदायोंका अलग-अलग विकास होता है तो प्रत्येक सम्प्रदाय अपने उपास्यकी शक्तिकी भी उपासना करता है। इस तरह शक्तिकी उपासनाकी एक समय ऐसी प्रबल धारा बही कि सभी सम्प्रदायवाले, मुख्य रूपसे नहीं तो गौणरूपसे, शाक्त बन गये। शक्तिको अपने उपास्यके नामके पहले स्मरण करनेकी प्रथा चल गयी। सीताराम, राधाकृष्ण, लक्ष्मीनारायण, उमा-महेश्वर, गौरीगणेश इत्यादि नाम इसी प्रभावके सूचक हैं। उस समयकी ही यह उक्ति है कि द्विजमात्र जो वेदमाता गायत्रीकी सन्ध्योपासना करते हैं, शाक्त हैं। और सचमुच सारी आर्य्य-जनता किसी समय शाक्त थी और इन शाक्तोंमें दो दल थे, एक दलमें तो शैव, वैष्णव, सौर, गाणपत्य आदि वैदिक-सम्प्रदायोंके शाक्त दक्षिणाचारी थे और दूसरी ओर बौद्ध जैन आदि अवैदिक तान्त्रिक सम्प्रदायोंके शाक्त वामाचारी थे। इतना व्यापक प्रचार होनेके कारण ही शायद शाक्तोंका कोई मठ या गद्दी नहीं बनी। इनके पांचों पीठ वा इक्यावन पीठ ही इनके मठ समझे जाने चाहियें।

वैदिक दक्षिणाचारी वर्णाश्रम धर्म्मका पालन करनेवाले थे। अवैदिक बौद्ध आदि वामाचारी चक्रके भीतर बैठकर सभी एक जातिके, सभी द्विज या ब्राह्मण, हो जाते थे। वामाचार प्रच्छन्न रूपसे वैदिक दक्षिणाचारपर भी जब चढ़ाई करने लगा तो दक्षिणाचारके वर्णाश्रम-धर्म्मके बांध टूटने लगे और वैदिक सम्प्रदायोंमें भी जाति-पांति तोड़नेवाली शाखाएँ पैदा हो गयीं। वीरशैवोंमें बसवेश्वरका सम्प्रदाय, पाशुपतोंमें लकुलीशका सम्प्रदाय, शैवोंमें कापालिक, वैष्णवोंमें वैरागी और औघड़, इसी प्रकारके सुधारक दल पैदा हो गये। वैरागियों और बसवेश्वर पन्थियोंके सिवा शेष सभी सुधारक दल मद्य-मांसादि भी सेवन करने लगे। कोई गृहस्थ ऐसा नहीं रह गया जिसके गृहदेवता या कुलदेवताओंमें किसी देवीकी पूजा न होती हो। वाममार्ग बाहरसे आया सही, परन्तु शाक्त मत और समान संस्कृति होनेके कारण यहाँ खूब घुलमिलकर फैल गया।

६—समाचार

कई पीछेके तन्त्रोंमें वेद, वैष्णव, शैव, दक्षिण, वाम, सिद्धान्त और कुल ये सात प्रकारके आचार बतलाये गये हैं। ये सातों आचार ऊपरके बतलाये तीनों यानोंके अन्तर्गत मालूम होते हैं। महाराष्ट्र वैदिकोंमें वेदाचार, रामानुज और इतर वैष्णवोंमें वैष्णवाचार,

दाक्षिणात्योंमें शङ्करस्वामीके अनुयायी शैवोंमें दक्षिणाचार, वीरशैवोंमें शैवाचार और वीराचार, तथा केरल, गौड़, नेपाल और कामरूपके शाक्तोंमें वीराचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार ये चार प्रकारके आचार देखे जाते हैं। पहले तीनों आचारोंपर थोड़े ही तन्त्र हैं, परन्तु पिछले चारों आचारोंपर तो तन्त्रोंकी गिनती नहीं है। पहले तीनोंके तन्त्रोंमें पिछले चारों आचारोंकी निन्दा है।

आज भी यद्यपि देखनेमें शाक्तोंका कोई पन्थ, गद्दी, सम्प्रदाय या मठ नहीं है, तो भी उनकी सङ्ख्या थोड़ी नहीं है। वह कम देख पड़ते हैं इसका कारण यह है कि शाक्त मत गुह्य है। लाल चन्दन तो कोई-कोई लगाते हैं। साधारणतया समझमें नहीं आता कि कौन शाक्त हैं।

७—त्रिविध भाव

शक्तिका साधन करनेवाले तीन भावोंका आश्रय लेते हैं। दिव्य भावसे देवताका साक्षात्कार होता है। वीरभावसे क्रिया-सिद्धि होती है, साधक साक्षात् रुद्र हो जाता है। पशुभावसे ज्ञानसिद्धि होती है। इन्हें क्रमसे दिव्याचार, वीराचार और पश्वाचार भी कहते हैं। पशुभावसे ज्ञान प्राप्त करके वीराचारद्वारा रुद्रत्व प्राप्त करता है। तब दिव्याचारद्वारा देवताकी तरह क्रियाशील हो जाता है। इन भावोंका मूल ही निस्सन्देह शक्ति है।

८—दसों महाविद्याएँ

निगम जिसे विराट् विद्या कहते हैं आगम उसे ही महाविद्या कहते हैं। दक्षिण और वाम दोनों मार्गवाले दसों महाविद्याओंकी उपासना करते हैं। ये हैं, महाकाली, उग्रतारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, भैरवी, धूमावती, वग्लामुखी, मातङ्गी और कमला। दसों शक्तिमान् क्रमशः महाकाल, अक्षोभ्यपुरुष, पञ्चवक्त्र रुद्र, त्र्यम्बक, कबन्ध, दक्षिणामूर्त्ति, (शून्य), एकवक्त्र रुद्र, मतङ्ग और सदाशिव विष्णु हैं। धूमावती विधवा कहलाती हैं। पुरुषका स्थान शून्य है। शाक्तप्रमोदमें इन दसों महाविद्याओंके अलग-अलग तन्त्र हैं जिनमें इनकी कथाएँ ध्यान और उपासनाविधि है। षोड़शीका दूसरा नाम "त्रिपुरसुन्दरी" है।

प्रकारान्तरसे ऋषियोंने इसी सृष्टिविद्याको तीन भागोंमें बाँटा है। वही तीन महाशक्तियाँ महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती हैं। इनसे ही क्रमशः प्रलय, पालन और सृष्टिके काम होते हैं। एक ही अजपुरुषकी अजा नामसे प्रसिद्धा महाशक्ति तीन रूपोंमें परिणत होकर सृष्टि पालन और प्रलयकी अधिष्ठात्री बन रही है। श्वेताश्वतरोपनिषत्के इन पङ्क्तियोंमें—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥ [४।५]

उसी अजाशक्तिके तीनों रूपोंकी चर्चा है।

९—शाक्तोंके अनुसार सर्ग-रहस्य

शाक्तोंकी धारणाके अनुसार सर्गका मूलतत्त्व अजा आद्याशक्ति है, जो अनन्त और अव्यक्त है। सम्पूर्ण आगम-साहित्यमें उसीको भरसक व्यक्त करनेकी चेष्टा की गयी है। उस अज्ञेय एवं अव्यक्तके प्रत्येक विकासमें एक ही परम-तत्त्वका आगम होते रहनेसे ही "आगम"

कहलाता है। वह परम-तत्त्व ईश्वर है, शिव है। ब्रह्माजी अपने तपोबलसे मनमानी सृष्टि कर लेते थे पर अभिवृद्धि नहीं होती थी। उनकी बड़ी प्रार्थनापर शक्तिने विमर्श वा स्फूर्त्तिका रूप धारण किया और शिवने तेजस रूपसे उसमें प्रवेश किया। "बिन्दु"का प्रादुर्भाव हुआ। जब शक्तिने शिवमें प्रवेश किया तब विन्दु समुन्नत हुआ। इस संयोगसे स्त्री-तत्त्व "नाद"की उत्पत्ति हुई। ये दोनों विन्दु और नाद दूध और पानीकी तरह ऐसे मिले कि एकरूप हो गये और अर्धनारीश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए। इसे "संयुक्तविन्दु" कहते हैं। यह तत्त्व स्त्रीत्व और पुरुषत्वके बीच अत्यन्त आसक्तिका द्योतक है, इसीलिये इसे "काम" कहते हैं।

विन्दु दो हैं। श्वेत पुंस्त्व है, रक्त स्त्रीत्व है। दोनोंसे "कला"की उत्पत्ति होती है। संयुक्तविन्दु (काम) और श्वेत-रक्तविन्दु (कला), दोनों मिलकर "काम-कला"में परिणत हुए। जब ये चारों तत्त्व मिले तब पूर्ण-शाब्दिक और वास्तविक सृष्टि उत्पन्न हुई। किसी-किसी आगममें सर्वश्रेष्ठ देवी "कामकला"के स्वरूपके वर्णन प्रसङ्गमें संयुक्तविन्दु सूर्य्यको उनका वदन और अग्नि (रक्त) एवं चन्द्रमा (श्वेत)को उनका वक्षःस्थल कहा गया है। और अर्धकला उनकी जननेन्द्रिय कही गयी है। इस विचारसरणिसे गर्भकी स्थिति सुस्पष्ट होती है जिससे सृष्टिका विकास होता है। अस्तु, सृष्टिविधायिनी एक महिमान्वित देवी है और उसको "परा" "ललिता" "भट्टारिका" "त्रिपुरसुन्दरी" और "षोडशी" भी कहते हैं। त्रिपुरसुन्दरीद्वारा ही सब वस्तुओंकी उत्पत्ति है और सब शब्दोंकी भी उत्पत्ति है। इसीलिये उस महादेवीका नाम "परा" है, अर्थात् चारों प्रकारकी वाणियोंमें प्रथम है। शाक्तोंके अनुसार सृष्टि परिणामी है, विवर्त्त नहीं है। शाक्तोंका वेदान्त मत शक्तिविशिष्टाद्वैत है।

शाक्तोंका साहित्य समस्त हिन्दू-साहित्य है जिसका विस्तृत वर्णन हम पिछले अध्यायोंमें कर आये हैं।

पचहत्तरवाँ अध्याय

सुधारक और उनके पन्थ और सम्प्रदाय

लगभग एक हजार बरस हुए कि मुसलमानोंका भारतपर आक्रमण आरम्भ हुआ। हिन्दू और मुसलिम संस्कृतियोंका सङ्घर्ष होने लगा। साधारण मुसलिम एक ईश्वरको मानता था, फिरिश्तोंकी और शैतानकी उपासना नहीं करता था, मूर्त्तिपूजा नहीं करता था, अवतार नहीं मानता था। गो-ब्राह्मणका उसकी दृष्टिमें कोई आदर न था। साधारण हिन्दू बहुदेवोपासक था, मूर्त्तिपूजक था, अवतारवादी था, गो-ब्राह्मण-सेवक था। दार्शनिक मुसलिम और दार्शनिक हिन्दू स्वभावत. कम मिलते थे और जहाँ हिन्दू-संस्कृति दार्शनिकतासे ओत-प्रोत थी वहाँ मुसलिम-संस्कृति अत्यन्त सीधी-सादी, भक्तिप्रवण, और सुबोध थी, नया मत और राजमत होनेसे जबरदस्त भी थी। दोनोंका सङ्घर्ष जबरदस्त हुआ। इस सङ्घर्षका फल ऊँचे विचारोंके क्षेत्रमें वेदान्तके विविध सम्प्रदायोंकी जागृति और विकास था, जिसका हमने पिछले अध्यायोंमें कुछ विस्तारसे वर्णन किया है।

यद्यपि इन सम्प्रदायोंने अपने समयके प्रचलित आस्तिक और नास्तिक विचारोंके सुधारके रूपमें ही कार्य किया तथापि उनका कोई ऐसा लक्ष्य न था कि वह अपनेसे भिन्न मतों और सम्प्रदायोंको एक सूत्रमें बाँधें और एक झण्डे तले लावें। मुसलमानोंकी देखा-देखी हर-एकने सार्वभौम बननेका दावा किया। फलतः परस्पर शास्त्रार्थ और सङ्घर्ष हुआ। साम्प्रदायिकता स्पष्टसे स्पष्टतर हो गयी। बाहरी शत्रुओंसे भिड़नेके बदले आपसमें ही भिड़े। जैसे राजनीतिके क्षेत्रमें, वैसे ही मतवादके क्षेत्रमें भी, फूटका बाजार गर्म हो गया। समाजमें भी फूट फैली। जिन लोगोंका उद्देश्य एकमात्र भगवद्भक्तिका प्रचार था उनके निकट तो जाति-पाँतिका झगड़ा कोई चीज न होनी चाहिए। अत. भक्तिके सम्बन्धमें तो वर्णाश्रमका कोई बन्धन उन्होंने न रक्खा, परन्तु समाजके लिए उनके निकट वर्णाश्रमके भेद-प्रभेद आवश्यक ही नहीं प्रत्युत अनिवार्य थे। मध्वाचार्य और वल्लभाचार्यके सामने तो भारतवर्षमें मुसलमानोंका पूरा अधिकार हो चुका था और यदि वे चाहते तो मुसलमान और हिन्दुओंकी एकताके लिए कुछ कर सकते थे, परन्तु उनका ध्येय यह नहीं था। इनका ध्येय था मुसलिमोंके विरुद्ध हिन्दू-सङ्गठन परन्तु फूटके कारण यह सिद्ध न हो पाया। इतना तो हुआ कि वल्लभ-सम्प्रदायने अपने मतके प्रचारमें जनताकी भाषासे और सम्प्रदायोंकी अपेक्षा अधिक काम लिया। चैतन्य-सम्प्रदायवालोंका भी यही हाल था। जनतासे सम्पर्क जरूर बढ़ा। शङ्कर स्वामी प्रतिक्रान्तिकारी थे। वैष्णव आचार्य भक्तिप्रचारक थे। परन्तु रामानन्द स्वामी और चैतन्य महाप्रभुने वैष्णव-सम्प्रदाके आचार्य होते हुए भी भगवच्छरणागत मुसलमानोंतकको स्वीकार करके अपने उदाराशयताका तथा शुद्धि और हिन्दू-करणकी भावनाका पूरा परिचय दिया। रामानन्द स्वामीके शिष्य कबीरदासने तो ऐसा पन्थ चलानेकी कोशिश की, जिसका अनुयायी होनेमें हिन्दू या मुसलमान किसीको आपत्ति नहीं हो सकती थी। इसी तरह

पञ्जाबमें नानकशाहने हिन्दू-मुसलमान दोनोंके मान्य सिद्धान्तोंको लेकर अपना अलग पन्थ चलाया। विशेषतः इन दोनों महात्माओंका लक्ष्य यह था कि जब मुसलमान आकर बस ही गये और राज करने लगे, असङ्ख्य हिन्दू-मुसलमान बन गये, तो मुसलमानोंको देशसे बाहर निकालनेके बदले भारतवर्षमें अब यह दोनों जातियाँ एक राष्ट्रका रूप बनावें और मिलकर रहें तभी शान्ति और कुशल है। कबीरके बाद उनके शिष्य दादूने भी अपना लक्ष्य यही रक्खा। इस तरह कबीर-पन्थ, नानक-पन्थ और दादूपन्थ यह तीन हिन्दू-मुसलमानोंको मिलानेवाले पन्थ हुए। शैव वैष्णव आदि साम्प्रदायिक आचार्य वेदान्ती थे। उनकी नीवँ अपने मीमांसाशास्त्रपर जमी थी। उनके दार्शनिक विचारोंको व्यक्त करनेवाली भाषा संस्कृत थी। कबीर नानक आदि सुधारकोंने अपनी भाषा जनताके लिये सहज सुबोध रक्खी जिसमें हिन्दू मुसलमान सहजमें मिल सकें। इन्होंने राम रहीम और मन्दिर मसजिदकी एकता दिखायी। मूर्त्तिपूजा और अवतारवादको दूर किया, कुरान पुरानको बराबर बताया। परन्तु इन सुधारकोंके मुसलमान अनुयायी बहुत कम हुए। उसका कारण यह था कि इन पन्थोंके प्रवर्त्तकोंने हिन्दू-मुस्लिम-संस्कृतिकी भिन्नतापर कोई ध्यान न दिया और अपने सम्प्रदायकी भित्ति एकमात्र हिन्दू-संस्कृतिकी नीवँपर उठायी। हिन्दू-संस्कृतिसे नव-मुस्लिम तो भड़कते ही थे, मुल्लाओं और पण्डितोंने तो इन पन्थाइयोंसे पूरी दुश्मनी रक्खी। इसका कारण यह था कि यह पन्थ ऐसे साधुओंके चलाये हुए थे जो पूर्णतया स्वतन्त्र और स्वाधीन विचारोंके थे, संस्कृत अरबीके पण्डित और मौलवी न थे, और संस्कृत और अरबीके वाक्योंको प्रमाण भी नहीं मानते थे। इन्होंने भी अपनी ओरसे मुल्लाओं और पण्डितोंकी हँसी उड़ानेमें कोई कोर-कसर नहीं रक्खी।

हिन्दू-जनतापर मुस्लिम मतकी प्रबल धाराका घोर आतङ्क छा गया था। जनताको मुसलमान होनेसे बचानेके लिये इन सुधारकोंने अपने-अपने पन्थकी रचना इस ढङ्गसे की कि मुस्लिम मतकी ओर झुकी हुई जनता सहजमें ही इनकी अनुयायी हो गयी। वर्णाश्रमधर्म्म, अवतारवाद, बहुदेवोपासना, मूर्त्तिपूजा, साकारवाद आदि हिन्दुत्वकी विशेषताओंको हटाकर इन पन्थोंने उपासनाविधि मुस्लिमोंकी तरह सरल कर दी। इसीलिये कबीरपन्थ, दादूपन्थ, नानकपन्थ, मानभाऊपन्थ आदि जोरोंसे फैल गये। इनमेंसे प्रायः सबने वेदमार्गको छोड़ एक ऐसा मध्य मार्ग चलाया कि बहुत बड़ी सङ्ख्या मुसलमान बननेसे बच गयी।

श्रीनाभादास और तुलसीदास

श्रीसम्प्रदायके आचार्य्य रामानन्द और उन्हींके सम्प्रदायके शिष्य नाभादास और गोस्वामी तुलसीदास इस पन्थवादके विरोधी थे और ये लोग खूब समझते थे कि मुसलमानोंके भारी आतङ्कसे ही ये वेदविरोधी पन्थ खुल गये हैं। नाभादासजीने तो भक्तमाल बनायी जिसमें उन्होंने सभी सम्प्रदायोंके महात्माओंकी स्तुति की और अपने भाव अत्यन्त उदार रक्खे। इन छप्पयोंकी टीकाएँ भी लिखी गयीं और भक्तोंके समाजमें इनका बड़ा आदर हुआ। परन्तु इन तीनोंमें सबसे अधिक प्रबल और प्रभावशाली कवि और ग्रन्थकार गोस्वामी तुलसीदास [१५५४-१६८० विक्रमी] हुए। उन्होंने भाषा-रामायण लिखी, जिसमें व्याजसे वर्णाश्रमधर्म्म, अवतार-

वाद, साकार उपासना, मूर्त्तिपूजा, सगुणवाद, गो-ब्राह्मण-रक्षा, देवादि विविध योनियोंका यथोचित सम्मान एवं प्राचीन संस्कृति और वेदमार्गका मण्डन है और साथ ही उस समयके मुस्लिम अत्याचारों और सामाजिक दोषोंकी एवं पन्थवादकी निन्दा है। गोस्वामीजी पन्थ वा सम्प्रदाय चलानेके स्वयं विरोधी थे। उन्होंने अपना कोई पन्थ या सम्प्रदाय नहीं चलाया। वह खूब समझते थे कि राजाओंकी फूटसे और सम्प्रदायवादके झगड़ोंसे भारतमें राज और समाज दोनोंपर मुसल्मान विजयी हो रहे थे। रामचरित-मानसमें उन्होंने व्याजसे भाई-भाईका प्रेम, स्वराज्यके सिद्धान्त, रामराज्यका आदर्श, अत्याचारोंसे बचने और शत्रुपर विजयी होनेके उपाय, सभी राजनीतिक बातें छिपे और खुले शब्दोंमें उस कड़ी जासूसीके जमानेमें भी बतलायीं, परन्तु उन्हें राज्याश्रय न था। लोगोंने समझा नहीं। रामचरित-मानसका राजनीतिक उद्देश्य सिद्ध न हो पाया। इसीलिये उन्होंने झुँझलाकर कहा "रामायण अनुहरत सिख, जग भई भारत रीति। तुलसी सठकी को सुनइ, कलिकुचालि पर प्रीति।" सच है, साढ़े-तीन-सौ बरस पीछे आज भी कौन सुनता है? फिर भी, उनकी यह अद्भुत पोथी इतनी लोक-प्रिय है कि झोंपड़ीसे लेकर महलतक इसकी गति है और मूर्खसे लेकर महापण्डिततकके हाथोंमें यह आदरसे स्थान पाती है। उस समयकी सारी शङ्काओंका रामचरित-मानसमें उत्तर है, और अकेले इस ग्रन्थको लेकर अगर गोस्वामी तुलसीदास चाहते तो अपना एक अत्यन्त भारी और शक्तिशाली सम्प्रदाय चला सकते थे। यह एक सौभाग्यकी बात है कि आज यही एक ग्रन्थ है जो साम्प्रदायिकताकी सीमाओंको लाँघकर सारे देशमें व्यापक और सभी मत-मतान्तरोंको पूर्णतया मान्य है। सबको एक सूत्रमें ग्रथित करनेका जो काम पहले शङ्कर स्वामीने किया वही अपने युगमें और उसके पीछे आज भी गोस्वामी तुलसीदासने किया। रामचरित-मानसकी कथाका आरम्भ ही उन शङ्काओंसे होता है जो कबीरदासकी साखीपर पुराने विचारवालोंके मनमें उठती हैं।

इस प्रकार एक ओरसे हिन्दू-पन्थाइयोंने और दूसरी ओरसे गोस्वामी तुलसीदासने अधिकांश हिन्दू भारतको मुसल्मान होनेसे बचाया। समस्त सुधारकों और पन्थाइयोंने मिलकर इस दिशामें जितना प्रयत्न किया और जो सफलता पायी, उससे कहीं अधिक उद्योग और यश एकमात्र रामचरितमानस महाकाव्यका है जो आधेसे अधिक भारतमें घर-घरमें फैला, और छोटेसे बड़ेतक सबके जीवनका रक्षक हुआ। विस्तार-भयसे हम यहाँ मानसकार और मानसकी इतनी ही चर्चा करते हैं।

प्राकृत भाषाओंमें हिन्दू-साहित्य

भारतमें ज्यों-ज्यों मुस्लिम संस्कृति बढ़ी और फैलने लगी त्यों-त्यों संस्कृत भाषाका प्रचार घटने लगा। इस देशमें मुसलमान धर्म्मप्रचार और राजनीति दोनों लेकर आये और इनका सामना करनेको धार्म्मिक और राजनीतिक प्रतिक्रिया आवश्यक हुई। इसलामकी बढ़ती हुई धाराको देखकर धार्म्मिक सम्प्रदायोंके नेताओंको जनताकी भाषामें प्रचार करनेकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी। यह आवश्यकता तो बौद्धों और जैनोंकी बाढ़के समय भी प्रतीत हुई थी और प्राकृत-साहित्यने उसी समय काफी उत्तेजना पायी थी, परन्तु उस समय

बाहरी शत्रुका सामना नहीं करना था। पीछे शङ्कर-स्वामीके पुनरुद्धार आन्दोलनने संस्कृत-भाषाका भी उद्धार किया था और आजसे एक हजार बरस पहले भी लोग संस्कृत-भाषाका ज्ञान प्राप्त करना शिक्षाका अनिवार्य्य अङ्ग समझते थे। विविध सम्प्रदायोंके आचार्य्योंने अपने-अपने भाष्य और मत-समर्थक ग्रन्थ संस्कृतमें ही लिखे। बारहवींसे लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी विक्रमीतक और बादको भी यह जानते हुए भी कि संस्कृतके दिन बीत चुके हैं, विद्वानोंने अपनी कृतिको चिरस्थायी और व्यापक करनेके लिये संस्कृतमें ही लिखना पसन्द किया।

साथ ही लोगोंके निकट आजसे एक हजार बरस पहले ही यह आवश्यकता प्रतीत हो चुकी थी कि सद्धर्म और सदाचार एवं ज्ञान-विज्ञानकी जो निधि संस्कृतमें निहित थी, उसे उस कालकी प्राकृत-भाषाओंकी पोशाक पहना दी जाय जिसमें जनताको वह सुगम और सुलभ हो जाय। यह काम इसीलिये भारतमें सर्वत्र होने लगा और पन्थों और सम्प्रदायोंके प्रचारकोंने अपने मतके ग्रन्थ अपने-अपने प्रान्तकी भाषाओंमें लिखने आरम्भ किये। साथ ही जासूसोंके अखण्ड राजमें भी देशके राजनीतिक विचारवालोंने बाहरी बैरियोंके विरुद्ध उभारने और राजनीतिक पुनर्जागृतिके लिये रामायण और महाभारतके प्रचारमें ही सुभीता देखा। अतः जनताको सुगम और सुलभ कर देनेके लिये महाभारत रामायण और पुराण आदिके उलथे किये जाने लगे।

तमिळनाड और केरलमें तो अळवार वैष्णवोंकी रचनाएँ अत्यन्त प्राचीन,—लगभग पांच हजार बरस पहलेकी,—बतलायी जाती हैं। तमिळमें इस प्रकारकी रचनाओंकी बहुत प्राचीन परम्परा है। परन्तु तेलुगु, कन्नड और मलयालम भाषाओंकी कथा हालकी ही है। विक्रमकी तेरहवीं शताब्दीमें पहले-पहल तेलुगुमें बसवपुराणकी रचना हुई और कुछ ही पीछे कन्नड अर्थात् कर्णाटकी भाषामें उसका उलथा हुआ है। इस ग्रन्थका भी उद्देश्य था जैनियोंको मिलाना। हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि अपने मतको प्रान्तीयताकी परिधिसे निकालकर अखिल भारतीय करनेके लिये ही इस समय संस्कृतमें ग्रन्थ लिखे गये। परन्तु जहाँ प्रचारका उद्देश्य प्रान्तकी सीमाओंके भीतर ही पूरा हो जाता था वहाँ प्रान्तीय भाषासे ही काम लिया जाने लगा। इन भाषाओंके बोलनेवालोंमें भी यह भाव जगा कि हम अपनी भाषामें ही हिन्दू-साहित्य पढ़ सकें। किसी समय जनताको सुलभ करनेकी दृष्टिसे ही वेदकी दुरूहतासे लौकिक-संस्कृतकी सुलभता उत्पन्न की गयी और इतिहास-पुराणकी रचना हुई। अब, वह लौकिक-संस्कृत भी कठिन हो गयी, इसलिये पहला प्रयत्न इतिहासों और पुराणोंका प्राकृत-भाषाओंमें उलथा हुआ। बृहत्तर भारतमें यवद्वीपकी कविभाषामें "बारत" या "बारतयुद्द"के नामसे भीष्म, द्रोण, कर्ण और शल्य पर्वोंका उलथा हुआ। भरतखण्डमें भी इसीके बाद अनेक प्राकृतोंमें उलथे या मर्मानुवाद किये गये। वङ्गीय प्राकृतमें तेरहवीं शताब्दीमें कुमार व्यासका अनुवाद बल्लालवंशीय राजा विष्णुवर्धनके समय हुआ। इसी समयके लगभग मराठी प्राकृतमें भी उलथा हुआ। उड़ियामें तो कई पुराने अनुवाद मिलते हैं। कृष्णानन्द वसु, अनन्त मिश्र, नित्यानन्द घोष, द्विज कवीन्द्र, उत्कल कवि सारण, षष्ठीवर, गङ्गादास सेन, राजेन्द्रदास, गोपीनाथ दत्त, राजाराम दत्त आदि सबने महाभारत ग्रन्थ उड़िया प्राकृतमें

लिखे। इनमें अधिकांश काशीराम दासके पहलेके हैं। जबसे काशीराम दासका महाभारत प्रकाशित हुआ, औरोंके नाम कम सुने जाते हैं। काशीराम दासके पीछे भी उनके पुत्र नन्द-राम दास सहित दर्जनों नाम हैं जिन्होंने महाभारतके उल्थेकी परम्परा सी जारी रक्खी थी। हिन्दी प्राकृतमें सबलसिंहचौहान, गोकुलनाथ गोपीनाथ आदिके नाम लिये जाते हैं। इनमें सबलसिंहचौहानको ही अधिक प्रसिद्धि मिली। रामायणके अनुवादसे तो कोई प्राकृत बचा नहीं है। मराठीमें ही कमसे-कम आठ रामायणें हैं। इसी प्रकार तेलुगुमें पांच, तमिळमें बारह, उड़ियामें छः, हिन्दीमें ग्यारह और बँगलामें पचीस उल्थे रामायणके ही हैं। मलयालम और कर्णाटकी प्राकृतोंमें भी रामायणके कई उल्थे हैं। पुराणोंमें सबसे अधिक भाषान्तर श्रीमद्भागवतके हैं। रामायणकी तरह प्रायः सभी प्राकृतोंमें इसके उल्थे हैं।' उसके पीछे विष्णुपुराण, वाराहपुराण और पद्मपुराण आते हैं। दक्षिणी भाषाओंमें स्कन्दपुराणके उल्थे अधिक पाये जाते हैं।

गीताके उल्थे तो सभी भाषाओंमें अनेक हुए और प्रायः सर्वत्र महाभारतके पहले ही हुए। भाष्य-सहित मराठी पद्यमय उल्था ज्ञानेश्वरी तेरहवीं शताब्दीके आरम्भमें ही प्रसिद्ध हुई और ऐसी सुन्दर हुई कि आज भी वह हिन्दू-प्राकृत-साहित्यका अनुपम रत्न है। गीताके उल्थे भी सभी प्राकृतोंमें हुए।

पठन-पाठन और प्रकाशन एवं धारणाके सुभीतेसे ये प्राकृत ग्रन्थ अधिकांश पद्योंमें ही लिखे गये। इन सार्व-साम्प्रदायिक ग्रन्थोंके सिवा साम्प्रदायिक ग्रन्थ तो इधर पिछले पांच सौ बरसोंके भीतर प्राकृतोंमें ही लिखे गये। सन्तों महात्माओंने सर्वत्र इन प्राकृत अर्थात् देशी भाषाओंको अपनाया और प्रायः सबने पद्यमय ग्रन्थ लिखे। साखी, शब्द, दोहरे, अभङ्ग, भजन, गीत, ओवी आदिके द्वारा ही उपदेश दिये जाने लगे। दक्षिणमें ज्ञानदेवजीकी ज्ञाने-श्वरी, नामदेवजीके पद, मुकुन्दराजका विवेकसिन्धु, महीपतिका भक्तलीलामृत, एकनाथजी-का हरिपाठ, त्रिलोचनके पद, तुकारामके अभङ्ग, और रामदासका दासबोध, मराठीके पद्य-ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। सिखोंके तो ग्रन्थसाहब ही गुरु हैं। कबीर और दादूके पद, साखी, दोहरे आदि प्रसिद्ध ही हैं। कर्णाटकीमें पुरन्दरदासके पद, श्रीव्यासराजके पद्य-ग्रन्थ, तिम्मप्पदास और मध्वदासकी रचनाएँ, चिदानन्दका हरि-भक्ति-रसायन और हरि-कथासार प्रसिद्ध हैं। इसी कन्नड़में वेङ्काय आर्य्यका कृष्णलीलाभ्युदय (श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धका अनुवाद), और लक्ष्मीशदेवपुरका जैमिनिभारत, ये दोनों अच्छे ग्रन्थ हैं। बङ्गालमें शाक्त चण्डीदास और उनके सिवा वैष्णव चैतन्य महाप्रभुके अनेक अनुयायी, तिरहुतमें विद्यापति ठाकुर और उमा-पति-धर भक्ति रसके बड़े उत्कृष्ट कवि हो गये हैं। विक्रमकी पन्द्रहवीं शताब्दीमें नरसी मेहता गुजरातमें, और कुछ पीछे मीराबाई राजस्थानमें, और इसी प्रकार प्राणनाथ, हित-हरिवंश आदि महात्मा तथा व्रजके गोसाइयोंके अष्ट छापवाले तो प्रचलित प्राकृतके अच्छे कवियोंमें अपनी कृतियोंसे ही गिने जाने लगे। सारे भारतमें धार्मिक भावोंको व्यक्त करनेकी आवश्य-कताने प्राकृतोंका उत्थान कराया और सुबोध सुललित और मनोहर वाङ्मयको जन्माया। हृदयके ऊँचेसे ऊँचे और वारीकसे वारीक भाव और बुद्धिके सूक्ष्मसे सूक्ष्म विचार व्यक्त करनेके लिये इन प्राकृतोंको इन महात्माओंकी वाणियोंने सुधारा और सँवारा। भगवान् राम और

कृष्ण और विट्ठल और पाण्डुरङ्गके गुणगानके बहाने भाषाकी शब्दशक्ति अत्यन्त बढ़ गयी और विमर्शकी अभिव्यक्तिपर वक्ताका अच्छा अधिकार हो गया। धीरे-धीरे संस्कृतका स्थान प्राकृतों-ने ले लिया और उसकी साहित्य-निधिके उपयुक्त पात्र बन गये।

दक्षिणका व्यापक भागवत सम्प्रदाय

हम जैसा पहले कह आये हैं, जिस भागवत सम्प्रदायकी चर्चा महाभारतमें नारा-यणीयोपाख्यानमें है, उसकी परम्परा वस्तुतः आजतक अक्षुण्ण बनी हुई है। पिछले अध्यायोंमें जिन वैष्णवों और शैवोंके विशिष्ट-सम्प्रदायोंका विस्तृत वर्णन हम कर आये हैं, वे सब इसी विशाल व्यापक और प्राचीन भागवत सम्प्रदायमें ही शाखाओंके रूपमें निकल पड़े हैं। हम महाभारत-कालके भागवत-सम्प्रदायकी चर्चामें यह भी दिखा आये हैं कि इस सम्प्रदायके अनुयायी शिव और विष्णुमें अभेद मानते हैं, और दोनोंकी उपासना विना भेदबुद्धिके करते हैं। इन्हीं भागवतोंसे किसी समयमें सारा देश भरा हुआ था, जो पञ्चदेव-उपासना करते थे। पांचोंको परमात्माके ही पांच रूप मानते थे, और उनमेंसे एकको मुख्य मानकर उसे ही अपना परम उपास्य ठहराते थे। उन्हें किसी और धर्म्म, मत, सम्प्रदाय वा प्रस्थानसे द्वेष-बुद्धि न थी। नर्मदाके उत्तरमें वे ही स्मार्त्त कहे जाते थे और आज भी कहे जाते हैं। नर्मदाके दक्षिणमें प्रायः उन्हींको भागवत कहते आये हैं। वस्तुत. उत्तरके स्मार्त्तोंमें और दक्षिणके भाग-वतोंमें विशेष अन्तर नहीं है।

भागवत सम्प्रदायकी विशेषता शिव और विष्णुकी एकता है। इस एकताको सिद्ध करनेके लिये यों तो इतिहास, पुराण और श्रुतियाँ हैं ही, तो भी कई विशिष्ट ग्रन्थ हैं जो भागवत सम्प्रदायके स्तम्भ माने जाते हैं। स्कन्द उपनिषत् इनमें मुख्य है। हरिवंशपुराणमें इस सम्बन्धमें विशेष प्रमाण है। संहिताएँ तो कही जाती हैं १०८, परन्तु उनकी वास्तविक सङ्ख्या दूनेसे भी अधिक है। इनमें वैष्णवोंके धर्म्म और आचारका विस्तृत वर्णन है। इनके भी दो विभाग हैं, पाञ्चरात्र और वैखानस। किसी मन्दिरमें पाञ्चरात्र और किसीमें वैखानस संहिताएँ प्रमाण मानी जाती हैं। इनमें वैखानस-संहिताएँ और उनमें भी विशेषतः भागवत-संहिता नामकी एक विशेष संहिता हरिहरकी एकता ही सम्पादन करनेके लिये लिखी गयी जान पड़ती है। भागवत सम्प्रदायवाले प्रायः मन्दिरोंके पुजारी होते आये हैं। श्रीरामानुज स्वामीके पहले तो दक्षिणमें प्रायः सभी मन्दिरोंमें भागवत सम्प्रदायवाले ही पुजारी थे। विधिमें परिवर्त्तन तो रामानुजस्वामीके समयसे हुआ। वेङ्कटेश्वरका मन्दिर श्रीपतिमें ऐसा ही एक पुराना मन्दिर है जिसमें आज भी प्रत्यक्ष विष्णु और शिवकी एकता है, परन्तु रामानुजस्वामीने यहाँ वैखानस विधिको हटाकर अपने समयसे पाञ्चरात्र विधि प्रचलित कर रक्खी है।

नारद-भक्तिसूत्र और शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र, वासुदेवोपनिषत्, और गोपीचन्दन उप-निषत् भी विशिष्ट भागवत ग्रन्थ हैं।

श्रीमद्भागवतपुराण महापुराणोंमें भागवत-सम्प्रदायवालोंका ही पुराण है। भागवत-सम्प्रदायवाले प्रायः अद्वैतवादी होते हैं। यह पुराण भी अद्वैतवादी ही है।

गोवर्धनमठके महन्त श्रीधरस्वामीने श्रीमद्भागवत पुराणपर भागवत भावार्थदीपिका टीका लगभग १४५० विक्रमीमें लिखी। यह टीका भागवतोंको मान्य है, और यह अद्वैतवादी टीका है।

वेदान्तसूत्रोंका एक शुक-भाष्य भी प्रसिद्ध है, परन्तु वह विशिष्टाद्वैती है। ये शुकाचार्य्य महीशूरमें टलकाढके वैष्णवमठके संस्थापक कहे जाते हैं। सुदूर दक्षिणमें महीशूर और तमिळनाढमें भागवत सम्प्रदायवाले बहुत नहीं हैं। वहाँ इनके विशेष मन्दिर नहीं हैं। ये विशिष्टाद्वैतियोंके ही मन्दिरोंमें जाते हैं। वे गोपीचन्दनका एक सीधा तिलक लगाते हैं और द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करते हैं। पश्चिमी समुद्र तटके कर्णाटक देशमें इनकी सङ्ख्या अधिक है, यद्यपि मध्व-सम्प्रदायवाले वहाँ इनसे अधिक हैं। कर्णाटकमें भागवतोंके अपने मन्दिर भी हैं। महाराष्ट्र देशमें ये बहुत हैं। भागवतोंकी यह विशेषता है कि शिव और विष्णुकी अभेद उपासना करते और वैदिक रीतियाँ वर्त्तते हैं। यों तो प्रस्थान और व्याख्या भेदसे बिछुड़कर एक भागवत-सम्प्रदायसे अनेक वैष्णव-सम्प्रदाय बन गये हैं जो अपनेको भागवत-सम्प्रदाय न कहकर किसी विशेष आचार्य्य वा वेदान्तकी व्याख्या पद्धतिसे अभिहित करते हैं। उनकी विस्तृत चर्चा हम कर ही चुके हैं। तो भी व्यापक भागवत-सम्प्रदायमें भी तीन शाखाएँ तो हो ही गयी हैं। इनके नाम हैं, वारकरी-सम्प्रदाय, रामदासी-पन्थ और दत्त-सम्प्रदाय। वारकरी-सम्प्रदायवालोंकी विशेषता है तीर्थयात्रा। उनका प्रधान स्थान पण्ढरीपुर है। रामदासी-पन्थ तो समर्थ रामदाससे ही आरम्भ होता है। और दत्त-सम्प्रदाय वा मनभाऊ-पन्थ तो इन दोनोंसे पुराना दीखता है। ये तीनों भागवत सम्प्रदाय महाराष्ट्रमें ही उद्गत हुए और वहींसे फैले। इन सम्प्रदायोंमें बड़े अच्छे-अच्छे सन्त, भक्त और कवि हो गये हैं।

ज्ञानेश्वर एक प्रमुख भागवत थे। उनके बाद नामदेवजी हुए। नाभाजीकी भक्तमालामें तो नामदेवको ज्ञानदेवका शिष्य कहा गया है, परन्तु नामदेवजी सम्भवतः बहुत पीछे हुए। उन्होंने पञ्जाबमें भी भक्तिका प्रचार किया था और उनके हिन्दीके अनेक पद ग्रन्थ साहबमें भी मौजूद हैं। नामदेवजी दरजी थे और यही पेशा करते थे। परन्तु उनकी संस्कृति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। इनके पद बड़े सुन्दर हैं। उनकी काट-छांट बड़ी उस्तादीसे की गयी है। इनके पदोंमें मुस्लिम प्रभाव देख पड़ता है। इन्होंने मूर्त्ति-पूजाकी निन्दा की है,परन्तु स्वयं मूर्त्तिपूजक थे। गुरुदासपुर जिलेमें घूमन स्थानमें नामदेवजीके नामसे एक मन्दिर मौजूद है।

नामदेवजीके बाद एकनाथजी प्रसिद्ध भागवत थे जिन्होंने संवत् १६५५में समाधि ले ली। ये जातिभेदके पोषक न थे। पैठनमें रहते थे। इन्होंने श्रीमद्भागवतके अनेक अंशोंके पद्यानुवाद किये थे। "हरिपाठ" नामका इनके अभङ्गोंका एक सङ्ग्रह बड़ा ही सुन्दर है। ये भी अद्वैतवादी थे।

तुकारामजी

तुकारामजीका जन्म इन्द्रायणी नदीके तटपर संवत् १६६५में देहूमें हुआ था। ये जातिके कुनबी थे। महाजनी पेशा था। परन्तु भक्तोंकी कुल परम्परामें भागवत-सम्प्रदायके ये एक भारी भक्त हो गये हैं। विठोबाके चरणोंमें इन्हें अटल अपरिमित और अमल अनुराग था। इनके भाव भरे अभङ्गोंमें इनका भक्तिमय जीवन स्पष्ट झलकता है। अपनी दीनता और

हीनताका आत्यन्तिक निवेदन, भगवान्‌को आत्मसमर्पण, प्रार्थना और विनय इनके अभङ्गोंमें भरे हैं। दूसरोंको अपने पन्थमें लानेका भाव नहीं है। वह सर्वत्र अपने उपास्यको देखते हैं, और वह उपास्य भगवान् विट्ठल ही हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीकी तरह वे कोई नया सम्प्रदाय नहीं चलाना चाहते थे। परन्तु सारे महाराष्ट्रमें उनके अभङ्ग व्यापक हैं। उनके अन्त समयके समीप संवत् १७०६के लगभग शिवाजी महाराजका सदेश मिला परन्तु वे उनके दरबारमें नहीं गये। केवल कुछ अभङ्ग भेज दिये। इनके अभङ्गोंका सङ्ग्रह और जीवनी प्रकाशित हुई है। इन अभङ्गोंमें हिन्दीकी भी रचनाएँ हैं।

तुकारामजी करताल लेकर नदीके किनारे मौजमें आकर तत्कालके ही रचे अभङ्ग गाते थे, विट्ठलगुणानुकीर्त्तन करते और तन्मय होकर नाचते थे और हजारों आदमी उन्हें घेरे उनके अभङ्ग सुना करते थे। वे भागवतोंमें वारकरी-सम्प्रदायके थे।

समर्थ रामदास स्वामी और उनका पन्थ

स्वामी रामदासका पूर्वाश्रम नाम नारायण था। इनका जन्म संवत् १६६५की श्रीरामनवमीके दिन गोदावरीके तटपर जम्बू नामक स्थानमें एक ब्राह्मणके घर हुआ था। बाल्यावस्थासे ही इन्हें प्रभु रामके चरणोंमें अनुराग था। कहते हैं कि जब ये आठ ही बरसके थे तभी एक बार भगवान् रामचन्द्रजीने इन्हें दर्शन देकर कहा था कि तुम म्लेच्छोंका नाश करके धर्मको दुर्दशासे बचाओ और उसे पुनः स्थापित करो। तभीसे इनके मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ, जिसे दूर करनेके लिए माता-पिताने इनका विवाह करना चाहा। पर ये विवाह-मण्डपसे उठकर भाग गये और नासिकके पासकी एक गुफामें जाकर तपस्या करने लगे। फिर बहुत दिनोंतक इधर-उधर तीर्थ-यात्रा करते रहे। उस समयतक दक्षिण भारतमें इनकी साधुताकी बहुत प्रसिद्धि हो चुकी थी जिसको सुनकर शिवाजी इनके दर्शनके लिये आये और तबसे इनके परम भक्त हो गये। महाराज शिवाजी प्रायः सब कामोंमें इनसे परामर्श और आज्ञा ले लिया करते थे। कहते हैं कि इन्होंने अपने जीवनमें अनेक विलक्षण चमत्कार दिखाये थे। इनकी मृत्यु सं० १७३८ विक्रमीयके माघ मासमें हुई थी। इनके उपदेशों और भजनोंका दक्षिण-भारतमें अबतक बहुत अधिक प्रचार है। इनके रचे दासबोधका हिन्दीमें अनुवाद भी हो चुका है।

महाराजा शिवाजीके द्वारा इन्हें अपने उन राजनीतिक उद्देश्योंकी पूर्त्तिके साधन मिले जो गोस्वामी तुलसीदासको नहीं मिले थे। समर्थ रामदासको ही आगे चलकर स्थापित होनेवाले महाराष्ट्र वा हिन्दू साम्राज्यकी आधार-शिला रखनेवाला समझना चाहिये।

समर्थ रामदासका भी एक पन्थ चलता है जिनके तिलकमुद्रा एवं मन्त्र अलग हैं। सताराके पास सज्जनगढ़में इस पन्थका मुख्य स्थान है। यहाँ समर्थ रामदासकी समाधि है और भगवान् रामचन्द्रकी मूर्त्ति है और इस पन्थका एक मठ भी है। इस पन्थके साधु बहुत हैं। समर्थ रामदास हनुमानजीके अवतार समझे जाते हैं।

महाराष्ट्र देशमें भागवतमत सम्प्रदाय-भेदसे बिल्कुल स्वतन्त्र फैला हुआ है। इसकी विशेषता हरिहर भक्ति है। पण्ढरपुर देहू और अलन्दी इनके मुख्य तीर्थ हैं। पण्ढरपुरमें विष्णुकी मूर्त्तिमें मुकुटके स्थानमें शिवलिङ्ग हरिहरकी एकताको स्पष्ट करता है।

मानभाऊ-पन्थ या दत्त-सम्प्रदाय

मानभाऊ या मनभाऊ-पन्थी सानातनिक-सम्प्रदायोंमें अच्छी निगाहसे नहीं देखे जाते थे। इनका प्रचार महाराष्ट्र देशमें ही हुआ और अब भी वरार प्रदेशके ऋद्धिपुरमें उनके प्रधान महन्तका मठ है। परन्तु महाराष्ट्रमें ही ये लोक-प्रिय नहीं हो पाये। महाराष्ट्र सन्तकवि एकनाथ, गिरिधर आदिने अपनी कविताओंमें इनकी निन्दा की है। संवत् १८३९में माधव-राव पेशवाने फरमान निकाला कि "मनभाऊ-पन्थ पूर्णतया निन्दित है। उन्हें वर्णबाह्य समझा जाय। न तो उनका वर्णाश्रमसे कोई सम्बन्ध है और न छहों दर्शनोंमें उनका कोई स्थान है। कोई हिन्दू उनका उपदेश न सुने नहीं तो जातिच्युत किया जायगा।" हिन्दू-समाज उन्हें भ्रष्ट कहता था और तरह-तरहके दोष लगाता था, और वे जातिच्युत तो समझे ही जाते थे। आज भी कहा जाता है कि वे छोटी लड़कियोंको बहकाकर देवदासियाँ बनाते हैं। जो हो, इतना तो स्पष्ट ही है कि यह सुधारकपन्थ वर्णाश्रम धर्म्मकी परवाह नहीं करता था और इसका ध्येय केवल भगवद्भजन और उपासनामात्र था। यह भागवत मतकी ही एक शाखा है।

मनभाऊ वैष्णव हैं। भगवान् दत्तात्रेयको अपना आदि प्रवर्त्तक मानते हैं। परन्तु दत्तात्रेयको भगवान् कृष्णका अवतार मानते हैं। मूर्त्तिपूजाके विरोधी हैं परन्तु कृष्ण भगवान्-की उपासना करते हैं। वे सभी सहभोजी हैं। मांस मद्यका सेवन नहीं करते और अपने संन्यासियोंको मन्दिरोंसे अधिक सम्मान्य मानते हैं। दीक्षा लेकर इस पन्थमें जो प्रवेश करता है, पूर्ण अधिकारी हो जाता है। ये अपने शवोंको समाधि देते हैं। वे और देवताओंका अस्तित्व मानते हैं, परन्तु केवल अपने ही मन्दिरोंमें जाते हैं। उनके मन्दिरोंमें एक वर्गाकार या वृत्ताकार सौध होता है, वही परमात्माका चिह्न है। मनभाऊ-सम्प्रदायको महानुभवपन्थ, दत्तात्रेय-सम्प्रदाय, श्रीदत्त-सम्प्रदाय तथा मुनिमार्ग भी कहते हैं। यद्यपि दत्तात्रेयजीको वे अपना आदि प्रवर्त्तक मानते हैं तो भी वे प्रतियुग एक प्रवर्त्तकका अवतीर्ण होना मानते हैं। इस प्रकार पञ्चकृष्ण प्रवर्त्तक हैं और उनके अलग-अलग पांच मन्त्र भी हैं। ये पांचों मन्त्र दीक्षामें दिये जाते हैं। उनके यहाँ गृहस्थ और संन्यासी ये दो ही आश्रम हैं। संन्यासी और सन्यासिनें अलग रहते हैं। भगवद्गीता उनका मुख्य ग्रन्थ है। उनका विशाल साहित्य मराठीमें है, परन्तु गुप्त रखनेके लिये एक भिन्न लिपिमें लिखा हुआ है। लीला-संवाद, लीला-चरित्र और सूत्रपाठ तथा दत्तात्रेय उपनिषत् और संहिता इनके प्राचीन ग्रन्थ हैं।

विक्रमकी चौदहवीं शताब्दीके आरम्भमें सन्त चक्रधरने इस प्राचीन सम्प्रदायका जीर्णोद्धार किया। जान पड़ता है कि चक्रधरने ही इस सम्प्रदायमें वे सब सुधार किये जो उस समयके हिन्दू-समाज और संस्कृतिके विपरीत पड़े जिस कारण यह सम्प्रदाय साना-तनिकोंकी निगाहोंसे गिर गया और बादको राज और समाज दोनोंके द्वारा यह सम्प्रदाय सताया जाने लगा। सन्त चक्रधरके बाद, सन्त नागदेवभट्ट हुए जो यादवराज रामचन्द्र और योगी ज्ञानेश्वरजीके समकालीन थे। यादवराज रामचन्द्रका समय संवत् १३२८-१३६३ था। सन्त नागदेवभट्टने भी इस पन्थका अच्छा प्रचार किया था।

मनभाऊ-पन्थवाले भूरे रङ्गके कपड़े पहनते हैं। तुलसीकी कण्ठी और कुण्डल धारण करते हैं। अपना मत गोप्य रखते हैं और अधिकारीको ही उपदेश देते हैं।

नरसिंह-सम्प्रदाय

नरसिंह-सम्प्रदायका उद्भव कब हुआ, यह नहीं कहा जा सकता। इस सम्प्रदायके अनुयायी इस समय तो बहुत कम हैं परन्तु उत्तरकी अपेक्षा दक्षिणमें अधिक हैं। विजयनगरमें एक ही पत्थरकी बनी हुई भगवान् नृसिंहकी मूर्त्ति है। इससे जान पड़ता है कि विजयनगरका राजकुल इस सम्प्रदायका आदर करता था। अनेक वंशोंमें भगवान् नृसिंह ही इष्टदेव वा कुलदेव हैं। मुलतानमें ही नृसिंहावतार हुआ था, ऐसा कहा जाता है। वहाँ भी नृसिंह भगवान् और प्रह्लादके मन्दिर हैं। नृसिंह पूर्वतापनीय तथा उत्तरतापनीय उपनिषत्, अहिर्बुध्न्य-संहिता, नृसिंह-उपपुराण और नृसिंह-संहिता इस सम्प्रदायके मुख्य ग्रन्थ हैं। यह भी स्मार्त्त वा भागवत-सम्प्रदायकी ही एक शाखा समझी जानी चाहिये।

रामावत सम्प्रदाय या रामोपासक

रामपूर्वतापनीय और उत्तरतापनीय उपनिषदोंमें और वाल्मीकीय-रामायणसे एवं महाभारत और पुराणोंसे यह पता चलता है कि सम्प्रदाय रूपसे नहीं, बल्कि व्यापक रूपसे बहुत प्राचीन-कालमें रामोपासनाका प्रचार रहा होगा। संहिताओंमें अगस्त्य-सुतीक्ष्ण-संवाद-संहिता भी इसी बातका पता देती है। अनेक रामायण-ग्रन्थ जिनकी चर्चा हम अन्यत्र कर आये हैं, हमारे अनुमानको पुष्ट करते हैं। अध्यात्म-रामायण और योगवासिष्ठ महारामायण अद्वैतवादी ग्रन्थ हैं। परन्तु ज्ञानकर्म्म-समुच्चयवादी विशिष्टाद्वैती रामानुजस्वामी भी रामोपासक हैं, परन्तु विष्णु और नारायणके अवतारके रूपमें, उपनिषदों और रामायणकी तरह परात्पर ब्रह्मके रूपमें नहीं। स्वामी रामानन्दने रामकी उपासना परब्रह्मके रूपमें चलायी, परन्तु विशिष्टाद्वैतवादका एक नये ढङ्गसे प्रतिपादन किया। महाराष्ट्रके प्रसिद्ध भागवत नामदेव और त्रिलोचनने और उत्तर-भारतके सदन और बेनीने भी रामोपासनाका प्रचार किया था। परन्तु पिछले पांचसौ बरसोंके भीतर रामोपासनाका प्रचार सबसे अधिक स्वामी रामानन्दके महान् व्यक्तित्वके द्वारा हुआ। स्वामी रामानन्दके जीवनवृत्त और भाष्यकी चर्चा हम अन्यत्र कर आये हैं। उस भाष्यके अतिरिक्त दो एक और ग्रन्थ देखनेमें आये हैं। परन्तु स्वामी रामानन्दकी मौखिक शिक्षाका प्रभाव जितना पड़ा है उतना उनके लिखित ग्रन्थोंका नहीं।

इनके शिष्योंमें जाट, शूद्र, चमार, मुसलमान और स्त्रीतकका समावेश था। इनके विचार बड़े उदार थे। हिन्दू-मुसलिम सभी भगवान्के शरणमें स्थान पा सकते थे। इनकी उदारताका उनके समयमें बहुतसे लोगोंपर प्रभाव पड़ा। दक्षिण और उत्तर समग्र भारतमें हिन्दू-मुसलिममें परस्पर मत-सहिष्णुताकी एक लहर दौड़ गयी। परन्तु जाति-पांतिके बारेमें पीछे उनके अनुयायियोंमें इतनी ही उदारता रही कि भगवच्छरणमें सभी आ सकते थे। परन्तु समाजमें वर्णोंका अपना-अपना स्थान यथास्थित रहा।

यद्यपि श्रीसम्प्रदायके प्रवर्त्तक स्वामी रामानन्द कहे जाते हैं, और यद्यपि वैरागी अपनेको स्वामी रामानन्दके सम्प्रदायका कहता है, तथापि रामानन्दके विविध जाति और वर्गके शिष्योंकी रामानन्द स्वामीके नामकी कोई विशिष्ट परम्परा नहीं चली। स्वामी रामानन्द स्वयं सम्प्रदाय चलानेके लिये इच्छुक न थे। उनके शिष्योंने चला दिया। उन्होंने रामोपा-

सनाकी रीति जरूर चलायी जो सात्तोंमें बिना सम्प्रदायभेदके फैली और गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरित मानसमें एवं अपनी अन्य रचनाओंमें उन्हींके मतका प्रतिपादन किया। परिणाम यह हुआ कि सारे उत्तरभारतमें, मध्यभारतमें और कुछ दक्षिणमें भी रामोपासनाका प्रचार हो गया।

कबीर-पन्थ

इस पन्थके प्रवर्त्तक कबीरदासजी मुसलमान जुलाहेके लड़के कहे जाते हैं। यह बनारसके रहनेवाले थे। इनका स्थान कबीरचौरा आजतक प्रसिद्ध है। यह संवत् १४४५के लगभग हुए। इनके बनाये हुए ग्रन्थ यह हैं—अमरमूल, अनुरागसागर, उग्रज्ञान मूलसिद्धान्त, ब्रह्मनिरूपण, हंसमुक्तावली, कबीर-परिचयकी साखी, शब्दावली, पद, साखियाँ, दोहे सुखनिधान, गोरखनाथकी गोष्ठी, कबीरपञ्जी, बलक्ककी रमैनी, रामानन्दकी गोष्ठी, आनन्द रामसागर-मङ्गल, अनाथमङ्गल, अक्षरभेदकी रमैनी, अक्षरखण्डकी रमैनी, अरिफनामा कबीरका, अर्जनामा कबीरका, आरती कबीरकृत, भक्तिका अङ्ग, छप्पय, चौका-घरकी रमैनी, ज्ञानगूदरी, ज्ञानसागर, ज्ञानस्वरोदय, कबीराष्टक, करमखण्डकी रमैनी, मुहम्मदी बानी, नाममाहात्म्य, पिया पहिचानवेको अङ्ग, पुकार, शब्द अलहक, साधकोंके अङ्ग, सतसङ्गको अङ्ग, स्वासगुञ्जार, तीसा जन्त्र, कबीरकृत जन्मबोध, ज्ञानसम्बोध, मखहोम, निर्भय ज्ञान, सतनाम या सतकबीर, बानी, ज्ञान-स्तोत्र, हिण्डोरा, सतकबीर, बन्दी छोर, शब्द वंशावली, उग्रगीता, बसन्त, होली, रेखता, झूलना, खसरा, हिण्डोला, बारहमासा, चाँचरा, चौतीसा, अलिफनामा, रमैनी, बीजक, आगम, रामसार, सोरठा, कबीरजीको कृत, शब्दपारखा और ज्ञानबत्तीसी, विवेकसागर, विचारमाला, कायापञ्जी, रामरक्षा, अठपहरा, निर्भयज्ञान, कबीर और धर्मदासकी गोष्ठी आदि ग्रन्थ।

कबीरदासने स्वयं ग्रन्थ नहीं लिखे, बरन केवल मुखसे भाखे। इनके शिष्योंने उन्हें लिपि-बद्ध किया। आपने एक ही विचारको सैकड़ों प्रकारसे कहा है, और सबमें एक ही भाव प्रतिध्वनित होता है। आप रामनामकी महिमा गाते थे, एक ही ईश्वरको मानते थे, कर्मकाण्डके घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्त्ति, रोजा, ईद, मसजिद, मन्दिर आदिको नहीं मानते थे। अहिंसा, मनुष्यमात्रकी समता तथा संसारकी असारताको इन्होंने बार-बार गाया है। यह उपनिषदोंके विचारवाले ईश्वरको मानते थे, और साफ कहते थे कि वही शुद्ध ईश्वर है, चाहे उसे राम कहो या अल्ला। ऐसी दशामें शिष्योंद्वारा पाठ-परिवर्त्तनसे इनकी शिक्षाओंका प्रभाव उलटा नहीं जा सकता था। इनकी शिक्षाओंको उलटनेके लिये इनके पूरे ग्रन्थ लुप्त कर देने पड़ेंगे, और नये ग्रन्थ बनाने पड़ेंगे।

थोड़ासा उलट-पुलट करनेसे केवल इतना फल हो सकता था कि रामनाम अधिक न होकर सत्य नाम अधिक हो। यह निश्चित बात है कि यह रामनाम और सत्यनाम, दोनोंको भजनोंमें रखते थे। इन शब्दोंके व्यवहारकी मात्राओंमें थोड़ासा घट-बढ़ हो जानेसे शिक्षा उलट नहीं सकती। इसी प्रकार कुछ बदलनेसे दो चार स्थानोंपर प्रतिकूल शिक्षाएँ दिखाई जा सकेंगी, किन्तु और कोई अन्तर न पड़ेगा। प्रतिमापूजन इन्होंने निन्दनीय माना है। अवतारोंका विचार इन्होंने सदा त्याज्य लिखा है। दो चार स्थानोंपर कुछ ऐसे शब्द हैं,

जिनसे अवतार-महिमा व्यक्त होती है। कवीरसाहवके मुख्य विचार उनके ग्रन्थोंसे सूर्यवत् चमक रहे हैं। उन्हें कोई वदल नहीं सकता। यह नहीं जान पड़ता कि आवागमन सिद्धान्त-पर वह हिन्दू मतको मानते थे कि मुसलमानी मतको। अन्य बातोंपर कोई वास्तविक विरोध कबीरकी शिक्षाओंमें नहीं देख पड़ता। कवीरसाहवके बहुतसे शिष्य उनके जीवन-कालमें ही हो गये थे। उनके पीछे कबीर-पन्थ अबतक चल रहा है। भारतमें अब भी आठ नव लाख मनुष्य कबीरपन्थी हैं। इनमें मुसलमान बहुत थोड़े हैं, और हिन्दू बहुत अधिक। कवीरपन्थी कण्ठी पहनते हैं, बीजक रमैनी आदि ग्रन्थोंके प्रति पूज्य भाव रखते हैं। गुरुको सर्वोपरि मानते हैं।

निर्गुण निराकार उपासक कबीरपन्थके ही प्रभावसे अनेक पन्थ निकल पड़े। नानक-पन्थ पञ्जाबमें, दादूपन्थ राजपुतानेमें, लालदासी अलवरमें, सत्यनामी नारनौलमें, बाबालाली सरहिन्दमें, साधपन्थ दिल्लीके पास, शिवनारायणी गाजीपुरमें, गरीबदासी रोहतकमें, और रामसनेही शाहापुर राजपुतानेमें, अघोरपन्थी काशीमें, ये दस पन्थ तो स्पष्ट ही कबीरपन्थसे ही निकले हैं। कबीरपन्थको मिलाकर इन ग्यारहोंमें समानरूपसे यह देखा जाता है कि अकेले निर्गुण निराकार ईश्वरकी उपासना की जाती है। मूर्त्तिपूजा वर्जित है। उपासना और पूजाका काम किसी जातिका आदमी कर सकता है। हिन्दू-मुसलमान कोई हो पन्थमें सम्मि-लित हो सकता है। गुरुकी उपासनापर बड़ा जोर दिया जाता है। सारे पन्थका सारा साहित्य हिन्दी भाषामें है। रामनाम या सत्यनाम या शब्दका योग और जप इनका विशेष साधन है। अधिकांशमें बहुदेववाद, अवतारवाद, कर्म्म, और जन्मान्तर एवं तीर्थ व्रतादि भी मानते हैं।

नानक-पन्थ

बाबा नानक पञ्जाबके एक खत्री थे, जो बहुत भारी महात्मा हो गये हैं। इन्होंने नानक-पन्थ चलाया जो आगे चलकर दसवें गुरु गोविन्दसिंहके समयमें सिख मत बन गया। इनका जन्म संवत् १५२६में लाहौर जिलेके तलवांडी गाँवमें हुआ था और १५९६में ये पञ्चत्वको प्राप्त हुए। इन्होंने हिन्दू-मुसलमान मतोंको मिलाना चाहा, और जाति-पांतिके झंझटोंसे सङ्कीर्ण किये हुए प्रति मनुष्यके अधिकार फिरसे जागृत किये। नानकजी सूफी वा वेदान्त मतके अनुयायी तथा एक ईश्वरके माननेवाले थे। इन्होंने हरिद्वार, काशी, गया, मक्का आदि सभी स्थानोंकी एक भावसे यात्राएँ कीं। ये फारसी, संस्कृत हिन्दी आदि अनेक भाषा जानते थे और पञ्जाबी-मिश्रित पद रचते और गाते थे। आपने ग्रन्थसाहब, नानकजी-की साखी और अष्टाङ्गयोग नामक ग्रन्थ रचे। इनकी वाणी, पद आदि ग्रन्थसाहबमें सङ्गृहीत हैं, जो उनके अनुयायियोंके लिये वेद, कुरान आदिकी भांति पूज्य ग्रन्थ है। इनकी कविता पञ्जाबी मिश्रित भाषामें भक्ति-रससे पूर्ण है।

गुरु नानकके परमपदके पीछे गुरु अङ्गद गद्दीपर बैठे। इन्होंने गुरुमुखी लिपि चलायी जो अब पञ्जाबी भाषाकी लिपि समझी जाती है। गुरु अङ्गदके पीछे गुरु अमरदास और गुरु रामदास हुए। इन्होंने बहुतसे भजन लिखे। गुरु अर्जुन कवि भी थे और दुनियादार भी। ये अकबरके पिछले चौबीस बरसोंतक गद्दीपर रहे। उन्होंने अमृतसरका स्वर्ण-मन्दिर बनाया

और ग्रन्थसाहबको पूरा किया। इन्होंने कबीर आदि बाहरी भक्तोंके भी शब्दोंका उसमें सङ्ग्रह किया। उन्होंने "जपजी"को प्रथम स्थान दिया और फिर "सोदरू"को। फिर रागके अनुसार शेषके विभाग किये। इस प्रकार ग्रन्थसाहब ही नानकपन्थियोंके वेद हैं। दसवें बादशाह गुरु गोविन्दसिंहने तो "सब सिक्खनको हुकुम है, गुरु मानियो ग्रन्थ" यह फरमान निकालकर गुरुपरम्परा जो नानकशाहसे चली थी और गुरु अर्जुनसे वंशानुगत हो गयी थी अपने बाद समाप्त कर दी।

अकबरके बाद जहांगीरने अर्जुनकी बड़ी यातना की। और बूढ़े गुरु तेगबहादुरको औरङ्गजेबने कैद करके मरवा डाला। इन्हीं गुरुने मरनेके पहले मुगल साम्राज्यको शाप दिया कि फिरङ्गी उसे नष्ट कर देंगे।

जिस उदार और शान्त उद्देश्यसे नानकशाहने अपना पन्थ चलाया वह मुसलमानोंके कट्टरपन और जुल्मसे बिलकुल पलट गया। गुरु मरवा डाले गये और निष्कलङ्क बच्चे दीवारोंमें चुनवा दिये गये। मुसलमान बादशाहोंने नानकशाहियोंसे ऐसी दुश्मनी ठानी कि दसवें गुरु गोविन्दसिंहने जो गुरु तेगबहादुरके पुत्र थे, नानकपन्थका रुख बदल दिया और अपने शिष्योंको एक बड़ी भारी जङ्गी सेनामें परिणत कर दिया। कच्छ, केश, कङ्घा, कड़ा और कृपाण धारण करना हर सिखके लिए आवश्यक हो गया। यह सिखोंकी वर्दी थी। मुसलमानी भगानेके लिए सिख लोग सूअरकी हड्डी रखने लगे। मुसलमानों और सिखोंका द्वेष ऐसा बढ़ गया कि मुसलमानोंको हटाकर सिखोंने सारे पञ्जाबपर अधिकार जमाया और काबुलतक चढ़ दौड़नेकी हिम्मत बांधी। अब मुसलमानोंको मिलानेके बदले उनकी जड़ खोदना सिखोंका ध्येय हो गया। गुरु गोविन्दसिंह जैसे अध्यात्म-जगत्में महामोह और महाविवेकके सङ्ग्राममें कुशल थे, वैसे ही इस स्थूल-जगत्के युद्धमें भी दक्ष थे। मुसलमानोंके वैरसे सिख-धर्म्म उत्तरोत्तर अधिक हिन्दू होता आया था। गुरु गोविन्दसिंहने भगवती दुर्गाकी उपासना भी चला दी। उन्होंने चण्डीपाठके पद्यानुवाद कराये और वीरसाहित्यको उत्तेजन दिया और स्वयं निर्म्माण किया। बड़े ऊँचे दरजेके कवि थे। फारसी और हिन्दी दोनोंमें लिखते थे। इनके पीछे भाई मणिसिंहने इनकी रचनाओंका "दसवें बादशाहका ग्रन्थ"के नामसे सङ्ग्रह किया।

इन्हींसे "खालसा"का आरम्भ हुआ और ग्रन्थसाहब गुरुकी तरह पुजने लगे।

सिखोंमें "सहिजधारी" और "सिंह" दो विभाग हैं।

सहिजधारियोंमें सबसे पुराने "नानकपन्थी" हैं। नानकशाहके पुत्र श्रीचन्दने "उदासियों" साधुओंका पन्थ चलाया। हन्दलसे हन्दली-पन्थ चला। गुरु रामदासके पुत्र पृथीचन्दने "मीना" पन्थ चलाया। गुरु हररायके पुत्र रामरायने "रामरआ" पन्थ चलाया। कन्हैया पनभरेने "सेवापन्थी" शाखा चलायी। ये छहों सहिजधारी हैं, अर्थात् कोई विशेष रूप या बाना नहीं धारण करते।

"सिंह" लोगोंमें "खालसा-पन्थ" तो गुरु गोविन्दसिंहका चलाया हुआ है। वीरसिंहने "निर्मल" साधुओंका और मानसिंहने "अकाली" सैनिक-साधुओंका पन्थ चलाया।

ये नवों नानकशाही "पञ्जग्रन्थी"से प्रार्थना आदि करते हैं। जपजी, रहरास, कीर्त्तन सोहिला, सुखमनी, आसकीवार इन्हींका सङ्ग्रह पञ्जग्रन्थी है।

सिखोंका मत शुद्ध अद्वैत-वेदान्त है। यह लोग पुराणोंकी कथा, देवी-देवताओंको मानते हैं। परन्तु वर्णाश्रमधर्म नहीं मानते। जात-पांत, छूत-छातसे उन्हें कोई मतलब नहीं। जहाँ कबीरपन्थी लोग कण्ठीबन्द वैष्णव हैं वहाँ नानकपन्थी और सिख मांस आदिसे कोई परहेज नहीं करते। उनको सुरती-तम्बाकूसे जरूर परहेज है। वह मूर्त्ति-पूजा नहीं करते। परन्तु तीर्थोंको मानते हैं, दर्शन करते हैं।

दादू-पन्थ

श्रीदादूदयालजीका जन्म संवत् १६०१में हुआ था और संवत् १६६०में ये पञ्चत्वको प्राप्त हुए। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। दादूजी कभी क्रोध नहीं करते थे और सबपर दया रखते थे। इसीसे इनका नाम दयाल पड़ गया। ये सबको दादा दादा कहनेके कारण दादू कहलाये। यह कबीरदासकी छठी पीढ़ीके शिष्य थे। इन्होंने भी हिन्दू-मुसलिमको मिलानेकी चेष्टा की। ये बड़े प्रभावशाली उपदेशक और जीवनमें ऋषि तुल्य हो गये हैं। इनका चलाया हुआ मत दादू-पन्थ कहलाता है। सुन्दरदास, निश्चलदास, रज्जबजी, जनगोपाल, जगन्नाथ, मोहनदास, खेमदास आदि इनके शिष्य अच्छे कवि भी हो गये हैं। दादूजीके बनाये हुए "सबद" और "वाणी" प्रसिद्ध हैं जिनमें इन्होंने संसारकी असारता और ईश्वर (राम) भक्तिके उपदेश सबल छन्दोंद्वारा दिये हैं। इन्होंने भजन भी बहुत बनाये हैं। कविताकी दृष्टिसे भी इनकी रचना मनोहर और यथार्थ-भाषिणी है। इनके शिष्य निश्चलदास, सुन्दरदास आदि अच्छे वेदान्ती हो गये हैं। उनकी रचनाएँ भी उत्कृष्ट हैं। परन्तु सबका आधार श्रुति-स्मृति और विशेषत. अद्वैतवाद है। "वानी"का पाठ द्विज ही कर सकते हैं। २४ गुरु-मन्त्र और २४ शब्दोंका ही अधिकार शूद्रोंको है।

दादूपन्थी या तो ब्रह्मचारी साधु होते हैं, या गृहस्थ जो कि "सेवक" कहलाते हैं। दादूपन्थी शब्द साधुओंके लिये ही व्यवहृत होता है। इन साधुओंके पांच प्रकार हैं। (१) खालसा लोगोंका स्थान जयपुरसे चालीस मीलपर नरायनामें हैं जहाँ दादूजीकी मृत्यु हुई थी। इनमें जो विद्वान् हैं उपासना, अध्ययन और शिक्षणमें अग्रसर रहते हैं। (२) नागा साधु सुन्दरदासजीने बनाये। ये ब्रह्मचारी सैनिकका काम करते हैं। जयपुर राज्यकी रक्षाके लिये रियासतकी सीमापर ये नव पड़ावोंमें रहते हैं। जयपुर दरबारसे वीस हजारका खर्च मिलता है। (३) उत्तराडी साधुकी मण्डली पञ्जाबमें बनवारीदासने बनायी। कई विद्वान् हैं। साधुओंको पढ़ाते हैं। कई वैद्य हैं। इन तीनों प्रकारके साधु जो पेशा चाहें कर सकते हैं। (४) विरक्त साधु न कोई पेशा कर सकते हैं न द्रव्य छू सकते हैं। ये घूमते-फिरते और लिखते-पढ़ते रहते हैं। (५) खाकी साधु भस्म लपेटे रहते हैं और भांति-भांतिकी तपस्या करते रहते हैं।

दादूद्वारोंमें हाथकी लिखी "वाणी"की पोथीकी षोडशोपचार पूजा और आरती होती है। पाठ और भजनका गान भी होता है। साधु ही यह सब करते हैं। और जहाँ साधु हो और पोथी हो, वही स्थान "दादूद्वारा" कहलाता है। नरायनामें दादू महाराजकी खड़ाऊँ और कपड़े भी रक्खे हैं। इन वस्तुओंकी भी पूजा होती है।

लालदासी-पन्थ

मेव जातिके लालदास नामके एक सन्त अलवरमें हो गये हैं। उनकी "बानी" भी प्रसिद्ध है। ये गृहस्थ थे। इस पन्थके आचार्य्य भी गृहस्थ ही होते हैं। इनकी उपासना केवल रामनामका जप है। ये भजन गाते हैं।

सत्यनामी

यह पता नहीं कि सत्यनामियोंका आरम्भ कब और कैसे और किसके नेतृत्त्वमें हुआ। पुराने इतिहासकार ईश्वरदास नागरने लिखा है कि इनका आचार और स्वभाव बड़ा गन्दा था। इतिहासके अनुसार संवत् १७३०के अन्तमें दिल्लीसे ७५ मील नैर्ऋत्यमें नारनौलमें एक मामूलीसे झगड़ेमें औरङ्गजेबकी सरकारसे सत्यनामी साधु बिगड़ खड़े हुए और भयानक लड़ाई हो गयी जिसमें हजारों सत्यनामी मारे गये। पीछे बाराबङ्की जिलेमें कोटवा स्थानमें महात्मा जगजीवनदासने इस पन्थका संवत् १८००के लगभग पुनरुद्धार किया। जगजीवन-साहब योगी और कवि थे। इनके शिष्य दूलनदास भी कवि थे। ये जीवनभर रायबरेलीके समीप रहे।

कुछ काल पीछे छत्तीसगढ़के चमार गाजीदासने, जिसे सौ-सवा सौ बरस हुए होंगे, इस पन्थकी पुनर्रचना की। गाजीदासने चमार जातिके सामाजिक सुधारके लिये छत्तीसगढ़ प्रान्त-के चमारोंमें इस पन्थका प्रचार किया।

इस पन्थके लोग सत्यनामका जप करते हैं। एक सत्य निराकार परमेश्वरको मानते हैं। मद्य मांस इनके यहाँ वर्जित है। यह पन्थ अधिकांश असवर्ण हिन्दुओंमें ही प्रचलित है।

बाबा लाली

यह एक छोटासा पन्थ बाबा लालका है। बरोदाके पास इनका एक मठ है जिसका नाम है "लाल बाबाका शैल"। ये भी निर्गुण उपासक हैं। इतिहासमें अङ्कित है कि संवत् १७०६में बाबा लालसे दाराशिकोहकी सात बार भेंट हुई और शाहजादेकी आज्ञासे दो हिन्दू दरबारियोंने बैठकर बाबा लालके उपदेश फारसीमें लिखा डाले। इसका नाम "नादिरुन्नुकात" रक्खा गया था।

साध

दिल्लीसे दक्षिण और पूरबकी ओर दोआबे वा अन्तर्वेदमें साध लोग पाये जाते हैं। संवत् १७१५में वीरभानने यह पन्थ चलाया। कबीरकी तरह दोहरों और साखियोंमें इन्होंने उपदेश किये। इसके सङ्ग्रहका नाम आदि उपदेश है। इनमें बारह आदेश महत्त्वके हैं जिनसे साधोंका सदाचार सिद्ध होता है। ये लोग एक ही विवाह करते हैं और प्रति पूर्णिमा-को मिलकर सत्सङ्ग करते हैं।

शिवनारायणी

गाजीपुरके पास भेलसरीमें सन्त शिवनारायणसिंह एक राजपूत रहते थे। इन्होंने संवत् १७९०में शिवनारायणी-पन्थ चलाया। और गाज़ीपुर जिलेमें ही चार मठ चार धामके

नामसे स्थापित किये। इस पन्थमें सभी जाति और धर्म्मके लोग ले लिये जाते हैं। पहले बड़ी सङ्ख्यामें ब्राह्मण क्षत्रिय इसमें सम्मिलित हुए परन्तु अब अधिकांश असवर्ण जातिके लोग हैं। दिल्लीके सम्राट् मुहम्मदशाह [संवत् १७७६–१८०५] भी इस पन्थके अनुयायी थे। इस पन्थके लोग निराकार ब्रह्मकी उपासना करते हैं और शिवनारायणको उसका अवतार मानते हैं।

गरीबदासी

सन्त गरीबदास [सं० १७७४–१८३९] रोहतक जिलेमें छीड़ानी गाँवमें रहते थे। उनके "गुरु ग्रन्थसाहब"में २४ हजार साखी और पद हैं। इस पन्थमें एक ही मठ है और द्विज साधु ही इस पन्थके अनुयायी हैं।

रामसनेही

संवत् १८००के लगभग सन्त रामचरणने रामसनेहियोंका पन्थ चलाया। इनकी वाणियाँ और पद हैं। इस पन्थके तीसरे गुरु दूल्हारामके दस हजार पद हैं और चार हजार दोहरे हैं। इनके उपासना भवन "रामद्वारा" कहलाते हैं। वहाँ केवल भजन गाते हैं और उपदेश देते हैं। इस पन्थके रामद्वारे राजपुतानेमें ही हैं। शाहपुरेमें ही इनका मुख्य स्थान है, परन्तु जयपुर उदयपुर आदिमें भी रामद्वारे हैं। इस पन्थमें साधु ही साधु हैं। गृहस्थ शायद ही कोई हों।

किनारामी अघोर-पन्थ

गोस्वामी किनारामजीका जन्म जिला बनारसके एक क्षत्रिय कुलमें विक्रमी संवत् १६५८के लगभग हुआ। गौना आनेके पहले ही पत्नीका देहान्त हो गया। कुछ दिन पीछे उदास हो घरसे निकल गये और मौजा कारों जिला गाजीपुरके संयोगी वैष्णव महात्मा शिवादासजी कायस्थकी सेवा-टहलमें रहकर कुछ दिनों पीछे उन्हींके शिष्य हो गये। कुछ बरस और सेवा करके गिरनार पर्वतकी यात्रा की। वहाँ भगवान् दत्तात्रेयके दर्शन पाये और उनसे अवधूतीकी दीक्षा ली। फिर उनकी आज्ञासे काशी लौटे। काशी आकर बाबा कालूरामजी अघोर-पन्थीसे अघोर-मतका उपदेश लिया। अघोर-मत या कापालिकको चर्चा हम अन्यत्र कर आये हैं। वैष्णव, भागवत और फिर अघोर-पन्थी होकर गोस्वामी किनारामने एक अद्भुत् सम्मिश्रण किया। वैष्णवकी रीतिसे तो रामोपासक हुए और अघोर-पन्थीकी रीतिसे मद्यमांसादिके सेवनमें इन्हें कोई आपत्ति न थी। साथ ही जाति-पांतका कोई विवेक न था। इनका पन्थ ही अलग हो गया। इनके शिष्य हिन्दू-मुसलिम सभी हुए। अपने जीवनमें अपने दोनों गुरुओंकी मर्य्यादा निभानेके लिये उन्होंने चार स्थान वैष्णव मतके मारूफपुर, नयी डीह, परानापुर और महुवरमें और चार स्थान अघोर-मतके रामगढ़ (बनारस), देवल (गाजीपुर), हरिहरपुर (जौनपुर), और क्रमिकुण्ड काशीमें स्थापित किये। जो अबतक चल रहे हैं। इन्होंने भदैनीमें क्रमिकुण्डपर स्वयं रहना आरम्भ किया। काशीमें अब भी उनकी प्रधान गद्दी क्रमिकुण्डपर है। इनके अनुयायी सभी जातिके लोग हैं। रामावतारकी उपासना इनकी विशेषता है। ये तीर्थादि मानते हैं। इन्हें औघड़ भी कहते हैं। ये देवताओंकी मूर्त्ति-

की पूजा नहीं करते। अपने शवोंको समाधि देते हैं। जलाते नहीं। गोस्वामी किनारामने संवत् १८००में १४२ वर्षकी अवस्थामें समाधि ली।

वैष्णवोंके कुछ उप-सम्प्रदाय

अबतक हमने उन पन्थोंकी चर्चा की है जो कबीर-पन्थसे निकले अथवा उससे प्रभावित हुए। मुसलमानोंको शामिल करनेमें कमसे कम किनारामके अघोर-पन्थने तो कबीर-पन्थका ही अनुकरण किया है। परन्तु हमें यह न भूलना चाहिये कि जहाँ कबीर-पन्थका या तादृश पन्थोंका उद्देश्य था हिन्दू-मुसलिमोंको मिलाना, वहाँ चैतन्य महाप्रभुका और वल्लभाचार्य्यका सम्प्रदाय उदारतापूर्वक मुसलमानोंतकको ग्रहण कर लेता था। उनका उद्देश्य मुसलमानोंको मिलानेका न था, तो भी भक्त मुसलमानोंको मिला लेनेकी उदारता इन कट्टर सम्प्रदायोंमें भी थी।

वैष्णव-सम्प्रदायोंमें भी कुछ उप-सम्प्रदाय बने हैं जिनकी चर्चा यहाँ आवश्यक है।

श्रीराधावल्लभी सम्प्रदाय—हितहरिवंशजी मध्व और निम्बार्क दोनों सम्प्रदायोंको मानते थे, तथापि उन्होंने संवत् १६४२के लगभग वृन्दावनमें राधावल्लभी सम्प्रदायका आरम्भ किया। वृन्दावनमें अबतक राधावल्लभका मन्दिर मौजूद है जो इस उपसम्प्रदायका मुख्य स्थान है। राधावल्लभकी उपासना इसकी विशेषता है। राधारानी महाशक्ति हैं और स्वामिनी हैं। भगवान् कृष्ण उनके आज्ञानुवर्त्ती हैं, उनकी आज्ञासे विश्वकी सृष्टि, भरण और हरण करते हैं। हितहरिवंशजीकी तीन पोथियाँ इस उपसम्प्रदायके आधारग्रन्थ हैं। (१) राधा सुधानिधि जिसमें संस्कृतके पौने दो सौ श्लोक हैं। (२) चौरासी पद और (३) स्फुट पद, ये दोनों व्रजभाषामें हैं।

श्रीहरिदासी सम्प्रदाय—विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें एक महात्मा स्वामी हरिदासजी हुए। इनका मत श्रीचैतन्य महाप्रभुके सदृश था। वृन्दावनमें इनका एक निजी मन्दिर है। साधारण सिद्धान्त और रसके पद ये दो व्रजभाषाके ग्रन्थ इनके लिखे देखनेमें आते हैं।

श्रीस्वामी नारायणी सम्प्रदाय—गुजरातमें राधाकृष्णका उपासक स्वामी नारायणी सम्प्रदाय भी है। वल्लभ सम्प्रदायके घोर अत्याचारसे खिन्न होकर संवत् १८६१के कुछ बाद ही स्वामी नारायण (स्वामी सहजानन्द जिनका दूसरा नाम था) उनकी निन्दा करने लगे और अधिक पवित्र सम्प्रदाय चलाया। उनके अनुयायी जल्द ही बढ़े और एक सम्प्रदाय बन गया। अहमदाबादके दक्षिण छः कोसपर जेतलपुरमें इस सम्प्रदायका मुख्य स्थान है। ये अधिकांश मूर्त्तिकी जगह चित्रपटकी पूजा करते हैं। अधिकांश अनुयायी गृहस्थ हैं। तो भी दो प्रकारके साधु भी इस सम्प्रदायमें पाये जाते हैं। दार्शनिक मत तो विशिष्टाद्वैत है परन्तु उपासना वल्लभ-कुलकी सी है। ये पञ्चदेव उपासक और निरामिष-भोजी हैं। इनका मन्त्र वल्लभ-कुलका है। गुजरातीमें इस सम्प्रदायने अच्छा काव्य-साहित्य उत्पन्न किया है।

श्रीसातानी सम्प्रदाय—यह श्रीवैष्णव सम्प्रदायकी एक शाखा है। इसमें सभी अनुयायी शूद्र वा शूद्रवत् समझे जाते हैं, तो भी ब्राह्मणोंकेसे कुछ कर्त्तव्योंके ये अधिकारी

होते हैं। ये शिखासूत्र-विहीन होते हैं। ये श्रीरामानुजाचार्य्यके समयके बहुत पहलेसे श्री-वैष्णव हैं और अधिकांश महीशूर और आंध्रदेशमें और तमिळनाडमें पाये जाते हैं। कई मन्दिरोंमें, विशेषतः हनुमानजीके मन्दिरोंमें, ये पुजारीका काम करते हैं। इन मन्दिरोंमें ब्राह्मण दर्शनार्थ जाते हैं, किन्तु पूजा नहीं चढ़ाते। साधारण (ब्राह्मण्य) श्रीवैष्णव मन्दिरोंमें वे आवश्यकता पड़नेपर मूर्त्तिको सवाहन ढोते हैं और असवर्णोंको जब श्रीवैष्णव दीक्षा दी जाती है, तब ये ही तप्त शङ्ख चक्रसे उन्हें अङ्कित करते हैं। श्रीरङ्गमके मन्दिरमें तो प्राचीन साता-नियोंका विशेष आदर होता है। सातानी लोग तमिळ वेदके अधिकारी माने जाते हैं।

परिणामी सम्प्रदाय—ये अपनेको "प्रणामी" भी कहते हैं। इनके प्रवर्त्तक महात्मा प्राणनाथजी परिणामवादी वेदान्ती थे और विशेषतः पन्नामें रहते थे। राजा छत्रसाल इन्हें अपना आचार्य्य मानते थे। ये अपनेको मुसल्मानोंका मेहदी, ईसाइयोंका मसीहा और हिन्दुओंका कल्कि अवतार मानते थे। इन्होंने मुसल्मानोंसे शास्त्रार्थ भी किये थे। सर्वधर्म्म-समन्वय इनका लक्ष्य था। इनका मत राधावल्लभी सा था। ये गोलोकवासी भगवान् कृष्णसे सख्य भावकी उपासनाकी शिक्षा देते थे। स्वयं प्राणनाथजीकी रचनाएँ बहुत हैं। उनकी शिष्य-परम्पराका भी अच्छा साहित्य है। उनके अनुयायी वैष्णव हैं, और गुजरात, राजस्थान और बुन्देलखण्डमें अधिक पाये जाते हैं।

इन सम्प्रदायोंके सिवा छोटे-मोटे असङ्ख्य सम्प्रदाय और पन्थ और शाखाएँ हैं, जिनके अनुयायी थोड़े-थोड़ेसे हैं, इसीलिये उनका वर्णन यहाँ विस्तार भयसे नहीं किया गया।

छिहत्तरवाँ अध्याय

हालके सुधारक-सङ्घ

मुसलमानों और ईसाइयों दोनोंके धार्मिक आक्रमणसे हिन्दू-समुदायके विचारकोंने देखा कि हमारे शत्रु बहुधा जात-पाँत, छूत छात, बहुदेवपूजा, मूर्त्ति-पूजा, अवतार और साधारणतया पौराणिक बातोंको लेकर हमारी दुर्बलताओंका प्रदर्शन और हमारा उपहास करते हैं। इस तरहका उपहास मुसलमानों और ईसाइयोंके आनेसे पहिले हमारे ही यहाँके नास्तिक सम्प्रदायवाले किया करते थे। उनके उपहासका उत्तर दार्शनिक रीतिपर दिया जाता था। परन्तु हमारे आस्तिकों और नास्तिकोंकी संस्कृति समान होनेसे विशेष सङ्घर्षका अवसर नहीं आता था। आस्तिक हिन्दू यदि नास्तिक हिन्दू हो जाय, अथवा नास्तिक हिन्दू यदि आस्तिक हिन्दू हो जाय तो राष्ट्रियतामें कोई अन्तर नहीं पड़ता था। हिन्दू-हिन्दूके ऐहिक स्वार्थ समान रहते थे। भारतवर्षके बाहर किसी हिन्दूका कोई विरोधी स्वार्थ न था। परन्तु जब मुसलमानोंने इस देशपर अधिकार कर लिया तो उनका स्वार्थ यद्यपि अत्यधिक मात्रामें भारतवर्षके बाहरका न था तथापि संस्कृति एक दम भिन्न थी। यहाँके प्रमुख हिन्दुओं और विशेषकर ब्राह्मणोंने बड़ी बुद्धिमत्तासे इन भिन्न संस्कृतिवालोंका पूरा बहिष्कार किया। सामाजिक संसर्गके जो-जो मुख्य अङ्ग थे उन सब बातोंमें हिन्दुओंको मुसलमानोंसे भरसक मिलने न दिया। इस प्रकार जिनका नौकरी-चाकरी आदि ऐहिक स्वार्थका विशेष सम्बन्ध था उन थोड़ेसे हिन्दुओंको छोड़कर शेष समस्त हिन्दू जाति संस्कृति-नाशकी महा विपत्तिसे बच गयी।

हिन्दू-संस्कृतिमें मौखिक उपदेशद्वारा भारी जनसमूहके सामने प्रचार करनेकी प्रथा न थी और न है। यहाँके जितने आचार्य हुए हैं सबने आचरण वा चरित्रके ऊपर उचित रीतिसे बहुत बड़ा जोर दिया है। समाजका प्रकृत सुधार चरित्रके ही सुधारमें है। कोरे विचारके प्रचारसे आचार सङ्गठित नहीं हो सकता। इसीलिये आचारका आदर्श स्थापित करनेवाले शिक्षक "आचार्य्य" कहलाते थे। उपदेशक उनका नाम न था। जहाँतक पता चलता है, संसारके इतिहासमें भारी जनताके सामने मौखिक व्याख्यानद्वारा विचारके प्रचार करनेकी पद्धतिकी नींव पहले-पहल महात्मा गौतमबुद्धके अनुयायियोंने डाली। तबसे अपने-अपने धर्मके प्रचारकी रीति चल पड़ी, तो भी बौद्ध गृहस्थों और भिक्षुकोंके आचारके नियम निश्चित करके आचरणके सुधारपर बहुत बड़ा जोर दिया गया। सनातनकी संस्कृतिवाले हिन्दुओंने इतनेपर भी प्रचारकी इस रीतिको नहीं अपनाया। ईसाई और मुसलमान इस रीतिसे ही अपने मतोंका प्रचार करते आये हैं। मुसलमानोंने जब यह देखा कि हिन्दू लोग हमारा सामाजिक बहिष्कार किये हुए हैं और हमारे संसर्गमें कम आते हैं तो उन्होंने प्रचारके द्वारा और जहाँ-कहीं हो सकता था छल और धूर्तताके साथ हिन्दुओंको मुसलमान बनाना आरम्भ किया। इसमें भी जब उन्हें यथेष्ट सफलता नहीं मिली तब जहाँ-कहीं भी सम्भावना देखी वहाँ दमनसे काम लिया। परन्तु सामाजिक बहिष्कार ऐसा अमोघ हथियार था कि उसने

इस दरजेके आसुरी सङ्घर्षके होते हुए भी हिन्दू-राष्ट्रको जीवित रक्खा। विचारका प्रचार फिर भी जारी था, और जिस हिन्दू महासमुदायने अपनी संस्कृतिके दार्शनिक पक्षका परिशीलन नहीं किया था वह नास्तिकताके तर्कवादसे कुछ कुछ विचलित होने लगा। मुसलमान एक ईश्वर और उसके पैगम्बर मुहम्मदसाहबके सिवाय और किसीको नहीं मानता था। उसके पास एक ही किताब थी कुरान, और उसकी धार्म्मिकता सीधी-सादी भक्ति और उपासनामें मर्य्यादित थी। उसके यहाँ जात-पाँत, छूत-छात, चौके-चूल्हे आदिके कोई नियम न थे। वह नशेकी चीजोंको छोड़कर सब कुछ खा सकता था। बल्कि भङ्ग, तमाखू आदिके सेवनमें भी उसे कोई रुकावट न थी। इतना सीधा-सादापन और उच्छृङ्खलता एक ओर और जप, तप, व्रत, पूजा, नित्य-नैमित्तिक कर्मकाण्ड, वर्णाश्रमधर्म्म, और अपार धार्मिक साहित्यका महान् आडम्बर और धार्मिक और सामाजिक आचारों और व्यवहारोंके अत्यन्त कठिन नियम, दूसरी ओर थे। ऐसी दशामें मुसलमान प्रचारकोंको खण्डन-मण्डनकी बड़ी आसानी थी और अपने धर्म्मकी ओर लोगोंको प्रवृत्त करनेमें उनकी धार्मिक विधियोंकी सादगी बहुत आकर्षक थी। यही लाभ पीछेसे ईसाई प्रचारकोंको भी हुआ। इन्हीं बातोंको देखकर हिन्दुओंके बड़े-बड़े सुधारक कबीर, नानक और दादू आदिने अपने इस तरहके सीधे-सादे पन्थ चलाये जो वस्तुतः मुसलमान-धर्म्मका न केवल हर तरहपर मुकाबला कर सकते थे बल्कि हिन्दू-संस्कृतिके साँचेमें मुसलमान धर्म्मको भी ढाल सकते थे। परन्तु ये सभी पन्थ मुसलमान-संस्कृति और गो-भक्षणके विरोधी थे। इन्होंने मुसलमानोंको अपनेमें पचा लेनेकी भरपूर कोशिश की। परन्तु हम देख चुके हैं कि इन्हें सफलता नहीं मिल सकी। मुसलमानोंने अपनी संस्कृतिकी हठात् रक्षा की। उनका राजबल इस रक्षामें उन्हें सहायक था और उनमें हिन्दुओंकी सी फूट न थी।

जिस कालमें मुसलमानोंकी शक्ति यहाँ अपनी पराकाष्ठाको पहुँच चुकी थी उसी समय यूरोपके ईसाई बनियोंका भारतवर्षपर व्यापारी और व्यवसायी आक्रमण हुआ। काल पाकर धीरे-धीरे ईसाई बनियोंका जोर बढ़ गया। इन्होंने भी उन्हीं हथकण्डोंसे काम लिया जिनसे मुसलमान हिन्दुओंको विधर्म्मी बना रहे थे। अब हिन्दुओंको अपने दो धार्मिक शत्रुओंसे भिड़ना पड़ा। मुसलमानों और ईसाइयोंमें यह बड़ा अन्तर था कि मुसलमान बल और धर्म्मप्रचारका उद्देश्य लेकर आये। मुसलिम-संस्कृति एक हाथमें अपनी धर्म्म पुस्तक कुरानशरीफ और दूसरेमें तलवार लेकर आयी, परन्तु ईसाई-संस्कृतिके दाहने हाथमें तराजू थी और बायें हाथमें इञ्जील। तराजू मुख्य थी, इञ्जील गौण। उन्होंने अपना व्यापार फैलाना और धन कमाना मुख्य समझा, यद्यपि अपने देशमें जाकर यह कहते थे कि हम भारतीयोंको सभ्य ईसाई बनाने जा रहे हैं। इसी धोखेमें आकर उनके अज्ञ देशवासी जी खोलकर चन्दा देते थे। विचारके प्रचारकी ईसाईयोंकी विधियाँ मुसलमानोंकी अपेक्षा कहीं अधिक सरल निकली। ईसाईयोंने स्त्रियों और बालकोंकी शिक्षाके बहाने ईसाई धर्म्मको घरोंके भीतर परिवारोंमें और बाहर स्कूलोंमें फैलाना आरम्भ किया। बाजारों बस्तियोंमें मुनादी करके सचित्र और सुन्दर छपी देशी भाषाकी पुस्तकें मुफ्त बांटा करते थे। शिक्षाके प्रेमी हिन्दू इस जालमें बहुत आसानीसे फँस गये। नास्तिक भावोंका प्रचार और हिन्दू-संस्कृतिका उखाड़-पछाड़

छिहत्तरवाँ अध्याय

हालके सुधारक-सङ्घ

मुसलमानों और ईसाइयों दोनोंके धार्मिक आक्रमणसे हिन्दू-समुदायके विचारकोंने देखा कि हमारे शत्रु बहुधा जात-पाँत, छूत-छात, बहुदेवपूजा, मूर्त्ति-पूजा, अवतार और साधारणतया पौराणिक बातोंको लेकर हमारी दुर्बलताओंका प्रदर्शन और हमारा उपहास करते हैं। इस तरहका उपहास मुसलमानों और ईसाइयोंके आनेसे पहिले हमारे ही यहाँके नास्तिक सम्प्रदायवाले किया करते थे। उनके उपहासका उत्तर दार्शनिक रीतिपर दिया जाता था। परन्तु हमारे आस्तिकों और नास्तिकोंकी संस्कृति समान होनेसे विशेष सङ्घर्षका अवसर नहीं आता था। आस्तिक हिन्दू यदि नास्तिक हिन्दू हो जाय, अथवा नास्तिक हिन्दू यदि आस्तिक हिन्दू हो जाय तो राष्ट्रियतामें कोई अन्तर नहीं पड़ता था। हिन्दू-हिन्दूके ऐहिक स्वार्थ समान रहते थे। भारतवर्षके बाहर किसी हिन्दूका कोई विरोधी स्वार्थ न था। परन्तु जब मुसलमानोंने इस देशपर अधिकार कर लिया तो उनका स्वार्थ यद्यपि अत्यधिक मात्रामें भारतवर्षके बाहरका न था तथापि संस्कृति एक दम भिन्न थी। यहाँके प्रमुख हिन्दुओं और विशेषकर ब्राह्मणोंने बड़ी बुद्धिमत्तासे इन भिन्न संस्कृतिवालोंका पूरा बहिष्कार किया। सामाजिक संसर्गके जो-जो मुख्य अङ्ग थे उन सब बातोंमें हिन्दुओंको मुसलमानोंसे भरसक मिलने न दिया। इस प्रकार जिनका नौकरी-चाकरी आदि ऐहिक स्वार्थका विशेष सम्बन्ध था उन थोड़ेसे हिन्दुओंको छोड़कर शेष समस्त हिन्दू जाति संस्कृति-नाशकी महा विपत्तिसे बच गयी।

हिन्दू-संस्कृतिमें मौखिक उपदेशद्वारा भारी जनसमूहके सामने प्रचार करनेकी प्रथा न थी और न है। यहाँके जितने आचार्य हुए हैं सबने आचरण वा चरित्रके ऊपर उचित रीतिसे बहुत बड़ा जोर दिया है। समाजका प्रकृत सुधार चरित्रके ही सुधारमें है। कोरे विचारके प्रचारसे आचार सङ्गठित नहीं हो सकता। इसीलिये आचारका आदर्श स्थापित करनेवाले शिक्षक "आचार्य्य" कहलाते थे। उपदेशक उनका नाम न था। जहाँतक पता चलता है, संसारके इतिहासमें भारी जनताके सामने मौखिक व्याख्यानद्वारा विचारके प्रचार करनेकी पद्धतिकी नींव पहले-पहल महात्मा गौतमबुद्धके अनुयायियोंने डाली। तबसे अपने-अपने धर्मके प्रचारकी रीति चल पड़ी, तो भी बौद्ध गृहस्थों और भिक्षुकोंके आचारके नियम निश्चित करके आचरणके सुधारपर बहुत बड़ा जोर दिया गया। सनातनकी संस्कृतिवाले हिन्दुओंने इतनेपर भी प्रचारकी इस रीतिको नहीं अपनाया। ईसाई और मुसलमान इस रीतिसे ही अपने मतोंका प्रचार करते आये हैं। मुसलमानोंने जब यह देखा कि हिन्दू लोग हमारा सामाजिक बहिष्कार किये हुए है और हमारे संसर्गमें कम आते हैं तो उन्होंने प्रचारके द्वारा और जहाँ-कहीं हो सकता था छल और धूर्तताके साथ हिन्दुओंको मुसलमान बनाना आरम्भ किया। इसमें भी जब उन्हें यथेष्ट सफलता नहीं मिली तब जहाँ-कहीं भी सम्भावना देखी वहाँ दमनसे काम लिया। परन्तु सामाजिक बहिष्कार ऐसा अमोघ हथियार था कि उसने

इस दरजेके आसुरी सङ्घर्षके होते हुए भी हिन्दू-राष्ट्रको जीवित रक्खा। विचारका प्रचार फिर भी जारी था, और जिस हिन्दू महासमुदायने अपनी संस्कृतिके दार्शनिक पक्षका परिशीलन नहीं किया था वह नास्तिकताके तर्कवादसे कुछ कुछ विचलित होने लगा। मुसलमान एक ईश्वर और उसके पैगम्बर मुहम्मदसाहबके सिवाय और किसीको नहीं मानता था। उसके पास एक ही किताब थी कुरान, और उसकी धार्म्मिकता सीधी-सादी भक्ति और उपासनामें मर्य्यादित थी। उसके यहाँ जात-पाँत, छूत-छात, चौके-चूल्हे आदिके कोई नियम न थे। वह नशेकी चीजोंको छोड़कर सब कुछ खा सकता था। बल्कि भङ्ग, तमाखू आदिके सेवनमें भी उसे कोई रुकावट न थी। इतना सीधा-सादापन और उच्छृङ्खलता एक ओर और जप, तप, व्रत, पूजा, नित्य-नैमित्तिक कर्मकाण्ड, वर्णाश्रमधर्म्म, और अपार धार्मिक साहित्यका महान् आडम्बर और धार्मिक और सामाजिक आचारों और व्यवहारोंके अत्यन्त कठिन नियम, दूसरी ओर थे। ऐसी दशामें मुसलमान प्रचारकोंको खण्डन-मण्डनकी बड़ी आसानी थी और अपने धर्म्मकी ओर लोगोंको प्रवृत्त करनेमें उनकी धार्मिक विधियोंकी सादगी बहुत आकर्षक थी। यही लाभ पीछेसे ईसाई प्रचारकोंको भी हुआ। इन्हीं बातोंको देखकर हिन्दुओंके बड़े-बड़े सुधारक कबीर, नानक और दादू आदिने अपने इस तरहके सीधे-सादे पन्थ चलाये जो वस्तुतः मुसलमान-धर्म्मका न केवल हर तरहपर मुकाबला कर सकते थे बल्कि हिन्दू-संस्कृतिके साँचेमें मुसलमान धर्म्मको भी ढाल सकते थे। परन्तु ये सभी पन्थ मुसलमान-संस्कृति और गो-भक्षणके विरोधी थे। इन्होंने मुसलमानोंको अपनेमें पचा लेनेकी भरपूर कोशिश की। परन्तु हम देख चुके हैं कि इन्हें सफलता नहीं मिल सकी। मुसलमानोंने अपनी संस्कृतिकी हठात् रक्षा की। उनका राजबल इस रक्षामें उन्हें सहायक था और उनमें हिन्दुओंकी सी फूट न थी।

जिस कालमें मुसलमानोंकी शक्ति यहाँ अपनी पराकाष्ठाको पहुँच चुकी थी उसी समय यूरोपके ईसाई बनियोंका भारतवर्षपर व्यापारी और व्यवसायी आक्रमण हुआ। काल पाकर धीरे-धीरे ईसाई बनियोंका जोर बढ़ गया। इन्होंने भी उन्हीं हथकण्डोंसे काम लिया जिनसे मुसलमान हिन्दुओंको विधर्म्मी बना रहे थे। अब हिन्दुओंको अपने दो धार्मिक शत्रुओंसे भिड़ना पड़ा। मुसलमानों और ईसाइयोंमें यह बड़ा अन्तर था कि मुसलमान बल और धर्म्मप्रचारका उद्देश्य लेकर आये। मुसलिम-संस्कृति एक हाथमें अपनी धर्म्म पुस्तक कुरानशरीफ और दूसरेमें तलवार लेकर आयी, परन्तु ईसाई-संस्कृतिके दाहने हाथमें तराजू थी और बायें हाथमें इञ्जील। तराजू मुख्य थी, इञ्जील गौण। उन्होंने अपना व्यापार फैलाना और धन कमाना मुख्य समझा, यद्यपि अपने देशमें जाकर यह कहते थे कि हम भारतीयोंको सभ्य ईसाई बनाने जा रहे हैं। इसी धोखेमें आकर उनके अज्ञ देशवासी जी खोलकर चन्दा देते थे। विचारके प्रचारकी ईसाईयोंकी विधियाँ मुसलमानोंकी अपेक्षा कहीं अधिक सरल निकली। ईसाईयोंने स्त्रियों और बालकोंकी शिक्षाके बहाने ईसाई धर्म्मको घरोंके भीतर परिवारोंमें और बाहर स्कूलोंमें फैलाना आरम्भ किया। बाजारों बस्तियोंमें मुनादी करके सचित्र और सुन्दर छपी देशी भाषाकी पुस्तकें मुफ्त बाँटा करते थे। शिक्षाके प्रेमी हिन्दू इस जालमें बहुत आसानीसे फँस गये। नास्तिक भावोंका प्रचार और हिन्दू-संस्कृतिका उखाड़-पछाड़

इसी शिक्षाके विस्तृत क्षेत्रमें ये रोक-टोक दिन-दहाडे धड़ल्लेसे होने लगा। आधुनिक शिक्षा-प्राप्त भारत अपनी संस्कृतिका बहुत बड़ा अंश इन्हीं ईसाइयोंके प्रभाव-क्षेत्रमें जाकर खो बैठा। ईसाई बलप्रयोग नहीं करते थे। उनका राजबल धनोपार्जनमें व्यस्त था। इस कारण, बपतीसा लेकर जाब्तेके ईसाई तो कम हुए, परन्तु इनसे पढ़-लिखकर नवशिक्षित हिन्दू जनताके मनमें अपनी संस्कृति, अपने समाज, अपने आचार और नीतिसे अधिकांश अश्रद्धा और किसी हदतक घृणा हो गयी। विश्वविद्यालयोंकी शिक्षाने इस कुदिशाके और अराष्ट्रियत्ताके प्रवाहको अत्यधिक वेगवान् कर दिया। ऐसी परिस्थितिमें हिन्दुत्वकी रक्षाके लिये फिर किसी नये कबीर, किसी नये नानक और किसी नये दादूकी आवश्यकता पड़ी।

राजा राममोहनराय

संवत् १८३५में एक बन्द्योपाध्याय ब्राह्मण जमीदारके घर हुगली जिलेके राधानगरमें बङ्गालके प्रकाण्ड विद्वान्, सुधारक और ब्रह्मसमाजके आदि प्रवर्त्तक राजा राममोहनरायका जन्म हुआ था। आरम्भमें इनकी शिक्षा पटनेमें अरबी-फारसीकी हुई। मुसलिम मतका इनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। इन्होंने फिर काशीमें संस्कृतका पूरा अध्ययन किया। वेदान्त दर्शनका अध्ययन एक ओर और सूफी मतका दूसरी ओर अध्ययन करके ये एक ब्रह्मवादी हो गये। मूर्त्तिपूजाके विरोधी तो ये आरम्भसे ही थे। बाईस बरसकी अवस्थामें ये अँग्रेजी पढ़ने लगे। कुछ बरसों अँग्रेजीका अध्ययन करके ईसाइयोंके सम्पर्कमें आये। ईसाई धर्म्मके मूल-तत्वको समझनेके लिये इन्होंने यूनानी और इब्रानी भाषाएँ पढ़ीं और ईसाइयोंके त्रित्ववाद और अवतारवादका खण्डन किया। निदान, जाति-पांत, मूर्त्तिपूजा, बहुदेववाद, अवतारवाद, आदि हिन्दू मन्तव्योंके विरुद्ध प्रचार करनेके लिये, एक ब्रह्मकी उपासनाके लिये, संवत् १८८५ के भाद्रपद मासमें ब्राह्मसमाजकी स्थापना की। इसमें पहले राजा राममोहनराय एक साधारण सदस्यकी भांति सम्मिलित हुए। वास्तवमें ये ही उसके प्राण थे। तीन बरस बाद ये दिल्लीके बादशाहकी ओरसे राजाकी उपाधि और दौत्य कर्म्मका अधिकार लेकर इंगलिस्तान गये और संवत् १८९०के आश्विन शुक्ला चतुर्थीको ज्वर-ग्रस्त होकर ब्रिस्टलमें शरीर छोड़ा। वहीं समाधि दी गयी।

ब्राह्म-समाज

उपनिषदोंमें जिस ब्रह्मकी चर्चा है उसी एक परमात्माकी उपासनाको अपना इष्ट रखकर राजा राममोहनरायने ब्राह्म-समाजकी स्थापना की। बिना किसी नबी, पैगम्बर, देवदूत, आचार्य्य या पुरोहितको अपना मध्यस्थ माने हुए सीधे एक अकेले ईश्वरकी उपासना ही मनुष्यका कर्त्तव्य माना गया। ईसाई महात्मा ईसाको और मुसलिम मुहम्मद साहबको मध्यस्थ मानता था और यही उसकी नींव थी। इस बातमें ब्राह्म समाज उनसे आगे बढ़ गया। पुनर्जन्मका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न होनेसे जन्मान्तरका प्रश्न नहीं छेड़ा गया। परमात्माकी प्राप्तिके सिवाय कोई परलोक नहीं माना गया। निदान, मुसलमान और ईसाईसे कहीं अधिक सरल और तर्कसङ्गत मत स्थापित हुआ। मन्दिर, मस्जिद, गिरजा सबमें ब्रह्म ही स्थित माना गया। मूर्त्तिपूजा और बहुदेव-पूजाका निषेध हुआ, परन्तु सर्वव्यापक ब्रह्म जानकर और सभी मतोंका

सहन किया गया। फिर भी उपनिषदों और वेदोंका पाठ और शिखासूत्रका सहन और संस्कारोंके सहनमें हिन्दू-संस्कृतिके लक्षण बने रहे। अपने मन्तव्योंमें इस समाजने वर्णाश्रम-व्यवस्था, छूत छात, जात-पांत, चौका आदि कुछ न रक्खा। जप, तप, होम, व्रत, उपवास आदिके नियम नहीं माने। श्राद्ध, प्रेत-कर्म्म आदिका झगड़ा ही नहीं रक्खा। उपनिषदोंको आधार-ग्रन्थकी तरह माना, प्रमाणकी तरह नहीं। साथ ही संसारके और सब धर्मोंसे जो बातें बुद्धिग्राह्य समझी गयीं उनको लेनेमें ब्रह्मसमाजको इनकार न था। ब्रह्मसमाज कुरान, इञ्जील, वेदादि सभी धर्म्म-ग्रन्थोंको समान सम्मान देता है और संसारके सभी अच्छे धर्म्म-शिक्षकोंका समान समादर करता है। इस प्रकार ब्रह्मसमाजने हिन्दू-संस्कृतिकी बँधी मर्यादा-को इतना विस्तृत कर दिया कि ब्रह्मसमाजके मेम्बर मुसलमान और ईसाई भी हो सकते हैं। संस्कृतिके सम्बन्धमें फिर भी इस समाजमें पारस्परिक मतभेद पड़ा। एक दल संस्कृतिको बदल देनेके पक्षमें हुआ दूसरा उसके सम्मिश्रणका पक्षपाती हुआ और तीसरेका आग्रह था कि हिन्दू-संस्कृति साथ-ही-साथ अक्षुण्ण रहे। स्वयं राजा राममोहन रायके प्रभावसे इंगलिस्तान और अमेरिकामें ब्रह्मसमाजका एक रूपान्तर "युनिटेरियन-चर्च" उसी समय स्थापित हो गया। परन्तु मुसल्मानोंपर इसका प्रभाव कुछ काल पीछे "कादियानी" सम्प्रदायकी स्थापना-में पड़ा दीखता है। इस तरह इस सुधारक-समाजका अनेक दलोंमें विभाग हुआ और दल स्थापनमें ही यह अपना प्रभाव मुसलमान और ईसाई-समाजपर भी डाल न सका। फिर भी इससे हिन्दू-समाजकी एक भारी भलाई हुई। पादरियोंद्वारा अभिनिविष्ट अभिनव पाश्चात्य शिक्षाके फलसे हिन्दू-शिक्षित-समाज जो अपनी संस्कृतिसे और अपने आचार-विचारसे विच-लित हो रहा था और जो शायद कभी-न-कभी पथभ्रष्ट होकर अपने पुरातन क्षेत्रसे निकल-कर विदेशी-संस्कृतिके क्षेत्रमें बहक जाता उसकी सामयिक रक्षा हो गयी। और वह बहुत उत्सुकतापूर्वक ब्रह्म-समाजके अपने मनोनीत दलमें सम्मिलित हो गया। महावाग्मी श्रीकेशव-चन्द्रसेनके समयमें [सं० १८९५–१९४०] ब्राह्म-समाजका प्रचार अधिक व्यापक हो गया। देशमें प्रार्थना-समाज आदि अनेक नामोंसे इसकी स्थापना हुई, और बड़ी सङ्ख्यामें हिन्दू लोग इसके अनुयायी हो गये। फिर भी जो दल हिन्दू-संस्कृतिसे बिलकुल अलग रहना चाहता था वह धीरे-धीरे सारे हिन्दू-समाजसे अलग होकर अपनी एक जाति अलग बना बैठा, और उसके विधि-विधान अलग हो गये। जो व्यापकता और सार्वभौमता इसके अधि-ष्ठाता चाहते थे, वह राष्ट्रिय संस्कृतिके अतिक्रमणसे भरतखण्डमें नहीं मिल सकी। फिर भी, राष्ट्रकी रक्षाके एक महान् उद्देश्यकी पूर्त्ति हुई अर्थात् राजा राममोहन रायकी दूरदर्शिताने हिन्दू-समाजकी बहुत बड़ी रक्षा की, और विधर्म्मी होनेसे बचा लिया। इस उपकारके लिये निस्सन्देह हिन्दू राष्ट्र ब्रह्मसमाजका सदैव कृतज्ञ रहेगा।

सन्तमत या राधास्वामी पन्थ

सन्तमत या राधास्वामी मतके आदिप्रवर्त्तक हुजूर राधास्वामी दयालु उर्फ स्वामीजी महाराज थे। इनका जन्म-नाम शिवदयालुसिंह था। ये खत्री थे। इनका जन्म आगरा शहरके मुहल्ला पन्नीगलीमें विक्रम संवत् १८७५की भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको १२॥ बजे रातको

हुआ। जब छः सात बरसके थे तभीसे खास-खास लोगोंको परमार्थका उपदेश देने लगे। इन्होंने किसी गुरुसे दीक्षा नहीं ली। इनके हृदयसे अपने आप परमार्थ-ज्ञानका उदय हुआ। पन्द्रह बरसतक लगातार अपने घरकी एक भीतरी कोठरीमें बैठे सुरत शब्दयोगका अभ्यास करते रहे। बहुतसे प्रेमी सत्सङ्गियोंके बड़े अनुरोध और विनतीपर आपने संवत् १९१७की वसन्तपञ्चमीसे सार्वजनिक उपदेश देना आरम्भ किया और तबसे लगातार सत्रह बरसतक दिन-रातका सत्सङ्ग जारी रक्खा। इस अवधिमें देश-देशान्तरके बहुतसे हिन्दू और कुछ मुसलमान, कुछ जैनी, कोई-कोई ईसाई, सब मिलाकर लगभग तीन हजारके स्त्री-पुरुषोंने सन्तमत या राधास्वामी पन्थका उपदेश लिया। इनमेंसे दो तीन सौके लगभग साधु थे।

स्वामीजी महाराज इस शरीरको साठ बरसकी अवस्थामें शनिवार आषाढ़ बदी प्रतिपदा संवत् १९३५ विक्रमीमें त्यागकर अपने राधास्वामी पदको पधारे।

आपका स्थान हुजूर महाराज अर्थात् राय सालिगराम बहादुर माथुरने लिया जो पहले इन प्रान्तोंके पोस्टमास्टर जेनरल थे। इन्हींके गुरुभाई बाबा जयमलसिंहने व्यासमें, बाबा बग्गासिंहने तरनतारनमें और बाबा गरीबदासने दिल्लीमें अलग गद्दियाँ चलायीं। परन्तु असल गद्दी आगरेमें ही तबतक रही, जबतक हुजूरसाहब सन्त सद्गुरु रहे। हुजूरसाहबने भी संवत् १९५५में शरीर छोड़ा और महाराजसाहब पण्डित ब्रह्मशङ्कर मिश्र एम्० ए० ने उनकी जगह ली। हुजूर महाराजके दूसरे शिष्य गोपीगञ्ज मिरजापुरके महर्षि शिवव्रतलाल वर्म्मन उसी समयसे अलग होकर अपनी परम्परा चला रहे हैं।

महाराज साहबने संवत् १९६४में शरीर छोड़ा। आप प्रयाग और काशीमें रहते थे। आपका स्थान आपकी बहिन बुआजी साहबाने लिया। उसी समय इस असल गद्दीसे अलग होकर गाजीपुरके मुन्शी कामताप्रसाद उर्फ सरकार साहबने नयी गद्दी चलायी जिसपर दयालबाग आगरेमें उनके स्थानपर सर आनन्दस्वरूप उर्फ साहबजी महाराज विराजमान हैं।

असली गद्दीपर बुआजी महाराज संवत् १९७० तक रहीं। उनके शरीर-पातपर उनके स्थानपर प्रयागमें बाबू माधवप्रसादसिंह विराजमान् हैं। परन्तु श्रीबुआजी महाराजके शरीरान्तके समय बनारसके भैयाजी पं० योगेन्द्रशङ्कर तिवारीने अपनी गद्दी अलग चलायी।

संवत् १९६४में ही पूर्व बङ्गालमें पवना जिलेमें ठाकुर अनुकूलचन्द्र चक्रवर्तीने एक अलग गद्दी चलायी।

इस तरह इस पन्थकी स्थापनाके सत्तर बरसोंके भीतर असली गद्दीके सिवा सात गद्दियाँ और चल पड़ीं।

इस पन्थमें जात-पातका बन्धन नहीं है। हिन्दू-संस्कृतिका विरोध वा बहिष्कार तो नहीं है, परन्तु उसकी ओर उपेक्षा अवश्य है।

कबीरपन्थ, नानकपन्थ, दादूपन्थ आदिमें योगसाधन भी रहा, परन्तु गुप्त अङ्गोंमें था। ब्रह्मसमाज, आर्य्यसमाज और ब्रह्मविद्या-समाजमें भी योगसाधन माना जाता है, अन्तरङ्गमें कुछ क्रियाएँ चलती भी हैं, परन्तु राधास्वामी पन्थ केवल योगमार्गका पन्थ देख पड़ता है।

सन्तमतके मन्तव्य

कहते हैं कि यह मत पहले अत्यन्त गुप्त था, और प्राणायामके साथ इसका अभ्यास करनेके कारण इसमें भारी कठिनाई थी। स्वामीजी महाराजने सुरतशब्द-योगकी बड़ी सरल युक्ति प्रकट कर दी जिससे इस योगका अभ्यास सरल हो गया। और सब मतोंमें भी सुरत-शब्द योग था परन्तु इतना सरल न होनेसे अन्तर्मुखी अभ्यास लुप्त हो गया और बाहरी पूजा-पाठ, धर्म्म-कर्म्म बाकी रह गया जिससे सच्चे मालिककी पहचान कठिन हो गयी। इस सन्तमतने यह कठिनाई दूर कर दी, अन्तर्मुखी अभ्यास अनिवार्य कर दिया और बहिर्मुखीकी आवश्यकता न रह गयी।

सन्तमतमें तीन चीजें चाहियें, गुरु, नाम और सङ्ग। सद्‌गुरु सच्चा चाहिये। नाम भी सच्चा और पूरा चाहिये जिसके साथ नामीका सच्चा रहस्य भी समाविष्ट हो, और सङ्ग भी सच्चा चाहिये जो भीतरी बाहरी दोनों हो। अन्तर्मुखी सत्सङ्ग यह है कि अभ्यासी अपनी सुरत अर्थात् जीवात्माको अन्तरतरमें चढ़ाकर सत्य पुरुष राधास्वामीके चरणोंमें लगावे और बाहरी सत्सङ्ग यह कि पूरे सन्तों और साधुओंके दर्शन हों और उपदेश प्राप्त हों।

तीर्थ व्रत मन्दिर मूर्त्ति पूजापाठ, जप आदिसे लाभ नहीं होता, क्योंकि इनमें मन और जीवात्मा सम्मिलित नहीं होते, प्रत्युत् अहङ्कार हो जाता है।

जीवात्मा राधास्वामीका अंश है। इस अंशको अपने वास्तविक मूलकी ओर प्रवृत्त करना चाहिये। इस जीवात्माका शरीरके भीतर स्थिर रूपसे रहनेका स्थान आंखोंके पीछे है। वहींसे यह सारी देहमें फैला है। आदि शब्द कुलका कर्त्ता और स्वामी है और आदि सुरत वा जीवका नाम राधा है। इन्हींका नाम सुरत और शब्द है और जब इनकी धारा नीचे आयी तब इसी आदि शब्दसे और शब्द और आदि सुरतसे और सुरत, और शब्दसे सुरत और सुरतसे शब्द बराबर प्रकट होते आये और अपनी-अपनी जगहपर स्थिर हुए। शब्दकी महिमा प्रत्येक मतमें है, परन्तु भेद किसीने समझा नहीं।

"कुलकी आदि राधास्वामी याने कुल मालिक हैं। यहाँ शब्द निहायत गुप्त है। उसकी उपमा इस रचनामें कहीं नहीं है। इसी शब्दसे सत्यपुरुष प्रकट हुआ। दूसरा सोहम्, पुरुषका शब्द। तीसरा, परब्रह्मका शब्द जिसके सहारे त्रैलोक्यसृष्टि स्थिर है। चौथा ब्रह्म-शब्द जो कि प्रणव है और जिससे सूक्ष्म ब्रह्माण्ड वेद और ईश्वरी माया प्रकट हुई। पांचवीं माया और ब्रह्मका शब्द जिससे त्रिलोकीकी रचनाका मसाला प्रकट हुआ और आकाशी वेद प्रकट हुए। माया शब्दके नीचे विराट् पुरुषका शब्द और जीव और मनका शब्द प्रकट हुआ।" साधक धाराको अपने साधनसे उलटकर राधास्वामीको प्राप्त होता है।

सन्तमतका मार्ग शुद्ध भक्तिमार्ग है। सच्चे मालिकके चरणोंमें प्रेम, प्रीति और प्रतीति ही उपासना है। पूरे सन्त और सत्य पुरुष वा परब्रह्ममें भेद नहीं है। इसलिये जब पूरे सन्त प्रकट होते हैं तो सेवक उनकी उपासना सच्चे मालिकके समान ही करता है। जबतक वह न मिलें तबतक उनके मिलनेवालोंका सत्सङ्ग और उपदेश ग्रहण करे। स्वामीजी महा-राजको इस पन्थवाले साक्षात् राधास्वामीका पूर्ण अवतार मानते हैं।

यहाँतक इस पन्थके मूलप्रवर्त्तकके मतका प्रायः उन्हींके शब्दोंमें निर्देश किया गया

कवीर, नानक, दादू आदिने विधर्म्मियोंसे घबराकर वेदोंकी, वर्णाश्रमकी और संस्कारोंकी उपेक्षा की, परन्तु स्वामीजीने इनकी रक्षामें संस्कृतिकी रक्षा देखी और सारे राष्ट्रको विनाशके गर्त्तमें गिरनेसे बचा लिया, बल्कि लाखो गिरे हुओंको उवार लिया।

आर्य्यसमाजके ये दस नियम थोड़ेमें उसके सब मन्तव्योंको प्रकट करते हैं। (१) सब सत्य विद्याका और उससे समझे जानेवाले सब पदार्थोंका आदिमूल परमेश्वर है। (२) ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्य्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसीकी उपासना करना योग्य है। (३) वेद सत्य विद्याओंका पुस्तक है, वेदका पढ़ना, पढ़ाना, सुनना और सुनाना आर्य्योंका परम धर्म्म है। (४) सत्यको ग्रहण करने और असत्यको छोड़नेको सदा उद्यत रहना चाहिये। (५) सब काम धर्म्मानुसार, सत्यासत्यका विचार करके, करना चाहिये। (६) संसारका उपकार, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति इस समाजका मुख्य उद्देश्य है। (७) सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य बर्त्तना चाहिये। (८) अविद्याका नाश और विद्याका वर्धन करना चाहिये। (९) प्रत्येकको अपनी ही उन्नतिसे सन्तुष्ट न रहना, किन्तु सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझना चाहिये। (१०) सब मनुष्योंको सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालनेमें परतन्त्र और प्रत्येक आत्म-हितकारी नियम पालनेमें स्वतन्त्र रहना चाहिये। ये नियम कितने उदार और व्यापक हैं।

स्वामीजी जन्मान्तर आदि सभी हिन्दू-संस्कृतिकी बातें मानते थे। वेदान्तमें वे विशिष्टाद्वैतवादी थे।

आर्य्यसमाज पुराणों, उपपुराणों और तन्त्रोंके सिवा शेष उन सभी हिन्दू-ग्रन्थोंको मानता है जिनका वर्णन हम पिछले अध्यायोंमें कर आये हैं। यहां, श्रुतियों और स्मृतियोंकी व्याख्या वह अपने ढङ्गपर करता है।

ब्रह्मविद्या-सभा या थियोसोफिकल सोसायटी

एक रूसी महिला मैडेम हेलना पेत्रोफना ब्लावात्स्की [संवत् १८८८–१९४८] तिब्बतमें जाकर बौद्ध महायानके रहस्योंमें दीक्षित हुईं। इन्होंने अमेरिका जाकर करनेल आलकाटको भी इस प्रस्थानमें मिलाया। इसके बाद कई और अनुयायी हुए। फिर ये लोग भारतमें आये और अदयारमें (मद्रासमें) रहने लगे। ब्रह्मसमाज और महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीसे भी इनका कुछ कालतक समागम रहा। ये चाहते थे कि इनकी सहकारिता प्राप्त हो जाय। स्वामीजी प्राचीन आर्य्य-संस्कृति और वेदोंकी बुनियादपर चलनेका निश्चय कर चुके थे। मूर्त्तिपूजाका ही खण्डन नहीं, प्रत्युत् संसारके सभी सम्प्रदायों और मतोंका खण्डन करके वैदिक-धर्म्मकी स्थापना और दुनियांको आर्य्य बनाना इनका ध्येय था। श्रीमती ब्लावात्स्की और करनेल आलकाट, खण्डनद्वारा नहीं प्रत्युत् समन्वयद्वारा, विश्व भरमें बन्धुत्व स्थापित करना चाहते थे, मतभेद चाहे कितना ही हो। दोनों ध्येयोंमें प्रत्यक्ष भारी अन्तर होनेके कारण दोनों मिल न सके और जिस वर्षमें आर्य्यसमाजकी पहली स्थापना हुई, उसी

वर्ष ब्रह्मविद्यासभा वा थियोसोफिकल सोसायटीकी भी स्थापना हुई। उसका मुख्य स्थान अदयारमें रक्खा गया। यह कोई सम्प्रदाय न था। ब्रह्मसमाजकी तरह इसमें एक ब्रह्मकी उपासना आवश्यक न थी और न जाति-पांतका या मूर्त्तिपूजाका खण्डन आवश्यक था, और आर्य्यसमाजकी तरह इसने हिन्दू-संस्कृति और वेदोंको अपना आधार नहीं बनाया और न किसी मतका खण्डन किया। इसका एकमात्र ध्येय था विश्वबन्धुत्व और साथ ही गुप्त शक्तियोंका अनुसन्धान और सर्वधर्म्मसमन्वय। उद्देश्यमें स्पष्ट लिखा गया कि धर्म्म, जाति, सम्प्रदाय, वर्ण, राष्ट्र, जिन्स, वर्ग किसी तरहका भेदभाव न रखकर विश्वकी बिरादरी स्थापना इष्ट है। अतः इसमें सभी तरहके स्त्री-पुरुष सम्मिलित हुए। इसमें आस्तिक, नास्तिक, ईश्वर-वादी, अनीश्वरवादी, सभी शामिल हुए। जन्मान्तरवाद, कर्म्मवाद, अवतारवाद, जो हिन्दुत्व-की विशेषताएँ थीं, इसमें आरम्भसे मौजूद थीं। गुरुकी उपासना और योगसाधन इसके रहस्योंमें सन्निविष्ट हुए। तपस्या, जप, व्रत, आदिका पालन भी इसमें शामिल हुआ। इस तरह इसकी बुनियाद हिन्दू-संस्कृति थी। श्रीमती एनीबेसन्ट आदि कई विदेशी अपनेको हिन्दू कहते थे। उनकी उत्तर-क्रिया हिन्दुओंकी तरह की गयी। इस सभाकी शाखाएँ सारी दुनियांमें आज भी मौजूद हैं। इसका प्रधान स्थान अदयार ही है। हिन्दू सदस्य इसमें सबसे अधिक हैं। पाश्चात्य शिक्षाके प्रभावसे जिनके मनमें सन्देह उत्पन्न हो गया था, परन्तु जो अपने विचारोंके कारण न तो ब्रह्मसमाजी हो सकते थे, क्योंकि पुनर्जन्म, वर्णाश्रम-विभाग आदिको ठीक मानते थे, और न आर्य्यसमाजी हो सकते थे, क्योंकि और मतोंका खण्डन उन्हें पसन्द न था, परन्तु साथ ही वे अपनी संस्कृति और प्राचीनताकी रक्षा भी चाहते थे, ऐसे हिन्दुओंकी एक भारी सङ्ख्या थी जिसने थियोसोफिकल सोसायटीको अपनाया और उसमें अपनी सत्ता बिना खोये हुए शामिल हो गये।

ब्रह्मसमाज और थियोसोफिकल सोसैटीने अपना प्रभाव केवल अङ्ग्रेजी पढ़े लिखे हिन्दुओंपर डाला, और आर्य्यसमाजने साधारण पढ़ी लिखी हिन्दू-जनतापर भी अपना असर डाला। पहले दोनों समाजोंमें बिना किसी शुद्धि-संस्कारके किसी जाति धर्म्म वा देशके स्त्री-पुरुष शामिल हो सकते हैं, परन्तु आर्य्यसमाज शुद्धि-संस्कार करके भी अपनेमें तभी शामिल करता है जब शुद्ध होनेवाला उसके मन्तव्योंको स्वीकार कर लेता है। पहले दोनों हिन्दुओंकी प्राचीन संस्कृतिकी परवाह नहीं करते, परन्तु आर्य्यसमाज दृढ़ता और स्पष्टतासे उसकी रक्षा करता है। पहले दोनोंमें संस्कार और सन्ध्योपासनादि आवश्यक नहीं हैं, परन्तु आर्य्यसमाजमें नियमत. अनिवार्य्य है, यद्यपि अनेक नामधारी आर्य्यसमाजी सन्ध्या आदि कुछ भी नहीं करते।

ब्रह्मसमाज और आर्य्यसमाज दोनों सतीदाह निवारक और विधवा-विवाह प्रचारक हो गये हैं, यद्यपि राजा राममोहनराय और महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती दोनों विधवाओं-के आमरण ब्रह्मचर्य्य पालनके दृढ़ पोषक थे।

आगाखानी-पन्थ

यदि सैकड़ों हिन्दू इस पन्थमें हिन्दू रहते हुए भी शामिल न होते तो हम आगा-खानी-पन्थका यहाँ उल्लेख न करते। हिजहाइनेस सर आगाखांने अपनेको, महात्मा प्राणनाथ-

की तरह, महदी और "अकलङ्की" अवतार कहकर हिन्दू-मुसलिम समन्वयकी कोशिश की है और अपना पन्थ अलग चलाया है। इनके अनुयायी हिन्दू आगाखानी और मुसलमान खोजे कहलाते हैं और आगाखांको सर्वेसर्वा मानते हैं। परन्तु इनका खुल्लमखुल्ला प्रचार कहीं देखा नहीं गया, यद्यपि अनुयायी बड़ी सङ्ख्यामें हैं।
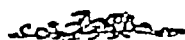
सतहत्तरवाँ अध्याय

धर्म्म और सम्प्रदायोंकी वर्त्तमान स्थिति

१—चार बड़े विभाग

भारतवर्ष सरीखे बड़े विस्तार और आबादीवाले देशमें जिसके आचार और विचारके विकासका इतिहास संसारमें अत्यन्त प्राचीन हो, जिसके जनसमुद्रमें समय-समयपर बाहरी सरितायें आकर मिलती गयी हों, धार्मिक-सम्प्रदायोंके अगणित विभागोंका होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। पिछले अध्यायोंमें हमने उन्हीं मतमतान्तरोंका उल्लेख किया है, जिनके अनुयायियोंकी सङ्ख्या और साहित्य नगण्य नहीं हैं। फिर भी आबादीका एक भारी अंश ऐसा भी है जो अपनेको किसी सम्प्रदाय पन्थ वा मतमें नहीं गिनता, और अपनेको पूरे अधिकारके साथ हिन्दू कहता है, क्योंकि वह किसी न किसी हिन्दू जाति या बिरादरीका है, जिसके चौके-चूल्हे, खानपान, तीज-त्योहार, जन्म, विवाह, प्रेतकर्म्म, श्राद्ध आदिके कामकाज विशेष रीति-रस्मके साथ होते हैं। उसका धर्म्म भी हिन्दू धर्म्म है, जिसके अनुसार वह किसी देवी या देवताकी पूजा भजन भी करता है, जिसमें वह परमात्मा, परमेश्वर, ईश्वर, भगवान् या मालिककी भावना करता है। उसके यहाँ नवरात्रोंमें वर्षमें दो बार नवदुर्गाओंकी पूजा होती है, वह रामनवमी, गङ्गादशहरा, श्रावणी, जन्माष्टमी, पितृपक्ष, विजयादशमी, दीपावली, प्रबोधिनी एकादशी, कार्त्तिकी पूर्णिमा, संक्रान्ति, वसन्तपञ्चमी, शिवरात्रि, होली आदि व्रत, पर्व, त्योहार मनाता है और विविध देवोंकी पूजा करता है। ऐसे लोगोंको साधारणतया "स्मार्त्त" कहते हैं। यह कोई सम्प्रदाय या पन्थ नहीं है। इसे साधारण जनसमुदायका धर्म्म समझना चाहिये।

भारतकी हिन्दू जनताको हम इस प्रकार तीन धार्म्मिक विभागोंमें बाँट सकते हैं।

(१) वे जो किसी देवी देवताको आवश्यकतानुसार मनाते और पूजते हैं, सभी या प्रायः सभी तीज त्योहार और कुछ आवश्यक संस्कार मानते हैं, अपना कोई विशेष उपास्य देव, विशेष दार्शनिक भाव या प्रवृत्ति नहीं रखते।

(२) वे जो आवश्यकतानुसार सभी देवी देवताओंको मनाते और पूजते हैं, सभी तीज-त्योहार और मुख्य संस्कार मानते हैं, परन्तु अपना कोई विशेष उपास्य देव भी मानते हैं, उसका भजन करते हैं, और कोई विशेष दार्शनिक भाव या प्रवृत्ति भी रखते हैं, यद्यपि अपनेको किसी विशेष पन्थ या सम्प्रदायका नहीं समझते या बतलाते।

(३) वे जो किसी न किसी विशेष पन्थ, सम्प्रदाय या मतके अनुयायी हैं, और उसीके अनुकूल अपने आचार विचार और व्यवहार रखते हैं, वे ही संस्कार, वे ही व्रत, त्योहार और उत्सव, और वे ही सिद्धान्त और दार्शनिक विचार मानते हैं, जो उनके सम्प्रदाय पन्थ वा मतके अनुकूल पड़ते हैं।

इन तीन विभागोंके सिवा एक चौथा विभाग ऐसोंका भी है जो अनीश्वरवादी हैं और किसी तरहकी पाबन्दी अपने ऊपर नहीं लेते। इनका कोई सम्प्रदाय वा मत नहीं है और न किसीको ये अपना धार्मिक नेता मानते हैं।

धार्मिक विचारोंके ये चार प्रकार अनादि कालसे चले आये हैं। पहले प्रकारमें साधारण जनता, दूसरे प्रकारमें समुन्नत द्विजमात्र, तीसरे प्रकारमें शुद्ध सम्प्रदायवादी और चौथेमें समुन्नत द्विजों और समुन्नत जनताके कुछ अंश समाविष्ट हैं।

सम्प्रदायवादियोंमें परस्पर विरोधभाव और आस्तिक और नास्तिकका झगड़ा तो अनादिकालसे चला आया है। इसके अनेक प्रमाण हमारे साहित्यमें भरे पड़े हैं। आस्तिकोंके बीच परस्परके झगड़ोंको भरसक निबटानेके लिये समन्वयवादी सदासे प्रयत्न करते आये हैं। आस्तिक और नास्तिकके झगड़ोंका समन्वय तो असम्भव है। इनके मिटानेका प्रयत्न भी कभी हुआ नहीं दीखता।

२—समन्वयके प्रयत्न

सङ्कुचित विचारोंके पारस्परिक भेदसे आपसका विरोधभाव अत्यन्त प्राचीन कालसे चला आ रहा है। वैदिक कर्म्मकाण्डको व्यर्थ कहनेवाले अति प्राचीन वैदिक कालमें भी अवश्य थे, जिनका निराकरण "कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतँसमाः" कहकर श्रुतिको ही करना पड़ा। श्रीमद्भगवद्गीतामें तो स्पष्ट ही वेदमार्गके सकाम कर्म्मकी हीनता और निष्कामकी उत्तमता दिखायी है। भागवत सम्प्रदायका लक्ष्य गार्हस्थ्य-धर्म्मकी रक्षा और कर्म्मत्यागका विरोध है। पुराणोंसे पता चलता है कि सतयुगमें भगवान् शङ्कर और भगवान् विष्णुके उपासकोंमें भारी झगड़ा था। शैव शिवको और वैष्णव विष्णुको परमात्मा मानता था और एक दूसरेके आराध्यको द्रोहकी दृष्टिसे देखता था। पुराणोंमें और इतिहासोंमें स्थान-स्थानपर इसके समन्वयका प्रयत्न देख पड़ता है। इसी समन्वयके प्रयत्नमें भागवत-सम्प्रदाय और स्मार्त्त मतका आरम्भ हुआ दीखता है।

हम अन्यत्र भी दिखा आये हैं कि भागवत-सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन है। इसे सात्वत सम्प्रदाय भी कहते हैं। कूर्म्मपुराणमें कथा है कि यदुवंशके एक प्राचीन राजा सत्वतने जो अंशुके पुत्र थे इस सम्प्रदायकी विशेष उन्नति की थी। इनके पुत्र सात्वतने नारदसे इस भागवत धर्म्मका उपदेश ग्रहण किया था। इस धर्म्मकी विशेषता थी निष्काम कर्म्म और वासुदेवकी आराधना। महाभारत-कालके यदुवंशी इसी सात्वत-सम्प्रदायके थे और उसी कुलके थे। वासुदेव* नाम प्राचीन है जिसकी परिभाषा पुराणोंमें यत्रतत्र दी हुई है, यथा, विष्णुपुराणमें

सर्वत्रासौ समस्तश्च वसत्यत्रेति वै यतः।
ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिगीयते॥ [१।२]

यह एक संयोगकी बात थी कि भगवान् कृष्ण वसुदेवके पुत्र होनेके कारण वासुदेव भी कहलाये, और वे वासुदेवोपासनाकी उन्नति ही करानेवाले नहीं थे, वरन् स्वयं उन्होंने

---

* सर्वत्रासौवसत्यात्मरूपेण विश्वम्भरत्वाद् इति वस, बाहुलकादुण, वासु, वासुश्चासौदेवश्च, इति कर्म्मधारये।

अपनेको वासुदेवका अवतार कहा भी है और यह भी कबूल किया है कि भागवतधर्म्मका सबसे पहला प्राचीन प्रवर्त्तक मैं ही हूँ। चतुर्व्यूहमें सङ्कर्षणादिके प्राचीन नामोंका वसुदेवकी सन्तानोंमें पाया जाना भी वैसा ही है जैसे आज भी बहुधा परिवारमें अपने सम्प्रदायके ही प्रसिद्ध नाम रक्खे जाते हैं। इस भ्रममें पड़कर अनेक विद्वानोंने यह अनुमान कर लिया है कि भागवत धर्म्मके प्रथम प्रवर्त्तक "सात्वताम्पति" कृष्ण वासुदेव थे और भाई, पुत्र और पौत्रको मिलाकर चतुर्व्यूहकी रचना की गयी। वस्तुतः ऐसी बात नहीं है।

शिव और विष्णुके उपासकोंके आपसके प्राचीन विरोधका निराकरण न केवल श्रुतियों स्मृतियोंमें सर्वत्र है, वरन् शैव और वैष्णव सम्प्रदायोंके प्रधान मान्य ग्रन्थोंमें भी पाया जाता है। और शिव-विष्णुका अभेद तो भागवत धर्म्मकी एक विशेषता जान पड़ती है। महाभारत-के जिस नारायणीयोपाख्यानसे हम अन्यत्र अनेक अवतरण दे चुके हैं, उसीमें भगवान् कृष्ण स्वयं अर्जुनसे अपने नामोंके निर्वचनके प्रसङ्गमें कहते हैं—

अहमात्मा हि लोकानां विश्वानां पाण्डुनन्दन।
तस्मादात्मानमेवाग्रे रुद्रम् सम्पूजयाम्यहम्॥ २३॥
यद्यहम् नार्चयेयम् वै ईशानम् वरदम् शिवम्।
आत्मानम् नार्चयेत्कश्चित् इति मे भावितात्मनः॥ २४॥
मया प्रमाणम् हि कृतम् लोकः समनुवर्त्तते।
प्रमाणानि हि पूज्यानि ततस्तम् पूजयाम्यहम्॥ २५॥
यस्तम् वेत्ति स मां वेत्ति योऽनुतम् सहिमामनु।
रुद्रो नारायणश्चैव सत्त्वमेकम् द्विधाकृतम्॥ २६॥

(शान्ति० ३४१)

रुद्र और नारायण एक ही सत्ताके दो नाम हैं, यह बात आज भी भागवत सम्प्रदाय-का अनुयायी मानता है। यही बात है कि स्मार्त्तमतकी तरह भागवतधर्म्म व्यापक हो रहा है। और वास्तविक बात तो यह है कि स्वामी शङ्कराचार्य्यने पाञ्चरात्र भागवत-सम्प्रदायका खण्डन करके उसीका स्थानापन्न पञ्चदेवोपासक स्मार्त्तमत चलाया। साधारण भागवत तो शाङ्कर सिद्धान्तके दार्शनिक खण्डनकी परवा नहीं करता था। वह यह कब सोचता था कि ब्रह्मसे जीवकी उत्पत्ति माननेसे जीव अनित्य ठहरता है, इसलिये चतुर्व्यूहका क्रम अद्वैतवादसे ठीक नहीं उतरता। वह तो साधारणतया निष्काम कर्म्म और भक्तिको ही प्रधानता देता था। स्मार्त्तमतमें वही सब बातें रक्खी गयीं। अतः भागवत-मतानुयायीने भी स्मार्त्त कहलानेमें कोई हानि न समझी। इस तरह बड़ी आसानीसे भागवत-मतका स्थानापन्न स्मार्त्त मत बन गया।

जैसे प्राचीन-कालसे भागवतमत समन्वयवादी चला आया था उसी तरह स्मार्त्त-मत भी समन्वयवादी मत हुआ। इसीलिये उसका किसी सम्प्रदायसे विरोध न हुआ।

वह स्मार्त्तमत इसलिये नहीं कहलाया कि वह वेद-विरोधी मत था, प्रत्युत् उसके सारे कर्म्मकाण्ड वैदिक थे, वेद मन्त्रोंसे ही होते थे। स्मार्त्तमत कहलानेका विशेष कारण यही था कि स्मृतियोंमें बतलाये हुए वर्णाश्रमाचारके अनुकूल आचरण करना, एवं पुराणोंमें बतायी हुई विधियोंसे देवाराधना, जप, तप, व्रत, उत्सव, आदि करना इस सम्प्रदायके अनु-

(२) अखण्ड एकादशी—आश्विन शुक्ल ११का व्रत। वामनपुराणके अनुसार।

(३) अङ्गारक-चतुर्थी—जिस किसी मासके मङ्गलवारको चतुर्थी पड़े तो मत्स्य-पुराणके अनुसार वह अङ्गारक चतुर्थी है।

(४) अचला सप्तमी—माघमासकी शुक्ला सप्तमी। भविष्योत्तरपुराणके अनुसार।

(५) अदारिद्र षष्ठी—स्कन्दपुराणके अनुसार एक वर्षतक प्रत्येक षष्ठीको यह व्रत करना होता है।

(६) अनन्तचतुर्दशी—भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीको भविष्यपुराणके अनुसार यह व्रत चौदह वर्षतक करना होता है।

(७) अमावास्या व्रत—कूर्म्मपुराणके अनुसार यह शिवजीका व्रत है।

(८) अर्द्धोदय व्रत—स्कन्दपुराणके अनुसार माघमासकी अमावास्याके दिन यदि रविवार, व्यतीपातयोग, और श्रवण नक्षत्र हो तो यह अर्द्धोदय योग है। इसी योगके दिन यह व्रत करते हैं।

(९) अशून्यशयन द्वितीया व्रत—भविष्यपुराणके अनुसार सावनसे लेकर चौमासेभर हर कृष्णपक्षकी द्वितीयाको यह व्रत किया जाता है।

(१०) आदित्य व्रत—सालभरके प्रत्येक रविवारका व्रत।

(११) ऋषिपञ्चमी व्रत—श्रावणशुक्ला पञ्चमीको वा मतान्तरसे आश्विनकृष्णा-पञ्चमीको यह व्रत करते हैं।

(१२) एकादशी व्रत—सभी वैष्णव, तथा अन्य हिन्दू भी हर एकादशीका व्रत करते हैं। इसका माहात्म्य प्रसिद्ध है।

(१३) कूर्म्मद्वादशी व्रत—भविष्यपुराणके अनुसार पौष शुक्ला द्वादशीका व्रत।

(१४) गणपति चतुर्थी व्रत—भविष्यपुराणके अनुसार प्रत्येक चतुर्थीका व्रत।

(१५) गोविन्द द्वादशी व्रत—विष्णुरहस्यके अनुसार वैष्णव व्रत। पुष्य नक्षत्र-युक्त फाल्गुनकृष्णा द्वादशीको गोविन्द द्वादशी कहते हैं।

(१६) चण्डिका व्रत—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमें यह व्रत वर्ष भरतक करना पड़ता है।

(१७) चातुर्मास्य व्रत—भविष्योत्तरोक्त यह व्रत आषाढ़ शुक्ला एकादशीसे कार्त्तिक शुक्ला एकादशीतक चार महीनोंतक बराबर नित्य किया जाता है।

(१८) चन्द्र व्रत—वाराहपुराणोक्त यह व्रत प्रत्येक पूर्णिमाको पन्द्रह बरसतक किया जाता है।

(१९) चान्द्रायण व्रत—ब्रह्मपुराणोक्त यह व्रत पौष मासकी शुक्ला चतुर्दशीको करते हैं। शास्त्रमें एक और चान्द्रायण व्रतका विधान है। चन्द्रमाके ह्राससे आहारमें ह्रास और वृद्धिके साथ वृद्धि करके एक महीनेमें यह व्रत पूरा किया जाता है। उद्देश्य, पाप-मोचन है।

(२०) जन्माष्टमी व्रत—भाद्रकृष्णाष्टमीको श्रीकृष्णजयन्तीके उपलक्ष्यमें आधी राततक निरम्बु व्रत किया जाता है।

(२१) जीवत्पुत्रिका व्रत—आश्विन कृष्णा अष्टमीको उन स्त्रियोंका निरम्बु व्रत जिनके पुत्र जीवित हों या जो पुत्रके होने और जीते रहनेकी अभिलाषिणी हों।

(२२) तिलद्वादशी व्रत—माघमासकी कृष्णपक्षकी द्वादशी तिथिमें यदि पूर्वाषाढ़ा या मूल नक्षत्र हो तो उस दिन यह व्रत किया जाता है।

(२३) त्र्यम्बक-व्रत—चतुर्दशी तिथिमें भगवान् शङ्करके लिये यह व्रत किया जाता है।

(२४) नरसिंह चतुर्दशी-व्रत—वैशाख शुक्ल चतुर्दशीको नरसिंह चतुर्दशी कहते हैं।

(२५) नृसिंह त्रयोदशी-व्रत—जो त्रयोदशी गुरुवारको पड़ती है, उसी दिन यह व्रत होता है।

(२६) नवरात्रि-व्रत—शारदीय आश्विनशुक्ला प्रतिपदासे, और वासन्ती चैत्र शुक्ला प्रतिपदासे, नवमीतक यह व्रत देवीके प्रीत्यर्थ किया जाता है।

(२७) निर्जला एकादशी-व्रत—ज्येष्ठ मासकी शुक्ला एकादशीको निर्जला कहते हैं। इस दिन निरम्बु उपवास करना होता है।

(२८) पूर्णिमा-व्रत—प्रत्येक पूर्णिमाको चन्द्रदर्शन करके ही जल लेकर यह व्रत करना होता है।

(२९) प्रदोष-व्रत—भविष्यपुराणोक्त प्रत्येक त्रयोदशीको प्रदोषकालतक भगवान-शङ्करके प्रीत्यर्थ यह व्रत करते हैं।

(३०) भौमवार-व्रत—स्कन्दपुराणके अनुसार प्रत्येक मङ्गलवारको यह व्रत करना होता है।

(३१) मातृनवमी-व्रत—भविष्योत्तरके अनुसार आश्विनकृष्णा नवमीको यह व्रत माताके प्रीत्यर्थ किया जाता है।

(३२) मास-व्रत—देवीपुराणोक्त मार्गशीर्षसे आरम्भ करके एक वरसतक यह व्रत किया जाता है।

(३३) मौन-व्रत—यह व्रत स्कन्दपुराणके अनुसार श्रावणी पूर्णिमाको करते हैं।

(३४) यमद्वितीया-व्रत—भविष्योत्तरोक्त कार्त्तिकशुक्ला द्वितीयाको यमराजके प्रीत्यर्थ यह व्रत किया जाता है।

(३५) रामनवमी-व्रत—अगस्त्यसंहितोक्त रामजयन्ती-व्रत चैत्रशुक्ला नवमीको किया जाता है।

(३६) वटसावित्री-व्रत—ज्येष्ठ मासकी अमावास्याको अवैधव्य-रक्षार्थ यह व्रत सधवाएँ करती हैं।

(३७) वामनद्वादशी-व्रत—चैत्रशुक्ला द्वादशीको वामनद्वादशी कहते हैं।

(३८) वैनायक चतुर्थी-व्रत—प्रत्येक चतुर्थीको यह गणेशचतुर्थी व्रत होता है। इसमें रातको भोजन करनेकी विधि है।

(३९) शनि-व्रत—प्रत्येक शनिवारको शनिग्रहके प्रीत्यर्थ व्रत।

(४०) शिवरात्रि-व्रत—फाल्गुन मासकी कृष्णा चतुर्दशीको महाशिवरात्रिका व्रत किया जाता है। इस व्रतका अधिकार सबको है।

(४१) शिव-व्रत—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशीको शिव प्रीत्यर्थ व्रत।

(४२) संवत्सर-व्रत—चैत्र मासके शुक्लपक्षसे आरम्भ करके ठीक एक बरसतक यह व्रत किया जाता है।

(४३) सोमवार-व्रत—प्रत्येक सोमवारको भगवान् शङ्करके प्रीत्यर्थ प्रदोष व्रत।

(४४) हरितालिका तृतीया-व्रत—भाद्रपदशुक्ल तृतीयाका अहर्निश निरम्बु व्रत जो प्रायः स्त्रियाँ ही उमामहेश्वर-प्रीत्यर्थ करती हैं।

५—पर्व, दान और उत्सव

विशेष तिथियाँ, जयन्तियाँ, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा और सङ्क्रान्ति तथा चन्द्रग्रहण, सूर्य्यग्रहण आदि पर्व कहलाते हैं। पर्वके दिन तीर्थस्नान, दान, उपवास, जप, श्राद्ध, ज्योनार, उत्सव, मेला, आदि करते हैं। स्त्रीप्रसङ्ग, मधुमांसादिके सेवनका उस दिन निषेध होता है। हिन्दू-मात्र पर्वके दिन विशेष-विशेष तीर्थोंमें स्नान करते हैं। आज-कलके सुधार-समाजियों और नास्तिकोंके सिवा हिन्दू-मात्र चाहे किसी पन्थ या सम्प्रदायके क्यों न हों,—पर्व मानते और तीर्थयात्रा करते हैं।

दान देना तो सारे संसारमें सत्कर्म्म माना जाता है, और भारतीय संस्कृतिमें तो दान भी एक उत्तम प्रकारका यज्ञ है जिसके ठीक अनुष्ठानकी विधि है। शुद्धितत्त्वमें देनेवाला, पानेवाला, श्रद्धादेय, धर्म्मयोग, देश और काल ये छः दानके अङ्ग बतलाये गये हैं। दान करना हो तो मन-ही-मन पात्रको स्थिर करके पृथ्वीपर जल गिरा देना चाहिये, पीछे दान-वस्तु उसे दे देनी चाहिये। यदि वह पात्र न मिले तो उसके उपयुक्त प्रतिनिधिको देना चाहिये और वह भी न मिले तो जलमें फेंक देना चाहिये। दान देनेके पहले स्नान कर विशुद्ध स्थानपर बैठकर विधिवत् सङ्कल्प करे फिर देय वस्तुको देकर पीछे दक्षिणा भी दे। अनुपकारी सत्पात्रको अन्तःप्रेरणासे श्रद्धापूर्वक उचित देश और कालमें दिया हुआ दान सात्विक और धर्म्मदान कहलाता है। बुलाकर देनेसे गृहीताके पास जाकर देना अधिक पुण्यप्रद है। बिना मांगे देना उत्तम है। आशा देकर भी न देना ब्रह्महत्याके समान है। देकर पछताना भी पाप है।

उपकारकी आशा बिना ही सत्पात्रको नित्य देना, "नित्य" दान है। पापादिकी शान्तिके लिये सत्पात्रको कभी देना, "नैमित्तिक" दान है। सन्तान ऐश्वर्य्य और स्वर्गादिकी कामनासे दिया हुआ दान, "काम्य" दान है। ईश्वरकी प्रीतिके लिये सत्पात्रको या ब्रह्मविद् ब्राह्मणोंको देना "विमल" दान है। दान देनेके लिये तीर्थस्थान प्रशस्त देश है। सूर्य्यास्तके बाद या भोजन करके दान न देना चाहिये। इसके सिवा जिस कालमें गृहीताको दानका सबसे उत्तम उपयोग प्राप्त हो वही काल प्रशस्त है। विद्वान्, तपस्वी और चरित्रवान् दान-का सत्पात्र है। जो पतनसे उद्धार करे वह दान-पात्र है। अपात्रको मन्त्रपूर्वक दान देना मना है। पतितोंको सोना चांदी ताम्बेका दान निष्फल है। देना स्वीकार कर न दे सके तो

ऋणी होता है। चुराये, ठगे या लूटे हुए धनका दान भी निष्फल है। महापातकी रोगग्रस्त मनुष्य दानके पात्र नहीं हैं, प्रतिपालनके पात्र हैं। अध्ययन, शौर्य, कर्म्मकाण्ड, विवाह, दक्षिणा और ज्ञातिवर्गसे पाया हुआ धन ही विशुद्ध धन है और दानके योग्य है। यह सात्विक धन है। कुसीद, कृषि, व्यापार, शुल्क, सेवाटहल और उपकारसे मिला धन राजसिक है। जूआ, चोरी, परपीडन, डाका, ठगी आदिसे मिला धन तामसिक है। तामसिक धन दानके सर्वथा अयोग्य है। विधिवत् दान करनेवाला देय वस्तुके अधिष्ठाता देवताका नाम लेकर दान करता है। विशेष विशेष तिथियों और पर्वोंपर दान करनेके विशेष माहात्म्य पुराणोंमें दिये हुए हैं। नैमित्तिक दान रातमें भी हो सकते हैं।

पीड़ाओंके निवारणके लिये भी अनेक प्रकारके दान बताये गये हैं। ग्रहोंके कारण उपजी हुई पीड़ाकी शान्तिके लिये ग्रहोंके अलग-अलग दान हैं और उनके लिये विविध पात्र भी हैं।

दानका माहात्म्य सभी धर्म्मशास्त्रों और पुराणोंमें वर्णित है। इसपर भी बहुत विशाल साहित्य है। हिन्दुओंमें दानके सम्बन्धमें बहुत सूक्ष्म विचार हैं। हमने कुछ थोड़ेसे ही विचार यहाँ दिये हैं।

दानके प्रकारमें भेद हो सकता है। परन्तु दानके सत्कर्म्म होनेमें और हिन्दू-मात्रमें इसके प्रचारमें कोई मतभेद नहीं है।

विशेष पर्वोंपर ज्योनार भी करते हैं, त्योहार मनाते हैं और उत्सव भी करते हैं। उत्सवोंपर कहीं-कहीं मेले भी होते हैं।

सनातनधर्म्मी, अर्थात् वह हिन्दू जो स्मार्त्त, भागवत अथवा किसी पुराने सम्प्रदायके हैं, जो श्राद्ध और प्रेतकर्म करते हैं, बहुधा श्राद्धके अवसरपर बड़ी बड़ी ज्योनारें करते हैं। किसी-किसी बिरादरीमें मरे हुए स्वजनोंके श्राद्धपर सारी बिरादरीकी ज्योनारमें लोग तबाह हो जाते हैं, परन्तु बिरादरीके नियमके कारण यह बरबादी सहनी पड़ती है। श्राद्धोंके सिवा रामजयन्ती, कृष्णजयन्ती आदि अवसरोंपर भी हौसलेवाले ब्राह्मण-भोजन कराते, गानवाद्य नृत्य आदि उत्सव कराते हैं। नवरात्रोंके अवसरपर तो नव दिनोंका लगातार उत्सव होता है, और विजयादशमीका त्योहार तो सब त्योहारोंका राजा समझा जाना चाहिये। हिन्दी-भाषी प्रान्तोंमें तो रामलीला होती है और उसी दिन रावणवध मनाया जाता है। विजयादशमीका पर्व विशेषतः क्षत्रियोंका पर्व कहलाता है। इस उत्सव और मेलेमें हिन्दू-मात्र सम्मिलित होते हैं। इसीके बाद दीपमालिकाका उत्सव भी बहुत व्यापक होता है। दीपमालिकाके अवसरपर मकानोंकी पहलेसे सफाई और सफेदी और सजावट हुई रहती है। उस रातको रोशनी होती है, और महालक्ष्मीकी पूजा करते हैं। साधक लोग रातभर जागकर जप आदि करते हैं। इसी रातको लोग जुआ भी खेलते हैं। यह त्योहार विशेषकर वैश्योंका समझा जाता है। प्रतिपदाके दिन अन्नकूट और गोवर्धनपूजा होती है। घरोंमें और देवालयोंमें छप्पन प्रकारके व्यञ्जन बनते हैं और भगवान्‌को भोग लगता है। यह त्योहार भी भारतव्यापी है। दूसरे दिन यमद्वितीया होती है। यमद्वितीयाके सवेरे चित्रगुप्तादि चौदह यमोंकी पूजा होती है। इस पूजाके बाद ही बहिनोंके घर जाकर भोजन करनेका भी दस्तूर बहुत पुराना है। धात्रृनवमीके दिन आँवलेके वृक्ष तले भोजन करते हैं। प्रबोधिनी एकादशीको सर्वत्र इक्षु

दण्डरस पानका आरम्भ होता है। यह एकादशीका जन्मदिन है। कार्तिकी-पूर्णिमाके अवसरपर कई जगहोंपर भारी मेला लगता है। हरिहरक्षेत्रका मेला जो सोनपुरमें लगता है, बहुत विशाल होता है। इसमें हाथी, घोड़े, बैल, गाय, भैंस आदिका भारी बाजार लगता है। ब्रजमण्डलमें और कृष्णोपासनासे प्रभावित अन्य प्रदेशोंमें भी रासलीला इसी समय होती है। नाचके सिवा इस समय लीलाका अभिनय भी होता है। इसके बाद सौर धनुर्मास भर द्रविड़ देशोंमें पोंगल यानी खिचड़ी खानेका रवाज है। उत्तरमें तो धनुर्मासके अन्तमें, मकरसङ्क्रान्तिके अवसरपर, केवल एक दिन खिचड़ीका त्योहार मनाया जाता है। इस दिन स्वजनों और मित्रोंके यहाँ भांति-भांतिके भोजन, पक्वान्न, भेटमें भेजनेका दस्तूर है। मकर-सङ्क्रान्ति, मौनी अमावास्या और माघके महीने भर प्रयागके स्नानका माहात्म्य है। लाखों यात्री आकर त्रिवेणीके किनारे पर्वभर कल्पवास करते हैं। सारे भारतमें यह सबसे बड़ा और महीने भरसे अधिक रहनेवाला मेला लगता है। कथा, सत्सङ्ग और उत्सवोंकी धूम रहती है। माघ शुक्ला पञ्चमीको वसन्तपञ्चमीका त्योहार मनाते हैं। इस दिन सरस्वती-पूजाके अतिरिक्त नवान्नप्राशन, ज्योनार, गाना-बजाना आदि उत्सव होता है। वसन्तऋतुका स्वागत किया जाता है। जान पड़ता है कि कभी इसी समय वसन्तागमन होता था। आजकल तो शिशिर ऋतु रहती है। फाल्गुन शुक्ला एकादशीसे ही होलाष्टक लगता है और फाल्गुनकी पूर्णिमापर होलिकादहन होता है। दूसरे ही दिन चैत्रकी प्रतिपदाको धूलिवन्दन होता है। इस दिन श्वपचसे गले मिलनेका दस्तूर है। लोग रङ्ग खेलते हैं, रसालमञ्जरीका प्राशन करते हैं, एक दूसरेसे गले मिलते हैं, परस्पर भोजन कराते हैं, गाना-बजाना उत्सव नाच आदि होता है, भांति-भांतिसे मनोरञ्जनके उपाय किये जाते हैं। गालियां बकने और नशा सेवनकी कुप्रथा भी चल पड़ी थी, जो सुधारकोंके प्रभावसे कम हो चली है। होली और फागमें बरसोंके बैरको जला देते हैं, धूलमें उड़ा देते हैं। यह त्योहार सब वर्णोंको समान सम्मान देकर मिलानेवाला है और चारों वर्णोंका, और विशेषत. शूद्रोंका, त्योहार है। वासन्ती नवरात्रमें भी शारदी नवरात्रकेसे उत्सव होते हैं और रामनवमीको तो मङ्गलवाद्य, नाच गाना आदि होता ही है। मेष सङ्क्रान्तिपर गङ्गास्नान और सत्तू आदिका दान करते हैं। अक्षयतृतीयापर परशुराम जयन्ती होती है। ज्येष्ठ शुक्ला दशमीको गङ्गा-जयन्ती मनायी जाती है और आषाढ़ पूनोको गुरुपूजा की जाती है। सावनमें नागपञ्चमीके दिन मल्लोंका खास त्योहार होता है। इस दिन अखाड़ोंमें पहलवान इकट्ठे होते हैं और अपने-अपने करतब दिखाते हैं। नागपञ्चमीके दिन नागपूजा ही यद्यपि इस त्योहारकी मुख्यता है, तथापि कुश्ती और मल्लोंके खेल विशेष आकर्षण रखते हैं। इसी दिनसे बराबर संयुक्त-प्रान्तके पूरबी अञ्चलमें कजलीकी धूम रहती है। परन्तु यह स्थानीय विशेषता है। श्रावणी पूर्णिमाके दिन श्रावणी उपाकर्म्म सारे भारतमें ब्राह्मणोंका वार्षिक यज्ञ है। इसी दिन रक्षाबन्धन होता है। यह ब्राह्मणोंका ही विशेष त्योहार है। आठ ही दिनों बाद भगवान् कृष्णकी जन्माष्टमीका उत्सव होता है। निरम्बु उपवास होते हुए भी घर-घर मङ्गलोत्सव होता है। आश्विन कृष्णपक्ष तो पितृपक्ष कहलाता ही है। पूरे पन्द्रह दिनोंतक श्राद्धों और जेवनारोंकी धूम रहा करती है। इस तरह पूरे सालभर पर्वोंके साथ-ही-साथ

उत्सव, त्योहार और मेले आदि होते रहते हैं। पर्वोंके अवसरपर तीर्थ स्थानोंपर जगह-जगह बराबर मेले होते रहते हैं। जहाँ यात्री बारहों मास तांता लगाये रहते हैं वहाँ तो बारहों मास बाज़ार और मेले लगे रहते हैं। यद्यपि ये मेले हिन्दुओंके ही होते हैं, तो भी इसमें मुसल्मान और ईसाई व्यापारियोंका प्रायः हिन्दुओंकी अपेक्षा कहीं अधिक लाभ होता है।

महाराष्ट्र देशमें गणेश-उत्सव, बङ्गालमें दुर्गा जा, उड़ीसामें रथयात्रा, द्रविड़देशमें पोंगल मास बड़े-बड़े उत्सव हैं जो प्रान्तीय विशेषता रखते हैं, तो भी उन-उन प्रान्तोंके सभी प्रकारके हिन्दू इन उत्सवों और मेलोंमें शरीक होते हैं।

मङ्गलोत्सवोंमें गाना-बजाना हिन्दुओंकी विशेषता हैं। पेशेवाले ढाढ़ी, कलावन्त, भाट, मागध, सूत, वन्दी, चारण तो उत्सवोंमें आते ही हैं। मीरासिनें नाचती भी हैं। यह बहुत प्राचीन प्रथा है। परन्तु सभी जगह सभी अवसरोंपर ये पेशेवाले नहीं पहुँच पाते। घरकी स्त्रियाँ आप ढोलक बजाती और मङ्गलगान गाती हैं। गावँकी पास पड़ोस और मुहल्लेकी स्त्रियाँ इस काममें योग देती हैं। हिन्दुओंकी यह विशेषता उन मुसलिमोंमें भी मौजूद है जो कभी हिन्दू रह चुके थे। इन बातोंके सिवा देशमें कथा पुराण कहनेका बहुत प्राचीन रिवाज है। व्यास लोग कोई विशेष कथा नियमसे नित्य कहते हैं। महाराष्ट्रमें हरि-दास गानवाद्यके साथ भगवद्गुण-कीर्त्तन-सम्बन्धी बड़े ही रोचक व्याख्यान देते हैं। बङ्गालमें नामकीर्त्तनकी मण्डलियाँ श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके समयसे बड़े उत्साहसे कीर्त्तन करतं। हैं। आर्य्यसमाज आदि सुधार-पन्थियोंकी भजन मण्डलियाँ भी देशमें काम करती हैं। राम-चरितमानस गानेवाली मण्डलियाँ भी हैं। यह तो गावँ-गावँमे हैं।

६—तीर्थ और तीर्थ-यात्रा

काशीखण्डमें तीर्थके तीन प्रकार कहे हैं, जङ्गम, मानस और स्थावर। पवित्र स्वभाव और सर्वकामप्रद ब्राह्मण और गऊ जङ्गम तीर्थ हैं। सत्य, क्षमा, शम, दम, दया, दान, आर्जव, सन्तोष, ब्रह्मचर्य्य, ज्ञान, धैर्य्य, तपस्या आदि मानस तीर्थ हैं। गङ्गादि नदी, पवित्र सरोवर, अक्षयवटादि पवित्र वृक्ष, गिरि, कानन, समुद्र, काशी आदि पुरी, स्थावर तीर्थ हैं। अकेले पद्मपुराणमें इस धरतीपर साढ़े तीन करोड़ तीर्थोंका उल्लेख है। जहाँ-कहीं कोई महात्मा प्रकट हो चुके हैं या जहाँ-कहीं किसी देवता या देवीने लीला की है, उसी स्थानको हिन्दू तीर्थ मानता है। भारतभूमिमें ही इस तरहके स्थान असङ्ख्य हैं। इसलिये उनके नाम यहाँ गिनाये नहीं जा सकते। तीर्थाटन करनेसे, देशमें घूमनेसे, आत्माकी उन्नति होती है, बुद्धिका विकास होता है, बहुदर्शिता आती है, उदारताका भाव आता है, इसलिये यात्राको हिन्दू पुण्यदायक मानता है। तीर्थोंमें सत्सङ्ग और अनुभवसे ज्ञान बढ़ता है। पापोंसे बचनेकी भावना मनमें उत्पन्न होती है।

भारतमें प्रायः सभी नदियाँ तीर्थ हैं। उनमें गङ्गाका पद सबसे ऊँचा है। सातों पुरियाँ,—अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका, पुरी, द्वारका,—मोक्षदायिका कहलाती हैं। रामेश्वर, जगदीश, बदरीकेदार, और द्वारका ये चारों धाम भी अत्यन्त प्रसिद्ध तीर्थ हैं। प्रयाग तीर्थोंका राजा और पुष्कर तीर्थोंका गुरु माना जाता है। जहाँ-जहाँ अवतारों-

ने जन्म लिये, चरित किये, वहाँ-वहाँ तीर्थ हो गये हैं । सम्प्रदायोंके आचार्य्योंके स्थान भी तीर्थ हैं । सिखों, जैनों, बौद्धों, कबीरपन्थियों, नाथपन्थियों आदि सबके विशिष्ट तीर्थ हैं । सरस्वती, दृषद्वती, सप्तसिन्धु आदि वैदिक तीर्थ हैं । कुरुक्षेत्र महाभारत युद्धके लिये प्रसिद्ध है, परन्तु युद्धसे बहुत पहलेसे वह धर्म्मक्षेत्र कहलाता था । चित्रकूट भगवान् रामचन्द्रके निवासके कारण तीर्थ हो गया । नैमिषारण्य सब वनों उपवनोंमें श्रेष्ठ तीर्थ माना जाता है । विन्ध्य और हिमालय आदि पर्वत भी तीर्थ हैं, उनमें कैलास प्रमुख है । झीलोंमें मानस-सरोवर सर्वोत्तम समझा जाता है । स्थान स्थानपर शीतल और तप्त कुण्ड, ह्रद और सरोवर भी हैं, जो तीर्थ हैं, वा तीर्थका महत्त्व रखते हैं ।

तीर्थयात्रा करनेवाला घरसे ही विशेष विधिसे निकलता है, प्रत्येक तीर्थमें मुण्डनादि विशेष क्रियाएँ और विशेष प्रकारसे पूजा-अर्चा करता है, और जब लौटता है तो तीर्थयात्राकी पूर्त्तिके उपलक्ष्यमें यज्ञ होम आदि प्रतिष्ठापन कर्म्म करता है । तीर्थयात्राका सबको अधिकार है । तीर्थोंमें स्नान, दान, दर्शन, पूजा-अर्चा, व्रत, जप, श्राद्ध आदि सभी कुछ करते हैं । दर्शन और पूजा अर्चाके नियम देशकी रीतिके अनुसार विविध हैं । उत्तर भारतमें द्विजमात्र मन्दिरके गर्भमें प्रवेश करके दर्शन करते हैं और काशी विश्वनाथके लिङ्गका तो स्पर्श भी करते हैं । अपने हाथसे पत्र-पुष्पादि चढ़ाते हैं । परन्तु दक्षिणमें पुजारीके सिवा मन्दिरके गर्भमें और कोई प्रवेश नहीं कर सकता । पूजा केवल पुजारी कर सकता है । दर्शन दूरसे ही करते हैं । किसी-किसी मन्दिरमें तो देवताका चरणोदक भी वहींके ब्राह्मणोंके सिवा और किसीको नहीं देते । अभी हालमें त्रावङ्कोरके नरेशने अपने राज्यमें हरिजनोंको भी प्रवेश करनेका अधिकार दे दिया है । इसका अर्थ केवल इतना ही है कि जहाँतक द्विजमात्रका प्रवेश है, वहाँतक शूद्र हरिजन भी जा सकते हैं । प्रत्येक मन्दिरमें पूजा-अर्चाकी विधियाँ अपनी-अपनी होती हैं । अनेक सम्प्रदायवाले तीर्थमें तो जाते हैं, परन्तु दर्शन पूजा आदि अपने सम्प्रदायके अनुकूल करते हैं ।

७—भाषा और वेष-भूषा

अत्यन्त प्राचीन कालसे तीर्थाटन करना भारतवर्षमें रहनेवालोंके जीवन और संस्कृति-की विशेषता रही है । प्राचीन "आर्य्य" नामकी एक व्युत्पत्ति ही उसे तीर्थाटन करनेवाली जाति ठहराती है । वर्णाश्रमधर्म्ममें वैश्य घूम-घूमकर व्यापार करता है और संन्यासी देशाटन करता है । प्रव्रज्या शब्द ही देशाटनका सूचक है । इन्हीं घूमनेवालोंने सारे देशको तीर्थ बना डाला । इसीलिये उस प्राचीन युगमें जब संसारमें यात्राके साधन बहुत ही कम थे, भारतमें वह अत्यन्त समुन्नत दशामें थे । किसी समुन्नत युगमें जलयान, स्थलयान और वायुयान तो प्रचुरतासे रहे ही होंगे । परन्तु गत दो हजार बरसोंके भीतर भी, जब यात्राके साधन उतने अच्छे नहीं रह गये थे, हमारे देशके संन्यासियोंने सारस्वत दिग्विजय किया था और व्यापा-रियोंने अपने आर्थिक प्रभावका विस्तृत ताना-बाना फैलाया था । जब हमारे तीर्थोंमें देश-देशके यात्री और व्यापारी झुण्डके झुण्ड इकट्ठे होते थे तो उन्हें आपसकी बातचीतके लिये एक ही भाषाकी आवश्यकता थी जो सब समझें । यह भाषा बहुत प्राचीन समयमें काममें

आती थी और आज भी आ रही है। यह है हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी। यह भाषा चाहे कैसी ही टूटी-फूटी बोली जाती हो, किन्तु बोली जाती है भारतके समस्त तीर्थ-स्थानोंमें। इसका प्राचीन नाम था "भाषा"। बँगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाएँ इसी भाषाकी प्रान्तीय रूपान्तर थीं। मुसलमानोंने बाहरसे आकर बँगला, मराठी, गुजराती, हिन्दुस्तानी, सबको "हिन्दुई" "हिन्दवी" या "हिन्दी" कहा। परन्तु राष्ट्रभाषाके ही स्रोतमें उन नये आक्रमणकारियोंकी भाषाको भी बह जाना पड़ा और राष्ट्रभाषाको ही "हिन्दूई" "हिन्दवी" या "हिन्दी" नाम देना पड़ा। इससे "भाषा"का नाम 'हिन्दी" पड़ गया। आज राष्ट्रभाषा हिन्दी पूर्वमें पुरीमें, पश्चिममें द्वारकामें, दक्षिणमें रामेश्वरमें और उत्तरमें बदरीकेदारमें बोली जाती है। हिन्दी समस्त तीर्थोंकी भाषा है, तीर्थयात्रियोंकी भाषा है, अतः पण्डोंकी भाषा है, और इसीलिये व्यापारियोंकी भी भाषा है, संन्यासियोंकी भी यही भाषा है। व्यापकता और सार्वभौमताकी दृष्टिसे अखिल भारतीय भाषा कभी संस्कृत अवश्य थी। आज भारतकी प्रायः सभी प्रान्तीय भाषाएँ प्राकृत रूपमें हैं जिनका प्रत्येकका उद्गम संस्कृत ही है। चारों द्रविड भाषाएँ भी संस्कृतसे ही निकली हुई हैं, ऐसा दक्षिणके ही अनेक विद्वानोंका दावा है। सबमें संस्कृतके तत्समों और तद्भवोंका प्राचुर्य्य इस बातका साक्षी है। संस्कृतके बदले शिक्षितोंकी भाषा भी जब प्राकृत हो गयी, तो भारत-व्यापकताका स्थान किसी समुचित प्राकृतको ही लेना पड़ा। इसके प्रधान कारण थे तीर्थ, और तीर्थोंमें सभी प्रदेशोंके लोगोंका एकत्र होना। पिछले छः सात सौ बरसोंके भीतर हिन्दू तीर्थयात्रियोंने राष्ट्रभाषा हिन्दीका अनवरत प्रचार जारी रक्खा। जैसे, रामेश्वरजीमें मिलनेवाला बङ्गाली, गुजराती, महाराष्ट्र, उड़िया, परस्पर बातचीत और व्यवहारके लिये सबसे अधिक प्रचलित प्राकृत हिन्दीका ही प्रयोग करते आये हैं। यही कारण है कि मराठी, गुजराती, बँगला आदिके पुराने कवियोंने पुरानी हिन्दीमें भी अपनी अनेक रचनाएँ की हैं। साधु, सन्त, संन्यासी, परिव्राजक, तीर्थयात्री, और व्यापारी सारे भारतको सदासे एक सूत्रमें बाँधते आये है और आज रेल-तार-डाकके सुभीतेके साथ भी उनका तांता टूटा नहीं है, वरन् बहुत बढ़ा हुआ और दृढ हो गया है। उन्होंने हिन्दीको छः सात सौ बरसोंसे राष्ट्रभाषा बना रक्खा है। हिन्दुओंकी एकताका उनकी राष्ट्रभाषा "हिन्दी" एक महत्त्वशाली प्रतीक है।

भाषाके साथ ही साथ भेषकी एकता भी थोड़ा बहुत सम्पूर्ण हिन्दू-समाजमें है।

हिन्दूकी पहचान शिखा सार्वभौम है। संन्यासियोंके सिवा हिन्दू-मात्र शिखा रखते हैं। कर्म्मनिष्ठ ब्राह्मणकी मोटी चोटी उसके द्विजत्वकी ध्वजा है। द्विजमात्रके शरीरपर सूत्र एक दूसरी पहचान है। परन्तु दशनामी संन्यासी, ब्राह्मसमाजी और पाश्चात्य शिक्षासे अराष्ट्रीकृत हिन्दू शिखासूत्र नहीं रखते। कबीरपन्थी, सिख आदि जनेऊ नहीं पहनते। परन्तु उनके साम्प्रदायिक भेष अलग-अलग हैं जिनसे उनकी पहचान होती है। सम्प्रदायवाले अपना-अपना तिलक अलग-अलग रखते हैं। शरीरपर तप्त या शीतल छाप भी अपनी-अपनी अलग होती है। मालामें भी अन्तर होता है। गृहस्थोंका पहिरावा और रहन-सहन भी हिन्दू-मात्रका विशिष्ट है। परन्तु प्रान्त-प्रान्तमें थोड़ा-थोड़ा भेद है। अपने-अपने प्रान्तके द्विजों और शूद्रोंमें आसानीसे पहचान हो सकती है। पश्चिमी और वायव्य पञ्जाबको छोड़ प्रायः सारे

भारतमें पुरुषोंके लिये धोती और उत्तरीय वस्त्र और स्त्रियोंके लिये साड़ी चोली और उत्तरीय वस्त्र सार्वभौम पहरावा है। स्त्रियोंकी वेषभूषा भी हिन्दू-मात्रमें विशिष्ट होती है। सधवाके मांगमें सिन्दूर वा उसका स्थानापन्न अवश्य होता है। पश्चिमी और वायव्य पञ्जाबमें स्त्रियां सलवार पहनती हैं और मध्यभारत राजस्थान एवं इन प्रदेशोंके पार्श्वोंमें लहँगेका भी रिवाज है। परन्तु, यह पहिरावा उसी तरह साड़ी और चोलीके अतिरिक्त है, जैसे पुरुषोंके लिये सलवार, पाजामा, पतलून, कुरता, अँगरखा, अङ्गा, शेरवानी, कोट आदि धोती और दुपट्टे या चादर, और टोपी, साफा, पगड़ी, आदिके अतिरिक्त हैं। आजकालके सुधार-सङ्घोंने जैसे पुरुषोंके रूपसे हिन्दूपनकी विशेषताएँ हटा दी हैं, वैसे ही स्त्रियोंको भी सधवा-विधवा-विभेदसूचक लक्षणसे रहित कर दिया है और जम्पर पेटीकोट आदि भी पहना दिया है। परन्तु वायव्य प्रान्तके सिवा अन्य प्रदेशोंके भेषसे फिर भी हिन्दू और अहिन्दूका अन्तर सहजमें प्रतीत होता है। दक्षिण भारतके हिन्दू घरोंके मुख्य द्वारपर गृहस्वामिनी नित्य तड़के उठकर लीपकर चौक पूर देती है। हिन्दू घरका यह चिह्न उसी दिन नहीं रहता जिस दिन घरके भीतर कोई अमङ्गल हो जाता है। भारतके अन्य प्रदेशोंमें इस मङ्गलमय रीतिका अभाव देखकर दुःख होता है। यहाँ यह रीति उस समय देखी जाती है जब द्वारपर वरका स्वागत सत्कार पूजा करनी होती है।
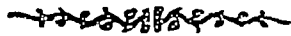
अठहत्तरवाँ अध्याय

हिन्दू समाजका विकास

१—सृष्टिका सिद्धान्त

अन्य प्रकरणोंमें हम देख चुके हैं कि हिन्दू-साहित्यमें सृष्टिके सम्बन्धमें अनेक मत हैं। नास्तिक-सम्प्रदायोंमें बौद्ध तो सृष्टिको क्षणिक और जैन अनाद्यन्त मानते हैं। आस्तिकोंमें विवर्त्तवादी या मायावादी तो संसारको भ्रम ही मानते हैं। अन्य हिन्दू सृष्टिका आदि अन्त मानते हैं। सृष्टि और प्रलयका वर्णन पुराणोंका लक्षण है। पौराणिक हिन्दू परमात्माको कर्त्ता, भर्त्ता और हर्त्ता तीन रूपोंमें मानता है और समझता है कि तीनोंका काम महाप्रलय-तक जारी रहता है। आधुनिक-विकासवाद और परिणामवाद एक ही है, अन्तर यही है कि आधुनिक-विकासवादी प्रकृतिकृत-विकासमें पुरुषकी आवश्यकता नहीं समझता, उसकी सत्ता भी नहीं मानता, परन्तु पौराणिक परिणामवादी पुरुषको ही मुख्यता देता है और मायाको उसके अधीन ठहराता है। इसीलिये उसकी सृष्टिका आरम्भ प्रजापतियों और ऋषियों और देवोंकी रचनासे होता है। ये स्वयं सृष्टि-विस्तारके साधक बनते हैं, और जड़ और चेतन दोनों अंशोंका एक साथ ही विकास करते हैं। विकासमें पद-पदपर अवरोध, बाधा, रुकावट, विघ्न भी अपर देवगण ही उत्पन्न करते हैं। हर बाधापर, विघ्नपर, परिणाम विकास या वृद्धिके मार्ग अधिकाधिक विभिन्न ही बनते जाते हैं, विविध शाखा, विविध अङ्कुर, विविध पल्लव निकलते हैं। हर रुकावटमें क्षणिक ह्रास है, विनाश है, और हर क्षणिक ह्रास या विनाशपर नया जन्म, नया मार्ग, नया पल्लव, नयी शाखाका उद्भव है। और सृष्टिका पालन, उसकी रक्षा इसी नये जन्म और नाश, नये मार्ग और बाधा, नयी शाखा और उसके अन्तके बीच-की अवस्था है। यही महा-प्रलयतककी कथा है, जब कि अन्तमें साम्यावस्था आ जाती है, जब कि जन्म, मरण और बीचकी अवस्थाके होनेका सिलसिला खतम हो जाता है, जब कि सत्त्व और रजस् तमोगुणमें लीन हो जाते हैं और पुरुष तमोगुणकी निद्रावस्थामें हो जाता है, कर्त्ताका भर्त्ताका और हर्त्ताका कोई काम नहीं रहता।

जिस विश्वमें हमारा ब्रह्माण्ड है, जिस ब्रह्माण्डमें हमारी धरती है और जिस धरतीपर हमारा भारतवर्ष है, उसकी रचना तो प्राणियोंकी सृष्टिके पहले हो चुकी थी। प्राणियोंकी सृष्टिका आरम्भ हुए लगभग दो अरब बरस हुए, ऐसा ज्योतिषियोंके बताये सृष्ट्यादिके अहर्गणसे प्रतीत होता है। यह तो स्पष्ट ही है कि मानव जातिकी सृष्टि और प्राणियोंसे पीछे हुई। परन्तु किस स्थान-विशेषपर पहले-पहल हुई, इसकी महाभारतमें केवल एक जगह तीर्थयात्रा-प्रसङ्गमें व्याजसे ही सूचना है। वर्णनोंसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह स्थान आर्य्या-वर्त्तके भीतर ही हो सकता है, और वह एक स्थान न होकर सम्भवतः अनेक स्थान होंगे।

२—आर्य्योंका मूल-निवास

ऋग्वेदमें "आर्य्य", "दस्यु", "विश", "वैश्य", "ब्राह्मण", क्षत्रिय" और "शूद्र" शब्द आये हैं। इनमें आर्य्य और दस्यु शब्दोंको लेकर पिछले डेढ़ सौ बरसोंके भीतर पाश्चात्य विद्वानोंने यह धारणा स्थिर की है कि आर्य्य लोग बाहरसे भारतमें आकर बसे और यहांके मूल-निवासियोंको, जिन्हें वे "दस्यु" कहते थे, अधिकार-च्युत कर दिया। इस धारणाका मूल कारण यह था कि यूरोपीय जातियोंमें भी "आर्य्य"के समान उच्चारणवाले शब्द पाये जाते थे, और उनके यहाँ यह प्रवाद प्रचलित था कि हम आर्य्य कहीं और देशसे आकर बसे हैं। जब यूरोपीय विद्वान् यहांके साहित्यका अध्ययन करने लगे तब उन्हें यूरोपीय और भारतीय भाषाओंमें असाधारण समानता दीखने लगी। वह लोग तब इस खोजमें हुए कि ये भारतीय कहांसे आये। इस धारणाकी पुष्टिमें उन्होंने संसारकी सबसे पुरानी पोथी ऋग्वेदमें ये मन्त्र खोज निकाले—

"अनुप्रत्नस्यौकसोहुवे" (१।३०।९)
"पुराणमोकः सख्यं शिवं वां, युवोर्नरा द्रविणं जह्वाव्याम्।
पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः॥"
(३।५८।६)

इन मन्त्रोंसे केवल इतना ही विदित होता है कि जिनके सम्बन्धमें यह कथन है वह पहले कहीं और रहते थे। "ओकस्" "आवर्त्त" "अयन" आदि स्थानके सूचक हैं। सम्भव है, "ओकस्" किसी स्थानका रूढ नाम ही हो। फिर भी सायणादि भाष्यकारोंने आर्य्यावर्त्तसे बाहरके किसी स्थानका न तो नाम बताया है, न सूचना दी है। दूसरे मन्त्रमें शुनःशेपके पूर्व स्थानका निर्देश करते हुए दूसरा नाम "जह्वाव्याम्" भी कहा है। यदि जह्नावी या जाह्नवी अर्थात् गङ्गा नदी निर्दिष्ट है, तो जह्नु देश वा पहाड़से सम्बन्ध हो सकता है। यह आर्य्यावर्त्तके भीतरका ही नहीं है, और अवश्य कोई बाहरी देश है, ऐसी धारणाके लिये कोई प्रमाण न होते हुए भी यूरोपीय विद्वानोंने इसका अर्थ आर्य्यावर्त्तके बाहरका कोई देश लगाया। यहाँ तो शुनःशेपके बाहरसे आनेका प्रमाण है। सारी आर्य्य जातिके कहीं बाहरसे आनेका प्रमाण इसे क्यों माना गया, यह वे ही जानें। यहाँ जो किसीके बाहरसे आनेकी चर्चा है उससे ही यह बिलकुल स्पष्ट और पुष्ट है कि मन्त्रके कहनेवाले लोग अवश्य ही उस देशके हैं, निर्दिष्ट व्यक्ति वा जाति जहांके प्राचीन निवासी नहीं हैं। फिर, प्राचीन कालमें भी बाहरसे आनेवालोंके लिये यहाँ रुकावट थी, ऐसा कहनेके लिये कोई प्रमाण नहीं है। प्रत्युत्, मगों और शाकद्वीपियोंका आना और बसाया जाना तो स्पष्ट रूपसे भगवान् श्रीकृष्णके उत्तरकालमें वर्णित है। ऐसी दशामें यूरोपीय विद्वानोंका यह कहना कि प्राचीन "ओकस्" मध्य एशियाके मैदानकी ही सूचना देता है, और अकेला शुन.शेप ही नहीं, सारी आर्य्यजातिका प्राचीन स्थान अत. मूलस्थान वही है, बिलकुल निराधार है और सत्यव्रत सामश्रमी आदि वेदार्थतत्त्वज्ञोंकी व्याख्याओंसे नितान्त असङ्गत है। सारी आर्य्यजातिके कहीं औरसे आकर आर्य्यावर्त्तमें वसे होनेका स्पष्ट वर्णन ऋग्वेदमें अथवा अन्यत्र कहीं नहीं है। अपने "अवर् आर्क्टिक्

होम् इन दि वेदाज़"में श्री तिलक महाराजने सुमेरु वर्णनसे जो यह निष्कर्ष निकाला है कि आर्य्योंका प्राचीन निवास कहीं ध्रुवीय प्रदेशमें था, उसके सम्बन्धमें भी श्री पावगी आदि अनेक विद्वानोंकी यह धारणा है कि आर्य्यजाति यहींसे प्रालेय-प्रलयमें उस प्रदेशमें गयी और फिर साधारण समय आनेपर लौटी। "आवर्त्त" शब्द जाकर लौट आनेकी भी सूचना देता है। दूसरे विद्वानोंका यह मत है कि किसी सुदूर प्राचीन युगमें आर्य्यावर्त्तमें अयन-गतिके कारण वही अवस्था थी जो श्री तिलक महाराजने ध्रुवीय प्रदेशकी समझी थी। इसके सिवा किसी मन्त्रसे यह सिद्ध नहीं होता कि आर्य्य जाति, ध्रुवीय-प्रदेशसे ही सही, आकर आर्य्यावर्त्तमें बसी। ऋतुकी विविध-दशाओंका वर्णन भिन्न-भिन्न कालोंका एकही देशके सम्बन्धमें, अथवा, भिन्न-भिन्न देशोंका एकही कालके सम्बन्धमें, अथवा, भिन्न-भिन्न कालोंका विविध देशोंके सम्बन्धमें हो सकता है। इन तीनों सम्भावनाओंकी बराबर सङ्गति होनेसे यह एकदेशीय निश्चय कि आर्य्यजाति बाहरसे ही आयी समीचीन नहीं समझा जा सकता।*

मोहन-जो-दड़ो और हरप्पाकी खुदाईसे जो निष्कर्ष निकले हैं उनमें भी मतभेद है। उसके भी दो पक्ष हैं। पाश्चात्य पक्ष कहता है कि यह प्रागार्य्य सभ्यताकी सूचना है और प्राच्य पक्ष कहता है कि यह आर्य्य सभ्यताकी ही सूचना देता है, उसके कमसे कम १० हजार बरस पुरानी होनेकी गवाही देता है, एवं आर्य्यावर्त्तसे आर्य्य-जातिका निकलकर मध्य एशिया-में जाकर बसनेका भी प्रमाण इन खुदाइयोंमेंसे मिलता है।

---

* फिर मध्य एशियाके उद्गम होनेकी धारणाका जन्म कहासे हुआ ?

हिन्दू-साहित्यके पच्छाहीं अध्येता प्राय सभी मूसाई या ईसाई हैं जो मूसाके पञ्चपुराणोंके अनुसार ही सृष्टिकी कथा मानते हैं। उनके अनुसार जल-प्रलयके अन्तमें नूहकी नाव अराRात पहाड़-पर टिकी और वहांसे उनके तीनों पुत्र साम, हाम और जाफतने फिरसे मानवीय सृष्टि चलायी। अरारात शब्दका सामञ्जस्य आर्य्यसे मिलाकर उन्होंने दो धारणाएं मुद्दतसे स्थिर कर रक्खी थीं। पहली यह कि वर्त्तमान सृष्टि अरारात पहाड़से दुनियामें फैली। यह मध्य एशियासे सलग्न देश है। दूसरी यह कि यह जल-प्रलय ईसाके ढाई हजार बरस पहले हुआ, और आदि सृष्टि ईसासे चार हजार बरस पहले हुई, इसलिये संसारके इतिहासकी सारी घटनाएं इसी कालावधिके भीतर हो सकती हैं। देशकालकी इन्हीं दो धारणाओंके आधारपर उन्होंने ऋग्वेदका काल खींच खाचकर ईसा-से पहले दो हजार बरसोंके भीतर ही रक्खा और उसमें आर्य्योंका बाहरसे आना किसी-न-किसी भांति सिद्ध करना चाहा। यही बात है, कि वे लचरसे-लचर दलीलें प्राचीनताको घटाने और विदे-शीयताको सिद्ध करनेके लिये खोज निकालते हैं। साथ ही, भारतीयोंके विदेशी सिद्ध करनेमें यह भी स्पष्ट राजनीतिक उद्देश्य है, कि जैसे तुमने आदि निवासियोंपर चढ़ाई और हुकूमत की, हम भी वैसा ही करते हैं, तो अन्याय नहीं है। और, बात-बातमें जो विदेशियोंका भारतीयोंपर ऐतिहासिक उत्कर्ष दिखाया जाता है, उसका उद्देश्य तो स्पष्ट ही विजितोंको नीचा दिखाना है। और इस बातकी भी प्राचीन परम्परा दिखायी जाती है, कि आर्य्योंने भी दस्युओंको नीचा दिखाया था यह वेदोंसे सिद्ध है।

आर्य्य-जाति इस देशमें विदेशी ही है और उसका मूल स्थान इस धरतीपर कहीं और ही है, इस कल्पनाको सिद्ध करनेमें जिन विद्वानोंका विशेष राजनीतिक स्वार्थ था और है, वे खींचातानी करके कष्ट-कल्पनाएँ ही नहीं करते आये, वरन् पाठ्य-पुस्तकोंमें इनका व्यापक-प्रचार भी आरम्भसे ही करते आये हैं।

किसी हिन्दूके लिये यह प्रश्न कोई महत्त्व नहीं रखता, क्योंकि वह किसी और लोकसे ही क्यों न आया हो, आज जिस भूखण्डपर वह बसा हुआ है, उसमें ही उसकी अत्यन्त प्राचीन और लम्बी परम्परा, उसके आजतकके प्राचीन इतिहास और पुराण, उसके समस्त संस्कार और धर्म्म, उसका व्यापक मानसिक-विकास, निदान उसकी सारी इयत्ता, सीमित है। वह किसीके कहनेसे यह माननेको कभी तैयार नहीं है कि यह भारतभूमि किसी कालमें, किसी युगमें, उसकी पुण्यभूमि न थी और उसका मूलस्थान कहीं और था।

यूरोपीय भाषाओंकी धातुओं और शब्दोंकी यहाँकी संस्कृत भाषासे समानता देखकर यूरोपीय विद्वानोंने यह कल्पना की कि भारतीय और यूरोपीय आर्य्य जातियाँ एक ही मूल-स्थानसे निकलकर फैली हैं, और वह स्थान मध्य एशिया है। परन्तु हिन्दू-साहित्यमें ऐसी कोरी कल्पनाकी आवश्यकता न थी और न है।* हिन्दू-स्मृतियोंमें सृष्टिका मूल-स्थान आर्य्यावर्त्तके भीतर और महाभारतमें तो सप्तचरु तीर्थके पास वितस्ता (व्यास) की शाखा देविका नदीके तटपर स्पष्ट बतलाया है और मनुस्मृतिमें स्पष्ट लिखा है कि इसी देशसे निकलकर अनार्य्य देशोंमें आर्य्य लोग फैले† और ब्राह्मणोंके न मिलनेसे संस्कारहीन हो गये। वर्णाश्रम धर्म्मके और संस्कृतिके नष्ट हो जानेसे वे अनार्य्य और दस्यु बन गये। इस सीधी सी बातके लिये कष्टकर खोजकी आवश्यकता न थी। किसी कष्ट-कल्पनाका कोई काम न था। परन्तु ईसाई धारणाको सत्य सिद्ध करने और राजनीतिक स्वार्थसाधनके लिये हिन्दू-साहित्यको अविश्वसनीय ठहराया गया, शिक्षाप्रचारद्वारा उनपरसे श्रद्धा उठा दी गयी और ऐसा आतङ्क बैठाया गया कि हमारे विद्वान् सुधारक भी उन्हींके स्वरमें स्वर मिलाने लगे।

---

* अथ गच्छेत राजेन्द्र देविका लोकविश्रुताम्।
प्रसूतिर्यत्र विप्राणा श्रूयते भरतवर्षभ॥
(म० भा० तीर्थयात्रापर्व अ० ८२)

असृजद् ब्राह्मणानेव पूर्वं ब्रह्मा प्रजापतीन्।
आत्मतेजोभिनिर्वृत्तान् भास्कराग्निसमप्रभान्॥
न विशेषोऽस्ति वर्णाना सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणापूर्वं सृष्टं हि कर्म्मभिर्वर्णतांगतम्॥ (म० भा० शान्तिपर्व)

† शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥
पौण्ड्रकाश्चौण्ड्रद्रविडाः काम्बोजा. यवना शकाः।
पारदा पह्नवाश्चीना तातारा दरदा खशाः॥ (मनु.)

३—आर्य्य और दस्यु

आर्य्य शब्दकी व्युत्पत्ति भारतीय वेदार्थ तत्त्वज्ञ पाश्चात्य देशीय विद्वानोंसे भिन्न करते हैं। खेती करनेके अर्थमें प्रयुक्त अर् धातुका यहाँ कहीं पता नहीं है। पाश्चात्योंका यह बलात् आरोप है।

ऋग्भाष्यमें सायणाचार्य्यने आर्य्य शब्दका अर्थ कई प्रकारसे लगाया है। "विदुषोऽनुष्ठात्रीन्" (१।५१।८), "विद्वांसः स्तोतारः" (१।१०३।३), "विदुषो" (१।११७।२१)। "अरणीयं सर्वैर्गन्तव्यम् (१।१३०।८), उत्तमं वर्णं त्रैवर्णिकम् (३।३४।९), मनवे (४।२६।२), कर्म्मयुक्तानि (६।२२।१०), कर्म्मानुष्ठातृत्वेन श्रेष्ठानि (६।३३।१०), अर्थात् विज्ञ यज्ञानुष्ठाता, विज्ञ स्तोता, विज्ञ, अरणीय वा सर्वगन्तव्य, उत्तमवर्ण त्रैवर्णिक, मनु, कर्म्मयुक्त, और कर्म्मानुष्ठानसे श्रेष्ठ। शुक्ल यजुः संहिताके (१४।३०) भाष्यमें महीधरने आर्य्य शब्दका अर्थ "स्वामी" और "वैश्य" लिखा है। किन्तु वेदके प्रयोग एवं यास्कके अर्थमें आर्य्य शब्द मनुष्यमात्रके लिये प्रयुक्त दीखता है। सायणके भाष्यसे भी यज्ञादि कर्म्मानुष्ठानद्वारा मानव-जातिका श्रेष्ठ बनना प्रमाणित होता है। भारतीय वैदिक पण्डित "ऋ"धातु और "ण्यत्" प्रत्ययसे आर्य्य शब्दकी व्युत्पत्ति बताते हैं। ऋधातुका अर्थ चलना और फैलना है। मानव-जाति गमनशील है और जहाँ जाती है फैल जाती है। कोई देशकाल इसके बसनेमें बाधक नहीं होते। गरमसे गरम, शीतसे शीत देश, टापू, पहाड़, जङ्गल, मरुस्थल सभी जगह फैली हुई है। प्रत्येक सभ्य जातिका यह दस्तूर है कि अपनेको ही मनुष्य और श्रेष्ठ समझती है और भिन्न भाषा-भाषियोंको मनुष्येतर, बर्बर, पशु, राक्षस आदि कहती है। अपनी जाति और भाषाका प्रायः कोई विशेष नाम नहीं रखती। आर्य्यावर्त्तका अर्थ हुआ मनुष्योंका आवास और यहींसे मनुष्य जाति चारों ओर संसारमें फैली। इसीलिये यहांके मनुष्य आर्य्य कहलाये। इसी यौगिक अर्थसे लाक्षणिक और रूढ़ि अर्थ बने श्रेष्ठ, कुलीन, साधु, पूज्य, मान्य, उदारचरित, विद्वान्, मित्र, वैश्य और देशभक्त। इसके यौगिकार्थसे घुमक्कड़ जाति भले ही कह लें, परन्तु आर्य्यका अर्थ किसान हमारे साहित्यमें कहीं नहीं आया। लक्षणासे भी यह अर्थ नहीं बनता।

"आर्य्य" शब्दका एक और रूप "अर्य" है। महीधरके मतसे "अर्य्य" वैश्यको कहते हैं। इसमें भी कोई अनौचित्य नहीं दीखता क्योंकि वैश्योंको अनादि-कालसे श्रेष्ठ (सेठ), साधु (साहु), आदि सम्मान्य शब्दोंसे सम्बोधन करते आये हैं। वैश्योंके लिये लक्ष्यार्थमें "अर्य" या "आर्य्य"का प्रयोग श्रेष्ठादिके लिये और वाच्यार्थमें व्यापारके अर्थ गमनशील और फैलनेवालेके लिये समीचीन ही है।

जगत्के सर्वसम्मत प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेदमें "आर्य्य" और "दस्यु" उसी तरह जगह-जगहपर प्रयुक्त हुए हैं जैसे आज "सभ्य" और "असभ्य", "सज्जन" और "दुर्जन" शब्दोंका परस्पर विपरीत अर्थमें प्रयोग करते हैं। कुछ उदाहरण लीजिये—

विद्वान् वज्रिन् दस्यवे हेतिमस्यार्य्यं सहोवर्धया द्युम्नमिन्द्र (१।१०३।३)

हे वज्रिन्! हमारी प्रार्थना समझ दस्युओंपर अस्त्र छोड़ो और आर्य्योंका, हे इन्द्र, धन और बल बढ़ाओ।

"अभिदस्युं बकुरेणा धमन्तोरुज्योतिश्चक्रथुरार्याय। (१।११७।२१)

हे अश्विद्वय ! वज्रसे दस्युको मार आर्योंपर ज्योति डालो।

"हिरण्ययमुतभोगं समानहत्वी दस्यून् प्रार्य्यं वर्णमावत् (३।३८।९)

इन्द्रने हिरण्मय धन दिया और दस्यु मार आर्य्योंको बचा लिया।

यथादासान्यार्याणि वृत्राकरोवज्रिन्। (६।२२।१०)

साह्यामदासमार्यम् त्वयायुजासहस्कृतेन सहसा सहस्वता (१०।८३।१)

नवदशभिरस्तुवत् शूद्रार्यावसृज्येताम् (शु० यजुः १४।३०)

तयाहं सर्वं पश्यामि यश्चशूद्र उतार्य्यः। (अथ० ४।२०।४)

शूद्रार्य्यौ चर्म्मणि व्यायच्छेते। (ताण्ड्य० ५।५।१४)

उपर्य्युल्लिखित मन्त्रोंमें दास, दस्यु और शूद्र शब्दोंका प्रायः एक ही अर्थमें प्रयोग हुआ है। वेदकी अत्यन्त प्राचीन भाषाका आज ठीक-ठीक वही अर्थ कर सकनेका, जिसमें वह प्रयुक्त हुआ है, कोई दावा नहीं कर सकता। अनुमान यही होता है कि जैसे आर्य्यका लक्ष्यार्थ श्रेष्ठ बन गया उसी तरह दास आदिका निकृष्ट, दुराचारी, असाधु उसी समय बन गया होगा। ऋग्वेदका यह मन्त्र—

अकर्मादस्युः अमिनो अमन्तु अन्यव्रतो अमानुषः।
त्वं तस्य अमित्र हन व धोदासस्य दम्भये॥

दस्युको कर्म्महीन, मननहीन, विरुद्धव्रती, और मनुष्यतासे भी हीन बतलाकर वध करनेका आदेश देता है, और "दास" और "दस्यु" दोनोंको अभिन्नार्थी सूचित करता है। दासका अर्थ यदि आजकलकी तरह सेवक होता तो वध करनेका आदेश न होता। यौगिकार्थसे दस्युका और दासका दोनोंका धात्वर्थ (दस् = उपक्षये) नाश करनेवाला होता है, और शूद्रका शोक पैदा करनेवाला होता है। उपर्य्युल्लिखित मन्त्रोंमें इस यौगिकार्थकी पुष्टि होती है। श्रुतिमें आर्य्य और शूद्रका चमड़ेके बारेमें झगड़ा भी इसी भावका पोषक है। वृत्र, शम्बर और नमुचि नामके असुरोंको भी जगह-जगह दास और दस्यु कहा है। वैदिक दास, दस्यु और असुर पर्य्यायवाची शब्द प्रतीत होते हैं। असुर जातिके सम्बन्धमें छान्दोग्य उपनिषत्में लिखा है कि "आज भी जो मनुष्य श्रद्धा, यज्ञ और दानसे रहित हैं वे असुरधर्म्मा हैं। असुरोंका यही सनातनधर्म्म है। वे अपने शवोंको अर्थ, वस्त्र और अलङ्कारोंसे सजाते हैं। वह समझते हैं कि ऐसा करनेसे इस लोकका पुरुषार्थ सिद्ध होता है।" भारतकी अनेक असभ्य और जङ्गली जातियों और म्लेच्छोंमें आज भी यह प्रथा है।

ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है "तुम्हारे वंशधर भ्रष्ट होंगे। यही अन्ध्र, पुण्ड्र, शवर, पुलिन्द, आदि उत्तर दिक् वासी अनेक जातियाँ हैं" दस्युकी उत्पत्ति विश्वामित्रसे बतलायी है।

कुल्लूकने मनुकी टीकामें कहा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातिमें जो क्रियाहीनताके कारण जातिच्युत हुए हैं, चाहे वे म्लेच्छभाषी हों चाहे आर्य्यभाषी हों, सभी दस्यु कहलाते हैं।

दस्यु शब्दके प्रयोगके अनुशीलनसे ऐसा जान पड़ता है कि वैदिक युगमें पहले तो आर्य्य शब्द मनुष्य मात्रके लिये प्रयुक्त था और ईश्वरके पुत्र तथा मनुके पुत्रका नाम आर्य्य

इसी सङ्गतिसे हुआ। फिर धीरे-धीरे आर्य्य, देव आदि शब्द अच्छोंके लिये और अनार्य्य, असुर, दस्यु, दास आदि शब्द बुरोंके लिये चल पड़ा। फिर अर्थका अधिक विकास हुआ और दैवी सम्पत्तिवाले देव, आर्य्य और आसुरी सम्पत्तिवाले दस्यु, दास, अनार्य्य आदि कहलाये। ये चारों वर्णोंके लोगोंमें होते थे। कुल्लूकने जैसा लिखा है, ये क्रियाहीन हो जानेसे जातिच्युत हो जाते थे। इसी पतित दशामें इनकी वंशपरम्परा चली तो संस्कारहीनोंकी जाति ही अलग चल पड़ी। इसीसे ये अवर्ण हो गये। इनके गाँव अलग बस गये अथवा ये जङ्गलोंमें रहकर जङ्गली हो गये। आज भी कहावत है "यदि वाञ्छसि मूर्खत्वं ग्रामे वस दिनत्रयम्" जब मूर्खताके लिये तीन दिनका ग्रामवास काफी है तो जङ्गल या गावोंमें अलग रहना और सुसंस्कृतोंसे सम्पर्कहीन हो जाना वंशके पतनका निश्चित कारण है। भारतके ये जङ्गली और तथोक्त आदि निवासी इसी पतनसे म्लेच्छ बन गये हैं, यह हमारे हिन्दू साहित्यमें स्पष्ट रूपसे अनेक स्थलोंमें कहा गया है। आज भी जरायमपेशा जातियोंमें अनेक ब्राह्मण और राजपूत शामिल हैं जो सभ्य-समाजसे अलग रक्खे जानेके कारण एक ही दो पीढ़ियोंमें जङ्गली हो गये हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देशमें सभ्यों और जङ्गलियोंमें जो भारी अन्तर है, इसलिये नहीं हैं कि जङ्गली मूलनिवासी हैं और आर्य्यजाति बाहरसे आयी है, बल्कि इसलिये है कि जङ्गली जातियाँ वह पतित जातियाँ हैं जो संस्कार और सभ्यताका सम्पर्क एक युगसे खो बैठी हैं।

यह वर्त्तमान-कालके उदाहरणसे ही अनुमान किया जाता हो, सो बात नहीं है। पुराणोंमें अनेक स्थलोंपर पतित जातियों और इस प्रकारके दस्युओं और चाण्डालादिकोंका वर्णन है। महाभारतमें सभापर्वमें ईशानकोणके दरदों, काम्बोजों आदि दस्युओंकी बस्तियोंकी चर्चा है। शान्तिपर्वमें [अ० १६८] तो भीष्मने यह कथा कही है कि "एक कुलीन ब्राह्मण भिक्षाकी आशासे एक समृद्ध किन्तु ब्राह्मणहीन गाँवमें घुसा और सब वर्णोंका सम्मान करनेवाला धर्म्मात्मा, सत्यवादी, और दानी धनवान् दस्युके यहाँ ठहर गया। धीरे-धीरे गौतम नामका वह ब्राह्मण भी दस्युकी तरह हो गया और मजेमें रहने लगा। इसी बीच एक ब्राह्मणने आकर उससे कहा 'तुम मोहान्ध होकर क्या कर रहे हो? उत्तम मध्यदेशीय ब्राह्मण शरीरमें तुम्हारा जन्म है। किस प्रकार तुमने इस दस्यु भावको ग्रहण किया?'

इस कथासे स्पष्ट होता है कि पतित अनार्य्य जातियाँ महाभारत-कालमें भी मुद्दतसे अलग बस्तियोंमें रहती थीं। उनका सम्पर्क आर्य्य जातियोंसे अर्थात् सवर्णोंसे वर्जित था। उनमें जाकर बस जानेवाला भी पतित हो जाता था, "म्लेच्छ" हो जाता था। मनुने सारे संसारकी म्लेच्छ जातियोंकी ऐसी ही परिभाषा की है।

इन पतितोंके कर्त्तव्योंका भी हमारी स्मृतियोंने निर्धारण कर दिया है। महाभारत शान्तिपर्वके ६५वें अध्यायमें दी हुई कथामें मान्धाताने इन्द्रसे पूछा है कि यवन, किरात, गान्धार, चीन, शबर, बर्बर, शक, तुषार, कङ्क, पह्लव, अन्ध्र, मद्र, पौण्ड्र, पुलिन्द, रमठ और काम्बोज तथा ब्राह्मण क्षत्रियोंसे उत्पन्न सब इतर जाति, वैश्य और शूद्र लोग राज्यमें रहनेवाले किस प्रकार धर्म्माचरण करेंगे और मेरे समान मनुष्य किस प्रकार दस्युओंका पेशा करनेवालोंको धर्म्ममें स्थापित करेंगे?"

इसका उत्तर इन्द्र यों देते हैं कि सब दस्युओंको माता-पिता आचार्य्य आश्रमवासी और राजाओंकी सेवा करनी उचित है। वेदमें कहे हुए कर्म्म धर्म्म और श्राद्धादि पितृयज्ञ दस्युका भी कर्त्तव्य है। वे लोग भी यथासमय द्विजोंको कुआं, प्याऊ, सेज और दूसरी वस्तुओंका दान करें। दस्युओंको सदा अहिंसा, सत्य, क्षमा, पवित्रता, अक्रोध, और हिस्सेमें मिली हुई वृत्तिका पालन, स्त्री-पुत्रोंका भरणपोषण आदि धर्म्मोंका आचरण उचित है। ऐश्वर्य्य चाहनेवाले दस्युओंको यज्ञ करना, और दान देना भी कर्त्तव्य है। बारम्बार दस्यु वृत्तिकी चर्चा करनेसे और यूनानी, ईरानी (पह्लव = पहलवी). चीनी, शक, कम्बो, आन्ध्र, बर्बर आदि जातियोंको दस्युओंमें गिनानेसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि दस्यु उन्हीं जातियोंका नाम था जो आर्य्य-संस्कृति, वर्णाश्रम धर्म्म संस्कारसे रहित थे और अपनी जीविका चलानेमें आर्य्य स्मृतियोंका अनुसरण नहीं करते थे। आर्य्य वर्णाश्रमधर्म्म दुनियाँमें लेन-देनके उस बुनियादपर ठहरा हुआ था जिसे गीतामें यों बतलाया है—

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वम् एष वोस्त्विष्ट काम धुक्॥
देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तुवः।
परस्परम् भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥
इष्टान् भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्द्त्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥

आर्य्य-संस्कार सभी यज्ञमय हैं। जो संस्कार-रहित हैं, वह यज्ञरहित हैं, अतः बिना दिये भोगते हैं, अतः स्तेन हैं, चोर हैं, डाकू हैं, दस्यु हैं। यह हमारा प्राचीन समाज-वाद है। हमारे शास्त्रोंमें दस्यु शब्दका व्यवहार इस उदार वाच्यार्थमें हुआ है। नहीं तो, सारी यवन जाति, चीन जाति, ईरानी जाति डाकू नहीं हो सकती, और न डाकुओंका धर्म्म वेदानुकूल अहिंसा, सत्य, यज्ञ, दान आदि कहा जाता।

४—मानव-सृष्टिकी जन्मभूमि

हिन्दू-सभ्यताकी धारणा यह है कि मानवजाति आर्य्यावर्त्तमें उत्पन्न हुई, यहींसे संसारभरमें फैली, ब्राह्मणोंके अदर्शनसे (अर्थात् वैदिक संस्कार करानेवालोंके न मिलनेसे, लोप होनेसे), संस्कार भ्रष्ट हो गयी। अतः म्लेच्छ हो गयी। यही म्लेच्छ जातियाँ हजारों बरसतक जङ्गली रहीं, अधिकांश दस्युता (डाकेजनी) करती रहीं। फिर धीरे-धीरे स्वाभाविक रीतिसे इनका विकास हुआ। भारतेतर देशोंकी, विशेषतः पच्छाहँकी मानवजातिकी यही कहानी है। इसी कारण वे अपनेको आज भी आर्य्य कहते हैं। आज भी उनकी भाषा संस्कृतसे मिलती जुलती है। आज भी वह अपनेको अन्य किसी देशसे आया हुआ मानते हैं। परन्तु वे अपनी प्राचीन जन्मभूमिको भूल गये हैं। कारण यह है कि उससे निकलकर वे पहले उसकी सीमाके पासके देशोंमें बड़ी मुद्दततक रहकर तब संसारमें फैले हैं। इसीलिये इन देशोंको वे अपनी जन्मभूमि उसी तरह मानते हैं जिस तरह गिनतीकी जन्मभूमि वे पहले अरबको मानते थे। जङ्गली अवस्थासे उन्होंने अपनेको उन्नत किया। बाबुल, मिस्र,

यूनान, रोमक आदिमें उन्होंने अपनी सभ्यता बहुत विकसित की। भारतसे उनका विचार-विनिमय भी होता रहा। उनकी आसुरी सभ्यता, और अधिक पच्छिम, और अधिक उत्तर और सुदूर ईशानमें भी बढ़ी। फिर उनका समय गया। धीरे-धीरे वर्त्तमान युरोप और अमेरिकाके दिन आये। विकासकी गाड़ी तेज होकर कार और वायुयानसे भी आगे बढ़ी। विकासकी यही कहानी है। वर्त्तमान सभ्यता इसी विकासका परिणाम है। पिछले बारह बरसोंके बीच शिवालिक पहाड़ोंमें खुदाईसे जो प्राचीन अस्थिपञ्जर मिले हैं उनसे वैज्ञानिक दृष्टिसे भी भारतके ही मानव-सृष्टिकी जन्मभूमि सिद्ध होनेकी भारी सम्भावना दीखती है।

५—आर्य्यावर्त्त और सप्तसिन्धु

जिस दीर्घकालके इतिहास और भूगोलपर हम विचार कर रहे हैं, उतनी अवधिमें भूतलपर इतने उथल-पुथल हुए हैं कि किसी देशकी सीमा-निर्धारणमें कोई निश्चित बात नहीं कही जा सकती। मनुस्मृति रचनाके समय, कमसे कम, आर्य्यावर्त्तके पूरब और पश्चिमकी सीमा समुद्र थी और दक्षिण और उत्तरमें पर्वतमाला थी। पर्वतमालाओंका नाम विन्ध्य और हिमालयसे यह कहना कठिन है कि इन मालाओंकी सीमा कहाँतक थी। प्रसङ्गसे तो यह स्पष्ट है कि दोनों पर्वतमालाएँ दोनों समुद्रोंमें समाप्त होती थीं। यदि भूतलके वर्त्तमान नकशेपर ध्यान देते हैं, तो आर्य्यावर्त्तका अर्थ होता है हिमालय पर्वतमालाके दक्षिणका वह सम्पूर्ण भाग जिसमें अनाम, स्याम, बर्म्मा, आसाम, बङ्गाल, बिहार, हिन्द, पञ्जाब, सिंध, बलूचिस्तान, अफगानिस्तान और ईरान शामिल हैं। परन्तु आर्य्यावर्त्तके किसी प्राचीन वर्णनमें आसामसे अधिक पूरबकी कोई चर्चा नहीं है। वेदोंमें जिन नदियोंका वर्णन है, उनमें सात नदियाँ ईरान और अफगानिस्तानकी, सात नदियाँ पञ्जाबकी, और सात नदियाँ हिन्द प्रान्तकी हैं। इन सात-सात नदियोंके समूहका नाम वेदोंमें सप्तसिन्धु है। पूरबी सप्तसिन्धुमें गङ्गा जमुना आदि सात नदियाँ थीं। अतः जहाँ गङ्गा समुद्रमें मिलती थी वही पूर्वमें समुद्री सीमा हुई। परन्तु आज तो दक्षिण बङ्गके बालूसे पटते-पटते समुद्र दूर चला गया है। यह बात पुरातत्त्ववादी और भूगर्भशास्त्री भी मानते हैं कि किसी समय हिमालयका दक्षिण अञ्चल ही बङ्ग था। उसके दक्षिणमें समुद्र था। अर्थात् आर्य्यावर्त्तकी पूर्वी सीमावाला समुद्र हिमाचल और विन्ध्याचलके पूर्वीय अञ्चलोंको स्पर्श करता था। मनुके आर्य्यावर्त्तकी पूर्वी सीमावाला समुद्र सम्भवत. वहीं था जहाँ आज ईशान कोणसे महानद ब्रह्मपुत्र आकर उत्तर-दक्खिन बहता है और पश्चिमसे जानेवाली गङ्गाकी अनेक शाखाएँ निकलकर मध्य बङ्गालको सींचती हैं, जहाँ बोगरा, पबना, फरीदपुर, चौबीस परगना, हबड़ा आदि जिले बसे हुए हैं। इस तरह बङ्गालेकी खाड़ी कभी हिमाचलतक उत्तर चली गयी थी।

पश्चिममें ईरानकी खाड़ी ही समुद्री सीमा मालूम होती है। ईरानी सरस्वती और सरयू आदिके सप्तसिन्धु पश्चिममें, गङ्गा सदानीरा आदिके सप्तसिन्धु पूरबमें और वितस्ता सिन्धु आदि सप्तसिन्धु मध्यमें, इस तरह आर्य्यावर्त्तके अन्तर्गत तीन सप्तसिन्धु थे। मोहन-जोदड़ो और हरप्पाकी खुदाई मध्यवर्त्ती सप्तसिन्धुके भीतर ही हुई है। हम कह चुके हैं कि

पुरातत्त्वदर्शियोंमें उसके सम्बन्धमें कई तरहकी धारणाएँ हैं, उनमें सबसे पुष्ट वह धारणा समझी जाती है जिसमें सिन्ध देशको ही सात हजार बरस पहलेके तथोक्त सुमेरियन सभ्यताका मूल उद्गम माना गया है।

सप्तसिन्धुओंका चाहे और कोई महत्त्व क्यों न हो, इतना तो सर्ववादि सम्मत है कि सिन्ध-प्रदेश सिन्धु नदीके ही नामसे बना और सप्तसिन्धुमय होनेसे ही मध्यवर्ती सप्तसिन्धुका सारा देश सिन्ध या हिन्द कहलाया और उसके रहनेवाले हिन्दू कहलाये। वर्त्तमान सिन्ध देश तो वह सङ्कुचित प्रदेश है जहाँ सिन्धु महानदकी अन्तिम धारा, शेष छहोंको आत्मसात् करके, समुद्रमें जाकर मिलती है।

आर्य्यावर्त्त भी आज बहुत सङ्कुचित हो गया है। अब आर्य्यावर्त्त केवल उत्तर भारतका नाम है जिसके पूरब पश्चिम समुद्र नहीं है। और सप्तसिन्धु पञ्चनद रह गया है, क्योंकि दो नदियाँ अफगानिस्तानकी सीमाके भीतर हैं।

६—वर्णोंकी उत्पत्ति

पुरुषसूक्तमें विराट् पुरुषका मुख ब्राह्मण, बाहू क्षत्रिय, ऊरू वैश्य और पावँ शूद्र कहे गये हैं। शतपथ ब्राह्मणमें (२।१।४।१२) लिखा है कि प्रजापतिने भूःसे ब्राह्मण भुवःसे क्षत्रिय, स्वःसे वैश्यको जन्माया। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें (३।१२।३।९) लिखा है कि यह सब कुछ ब्रह्मद्वारा सृजा गया। कहते हैं कि ऋक्‌से वैश्यवर्ण, यजुःसे क्षत्रिय और सामसे ब्राह्मण हुए हैं। हम अन्यत्र कह आये हैं कि "अर्य" या "आर्य्य" अनादि कालसे "विश" वा "मनुष्य" कहे जाते थे। इसका कारण यह भी हो सकता है कि वैश्य वा किसान और व्यापारीकी सङ्ख्या आबादीमें अत्यधिक थी। परन्तु कार्य्यानुरोधसे वर्णभेद होकर, दिमागी काम करनेवाले शिक्षकादि ब्राह्मण, शारीरिक बलसे रक्षकका काम करनेवाले क्षत्रिय और शुद्ध सेवा वा परिचर्य्याका काम करनेवाले शूद्र हुए। यास्कके निरुक्तसे सिद्ध होता है कि ऊरु या मध्य स्थान पृथ्वीको कहते हैं, इसीलिये अथर्ववेदमें कहा है कि भूमि जोतनेके लिये वैश्यकी सृष्टि है।

हिन्दू-साहित्यमें जगह-जगह वर्ण-विभाग सचराचर सृष्टिमें दिखाया है। देवयोनिमें, वनस्पतियोंमें, खनिजोंमें भी वर्ण-विभाग है। अतः वर्ण-विभाग हिन्दू-साहित्यके अनुसार प्रकृतिसे ही हुआ है। समाजके लोगोंने कभी अपने निश्चयसे यह नहीं ठहराया कि अमुकामुक लोग ब्राह्मण होंगे, अमुकामुक क्षत्रिय इत्यादि।

मानव-सृष्टिके सम्बन्धमें पद्मपुराणमें स्वर्गखण्डमें लिखा है कि "प्रजा सृष्टिके प्रारम्भमें ही प्रजापतिने ब्राह्मणकी सृष्टि की। ये ब्राह्मण आत्मतेजसे अग्नि और सूर्य्यकी तरह उद्दीप्त हो उठे। इसके बाद सत्य, धर्म्म, तप, ब्रह्मपदार्थ, आचार और शौच आदि ब्रह्मासे उत्पन्न हुए। इन सबके बाद देव, दानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, महोरग, यक्ष, रक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच, और मनुष्यकी सृष्टि हुई। अनन्तर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंकी सृष्टि हुई। ब्राह्मण श्वेत, क्षत्रिय लाल, वैश्य पीले और शूद्र काले हुए।" इस प्रसङ्गमें पहले ब्राह्मणोंकी सृष्टि बताकर पीछे चारों वर्णोंके साथ ब्राह्मणकी फिरसे सृष्टि बतलायी गयी है।

यहाँ पहला ब्राह्मण शब्द देवयोनिवाले "ऋषियों"के लिये है जो मनुष्ययोनिके नहीं हैं। दूसरा ब्राह्मण शब्द मनुष्ययोनिके लिये है। देवयोनिसे सादृश्य रखनेके कारण मनुष्य ब्राह्मण भूदेव भी कहलाये।

आगे चलकर इसी प्रसङ्गमें यह स्पष्ट लिखा है कि पहले मनुष्योंमें ब्राह्मण जातिकी ही सृष्टि हुई। कुछ काल पीछे कर्म्मानुसार इन्हीं ब्राह्मणोंके वंशज चारों वर्णोंमें बँट गये। अब प्रत्येक वर्णके कर्म्मानुगत वंशोंके कर्म्म वंशानुगत बन गये और कर्म्मके "वरण"से वर्ण नहीं रहा, प्रत्युत् वंशानुगत कर्म्मसे ब्राह्मणादि चारों जातियाँ बनीं। संसारमें आज भी चार रङ्गके मनुष्य पाये जाते हैं। भारत, ईरान, अधिकांश यूरोप अमेरिका आदिमें बसे गोरे रङ्गके, प्राचीन अमेरिकावासी लाल रङ्गके, चीनी जापानी पीले रङ्गके, और हबशी अफ्रिकावाले काले रङ्गके मनुष्य वर्त्तमान कालमें मौजूद हैं। यह मानव-जातिका विस्तृत विभाग है। परन्तु प्रत्येक रङ्गकी जातिमें इन चारों रङ्गोंकी कमी-बेशी पायी जाती है। यही हाल हमारे देशमें है। गोरे, लाल, पीले, काले सभी तरहके मनुष्य पाये जाते हैं।

इन चारों वर्णोंके अपने-अपने कर्त्तव्य अलग-अलग हैं और सब मनुष्योंको आरम्भमें अपने-अपने धर्म्म केवल मालूम ही नहीं थे वरन् नैसर्गिक बुद्धिसे सभी अपने-अपने धर्म्मोंका बहुत कालतक पालन भी करते रहे। अपने-अपने कर्म्म लोग इस ढङ्गपर सृष्टिके आरम्भसे करते रहे कि उन्हें न तो राज्यशासनकी आवश्यकता थी, न दण्डकी, न दण्ड देनेवालेकी। महाभारतके शान्तिपर्वमें लिखा है कि ऐसी शुद्ध सात्त्विक शान्त अवस्था जब बहुत दीर्घ कालतक बनी रही तो लोग थक गये और चिरशान्त अवस्थासे ऊबकर लोगोंने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरका आश्रय लिया। बलवान् निर्बलको सताने लगे, और निर्बलोंसे छीन-छीनकर अपनी जरूरतसे ज्यादा सम्पत्तिके मालिक बन बैठे। अन्याय फैल गया और भलेमानसोंको पीड़ा होने लगी। सज्जनोंने दुर्जनोंसे असहयोग किया। फिर भी जब सफल न हुए तब प्रजापतिकी शरण गये। इसपर ब्रह्माने बहुत व्यापक दण्डनीतिका निर्म्माण किया, जिसका अधिक विवरण हम पिछले पृ० ४७८–४८०पर दे चुके हैं। इसी दण्डनीतिके आधारपर संसारमें राज्य-शासन और समाज-शासन चला। इस प्रकार विधाताने केवल वर्णाश्रमकी ही रचना नहीं की, वरन् उसके धर्म्म भी निश्चित करके विस्तार समेत अपनी सृष्टिको बताये। शासनके लिये इस तरह कानून बनानेवाली धर्म्मसभाकी आवश्यकता ब्रह्माजीने नहीं छोड़ी।

७—वर्णाश्रम-धर्म्म

वर्णाश्रम-धर्म्म आर्य्य-संस्कृतिकी विशेषता है और श्रुतियोंमें वर्णों और आश्रमोंकी स्पष्ट व्यवस्था है। स्मृतियाँ तो उनके सर्वाङ्ग नियमनकी पुस्तकें ही हैं और पुराणोंमें भी, जो कोष ग्रन्थ हैं, उनका विस्तारसे वर्णन है। वर्णाश्रम-विभाग मनुष्यमात्रके लिये है जैसा हम दिखा चुके हैं। जो जातियाँ वर्णाश्रम-संस्कारसे बाहर हैं, दस्यु कहलाती हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विज कहलाते हैं। कोई वर्ण-धर्म्मी द्विज एक क्षण भी अनाश्रमी नहीं रह सकता। वर्ण और आश्रमका अटूट सम्बन्ध है।

"अनाश्रमी न तिष्ठेत्तु क्षणमात्रमपि द्विजः।
आश्रमेण विना तिष्ठन् प्रायश्चित्तीयतेत्वसौ॥ (दक्ष)

स्मृतियोंमें कुछ धर्म्म मनुष्य-मात्रके लिये समान हैं। जैसे, अहिंसा, सत्य, क्षमा, दान, दया, धृति, अस्तेय, दम, शौच, आश्रितोंका पालन-पोषण और रक्षा, विवाह करके ऋतुकालमें अपनी पत्नीसे सहवास, आवश्यक ब्रह्मचर्य्य, मङ्गलचेष्टा, प्रियभाषण, अकार्पण्य, अनसूया, इन्द्रिय-निग्रह, काम-क्रोध-लोभादि विकारोंपर अङ्कुश, विद्या, भगवदुपासना और बुद्धिका विकास, आदि। पतित, म्लेच्छ अथवा दस्यु जातियोंके द्वारा भी ये समान धर्म्म सर्वथा पालनीय हैं।

वर्णाश्रमोंके विशिष्ट धर्म्म गृह्यसूत्रोंमें, स्मृतियोंमें, पुराणोंमें, तन्त्रोंमें और महाभारतमें भी प्रसङ्गानुसार जहाँ-तहाँ विस्तारसे बतलाये गये हैं।

मनुके अनुसार ब्राह्मणके छः कर्म्म हैं—अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह। क्षत्रियके कर्म्म हैं प्रजापालन, दान, यज्ञानुष्ठान, अध्ययन तथा भोग विलाससे अनासक्ति। वैश्यके कर्म्म हैं पशुपालन, दान, यज्ञानुष्ठान, अध्ययन, वाणिज्य, कुसीद (महाजनी), और खेती। शूद्रका कर्म्म है अनसूयापूर्वक सब वर्णोंकी सेवा।

ब्रह्मचर्य्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास, ये चारों आश्रम ब्राह्मणोंके लिये विहित हैं। उपनयनके बाद जितेन्द्रिय हो गुरुगृहमें वास और साङ्गवेदका अध्ययन, यह ब्रह्मचर्य्याश्रम है। वेदाध्ययनसे छुट्टी पाकर विवाह करनेके बाद अपने धर्म्मानुकूल आचरण करते हुए जीविका-सम्पादन, सन्तानोत्पत्ति, परिवार-पालन, आदि करना गृहस्थाश्रम है। सन्तान हो जानेपर बनमें रहना, गिरे हुए फलादिपर गुजर करना, तथा ईश्वराराधन यह है वानप्रस्थाश्रम। फिर गृहादि सभी वस्तुओंका परित्याग कर मुण्डितसिर, गैरिक कौपीन बांधकर दण्ड कमण्डलु लेकर भिक्षाटन करना, वन-तीर्थादिमें रहना और ईश्वराराधन, यह संन्यासाश्रम है।

क्षत्रियों और वैश्योंके लिये संन्यासाश्रम छोड़कर शेष तीनों आश्रम विहित हैं। शूद्रके लिये एक गृहस्थाश्रम ही विहित है।

जीविकाके लिये ब्राह्मण याजकी और अध्यापकी करें और उसीसे आवश्यकताके अनुसार प्रतिग्रह करें जिसने विहित उपायोंसे ही धन पैदा किया हो। ब्राह्मण प्राणिमात्रके उपकारमें रत रहे, किसीका किसी तरहका अहित न करे। ब्राह्मण ऋतुकालमें ही पत्नीगमन करे, पराये ढेले और कञ्चनको समान जाने और सब भूतोंसे दया और मैत्रीका बरताव करे।

उपनीत होकर ब्रह्मचारी एकाग्र मनसे गुरुके घर रहे, वेदाभ्यास करे और शौचाचारपूर्वक गुरुकी सेवा करे। दोनों सन्ध्याओंमें सुसमाहित हो अग्नि और सूर्य्यकी उपासना एवं गुरुको अभिवादन करे। गुरु खड़े हों तो खड़ा रहे, बैठें तो नीचे आसनपर बैठ जाय। गुरुके प्रतिकूल आचरण न करे। गुरुके आदेशसे उनकी ओर बैठकर अनन्य चित्तसे वेद पढ़े और आज्ञा लेकर ही भिक्षान्न भक्षण करे। आचार्य्यके पीछे स्नान करे। समिधा जल आदि जरूरी सामग्री नित्य सवेरे लाया करे। पढ़ना समाप्त होनेपर गुरुकी आज्ञासे गुरुदक्षिणा देकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे।

गृहस्थको चाहिये कि श्राद्धादिद्वारा पितरोंको, यागादिद्वारा देवोंको, अर्थदानादिद्वारा

अतिथियोंको, स्वाध्यायद्वारा ऋषियोंको, अपत्यादिद्वारा प्रजापतिको, बलिद्वारा भूतादिको, तथा वात्सल्यद्वारा जगत्को आप्यायित करे। भिक्षाभोगी, परिव्राजक तथा ब्रह्मचारी सबकी प्रतिष्ठा गार्हस्थ्य धर्म्ममें है। अतः गृहस्थ सर्वप्रधान है। ब्राह्मणको वेदाध्ययन, तीर्थाटन और पृथ्वीदर्शनके लिये समस्त पृथ्वीका पर्य्यटन करना चाहिये। जिनका गृहसंस्थान नहीं है, जो सायंगृह है, पर्य्यटक है, उसके लिये गृहस्थ ही अवलम्बन है। गृहस्थ उनका स्वागत करे, मधुर वचन बोले, आसन, पान, भोजन, शयनादिसे उन्हें आप्यायित करे। अवज्ञा, अहङ्कार, दम्भ, परिताप, उपघात और पारुष्यसे बचे।

अधेड़ हो जानेपर, गृहधर्म्म पूरा कर लेनेपर पुत्रादिके योग्य हो जानेपर, अपनी भार्य्याका भार उनपर छोड़ अथवा उसे अपने साथ लेकर, वन-गमन करे। मूँछ दाढ़ी और जटा धारण करे, फलमूलादि आहार और भूतलपर ही शयन करे, वनमें ही कुटिया बना ले। वानप्रस्थाश्रम यही है। आश्रममें आये हुए अतिथिका पूर्ण सत्कार करे। कृष्णाजिन कुशकाश-से अपना परिधान और उत्तरीय बनावे। त्रिकाल स्नान-सन्ध्या, देवार्चा, होम, अतिथिपूजा, भिक्षा, और बलि ये वानप्रस्थ आश्रमके प्रशस्त कर्म्म हैं। तपस्या और तितिक्षा ये दो वान-प्रस्थके प्रधान गुण हैं।

संन्यासाश्रम चौथा है। समस्त मात्सर्य्यका त्याग कर, प्रियजनों, परिजनों और समस्त सम्पत्तिकी ममता माया छोड़कर, वैराग्य ग्रहण करे। भूतमात्रसे मैत्री करे, मन वचन और कर्म्मसे किसी प्राणीका अनिष्ट न करे, पांच रातसे अधिक किसी बस्तीमें न ठहरे। जब गृहस्थके चूल्हे बुझ चुकें, सब खा पी लें उसी समय उच्च वर्णके घर शरीर-यात्रार्थ भिक्षाके लिये जाय, षड्विकारको छोड़ निर्म्मम और निःस्पृह होकर सर्वत्र विचरे।

क्षत्रिय ब्राह्मणोंको अपनी इच्छाके अनुसार दान दें, विविध यज्ञानुष्ठान तथा अध्ययन करें, शस्त्रद्वारा पृथ्वीकी रक्षा करें, और इसी रक्षाद्वारा अपनी जीविकाका उपार्जन करें। पृथ्वीकी रक्षा, राज्यकी रक्षा, प्रजाकी रक्षा, बलहीनकी रक्षा, शान्तिकी स्थापना, दुष्टोंका शासन, शिष्टोंका पालन उनका मुख्य धर्म्म है।

पशुपालन वाणिज्य और खेतीके सिवा अध्ययन, नित्य नैमित्तिकादि कर्म्मानुष्ठान, यज्ञ और दान वैश्योंके कर्त्तव्य हैं। कुसीद और कारीगरी भी वैश्यकी जीविकाके उपाय हैं। इन साधनोंसे उपार्जित धनसे दान करना भी वैश्यका कर्त्तव्य है।

जीविकाका प्रश्न गृहस्थाश्रमका है, वह प्रत्येक वर्णका अलग-अलग है। परन्तु और आश्रमोंके धर्म्म जो वर्णन किये जा चुके हैं सबके लिये समान हैं।

शूद्र भी दान करे तथा पाकयज्ञद्वारा पितृपुरुष आदिकी अर्चना करे। सेवा ही उसकी जीविकाका उपाय है।

वर्ण-विभाग आरम्भमें कर्म्मणा ही हुआ। फिर बहुत कालतक वंशानुगत एक ही वर्णके कर्म्मोंकी पाबन्दी बने रहनेसे वर्ण-विभाग जन्मना और कर्म्मणा दोनों हो गया। वर्णाश्रम-व्यवस्था कृतयुगमें इसी आदर्शपर एक दीर्घ कालतक चलती रही। शान्तिपर्वके वर्णनसे जान पड़ता है कि प्रजा समाजके इस आदर्श शासनसे ऊब गयी। महाभारतमें ही अन्यत्र नहुष और युधिष्ठिर-संवादमें युधिष्ठिरने सर्पसे स्पष्ट कहा है कि सङ्करताके कारण अब तो जाति

केवल मनुष्यकी ही रह गयी है, सब लोग जन्मसङ्कर और कर्म्मसङ्कर हो गये हैं। और भविष्यपुराणमें तो बड़े जोरदार शब्दोंमें जन्मना-वर्णःका खण्डन किया गया है और कर्म्मणा वर्णः-का जबरदस्त प्रतिपादन है, जैसा कि आज आर्य्यसमाज मानता है।

स्मृतियोंके सिवा नरसिंहपुराणके ५९वें अध्यायमें, मार्कण्डेयपुराणके मदालसा उपाख्यानमें, कूर्म्मपुराणके दूसरे-तीसरे अध्यायमें, पद्मपुराणके स्वर्गखण्डके २५-२७ अध्यायोंमें, वामनपुराणके १४वें तथा गरुड़पुराणके ४९वें अध्यायमें चतुर्वर्णका विस्तृत विवरण दिया हुआ है।

८—वर्णाश्रम विभागका उद्देश्य

ब्रह्माने प्रजाकी सृष्टि की। मनुष्योंके चारों वर्ण उपजाये। उनसे जो देश-विभाग बसा उसका नाम "राष्ट्र" हुआ। "प्रजा"का अर्थ है "सन्तान"। मनुष्योंका जो समाज उपजाया गया उसका नाम "प्रजा" ठीक ही पड़ा। उसका यथाविधि सङ्गठन पालन और वृद्धि करनेवाले "प्रजापति" कहलाये। प्रजापति शासक नहीं हैं। वह वस्तुतः प्रजापरिवारके स्वामी पिता हैं। जैसे ब्रह्मादि त्रिमूर्त्तिका काम जारी है वैसे ही प्रजापति और देवता आदिके काम चल रहे हैं। मानव-समूहकी जितनी आवश्यकताएँ थीं उनके विचारसे विधाताने सतयुगमें उनके चार बड़े विभाग किये। शिक्षाकी पहली आवश्यकता थी। इसीलिये सबसे पहले,—देव, दानव, यक्षादिसे भी पहले,—बड़े तेजस्वी प्रतिभाशाली सर्वदर्शी ब्राह्मणोंकी सृष्टि की और इसी आर्य्यावर्त्त देशमें की। इन्हीं ब्राह्मणोंसे, अग्रजोंसे इनके पीछे पैदा होनेवाले सारी पृथ्वीके लोगोंने सब कुछ सीखा। राष्ट्रकी रक्षा, प्रजाकी रक्षा, व्यक्तिकी रक्षा दूसरी आवश्यकता थी। इस काममें कुशल, बाहुबलको विवेकसे काममें लानेवाले, क्षत्रिय हुए। शिक्षा और रक्षासे भी अधिक आवश्यक वस्तु थी जीविका। अन्नके बिना प्राणी जी नहीं सकता था। पशुओंके बिना खेती हो नहीं सकती थी। वस्तुओंकी अदला-बदली बिना सबको सब चीजें मिल नहीं सकती थीं। चारों वर्णोंको अन्न, दूध, घी, कपड़े-लत्ते, आदि सभी वस्तुएँ चाहियें। इन वस्तुओं-को उपजाना, तैयार करना, फिर जिसकी जिसे जरूरत हो उसके पास पहुँचाना, यह सारा काम प्रजाके एक बड़े समुदायको करना ही चाहिये। इसके लिये वैश्योंका वर्ण हुआ। यह बहुत बड़ा समुदाय होना ही चाहिये था। किसान, व्यापारी, ग्वाले, कारीगर, दूकानदार, बनजारे ये सभी वैश्य हुए। शिक्षकको, रक्षकको, वैश्यको, छोटे-मोटे कामोंमें सहायक और सेवककी जरूरत थी। धावक और हरकारेकी, हरवाहेकी, पालकी ढोनेवालेकी, पशु चरानेवालेकी, लकड़ी काटनेवालेकी, पानी भरनेवालेकी, बासन माँजनेवालेकी, कपड़े धोनेवालेकी जरूरत थी। यह जरूरतें शूद्रोंने पूरी कीं। इस तरह प्रजा-समुदायकी सारी आवश्यकताएँ प्रजामें पारस्परिक कर्म्मविभागसे पूरी हुईं। यही कर्म्मविभाग अङ्ग्रेजीके श्रमोत्पादक उल्थेसे आज "श्रम-विभाग" बन गया है। प्रजामें यह कर्म्मविभाग, समाजमें यह श्रमविभाग, सनातन है। "स्वे-स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः" गीताने इसी कर्म्म-साङ्कर्य्यसे बचनेकी शिक्षा दी है। ऐसा कर्म्मविभाग इसी सानातनिक हिन्दू दण्डनीति वा समाजशास्त्रमें है। ऐसा अद्भुत् सङ्गठन संसारमें दूसरा नहीं है।

अब यह भी प्रत्यक्ष है कि सम्पूर्ण प्रजा-समुदायमें सबसे अधिक आवश्यकता वैश्योंकी

है, इसीलिये इनकी आवादी सबसे बड़ी होनी चाहिये। वैश्य शब्दका पूर्व रूप "विश" वेदोंमें अनेक स्थलोंमें आया है। इसका अर्थ "किसान" "व्यापारी" "मनुष्यमात्र" और "आर्य्य" या "अर्य" भी है। "विशाम्पति" राजाके लिये प्रयुक्त हुआ है। इससे यह निष्कर्ष स्वाभाविक है कि प्रायः सम्पूर्ण प्रजा साधारणतया वैश्य थी। ब्राह्मण और क्षत्रिय सङ्ख्यामें उनकी अपेक्षा अत्यन्त कम थे। शूद्रोंकी सङ्ख्या ब्राह्मणों और क्षत्रियोंकी अपेक्षा बहुत अधिक होनी चाहिये और वैश्योंकी अपेक्षा कुछ ही कम होनी चाहिये। चारों वर्णोंमें धनाढ्य वर्ण वैश्योंका ही था। ब्राह्मण तो दान-प्रतिग्रहसे अपनी सम्पत्ति आवश्यकताभर रखता था। राजा जो कुछ करके रूपमें प्रजासे पाता था, प्रजापर ही खर्च करता था। अपने खास कामके लिये उसे खास तौरपर उपार्जन करना पड़ता था। अपने महत्त्व-सम्पादनभर सम्राट् या मण्डलेश्वर या चक्रवर्त्ती भेट ग्रहण करता था। प्रजाको लूटना या चूसना राजा महापातक समझता था। वैश्य भी धनसङ्ग्रह करता था और विविध रूपोंमें उसे समाजको लौटा देता था। वह स्वार्थपर इतना कम लगाता था कि लोग उसे कञ्जूस तक कह डालते थे। परन्तु अनुचित रीतिसे स्वार्थसाधनके लिये ही धनसङ्ग्रह करनेवाला चाहे कोई क्यों न हो "दस्यु" अर्थात् डाकू या लुटेरा समझा जाता था। "महायन्त्र" अर्थात् बड़ी मशीनोंकी स्थापना इसी· लिये उपपातकोंमें गिनायी गयी है।

जिस तरह प्रजाके कर्म्मविभागका रूप वर्णविभाग था, उसी तरह व्यक्तिके जीवन-कर्म्मविभागका रूप आश्रम-विभाग था। तीनों वर्णोंको जीवनकी पहली अवस्थामें अच्छे गृहस्थ होनेकी शिक्षा लेनी अनिवार्य्य थी। प्रत्येक वर्णवाला अपनी जीविकाकी भी आवश्यक शिक्षा इसी आश्रममें पाता था। वेदादि शास्त्रोंके अतिरिक्त, क्षत्रिय शस्त्रास्त्र विद्या, और वैश्य कारीगरी, पशुपालन, कृषि आदि काम भी सीखता था। साथ ही सबको चरित्रकी शिक्षा इसी समय मिलती थी। इस आश्रममें ही कर्म्म-विभागपर ध्यान देना आरम्भ हो जाता था। पीछे गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेपर तो "स्वे-स्वेकर्म्मण्यभिरतः" मनुष्य होता ही था।

वानप्रस्थाश्रम तपस्याका आश्रम था, भोग-विलासका नहीं। संन्यासाश्रम भी तपस्या ही थी। इस तरह गृहस्थके सिवा शेष तीनों आश्रमवाले अपने भोजनाच्छादनके लिये यद्यपि गृहस्थके ही भरोसे जीते थे, तथापि उनकी आवश्यकताएँ बहुत थोड़ी थीं। नियमतः वे थोड़ा पहनते थे, थोड़ा खाते थे। उनका जीवन समाजपर बोझ नहीं प्रतीत होता था। उनकी सङ्ख्या भी बहुत थोड़ी थी।

गृहस्थाश्रमके अधिकारी चारों वर्णके लोग थे। ब्रह्मचर्य्याश्रमके अधिकारी तीन वर्णके लोग थे। वानप्रस्थाश्रमके अधिकारी केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय थे। संन्यासाश्रमके अधिकारी केवल ब्राह्मण थे। इस प्रकार आश्रमके हिसाबसे भी सबसे बड़ी आवादी गृहस्थोंकी थी। उनके बाद ब्रह्मचारी थे। वानप्रस्थ उनसे कम, और संन्यासी सबसे कम थे। फिर तपस्याका जीवन इतना लोकप्रिय नहीं था कि लोग शौकसे ग्रहण कर लें। गुरुकुलका जीवन भी लोक-प्रिय न था और ममता छोड़ संसार त्यागकर संन्यासी होना तो सबसे कठिन था। इसलिये इन आश्रमोंमें अपनी-अपनी श्रद्धानुसार लोग प्रवेश करते थे। यही बात थी कि वैश्य और क्षत्रिय भी, ब्रह्मचर्य्याश्रमके अधिकारी होते हुए, कम ही उस आश्रममें जाते थे। ब्राह्मणोंमें

भी बहुतसे अपने बच्चोंको गुरुकुलमें नहीं भेजते थे, बल्कि जीविकाके कामोंमें जल्दी लगा देते थे, और नाममात्रके संस्कारोंको ढँकाकर उन्हें गृहस्थाश्रममें प्रवेश करा देते थे। यही बात थी कि शेष तीनों आश्रमवाले सङ्ख्यामें बहुत थोड़े होते थे और आबादीके भीतर उनके घर भी नहीं होते थे। घर तो केवल गृहस्थ या गृहीके होते थे और गृहस्थ ही सबका पालन-पोषण करता था। समाजमें सबसे अधिक आवश्यकता थी गृहस्थाश्रमकी और सारा काम ये ही करते भी थे। गृहस्थीसे थके-मांदे बूढ़े ही तपस्या और त्याग करते थे। लड़के शिक्षा पाते थे और किसी तरहकी कमाई करना इनका काम न था। वैश्य और शूद्र गृहस्थोंकी ही सङ्ख्या भी बड़ी थी और काम करनेवाले भी ये ही थे। समाजकी आवश्यकताके अनुसार ब्राह्मण क्षत्रिय भी अधिकांश अपने अपने काम छोड़कर वैश्य-गार्हस्थ्य-धर्म्म पालन करने लगे थे। ययातिके पुत्र यदुको राज्याधिकार नहीं मिला तो पशुपालनादि करने लगे। नन्दादि यादव गोपाल थे। इसी तरह द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य्य आदि गृहस्थ ब्राह्मण शस्त्रजीवी हो गये थे। प्राचीन-कालमें ही इस प्रकार कर्म्मसाङ्कर्य्य हो गया था। इस प्रकार इतर वर्णोंका कर्म्म विशेष विशेष अवस्थाओंमें कर लेनेका अधिकार स्मृतियोंमें दिया हुआ है। बहुत कालसे इसी प्रकारके जन्म और कर्म्म दोनों प्रकारके साङ्कर्य्यको देखकर युधिष्ठिरने नहुषसे कहा था कि मेरे मतमें अब जाति केवल एक मनुष्यत्व ही है। वर्त्तमान कालमें तो वह साङ्कर्य्य युधिष्ठिरके युगसे कहीं अधिक बढ़ा हुआ है, अतः आज तो युधिष्ठिरका उत्तर समाजके लिये बिल्कुल ठीक ही है।

९—अन्तर्वर्ण विवाह-सम्बन्धके नियम

विवाह-सम्बन्धके जो नियम स्मृतियोंमें दिये हुए हैं, बड़े उदार हैं। ब्राह्मणको चारों वर्णोंमें विवाह करनेका अधिकार है। क्षत्रियको तीनों अब्राह्मण वर्णोंमें, और वैश्यको अपने और शूद्रवर्णमें विवाह करनेका अधिकार है।

महाभारतके अनुसार—

> "भार्य्याश्चतस्रो विप्रस्य द्वयोरात्मा प्रजायते।
> आनुपूर्व्याद्द्वयोर्हीनौ मातृजात्यौ प्रसूयतः॥ ४॥
> तिस्रः क्षत्रियसम्बन्धाद्द्वयोरात्मास्य जायते।
> हीनवर्णास्तृतीयायां शूद्रा उग्रा इति स्मृतिः॥ ७॥
> द्वे चापि भार्य्ये वैश्यस्य द्वयोरात्मास्य जायते।
> शूद्रा शूद्रस्य चाप्येका शूद्रमेव प्रजायते॥ ८॥

ब्राह्मणकी चार भार्य्याओंमेंसे दोसे, ब्राह्मणी और क्षत्राणीसे, तो ब्राह्मण ही पुत्र उत्पन्न होता है। परन्तु वैश्या भार्य्यासे वैश्य और शूद्रा भार्य्यासे शूद्र पुत्र होता है। इसी तरह क्षत्रियकी तीन भार्य्याओंमेंसे क्षत्राणी और वैश्यानीसे क्षत्रिय पुत्र होता है, परन्तु शूद्रासे शूद्र पुत्र होता है। वैश्यकी वैश्या और शूद्रा दोनों भार्य्याओंसे वैश्य ही पुत्र होता है। इस तरह अन्तर्विवाहद्वारा शूद्रक्षेत्र ब्राह्मणत्वतक पहुँच सकता है। इसी अन्तर्विवाहद्वारा सातवें जोड़े-तक पहुँचते-पहुँचते कोई शूद्र ब्राह्मणताको प्राप्त हो सकता है और कोई ब्राह्मण शूद्रताको।

अपनेसे हीनवर्णा स्त्रीसे विवाहको अनुलोम और ऊँचे वर्णकी स्त्रीसे विवाहको प्रतिलोम विवाह कहते हैं। प्रतिलोम विवाह होते थे, परन्तु गर्हित समझे जाते थे। विवाहोंमें भी सवर्ण विवाह उत्तम प्रकारका माना जाता था, अनुलोम मध्यम और प्रतिलोम निकृष्ट।

याज्ञवल्क्य संहिताके टीकाकार विज्ञानेश्वर मिताक्षरामें लिखते हैं—

"व्यवस्था च—ब्राह्मणेन शूद्रामुत्पादिता निषादी सा ब्राह्मणेनोढा काञ्चि-ज्जनयति। सापि ब्राह्मणेनोढा अन्यामित्यनेन प्रकारेण पञ्चमी षष्ठं ब्राह्मणं जनयति। एवमुग्रा क्षत्रियेनोढा महिष्या च यथाक्रमं क्षत्रियं षष्ठं पञ्चमं जनयति।

अर्थात् ब्राह्मणद्वारा शूद्रासे उत्पन्ना कन्या निषादी यदि ब्राह्मणसे व्याही जाय और उससे भी कन्या हो और उस कन्याका फिर यदि ब्राह्मणसे ही विवाह हो, और उसके गर्भसे भी कन्या ही उत्पन्न हो, तो इस तरह षष्ठ कन्या सप्तम पुरुषमें ब्राह्मण जन्मा सकेगी। ब्राह्मणद्वारा शूद्रासे उत्पन्ना कन्या अम्बष्ठा होती है, किन्तु उपर्युक्त प्रकारसे यह कन्या भी षष्ठ पुरुषमें ब्राह्मण उत्पन्न कर सकती है। इसी प्रकार क्षत्रिय विवाहिता उग्रा या माहिष्या यथाक्रम छठे या पांचवें पुरुषसे क्षत्रिय उत्पन्न कर सकती है।

इस तरह विवाह और जन्मके द्वारा हीनसे ऊँची और ऊँचीसे हीन जाति पौराणिक कालमें उत्पन्न होती थी।

पुराणोंमें इस प्रकार जन्मना, और कर्म्मके त्याग और ग्रहणसे कर्म्मणा, वर्णके बदलनेके अनेक उदाहरण हैं।

१०—विवाह-प्रथाका विकास

सृष्टिके आरम्भमें जैसे चारों वर्णोंका धीरे-धीरे कर्म्मानुसार विकास हुआ, उसी तरह विवाह-प्रथाका भी धीरे-धीरे विकास हुआ है। जैसे, वर्णाश्रम-विकासके पीछे सृष्टिकी शक्तियाँ काम करती रही हैं और धीरे-धीरे समाजकी रक्षा और वृद्धिके अनुकूल कर्म्मविभाग और उपविभागमें सामञ्जस्यकी स्थापना करती रही हैं, उसी तरह विवाह-प्रथाका भी आर्य्योंके समाजमें स्थिर परन्तु मन्थर क्रमसे विकास करती रही हैं। महाभारतसे पता लगता है कि सृष्टिके आरम्भमें स्त्रियाँ नङ्गी रहती थीं, स्वतन्त्र और स्वेच्छाविहारिणी होती थीं, विवाह-बन्धन न था और उनका कृत्य अधर्म्म नहीं समझा जाता था। धीरे-धीरे गृहस्थी चलानेकी आवश्यकतासे प्रेरित हो बलात् या राजी करके स्त्री रक्खी जाने लगी और गृहस्थी सँभालनेका उसे काम दिया गया। अधिक बलवान् मनुष्य ऐसी रक्खी हुई स्त्रीको छीन भी ले जाता था, अथवा दूसरेसे राजी होकर वह स्वयं चली जाती थी। शायद यह वही समय होगा, जब बहुत कालव्यापी शान्तिके बाद लोग न्याय्य-जीवनसे ऊब गये थे और समाजमें विच्छृङ्खलता आ गयी थी। सम्भवतः जब वर्णधर्म्मका कुछ विकास हो चुका था उस समय लोग सम्भुक्त स्त्रीकी अपेक्षा असम्भुक्ता या कन्याको अच्छा समझते थे। कन्याके लिये युद्ध होना तो बहुत कालतक जारी सा था। इन्हीं बातोंके साथ स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता भी घटती गयी और पुरुषोंमें स्त्री-पुत्रादिपर ममता बढ़ती गयी। कुछ कालतक एक पुरुषके अधिकारमें रहकर स्त्री परपुरुष-की कामना कर सकती थी। यह व्यभिचार नहीं समझा जाता था। उद्दालक ऋषिकी पत्नीके

इस आचरणपर उनके पुत्र श्वेतकेतुने ही यह कुप्रथा उठा दी। उन्होंने यह मर्य्यादा बांधी कि पतिके रहते कोई स्त्री उसकी आज्ञा विना परपुरुषसे सम्भोग न करे। फिर भी पतिकी अयोग्यताकी दशामें अन्य पति विहित समझा जाता था। महर्षि दीर्घतमाने इसे भी बन्द किया। उन्होंने नियम चलाया कि पति जबतक जिये तबतक पत्नी उसके अधीन रहे। उसके मरनेपर भी परपुरुषका आश्रय न ले। धीरे-धीरे स्त्रीकी सारी स्वतन्त्रता हर ली गयी और वह उपभोगकी सामग्री समझी जाने लगी। यहाँतक कि मरनेपर अन्य सुखोंकी सामग्रीके साथ वह शवके साथ जलायी भी जाने लगी। आर्य्य जाति धीरे-धीरे व्यसनी हो गयी और वनवासी तपस्वियोंतकमें बहु-विवाह चल पड़ा और व्यभिचार भी बढ़ा। जब यह प्रवृत्ति बढ़ी तब नियम कर दिया गया कि यज्ञदीक्षाके समय रामा अर्थात् शूद्रासे गमन न करे। इतना विकास उस समयतक हो चुका था जब राजशासनका आरम्भ हुआ। राजाने अब धर्म्मशास्त्र चलाना शुरू किया। इसी परम्परामें राजा वेण हुआ। उसने अपने वंशकी रक्षाके लिये जबरदस्ती नियोगकी रीति चलायी। मनुजीने उसकी निन्दा की है। वे लिखते हैं "राजर्षि वेणुके समयमें विद्वान् द्विजोंने मनुष्योंके लिये इस पशुधर्म्मका, अर्थात् नियोगका, उपदेश किया था। राजर्षिप्रवर वेणु समस्त भूमण्डलका राजा था। उसी कामीने वर्णोंका घालमेल किया।" उस समयतक विवाह दो प्रकारके होते थे। एक तो छीन-झपटकर, लड़-भिड़कर, या योंहीं कन्याको फुसलाकर अपने यहाँ ले आते थे। दूसरे यज्ञोंके समय यजमान पुरोहितों-को अपनी कन्या दक्षिणाके रूपमें या धर्म्म समझकर दे डालते थे। इसीके बाद धीरे-धीरे स्वयंवरकी प्रथा चली। स्वयंवरके ही समय कन्याहरण भी हो जाया करता था। कन्याएँ कभी-कभी स्वयं वरण करनेके लिये यात्रा करती थीं, जैसे सावित्रीका सत्यवान्को वरण करना। बढ़ी अवस्थाके वर-कन्यामें ही ऐसा सम्भव था। इसीलिये नियोगकी प्रथा बहुत चल न पायी। कुमारी कन्याके आठ प्रकारके विवाह विकसित हुए। पुनर्भू या विधवा-विवाह इन आठोंसे हीन समझा जाता था। उसको भी लोग बुरा समझने लगे। बौद्ध कालमें स्त्रीकी स्वतन्त्रता कुछ बढ़ी थी, परन्तु बौद्ध मतके साथ उसका फिर ह्रास हो गया। विवाहिता स्त्रियोंपर बलात्कार करना धार्मिक मुसलमान पाप समझता था। इसीलिये स्त्रियों-की रक्षाकी दृष्टिसे शायद मुसलिम आक्रमणके बाद ही बाल-विवाहकी रीति चल पड़ी और आसुर, राक्षस, गान्धर्वादि विवाहकी रीतियाँ भी उठ गयीं।

विवाह आठ प्रकारके कहे गये हैं। ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच।

अच्छे शीलवाले गुणवान् वरको स्वयं बुलाकर भूषण वस्त्रसे आच्छादित कर और पूजापूर्वक कन्याका दान ब्राह्म विवाह है।

यज्ञमें सम्यक् रीत्या कर्म्म करते हुए ऋत्विजको अलङ्कारादिसे सुसज्जित कर कन्याका दान दैव विवाह है।

एक या दो जोड़ी बैल या गाय धर्म्मार्थ लेकर विधिवत् कन्यादान आर्ष विवाह है।

"तुम दोनों साथ मिलकर गृहधर्म्मकी रक्षा करो" वरसे यह कहकर और पूजन करके कन्यादान करना प्राजापत्य विवाह है।

स्वजनोंको और कन्याको शक्तिभर धन देकर कन्यादान आसुर विवाह है।

वर कन्याके स्वेच्छामिलन और प्रेमसे उपजा काम-प्रसूत-विवाह गान्धर्व विवाह है।

प्रतिपक्षीको मारकर घायल करके, फाटक या दीवार तोड़कर, रोती कलपती कन्याको वरवस हर ले जाना राक्षस विवाह है।

सोयी, मतवाली या बेहोश कन्यासे एकान्तमें उपभोग, विवाहोंमें अधम, आठवाँ प्रकार पैशाच विवाह है।

इस क्रममें उत्तरोत्तर हीन विवाह कहे हैं, परन्तु विकासका क्रम इसके विपरीत है।

देव-विवाह तो अब कहीं सुननेमें नहीं आता। राक्षस और पैशाच-विवाह तो असभ्यों और कुकर्म्मियोंमें अब भी होते हैं। गान्धर्व विवाहपर ब्राह्मकी मुहर लग जाया करती है। शेष चारोंके कुछ परिवर्त्तित रूप ही आजकल देखनेमें आते हैं, जिनमेंसे अधिकांश रीति ब्राह्म-विवाहकी ही बरती जाती है। वरातमें जुलूस तो प्राचीन राक्षस-विवाहकी कभी-कभी याद दिलाता है।

स्मृतियोंमें पहले चारों प्रकारके विवाहोंको उत्तम बताया है। इनमेंसे भी सवर्ण-विवाहको उत्तम ठहराया है। इससे यह स्पष्ट है कि मनु आदि स्मृतिकारोंके समयमें असवर्ण-विवाह साधारणतया हुआ करते थे। "असवर्ण"का अर्थ है, वर्णबाहर। आजकलकी जो असङ्ख्य जातियाँ और उपजातियाँ हैं अब तो लोग उनकी परिधिके भी बाहर नहीं जा सकते। आजकल तो ब्राह्मण-क्षत्रिय, या क्षत्रिय-वैश्यमें विवाह-सम्बन्धकी बात कोई सोचता भी नहीं। ब्राह्मण-ब्राह्मणमें, क्षत्रिय-क्षत्रियमें, वैश्य-वैश्यमें भी स्वच्छन्दतासे आज विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। परन्तु स्मृतिकारोंके समयमें समाज अधिक उदार था, जाति-बन्धन इतना जटिल नहीं था। विवाह अनुलोम प्रतिलोम दोनों प्रकारके होते थे। केवल सगोत्र और सपिण्डमें विवाह नहीं होता था। जातियोंके भेदोपभेद तो उस समय भी थे, परन्तु ये केवल कर्म्मविभाग थे, विवाह या जेवनारसे इनसे मतलब न था। स्मृतियोंमें कहीं ऐसा निर्देश नहीं मिलता कि ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यमें पक्कीका व्यवहार हो मगर परस्पर रोटीका व्यवहार न रक्खें। भोजन-सम्बन्धी यह भेदभाव पिछले एक हजार बरसोंके भीतर पैदा हुआ है। चौके-चूल्हेकी सफाई तो प्राचीन है, परन्तु क्यारियोंमें बैठकर खाना और एक दूसरेका छुआ न खाना, अथवा किसी जातिका बनाया या छुआ न खाना, और किसीका खाना, इस तरहके भेदका पता प्राचीन स्मृतियोंमें कहीं नहीं है।

११—भात-पांतका जन्म और रोटी-बेटीकी दीवार

एक बात बहुत पुरानी दीखती है। वह है पङ्क्तिवाली बात। पुराणों और स्मृतियोंमें हव्य-कव्य ग्रहण सम्बन्धमें ब्राह्मणोंकी एक पङ्क्तिमें बैठनेकी पात्रतापर विस्तारसे विचार है। मनुस्मृतिमें लिखा है [३।१४९] कि धर्म्मज्ञ पुरुष [हव्य] देवकर्म्ममें ब्राह्मणकी उतनी जांच न करे किन्तु [कव्य] पितृकर्म्ममें आचार-विचार-विद्या-कुलशीलकी अच्छी तरह जांच कर ले। चोर, पतित, नपुंसक, नास्तिक, वेदरहित, जटिल ब्रह्मचारी, अजितेन्द्रिय, जुआड़ी, ग्राम्यपुरोहित, वैद्य, देवलक (पुजारी), मांस वेचनेवाला, वणिक्वृत्त, दौत्यवृत्त, कुनख,

श्यामदन्तक, गुरु-माता-पिता-विरोधी, अग्नित्यागी, कुसीदवृत्त, पशुपाल, परिवेत्ता,* परिवित्ति, ब्रह्मद्वेषी, चन्दा खा जानेवाला, कत्थक, शूद्रापति, पौनर्भव, काना, उपपति सहनेवाला, वेतन दे लेकर पढ़ने पढ़ानेवाला, शूद्र-शिष्य, शूद्राध्यापक, कटुभाषी, कुण्ड, गोलक,† पतित-सङ्गी, आग लगानेवाला, विष देनेवाला, जारजान्नभोजी, मादक द्रव्य बेचनेवाला, समुद्रयात्री, भाट, तेलीवृत्त, ठग, नशैल, पापी, धर्म्मध्वजी, गोरस बेचनेवाला, धनुर्वाण बनानेवाला, दिधिषूपति, मित्रद्रोही, पुत्रका शिष्य, पशुगुरु, ज्यौतिषवृत्त, पक्षिपोषक, युद्धाचार्य्य, नहर-निर्म्माता, वास्तु-विद्योपजीवी, मालीवृत्त, कुत्तों और पक्षियोंद्वारा शिकारी, कन्यादूषक, हिंस्र, शूद्रवृत्त, चरित्रहीन, स्वधर्म्म पालनमें कातर, नित्य याचक, कृषिजीवी, विधवापति, मजूरी लेकर प्रेतदाही, कोढ़ी, क्षयरोगी, श्वेतकुष्ठी, मृगी और गण्डमाला रोगी, पीलपाँववाला, अन्धा, पागल, चुगलखोर और वेदनिन्दक हव्य-कव्यके लिये अपात्र हैं। इन्हें ज्योनारकी पङ्क्तिमें नहीं बैठाना चाहिये।

इस लम्बी सूचीमें ब्राह्मणोंकी ही अपाङ्क्तेयता बतलायी है, और ये दोष भी केवल व्यक्तिगत हैं।

हिन्दूमात्रमें संस्कारोंके अवसरपर यज्ञ होते हैं और "हव्य" अर्थात् यज्ञभाग ब्राह्मणोंको भी मिलता है। यज्ञके अन्तमें ब्राह्मण-भोजनका यही अभिप्राय है। पितृश्राद्धमें "कव्य" अर्थात् श्राद्धभाग भी ब्राह्मणोंको मिलता है। श्राद्धमें भी ब्राह्मण-भोजनका यही अभि-प्राय है। मनुस्मृतिमें हव्यसे अधिक कव्यमें पात्रतापर सूक्ष्म विचारकी आवश्यकता बतलायी है। प्रसङ्गसे ऐसा जान पड़ता है कि मनुस्मृतिके समयतक द्विजमात्र एक दूसरेके यहाँ भोजन करते थे। विचारवान् यह देख लेते थे कि जिसके यहाँ हम भोजन करते हैं वह स्वयं सच्चरित्र है, उसका कुल सदाचारी है और उसके यहाँ छूतवाले रोग आदि तो नहीं हैं। जब अधिक सङ्ख्यामें मनुष्य खाने बैठते थे तब भी इन बातोंका विचार होता था। पङ्क्तिका विचार हव्य-कव्यमें ब्राह्मणोंके लिये था। देखा-देखी पङ्क्तिका ऐसा ही नियम और वर्णोंमें भी चल पड़ा। जिसे अपाङ्क्तेय या पांत बाहर कर देते थे वह फिर पतित समझा जाता था। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जारज, कुण्ड, गोलक, आदि जन्मसे दुष्ट ब्राह्मण, और कुसीद, वाणिज्य, कृषिकर्म्म, पशुपालन, दौत्य आदि कर्म्मसे दुष्ट ब्राह्मण,—अर्थात् वर्णसङ्कर और कर्म्मसङ्कर दोनों ही प्रकारके साङ्कर्य्यसे दूषित ब्राह्मण,—पांत-बाहर कर दिये जाते थे। परन्तु अनुलोम ब्राह्मणोंको पङ्क्ति-दूषकोंमें नहीं गिनाया है। यही अग्रजोंकी प्रथा और द्विजातियोंमें फैल गयी और साङ्कर्य्य ही उन सबमें पङ्क्ति दूषणका हेतु बना। परन्तु जन्म-साङ्कर्य्य ही अधिक प्रभावशाली रहा, क्योंकि हीन वर्णोंमें कर्म्मसाङ्कर्य्य एक हदतक स्मृति-विहित था। धीरे-धीरे सवर्ण-विवाहकी उत्तमता सङ्कुचित होकर छोटी-छोटी जातियों और

---

* जेठे भाईके अविवाहित और अनग्नि रहते विवाह और अग्निहोत्र करनेवाला छोटा भाई "परिवेत्ता" है। जेठाभाई "परिवित्ति" है।

† परपुरुषद्वारा उत्पन्न ब्राह्मण सधवाके गर्भसे "कुण्ड" और विधवाके गर्भसे "गोलक" कहलाता है।

उपजातियोंमें सीमित हो गयी और जाति बाहरका विवाह दूषित समझा जाने लगा। इन छोटी सीमाओंके बाहर जाना ही पीछेसे जन्मसाङ्कर्य्य हो गया और जन्मसाङ्कर्य्यके कारण जब मनुष्य पङ्क्ति बाहर हुआ तो वही "अजाती" या "कुजात" हो गया। और द्विजातियोंमें भी पङ्क्तिमें भोजन करनेके ये अवसर संस्कारोंपर ही आते थे। यह ज्योनारें उन्हीं लोगोंमें सम्भव थीं, जो एक ही स्थानके रहनेवाले थे, एक ही तरहका पेशा या काम करते थे, जिनकी परस्पर नातेदारियाँ थीं। विवाह भी इसी प्रकार समान कर्म्म और वर्ण, समान कुलशीलमें होना आवश्यक था। इसीलिये भात-पांतका जन्म हो गया। वही लोग जातिके भीतर समझे जाने लगे जिनके साथ बैठकर भात खानेमें हर्ज न था, उन्हींके यहाँ विवाह-सम्बन्ध जोड़नेमें सुभीता समझा गया। रोटी-बेटीके जिस विभेदसे आज जाति-जाति और उपजाति-उपजातिमें अलगा-गुजारीकी भीतें खड़ी दीखती हैं, पूर्व कालमें वर्ण-वर्णके बीचमें भी उसका नामो-निशान न था।

१२—असङ्ख्य जातियाँ

इस समय देश-विभागके अनुसार ब्राह्मणोंके दो बड़े विभाग हैं, पञ्चगौड़ और पञ्च-द्रविड़। अफगानिस्तानका गोर देश पश्चिममें, पश्चिम पञ्जाब, पूरब पञ्जाब जिसमें कुरुक्षेत्र शामिल है, गोंडाके चारों ओरका प्रदेश, प्रयागके दक्षिण एवं आसपासका प्रदेश, पश्चिमीय बङ्गाल, ये पांचों प्रदेश किसी-न-किसी समयपर गौड़ कहे गये हैं। इन्हीं पांचों प्रदेशोंके नाम-पर सम्भवतः सामूहिक नाम पञ्चगौड़ पड़ा* जान पड़ता है। आदि गौड़ोंका उद्गम कुरु-क्षेत्र है। इस प्रदेशके ब्राह्मण विशेषतः गौड कहलाये। गोर और पश्चिम पञ्जाबके ब्राह्मण सारस्वत, प्रयागके पाससे कान्यकुब्जतक फैले हुए गौड़ देशके ब्राह्मण कान्यकुब्ज, मिथिला जिस गौड़-प्रदेशमें सन्निविष्ट है वहांके ब्राह्मण मैथिल, और प्रायः उसी गौड़-प्रदेशमें सम्मि-लित उत्कल देशके ब्राह्मण उत्कल कहलाये। इसी प्रकार नर्मदाके दक्षिण आन्ध्र, द्रविड, कर्णाटक, महाराष्ट्र और गुर्जर इन्हें पञ्चद्रविड कहा गया और वहांके ब्राह्मण इन्हीं पांच नामोंसे प्रसिद्ध हुए। इन दसोंमेंसे प्रत्येक विभागमें अनेक अन्तर्विभाग हैं, ये भी या तो स्थानोंके नामसे प्रसिद्ध हुए, या वंशके किसी पूर्वपुरुषके नामसे प्रख्यात हुए, अथवा किसी विशेष पदवी, विद्या या गुणके कारण नामधारी हुए। वड़नगरे, विशलनगरे, भटनागर, नागर, माथुर, मूलगावँकर, इत्यादि स्थानवाचक नाम हैं। वंशके पूर्वपुरुषके नामसे जैसे, सान्याल (शाण्डिल्य), नारद, वाशिष्ठ, विश्वामित्र, भारद्वाज, काश्यप, गोभिल इत्यादि ये नाम वंश या गोत्रके सूचक हैं। पदवीके नामसे जैसे चक्रवर्त्ती, वन्द्योपाध्याय, मुख्योपाध्याय, मजूम-दार, भट्ट, फरनवीस, कुलकर्णी, करण, कायस्थ (कार्य्यस्थ), राजभट्ट, जोशी (ज्यौतिषी), देशपाण्डे इत्यादि। विद्याके नामसे जैसे चतुर्वेदी, त्रिवेदी, शास्त्री, पाण्डेय, वेदी, पौराणिक,

---

* राजतरङ्गिणीके अनुसार जयादित्यने पञ्चगौड़ेश्वरको जीता था और हरिमिश्र रचित कुला-चार्य्यकारिकामें महाराज आदिशूरको पञ्चगौड़ाधिप लिखा है। विविध गौड़ देशोंकी चर्चा पुराणोंमें एव अन्य साहित्यमें पायी जाती है।

व्यास, द्विवेदी आदि। कर्म्म या गुणके नामसे जैसे, दीक्षित, सनाढ्य, सुकुल, अधिकारी, वात्सल्य, याजक, याज्ञिक, नैगम, आचार्य्य, भट्टाचार्य्य इत्यादि। इन अगणित अल्लवालोंके गोत्र उन्हीं वैदिक ऋषियोंके हैं जिन्हें अग्रज कहते हैं। भार्गव, सांकृत, गर्ग, भृगु और शौनक गोत्रवाले ऋग्वेदी, कश्यप, काश्यप, वत्स, शाण्डिल्य, और धनञ्जय गोत्रवाले साम-वेदी, भरद्वाज, भारद्वाज, अङ्गिरा, गौतम और उपमन्यु यजुर्वेदी तथा कौशिक, गृत्कौशिक, मुद्गल, गालव और वशिष्ठ गोत्रवाले अथर्ववेदी ब्राह्मण होते हैं। शेष अन्य गोत्रवाले यजुर्वेदी ब्राह्मण होते हैं। गोत्र असङ्ख्य हैं। प्रत्येक गोत्रके अन्तर्गत विशेष-विशेष प्रवर्त्तक मुनि हो गये हैं। जैसे जमदग्नि गोत्रके प्रवर्त्तक ऋषि जमदग्नि और्व और वशिष्ट, और गर्ग गोत्रके प्रवर्त्तक गार्ग, कौस्तुभ और माण्डव्य। ये तीनों प्रवर्त्तक "३ प्रवर" कहलाते हैं। इस तरह प्रत्येक गोत्रके "प्रवर" भी होते हैं। वेदाध्ययन ब्राह्मणका मुख्य कर्त्तव्य है। प्रत्येक गोत्र या ऋषि-परम्परामें वेदकी संहिताओंके विशेष पाठ और क्रमभेद चलते हैं। इनकी विशेष शाखाएँ प्रसिद्ध हैं जो शौनकके "चरणव्यूह"में और वायुपुराणमें भी दी हुई हैं। अतः प्रत्येक ब्राह्मणका कोई गोत्र, प्रवर और शाखा और वेद होता ही है। ये विभेद ब्राह्मण-मात्रमें व्यापक हैं।

इन दसोंके अतिरिक्त भी ब्राह्मण जातियाँ हैं। नम्बूतरी, केरली, माथुर, मागध, मालवीय, कूर्म्माचली, नेपाली, काशमीरी, सप्तशती, शेण्डवी, पलाशी, सेनगर्दरी, शङ्खधार, थातिया, अहिवासी, व्यास, बिल्वार, ऋषीश्वर, अगाछी, परचूनिया, उनवारिया, गोलापूरब, लियारिया, नादे, मियाले, दशद्वीपी, देहरादूनी, इत्यादि। ये भी अपनेको इन्हीं दसोंमेंसे किसी-न-किसीमें शामिल बताते हैं।

कान्यकुब्जोंमें सरयूपारीण, झिझोटिया, सनाढ्य, और बङ्गाली भी शामिल हैं। बङ्गाली ब्राह्मण वारेन्द्र, राढ़ीय, पाश्चात्य और दाक्षिणात्य ये चार विभागोंमें बँटे हैं। इन प्रत्येकमें असङ्ख्य भेद हैं। सरयूपारीणमें बहुतसे सवा-लक्खी ब्राह्मण भी मिले हुए हैं जो पिछले पांच सौ बरसोंके भीतर विविध जातिके लोगोंको जनेऊ पहनाकर किसी राजाद्वारा ब्राह्मण बना लिये गये हैं। ये भी दूबे, तिवारी, उपाध्याय, मिश्र, दीक्षित, पाण्डे, अवस्थी, और पाठक कहलाते हैं, और गयावाल, प्रयागवाल, गङ्गापुत्र, महाब्राह्मण, आचार्य्य और तीर्थोंके पण्डोंका एवं देवलक, पुजारी, कत्थक, सूद आदिका काम करते हैं।

सरयूपारीण ब्राह्मणोंमें भूमिहार और तगा या त्यागी ब्राह्मणोंकी भी एक भारी सङ्ख्या है।

सारस्वत ब्राह्मणोंके पञ्जती, अष्टबंस, बारही, और बावनी ये चार विभाग होते हैं। पहलेमें मोहले, तिक्खे, झिंगरन, जेतली, कुमरिये, कालिये, मालिये, कपूरिये, मधुरिये और वग्गे ये दस अल्ल हैं। दूसरेमें पाठक, सोरी, तिवारी, यसराज, जोतिषी, शण्ड, कुरला, और भारद्वाजी ये आठ अल्ल हैं। तीसरेमें कालिये, प्रभाकर, लखनपाल, ऐहरी, नाभ, चित्रचोट, नारद, शारद, जालपुत्र, भामवी, परनोत्र और मनन या मण्टन ये बारह अल्ल हैं। बावनी-में वसूदे, विजरा, रण्डे, मेढ़, मुस्ताल, सूदन, सूत्रक, तेरी, अङ्गल, हस्तीर आदि बावन अल्ल हैं। इनके सिवा खट्टवन्स, दगड़े, और सूरध्वज भी सारस्वतोंमें ही हैं।

गौड़ ब्राह्मणोंमें आदि गौड़, श्रीगौड़, भार्गव, मध्य श्रेणी, पूरबिया, पछान्दे, हिरण्येवाली, चौरासिया, पुष्करिणी, ठाकुरायन, भोजक, ककरिया, देसवाली और दसे, ये प्रधान विभाग हैं। देसवालीमें गूजर, पारिख, सिखवाल, दयमा (दधीच), खण्डेलवाल तथा गौड़ सारस्वत (ओझा) ये छः भेद हैं। ये प्रधान भेद बताये। अल्ल तो पचासों हैं।

मैथिलोंमें उनके सिवा, सारात्र, जोग और चङ्कोल ये तीन और भेद हैं।

उत्कल या उड़िया ब्राह्मणोंमें ओझा, तिवारी, मिश्र, शतपथी, पाण्डे, राहा, नन्दा, दास और शोरोंगी ये नव ऊँचे ब्राह्मण हैं। महापात्र, पण्डा, शावूथ, सेनापति, नेकाब, मेकाब, पथी, पाञ्जी, शौध्र, पशुपालक, बरू, मुदीरथ, खुंटिया, आदि हीन ब्राह्मण हैं। और चार प्रकारके उड़िया ब्राह्मणोंके नाम हैं, दक्खिन श्रेणी, जाजपुर श्रेणी, पनयारी श्रेणी और उत्कल श्रेणी। इन श्रेणियोंमें भी नाना गोत्र और अल्लोंके ब्राह्मण हैं।

महाराष्ट्र ब्राह्मणोंमें तीन प्रधान विभाग हैं, देशस्थ, कोङ्कणस्थ और कऱ्हाडे। इनके सिवा चित्पावन, यजुर्वेदी, अभीर, मैत्रायण, चरक, नारमदी, मालवी, देवरुके, काञ्वौ, किरवन्त, सवशे और त्रिगुल नामके भी विभाग हैं।

आन्ध्र या तैलङ्गी ब्राह्मणोंमें तिलघानियम, वेल्लनाती, वेगिनाती, मुर्किनाती, कासलनाती, करनकम्मा, नियोगी, और प्रथमशाखी ये आठ विभाग हैं।

द्रविड़ोंके वर्म्मा, बृहत्‌चरण, अष्टसहस्र, सङ्केत, अरम, तञ्चय्यर, तञ्चमुआयर, नम्बुत्तरी, कोनशून और मुनित्रय ये दस विभाग हैं।

कर्णाटकी ब्राह्मणोंके हैग, क्कात, शिवेल्ली, वर्गिनार, कण्डाव, कर्णाट, महीशूर और सिरनाद ये आठ विभाग हैं जिनमें बीसों अल्ल और नाना गोत्रके लोग हैं।

गुर्जर ब्राह्मणोंमें चौरासी विभाग हैं। सहस्रावदीच्य, शिहोर-उदीच्य, तोलिकीय उदीच्य, नागर, बड़ नगरे, विशन्नगरे, खेरावाल, सिन्धुवाल, पल्लीवाल, गोमतीवाल, कनौजिया, श्रीमाली, वाल्मीक. मालवी, कलिङ्ग, तैलङ्ग, पुष्करना, सारस्वत, दधीच आदि अनेक नाम सूचित करते हैं कि ये बाहरसे आकर मिल गये हैं। इनके अल्ल हैं, पण्ड्या, ठाकर, पाठक, सुकल, दवे, जानी, उपाध्याय, पञ्चोली, रावल, ज्योतिषी, महता, व्यास, बौहरे आदि।

शासनकार्य्यमें स्मृतियोंके अनुसार ब्राह्मण-क्षत्रिय वर्णके लोग ही अधिकारी होते थे, परन्तु जो राजा स्मृतियोंके पावन्द न थे उन्होंने वैश्यों और शूद्रोंको भी शासनकार्य्यमें लगाया। इन कर्म्मचारियोंको कायस्थ (कार्य्यस्थ) कहते थे। इन्हें वंशानुगत पद मिलते थे। विदेशियोंके राजमें भी इनके हाथमें दफ़्तरोंके काम वंशानुगत चले आये। इस तरह वंशपरम्परा बन जानेसे मुसलमानोंके समयमें इनकी एक विशेष जाति बन गयी। आज "कायस्थ" नामधारी चारों वर्णके लोग हैं। उनके वर्णकी पहचान उनके अल्लों और रस्म-रिवाजोंसे होती है। बङ्गालमें ब्राह्मणके बाद प्रधान जाति कायस्थोंकी है, जिनके अल्ल गुजराती ब्राह्मणोंके हैं और डाक्टर भाण्डारकरके अनुसार ये लोग सभी गुजराती ब्राह्मण हैं। कायस्थ जातिका व्यापक काम पढ़ना लिखना ही है। राजतरङ्गिणीसे पता चलता है कि कायस्थ लोग उस समयकी नौकरशाही थे। इनमें भी वर्णभेद और वंशभेदसे अनेक जातियां और उपजातियां बन गयी हैं।

क्षत्रियोंमें तीन वंश प्रसिद्ध हुए, सूर्य्य, चन्द्र और अग्नि। कहते हैं कि जब पहले दोनों वंश नष्टप्राय हो गये तो ऋषियोंने यज्ञद्वारा क्षत्रियोंकी सृष्टि की जो अग्निकुलवाले कहलाये। इन्हींका नाम रजपूत या राजपुत्र हुआ। वंश-विस्तारसे सूर्य्यवंशमें ही रघुवंश आदि और चन्द्रवंशमें भरतवंश, यदुवंश आदि उपनाम बने। अग्निवंशियोंमें पहले राठौर, चौहान, तोमर और परमार ये चार वंश प्रसिद्ध हुए, फिर इनके वंश-विस्तारसे भी अनेक उपविभाग बन गये। आजकल इसीलिये गहलोट, सिसौदिया, कुशवाह, सोलङ्की, परिहार, चवर, तक्षक, जाट, हून, कत्ति, बल्ल, झाला, कमरी, गोहिल, सरवैया, गौड़, गहरवार, गूजर, सेनगढ़, सकरवाल, वैस, दह्या, राजपाली आदि कमसे कम छत्तीस राजवंश हैं। पादरी शेरिङ्गने इनके १२८ अङ्ग दिये हैं।

कहते हैं कि परशुरामद्वारा क्षत्रिय-संहारके समय भागे हुए क्षत्रिय जिन्होंने किसी तरह अपनी जान बचायी, वैश्योंका काम करने लगे, परन्तु उन्होंने क्षत्रिय वर्णकी जन्म-शुद्धताकी रक्षा की। ऐसे क्षत्रियोंमें ही आजकलके खत्री, अरोड़े, जायसवाल वा हैहयवंशी आदि हैं। अनेक राज्यच्युत क्षत्रिय भी वैश्यके काम करने लगे, जैसे यदुवंशी पशुपालन करने लगे। इस तरहके लोग यादव, जाट, गूजर आदि आज भी मौजूद हैं जो खेती और पशुपालनपर गुजर करते हैं। खत्री तो अफगानिस्तान, बलख, बुखारा, तुर्किस्तान एवं सम्पूर्ण मध्य एशियामें फैले हुए हैं। सारस्वत ब्राह्मणोंके और इनके अल्ल मिलते जुलते हैं। इनके कुछ विभागोंके नाम हैं, खन्ना, सेठ, कपूर, और मेहरा ये ढइये या ढाई-घरवाले कहलाते हैं। छः घरवालोंमें बाहल, धवन, बेरी, वीज, सैगल और चोपरा हैं। फिर पञ्चजाती, छः जाती, बारही, बावनजाही और कुकरान भी होते हैं। इनमें सबकी उपजातियोंके नाम और अल्ल अनेक हैं। खत्रियोंकी ही उपजातिमें अरोड़े भी हैं। प्रायः सभी वैश्यके काम करते हैं।

वैश्य जातियोंमें हम चार विभाग कर सकते हैं। पहले तो महाजनी वाणिज्य-व्यापार करनेवाले, दूसरे खेती करनेवाले, तीसरे पशुपालन करनेवाले और चौथे कारीगर पेशा। इस वर्णमें बहुत बड़ी सङ्ख्यामें ब्राह्मण और क्षत्रिय भी आकर मिल गये हैं। इनमें अधिकांश तो केवल कर्म्मसे वैश्य हैं, परन्तु जन्म और विवाह आदि सम्बन्धसे उन्होंने अपने ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्वको अक्षुण्ण रक्खा है। हम यहाँ उन्हीं द्विजोंको वैश्योंमें गिनाते हैं जिन्होंने जन्म और कर्म्म दोनोंसे अपनेको वैश्योंमें मिला लिया है।

अगरवाले, ओसवाल, श्रीमाल, खरेलवाल, लोहिया, पुरवाल, रस्तोगी, रौनियार, अगरहरी, धूसर, बरनवाल, माहेश्वरी, धानुक, सोनी, विष्णवी, महोबिया, बारहसेनी, केसरवानी, ऊमर, कसौंधन, बनजारा, कलवार, तेली, हलवाई, बिसाती, गन्धी, बरई, तम्बोली आदि महाजनी, वाणिज्य दूकानदारी करनेवाले हैं। सोनार, लोहार, बढ़ई, कसेरा, ठठेरा, कलईगर, खरादी, कोष्टी, राज, कुम्हार, सिकलीगर, सङ्गतराश, इत्यादि कारीगर वैश्य हैं। अहीर, गड़ेरिये आदि पशुपालक हैं। श्रीशेरिङ्गने किसानोंकी १६२ जातियाँ बतलायी हैं, परन्तु इनमें अनेक अन्य वर्णवालोंका अन्तर्भाव हो गया है। शेषके नाम वंश और स्थानके अनुसार हैं। काम तो एक ही है, खेती। इन नामोंमें बहुतसे ऐसे भी हैं जिनकी गिनती शूद्रोंमें की जाती है।

शूद्र जातियाँ भी अनगिनत हैं। दूत, धावन, डोली पालकी आदि ढोनेवाला, खिद-मतगार, हरवाहा, मिट्टी खोदनेवाला, मजदूर, कुली आदि सभी साधारण श्रमका काम करनेवाले शूद्र हैं। इनमें गन्दे काम करनेवाली हरिजन जातियाँ भी शामिल हैं। इन असङ्ख्य जातियोंमेंसे प्रत्येक बड़ी कड़ाईसे जात-पांतके झगड़े रखती हैं। विवाह और भातके कड़े नियम इन सबने ब्राह्मणोंसे सीख लिये। अग्रजन्मा, और सभी बातोंमें अग्रणी और नेता, होनेसे सभी जातियोंके लिये ब्राह्मण अनुकरणीय थे ही। इन्होंने विवाहमें केवल सगोत्र और सपिण्डका ही बराव नहीं किया, बल्कि देश-भेद, कुल-भेद, विभाग-भेदपर भी ध्यान दिया। सवर्ण विवाह तो शास्त्रोंने ही उत्तम ठहराया था। इन्होंने असवर्ण विवाह बन्द ही कर दिया और सवर्णके भीतर भी कड़ी शर्तें लगा दीं। और वर्ण और जातिवालोंने इनका अनुकरण किया और कड़ाईके साथ किया। संस्कार-सम्बन्धी ज्योनारोंमें पङ्क्ति-पावनता भी ब्राह्मणोंके लिये थी और वह भी सामूहिक न थी। परन्तु और जातियोंने भी उनकी पूरी नकल की और अपने यहाँ भी पांतका नियम बड़ा कड़ा कर दिया, जिसका फल यह हुआ कि जिन्हें अपा-ङ्क्तेय किया गया उनकी सङ्ख्या भी बढ़ गयी, यहाँतक कि पतितों अपाङ्क्तेयों और अजा-तियोंने भी अपनी पांत बना ली और इस प्रकार उपजातियोंकी सङ्ख्या बढ़ती गयी। जातियोंके सङ्गठन हुए, पञ्चायतें बनीं, और सभी उपजातियाँ धीरे-धीरे अनुशासनके शिकञ्जेमें कस गयीं। यह बातें भी इधर डेढ़ हजार बरसोंके पहले अवश्य हुई होंगी। सामाजिक शासन-की नीवँ तो उस समय पड़ी जब पङ्क्तिके नियम बने। परन्तु इस शासनके विकासका आरम्भ और वर्त्तमान सङ्गठनका सूत्रपात कमसे-कम दो हजार बरस पहले अवश्य हो चुका होगा। इस विकासके पीछे परमात्माका अदृश्य हाथ समाजके आर्थिक और जीवन सम्बन्धी आव-श्यकताओंका नियमन और समाजकी व्यवस्थाकी प्रेरणा भी करता जाता था। समाजके विविध अङ्गोंका आवश्यकतानुसार सामञ्जस्य भी बराबर होता जाता था। समाजरूपी महा-र्णवमें परिवर्त्तनके हलकोरे आते रहते हैं, परन्तु सामञ्जस्यकी स्थापना और मर्य्यादाकी रक्षा वह करता रहता है जिसकी रचना वर्णाश्रम-व्यवस्था है।

१३—हिन्दू समाजकी व्यापक रूढ़ियां

हव्य-कव्यके ज्योनारोंकी पङ्क्तिमें यद्यपि नास्तिक और अनीश्वरवादी सम्मिलित करने-का नियम न था, तथापि इन्हें पङ्क्तिसे उठानेकी शायद ही कभी नौबत आयी हो, क्योंकि जो हव्य कव्यको मानता ही नहीं यदि उसमें तनिक भी स्वाभिमान होगा तो वह उन ज्योनारोंमें आप ही सम्मिलित होना पसन्द न करेगा। पङ्क्तिदूषककी इतनी लम्बी सूची देखकर यह समझा जा सकता है कि पङ्क्तिपावन ब्राह्मणोंकी सङ्ख्या बहुत बड़ी नहीं हो सकती और इन ज्योनारोंमें बहुत कड़ाई भी बरती नहीं जा सकती। ब्राह्मण-समुदायके अति-रिक्त और वर्णोंमें तो पङ्क्तिके नियमोंके पालनमें और भी ढिलाईका होना स्वाभाविक था। सम्भवतः ईश्वर, वेद, संस्कार आदिके विरुद्ध विचार रखनेवाला किन्तु आचरणमें समाजके अनुकूल आचरण करनेवाला पङ्क्तिदूषक नहीं समझा गया। विचार कैसा ही हो आचार यदि विरोधी नहीं है, तो वह अपाङ्क्तेय नहीं हो सकता। इस धारणाके साथ ब्राह्मणोंमें

ही नहीं, और वर्णोंकी जातियों-उपजातियोंमें भी विरोधी विचार परन्तु अविरुद्ध आचार-वाले सम्मिलित होते रहे होंगे, और आज तो होते ही हैं। प्रत्येक जाति-बिरादरीकी आचार-सम्बन्धी रूढ़ियोंको जो माने और विचार-उच्चारसे चाहे कितना ही विरोध दिखावे, वह जात-बाहर नहीं किया जाता। विचारके सम्बन्धमें यह सहनशीलता हिन्दू इतिहासमें इतना प्राचीन है जितना वैदिक साहित्य, क्योंकि हम नास्तिकोंका उल्लेख वेदोंमें भी पाते हैं। आज तो इस सहनशीलताको हम प्रत्यक्ष देखते हैं। एक भाई, प्रेत, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व, देवता, परलोक, ईश्वर सबका अस्तित्व मानता और श्राद्ध, बलि, होम, पूजा आदि सब कुछ करता है, और दूसरा यह सब कुछ भी नहीं मानता, परन्तु दोनों परस्पर सहते हैं और बिरादरीमें कोई झगड़ा नहीं उठता। यह उचित भी है, क्योंकि स्वतन्त्र-विचार और उच्चारसे, जबतक वे औरोंको कष्टदायक न हों, समाजकी विशेष हानि नहीं होती। आचरण ऐसा होना चाहिये जिससे कि आपसमें कमसे कम सङ्घर्ष हो। समाजका आचरण अधिकांश इसी प्रकारका है। विचारमें भी प्रायः एकता ही है। हमारे देशमें एक हजारमें मुश्किलसे सत्तर साक्षर हैं। इन सत्तर साक्षरोंमें उनकी सङ्ख्या एकसे भी कम होगी जो स्वतन्त्र विचार रखते हैं। शेष सभी रूढ़ियोंके उपासक हैं, चाहे वे सत्य हों वा असत्य। यह रूढ़ियां हिन्दूमात्रकी विशेपता हैं।

(१) पुनर्जन्मका विश्वास व्यापक है। कुछ ब्राह्मसमाजियोंको छोड़ सभी मानते हैं।

(२) मरणान्तर-जीवन, प्रेतावस्था, श्राद्ध, पूजा-पाठ, व्रत, जप, होम आदि कमसे कम नब्बे प्रतिशत हिन्दू मानते हैं।

(३) मुख्य-मुख्य संस्कारोंको सभी हिन्दू मानते और थोड़े-थोड़े अन्तरके साथ सभी करते हैं।

(४) परलोक, वेद, ईश्वर और अवतारोंको कमसे कम नब्बे प्रतिशत हिन्दू मानते हैं।

(५) किसी-न-किसी रूपमें चूल्हा-चौका, जात-पांत, कमसे कम अस्सी प्रतिशत हिन्दू मानते हैं।

(६) वर्णाश्रमके अर्थ और धर्म्मके प्रतीक गो ब्राह्मणकी प्रतिष्ठा और रक्षाका विचार कमसे कम अस्सी प्रतिशत हिन्दुओंमें अवश्य है।

(७) तीर्थोंपर कमसे कम नब्बे प्रतिशत हिन्दुओंका दृढ़ विश्वास है।

हृदयमें इन रूढ़ियोंमें दृढ़ विश्वास और इनके अनुकूल और आनुषङ्गिक विचार, जाति-पाँतिके अनुशासनका पूरा और निरन्तर पालन, और दैनिक आचरणको हिन्दुत्वके ही रूपमें निरन्तर रखना हिन्दू समाजकी वह विशेषता है जिसने आजतक उसकी रक्षा की है। ईसाई मतके पहले ही प्रवाहमें यूनान, मिस्र और रोमकी सभ्यताएँ वह गयीं। इसलामकी चढ़ाईने पारसी समाजको क्षीण और लुप्तप्राय कर दिया। परन्तु भारतपर बारम्बार चढ़ाइयाँ हुईं। मुसलिम सभ्यताने नौ सौ बरससे, और ईसाई सभ्यताने दो सौ बरससे इस देशपर छापा मार रक्खा है, परन्तु हिन्दुत्व अबतक बना हुआ है। भारत संसारका अत्यन्त प्राचीन देश है, उसकी संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है, उसके समाजका सङ्गठन बहुत पुराना है, उसकी परम्परा

की जड़ इतने गहरे गयी हुई है कि उसको नौ सौ बरसकी बाहरी चढ़ाइयां हिला नहीं सकीं। सुधार-समाजोंने पूरा बल लगा रक्खा है, जाति-पांति-तोड़क मण्डल जी-जानसे सीधे चोट कर रहा है, आधुनिक समाजवादी और राजनीतिवादी भी कुठार चला रहे हैं, फिर भी ये सारे प्रयत्न ऊपरी सतहपर खतम हो जाते हैं। गहराईके भीतर रूढ़ियोंका शान्त और निश्चल राज है। वहांतक इन चोटोंकी पहुँच नहीं है। परन्तु ये शक्तियां व्यर्थ नहीं जा सकतीं। यह उसी विराट् पुरुषकी शक्तियां हैं जो समाजका कर्त्ता भर्त्ता और हर्त्ता है। आसन्न चतुर्मुखी क्रान्ति इन शक्तियोंके सम्मिलित सामञ्जस्यका वह रूप धारण करेगी जिसकी कल्पना सुलझेसे सुलझा दिमाग आज नहीं कर सकता।

भारतकी प्राचीन सभ्यतामें समाजके उस सङ्गठनकी मुख्यता है जिसे हम वर्णाश्रम धर्म्म कहते हैं, जो आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक शासनकी अपूर्व आदर्श व्यवस्था है, जिसके अनुसार राजा और दण्डकी व्यवस्थाके बिना भी सब काम चलता था और आज भी चल सकता है। यही हमारा प्राचीन समाजवाद या समष्टिवाद है। इसी प्राचीन समाज-वादके बलपर बड़े लम्बे कालतक अराजक-समाज सुखी और समुन्नत था। वह समाजवाद आज भी प्रायः अक्षुण्ण है। इस समाज-व्यवस्थाको बिना बिगाड़े ही भारतमें अवश्य ही स्वराज्यकी स्थापना हो सकती है। पाश्चात्य देशोंमें ऐसी समाज व्यवस्था न थी, अतः वहांके तथोक्त समाजवादने जो रूप धारण किया वह इससे भिन्न है।

१४—हिन्दू राजनीति

हिन्दूमात्रके व्यक्ति और समाजके सारे जीवनके लिये नियमोंकी पूरी व्यवस्था ब्रह्मा-जीकी दण्डनीतिमें थी और उसीके आधारपर पीछेकी सभी स्मृतियां बनी हैं। देश, काल और पात्रके अनुसार स्मृतियोंने व्यक्तियोंके लिये ऐसे नियम बनाये कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका पूरा उपभोग करते हुए किसी दूसरे व्यक्तिकी स्वत्व-सीमाको बिना दबाये और समाजके साथ बिना किसी अन्यायके अपने आश्रममें रहते हुए अपनी और अपने वंशकी रक्षाके लिये उपयुक्त श्रम करके, समाजके प्रति अपने कर्त्तव्योंका पालन करते हुए, सुखसे जीवन बितावे। समाजके लिये ऐसे नियम बनाये कि वह व्यक्तियोंके प्रति न्याय करते हुए सामूहिक रूपसे सम्पूर्ण समाजपर अङ्कुश रखे और अपने स्वत्वोंकी सीमाके भीतर रहते हुए सामूहिक कर्त्तव्यों-का पालन करे। राजाके लिये नियम बनाये कि वह प्रजाको अपनी सन्तान माने और पिता-की तरह उसकी सब प्रकारसे रक्षा करे, जिसके बदलेमें प्रजा उसे कर और सेवा दे। आदर्श राजाओंमें राम और अधम राजाओंमें वेण प्रसिद्ध हैं। रामराज्य तो प्रसिद्ध ही है। वेण ऋषियोंके हाथ मारा गया। राजाका चुनाव आरम्भमें प्रजाने स्वयं किया और बडे लम्बे काल-तक यही परिपाटी चलती रही। जिन राजाओंने प्रजाके इस अधिकारकी अवहेला की वे मार या मरवा डाले गये या अधिकारच्युत किये गये। कानूनसाजीके लिये कोई सभाकी आव-श्यकता नहीं पड़ती थी, क्योंकि दण्डनीतिके लिये ऋषि ही प्रमाण थे। शासनकार्य्यमें सलाहके लिये पौरों और जानपदोंकी व्यवस्था थी। राजा प्रजाकी सलाहका पाबन्द होता था। कई प्रदेशोंमें कई कालोंमें गणराज्य भी चलते थे जिनमें अध्यक्षका समय-समयपर चुनाव होता

था। स्वतन्त्र भारतका इतिहास इतने दीर्घ कालका है कि उसमें समाजका उद्भव, विकास और ह्रास सबके, सभी तरहके, अनुभव शामिल हैं, और अराजकतासे आरम्भ करके सभी तरहकी राज्यप्रणाली जो मनुष्यकी कल्पनामें आ सकती है यहाँ अनुभूत हो चुकी है। विशाल हिन्दू-साहित्यमें इसकी भारी सामग्री भरी पड़ी है। विद्वानोंने इन वातोंकी खोज भी की है और इन विषयोंका परिशीलन हो रहा है।

राजा चाहे जो हो और शासन चाहे जिस प्रकारका हो हिन्दू समाजकी व्यवस्था ऐसी स्वतन्त्र और दृढ़ है कि उसमें उथल-पथल नहीं हो पाता। पिछले डेढ़ सौ वरसोंकी विदेशी कुशिक्षाके कारण केवल पढ़े-लिखोंमें पुरानी समाज व्यवस्था और संस्कृतिके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो गयी है और उन्होंने अपने आचार, उच्चार और विचारमें पुरानेपनसे विद्रोहका झण्डा खड़ा कर रक्खा है। परन्तु इन विद्रोहियोंकी सङ्ख्या दालमें नमकके बराबर भी नहीं है। कोई पचास ही बरस पहलेकी बात है कि पुराणप्रिय हिन्दू विदेशी वस्तु मात्रको अशुद्ध और अस्पृश्य समझता था, रेलकी सवारीतकसे घृणा करता था, मोटा पहिनता और मोटा खाता था, विदेशियोंको छूना भी पाप समझता था, पक्का स्वदेशी भक्त था,* और विदेशोंको ही अशुद्ध मानता था। यद्यपि उसकी अनेक बातें व्यवहारमें देशभक्तिके उपयुक्त थीं, क्योंकि पुरानी संस्कृतिके कारण थीं परन्तु जिन विचारोंसे उसके उन व्यवहारोंकी प्रेरणा होती थी वे विचार सुसंस्कृत न थे। इसीलिये विदेशी वाणिज्य-नीतिने धीरे-धीरे गावोंके कोने-कोनेतक प्रवेश करके विदेशीको सुलभ और स्वदेशीको दुर्लभ कर दिया†। यह राजनीतिका फल नहीं है, व्यापारिक-नीतिका फल है, जो आजकलकी विदेशी राजनीतिका एक अनिवार्य्य अङ्ग हो रहा है।

* महाभारतमें लिखा है कि जब पाण्डुकी मृत्यु हुई तब वे पहाड़पर थे। वहा भी उनकी उत्तर क्रिया "स्वदेशी" वस्त्रोंमें आच्छादित करके की गयी। स्वदेशीका भाव हिन्दुत्वकी जान है। हिन्दूकी देशभक्ति राजनीतिक नहीं है, उसके प्राणोंका चिरसङ्गी धर्म्म है। वह धर्म्म समझकर देशके पहाड़, वृक्ष, नदी कुएँ, तालाब, घर और डेवढ़ी और चौकठ बल्कि मिट्टी तकको पूजता है।

† पचास वरस पहले यज्ञोंमें दियासलाईका प्रयोग ठीक नहीं समझा जाता था। चकमाककी पथरी अथवा घर्षणसे ही काम लेते थे। आज दियासलाईका बाजार गर्म है। फिर भी मध्यप्रान्तके देहातोंमें चकमाककी पथरी आज भी चलती है, क्योंकि उसमें ज्यादा सुभीता है।

उन्नासीवाँ अध्याय

चौसठ कलाएँ वा महाविद्याएँ

जिस जातिका इतिहास इतना प्राचीन हो, धार्मिक-साहित्य अत्यन्त विशाल हो, सामाजिक-विकास इतना दीर्घकालिक हो, उसमें विविध कलाओंका विकास भी बहुत ऊँची कोटिका होना ही चाहिये। वेदोंसे आरम्भ करके आजकलके साम्प्रदायिक साहित्यतक प्रायः सारा वाङ्मय पद्य ही है। सबमें काव्यकलाका पूर्ण प्रकाश है। ऋग्वेदमें ही वाङ्मय-कलाका आरम्भ होता है। उसके सूक्तोंमें पहेलियाँ तक हैं। गूढ़ार्थ मन्त्रोंके तो कहने ही क्या हैं। ये मन्त्र और उपनिषदोंके वाक्य, ब्राह्मण भागके ऐतिहासिक वर्णन और गाथाएँ परम उत्कृष्ट ध्वनि काव्य हैं। पुराण स्मृतियाँ, और इतिहास तो काव्यमय हैं ही। रामायण महाकाव्य प्रसिद्ध ही है। पीछेके जितने काव्य-नामधारी ग्रन्थ बने हैं प्रायः सबका वस्तुमात्र वही घटनाएँ हैं जो इतिहासों और पुराणोंमें दी जा चुकी हैं। यद्यपि धार्मिकता और चीज है और कविता और वस्तु है,—कला और चीज है और धर्म और वस्तु है—तो भी यह आवश्यक नहीं है कि कविता और धार्मिकता अथवा धर्मका और कलाका परस्पर विरोध हो। बल्कि यों कहना चाहिए कि कलाके सौन्दर्यकी परिपक्वता धार्मिकतामें ही आती है। चारों पुरुषार्थोंकी गणनामें **धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष** इन चारोंका अनुक्रम अक्षुण्ण रक्खा जाता है। धर्म नित्य है। इसी नित्य पदार्थसे आरम्भ करते हैं। अर्थ सुख दु:खका कारण और अनित्य है। और इसी तरह काम भी। परन्तु प्रवृत्ति-मार्गमें इस संसारमें दोनोंकी आवश्यकता पड़ती है। हमारे शास्त्रकारोंने इसीलिए धर्म और मोक्षकी सीमाओंके भीतर अर्थ और कामको बन्द रक्खा है। अर्थका उपार्जन धार्मिक रीतिसे और धार्मिक उद्देश्यसे ही करना चाहिए। और कलाओंका विकास विषयोपभोगके लिये आरम्भ तो होता है परन्तु क्रमशः विकास करते-करते जब अपनी अन्तिम अवस्थाको पहुँचता है तो अनित्य विषयोंको छोड़कर नित्यमें प्रवृत्त हो जाता है। इस प्रकार कलाका चरम उद्देश्य विषयोपभोग नहीं है। धार्मिक जीवनसे रहनेमें और तत्त्व-ज्ञानके प्राप्त करनेमें कला केवल सहायक ही नहीं है प्रत्युत् आचरणके सुधारनेमें उत्तरोत्तर विकासका समर्थक है। इसी दृष्टिसे विद्याओंका एक प्रकारका विभाग और किया गया है वह है **धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और मोक्षशास्त्र**। वेदोंका कर्मकाण्ड और तदन्तर्गत, तदधीन सम्पूर्ण साहित्य "धर्मशास्त्र"के विभागमें आता है। "अर्थशास्त्र" वा "अर्थवेद" तो एक उपवेद ही है जो अथर्ववेदके अधीन है और जिसके अन्तर्गत और अधीन सम्पूर्ण अर्थशास्त्र-सम्बन्धी साहित्य है। "कामशास्त्र" या "कलाशास्त्र"का मूल सामवेद, गान्धर्ववेद धनुर्वेद, स्थापत्य और तदन्तर्गत, तदधीन सम्पूर्ण कला साहित्य है। मोक्षशास्त्र वेदोंका ज्ञान-काण्ड और उपासनाकाण्ड है और उसके अन्तर्गत समस्त दर्शन तथा सम्पूर्ण मोक्ष-साहित्य है। यद्यपि अठारह विद्याओंमें इन चारों शास्त्रोंका समावेश हो जाता है तथापि कामशास्त्रके वर्णनमें कुछ कमी बाकी रह गयी है। कलाएँ वा महाविद्याएँ चौसठ बतायी जाती हैं।

था। स्वतन्त्र भारतका इतिहास इतने दीर्घ कालका है कि उसमें समाजका उद्भव, विकास और ह्रास सबके, सभी तरहके, अनुभव शामिल हैं, और अराजकतासे आरम्भ करके सभी तरहकी राज्यप्रणाली जो मनुष्यकी कल्पनामें आ सकती है यहाँ अनुभूत हो चुकी है। विशाल हिन्दू-साहित्यमें इसकी भारी सामग्री भरी पड़ी है। विद्वानोंने इन बातोंकी खोज भी की है और इन विषयोंका परिशीलन हो रहा है।

राजा चाहे जो हो और शासन चाहे जिस प्रकारका हो हिन्दू समाजकी व्यवस्था ऐसी स्वतन्त्र और दृढ़ है कि उसमें उथल-पथल नहीं हो पाता। पिछले डेढ़ सौ बरसोंकी विदेशी कुशिक्षाके कारण केवल पढ़े-लिखोंमें पुरानी समाज व्यवस्था और संस्कृतिके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो गयी है और उन्होंने अपने आचार, उच्चार और विचारमें पुरानेपनसे विद्रोहका झण्डा खड़ा कर रक्खा है। परन्तु इन विद्रोहियोंकी सङ्ख्या दालमें नमकके बराबर भी नहीं है। कोई पचास ही बरस पहलेकी बात है कि पुराणप्रिय हिन्दू विदेशी वस्तु मात्रको अशुद्ध और अस्पृश्य समझता था, रेलकी सवारीतकसे घृणा करता था, मोटा पहिनता और मोटा खाता था, विदेशियोंको छूना भी पाप समझता था, पक्का स्वदेशी भक्त था,* और विदेशोंको ही अशुद्ध मानता था। यद्यपि उसकी अनेक बातें व्यवहारमें देशभक्तिके उपयुक्त थीं, क्योंकि पुरानी संस्कृतिके कारण थीं परन्तु जिन विचारोंसे उसके उन व्यवहारोंकी प्रेरणा होती थी वे विचार सुसंस्कृत न थे। इसीलिये विदेशी वाणिज्य-नीतिने धीरे-धीरे गावोंके कोने-कोनेतक प्रवेश करके विदेशीको सुलभ और स्वदेशीको दुर्लभ कर दिया†। यह राजनीतिका फल नहीं है, व्यापारिक-नीतिका फल है, जो आजकलकी विदेशी राजनीतिका एक अनिवार्य्य अङ्ग हो रहा है।

* महाभारतमें लिखा है कि जब पाण्डुकी मृत्यु हुई तब वे पहाड़पर थे। वहां भी उनकी उत्तर क्रिया "स्वदेशी" वस्त्रोंमें आच्छादित करके की गयी। स्वदेशीका भाव हिन्दुत्वकी जान है। हिन्दूकी देशभक्ति राजनीतिक नहीं है, उसके प्राणोंका चिरसङ्गी धर्म्म है। वह धर्म्म समझकर देशके पहाड़, वृक्ष, नदी कुएँ, तालाब, घर और डेवढ़ी और चौकठ बल्कि मिट्टी तकको पूजता है।

† पचास बरस पहले यज्ञोंमें दियासलाईका प्रयोग ठीक नहीं समझा जाता था। चकमाककी पथरी अथवा घर्षणसे ही काम लेते थे। आज दियासलाईका बाजार गर्म है। फिर भी मध्यप्रान्तके देहातोंमें चकमाककी पथरी आज भी चलती है, क्योंकि उसमें ज्यादा सुभीता है।

उन्नासीवाँ अध्याय

चौसठ कलाएँ वा महाविद्याएँ

जिस जातिका इतिहास इतना प्राचीन हो, धार्मिक-साहित्य अत्यन्त विशाल हो, सामाजिक-विकास इतना दीर्घकालिक हो, उसमें विविध कलाओंका विकास भी बहुत ऊँची कोटिका होना ही चाहिये। वेदोंसे आरम्भ करके आजकलके साम्प्रदायिक साहित्यतक प्रायः सारा वाङ्मय पद्य ही है। सबमें काव्यकलाका पूर्ण प्रकाश है। ऋग्वेदमें ही वाङ्मय-कलाका आरम्भ होता है। उसके सूक्तोंमें पहेलियां तक हैं। गूढ़ार्थ मन्त्रोंके तो कहने ही क्या हैं। ये मन्त्र और उपनिषदोंके वाक्य, ब्राह्मण भागके ऐतिहासिक वर्णन और गाथाएँ परम उत्कृष्ट ध्वनि काव्य हैं। पुराण स्मृतियां, और इतिहास तो काव्यमय हैं ही। रामायण महाकाव्य प्रसिद्ध ही है। पीछेके जितने काव्य-नामधारी ग्रन्थ बने हैं प्रायः सबका वस्तुमात्र वही घटनाएँ हैं जो इतिहासों और पुराणोंमें दी जा चुकी हैं। यद्यपि धार्मिकता और चीज है और कविता और वस्तु है,—कला और चीज है और धर्म और वस्तु है—तो भी यह आवश्यक नहीं है कि कविता और धार्मिकता अथवा धर्मका और कलाका परस्पर विरोध हो। बल्कि यों कहना चाहिए कि कलाके सौन्दर्यकी परिपक्वता धार्मिकतामें ही आती है। चारों पुरुषार्थोंकी गणनामें **धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष** इन चारोंका अनुक्रम अक्षुण्ण रक्खा जाता है। धर्म नित्य है। इसी नित्य पदार्थसे आरम्भ करते हैं। अर्थ सुख दु:खका कारण और अनित्य है। और इसी तरह काम भी। परन्तु प्रवृत्ति-मार्गमें इस संसारमें दोनोंकी आवश्यकता पड़ती है। हमारे शास्त्रकारोंने इसीलिए धर्म और मोक्षकी सीमाओंके भीतर अर्थ और कामको बन्द रक्खा है। अर्थका उपार्जन धार्मिक रीतिसे और धार्मिक उद्देश्यसे ही करना चाहिए। और कलाओंका विकास विषयोपभोगके लिये आरम्भ तो होता है परन्तु क्रमशः विकास करते-करते जब अपनी अन्तिम अवस्थाको पहुँचता है तो अनित्य विषयोंको छोड़कर नित्यमें प्रवृत्त हो जाता है। इस प्रकार कलाका चरम उद्देश्य विषयोपभोग नहीं है। धार्मिक जीवनसे रहनेमें और तत्त्व-ज्ञानके प्राप्त करनेमें कला केवल सहायक ही नहीं है प्रत्युत् आचरणके सुधारनेमें उत्तरोत्तर विकासका समर्थक है। इसी दृष्टिसे विद्याओंका एक प्रकारका विभाग और किया गया है वह है **धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और मोक्षशास्त्र**। वेदोंका कर्मकाण्ड और तदन्तर्गत, तदधीन सम्पूर्ण साहित्य "धर्मशास्त्र"के विभागमें आता है। "अर्थशास्त्र" वा "अर्थवेद" तो एक उपवेद ही है जो अथर्ववेदके अधीन है और जिसके अन्तर्गत और अधीन सम्पूर्ण अर्थशास्त्र-सम्बन्धी साहित्य है। "कामशास्त्र" या "कलाशास्त्र"का मूल सामवेद, गान्धर्ववेद धनुर्वेद, स्थापत्य और तदन्तर्गत, तदधीन सम्पूर्ण कला साहित्य है। मोक्षशास्त्र वेदोंका ज्ञान-काण्ड और उपासनाकाण्ड है और उसके अन्तर्गत समस्त दर्शन तथा सम्पूर्ण मोक्ष-साहित्य है। यद्यपि अठारह विद्याओंमें इन चारों शास्त्रोंका समावेश हो जाता है तथापि कामशास्त्रके वर्णनमें कुछ कमी बाकी रह गयी है। कलाएँ वा महाविद्याएँ चौसठ बतायी जाती हैं।

यद्यपि उन चौसठोंमेंसे अनेकका समावेश इन अठारहोंमें यत्र-तत्र हो चुका है तथापि किसी एक स्थानपर विशेष रूपसे इनकी सूची नहीं दी गयी है। इनमें विनय और शिष्टाचार, अभिधानकोष और छन्दोंका ज्ञान, काव्यकला, अनेक भाषाओंका ज्ञान, इत्यादिका भी समावेश हुआ है। यहाँ वह सूचीमात्र दी जाती है।

१—गीत (गाना)।

२—वाद्य (बाजा बजाना)।

३—नृत्य (नाचना)।

४—नाट्य (अभिनय)।

५—आलेख्य (चित्रकारी)।

६—विशेषकच्छेद्य (तिलकके सांचे बनाना)।

७—तण्डुल-कुसुमावलि-विकार (चावल और फूलोंका चौक पूरना)।

८—पुष्पास्तरण (फूलोंकी सेज रचना वा बिछाना)।

९—दशनवसनाङ्गराग (दांतों, कपड़ों और अङ्गोंको रँगना वा दांतोंके लिए मञ्जन, मिस्सी आदि वस्त्रोंके लिए रङ्ग और रँगनेकी सामग्री तथा अङ्गोंमें लगानेके लिये चन्दन, केसर, मेंहदी, महावर आदि बनाना और उनके बनानेकी विधिका ज्ञान)।

१०—मणिभूमिका कर्म (ऋतुके अनुकूल घर सजाना)।

११—शयनरचना (बिछावन वा पलँग बिछाना)।

१२—उदकवाद्य (जलतरङ्ग बजाना)।

१३—उदकघात (पानीकी चोटसे काम लेना जैसे पनचक्की पिचकारी आदिसे काम लेनेकी विद्या)।

१४—चित्रयोग (अवस्था परिवर्त्तन करना अर्थात् जवानको बुड्ढा और बुड्ढेको जवान करना इत्यादि)।

१५—माल्यग्रन्थविकल्प (देवपूजनके लिये वा पहननेके लिये माला गूँथना)।

१६—केश-शेखरापीड़-योजन (शिरपर फूलोंसे अनेक प्रकारकी रचना करना वा शिरके बालोंमें फूल लगाकर गूँधना)।

१७—नेपथ्ययोग (देशकालके अनुसार वस्त्र, आभूषण आदि पहिनना)।

१८—कर्णपत्रभङ्ग (कानोंके लिये कर्णफूल आदि आभूषणोंको बनाना)।

१९—गन्धयुक्ति (सुगन्धित पदार्थ जैसे गुलाब, केवड़ा, इत्र, फुलेल आदि बनाना)।

२०—भूषण-योजन।

२१—इन्द्रजाल।

२२—कौचुमारयोग (कुरूपको सुन्दर करना वा मुँहमें और शरीरमें मलने आदिके लिए ऐसे उबटन आदि बनाना जिनसे कुरूप भी सुन्दर हो जाय)।

२३—हस्तलाघव (हाथकी सफाई, फुर्ती वा लाग)।

२४—चित्रशाकापूपभक्ष्य-विकार-क्रिया (अनेक प्रकारकी तरकारियाँ, पूप और खानेके पकवान बनाना)। सूपकर्म।

२५—पानकरसरागासव-योजन (पीनेके लिये अनेक प्रकारके शर्बत, अर्क, और शराब आदि बनाना)।

२६—सूचीकर्म (सीना, पिरोना)।

२७—सूत्रकर्म (तरह-तरहके कपड़े बुनना, और रफूगरी और कसीदा काढ़ना तथा तागेसे तरह-तरहके बेलबूटे बनाना)।

२८—प्रहेलिका (पहेली वा बुझौवल कहना और बूझना)।

२९—प्रतिमाला (अन्त्याक्षरी अर्थात् श्लोकका अन्तिम अक्षर लेकर उसी अक्षरसे आरम्भ होनेवाला दूसरा श्लोक कहना, बैतबाजी)।

३०—दुर्वाचकयोग (कठिन पदों वा शब्दोंका तात्पर्य्य निकालना)।

३१—पुस्तकवाचन (उपयुक्त रीतिसे पुस्तक पढ़ना)।

३२—नाटिकाख्यायिकादर्शन (नाटक देखना या दिखलाना)।

३३—काव्यसमस्यापूर्त्ति।

३४—पट्टिकावेत्रवाणविकल्प (नेवाड़, बाध वा बेंतसे चारपाई आदि बुनना)।

३५—तर्कुकर्म (तकुआ सम्बन्धी सारे काम)।

३६—तक्षण (बढ़ई सङ्गतराश आदिका काम करना)।

३७—वास्तुविद्या (घर बनाना, इञ्जिनियरी)।

३८—रूप्यरत्नपरीक्षा (सोने चाँदी आदि धातुओं और रत्नोंको परखना)।

३९—धातुवाद (कच्ची धातुओंको साफ करना वा मिली धातुओंको अलग-अलग करना)।

४०—मणिराग-ज्ञान (रत्नोंके रङ्गोंको जानना)।

४१—आकर-ज्ञान (खानोंकी विद्या)।

४२—वृक्षायुर्वेदयोग (वृक्षोंका ज्ञान, चिकित्सा और उन्हें रोपने आदिकी विधि)।

४३—मेष-कुक्कुट-लावक-युद्ध-विधि (मेढ़ा, मुर्गा, बटेर, बुलबुल आदिको लड़ानेकी विधि)।

४४—शुक-सारिका-प्रलापन (तोता-मैना पढ़ाना)।

४५—उत्सादन (उबटन लगाना और हाथ, पैर, सिर, आदि दबाना।

४६—केशमार्जन-कौशल (बालोंका मलना और तेल लगाना)।

४७—अक्षरमुष्टिकाकथन (करपलई)।

४८—म्लेच्छित-कलाविकल्प (म्लेच्छ वा विदेशी भाषाओंका जानना)।

४९—देशभाषा-ज्ञान (प्राकृतिक बोलियोंको जानना)।

५०—पुष्पशकटिका-निमित्त-ज्ञान (दैवी लक्षण जैसे बादलकी गरज, बिजलीकी चमक इत्यादि देखकर आगामी घटनाके लिये भविष्यद्वाणी करना)।

५१—यन्त्रमातृका (सब प्रकारके यन्त्रोंका निर्माण)।

५२—धारणमातृका (स्मरण बढ़ाना)।

५३—सम्पाठ्य (दूसरेको कुछ पढ़ते हुए सुनकर उसे उसी प्रकार पढ़ देना)।

५४—मानसीकाव्य-क्रिया (दूसरेका अभिप्राय समझकर उसके अनुसार तुरन्त कविता करना वा मनमें काव्य करके शीघ्र कहते जाना)।

५५—क्रियाविकल्प (क्रियाके प्रभावको पलटना)।

५६—छलिकयोग (छल वा ऐयारी करना)।

५७—अभिधानकोष छन्दोज्ञान।

५८—वस्त्रगोपन (वस्त्रोंकी रक्षा करना)।

५९—द्यूतविशेष (जुआ खेलना)।

६०—आकर्षणक्रीड़ा (खींचने फेंकनेवाले सारे खेल)।

६१—बालक्रीड़ाकर्म (लड़का खेलाना)।

६२—वैनायिकी विद्याज्ञान (विनय, सभाजन और शिष्टाचार, इल्मइख़्लाक वो आदाव)।

६३—वैजयिकी विद्याज्ञान (शत्रुपर विजय पानेका कौशल)।

६४—व्यायामिकी विद्याज्ञान (खेल, कसरत, योगासन, प्राणायाम, आदि व्यायाम)।

इस सूचीमें अनेक नाम पारिभाषिक हैं। उनका ठीक तात्पर्य्य और विषयकी इयत्ता समझमें नहीं आती। इतने दीर्घकालका सम्पूर्ण साहित्य मिलना भी असम्भव है। कालके प्रभावसे बहुत कम साहित्य बचा है। जो कुछ उपलब्ध हुआ भी है, इसी कालभेदके कारण उसका यथार्थ तात्पर्य्य भी समझमें नहीं आता। वेदोंकी बात न्यारी है। उनकी तो मात्राएँ गिनी गयीं, अक्षर-अक्षर उलटे और सीधे दोनों तरहसे कण्ठ करके याद कर लिये गये और शिष्यपरम्पराद्वारा उनकी रक्षा हुई। वहाँ भी पाठभेद, क्रमभेद, और उच्चारणभेदसे कितनी शाखाएँ हो गयीं। फिर भी इतने बड़े साहित्यकी किसी प्रकार रक्षा हो गयी। इनके सिवा और साहित्यकी किसी तरहकी रक्षाका न होना और ऐसा होते हुए भी हमें कुछ-न-कुछ अवशिष्ट प्राप्त हो जाना हमारे बड़े सौभाग्यकी बात है।
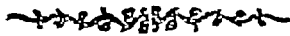
अस्सीवाँ अध्याय

उपसंहार

आस्तिक हिन्दुओंकी धारणा है कि ज्ञान अनादि अनन्त है। उसीकी अनन्त राशिका नाम वेद है। प्राप्य संहिताएँ उसकी स्थूल और अपूर्ण प्रतिनिधि हैं। अपूर्ण इसलिये कि संसारको जितने ज्ञानकी जिस कालमें आवश्यकता होती है उतना ही परमात्माकी प्रेरणासे तात्कालिक संहिताओंद्वारा मिलता है। स्थूल प्रतिनिधि, जिसका मर्य्यादित रहना अनिवार्य्य है, पूर्ण हो नहीं सकता। तो भी वर्त्तमान ससारके लिये ज्ञानका मूल-स्रोत वेद ही है। बीजरूपसे इस संसारके उपयोगी सम्पूर्ण ज्ञानका भण्डार वेद ही है। उसके अङ्ग और उपाङ्ग उसके ही विकास हैं। जिन शास्त्रोंका वा विज्ञानोंका नाम भी इस ग्रन्थमें दी हुई सूचियोंमें नहीं आया है वह पाश्चात्य शास्त्र और विज्ञान भी वेदोंके अङ्गों और उपाङ्गोंके अन्तर्भूत हैं। आधुनिक विज्ञान उत्तरोत्तर-वर्द्धमान शास्त्र है। उसकी कई शाखाएँ हालमें पनपी हैं और विकसित हो रही हैं। आगे भी ज्यों-ज्यों संसार समुन्नत होता जायगा त्यों-त्यों नित्य नये-नये आविष्कार होंगे, नयी विद्याएँ जानी जायेंगी। परन्तु हमारी दृढ़ धारणा है कि वह सब वेदोंके अङ्गों और उपाङ्गोंमें अवश्य ही समाविष्ट हो सकेंगी।

हिन्दू-धार्मिक-साहित्य व्यापक है। विचारका और तर्कका विकास जितने प्रकारका और जितनी दिशाओंमें हो सकता है, सबका समावेश हिन्दू दर्शनोंमें हो गया है। परमात्मा की उपासना जिन-जिन रूपोंमें और जिन-जिन प्रकारोंसे हो सकती है हिन्दू-शास्त्रोंमें सबका समावेश है। हिन्दू-समाज अपनी संस्कृतिको अक्षुण्ण रखते हुए ईसाई, मुसलमान आदि भिन्न संस्कृतिके धर्म्मोंको भी अपना अङ्ग बना सकता है। भगवान्‌के असङ्ख्य अवतारोंमें हजरत ईसा और मुहम्मद साहबको सहज ही स्थान मिल सकता है। हिन्दू-समाजके भीतर जिस तरह आस्तिक और नास्तिक दोनों दलके विविध-मतवादी मौजूद हैं उसी तरह हिन्दू धार्मिक साहित्यमें सभी तरहके मत मतान्तरका प्रतिनिधित्व है। कोई ऐसा न समझे कि कर्म्मणावर्ण.का प्रतिपादन आर्य्यसमाजकी ही विशेषता है, क्योंकि पुराणोंके-न माननेवाले आर्य्यसमाजकी तरह जन्मनावर्ण.का पूरा खण्डन भविष्य-महापुराणमें मिलता है। यह तो हमने एक उदाहरण दिया। हिन्दू धार्म्मिक साहित्य तो मतभेदोंका एक विशाल सङ्ग्रह है। उसमें जहाँ किसी पक्षका खण्डन मौजूद है वहाँ उसी पक्षका मण्डन भी मौजूद है। लोग इस प्रकारके विरोधी-मतोंको देखकर चकराते हैं, और समझते हैं कि हिन्दू धार्म्मिक साहित्य-का यह एक बड़ा दूषण है। परन्तु जिसे वह दूषण समझते हैं वह वस्तुतः उसकी प्रकृत महत्ता है, व्यापकता है, उदारता है और भूषण है। उदार हिन्दू साहित्य विविध विचारोंकी सामग्री प्रत्येक हिन्दूके सामने रखता है। जो चाहे उसका सदुपयोग करे, स्वतन्त्र रीतिसे सबपर विचार करे और अपने अधिकारके अनुसार अपनी परिस्थितिके अनुकूल उचित और उपयोगी मार्ग चुन ले। हिन्दू धार्म्मिक साहित्यमें कर्म्म, ज्ञान और उपासनाके सभी तरह-

अनुक्रमणिका

के जलाशय हैं, कुएँ हैं, तालाव हैं, सोते हैं, नदियाँ और अथाह समुद्र भी हैं। अपने अधिकारके कमण्डलुमें उतना ही जल आवेगा जितनेकी उसमें समाई होगी। फिर उस कमण्डलुको चाहे आप तालाबमें डुबोइये चाहे समुद्रमें। संसारके और सभी धर्म्म सार्वभौम वननेका दावा रखते हैं। परन्तु प्रत्येक व्यक्तिकी आवश्यकताके अनुसार उसे धार्म्मिक तुष्टि पहुँचानेकी जितनी क्षमता हिन्दू धर्म्ममें है उतनी शायद और किसी धर्म्ममें नहीं है। इसीलिये हिन्दू-धर्म्म सार्वभौम धर्म्म है, और अन्य धर्म्मोंकी अपेक्षा अधिक व्यापक है, समस्त मतों और सम्प्रदायोंको मिलानेवाला है। जहाँ और धर्म्मवाले अपना प्रचार करते हैं और दूसरोंको खदेड़ते हैं, वहाँ हिन्दू धर्म्म अपना प्रचार भी नहीं करता और किसीको खदेड़ता भी नहीं। हिन्दू-धर्म्मसे मेल करनेकी केवल एकही शर्त है और वह शर्त यही है कि हिन्दू-संस्कृति अक्षुण्ण रहे। किसी व्यक्तिके विचार चाहे कैसे ही हों, प्रचार चाहे जिस मतका करता हो, परन्तु आचार हिन्दूका ही हो। चरित्र आपादशिखान्त हिन्दू हो। हिन्दू-चरित्र और हिन्दू-आचार रखनेवाला यदि ईसाई और मुसलमान विचार भी रखता हो तो भी हिन्दू-समाज उसका बहिष्कार न करेगा। इसीके विपरीत जिसने हिन्दू-संस्कृतिका परित्याग किया है उसके विचार कितने ही आस्तिक हों, पर हिन्दू उससे मिलते हुए झिझकता है, और उसका बहिष्कार करनेके लिए समाज तैयार रहता है। हिन्दू होनेके लिए इसीलिए हिन्दू संस्कृति ही मुख्य है।

इस ग्रन्थमें अत्यन्त संक्षेपसे हमने यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि हिन्दुत्व क्या है, उसकी इयत्ता क्या है, उसके साहित्यमें क्या-क्या है। हमारा यह उद्देश्य रहा है कि हम केवल इस महार्णवके ऊपरी तलकी ही सैर करावें। यह सैर भी वहुत सरसरी हुई, क्योंकि देश कालके सङ्कोचसे हम किसी विषयके पूरे पर्य्यवेक्षणके लिये ठहर न सके। इस पुस्तककी सैर करके पढ़नेवालेके मनमें हिन्दू-साहित्यके किसी अंशको पूर्णतया अध्ययन करनेका शौक पैदा न भी हो तो कमसे-कम उसे यह सन्तोष तो होना ही चाहिये कि मैं विशाल हिन्दुत्वका कुछ थोड़ा-थोड़ा अंश तो अवश्य जानता हूँ।

हमने चौसठों महाविद्याओंका वर्णन अन्तमें किया है। उससे पहले हिन्दू-समाजकी वर्त्तमान अवस्थाका दिग्दर्शन कराया है। यह बात सम्प्रदायोंका संक्षिप्त वर्णन करनेके बाद है। इससे पहले तो हमने केवल इतना बतलाया है कि हिन्दू-धार्म्मिक-साहित्यमें है क्या। तन्त्रोंमें, आस्तिक दर्शनों और नास्तिक दर्शनोंमें, स्मृतियोंमें, पुराणोंमें, इतिहासोंमें, शिक्षादि षडङ्गोंमें, उपवेदोंमें, और वेदोंमें क्या है, इसकी सक्षिप्त सूचीमात्र देनेका हमने प्रयत्न किया है। अत्यन्त विशाल हिन्दू-साहित्यके लिये पढ़नेवालेको यह ग्रन्थ एक छोटी विषयसूचीका काम तो अवश्य दे सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

श्रद्धालु पाठकेभ्योऽयम् हिन्दु-धर्म्म-समुच्चयः।
विवृत्तदृष्टिमानन्दम् मङ्गलम् च प्रयच्छतु॥

॥ इति॥

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

इ

ई

उ

छ

ज

छ

ज

फ

ब

म

य

य

व

व

आवश्यकता है

ऐसे विद्वानो और सूक्ष्मदर्शी विवेचकोकी जो इतिहास और संस्कृतिकी दृष्टिसे नीचे लिखे धर्मोंके क्रमविकाशपर अच्छे ग्रन्थ लिख सकते हो और लिखना चाहते हो—

(१) जरथुष्ट्र (पारसियोंका धर्म)
(२) मूसाई धर्म (यहूदी मत)
(३) बौद्ध धर्म
(४) ईसाई धर्म
(५) इस्लाम (मुस्लिम धर्म)

ग्रन्थ हिन्दीमें ही होगे। जो सज्जन यह कार्य करना चाहते हों और इसके अधिकारी भी हो वे कृपा कर मुझसे पत्रव्यवहार करें।

शिवप्रसाद गुप्त
सेवा उपवन, नगवा,
काशी।

ज्ञानमण्डलकी प्रकाशित पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
स्वराज्यका सरकारी मस्विदा दोनों भाग	॥=)	भारतवर्षका इतिहास	२॥)
अब्राहम लिंकन	॥)	अशोकके धर्मलेख	२॥)
इटलीके विधायक महात्मागण	२।)	पृथिवी-प्रदक्षिणा	१५)
यूरोपके प्रसिद्ध शिक्षण-सुधारक	१॥=)	अन्ताराष्ट्रिय विधान	३।)
बनारसके व्यवसायी	॥=)	पश्चिमी यूरोप	२॥)
गृहशिल्प	॥)	कल्याणमार्गका पथिक	१॥)
वैज्ञानिक अद्वैतवाद	१॥=)	संसारके व्यवसायका इतिहास	॥=)
जापानकी राजनीतिक प्रगति	३॥=)	सौर रोजनामचा	॥-)
रूसका पुनर्जन्म	॥=)	हिन्दीकी तीसरी पुस्तक	।-)॥
रोम-साम्राज्य	२॥)	हिन्दीकी चौथी पुस्तक	।=)॥
खादका उपयोग	१)	विक्रमांकदेवचरितम्	१॥)
सारनाथका इतिहास	१॥)	तैरनेकी कला	।=)
ब्रिटिश भारतका आर्थिक इतिहास	१।-)	अवधके किसानोंकी बर्बादी	।)
राजनीति शास्त्र	२।=)	सविनय अवज्ञा-जाँच-समितिकी रिपोर्ट	॥)
राष्ट्रीय आय-व्यय-शास्त्र	३।)		

काशी विद्यापीठकी प्रकाशित पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
समाजवाद	१॥)	हिन्दी-शब्द-संग्रह	४)
संसारकी समाजक्रान्ति	१॥)	अभिधर्मकोश.	५)
जापान रहस्य	१॥)	भारतका सरकारी ऋण	१=)
मीर क़ासिम	१॥)	इब्नबतूताकी भारतयात्रा	२।=)
अफलातूनकी सामाजिक व्यवस्था	१।=)	ग्रीस और रोमके महापुरुष	३॥)
अंग्रेज जातिका इतिहास	२॥)	साम्राज्यवाद	२॥)
हिन्दू भारतका उत्कर्ष	३॥)	ट्राटस्कीकी जीवनी	२)
पश्चिमी यूरोप (दूसरा भाग)	२।)	मनुपादानुक्रमणी	॥)

कुछ अन्य पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
दिलचस्प सच्ची कहानियाँ	।)	गृहस्थ गीता	=)
तुलसी साहित्य	४)	हिन्दूधर्मकी बालपोथी	।)

मिलनेका पता—ज्ञानमण्डल पुस्तक-भंडार, काशी ।